कल्याण

संक्षिप्त चित्र-परिचय

१—श्रीचैतन्य-महाप्रभुकी मस्ती (रंगीन) मुखपृष्ठ। श्रीचैतन्य-महाप्रभुका नाम-प्रेम प्रसिद्ध है ।

२—ध्रुवपर कृपा (रंगीन) पृष्ठ १ । भगवन्नाम-मन्त्रके प्रभावसे ध्रुवको भगवान्‌ने दर्शन दिये । प्रसिद्ध कथा है।

३—गजराजकी नारायण-पुकार (सादा) पृष्ठ ३३ । ग्राहने जब गजराजको जलके अंदर खींचकर डुबाना चाहा तब गजराजने नारायण-नामकी पुकार की । भगवान्‌ने तत्काल पधारकर उसकी रक्षा की ।

४—श्रीनिमाई-नित्यानन्दका महासंकीर्तन (रंगीन) पृष्ठ ५२ । श्रीचैतन्य-महाप्रभुका गृहस्थका नाम निमाई था । इनका श्रीनित्यानन्दजी तथा भक्तमण्डलीके साथ कीर्तन करना प्रसिद्ध है ।

५—रामनामकी परिक्रमासे विजयी गणेश (रंगीन) पृष्ठ ९७ । यह कहा गया कि जो सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके पहले आ जायँगे, उन्हींकी सबसे पहले पूजा होगी । गणेशजी स्थूलकाय हैं और चूहा इनका वाहन है । ये परिक्रमा करके सबसे पहले आ ही नहीं सकते थे । अतएव 'राम' नामको समस्त पृथ्वीमण्डलका आश्रय मानकर इन्होंने 'रामनाम' लिखकर उसकी परिक्रमा कर ली और विजयी हो गये ।

'नाम प्रभाव जान गन राऊ । प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ॥'

६—माँ आनन्दमयीके साथ माला लिये श्रीनेहरूजी (सादा) पृष्ठ १३६ ।

७—माँ आनन्दमयीके साथ ध्यानमग्न श्रीनेहरूजी (सादा) पृष्ठ १३६ । इसी पृष्ठमें इसका परिचय है ।

८—भगवान्‌का वस्त्रावतार (रंगीन) पृष्ठ १४४ । द्रौपदीकी पुकारपर भगवान्‌का वस्त्रके रूपमें अवतरित होना प्रसिद्ध है ।

९—प्रेम-मतवाली मीराँ (रंगीन) पृष्ठ १९३ । भक्तिमती मीराँजी नाम-प्रेममतवाली होकर नृत्य कर रही हैं ।

१०–मीराँका विषपान (रंगीन) पृष्ठ १०३। राणाके द्वारा दिया हुआ विष भगवान्‌के चरणामृतके नामसे मीराँजीके पास भेजा गया। मीराँजी उसे अपने मनमें चरणामृत मानकर ही पी गयीं। वह उनके लिये विष नहीं रहा।

११–अजामिल-उद्धार (रंगीन) पृष्ठ २३३। अजामिलके पुत्रका नाम नारायण था। अजामिलने मरते समय 'नारायण' नामसे पुत्रको पुकारा। 'नारायण' भगवान्‌का नाम है अतएव भगवान् विष्णुके पार्षद आ गये और उन्होंने यमदूतोंको मार भगाया। अजामिलकी मुक्ति हो गयी। यों नामाभाससे ही अजामिल तर गया।

१२–तोतेका भगवन्नामोच्चारण (रंगीन) पृष्ठ २३३। पिङ्गला वेश्या तोतेको पढ़ानेके बहाने रामनाम लेती थी। इसी नामाभासके प्रतापसे वह तर गयी।

१३–रामनामका महत्त्व (सादा) पृष्ठ २८९। श्रीमहादेवजीके कथनानुसार श्रीपार्वतीजीने सहस्रनामके समान 'राम' नामको माना और रामनामका जप करके उनके साथ भोजन कर लिया। देखिये पृष्ठ ४५२।

सहसनाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥

१४–'श्रीकृष्ण' नाममें लीन श्रीराधाजी (रंगीन) पृष्ठ ३२१
'श्रीकृष्ण'–मधुर नाम सुनकर राधाजीमें पूर्व रागका उदय हो गया, इससे वे दिन-रात आँसू बहाती हुई 'श्रीकृष्ण' नामका जप करने लगीं।

'कृष्ण' नाम सुनि मधु मधुर उपज्यौ पूरब राग।
जपत रैनदिन अनवरत चित्त भरयौ अनुराग॥
नेह-सुधा नयननि्ह स्रवत, पल छिन बिसरेत नाहिं।
मधुर मिलनकी चाह-सरि उमगि रही मन माहिं॥

१५–'श्रीराम' नाममें लीन श्रीसीताजी (रंगीन) पृष्ठ ३२१
लंकामें अकेली बैठी श्रीसीताजी प्रियतम भगवान् श्रीरामका नाम रटती आँसू बहाया करती हैं। उन प्रेमके आँसुओंसे ही उनके तन-मनको शीतलता मिलती है।

बिरह अगिनि सौं जरत हिय ब्याप रही तन पीर।
चिंतत पिय गुन रूप नित, धरत न नैकहु धीर॥
रटत राम निसिदिवस प्रिय झरत सतत दृग नीर।
सुधा सरिस सीतल करत, ही-तल बाह्य सरीर॥

१६–अगस्त्यका समुद्र-पान (रंगीन) पृष्ठ
श्रीरामनाम लेकर नामकी अपार शक्तिके अगस्त्यजी सहज ही सारा समुद्र-जल पान कर

१७–समुद्रपर रामनाम-अंकित पत्थरोंका (सादा) पृष्ठ ४१७। नल-नील आदि वानरोंने र अङ्कित पत्थरोंसे समुद्रपर पुल बाँध दिया। राम प्रभावसे पत्थर समुद्रमें नहीं डूबे।

१८–प्रह्लादके लिये अग्नि शीतल हो गयी (रं पृष्ठ ४५३। परिचय इसी पृष्ठमें देखिये।

१९–अर्जुनके रोम-रोमसे कृष्णनामध्वनि (सा पृष्ठ ४५९। इसी पृष्ठमें परिचय देखिये।

२०–सुधन्वाका सौभाग्य (सादा) पृष्ठ ४६५। पृष्ठमें परिचय देखिये।

२१–श्रीचैतन्य महाप्रभुका नाम-चमत्कार (रंगी पृष्ठ ४७२। इसी पृष्ठमें परिचय देखिये।

२२–श्रीहरिदासजीके द्वारा वेश्याका उद्धार (रंगी पृष्ठ ४८१। पृष्ठ ४८२-८३ में परिचय देखिये।

२३–श्रीहरिदासजीकी नामनिष्ठा (रंगीन) पृष्ठ ४८१
पृष्ठ ४८२-८३ में परिचय देखिये।

२४–श्रीशिवका तारक-मन्त्रदान (रंगीन) पृष्ठ ५२९
पृष्ठ ४५१ में परिचय देखिये।

२५–नामका फल (रंगीन) पृष्ठ ५२९। पृष्ठ ४४९ परिचय देखिये।

२६–हठीजीकी 'राधा'-नामनिष्ठा (रंगीन) पृष्ठ ५७६
पृष्ठ ४७२ में हठीजीका पद देखिये।

२७–कृष्ण-नाम-माधुरी (रंगीन) पृष्ठ ५७६। श्रीकृष्ण नामकी सर्वोपरि मधुरता प्रसिद्ध है।

२८–मार्कण्डेयको अमरता-प्रदान (रंगीन) पृष्ठ ६२०।
इसी पृष्ठमें परिचय देखिये।

२९–रामनाम-कीर्तनमें मस्त श्रीहनुमानजी। (सादा) पृष्ठ ६३३। श्रीहनुमान्‌जीका रामनाम-प्रेम प्रसिद्ध है।

३०–पाठशालामें निमाई पण्डितके द्वारा नाम-शिक्षा (रंगीन) पृष्ठ ६७३। गयाजीसे लौटनेके बाद निमाई पण्डित अपनी पाठशालामें विद्यार्थियोंको पढ़ाते समय नामका प्रवचन सुनाने लगे।

३१–काशीके संन्यासियोंमें श्रीचैतन्य (रंगीन) पृष्ठ ६७३। पृष्ठ १५१ में परिचय देखिये।

विश्वविद्यालयोंके स्नातकोंको प्रतिवर्ष पदवी-दान-समारम्भके अवसरपर

श्रीमद्भगवद्गीताकी हिंदी या अंग्रेजी अनुवाद-सहित

एक प्रति भेंटस्वरूप प्रदान करनेकी योजना

'गीताप्रेस'की प्रधान-संस्था गोविन्द-भवन कार्यालयके ट्रस्टियोंने लगभग दो सालसे उपर्युक्त योजना निश्चित करके देशके शिक्षित नवयुवकोंको अपने जीवन-साथीके रूपमें विश्वके सार्वभौम धर्मग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीताकी एक-एक प्रति हिंदी या अंग्रेजीमें स्नातकोंके इच्छानुसार प्रदान करनेका निश्चय किया था। इस पवित्र ग्रन्थका [illegible] उनकी भावी जीवनयात्राको सफल बनानेमें अतीव उपयोगी सिद्ध हो सकता है। गीताप्रेसकी प्रार्थनाको स्वीकार करके निम्नलिखित विश्वविद्यालय तथा स्नातकोत्तर शिक्षा-संस्थाओंने श्रीमद्भगवद्गीताकी प्रतियाँ अबतक वितरित की है—

(१)	राजस्थान विश्वविद्यालय	...	१४०००
(२)	उसमानिया ,,	...	२५००
(३)	पंजाब ,,	...	१६००
(४)	उत्कल ,,	...	२०००
(५)	बनारस हिंदू ,,	...	२२५०
(६)	वाराणसेय संस्कृत ,,	...	५००
(७)	आगरा ,,	...	९५००
(८)	गोरखपुर ,,	...	३७००
(९)	जोधपुर ,,	...	८९५
(१०)	पटना ,,	...	२०००
(११)	नागपुर ,,	...	२०००
(१२)	सागर ,,	...	६०००
(१३)	जादवपुर ,,	...	७००
(१४)	मराठवाडा ,,	...	७००
(१५)	लखनऊ ,,	...	४५००
(१६)	विक्रम ,,	...	५०००
(१७)	शिवाजी ,,	...	९००
(१८)	इलाहाबाद ,,	...	३०००
(१९)	रुड़की ,,	...	१२६०
(२०)	कुरुक्षेत्र ,,	...	७०
(२१)	पूना विश्व-विद्यालय	...	४००
(२२)	मगध ,,	...	२१००
(२३)	भागलपुर ,,	...	३०००
(२४)	गुजरात ,,	...	६००
(२५)	आंध्र ,,	...	३०००
(२६)	कलकत्ता ,,	...	१०००
(२७)	अलीगढ़ मुस्लिम ,,	...	१३००
(२८)	उदयपुर ,,	...	२५०
(२९)	राँची ,,	...	२०००
(३०)	बर्दवान ,,	...	१८५०
(३१)	बड़ौदा ,,	...	११६०
(३२)	बिहार ,,	...	१२००
(३३)	जम्मू काश्मीर ,,	...	१०००
(३४)	केरल ,,	...	१८५०
(३५)	काशी विद्यापीठ	...	२९४
(३६)	वल्लभ ,,	...	१९००
(३७)	खड़गपुर ,,	...	५६६
(३८)	बँगलोर ,,	...	३००
(३९)	कानपुर कालेज	...	८००
		कुल	८७९४४

भारतवर्षकी अन्य विश्वविद्यालयोंके उपकुलपतियोंकी सेवामें विनम्र प्रार्थना है कि वे आवश्यक प्रतियाँ यथाशीघ्र मँगवानेकी कृपा करेंगे। रेलभाड़ा गीताप्रेस वहन करता है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

'कल्याण'के आजीवन-ग्राहक बनिये और बनाइये

[आपके इस कार्यसे गीताप्रेसके सत्साहित्य-प्रचार-कार्यमें सहायता मिलेगी]

(१) प्रतिवर्ष 'कल्याण'का मूल्य भेजनेकी बात समयपर स्मरण न रहनेके कारण वी० पी० द्वारा 'कल्याण' मिलनेमें देर हो जाती है, जिससे ग्राहकोंको क्षोभ हो जाता है; इसलिये जो लोग भेज सकें, उन्हें एक साथ एक सौ रुपये भेजकर 'कल्याण'का आजीवन ग्राहक बन जाना चाहिये। चेक या ड्राफ्ट 'मैनेजर, गीताप्रेस'के नामसे भेजनेकी कृपा करेंगे।

(२) जो लोग प्रतिवर्ष सजिल्द विशेषाङ्क लेना चाहें उन्हें १२५.०० रुपये भेजना चाहिये।

(३) भारतवर्षके बाहर (विदेश) का आजीवन ग्राहक-मूल्य अजिल्दके लिये १२५.०० रुपये या दस पौंड और सजिल्दके लिये १५०.०० रुपये या बारह पौंड है।

(४) आजीवन ग्राहक बननेवाले जबतक रहेंगे और जबतक 'कल्याण' चलता रहेगा, उनको प्रतिवर्ष 'कल्याण' मिलता रहेगा।

(५) मन्दिर, आश्रम, पुस्तकालय, मिल, कारखाना, उत्पादक या व्यापारी संस्था, क्लब या अन्यान्य संस्था तथा फर्म भी आजीवन-ग्राहक बनाये जा सकते हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण', गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीगीता और रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीगीता और रामचरितमानस—ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लोग विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसलिये समितिने इन ग्रन्थोंके द्वारा धार्मिक शिक्षा-प्रसार करनेके लिये परीक्षाओंकी व्यवस्था की है। उत्तीर्ण छात्रोंको पुरस्कार भी दिया जाता है। परीक्षाके लिये स्थान-स्थानपर केन्द्र स्थापित किये गये हैं। इस समय गीता-रामायण दोनोंके मिलाकर लगभग ४५२ केन्द्र हैं। विशेष जानकारीके लिये नीचे पतेपर कार्ड लिखकर नियमावली मँगानेकी कृपा करें।

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीता-भवन, पो० 'स्वर्गाश्रम' (देहरादून)

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस—दोनों आशीर्वादात्मक प्रासादिक ग्रन्थ हैं। इनके प्रेमपूर्ण स्वाध्यायसे लोक-परलोक दोनोंमें कल्याण होता है। इन दोनों मङ्गलमय ग्रन्थोंके पारायणका तथा इनमें वर्णित आदर्श सिद्धान्त और विचारोंका अधिक-से-अधिक प्रसार हो—इसके लिये 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ' बारह वर्षोंसे चलाया जा रहा है। अबतक गीता-रामायणके पाठ करनेवालोंकी संख्या ४०,५०० से अधिक हो चुकी है। इन सदस्योंसे कोई शुल्क नहीं लिया जाता। सदस्योंको नियमितरूपसे गीता-रामचरितमानसका पठन, अध्ययन और विचार करना पड़ता है। इसके नियम और आवेदनपत्र मन्त्री—श्रीगीता-रामायण-प्रसार-संघ, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) को पत्र लिखकर मँगवा सकते हैं।

साधक-संघ

देशके नर-नारियोंका जीवनस्तर यथार्थरूपमें ऊँचा हो, इसके लिये साधक-संघकी स्थापना की गयी है। इसमें भी सदस्योंको कोई शुल्क नहीं देना पड़ता। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम हैं। प्रत्येक सदस्यको २५ नये पैसेमें एक डायरी दी जाती है, जिसमें वे अपने नियमपालनका ब्यौरा लिखते हैं। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोंको स्वयं इसका सदस्य बनना चाहिये और अपने बन्धु-बान्धवों, इष्ट-मित्रों एवं साथी-संगियोंको भी प्रयत्न करके सदस्य बनाना चाहिये। आनन्दकी बात है कि इसके सदस्योंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। नियमावली इस पतेपर पत्र लिखकर मँगवाइये—संयोजक, 'साधक-संघ', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)।

प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें भेजिये

प्राचीन ग्रन्थोंकी सुरक्षाके लिये प्राचीन ग्रन्थोंका गीताप्रेसमें संग्रह किया जा रहा है। जिनके अपने पास या जिनकी जानकारीमें संस्कृत तथा हिंदीके और बंगलाके प्राचीन हस्तलिखित—वेद, उपनिषद्, शास्त्र, दर्शन, स्मृति, इतिहास, पुराण, काव्य, वैद्यक, हिंदी-काव्य, रामचरित, कृष्णचरित आदि ग्रन्थ सचित्र या अचित्र हों, वे कृपया स्वयं भेज दें और प्रयत्न करके भिजवा दें। रेल या डाकखर्च गीताप्रेससे दिया जायगा। व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

आवश्यक प्रार्थना

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पत्रव्यवहार बहुत ही कम कर पाते हैं तथा सार्वजनिक सभाओं, उत्सवों-समारोहोंमें भी सम्मिलित होनेमें और लोगोंसे मिलने-जुलनेमें भी उन्हें बड़ी असुविधा है। अतएव सबसे प्रार्थना है कि बहुत आवश्यक होनेपर ही उनको व्यक्तिगत पत्र लिखें, पत्रका उत्तर देरसे पहुँचे या न पहुँचे तो क्षमा करें; सार्वजनिक सभाओं, उत्सव-समारोहोंमें बुलानेका कृपया आग्रह न करें और यहाँ मिलनेके लिये, पहलेसे स्वीकृति प्राप्त किये बिना, पधारनेका कष्ट भी कृपापूर्वक न करें। कोई सज्जन आ जायँ और उनसे मिलना न हो तो व्यर्थ कष्ट होगा, इसीसे यह प्रार्थना की गयी है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

ध्रुवपर कृपा

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ॥

विश्वहितके लिये हमारी सनातन प्रार्थना

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात् ।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत् ॥

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी शस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ॥

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु
स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु
ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥

'दुर्जन सज्जन बन जायँ । सज्जन शान्ति लाभ करें । शान्त पुरुष सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो जायँ । मुक्त पुरुष दूसरोंको भी जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुड़ानेमें समर्थ हों । प्रजाजनोंका कल्याण हो । राजालोग न्यायोचित मार्गसे पृथ्वीका शासन करें । खेती तथा दूधके लिये गौओंका और ज्ञान-प्रसारके लिये ब्राह्मणोंका सदा कल्याण हो । सभी लोग सुखी हों । मेघ समयपर वर्षा करें । भूमि सदा हरी-भरी रहे । हमारा यह देश (विश्व) क्षोभरहित हो जाय । ब्राह्मणोंको किसी प्रकारका भय न रहे । सभी प्राणी सुखी हों । सब नीरोग रहें । सभी अच्छे दिन देखें । जगत्में कोई भी दुःखका भागी न हो । सभी लोग संकटोंको—कठिनाइयोंको पार कर जायँ । सब लोग शुभका ही दर्शन करें । सब लोग वाञ्छित भोग प्राप्त करें । सब लोग सर्वत्र प्रसन्न रहें । हमारे पितरोंका कल्याण हो, गौओंका कल्याण हो, जगत्का और मनुष्यमात्रका कल्याण हो, हमारे सभी आत्मीय-जन सुखी और मङ्गलकारी ज्ञानवाले हों । हम दीर्घकालतक सूर्य भगवान्के दर्शन किया करें ।'

हमारी प्रार्थना

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनो मे वाचि प्रतिष्ठित-माविरावीर्म एधि वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान् संदधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद् वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तार-मवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

(ऋग्वेदीय शान्तिपाठ)

'हे सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन्! मेरी वाणी मनमें स्थित हो जाय और मन वाणीमें स्थित हो जाय अर्थात् मेरे मन-वाणी दोनों एक हो जायँ। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! आप मेरे लिये प्रकट हो जाइये। हे मन और वाणी! तुम दोनों मेरे लिये वेदविषयक ज्ञानकी प्राप्ति करानेवाले बनो। मेरा गुरुमुखसे सुना हुआ और अनुभवमें आया हुआ ज्ञान मेरा त्याग न करे—मैं उसे कभी न भूलूँ। मेरी इच्छा है कि अपने अध्ययनद्वारा मैं दिन और रात एक कर दूँ। अर्थात् रात-दिन निरन्तर ब्रह्म-विद्याका पठन और चिन्तन ही करता रहूँ। मैं वाणीसे श्रेष्ठ शब्दोंका उच्चारण करूँगा, सर्वथा सत्य बोलूँगा। वे परब्रह्म परमात्मा मेरी रक्षा करें। वे मुझे ब्रह्मविद्या सिखानेवाले आचार्यकी रक्षा करें। वे मेरी रक्षा करें और मेरे आचार्यकी रक्षा करें, आचार्यकी रक्षा करें। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों तापोंकी शान्ति हो।'

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

(शुक्लयजुर्वेदीय शान्तिपाठ)

'वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म पुरुषोत्तम सब प्रकारसे सदा-सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत् भी उस परब्रह्मसे पूर्ण ही है; क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तमसे ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्मकी पूर्णतासे जगत् पूर्ण होनेपर भी वह परब्रह्म परिपूर्ण है। उस पूर्णमेंसे पूर्णको निकाल लेनेपर भी वह पूर्ण ही बच रहता है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों तापोंकी शान्ति हो।'

ॐ सह नाववतु ॥ सह नौ भुनक्तु ॥ सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्वि नावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

(कृष्णयजुर्वेदीय शान्तिपाठ)

'हे परमात्मन्! आप हम गुरु-शिष्य दोनोंकी साथ-साथ सब प्रकारसे रक्षा करें, हम दोनोंका आप साथ-साथ समुचितरूपसे पालन-पोषण करें, हम दोनों साथ-ही-साथ सब प्रकारसे बल प्राप्त करें, हम दोनोंकी अध्ययन की हुई विद्या तेजःपूर्ण हो—कहीं किसीसे हम विद्यामें परास्त न हों और हम दोनों जीवनभर परस्पर स्नेह-सूत्रसे बँधे रहें; हमारे अंदर परस्पर कभी द्वेष न हो। हे परमात्मन्! आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों तापोंकी निवृत्ति हो।'

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोत्, अनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मे अस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु, ते मयि सन्तु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

(सामवेदीय शान्तिपाठ)

'हे परमात्मन्! मेरे सारे अङ्ग, वाणी, नेत्र, श्रोत्र आदि सभी कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राणसमूह, शारीरिक और मानसिक शक्ति तथा ओज—सब पुष्टि एवं वृद्धिको प्राप्त हों। उपनिषदोंमें सर्वरूप ब्रह्मका जो स्वरूप वर्णित है, उसे मैं कभी अस्वीकार न करूँ और वह ब्रह्म भी मेरा कभी प्रत्याख्यान न करे, मुझे सदा अपनाये रक्खे। मेरे साथ ब्रह्मका और ब्रह्मके साथ मेरा नित्य सम्बन्ध बना रहे। उपनिषदोंमें जिन धर्मोंका प्रतिपादन किया गया है, वे सारे धर्म, उपनिषदोंके एक-मात्र लक्ष्य परब्रह्म परमात्मामें निरन्तर लगे हुए मुझ साधकमें सदा प्रकाशित रहें, मुझमें नित्य-निरन्तर बने रहें और मेरे आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक त्रिविध तापोंकी निवृत्ति हो।'

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः। स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ॥
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः ॥ स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ (अथर्ववेदीय शान्तिपाठ)

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तꣳ ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥
(श्वेताश्व० ६ । १८)

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय ।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय ॥
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम् ।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥
भयानां भयं भीषणं भीषणानां
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम् ।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं
परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम् ॥
वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो
वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ॥

'जो सबसे पूर्व ब्रह्माको रचते हैं तथा उनके लिये वेदोंको प्रकाशित करते हैं, मैं मुमुक्षु होकर आत्मबुद्धिसे प्रकाशमान उन परम देवताके शरणापन्न होता हूँ ।'

'हे जगत्के कारण सत्स्वरूप परमात्मा ! तुझे नमस्कार है । हे सर्वलोकोंके आश्रय चित्स्वरूप ! तुझे नमस्कार है । हे मुक्ति प्रदान करनेवाले अद्वैततत्त्व ! तुझे नमस्कार है । शाश्वत और सर्वव्यापी ब्रह्म ! तुझे नमस्कार है ।'

'तुम्हीं एक शरणमें जाने योग्य अर्थात् आश्रय-स्थान हो, तुम्हीं एक पूजा करने योग्य हो । तुम्हीं एक जगत्के पालक और अपने प्रकाशसे प्रकाशित हो । तुम्हीं एक जगत्के कर्त्ता, पालक और संहारक हो । तुम्हीं एक निश्चल और निर्विकल्प हो ।'

'तुम भयोंको भय देनेवाले हो, भयंकरोंमें भयंकर हो, प्राणियोंकी गति हो और पावनोंको पावन करनेवाले हो । अत्यन्त उच्च पदोंके तुम्हीं नियन्त्रण करनेवाले हो, तुम परसे पर हो, रक्षण करनेवालोंका भी रक्षण करनेवाले हो ।'

'हम तुम्हारा स्मरण करते हैं, हम तुमको भजते हैं । हम तुम्हें जगत्के साक्षिरूपमें नमस्कार करते हैं । सत्स्वरूप, निरालम्ब तथा एकमात्र शरण लेनेयोग्य आश्रय इस भवसागरकी नौकारूप ईश्वरके हम शरण जाते हैं ।'

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥
(श्वेता० ३ । ११)

'उन सर्वेश्वर भगवान्के सभी जगह मुख हैं, सभी जगह सिर और सभी जगह ग्रीवाएँ हैं । भाव यह कि वे प्रत्येक स्थानपर प्रत्येक अङ्गद्वारा किया जानेवाला कार्य करनेमें समर्थ हैं । वे समस्त प्राणियोंके हृदयरूप गुफामें निवास करते हैं और सर्वव्यापी हैं, इसलिये वे कल्याणस्वरूप परमेश्वर सभी जगह पहुँचे हुए हैं । अभिप्राय यह कि साधक उनको जिस समय, जहाँ और जिस रूपमें प्रत्यक्ष करना चाहे, उसी समय, उसी जगह और उसी रूपमें वे प्रत्यक्ष हो सकते हैं ।'

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥
(श्वेता० ६ । ११)

एको वशी निष्क्रियाणां बहूना-
मेकं बीजं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥
(श्वेता० ६ । १२)

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥
(श्वेता० ६ । १३)

'वे एक ही परमदेव परमेश्वर समस्त प्राणियोंके हृदयरूप गुहामें छिपे हुए हैं । वे सर्वव्यापी और समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी परमात्मा हैं । वे ही सबके कर्मोंके अधिष्ठाता— उनको कर्मानुसार फल देनेवाले और समस्त प्राणियोंके निवासस्थान—आश्रय हैं तथा वे ही सबके साक्षी— शुभाशुभ कर्मको देखनेवाले, परम चेतनस्वरूप तथा

सबको चेतना प्रदान करनेवाले, सर्वथा विशुद्ध अर्थात् निर्गुण और प्रकृतिके गुणोंसे अतीत हैं।'

'जो नित्य चेतनस्वरूप परमेश्वरके ही अंश होनेके ण वास्तवमें कुछ नहीं करते, ऐसे अनन्त जीवात्माओंके अकेले ही नियन्ता—कर्मफल देनेवाले हैं, जो एक तिरूप बीजको बहुत प्रकारसे रचना करके इस विचित्र तूके रूपमें बनाते हैं, उन हृदयस्थित सर्वशक्तिमान् सुहृद् परमेश्वरको जो धीर पुरुष निरन्तर देखते हैं, निरन्तर उन्हींमें तन्मय हुए रहते हैं, उन्हींको रहनेवाला परम आनन्द प्राप्त होता है; दूसरोंको, इस प्रकार उनका निरन्तर चिन्तन नहीं करते, वह नन्द नहीं मिलता—वे उससे वञ्चित रह जाते हैं।'

'जो नित्य चेतन सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्मा ऽ ही बहुत-से नित्य चेतन जीवात्माओंके कर्मफल-का विधान करते हैं; जिन्होंने इस विचित्र जगत्की करके समस्त जीवसमुदायके लिये उनके कर्मानुसार गकी व्यवस्था कर रक्खी है, उनको प्राप्त करनेके ाधन हैं—एक ज्ञानयोग, दूसरा कर्मयोग; भक्ति ही अनुस्यूत है, इस कारण उसका अलग वर्णन किया गया। उन ज्ञानयोग और कर्मयोगद्वारा प्राप्त जाने योग्य सबके कारणरूप परमदेव परमेश्वरको र मनुष्य समस्त बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त हो जाता ो उन्हें जान लेता है और प्राप्त कर लेता है, वह किसी भी कारणसे, जन्म-मरणके बन्धनमें नहीं। अतः मनुष्यको उन सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्मा-प्त करनेके लिये अपनी योग्यता और रुचिके र ज्ञानयोग या कर्मयोग—किसी एक साधनमें पूर्वक लग जाना चाहिये।'

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
ोषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः॥

(श्वेता० २। १७)

ो सर्वशक्तिमान् पूर्णब्रह्म परमदेव अग्निमें हैं, जो हैं, जो समस्त लोकोंमें अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट हो रहे हैं, ाधियों (अन्न आदि)में हैं और जो वनस्पतियोंमें हैं, जो सर्वत्र परिपूर्ण हैं, जिनका अनेक प्रकारसे र्णन कर आये हैं, उन परमदेव परमात्माको है, नमस्कार है।'

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

(कठ० २। २। ९)

'एक ही अग्नि निराकाररूपसे सारे ब्रह्माण्डमें व्याप्त है, उसमें कोई भेद नहीं है; परंतु वह जब साकाररूपसे प्रज्वलित होता है, तब उसकी आधारभूत वस्तुओंका जैसा आकार होता है, वैसा ही आकार अग्निका भी दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी परमेश्वर एक हैं और सबमें समभावसे व्याप्त हैं, उनमें किसी प्रकारका कोई भेद नहीं है; तथापि वे भिन्न-भिन्न प्राणियोंमें उन-उन प्राणियोंके अनुरूप नाना रूपोंमें प्रकाशित होते हैं। भाव यह कि आधार-भूत वस्तुके अनुरूप ही उनकी महिमाका प्राकट्य होता है। वास्तवमें उन परमेश्वरकी महत्ता इतनी ही नहीं है, इससे भी बहुत अधिक और विलक्षण है। उनकी अनन्त शक्तिके एक क्षुद्रतम अंशसे ही यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नाना प्रकारकी आश्चर्यमय शक्तियोंसे सम्पन्न हो रहा है।'

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

(सूर्योपनिषद्)

'निश्चयपूर्वक सूर्यनारायणसे ही ये भूत (चराचर जीव) उत्पन्न होते हैं, भगवान् सूर्यके द्वारा ही इनका पालन होता है और फिर सूर्यमें ही वे लयको प्राप्त होते हैं। जो सूर्य-नारायण हैं—वह मैं ही हूँ।'

आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम्।
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः॥

(गणपत्युपनिषद्)

'जो सृष्टिके आदिमें आविर्भूत हैं, प्रकृति और पुरुषसे परे हैं, इस प्रकार श्रीगणेशजीका जो नित्य ध्यान करता है—वह योगी योगियोंमें श्रेष्ठ है।'

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्॥

(राम० र० उ०)

'राम ही परब्रह्म हैं। राम ही परम तपःस्वरूप हैं। राम ही परम तत्त्व हैं और श्रीराम ही तारक ब्रह्म हैं।'

यच्च किंचित् जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥

(नारायणोपनिषद्)

'जो कुछ हो चुका है, जो कुछ हो रहा है और होनेवाला है, वह दिखायी देनेवाला और सुननेमें आनेवाला सम्पूर्ण जगत् भगवान् नारायण ही है। इसमें भीतर और बाहर सब ओरसे भगवान् नारायण ही व्याप्त हुए स्थित हैं।'

निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे ।
अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥

(गो० पू० ता०)

'जो कला (अवयव) से रहित हैं, जिनमें मोहका सर्वथा अभाव है, जो स्वरूपसे ही परम विशुद्ध हैं, अशुद्ध (स्वभाव तथा आचरणवाले) असुरोंके शत्रु हैं तथा जिनसे बढ़कर या जिनके समान भी दूसरा कोई नहीं है, उन सर्वमहान् परमात्मा श्रीकृष्णको बारंबार नमस्कार है।'

ध्रुवकी प्रार्थना

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥

(श्रीमद्भागवत ४ । ९ । ११)

'हे अनन्त परमात्मन् ! मुझे आप उन निर्मल-हृदय महात्मा भक्तोंका सङ्ग दीजिये, जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्तिभाव है; उनके सङ्गमें मैं आपके गुणों तथा लीलाओंकी कथा-सुधाका पान करके उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही विविध भाँतिके दुःखोंसे पूर्ण भयंकर संसार-सागरके उस पार पहुँच जाऊँगा।'

प्रह्लादकी प्रार्थना

तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ
आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमा विरिञ्चात्।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण
कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम्॥

(श्रीमद्भागवत ७ । ९ । २४)

नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः ।
यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥
आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ।
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः॥
अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः ।
नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव ॥
यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥

(श्रीमद्भागवत ७ । १० । ४–७)

'अतएव मैं ब्रह्मलोकतककी आयु, लक्ष्मी, ऐश्वर्य और वे इन्द्रियभोग नहीं चाहता, जिनको संसारके प्राणी चाहा करते हैं; क्योंकि मैं जानता हूँ कि अत्यन्त शक्तिशाली कालका रूप धारण करके आपने उन सबको ग्रस रक्खा है । अतः मुझे तो आप अपने दासोंकी संनिधिमें ही पहुँचा दीजिये ।'

'आपने जो वर माँगनेके लिये कहा, सो जगद्गुरो ! परीक्षाके सिवा यों कहनेका और कोई कारण नहीं दीखता; क्योंकि आप परम दयालु हैं । (आप भक्तोंको मायाजालमें फँसानेवाला वर कैसे दे सकते हैं ?) आपसे जो सेवक अपनी कामनाएँ पूर्ण करना चाहता है, वह सेवक नहीं है, वह तो लेन-देन करनेवाला बनिया है । जो स्वामीसे अपनी कामनाओंकी पूर्ति चाहता है, वह सेवक नहीं; और जो सेवकसे सेवा करानेके लिये—उसका स्वामी बननेके लिये उसकी कामनाएँ पूर्ण करता है, वह स्वामी नहीं । मैं आपका निष्काम सेवक हूँ और आप मेरे निरपेक्ष स्वामी हैं । जैसे राजा और उनके सेवकोंका स्वार्थवश स्वामी-सेवकका सम्बन्ध रहता है, वैसा तो यहाँ आपका-मेरा सम्बन्ध है नहीं । वर देनेवालोंमें शिरोमणि मेरे स्वामी ! यदि आप मुझे मुँहमाँगे वर देना ही चाहते हैं तो मैं आपसे यह वर माँगता हूँ कि मेरे हृदयमें कभी, किसी भी कामनाका—चाहका बीज ही न अङ्कुरित हो ।'

राजा शिबिकी प्रार्थना

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥

'अपने लिये न मैं राज्य चाहता हूँ, न स्वर्गकी इच्छा करता हूँ । अपुनर्भव मोक्ष भी मैं नहीं चाहता । मैं तो यही चाहता हूँ कि दुःखसे तपे हुए प्राणियोंकी पीड़ाका नाश हो ।'

नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ ।
इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु ॥

हे भगवान् विष्णु ! मेरा अविनय दूर कीजिये, मेरे मनका दमन कीजिये और विषयोंकी मृगतृष्णाको शान्त कर दीजिये । जगत्‌में प्राणिमात्रके प्रति दयाभावनाका विस्तार कीजिये और इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये । मैं भगवान् श्रीपतिके उन चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ; जिनका मकरन्द गङ्गा और सौरभ सच्चिदानन्द है तथा जो संसार (जन्म-मरण)के भयका तथा खेदका छेदन करनेवाले हैं । हे नाथ ! (वस्तुतः मुझमें और आपमें) भेद नहीं है, तथापि मैं ही आपका हूँ, आप मेरे नहीं हैं; क्योंकि तरङ्ग ही समुद्रकी होती है, समुद्र तरङ्गका कहीं नहीं होता । हे गोवर्द्धन गिरिको उठानेवाले ! हे इन्द्रके अनुज (वामन) ! हे दानवकुलके शत्रु ! हे सूर्य-चन्द्ररूपी नेत्रवाले ! आपके सदृश प्रभुके दर्शन हो जानेपर क्या भव (जन्म-मरण) का लोप नहीं हो जाता ? हे परमेश्वर ! मत्स्यादि अवतारोंमें अवतरित होकर वसुधाकी सर्वदा रक्षा करनेवाले आपके द्वारा संसारके तापोंसे भयभीत क्या मैं रक्षाके योग्य नहीं हूँ ? हे गुणोंके मन्दिर दामोदर ! हे सुन्दर मुखारविन्दवाले गोविन्द ! संसार-सागरका मन्थन करनेके लिये मन्दर (पर्वत) ! मेरे महान् भयको आप मिटाइये । हे करुणामय नारायण ! मैं सब प्रकारसे आपके चरणोंकी शरण ग्रहण करूँ । यह छः पदोंके रूपमें की गयी प्रार्थनारूप भ्रमरी सदा मेरे मुखकमलमें निवास करे ।

भक्त जयदेवकी प्रार्थना

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान् मूर्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

श्रीकृष्ण ! तुमने मत्स्यरूप धारणकर प्रलयसमुद्रमें डूबे हुए वेदोंका उद्धार किया, समुद्र-मन्थनके समय महाकूर्म बनकर पृथ्वीमण्डलको पीठपर धारण किया, महावराहके रूपमें कारणार्णवमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया, नृसिंहके रूपमें हिरण्यकशिपु आदि दैत्योंका विदारण किया, वामन-रूपमें राजा बलिको छला, परशुरामके रूपमें क्षत्रियजातिका संहार किया, श्रीरामके रूपमें महाबली रावणपर विजय प्राप्त की, श्रीबलरामके रूपमें हलको शस्त्ररूपमें धारण किया, भगवान् बुद्धके रूपमें करुणाका विस्तार किया था तथा कल्किके रूपमें म्लेच्छोंको मूर्च्छित करेंगे । इस प्रकार दशावतारके रूपमें प्रकट तुम्हारी मैं वन्दना करता हूँ ।

श्रीचैतन्यदेवकी प्रार्थना

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ।
नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ॥

हे जगदीश ! मुझे धन, जन, सुन्दरी कविता—कुछ भी नहीं चाहिये (मुक्ति भी नहीं चाहिये)—बस, जन्म-जन्ममें मेरी आप ईश्वरमें अहैतुकी भक्ति हो । हे गोविन्द ! वह दिन कब होगा, जब आपका नाम लेनेपर मेरी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होगी, मेरी वाणी प्रेमावेगसे गद्गद हो जायगी और मेरा शरीर पुलकित हो जायगा ।

बिल्वमङ्गलकी प्रार्थना

हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धो
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो ।
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम
हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे ॥

हे देव ! हे दयित ! हे त्रिभुवनके अद्वितीय बन्धु ! हे कृष्ण ! हे लीलामय ! हे करुणाके एकमात्र सिन्धु ! हे नाथ ! हे प्रियतम ! हे नयनाभिराम ! हाय, हाय, मैं तुम्हारे चिन्मय स्वरूपको कब देख पाऊँगा ?

नित्यका स्मरण और प्रार्थना

प्रातःस्मरणम्

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् ।
यत् स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति नित्यं
तद् ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः ॥

(श्रीशंकराचार्य)

सवेरे मैं अपने हृदयमें स्फुरित होनेवाले आत्म-तत्त्वका स्मरण करता हूँ, जो आत्मा सच्चिदानन्द—सत्ता, ज्ञान और सुखमय है, जो परमहंसोंकी अन्तिम गति है, जो जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिरूप तीन जागतिक अवस्थाओंसे परे (समाधि अवस्थारूप) है, जो जाग्रत्, स्वप्न और निद्रा—तीनों अवस्थाओंको नित्य जानता है । वह शुद्ध ब्रह्म ही मैं हूँ—पञ्च महाभूतोंसे बनी हुई यह देह मैं कदापि नहीं हूँ ।

प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यं
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण ।
यन्नेति नेति वचनैर्निगमा अवोचन्
तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम् ॥
(श्रीशंकराचार्य)

जो मन और वाणीका विषय नहीं है, जिसकी कृपासे परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरीरूप चारों तरहकी वाणी प्रकट होती है, वेद भी जिसका वर्णन 'वह यह नहीं, यह नहीं' कहकर निषेधरूपसे ही कर सके हैं; उस ब्रह्मका सबेरे उठकर मैं भजन करता हूँ । ऋषियोंने उसे देवोंका भी पूज्य, अजन्मा, पतनरहित और सबका आदि कहा है ।

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ
रज्ज्वां भुजंगम इव प्रतिभासितं वै ॥

मैं सबेरे उठकर उस सनातन पदको नमन करता हूँ, जो अन्धकारसे परे है, सूर्यके समान तेजोमय है, पूर्ण पुरुषोत्तम नामसे पहचाना जाता है और जिसके अनन्त स्वरूपके भीतर यह सारा जगत् उसी तरह दिखायी देता है, जिस तरह रस्सीमें साँप ।

प्रार्थना

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही महादेव हैं, गुरु ही साक्षात् परब्रह्म हैं; उन श्रीगुरुको मैं नमस्कार करता हूँ ।

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

जन्म-मृत्युके भयका नाश करनेवाले, सब लोकोंके एकमात्र स्वामी श्रीविष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ । उनका आकार शान्त है, वे शेषनागपर लेटे हैं, उनकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ है, वे सब देवोंके स्वामी हैं, वे सारे विश्वके आधार हैं, वे आकाशकी तरह अलिप्त हैं और उनका वर्ण मेघकी तरह श्याम है, वे कल्याणकारी गात्रवाले हैं, सारी सम्पत्तिके स्वामी हैं, उनके नेत्र कमलके समान हैं; योगी उन्हें ध्यानद्वारा ही जान सकते हैं ।

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥

हाथसे या पैरसे, वाणीसे या शरीरसे, कानसे या आँखसे मैं जो भी अपराध करूँ, वह कर्मसे उत्पन्न हो या केवल मानसिक हो, जो किया जा चुका है अथवा आगे किया जानेवाला है, हे करुणासागर कल्याणकारी महादेव ! उन सबको क्षमा कर दो । मेरे हृदयमें और जीवनमें तुम्हारा ही जय-जयकार हो ।

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

हे सर्वमङ्गलमङ्गलमयि ! हे कल्याणमयि ! हे सर्वाभीष्टप्रदायिनि ! हे शरणप्रदायिनि ! हे त्रिलोकजननि ! हे उज्ज्वलज्योतिर्मयि गौरि ! हे नारायणी माँ ! तुमको नमस्कार है । हे देवि ! तुम सृष्टि-स्थिति-विनाशकी कारण-भूता सनातनी शक्ति हो ! हे सर्वगुणाश्रयि ! हे गुणमयि ! नारायणी माँ ! तुमको मेरा नमस्कार है । माँ ! तुम सदा ही शरणागत, दीन, आर्तोंके परित्राणमें तत्पर रहती हो; तुम सबका दुःख हरण करती हो । हे नारायणि माँ ! तुमको मेरा नमस्कार है ।

नमो नमस्तेऽस्तु सदा विभावसो
सर्वात्मने सप्तहयाय भानवे ।
अनन्तशक्तिर्मणिभूषणेन
ददस्व भुक्तिं मम मुक्तिमव्ययाम् ॥

हे सूर्यदेव ! आप सर्वात्मा हैं । आपके रथमें सात घोड़े जुते हुए हैं । आप प्रकाशमान भानुदेवको बारंबार नमस्कार है । मणिमय आभूषणोंसे विभूषित आप अनन्त शक्तिसे सम्पन्न हैं । मुझे भोग तथा अक्षय मोक्ष प्रदान करें ।

यतोऽनन्तशक्तेरनन्ताश्च जीवा
यतो निर्गुणादप्रमेया गुणास्ते ।
यतो भाति सर्वं त्रिधाभेदभिन्नं
सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥

जिन अनन्त शक्तिसम्पन्न गणपतिसे अनन्त जीव

प्रकट होते हैं, जिन निर्गुण परमेश्वरसे वे अप्रमेय गुण उत्पन्न हुए हैं तथा जिनसे प्रकाश पाकर यह तीन भेदोंमें विभक्त सम्पूर्ण जगत् (त्रिभुवन) प्रकाशित होता है; उन गणेशदेवको हम सदा नमस्कार करते हैं और सदा उनका भजन करते हैं ।

त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः ।
सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वजः ॥
दृश्यसे सर्वभूतेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च ।
दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु नदीषु च ॥
(वा० रा० युद्ध० ११७ । १८-१९; २०-२१)

आप ही तीनों लोकोंके आदिकर्त्ता और स्वयं प्रभु (परम स्वतन्त्र) हैं । आप सिद्ध और साध्योंके आश्रय तथा पूर्वज हैं । समस्त प्राणियोंमें, गौओंमें तथा ब्राह्मणोंमें भी आप ही दिखायी देते हैं । समस्त दिशाओंमें, आकाशमें, पर्वतोंमें और नदियोंमें भी आपकी ही सत्ता है ।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥
(श्रीमद्भागवत १२ । १३ । १)

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण दिव्य स्तुतियोंके द्वारा जिनके गुणगानमें संलग्न रहते हैं, साम-संगीतके मर्मज्ञ ऋषि-मुनि अङ्ग, पद, क्रम एवं उपनिषदोंके सहित वेदोंद्वारा जिनका गान करते रहते हैं, योगीलोग ध्यानके द्वारा निश्चल एवं तल्लीन मनसे जिनका भावमय दर्शन प्राप्त करते रहते हैं; किंतु यह सब करते रहनेपर भी देवता, दैत्य, मनुष्य—कोई भी जिनके वास्तविक स्वरूपको पूर्णतया न जान सका, उन स्वयंप्रकाश परमात्माको नमस्कार है ।

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥
(हनुमन्नाटक १ । २)

जिनकी शैवलोग शिवरूपमें उपासना करते हैं, वेदान्ती ब्रह्मरूपमें आराधना करते हैं, बौद्धमतानुयायी बुद्ध कहकर पूजते हैं, प्रमाणकुशल नैयायिक जगत्के रचयितारूपमें अर्चना करते हैं, जैनधर्मके माननेवाले—'अर्हन्' कह आराधना करते हैं, *मीमांसक लोग कर्मके रूपमें पूजते* वे त्रिलोकीनाथ श्रीहरि हमको अभीष्ट फल प्रदान करें ।

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥

जिनकी कृपासे गूँगे बहुत बोलने लगते हैं; पंगु पहाड़को लाँघ जाते हैं, उन परमानन्दस्वरूप माधवकी मैं वन्दन करता हूँ ।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

ब्राह्मणभक्त, गौ-ब्राह्मणोंका हित करनेवाले—नहीं, नहीं; सम्पूर्ण जगत्का हित करनेवाले गोविन्द श्रीकृष्णको बार-बार नमस्कार है ।

बौद्धमतानुसार प्रार्थना

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।
बुद्धं सरणं गच्छामि । धम्मं सरणं गच्छामि ।
संघं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि संघं सरणं गच्छामि ।
ततीयम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि ।
ततीयम्पि धम्मं सरणं गच्छामि ।
ततीयम्पि संघं सरणं गच्छामि ।
पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि ।
अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि ।
कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि ।
मुसावादा वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि ।
सुरा-मेरय-मज्ज-पमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि ।

'पूर्णप्रज्ञ, अर्हन्, भगवान् (बुद्ध) को नमस्कार है । पूर्णप्रज्ञ, अर्हन्, भगवान् (बुद्ध) को नमस्कार है । पूर्णप्रज्ञ, अर्हन्, भगवान् (बुद्ध) को नमस्कार है । मैं बुद्धकी शरणमें जाता हूँ, धर्मके शरणापन्न होता हूँ, भिक्षु संघकी शरणमें जाता हूँ । द्वितीय बार मैं बुद्धके शरणापन्न होता हूँ, धर्मकी शरणमें जाता हूँ, संघकी शरणमें जाता हूँ । तीसरी बार मैं

बुद्धके शरणापन्न होता हूँ, धर्मकी शरणमें जाता हूँ, संघकी शरणमें जाता हूँ। मैं जीवकी हिंसा न करनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ। मैं उस वस्तुके न लेनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ, जो मुझे न दी गयी हो। भोगोंमें मिथ्याचरण न करनेकी मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। असत्य वचनसे बचनेकी मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। मैं सुरा-मद्यादि मादक वस्तुओंसे बचनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ।

जैनमतानुसार प्रार्थना

अरिहंत नमो भगवंत नमो, परमेश्वर जिनराज नमो।
प्रथम जिनेश्वर प्रेमे पेखतः सिद्धं सघला काज नमो॥
प्रभु पारंगत परम महोदय, अविनाशी अकलंक नमो।
अजर-अमर अद्भुत अतिशय निधि, प्रवचन जलधि मयंक नमो॥
सिद्ध-बुद्ध तूं जगजन सज्जन-नयनानन्दन देव नमो।
सकल सुरासुर नरवर नायक सार अहो, निश सेव नमो॥
तूं तीर्थंकर सुखकर साहिब, तूं निष्कारण बन्धु न
शरणागत भविने हितवत्सल, तुंही कृपारस सिन्धु न
केवल ज्ञानादर्शे दर्शित लोकालोक स्वभाव न
नाशित सकल कलंक कलुषगण दुरित उपद्रव भाव नमो॥
घोर अपार भवोदधि तारण, तूं शिवपुरनो साथ नमो॥
अशरण-शरण निराग निरंजन, निरुपाधिक जगदीश नमो।
बोध दीनुं अनुपम दानेश्वर, ज्ञानविमल सुर ईश नमो॥

सिक्खमतानुसार प्रार्थना

एक ओं सतनाम करतापुरख निरभउ निरवैर
अकाल मूरत अजूनी सैभं गुरप्रसाद जप।
आदि सच, जुगादि सच, है भी सच,
नानक होसी भी सच॥ वाह गुरु॥

कलिसंतरणोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

'हरे राम०' आदि सोलह नामोंके मन्त्रका अद्भुत माहात्म्य

हरिः ॐ॥ द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम कथं भगवन् गां पर्यटन् कलिं संतरेयमिति। स होवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्वश्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छृणु येन कलिसंसारं तरिष्यसि। भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति। नारदः पुनः पप्रच्छ तन्नाम किमिति। स होवाच हिरण्यगर्भः। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥१॥ इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम्। नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते॥१॥ इति षोडशकलावृतस्य जीवस्यावरणविनाशनम्। ततः प्रकाशते परं ब्रह्म मेघापाये रविरश्मिमण्डलीवेति। पुनर्नारदः पप्रच्छ भगवन् कोऽस्य विधिरिति। तं होवाच नास्य विधिरिति। सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन्ब्राह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां सायुज्यतामेति। यदास्य षोडशकस्य सार्धत्रिकोटीर्जपति तदा ब्रह्महत्यां तरति। तरति वीरहत्याम्। स्वर्णस्तेयात्पूतो भवति। पितृदेवमनुष्याणामपकारात्पूतो भवति। सर्वधर्मपरित्यागपापात्सद्यः शुचितामाप्नुयात्। सद्यो मुच्यते सद्यो मुच्यते इत्युपनिषत्॥ ॐ सह नाववत्विति शान्तिः॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

॥ इति श्रीकलिसंतरणोपनिषत्समाप्ता॥

हरिः ॐ। द्वापरके अन्तमें नारदजी ब्रह्माजीके पास गये और बोले—'भगवन्! मैं भूलोकमें पर्यटन करता हुआ किस प्रकार कलिसे त्राण पा सकता हूँ?' ब्रह्माजी बोले—'वत्स! तुमने मुझसे आज बहुत अच्छी बात पूछी है। समस्त श्रुतियोंका जो गोपनीय रहस्य है, उसे सुनो—जिससे कलियुगमें भवसागरको पार कर लोगे। भगवान् आदिपुरुष नारायणके नामोच्चारणमात्रसे मनुष्य कलिके दोषोंका नाश कर डालता है।' नारदजीने फिर पूछा—'वह कौन-सा नाम है?' हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीने कहा—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

'ये सोलह नाम कलिके पापोंका नाश करनेवाले हैं। इससे श्रेष्ठ कोई दूसरा उपाय सारे वेदोंमें भी नहीं देखनेमें आता। इसके द्वारा षोडश कलाओंसे आवृत जीवके आवरण नष्ट हो जाते हैं। तत्पश्चात् जैसे मेघके विलीन होनेपर सूर्यकी किरणें प्रकाशित हो उठती हैं, उसी प्रकार परब्रह्मका स्वरूप प्रकाशित हो जाता है।' फिर नारदजीने पूछा—'भगवन्! इसके जपकी क्या विधि है?' ब्रह्माजीने उनसे कहा—'इसकी कोई विधि नहीं है। पवित्र हो या अपवित्र—इस मन्त्रका निरन्तर जप करनेवाला सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और

सायुज्य—चारों प्रकारकी मुक्ति प्राप्त करता है। जब साधक इस सोलह नामोंवाले मन्त्रके साढ़े तीन करोड़ जप कर लेता है, तब वह ब्रह्महत्याके दोषको पार कर जाता है। वीरहत्याके पापसे तर जाता है। स्वर्णकी चोरीके पापसे छूट जाता है। पितर, देवता और मनुष्योंके अपकारके दोषसे भी छूट जाता है। सब धर्मोंके परित्यागके पापसे तत्काल ही पवित्र हो जाता है। शीघ्र ही मुक्त हो जाता है, शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।' यह उपनिषद् है।'

॥ कृष्णयजुर्वेदीय कलिसंतरणोपनिषद् समाप्त ॥

नामामृतस्तोत्र

राजा ययातिका प्रजावर्गको भगवन्नामका धर्ममय उपदेश

क बार नारदजी इन्द्रके यहाँ पहुँचे। इन्द्रने उनका त्कार करके पूछा—'देवर्षे! इस समय आप कहाँसे हैं?' नारदजीने कहा—'मैं इस समय भूलोकमें नहुष-ातिसे मिलकर आपसे मिलने आया हूँ।' फिर इन्द्रके नारदजीने उत्तर दिया कि 'नहुषके वीर्यवान् पुत्र महापुण्यशाली, परम धर्मात्मा एवं सर्वगुणोंसे युक्त ल हैं। उन्होंने सौ अश्वमेध एवं सौ वाजपेय यज्ञ।' नारदजीके द्वारा राजा ययातिकी इस प्रकार प्रशंसा इन्द्र भयभीत हो गये। उन्हें इन्द्रासनको अपने पास रखनेकी गम्भीर चिन्ता लग गयी। वे सोचने लगे, महापुण्यशाली नृप ययाति भी अपने पिता नहुषकी न्द्रपदपर अधिकार न कर लें। अतएव उन्होंने जिस उपायसे राजा ययातिको स्वर्गमें बुलानेका निश्चय और इसके लिये इन्द्रने अपने कुशल सारथि मातलि-ीपर भेजा। मातलिने जाकर इन्द्रका संदेश ययातिको उसने ययातिसे मृत्युलोकका, मर्त्यशरीरकी पीड़ाका एवं दुरवस्थाका वर्णन किया और बड़े ही विस्तार तथा भव्यतासे स्वर्गके सुख-वैभवका गान किया। मातलि एवं ययातिका सुदीर्घ वार्तालाप चलता रहा। अन्तमें धर्मात्मा राजा ययातिने कहा—'देवदूत! तुमने स्वर्गका सारा गुण-अवगुण मुझे बता दिया। परंतु मैं शरीर छोड़कर स्वर्गलोक नहीं जाना चाहता; वरं अपने तपसे, भावसे और धर्माचरणसे इस पृथ्वीको ही स्वर्ग बनाना चाहता हूँ।'

राजा ययातिकी यह बात सुनकर मातलि इन्द्रके पास लौट गया। मातलिके लौट जानेके पश्चात् धर्मात्मा नरेश ययातिने अपने प्रधान-प्रधान दूतोंको बुलाकर धर्मार्थयुक्त उत्तम आदेश दिया—'दूतो! तुमलोग मेरी आज्ञा मानकर देश-विदेशमें जाओ और वहाँ मेरा धर्ममय संदेश प्रजावर्गको सुनाओ और सबको इसका पालन करनेके लिये दृढ़ताके साथ कहो।' तदनन्तर राजाका आज्ञा-पत्र या संदेश लेकर दूत समूची पृथ्वीपर घूम-घूमकर सारी प्रजाको महाराजका आदेश इस प्रकार सुनाने लगे—

श्रीकेशवं क्लेशहरं वरेण्य-
मानन्दरूपं परमार्थमेव।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा
आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥

श्रीपद्मनाभं कमलेक्षणं च
आधाररूपं जगतां महेशम्।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा
आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥

पापापहं व्याधिविनाशरूप-
मानन्ददं दानवदैत्यनाशनम्।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा
आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥

यज्ञाङ्गरूपं च रथाङ्गपाणिं पुण्याकरं सौख्यमनन्तरूपम् ।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः ॥
विश्वाधिवासं विमलं विरामं रामाभिधानं रमणं मुरारिम् ।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः ॥
आदित्यरूपं तमसां विनाशं चन्द्रप्रकाशं मलपङ्कजानाम् ।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः ॥
सखड्गपाणिं मधुसूदनाख्यं तं श्रीनिवासं सगुणं सुरेशम् ।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः ॥
नामामृतं दोषहरं सुपुण्यमधीत्य यो माधवविष्णुभक्तः ।
प्रभातकाले नियतो महात्मा स याति मुक्तिं न हि कारणं च॥
(पद्मपुराण भूमि० ७३ । १०–१७)

'भगवान् केशव सबका क्लेश हरनेवाले, सर्वश्रेष्ठ, आनन्दस्वरूप और परमार्थतत्त्व हैं । उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है । महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है । संसारके लोग इच्छानुसार उसका पान करें । भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है । उनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं । वे जगत्के आधारभूत और महेश्वर हैं । उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है । महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है । संसारके लोग इच्छानुसार उसका पान करें । भगवान् विष्णु पापोंका नाश करके आनन्द प्रदान करते हैं । वे दानवों और दैत्योंका संहार करनेवाले हैं । उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है । महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है । संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें । यज्ञ भगवान्‌के अङ्गस्वरूप हैं, उनके हाथमें सुदर्शनचक्र शोभा पाता है । वे पुण्यकी निधि और सुखरूप हैं । उनके स्वरूपका कहीं अन्त नहीं है । उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है । महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है । संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें । सम्पूर्ण विश्व उनके हृदयमें निवास करता है । वे निर्मल, सबको आराम देनेवाले, 'राम' नामसे विख्यात, सबमें रमण करनेवाले तथा मुर दैत्यके शत्रु हैं । उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है । महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है । संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें । भगवान् केशव आदित्यस्वरूप, अन्धकारके नाशक, मलरूप कमलोंके लिये चाँदनीरूप हैं । उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है । महाराज ययातिने उसे यहीं लाकर सुलभ कर दिया है, सब लोग उसका पान करें । जिनके हाथमें नन्दन नामक खड्ग है, जो मधुसूदन नामसे प्रसिद्ध, लक्ष्मीके निवासस्थान, सगुण और देवेश्वर हैं, उनका नामामृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है । महाराज ययातिने उसे यहीं लाकर सुलभ कर दिया है, सब लोग उसका पान करें ।'

यह नामामृत-स्तोत्र सर्वदोषहारी और उत्तम पुण्यका जनक है । लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुमें भक्ति रखनेवाला जो महात्मा पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल नियमपूर्वक इसका पाठ करता है, वह मुक्त हो जाता है, पुनः प्रकृतिके अधीन नहीं होता ।

मैं तुम्हारी प्यारी लीलाभूमि बन जाऊँ !

हर लो प्रभु ! मेरी भोग-दासता भारी । कर लो मुझको 'निज दास' नाथ अघहारी ! ॥
मैं रटूँ तुम्हारा नाम नित्य भयहारी ! । मैं सेवा नित तन-मनसे करूँ तुम्हारी ॥
मिट जायँ काम-आसक्ति समस्त मुरारी ! । हट जाय मोह-ममताकी माया सारी ॥
रह जाय न मद अभिमान मान मदहारी ! । हो उदय सहज शुचि दैन्य विनय व्रतधारी ! ॥
खुल जायँ ज्ञानके नेत्र दिव्य तमहारी । दीखे लीला सर्वत्र सदा सुखकारी ॥
मैं देखूँ सबमें सदा तुम्हें मनहारी ! । मैं सबका सुख-हित करूँ सर्वहितकारी ! ॥
बन जाऊँ लीलाभूमि तुम्हारी प्यारी । तुम खेलो फिर मनमाने लीलाकारी ! ॥
रह जाय न कुछ भी सत्ता मेरी न्यारी । तुम ही लीला, लीलामय सभी विहारी ! ॥

(श्रीरूपगोस्वामिकृत) श्रीभगवन्नामाष्टकम्

(प्रेषक तथा अनुवादक—श्रीवनमालीदासजी महाराज)

निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला-
द्युतिनीराजितपादपङ्कजान्त ।
अपि मुक्तकुलैरुपास्यमानं
परितस्त्वां हरिनाम ! संश्रयामि ॥ १ ॥

हे हरिनाम ! मैं आपका सर्वतोभावसे आश्रय ग्रहण रता हूँ; क्योंकि आपका महत्त्व विचित्र है। देखो, समस्त तियोंकी मुकुटमणिरूप उपनिषद्स्वरूप रत्नोंकी मालाकी मचमाती हुई कान्तिके द्वारा आपके चरणकमलोंके न्तभागकी अर्थात् नखोंकी आरती उतारी जाती है और क मुनिगण भी आपकी उपासना करते रहते हैं। त्पर्य—सर्वोपनिषदोंके पुरुषार्थरूपसे प्रतिपाद्य एवं मुक्त-नेकुलसेव्य आप ही हैं ॥ १ ॥

ानु दुरिताक्रान्ताय ते कथं संश्रयं दास्यामि तत्राह—

जय नामधेय मुनिवृन्दगेय
जनरञ्जनाय परमक्षराकृते ।
त्वमनादरादपि मनागुदीरितं
निखिलोग्रतापपटलीं विलुम्पसि ॥ २ ॥

यदि कहें कि पापोंसे आक्रान्त तेरे-जैसेको कैसे ाना आश्रय दे दूँगा, तब कहते हैं—हे मुनिगणोंके ा गायन करने योग्य एवं भक्तोंके अनुरञ्जनके लिये अक्षरोंकी आकृति धारण करनेवाले हरिनाम ! आपकी ा हो ! अर्थात् आपका उत्कर्ष सदैव विद्यमान रहे, थवा अपने उत्कर्षको प्रकट करें। प्रभो ! वह उत्कर्ष : है कि आप तो अनादरपूर्वक—अर्थात् सांकेत्य-रेहासादिके रूपसे किंचित् उच्चारित होनेपर भी लिङ्गदेह-न्त समस्त भयंकर पापसमूहको समूल नष्ट कर देते हैं। तः मुझे भी अपनी शरणागति अवश्य प्रदान करेंगे ॥२॥

न च नामाभासः पापान्येव दग्ध्वा निवर्तते अपि तु वाच्ये भक्तिं च प्रकाशयतीत्याह—

यदाभासोऽप्युद्यन्कवलितभवध्वान्तविभवो
दृशं तत्त्वान्धानामपि दिशति भक्तिप्रणयिनीम्।
जनस्तस्योदात्तं जगति भगवन्नामतरणे
कृती ते निर्वक्तुं क इह महिमानं प्रभवति ॥ ३ ॥

नामाभास केवल पापोंको ही जलाकर निवृत्त नहीं होता, अपितु अपने वाच्य श्रीराम-कृष्ण आदि स्व भक्तिको भी प्रकाशित करता है, यह कहते हैं—ह भगवन्नामरूप सूर्य ! इस संसारमें कौन प्रवीण पण्डितजन आपकी असमोर्ध्व महिमाको यथार्थरूपेण कहनेमें समर्थ है ? अर्थात् कोई भी नहीं; क्योंकि आपका आभासमात्र भी प्रकट होकर संसारके अज्ञानरूप अन्धकारके वैभवको कवलित (ग्रास) कर लेता है और तत्त्वदृष्टिसे विहीन जनोंके लिये श्रीहरिभक्ति देनेवाली दृष्टि प्रदान करता है ॥ ३ ॥

अथैकान्तिकभावेनोपासितं नाम भोगैकविनाश्यमपि प्रारब्धं विनैव भोगाद्विनाशयतीत्याह—

यद् ब्रह्म साक्षात्कृतिनिष्ठयापि
विनाशमायाति विना न भोगैः।
अपैति नामस्फुरणेन तत्ते
प्रारब्धकर्मेति विरौति वेदः ॥ ४ ॥

अब निष्ठापूर्वक जपा हुआ नाम—भोगके द्वारा ही विनाश्य प्रारब्ध कर्मको भोगके बिना ही नष्ट कर देता है। इस भावको कहते हैं—हे नाम भगवन् ! जो प्रारब्ध-कर्म भोगोंके बिना ब्रह्मकी अविच्छिन्न तैलधारावत् की गयी साक्षात्कारकी निष्ठाके द्वारा भी विनष्ट नहीं हो पाता, वह प्रारब्ध-कर्म आपके स्फूर्तिमात्रसे अर्थात् भक्तोंकी जिह्वा-पर स्फुरण होनेमात्रसे दूर भाग जाता है, इस बातको वेद उच्चस्वरसे कहता है। अर्थात् ब्रह्मविद्याके साक्षात्कारसे संचित एवं क्रियमाण कर्मोंका नाश तो हो जाता है; किंतु फल देनेके लिये प्रवृत्त पुण्य-पापरूप प्रारब्ध-कर्मका नाश तो भोगसे ही होता है, ब्रह्मविद्यासे नहीं। परंतु वह प्रारब्ध-कर्म भी नामोच्चारणमात्रसे विनष्ट हो जाता है, इसमें वेद प्रमाण है। यथा— (स एव सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः, उदेति ह वै सर्वपाप्मभ्यो य एवं वेद उदिति तस्य नाम) वह सब पापोंसे छूट गया और वह जन ही सब पापोंसे छुटकारा पाता है, जो भगवान्‌के 'उत्' ऐसे नामको जानता है ॥४॥

भक्तेभ्यो विचित्रानन्दान्प्रदातुं बहुरूपतयाविर्भावा-दतिकरुणमिदं नामेतिभावेनाह—

अघदमन-यशोदानन्दनौ नन्दसूनो
कमलनयन-गोपीचन्द्र-वृन्दावनेन्द्राः ।
प्रणतकरुण-कृष्णावित्यनेकस्वरूपे
त्वयि मम रतिरुच्चैर्वर्धतां नामधेय ! ॥ ५ ॥

अब भक्तोंको विचित्र आनन्द देनेके लिये अनेक रूपसे प्रकट होनेके कारण यह नाम-भगवान् विशेष दयालु है, इस भावसे कहते हैं—'हे नाम भगवन् ! पूर्वोक्त रूपसे अतर्क्य महिमावाले आपमें मेरी प्रीति दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती रहे। आपके अनेक स्वरूप इस प्रकारके हैं—'हे अघदमन ! हे यशोदानन्दन ! हे नन्दसूनो ! हे कमलनयन ! हे गोपीचन्द्र ! हे वृन्दावनेन्द्र ! हे प्रणतकरुण ! हे कृष्ण !' इत्यादि ॥ ५ ॥

अतिकरुणत्वं ते स्फुटमस्ति, अतस्त्वामेव संश्रयामीति भावेनाह—

वाच्यं वाचकमित्युदेति भवतो नाम स्वरूपद्वयं
पूर्वस्मात्परमेव हन्त करुणं तत्रापि जानीमहे ।
यस्तस्मिन् विहितापराधनिवहः प्राणी समन्ताद्भवे-
दास्येनेदमुपास्य सोऽपि हि सदानन्दाम्बुधौ मज्जति ॥६॥

आपकी अतिशय दयालुता प्रसिद्ध है; अतः आपका ही आश्रय लेता हूँ—इस भावसे कहते हैं—'हे नाम ! आपके वाच्य एवं वाचकरूपसे दो स्वरूप संसारमें प्रकट होते हैं, अर्थात् 'वाच्य' शब्दसे सच्चिदानन्द विग्रहवाले परमात्मा लिये जाते हैं और 'वाचक' शब्दसे श्रीकृष्ण, गोविन्द इत्यादि वर्णसमूहरूप नाम कहलाते हैं। इन दोनोंके मध्यमें पहले—वाच्यकी अपेक्षा दूसरे—वाचक श्रीकृष्ण आदि नाम-स्वरूपवाले आपको हम अधिक दयालु जानते हैं; क्योंकि जो प्राणी आपके वाच्य-स्वरूपके प्रति अनेक अपराध कर चुका है, वह भी वाचक-स्वरूप आपकी जिह्वाके स्पर्शमात्रसे उपासना करके सदैव आनन्द-समुद्रमें गोता लगाता रहता है ॥ ६ ॥

ननु द्वात्रिंशत्सेवापराधा नाम्ना विनश्येयुर्नामापराधाः साधुनिन्दादयो दश केन ? तेऽपि नाम्नैवेत्याह—

सूदिताश्रितजनार्तिराशये रम्यचिद्घनसुखस्वरूपिणे ।
नाम गोकुलमहोत्सवाय ते कृष्ण पूर्णवपुषे नमो नमः ॥७॥

बत्तीस सेवापराध तो नामके द्वारा नष्ट हो सकते हैं, पर साधुनिन्दा आदि दश नामापराध किससे नष्ट होंगे—इसके उत्तरमें वे भी नामके द्वारा ही नष्ट होंगे, इस भावसे कहते हैं—'हे आश्रित जनोंके पीड़ा-समूहको नष्ट करनेवाले, रमणीय सच्चिदानन्द स्वरूपवाले, गोकुलके महोत्सव-स्वरूप एवं व्यापक स्वरूपवाले हे *कृष्णनाम !* पूर्वोक्त गुणविशिष्ट आपके प्रति मेरा बारंबार नमस्कार है।' यहाँपर पीड़ासमूहसे सभी अपराधोंका ग्रहण है, अर्थात् नामापराधीकी नामापराधरूप सब पीड़ाओंको नाम ही नष्ट करता है, यह स्मृतियोंमें वर्णित है—नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघमित्यादि ॥ ७ ॥

अथ नाम्नः स्वस्मिन् स्फूर्तिं प्रार्थयते—

नारदवीणोज्जीवन सुधोर्मिनिर्यास माधुरीपूर ।
त्वं कृष्णनाम ! कामं स्फुर मे रसने रसेन सदा ॥ ८ ॥

हे नारदकी वीणाको सचेत करनेवाले, हे अमृतमय तरङ्गोंके सार ! हे मधुरताके समूह ! हे कृष्णनाम ! आप मेरी जिह्वापर स्वेच्छापूर्वक रसयुक्त होकर सदैव स्फूर्ति पाते रहें। इस प्रकारकी प्रार्थना पञ्चम स्कन्धमें भी है। नामकी कृपाके बिना जिह्वा नाम लेनेमें समर्थ नहीं है—यही तात्पर्यार्थ है ॥ ८ ॥

श्रीरूपगोस्वामिविनिर्मितेऽस्मिन्
नामाष्टके श्रीवनमालिदासः ।
टीकामिमां व्यातनुते स्म भव्यां
भूनेत्रशून्याक्षिमिते हि वर्षे ॥ १ ॥

राम-नाम-स्मरणसे शुभ-मङ्गल-कुशल

राम भरोसो, राम बल, राम नाम बिस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल माँगत तुलसीदास ॥

राम-नाम रति, राम गति, राम-नाम बिस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, दुहुँ दिसि तुलसीदास ॥

(श्रीतुलसीदासजी)

श्रीहरिनाममहिमाष्टक

[लेखक—गोलोकवासी भक्तवर पं० श्रीरामप्रसादजी शर्मा (श्रीराधिकादासजी)]

हरेर्नाम्ना येन ग्रुडदिभपतिर्मुक्तशुगभू-
दनन्तत्वं चाप द्रुपदतनयावस्त्रमपि वै ।
विनोद्योगैः सिद्धं नरसिमहतः कार्यमखिलं
विहायैतन्नामेच्छसि शिवमये हा नर कथम् ॥ १ ॥

जिस हरिनामसे जलमें डूबता हुआ गजराज भी समस्त शोकसे छूट गया, जिस हरिनामके प्रभावसे श्रीद्रौपदीजीका वस्त्र भी अनन्त हो गया, जिस नामके प्रतापसे श्रीनरसी मेहताजीके सम्पूर्ण कार्य विना ही उद्योगके सिद्ध हो गये, हे मनुष्य ! उस श्रीहरिनामको छोड़कर तू अपना कल्याण कैसे चाहता है ? ॥ १ ॥

यतोऽश्माप्युत्तीर्णः स्पृशदपरनुर्मज्जनकरो
यतः शम्भुर्घोरं विषमपि पपौ भूतकृपया ।
यतो मीरादीनामपि अमृतकल्पं तदभवद्
विहायैतन्नामेच्छसि शिवमये हा नर कथम् ॥ २ ॥

दूसरेको साथ लेकर डूबनेवाले पत्थर भी जिस हरिनामके स्पर्शसे तर गये, शिवजी महाराज जिस नामके प्रतापसे जीवोंपर कृपा करके भयानक विषपान कर गये, जिस हरिनामके प्रतापसे मीराँ प्रभृति भक्तोंके लिये घोर विष भी अमृतके समान हो गया; हे नर ! उस श्रीहरिनामको छोड़कर तू कैसे अपना कल्याण चाहता है ? ॥ २ ॥

यतः सिद्धश्रेणीष्वपि परममानार्हमहिमा
कबीरोऽसावासीदपि च रविदासश्च नितराम् ।
सदा यत्प्रेम्णाऽस्मैन्न तनुमपि चैतन्यभगवान्
विहायैतन्नामेच्छसि शिवमये हा नर कथम् ॥ ३ ॥

जिस श्रीहरिनामसे कबीरजी तथा रैदासजी सिद्धोंकी श्रेणीमें परम सम्माननीय महिमावाले हो गये; जिस श्रीकृष्ण-नामके प्रेमावेशसे श्रीचैतन्यभगवान् (महाप्रभु) को शरीरका भी ज्ञान जाता रहा—जो नाम-प्रेमावेशमें अपने श्रीविग्रहको भी सँभाल नहीं सके, निरन्तर भगवत्प्रेम और भगवद्ध्यानजनित अद्भुत आनन्दरसमें ही मग्न रहते थे । हा ! उस श्रीहरिनामको छोड़कर तू कैसे अपना कल्याण चाहता है ? ॥ ३ ॥

हरामेत्युक्त्वाऽऽप ह्यपि यवनजातिः प्रभुपदं
मरा नाम्ना व्याधोऽप्यहह मुनिराजोऽभवदहो ।
यतः श्रीप्रह्लादः परमविपदोघाच्च मुमुचे
विहायैतन्नामेच्छसि शिवमये हा नर कथम् ॥ ४ ॥

जिस श्रीहरिनामके अत्यन्त अद्भुत प्रभावसे मृत्युकालमें 'हराम' कहनेवाला यवन भी भगवत्-पदको प्राप्त हो गया; जिसके प्रतापसे 'मरा' (रामका उल्टा) मन्त्रका जप करके व्याध मुनिराज (वाल्मीकि) बन गया, जिस हरिनामके प्रभावसे श्रीप्रह्लाद परम विपत्तियोंके समूहों (हिरण्यकशिपु-द्वारा किये हुए अत्याचारों) से छूट गये; हा ! उस श्रीहरिनामको छोड़कर तू अपना कल्याण कैसे चाहता है ? ॥ ४ ॥

मुनिर्योगी ज्ञानी परमबुधमानी च यदृते
न सिद्धिं यान्तीति स्फुटमभिहितं श्रीशुकमुखैः ।
विना यद् धर्मोऽपि प्रभवति अधर्मो विमुखनु-
विहायैतन्नामेच्छसि शिवमये हा नर कथम् ॥ ५ ॥

जिस श्रीहरिनामके विना मुनि, ज्ञानी, योगी और परम पण्डिताभिमानी आदि भी सिद्धिको नहीं प्राप्त होते, जिस हरिनामके विना विमुख जीवकृत धर्माचरण भी अधर्म हो जाता है; हा ! उस हरिनामको छोड़कर तू अपना कल्याण कैसे चाहता है ? ॥ ५ ॥

सुतस्नेहादुच्चार्य च खलु यदाभासमपि वा
अजामेलः प्रापन्मुनिवरदुरापं प्रभुपदम् ।
दधच्छेषोऽपि क्ष्मामनिशमपि यद्वर्णनपरो
विहायैतन्नामेच्छसि शिवमये हा नर कथम् ॥ ६ ॥

जिस हरिनामके आभासका यानी पुत्रोपचारित 'नारायण' नामका पुत्र-स्नेहसे उच्चारण करके अजामिल मुनिराज-दुर्लभ भगवत्-पदको प्राप्त हो गया, श्रीशेषजी पृथ्वीको धारण किये हुए भी निरन्तर जिसके वर्णनमें तत्पर रहते हैं; हा ! उस श्रीहरिनामको छोड़कर तू कैसे अपना कल्याण चाहता है ? ॥ ६ ॥

शिवाज्ञातः स्मृत्वा यदनलभयाद्भीतहृदयो
विमुक्तः काश्यां शौण्डिकगृहगतः कश्चन विटः ।
करोतीशो मुक्तिं यदपि च वितीर्याखिलनृणां
विहायैतन्नामेच्छसि शिवमये हा नर कथम् ॥ ७ ॥

श्रीशिवजीकी आज्ञासे जिस श्रीहरिनामका स्मरण करके, काशीके अंदर मदिराकी भट्ठीमें पड़ा हुआ अग्नि-भयभीत जार पुरुष भी अग्निभयसे छूट गया, काशीमें मरते हुए प्राणियोंको जिस श्रीहरिनामका तारक मन्त्र देकर श्रीविश्व-

हमारा कृष्ण

(रचयिता—राष्ट्र-महाकवि स्व० श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त*)

हमारा कृष्ण, कहें कैसा,
चाहिये जैसा वह वैसा।
दीखता है ऊपरसे तो
हमारे बीच हमीं जैसा।

खेलता है, खाता-पीता,
कभी ले वेणु, कभी गीता।
सुधा पीकर उसके कर की
अमर-जीवन जन ने जीता।

देश जैसा हो जैसा काल,
वहाँ वैसा माई का लाल।
ज्ञानियों में गुरु योगीश्वर,
गोपियों में नटवर गोपाल।

उसे प्रिय आँख मिचौनी है,
सिद्ध हौनी अनहौनी है।
मूर्ति असि-नीलोज्ज्वल उसकी
मधुर है और सलौनी है।

जाय, भव-मुक्ति टटोलें अन्ध,
रहे निज राम-कृष्ण सम्बन्ध।
हमारे शत-सहस्रदल का
उन्हींको अर्पित है मधु गन्ध॥

मानवके प्रति भगवान्‌की अभय वाणी

(लेखक—महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

(१)

मत डर

प्यारे ! मुझमें सम्भव-असम्भवकी कुछ भी कल्पना न। मैं कमल-नालसे हाथी बाँध सकता हूँ, गोष्पदमें पर्वत सकता हूँ। मेरी गतिका निर्णय कर सके, ऐसी शक्ति में भी नहीं है। तू देह-चिन्ता, अर्थ-चिन्ता—सबका कर। मैंने उसकी व्यवस्था कर दी है। पुकार, मुझे पुकार, सब ज्वालाएँ दूर होंगी। मत डर, मत डर, मत डर !

तू नाम ले—जबतक स्थिर नहीं हो पाता, तबतक नाम तेरे पैरोंके नीचेसे पृथ्वी खिसक जाय, सिरपर आकाश ड़े अथवा तेरा सर्वनाश ही क्यों न हो जाय, तू किसी न देखकर दिन-रात नाम ले। तू यह निश्चित जान—ी गोदमें है, मैं तुझे छातीसे लगाकर तेरी रक्षा कर रहा नाम ले—नाम ले।

सर्वे नश्यन्ति ब्रह्माण्डे प्रभवन्ति पुनः पुनः।
न मे भक्ताः प्रणश्यन्ति निःशङ्काश्च निरापदः॥

डर किस बातका ! मेरा भक्त कभी भी नष्ट नहीं होता। सब कुछ चला जायगा, पर मेरा भक्त निःशङ्क एवं निरापद बना रहेगा। मत डर !

(२)

मत डर

मैं सत्य कह रहा हूँ—जो मेरा नाम लेते हैं, पाषाण काष्ठसदृश होनेपर भी मैं उन्हें मृत्युकालमें अभीष्ट प्रदान करता हूँ। नाम ले, अविराम नाम ले—मैं सब भार ग्रहण करूँगा। तू एकदम निश्चिन्त हो जायगा। आ, संसार-पीड़ित, साधन-भजनहीन ! आ, संतप्त, तृषित, भोगलुब्ध ! दौड़ आ, आ। रोग-शोक-यन्त्रणासे व्याकुल, आ ! बालक, वृद्ध, युवक, युवती—सब आओ, आओ। पापी-पुण्यवान्, ब्राह्मण-चाण्डाल ! आओ, आओ। मूर्ख-ज्ञानी, धनवान्-निर्धन—सब मेरा नाम लो, नाम लो, नाम लो। तुम्हारे सब दुःख दूर होंगे, तुम सब आनन्दसागरमें डूब जाओगे।

* श्रीगुप्तजीने जीवनके आरम्भसे ही अपनेको भारत, भारती, भारतीय संस्कृतिकी सेवामें लगाया। करोड़ों देशवासियोंको उनके चारोंसे सत्प्रेरणा मिली और अन्ततक इसी पुनीत कार्यमें आप लगे रहे। शरीरका वियोग तो सभीका होता है पर जो इस प्रकार जीवन बिताकर जाते हैं, उनका जीवन धन्य है।—सम्पादक,

नस-नस रक्त-प्रवाहमें होय नाम-धुनि नित्य।
राम-नाम अङ्कित रहें अस्थि-अस्थिमें सत्य॥

'नस-नसमें रक्तप्रवाहके साथ नाम-ध्वनि संचार करे। हड्डी-हड्डीमें राम-नाम-महावाणी अङ्कित हो जाय।'

जितना ले सकते हो, नाम लो; जितना सुन सकते हो, नाम सुनो; मेरा चैतन्यमय नाम सुनना, लेना व्यर्थ नहीं जाता; जितना नाम उतना ही आनन्द!

श्रद्धया हेलया नाम रटन्ति मम जन्तवः।
तेषां नाम सदा पार्थ वर्तते हृदये मम॥

'हे पार्थ! श्रद्धा या अवहेलनासे जो मेरा नाम रटते हैं; उन मनुष्योंके नाम मेरे हृदयमें सदा वर्तमान रहते हैं।'

येन केन प्रकारेण नाममात्रस्य जल्पकाः।
श्रमं विनैव गच्छन्ति परे धाम्नि समादरात्॥

'जिस-किसी भी तरह केवल नाममात्रका जप करनेवाले बिना ही श्रमके बड़े आदरके साथ परमधामको चले जाते हैं।'

अरे प्रियतम! मेरा नाम ले, निर्भय हो जायगा। मत डर, मत डर, मत डर!

(३)
मत डर

ओ प्रियतम! रोग-शोक-अभावमें रात-दिन जल रहा है! केवल रो रहा है? अब मत रो! मेरा नाम ले। तेरे सब दुःख दूर होंगे। संशय मत कर, चाहे भक्ति-श्रद्धा न हो, अविराम नाम लेनेसे तू कृतार्थ हो जायगा।

तन्नास्ति कर्मजं लोके वाग्जं मानसमेव वा।
यन्न क्षपयते पापं कलौ गोविन्दकीर्तनम्॥

'संसारमें ऐसा कोई मन-वचन-कर्मजनित पाप नहीं, जो कलियुगमें मेरे नाम-कीर्तनसे नष्ट न हो जाय; नाम ले, नाम ले!'

उठते-बैठते, खाते-सोते, सुखमें-दुःखमें, अभावमें-बाहुल्यमें, उपेक्षासे-श्रद्धासे, भक्तिसे-अभक्तिसे, कोलाहलमें-एकान्तमें, स्वप्नमें-जागरणमें मेरा नाम ले। मैं प्रतिज्ञा करके कह रहा हूँ—तेरा सब भार मैंने ग्रहण कर लिया। तुझे कुछ भी सोचनेकी ज़रूरत नहीं। मेरा प्रेम प्राप्त कर; तू सदाके लिये निश्चिन्त हो जायगा, तू नाममय हो जायगा। तेरी सात पीढ़ियाँ, जो बीत चुकी हैं, और चौदह पीढ़ियाँ जो आयेंगी, उनका उद्धार हो जायगा।

तस्मान्नामानि कौन्तेय भजस्व दृढमानसः।
नामयुक्तः प्रियोऽस्माकं नामयुक्तो भवार्जुन॥
(आदिपुराण)

'अर्जुन! अतएव तू दृढ़ चित्तसे नाम-भजन कर; नामयुक्त, मेरे प्रिय! तू नामयुक्त हो। अरे, कलियुगमें मैं नामरूपसे आया हूँ।'

नाम ले, नाम ले। मत डर, मत डर, मत डर!

(४)
मत डर

अरे भक्त! तुझे कोई भय नहीं, तू केवल नाम ले। मैं भयका भय, भीषणका भीषण, सब विपत्तियोंका नाश करनेवाला सदा तेरी विपत्तियोंका नाश करता हूँ और 'मैं तेरा'—कहकर जो मेरी शरणमें आता है, उसे अभयदान करना मेरा व्रत है। आकाश टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़े, प्रलयकी अग्नि जल उठे, साथ ही कोटि वज्रपात होने लगें, भयंकर महाझंझावातसे विश्व-ब्रह्माण्ड काँप उठें, सातों समुद्र उमड़ पड़ें; तथापि, तथापि, रे प्रियतम! डर नहीं। मैं तुझे छातीसे लगा कर तेरी रक्षा कर रहा हूँ। यह बात मत भूल—'मैं हूँ तेरा, अरे मैं हूँ तेरा।' मत डर।

अरे तापित, तृषित, क्षुभित, श्रान्त, क्लान्त, आत्म-विस्मृत संतान! संसार-स्वप्न देखकर और हाहाकार न कर। संसार केवल स्वप्न है। सत्य केवल—एकमात्र मैं हूँ। मेरा नाम ले। नामानन्द-सागरमें डूबकर तू भी नाममय हो जा। अरे! मेरे सिवा जगत्में कुछ है ही नहीं। पूर्णमें पूर्णका प्रकाश, शान्तमें शान्तका अवस्थान, आकाशमें आकाशका उदय—मुझमें मैं ही हूँ। नाम लेते-लेते आँखोंके जलसे आँखें धो डाल और एक बार देख, जगत् आनन्दमय हो उठा है!

ब्रह्माण्डानि विनश्यन्ति देवा इन्द्रादयस्तथा।
कल्याणभक्तियुक्तश्च मद्भक्तो न प्रणश्यति॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

'समस्त ब्रह्माण्ड तथा इन्द्रादि देवगण विनष्ट होते हैं, कल्याणभक्तियुक्त मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।'

सत्त्वशुद्धिकरं नाम नाम ज्ञानप्रदं स्मृतम्।
मुमुक्षूणां मुक्तिप्रदं कामिनां सर्वकामदम्॥
(सात्वत-तन्त्र)

'नाम अन्तःकरणकी शुद्धि करता है, नाम ज्ञान प्रदान करता है। नाम मुमुक्षुको मुक्ति—नामसे मुक्ति चाहनेवालोंको ... कामनावालोंको समस्त काम्य वस्तुओंका दान

...ी परम तीर्थ है, नाम ही पुण्यप्रद क्षेत्र है; ... देव है, नाम ही परम तपस्या है; नाम ही ... नाम ही परम क्रिया है; नाम ही परम धर्म ... अर्थ है; नाम ही भक्तका काम है, मोक्ष भी ...ी है; नाम ही परम भक्ति है, नाम ही परम ... ही परम जाप्य है और नाम ही सर्वश्रेष्ठ है।

...यतम! नाम लेनेसे तुझे वर्तमान एवं परकालकी ...ता नहीं करनी होगी। मैं तेरा मृत्यु-संसार-...र करूँगा। नाम ले, नाम ले। मत डर, मत ...!

(५)

मत डर

...यतम! तू क्यों डरता है? अविराम नाम ले, ...न्ता नहीं। मेरे ही डरसे अग्नि प्रज्वलित होती ... देता है; इन्द्र, वायु, मृत्यु अपना-अपना कार्य ...रे शरणागत भक्तकी छाया स्पर्श करनेकी शक्ति नहीं है। अधिक क्या, नित्यदेहधारी भक्तको ...श नहीं कर पाता। मेरा सुदर्शन चक्र भक्तकी ... करता है। कोई बात न सुन; किसीके लिये निर्भय होकर उच्च कण्ठसे नाम ले। कलियुगमें ... आया हूँ। नाम ले। तेरा सब भार मैंने ... मत डर, मत डर, मत डर!

(६)

मत डर

...ियतम! मैं तुझे कितना प्यार करता हूँ, जानता है? तेरी आकाङ्क्षा पूर्ण करके तुझे निराकाङ्क्षी बनानेके लिये तू जो चाहता है, मैं वही बनकर तेरे पास आता हूँ। तूने कामिनीकी चाह की, मैं नारी बनकर आ गया। ये सब तुच्छ कामनाएँ करके तू जन्म-जन्मान्तर केवल रोता है

इसीलिये तो पुकार रहा हूँ, अरे लौट आ! लौट आ, अमृतसंतान! जड देहकी ममता त्यागकर अपने सच्चिदानन्दमय आत्मस्वरूपमें लौट आ। कैसे लौटेगा? नाम कीर्तन करते-करते।

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥
(पद्मपुराण)

'नाम ही चिन्तामणिस्वरूप चैतन्यरसविग्रह, पूर्ण शुद्ध नित्यमुक्त स्वयं कृष्ण है; क्योंकि नाम और नामीमें भेद नहीं।' समझा? मुझमें और मेरे नाममें भेद नहीं; नामका आश्रय लेना और मुझे प्राप्त करना एक ही बात है।

केवल नाम ले; तेरे रोग, शोक, दुःख, ज्वाला, अभाव—कुछ भी नहीं रहेगा। तू परमानन्दमय हो जायगा। मेरा पुण्य-नाम-संकीर्तन महापातकका नाश करता है, कामीको सर्वकाम और भक्तको प्रेम प्रदान करता है।

जो अनन्य-गतिहीन, भोगी, परद्रोही, ज्ञान-वैराग्य-विहीन ब्रह्मचर्यादिवर्जित और समस्त धर्माचारशून्य हैं, वे एकमात्र मेरे नामके द्वारा जिस गतिको पाते हैं, उस गतिको सभी धार्मिकगण नहीं पाते। अरे प्रियतम! तू बड़ा ही मीठा नाम लेता है, मुझे बड़ा भला लगता है; इसीलिये मैं तेरे पास रहता हूँ और कहता हूँ—नाम ले, नाम ले।

अरे निश्चित मनसे उच्च कण्ठसे नाम ले।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥
मत डर, मत डर, मत डर!

(७)

मत डर

प्रियतम! ओ मेरे प्रियतम! तेरे सब दुःख दूर करनेके लिये मैं नाम-रूपमें आया हूँ। नाम ले, तुझे अब कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। मैं तेरे भीतर-बाहर आनन्द और प्रकाश भर दूँगा। मेरे सरस स्पर्शसे अनुक्षण तू पुलकित रहेगा। तेरी आँखें दूसरे जगत्को नहीं देखेंगी। केवल देखेंगी आनन्दमय मुझको।

मैं सत्य कह रहा हूँ, मेरा नाम मृत्यु-संजीवन है।

न भयं यमदूतानां न भयं रौरवादिकम्।
न भयं प्रेतराजस्य गोविन्देति च जल्पनात्॥

'नाम-कीर्तनसे यमदूतोंका भय, रौरवादि नरकका भय, यमदण्डका भय नहीं रहेगा।' नाम ले, केवल नाम ले; नाम-कीर्तन ही परम ज्ञान, परम तपस्या और परम तत्त्व है। कोटि जन्मकी साधनाद्वारा प्राप्त परम पद भी नाम-कीर्तनकारी अनायास ही पाता है।

वह देख, सारे जगत्‌में दुःखकी आग धू-धू करके जल उठी है। आ! आ! तू अब देर मत कर। नामामृत-सागरमें डुबकी लगाकर निर्भय होकर परमानन्दसे मेरे हृदयमें सदाके लिये विराज।

मत डर, मत डर, मत डर!

(८)

मत डर

अरे अपनेको भूलनेवाले मेरे आनन्दके लाल! तू पागलकी तरह कहाँ दौड़ रहा है? लौट आ, लौट आ—अपने आनन्द-साम्राज्यमें! यहाँ रोग, शोक, दुःख, ज्वाला, यन्त्रणा, अभाव—कुछ भी नहीं है। है केवल आनन्द, परमानन्द। लौटनेका उपाय भी अति सहज, सरल, सुगम—केवल नाम-कीर्तन। नाम-रूपी मुझमें अनन्य भावसे आश्रय ले। फिर तुझे कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी! मैं सब कर दूँगा। और देख, नाममें भक्ति-श्रद्धाकी अपेक्षा नहीं है। जिस-किसी प्रकार मेरा नाम-श्रवण या कीर्तन करनेसे तू कृतार्थ होगा।

सदाचारीका क्या कहना, दुराचारी भी मेरे नाम-भजनसे सालोक्य मुक्ति प्राप्त करता है।

> मदुक्तं सत्यमेतत्तु वाक्यं मे शृणुताधुना।
> सकृदुच्चार्य मन्नाम मे तुल्यो जायते नरः॥

'वर्तमानमें मेरा यह सत्य-वाक्य श्रवण कर—मानव, एक बार मेरा नाम लेनेसे ही मेरे तुल्य हो जाता है।'

नाम-कल्पतरु-मूलसे भोग-मोक्ष—जो भी चाहता है, उसे वही मिलता है। सतत मेरे नाम-कीर्तनसे भक्त मुझमें ही लीन हो जाता है। नाम ही मैं, मैं ही नाम हूँ!

इस कलिकालमें नाम-संकीर्तन ही प्रेमलाभ करनेका परम उपाय है। आ, आ! रे तापित, तृषित, क्षुभित अमृत संतान! नाम लेते-लेते मृत्युलोकके उस पार आ। प्रेमभक्ति-लाभ करके मेरा हो जा।

मत डर, मत डर, मत डर!

(९)

मत डर

इसीसे तो पुकार रहा हूँ—प्रियतम! त्रितापकी ज्वालासे बहुत जल रहा है! जन्म-जन्मान्तर रोते-रोते शेष हो गया! इसीलिये बुला रहा हूँ—आ, आ, आ रे अनन्तके लाल! मेरे हृदयमें आ जा; नाम ले। नित्य नूतन विभीषिका देखकर सिहर उठा है! न, न, डरना नहीं।

> जगतः प्रलये प्राप्ते नष्टे च कमलोद्भवे।
> मद्भक्ता नैव नश्यन्ति स्वेच्छाविग्रहधारिणः॥
>
> (सौरपुराण)

'जगत्‌के प्रलय होनेपर, ब्रह्माके नाश होनेपर भी, मुझ लीला-विग्रहधारीके भक्त नष्ट नहीं होते।'

नाम और मैं भिन्न नहीं हैं। नाम लेना और मेरे साथ-साथ विचरण करना एक ही बात है। अविराम नाम ले। रोग, शोक, दुःख, दैन्य—सब आनन्द-रूप धारण करके तेरे पास नाचते रहेंगे। तू आनन्दके महाप्लावनसे नश्वर विश्वमें निश्चिन्त हो जायगा। तू सर्वत्र मुझको आनन्दमय ही देखेगा।

सहज, सरल, सुगम पथ है—नाम-संकीर्तन। मेरे नामकी प्रभा वेद-वेदान्तकी पारगामिनी है। जो सर्वदा नाम लेते हैं, वे त्रिजगत्‌में पूज्य होते हैं। उनकी कृपासे भी कितने पापी-तापीगणका उद्धार हो जाता है।

अब और अवहेलना न कर; समय जा रहा है। नाम ले, अखण्ड नाम लेनेका अभ्यास कर। जबतक एक शब्द भी उच्चारण करनेकी शक्ति रहे, तबतक नाम लेना मत छोड़। शुचि-अशुचि—कुछ भी देखनेकी जरूरत नहीं है। भक्ति-श्रद्धा हो, न हो, प्रतिक्षण नाम ले। नामसे ही प्रेम लाभ होगा। नाम-जपके द्वारा ही मेरा तुझे साक्षात् प्राप्त होगा। नाम ले, नाम ले, नाम ले।

मत डर, मत डर, मत डर!

(१०)

मत डर

अरे आनन्दके लाल! तुझे कोई भय नहीं है। अविराम नाम ले, सब दुःख दूर होंगे। मेरे भक्तोंको कहीं भी भय नहीं रहता। उन लोगोंको जन्म-मृत्यु, ज़रा-व्याधिका भय भी नहीं रहता।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या अन्य जातिके लोग

भी भक्तिके द्वारा पवित्र होकर परम पद प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। भक्त मेरे प्राणका भी प्राण, मनका मन, सर्वस्वका सर्वस्व है। प्राणसे प्रियतर ! तू अनुक्षण नाम लेकर दुर्लभ प्रेमभक्ति प्राप्त करके कृतार्थ होगा।

नाहं वेदैर्न तपसा नेज्यया नापि तीर्थतः।
संतुष्यामि द्विजश्रेष्ठ यथा नाम्नां प्रकीर्तनात्॥
गानेन गुणनाम्नोर्मे मयि सायुज्यमाप्नुयात्॥

'मेरा नाम-संकीर्तन करनेसे मैं जैसा संतुष्ट होता हूँ, वैसा निखिल वेदाध्ययन, तपस्या तथा यज्ञ-तीर्थादिद्वारा संतुष्ट नहीं होता। नाम-गुण-कीर्तनके द्वारा भक्त मेरा सायुज्य—(मेरे साथ अभेदभाव) प्राप्त करता है।'

साधुओंके परित्राण, दुष्कृतकारियोंके विनाश एवं धर्मकी संस्थापनाके लिये ही मैं नाम-रूपमें अवतीर्ण हुआ हूँ। नाम ही मैं, मैं ही नाम हूँ। नाम और मुझमें कोई भिन्नता नहीं है। नाम ले, केवल नाम ले। ऐसा करनेसे व्यक्त—रे इष्ट रूपमें; अव्यक्त—जगद्रूपमें एकमात्र मैं ही हूँ। इ प्रत्यक्ष कर सकेगा। मेरे नामका स्मरण, कीर्तन, श्रवण, रखन, दर्शन किंवा धारण करनेसे मैं अखिल इष्ट दान र देता हूँ।

आओ, आओ, अरे पथभ्रान्त, श्रान्त, क्लान्त पथिको ! ाओ, आओ; अरे रोगी, शोकी, पापी, तापी ! आओ, ाओ, मूर्ख-विद्वान्, ब्राह्मण-चाण्डाल ! आओ, आओ, लक-वृद्ध, युवक-युवती—सब मेरे नामकी शान्त शीतल यामें दौड़कर चले आओ। तुमलोगोंकी सारी व्यथा रकर मैं तुम्हें हृदयमें रक्खूँगा। निद्रामें, स्वप्न-जागरणमें, म-मरणमें, मेरी गोदमें तुम परमानन्दसे खेलोगे। म लो, नाम लो ! तुम सब मत डरो, मत डरो, मत डरो!

(११)

मत डर

प्यारे ! आ, आ, मेरे पास आ। देख ! एक बार नहीं, -युगान्तरसे पुकारता आ रहा हूँ—आ, आ। उपनिषद्, ायण, महाभारत एवं पुराणके द्वारा पुकार रहा हूँ। ु-संत-महापुरुषके रूपसे पुकार रहा हूँ। जन्म-जन्म क्षण स्वयं आत्माके आत्मारूपसे पुकार रहा हूँ। आ। अपना दृष्टि-भ्रम दूर करके देख तो सही—यह सारा -जाल मैं ही हूँ।

तूने इस संसारमें रोग-शोक-अभाव आदि कितने ताप भोग किये हैं ! आहा तापित ! आ, आ ! यही तो यही तो मेरा खुला हुआ विशाल वक्ष तुझे हृदयमें लुकाव तेरे सब ताप दूर कर देगा।

मेरे पास कोई भी ताप फटकने तक नहीं पाता यहाँ प्राण शीतल करनेवाले उजालेसे सब भरा है। वेणु वीणा, मुरज-मुरलीकी ध्वनिसे यह स्थान नित्य मुखरित है। आकाशसे सतत झरझर सुधाधारा बह रही है यहाँका सब कुछ आनन्दसे निर्मित है। यहाँ आनन्द मूर्तिमान् होकर नृत्य कर रहा है। दौड़ आ, देखते ही बनेगा। कैसे आयेगा ? नाम और मैं पृथक् नहीं हूँ। जिह्वापर, श्वासमें, मनमें, प्राणमें नाम रखकर नाममें डूबा रह; ऐसा करनेसे मेरे वक्षःस्थलपर तेरी सारी ज्वालाएँ दूर हो जायँगी।

बहु-दर्शनसे डर गया है ? भय नहीं है। सभी मैं हूँ। अरे लाल ! अरे प्रियतम ! नाम ले, नाम ले, नाम ले। मत डर, मत डर, मत डर !

(१२)

मत डर

अरे प्रियतम ! आत्मविस्मृत संतान ! अभयदान करना ही तो मेरा व्रत है। कोई भी क्यों न हो; यदि वह शरणागत है तो मैं उसे हृदयमें बैठाकर अपना बना लेता हूँ। तू केवल एक बार—'मैं तेरा हूँ' कहकर जीवन-मरणमें निश्चिन्त हो जा।

जिस दिन गुरु बनकर मैंने नाम दिया है, उस दिन तो मैंने आत्मदान ही कर दिया। मुझे ही तो पाया था, ओ प्रिय ! कण्ठहार कण्ठमें ही है ! बाहर मत दौड़; तेरा हृदय-कमल ही मेरा सुकोमल आसन है। मैं वहाँ बैठकर नित्यप्रति पुकार रहा हूँ—आ, लौट आ; अपने घर लौट आ। सुन, प्रियतम ! नाम ही भक्ति है, नाम ही भाव है, नाम ही प्रेम है; मैं ही नाम हूँ, नाम ही मैं हूँ; नाम-रूपमें तूने मुझे ही पाया है। अब डर काहेका। नाम ही ध्येय है; नाम ही ध्यान है; नाम ही साध्य है, नाम ही साधन है; नाम ही उपाय है, नाम ही प्राप्य है; नाम ही प्रापक है, नाम ही पूज्य है, नाम ही पूजा है और नाम ही उपचार है। अरे देख, पुलक-माला-भूषित विगलित-प्राण भक्तके नेत्रोंका जल मुझे बहुत प्रिय है। तू नेत्रोंके जलसे नाम-उपचारसे पूजा करता और नाम लेता रह। नाम लेता रह। मत डर, मत डर, मत डर !

(शेष अगले अङ्कमें)

र प्रणिधान'[1] है, जिसका अर्थ वृत्तिकार भोजके अनुसार ेग है, जिसमें विषय-सुखकी प्राप्ति-जैसे किसी फलकी ना नहीं है और गुरुओंके भी गुरु (भगवान्) के प्रति कार्योंका समर्पण है'। प्रेमकी यह एक ऐसी गम्भीर भूति है, जो सम्पूर्ण कामनाओंका अभाव करके हृदयको प्रेमसे भर देती है। यह विशुद्ध प्रेम न तो गुण देखकर । है न कामनासे होता है; यह प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, ी इसका तार नहीं टूटता; यह सूक्ष्मतर और अनुभवरूप ा है[2]। विशुद्ध भक्ति-पथके समर्थक पारलौकिक णको उतना महत्त्व नहीं देते, जितना भगवान्के ायी संकल्पके सर्वथा अनुकूल बननेको। भगवान्की शक्ति र कल्याणरूपतामय लीलाओंका चिन्तन करनेसे, प्रेमपूर्ण त्यसे उनका निरन्तर स्मरण करनेसे, परस्परमें उनके ोंका कथोपकथन करनेसे, सहचरोंसहित उनकी स्तुतिका न करनेसे और सभी कार्य उनकी सेवाके भावसे करनेसे ुष्यकी आत्मा भगवान्के समीप पहुँचती जाती है[3]। क अपने सम्पूर्ण अस्तित्वको भगवान्की ओर मोड़ देता । भजन ही धर्मका सार है। भक्तिमें आराधक और राध्यका द्वैत बना रहता है। भगवान् सबमें अनुस्यूत हैं,

> न धनं न जनं न सुन्दरीं
> कवितां वा जगदीश कामये ।
> मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
> भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥
> (शिक्षाष्टक ४)

इस सिद्धान्तकी व्याख्या यदि इस रूपमें की जाय कि जिससे मानवके जीव-भावका और भगवान्की सर्वातीतताका हनन हो तो उसमें श्रद्धा और भक्तिके लिये कोई स्थान नहीं रह जाता। स्रष्टा और सृष्टका भेद ही भक्ति-पथका दार्शनिक आधार है। श्रीमद्भगवद्गीतामें अक्षर सत्ताको, उस भगवान्के—जो दार्शनिक विवेचनका विषय है—रूपमें उतना नहीं निरूपित किया गया है, जितना कि कृपामय भगवान्के रूपमें, जिसकी आवश्यकता मानव-मनको है, जिसे मानव खोजता है और जो भक्तमें विश्वास, प्रेम, श्रद्धा और निष्ठापूर्ण आत्म-समर्पणकी प्रेरणा देता है। ज्ञानके उदयसे पूर्व द्वैत-भावना मोह उत्पन्न करती है; किंतु बोधकी प्राप्ति होनेपर द्वैत (ज्ञानोत्तर प्रेम) अद्वैतकी अपेक्षा भी अधिक सुन्दर लगता है और उपासनाके लिये ही इस द्वैतकी भावना की जाती है[4]। पुनः अद्वैत ही यथार्थ तत्त्व है; किंतु द्वैतकी सत्ता प्रेमोपासनाके लिये है और इस दृष्टिसे मुक्तिकी अपेक्षा भक्ति सौगुनी श्रेष्ठ है[5]। गीतोक्त भक्ति वह बुद्धिगत प्रेम नहीं है, जिसमें विचार, चिन्तन और मननकी प्रधानता है। इसकी ज्ञानसे पुष्टि होती है, पर यह ज्ञान नहीं है। इसका न योगकी प्रक्रियाओंसे सम्बन्ध है और न उस ज्ञानकी लालसा है, जिसमें ईश्वरविषयक तर्क है। शाण्डिल्यके मतानुसार ज्ञानके बिना भी भक्ति आध्यात्मिक शान्ति प्रदान करती है, जैसे गोपियोंको[6]। भक्तोंमें अत्यन्त दैन्यका भाव होता है। आराध्यकी संनिधिमें वह अपनेको नगण्य अनुभव करता है। भगवान्को दैन्य और अहंका पूर्ण दमन प्रिय है[7]।

यह एक सामान्य नियम है कि भक्तिसे सम्बन्धित गुण—जैसे स्नेह, श्रद्धा, करुणा, मृदुता—पुरुषकी अपेक्षा नारीमें अधिक पाये जाते हैं। भक्ति-पथमें दैन्य, अनुगतता, सेवा-प्रवणता, दयालुता एवं प्रणयका महत्त्व है और भक्त आत्म-समर्पण, अपने संकल्पके त्याग एवं उपरामताकी चाहना करता है; इसलिये भक्तिको नारीके रूपमें चित्रित किया गया

---

१. देखिये पातञ्जलयोगदर्शन १ । २३ । महावस्तुकी बुद्धानुस्मृतिका भी यही स्वरूप है ।

२. गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् । (नारदभक्तिसूत्र ५४)

३. पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः । कथादिष्विति गर्गः । आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः । (नारदभक्तिसूत्र १६—१८)

श्रीमद्भागवतमें भक्तिके नौ स्तरोंका वर्णन आया है—

> श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
> अर्चनं वन्दनं दास्य सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

भगवान् कहते हैं—'नारद ! न मैं वैकुण्ठमें वास करता हूँ और न योगियोंके हृदयमें । मैं वहीं वास करता हूँ, जहाँ मेरे भक्त मेरे गुणोंका गान करते हैं ।'

> नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
> मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

४. द्वैतं मोहाय बोधात्प्राग्जाते बोधे मनीषया ।
भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम् ॥

५. पारमार्थिकमद्वैतं द्वैतं भजनहेतवे ।
तादृशी यदि भक्तिः स्यात् सा तु मुक्तिशताधिका ॥

६. अत एव तदभावाद् बल्लवीनाम् । (शाण्डिल्य०)

७. ईश्वरस्याभिमानद्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च ।
(नारदभक्तिसूत्र २७)

है। नारियाँ चाहती हैं, कष्ट सहती हैं, आशा लगाती हैं और प्राप्त करती हैं। वे दया, सहानुभूति एवं शान्तिकी कामना करती हैं। नारीस्वभाव सभी जीवोंमें होता है। श्रीमद्भागवतमें आया है कि श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये गोपियोंने महाशक्ति कात्यायनीकी उपासना की[1]। जब नारियाँ अपने वास्तविक स्वरूपमें स्थित होती हैं, तब वे सब कुछ दे देती हैं, सर्वस्व समर्पण कर देती हैं। वे कोई दावा नहीं करतीं। वे प्यार करना और पाना चाहती हैं। इसीसे प्रेमियोंका आदर्श श्रीराधा हैं। जहाँतक उनका भगवान्‌के साथ सम्बन्ध है, भक्त अधिक अंशमें प्रेयसीके समान होते हैं। परमेश्वर ही एकमात्र पुरुष है; ब्रह्मासे लेकर इतर सभी नारी हैं, जो परम पुरुषसे एकात्मता चाहती हैं[2]।

जब हम (जीवात्मा) भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर देते हैं, तब वह हमारे ज्ञानको और हमारे प्रमादको अपनेमें ले लेता है, हमारी सभी प्रकारकी न्यूनताओंको दूर कर देता है और उन सबको अपनी अनन्त ज्योति एवं विश्व-कल्याणके पावित्र्यमें परिणत कर देता है। भक्ति केवल 'एकका एकके प्रति अभिसार' या जीवात्माकी जगत्‌से विरक्ति और भगवान्‌के प्रति आसक्तिमात्र नहीं है, अपितु उन भगवान्‌के प्रति सक्रिय प्रेम है, जो जगत्‌का उद्धार करनेके लिये उसमें अवतीर्ण होते हैं।

'भगवत्कृपाकी प्राप्ति अपने प्रयत्नसे सम्भव नहीं है'— यह धारणा प्रगाढ़ भक्ति उत्पन्न करती है। भक्तिमें जहाँ केवल विश्वास और प्रेमकी आवश्यकता होती है, वहाँ प्रपत्तिमें हम केवल भगवान्‌के प्रति समर्पित हो जाते हैं, अपने आपको उसके हाथोंमें बिना शर्त सौंप देते हैं और उसे अधिकार दे देते हैं कि वह इच्छानुसार हमारा उपयोग करे। इसमें इसी बातका महत्त्व है कि हमारे समर्पणमें निश्छल और पूर्ण पवित्रता हो और वह विनम्र तथा सरल विश्वाससे उत्प्रेरित हो। इसमें भक्ति-साधनोंकी तीव्रताकी अपेक्षा समर्पणकी पूर्णताको यथार्थ धर्म-निष्ठाका स्वरूप माना गया है; जब हम अपने अन्तरको शून्य कर देते हैं, तब भगवान् उसपर अपना अधिकार जमा लेते हैं। हमारे गुण, अभिमान, ज्ञान, हमारी सूक्ष्म कामनाएँ, हमारी अन्तर्निहित मान्यताएँ और बुरी धारणाएँ ही भगवान्‌के द्वारा हमपर अधिकार जमानेमें बाधा उपस्थित करती हैं। हमें अपनेको सभी कामना-विहीन बनाकर पूर्ण विश्वासके साथ भगवान्‌पर निर्भर हो जाना चाहिये। भगवान्‌के हाथोंमें हमें अपने सम्पूर्ण अधिकारोंको समर्पित कर देना चाहिये[3]। भक्ति और प्रपत्तिके अन्तरको 'मर्कट-किशोर-न्याय' और 'मार्जार-किशोर-न्याय'से अभिव्यक्त किया गया है। बंदरका बच्चा अपनी माँको स्वयं जोरसे पकड़े रहता है और उसकी रक्षा हो जाती है। पर बंदरका बच्चा उछलकर माँको पकड़ता है, इस प्रकार बंदरके बच्चेके लिये किंचित् प्रयास अपेक्षित है। बिल्ली अपने बच्चेको स्वयं उठाकर मुँहमें रख लेती है। अपनी रक्षाके लिये बिल्लीके बच्चेको कुछ नहीं करना पड़ता। भक्तिमें भगवत्कृपाका कुछ सीमा तक अधिकार प्राप्त किया जाता है और प्रपत्तिमें भगवत्कृपाका उन्मुक्त प्रदान होता है। प्रपत्तिमें प्रपन्नकी योग्यता या कृत सेवाओंपर ध्यान नहीं दिया जाता।[4] इस विचारका समर्थन पूर्व ग्रन्थोंमें भी मिलता है। 'जिसपर परमात्मा कृपा करते हैं, उसीको परमात्माकी प्राप्ति होती है, उसीके समक्ष वे अपने

---

१. कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः॥
(श्रीमद्भागवत १० । २२ । ४)

२. स एव वासुदेवोऽसौ साक्षात् पुरुष उच्यते।
स्त्रीप्रायमितरत् सर्वं जगद् ब्रह्मपुरस्सरम्॥

३. सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(श्रीगीता १८ । ६६)

४. प्रपत्तिमें ये छः भाव सहायक हैं—

१ अनुकूल बननेका संकल्प	(आनुकूल्यस्य संकल्पः)
२ प्रतिकूलताका अभाव	(प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्)
३ प्रभुसे रक्षा-प्राप्तिमें विश्वास	(रक्षिष्यतीति विश्वासः)
४ रक्षकके रूपमें उनका वरण करना	(गोप्तृत्ववरणम्)
५ अत्यन्त दैन्यकी भावना	(कार्पण्यम्)
६ पूर्ण आत्मसमर्पण	(आत्मनिक्षेपः)

अन्तिम सहायक तत्त्व (पूर्ण आत्मसमर्पण)को परम्पराक्रमसे प्रपत्तिका पर्याय ही माना जाता है, जो साध्य अर्थात् अङ्गी है और शेष पाँच तत्त्व साधक अर्थात् अङ्ग हैं।

'षड्विधा शरणागतिः' इस वाक्यसे तुलना कीजिये, जिसकी व्याख्या अष्टाङ्गयोगकी तरह की जाती है (जिसमें समाधिरूप आठवाँ अङ्ग वस्तुतः साध्य होता है और अन्य सातों अङ्ग उसके सहायक माने जाते हैं)।

स्वरूपको अभिव्यक्त करते हैं।'[1] अर्जुनसे यह कहा गया है कि उसे 'विश्वरूपका दर्शन प्रभु-कृपासे ही हुआ।'[2] पुनः यह भी कहा गया है कि 'मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और उनका लोप होता है।'[3] यहाँतक कि श्रीशंकराचार्य भी स्वीकार करते हैं कि केवल भगवान्के अनुग्रहसे ही हमें मोक्षकी प्राप्ति होती है।[4]

× × × ×

भगवान्के प्रति पूर्ण समर्पणके लिये मानवीय पुरुषार्थकी भी आवश्यकता होती है। इच्छाके बिना या प्रयासके बिना यह सम्भव नहीं है। भगवत्कृपाके सिद्धान्तको इस रूपमें नहीं समझना चाहिये कि किसी विशिष्टपर ही कृपा होती है। यह इसलिये कि ऐसा अर्थ गीताके मुख्य प्रतिपाद्य विचार-धारा—'ईश्वर सभी जीवोंके लिये सम है'—के प्रतिकूल पड़ता है।[5]

श्रद्धा भक्तिका आधार है। इसलिये देवताओंका, जिनमें लोगोंकी श्रद्धा है, अस्तित्व स्वीकार किया जाता है। स्नेह न करनेकी अपेक्षा कुछ स्नेह करना श्रेष्ठतर है; क्योंकि स्नेह न करनेसे हम स्वयंमें स्वयंको केन्द्रित कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य छोटे देवी-देवता उस एक सर्वोपरि सत्ताके ही रूप माने जाते हैं।[6] इस तथ्यको जोर देकर कहा गया है कि अन्य भक्त अपने-अपने गन्तव्यको प्राप्त करते हैं; किंतु जो सर्वोपरि भगवान्का भक्त है, वही असीम आनन्दको प्राप्त करता है।[7] जबतक उपासना श्रद्धापूर्वक की जाती है, यह अन्तःकरणको पवित्र बनाती है और उच्चतर चेतनाके लिये मनको तैयार करती है। हर एक अपने अभिलाषाके अनुरूप ही भगवान्के रूपका आकलन करता है। मरणोन्मुखके लिये वह अनन्त जीवन है, अन्धकारमें भटकनेवालेके लिये वह प्रकाश है।[8] हम चाहे जितने ही ऊँचे चढ़ जायँ, जिस प्रकार क्षितिज हमारी आँखोंकी सीधमें ही रहता है, उसी प्रकार भगवान्के स्वरूपका आकलन हमारी चेतनाके स्तरसे ऊँचा हो ही नहीं सकता। भक्तिके निम्नस्तरोंपर हम धन और जीवनके लिये प्रार्थना करते हैं और भगवान्को हम भौतिक आवश्यकताओंको पूर्ण करनेवाला मानते हैं। आगे चलकर ध्यानमें श्रेष्ठ उद्देश्योंसे, जो भगवदीय उद्देश्य हैं, हम एकात्मता स्थापित करते हैं। सर्वोच्च स्तरोंपर पहुँचनेपर केवल भगवान्से ही चरम तृप्ति होती है और वही मानव-आत्माको पूर्णस्थितिपर पहुँचाता है और उसे कृतार्थ करता है। भक्तिकी परिभाषा बताते हुए मधुसूदन सरस्वतीने लिखा है कि 'यह एक ऐसी मानसिक स्थिति है, जिसमें चित्त प्रेमोन्मत्ततासे द्रवीभूत होकर भगवदाकार बन जाता है।[9] भगवान्के प्रति यह रागात्मिका आसक्ति जब अत्युन्मादमें परिणत हो जाती है, तब वह सच्चा प्रेमी अपनेको भगवान्में विलीन कर देता है।'[10] प्रह्लाद, जिन्हें हम भगवान्के प्रति पूर्ण एकाग्रताकी आध्यात्मिक स्थितिमें पाते हैं, भगवान्के साथ एकात्मताको प्रकट करते हैं। इस प्रकारकी आत्म-विस्मृतिकारिणी रसात्मक अनुभूतियाँ अद्वैत-सिद्धान्तका समर्थन करनेवाली नहीं मानी जा सकतीं; क्योंकि 'अपरोक्षानुभव' अर्थात् उस चरम स्थितिमें, जहाँ व्यष्टि आत्मा ब्रह्ममें लीन हो जाता है, व्यष्टिकी पृथक् सत्ता नहीं रह जाती है।

---

१. 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूꣳस्वाम्।'
(कठोपनिषद् १।२।२३)

२. मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्॥
(श्रीगीता ११।४७)

३. मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
(श्रीगीता १५।१५)

४. तदनुग्रहहेतुकेनैव च विज्ञानेन मोक्षसिद्धिर्भवितुमर्हति।
अवधूतगीताका प्रथम श्लोक इस प्रकार है—
ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैतवासना।
महद्भयपरित्राणाद्विप्राणामुपजायते॥
'केवल ईश्वरके अनुग्रहसे ही विप्रोंमें अद्वैतभावना जाग्रत् होती है, जो महान् भयसे त्राण दिलानेवाली है।'

५. श्रीगीता ९।२९; योगवाशिष्ठ २।६।२७

६. येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥
(गीता ९।२३)

७. श्रीगीता ७।२१ पर श्रीमध्वाचार्यकी टीका है—
अन्तो ब्रह्मादिभक्तानां मद्भक्तानामनन्तता।

८. रुजासु नाथः परमं हि भेषजं
तमःप्रदीपो विषमेषु संक्रमः।
भयेषु रक्षा व्यसनेषु बान्धवो
भवत्यगाधे विषयाम्भसि प्लवः॥

९. द्रवीभावपूर्विका हि मनसो भगवदाकारता सविकल्पकवृत्तिरूपा भक्तिः।

१०. वृष्णि नामके यादव श्रीकृष्णके चिन्तनमें डूब गये और अपनी पृथक् सत्ताको सर्वथा भूल गये। (भक्तिरत्नावली

भक्ति ज्ञानका सोपान है। आचार्य रामानुजकी दृष्टिमें वह स्मृति-संतानरूपा है। जब भक्तिकी ज्वाला जगती है, अन्तर्यामी भगवान् भक्तके अंदर अपनी कृपासे ज्ञानका दीपक जला देते हैं। भक्त परमेश्वरके साथ घनिष्ठ एकात्म-योगका अनुभव करता है और भगवान्‌की अनुभूति उसे ऐसी सत्ताके रूपमें होती है, जिसमें सारे विरोधोंका अभाव हो जाता है। वह भगवान्‌को अपने अंदर और अपनेको भगवान्‌के अंदर देखता है। प्रह्लादकी उक्ति है कि 'मनुष्यका सर्वोच्च ध्येय भगवान्‌की ऐकान्तिक भक्ति और उनकी सर्वव्यापकताकी अनुभूति ही है।'[1] भगवान्‌से प्रेम करनेवाली उस प्रेयसीके लिये इसमें कोई अन्तर नहीं आता कि वह स्नेहके आवेगमें प्रमादवश भगवान्‌के ऊपर विहार करे अथवा वह स्नेहपूर्वक उनके चरणोंका चुम्बन करे। इसी प्रकार ज्ञानीके लिये एक ही बात है कि वह चेतनाकी सीमाके ऊपर उठकर रसमें डूब जाय या भगवान्‌का प्रेमपूर्वक भजन करे।[2] भक्तके लिये भगवच्चरणारविन्दोंमें लीनता ही मुक्ति है।[3]

नाममें महान् शक्ति

(लेखक—सम्मान्य श्रीलालबहादुरजी शास्त्री, प्रधान मन्त्री)

यद्यपि विज्ञानकी उन्नतिके कारण मनुष्यजातिको आज ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, जैसी पहले कभी नहीं थीं, फिर भी संसारमें अशान्ति फैली हुई है। इसका कारण है—मनुष्यका भौतिकताकी तरफ बढ़ता हुआ झुकाव। मानवकी अशान्तिको दूर करनेके लिये यह आवश्यक है कि नैतिक और आध्यात्मिक गुणोंका विकास किया जाय, क्योंकि मनुष्यजातिकी सच्ची उन्नति भौतिकता और आध्यात्मिकताके उचित समन्वयसे ही सम्भव है। उसका सहारा नाम और जपमें है। उसमें महान् शक्ति है, परंतु वह हृदयसे हो।

श्रीरघुवीरसे प्रार्थना

(लेखिका—श्रीमती ललितादेवीजी—धर्मपत्नी श्रीलालबहादुरजी शास्त्री)

बिना हरि कौन हरे मोरी पीर ?
(कौन) हरे मोरी पीर, जियरा कौन धराये धीर। बिना हरि०
रोग-कष्ट सब दूर करो हरि, बिनती यह रघुवीर ! बिना हरि०
जो कुछ है, सब देन तुम्हारी; रक्षा करो रघुवीर !
बीच भवँर में नैया डगमग, पार करो रघुवीर ! बिना हरि०
घरमें ढूँढ़े वन में ढूँढ़े, मिले न कहुँ रघुवीर,
किससे कहूँ हरि पीर हृदयकी दर्शन देहु रघुवीर !
रहे न भक्ति अधूरी मोरी, लागत डर रघुवीर !
ललिताको प्रभु आस तुम्हारी, सुनि लो हे रघुवीर !

१. एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत्सर्वत्र तदीक्षणम्। (श्रीमद्भागवत ७।७।५५)

२. प्रियतमहृदये वा खेलतु प्रेमरीत्या पदयुगपरिचर्यां प्रेयसी वा विधत्ताम्।
विहरतु विदितार्थो निर्विकल्पे समाधौ ननु भजनविधौ वा तुल्यमेतद् द्वयं स्यात्॥

३. लीनता हरिपादाब्जे मुक्तिरित्यभिधीयते।

वैदिक भगवन्नाम और उसका जप

(लेखक—सम्मान्य डा० श्रीसम्पूर्णानन्दजी, राज्यपाल, राजस्थान)

वेदोंमें 'भगवन्नाम' की खोज करनेके पहले ही यह समझ लेना चाहिये कि वैदिक वाङ्मयमें 'भगवन्नाम' शब्द नहीं मिल सकता। यह तो पौराणिक कालकी देन है। मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैंने इस जगह 'वैदिक वाङ्मय' पदका व्यवहार किस अर्थमें किया है। 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'—इस परिभाषाके अनुसार मन्त्र और ब्राह्मण दोनोंका नाम वेद है। प्रायशः दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रसङ्गमें 'ब्राह्मण' शब्दसे उपनिषदोंकी ओर संकेत माना जाता है; परंतु मैं इस लेखके संदर्भमें रामतापनी, गोपालतापनी, नृसिंहतापनी, अथर्वशीर्ष, गणेशतापनी आदिको छोड़ रहा हूँ, जो प्रत्यक्ष ही किसी सम्प्रदाय-विशेषकी उपासनाओं और मान्यताओंका पोषण करती हैं। इनमें तो भगवान् और भगवती-जैसे शब्द मिल ही सकते हैं। विशेष खोजका काम ही नहीं है।

जिसको मैंने वैदिक वाङ्मय कहा है, उसमें 'भगवन्-नाम' जैसा पद हो या न हो, परंतु भगवान्‌का चर्चा तो है ही, यद्यपि 'ईश्वर' शब्दका भी व्यवहार कम ही हुआ है और वह भी स्पष्टतया रुद्रके लिये। वेद ईश्वरका निःश्वसन माना जाता है। समूचे वेदमें प्रत्यक्ष और परोक्षरूपसे उसका ही चर्चा है। उसकी अनेकरूपता और सर्वव्यापकता पदे-पदे इङ्गित की गयी है। पुरुषसूक्तमें स्पष्ट कहा गया है—

'पुरुष एवेदं सर्वम्'

(ऋग्वेद १० । ९० । २, अथर्ववेद १९ । ६ । ४)

'यह सब पुरुष ही है।'

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजायमानो बहुधा विजायते।

(अथर्व० १० । ८ । १३)

—इन शब्दोंके द्वारा यह स्पष्ट कहा गया है कि पुरुष अज है, वह शरीरधारी नहीं है, फिर भी अनेक रूपोंमें जन्म लेता हुआ-सा, शरीर धारण करता हुआ सा प्रतीत होता है। यजुर्वेदके रुद्राध्यायमें ईश्वरके अनेक रूपोंका वर्णन है। ऋग्वेदके नासदीय सूक्तमें 'अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्'—परम व्योममें रहनेवाला इस जगत्‌का अध्यक्ष—कहकर उसे संसूचित किया गया है और इसी सूक्तमें यह वाक्य भी आता है—

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यत् न परः किंचनास।

—'वह अपनी स्वधा नामकी पराशक्तिके साथ अकेला साँस ले रहा था, उससे परे कुछ नहीं था।' अधिक उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं।

जिस ईश्वरका वेदमें इतना चर्चा है, उसके नाम या नामोंके सम्बन्धमें भी कुछ-न-कुछ कहा जाना स्वाभाविक है। इस सम्बन्धमें वेदने एक वाक्यमें सब कुछ कह दिया है—

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।

(ऋग्वेद १ । १६४ । ४६)

—'वह सत्य पदार्थ एक है, विद्वान् उसको अनेक नामोंसे पुकारते हैं।' इस दृष्टिसे तो वेदमें उसके सैकड़ों नाम आये हैं। विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण, आदित्य, हिरण्य-गर्भ, अग्नि, वायु, उषा, इला—इन सब नामोंका वाच्य वही है। ये सब 'भगवन्नाम' हैं।

परंतु जिन प्रसङ्गोंमें 'भगवन्नाम' शब्दका व्यवहार होता है, उनमें लोग ऐसे नामोंका चर्चा करते हैं, जिनका किसी-न-किसी रूपमें जप किया जाता हो। अकेले या कुछ और शब्दोंको मिलाकर लोग राम, कृष्ण, नारायण, शिव, चामुण्डा-जैसे नामोंका जप करते हैं। जिन वैदिक नामोंका मैंने ऊपर चर्चा किया है, वे इस कोटिके नाम नहीं हैं। इनमेंसे किसीके जपका विधान वेदमें नहीं मिलता। तब फिर हमको यह देखना है कि वेदमें किन्हीं जप करनेके योग्य नामोंका चर्चा है या नहीं।

नाम दो प्रकारके होते हैं—वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक। जो नाम वर्णमालाके अक्षरोंको मिलाकर बनते हैं, उनको वर्णात्मक कहते हैं—जैसे राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा—ये सब इसी जातिके नाम हैं। जैसा कि मैंने अभी ऊपर लिखा है, वेदमें ऐसे किन्हीं नामोंके जपका विधान नहीं मिलता। ध्वन्यात्मक नाम वे हैं, जिनका अनुभव योगीको ही होता है। जब योगीका प्राण सुषुम्णामें प्रवेश करके मूलाधारके ऊपर उठता है, तब उसको अन्य अनुभूतियोंके साथ दिव्य नादकी भी अनुभूति होती है। उसके मार्गमें जो मुख्य स्थान आते हैं—ऐसे स्थान, जिनको एक प्रकारसे प्राणकी यात्राके स्टेशन कह सकते हैं, उनकी 'चक्र [illegible] है।

प्रत्येक चक्रमें नादका एक विशेष रूप होता है। हिंदीका प्रयोग करनेवाले सिद्ध और संत मतके आचार्योंने इन नादोंको सामूहिकरूपसे 'अनहद' कहकर पुकारा है, जो संस्कृतके 'अनाहत' का तद्भव रूप है। सहस्रारमें पहुँचकर नादके सूक्ष्मतम रूपका अनुभव होता है, जिसको 'प्रणव' नाम दिया गया है। यही वह स्थल है, जहाँतक सम्प्रज्ञात समाधिकी 'अस्मिता' भूमिका रहती है। अस्मिताके होनेसे ही योगी ईश्वरका साक्षात्कार कर सकता है। इसके ऊपर उठनेसे अर्थात् अस्मिताका भी लय होनेपर और असम्प्रज्ञात समाधिके उदय होनेपर जीव और ईश्वरका झीना भेद भी दूर हो जाता है। जिस भूमिकामें ईश्वरका साक्षात्कार होता है; उससे सम्बद्ध होनेके कारण प्रणव 'ईश्वरका वाचक' माना जाता है। इसी बातको पतञ्जलिने कहा है—'**तस्य वाचकः प्रणवः।**' तब फिर यह कहना चाहिये कि प्रणव ही सच्चे अर्थोंमें 'भगवन्नाम' है।

यह ध्यानमें रखना चाहिये कि नीचेके स्थानोंपर भी नादके जिन रूपोंका अनुभव होता है, वे वस्तुतः शब्दोंमें व्यक्त नहीं किये जा सकते। इतना ही नहीं कि वे सूक्ष्म हैं, वरं सचमुच वाणीमें उनको व्यक्त करनेकी क्षमता नहीं है। महिम्नस्तोत्रमें पुष्पदन्तने महेश्वरके धामके सम्बन्धमें कहा है—

ध्वनिभिरनुरुध्यानमणुभिः।

'सूक्ष्म ध्वनियोंसे अनुरुद्ध।'

बहुधा प्रणवका पर्याय ॐकार माना जाता है और ॐकार अ, उ और म—इन तीन अक्षरोंके मेलसे बना समझा जाता है। इन अक्षरोंके ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र, ब्राह्मी-वैष्णवी-रौद्री आदि अनेक अर्थ किये जाते हैं। प्रणव ईश्वरका प्रतीक है—इसलिये वह ब्रह्मादि देवों और ब्राह्म आदि शक्तियोंका प्रतीक है, यह ठीक है। परंतु मुख्य बात जो ध्यान देनेकी है, वह यह है कि वह ध्वन्यात्मक है, वर्णात्मक नहीं तथा अनुच्चार्य है। ओ३म् उस परम नादकी एक बहुत ही झीनी और अपूर्ण छायामात्र है। उस नादका अनुभव हो सकता है, वर्णन नहीं। वह शब्दोंके द्वारा दूसरे किसीतक नहीं पहुँचाया जा सकता। जैसा कि सप्तशतीके प्रथम अध्यायमें ही महाकालीकी स्तुति करते हुए ब्रह्माने कहा है—आप त्रिधामात्रास्थिता नित्या और यानुच्चार्या विशेषतः हैं—आप तीन मात्राओंमें स्थित हैं ही, परंतु विशेष-रूपसे वह मात्रा हैं, जो अनुच्चार्य है। यही वास्तविक 'भगवन्नाम' है और यह किन्हीं भी शब्दोंके द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, वर्णोंमें किसी भी प्रकार लाया नहीं जा सकता। इसीलिये वेदने इसका खुलकर चर्चा नहीं किया, चर्चा करनेका प्रयत्न भी नहीं किया।

इस भगवन्नामके जपसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं—इस बातका चर्चा वेदने स्पष्ट शब्दोंमें किया है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपाᳬसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदᳬ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

(कठोपनिषद् १।२।१५)

'सब वेद जिस पदका मनन करते हैं, सब तपस्वी जिसका चर्चा करते हैं, जिसकी ही इच्छासे ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस पदको तुमसे संक्षेपमें कहता हूँ—वह 'ॐकार' है।' छान्दोग्योपनिषद्में भी स्पष्ट कहा गया है कि देवोंको अन्तिम त्राण प्रणवमें ही मिला। इस ॐकारके जपका विधान भी है, जिसको पतञ्जलिने '**तज्जपस्तदर्थभावनम्**' सूत्रमें संक्षेपमें कहा है। उसको उपनिषदोंमें स्पष्टरूपसे बताया गया है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

(मुण्डकोपनिषद्)

प्रणवको धनु और आत्माको तीर बनाकर ब्रह्मरूपी लक्ष्यको प्रमादरहित होकर वेधना चाहिये। जैसे तीर अपने लक्ष्यके साथ तन्मय हो जाता है, वैसे ही आत्मा ब्रह्मके साथ तन्मय हो जाता है। यही प्रणवके जपकी विधि है।

प्रणव ही सच्चा भगवन्नाम है और इस भगवन्नामके जपनेकी वही विधि है, जो ऊपर बतायी गयी है। और सब नाम गौण हैं और जपकी जितनी विधियाँ हैं, वे भी गौण हैं। यों तो जैसा कि पतञ्जलिने कहा है—'**यथाभिमतध्यानाद्वा**'—जो भी ध्यान अपनेको अच्छा लगे, उसके आश्रयसे चित्त एकाग्र किया जा सकता है। लोक-प्रसिद्ध नामोंका अवलम्बन लेकर भी कुछ-न-कुछ लाभ होगा ही; परंतु इस प्रकारका प्रयत्न वैसा ही होगा, जैसे पक्के और सुनिश्चित राजमार्गको छोड़कर पगडंडीके सहारे गन्तव्य स्थानतक पहुँचनेका प्रयास। कम-से-कम वेद तो इसी भगवन्नामको जानते हैं और उसके जपकी उसी पद्धति-का आदेश करते हैं, जिसको यथार्थ शब्दोंमें 'योग' कहते हैं।

साधारणतः आध्यात्मिक बातोंका यथासम्भव खुलकर उपदेश उपनिषदोंमें मिलता है। परंतु ऐसा नहीं है कि

पण्डितोंने इन बातोंका चर्चा नहीं किया है। बात इतनी ही है कि मन्त्रभागमें जो कुछ कहा गया है, वह रहस्यमयी भाषामें है, जिसका अर्थ ढूँढ़नेके लिये उसी प्रकार परिश्रम करना पड़ता है, जिस प्रकार मोती पानेके लिये 'मरजीवा' को गम्भीर समुद्रमें डुबकी लगानी पड़ती है।

नादके सूक्ष्मरूपकी ओर इस मन्त्रमें स्पष्ट संकेत है—

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि
तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति
तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति॥
(ऋग्वेद १। १६४। ४५)

'वाक्‌के चार पद, स्थान या स्वरूप हैं। उनको जो मनीषी ब्रह्मवेत्ता हैं, वे ही जानते हैं। जो सबसे स्थूल चौथा रूप है, उसको मनुष्यादि प्राणी बोलते हैं। शेष तीन रूप गुफामें छिपे हुए हैं, उनका परिचय साधारणतः नहीं मिलता।' इस सम्बन्धमें यह याद रखना चाहिये कि 'परोक्षप्रिया हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः'—देवगण परोक्षप्रेमी होते हैं, प्रत्यक्षके द्वेषी। वे जो वाक्य भी कहते हैं, उसका अर्थ साधारणतः नहीं लग सकता। श्रीवासुदेवशरण अग्रवालने अपनी पुस्तक 'सहस्राक्षरा वाक्'में श्रीमद्भागवतका यह वाक्य उद्धृत किया है—

शब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था
यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः।
परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान्
मायामये वासनया शयानः॥
(श्रीमद्भागवत २। २। २)

अर्थात् शब्दब्रह्म, वेदकी यह पद्धति है कि जिन शब्दोंमें बात कही जाती है, उनके अभिधार्थ अर्थात् साधारण अर्थसे काम नहीं चलता और चित्त उस जालमें उलझकर भावको नहीं देख पाता।

वाक्‌के सम्बन्धमें ऋग्वेदके दशम मण्डलके ११५ वें सूक्तके ८ वें मन्त्रमें कहा गया है—'यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्।' यहाँ 'ब्रह्म' शब्दके दो अर्थ हो सकते हैं—एक तो माया-शबल ब्रह्म अर्थात् 'परमात्मा' और दूसरा 'वेद'। दोनों तरहसे यही अर्थ निकलता है कि जहाँतक ब्रह्म है, वहाँतक वाक् है। वाच्य और वाचक एक दूसरेसे अभिन्न होते हैं। इसलिये ईश्वरवाचक परा वाक् ईश्वरसे अभिन्न है। दूसरी ओर यह भी अर्थ है कि जहाँ वेद है, वहाँ वाक् है अर्थात् वाक् सारे वेदमें व्याप्त है। सर्वत्र वेदमें वह परा वाक्, वह प्रणव, वह भगवन्नाम व्याप्त है; परंतु उसको ढूँढ़ निकालना होगा। इस सम्बन्धमें एक ही मन्त्र अवतरित करना चाहता हूँ—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥
(ऋग्वेद १। १६४। ३९)

'सारे वेद विश्वके ऊपर उस परम व्योममें स्थित हैं, जिसमें देवगण आश्रय पाते हैं। जो उसको नहीं जानता, वह वेदोंको मुँहसे पढ़कर क्या करेगा? जो लोग उसको जानते हैं, वे लोग अपुनरावृत्तिरूपी अपने स्वरूपमें स्थिति पाते हैं।' यहाँ तो स्पष्टरूपसे उस परा वाक्, परम नादकी चर्चा है। उसके ही जाननेसे सम्यक् रूपसे स्थिति अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं।

आजकल यह धारणा फैली हुई है, या फैलायी गयी है कि हम कलियुगके मनुष्य योगके अधिकारी नहीं हैं और ऐसी कठिन साधनाकी आवश्यकता भी नहीं है। काल-विभागकी दृष्टिसे वर्तमान कालको कलि या और चाहे जो कहा जाय, परंतु मेरी दृष्टिमें यह किसी भी दृष्टिसे निकृष्ट नहीं है। इस कलिमें एक-से-एक महात्मा हुए हैं। योगी याज्ञवल्क्य, शंकर, रामानुज, वल्लभ, मध्व, निम्बार्क, गोरक्ष, भर्तृहरि, ज्ञानेश्वर, रामदास—कहाँतक नाम गिनायें। ये सब इसी युगकी देन हैं। बुद्ध, महावीर, रामकृष्ण, रामतीर्थ, विवेकानन्दने इस युगमें शरीर ग्रहण किया। जो पहलेके लोगोंने किया, वह आजका मनुष्य भी कर सकता है। ऐसा न होता तो पतञ्जलिका 'योगदर्शन' इस युगमें लिखा ही न जाता।

मूल नाद स्फोट है, उसीसे फूटकर जगत् निकला है। 'अ' से लेकर 'ह' तक जितने वर्ण हैं, सबमें ही उसके अपार और असंख्य गुणोंकी थोड़ी-बहुत झलक है। इसीलिये वर्णोंके मेलसे बने हुए राम, कृष्ण, शिव-जैसे नामोंमें भी कल्याणप्रद प्रभाव है। परंतु ये उस दिव्य भगवन्नाम, उस सहस्राक्षरा वाक्‌की तुलनामें नहीं रक्खे जा सकते। वेदोक्त विधिसे उस वेदोक्त भगवन्नामका जप करनेसे ही ऐहिकामुष्मिक सिद्धि होती है और परम श्रेय, मोक्षमें स्थिति होती है।

वर्णाश्रमधर्म-परिपालनके साथ नामस्मरण श्रेयस्कर है

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर श्रीमदभिनवसच्चिदानन्दतीर्थस्वामीजी महाराजका आशीर्वाद)

जगत्‌में आत्मस्वरूपका ज्ञान ही परम लाभ है और प्रत्येकके लिये परम कर्तव्य भी है। श्रुतियाँ भी कहती हैं कि—

'तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ। नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' 'एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किंचित्।' इत्यादि। भगवत्प्राप्तिके लिये निर्दिष्ट उपायोंमें यह ज्ञानमार्ग है।

परंतु आजकल भक्ति, उसमें भी सगुण भक्ति सर्व-साधारणके लिये रुचिकर और सुखकर है। उसमें यह सर्वश्रुत है कि भगवन्नाम-स्मरण तथा प्रार्थना साधनोंमें सरल है और उसमें भी कलियुगमें ये अत्यन्त उपादेय हैं; क्योंकि कलियुगी मानवोंके लिये चित्तचाञ्चल्य तथा बाहरी विषयवासनाओंका आकर्षण इतर युगोंकी अपेक्षा अधिक होनेसे चित्तैकाग्रता तथा मनःसंयम अत्यन्त कठिन है। अतः कठिनतर साधन—ज्ञान, कर्म, विविध राजयोग, हठयोग, कुण्डलिनीयोग, आदि-आदि दुस्साध्य हैं। अतः 'कलौ भक्तिः कलौ भक्तिः', 'भक्त्या कृष्णः पुरस्स्थितः', 'नामस्मरणादन्योपायं नहि पश्यामो भवतरणाय।' इत्यादि प्राचीन वचनोंके अनुसार नामस्मरण और प्रार्थना श्रेष्ठ है, अतः इसका सर्वत्र आदर है।

परंतु 'सन्निन्दासति नामवैभवकथा' आदि दसविध नामापराधोंसे दूर रहना चाहिये। विशिष्य वर्णाश्रमधर्म-कर्मोंका पालन करते हुए नामस्मरणादि करना चाहिये; क्योंकि आजकल नामस्मरणादि करते हुए नित्यनैमित्तिकादि वर्णाश्रम-विहित धर्मकी उपेक्षा भी देखी जाती है। इतना ही नहीं, ऐसा माननेवालोंका तथा प्रचार करनेवालोंका एक वर्ग भी बन गया है।

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्तामुल्लङ्घ्य वर्तते।
आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥

—इत्यादि वचनानुसार अपने-अपने वर्णाश्रमके आचार-विचारका पालन करते हुए नामस्मरणादि साधन करके मनुष्यजन्मको सफल बनाने तथा श्रेयःप्राप्ति करनेका सबको आदेश है।

इस वर्ष 'कल्याण'का 'भगवन्नाम-महिमा तथा प्रार्थना-अङ्क' प्रकाशित हो रहा है। यह प्रसन्नताकी बात है। भगवान् सबको सर्वविध कल्याण—मङ्गल प्रदान करें, यही शुभ कामना है।

भगवन्नाम ही परम आलम्बन

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वर स्वामीजी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी महाराजका आशीर्वाद)

प्रभुके मङ्गलमय श्रीनामका आधार प्राणिमात्रके लिये सर्वावस्थामें कल्याणकारक है, ऐसा श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराणादिका एक स्वरसे कथन है।

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

—इत्यादि वाक्य स्पष्ट उद्घोषित करते हैं कि श्रीभगवान्‌के नाममें जितने पापोंको नाश करनेकी शक्ति है, उतने पाप पापी प्राणी कर सकता ही नहीं। इतना ही नहीं, ब्रह्माण्डपुराण, उत्तरखण्ड, हयग्रीवागस्त्य-संवादके तृतीयाध्याय-के १६वें श्लोक—

अत्रैकनाम्नो या शक्तिः पातकानां निवर्तने।
तन्निवर्त्यमघं कर्तुं नालं लोकाश्चतुर्दश॥

—में तो यहाँतक कहा है कि परात्पर पूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीभगवान् अथवा 'त्वं कुमार उत वा कुमारी' इत्यादि वचनोंसे तदभिन्न भगवती पराम्बाके परम पुण्य-जनक केवल एक ही श्रीनाममें जितने पापोंका विनाश करनेकी शक्ति संनिहित है, उतने पाप चतुर्दश भुवनोंके अन्तर्गत निवास करनेवाले समस्त प्राणी मिलकर भी नहीं कर सकते।

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई॥

—इत्यादि संतशिरोमणि श्रीतुलसीदासजीके वचनोंका भी यही तात्पर्य है।

इसपर आजकलके लौकिक सर्वसाधारणजन और कुछ शास्त्रीय विचारधाराका आश्रय लेनेवाले विद्वान् भी कह सकते हैं कि ये सब तो केवल प्ररोचक वचन अथवा अर्थवाद हैं और अर्थवादोंका स्वार्थमें तात्पर्य होता नहीं। अतः इनसे भगवन्नामद्वारा पापनाशके सिद्धान्तमें प्रामाण्यकी उपपत्ति नहीं हो सकती। किंतु सोचना यह भी चाहिये कि प्ररोचक वाक्यका प्रयोग विधिमें प्रवृत्तिके लिये ही होता है। अन्यथा तादृश वाक्यका उच्चारण ही

स्वार्थ हो जाता है। अतः प्ररोचक होते हुए भी ये वाक्य भगवन्नामोच्चारणमें प्राणीकी प्रवृत्तिके प्रयोजक हैं ही। शास्त्रीय दृष्टिसे अर्थवाद भी तीन प्रकारके होते हैं—'गुणवाद', 'अनुवाद' और 'भूतार्थवाद'। जिन वाक्योंका प्रमाणान्तरोंसे विरोध होता है, वे वाक्य 'गुणवाद' कहे जाते हैं। जैसे—'यजमानः प्रस्तरः' 'आदित्यो यूपः' इत्यादि वाक्य प्रत्यक्ष प्रमाणसे विरुद्ध हैं; अतः इन वाक्योंका स्वार्थमें तात्पर्य न मानकर यहाँ गौणी कल्पना कर केवल प्रशंसामें तात्पर्य माना जायगा। जैसे—'मुखं चन्द्रः' 'सिंहो माणवकः', इत्यादि लौकिक वाक्योंके द्वारा प्रतिपादित मुखका चन्द्रमासे अभेद और बालकका सिंहसे अभेद प्रत्यक्ष प्रमाणसे विरुद्ध है; क्योंकि सिंह-शब्द-प्रतिपाद्य शौर्य-क्रौर्यादि गुणावली-मण्डित चतुष्पदादि आकृतिविशिष्ट प्राणी भिन्न है और माणवक-शब्दप्रतिपाद्य साधारण शूरता-क्रूरतादि गुणवाला दो पैरवाला बालक उससे सर्वथा भिन्न वस्तु है। ये दोनों कभी एक नहीं हो सकते। पर लोकमें इनके अभेदप्रतिपादक वाक्य प्रयुक्त होते हैं। अतः यही मानना पड़ेगा कि गौणी कल्पना कर यहाँ सिंहके समान शूरता और क्रूरता होनेके कारण बालकको सिंह-जैसा बतानेमें वक्ताका तात्पर्य है, न कि सिंहके साथ बालकका अभेद बतानेमें। ठीक इसी तरह प्रत्यक्षप्रमाणविरुद्ध 'आदित्यो यूपः' 'यजमानः प्रस्तरः' इत्यादि शास्त्रीय वाक्योंका भी यूप और आदित्य तथा प्रस्तर और यजमानके अभेदमें तात्पर्य न होकर गौणी कल्पना-द्वारा तद्गुण-सदृश गुणवत्ताके प्रतिपादनमें ही तात्पर्य है। अतः इन वाक्योंका स्वार्थमें तात्पर्य नहीं, यह मानना समुचित है। इसी प्रकार 'अग्निर्हिमस्य भेषजम्' इत्यादि अनुवाद-वाक्योंका भी स्वार्थमें तात्पर्य नहीं; क्योंकि वे किसी स्वतन्त्र अज्ञात अर्थका ज्ञान न कराकर प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे सिद्ध अर्थ (अग्नि शीतका निवारक है)का ही प्रतिपादन करते हैं; किंतु जिन अर्थवादवाक्योंका दूसरे प्रमाणोंसे न विरोध है और न जो दूसरे प्रमाणोंद्वारा प्रतिपादित अर्थका ही प्रतिपादन करते हैं, उन अर्थवादवाक्योंका भी स्वार्थमें प्रामाण्य होता है। जैसे 'राजाकी सवारी निकल रही है।'—यह वाक्य जिसने राजाकी सवारी नहीं देखी, उसके लिये प्रमाण है; क्योंकि इस वाक्यका दूसरे किसी प्रमाणसे विरोध नहीं और श्रोताको यह बात दूसरे किसी प्रमाणसे ज्ञात भी नहीं। ऐसे लौकिक अर्थवादवाक्योंका जैसे स्वार्थमें प्रामाण्य सिद्ध है और स्वार्थ-प्रतिपादनमें ही उनका तात्पर्य है, ठीक वैसे ही भगवन्नाम-माहात्म्य-प्रतिपादक **'मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे'**। (ऋ० ८। ११। ५) इत्यादि वैदिक अर्थवादवाक्य और पूर्वोक्त **'नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः'** इत्यादि पौराणिक अर्थवादवाक्योंका भी अन्य प्रमाणोंसे विरोध न होने और प्रत्यक्ष या अनुमानादि प्रमाणके द्वारा भगवान्‌के नामोच्चारण तथा जपसे पाप-नाश होता है—इस बातका ज्ञान न होनेके कारण अज्ञात-ज्ञापकत्वरूप प्रामाण्य है। इसीलिये ये भगवन्नाम माहात्म्यप्रतिपादक वाक्य स्वार्थमें प्रमाण हैं और स्वार्थ प्रतिपादनमें ही इनका तात्पर्य भी है। कहा जा सकता है कि इन वाक्योंका प्रत्यक्षसे विरोध है; किंतु ऐसा कथन तब उपयुक्त हो सकता है, जब प्रत्यक्ष प्रमाणसे यह सिद्ध हो कि भगवन्नामोच्चारणसे पापका नाश नहीं होता। किंतु पुण्य-पाप प्रत्यक्षादि प्रमाणके विषय नहीं। अतः उनका ज्ञान जब प्रत्यक्षादि प्रमाणसे नहीं होता तो भगवन्नामसे पापका नाश होकर पुण्य होता है या नहीं, इस बातका ज्ञान भी प्रत्यक्षानुमानसे सर्वथा असम्भव है; अतः प्रमाणान्तरोंसे विरोध न होने और प्रमाणान्तर-ज्ञात अर्थके प्रतिपादक न होनेके कारण पूर्वोक्त भगवन्नाम-माहात्म्य-प्रतिपादक वेदशास्त्र-वचन अवश्य ही स्वार्थमें प्रमाण और स्वार्थबोधक सिद्ध होते हैं।

कुछ लोग कह सकते हैं कि जब 'मिसरी-मिसरी' कहनेसे मुख मीठा नहीं होता, 'चाकू-छुरी' इत्यादि शब्दोंके उच्चारणसे जिह्वा कट नहीं जाती, तब केवल राम-राम अथवा कृष्ण-कृष्ण कहनेसे पापोंका नाश कैसे सम्भव है? किंतु यह कहना भी इसलिये ठीक नहीं कि 'शब्द और अर्थका तादात्म्य है।' इस शास्त्रीय तादात्म्यको जो न समझें, उन आधुनिक लोगोंके लिये इतना कहना पर्याप्त होगा कि लोकमें भी नामोंके द्वारा जो कार्य होता है, वही उसके नाममात्रसे भी होता देखा गया है। जैसे कोई साधारण व्यक्ति किसी बड़े आदमीसे मिलने जाय तो उस साधारण व्यक्तिकी साधारणताको जानकर बड़े आदमी स्वयं अथवा उनके कर्मचारी उस साधारण व्यक्तिसे सहसा सीधे मिलना पसंद नहीं करेंगे। किंतु वही साधारण व्यक्ति जिस बड़े आदमीसे मिलने जाय—उसके प्रति उसके परिचित किसी अन्य बड़े आदमीका नाम ले ले और कह दे कि मुझे उन्होंने भेजा है, तो वह बड़ा आदमी अपने परिचित दूसरे बड़े आदमीके नाममात्रको सुनकर आगन्तुक साधारण व्यक्तिसे भी तुरंत मिल लेता है। आजकल तो लोग अपना काम निकालनेके लिये बड़े आदमियोंके नामोंका खूब प्रयोग और

उपयोग करते देखे जाते हैं। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि नामी अर्थात् नामवाले व्यक्तिमें जो कार्यकरण-शक्ति थी, वही उसके नाममें भी प्रत्यक्ष देखी गयी; क्योंकि जिसका नाम लिया गया, वह व्यक्ति स्वयं तो आया नहीं, किंतु उसके नाममात्रने उसका काम कर दिया। कभी-कभी तो यहाँतक देखा गया है कि कुछ लोग अपना काम बनानेके लिये झूठे ही बड़े आदमियों-का नाम ले लेते हैं और उनका काम बन जाता है। इससे तो यही सिद्ध होता है कि नामीमें जो कार्य करने-की शक्ति होती है, वही उसके नाममें भी है। देखा तो यहाँतक भी गया है कि कभी-कभी स्वयं व्यक्ति जाकर किसीकी सिफारिश करे तो उसका उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना उसके व्यक्तित्वके ज्ञानके अभावमें प्रथम नाममात्रसे प्रभावित व्यक्तिपर उसके नामका पड़ता है।

इस प्रकार जब लोकमें साधारण लौकिक मनुष्यका नाम उतना ही काम कर देता है जितना कि उस नाम-वाला व्यक्ति, तो पापनाशक भगवान्‌के नाममें भी पापको नष्ट करनेकी शक्ति है—ऐसा माननेमें लोगोंको आनाकानी क्यों होती है—यह समझमें नहीं आता? झूठमूठ नाम ले लेनेपर भी काम बन जाता है, इसीसे तो शास्त्रकारोंके द्वारा येन-केन-प्रकारेण संकेतमें, परिहासमें, लीलामें, हेलामें लिया गया भगवान्‌का नाम भी पापनाशक है। इस प्रकारके—

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥

(श्रीमद्भागवत ६। २। १४)

—इत्यादि वचन ग्रीष्मकालके मध्याह्नसूर्यके समान आधि, व्याधि, शोक, संताप और पापके नाशक भगव-न्नामको प्रतिपादन करनेमें प्रमाण हैं—यह स्पष्ट ही सिद्ध हो जाता है।

फिर आजके नानाविध संतापोंसे संतप्त संसारके प्राणियोंके लिये भगवन्नामके सिवा और दूसरा अपनी रक्षाका सहारा भी क्या है? कहा जा सकता है कि आत्म-रक्षार्थ इस समय तोप, टैंक, बन्दूक, मशीनगन, अणुबम, उद्‌जनबम, राकेट, प्रक्षेपणास्त्र इत्यादिका सहारा न लेकर भगवन्नामका सहारा लेना 'कुशकाशावलम्बन' मात्र है। किंतु ऐसा कहनेवालोंको गम्भीरताके साथ यह भी विचार करना चाहिये कि जो समाज, राष्ट्र, वर्ग अथवा जातियाँ आधुनिकतम अस्त्रबल, शस्त्रबल, संगठनबल, बाहुबल और बुद्धिबलसे सम्पन्न हैं—वे भी अन्ततोगत्वा सब प्रकारके साधनोंसे सुसम्पन्न होते हुए भी भगवन्नामका सहारा लेते ही हैं। इसी युगमें प्रथम और द्वितीय महायुद्धके समय जिन मित्रराष्ट्रोंके पास पूर्वोक्त सभी प्रकारके बल और साधन विद्यमान थे, वे क्या अपनी लौकिक विजयके लिये, जिसे प्राप्त करनेको ही उन्होंने इतने परिश्रमसे वे सब साधन जुटाये और जिनपर उनका अखण्ड विश्वास था, उन सबके होते हुए भी भगवान्‌के नामका सहारा लेनेको विवश नहीं हुए? स्वयं उन्होंने भगवन्नाम लिया। इतना ही नहीं, अपनी ऐसी विकट परिस्थितिमें उन्होंने अपनी विजयके लिये अपने अधीन सभी देशोंके निवासियों, तत्तज्जातीय संस्थानों, धार्मिक स्थानों, देवालयों, मठों, मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजा-घरोंमें तत्तत्सम्प्रदायके लोगोंसे आग्रहपूर्वक तिथि और समय निश्चित करवाकर नियमित कार्यक्रमोंद्वारा विशिष्ट अधिकारियोंके निरीक्षणमें प्रार्थनाएँ करवायीं। क्या जिन लोगोंके पास आधुनिक युद्धमें विजयप्राप्तिके लिये सब प्रकारके आधुनिक साधन विद्यमान थे, उनका भगवत्प्रार्थना-का सहारा लेना इस बातको सिद्ध नहीं करता कि सब प्रकारका बल होते हुए भी भगवान्‌के सहारेके बिना यह सारा बल कौड़ी-कीमतका नहीं। भगवद्‌बल ही बलवानोंका भी बल है और निर्बलोंका तो उसके सिवा और दूसरा बल हो ही क्या सकता है? संतोंने ठीक ही कहा है—

'निर्बल के बल राम'

जगन्नाथ भगवान्, चन्द्रमौलीश्वर और भगवती विमलाम्बा समस्त संसारके नेताओं, धर्मगुरुओं और कर्णधारोंको इस सन्मार्गमें लगायें, जिससे आजके संत्रस्त मानवका संकट शीघ्रातिशीघ्र दूर हो।

भगवन्नाम-महत्त्व और अधिकार

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीज्योतिर्मठाधीश्वर स्वामीजी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजका आशीर्वाद)

भगवान् अचिन्त्यपौरुष, अनन्त-गुण-गणार्णव, अच्छेद्या-परिमितविग्रह, अपरिमेय शक्तिसम्पन्न हैं। उनके रूपमाधुर्यकी सुधा-छटाके पानसे प्राणीके अनन्तानन्त-जन्मार्जित पापपुञ्ज महावातसे आहत मेघराशिकी भाँति नष्ट हो जाते हैं। इन्हीं बातोंको दृष्टिमें रखकर महाभक्तोंके इस प्रकार उद्गार निकलते हैं कि पातकी जीव अपनी सामर्थ्यसे बाहर कल्मष-राशि अर्जन करता रहे। भगवन्नामकी विलक्षण महिमा है। जिस प्रकार अनादि-अनन्त कालसे अन्धकाराच्छन्न भवनके महान्धकारको दीप-ज्योति क्षणभरमें निकाल फेंकती है, ठीक उसी प्रकार प्रभुके नामका एक बार उच्चारण पातक-पुञ्जको अग्निसात् कर देता है।

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

इतना ही नहीं, भगवन्नामोच्चारणकी अचिन्त्य शक्तिका पद-पदपर परिचय प्राप्त होता है। उनके प्रायः सभी नामोंकी विलक्षण महिमा है। गिरते-पड़ते, दौड़ते-भागते, लोभ-लालचमें भी भगवन्नाम अपने गुणका परित्याग न कर जीवका सर्वविध कल्याण करता है।

पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्॥

(श्रीमद्भागवत ६। २। १५)

संज्ञा-संज्ञी अभेद

अन्ततोगत्वा यह भगवान्का गुण है या भगवान्के नामका, यह विचार करना आवश्यक है। शब्द-शक्तिवादी एक स्वरसे यह स्वीकार करते हैं कि संज्ञा और संज्ञी अर्थात् नाम और नामीमें अभेद-सम्बन्ध है। इसी अभेद-सम्बन्धको तादात्म्य-सम्बन्ध भी कहते हैं। अनन्त शक्तिसम्पन्न करुणा-वरुणालय भगवान् सच्चिदानन्दघनका जिस प्रकार चित्-अचित् विश्वविवर्त है, ठीक उसी प्रकार उनके चित्-अंशका विवर्त समस्त शब्द-वाङ्मय है; क्योंकि चित् प्रकाशक है, शब्द भी उसी प्रकार प्रकाशक है। ब्रह्मके सदंशका विवर्त सभी अभिधेय अर्थजन्यमात्र है; क्योंकि सत्तारूपसे ही सभी पदार्थ विद्यमान रहते हैं। उसी प्रकार सभी शब्द और अर्थ चैतन्य-तत्त्वका विवर्त होते हैं। अतएव सभी दर्शनकारोंका अकाट्य सिद्धान्त है कि शब्दकी शक्ति सत्ता अर्थात् जातिमें है। कालिदास-जैसे महाकविने रघुवंशके आरम्भमें ही स्तुति करते हुए पार्वती और परमेश्वरको 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' कहा है। अर्थात् सभी शब्दोंकी शक्ति जातिमें है और जाति सत्तारूप है। सत्ता ही सत्-तत्त्व है। इसीलिये सभी शब्दोंका अभिधेय यानी अर्थ सत्तारूप ही होता है।

लोकमें जिस प्रकार घट शब्द घादि-टान्त समुदाय चिदंशका विवर्त है, उसी प्रकार कम्बुग्रीवादिमद् व्यक्ति सत्का विवर्त है। यह विवर्तवाद सच्चित्की एकताकी भाँति घट-शब्द और घट-अर्थकी एकताका पोषक है। इसी प्रकार भगवान्के अनन्त नाम उनके वाचक होते हुए भी वाच्य भगवदर्थके साथ एकतासम्पन्न ही रहते हैं। लौकिक भेद औपाधिक होता है। भगवान्के अनन्त नाम उनके अनन्त स्वरूपके परिचायक होते हैं।

शब्दकी अचिन्त्य शक्ति

शब्दमें विलक्षण शक्ति होती है। किसी व्यक्तिका नाम लेनेपर वही आहूत होता है, इस प्रकारकी *लोक-सिद्ध व्युत्पत्ति* है। यदि नाम और नामीका कोई *विलक्षण सम्बन्ध नहीं* होता तो सुषुप्तिगत मानवकी नामोच्चारणसे जागृति नहीं होनी चाहिये थी; परंतु होती है, यह सभी जानते हैं। इसलिये शास्त्रोंमें कहा गया है—

माहात्म्यमेतच्छब्दस्य यदविद्यां निरस्यति।
सुषुप्त इव निद्राया दुर्बलत्वाच्च बोध्यते॥

'शब्दकी इस प्रकारकी महिमा है कि वह वस्तुगत अज्ञानकी निवृत्ति करता है, जिस प्रकार निद्रालु व्यक्ति शब्दद्वारा उद्बुद्ध होता है।' शब्द और अर्थ दोनों ही मुख्य होते हैं। वैयाकरणोंके अनुसार कोई भी व्यवहार शब्दानुगमसे व्यभिचरित नहीं है। जिस प्रकार शब्दानुविद्ध लौकिक व्यवहार अबाधितरूपसे चलते हैं और लोक उनके प्रति कभी भ्रान्त नहीं होता, ठीक प्रत्यगभिन्न चैतन्यमें भी शब्दकी उसी प्रकार अचिन्त्य शक्ति है। भगवन्नाम-उच्चारण करनेसे तीक्ष्ण-तीर-लक्ष्यभेदकी भाँति वह भगवान्के हृदयपर प्रभाव करता है। इसी भावको नैष्कर्म्यसिद्धिमें निम्नप्रकारसे अभिव्यक्त किया गया है—

शयानाः प्रायशो लोके बोध्यमानाः स्वनामभिः।
सहसैव प्रबुध्यन्ते यथैवं प्रत्यगात्मनि॥

लौकिक शब्द अग्निके उच्चारणसे जिह्वा जलती नहीं

है; परंतु अग्निके अर्थ अर्थात् अङ्गारेसे हाथ और जिह्वा दोनों ही जल सकते हैं। इसी प्रकार गुड़के उच्चारणसे जिह्वापर मिठास नहीं आता, गुड़ खानेसे मिठास आता है। तब तो इस प्रकार शब्द और अर्थमें अभेद कहाँ रहा; नितान्त भेदकी प्रतीति होती है। यह भी कथन उचित नहीं; क्योंकि लौकिक शब्द-राशि और अर्थ-राशिमें विवक्षित अभेद आवृत रहता है और भगवान् तथा भगवान्‌के सभी नामोंमें रहनेवाला अभेद आवरण-विनिर्मुक्त रहता है। इसीलिये भगवान्‌की अचिन्त्य अनन्त अपरिमेय शक्तियोंकी भाँति उनके नामोंमें भी वही सब शक्तियाँ विद्यमान हैं।

तस्मात् संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्।

(श्रीमद्भागवत ६ । ३ । ३१)

भगवन्नाम-व्युत्पत्ति

संस्कृत साहित्यकी अपनी एक निजी विचित्रता है और वह यह है कि संस्कृत साहित्यमें प्रयुक्त होनेवाली जितनी शब्द-राशि है, वह अपने वास्तविक अर्थसे ओतप्रोत है। यह गौरव अन्य किसी भाषाको प्राप्त नहीं है। जैसे अंगरेजीके किसी भी विद्वान्से यह प्रश्न किया जाय कि वृक्षको Tree क्यों कहते हैं? तो वह शून्य ही रह जायगा। उनके यहाँ इस प्रकारकी शब्द-व्युत्पत्तिका अन्वेषण नहीं किया गया। उर्दू भाषामें भी कुछ शब्दोंको छोड़कर शेष शब्दोंकी व्युत्पत्तिपर मौन ही रहना पड़ेगा। उनके यहाँ 'खुदा' आदि शब्द अवश्य इस प्रकारके हैं जिनकी व्युत्पत्ति हो सकती है परंतु 'जरूर', 'मुश्किल' आदि शब्द व्युत्पत्तिरहित ही हैं। किंतु संस्कृत साहित्यका यह गौरव है कि उसमें कोई भी शब्द इस प्रकारका नहीं है, जिसका प्रकृति-प्रत्ययसे वैसा अर्थ न निकले जो लोकमें प्रसिद्ध एवं व्यवहृत हो। जैसे वृक्ष, पादप, तरु आदि एकार्थवाचक शब्द—**'वृश्च्यते कुठारादिना, पादेन पिबति, तरन्ति पक्षिणो यस्योपरि'** इत्यादि व्युत्पत्तियोंसे उन्हीं-उन्हीं अर्थोंका अभिधान करते हैं। उसी प्रकार भगवन्नाम शब्द 'भगवत्+नाम'—इन दो भिन्नार्थक शब्दोंसे मिलकर बना है। भगवत् शब्द **'भग—ऐश्वर्यं यस्मिन् अस्ति स भगवान्'** अर्थात्—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

(विष्णुपुराण ६ । ५ । ७४)

'समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी और ज्ञान-वैराग्यका नाम 'भग' है। वह जिस तत्त्वमें अव्यवहित और अविच्छिन्नरूपसे सदैव विद्यमान रहे, वह 'भगवान्' है।' इसी आशयका एक अन्य श्लोक भी मिलता है—

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥

(विष्णुपुराण ६ । ५ । ७८)

इस प्रकार 'भगवान्' शब्द समस्त प्रपञ्चजातको अपने अर्थमें निहित किये हुए है। यह गौरव भगवान्‌को ही प्राप्त है। उनमें अनन्त ब्रह्माण्डोंके अनन्त जीवोंका ज्ञान, उनके अनन्तानन्त कर्मोंका ज्ञान, अनन्तानन्त कर्मोंके फलोंका ज्ञान और उन कर्मफलोंको देनेकी सामर्थ्य है। नाम शब्द 'म्ना अभ्यासे' धातुसे 'म्नायतेऽभ्यस्यते भूयोभूय उच्चार्यतेऽर्थज्ञानाय कार्यावबोधनाय च यत्तत् नाम' अर्थात् जो पुनः पुनः अर्थ-ज्ञान एवं कार्यावबोधनके लिये आम्रेडित किया जाय वह 'नाम' है। 'म्ना' धातुके स्थानपर 'ना' आदेश करने अथवा आदि अक्षर 'मकार' का लोप करने और 'मनिन्' प्रत्ययके सम्बन्धसे 'नाम' शब्दकी व्युत्पत्ति है। अर्थात् भगवान्‌के नाम ही भगवन्नाम कहे जाते हैं।

भगवन्नाम और प्राणी

यह स्पष्ट है कि भगवन्नामका किसी भी प्रकार उच्चारण किया जाय, वह प्राणीके सर्वविध अघ-वृत्तिका समुच्छेदन करता है। फिर भी—

जगत्पवित्रं हरिनामधेयं क्रियाविहीनं न पुनाति जन्तुम्।

'परमपिताके नाम यद्यपि जगत्‌को पावन करनेवाले हैं परंतु क्रियाविहीन प्राणीको वे भी पवित्र नहीं करते।' जिस प्रकार महौषधसेवन रोग-निवृत्तिके प्रति कारण अवश्य है परंतु उसके साथ सुपथ्य-सेवन और कुपथ्य-परिवर्जन भी आवश्यक है। पथ्य-सेवन तथा कुपथ्य-परिवर्जनके साथ यदि औषधका प्रयोग नहीं किया गया तो वह सर्वविध गुणगणयुक्त भी हितावह नहीं होती। इसका तात्पर्य यह नहीं कि उस ओषधिमें वैसा गुण नहीं है। इसीलिये शास्त्रोंने प्रत्येक पदार्थके लिये मर्यादाका सेतु बाँध दिया है। धर्मशास्त्रमें—

आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः॥

(स्मृति)

—इस वचनद्वारा अपने नाम, गुरु-नाम, भगवद्द्वेषीका नाम, ज्येष्ठ संतान और स्त्रीके नामका उच्चारण कल्याणेच्छुकके लिये निषिद्ध बताया गया है। यदि प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक नामको बेखटके उच्चारण कर कल्याणभागी बन सकता है तो उपर्युक्त नामोंके उच्चारणका निषेध क्यों? इसलिये अखिल-गुणगण-

निलग भगवन्नाम-उच्चारणके भी कुछ नियम अवश्य हैं और होने चाहिये।

जिस प्रकार एक ही ओषधि प्रत्येक रोगमें रोगनिवर्तक नहीं सिद्ध होती, उसी प्रकार भगवान्‌के भी एक या अनेक नाम एक या अनेक व्यक्तियोंके लिये एक साथ हितावह नहीं होते। इसीलिये—

गायत्र्यां द्विजसङ्घानां यतीनां प्रणवे रतिः।
नारीणां भर्तृशुश्रूषा........................॥

'द्विजातिको गायत्री-जप जिस प्रकार विहित है, उसी प्रकार संन्यासीके लिये प्रणव-जप हितकर है। स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवामें रति कल्याणदायक है।' घरका यदि हर व्यक्ति एक ही धर्म करनेमें लग जाय तो घरके सभी कार्य चौपट हो जायँगे। इसलिये अधिकारानुसार ही प्रत्येक व्यवस्था शास्त्रोंमें निर्दिष्ट की गयी है।

आजका वातावरण बहुत ही विपरीत है। क्या संत-महात्मा, क्या उपदेशक और कथावाचक—सभीको गायत्रीके जपका उपदेश करते हैं। स्त्रियाँ प्रणवका जप करती हैं। कई स्थानोंपर शालग्राम और नर्मदेश्वरका भी पूजन करती देखी गयी हैं। वास्तवमें यह सब पतनका कारण है। जो स्त्रियाँ प्रणवोपासना तथा शालग्राम आदिकी उपासनामें लग जाती हैं, वे सर्वथा शास्त्रविरुद्ध कार्य करती हैं। जिसका परिणाम कभी-कभी सर्वनाश तक हो जाता है। इसीलिये जहाँ नामकी महिमाका वर्णन है, वहाँ नामापराधका भी वर्णन किया गया है।

गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्रनिन्दनं
तथार्थवादो हरिनाम्नि कल्पनम्।
नामापराधस्य हि पापबुद्धे-
र्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः॥
(पद्मपुराण)

कलिके धर्मोंने मानवमात्रको ही क्या, सत्पुरुषोंको भी मोहित कर दिया है। इसीलिये वे वर्णाश्रमधर्मोच्छेद, शास्त्रावहेलना, शास्त्रोंका अनुसरण करनेवाले सत्पुरुषोंकी निन्दा आदि नाना प्रकारके कुकृत्योंमें प्रवृत्त होते दिखायी दे रहे हैं तथा मुँह फाड़कर कहते हैं कि—

हरिको भजै सो हरिका होई। जाति पाँति पूछै नहिं कोई॥

ये सब धर्मविरुद्ध कार्य हैं।

भगवन्नामके साथ वर्णाश्रम-धर्म

भगवन्नामोच्चारण यदि वर्णाश्रम-मर्यादाका अनुसरण करते हुए किया जाय तो उसमें साद्गुण्य आता है। यह ठीक है कि अजामिल-जैसोंने पुत्रके नाम 'नारायण'से ही कल्याण प्राप्त किया; परंतु वह पहले अपने स्वधर्मका पालन अवश्य करता था। जिसका जो धर्म हो उसके अनुसार उसे व्यवहार करते हुए अधिकारानुसार ही भगवन्नाम-संकीर्तन करनेसे कल्याण होता है। इसलिये—

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे-
र्भजन्नपक्कोऽथ पतेत्ततो यदि।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः॥
(श्रीमद्भागवत १।५।१७)

जो स्वधर्मका पालन न करते हुए यदि हरिका नामोच्चारण करता है और कदाचित् वह गिर जाय तब क्या उसका अकल्याण हो सकेगा? साथ ही धर्मपालनपूर्वक हरिको भजनेवालेको क्या कोई लाभ हो सकेगा? अर्थात् स्वधर्मानुष्ठानपूर्वक हरिनाम-कीर्तन कल्याणप्रद होता है। यही मुख्य कारण है कि आज रामायण और गीताका अधिकाधिक प्रचार और प्रसार होते हुए भी नास्तिकता, उच्छृङ्खलता तथा शास्त्राविश्वासकी वृद्धि हो रही है। ऐसी स्थितिमें जहाँ एक ओर भगवन्नाम महिमाकी चर्चा होती है, वहाँ स्वधर्मपालनकी चर्चा भी होनी चाहिये। 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।' स्वधर्मका थोड़ा भी अनुष्ठान महाभयसे मुक्त करता है। 'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥' अर्थात् मानव अपने वर्ण और आश्रमधर्मका पालन करते हुए भगवद्-गुणानुवादका वर्णन, उनके दिव्य मङ्गल-विग्रहका दर्शन, उनके पवित्र नामोंका उच्चारण करता हुआ कल्याणभागी बन सकता है। श्रुति, स्मृति, पुराण और रामायण, महाभारत आदि सभी स्वधर्मानुष्ठानपूर्वक भगवन्नाम-संकीर्तनसे कल्याणका निर्देश करते हैं।

इन सभी बातोंको तात्त्विक रूपसे जाननेके लिये संस्कृत भाषाका ज्ञान अत्यावश्यक है। आज देशके नव-शिशु धर्मसे और धार्मिक वातावरणसे दूर हटते चले जा रहे हैं। एक ओर राम-नामकी महिमा गायी जाती है तो दूसरी ओर शिखा-सूत्रको जलाञ्जलि दे दी जाती है। शिखा-सूत्रविहीन जो भी कर्म करते हैं सब निष्फल हो जाते हैं।

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥

अतएव स्वधर्मपालनपूर्वक ही हरिनामस्मरण कल्याणप्रद हो सकता है। अन्यथा रेडियो और टेपरिकार्डकी मशीनें भी हरिनाम-उच्चारणसे उच्च पद प्राप्त कर सकती हैं।

नाम-स्मरण-संकीर्तन-श्रवणका महत्त्व

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर स्वामीजी श्रीमच्चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती श्रीपाद महाराजका आशीर्वाद)

अनुपम करुणाके सागर भगवान् परमेश्वर सब लोगोंको इष्ट-साधन और अनिष्ट-साधन विषयक ज्ञान देकर उन सबको सुखी करनेके लिये श्रीशंकराचार्यके रूपमें इस भूतलपर अवतीर्ण हुए थे। इन आचार्यचरणने विभिन्न अधिकारियोंके लिये उपयोगी वेदोक्त कर्म, उपासना एवं ज्ञान नामक मार्ग प्रकाशित किये। साथ ही यह भी निर्णय किया कि 'भगवान् विष्णु और शिवके अनेक नामोंमेंसे कोई-सा भी एक ही नाम समस्त प्राणियोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्रदान करनेमें समर्थ है। उस नामका केवल स्मरण, श्रवण अथवा कीर्तन ही किया जाय तो भी वह सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथोंको दे सकता है।' ऐसा निश्चय करके उस नाम-महिमाका प्रतिपादन करनेके लिये उन्होंने श्रीविष्णुसहस्र-नामस्तोत्रका भाष्य लिखना आरम्भ किया। उस स्तोत्रकी पीठिकामें प्रश्नोत्तर-रूपमें आचार्य शंकर सम्पूर्ण धर्मोंकी अपेक्षा भगवन्नाम-कीर्तनकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करते हैं।

इसी प्रकार श्रीशंकराचार्यकी परम्परामें प्राप्त श्रीभगवद्-बोधेन्द्र यतीन्द्रने भगवत्पाद गुरुपरम्परा-सम्प्रदायका अनुसरण करके—

> ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
> यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
> (वि० पु० ६। २। १७)

'सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन तथा द्वापरमें पूजन करनेवाला पुरुष जिस फलको पाता है, उसे ही कलियुग-में केवल केशवका कीर्तनमात्र करके वह पा लेता है।'

—इस वचनके अनुसार नामकीर्तन ही इस समय सकल पुरुषार्थोंका साधन करनेमें समर्थ है—ऐसा निश्चय करके उन्होंने रात-दिन अपने चित्तको एकान्ततः श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंका चञ्चरीक बनाये रक्खा और नामके ही भजनसे सिद्धि प्राप्तकर नाम-महिमाके प्रतिपादक बहुसंख्यक ग्रन्थ-रत्नोंका निर्माण किया। इन महात्माका यह पूर्व-अनुभूत श्लोक यहाँ उद्धृत किया जाता है—

> विष्णोर्नामैव पुंसां शमलमपनुदत् पुण्यमुत्पादयच्च
> ब्रह्मादिस्थानभोगाद् विरतिमथ गुरोः श्रीपदद्वन्द्वभक्तिम्।
> तत्त्वज्ञानं च विष्णोरिह मृतिजननभ्रान्तिबीजं च दग्ध्वा
> ब्रह्मानन्दैकसिन्धौ महति च पुरुषं स्थापयित्वा निवृत्तम्॥

'भगवान् विष्णुका नाम ही मनुष्योंके पापका नाश करता, उनके लिये पुण्यको जन्म देता, उनके मनमें ब्रह्मादि देवताओंके लोकोंके भोगसे वैराग्य उत्पन्न करता; फिर गुरुके युगल श्रीचरणारविन्दोंके प्रति भक्ति बढ़ाता और भगवान् विष्णुके तत्त्वका ज्ञान कराता है। इस लोकमें जन्म और मृत्युरूप भ्रमके बीजको दग्ध करके साधकको एकमात्र ब्रह्मानन्दके महान् सिन्धुमें निमज्जित करनेके पश्चात् निवृत्त होता है।'

श्रीबोधेन्द्र स्वामी कावेरीके तटपर विराजमान रहा करते थे। श्रीशंकराचार्यने जैसे अद्वैतसिद्धान्तका, श्रीरामानुजाचार्यने जैसे विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तका तथा श्रीमध्वाचार्यने जैसे द्वैतसिद्धान्तका प्रतिपादन किया है, उसी प्रकार इन यतीन्द्रने भगवन्नामसिद्धान्तका निर्धारण किया है। सभी मनुष्योंके लिये सामान्यतः अपने-अपने वर्ण और आश्रमके लिये विहित धर्मोंके अनुष्ठानके मध्यवर्ती कालमें और विशेषतः विश्रामकालमें प्रसंगतः प्राप्त होनेके कारण भगवन्नामके उच्चारणसे परम पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है; इस प्रकार श्रीभगवान् शंकराचार्यद्वारा रचित विष्णुसहस्रनाम-भाष्यका आश्रय लेकर अद्वैतज्ञानके साधनरूपसे नाम-महिमाका निश्चय किया है। नामसिद्धान्तकी स्थापनाके लिये इन यतिराजने नामामृतरसोदय, नामामृतरसायन, नामसूर्योदय, नामतरङ्ग, नामार्णव, हरिहरभेदधिक्कार, हरिहराद्वैतभूषण तथा मूर्तब्रह्मविवेक नामक ग्रन्थोंकी रचना की है।

दक्षिण भारतके भगवद्भजनकी पद्धतिमें भक्तजनों द्वारा भजन-कीर्तनके आरम्भमें श्रीबोधेन्द्रके विषयमें एक श्लोक गाया जाता है, जो इस प्रकार है—

> भगवन्नामसाम्राज्यलक्ष्मीसर्वस्वविग्रहम्।
> श्रीमद्बोधेन्द्रयोगीन्द्रदेशिकेन्द्रमुपास्महे॥

'जो भगवन्नामकी साम्राज्यलक्ष्मीके सर्वस्वरूप हैं, उन योगिराज देशिकेन्द्र (आचार्यवर्य) श्रीमान् बोधेन्द्रस्वामी-की हम उपासना करते हैं।'

इन महापुरुषद्वारा रचित नामामृतरसायनमें ये दो श्लोक दृष्टिगोचर होते हैं—

सदानन्दः श्रीमाननुपधिककारुण्यविवशो
जगत्क्षेमाय श्रीहरिगिरिशरूपं विधृतवान् ।
अपर्याप्तं रूपं जगदवन एतत्पुनरिति
प्रभुर्जागर्ति श्रीहरिगिरिशनामात्मकतया ॥

'नित्यानन्दस्वरूप श्रीपरब्रह्म परमात्माने कैतवरहित करुणाके वशीभूत हो जगत्का कल्याण करनेके लिये श्रीहरि तथा श्रीशिवका रूप धारण किया। फिर यह सोचकर कि मेरा यह रूप संसारकी रक्षाके लिये पर्याप्त नहीं है, वे प्रभु श्रीहरि और शिवके नाममय विग्रह धारण करके जगत्के कल्याणके लिये जागरूक हैं।'

सकलभुवनरक्षापेक्षया यः परात्मा
निरवधिदयया श्रीशेशनामात्मकः सन् ।
प्रविलसति सदाऽसौ सोऽनुकम्पासुधाब्धि-
र्मम भवतु तदात्मा सुस्थिरो वक्त्रपद्मे ॥

'जो परमात्मा समस्त संसारकी रक्षाके लिये असीम करुणासे प्रेरित हो श्रीविष्णु और शिवके नाममय रूप धारणकर विराजमान हैं, वे करुणामृतसागर नामस्वरूप भगवान् मेरे मुखारविन्दमें सदा सुस्थिर रहें।'

श्रीबोधेन्द्रस्वामी दक्षिण भारतमें कुम्भकोणक्षेत्रके समीप पूर्व दिशामें विद्यमान गोविन्दपुर नामक ग्राममें सिद्धिको प्राप्त हुए थे।

श्रीश्रीधर वेङ्कटेश आर्य भी कावेरीके ही तटपर निवास करते थे। श्रीमान् बोधेन्द्रस्वामीकी भाँति आप भी नाम-सिद्धान्तका प्रचार करनेके लिये बद्धपरिकर थे। भगवान्की जाति कैसी ही क्यों न हो, भगवन्नामके उच्चारणमात्रसे ही सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति हो सकती है—इसी सिद्धान्त-का आप प्रतिपादन करते थे। आपने भगवन्नामभूषण, आख्याषष्टि, दयाशतक, मातृभूत, स्तुतिपद्धति, शिवभक्ति-कल्पलतिका, शिवभक्तिलक्षण, तारावलीस्तोत्र, आर्तिहर-स्तोत्र, पुलीराष्टक, जम्बुनाथाष्टक, दोषपरिहारस्तव, कृष्ण-द्वादशमञ्जरी, अच्युताष्टक तथा दोलानवरत्नमालिका नामक ग्रन्थोंकी रचना की है। दक्षिण भारतीय भगवद्भजनसम्प्रदाय-में आपकी स्तुतिके रूपमें यह श्लोक गाया जाता है—

ईशे तस्य च नामनि प्रविमलं ज्ञानं तयोरूर्जितं
प्रेम प्रेम च तत्परेषु विरतिश्चान्यत्र सर्वत्र च ।
ईशेक्षा करुणा च यस्य नियता वृत्तिः श्रितस्यापि यं
तं वन्दे नररूपमन्तकरिपुं श्रीवेङ्कटेशं गुरुम् ॥

'भगवान् शंकर और उनके नामका निर्मल ज्ञा[illegible] दोनोंमें बढ़ा हुआ प्रेम, भगवद्भक्तोंमें भी प्रेम औ[illegible] सब वस्तुओंकी ओरसे वैराग्य, सर्वत्र भगवद्दर्शन समस्त जीवोंपर दया—यह जिनकी नियत वृत्ति थ[illegible] जिनका आश्रय लेनेवाले शिष्योंकी भी यही नियत वृत्ति[illegible] उन नररूपधारी अन्तकरिपु गुरु श्रीवेङ्कटेशकी मैं व[illegible] करता हूँ।'

आपके आख्याषष्टि-नामक ग्रन्थमें ये दो श्लोक [illegible] जाते हैं—

स्वकीयैः स्रोतोभिर्जगदखिलमाक्रामति कलौ
निमग्नास्ते वर्णाश्रमनियमधर्माः स्फुटमिदम् ।
प्रलीना ध्यानादिर्भजनसृतिरेका पुनरये
परित्रातुं विश्वं पुरभिदभिधे त्वं विजयसे ॥

'अपने सम्पूर्ण स्रोतोंद्वारा कलियुग जबसे सम्पूर्ण जग[illegible] पर आक्रमण करने लगा है, तबसे वे वर्णाश्रमसम्ब[illegible] नियम और धर्म डूब गये, यह सबको स्पष्ट रूपसे ज्ञात है ध्यान आदि जो भजनकी पद्धति थी, वह भी विलीन [illegible] गयी। अब तो फिर हे भगवान् शिवकी नामावलि! एक मात्र तुम्हीं इस विश्वकी रक्षा करनेके लिये सदा विजयिनी हो रही हो।'

शिवाख्ये वाच्योऽर्थस्तव हि पुरभिद्वास्तु मुरभित्
स लोकानामीष्टामवतु च सुखेन श्रितजनम् ।
अलं नाहं तस्यानुसृतिषु स माभूदपि च मे
श्रितोऽहं त्वां यत्त्वद्भवति मम कल्याणि तदलम् ॥

'हे शिवनामावलि! तुम्हारा वाच्य अर्थ पुरारि (शिव) हो या मुरारि (विष्णु); वे शिव या विष्णु समस्त लोकों-का शासन करें और अपने आश्रितजनोंका सुखपूर्वक पालन भी करें; मैं उनका अनुसरण करनेमें समर्थ नहीं हूँ। वे भी मेरे लिये नहींके बराबर हैं। मैं तो केवल तुम्हारी ही शरणमें आया हूँ। कल्याणि! तुमसे जो कुछ भी प्राप्त होगा, वही मेरे लिये बहुत है।'

सद्गुरुस्वामी कावेरी-तटपर 'तिरुविशनल्लूर' नामक गाँवमें, जिसका दूसरा समानार्थक शब्द साहाजिराजपुर है, अवतीर्ण हुए थे। इनका पूर्वनाम 'वेङ्कटराम' था। इन्होंने बाल्यकालसे ही सम्पूर्ण वेदशास्त्रोंका अध्ययन करके श्रीबोधेन्द्र-स्वामी तथा श्रीधर वेङ्कटेशस्वामीके सिद्धान्तग्रन्थोंका पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कर लिया था तथा ये निरन्तर भगवन्नामो-

च्चारणमें संलग्न रहते थे। कुम्भकोणनसे दक्षिण दिशामें विराजमान 'मरुतान्तनल्लूर' नामक ग्राममें, जिसका पर्याय-वाची शब्द मदनान्तकपुर है, रहकर वे नामकीर्तन किया करते थे। दक्षिण भारतमें इन्हींके द्वारा सुस्थापित भजन-सम्प्रदायका आज भी अनुसरण किया जाता है।

ये महापुरुष प्रतिदिन भगवन्नाम-गुण-कीर्तन करते और उञ्छवृत्तिसे जीविका चलाते हुए कालयापन करते थे। इनके निवासस्थानपर सद्गुरुपरम्परा नामसे प्रचलित परम्परा भी अविच्छिन्नरूपसे चली आ रही है और इस समय भी विराजमान है।

भजन-सम्प्रदायमें इनकी स्तुतिरूपसे यह श्लोक गाया जाता है—

> यस्याङ्गं कनकाभकामसदृशं भालं त्रिपुण्ड्राङ्कितं
> वाणी श्रीरघुनाथनामसुधयाप्यार्द्रासकृद्धारया।
> चेतस्यम्बुजलोचनो यदुपतिः खेलत्यलं राधया
> तं वै वेङ्कटरामदेशिकवरं सर्वात्मनाहं भजे॥

'जिनका अङ्ग सुवर्णके समान कान्तिमान् और कामदेवके समान मनोहर था; भालदेश त्रिपुण्ड्र नामक तिलकसे अलंकृत था; जिनकी वाणी भी निरन्तर धाराप्रवाहरूपसे चलनेवाली श्रीरघुनाथजीकी नामसुधासे आर्द्र बना करती थी और जिनके हृदयरूपी गुफामें कमलनयन यदुपति श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण श्रीराधारानीके साथ थे; क्रीड़ा करते थे; उन आचार्यप्रवर श्रीवेङ्कटराम स्वामीका मैं सम्पूर्ण हृदयसे भजन करता हूँ।'

इन महापुरुषने भक्तोंके उपकारके लिये कीर्तन सम्प्रदाय एवं भक्त-लक्षण आदिके प्रतिपादक '[illegible]' नामक ग्रन्थकी रचना की थी। भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें निवास करनेवाले महात्माओंद्वारा निर्मित कीर्तनोंको मिलाकर इन्होंने भजन-सम्प्रदायका प्रचार किया।

श्रीबोधेन्द्रस्वामी तथा श्रीधरवेङ्कट आर्य सत्रहवीं शताब्दीमें थे और श्रीसद्गुरुस्वामी अठारहवीं शताब्दीमें विद्यमान थे।

आस्तिकजन इन महात्माओंद्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तका सहारा लेकर अपने-अपने शास्त्रीय कर्मोंका विरोध न करते हुए भगवन्नामके भजनमें संलग्न हो सम्पूर्ण मङ्गलोंके भागी बनेंगे, ऐसी आशा करते हैं।

भक्ति

(अनन्तश्री जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीशृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर स्वामीजी महाराजका अनुग्रह-संदेश)

प्रत्यक्षवाद—(स्थूल जगत्‌के अतिरिक्त प्रकृति, ईश्वरके अस्तित्व तथा सृष्टिके ज्ञानका नितान्त अभाव है—) के इन दिनोंमें धर्म और ईश्वरीय विधानके सम्बन्धमें लोगोंका विचार करना एक दुर्लभ बात है। अनात्मवाद—भौतिकवाद अपने आकार-प्रकारमें अधिक विस्तृत हो चला है और मानव आध्यात्मिक विशिष्टताके चकाचौंध कर देनेवाले उन्नत शिखरसे नैतिक पतनके स्तरपर उतर आया है। भारतमें इस तरहकी मानसिक प्रवृत्तिका लक्षण पाश्चात्य सम्पर्क तथा पाश्चात्य सभ्यताके अनुकरणकी अन्धप्रवृत्तिमें प्रत्यक्षरूपसे संनिहित है। हम सत्यसे अधिक दूर नहीं चले जायँगे, यदि यह कहें कि पाश्चात्यलोग प्रधानरूपसे अर्थके ही उपासक (दास) हैं और हम भारतवासी जन्मसे ही तथा अपनी रीति-नीतिके कारण एक दूसरे ही साँचेमें ढले हैं। इस समय संसार बड़ी शीघ्रतासे निकृष्टसे निकृष्टतर होता जा रहा है और जबतक मानव जाग नहीं जाता तथा ईश्वरोन्मुखी नहीं हो जाता है, उसे निश्चितरूपसे महान् विनाशका सामना करना पड़ेगा।

मानव आध्यात्मिक प्रबुद्धताके फलस्वरूप दूसरे मानवों तथा पशु-पक्षी और जीवधारियोंके साथ भी शान्ति, सुख तथा पूर्ण संतुष्टि—तृप्तिसे रहनेका ज्ञान प्राप्त कर लेगा। आध्यात्मिक प्रबुद्धताके ही परिणामस्वरूप मानव यह समझ लेगा कि सम्पूर्ण जगत्‌के साथ ऐकात्म्य है, सम्पूर्ण जगत्‌में केवल एक ही सत्ता है, पूर्णरूपसे एक ही वस्तु-तत्त्व है। भारतमें यह सिद्धान्त उस समय पुनः प्रस्तुत किया गया, जब गौतमबुद्धके समयमें अनात्मवाद और आत्मसंशय—नास्तिकताने प्रत्येक मान्यताको छिन्न-भिन्न कर दिया था। हिंदू-विचार परापेक्षी नहीं है; आप जहाँ भी हैं वहीं आपके केन्द्रतक पहुँचनेका प्रस्थान-बिन्दु है। अतएव हिंदू-धर्मका रहस्य यह है कि सिद्धान्तोंका महत्त्व कुछ भी नहीं है, अपितु महत्त्वपूर्ण केवल मात्र यह है जो आप हैं। वेदान्त—नितान्त हिंदू-विचार, इस बातकी शिक्षा देता है कि केवल एककी ही सत्ता है, वह सद्वस्तु—परमात्मा हैं। वे देश, काल और कार्य-कारण-भाव सबसे परे हैं। हम उनका कभी वर्णन नहीं कर सकते। वे अखण्ड सत्स्वरूप, अनन्त ज्ञान-

स्वरूप तथा पूर्ण परमानन्दस्वरूप हैं—इसके सिवा कभी कुछ भी नहीं कह सकते कि वह क्या है।

हिंदुत्वसे सम्बद्ध समस्त विषयोंके एकमात्र तथा सर्वश्रेष्ठ प्रमाण वेद ही स्वीकार किये जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता और पुराणोंकी प्रामाणिकता भी वेदके आधारपर ही स्थित है। शिक्षित लोगोंके एक बहुत बड़े समुदायद्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि यह हिंदूदर्शनके सारतत्त्वसे परिपूर्ण है; क्योंकि यह प्रत्यक्षरूपसे वेदसम्मत है; अतएव भारतमें वेदाध्ययनके पुनरुत्थानको ही पूर्ण प्रोत्साहन देना चाहिये।

श्रीमद्भगवद्गीताका वचन है कि परमात्माके सतत ध्यान और अनवरत चिन्तनसे मानवका स्वभाव रूपान्तरित हो जाता है। विश्वके दूसरे धर्मोंमें भी ऐसा ही मत अभिव्यक्त है।

उपर्युक्त श्रीमद्भगवद्गीताशास्त्र हमें परमात्मापर ही पूर्ण निर्भर रहनेकी शिक्षा देता है। उनके ही उपदेशोंके अनुरूप हम जो कुछ भी कर सकते हैं, करें; दूसरी सभी बातें हम उन्हींपर छोड़ दें। वे उनका स्वयं ही ध्यान रखते हैं। हमें इस सम्बन्धमें उन्हें कर्तव्याकर्तव्यके लिये स्मरण दिलानेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। वे सर्वज्ञ हैं, सब कुछ करते हैं, इसलिये उन्हींपर छोड़ देना चाहिये। उनकी उच्चस्वरसे यह घोषणा है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता १८। ६६)

'सब धर्मोंका परित्याग करके एकमात्र मेरे (भगवान्‌के) शरणापन्न हो जाओ, मैं तुम्हें सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तुम सोच मत करो।'

पूर्ण निश्चिन्ततासे मार्गपर चलकर ध्येयतक पहुँचनेमें भक्ति हमारी पूर्ण सहायता करेगी। परमात्मा केवल सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ही नहीं हैं, अपने भक्तकी सहायता करनेवाले—योगक्षेमका निर्वाह करनेवाले ही नहीं हैं, वे भक्तके भक्त भी हैं। यह कहा जाता है कि परमात्मा प्रेम हैं। वे उन लोगोंकी दृष्टिमें जिनकी उनमें श्रद्धा है केवल प्रेमीमात्र *ही नहीं हैं, प्रेमस्वरूप भी हैं।* आवश्यकता केवल इतनी ही है कि उन्हें हम अपना सर्वस्व समर्पण कर दें। एक बार ऐसा कर लेनेपर हम सदाके लिये उनके ही हाथमें पूर्ण अभय—सुरक्षित हो जाते हैं—

भक्तिके क्षेत्रमें हमें इस बातका पूर्ण निश्चय हो जाता है कि हमारे योग-क्षेमका निर्वाह करनेमें परमात्मा पूर्ण समर्थ हैं; इसी तरह अपने प्रति उनकी प्रेमप्राप्ति भी पूर्णरूपसे एक *निश्चित तथ्य है। अतएव जब* चिन्ताका लेशमात्र भी कोई कारण नहीं है, हमें अपने आपको उनकी इच्छापर ही निर्भर कर देना चाहिये। भगवत्प्राप्तिके मार्गमें यह साधन-क्रम सर्वाधिक सुगम है। यही भक्तियोग कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा उपदिष्ट कर्मयोग और ज्ञानयोगकी अपेक्षा आध्यात्मिक उत्थानके आकाङ्क्षी हममेंसे अधिकांशके लिये यह भक्तियोग ही उपयुक्त है।

नाम-संकीर्तन

श्रीरामेति जनार्दनेति जगतां नाथेति नारायणे-
त्यानन्देति दयापरेति कमलाकान्तेति कृष्णेति च।
श्रीमन्नाममहामृताब्धिलहरीकल्लोलमग्नं मुहु-
र्मुह्यन्तं गलदश्रुनेत्रमवशं मां नाथ नित्यं कुरु॥

श्रीकान्त कृष्ण करुणामय कञ्जनाभ
कैवल्यवल्लभ मुकुन्द मुरान्तकेति।
नामावलीं विमलमौक्तिकहारलक्ष्मी-
लावण्यवञ्चनकरीं करवाम कण्ठे॥
(श्रीलक्ष्मीधर)

भगवन्नाम-स्मरण और भगवत्प्रार्थनाका रहस्य

(लेखक—जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य आचार्यपीठाधिपति स्वामीजी श्रीराघवाचार्यजी महाराज)

नाम-रूपात्मक इस जगत्के प्रत्येक पदार्थका अपना नाम-रूप है। पदार्थका यह नाम-रूप एक पदार्थको दूसरे पदार्थसे पृथक् सिद्ध करता है। इस प्रकार पदार्थोंकी जो अनेकता प्रकट होती है, वह भौतिक वस्तुओंमें एकको दूसरेसे भिन्न प्रमाणित करती हुई एक-एक व्यक्तिके नाम-रूपकी अलग-अलग स्थितिको स्पष्ट कर देती है। धर्मशास्त्रकार मनुने—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥
(१।२१)

अर्थात् 'सृष्टिकर्ताने अनन्त अपौरुषेय वेद-ज्ञानके अनुसार सबके नामों एवं कर्मोंकी पृथक्-पृथक् व्यवस्था की' यह कहकर इस अनेकताको मान्यता दी और वैज्ञानिक विश्लेषणकी पद्धतिने इसको प्रत्यक्ष दिखा भी दिया। तथापि इन अनेकताओं एवं विविधताओंके अन्तरका सूक्ष्म निरीक्षण करनेपर जिस एकताका अनुभव होता है, उसका किसी भी प्रकार अपलाप नहीं किया जा सकता। एक ही व्यक्तिमें जहाँ बाह्य अङ्गोंकी दृष्टिसे अनेकता दिखायी देती है, वहाँ आन्तरिक दृष्टिसे एक व्यक्तित्वका अनुभव होता है। भौतिक पदार्थोंमें भी बाह्य दृष्टिसे दिखायी देनेवाली भिन्नता मौलिक दृष्टि होनेपर तात्त्विक एकताकी ओर अग्रसर होती है। शरीरके सारे अङ्ग जिस प्रकार एक शरीरी आत्माके अपृथक्सिद्ध विशेषण प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार जगत्के समस्त पदार्थ जड-चेतनरूप सारे नाम-रूप एक परमतत्त्वके अपृथक्सिद्ध विशेषण हैं। शरीरको शरीरीसे अलग नहीं किया जा सकता। शरीरकी सत्ताका आधार शरीरी ही होता है। इसी प्रकार परमतत्त्व इस जगत्का आधार है और जगत् परमतत्त्वका आधेय है।

परमतत्त्व और जगत्के आधार-आधेय-भावका प्रतिपादन करती हुई तत्त्वमीमांसा जब आचार-पक्षका विवेचन करती है और नीति-नियमोंका संकलन करती है तो परमतत्त्वका नियन्तृत्व और जगत्का नियाम्यत्व प्रकाशमें आता है।

जो जगत्का आधार है, जगत्का नियन्ता है, वह जगत्का शेषी भी है। जगत् परमतत्त्वका शेषभूत है, उसी प्रकार जिस प्रकार कि शरीरधारी चेतन शरीरको अपना शेषभूत मानता है।

शरीर शरीरी चेतनके लिये है, वह जड शरीरके नहीं है। शरीर जड है। शरीरी चेतन जड नहीं है, किंतु उसे भी शरीरका पूरा ज्ञान नहीं। शरीरका आधार और नियन्ता माने जानेपर भी वह पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं। वह भगवत्-शेषभूत है।

सर्वशेषी तो हैं जगदाधार, जगन्नियन्ता जो समस्त जगत्को स्वतः सर्वदा और सर्वथा जानते हैं, जो समस्त जगत्को धारण करते हैं, धारण करते हुए जो सम्पूर्ण जगत्का नियमन करते हैं, जो धारण और नियमन करनेमें कभी शिथिल नहीं होते, जो घटित न होनेवाली घटनाको घटित करनेकी सामर्थ्य रखते हैं तथा बिना किसी अन्यकी सहायताके अपने तेजसे समस्त जगत्को अभिभूत किये रहते हैं। जानना उनका ज्ञान है, धारण करना उनका बल है, नियमन करना उनका ऐश्वर्य है, शिथिल न होना उनका वीर्य है, अघटित घटन-सामर्थ्य उनकी शक्ति है और अभिभूत किये रहना उनका तेज है। ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज—ये ही छः गुण हैं, जो परमतत्त्वकी भगवत्ताको प्रकट करते हैं और जिनके कारण परमतत्त्वको 'भगवान्' कहा जाता है।

महामुनि सूतने श्रीमद्भागवतसंहिताको उपस्थित करते समय कहा था—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥
(१।२।११)

आशय यह कि 'जो तत्त्वदर्शियोंके परमतत्त्व हैं, वे सच्चिदानन्दघन हैं। वे ही ब्रह्मवेत्ताओंके परब्रह्म हैं। वे ही योगियोंके परमात्मा हैं और वे ही भक्तोंके भगवान् हैं।'

ब्रह्मविद्याओंमें वेदन (ज्ञान-) की चर्चा मिलती है। योगिजन ध्यानकी बात कहते हैं। ब्रह्मविद्याओंसे प्राप्त ज्ञान और योगियोंकी साधनासे सिद्ध ध्यान जिस 'स्मृति' को जगाता है, भगवान्‌का भक्त (भागवत) नामस्मरणके द्वारा इस दिशामें प्रवृत्त होता है। भागवतकी मान्यता होती है—

'विपद्विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः।'

आशय यह कि 'जगद्व्यापी भगवान्‌का विस्मरण अर्थात् भूल जाना विपत्ति है और जो जगत्‌में व्याप्त हैं और जिनपर जगत् आधारित है, उन भगवान्‌का स्मरण ही सम्पत्ति है।'

भगवन्नामस्मरणसे तात्पर्य है भगवान्‌के उन नामोंका स्मरण; जिनसे भगवान्‌की भगवत्ता प्रकट होती है। वैसे तो सारे ही पदार्थोंके अन्तर्यामी होनेके कारण सारे ही पदार्थोंके नाम भगवान्‌के नाम हैं। वे सर्वात्मा हैं। वे सर्वशब्द-वाच्य हैं। निर्वचनके द्वारा ये शब्द भगवान्‌का बोध कराते हैं। तथापि नामस्मरणमें भगवान्‌के उन नामोंका विशेष महत्त्व है, जिनसे भगवान्‌के स्वरूप, रूप, गुण, वैभव आदिका परिचय मिलता है। विष्णुसहस्रनामका उपदेश देते समय पितामह भीष्मने कहा था—

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये॥

आशय यह है कि भगवान् आत्माओंके आत्मा हैं। उनके जो नाम प्रसिद्ध हैं, जिनसे उनके गुणोंका परिचय मिलता है तथा जिन नामोंका गायन ऋषियोंने किया है उन नामोंको कल्याणके लिये उपदेश दिया जा रहा है।

कहना न होगा कि जहाँ भगवन्नामस्मरणसे प्रेय एवं श्रेयकी प्राप्ति होती है, वहाँ भगवन्नामस्मरण समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला प्रायश्चित्त है। पाप तभी सम्भव होते हैं जब व्यक्ति अपने आपको देश, काल और वस्तुकी सीमाओंसे बाँध लेता है। भगवान् देश-काल-वस्तुकी सीमासे आबद्ध नहीं हैं। उनकी इस अनन्तताका स्मरण होते ही भोगकी व्यक्तिगत सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं।

भगवान्‌की भगवत्ताका बोध करानेवाले नामोंका स्मरण अपेक्षित है। भले ही यह स्मरण संकेतसे हो, परिहासमें हो, प्रशंसा अथवा खेलमें हो, अथवा अन्य किसी प्रसंगमें हो। बस, आना चाहिये भगवान्‌की भगवत्ताका स्मरण। जहाँ भगवान्‌का स्मरण आया जीवनके पाप, ताप एवं संताप समाप्त हो जाते हैं, जीवन भगवदीय बन जाता है। आचार्य श्रीकूरेशके अनुसार तो—

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता
घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः।
संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रं
विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति॥

'लोग चाहे आर्त हों, चाहे विषादयुक्त, चाहे हिम्मत हार चुके हों, चाहे भयभीत हों, चाहे घोर व्याधियोंसे घिरे हों; जो 'नारायण' शब्दका संकीर्तन कर लेते हैं, वे समस्त दुःखोंसे छुटकारा पा जाते हैं और सुखी होते हैं।'

भगवन्नामस्मरणका विशद रूप है—भगवत्स्तवन। भगवन्नाम सूत्र हैं तो भगवत्स्तोत्र इन सूत्रोंके भाष्य हैं। भगवत्तत्त्वकी विस्तृत व्याख्या इन स्तोत्रोंमें मिलती [illegible] महाराज युधिष्ठिरने प्रश्न किया था कि 'किसका स्तवन कि[illegible] जाय, जिससे मानव शुभ प्राप्त कर सके?' पित[illegible] भीष्मका उत्तर था—'भगवान्‌का स्तवन'।

भगवन्नामस्मरणकी पूर्ति होती है भगवत्स्तवनमें [illegible] भगवत्स्तवनकी पूर्ति होती है भगवत्प्रार्थनामें। प्रार्थन[illegible] याचनाका भाव विद्यमान है। प्रार्थी कुछ चाहता [illegible] वह याचना करता है। विषयोंका अनुरागी संसार[illegible] ओर दौड़ता है। वह संसारसे भोगकी याचना कर[illegible] है। किंतु संसार आजतक किसी याचकको तृप्त न [illegible] सका। अतः भगवत्प्रार्थनाका संबल लेकर प्रार्थी भगवा[illegible] से याचना करता है। भोगकी ही सही। उसके मुख[illegible] भगवान्‌का नाम तो निकलता है। उसका ध्यान [illegible] भगवान्‌के गुणोंकी ओर जाता है। वह स्तवन कर[illegible] है भगवान्‌का। वह प्रार्थना करता है भगवान्‌से। उसक[illegible] प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् भोग और मोक्ष दोन[illegible] ही प्रदान करते हैं।

किंतु क्या भगवत्प्रार्थीको भोग या मोक्षकी चाह रह जाती है? भगवत्प्रार्थनाका साधक तो भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये अपना जीवन अर्पित कर देता है। उसे केवल चाह रह जाती है भगवत्कैंकर्यकी। वह भगवत्कैंकर्यकी याचना करता है। भगवत्कैंकर्य ही उसकी साधना होती है और भगवत्कैंकर्य ही उसके जीवनका लक्ष्य होता है।

अपने अंदर लेकर भी मौजूद रहेंगे। 'शिष्यते शेषसंज्ञः' मकड़ीकी भाँति अपने इच्छानुसार जगत्‌की उत्पत्ति और उसका लय करते हैं। कारणोंसे कार्योत्पत्तिमें पदार्थान्तरोंकी आवश्यकता होती है। घड़ा बनानेके लिये मिट्टी, चक्र और रस्सीकी आवश्यकता होती है। मनुष्य बैठता है, घाट बनाता है तब घड़ा बनता है; परंतु इस सृष्टिके बनानेमें भगवान्‌को कुछ भी आवश्यक नहीं होता। वे अपनेमेंसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति करते हैं, उन्हींसे इसकी स्थिति होती है और अन्तमें यह उन्हींमें लय हो जाती है। इस आत्मसृष्टिके कारण भगवान्‌में वैषम्य और नैर्घृण्य दोष नहीं आता। अतएव ऊँचेको ऊँचा और नीचेको नीचा बनाना दोषयुक्त नहीं।

सृष्टिकी उत्पत्ति ही ऊँच-नीच भावोंको लेकर होती है। भगवान् श्रीकृष्ण आज्ञा करते हैं—

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।

इनमें दैवी सम्पदावाले भगवदभिमुख हैं और आसुरीवाले विमुख। उन्हें न भगवन्नाम अच्छा लगता है, न भक्त सुहाता है और न मन्दिरमें प्रेम है। भगवत्सम्बन्धी सभी बातें उन्हें प्रतिकूल प्रतीत होती हैं। जिसको पैत्तिक ज्वर होता है उसकी जीभ कड़ुवी हो जाती है। उसे कैसा भी मिष्ट पदार्थ दीजिये, सब कड़ुवा ही लगता है। इसी प्रकार आसुरी सम्पत्तिवालोंको भगवद्भक्ति, भगवन्नाम मिष्ट नहीं लगते। परंतु यहाँ आसुरी सम्पत्तिका विवेचन नहीं करना है। जो भगवदभिमुख हैं, उनका उद्धार कैसे हो, यही बात विचारनेकी है। इस समय सभी साधन प्रायः नष्ट हो चुके हैं। शास्त्रोक्त आचरण कोई नहीं करता। कहा है—

षड्भिः सम्पद्यते धर्मस्ते दुर्लभतराः कलौ।

'धर्म-सम्पादनके लिये छः बातोंकी आवश्यकता होती है। इस समय ये सभी दुर्लभ हैं। देश, काल, द्रव्य, कर्ता, मन्त्र और कर्म—ये छः साधन हैं।' प्रथम देशको ही लीजिये। असुर-संसर्गसे देशसे पुण्यता छिप गयी है। सारा देश असुरोंसे व्याप्त हो गया है। पुण्यदेश पुण्यहीन हो रहा है।

दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः।

'भगवान्‌की कथा दूर हो गयी। भगवान्‌का गुण-गान भी दूर हो गया।' ऐसे देशोंमें भक्तका निर्वाह कैसे हो? काल तो कलियुग है ही। आज कोई भी शुद्ध द्रव्य मिलना कठिन हो गया है। शुद्ध घृत नहीं मिलता, शर्करा नहीं मिलती। गेहूँका आटातक शुद्ध नहीं मिलता। यज्ञ-यागादि कैसे हों? सारा हविष्य भ्रष्ट हो गया। कर्ता परम्परासे श्रौतकर्मोंके सम्पर्कसे शून्य हैं। पीढ़ियोंसे यज्ञोपवीत नहीं है। जहाँ तीन दिन सावित्रीका जप न करनेसे व्रात्य-संज्ञा होना माना गया है, वहाँ यज्ञोपवीत-संस्कारका भी पता नहीं लगता। संस्कार होता है तो वह विधिप्रयुक्त नहीं होता। लिखा है ब्राह्मणका उपनयन वसन्त ऋतुमें हो, क्षत्रियका ग्रीष्ममें हो और वैश्यका शरद्‌में हो। इन विधियोंको कौन पालता है? किसी भी संस्थामें शास्त्रविधि नहीं मानी जाती। मनमानी अंध-परम्परासे काम होता है।

अन्धा यथान्धैरुपनीयमानाः।

पुराने अंधेके पीछे सब अंधे चलते हैं। कर्ताकी यह दशा है। मन्त्र अध्ययन नहीं किये जाते। वर्णोंका उच्चारण शुद्ध नहीं होता। संयुक्त अक्षर और विविध प्रकारके भेदका प्रायः उच्चारण नहीं किया जाता। मन्त्रोच्चारण वर्ण और स्वरसे शुद्ध होना चाहिये।

'तेऽसुरा हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुः।' 'दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।'

नहीं तो विपरीत फल होता है। परंतु इस बातकी ओर कोई लक्ष्य नहीं है। रहा कर्म, सो कर्म तो प्रायः सभी अवैदिक होते हैं। कर्म और धर्म दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। **'ध्रियते पुण्यात्मभिः इति धर्मः'** असल 'धर्म' शब्दसे क्या प्रतिपाद्य है? शास्त्रकार कहते हैं—**वेदप्रणिहितो धर्मः**—'वेदने जिसे कहा है वही धर्म है।' जो वेदविहित है वह धर्म है और जो वेदसे निषिद्ध है वह अधर्म है। वेद साक्षात् भगवान् हैं। **'वेदो नारायणः साक्षात्'** भगवान् कहते हैं—**'वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।'** अतः वेदोक्त कर्म ही कर्म कहलाते हैं। परंतु वेदको आज कौन पूछता है? ऐसी दशामें धर्मके छः साधन तो दुर्लभ हो गये हैं! फिर उद्धार कैसे हो? इस बातपर विचार करनेसे पूर्व प्रत्येक उद्धार चाहनेवालेको यह विचारना चाहिये कि उनके उद्धारमें बाधक कौन है? इसका विचार करनेसे पता लगता है कि मनुष्यके उद्धारमें बाधक पाप है। जबतक शरीरमें रोगादि रहते हैं तबतक वह आरोग्य लाभ कर सुखी नहीं हो सकता। इसी प्रकार पापोंके कारण मनुष्यको अपने अभीष्टकी प्राप्ति नहीं होती। यदि मनुष्य पापोंका

प्रायश्चित्त नहीं करता तो उसे भयंकर नरकोंमें जाना पड़ता है।

> तस्मात् पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ
> यतेत मृत्योरविपद्यताऽऽत्मना।
> दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा
> भिषक् चिकित्सेत रुजां निदानवित्॥
>
> (श्रीमद्भागवत ६।१।८)

'अतएव मृत्युसे पूर्व ही निदान जाननेवाला वैद्य जैसे रोगका भारीपन-हल्कापन देखकर चिकित्सा करता है, वैसे पापका भारीपन-हल्कापन विचारकर सब लोगोंको शीघ्र ही पापनिवारणके लिये चेष्टा करनी चाहिये।' पापसे सर्वथा अहित होता है—यह देख-सुन और जानकर भी मूढ पुरुष प्रायः विवशकी भाँति पुनः पापोंमें लिप्त होते हैं। फिर प्रायश्चित्त क्या जानकर करे!

> क्वचिन्निवर्ततेऽभद्रात् क्वचिच्चरति तत्पुनः।

'कभी पापसे निवृत्त होना और कभी फिर पाप करना, आज पापका प्रायश्चित्त किया, कल फिर उसी पापको करने लगना।' ऐसे प्रायश्चित्तको तो 'मन्ये कुञ्जरशौचवत्' हाथीके स्नानके समान मानना चाहिये। हाथी खूब नहाता है; परंतु बाहर निकलते ही फिर सूँड़से धूल उछालकर समस्त शरीरपर डाल लेता है।

ऐसी दशामें प्रायश्चित्तसे क्या हो सकता है? कर्मसे कर्मकी निवृत्ति नहीं हो सकती। जो अशुभ कर्मका शुभ कर्मके द्वारा निवारण करना चाहते हैं, वे **'यथा पङ्केन पङ्काम्भः'** कीचड़से कीचड़को धोना चाहते हैं।

पश्चात्तापका नाम प्रायश्चित्त है। परंतु यह तो सहसा नहीं होता। फिर इतने बड़े प्रायश्चित्तोंकी विधि क्यों है? यह अविद्वान् अधिकारीके लिये आडम्बर मात्र है।

> वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः।

कृच्छ्र-प्राजापत्यादि महत्कर्म श्रद्धा और विश्वासके लिये ही बतलाये गये हैं। ब्रह्महत्याके लिये अश्वमेध यज्ञ करो। अधिक व्यय, अधिक समय और अधिक प्रकार होनेसे लोगोंकी उसमें श्रद्धा हो जाती है। धनी रोगीको मुक्ता-माणिक्यके भस्मोंमें ही श्रद्धा होती है, अल्पमूल्यकी अधिक गुणसम्पन्न ओषधिमें श्रद्धा नहीं होती। इसी हेतुसे उनके लिये ऐसे प्रायश्चित्तोंका विधान है। परंतु जो लोग सर्वथा नियम पालन करते हैं, उनको तो व्याधि कभी हो ही नहीं सकती।

> नाश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि।

व्याधि हो जानेपर कुछ ऐसे भक्त, धीर और श्रद्धा-सम्पन्न पुरुष होते हैं जो अपने कर्मोंसे उसे हटाते हैं। कर्म कौनसे?—

> तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च।
> त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन वा॥
>
> (श्रीमद्भा० ६।१।१३)

'तपसे, ब्रह्मचर्यसे, मनोनिग्रहसे, इन्द्रियदमनसे, भीतरी त्यागसे, सत्यसे, शौचसे और यम-नियमसे वे अपने कायिक, वाचिक और मानसिक बड़े-बड़े पापोंको भी नष्ट कर देते हैं।' कैसे नष्ट कर देते हैं? 'वेणुगुल्ममिवानलः।'—जैसे बाँसके वनको अग्नि जला देता है। इससे यह सिद्ध होता है कि ऐसे धीर, भक्त और श्रद्धालु पुरुषोंके द्वारा तप-ब्रह्मचर्यादि कठिन साधनोंसे नाश किये हुए पापोंमें भी जले हुए बाँसोंकी भस्मके समान पापोंकी वासना तो अवशिष्ट रह ही जाती है। पापोंकी अशेष निवृत्ति नहीं होती। यह व्यवस्था तो सर्वसाधारणके लिये है। परंतु कुछ ऐसे लोग भी हैं जो जगत्में बहुत थोड़े ही होते हैं। सब जगह नहीं मिलते। कहीं-कहीं देखनेमें आते हैं। ऐसे वे—

> केचित् केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः।
> अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः॥
>
> (श्रीमद्भागवत ६।१।१५)

—'वासुदेवपरायण भक्तजन केवल भक्तिके द्वारा ही सम्पूर्ण पापोंका नाश कर देते हैं। बाँसके जलनेपर भस्म अवशेष रह जाती है, परंतु यहाँपर कुछ नहीं रहता। यहाँ तो पापोंका समूल नाश होता है जैसे **'नीहारमिव भास्करः'** सूर्यके उदय होनेपर उसकी प्रखर किरणोंसे कुहरेका समूल नाश हो जाता है।' यही अन्य साधनोंमें और भक्तिमें अन्तर है। अन्य प्रायश्चित्तोंसे पाप नष्ट होते हैं, पाप-वासना नष्ट नहीं होती। परंतु केवल भक्तिसे पाप सम्पूर्ण वासनासहित नष्ट हो जाते हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि ऐसे भगवद्भक्त तप आदिसे रहित होते हैं। भक्तोंमें वे गुण स्वाभाविक होते हैं।

जिन्होंने अपना मन, प्राण श्रीकृष्णके अर्पण कर दिया है, जिनके प्राण भगवान्‌के प्राणोंके साथ मिल गये हैं, जिन्हें सांसारिक किसी भी पदार्थकी कभी कोई वासना भूलकर भी नहीं होती, जो बैठते-उठते, देखते-सुनते, वार्तालाप करते केवल एक श्रीकृष्णके सिवा और किसीकी इच्छा नहीं करते, ऐसे पुरुष ही वास्तवमें 'सत्पुरुष' हैं। ऐसे कृष्णार्पितप्राण 'सत्पुरुष' भगवदीयकी सेवाके द्वारा पापी मनुष्य जितना शीघ्र पवित्र हो सकता है उतना तप आदि साधनोंसे नहीं होता। यह भक्तिमार्ग बहुत ही सीधा, कल्याणप्रद और अकुतोभय है। इस मार्गमें सुशील और नारायणपरायण भागवतगण ही विचरण करते हैं। इसपर सब नहीं चल सकते।

भगवान्‌से विमुखको कोई भी प्रायश्चित्त पवित्र नहीं कर सकता। मदिराके घड़ेमें गङ्गाजल डालनेसे मदिरा पवित्र नहीं होती। इसी प्रकार भगवद्विमुखका प्रायश्चित्त व्यर्थ होता है। परंतु—

> सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो-
> निर्वेशितं तद्गुणरागि यैरिह।
> न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्
> स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः॥
>
> (श्रीमद्भागवत ६। १। १९)

'जो पुरुष केवल एक बार भी अपने चित्तको श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें प्रेमपूर्वक लगा देते हैं, वे पापसे मुक्त हो जाते हैं। पाश हाथमें लिये घोररूप यमदूतोंको वे स्वप्नमें भी नहीं देख पाते।'

यहाँपर शुकदेवजी महाराज अजामिलका दृष्टान्त देते हैं। यह दृष्टान्त सदा स्मरण रखनेका है। अजामिल बड़ा ही विद्वान्, श्रोत्रिय और ज्ञानसम्पन्न ब्राह्मण था। पिताके लिये पुष्पादि लाने वनमें गया था। लौटते समय एक स्वैरिणीको किसी शूद्रके साथ रमण करते देखकर उसका मन चञ्चल हो उठा और वह अपना समस्त धर्म, कर्म और अपनी पतिव्रता पत्नीको त्यागकर उस स्वैरिणीमें आसक्त हो गया। उसने बड़े-से-बड़े पाप किये। स्वैरिणीके अनेक संतानें हुई, जिनमें अन्तिम पुत्रका नाम 'नारायण' था। अजामिलने मृत्युकालमें अपने पुत्र नारायणको पुकारा। धोखेसे 'नारायण' नामका उच्चारण होनेके कारण उसका उद्धार हो गया। इस दृष्टान्तमें दो बातें विचारनेकी हैं। क्षणमात्रके दुःसंगसे अधःपात हो गया और अन्तमें क्षणमात्रके नामोच्चारणसे उद्धार हो गया! जिस समय यमके दूत अजामिलकी आत्माको निकाल रहे थे, उसी समय नारायण-नामोच्चारण मात्रसे ही भगवान् विष्णुके मनोहर पार्षद वहाँपर आ पहुँचे और उन्होंने यमदूतोंको समझाकर, धमकाकर वहाँसे निकाल दिया। यह सब 'नारायण' नामसे हुआ। यमदूतोंने विष्णुदूतोंसे कहा—

> वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।
>
> (श्रीमद्भागवत ६। १। ४०)

'वेदमें जो कर्तव्य बतलाया है वही धर्म है, उसके विपरीत अधर्म है—'ऐसा कहकर अजामिलके वेदप्रतिकूल आचरणोंका इतिहास सुनाया और उसे यमराजके पास ले जानेके लिये कहा। इसपर विष्णुदूतोंने उन्हें भागवतधर्म बतलाते हुए यह कहा कि 'इस ब्राह्मणने एक जन्म तो क्या कोटि जन्मोंके पापका प्रायश्चित्त कर डाला; क्योंकि इसने विवश होकर मोक्ष देनेवाले श्रीहरिनामका उच्चारण किया। यह पापिष्ठ 'नारायण' इन चार अक्षरोंके उच्चारण मात्रसे ही पापमुक्त हो गया। सुवर्ण चुरानेवाला, मित्रसे द्रोह करनेवाला, ब्राह्मण, स्त्री, राजा, पिता, माता और गौका वध करनेवाला, गुरुकी स्त्रीसे बुरा सम्बन्ध रखनेवाला, मदिरा पीनेवा और भी जो बड़े-बड़े पातक करनेवाले हैं, उन सब श्रीकृष्णका नामोच्चारण ही उत्तम प्रायश्चित्त है; नामसे श्रीकृष्णमें मति हो जाती है और श्रीकृष्ण होते ही 'सूर्यनीहारवत्' पापोंका सारा कुहरा नष्ट है। पापी पुरुष हरिनामके कीर्तनसे जैसा शुद्ध होता ब्रह्मवादी मुनियोंके द्वारा बतलाये हुए अन्यान्य प्रायश्चित्तोंसे नहीं होता; क्योंकि प्रायश्चित्त करनेपर भी कुमार्गमें जाता है। अतएव जो लोग पापको सर्वथा स करना चाहते हैं, उनके लिये भगवन्नाम-कीर्तन ही प्रायश्चित्त है। उसीसे चित्तकी शुद्धि होती है। इसलिये हे य तुम इस ब्राह्मणको मत ले जाओ। इसने मरते समय भग का उच्चारण कर अपने सब पापोंका प्रायश्चित्त कर पुत्रादिके संकेतसे हो, हँसीसे हो, गीतालापपूरणार्थ अवज्ञासे हो—भगवान् श्रीकृष्णका नाम सब पापोंको देता है। यह सभी विद्वान् मानते हैं—ऊँचेसे गिरते चलते समय, पैर फिसल जानेके समय, अङ्ग-भङ्ग हो समय, सर्पादिसे डसे जानेपर, तपाये जाने और चोट समय जो अवश होकर भी 'हरि' इतना कहता है, व यातनाओंसे छूट जाता है। शुकदेवजी महाराज कहते

> म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्
> अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्
>
> (श्रीमद्भागवत ६। २

'मृत्युके समय पुत्रका नाम लेनेमें भगवान्का नाम उच्चारण कर महापापी अजामिल भी भगवान्के धामको चला गया; तब जो व्यक्ति श्रद्धासे उनका नाम लेता है, उसके मुक्त होनेमें तो क्या संदेह है ?'

जब विष्णुदूतोंने यमदूतोंसे अजामिलको छुड़ा लिया तब वे यमदूत दौड़कर यमराजके पास गये और उनसे कहने लगे कि 'प्रभो ! हम तो आपको ही सबसे बड़ा शासक मानते थे; परंतु आज तो जब हम आपकी आज्ञासे एक पापीको लेने गये तो वहाँ अकस्मात् चार दिव्य पुरुषोंने आकर हमारे हाथोंसे उसको छुड़ा लिया। कृपा कर यह बतलाइये, वे कौन थे ? क्या आपसे भी बढ़कर कोई और शासन-कर्ता है ?' यमराजने कहा—'अच्छा हुआ तुमलोग बचकर आ गये। यदि अधिक कुछ करते तो शायद चिट्ठियोंमें ही आते। इस चराचर जगत्का एक सबसे बड़ा अधीश्वर है। मैं, महेन्द्र, निर्ऋति, वरुण, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, महेश्वर, विश्वेदेव, साध्यगण, मरुद्गण, रुद्रगण, सिद्धगण, विश्वस्रष्टा और समस्त प्रधान-प्रधान देवता तथा सत्त्वप्रधान भृगु आदि महर्षिगण भी मायाके प्रभावसे जिनकी चेष्टाको नहीं जान सकते, उनके देवपूजित, दुर्लभ-दर्शन आश्चर्यमय दूत विष्णुभक्तोंको बचानेके लिये पृथिवीमण्डलमें भ्रमण किया करते हैं। साक्षात् भगवत्प्रणीत धर्मको ऋषि, देवता और सिद्धगण भी नहीं जानते। तब असुर, मनुष्य, विद्याधर और चारणोंकी तो बात ही क्या है। इस विशुद्ध, दुर्बोध और गुप्त भागवतधर्मको ब्रह्माजी, शिवजी, नारद, सनत्कुमार, कपिल, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि, शुकदेव और मैं—ये बारह जन ही जानते हैं। हे दूतो ! नाम-कीर्तनादिके द्वारा भगवान्में लगाया गया जो भक्तियोग है वही इस लोकमें पुरुषोंका परम धर्म है। हे पुत्रो ! तुमने हरिनामका माहात्म्य देखा ? पापी अजामिल धोखेसे नाम लेकर भी मृत्युके पाशसे मुक्त हो गया। मायासे मोहित बुद्धिवाले लोग अर्थवादरूप पुष्पभूषित वेदविधिमें विमोहित होनेके कारण ही वैतानिक महान् प्रायश्चित्त कर्मोंमें लगकर नामके अति गुह्य माहात्म्यको नहीं समझ सके ! जो पुरुष भगवान्के शरणागत और सर्वत्र समदर्शी हैं और सिद्धगण जिनकी पवित्र कथाका गान किया करते हैं, उन सब भगवदीयोंके निकट तुम भूलकर भी न जाया करो। भगवान्की गदा उन लोगोंकी सर्वदा रक्षा किया करती है। उनको दण्ड देनेमें न तो हम समर्थ हैं और न काल ही। अकिंचन परमहंस लोग सर्वसङ्ग परित्याग कर निरन्तर जिनकी सेवा करते हैं, उन मुकुन्दके पादारविन्द-मकरन्द-रसके मधुर आस्वादनसे विमुख होकर जो असाधु लोग बारंबार नरककी इच्छा करते हैं (जैसे पक्के चोर कारागारको ही घर समझकर बारंबार उसीमें जाना चाहते हैं) उनको ही मेरे पास लाया करो।

'जिनकी जिह्वा एक बार भी भगवन्नाम-गुणका उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त एक बार भी भगवच्चरणारविन्दका स्मरण नहीं करता, जिनका मस्तक एक बार भी श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें प्रणत नहीं होता या जो एक बार भी भगवत्-सेवाका व्रत नहीं लेते, उन दुष्टोंको मेरे पास लाया करो !' अपने दूतोंसे यों कहकर यमराज भगवान्से प्रार्थना करने लगे कि 'हे प्रभो ! हमारे दूतोंने जो बिना जाने दोष किया है उसको आप क्षमा करें !'

यह इतिहास मलयाचलपर बैठे हुए अगस्त्य मुनिने भगवान्की पूजा करते हुए कहा। इसपर श्रीआचार्यचरण लिखते हैं कि इस इतिहासको यदि कोई वैष्णव कहता तो इसके सत्यासत्यपर बड़ी टीकाएँ होतीं, परंतु अगस्त्य मुनि तो शैव थे। जब उन्होंने भगवन्नाम-माहात्म्यका प्रतिपादन किया तब कोई क्या कह सकता है ? एक बात और ध्यान देनेकी है। अगस्त्य मुनिने जब यह इतिहास कहा, उस समय वे भगवान्की पूजा कर रहे थे और शालिग्रामजीकी मूर्ति उनके हाथमें थी। इससे यह सिद्ध होता है कि अगस्त्य मुनिने भगवान्को हाथमें लेकर यह बात कही कि यही सिद्धान्त सर्वथा सत्य है—इसमें कुछ भी रूपान्तर नहीं है।

इस इतिहाससे यह निश्चित हो गया है कि भगवन्नाम ही इस कालमें जीवोंके उद्धारके लिये सबसे उत्तम उपाय है। परंतु इस नामका प्रयोग पापोंके नाश करनेमें नहीं करना चाहिये। भला चींटियोंको मारनेके लिये कभी तोप लगायी जाती है। साधारण पापोंकी निवृत्तिके लिये भगवन्नामका प्रयोग क्यों ? एक आदमीने एक सिंह पाल रक्खा था, सिंह सब तरहसे उसके वशमें था। वह आदमी किसी राजाके यहाँ नौकर रहा। एक दिन राजाकी सवारी जा रही थी, वह आदमी भी अपने सिंहको लिये सवारीके साथ था। इतनेमें एक बौराहा कुत्ता आया, राजाने उस मनुष्यको आज्ञा दी कि 'इस कुत्तेपर अपना सिंह छोड़ दो।' उसने कहा—'महाराज ! यह नहीं होगा। मैंने कुत्तेपर छोड़नेके लिये सिंह नहीं पाला है। यदि आप किसी मत्त गजेन्द्रपर इसे छोड़नेको कहते तो मैं अवश्य छोड़ता।' इसी प्रकार भगवन्नामका भी साधारण पापनाशके लिये प्रयोग नहीं करना चाहिये।

नाम तो प्रियसे प्रिय वस्तु है। इस नामसे भगवान्‌की ृति होती है। जब किसी अपने प्रियको मनुष्य भूला हुआ ोता है और कोई दूसरा पुरुष सहसा उसका नाम लेता तो उसे अपने प्रियकी स्मृति हो जाती है और उस ृतिसे उसे बड़ा आनन्द होता है। जब जगत्‌के प्रिय दार्थोंकी नामके द्वारा स्मृति होनेपर ऐसी अवस्था ाती है; तब श्रीकृष्णकी स्मृतिमें तो बड़ा ही आनन्द होना ाहिये। श्रीकृष्णके समान प्रिय और कौन होगा ? जबतक स परम प्रियका पता नहीं लगता, तभीतक दूसरी वस्तुएँ य लगती हैं। श्रीकृष्ण-नाममें प्रीति होनेपर जब उसके धुर्यसे कुछ परिचय हो जाता है तब फिर इन लौकिक ी बातोंकी ओर मन भूलकर भी नहीं जाता। अतएव ावन्नामस्मरण भगवत्प्रीतिके लिये ही करना चाहिये। ाणवोंको तो पापनिवृत्तिके लिये भी भगवन्नाम नहीं लेना ाहिये।

इसमें कोई संदेह नहीं कि भगवन्नाम पापनाश करनेमें सबसे अधिक समर्थ है।

> नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
> तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

'नामोंसे पापोंका जितना नाश होता है उतना पाप महापापी भी नहीं कर सकता।' परंतु इस अधिकारको पाकर इसका दुरुपयोग कदापि नहीं करना चाहिये। 'पाप करते चलो और नाम लेते चलो'—यह रीति बहुत बुरी है। पाप कर चुकूँ, फिर नाम ले लूँगा,—इस विचारसे नाम लेना एक नामका अपराध है। इसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है। अतएव पाप करनेमें या पापोंकी निवृत्तिमें भगवन्नामका प्रयोग नहीं करना चाहिये और न क्षणिक अल्प ग्राम्यसुखोंके लिये ही भगवन्नाम लेना चाहिये। भगवन्नाम तो उस नित्य निरतिशय परमानन्द भगवत्-स्वरूपकी प्राप्तिके लिये लेना चाहिये जो मनुष्य-जीवनका परम उद्देश्य है।

श्री'कृष्ण'-नाम

(लेखक—श्रील आचार्यदेव त्रिदण्डी स्वामी श्रीमद्भक्तिविलासतीर्थजी गोस्वामी महाराज)

१४८६ ई० के मार्च (फाल्गुन) के महीनेमें पश्चिमी ंगालके नदिया जिलेमें श्रीमायापुरमें श्रीचैतन्यमहाप्रभु इस ृत्युलोकमें प्रकट हुए। अपने भक्तोंके प्रार्थना और निवेदन रनेपर पूर्ण ब्रह्मने नररूपमें अवतार लिया। भारतके लिये ह एक दिव्य दिवस था। वे इस मृत्युलोकमें केवल ४८ वर्ष रहे, जिसमें उन्होंने २४ वर्ष गृहस्थाश्रममें बिताये और ोष २४ वर्ष एक भिक्षुक संन्यासीके रूपमें। वे धर्मगुरु थे और परमार्थ-जीवनके जीते-जागते उदाहरण थे तथा विश्वके श्रेष्ठ आचार्योंमेंसे एक अभूतपूर्व आचार्य थे।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भारतके देदीप्यमान आध्यात्मिक इतिहासमें एक स्थायी और गौरवपूर्ण अध्याय जोड़ दिया है। उन्होंने गहन अध्यात्मवादको अभेद्य रहस्यवादके दुर्गसे मुक्त करके जीवनके जीते-जागते आदर्शके रूपमें लाकर खड़ा कर दिया है। जो इतने दिनोंतक निःसार तर्क और कल्पना तथा दुर्बोध और संदिग्ध उलझनोंसे पूर्ण दर्शनशास्त्रका अभेद्य रहस्य बना हुआ था, वह अब उनके उपदेश और आनुगत्यसे हस्तामलकवत् सुस्पष्ट हो गया।

इस संतप्त जगत्‌के लिये वे एक नया संदेश लेकर आये। वे एक पथके निरूपक थे। वह 'शब्द'—ध्वनि और भगवन्नामका पथ और संदेश था। उन्होंने यह प्रकट कर दिया कि नामके द्वारा मनुष्य अपनी आध्यात्मिक और दैवी प्रकृतिको विकसित करके सारी निराशा और विषय-वासनासे ऊपर उठ सकता है। जो कुछ इतने दिनोंतक कल्पनाके रूपमें था, महाप्रभुके हाथमें एक विज्ञान बन गया। भगवन्नाम स्वयं उद्धार करनेवाला है। उन्होंने ही यह बतलाया और दिखला दिया कि नाम और स्वयं भगवान्‌में कोई अन्तर नहीं है। नाम भगवन्नामके अर्थका अभिधायक है। भगवान् और भगवद्भक्त एक ही प्रेमसूत्रमें आबद्ध हैं। उन्होंने शब्द और अर्थ, ज्ञाता और ज्ञेयकी अभिन्नताको दिखलाया। शब्द नाद (Logos) है। भगवान्‌ने नाम और रूपमें जगत्‌की सृष्टि की है। अतएव भगवान्‌के नाम और स्तवनके गानकी बड़ी महिमा है।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुने कीर्तन अर्थात् भगवन्नामके गानका प्रचार किया। जब पूर्ण विनय, भक्ति और श्रद्धाके साथ भगवन्नामका उच्चारण किया जाता है तो भगवान् स्वयं भक्तके

साथ तादात्म्यभावमें आ जाते हैं। विश्व-ब्रह्माण्ड ध्वनि और प्रकाशमय है। नाम ध्वनि है और रूप प्रकाश है। नामकी ध्वनि विभिन्न रूपों और आकृतियोंमें अभिव्यक्त होती है। ध्वनिसे प्रकाशकी सृष्टि होती है। उनका (महाप्रभुका) संदेश है कि 'प्रभुका नाम लो और मायाके प्रपञ्चसे मुक्त हो जाओ। भगवान्‌के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ दो।' यही श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी नयी विधि और नया दर्शन था। यह साधनाके लक्ष्य और विधिके सम्बन्धमें एक मौलिक देन थी। उन्होंने इस साधनाको विकसित किया और इसको आकार-प्रकार प्रदान करनेके लिये विधि-विधान तथा एक पद्धतिका निर्माण किया। कीर्तनके विविध रूप होते हैं— नामकीर्तन—भगवान्‌के नामका उच्चारण; लीलाकीर्तन— भगवान्‌की लीलाओंका गान; नाम-कीर्तन—भगवान्‌के एक नामका गान; संकीर्तन—सामूहिकरूपमें भगवान्‌के नामका गान। तथापि केवल उन्मत्त होकर एक दलमें या एक सुरमें चिल्लाना ही वास्तविक भक्ति नहीं है। मानव-जीवनमें प्रत्येक कार्यमें और प्रत्येक क्षणमें भगवान्‌की उपस्थितिकी उपलब्धि-की साधनापर वे अधिक जोर देते थे।

प्रभुके नाम-कीर्तनके साथ-साथ हृदयमें प्रभुके सांनिध्यकी लालसाका होना आवश्यक है। भावावेश उस भजनपरायण कीर्तनका एक अङ्ग है, जो श्रीचैतन्य महाप्रभुकी एक बहुत बड़ी देन है और जो आज वैष्णवोंकी भगवद्भक्तिका एक रूप तथा वैष्णवोंकी आत्मानुभूति और साधनाके पथकी एक महती परम्परा बन गया है।

भगवान् श्रीकृष्णका नाम—

(१) चिन्तामणि, कल्पवृक्ष है।
(२) स्वयं श्रीकृष्ण है।
(३) चित्स्वरूप है।
(४) दिव्य रसमूर्ति है।
(५) पूर्णतम है।
(६) 'पावनं पावनानाम्' है।
(७) सनातन है।
(८) निर्विशेष सत्य है।
(९) साक्षात् श्रीकृष्णके साथ एक और तद्रूप है।

श्रीरूपगोस्वामीने अपने 'श्रीविदग्धमाधव' नाटकमें लिखा है—'विजयतु भगवान् श्रीकृष्णः'में कितना अमृतानन्द है, कोई नहीं जानता। यह 'कृष्' और 'ण' दो अक्षरोंसे बना है। 'कृष्ण' शब्दका मुखसे उच्चारण होते ही कोटि-कोटि रसनामें इन नामकी माधुरीके आस्वादनकी अभिलाषा होती है, श्रवणरन्ध्रमें 'कृष्ण' शब्दके प्रवेश करते ही असंख्य श्रोत्रमें 'कृष्ण' नाम सुननेकी लालसा दीप्त हो उठती है, नामके स्मरण करते ही मन और चित्तकी सारी दूसरी क्रियाओंका अवसान हो जाता है।'

भगवान्‌की आराधनाकी सारी पद्धतियोंमें, यत्नपूर्वक भगवान्‌के नाम और यशका संकीर्तन भगवान् श्रीकृष्ण, (परतत्त्व, परमब्रह्म) को प्रसन्न करनेकी सबसे सहज और सरल रीति है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

भक्तोंके सङ्गमें रहकर इस महामन्त्रका कीर्तन ही मायाके बन्धनसे मुक्त होनेका एकमात्र उपाय है। इस कलियुगमें इसके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुने श्रीकृष्णनामकी अलौकिक ध्वनिको प्रत्यक्ष किया था, जिसका उच्चारण लौकिक जिह्वासे नहीं हो सकता और न मन ही जिसका मनन कर सकता है। आध्यात्मिक चेतनाके जाग्रत् होनेपर यह नाम स्वयमेव जिह्वापर नृत्य करने लगता है।

नाम-गान-सुखमें ही लाख जन्म बीतें

योगश्रुत्युपपत्तिनिर्जनवनध्यानाध्वसम्भावितस्वाराज्यं प्रतिपाद्य निर्भयममी मुक्ता भवन्तु द्विजाः।
अस्माकं तु कदम्बकुञ्जकुहरप्रोन्मीलदिन्दीवरश्रेणीश्यामलधामनाम जुषतां जन्मास्तु लक्षावधि॥

'द्विजगण योगसाधन, श्रुतिका अनुशीलन, निर्जन वनमें ध्यान, तीर्थाटन आदिके द्वारा निर्भय स्वाराज्य प्राप्त करके मुक्त होना चाहें तो वे भले ही ऐसा करें। हमलोग तो कदम्बकुञ्ज-कुहरमें नवविकसित इन्दीवरश्रेणीके सदृश श्यामल तेज श्यामसुन्दरके नाम-गान-सुखमें ही निमग्न रहना चाहते हैं; भले ही इसके लिये हमें लाखों बार जन्म धारण करना पड़े।'

श्रीकृष्णचैतन्यदेव और नामसाधना

(लेखक——भागवताचार्य प्रभुपाद श्रीमत् प्राणकिशोर गोस्वामी महाराज, एम्० ए०, विद्याभूषण, साहित्यरत्न)

परम उदार कल्याण-सम्पादक श्रीहरिनामस्मरण कराकर मेरा परम कल्याण कर रहे हैं।

श्रीकृष्णचैतन्यदेव बंगालमें श्रीहरिनामके साथ आविर्भूत हुए। १४०७ शकाब्द, फाल्गुन मास, पूर्णिमाका संध्याकाल और चन्द्रग्रहणका समय था। गङ्गाके किनारे नवद्वीपधाममें बहुतसे लोग चन्द्रग्रहणमें शुद्धिकी कामनासे हरिनाम लेते हुए गङ्गास्नान करने जा रहे थे। उसी अवसरपर महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवका जन्म हुआ। पण्डितोंने गणना करके बतलाया था कि जिसने जन्म लेते समय श्रीहरिनाम-कीर्तन कराया है, वह अतुलनीय नामप्रचारक होगा। दिन-प्रतिदिन अद्भुत, विचित्र जीवन-चर्यामें श्रीनामकी महिमाकी घोषणा होने लगी श्रीचैतन्यदेव और उनके भक्तोंके माध्यमसे।

वेदोंमें कर्म, योग और ज्ञानकी साधनामें श्रीहरिनामकी उपयोगिता बतलायी गयी है। अव्यक्त आनन्दमय भगवत्स्वरूप ध्वनिमें—नाममय ध्वनिमें ही पहले प्रकटित होता है। प्राणकी गुप्तरूपमें जो आनन्द-झङ्कार उठती है, वह कण्ठके द्वारा ध्वनिरूपमें अभिव्यक्त होती है। कभी ॐकार, कभी ह्रींकार, कभी हुंकार, कभी ह्लींकार और कभी कृष्ण, गोविन्द, गोपाल और रामरूपमें व्यक्त होती है। जिनके कण्ठसे महामहिम परमेश्वरकी रसमय नामध्वनि समुच्चारित होती है, जनसमूहके कल्याणके लिये वे 'ऋषि' हैं। उनके वर्णनकी माधुर्य-प्रक्रियाका नाम ही छन्द है और जिनकी आनन्द-सत्ताकी उपलब्धिके लिये ध्वनिका प्राकट्य अर्थात् स्थूल अभिव्यक्ति होती है, वही 'देवता' हैं। जीवनमें शान्ति और स्वच्छन्दताकी प्राप्तिके लिये ही उनका 'विनियोग' होता है। साधकोंके सामने 'नाम देवता' विभिन्न रूपमें उपलब्ध होते हैं, तथापि उनके अद्वय ज्ञान और आनन्द-सत्तामें कोई व्यतिक्रम नहीं होता। साधनाके व्यतिक्रममें कभी विराट्, कभी भयंकर, कभी शान्त कमनीय और कभी परमात्मीय रमणीय भावमें साधक उनको ग्रहण करते हैं। नाममें रूप और रूपमें नाम रहता है। विश्वातीतको विश्व-प्राणमें अनुभव करनेके लिये उनको नाम और रूपमें ग्रहण करना चाहिये।

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्त्तन। आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन महस्ते वि[illegible] सुमतिं भजामहे॥

(ऋक्० १। १५६।

'परम पुरातन पुरुष भगवान् हैं। वेद उनकी वाणी [illegible] जो जितना जानता है, उसकी महिमा-कीर्तन करके ज[illegible] सफल करे। हे विष्णु! तुम्हारे चिन्मय प्रकाश, नाम[illegible] महिमा अपार है। पूर्णरूपमें कहना असम्भव है तथा [illegible] कुछ अक्षर उच्चारित होते हैं, उसीसे मानो हम सुमति, भ[illegible] प्राप्त करते हैं।'

इस मन्त्रको आचार्य शंकर, श्रीधर स्वामी, श्रीलक्ष्मीध[illegible] श्रीपाद सनातनगोस्वामी, श्रीजीवगोस्वामी तथा दूस[illegible] बहुतसे लोगोंने नाम-महिमाका मूल सूत्र माना है।

कोई भी यज्ञ, होम, कर्म, व्रत, नियम श्रीनामोच्चारणके बिना पूर्ण नहीं होता। योगसाधनामें प्रणवादि ब्रह्म नामके बिना प्राणायामादिकी सिद्धि नहीं होती। ब्रह्मज्ञानके लि[illegible] बार-बार एक ही नाममन्त्रकी आवृत्ति—कीर्तन करनेक[illegible] उपदेश है। नाम-विमुख होनेपर कोई साधना काम न[illegible] देती।

श्रीरूपगोस्वामीने श्रीचैतन्यमहाप्रभुका जिस रूपमें दर्शन किया था तथा जिस रूपमें वे दर्शन करना चाहते थे, उसका वे संक्षेपमें वर्णन करते हैं—

> हरे कृष्णेत्युच्चैःस्फुरितरसनो नामगणना-
> कृतग्रन्थिश्रेणीसुभगकटिसूत्रोज्ज्वलकरः।
> विशालाक्षो दीर्घार्गलयुगलखेलाञ्चितभुजः
> स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्॥
>
> (श्रीचैतन्याष्टक)

'श्रीचैतन्य महाप्रभु सर्वदा नाम उच्चारण करते रहते थे। कटिसूत्रमें ग्रन्थिद्वारा नाम-गणना करते थे। उनके विशाल नेत्र थे तथा आजानुलम्बित भुजाएँ थीं। उनको क्या मैं फिर इसी रूपमें देख पाऊँगा?' श्रीचैतन्यको इस रूपमें देखकर कृपा-याचना करते हुए वे कहते हैं—

> मुखेनाग्रे पीत्वा मधुरमिह नामामृतरसं
> दृशोर्द्वारा यस्तं वमति घनबाष्पाम्बुमिषतः।

श्रीनिमाई-नि
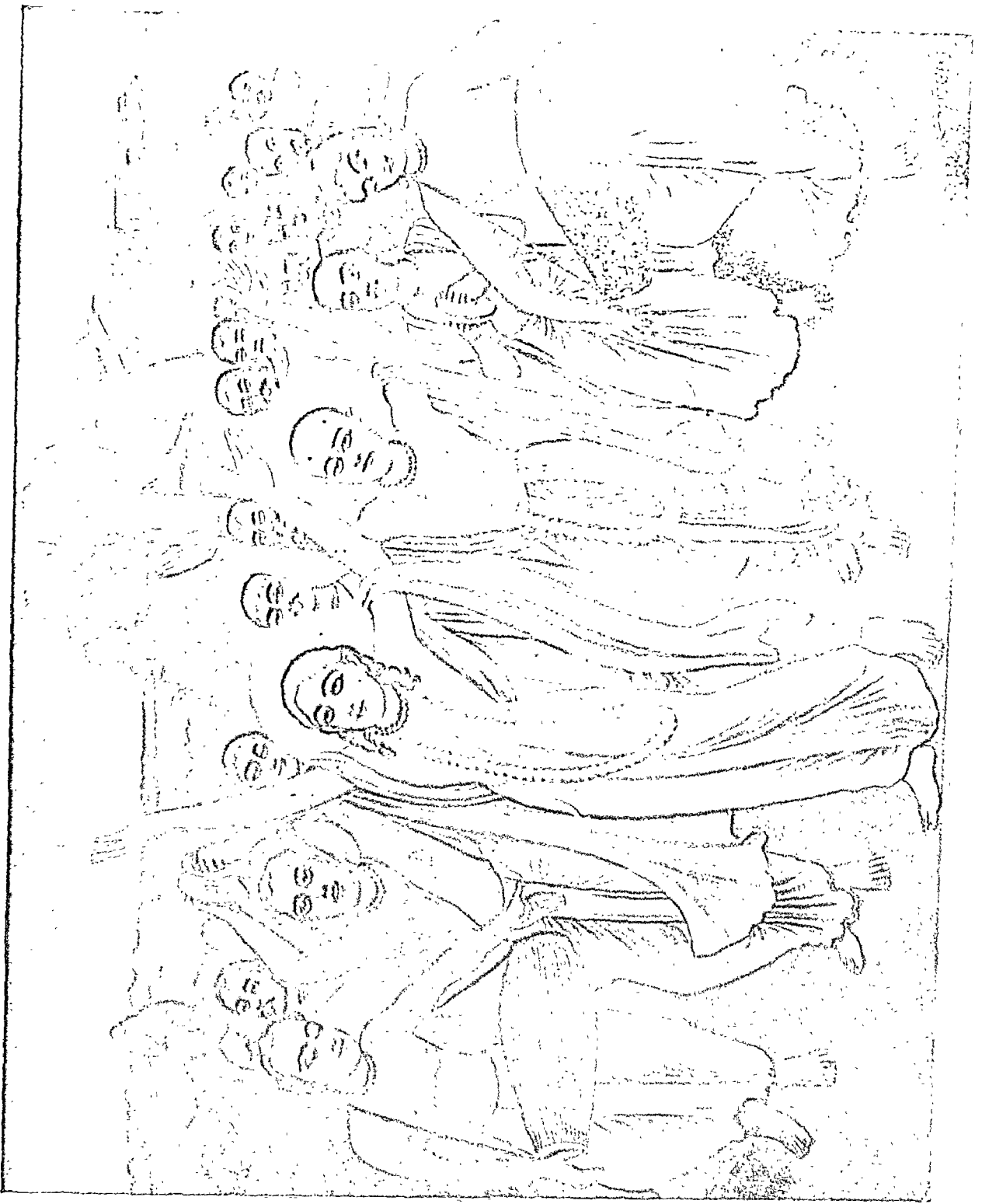
भुवि प्रेम्णस्तत्त्वं प्रकटयितुमुल्लासिततनुः
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥

'नाम-मधु-रस स्वयं पहले पान करके नयनोंकी अश्रुधाराके रूपमें उसी अमृतको वमन करते हैं; सर्वदा प्रेमपुलकित-तनु श्रीचैतन्यदेवने जगत्में प्रेमतत्त्वको प्रकट करनेके लिये यह आकृति ग्रहण की है, वे हम सबपर अतिशय कृपा करें।'

श्रीनाम-ग्रहणमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी अश्रुधाराने श्रीराधारानीकी अश्रुधाराको प्रत्यक्ष कराया है।

रोदनबिन्दुमरन्दस्यन्दिदृगिन्दीवराद्य गोविन्द।
तव मधुरस्वरकण्ठी गायति नामावलीं बाला ॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

'गोविन्द! सुकण्ठी बाला राधा आज तुम्हारी नामावलीका गान कर रही है और उसके नयन-कमलसे अश्रुबिन्दु-मकरन्द स्रवित हो रहे हैं।'

स्वरूपदामोदर, राय रामानन्द आदि विद्वानोंके अनुभवसे ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण व्रजलीलाकी तीन कामनाओंको पूर्ण करनेके लिये राधा-भावद्युतिसुवलित गौरकृष्ण बने थे। ऋक्परिशिष्ट श्रुतिप्रमाणमें इसका मूल है—

राधया माधवो देवो माधवेन च राधिका।
विभ्राजते जनेषु ……………………… ॥

गोविन्दने राधा और माधव, पृथक् दो देह धारण करके वृन्दावनलीला की थी। एक दूसरेके सौन्दर्य-माधुर्यको बढ़ाते हुए स्थावर-जङ्गम सबको आनन्द दिया। प्रेमका आश्रय राधाजी हैं और प्रेमके विषय श्रीकृष्ण हैं। परस्पर एकात्मा होते हुए भी विभिन्न शरीर हैं। प्रेमवैचित्त्य-अवस्थामें एक दूसरेके अत्यन्त समीप होते हुए भी 'चले गये' इस रूपमें विचित्र भावोद्गम हो जाता है। देह-भेद दूर करनेकी इच्छा होनेपर भी यह सम्भव नहीं हो पाता है। प्रेमका आश्रय श्रीराधा सम्यक् रूपसे अपनी भावकान्तिको जबतक अर्पण न करें तबतक यह सम्भव नहीं है। श्रीकृष्णकी कामनाको पूर्ण करनेवाली श्रीराधिकाजीने श्रीगौराङ्ग-अवतारमें इसे पूरा किया है।

श्रीगौराङ्ग श्रीकृष्णके विशेष आविर्भाव हैं। श्रीकृष्णको राधाके प्रेम, अपने स्वरूपके माधुर्य और राधाके सुखको जाननेकी इच्छा हुई। परंतु श्रीराधाजीके मनमें भाव उत्पन्न हुए बिना इस इच्छाकी पूर्ति नहीं होती। श्रीकृष्णके मनमें आया कि 'जैसे मेरा नाम लेकर राधा क्रन्दन करती हैं वैसे ही मैं भी रोऊँगा। मैं राधा बनूँगा। तभी इस प्रेमका अनुभव होगा।' श्रीराधाके मनमें आया कि 'मैं श्रीकृष्णकी कामनाकी पूर्तिके लिये श्रीकृष्णके समीपसे अपने आपको दूर करूँगी। परंतु मधुर कृष्ण नाम, राधारमणका नाम न छोड़ूँगी।' इसी कारण श्रुतिप्रतिपाद्य 'राधाके सहित माधव' और 'माधवके सहित राधा'के एकान्त मिलनके रूपमें श्रीगौराङ्गदेवका आविर्भाव हुआ। उनके मुखसे राधाभावमें कृष्णनाम (राधारमण) 'राम' नाम सुनते हैं और कृष्णभावमें 'हरे' नाम, (जो कृष्णके मनको हर लेनेवाली) 'हरा' राधा शब्दका सम्बोधन है, इसे सुनते हैं। राधाकृष्णमें कोई किसीसे कम नहीं है। इसीसे 'हरे' शब्द आठ बार आया है, यह श्रीकृष्णकी उक्ति है। पुनः 'कृष्ण' और 'राम' शब्द भी आठ-आठ बार आये हैं; दोनों मिलित भावमें श्रीराधाकी उक्ति हैं। इस प्रकार भावना करनेपर श्रीगौराङ्गके मुखसे निकला—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

श्रीगौराङ्गके अनुयायीके लिये इस नाममालामें श्रीराधाकृष्ण-युगलकी युगल नाम-माधुरीका आस्वादन होता है।

श्रीनाम-माधुरीके वर्णनमें श्रीरूपगोस्वामीने श्रीचैतन्यमहाप्रभुको विस्मित कर दिया था—

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये
कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्।
चेतःप्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी ॥

'नहीं जानता, 'कृष्ण' इन दो वर्णोंमें कितना अमृत भरा है। जब कृष्णनाम जिह्वापर नृत्य करता है, तो बहुत-सी जिह्वाएँ प्राप्त करनेकी तृष्णा बढ़ती है, जब श्रवणेन्द्रियमें प्रवेश करता है, तो अरबों कर्ण-प्राप्तिकी लालसा होती है। मनके प्राङ्गणमें नाममाधुरीके प्रवेश करनेपर शेष सब इन्द्रियाँ उसके वश हो जाती हैं।'

हरिनामसिद्ध आदर्श महापुरुष श्रीब्रह्महरिदास अत्यन्त उल्लासपूर्वक इस श्लोकार्थकी प्रशंसा करते थे। यथा—

कृष्णनामेर महिमा शास्त्र-साधु-मुखे जानि।
नामेर महिमा ऐछे काँहा नाहि शुनि ॥

बंगालमें बेनापोल एक गाँव है। वहाँ निर्जन वनमें हरिदास दिन-रात संख्या रखकर प्रतिदिन तीन लाख नाम-जप करते थे। एक मासमें एक कोटि नामका पुरश्चरण होता था। साधारण लोग उनको देवताके समान मानते थे। रामचन्द्र खाँ वहाँका अभिमानी जमींदार था। हरिदासको तपस्यासे भ्रष्ट करनेके लिये उसने एक भ्रष्टा नारीको उनके पास भेजा। हरिदास समझ गये। पहली रात उसको प्रतीक्षा करनेके लिये कहकर सारी रात नाम लेते रह गये। प्रातःकाल उस साधुने उस स्त्रीसे कहा—

> कोटि नाम-ग्रहण यज्ञ करि एक मासे।
> एइ दीक्षा करियाछि हैल रात्रि शेषे॥
> आजि समाप्त हबे येन ज्ञान छिल।
> समस्त रात्रि नाम निलु नाम समाप्त ना हैल॥
> कालि समाप्त हबे तबे हबे व्रत भङ्ग।
> स्वच्छन्दे तोमार सङ्गे हैबेक सङ्ग॥

'करोड़ नाम-जप-यज्ञ एक महीनेमें करनेकी दीक्षा ली थी। आज पूरा होनेकी सम्भावना थी। सारी रात नाम लिया पर पूरा नहीं हुआ। कल पूरा होनेपर तुमसे स्वच्छन्दतासे बात होगी।'

दूसरे दिन भी रात बीत गयी। हरिदास नामामृत-आस्वादनमें मग्न थे। तीन दिन इस प्रकार नामसाधक हरिदासके पास रहनेसे उस दुष्टाका मन फिर गया। उसको अपनी भूल समझमें आ गयी और प्रायश्चित्त करके उसने श्रीहरिनामव्रतमें दीक्षा ले ली। उसका स्वभाव बदल गया, वेष बदल गया, जीवनका आदर्श बदल गया। फलतः वह वैष्णवी बन गयी।

> तुलसी सेवन करे चर्वण उपवास।
> इन्द्रिय दमन हैल प्रेमेर प्रकाश॥

वह तुलसी सेवन करके उपवास करने लगी, इन्द्रियोंका दमन हो गया और प्रेमका उदय हो आया।

हरिदास मानस, उपांशु और वाचिक—त्रिविध जपके निमित्त तीन लाख नाम लेते थे। केवल मनहीमें नामका अनुशीलन करना 'मानस' जप है। केवल अपने सुनने योग्य मन्द स्वरसे उच्चारण 'उपांशु' जप है और उच्च स्वरसे उच्चारण 'वाचिक' जप है। बहुतसे लोगोंका मिलकर एक स्वरसे नाम-गान करना 'संकीर्तन' कहलाता है। संकीर्तन ही कलियुगका धर्म है।

श्रीहरिदासके मुखसे महाप्रभुने नाम-महिमाका प्र कराया है। अजामिल व्रतसे च्युत, असत्कर्ममें लि दुःसङ्गसे दुष्ट होनेपर भी मृत्युकालमें नारायण नामक अ पुत्रका आह्वान करके यमदूतोंके बन्धनसे मुक्त हो गया थ विष्णुके दूत उसके सहायक हुए थे।

नामाक्षर चाहे जैसे उच्चारित हों—नामोच्चारणका प प्राप्त होगा ही। परंतु कभी-कभी तुरंत फल प्राप्त हो देखा जाता है और कभी उसमें विलम्ब होता है। इस कारण भी शास्त्रमें बतलाया गया है—

> नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतं श्रोत्रमूलं गतं वा
> शुद्धं वाशुद्धवर्णं व्यवहितिरहितं तारयत्येव सत्यम्।
> तच्चेद् देहद्रविणजनतालोभपाषण्डमध्ये
> निक्षिप्तं स्यान्न फलजनकं शीघ्रमेवात्र विप्र॥

'जो वार्त्तालापके बीच एक भी भगवान्‌का नाम उच्चारण करता है, जिसके स्मृतिपथमें एक भी नाम आ जाता है, अथवा श्रवणमें प्रवेश करता है, वह शुद्ध-अशुद्ध अथवा अन्य संकेत-विशिष्ट क्यों न हो, निःसंदेह उच्चारण करनेवालेका परित्राण करता है। परंतु हे ब्राह्मण! जो धन, जन, देह, पुत्र, कलत्र आदिसे लुब्ध पाखण्डीजन हैं, उनके लिये श्रीहरिनाम उच्चारण करनेपर भी वह शीघ्र फलप्रद नहीं होता।'

'शुद्धं वाशुद्धवर्णं व्यवहितिरहितम्'—इस वाक्यमें साधारण लोगोंके लिये आशाका आलोक है। कोई-कोई नामकी साधनामें नाना प्रकारके विधि-निषेध, अपराध आदिका भय दिखलाकर मनुष्यके चित्तको चलायमान कर देते हैं। अतएव उपर्युक्त वाक्यके अर्थकी भलीभाँति आलोचना होनी चाहिये।

नामकीर्तनके द्वारा कोई यदि लाभ, पूजा, सम्मान, ख्याति आदि प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है तो नामका फल शीघ्र प्राप्त नहीं होता। कुछ लोग सोचते हैं कि उनका नामोच्चारण शुद्ध होता है और दूसरेका अशुद्ध होता है। यह भावना भी नामके फलसे उसे वञ्चित करती है। व्यवधान या शब्दान्तरके उच्चारण-द्वारा नामाक्षरमें बाधा न पड़ती हो तब तो कोई बात ही नहीं है, कुछ नामाक्षर उच्चारणके बाद अन्य शब्द उच्चारण करके यदि अवशिष्ट नामाक्षर उच्चारित हों, तो भी मनुष्य नामोच्चारणका फल पा सकता है, यह भी भाव हो सकता है; क्योंकि यह श्लोक सब लोगोंके लिये उपकारक है। नाम-सेवाका मुख्य फल शीघ्र चाहे न हो, परंतु विलम्बसे तो होगा ही।

श्रीसनातनगोस्वामीने श्रीहरिभक्तिविलास ग्रन्थमें वेद और वेदानुगत शास्त्रोंसे यह विशदरूपमें बतलाया है कि सर्वावस्थामें सर्वोपकारक नामकीर्तन ही कलिके जीवके लिये एकमात्र परम उत्तम साधन और साध्य है। श्रीबृहद्भागवतामृतके प्रारम्भमें—

जयति जयति नामानन्दरूपं मुरारे-
विरमितनिजधर्मध्यानपूजादिदुःखम्।
कथमपि सकृदात्तं मुक्तिदं प्राणिनां यत्
परमममृतमेकं जीवनं भूषणं मे॥

'मुरारिका नाम आनन्दस्वरूप है, उसकी जय हो। यह नाम आनन्दका प्रकाशक है—आनन्ददाता है। कर्तव्य-कर्म-स्वरूप वर्णाश्रमधर्मका क्लेश, परमेश्वरकी ध्यान-धारणाका क्लेश तथा पूजा-अर्चनाके निमित्त द्रव्यादि संग्रहकी चेष्टाका क्लेश—इनमें कोई भी क्लेश नाम-साधकको नहीं उठाना पड़ता। किसी भी प्रकारसे एक बार भी उच्चारण करनेपर वह सब प्राणियोंके लिये परम उपकारक अमृतस्वरूप श्रीनाम ही मेरा जीवन है, वही मेरा भूषण है, मुझे अन्य किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं।'

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी भगवान्‌के मधुर नामकीर्तनसे उन्मत्त होकर कहते हैं—

भाण्डीरेश शिखण्डमण्डनवर श्रीखण्डलिप्ताङ्ग हे
वृन्दारण्यपुरन्दर स्फुरदमन्देन्दीवरश्यामल।
कालिन्दीप्रिय नन्दनन्दन परानन्दारविन्देक्षण
श्रीगोविन्द मुकुन्द सुन्दरतनो मां दीनमानन्दय॥

'हे भाण्डीरवनके अधीश्वर, हे मयूरपिच्छविभूषण, हे चन्दनचर्चिताङ्ग, हे वृन्दावनके इन्द्र, हे विकसित नील-कमलकी शोभासे युक्त सुन्दर श्यामल कलिन्दतनयाके प्रिय बान्धव, हे व्रजराजकिशोर, हे आनन्दमय कमलनयन, हे गोविन्द, हे मुकुन्द, हे सुन्दरतनु! मेरे समान दीनातिदीनको आनन्द प्रदान करो।'

श्रीचैतन्यमहाप्रभुने रघुनाथदास गोस्वामीको अन्तरङ्ग साधनाका निगूढ़ तात्पर्य बतलाकर श्रीवृन्दावन-धाममें भेजा था। अपनी सेव्य गिरिधारीशिला, अपने गलेमें धारण की हुई गुञ्जामाला उन्होंने रघुनाथदासको दी थी। रघुनाथ स्वरूपदामोदरसे भजनकी सुनिर्दिष्ट विधि समझ-बूझकर गये थे। गोवर्द्धनमें राधाकुण्डके तीरपर एकान्तमें रघुनाथ साधनामें लग गये। दूसरी कोई अभिलाषा न थी। वे कहते थे—'अरी मेरी रसने, तू क्षुधार्त्त हो गयी है, तेरे लिये स्वादिष्ट पेय है। उससे क्षुधा-तृषा दूर हो जायगी—

राधेति नाम नवसुन्दरसीधु मुग्धं
कृष्णेति नाम मधुराद्भुतगाढदुग्धम्।
सर्वक्षणं सुरभिरागहिमेन रम्यं
कृत्वा तदेव पिब मे रसने क्षुधार्ते॥

हे क्षुधार्त रसने! 'राधा' नाम अभिनव सुन्दर सुधा है, कृष्ण नाम अद्भुत मधुर गाढ़ दुग्ध है। इन दोनोंको मिलाकर अनुराग-से सुस्निग्ध और शीतल करके सब समय पीती रह। तेरी क्षुधा-तृषा दूर हो जायगी।' रघुनाथके इस नामकीर्तन-अनुरागकी खोज करनेपर उनकी अन्तरङ्ग साधनाकी व्याख्या स्पष्ट हो जायगी। युगल-नामरूपी मधुका आस्वादन करनेमें उनकी जो उत्कण्ठा थी उस प्रबल उत्कण्ठाका ज्ञान होनेपर साधक धन्य हो जायगा।

श्रीचैतन्यचन्द्रामृत, श्रीवृन्दावनमहिमामृत, श्री-राधारससुधानिधि आदि ग्रन्थोंमें श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीने श्रीनाम-रसके आस्वादनके सम्बन्धमें नवीन प्रकाश डाला है। उनके कथनानुसार, कर्मी, ज्ञानी, योगी, ध्यानी कोई भी जिसे प्राप्त नहीं कर सकते, यहाँतक कि जिस रहस्यको गोविन्दका भजन करनेवाले भी नहीं प्राप्त कर पाते, उसको श्रीगौराङ्गप्रभुने अवतीर्ण होकर नामके द्वारा ही प्रकाशित कर दिया है। ऐसे श्रीगौराङ्गको मैं प्रणाम करता हूँ।

यन्नाप्तं कर्मनिष्ठैर्न च समधिगतं यत्तपोध्यानयोगै-
र्वैराग्यैस्त्यागतत्त्वस्तुतिभिरपि न यत्तर्कितं चापि कैश्चित्।
गोविन्दप्रेमभाजामपि न च कलितं यद्रहस्यं स्वयं त-
न्नाम्नैव प्रादुरासीदवतरति परे यत्र तं नौमि गौरम्॥

'वृन्दावनमहिमामृत'में उन्होंने कहा है—

वाण्या गद्गदया कदा मधुपतेर्नामानि संकीर्त्तये
धाराभिर्नयनाम्भसां तरुतलक्षोणीं कदा पङ्कये।
दृष्ट्वा भावनया पुरो मिलदिव स्वान्तैकभोग्यं महो-
द्वन्द्वं हेमहरिन्मणिच्छवि कदा नंस्ये मुहुर्विह्वलः॥

'कब मैं गद्गदकण्ठसे श्रीकृष्णके नामका कीर्तन करके नयनाश्रुकी धारासे भूतलको पङ्किल करूँगा। कब प्रेम-विह्वल हृदयसे उस उज्ज्वल स्वर्ण और नील ज्योतिर्मय युगलरूपको सामने आविर्भूत देखकर बारंबार नमस्कार

करूँगा।' यहाँ भी दर्शनके सहयोगीरूपमें श्रीनाम-कीर्तनकी ही महिमा देखी जाती है।

ब्राह्ममुहूर्तमें सोकर उठनेके बादसे लेकर रात्रिमें शयनपर्यन्त श्रीनाम-कीर्तन करे। अपने सोने-जागनेके अतिरिक्त भी भगवान्के प्रबोधनसे लेकर रात्रिकालमें उनकी शयनसेवा तक श्रीहरिनाम लेता रहे।

सब प्रकारकी सेवा-परिचर्याके अनुष्ठानमें विघ्न दूर करनेके निमित्त, भ्रम-प्रमाद, न्यूनता आदिकी पूर्तिके लिये पूजाके अङ्गके रूपमें तथा सब कर्मोंके दोषोंका निवारण करनेके लिये 'नाम'का प्रयोग किया जाता है। 'नामका निजस्व परम फलदातृत्व तो है ही; अतएव सब कर्मोंके आदि, मध्य और अन्तमें श्रीहरिनाम ले।'

प्रत्येक नामकी पृथक्-पृथक् विशेष महिमा होती है। साधक देशभेद, कालभेद, कर्मभेद आदिके अनुसार, श्रीगुरुके उपदेशके अनुसार नामजप करे तो सब प्रकारकी अभिलाषा पूर्ण होती है। सारा संसार कामनासे भरपूर है, श्रीहरिनाम कामनाको पूर्ण करनेमें असमर्थ नहीं है। नामके द्वारा मुख्यरूपसे जिस परम फलकी प्राप्ति होती है, वह तो कामनाके जगत्से बहुत ऊपरकी वस्तु है। श्रीकृष्णदास कविराज कहते हैं—

एक कृष्ण नाम करे सर्वपाप नाश।
प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश॥
प्रेमेर उदये हय प्रेमेर विकार।
स्वेद कम्प पुलकादि गद्गदाश्रुधार॥
अनायासे भवक्षय कृष्णेर सेवन।
एक कृष्ण नामेर फले पाइ एतो धन॥

'कृष्णका एक नाम सब पापोंका नाश करता है, वह प्रेमका कारण है, भक्तिको प्रकाशित करता है। प्रेमका उदय होनेपर स्वेद, कम्प, पुलक, गद्गद वाणी और अश्रुधारा आदि सात्त्विक प्रेमविकार उत्पन्न होते हैं। अनायास ही भवका क्षय हो जाता है। एवं श्रीकृष्णकी सेवा प्राप्त होती है। एक 'कृष्ण' नामके फलस्वरूप इतना धन मिलता है।'

पापनाशके लिये प्रायश्चित्तकी व्यवस्था है। परंतु पापमें प्रवृत्तिका मूलबीज प्रायश्चित्तसे नष्ट नहीं होता। जिस किसी प्रकारसे श्रीहरिनामका आश्रय ग्रहण करनेपर पाप सबीज नष्ट हो जाता है। अज्ञानी बालक अग्निके प्रभावको न जानते हुए भी यदि रूईकी ढेरमें अग्निका संयोग कर दे तो वह जल उठेगी, उसी प्रकार बिना समझे-बूझे भी हरि लेनेसे श्रीनाम अपनी निजी कृपासे सारे पापोंको नष्ट देता है।

श्रीरूपके द्वारा संगृहीत पद्यावलीमें एक प्रधान कवि वचन इसमें प्रमाण है—

वेपन्ते दुरितानि मोहमहिमा सम्मोहमालम्बते
सातङ्कं नखरञ्जनीं कलयति श्रीचित्रगुप्तः कृती।
सानन्दं मधुपर्कसम्भृतिविधौ वेधाः करोत्युद्यमं
वक्तुं नाम्नि तवेश्वराभिलषिते ब्रूमः किमन्यत्परम्॥

'हे परमेश्वर! तुम्हारे श्रीनामके उच्चारणकी जब को अभिलाषा करता है तो क्या अवस्था होती है, यह ं बतलाता हूँ। नाम-ग्रहणकी इच्छा करनेवालेके सारे पा भयसे काँप उठते हैं; क्योंकि उनको देह छोड़कर जान पड़ेगा। मोह मूर्च्छाको प्राप्त होता है, उसमें फिर मुग्ध करनेकी सामर्थ्य नहीं रह जाती। यमपुरीका लेखा-जोखा रखनेवाले चित्रगुप्तने पापियोंकी सूचीमें जिसका नाम लिख रक्खा है, सो उसका नाम-चिह्न वहाँसे मिटानेके लिये वे नहरनी ढूँढ़ने लगते हैं; सत्यलोकके भी ऊर्ध्व गमन करनेवाले नाम-ग्रहणकारीका अभिनन्दन करनेके लिये ब्रह्माजी मधुपर्क तैयार करनेमें लग जाते हैं। नाम लेनेकी इच्छामात्रका ऐसा फल है, फिर नाम लेनेपर यो कहना ही क्या है!'

श्रीनामावतार श्रीहरिकी करुणा सर्वापेक्षा अधिक होती है। मुनिगण सर्वदा नाम-कीर्तन करते रहते हैं; जनताके परम मङ्गलके लिये अक्षराकृतिमें भगवान् आविर्भूत हैं। आदरबुद्धि न रहनेपर भी अनादरसे, संकेतसे, परिहासमें भी नामोच्चारण होनेपर जीव सारे उग्र तापसे निश्चिन्त हो जाता है।

अतएव श्रीरघुनाथ गोस्वामीने कहा है—

जय नामधेय मुनिवृन्दगेय हे जनरञ्जनाय परमाक्षराकृते।
त्वमनादरादपि मनागुदीरितं निखिलोग्रतापपटलीं विलुम्पसि॥

कलियुग दोषोंकी खानि है। कलिमें अन्य किसी साधनाका सुयोग नहीं होता, यह कहना पड़ता है। शास्त्रकारोंने जीवोंकी दुरवस्था देखकर पहलेसे ही इसकी व्यवस्था कर दी है। कलिको एक विशेष गुण प्रदान किया है—वह है श्रीकृष्णनाम-संकीर्तन। इसीसे जीव प्रेमरूप परम पुरुषार्थ प्राप्त करनेमें समर्थ होता है।

[illegible] कारण पूछा । महाप्रभुने उत्तरमें कहा, [illegible] मुझको नामका यह उपदेश किया है ।

> हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
> कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

मैं इस वचनपर विश्वास करके नाम उच्चारण करता हूँ । नामका प्रभाव मुझको व्याकुल कर देता है । मैं अपनी [illegible] नहीं नाचता-गाता । नाम ही मुझको हँसाता, [illegible]ता और बेसुध कर देता है ।'

संत ज्ञानदेव, नामदेव, मुक्ताबाई, मयूर कवि, [illegible]काराम, सूरदास, तुलसीदास, जयदेव, मीराँबाई, चण्डीदास आदि अगणित भक्त कवि, भावुक साधक, संतशिरोमणि [illegible]ा दक्षिण भारतके आळवार संतोंने नाम-महिमाकी [illegible]धुरीमें युग-युग अवगाहन किया है । अनन्तकोटि मर्मी साधकोंके कण्ठसे प्रिय नाम उच्चारित हुआ है और हो रहा है । हृदयके विशुद्ध हो जानेपर अनन्त हृदयाकाशमें उद्भासित होनेवाली नाम-तरङ्गका ग्रहण करना कुछ असम्भव बात नहीं है । मुझे ऐसे साधकोंसे भी मिलनेका अवसर प्राप्त हुआ है, जिनके अंदरसे मौके-बेमौके भगवन्नाम-की ध्वनि अनुरणित होती रहती है । उन सब नामप्रेमी संतोंको स्मरण करके प्रार्थना करता हूँ कि 'मेरे अन्तः-करणमें सदा श्रीहरिनामकी सुधातरङ्गिणी प्रवाहित होती रहे । श्रीनामके भीतर हम हेम-नील-मणि-कान्ति-युगलकी माधुरीका दर्शन कर सकें । महाप्रभुका हम स्मरण करें ।'

> नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
> स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।
> एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
> दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥

ज्ञान-साधना और भगवन्नाम-जप

(लेखक—श्रीस्वामी चिदानन्दजी सरस्वती महाराज)

> हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
> कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

भगवान् वेदव्यास कहते हैं कि 'कलियुगमें हरिनामके [अ]तिरिक्त भवसागरसे पार होनेका दूसरा कोई साधन नहीं है ।'

ज्ञान-साधनाके लिये चित्तशुद्धि अनिवार्य है और इस [चि]त्तशुद्धिके साधनोंमें, दूसरे साधन आज किये जा सकें, ऐसी [स्थि]ति नहीं है । इसलिये आजके युगमें तो चित्तशुद्धिके लिये [भ]गवन्नाम-जप ही एकमात्र साधन है ।

भगवन्नामसे विशेष लाभ होता है, इसका एक कारण [य]ह है कि भगवन्नाममें तथा नामी भगवान्‌में अभेद है । इसलिये [न]ामस्मरणसे नामीके प्रत्यक्ष दर्शनके समान ही लाभ होता है । [न]ाम और नामीके अभेदकी बात तो सब कोई कहते हैं; किंतु [य]ह अभेद है क्या, यह बात बहुत थोड़े लोगोंकी समझमें आयी होगी । हम लोगोंके जन्ममें और भगवान्‌के अवतार लेनेमें बहुत अन्तर है । भगवान्‌के अवतारमें देह-देहीका भेद नहीं रहता । अर्थात् अवतारशरीरमें जो चेतनतत्त्व देहीके रूपमें काम करता है, उसी चेतनतत्त्वसे दृष्टि पड़नेवाले स्थूल देहका भी निर्माण हुआ है । शास्त्रीय भाषामें कहें तो भगवान्‌के देह और देही दोनों समानरूपसे चैतन्यघन हैं । किंतु हमलोगोंके सामान्य शरीरोंमें शरीर पञ्चमहाभूतसे निर्मित हैं, केवल देही (जीव) ही चेतनतत्त्व है । इसके अतिरिक्त हमारा शरीर काम तथा कर्मके परवश है । प्रारब्ध-भोग समाप्त होनेपर यह नष्ट हो जाता है । किंतु भगवान् स्वेच्छासे ही देह धारण करते हैं और स्वेच्छासे उसका तिरोभाव भी कर लेते हैं । इसीसे आज भी श्रीराम या श्रीकृष्ण अपने उसी दिव्य रूपको भक्तकी भावनाके अनुसार प्रकट कर देते हैं और फिर उस रूपका स्वेच्छासे तिरोभाव भी कर लेते हैं; क्योंकि चेतनतत्त्व तो सर्वत्र ठसाठस भरा है । जैसे समुद्रमें तरङ्गें चाहे जब और चाहे जहाँ उठ सकती हैं, वैसे ही भगवान् भी चाहे जब, चाहे जहाँ और चाहे जिस रूपमें प्रकट हो सकते हैं ।

एक सज्जन जो रोगी थे, उन्होंने मुझे लिखा—'स्वामीजी ! मैं धीरे-धीरे 'शिवोऽहं'का जप करता हूँ, किंतु शान्ति नहीं मिलती है ।'

मैंने उन्हें उत्तरमें सूचित किया—'भाई ! 'शिवोऽहं' तो स्थिति है । उसे प्राप्त करनेके लिये शरीर स्वस्थ हो तब प्रयत्न करना चाहिये । बीमारीमें इसको बोलते रहनेसे कोई लाभ नहीं होनेवाला है । योगवासिष्ठमें कहा गया है—

युवैव धर्मशीलः स्याद् वृद्धः सन् किं करिष्यसि ।
स्वगात्राण्यपि भाराय भवन्ति हि विपर्यये ॥

'शरीर जवान तथा सशक्त हो, उसी समय जीवनको धर्मपरायण बनाया जा सकता है । युवावस्था चली जाय और वृद्धावस्था आ जाय, तब तो कुछ भी किया नहीं जा सकता । वृद्धावस्थामें तो अपना शरीर भी भाररूप प्रतीत होता है, फिर परमार्थका साधन तो भला कैसे हो सकता है ?'

'वस्तुस्थिति यह है । इसलिये भाई ! इस समय (रुग्णावस्थामें) तो जहाँ—जिसमें आपकी श्रद्धा हो, उस भगवन्नामका जप करें । इससे अवश्य शान्ति मिलेगी । फिर जब शरीर स्वस्थ हो जाय, तब 'शिवोऽहं' की साधनाके लिये प्रयत्न करना और इसके लिये भी भगवन्नाम-स्मरण एक अमोघ साधन है ।'

संत-महात्मा कहते हैं—'चाहे लगनसे हो या बेलगनसे, नाम-जप किया करो ।' इसका यह अर्थ नहीं है कि सदाके लिये बिना लगनके जपका नियम बना लिया जाय । यह विधान तो अविवेकीको साधनमें लगानेके लिये होता है । प्रारम्भ तो सदा बेलगन ही होता है; किंतु भगवन्नामका प्रभाव ऐसा है कि उसका परिचय होनेसे उसमें प्रेम होता है और तब जप स्थिरतासे ही होता है । ऐसा होनेपर भगवान्‌में अनुराग होता है । इस प्रकार वैखरी जपसे ही उपांशु जप होने लगता है । बहुत समयतक इस प्रकार जप चलते रहनेपर मानसिक जप होने लगता है । फिर तो ऐसी स्थिति हो जाती है कि जैसे मन जप करता हो और हम उसे देखते हों । ऐसे जपसे चित्तका मल धुलने लगता है । चित्त निर्मल होनेपर उसमें ज्ञानका उदय होता है ।

यह तो प्रत्यक्ष बात है कि जो काम समझदारीसे किया जाता है, वही फल उत्पन्न करनेमें समर्थ होता है । पत्थरपर बोया बीज जैसे उगता नहीं, वैसे ही मनोयोगके बिना किया गया कोई भी कार्य फल उत्पन्न नहीं कर सकता । फल उत्पन्न होनेमें भावना ही मुख्य कारण है । क्रिया तो गौण है ।

पातञ्जलयोगदर्शनमें भी भगवन्नाम-स्मरणको चित्तशुद्धिका एक साधन बताया गया है । इसका निरूपण प्रथम पादके सूत्र २३ से २८ तक है । वहाँ कहा गया है—

ईश्वरप्रणिधानाद्वा । (१ । २३)

'ईश्वरप्रणिधानरूप भक्तिविशेषसे चित्तशुद्धि होती है ।'

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः । (१ । २४)

'अविद्यादि क्लेश, धर्माधर्मरूप कर्म, जात्यादि [illegible] फल-विपाक तथा धर्माधर्मके संस्काररूप आशय—[illegible] तीनों कालोंमें वस्तुतः एवं उपचारसे भी जिसका [illegible] है, वह स्वरूपसे शुद्ध चित्-शक्तिरूप निरतिशय [illegible] सम्पन्न ईश्वर है ।'

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् । (१ । [illegible])

'सर्वज्ञताका बीज अर्थात् [illegible] निरतिशय रूपसे ईश्वरमें है ।'

(स एषः) पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् । (१ । [illegible])

'(यह ईश्वर) पूर्व-पूर्व कल्पोंमें उत्पन्न ब्रह्मादिका भी आदि-पुरुष है; क्योंकि ईश्वर कालपरिच्छेदसे रहित है अर्थात् अनादि और अनन्त है ।'

तस्य वाचकः प्रणवः । (१ । २७)

'उपर्युक्त लक्षणवाले ईश्वररूप वाच्यका अभिधावृत्तिसे बोध करानेवाला वाचक शब्द ॐकाररूप प्रणव है ।'

तज्जपस्तदर्थभावनम् । (१ । २८)

'इस प्रणवका यथावत् उच्चारण करते हुए उसके वाच्य ईश्वरका चिन्तन करना, यह ईश्वर-प्रणिधान है ।'

जैसे भगवान् 'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम्' समर्थ हैं, वैसे ही भगवन्नाम भी ऐसा करनेमें समर्थ है । किंतु जिस नाम-जपसे मोक्ष पाया जा सकता है, उसका प्रयोग जगत्‌के नश्वर पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये करना—इससे बड़ी मूर्खता दूसरी कोई नहीं है । यह तो हीरा देकर सेरभर आलू लेने-जैसी बात है अथवा पारसमणि देकर गुञ्जाकी माला लेना है । इसलिये किसी भी साधकको कामनापूर्तिके लिये नाम-जपका आश्रय लेना उचित नहीं है ।

इस जगत्‌में मोक्षसे अधिक बड़ी कोई स्थिति नहीं है, जिसके लिये नाम-जपका प्रयोग किया जाय ।

नारदजी जब गङ्गा-किनारे जाते थे तब गङ्गा माताको हाथ जोड़कर प्रणाम करके लौटते थे, किंतु गङ्गामें स्नान नहीं करते थे । यह क्रम देखकर गङ्गाजीको कुतूहल हुआ कि देवर्षि नारद ऐसा क्यों करते हैं ? इसलिये प्रकट होकर उन्होंने नारदजीसे पूछा—

मज्जन्ति मुनयः सर्वे त्वमेकः किं न मज्जसे ?

'नारदजी ! दूसरे सब मुनिगण तो मुझमें स्नान करते हैं, अकेले आप क्यों स्नान नहीं करते ?'

नारदजीने उत्तर दिया—

भवद्दर्शनान्मुक्तिर्न जाने स्नानजं फलम्।

'भगवन्! मुक्ति तो आपके दर्शनमात्रसे प्राप्त हो जाती है। आपमें स्नान करनेपर इससे बड़ा और कौन-सा फल प्राप्त होगा, यह मैं नहीं जानता।'

तात्पर्य यह कि मुक्तिसे बड़ा और कोई लाभ नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णने भी गीता (६।२२) में यही बात समझायी है। अतः भगवन्नाम-जप निष्काम भावसे ही करना चाहिये, जिससे चित्तका मल धुल जाय। जिसके निर्मल होनेपर (गीता ४।३८ के अनुसार) विशुद्ध चित्तमें ज्ञानका उदय हुए बिना नहीं रहता। ज्ञानका उदय और मोक्ष—ये तो एक ही स्थितिके वाचक शब्द हैं। ज्ञानको मुक्तिका साधन माना जाता है; किंतु वहाँ समयका तनिक भी व्यवधान नहीं है और मुक्तिके लिये कोई भिन्न प्रयत्न करन रह नहीं जाता। इसलिये शब्द भिन्न-भिन्न होनेपर भी एक ह स्थिति सूचित करते हैं और उस स्थितिको प्राप्त करनेमें ह मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है।

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति माऽमृतम्॥

(श्रीमद्भागवत ११।२९।२२)

'बुद्धिमान् मनुष्योंकी बुद्धि तथा चतुर मनुष्योंकी चतुराई इसीमें है कि असत्, जड, दुःखरूप तथा क्षणभङ्गुर शरीरसे सच्चिदानन्दस्वरूप, अविनाशी जो मैं (परमात्मा) हूँ, उसे प्राप्त कर लें।'

परमात्मा सबको सद्बुद्धि प्रदान करें!

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

कीर्तनका सविशेष विवरण

(लेखक—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी श्रीभागवतानन्दजी महाराज, महामण्डलेश्वर काव्यसांख्ययोगन्यायवेद-वेदान्ततीर्थ, वेदान्तवागीश, मीमांसाभूषण, वेदरत्न, दर्शनाचार्य)

लोकानुद्धरयन् श्रुतीर्मुखरयन् क्षोणीरुहान् हर्षयन्
शैलान् विद्रवयन् मृगान् विवशयन् गोवृन्दमानन्दयन्।
गोपान् सम्भ्रमयन् मुनीन् मुकुलयन् सप्त स्वरान्जृम्भयन्
ओङ्कारार्थमुदीरयन् विजयते वंशीनिनादः शिशोः॥

विषयवासनासमुदयकलुषित प्राणिगण इधर-उधर भटककर शान्तिसुखका अन्वेषण करते हुए भी शान्तिलाभ क्यों नहीं करते? इस प्रश्नका संक्षिप्त शब्दोंमें यही उत्तर है कि शान्तिके असाधनोंमें शान्तिके साधनका भ्रम होनेसे वे शान्तिसुखसे वञ्चित रहते हैं। विषयोंके उपभोगसे इन्द्रियाँ शान्त नहीं हो सकतीं, न भोगेच्छा ही समाप्त हो सकती है। श्रीविष्णुपुराण, महाभारत, मनुस्मृति आदि आर्ष ग्रन्थोंमें लिखा है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥

'विषयोंकी लालसा भोगोंको भोगनेसे शान्त नहीं होती। घृतकी आहुति डालनेसे अग्नि शान्त नहीं हो सकती, प्रत्युत वह उत्तरोत्तर प्रचण्ड होती जायगी।'

न चेन्द्रियाणां भोगाभ्यासेन वैतृष्ण्यं कर्तुं शक्यम्। कस्मात्? यतो भोगाभ्यासमनु विवर्द्धन्ते रागाः कौशलं चेन्द्रियाणाम्, तस्मादनुपायः सुखस्य भोगाभ्यासः। स खल्वयं वृश्चिकविषभीत इवाशीविषेण दष्टो यः सुखार्थी विषयानुवासितो महति दुःखपङ्के निमग्न इति। (योगभाष्य २।१५)

'भोगाभ्याससे इन्द्रियोंकी भोगतृष्णा शान्त नहीं की जा सकती। क्यों? क्योंकि भोगोंके भोगनेसे विषयासक्ति और इन्द्रियोंकी भोग-कुशलता (एवं चञ्चलता) बढ़ती ही जाती है, अतः भोगोंके भोगनेका अभ्यास सुखका साधन नहीं है। जो सुख-प्राप्तिकी इच्छासे विषयोंको भोगता है, वह उसी मनुष्यके समान है जो बिच्छूके भयसे किसी स्थानसे भागकर दूसरे स्थानमें जाता है और वहाँ उसे साँप काट लेता है; वह बहुत दुःखके दलदलमें जा फँसता है।'

फलतः यह सिद्ध होता है कि सांसारिक साधन शाश्वत सुखके साधन नहीं, सुखका साधन कोई और ही है। वह कौन साधन है? वह साधन है—'भगवन्नाम-संकीर्तन'।

वेदोंमें इसका वर्णन मिलता है—

'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम।'

(ऋग्वेद १।८९।८; सामवेद उ० २१।१।२)

'कानोंसे कल्याणकारी भगवन्नाम सुनें।' यह नाम-श्रवण कीर्तन करनेपर ही हो सकता है।

'भद्रं श्लोकं श्रूयासम्।' (अथर्ववेद १६।२।४)

'कल्याणकारी भगवान्‌के यशको सुनें।' कल्याणकारी भगवद्यशोवर्णन ही हो सकता है।

'तमु ष्टवाम य इमा जजान।' (ऋ० ८। ८५। ६)

'हम उस भगवान्‌की स्तुति (गुण-कीर्तन) करें, जिसने यह सारी सृष्टि उत्पन्न की है।'

'सत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम्।'

(ऋ० ८। ५१। १२)

'हम उस सच्चे भगवान्‌की स्तुति करें, झूठे विषय आदि पदार्थोंकी नहीं।'

'स्तुतिर्नाम गुणकथनम्।'

(मधुसूदनसरस्वतीकृत महिम्नःस्तोत्रकी टीका)

'गुणोंके कथन (कीर्तन)का नाम स्तुति है।'

परंतु यह नाम-कीर्तन श्रद्धासे ही होना चाहिये।

'श्रद्धया सत्यमाप्यते।' (यजुर्वेद १९। ३०)

'श्रद्धासे सत्यस्वरूप परमात्मा प्राप्त होता है।'

'मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे।'

(ऋ० ८। ११। ५)

'हे प्रभो! मरनेवाले हम मनुष्यलोग अमर आपके नामका कीर्तन करते हैं अर्थात् आपके नाम-कीर्तनका ही पुनः-पुनः अभ्यास करते हैं।'

उक्त मन्त्रके सायणभाष्यमें सायणाचार्य 'मनामहे' का अर्थ 'उच्चारयामः' करते हैं। उच्चारण कीर्तन ही है।

संकीर्तनं नाम भगवद्‌गुणकर्मनाम्नां स्वयमुच्चारणम्।

(वीरमित्रोदय)

'भगवान्‌के गुण, कर्म और नामोंका स्वयं उच्चारण 'संकीर्तन' है।'

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(ऋ० १०। १२१। ४)

'जिस भगवान्‌की महिमाको ये हिमालय आदि पर्वत और नदियोंके साथ समुद्र कहते-गाते हैं और जिस परमात्माकी ये सब दिशाएँ महिमा कहती हैं, हम सब उस सुखस्वरूप परमात्माकी स्तुतिपूर्वक विशेष भक्ति करें।'

गगनचुम्बिनी पर्वतमालाएँ भी अपनी विचित्र रचनाद्वारा यही कह रही हैं कि हमारे निर्माता वे ही जगदीश्वर हैं। उत्तुङ्गतरङ्गमालाशाली समुद्र भी अपनी तरङ्गोंसे उसी विश्वशिल्पी भगवान्‌की ओर संकेत कर रहा है। प्रखरवेगवाहिनी गङ्गा, यमुना आदि नदियाँ भी उसकी सत्ताको अपने श्रवण-सुखकारी शब्दसे प्रकट कर रही हैं।

जब जड जगत् भी भगवान्‌के गुणगणगान (कीर्तन-) में परायण है, तो क्या हमें चेतन होकर भी उसके कीर्तनसे विमुख होना उचित है? कभी नहीं।

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

(श्रीमद्भागवत ३। ३३। ७)

'अहो! जिसकी जिह्वापर तुम्हारा पवित्र नाम रहता है, वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है; क्योंकि जो तुम्हारे नामका कीर्तन करते हैं, उन श्रेष्ठ पुरुषोंने तप, यज्ञ, तीर्थस्नान और वेदाध्ययन—सब कुछ कर लिया। अर्थात् नाम-कीर्तनसे तप आदि गतार्थ हो जाते हैं।'

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्॥

(श्रीमद्भागवत १। ५। २२)

'विद्वानोंने अपने अनुभवसे यही निश्चय किया है कि भगवान्‌का गुण-कीर्तन ही तप, वेदाध्ययन, उत्तम यज्ञ, मन्त्र, ज्ञान और दान आदिका अविनाशी फल है। पढ़ने-लिखनेका फल भी भगवन्नाम-कीर्तन ही है।'

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भागवत ७। ५। २३)

भागवतके इस श्लोकमें श्रवणके अनन्तर 'कीर्तन'को रक्खा है। अतः शास्त्रश्रवणका फल कीर्तन है, यह सिद्ध होता है। कीर्तनके दृढीभूत होनेपर विष्णुभगवान्‌का स्मरण तथा भक्तिके अन्य अङ्गोंका सम्पादन हो सकता है। सब कुछ कीर्तनमूलक ही है।

'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (गीता १०। २५)

'यज्ञोंमें मैं जपयज्ञ हूँ।' भगवान्‌ने अपनेको 'जपयज्ञ'

[illegible] है। इसका कारण स्वामी मधुसूदनसरस्वतीने [illegible] गीताकी [illegible] टीकामें बतलाया है—

'यज्ञानां मध्ये हिंसादिदोषशून्यत्वेनात्यन्त-शोधकोऽहमस्मि।'

'इन यज्ञोंमें हिंसा आदि दोष नहीं हैं, अतः यह भगवन्नामजपयज्ञ अत्यन्त शुद्धि करनेवाला है। यह यज्ञ मेरी (भगवान्‌की) विशेष विभूति है।'

जकारो जन्मविच्छेदः पकारः पापनाशकः।
तस्माज्जप इति प्रोक्तो जन्मपापविनाशकः॥
(आग्नेयपुराण)

'जन्म और जन्मके हेतु पापका नाश करनेके कारण 'जप' कहा जाता है।'

'सततं कीर्तयन्तो माम्' (गीता ९। १४)

'सदा मेरा कीर्तन करनेवाले भक्त मेरी उपासना करते हैं।'

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां
सकलनिगमवल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर नरमात्रं तारयेत्कृष्णनाम॥
(बृ० नारदीय पु०, प्रभासखण्ड)

सांकेत्यं पारिहास्यं च स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
(श्रीमद्भागवत ६। २। १४)

इन दोनों श्लोकोंका यही भाव है कि श्रद्धारहित होकर भी भगवान्‌का नाम मुखसे निकल जाय तो बेड़ा पार है। अजामिल इसका दृष्टान्त प्रसिद्ध ही है—

अजामिलोऽपि पापात्मा यन्नामोच्चारणादनु।
प्राप्तवान् परमं धाम तं वन्दे लोकसाक्षिणम्॥
(पद्मपुराण)

कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
(गीता १०। ९)

'जिनका मुझमें ही मन लगा है, ऐसे भक्तजन सदा मेरा ही कीर्तन-भजन करते हुए संतुष्ट और आनन्दित होते हैं।'

'वेदानां सामवेदोऽस्मि।' (गीता १०। २२)

'वेदोंमें मैं सामवेद हूँ' ऐसा कहकर भगवान् सूचित करते हैं कि सामवेदके मन्त्रोंसे मेरा उच्चस्वरसे कीर्तन करना चाहिये। मन्त्रोंको ऊँचे स्वरसे गाया जाय, उनकी 'साम' संज्ञा होती है।

'गीतिषु सामाख्या।' (मीमांसादर्शन २। १।

'विशिष्टा काचिद् गीतिः सामेत्युच्यते। प्रगीते हि [illegible] वाक्ये सामशब्दमभियुक्ता उपदिशन्ति।'

(उक्त सूत्रका शाबरभा

गाये गये मन्त्रोंको ही 'साम' कहते हैं। [illegible] भगवान् उच्चस्वरसे किये गये कीर्तनसे प्रसन्न रह[illegible] और तभी तो—

'गायन्ति यं सामगाः।' (श्रीमद्भागवत १२। १३।

—यह प्रसिद्ध भी है। इसी तात्पर्यसे भगवा[illegible] अपनेको सामवेद कहा है।

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥
(श्रीमद्भागवत १२। १३। २३

'जिस भगवान्‌का नाम-कीर्तन पापनाशक है औ[illegible] प्रणाम दुःखनाशक है, उस श्रेष्ठ भगवान्‌को नमस्का[illegible] करता हूँ।' यह भागवतका अन्तिम श्लोक है, इस[illegible] भगवान् व्यासने अपना मत स्पष्ट व्यक्त कर दिया है।

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः।
यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते॥
न ह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह।
यतो विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः॥
(श्रीमद्भागवत ११। ५। ३६-३७)

'बुद्धिमान् कलियुगकी प्रशंसा करते हैं कि इस युगमें संकीर्तनसे ही सब स्वार्थ-सिद्धि हो जाती है, जिससे बढ़कर देहधारियोंका अन्य लाभ नहीं है, जिससे संसारका नाश होता और परमशान्ति (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।'

यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥
(श्रीमद्भागवत ११। ५। ३२)

'बुद्धिमान् लोग कीर्तनप्रधान यज्ञोंके द्वारा भगवान्‌का भजन करते हैं।'

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
(श्रीविष्णुपुराण ६। २। १७

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

(श्रीमद्भागवत १२ । ३ । ५२)

'सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतायुगमें यज्ञ करनेसे तथा द्वापरमें भगवान्‌की पूजासे जो कुछ फल प्राप्त होता है, वह सब कलियुगमें भगवान्‌के नाम-कीर्तनमात्रसे ही प्राप्त होता है ।'

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥

(श्रीमद्भागवत २ । १ । ११)

'हे परीक्षित् ! संसारसे विरक्त, मोक्षके चाहनेवाले योगियोंके लिये यह हरि-कीर्तन ही अनुभवी वृद्ध विद्वानोंने निश्चित किया है ।'

इससे सिद्ध हुआ कि कीर्तन ही भव-संतापसे बचानेवाला अत्युत्तम साधन है । भगवान्‌के अनेक नाम हैं । उनमें जो अपनेको प्रिय प्रतीत हो, उसीका कीर्तन करना चाहिये; नामविशेषमें आग्रह करके राग-द्वेष करना अनुचित है ।

इसीलिये किसी विद्वान्‌ने कहा है—

श्रीरामचन्द्रहरिशम्भुनरादिशब्दा
ब्रह्मैकमेव सकलाः प्रतिपादयन्ति ।
कुम्भो घटः कलश इत्यभिशस्यमानो
नाणीयसीमपि भिदां भजते पदार्थः ॥

'रामचन्द्र, हरि, शम्भु, नर, नारायण आदि सब शब्द उस एक ही ब्रह्म परमात्माको कहनेवाले हैं अर्थात् उस एक ब्रह्मके ही अनेक नाम हैं । जैसे कुम्भ, घट और कलश भिन्न-भिन्न नामोंसे कहे जानेपर भी एक ही वस्तु है, भिन्न नहीं ।'

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

(श्रीमद्भागवत १ । २ । ११)

'उसको ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् शब्दसे कहते हैं ।'

'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते ।' (ऋ० ६ । ४७ । १८)

'भगवान् अपनी शक्तियोंसे अनेक रूप धारण करते हैं ।'

'एकं ज्योतिर्बहुधा विभाति ।' (अथर्ववेद १३ । ३ । १७)

'वह ज्योतिःस्वरूप परमात्मा अनेक प्रकारसे प्रकाशित होता है ।'

सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति । (ऋ० १० । ११४ । ५)

'बुद्धिमान् लोग उस एक सत्ता (परमात्मा) को नाना शब्दोंसे वर्णन करते हैं ।'

इस प्रकार अनेक नाम होनेपर भी अपनी रुचिके अनुसार नामके स्मरणसे अवश्य ही लाभ होगा ।

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन । आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे । (ऋ० १ । १५६ । ३)

'हे स्तुति करनेवालो ! अनादिसिद्ध एवं यज्ञस्वरूप विष्णुको जैसा जानते हो, वैसे ही स्तोत्र आदिके द्वारा उनको प्रसन्न करो । विष्णुका नाम जानकर कीर्तन करो । हे विष्णो ! आप महानुभाव हो । आपकी सुमतिका हम सेवन करते हैं ।'

इस मन्त्रकी विभिन्न विद्वानोंने विभिन्न प्रकारकी व्याख्याएँ की हैं, किंतु इस मन्त्रको 'संकीर्तन'परक प्रायः सबने माना है । उक्त मन्त्रकी व्याख्यामें सर्ववेदभाष्यकार सायणाचार्य तो 'विवक्तन' का 'संकीर्तयत' (संकीर्तन करो) अर्थ करके स्पष्ट ही इस मन्त्रको संकीर्तनप्रतिपादक मानते हैं ।

परम अद्वैतवादी भगवान् आद्यशंकराचार्य भी कहते हैं—

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी ।

(विवेकचूडामणि ३२)

'मोक्षप्राप्तिके जितने भी साधन हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ साधन भक्ति है ।' भक्तिका ही अङ्ग 'कीर्तन' है । अतः कीर्तनकी श्रेष्ठता स्पष्ट सिद्ध होती है ।

'श्रद्धाभक्त्योरभावेऽपि भगवन्नामसंकीर्तनं समस्तं दुरितं नाशयतीत्युक्तम्, किमुत श्रद्धाभक्तिपूर्वकम् ।'

(विष्णुसहस्रनाम, शांकरभाष्य १४)

श्रीशंकराचार्य अपने भाष्यमें कहते हैं कि "श्रद्धा और भक्तिके न होनेपर भी भगवान्‌के नामका 'संकीर्तन' सब पापका नाश कर देता है । श्रद्धा-भक्तिपूर्वक किया जाय तो कहना ही क्या है ।"

'ओमित्येतदक्षरं परमात्मनोऽभिधायकं नेदिष्ठम्, तस्मिन् हि प्रयुज्यमाने स प्रसीदति प्रियनामग्रहण इव लोकः ।'

(छान्दोग्य० शांकरभाष्य १ । १ । १)

'ओम्' यह परमात्माका अति संनिहित नाम है; इस नामके लेनेसे वे उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं, जैसे प्रिय नाम लेनेसे लोग प्रसन्न होते हैं ।'

यही शब्दब्रह्म है—

'...नादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वम्'

(भर्तृहरिरचित वाक्यपदीय, ब्रह्मकाण्ड १)

'...जो उत्पत्ति-नाशरहित शब्द-तत्त्वरूप ब्रह्म है ।'

'...प्राहुर्महान्तमृषभम्'

(वाक्यपदीय ब्रह्म० १३१)

'...शब्दको व्यापक स्वप्रकाश ब्रह्मरूप देव कहते हैं ।'

...न्यासियोंके लिये भी भगवन्नाम, प्रणव आदिका ...र्तन आवश्यक है—

...क्षाटनं जपो ध्यानं स्नानं शौचं सुरार्चनम् ।
...र्त्तव्यानि षडेतानि यतिना नृपदण्डवत् ॥

(मेधातिथि)

...क्षा, जप, ध्यान, स्नान, शौच और देव-पूजनको अवश्य करे; इनका करना राजाके नियम-पालनके ...वश्यक है ।'

...त्र श्रुतियोंमें ॐकारकी प्लुत स्वरमें ध्वनि करनी ... अतः यहाँ जप भी कीर्तन, स्मरण आदि व्यापक ...लेना चाहिये ।

...भक्तने अपने कानको सम्बोधित करके कहा है—

किन्नरोपज्ञमनेकरागा
सम्मूर्छना या स्वरभावयुक्ता ।
...गीतिकां कर्ण विहाय दूरं
शृणु त्वमेताः पुरुषोत्तमस्य ॥

'...रे कान ! अनेक गन्धर्वोंद्वारा गाये गये स्वर, भाव ...से युक्त गीतोंका सुनना छोड़ दे और केवल ...गीत सुन ।'

...र्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति ...। (नारदभक्तिसूत्र८०)

'...वान्‌का प्रेमपूर्वक कीर्तन करनेसे वे 'भगवान्' शीघ्र ...होते हैं और अपने भक्तको शीघ्र ही अनुभव करा देते हैं ।'

...नाम-कीर्तनके फलके विषयमें अर्थवादकी कल्पना ...है—

...कीर्तनफलं विविधं निशम्य
नो श्रद्दधाति मनुते यदुतार्थवादम् ।
...नुषस्तमपि दुःखचये क्षिपामि
संसारघोरपरितापनिपीडिताङ्गम् ॥

(ब्रह्मसंहिता)

'नाम-कीर्तनके नाना फलोंको सुनकर जो विश्वास नहीं करता और यह अर्थवादमात्र है—ऐसा कहता है, उस मनुष्यको मैं (भगवान्) नाना प्रकारके दुःख-गर्तोंमें डाल देता हूँ ।'

अतः भगवन्नाम-महिमाके सम्बन्धमें जो शास्त्रोंमें लिखा है, वह अत्युक्ति वा अतिशयोक्ति नहीं है, किंतु ध्रुव सत्योक्ति है—ऐसा विश्वास करना चाहिये ।

कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते ।
भस्मीभवन्ति राजेन्द्र महापातककोटयः ॥

(विष्णुधर्म)

'जिसकी जिह्वापर मङ्गलस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका नाम है, उसके करोड़ों महापाप भी भस्म हो जाते हैं ।'

संकीर्तनध्वनिं श्रुत्वा ये च नृत्यन्ति मानवाः ।
तेषां पादरजःस्पर्शात्सद्यः पूता वसुन्धरा ॥

(बृ० नार० पु०)

'जो भगवन्नामकी ध्वनिको सुनकर प्रेममें तन्मय होकर नृत्य करते हैं, उनकी चरण-रजसे पृथिवी शीघ्र ही पवित्र हो जाती है ।'

भगवन्नाम-कीर्तनादिमें लज्जा नहीं करनी चाहिये—

विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥

(श्रीमद्भागवत ११ । १४ । २४)

'जो लोकलज्जाकी परवा न करता हुआ मेरा भक्त उच्च स्वरसे गाता है अर्थात् कीर्तन करता है और नृत्य करता है, वह संसारको पवित्र कर देता है ।'

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः ॥

(श्रीमद्भागवत ६ । २ । १८)

'जानकर या बिना जाने—जैसे भी भगवान्‌का नाम मुखसे निकल जाय, वह नामकीर्तन पुरुषके पापको वैसे ही दग्ध कर देता है जैसे काष्ठको अग्नि ।'

शास्त्रोक्त अन्य सभी साधन श्रद्धापूर्वक न किये जायँ तो उनका करना व्यर्थ हो जाता है, जैसा कि गीतामें कहा है—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥

(१७ । २८)

'अश्रद्धासे किये गये होम, दान, तप आदि कर्म निष्फल हो जाते हैं; न तो वे इस लोकमें फल देते हैं, न परलोकमें ही।' परंतु भगवन्नामकीर्तन तो श्रद्धा न रहनेपर भी किया जाय, तब भी उत्तम फलप्रद होता है। गङ्गाकी महिमा जाने या न जाने; परंतु इच्छासे अथवा अनिच्छासे, फिसलकर गिर जानेसे भी, गोता लगनेपर पुण्य अवश्य ही होता है। ऐसे ही भगवन्नामकी शक्ति भी विलक्षण है।

किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते ॥

(श्रीविष्णुपुराण ६।८।५६)

'इसमें आश्चर्यकी क्या बात है, यदि भगवान्‌के नाम-कीर्तनसे पाप नष्ट हो जाते हैं?'

अग्निको छूनेसे हाथ जल जाय, तो इसमें क्या कोई आश्चर्यकी बात है? यह तो वस्तुशक्तिस्वभाव है।

यह कीर्तनकी प्रथा कोई नूतन नहीं, अनादिकालसे श्रेष्ठ पुरुषोंमें चली आ रही है—

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत्।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा
यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥

(पद्मपुराणका भागवतमाहात्म्य ६।८७)

'ताल देनेवाले प्रह्लाद थे, उद्धव मजीरा-झाँझ बजाते थे, नारदजी वीणा लिये हुए थे, अच्छा स्वर होनेके कारण अर्जुन गाते थे, इन्द्र मृदङ्ग बजाते थे, सनक-सनन्दन आदि कुमार जय-जय ध्वनि करते थे और शुकदेवजी अपनी रसीली रचनासे रस और भावोंकी व्याख्या करते थे।'

उक्त सब मिलकर एक भजनमण्डली बनाकर हरि-गुण गान करते थे।

एक बार नारदजीने ब्रह्मासे कहा कि ऐसा उपाय बतलाइये कि जिससे मैं विकराल कलिकालके गालमें न आऊँ। इसके उत्तरमें ब्रह्माजीने—

'भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति।' (कलिसंतरणोपनिषद्)

'मनुष्य भगवान्‌के नामके उच्चारण करनेमात्रसे ही कलिसे तर जाता है।'

—इत्यादि नामकी महिमा सविस्तर वर्णित की है।

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

(बृ० नार० पु० ३८।१२७)

'नारद आदि भगवद्भक्तोंका कथन है कि कलियुगमें और कोई भवसागरसे पार होनेका ऐसा सरलतम उपाय नहीं है; केवल भगवान्‌का नाम लेना, नाम लेना, नाम लेना ही हमारे जीवनका परम ध्येय है।'

तीन बार कहनेसे यह ध्रुव सत्य है, इसमें संशय-पिशाच-को लेशमात्रका भी अवकाश नहीं है—यह सूचित किया गया है। इससे नामकी महिमा स्पष्ट प्रतीत होती है।

तन्नास्ति कर्मजं लोके वाग्जं मानसमेव वा।
यत्तु न क्षीयते पापं कलौ केशवकीर्तनात् ॥

(स्कन्दपुराण)

'कलियुगमें ऐसा कोई भी कायिक, वाचिक अथवा मानसिक पाप नहीं है, जो भगवान्‌के नाम लेनेसे नष्ट न हो।'

'अशेषजगदंहसां किमपि नाम निर्णेजनम्।'

(श्रीभगवन्नामकौमुदी ३।८)

'अशेष जगत्‌के समस्त पापोंको धो बहा देनेवाला कोई अद्भुत साधन भगवान्‌का नाम है।'

वज्रं पापमहीभृतां भवगदोद्रेकस्य सिद्धौषधं
मिथ्याज्ञाननिशाविशालतमसस्तिग्मांशुबिम्बोदयः।
स्फूर्जत्क्लेशमहीरुहामुरुतरज्वालाजटालः शिखी
द्वारं निर्वृतिसद्मनो विजयते कृष्णेति वर्णद्वयम् ॥

(पण्डितराज जगन्नाथ)

'पापरूपी पर्वतोंका नाश करनेमें वज्रस्वरूप, संसाररूपी महारोगका रामबाण (अव्यर्थ) औषध, मिथ्याज्ञानरूपी रात्रि-के सघन अन्धकारको दूर करनेके लिये सूर्योदयरूप, महान् दुःखरूपी वृक्षोंको जलानेके लिये प्रचण्ड ज्वालाओंसे युक्त अग्नि, मोक्षमन्दिरका द्वारस्वरूप 'कृष्ण' यह वर्णयुगल सबसे श्रेष्ठ है।'

भक्तशिरोमणि तुलसीदासजी नामकी महिमाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ ॥
नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं ॥
बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल नाम सनेहू ॥

'यों तो चारों युगोंमें और चारों वेदोंमें नामका प्रभाव है, विशेषकर कलियुगमें तो कोई दूसरा उपाय है ही नहीं। भगवान्‌का नाम लेनेसे संसाररूपी समुद्र सूख जाता है। हे सज्जनो! इसका मनमें विचार करो। वेद, पुराण और संतोंका यही मत है कि सब पुण्योंका फल भगवन्नाममें प्रेम होना है।'

सौरपुराणमें 'आहर, प्रहर, संहर' (लाओ, वार करो, मार डालो) कहनेवाले व्याडिनामक व्याधके समस्त पापोंके नाशका वर्णन है। उक्त वाक्यसे 'हर' नाम भगवान्‌का होनेसे उसके उच्चारणमात्रकी यह महिमा है।

नरवपुः प्रतिपद्य यदि त्वयि
श्रवणवर्णनसंस्मरणादिभिः ।
नरहरे ! न भजन्ति नृणामिदं
दृतिवदुच्छ्वसितं विफलं ततः ॥

(श्रीमद्भागवत १० । ८७ । १७ की श्रीधरस्वामीकी व्याख्या)

भागवतके विख्यात व्याख्याकार श्रीधरस्वामी 'वेद-स्तुति' की अपनी टीकामें कहते हैं कि 'हे भगवन् ! जो नर-देह पाकर आपका श्रवण, वर्णन और स्मरण आदि नहीं करते, वे मनुष्य लुहारकी धौंकनीकी तरह व्यर्थ ही साँस लेते हैं—उनका जीवन व्यर्थ है।'

नारदने भगवान्‌से कहा है—

वेदेषु सपुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे।

(महाभारत शा० मो० ३३४ । २५)

'अङ्ग, उपाङ्ग, पुराण और वेदोंमें आप गाये जाते हैं।'

अर्जुनसे भगवान्‌ने कहा है—

ऋग्वेदे सयजुर्वेदे तथैवाथर्वसामसु।
पुराणे सोपनिषदे तथैव ज्यौतिषेऽर्जुन ॥
सांख्ये च योगशास्त्रे च आयुर्वेदे तथैव च।
बहूनि मम नामानि कीर्तितानि महर्षिभिः ॥

(महाभारत शा० मो० ३४१ । ८-९)

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते विष्णुः सर्वत्र गीयते ॥

(महाभारत)

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥

(हरिवंश)

'ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद, पुराण, उपनिषद्, ज्यौतिष, सांख्य, योग, आयुर्वेद आदिमें मेरे (भगवान्‌के) बहुतसे नाम महर्षियोंने गाये हैं।' और 'वेद, रामायण, महाभारत और पुराणोंके आदि, मध्य और अन्तमें हरिके ही नाम-गुण गाये गये हैं।'

वेदोंका प्रतिपाद्य परमात्मा ही है—

'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' (क० उ० १ । २ । १५)

'सब वेद जिस पद (भगवन्नाम और तत्प्रतिपाद्य स्व[illegible] का वर्णन करते हैं।'

शिष्टपरम्परामें वेदोंका अध्ययन भी भगवन्नाम-की[illegible] पूर्वक ही होता है—

ओमित्युक्त्वा वृत्तान्तशः शमित्येवमादीञ्छब्दान् पठन्[illegible]

(व्याकरणमहाभाष्य, पस्पशाह्निक १ । १ ।

वेदोंके पढ़नेवाले 'ओम्' ऐसा कहकर 'शन्नो दे[illegible] रभिष्टय', 'इषे त्वोर्जे त्वा', 'अग्निमीळे पुरोहितम्' 'अ[illegible] आयाहि वीतये' इत्यादि वेदमन्त्रोंको पढ़ते हैं। 'शन्न[illegible] इत्यादि ये चार मन्त्र क्रमशः अथर्ववेद, यजुर्वेद, ऋग्वे[illegible] और सामवेदके आरम्भके मन्त्र हैं।

'ओम्' परमात्माका नाम है—

'तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थभावनम्।'

(योगदर्शन १ । २७-२८)

''ओम्' ईश्वरका वाचक है अर्थात् 'ओम्' का अ[illegible] है ईश्वर। उस ईश्वरके वाचक 'ओम्' का जप और उसके अ[illegible] ईश्वरका चिन्तन करना चाहिये।' उक्त वेदारम्भके मन्त्रों[illegible] 'शम्'का कल्याणरूप ईश्वर अर्थ है। 'इषे' में 'इषु[illegible] भी प्रधानतया 'इष्यमाण' (इच्छाके विषय) ईश्वरक[illegible] बोधक है। 'अग्निमीळे' और 'अग्न आ' में आये हुए 'अग्नि[illegible] शब्दका अर्थ आध्यात्मिक पक्षमें परमात्मा है।

'अङ्गति सकलवेदान्तप्रतिपाद्यत्वं गच्छतीत्यग्निः।'

(तैत्ति० संध्याभाष्य)

'अङ्गति गच्छति सर्वं व्याप्नोतीति अग्निः।'

(अथर्ववेद, सायणभाष्य ३ । १ । १)

'सकल वेदान्तोंका प्रतिपाद्य ब्रह्म (अग्नि) है।'

'सर्वत्र व्यापक अग्नि (ब्रह्म) है।'

अग्निर्देवता ब्रह्म। (तैत्ति० आ० १० । ३३)

'अग्निदेव ब्रह्म है।'

ब्रह्म ह्यग्निः। (शतपथ ब्रा० ८ । ५ । १ । १२)

'ब्रह्म ही अग्नि है।'

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः। (ऋ० १ । १६४ । ४६)

'उस परमात्माको इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं।'

'तदेवाग्निः'। (यजुर्वेद ३२ । १)

'वही ब्रह्म अग्नि है।'

महर्षियोंने भगवन्नामका उच्चारण करके ही षड्दर्शनों (न्याय आदि छहों शास्त्रों-)का आरम्भ किया है—

'प्रमाणप्रमेय०' (न्यायदर्शन)
'अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः।' (वैशेषिकदर्शन)
'अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।' (सांख्यदर्शन)
'अथ योगानुशासनम्।' (योगदर्शन)
'अथातो धर्मजिज्ञासा।' (पूर्वमीमांसादर्शन)
'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।' (वेदान्तदर्शन)

न्यायदर्शनमें महर्षि गौतमको 'प्रमाण' शब्दसे परमात्माका नामोच्चारण अभिप्रेत है।

'प्रमाणं प्राणनिलयः' (विष्णुसहस्रनाम ११६)

इसमें 'प्रमाण' शब्द विष्णुका वाचक आया है। न्यायशास्त्रके सुप्रसिद्ध 'मुक्तावली'कार विश्वनाथ तर्कपञ्चाननने अपनी 'न्यायसूत्रवृत्ति' में उक्त सूत्रके व्याख्यानमें उक्त बात कही है। 'अथ' शब्द भी परम माङ्गलिक परमात्माके नामको सूचित करता है—

'अर्थान्तरप्रयुक्त एव ह्यथशब्दः श्रुत्या मङ्गलप्रयोजनो भवति।' (वेदान्तदर्शन, शाङ्करभाष्य १।१।१)

'अर्थान्तरेष्वानन्तर्यादिषु प्रयुक्तोऽथशब्दः श्रुत्या श्रवणमात्रेण वेणुवीणादिध्वनिवन्मङ्गलं कुर्वन् मङ्गलप्रयोजनो भवति, अन्यार्थमानीयमानोदकुम्भदर्शनवत्।' (उक्त भाष्यकी 'भामती')

वाचस्पति मिश्र उक्त भाष्यकी व्याख्या करते हुए अपने 'भामती' नामक ग्रन्थमें कहते हैं कि 'यद्यपि 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस सूत्रमें 'अथ' शब्द साधन-चतुष्टयके आनन्तर्यका बोधक है, तथापि 'अथ' शब्दके श्रवणमात्रसे मङ्गलरूपी प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। जैसे यात्रार्थी पुरुष वंशी, वीणा, शङ्ख आदिका शब्द तथा अन्यके लिये लाये गये जलपूर्ण घट आदिको देखकर यात्राका शुभ मङ्गल-शकुन समझ लेता है, वैसे ही यहाँ भी आनन्तर्यार्थक 'अथ' शब्द माङ्गलिक है।' और कहा भी है—

ओङ्कारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ॥
(बृह० ना० पु० १।५१।१०)

"'ओङ्कार' और 'अथ'—ये दो शब्द पहले ब्रह्माके कण्ठको भेदन करके निकले हैं; अतः ये दोनों माङ्गलिक हैं।"

भगवन्नाम-वाचक शब्दका आरम्भमें प्रयोग करनेसे ही ऋषियोंपर नास्तिकताका शङ्का-कलङ्क-पङ्क आरोप नहीं किया जा सकता और 'शिष्टशिक्षा'की रक्षा-प्रणालीका भी सुसम्पादन हो जाता है। अर्थात् ऋषियोंके अनुयायी भी 'यद्यदाचरति श्रेष्ठः' के आधारपर जो भी कुछ ग्रन्थारम्भ आदि कार्य करें, वह भगवन्नाम लेकर ही करें। ऐसे ही अन्य शास्त्रोंके आरम्भके विषयमें भी समझ लेना चाहिये। जैमिनि आदि भी अनीश्वरवादी नहीं थे। यद्यपि कुमारिलभट्टने अपने श्लोकवार्तिकमें 'ईश्वरका खण्डन' किया है, तथापि उनका अभिप्राय कर्मवादमें दृढ़तासम्पादन ही है, ईश्वर-निराकरण अभिप्रेत नहीं। ऐसे ही 'कपिल' को भी प्रकृति आदि तत्त्वोंका प्रतिपादन मुख्यरूपसे अपने 'सांख्यदर्शन' का प्रतिपाद्य है—यह सूचित करना अभिप्रेत है, ईश्वर-खण्डन नहीं। आइये, अब कुछ थोड़ी-सी 'पुराणोद्यान' की सैर कर लीजिये—

हरेः संकीर्तनं पुण्यं सर्वपातकनाशनम्।
सर्वकामप्रदं लोके अपवर्गफलप्रदम्॥
(आदित्यपुराण)

'हरिका पवित्र संकीर्तन सब पापोंका नाशक, सब कामनाओंको पूरा करनेवाला तथा मुक्तिका दाता है।'

सर्वधर्मोज्झिता विष्णोर्नाममात्रैकजल्पकाः।
सुखेन यां गतिं यान्ति न तां सर्वेऽपि धार्मिकाः॥
(आग्नेयपुराण)

'सर्वधर्मोंसे रहित पुरुष भी भगवान्के नाममात्रका उच्चारण करनेसे सुखपूर्वक उस उत्तम गतिको पाते हैं, जिसे धर्मात्मालोग भी नहीं पाते।'

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥
(वराहपुराण)

'जिसने 'हरि' यह दो अक्षरवाला नाम उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षके लिये कमर कस ली।'

ये कीर्तयन्ति वरदं वरपद्मनाभं
शङ्खाब्जचक्रशरचापगदासिहस्तम्।

पद्मालयावदनपङ्कजषट्पदाख्यं
नूनं प्रयान्ति सदनं मधुघातिनस्ते ॥
(वामनपुराण)

'जो शङ्ख-चक्रादिधारी भगवान्‌का कीर्तन करते हैं, वे विष्णुलोकको जाते हैं।'

यदीच्छसि परं ज्ञानं ज्ञानाच्च परमं पदम्।
तदा यत्नेन महता कुरु गोविन्दकीर्तनम् ॥
(गरुडपुराण)

'यदि आत्मज्ञानकी इच्छा है और आत्मज्ञानसे परमपद पानेकी इच्छा है, तो यत्नपूर्वक गोविन्दका कीर्तन करो।'

हरे राम हरे कृष्ण कृष्ण कृष्णेति मङ्गलम् ॥
एवं वदन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः।
(पद्मपुराण ४ । ८० । २-३)

'हरे राम हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण ! ऐसा जो सदा कहते हैं, उन्हें कलियुग हानि नहीं पहुँचा सकता।'

अहो चित्रमहो चित्रमहो चित्रमिदं द्विजाः।
हरिनाम्नि स्थिते लोकः संसारे वर्तते पुनः ॥
(बृह० ना० पु०)

'बड़ा ही आश्चर्य है, भगवान्‌के नामरूपी साधनके रहते हुए भी लोग संसारमें पड़े हैं।'

यन्नामकीर्तनं भक्त्या विलापनमनुत्तमम्।
मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः ॥
(विष्णुपु० ६ । ८ । २०)

'जैसे अग्नि सुवर्ण आदि धातुओंके मलको नष्ट कर देती है, ऐसे ही भक्तिसे किया गया भगवान्‌का कीर्तन सब पापोंके नाशका अत्युत्तम साधन है।'

चक्राङ्कितस्य नामानि सदा सर्वत्र कीर्तयेत्।
नाशौचं कीर्तने तस्य स पवित्रकरो यतः ॥
(विष्णुधर्म०)

'भगवान्‌के नामोंका सदा सर्वत्र कीर्तन करे, भगवान्‌के नाम-कीर्तनमें कहीं अपवित्रताका विचार नहीं है; क्योंकि भगवान् सदा पवित्र करनेवाले हैं।'

विधिवाक्यमिदं सर्वं नार्थवादः शिवात्मकम्।
लोकानुग्रहकर्ता यः स मृषार्थं कथं वदेत् ॥
(शिवधर्मोत्तर०)

'भगवन्नामकी महिमाका वर्णन अर्थवाद (कोरी प्रशंसा) नहीं, यह विधि (सत्य) है; लोगोंपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् और ऋषिगण झूठ कैसे कह सकते हैं?'

'नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्त्रिणः'

पक्षी अपनी शक्तिभर आकाशमें उड़ते हैं, परंतु आकाशका अन्त नहीं पा सकते। वैसे ही भक्त विद्वज्जन उस चिदाकाशमें उड़ते (उसका वर्णन करते) हैं, परंतु उस अनन्तका अन्त नहीं पाते। इस न्याय (कहावत) के अनुसार ऊपर भगवन्नामकी कुछ महिमाका वर्णन किया गया। वेद, शास्त्र, इतिहास, पुराण, स्मृति आदि ग्रन्थोंमें नाम-महिमाका अति विस्तृत वर्णन है; यहाँ 'स्थालीपुलाकन्याय' (बटलोहीके एक चावलको देखकर अन्य चावलोंको पका हुआ समझ लेना) से दिग्दर्शनमात्र कराया गया है। विशेष जिज्ञासु दार्शनिक शैलीसे सयुक्तिक वर्णन 'भगवन्नामकौमुदी' आदि आकर-ग्रन्थोंमें देखें।

'भद्रं नो अपि वातय मनः।'
(ऋग्वेद १० । २० । १, सामवेद ४ । ८ । ४)

'हे भगवन् ! हमारे मनको भगवद्भक्ति, विचार आदि शुभ कर्मोंकी ओर प्रेरित कीजिये।'

'त्वत्सम्बन्धिस्तोत्रकरणे प्रेरयेत्यर्थः।'
(उक्त मन्त्रका सायणभाष्य)

'भगवन् ! आपकी स्तुति करनेमें मनको प्रेरित करिये।' बस, अन्तमें यही प्रभुसे प्रार्थना है—

अंहः संहरदखिलं सकृदुदयादेव जीवलोकस्य।
तरणिरिव तिमिरजलधिं जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

भगवन्नामकी अनन्त माधुरी और अनन्त शक्ति

(लेखक—अज्ञेय स्वामीजी श्रीश्री[illegible]जी महाराज)

सुगमं भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी ।
तथापि नरके घोरे पतन्तीत्येतदद्भुतम् ॥

यद्यपि भगवन्नाममें अनन्त माधुरी एवं अनन्त शक्ति निहित है; क्योंकि वह नामीसे भिन्न नहीं है। तथापि जीवोंको अपने-अपने हृदयके स्तरके अनुरूप ही नाममाधुरीका न्यूनाधिकरूपेण अनुभव होता है। जिसका हृदय नाम-जपसे जितना-जितना स्वच्छ होता जाता है, उसके हृदयमें उतना-उतना ही नामरसका विकास होता जाता है। हमारा हृदय अनन्त जन्मोंके वासनापुञ्जकी कटुतासे कटुप्राय हो गया है, अतः हमें किञ्चित् भी नाममाधुरीका अनुभव नहीं होता। जिसका इसी जन्ममें मुक्त होना सम्भव है, उसे प्रथम बार ही नाम सुनकर मधुर-मधुर लगता है। हाँ, तो, हृदयकी स्वच्छताके लिये भी नाम ही साधन है। जैसे पित्तदूषित रसनाकी कटुताको मिटानेके लिये मिसरी ही औषध है और कटुता मिटनेपर वही सिता (मिसरी) मधुर भी लगने लगती है जो रोगके समय कटु प्रतीत होती थी।

यह तो समझनेके लिये एक लौकिक दृष्टान्त है। वास्तवमें भगवन्नाम तो अनुपम ही है। यदि ऐसा न होता तो बड़े-बड़े आत्माराम, आप्तकाम, शिव, सनक, शारदा, नारद प्रभृति ईश्वरकोटिके महापुरुष इसे अपना जीवातु एवं परम आश्रय न बनाते।

सुनते हैं, जिस समय निमाई (श्रीचैतन्यमहाप्रभु) बालक थे, तो उनके रोनेपर शची मा हरिनाम सुनाकर ही उन्हें संतुष्ट कर पाती। अपनी अनुभूत माधुरीको कर्णपुटोंसे पान करके ही वे प्रसन्नताका अनुभव करते। तरुणावस्थामें भी भक्तलोग जब उन्हें प्रेमोन्मादसे मूर्च्छित पाते तो हरिनाम-कीर्तनसे ही उनके मूर्च्छानिवारणमें सफल होते थे। अन्य उपचारोंसे उन्हें सचेत करना असम्भव था। उन्होंने ही वस्तुतः भगवन्नाम-माधुरीका रसास्वादन किया, उन्हींकी रसना उस रसके पान एवं अनुभवसे सार्थक बनी। यही कारण था कि उन्होंने अबोध बालक-बालिकाओंसे एवं विधर्मी यवनोंसे, यहाँतक कि पामर तिर्यग्योनिगत जीवोंसे भी उस नामका उच्चारण कराया।

जैसे जीभपर मिठाई रखनेसे उसमें रस बहने लगता है, ऐसे ही रसज्ञ रसिकोंकी रसनापर [illegible] नामके पड़ते ही अपूर्व रसकी धारा प्रवाहित होती है, [illegible] अन्तस्तलमें [illegible] मिलना चाहती है। ऐसे महानुभाव जब प्रेमोन्मत्त [illegible] संकीर्तन करने लगते हैं तो उनके [illegible] परम माधुर्यसे ओतप्रोत अपूर्व संकीर्तनसुधा जिन लोगोंके कर्णकुहरोंमें पड़ती है उन्हें भी अपने [illegible] आप्लावित किये बिना नहीं छोड़ती। [illegible] भी संकीर्तन करनेको विवश हो जाते हैं। ऐसे [illegible] ही नामका चमत्कार विशेषरूपेण दृष्टिगत होता है।

हाँ, तो जिस पदार्थमें 'आ-समन्तात्, मा-माधुर्यश्री,' हो, उसे 'आम' कह सकते हैं और 'नास्ति आमं यस्मात्'—जिससे बढ़कर त्रिभुवनमें कोई भी मधुर वस्तु न हो, वही हुआ मधुरातिमधुर 'नाम'।

हाय ! हाय ! इस छोटेसे कृष्ण-नाममें इतनी माधुरी किसने उड़ेल दी। 'कृष्णनाम जब ते श्रवन सुन्यो री माई, भूली री भवन हौं तो बावरी भई री।' किस देवने किन-किन सुधाओंके सम्भारसे इसका सृजन किया है, 'नो जाने रचिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी।'

एक मन्त्र है—'अतप्ततनुर्न तदामो अश्नुते दिवम्।' शंख-चक्रादिसे अनङ्कित तनु जीव कच्चा होनेके कारण उस प्रभुके दिव्य मङ्गलमय श्रीविग्रहका दर्शन नहीं कर सकता। कुछ सम्प्रदायके लोग इसका ऐसा अर्थ करते हैं; किंतु कोई रसिक महानुभाव ऐसा भी अर्थ करते हैं कि जबतक विरहतापसे जीवका तनु संतप्त नहीं होता, तबतक वह उन प्रभुके दिव्य दर्शनसे वञ्चित ही रहता है; क्योंकि अभी वह कच्चा है।

अब विचार करें—जीवमें यह कचाई क्या है ? दाल-चावलको आगपर चढ़ाते हैं तो जबतक वे नहीं पकते, उछलते रहते हैं। पकनेपर—सिद्ध होनेपर स्थिर एवं रसीले बन जाते हैं। ऐसे ही जीवकी भी मन-इन्द्रियाँ वासनाओंके कारण उछल-कूद, दौड़-धूप मचाती रहती हैं, क्षणभर भी स्थिर नहीं रहतीं। स्वप्नमें भी चैन नहीं। जैसे वानरकी चञ्चलता सुरापान, वृश्चिकदंशन, या भूतावेशसे

नगर कागाको पार कर जाती है, वैसी ही दशा जीवकी भी है; किन्तु जब प्रभुकृपा एवं संतकृपासे वह नामका आश्रय लेता है तो उसके प्रभावसे धीरे-धीरे चित्तमें मधुरता आने लगती है। फिर जैसे-जैसे वह बढ़ती है वैसे-वैसे ही सोचता है कि हाय! जिसका नाम ही इतना मधुर है वह स्वयं कितना मधुर, कितना सुन्दर, कितना मोहक होगा! बस, फिर तो उसके लिये आँखें ललचाने लगती हैं। दर्शन अभी नहीं होते। क्या करें! हृदयमें विरहकी आग सुलगने लगी, वह बढ़ने लगी। अब तो उसने वासनाओंके कूड़ेको जलाकर भस्म कर दिया। जहाँ रामकी तीव्र लालसा जगी वहाँ कामका क्या काम? जहाँ दिव्यरसका अनुभव हो गया वहाँ विषयका अति तुच्छ रसाभास कैसे रहेगा? नीरस हृदयमें ही वासनाओंका जमाव जमता है। अतः जीवके हृदयमें इष्टातिरिक्त वासनाओंका पुञ्ज ही कचाई है, उसे नाम ही विरहाग्नि जलाकर मिटाता है। अच्छा हरिनाम! ऐसा विलक्षण आपका चमत्कार है? ठीक है, 'न आमो येन' जिससे जीव कच्चा न रहे, वही तो 'नाम' है।

जीवको दो ही वस्तुएँ अभीष्ट हैं—'आलोक' और आह्लाद'। ज्ञानालोक मोहतिमिरको दूर करता एवं आह्लाद चित्तको प्रसन्न—सरस करता है। लौकिक आह्लाद धनागम एवं प्रतिष्ठासे तथा दिव्य आह्लाद रसस्वरूपके चित्तमें प्रकट होनेपर मिलता है। नाम इन्हें भी प्रदान करता है—देखिये 'आलोक'—

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ जौं चाहसि उजिआर॥'

और लौकिक आह्लाद—

घर घर माँगत टूक पुनि भूपति पूजत पाँय।
ते तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय॥

अलौकिक आह्लाद—

भाँग तमाखू छूतरा, उतर जात परभात।
नाम खमीरी नानका, चढ़ी रहे दिन रात॥

हाँ तो, जिससे असा—अलक्ष्मी अथवा अमा—अन्धकार न रहता, परम धन, परम लाभ एवं आलोक मिलता वही तो दिव्य 'नाम' है।

न असा—अलक्ष्मीः अन्धकारो वा यस्मात्।

नाम ही संसारचक्रकी गतिको काटता है। 'आम' गतिको भी कहते हैं जिससे 'आम' न रहे वह हुआ 'नाम'। 'आम' रोगवाचक भी है। 'संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्।' भयंकर भवरोग ही मिट गया तो लौकिक रोगोंकी तो बात ही क्या। फिर भी आपको विश्वास न हो तो लौकिक रोगोंपर भी संतोंका अनुभव सुन लीजिये—

सभी रसायन हम करी नहीं नाम सम कोय।
रंचक घट मैं संचरै, सब तन कंचन होय॥

सब रोगोंकी जड़ तो अहंकार-पिशाच ही है। उसका भी कंटक यही नाम-नरेश—नामदेव काटते हैं। 'आम' अहंकारको भी कहते हैं। 'आ समन्तात् मातीति आमः' जो जीवको चारों ओरसे माप लेता है, 'न आमो येन' अथवा 'नामयतीति' जो जापक-जनको नम्र बना देता है। तो जैसे प्रभुमें अनन्त चमत्कार हैं, अनन्त शक्तियाँ हैं, वैसे ही उनके नाममें भी समझिये। नहीं-नहीं, उनसे भी अनन्तगुने चमत्कार—अनन्तगुनी शक्तियोंसे भरी यह नाममयी जादूकी पिटारी है। इसके लिये हम तो उसे अनन्त प्रणाम ही करते हैं। *

नाममें नामीका निवास—

अब थोड़ी मीठी बात कर लें। एक प्रज्ञाचक्षुने किसी महात्मासे प्रश्न किया—'भगवन्! मैं तो जन्मान्ध हूँ, रूपकी रेखाको भी नहीं जानता-पहचानता, मैं प्रभुका ध्यान कैसे करूँ?'

महात्माजीने बताया—'भैया! चिन्ता मत करो। तुम नाम-जप करते रहो। उसीके प्रभावसे भगवान् स्वयं तुम्हारे हृदयमें अपना दिव्य मनोहर रूप प्रकट कर देंगे। क्या गोस्वामीजीका वचन तुमने नहीं सुना है? वे क्या कहते हैं—

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

बस, तुम्हारा काम बन जायगा।'

एक और बहुत ही मधुर घटना है। एक बार श्रीगिरिराज-

---

* नामकी प्रधान १५ शक्तियाँ ये हैं—

१ भुवनपावनी, २ सर्वव्याधिविनाशिनी, ३ सर्वदुःखहारिणी, ४ कलिकालभुजंगभयनाशिनी, ५ नरकोद्धारिणी, ६ प्रारब्धविनाशिनी, ७ सर्वापराधभञ्जनी, ८ कर्मसम्पूर्तिकारिणी, ९ सर्ववेदतीर्थाधिकफलदायिनी, १० सर्वार्थदायिनी, ११ जगदानन्ददायिनी, १२ अगतिगतिदायिनी, १३ मुक्तिप्रदायिनी, १४ वैकुण्ठलोकदायिनी, १५ भगवत्प्रीतिदायिनी।

नाम-जप और प्रार्थनासे सम्पूर्ण दुःखोंकी निवृत्ति एवं सर्वशक्तियोंके केन्द्र अक्षय सुखरूप ब्रह्मकी प्राप्ति

(लेखक—श्रीअध्यात्मविद्यापीठाधीश्वर अनन्तश्री स्वामी श्रीनारदानन्दजी सरस्वती महाराज)

भक्तियोगमें सगुण उपासनाका एकमात्र आधार नाम-जप ही है। वेदोंमें भी इसकी प्राप्तिका सर्वोपरि साधन नामको बताया गया है।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥
(मुण्डकोपनिषद् २।२।४)

नामके धनुष और जीवात्माके बाणसे अप्रमत्त होकर ब्रह्म-लक्ष्यको वेधन किया जा सकता है। तत्त्ववेत्ता ऋषियोंने उस ब्रह्मतत्त्वका अनुभव नामके सहारे किया है। नामसे नामीका बोध होता है। नाम, रूप, लीला, धामके द्वारा नामीके गुण, सामर्थ्यको सुनकर अनुराग उत्पन्न होता है। संसारमें ईश्वरवादी पुरुषोंके जितने मत-मतान्तर हैं, सभीने नाम और प्रार्थनाका सहारा लिया है। इस विषयमें सभीका मतैक्य है। नाम-जप और प्रार्थनाको समस्त साधनोंमें प्राथमिकता देनेसे साम्प्रदायिक भेद मिट जाता है। नामके साथ नामीकी परिभाषा करनेसे सत्यके जिज्ञासु नास्तिक भी आस्तिक हो सकते हैं।

आज वैज्ञानिक भी बढ़ते-बढ़ते वेदान्त-सिद्धान्तके अति निकट आ गये हैं। उनका कहना है कि संसार हमें जैसा इन्द्रियोंसे दिखायी पड़ता है, वैसा है नहीं। इसी प्रकार वेदान्ती भी मानते हैं कि ब्रह्ममें जगत् कल्पित है। विज्ञान-वादियोंने अनुभव करके यह सिद्ध किया है कि जगत् जिसमें कल्पित है वह सर्वशक्ति (Energy) एक अभेद शक्तिके रूपमें अनुभूत होती है। वेदवादियोंका कहना है कि जगत्के अधिष्ठान ब्रह्ममें यदि ज्ञानशक्ति नहीं थी तो निकली कहाँसे ? इस तर्कसे सिद्ध होता है कि ज्ञानशक्ति ब्रह्ममें थी और वह सगुण साकार होकर बुद्धिमें आकर व्यक्त हुई। इससे यही ब्रह्म सगुण होकर अपने ज्ञानसे सदा जीवोंकी प्रार्थना सुनता है। श्रुति कहती है—

अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
(श्वेताश्वतर० ३।१९)

जब नाम-जप करते-करते साधककी चित्तवृत्ति नामीका रस लेने लगती है तो रसके सहारे वह अधिष्ठान ब्रह्ममें विलीन हो जाती है। तत्पश्चात् उदित होनेपर दिव्य शक्तियोंसे विभूषित होकर संसारमें आश्चर्यजनक चामत्कारिक कार्य करती है। जो भी ऋषि-मुनि, संत-महात्मा इस भूमण्डलपर प्रसिद्ध हुए हैं, उनके जीवनमें अनेकों ऐसी चामत्कारिक घटनाएँ हुई हैं जो मानवतासे देवत्वको प्राप्त कराती हैं, जिसका मूल कारण श्रद्धापूर्वक सविधि नाम-जप और प्रार्थना है। किंतु वह जप दीर्घकालतक चलना चाहिये।

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढभूमिः।
(योगदर्शन १।१४)

यह नाम-जपकी साधनाका मूल सोपान है।

नाम-जपमें कुछ लोग उस ब्रह्मको शिव कहते हैं, वेदान्ती ब्रह्म, बौद्ध बुद्ध, नैयायिक कर्त्ता, जैन अर्हन् और मीमांसक कर्मका स्वरूप देते हैं, जैसा कि स्पष्ट है—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥

तत्त्वतः एक होनेपर भी इस विचारभेदसे साम्प्रदायिक बाह्य चिह्नोंपर वे ही लड़ते-झगड़ते हैं जिनको तत्त्वकी प्राप्ति नहीं हो पायी । साधनावस्थामें भेद है, किंतु साध्यमें नहीं । अस्तु, तत्त्वबोध होनेपर सभी एक हो सकते हैं । भेद-भाव वे ही मानते हैं जिन्हें तत्त्वबोध नहीं हुआ है । नाम-जप या प्रार्थना तबतक करते रहना आवश्यक है जबतक कि तत्त्वका बोध न हो जाय ।

यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ।
तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ॥
(श्रीमद्भागवत ११ । २९ । १७)

तत्त्वबोध होनेपर किसी भी प्राणीसे रागद्वेष नहीं रह जाता ।

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥
(श्रीमद्भागवत ११ । २ । ४५)

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत का सन करहिं बिरोध ॥

शिशु कक्षाका विद्यार्थी जिस वर्णमालाके सहारे पढ़ता है और भाषाका आचार्य हो जानेपर वह उसके सहारे बिना न तो बोल सकता है और न लिख सकता है । अस्तु, जिस प्रकार वर्णमालाका आश्रय आरम्भसे लेकर अन्ततक नहीं छोड़ा जा सकता, उसी प्रकार साधकको नाम-जप या प्रार्थनाकी साधना कभी नहीं छोड़नी चाहिये । नाम-जप परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी चार प्रकारकी वाणीसे किया जा सकता है । इन चार प्रकारके जपोंमेंसे मनुस्मृतिमें मानस जपका विशेष महत्त्व बताया है—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥
(२ । ८५)

इसका सूक्ष्म रहस्य किसी तत्त्ववेत्ता योगीके द्वारा ही जाना जा सकता है । उस रहस्यके ज्ञानका साधन गीतामें है—

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥
(४ । ३४)

गूढउ तत्व न साधु दुरावहिं । आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥

आधुनिक संतोंने भी नाम-जपके क्रम-भेदसे सिद्धि प्राप्त की है । संत चरणदासजी लिखते हैं—

आठ मास मुख सों जपै, सोलह मास कंठ जाप ।
बत्तिस मास हिरदै जपै, तनमें रहे न पाप ॥
तन में रहे न पाप, भक्ति का उपजै पौधा ।
मन रुक जावे तभी, अपरबल कहिये योधा ॥
बहुरि आवै नाभिमें, ताका कहूँ बिचार ।
चरणदास मन जप करे, सब बल जाये हार ॥

देह जगत विस्मृत जब, रग रग बोले राम ।
चरणदास यों कहत हैं, पहुँचै हरि के धाम ॥
नामहिं जपे शून्य मन धरै, पाँचहु इन्द्रिय वश में करै ।
ब्रह्म अग्निमें होमै काया, ता कहँ विष्णु पखारत पाँया ॥

भक्त सुदामा जिस समय ब्रह्म-सुमिरनमें तन्मय होकर समस्त शारीरिक सुखोंको भूल गये । क्षीण कायासे अहंकार और ममता छूट गयी । उस समय भगवान्‌से रहा नहीं गया । वे नेत्रोंके जलसे चरण पखारने लगे । यह नामस्मरणकी विचित्र लीला है । संत तुलसीदासने तो यहाँतक लिखा है—

कहउ कहाँ लगि नाम बड़ाई । राम न सकहिं नाम गुन गाई ॥
राम एक तापस तिय तारी । नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥
चहूँ चतुर कहुँ नाम अधारा । ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा ॥
(राम० बाल०)

आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी—चारों नामके सहारे सद्गति प्राप्त कर सकते हैं । नामजप एक प्रकारका यज्ञ है जो सब यज्ञोंसे श्रेष्ठ है ।—

'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (गीता १० । २५)

जपहिं नामु जन आरत भारी । मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥

संसारमें दुःखित आर्त भक्तोंके संकटोंका टलना नामजपसे सम्भव है । साथ ही यथासम्भव अन्य भौतिक उद्योग भी करते रहना चाहिये ।

साधक नाम जपहिं लय लाएँ । होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी । नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी ॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भगत सिरोमनि भे प्रहलादू ॥

नाम और प्रार्थनाकी महिमा अपार है। नाम-जप करते हुए अर्थमें पूर्ण भावना करे, तभी वास्तविक स्वरूपका बोध होता है।

'तज्जपस्तदर्थभावनम्।' (योगदर्शन १। २८)

भगवद्भक्त सज्जनोंपर जब-जब भी असहनीय आपत्तियाँ आयीं, तब-तब उन्हें प्रार्थनासे त्राण मिला है। नामजप करनेवाला साधक आपत्ति आनेपर भयभीत नहीं होता, किंतु नामजपसे वह आपत्तिको भगवान्‌की कृपा समझता है।

बिपति नहीं रघुपति की दाया। भोग भुगाइ छोड़ावहिं माया॥

ध्रुव, प्रह्लाद, द्रौपदी, गजराज, अजामिल, याज्ञवल्क्य, व्यास, वशिष्ठ, शुकदेव, युधिष्ठिर, अर्जुन तथा विदुर आदिको भगवत्प्रार्थनासे त्राण मिला है। संत तुलसीदास, सूरदास, गुरु नानक, गौराङ्ग महाप्रभु, समर्थ रामदास, तुकाराम, ज्ञानेश्वर तथा महावीर आदि भक्तोंने नाम और प्रार्थनाका सहारा लिया है तथा दुखी समाजको सुख-शान्तिकी ओर अग्रसर किया है। भगवत्प्रार्थनाकी प्रवाहधारासे ही श्रीआद्यशंकराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीरामानन्दाचार्य, श्रीनिम्बार्काचार्य आदि आचार्योंने समाजका मार्गदर्शन करके अवर्णनीय उपकार किया है।

वर्तमान युगमें स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, रामकृष्ण परमहंस, मीराँबाई, दयाबाई, महामना मालवीय, महात्मा गाँधीने अपने प्राणान्तके समयतक सभी सांसारिक कार्योंको छोड़कर भी नाम तथा प्रार्थनाका किसी भी दशामें त्याग नहीं किया, जिसका इतिहास साक्षी है। आज भी जगत्-कल्याणके लिये नाम-धुन तथा ईश्वर-प्रार्थनाको सभी साधनोंमें प्राथमिकता मिलनी चाहिये।

पुराणोंमें एक कथा है जिसका उल्लेख रामचरितमानस-में मिलता है। एक बार देवताओं और दैत्योंमें भयंकर संघर्ष चला, जिसमें रावणादि दैत्य विजयी हुए। उस समय ऋषि-मुनियोंकी हड्डियोंके बड़े-बड़े ढेर लग गये थे, जिन्हें देखकर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके नेत्रोंसे अश्रुओंकी धारा बह चली।

निसिचर सकल मुनीसन्ह खाए। सुनि रघुनाथ नयन जल छाए॥

ऐसे असहनीय अत्याचारको देखकर भगवान्‌ने भुजा उठाकर असुरोंको मारकर धर्म-स्थापनाकी प्रतिज्ञा की।

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।

ये वही ऋषि-मुनि हैं, जिन्होंने रामके अवतरित होनेके लिये सामूहिक प्रार्थना की थी, जो कि पूरी भी न हो पायी थी कि तत्काल ब्रह्मवाणीने आश्वासन दिया। देवताओंने राक्षसोंके अत्याचारसे घबराकर भगवान्‌से प्रार्थना की, किंतु सज्जनोंको सतानेके लिये राक्षसराज रावणने अपने राज्यमें घोषणा कर दी—

गो द्विज धेनु देव जहँ पावौ। नगर गाँव पुर आगि लगावौ॥
द्विज भोजन मख होम सराधा। जहँ तहँ जाइ करहु तुम्ह बाधा॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। बेद बिप्र गुर मान न कोई॥
बाढ़े बहु खल चोर जुआरी। ताके परधन अरु पर नारी॥
सकल धरम देखहिं बिपरीता। कहि न सकहिं रावन भय भीता॥

इस प्रकारके भ्रष्टाचारको दूर करनेमें एकमात्र भगवान्‌की प्रार्थना ही सहारा है, जिससे ऋषि-मुनियोंकी रक्षा हुई है। आज भी रामायणकी प्रार्थना अनेकों नगरों, गाँवोंमें द्रुतगतिसे फैलती जा रही है। वर्तमान समयमें सभीको इस प्रार्थनाका आश्रय लेना हितकर है—

(१) जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीन दयाला करउ अनुग्रह सोई॥
जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा॥
जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुर जूथा॥
सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्री भगवाना॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुन मंदिर सुख पुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा॥
(राम० बाल०)

(२) वह शक्ति हमें दो दयानिधे। कर्तव्य मार्गपर डट जावें।
पर-सेवा पर-उपकारमें हम जग जीवन सफल बना जावें॥
हम दीन दुखी निबलों बिकलोंके सेवक बन संताप हरें।
जो हैं अटके भूले भटके उनको तारें हम तर जावें॥
छल दम्भ द्वेष पाखंड झूँठ अन्यायसे निशि-दिन दूर रहें।
जीवन हो शुद्ध सरल अपना शुचि प्रेम सुधा रस बरसावें॥

निज आन कान मर्यादाका प्रभु ध्यान रहे अभिमान रहे।
जिस देश जातिमें जन्म लिया बलिदान उसी पर हो जावें॥

इस प्रकारकी प्रार्थना करनेसे हमारा अन्तःकरण शुद्ध होगा। परमात्मासे दैवी शक्ति मिलेगी, जिससे धर्माचरण बढ़ेगा और भ्रष्टाचार मिटेगा। प्रार्थनाएँ सभी कल्याणकारी हैं किंतु वे होनी चाहिये हृदयसे तथा पूर्ण श्रद्धाके साथ।

मन्त्र-जपमें बीजमन्त्र, पवित्र स्थान, शुद्ध सात्त्विक आहार, शास्त्रविधिसे तप और संतके आशीर्वादसे शीघ्र अत्यधिक लाभ पहुँचता है। इसलिये नाम-जप और प्रार्थनाका सतत आश्रय लेनेसे सम्पूर्ण दुःखोंकी निवृत्ति होती है और विवेक उत्पन्न होता है, जिससे परमात्म-शक्तिका संबल लेकर जीव अपने अनन्त सुखको खोजनेके लिये अधिष्ठानकी ओर बढ़ता है और दीर्घकालतक नाम-जपकी अनवरत उपासनासे अपनी वासना छोड़ देता है। इस प्रकार वह नाम-स्मरण करता हुआ अनन्त सिन्धुमें गोते लगाकर अपनी जीवत्व-दृष्टिसे बढ़कर परमात्मरूप महाकाशमें मिलकर तद्रूप हो जाता है।

नाम-जपकी अपार महिमा

(लेखक—महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी श्रीशुकदेवानन्दजी सरस्वती महाराज)

अनन्तकालसे असंख्य योनियोंमें भटकता हुआ, अपार कष्टों और दुःखोंको सहन करता हुआ जीव असीम करुणा-वरुणालय भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे इस देवदुर्लभ मानव-योनिको प्राप्त करता है। मनुष्यका शरीर पाकर भगवत्-कृपासे यदि संत और सत्सङ्गका सुयोग भी मिल जाय तो सोनेमें सुगन्धके समान उसका यह जीवन धन्य बन जाता है। किंतु इस प्रकारकी परिस्थिति जन्म-जन्मान्तरके संचित पुण्य-फलसे ही प्राप्त होती है। जिन्हें ऐसा सुयोग मिलता है, वे वन्दनीय हैं।

सभी प्राणी सुखकी खोजमें ही अनन्तकालसे भटक रहे हैं। संसारके सभी कार्य सुख और शान्तिका अनुभव करनेके लिये किये जाते हैं, किंतु अहर्निश अपने-अपने कार्योंमें संलग्न मानवको स्थायी सुखका अनुभव नहीं हो पाता। इससे विदित होता है कि हम जिस वस्तु, व्यक्ति अथवा परिस्थितिसे सुखके अभिलाषी हैं, वहाँ सच्चे अर्थोंमें सुख है ही नहीं, केवल सुखाभास है, मृग-मरीचिका है। नाशवान् वस्तु और व्यक्ति तथा परिवर्तनशील परिस्थितिमें शाश्वत सुखकी अनुभूति कैसे हो सकती है? वह तो असम्भव ही है। इसीलिये लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णने इस संसारको दुःखालय बताया है—दुःखालयमशाश्वतम्। (गीता ८। १५)। जिस प्रकार औषधालयमें ओषधियाँ मिल सकती हैं, पुस्तकालयसे पुस्तकें प्राप्त हो सकती हैं, भोजनालयसे भोजन मिल सकता है, ठीक इसी प्रकार संसाररूपी दुःखालयसे दुःखोंके अतिरिक्त और मिल भी क्या सकता है? इस दुःखालयमें सुख और शान्तिकी खोज तो आकाशकुसुमवत् है, मृगमरीचिकामात्र ही है।

प्रत्येक मनुष्य यही चाहता है कि मैं सदा बना रहूँ, कभी मेरा अन्त न हो। मूढ़ और अज्ञानी कोई नहीं बनना चाहता। कोई यह भी नहीं चाहता कि आज जो सुख मुझे प्राप्त है, वह कल मेरे पास न रहे अर्थात् प्रकारान्तरसे वह सत्—सदा रहनेवाला, चित्—सब कुछ जाननेवाला, आनन्द—कभी न मिटनेवाला शाश्वत सुख ही चाहता है। इस प्रकारकी स्थिति प्राप्त करनेके लिये हमारे अनुभवी संत-महापुरुषों और सत्-शास्त्रोंने सच्चिदानन्दकी शरणमें जानेका उपदेश किया है। भक्तोंकी भावनासे वे सच्चिदानन्द निखिल ब्रह्माण्डनायक राम, कृष्ण, शिव, शक्ति, गणेश आदि असंख्य रूपोंमें अवतरित हुए और अपनी-अपनी स्थितिके अनुसार भक्तोंने उनकी उपासना करके अपने चरम लक्ष्य परमपद अथवा शाश्वत शान्तिको प्राप्त किया है। एक ही गन्तव्यकी ओर जानेवाले विभिन्न मार्गोंकी भाँति अधिकारी-भेदसे उपासनाके भी अनेक मार्ग हैं। उन परम दयामय प्रभुको अपनी भावनाके अनुसार भक्तजन प्राप्त करते आये हैं, ऐसे असंख्य उदाहरण अपने धार्मिक इतिहासोंमें मिलते ही हैं। उपासनाका सबसे सरल और सुगम उपाय हमारे मनीषियोंने नाम-जप बताया है। भगवन्नाम-जपकी अपार महिमाका वर्णन करते हुए भक्ताग्रगण्य प्रातःस्मरणीय पूज्य-पाद गोस्वामीजीने तो यहाँतक कह दिया—

'राम न सकहिं नाम गुन गाई' (राम० बाल०)

फिर, नाम-जपकी अपार महिमाका, नाम-जपके अगाध सागरका पार अल्पज्ञ मानव कैसे पा सकता है? नाम-जपकी महिमाका वर्णन करते हुए गोस्वामीजीने अपने अनुभवकी जो अभिव्यक्ति श्रीरामचरितमानसमें की है, उसे हृदयंगम करके साधकोंको अलौकिक प्रेरणा मिलती है—

प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥
मेरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥
ना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥
धक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥
हिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
नु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥
मु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥
वँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
मेरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
न नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥
हें कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
हहुँ कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

(राम० बाल०)

नामजपके अमित प्रभावसे डाकू रत्नाकर महर्षि ल्मीकि बन गये। अवढरदानी आशुतोष भगवान् शंकरने मजपके प्रभावसे ही हलाहलको कण्ठमें धारण कर लिया गैर नीलकण्ठ बनकर संसारको भस्मीभूत होनेसे बचा लिया। गवन्नामकी ऐसी अपार महिमाको समझकर जो नाम-पका आश्रय लेते हैं, उनका यह लोक और परलोक दोनों ानन्दसे परिपूर्ण हो जाते हैं। नामके प्रभावसे असंख्य धकोंको चमत्कारमयी सिद्धियाँ प्राप्त हुईं। साधारण मानव दि महान् विपत्तियों और दुर्निवार संकटोंके आनेपर गवन्नामस्मरणका सहारा ले तो निश्चय ही उसको संकटोंसे क्ति मिल जाती है। नामजपके प्रभावसे ही भक्तशिरोमणि ालक प्रह्लादको धधकती हुई ज्वाला भस्म नहीं कर सकी, ालक ध्रुवको अविचल पदवी प्राप्त हुई। नामजपके प्रभावसे हावीर हनुमान्‌जीने रामको अपना ऋणिया बनाकर अपने शमें कर लिया। इस घोर कलिकालमें भी जो बड़भागी गवन्नामका आश्रय नहीं छोड़ते, उनके सभी शास्त्रानुमोदित ार्य सफल होते हैं। भगवन्नामके प्रभावसे माता और पिता-की भाँति सदैव उनकी अलक्षित रूपसे सुरक्षा होती रहती है। भौतिकवादकी चकाचौंधमें आजका मानव अपने र्त्तव्यपथसे विमुख होता जा रहा है। दूषित शिक्षाके विश्व-व्यापी प्रभावसे मन और मस्तिष्कपर पतनकी कालिमाका बहुत मोटा आवरण पड़ता जा रहा है। आस्तिक भावनाओं-का मखौल उड़ाकर आजका शिक्षित नवयुवक अपनेको नास्तिक बताकर गौरवका अनुभव करता है। पतनकी ओर तीव्र गतिसे अग्रसर होनेवाले मानव-समुदायमें आज भगवन्नामकी महिमाका प्रचार होनेकी सर्वाधिक आवश्यकता है। इस कालमें सम्यक् प्रकारसे न तो निष्काम कर्मकी साधना हो सकती है और न भक्तियोगकी। केवल राम-नाम का अवलम्ब ही मानवमात्रको इस महान् संकटसे मुक्त कर सकता है। त्रिविध तापसंतप्त मानवके लिये इससे अधिक सरल सुगम कोई अन्य उपाय और साधन नहीं है। आज हमारे जीवनमें बाहर और भीतर जो गहन अन्धकार छाया हुआ है, उसे हटानेके लिये नामजपके अमित प्रभावको हृदयङ्गम करनेकी आवश्यकता है—

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ जो चाहसि उजिआर॥

(राम० बाल०)

भगवान् श्रीकृष्णने अपने परमप्रिय भक्त अर्जुनको अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हुए बताया—'यज्ञोंमें मैं जपयज्ञ हूँ।' अग्निपुराणमें 'जप' शब्दका अर्थ इस प्रकार बताया गया है—

जकारो जन्मविच्छेदः पकारः पापनाशकः।
तस्माज्जप इति प्रोक्तो जन्मपापविनाशकः॥

अर्थात्—'ज' शब्दसे जन्मका विच्छेद और 'प' से पापका नाश। जो जन्म-मरण और पापका नाश करनेवाला है, उसको जप कहते हैं। जप दो प्रकारसे होता है, वाचिक तथा मानसिक। वाचिक जपमें ही प्रकारान्तरसे उपांशु जप भी आता है। इस प्रकार जपके तीन भेद होते हैं—वाचिक, उपांशु तथा मानसिक। वाचिक जपकी व्याख्यामें इस प्रकार बताया गया है—

यदुच्चनीचोच्चरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः।
मन्त्रमुच्चारयन् वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः॥

अर्थात्—जब मन्त्रका उच्चारण स्पष्ट सुनायी दे तो वह 'वाचिक जप' कहलाता है। उपांशु जपका लक्षण यह है—

शनैरुच्चारयन् मन्त्रं किंचिदोष्ठौ प्रचालयेत्।
किंचिच्छ्रवणयोग्यः स्यात् स उपांशुर्जपः स्मृतः॥

(मनु० २। ८५)

अर्थात्—जब मन्त्रका उच्चारण इस प्रकार किया जाय कि होठ धीरे-धीरे हिलते रहें और पास बैठा हुआ व्यक्ति भी उसे न सुन सके, जाप करनेवाला स्वयं ही सुनता हो तो उसे 'उपांशु जप' कहते हैं।

मानसिक जपका लक्षण इस प्रकार बताया गया है—

धिया पदाक्षरश्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम्।
शब्दार्थचिन्तनाभ्यां तु तदुक्तं मानसं स्मृतम्॥

अर्थात्—जब मन्त्रके पद और अक्षरोंका शब्दार्थ-सहित अन्तर्मनके द्वारा विचार किया जाय, न होंठ हिलें और न जिह्वा, उसे 'मानसिक जप' कहते हैं। इस प्रकारका जप सर्वश्रेष्ठ माना गया है। महाराज मनुने इस विषयमें अपने अनुभूत विचारोंकी अभिव्यक्ति इस प्रकार की है—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥
(मनु० २। ८५)

अर्थात्—विधियज्ञसे वाचिक जपयज्ञ दसगुना श्रेष्ठ है, उपांशु जप वाचिक जपसे सौगुना श्रेष्ठ है और मानसिक जप उपांशु जपसे सहस्रगुना श्रेष्ठ है।

इस प्रकार वाचिक, उपांशु और मानसिक जपके रहस्य-को किसी महापुरुषकी शरणमें जाकर भली प्रकार हृदयंगम करना चाहिये। अपने अन्तःकरणकी स्थितिके अनुसार अधिकारीभेदसे तीनों प्रकारके जपकी व्यवस्था की गयी है। मनुष्यमें जब तमोगुणका प्राबल्य हो तो उसे वाचिक जपका आश्रय लेना चाहिये। जब रजोगुण और सत्त्वगुण बरत रहे हों तब उपांशु जप करना चाहिये और जब अपनी मनःस्थिति शुद्ध सत्त्वगुणी हो, वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हों तब मानसिक जप करना चाहिये। इसी कारण मानसिक जपको सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। अनुभवी संतों और शास्त्रोंने तो यहाँतक कहा है कि श्रद्धा तथा विधिरहित जपयज्ञ भी व्यर्थ नहीं जाता। श्रीमद्भागवतमें भी ऐसा लिखा है कि—

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
(६। २। १४)

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन्।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकैः॥
(१२। १२। ४६)

अर्थात्—संकेतमें, हँसी-मजाकमें तथा अवहेला करके भी जो भगवान्का नाम लेता है तो नाम सब पापोंका नाश कर देता है। गिरते हुए, फिसलते हुए, छींकते हुए तथा विवश होकर भी जो मनुष्य 'हरये नमः'का उच्चारण करता है वह सब पापोंसे छूट जाता है। इस प्रकारके अनेक प्रमाण शास्त्रोंमें मिलते हैं। अश्रद्धासे विवश होकर भी किये हुए नाम-जपका इतना माहात्म्य है तो श्रद्धापूर्वक स[र्व] निरन्तर, जपकी अपरम्पार महिमाका वर्णन इस क्षुद्र लेख... कैसे हो सकता है?

गुप्त अकाम निरन्तर ध्यान सहित सानन्द।
आदरयुत जपसे तुरत पावत परमानन्द॥

यह तो शास्त्र एवं संतोंके अनुसार नामजपकी महिमाका वर्णन हुआ। हम विज्ञानकी युक्तियोंसे भी नामजपकी महिमा सिद्ध कर सकते हैं, जिसे जानकर नास्तिक भी जप करनेको विवश हो जायगा। संसारमें सभी व्यक्ति अपनी आयु बढ़ाना चाहते हैं, कोई व्यक्ति मरना नहीं चाहता। नामजपमें ऐसी अद्भुत सामर्थ्य है कि मनुष्य अपने प्राण एवं मनपर विजय प्राप्तकर मृत्युको भी जीत लेता है। विज्ञानके अनुसार २४ घंटोंमें मनुष्य २१६०० श्वास लेता है; इन्हीं श्वासोंके आधारपर उसकी आयु है। वह जितने कम श्वास व्यय करेगा, उतनी ही आयु बढ़ जायगी। इस प्रकारका कोई भी मनुष्य अनुभव कर सकता है कि नामजप करते समय श्वास स्वाभाविक कम निकलता है। २४ घंटोंमें २१६०० श्वासों-के हिसाबसे १ मिनटमें १५ श्वास आता है। अब यदि नाम-जप श्वासद्वारा मानसिक किया जाय तो एक मिनटमें ७-८ श्वास ही निकलेंगे—इस प्रकार १ घंटातक जप करनेमें एक घंटेकी आयु बढ़ जायगी और हमारा जीवन दुगुना हो जायगा। और यदि कीर्तन करे तो भी १ मिनटमें लग-भग १० श्वास निकलेंगे—५ श्वास शेष रहे। इस प्रकार कीर्तन करनेसे भी हमारी ड्योढ़ी आयु हो जायगी। इस प्रकार नामजपसे श्वासनियमनद्वारा प्राण एवं मन दोनोंपर हम अपना आधिपत्य प्राप्त कर सकते हैं। इसी शक्तिद्वारा भीष्म-पितामहने प्राणोंपर विजय प्राप्तकर मृत्युको भी यह कहकर लौटा दिया कि उत्तरायणमें आना। कहाँतक इसकी शक्ति-की महिमा कहें! एक महापुरुषका इस सम्बन्धमें कहना है—

नाम ही जपै शून्य मन धरै, पाँचों इन्द्रिय वश में करै।
ब्रह्म अगिनि में होमै काया, ताके विष्णु पखारैं पाया॥

श्रीरामचरितमानसमें भी एक स्थलपर गरुड़जीने श्रीकाकभुशुण्डिजीसे प्रश्न किया—

तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल॥

काकभुशुण्डिजी उत्तर देते हुए भगवान् श्रीरामके मुखसे निकले वाक्य कहते हैं कि—

कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही॥

इस प्रकार इस अनुभूत विज्ञानके द्वारा नास्तिक भी नामजपकी महिमा स्वीकार कर लेगा।

नामजपकी अपार महिमाका वर्णन लेखनी और वाणीसे सम्भव नहीं है। उसकी सुखद अनुभूति तो इस पथके पथिकको ही हो सकती है। नामकी महिमा अपार है। यह भगवान्‌की प्रत्यक्ष विभूति है। मानव-जीवनके कल्याणका सर्वसुलभ एवं सर्वोत्तम साधन नामजप ही है। जो कल्याणकामी जन इसी जीवनमें अपने परम लक्ष्यको प्राप्त करनेके इच्छुक हैं, उन्हें भगवान् वेदव्यासके इस डिंडिम घोषको कभी विस्मृत नहीं करना चाहिये—

> हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
> कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

नामामृत

(लेखक—श्रद्धेय वेदान्तीजी श्रीरामपदार्थदासजी महाराज)

अनादिकालसे जीव सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान्‌से बिछुड़ कर संसारचक्रमें मायासे प्रेरित अनेक योनियोंमें जन्म लेता है और शरीरका परित्याग करता है। मायाकी विमोहिनी शक्तिसे मोहित जीव अपने स्वरूपको भूलकर संसारी बन बैठा है। उसका माया-जालसे निकलना तबतक कठिन होगा जबतक कि वह भगवान्‌का आश्रय न लेगा। भगवत्प्राप्तिके अनेक मार्ग—साधन ऋषियोंने बताये हैं और वे सभी एक-से-एक उत्तम हैं। उनमें कुछ तो श्रमसाध्य है और कुछ अल्पप्रयाससाध्य हैं—जैसे कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और उपासनाकाण्ड। दार्शनिक आचार्योंने अपने-अपने मतके अनुसार 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'के ऊपर भगवत्प्राप्तिके लिये अधिकारका निर्णय किया है। उसमें जीव-ब्रह्मकी एकताके लिये मायानिवर्तक निर्विशेष चिन्मात्र ब्रह्मतत्त्व-साक्षात्कारके लिये अधिकारीका निर्वचन किया है।'

नित्यानित्यवस्तुविवेक, इहामुत्रार्थभोगविराग, शमदमादि-साधनसम्पत्ति और मुमुक्षुत्व—इस साधनचतुष्टयसे सम्पन्न जीव ब्रह्मविचारका अधिकारी होता है। कोई भी चेतन आत्मलाभके लिये कितना प्रयास कर सकता है? प्रथम सोपान ही दुरूह है। आगेका कहना ही क्या!

इस प्रकार ज्ञानमार्गसे स्वस्वरूप—भगवत्-स्वरूपकी प्राप्तिमें बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है। दूसरा मायासे छुटकारा पानेके लिये कर्मकाण्डका अवलम्बन है, पर इसमें भी बड़ी कठिनाई प्रतीत होती है; क्योंकि जबतक शुभ कर्मका सम्पादन नहीं होगा—तबतक कुछ भी होना कठिन है।

> तं ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन, दानेन, तपसानाशकेन।
> (बृहदारण्यक० ४। ४। २२)

अतः बिना कर्मके विविदिषाकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। एक-एक कर्ममें कठिनाई है—जैसे 'व्रीहीन् प्रोक्षति' प्रोक्षण बिना किये हुए व्रीहिको यज्ञके काममें लेनेसे अपूर्वकी उत्पत्ति ही नहीं होगी, तब महदपूर्वकी कथा ही क्या! ऐसे तो खेतसे व्रीहिको पौधासे चुन-चुन करके ले आनेसे अशुद्धिकी सम्भावना नहीं हो सकती है। किंतु अपूर्वकी उत्पत्ति तो तभी होगी जब कि उसका प्रोक्षण होगा। इस प्रकार कर्मके विषयमें विचार किया जा सकता है।

इसी प्रकार उपासनामार्गके भी कई अङ्ग हैं, जिनसे मनके ऊपर बहुत गहरा सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। परंतु कार्यकालमें अजेय मनको अपने वशमें करके आगे बढ़ना बड़ा कठिन प्रतीत होता है। इस कलिकालके अल्पबुद्धि, अल्पशक्ति, अल्पजीवनमें विशेष प्रयाससाध्य साधनोंको करना कठिन है और न कोई कर ही सकता है। इसलिये इस जीवनकी सफलताके लिये भगवान्‌का नाम ही सर्वश्रेष्ठ उच्चतम साधन माना गया है। इसपर वेदव्यासजी श्रीमद्भागवतमें प्रथम स्कन्धके प्रथम अध्यायमें निर्वचन करते हुए कहते हैं—

> आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्।
> ततः सद्यो विमुच्येत यद् बिभेति स्वयं भयम्॥
> (१। १। १४)

अन्य साधनोंका निषेध करते हुए गोस्वामिपादने भी कहा है—

> नहिं कलि कर्म न भक्ति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥

(‘भक्ति’ के नीचे ‘धर्म’ छपा है)

इसीलिये सारे साधनोंका निषेध करते हुए भगवान्‌के नामको ही अवलम्बन बताया है। यथा—

कलौ युगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः ।

क्योंकि यह जीव प्रभुसे वियुक्त होकर संसारमें अनेक योनियोंमें घूमता हुआ अनेक क्लेशोंको सह रहा है । फिर भगवान्‌के धाममें पहुँचनेके लिये एकमात्र साधन वेदोंमें भी नाम ही कहा गया है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥
(मुण्डक० २ । २ । ४)

'तद्वाचकः प्रणवः' नाम ही अर्थका वाचक होता है । ऽये इस रूपकका अभिप्राय यह है—'प्रणव भगवान्‌का है । वह धनुष है । उसके ऊपर आत्माको बाणके स्थान-थापित करके लक्ष्य साकेतविहारी श्रीराम रक्खे । अप्रमत्त आत्माको लक्ष्यपर पहुँचानेके लिये भगवान्‌का ही परम साधन है; क्योंकि यज्ञ, तप, दानादि जो साधन बहुत प्रयाससाध्य हैं और वैगुण्य हो जानेपर निष्फल जते हैं; किंतु भगवान्‌का नाम तो—

कुभाय अनख आलसहूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥
नाम जपत जग जाना । बालमीकि भए ब्रह्म समाना ॥

किसी भी प्रकारसे भगवान्‌का नाम लेता रहे तो उसका मङ्गलमय बन जाता है । अनेक मन्त्रोंके रहते हुए भी वन भगवान् श्रीशंकरजी नामको ही अपनाते हैं—

हामंत्र जेहि जपत महेसू ।
भाउ जान सिव नीको । कालकूट फल दीन्ह अमी को ॥

अतः मनको अन्यत्रसे हटाकर भगवान्‌के नाममें लगा श्रेयस्कर है । ध्रुव इतनी उच्च पदवीपर केवल नाम-से ही पहुँच गये—

गलानि जपेउ हरिनाऊँ । पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ॥

अजामिलको कर्मपतित होनेपर भी नाम-प्रभावसे यमराज शासनमें नहीं ले सके, बल्कि अपने दूतोंको समझाते मराज नामके प्रभावका वर्णन करते हुए श्रीमद्भागवतमें हैं कि 'सभीको भगवन्नामके विषयमें संदेह हो सकता त्रिकालज्ञ महर्षियोंको भी । परंतु—

स्वयंभूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥
द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ।
(श्रीमद्भागवत ६ । ३ । २०-२१)

इन महाभागवतोंको नामके विषयमें संदेह है ही नहीं । परम भक्त प्रह्लादने नामके प्रभावसे ही अजेय पिता हिरण्यकशिपुपर विजय प्राप्त की थी । इन्हें मारनेके लिये कितने-कितने उपाय रचे गये । भगवान्‌के नामसे उनकी बुद्धि पृथक् करनेके लिये षण्डामर्कके द्वारा कितना समझाया-डराया गया, किंतु सुदृढ़ नामाश्रयी श्रीप्रह्लादजीने नाम नहीं छोड़ा । अपने पिताको उन्होंने समझाया—

रामनाम जपतां कुतो भयं
सर्वतापशमनैकभेषजम् ।
पश्य तात मम गात्रसंनिधौ
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥

नामके प्रभावसे भक्तके प्रति अग्नि अपनी दाहकता-शक्तिका परित्याग कर जलकी शीतलता ग्रहण कर लेती है । भक्तराज श्रीप्रह्लादजी हर्षित होकर इस प्रकार कह उठे—

श्रीरामनामाखिलमन्त्रबीजं
संजीवनं चेद्धृदये प्रविष्टम् ।
हलाहलं वा प्रलयानलं वा
मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भीः ॥

कहनेका तात्पर्य यह है कि अनेक साधन रहते हुए भी भगवन्नाम-साधनको शास्त्रोंमें इतना अनुपम कहा गया है । इससे बिना ही प्रयास संसारका बन्धन शिथिल हो जाता है । भगवन्नाम इतना गुण-परिपूर्ण है, इसीसे कहा है—

राम न सकहिं नाम गुन गाई ।

इसलिये जो काम अध्यात्मतत्त्वका साक्षात्कार करनेपर होता है, जो काम बड़े-बड़े यज्ञादिसे सम्पन्न होता है, जिसको बड़े-बड़े उच्च कोटिके साधक योगियोंने प्राप्त किया है, बड़े-बड़े दानियोंने दानके द्वारा और बड़े-बड़े तपस्वियोंने तपके द्वारा जिसे सम्पन्न किया है, वही कार्य भगवन्नामके द्वारा सुगमतासे सम्पन्न हो जाता है । इसलिये आचार्योंका वाक्य है—

तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाऽखिलं
तेन सर्वं कृतं कर्मजालम् ।
येन श्रीरामनामामृतं पानकृत-
मनिशमनवद्यमवलोक्य कालम् ॥

कहाँतक कहा जाय—नामजापकोंने पूर्ण अनुभव किया

नूतन शिक्षाष्टकके अपूर्व श्लोकोंका आस्वादन किया। श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थमें बहुत-सा अमृत वितरण करनेके पश्चात् अन्तिम अध्यायमें, मानो सर्वातिशय माधुर्य प्रदान किया गया है। इससे दुखी कलिग्रस्त जीवको एक रसमय और आनन्दमय भगवत्प्राप्तिका मार्ग प्राप्त हुआ। वह मार्ग नाम-प्रेममय है। फिर भी ये श्लोक जीवको शिक्षा देनेके उद्देश्यसे महाप्रभुके श्रीमुखसे उच्चरित नहीं हुए। ये तो उनके महाभावदशाजनित आस्वादनकी विभोरावस्थामें स्वतः स्फुरित हुए हैं।

श्रीगौरसुन्दर गम्भीरामें हैं, उनका श्रीराधाभाव-कान्तिमय तनु है, वे महाभावदशामें विभावित हैं, विप्रलम्भ रसका प्रादुर्भाव है, कृष्ण-वियुक्त श्रीराधाके विरहकी आर्त्तिमयी महाभावदशा है। वे माथुर विरहमें निरन्तर झूर रहे हैं। कृष्णप्राप्तिकी सारी आशा एकदम निर्मूल हो गयी है—इन भावों और प्रगाढ़ अनुरागसे उत्पन्न अति तीव्र दैन्य और आर्त्तभावमय द्वादश दशाओंसे अभिभूत हैं महाप्रभु।

श्रीराधार भाव जैछे उद्धव दर्शने।
एइ मत प्रलाप चेष्टा प्रभुर रात्रदिने॥

दिन-रात—

काहाँ कृष्ण, काहाँ जाई। कोथा गेले कृष्ण पाई॥

—लवणसमुद्रके तीरस्थित श्रीजगन्नाथक्षेत्र इस महान् क्रन्दन और हाहाकारमें मुखरित है।

इस गौर-विरह-विषाद-सिन्धुसे अकस्मात् हर्षरूप संचारी भावका उदय हुआ। कृष्ण-वियुक्त अभिनव कृष्ण-श्रीगौरसुन्दरके मन-प्राण आनन्दसे उद्वेलित हैं। कृष्ण-विरहके गम्भीर दुःखमें अचानक इतना आनन्द कैसे हो गया? क्या उनको श्रीकृष्ण मिल गये हैं?—नहीं, ऐसा तो नहीं है। केवल श्रीकृष्णकी प्राप्तिका एक मार्ग उनके देखनेमें आया है। इसीसे इतना आनन्द है महाप्रभुको। राधाभावमय श्रीकृष्णविरही प्रभुके पास मानो कोई उपाय नहीं था।

श्रीमद्भागवतके इस श्लोकमें उनको उपाय दीख पड़ा—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥
(श्रीमद्भागवत ११।५।३२)

संकीर्तन-यज्ञ ही तो श्रेष्ठ उपाय है। महाप्रभु सोच रहे हैं कि श्रीमद्भागवत जब कह रहा है, तब फिर क्या संदेह नहीं। निश्चय ही श्रीकृष्ण मिलेंगे। इसीसे आनन्दित होकर वे कह रहे हैं—

संकीर्तन यज्ञे करे कृष्ण आराधन।
सेइ तो सुमेधा पाय कृष्णेर चरण॥

जीव तो अनादिकालसे बहिर्मुख है। श्रीकृष्णकी स्मृति उसे नहीं है। श्रीकृष्णका दास जीव श्रीकृष्णको खोकर स्वरूपभ्रष्ट है। श्रीकृष्ण ही परम सम्पद् हैं, श्रीकृष्णविहीन जीवन व्यर्थ और अधन्य है—यह बोध भी इसको नहीं है। मायाने इसको अज्ञानान्धकारमें डालकर दुःखसागरमें डुबा रक्खा है। कृष्णोन्मुख होनेपर ही इसका दुःखसे उद्धार हो सकता है; परंतु जो अनादिकालसे बहिर्मुख है, उसके लिये क्या उपाय है? इसको कृष्णविरहित होनेकी वेदना नहीं है। इसी कारण श्रीकृष्ण प्राप्तिकी आशा भी नहीं है। इसके जीवनमें विषयोंके लिये, भोगोंकी अप्राप्तिके लिये क्रन्दन है, श्रीकृष्णके लिये क्रन्दन नहीं है। वह होता तो श्रीकृष्णके लिये वेदनाजनित महासौभाग्यका उदय होता। विरह-रसके अवतार महाप्रभुकी कृपासे जीवन धन्य हो जाता। विषय-वैराग्य और कृष्णप्रेम तथा विषय-विस्मृति और कृष्ण-स्मृति जाग्रत् होती। यह प्रेम ही परम प्रयोजन है। अनादिकालसे बहिर्मुख जीवके लिये उपाय क्या है? किस प्रकार इस प्रयोजनकी सिद्धि होगी? —क्यों, भुवनमङ्गल श्रीहरिनामका दान स्वयं श्रीहरिने किया है। तब, चिन्ता क्या है? नामका आश्रय लेनेसे ही प्रेम-चिन्तामणिकी प्राप्ति होगी। श्रीहरिदासठाकुरने स्वयं कहा है—

'नाम फले कृष्णपदे प्रेम उपजय।'
नाम-फलसे उपजता कृष्णचरणमें प्रेम।
'कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।'

नामाश्रयके सिवा इस युगमें और कोई धर्म नहीं है।

'केह बले नाम हइते हय संसारेर क्षय।
केह बले नाम हइते जीवेर मोक्ष हय॥'
कोई कहते नामसे जगत् नाश हो जाता।
कोई कहते नामसे जीव मोक्षको पाता॥

नामके फलस्वरूप पार्थिव अभाव-अभियोग तथा सांसारिक दुःख दूर होना अथवा मोक्षका प्राप्त करना कोई बड़ी बात नहीं है। ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये भी दुर्लभ शुद्ध

व्रज-प्रेमतककी प्राप्ति नामसे हो जाती है। तीर्थमें वास, लक्ष-लक्ष गोदान अथवा कोटि जन्मके सुकृत—कुछ भी श्रीगोविन्द नामके तुल्य नहीं हैं। नामकी सामर्थ्य असीम है, अचिन्तनीय है। केवल नामाभाससे ही जन्म-जन्मान्तरके सारे पाप भस्मीभूत हो जाते हैं और मोक्षकी प्राप्ति होती है। जब नामाभासका यह फल है तब नामकी महिमा वर्णन करनेमें कौन समर्थ होगा ? श्रीरामगतप्राण तुलसीदासजीने कहा है—'राम न सकहिं नाम गुन गाई।' अर्थात् रामनामकी महिमा स्वयं श्रीराम भी नहीं कह सकते, फिर औरोंकी तो बात ही क्या ?

नामकी क्या महिमा है ? भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका अभी अवतार नहीं हुआ था। राजा दशरथने एक दिन भूलसे शब्दवेधी बाणके द्वारा मृग समझकर सिन्धु मुनिका वध कर डाला। अन्ध मुनि और उनकी पत्नीने पुत्र-शोकसे राजाके सामने ही प्राण-त्याग कर दिये। तीन निरपराधी ईश्वरानुरागियोंके प्राण-नाशका कारण होनेसे राजा दशरथने अपनेको महान् अपराधी माना। उनके मनमें असह्य वेदना होने लगी। किसी भी प्रकार उन्हें शान्ति न मिल सकी। अब मानसिक दशा ऐसी न रही कि वे राजधानी लौट आते। उन्होंने सोचा कि प्रायश्चित्त करनेपर चित्तमें शान्ति आ सकती है। इस उद्देश्यसे वे गुरु वसिष्ठके आश्रममें गये। वसिष्ठजी आश्रममें न थे। उनके पुत्र वामदेवने राजा दशरथसे आनेका कारण पूछा। राजाके मुखसे सारा वृत्तान्त सुननेके बाद वे बोले—'मैं प्रायश्चित्त करा देता हूँ, आप स्नान करके आइये।' राजाके आनेपर वामदेवने कहा, 'आप तीन बार राम नाम उच्चारण करें।' राजा दशरथने वैसा ही किया। नामके प्रभावसे उनके सारे पाप दूर हो गये। उनके प्राणोंको शान्ति मिली। राजा दशरथ राजधानीमें लौट गये। वसिष्ठजी जब आश्रममें आये तो उनके पुत्रने राजाके आगमन तथा उनके प्रायश्चित्तका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। पुत्रके द्वारा तीन बार राम-नामका विधान सुनकर वसिष्ठजी आश्चर्यान्वित और क्रोधान्वित हो उठे। एक बारके स्थानमें तीन बार क्यों ? राम-नाममें अविश्वास ! एक बार 'रा' वर्णका उच्चारण करते ही सारे पाप चले जाते हैं और 'म' वर्णके बोलते ही मुख बंद हो जानेपर फिर पाप लौटकर नहीं आते। इस प्रकारके नाममें अविश्वास चाण्डाल ही कर सकता है। नामके प्रति मर्यादाका उल्लङ्घन करनेपर वसिष्ठजी पुत्रसे क्रुद्ध होकर बोले, 'तुम मेरी संतान होने योग्य नहीं हो। तुम चाण्डाल हो, मैं तुम्हारा मुख भी नहीं देखना चाहता, दूर हो जाओ।' अपराधी पुत्र पिताके चरणोंमें शरणापन्न हुआ। मुनिने पुत्रको क्षमा कर दिया, परंतु कहा कि 'मेरा वचन अन्यथा नहीं हो सकता। तुम्हें जन्मान्तरमें चाण्डाल होना ही पड़ेगा।' परंतु वह शाप भी वर हो गया। 'जिस राम-नामका इतना माहात्म्य सुना, वे ही परब्रह्म शीघ्र नरलीला करने आयेंगे। चाण्डाल-देहमें भी तुम उनकी अपार कृपा प्राप्त करोगे। केवल उनकी कृपा ही नहीं, श्रीरामचन्द्रजीकी मित्रता और उनका आलिङ्गन प्राप्त कर तुम धन्य हो जाओगे।' इसके बाद वामदेवने प्राण विसर्जन कर गुहक चाण्डालके रूपमें जन्म लिया और उनके पिताकी वाणी सफल हुई।

नामकी शक्तिका वर्णन वाणीद्वारा नहीं हो सकता। प्रभु जगद्बन्धुने ठीक ही कहा है—'नाम-माहात्म्य लेखनीसे लिखना सम्भव नहीं, इसे गुरुमुखसे सुनना चाहिये। मनुष्य अपने पापके कारण, दुर्भाग्यके कारण नाम-माहात्म्य सुनकर भी उसमें विश्वास नहीं कर पाता—इस नामापराधके कारण नाम लेनेपर भी नामकी कृपा नहीं होती, होती है भी तो देरसे। नहीं तो, नामका इतना माहात्म्य है कि इसपर सहज ही विश्वास किया जा सकता है। जैसे शास्त्रमें लिखा है—

एक बार कृष्ण नामे जत पाप हरे।
जीवेर साध्य नाइ तत पाप करे॥
एक बारका 'कृष्ण' नाम ही हर लेता है जितने पाप।
नहीं जीवकी शक्ति, कर सके वह जीवनमें उतने पाप॥

प्रभु जगद्बन्धुसुन्दरने और भी कहा है कि 'यह स्वकीय और परकीय उद्धारका साधन बनता है अर्थात् जो नाम-कीर्तन करते हैं, केवल उनका ही मङ्गल नहीं होता, बल्कि जहाँतक नाम-कीर्तनकी ध्वनि जाती है, वहाँतक लोगोंका उद्धार करती है।' इसके अतिरिक्त नाम-ग्रहणके सभी अधिकारी हैं। ऐसे भुवन-मङ्गल नामके रहते, लोग व्यर्थ ही अपने कल्याणके लिये इधर-उधर भटकते फिरते हैं ! हमारा कैसा दुर्भाग्य है !

अब देखिये कि नाममें इतनी शक्ति आयी कहाँसे ? श्रीभगवान् युग-युगमें अवतार लेते हैं जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये। अपने परिकरोंके साथ आते हैं और कार्य हो जानेपर अपने गणोंके साथ नित्यधामको लौट जाते हैं। दुखी जीवोंके लिये वे छोड़ जाते हैं अपना अभय और अमृतप्रद 'नाम-चिन्तामणि'। केवल यही नहीं, नामके भीतर वे अपनी सारी शक्तिका आधान कर जाते हैं।

'सब शक्ति दिला नामे करिया विभाग।'

नामकी निजी शक्ति तो थी ही, प्रभुकी शक्तिको पाकर नाम नामीकी अपेक्षा भी महीयान् बन जाता है। श्री-रामचन्द्रने एक पाषाणमयी अहल्याका उद्धार किया था। नाम युग-युगमें शत-शत अहल्याओंका उद्धार करता है। अब इतनी अहल्या हैं कहाँ ? तो सुनिये—'हल्या'का अर्थ है कृषियोग्य; अहल्याका अर्थ है कृषिके अयोग्य अर्थात् पाषाण। जड सभ्यताके आनेपर जीव-हृदय पाषाण हो जाता है। साधन-भजनका कर्षण चलता नहीं उस अहल्याके समान पाषाण-हृदयमें। श्रीरामचन्द्र तो हैं नहीं, जो उनका उद्धार करते। परंतु राम नाम तो है। नामके आश्रयसे शत-शत घोर बहिर्मुख पाषाणहृदय निश्चय ही द्रवित हो जाते हैं। नामी उद्धारलीला करके चले गये हैं; नाम इस समय महान् उद्धारलीला प्रकट करके शत-शत जीवोंका उद्धार कर रहा है। हरिनामके मूर्तविग्रह श्रीश्रीप्रभु जगद्बन्धुसुन्दरकी यह महान् वाणी सार्थक है—

'हरि शब्द उच्चारण हरि पुरुष उदय।'

श्रीरामचन्द्रजीका सर्वश्रेष्ठ कार्य था समुद्रको बाँधकर लङ्का जाना और रावणका वध करके सीताजीका उद्धार करना। महान् वानरसेनाकी सहायतासे श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रको बाँधा और सीताजीका उद्धार किया। अब यह काम कौन करेगा ? हम सबके सामने दुस्तर भवसागर है। इसके सिवा दुर्दैवरूपी रावणने हमारी भक्तिरूपी सीताका अपहरण कर लिया है। श्रीराम नहीं हैं, परंतु रामनाम है। सागर-बन्धनके समय नामीको वानरोंकी सहायताकी आवश्यकता पड़ी, परंतु नामको किसी सहायताकी आवश्यकता नहीं है। राम-नाम लेकर श्रीहनूमान्-जीने अनायास ही समुद्रको पार किया था। नामका आश्रय लेकर विषय-संकुल दुःखमय भवसागरको कितने ही लोग पार करते जा रहे हैं। नामकी इतनी सामर्थ्य है कि वे हमारे दुर्दैवरूपी रावणको अनायास ही मारकर भक्तिरूपी सीता-जीका उद्धार कर देंगे। श्रीश्रीमहाप्रभुने कहा है—

एक कृष्ण नामे करे सर्वपाप नाश।
प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश॥

नाममें सर्वशक्ति प्रदान करके ही करुणाशक्ति शान्त हुई। मनुष्यकी प्रकृतिकी पृथक्ता देखकर अनेक नामोंको प्रकट किया। जिसकी जिस नाममें रुचि हो, वह उसी नामके आश्रयसे परमपद प्राप्त कर सकता है।

अनेक लोकेर वाञ्छा अनेक प्रकार।
कृपा ते करिल अनेक नामेर प्रचार॥

(महाप्रभु)

फिर नाम-ग्रहण करनेके विषयमें स्थान और कालका कोई विधि-निषेध नहीं रक्खा (यहाँ स्मरणमें नियमित क... के विषयमें नहीं कहा है)। जिस किसी अवस्थामें, जिस कि... समयमें नाम लेनेवालेपर नामकी कृपा हो सकती है।

खाइते शुइते जथा तथा नाम लय।
देश काल नियम नाइ सर्व सिद्धि हय॥
खावत सोवत जहँ तहाँ, लेय जो हरिको नाम।
देसकालके नियम बिनु सिद्ध होयँ सब काम॥

ऐसी असीम करुणाशक्ति नाममें छिपी हुई है। स्वरूप... नाम और नामी अभिन्न ही नहीं हैं, बल्कि नामीके लि... निज नाम परम प्रिय होता है। इसी कारण नामकी कृपा होने... क्षणमात्रमें अनादिबहिर्मुख जीवके जन्म-जन्मान्तरक... विषयवासना तिरोहित हो जाती है। व्रजलीलामें भगवान् महा... बहिर्मुख भोगसर्वस्व कालियनागकी शत कामनाके प्रतीक... जो शत फण थे, उनके ऊपर अपने चरणोंको अङ्कित करके... यमुनाको विषमुक्त और निज लीलाके लिये उपयोगी बनाते हैं। अनन्त वासनाएँ जीवकी अशान्ति और दुःखके कारण हैं। हृदयरूपी यमुनाको भोगवासनारूपी विषसे मुक्त करके श्रीराधाकृष्णकी लीलाका क्षेत्र कौन बनायेगा ? श्रीकृष्ण तो अन्तर्द्धान हो गये हैं, परंतु चिन्ता क्या है ?—अभिन्न कृष्ण नाम तो है ही।

जेइ नाम सेइ कृष्ण, भज निष्ठा करि।
नामेर सहित आछेन आपनि श्री हरि॥
'कृष्ण' नाम ही स्वयं कृष्ण हैं भजो सहित निष्ठा अविराम।
सदा नामके सहित विराजित रहते हैं हरि स्वयं ललाम॥

महाप्रभुने कहा है कि श्रीकृष्ण-कीर्तन ही भोग-वासना-जनित मलिन चित्तका मार्जन, (चेतोदर्पणमार्जनम्) तथा सर्वग्रासी संसारकी दुःख-यन्त्रणाका (भवमहादावाग्निनिर्वापणम्) निवारक है। नामका आश्रय लेनेपर ही जीवन सब प्रकारसे मङ्गलकी खानि बन जाता है। अतएव ऐसा लगता है कि वर्तमान कालके दुःख-दुर्दशापूर्ण और समस्या-संकुल

युग-सङ्कटके समय नाम-संकीर्तन ही परम उपाय है। समस्त जीव निरन्तर नामरूपी अमृत पान करके धन्य और कृतार्थ हो जायँ। नामप्रेम-दाता श्रीगौरसुन्दर और श्रीनिताई गौरके अभिन्नतनु श्रीजगद्बन्धुसुन्दरकी करुणा सब जीवोंके ऊपर बरसने लगे। श्रीकृष्णसंकीर्तन सर्वोपरि विराजमान हो। जय गौरहरि! जय जगद्बन्धुहरि!!

नामकीर्तन-महिमाका झरना

(लेखक—आचार्य श्रीयतीन्द्र रामानुजदासजी महाराज)

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥
(श्रीमद्भागवत १२। ३। ५२)

'सत्ययुगमें श्रीविष्णुके ध्यानका जो फल होता है, त्रेतामें उनके लिये किये जानेवाले यज्ञका जो फल होता है, द्वापरमें उनकी परिचर्यासे जो फल होता है, कलियुगमें श्रीहरिके कीर्तनसे वही फल प्राप्त होता है।'

'हरिकीर्तन'से यद्यपि श्रीहरिके नाम, रूप, गुण, लीला आदि सभीका बोध होता है तथापि इससे नामकीर्तन ही विशेषरूपसे समझा जाता है। हम नामकीर्तनकी महिमाके विषयमें शास्त्रोंमें स्थान-स्थानपर वचन प्राप्त करते हैं—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
(बृहन्नारदीयपुराण)

श्रीहरिके जिस किसी नामका कीर्तन ही नामकीर्तन कहलाता है। पर ३२ अक्षरोंवाले तारकब्रह्म हरिनाम-कीर्तनका प्रचार ही सबसे अधिक है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

इस नामके एक-प्रहरव्यापी, अष्ट-प्रहरव्यापी, चौबीस-प्रहरव्यापी कीर्तन होते रहते हैं; यहाँतक कि बहुवर्षव्यापी अखण्ड नामकीर्तन भी कहीं-कहीं चल रहे हैं।

विष्णुसहस्रनाम, नारायण, सीताराम, राधेश्याम, रघुपति राघव राजाराम, गोविन्द, हे कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव,—आदि नामोंके कीर्तन विविध प्रकारसे स्थान-स्थानपर होते रहते हैं।

यह नामकीर्तन जैसे संसार-समुद्रसे तरनेका उपाय है, वैसे ही यह संसारवियुक्त सिद्ध महापुरुषोंके लिये उपभोग्य फलस्वरूप भी है। वे लोग इस नाम-गानके द्वारा ही कालक्षेप किया करते हैं। यही उनकी सात्त्विक भगवत्सेवा है।

शास्त्र कहते हैं कि नामी ही नाम बना है। आलंकारिक कहते हैं कि नाम सुवर्णके आभूषणके तुल्य है, जिसका जब इच्छा हो, तभी व्यवहार किया जाता है और नामी हैं सुवर्ण-पिण्डके समान, जिनका व्यवहार उन्हें व्यवहारके उपयोगी बना लेनेपर ही किया जा सकता है। नामकी यह महिमा नामीका ही संकल्प है। नामीने ही महान् कृपा करके नाममें इस महाशक्तिको निहित कर दिया है।

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः॥
(चै० च० ३। २०। ४)

श्रीभगवान् जब भक्तके मुखसे आर्तभावसे इस नामगान-का श्रवण करते हैं, तब वे उसके चिरऋणी हो जाते हैं। सभामें दुःशासनके द्वारा वस्त्र खींचे जानेपर जब द्रौपदीने 'हा गोविन्द' कहकर उन्हें पुकारा था, तब द्रौपदीकी इस पुकारने श्रीकृष्णको ऋणग्रस्त कर दिया था।

यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम्।
ऋणं प्रवृद्धमेतन्मे हृदयान्नापसर्पति॥
(महाभारत उद्योग० ५९। २२)

नामीकी इतनी महिमा नामके संकल्पसे ही है, इस तथ्यको हम रहस्यवेत्ता सिद्ध महापुरुषोंके आचरणके द्वारा जान सकते हैं। यहाँ एक दृष्टान्तका उल्लेख किया जाता है।

प्रायः चालीस वर्ष पहलेकी घटना है। सिद्धपुरुष श्रीश्रीबलरामस्वामीजी महाराजकी अति प्रवृद्ध अवस्था थी। ८५-८६ वर्षका वयःक्रम था। उस समय वे अयोध्याके श्रीश्रीविजयराघवाचार्यजी महाराजके आश्रममें गद्दीके अधीश्वर थे। वे आश्रममें बीमार हो गये थे। लेखक उस समय उनके पास रहता था। इस रोग-नाशके लिये प्रतिदिन

श्रीविष्णुसहस्रनामके पाठ किये जाते थे। उनकी बीमारीका समाचार सुनकर एक सामान्य साधु उनके दर्शनार्थ आये। कुछ देर बैठनेके बाद साधुने श्रीस्वामीजीसे पूछा—'आज आप कैसे हैं?'

श्रीस्वामीजी—आज दो दिनोंसे कुछ ठीक हूँ।

साधु—श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ कितने दिनोंसे चल रहा है?

श्रीस्वामीजी—आज दस दिन हो गये।

साधु—कुछ दिन और पाठ होनेपर आप पूर्ण नीरोग हो जायँगे। श्रीस्वामीजी महाराजने यह सुनकर कुछ भी उत्तर नहीं दिया। केवल मुस्करा दिया। कुछ देर ठहरकर साधुजी लौट गये। उनके चले जानेके बाद श्रीस्वामीजी महाराजने आश्रमके अधिकारीजीको बुलाकर कहा—'कलसे विष्णुसहस्रनामका पाठ बंद करा देना।'

उनका यह आदेश सुनकर सभी विस्मित और स्तब्ध हो गये। इस विपरीत निर्देशका कुछ भी कारण हमलोगोंकी समझमें नहीं आया। हमलोगोंने सोचा, नामकी महिमा तो सभी शास्त्रोंने गायी है। 'नाम और नामी'में अभेद होनेपर भी नामीसे नाम बड़ा है। फिर श्रीस्वामीजी महाराजने श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ बंद क्यों करवा दिया? इस प्रकार एक महान् प्रश्न सभीके मनमें जाग उठा, परंतु इस सम्बन्धमें श्रीस्वामीजीसे पूछनेका साहस किसीका नहीं हुआ। सभी चुप थे। तब अन्तर्यामीरूपी श्रीस्वामीजी स्वतः ही कहने लगे—

'मेरी बीमारीके लिये श्रीमन्दिरमें श्रीविष्णुसहस्रनामके पाठकी व्यवस्था की गयी है। परंतु साधु महात्मा पहले ही यह कह गये कि कुछ दिन पाठ और होनेपर मैं पूर्णरूपसे नीरोग हो जाऊँगा। इससे उनका यही सिद्धान्त निश्चित है कि विष्णुसहस्रनामका पाठ ही इस रोगनाशका कारण है। 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' रोगीको रोगमुक्त करता है, इस संदेहके लिये जरा भी अवकाश नहीं है। इसीलिये सहस्रनाम-पाठकी फलश्रुतिमें आया है—'रोगार्त्तो मुच्यते रोगात्।' नामकी महिमा, नामका वैभव जो कुछ शास्त्रमें लिखा गया है, वह सभी सत्य है; किंतु नामी विधानसे ही नामकी यह महिमा है। सभी फलदानके आधार उत्स हैं स्वयं श्रीभगवान्, उनकी प्रसन्नता और उनका अमोघ संकल्प। शिष्टजनोंके स्वीकृत इस सिद्धान्तको तुम लोगोंके मनोंमें दृढ़ करा देनेके लिये ही मैंने श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ बंद करवाया है। मैं फिर पाठ आरम्भ करूँगा। 'नामकीर्तन या नामपाठका उद्देश्य है श्रीभगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करना। उनकी प्रसन्नता ही काम्यफल प्रदान करेगी'—इस प्रकारकी दृढ़ बुद्धि रखना तुम सबका एकान्त कर्तव्य है।'

शास्त्रसिद्धान्तका यथार्थ रहस्य समझ पाना हमलोगोंके लिये सहज नहीं है। मर्मज्ञ सिद्ध महापुरुषोंकी हृदयगुहामें ही धर्मका यथार्थ तत्त्व निहित रहता है। उस तत्त्वका वास्तविक रूप प्रकट होता है महात्माओंके कार्यसे—उनके आचरणसे।

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः स च विभ्रमः।
यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवं न कीर्तयेत्॥

'भगवान् वासुदेवके कीर्तनसे रहित जो मुहूर्त या क्षण बीतता है, वही महान् हानि है, महान् छिद्र है, मोह है और वही विभ्रम है।'

कृष्ण नाम ही साध्य, साधन और जीवन

ब्रह्माण्डानां कोटिसंख्याधिकानामैश्वर्यं यच्चेतना वा तदंशः।
आविर्भूतं तन्महः कृष्णनाम तन्मे साध्यं साधनं जीवनं च॥

असंख्य ब्रह्माण्डोंका समस्त ऐश्वर्य और सम्पूर्ण चेतन-पदार्थ जिसका अंश है, वह महामहिम श्रीकृष्णनाम ही मेरा साध्य है, वही साधन है और वही मेरा जीवन है।

वैदिक प्रार्थना

(लेखक—स्वामीजी श्रीविद्यानन्दजी विदेह)

[१]

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
या ते सुम्नमीमहे ॥ (अ० २० । १०८ । २)

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभू-
थ । अधा ते सुम्नम् ईमहे ॥

(१) (वसो) ! (त्वं हि नः पिता) तू ही हमारा
ता (बभूविथ) हुआ है।

(२) (शतक्रतो) ! (त्वं हि नः माता) तू ही
पारी माता (बभूविथ) है।

(३) (अधा) अतः [हम] (ते सु-म्नं) तेरा
—मन, तेरी सुप्रसन्नताके लिये (ईमहे) प्रार्थना करते हैं।

इस प्रार्थना-मन्त्रमें परम पावन प्रभुको दो सम्बोधनोंसे
म्बोधित किया गया है—वसो और शतक्रतो। वसु नाम
न और ऐश्वर्यका है। अतः वसो सम्बोधनसे परमात्मा-
ो वसुपति अथवा अखिल ऐश्वर्योंका स्वामी कहा गया है।
ातका अर्थ है सौ [१००] और क्रतुका अर्थ है कर्तृत्व,
मता, कर्मक्षमता, साधना। शतसे तात्पर्य यहाँ असंख्यसे
। अतः शतक्रतुका अर्थ हुआ असंख्यकर्मा, अनन्त कर्म-
मताओंसे सम्पन्न।

'वसो' सम्बोधनका प्रयोग करके परमात्माको पिता कहा
ाया है। अतः उपलक्षणसे यहाँ पिताकी योग्यताका संकेत
थवा शिक्षण भी प्राप्त हो रहा है। पिताको वसुविद्, वसु-
ापक, धनैश्वर्यका सम्पादक होना चाहिये। जो पिता
धनैश्वर्यका सम्पादन नहीं कर सकता, वह अपनी संतानका
यथावत् लालन-पालन और पोषण-शिक्षण नहीं कर सकता।

'शतक्रतो' सम्बोधनका प्रयोग करके परमात्माको माता
कहा गया है। यहाँ भी उपलक्षणसे माताकी योग्यता ध्वनित
हो रही है। माताके लिये आवश्यक है कि वह शत-क्रतु
हो, असंख्य-कर्मकर्त्री हो। माता अपनी संतानकी सुख-सुविधा
के लिये असंख्य क्रियाएँ करती है। जो माता ऐसा नहीं
करती, उसकी संतान समुन्नत नहीं हो सकती।

प्रार्थनामें सम्बोधनोंका एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक आधार
है। तनिक 'सम्बोधन' शब्दमें निहित गूढ़ रहस्यपर विचार
कीजिये। सम्बोधन= सम्यक् बोधन। जिससे सम्यक् बोध हो
उसे सम्बोधन कहते हैं। सम्बोधन सम्यक् बोध कराता है।

शिशुने सम्बोधन किया 'माँ!' इस सम्बोधनमें शिशुके
लिये बोध है अपने पुत्रत्व अथवा अपनी पुत्रीत्वका और
माताके लिये बोध है अपने मातृत्वका। एक 'माँ'
सम्बोधनने शिशु तथा माता दोनोंके हृदयोंको प्रबुद्ध और
उद्बुद्ध किया है, दोनोंके मानसमें स्नेहके संवेदनको उत्तेजन
दिया है।

मन्त्रमें प्रभुभक्तोंने प्रथम प्रभुको 'वसो' सम्बोधनसे
सम्बोधित किया। इस सम्बोधनसे बोध हो रहा है कि भक्त
भगवान्के वसुओंके अभिलाषी हैं। एवमेव दूसरी बार
भक्तोंने भगवान्को 'शतक्रतो' सम्बोधनसे सम्बोधित किया
है। इस सम्बोधनसे व्यक्त हो रहा है कि भक्तजन अपने
हृदयोंमें कर्मक्षमताओंकी प्राप्तिकी कामना सँजोये हुए हैं।

[२]

भक्तोंने भगवान्को 'वसो' तथा 'शतक्रतो'
सम्बोधनोंसे सम्बोधन तो किया है, परंतु उन्होंने उनसे न वसु
माँगा है, न क्रतु। उन्होंने प्रभुसे न धनैश्वर्योंकी प्रार्थना की
है, न कर्मक्षमताओंकी। प्रार्थना तो उन्होंने केवल प्रभुकी
सुप्रसन्नताकी की है। इस वेदमन्त्रमें भक्तोंने प्रार्थनाका कमाल
कर दिया है। उनकी यह प्रार्थना 'प्रार्थना-कौशल' है।

'वसो पितः! हम तुझसे तेरी प्रसन्नता माँगते हैं।
शतक्रतो मातः! हम तुझसे तेरी प्रसन्नताकी प्रार्थना करते
हैं। पितेश्वर! हम तेरी प्रसन्नताकी याचना करते हैं।
मातेश्वरि! तू हमसे प्रसन्न रहे, हमारी यह प्रार्थना है।'

वसु और क्रतु माँगनेकी वस्तु नहीं हैं। माँगनेकी वस्तु
तो प्रसन्नता है। प्रसन्नतामें सकल धनैश्वर्य और अखिल
क्रतु निहित हैं। जिसने प्रसन्नता माँग ली, उसने सब कुछ
माँग लिया। जिसने प्रभुकी प्रसन्नता प्राप्त कर ली, उसने
सब कुछ प्राप्त कर लिया। जो पुत्र-पुत्री माता-पिताकी
प्रसन्नता प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें बिना माँगे ही पिताके
धनैश्वर्य तथा माताके क्रतु अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।

माता-पिताको प्रसन्न करनेके लिये पुत्रोंका सच्चा पुत्रत्व

और पुत्रियोंका सच्चा पुत्रीत्व ही पर्याप्त है । पिता-माताको प्रसन्न रखनेके लिये पुत्र-पुत्रियोंके हृदयोंमें पितृनिष्ठा और मातृश्रद्धा सुपर्याप्त है । जिन पुत्र-पुत्रियोंके हृदयोंमें पितृ-मातृ-निष्ठा निहित होती है, वे गहन श्रद्धाके साथ अपने माता-पिताको नमस्कार करते हैं, उनकी आज्ञाका पालन करते हैं, उनके दर्शनके अभिलाषी होते हैं, उनकी प्रेरणासे प्रेरित होते हैं और सदैव सुकृत ही करते हैं । इसी आचारसे भक्त भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करते हैं ।

[३]

'वसु' जहाँ ऐश्वर्यका प्रतीक है, वहाँ 'क्रतु' पात्रताका प्रतीक है । प्रसन्नता प्राप्त होनेपर भी प्राप्ति यथापात्र ही होती है । ऐसा होता है कि कभी-कभी प्रार्थित वस्तु सद्यः [तुरंत] ही मिल जाती है, कभी-कभी प्रार्थित पदार्थ बहुत शीघ्र प्राप्त हो जाता है । कभी-कभी प्रार्थित कामनाकी पूर्तिमें बरसों लग जाते हैं । कभी-कभी प्रार्थित अभिलाषा जीवनके अन्तिम छोरपर पूरी होती है । कभी प्रार्थी अपनी अपूर्व प्रार्थनाओं और कामनाओंको साथ लिये संसारसे चल बसता है । इस सबमें कारणभूत रहस्य पात्रता ही है ।

एक क्षत्राणीके डेढ़ वर्षके शिशुने दीवारपर टँगी तलवारकी ओर संकेत करके अपनी तोतली बोलीमें अपनी मातासे कहा, 'माँ टलवार दे' । माँने एक खिलौनेसे उसका ध्यान बटा दिया, पर उसे तलवार नहीं दी । वह प्रतिदिन तलवार माँगता, परंतु उसे तलवार न मिली । युवा होनेपर माँने उसे तलवार दे दी । तलवार मिलनेके इस विलम्बमें प्रार्थीकी अपात्रता ही कारण थी । पात्रताके सम्पादनमें समयकी अपेक्षा होती ही है ।

जिस वस्तुका प्रार्थी पात्र है, उस वस्तुकी प्रार्थना सद्यः स्वीकृत हो जाती है । जिस वस्तुका वह पात्र नहीं है वह वस्तु प्रभु समुचित पात्रताका सम्पादन करके अवश्य प्रदान करेंगे । इसीसे प्रार्थनामें अमित धैर्यका साधन निहित होना चाहिये । हर प्रार्थनापर प्रभु प्रार्थीमें पात्रताका सम्पादन कर रहे होते हैं । यदि आपकी कोई प्रार्थना इस जन्ममें फलवती नहीं हुई है तो वह परम दानी आपके आगामी जन्ममें पात्रताका सम्पादन करके आपकी प्रार्थनाको सफल करेंगे ।

[४]

विश्वास रखिये । प्रार्थना प्रत्येक साधनाका अमोघ साधन है, प्रत्येक रोगकी अचूक ओषधि है, प्रत्येक समस्याका निश्चित समाधान है, प्रत्येक उलझनका सहज सुलझाव है, प्रत्येक कठिनाईका सरल उपाय है और प्रत्येक भँवरका निश्चित तरण है ।

यदि आप भक्तिमें सफल नहीं हो रहे हैं तो उस परम माँसे प्रार्थना कीजिये । यदि आपकी ध्यान-समाधि सिद्ध नहीं हो रही है तो उस परम पितासे विनय कीजिये । यदि आपके जीवनमें सात्त्विकता एवं पवित्रताका सम्पादन नहीं हो पा रहा है तो प्रभुसे प्रार्थना कीजिये । यदि आपका व्यापार-व्यवसाय नहीं चल पा रहा है तो भगवान्‌से प्रार्थना कीजिये । यदि आप राष्ट्रोदय और विश्वोद्धारमें सफल नहीं हो पा रहे हैं तो उस परमोदार परमोद्धारक देवसे प्रार्थना कीजिये ।

[५]

वसु और क्रतु, ऐश्वर्य और क्षमता, सिद्धि और साधनाका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है । क्रतुसे वसुकी प्राप्ति होती है । क्षमतासे ऐश्वर्यका सम्पादन होता है । साधनासे साध्यकी सिद्धि उपलब्ध होती है । प्रार्थनासे क्रतुकी, क्षमताकी, साधनाकी तथा पात्रताकी सम्पादना होती है । वेदमाताने स्थान-स्थानपर कहा है—'क्रतु वसुका मूल है, क्षमता ऐश्वर्यका मूल है, साधना साध्यकी सिद्धिका मूल है । इसीलिये वैदिक प्रार्थनाएँ क्रतुमयी प्रार्थनाएँ हैं । प्रार्थना एक ओर क्रतुकी स्थापना करती है और दूसरी ओर वसुका आकर्षण करती है । प्रार्थना एक ओर क्षमताका सम्पादन करती है और दूसरी ओर ऐश्वर्यका आकरण करती है । प्रार्थना एक ओर साधनाका संततन करती है और दूसरी ओर साध्यको सिद्धिका आधार निर्माण करती है ।

[६]

मन्त्रपठित 'सु-म्न' शब्दमें प्रार्थनाका एक और गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है । सुम्न=सु+म्न=सु+मन, सु-मनता, सु-मनस्कता सुम्नके दो प्रसिद्ध अर्थ हैं—सु-मनता [मनका सु होना] और सुप्रसन्नता सहज स्वाभाविक प्रसन्नताकी स्थिति सुमनतासे ही होती है । सु-मनमें ही सुप्रसन्नताका निवास है । फूलको सुमन इसीलिये कहते हैं कि उसका मन सुमधु और सुगन्धिसे सदा सु रहता है और परिणामस्वरूप वह सदा सुप्रसन्न [खिला] रहता है ।

प्रार्थना सदैव सु-मनसे की जानी चाहिये, कु-मनसे कदापि नहीं । किसीके प्रति अपने मनको कु करके की गयी प्रार्थना इष्टसाधिका नहीं, अनिष्टकारिका होती है । आपकी

वैदिक भक्तिका स्वरूप

(म० म० पं०श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर महोदय)

वेदत्रयी (ऋक्, यजु, साम) में ज्ञान, कर्म और उपासना—इन तीन मार्गोंका निर्देश है। इन्हींको भक्तिवादके शब्दोंमें हम स्तुति, प्रार्थना और उपासना भी कह सकते हैं। ज्ञान हमें लक्ष्यका बोध कराता है, कर्म लक्ष्यतक हमें पहुँचाता है और उपासनाके द्वारा हम उस लक्ष्यके पास बैठनेमें समर्थ होते हैं। इस प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके द्वारा हमें ज्ञान, कर्म, उपासना या स्तुति, प्रार्थना और उपासना इन तीनोंका सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञान वैदिक ऋषियोंने दिया है।

भक्तिमें इन तीनोंका समन्वय होता है। इन तीनोंका समन्वय ही वैदिक भक्तिका आदर्श है। इसी आदर्शको दृष्टिमें रखकर यहाँ वैदिक भक्तिके स्वरूपका विवेचन किया जाता है।

'भज् सेवायाम्' इस धातुसे 'भक्ति' शब्द सिद्ध हुआ है। सेवाका अर्थ है अपने श्रद्धेयके गुणोंका अनुभव करना और उन गुणोंसे लाभ लेकर अपने श्रद्धेय-जैसा बनना। शीतसे पीड़ित मनुष्य अग्निका सेवन करके उससे उष्णता प्राप्त करता है। इसी प्रकार परमात्माकी भक्तिका अर्थ है उसके गुणोंको अपने अंदर धारण करके तद्वत् बनना। शतपथ ब्राह्मणमें आया है—**'यद्देवा अकुर्वंस्तत्करवाणि'** अर्थात् 'देवोंने जो कुछ किया है, उसीको मैं भी करूँ।' भक्तको अपने पूज्यमें पूर्ण विश्वास होता है; क्योंकि भक्तिभावना ईश्वरके अस्तित्वपर ही आश्रित है। भक्तका वही प्राण, जीवन एवं आधार है। साधारण मनुष्य परमात्माको भूल सकता है, पर भक्त उसको कभी भी नहीं भूल सकता। वह भगवान्‌को अपने चारों ओर व्याप्त हुआ देखता है। भगवान् ही उसका माता-पिता है; वह बड़े प्रेमसे गाता है—

> त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
> अधा ते सुम्नमीमहे ॥ (अथर्व० २० । १०८ । २)

'हे शतक्रतो इन्द्र! तू ही हमारा पिता और हमारी माता है। इसलिये हम तुझसे सुखकी याचना करते हैं।' परमात्मा भी अपने भक्तोंकी हर तरहसे सहायता करता है। पुराणोंकी गाथाएँ मनुष्योंको परमात्म-भक्तिकी ओर प्रेरित करती हैं।

अनीश्वरवादी नास्तिकोंके अनुसार ईश्वर नामका कोई तत्त्व नहीं है। पर उनपर कभी-कभी आनेवाली घोर आपत्तियाँ उन्हें भी ईश्वरास्तित्वका भान करा देती हैं। ऐसे लोगोंके विषयमें वेद कहता है—

> यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो ऽ-

म्नीमेनम् । सो अर्यः पुष्टीर्विज इवामिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥ (ऋ० २ । १२ । ५)

'जो यह पूछते हैं कि वह कहाँ है? और कुछ न दीखनेपर कहते हैं कि वह है ही नहीं, उनके सामने यह इन्द्र भयंकर रूप धरकर आता है और उन नास्तिकोंकी सारी सम्पत्तिका हरण कर लेता है। अतः हे मनुष्यो! इस इन्द्रमें श्रद्धा रक्खो।'

वही एक परमात्मा पूजाके योग्य है। अन्योंकी पूजा करना व्यर्थ है। 'हे भक्तो! प्रत्येक यज्ञ-कर्ममें मिलकर कामनाओंको पूर्ण करनेवाले परमेश्वरकी स्तुति करो। बार-बार उसीके गुण गाओ, उसीके नामका जप करो। प्रभुके अतिरिक्त अन्य किसीकी स्तुति मत करो; क्योंकि अन्यकी स्तुति विनाशकारी है।' (ऋ० ८ । १ । १)

वह प्रभु आनन्दसे ओतप्रोत है और अपने भक्तको मृत्युके पाशोंसे छुड़ानेवाला है।

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भूः रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥
(अथर्व० १० । ८ । ४४)

'वह प्रभु सर्वतृप्त, धीर, अमृत, स्वयंकी शक्तिसे सत्तावाला, हर तरहके रससे तृप्त तथा सर्वाङ्गपूर्ण है। उस अजर और सदा युवा रहनेवाली आत्माको जानकर मनुष्य मृत्युसे भी नहीं डरता।'

वह हर प्रकारसे '**शुचिव्रततमः, शुचिर्विप्रः** और **शुचिः कवि**' है। उसे देश-कालकी सीमाएँ नहीं बाँध सकतीं। वह निस्सीम है, अनन्त है और सभी सीमाओंसे परे है। पुरुषसूक्तमें भी उसकी अनन्तताका विस्तृत वर्णन है।

वह प्रभु एक है, पर अनन्त नामोंसे पुकारा जाता है। कोई भी मनुष्य किसी भी वाणीमें उसकी स्तुति करे, वह स्तुति उसी एक भगवान्‌की होती है—

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ (ऋ० ३ । ३७ । ३)

'हे सैकड़ों तरहके सत्कर्म करनेवाले इन्द्र! हम सभी प्रकारकी वाणियोंसे तेरे नामका संकीर्तन करते हैं।'

प्रभुका मुख्य नाम 'ओ३म्' है। यजुर्वेदमें इसी नामके स्मरण करनेका विधान है। मुण्डकोपनिषद्‌में भी प्रणव अर्थात् ओंकारको धनुष बताकर आत्माको बाण बताया है। इस प्रणवरूपी धनुषपर अपनी आत्मारूपी बाणको चढ़ाकर भक्त अपने लक्ष्य अर्थात् मोक्षपर संधान करता है।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥
(मुण्डक० २ । ४)

माण्डूक्यमें भी '**ओ३म् इत्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्**' कहकर ओ३म् नामकी सारगर्भित व्याख्या की है। प्रश्नोपनिषद्‌में भी कहा है कि भक्त इसी ओ३म् नामका अवलम्बन लेकर उस परब्रह्मको प्राप्त करता है।

इस प्रकार प्रणव-नामजपके द्वारा मोक्षप्राप्तिका उपाय वैदिक साहित्यमें बताया गया है। पर यह नाम किस प्रकारका हो? इसका उत्तर देते हुए निरुक्तकार यास्काचार्य कहते हैं—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥
(१ । ६ । १८ । २)

'जो वेदको पढ़कर भी उसका अर्थ नहीं जानता, वह उसी प्रकार है, जिस प्रकार एक इमारतके बोझको ढोनेवाला खम्भा। पर जो अर्थको जानता है, वह सब तरहके कल्याणको प्राप्त कर ज्ञानसे अपने पापोंको धोकर स्वर्ग जाता है।'

इस वचनने यह बताया है कि भगवन्नाम-संकीर्तन भी ज्ञानपूर्वक करना चाहिये। भगवान्‌के गुणोंके चिन्तनके साथ उसका नामजप करना चाहिये। प्रथम भगवान्‌के नामका श्रवण, फिर ज्ञानपूर्वक मनन, उसके बाद ज्ञानपूर्वक उस नामपर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये, तब अन्तमें उसे भगवान्‌के महत्त्वका, उसके अनन्तत्व और सर्वश्रेष्ठत्वका साक्षात्कार होता है। इसी रीतिसे जीवन भी सुधर सकता है।

इस नाम-संकीर्तनके विषयमें लोगोंमें कितनी भ्रान्त धारणा फैली हुई है, इसका उदाहरण मुझे तिब्बतमें देखनेको मिला। भारतमें फिर भी लोग राम, कृष्ण, विट्ठल आदि नामोंसे अपनी जीभ तो पवित्र कर लेते हैं, पर तिब्बतियोंके नाम-संकीर्तनमें तो जीभका भी काम नहीं। वहाँ मैंने देखा कि लोग हाथमें चक्र लेकर घुमा रहे हैं। यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ और पूछनेपर पता चला कि इन चक्रोंमें कागजके टुकड़ोंपर 'ॐ मणिपद्मे हुं' यह मन्त्र लिखकर सैकड़ोंकी संख्यामें रक्खे होते हैं। एक चक्करके घूमनेके साथ ही वे समझते हैं कि उन्होंने

वेदका चरम लक्ष्य—वैदिक स्तुति-प्रार्थना-उपासना और उनका स्वरूप

(लेखक—श्रीयुधिष्ठिरजी मीमांसक)

यद्यपि चिरकालसे लोकमें यह प्रसिद्धि है कि वैदिक संहिताओंमें केवल याज्ञिक कर्मकाण्डका ही वर्णन है, अध्यात्म-विषय केवल उपनिषदोंमें ही प्रतिपादित किया गया है[1]। वस्तुतः प्राचीन सिद्धान्तानुसार यह विचार सर्वथा मिथ्या है। प्राचीन मतानुसार वैदिक संहिताओंका कर्मकाण्डमें विनियोग होनेपर भी वह उनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय नहीं है। उनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय तो अध्यात्म ही है। वैदिक मन्त्रोंका कर्मकाण्डमें विनियोगमात्र किया गया है और कई स्थानोंपर तो वह विनियोग इतना अस्वाभाविक है कि साधारण संस्कृतज्ञ भी जान सकता है कि वह मन्त्रोंके साथ बलात् जोड़ा गया है, मन्त्रार्थका उनके साथ दूरका भी सम्बन्ध नहीं। इसके लिये हम यहाँ तीन उदाहरण उपस्थित करते हैं—

उद्बुध्यस्वाग्ने—मन्त्र बुधग्रहकी पूजामें विनियुक्त किया गया है।

शन्नोदेवी—मन्त्र शनैश्चरग्रहकी पूजामें विनियुक्त है।

दधिक्राव्णो अकारिषम्—मन्त्र दधिभक्षणमें विनियुक्त है।

प्रथम मन्त्रमें 'बुध्यस्व' क्रिया पद है। उसके एक देश बुधका बुध-ग्रहके नामके साथ सादृश्य होनेसे वह बुधकी पूजामें विनियुक्त किया गया है। 'शन्नो देवी' मन्त्रका संधिजरूप शन्का शनि-ग्रहके एक देशके साथ सादृश्य है और 'दधिक्राव्णो अकारिषम्'के दधिभागका दधी-वाचक दधिके साथ सादृश्यमात्र है। इन मन्त्रोंका वस्तुतः बुध, शनि ग्रह और दधि (दही) के साथ दूरका भी सम्बन्ध नहीं है।

इसके विपरीत मन्त्रोंमें अध्यात्मविषयकी प्रतीति स्पष्ट और युक्तिसंगत प्रतीत होती है। हाँ, यह प्रतीति प्रायः उन्हींको होती है, जो सात्त्विक और सन्मात्रनिबद्धबुद्धि योगी-जन हों। स्कन्दस्वामीने निरुक्त टीका ७।५ में इस विषयपर बहुत ही सुन्दर प्रकाश डाला है। वह लिखता है—

तत्र अध्यात्मविदस्तावत् सन्मात्रनिबद्धबुद्धयः शिथिलीभूतकर्मग्रहग्रन्थयो भिन्नविषयभवसंक्रमस्थानवैराग्याभ्यासवशात् समासादितस्थिरसमाधयो निरस्तबाह्यविषयैषणा निरुद्धान्तःकरणवृत्तयो निष्कम्पदीपकल्पाः क्षेत्रज्ञज्ञानमननाः······ अन्यं न पश्यन्ति न शृण्वन्ति।

अर्थात्—जो अध्यात्मवित् हैं, जिनकी बुद्धियाँ सन् मात्र (परमसत्ता ब्रह्म) में निबद्ध हैं, जिनके कर्मोंकी ग्रह-ग्रन्थियाँ शिथिलीभूत हो चुकी हैं, जिन्होंने विभिन्न विषयरूपी संसार-सागरमें वैराग्य और अभ्यासके द्वारा स्थिर समाधि प्राप्त कर ली है; जिनकी बाह्य विषयोंकी एषणा समाप्त हो चुकी है, अन्तःकरणकी वृत्तियाँ निरुद्ध हो गयी हैं। निष्कम्प प्रदीपके समान, जो क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म)के ज्ञानमें ही मनन करनेवाले हैं वे [परमात्मासे] अन्यको न देखते हैं, न सुनते हैं [ऐसे महानुभावोंको ही वेदोंमें अध्यात्मज्ञानकी प्रतीति होती है, अन्यको नहीं]।

इतना ही नहीं, वेदोंमें अग्नि आदिके विप्र, कवि, द्विजन्मा,

१. तस्मिंश्च वेदे द्वौ काण्डौ—कर्मकाण्डो ब्रह्मकाण्डश्च। बृहदारण्याख्यो ग्रन्थो ब्रह्मकाण्डः, तद्व्यतिरिक्तं शतपथब्राह्मणं संहिता चेत्यनयोर्ग्रन्थयोः कर्मकाण्डत्वम्। (काण्वसंहिता सायणभाष्य उपक्रमणिका)

विपश्चित्, प्रमति आदि विशेषण बहुत उपलब्ध होते हैं । ये विशेषण अभिधा (मुख्य) वृत्तिसे चेतन ज्ञानवान् पदार्थमें ही घट सकते हैं, भौतिक जड अग्निमें नहीं । शास्त्रकारोंका सिद्धान्त है कि जहाँ मुख्यार्थकी बाधा हो वहाँ लक्षणार्थकी कल्पना की जाती है, अन्यथा नहीं । अतः यदि कथंचित् पहले यह निश्चित हो जाय कि मन्त्रोंमें श्रुत, अग्नि आदि भौतिक जड पदार्थोंके ही वाचक हैं, किसी चेतन पदार्थके नहीं, तब तो कवि आदि शब्दोंमें लक्षणार्थकी कल्पना स्वीकार की जा सकती है । वेदका मुख्यार्थ क्या है ? इसमें वेद स्वयं स्वतःप्रमाण है । इस दृष्टिसे कवि, विपश्चित् आदि पदोंके सांनिध्यसे अग्निपद उन-उन मन्त्रोंमें चेतन ब्रह्म वा आत्माका ही वाचक है । आचार्य शंकरने भी अग्नि आदि पदोंको ब्रह्मका वाचक माना है । उन्होंने वेदान्तसूत्र (१ । २ । २८)के भाष्यमें लिखा है—

अग्निशब्दोऽपि अग्रणीत्वादियोगाश्रयेण परमात्मविषय एव भविष्यति ।

अर्थात् अग्नि शब्द भी 'आगे ले जानेवाला' आदि योगार्थके द्वारा परमात्मविषयक ही होगा ।

शंकराचार्यके इस वचनसे यह भी स्पष्ट है कि यास्कके **'अग्रणीर्भवति'** (निरुक्त ७ । ४) आदि निर्वचन अध्यात्म-प्रक्रियामें भी अनुगत हैं ।

वेद स्वयं इस तत्त्वको निम्न ऋचामें अत्यन्त स्पष्टरूपमें दर्शाता है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
(ऋ० १ । १६४ । ४६)

अर्थात् एक सत् [ब्रह्म-] को ही मेधावीजन इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम और मातरिश्वा कहते हैं ।

इस प्रकार वेदकी अन्तःसाक्षिताके पश्चात् हम प्राचीन वाङ्मयसे कतिपय ऐसे वचन उद्धृत करते हैं जिनसे स्पष्ट हो जायगा कि वेदोंका मुख्य प्रतिपाद्य विषय अध्यात्म ही है । यथा—

१—कठोपनिषद्‌की एक श्रुति है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥
(१ । २ । १५)

अर्थात् सब वेद जिस पदका अभ्यास (पुनः-पुनः कथन) करते हैं; सारे तपस्वी लोग जिसका कथन करते हैं; जिसकी चाहना करते हुए ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस पदको तुझे संग्रहसे बताता हूँ । वह 'ओम्' है ।

२—उपर्युक्त कठश्रुतिके अनुसार योगिराज श्रीकृष्णने भी कहा है—

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥
(गीता ८ । ११)

अर्थात् जिस अक्षर अविनाशी ब्रह्मका वेदविद् कथन करते हैं, वीतराग यति लोग जिसमें प्रविष्ट होते हैं (जिसको प्राप्त करते हैं), जिसकी चाहना करते हुए ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, उस पदको संक्षेपसे तुम्हारे लिये कहता हूँ।

३—आगे पुनः श्रीकृष्णने कहा है—

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः । (१५ । १५)

अर्थात् सब वेदोंसे मैं (ब्रह्म) ही जानने योग्य हूँ ।

४—महर्षि वेदव्यास अपने पुत्र शुकको अध्यात्मका उपदेश करके अन्तमें उपसंहार करते हुए कहते हैं—

दशेदमृक्सहस्राणि निर्मथ्यामृतमद्भुतम् ।
नवनीतं यथा दध्नः काष्ठादग्निर्यथैव च ।
तथैव विदुषां ज्ञानं पुत्रहेतोः समुद्धृतम् ॥
(महा० शान्ति० २४६ । १४-१५)

अर्थात् दस सहस्र ऋचाओंका मथन करके मैंने यह अद्भुत अमृत (निकाला है)। मक्खन जैसे दहीसे और अग्नि जैसे काष्ठसे मन्थन करके निकाली जाती है उसी प्रकार विद्वानों—ब्रह्मविदोंका ज्ञान पुत्रके लिये (१० सहस्र ऋचाओंका मथन करके) निकाला है ।

५—आचार्य कात्यायनने ऋग्वेदके देवता (प्रतिपाद्य विषय-) का निर्देश करनेवाले 'सर्वानुक्रमणी ग्रन्थके आरम्भमें लिखा है—

समस्तानां प्रजापतिः । ओङ्कारः सर्वदेवत्यः पारमेष्ठ्यो ब्राह्मो वा दैव आध्यात्मिकः ।

अर्थात् समस्त ऋचाओंका प्रजापति देवता (प्रतिपाद्य विषय) है । ओङ्कार सर्वदेवतावाला है । परमेष्ठी [illegible] अध्यात्मविषयक है ।

६—यास्क मुनिने भी निरुक्त ७ । ४ में लिखा है—

महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते ।

अर्थात्—अत्यन्त ऐश्वर्यशाली विविध शक्तिसम्पन्न होनेसे एक ही आत्मा बहुत प्रकारसे (विभिन्न गुणोंके द्वारा) स्तुति किया जाता है ।

यदि उपर्युक्त उद्धरणोंपर गम्भीरतासे विचार किया जाय, तो ज्ञात होगा कि कठश्रुतिका **'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति'** लेख तभी उपपन्न होगा जब कि सम्पूर्ण वेद उसी एक पद 'ओम्' का आमनन=अभ्यास=बार-बार कथन=उपदेश करते हों । यदि वेद ओम्=ब्रह्म=अध्यात्मका प्रतिपादन नहीं करते, केवल यज्ञोंके ही प्रतिपादक हों, तो कठश्रुतिका लेख प्रमाद-वचन होगा । गीताके दोनों वचनोंमें कठश्रुतिकी ही प्रतिध्वनि है । अतः गीताका भी यही मत है कि वेद अध्यात्मके प्रतिपादक हैं । चतुर्थ प्रमाणमें स्पष्ट कहा है कि ऋग्वेदकी दस सहस्र ऋचाओंका मथन करके उक्त अध्यात्म-ज्ञानरस मक्खन निकाला है । व्यासजीने यहाँ दहीसे नवनीत और काष्ठसे अग्निके निकालनेके दो दृष्टान्त बड़े ही सुन्दर दिये हैं । इनसे उक्त विषय अति स्पष्ट हो जाता है । तात्पर्य यह कि जैसे दहीके प्रत्येक अंशमें विद्यमान नवनीतका अंश ही मन्थनद्वारा पृथक् किया जाता है अथवा प्रकट किया जाता है, उसी प्रकार ऋग्वेदकी सभी ऋचाओंमें अध्यात्म ज्ञानके अंश विद्यमान हैं, उन्हींको मन्थनद्वारा प्रकाशमें लाया गया । पाँचवें प्रमाणमें कात्यायनने स्पष्ट कह दिया कि समस्त ऋचाओंका प्रजापति ओंकार ही देवता—प्रतिपाद्य विषय है । छठे प्रमाणमें यास्कका वचन भी यही ध्वनित करता है कि वेदमें एक ही महान् देवकी विभूतियों—गुणोंका भिन्न-भिन्न रूपसे गान किया गया है ।

इतना ही नहीं, ऋग्वेदका एक मन्त्र तो कहता है—

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति । (१ । १६४ । ३९)

अर्थात् जो अक्षर अविनाशी परब्रह्मको नहीं जानता वह ऋचाओंसे क्या करेगा ? वेदाध्ययनका क्या फल पायेगा ? अर्थात् उसका वेद पढ़ना व्यर्थ ही है ।

इसी ऋचाका अधिक स्पष्टीकरण उपनिषद्के निम्न मन्त्रमें मिलता है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति नो चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।

अर्थात् यदि इसी जन्ममें ईश्वरको जान लिया तब तो ठीक है, अन्यथा महान् विनाश है (जीवनका) ।

इस प्रकार कतिपय आचार्योंके ऊपर उद्धृत वचनोंसे स्पष्ट है कि वेदका मुख्य प्रतिपाद्य विषय अध्यात्म ही है । इतना ही नहीं, इस युगके महान् वेदाभ्यासी और योगी स्वामी दयानन्द सरस्वती और अरविन्द घोषकी भी यही मान्यता है कि वेदका मुख्य प्रतिपाद्य विषय अध्यात्म ही है । इन दोनों अध्यात्मज्ञानकी विभूतियोंने इस बातका प्रतिपादन अपने ग्रन्थोंमें पर्याप्त विस्तार तथा युक्तिप्रमाण-पुरस्सर किया है । अध्यात्मज्ञानके प्रेमियोंको स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका और श्रीअरविन्द घोषका वेद-रहस्य अवश्य देखना चाहिये ।

ईश्वर-प्राप्तिके वैदिक उपाय

वेद ईश्वर-प्राप्तिका प्रधान उपाय आत्मज्ञान बताता है । पुरुषसूक्तका एक प्रसिद्ध मन्त्र है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

(यजु० ३१ । १८)

अर्थात्—मैं उस महान् आदित्यके समान प्रकाशमान, अविद्या आदि तमोंसे परे वर्तमान पुरुषको जानता हूँ । उसीको जानकर मनुष्य मृत्युका उल्लङ्घन करता है (अमृत हो जाता है), और कोई मार्ग [भवसागरसे] छूटनेका नहीं है ।

किंतु उस पुरुष वा आत्मा वा परमात्माका ज्ञान भी तो सरल नहीं है । गीताके शब्दोंमें—

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥

(६ । ४५)

अर्थात्—अनेक जन्ममें प्रयत्न करते-करते मनुष्य सिद्धिको प्राप्त करता है ।

महर्षियोंने ईश्वर-प्राप्तिका साधन योगाभ्यास बताया है । महर्षि पतञ्जलिने योगदर्शनमें उसी योगकी विस्तृत व्याख्या की है । योगका लक्षण निम्न प्रकार है—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । (योगदर्शन १ । २)

अर्थात् चित्तकी वृत्तियोंका, जो बाह्य विषयोंमें भटक रही हैं, निरोध हो जाना । और निरोध होनेपर—

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् । (योगदर्शन १ । ३)

सबके द्रष्टा प्रभुके स्वरूपमें स्थित हो जाना ही योग है । इसीके दो भेद हैं—सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि ।

चित्तवृत्तिनिरोधके उपाय

परंतु यह चञ्चल प्रमाथी मन निरुद्ध कैसे हो, इसका उपाय पतञ्जलिने बताया है—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। (योगदर्शन १ । १२)

अर्थात्—अभ्यास और वैराग्यके द्वारा ही मनका निरोध सम्भव है। यही उपदेश भगवान् श्रीकृष्णने भी गीतामें दिया है—

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥
(६ । ३५)

इन दो उपायोंमें अभ्यास क्या है, वैराग्य क्या है? इसका विचार करना चाहिये।

वैराग्य नाम है सांसारिक विषयोंसे वितृष्ण होना, उनकी इच्छासे रहित होना। यह विषयोंसे वितृष्णा सम्यग् ज्ञानसे ही सम्भव है। सम्यग् ज्ञान होना अत्यन्त दुष्कर है और आजकलके समयमें जब कि संसारमें सर्वत्र अज्ञानवर्धक, भोगेच्छावर्धक सामग्री वा दृश्योंकी ही भरमार है। इसलिये आजकलके समयमें ईश्वरकी प्राप्ति या संसारसे मुक्ति कैसे हो, इसका विचार करना अत्यावश्यक है।

हमारे विचारमें इसका एकमात्र उपाय अभ्यास एकतत्त्वचिन्तन है। वह एकतत्त्वका चिन्तन कैसे किया जाय और किसका किया जाय, इसका उत्तर भगवान् पतञ्जलि देते हैं—

तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थभावनम्।
(योगदर्शन १ । २७-२८)

अर्थात् परम प्रभुका वाचक सर्वश्रेष्ठ नाम है—प्रणव अर्थात् 'ओम्'। उसका जप और उसके अर्थकी भावना करनी चाहिये।

इसीको संतलोग भगवन्नामस्मरणके रूपमें बताते हैं। इस स्मरणमें जप और अर्थकी भावना दोनोंका ही अन्तर्भाव हो जाता है।

नाम-स्मरणकी दूसरी प्रक्रिया

भगवन्नाम-स्मरणकी एक प्रक्रियाका उल्लेख हमने योगदर्शनके सूत्रोंद्वारा किया। उसकी दूसरी प्रक्रिया है—

स्तुति-प्रार्थना-उपासना

स्तुतिका लक्षण है—किसी भी पदार्थमें विद्यमान गुणोंका यथोचित रूपमें वर्णन करना। इस दृष्टिसे जब हम कहते हैं कि 'देवदत्त बहुत श्रेष्ठ व्यक्ति है, सदाचारी है, सत्यवादी है' तब हमारा अभिप्राय केवल इतना ही नहीं होता कि हम जिससे देवदत्तकी स्तुति करते हैं वह उसके गुणोंको जान जाय। अपितु हमारी इच्छा होती है कि वह व्यक्ति जिसके प्रति हम देवदत्तके गुणोंका वर्णन करते हैं, वह उसके समीप जाय, उससे भेंट करे, उसका संग करे और उससे लाभ उठाये। जब हम भगवान् रामके मर्यादा-पुरुषोत्तमत्वके गुणोंका बखान करते हैं तो हमारी इच्छा होती है कि संसार उनके आदर्शोंपर चले।

इसलिये स्तुति तब तक निरर्थक ही रहती है जब तक उसके अनन्तरकी क्रिया प्रार्थना वा उपासना न की जाय। अतः स्तुतिका अन्त होता है प्रार्थनामें अथवा उपासनामें।

प्रार्थना नाम है—स्तुत्यके गुणोंका बखान करके उससे उन गुणोंकी प्राप्तिके लिये सामर्थ्यकी याचना करना और उपासना नाम है—उस स्तुत्यके गुणोंको अपने अंदर धारण करके उसके समीपमें जाना। जबतक उपास्य और उपासकमें एकरूपता न होगी, उपासना—समीप बैठना, समीप जाना वा बन्धुत्व-प्राप्ति करना नितान्त असम्भव है; क्योंकि **समानशीलव्यसनेषु मैत्री**—समान गुण-कर्मवालोंमें ही मैत्री होती है। भगवान् हों ज्ञानके पुञ्ज, सत्यव्रत, सर्वदोषविवर्जित और हम हों अज्ञानान्धकारसे आवृत, अनृतवादी, सर्वदोषयुक्त—तब कभी भी उपासना नहीं हो सकती। इसलिये वेदमें स्तुतिके साथ प्रार्थना वा उपासना दोनोंमेंसे एक अङ्ग अवश्य सम्बद्ध रहता है।

अब हम कतिपय ऐसे मन्त्र उपस्थित करते हैं जिनमें प्रभुकी स्तुति-प्रार्थना और उपासनाका हृदयहारी वर्णन है जिन्हें गाकर भक्तकी आत्मा मस्तीमें झूम उठती है।

वैदिक स्तुति-प्रार्थना-उपासना

(१) **त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।**
अधा ते सुम्नमीमहे। (ऋ० ८ । ९८ । ११)

'हे वसो! सबको बसानेवाले, सारे संसारको आच्छादित करनेवाले अर्थात् सबसे महान् तुम ही हमारे पिता हो, पाल[illegible] हो, रक्षक हो। हे शतक्रतो! सैकड़ों सत्कर्मों [illegible] करनेवाले विविध ब्रह्माण्डके रचयिता प्रभो! तुम ही हमारी माता हो। तुम-जैसे सर्वतोमहान् माता-पिताको [illegible] तुमसे [illegible] ही तुम्हारे उस सुखको, उस आनन्दको [illegible]

याचना करते हैं जो तुम्हारेमें है । जिससे तुम आनन्द-स्वरूप हो । वही नित्यानन्द हमें भी प्राप्त कराओ ।'

(२) स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ (ऋ० १ । १ । ९)

'हे अग्ने ! प्रकाशमान ज्ञानस्वरूप प्रभो ! आप हमारेपर वैसे ही कृपालु होओ, वैसे ही सुखोंके प्राप्त करानेवाले होओ । जैसे पिता अपने बालकोंके सुखकी कामना करता है और हमें स्वस्ति—नित्य रहनेवाले अखण्ड कल्याणके लिये समर्थ करो ।'

(३) विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ (ऋ० ५ । ८२ । ५)

'हे सम्पूर्ण संसारके प्रकाशक और उत्पन्न करनेवाले देव ! हमारे सम्पूर्ण दुरितोंको, पापोंको—पापमयी वासनाओंको हमसे दूर करिये और जो कुछ भी संसारमें भद्र है, हमारे लिये कल्याणकारी है, ऐसे उत्तम श्रेष्ठ गुणों वा पदार्थोंको प्राप्त कराइये ।'

(४) नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥
(अथर्व० ११ । २ । १६)

'हे भव ! सारे संसारको उत्पन्न करनेवाले और सुखस्वरूप तथा सर्वजीवोंके सभी दुःखोंके नाश करनेवाले प्रभो ! तुम्हारे दोनों स्वरूपोंके लिये हम प्रातः-सायं दिन-रात बहुधा नमस्कार करते हैं । आप कृपा करके हमारे लिये सुखके देनेवाले और दुःखोंको दूर करनेवाले होइये ।'

(५) **अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।**
(ऋ० १ । १८९ । १)

'हे मार्गदर्शक नेता ! आप हमें धन, सम्पत्ति वा आत्मिक कल्याणके लिये अच्छे मार्गसे—शुभमार्गसे ले चलिये । हे देव! आप हमारे सब कर्मोंको जाननेवाले हैं; क्योंकि आप घट-घटवासी हैं । इतना ही नहीं, हे प्रभो! हमारे सम्पूर्ण पापोंको—कुटिलताओंको हमसे दूर करिये, जिससे हम निष्पाप हो सकें। इसके लिये हे प्रभो ! हम आपकी बहुत प्रकारसे स्तुति-प्रार्थना करते हैं ।'

(६) यद्ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये ।
यदेनश्चकृमा वयमिदं तदव यजामहे स्वाहा ॥
(यजु० ३ । ४४)

'हे पापोंके दूर करनेवाले प्रभो ! हमने जो ग्राममें, जो सभामें, जो अपनी इन्द्रियोंके विषयमें अर्थात् अपने और परायेके लिये जो भी पाप—बुरा कर्म, बुरा आचरण मनसा वाचा-कर्मणा किया है, उसको हम इसी समय आपकी प्रसन्नताके आपको सर्वद्रष्टा जानते हुए छोड़ रहे हैं, साथ ही यह हमारी प्रतिज्ञा सुदृढ़ बने—सच्ची बने । हम अपनी प्रतिज्ञाके निभानेके लिये समर्थ हों । प्रभो ! हमें इस शुभ प्रतिज्ञाके निभानेके लिये सामर्थ्य दो ।'

इस प्रकार वेदमें प्रभुकी सर्वत्र विविध नामोंसे स्तुति करके अपने दोषोंको दूर करने और शुभ गुणोंकी प्राप्तिके लिये प्रार्थनाएँ मिलती हैं । उपनिषद्की एक प्रार्थना सर्व प्रसिद्ध है—

असतो मा सद् गमय ।
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्मामृतं गमय ॥

हे प्रभो ! हमें असत्से—अज्ञानसे सत्—ज्ञानकी प्राप्ति कराओ । ज्ञान प्राप्त होनेपर तम—अन्धकारको दूर कर अपनी शुभ ज्योति—प्रकाशको प्राप्त कराओ और मृत्युसे—जन्म-मरणके चक्रसे छुड़ाकर अमृतको प्राप्त कराओ ।

वैदिक प्रार्थनाओंका एक वैशिष्ट्य

वैदिक प्रार्थनाओंका एक सर्वतोमुख वैशिष्ट्य यह है उसमें प्रायः समष्टिका निर्देश है । सर्वत्र बहुवचनका प्रयो है । इससे यह स्पष्ट है कि वैदिक धर्ममें समष्टि व्यक्तिसे प्रधानता दी है । अर्थात् अपने सुखकी वा कल्या की अपेक्षा सामूहिक कल्याणको महत्त्व दिया गया है । इ के अनुरूप हम भगवान् वाल्मीकिके शब्दोंमें आज भी काम करते हैं—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

अर्थात् सब सुखी हों, सब स्वस्थ हों, सब कल्या भागी हों । कोई भी दुखी न रहे ।

सब मनःकामनाएँ, चाहे वे लौकिकी हों चाहे पारलौकि प्रभुकी प्रार्थना, प्रभुकी भक्ति, प्रभुके **नामस्मरण और** उ यथार्थ अर्थकी भावनासे पूर्ण होती है ।

ओम् खं ब्रह्म ।

ऋग्वेदमें भगवान्के नाम और स्तोत्र

(लेखक—पण्डित श्रीरामगोविन्दजी त्रिवेदी)

ऋग्वेद (शाकल-संहिता-) के प्रथम मण्डलके १६४वें सूक्त (अस्यवामीय सूक्त) तथा दशम मण्डलके ९०वें सूक्त (पुरुषसूक्त), १२१वें सूक्त (हिरण्यगर्भ सूक्त) और १२९ वें सूक्त (नासदीय सूक्त) में प्रधानतः चराचर- ी मूल सत्ता वा पराशक्तिका अत्यन्त संक्षिप्त उल्लेख है। न्यत्र भी उल्लेख है; परंतु प्रसंगतः। अस्यवामीय सूक्तके ०वें मन्त्रमें कहा गया है—'जीवात्मा और परमात्मा एक ीरमें रहते हैं। एक भोक्ता है और दूसरा केवल द्रष्टा है— ३ भी भोग नहीं करता।' कुछ यही बात भगवान्ने ावद्गीतामें कही है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

इसी सूक्तके ४६ वें मन्त्रका उद्घोष है—'परमात्मा एक तो भी उन्हें अनेक कहा गया है।'

पुरुषसूक्तके प्रथम मन्त्रकी उक्ति है—'परमात्मा अनन्त , अनन्त चक्षुओं और अनन्त चरणोंवाले हैं। वे ण्ड-गोलकके चारों ओर व्याप्त होकर ब्रह्माण्डके बाहर याप्त होकर अवस्थित हैं।' द्वितीय मन्त्रका कथन है—'जो हुआ है या जो कुछ होनेवाला है, सो सब पुरुष अर्थात् त्मा ही हैं।' तृतीय मन्त्र है—'यह सारा ब्रह्माण्ड उनकी ा है। वे तो स्वयं अपनी महिमासे भी बड़े हैं। उनका अंश ही यह ब्रह्माण्ड है। (प्रायः ऐसी ही उक्ति गीता -४१) में भी है) उनके तीन अविनाशी अंश तो ोकमें हैं।' पञ्चम मन्त्रकी विवृति है—'उन अनादि पुरुष- ाण्ड उत्पन्न हुआ और ब्रह्माण्ड-देहसे जीव उत्पन्न वे देव-मनुष्यादि-रूप हुए। उन्होंने भूमि बनायी और शरीर बनाये। इसके अनन्तर ऋतु, यज्ञ, पशु, अन्न, मेघ, जाति, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष आदिकी उत्पत्ति बतायी गयी है।' अन्तिम मन्त्रमें उपासक महात्माका उल्लेख है।

रण्यगर्भसूक्तका प्रथम मन्त्र है—'सर्वप्रथम केवल थे। सृष्टि होनेपर वे सम्पूर्ण प्राणियोंके अधीश्वर ५। उन्होंने इस पृथिवी और आकाशको अपने-अपने स्थानोंमें स्थापित किया।' द्वितीय मन्त्रका कहना है—'प्रजापति (परमात्मा-) ने जीवात्माको दिया है, शक्ति दी है। उनकी आज्ञा सारे देव मानते हैं। उनकी छाया अमृतरूपिणी है! उनके वशमें मृत्यु है।' चतुर्थ मन्त्रकी उक्ति है—'उनकी महिमासे ये समस्त हिमाच्छन्न पर्वत उत्पन्न हुए हैं, उनकी सृष्टि यह ससागरा धरित्री है, उनकी भुजाएँ ये सारी दिशाएँ हैं।' नवम मन्त्रका कथन है—'जो पृथिवीके जनक हैं, जिनकी धृति-शक्ति सत्य है, जिन्होंने आकाशको जन्म दिया और जिन्होंने आनन्दवर्द्धक तथा प्रचुर परिमाणमें जल उत्पन्न किया, वे हमें बचावें।' अन्तिम दशम मन्त्रमें कहा गया है—'प्रजापते! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई इन समस्त उत्पन्न वस्तुओंको अधीन करके नहीं रख सकता।'

यहाँ प्रत्येक मन्त्रके प्रत्येक शब्दका निर्वचन और विश्लेषण करना लेखकका उद्देश्य नहीं है, केवल मन्त्रका आशय वा भावार्थ लिखना ही लक्ष्य है। यहाँ यह भी ध्यान देना चाहिये कि ये उक्तियाँ किसी सामान्य कवि या ग्रन्थकारकी रचना नहीं हैं, प्रत्युत समाधि-दशामें प्राप्त ऋषियोंकी निर्मल और सत्यपूत संविद् या अनुभूति हैं। ये त्याग-तपोमय जीवन यापन करनेवाले मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंके परम पावन मस्तिष्कके गहनतम उद्गार हैं। कोई प्रज्ञा, प्रभा और प्रतिभाका रचनाकार तो एक-एक मन्त्रपर ज्ञान-गर्भ ग्रन्थ लिख सकता है।

ऋग्वेदके दशम मण्डलके १२९ वें सूक्तको 'नासदीयसूक्त' कहा जाता है, जिसे लोकमान्य बालगंगाधर तिलकने अपने 'गीता-रहस्य'में मानवजातिका सर्वश्रेष्ठ चिन्तन कहा है। सूक्तमें सब सात मन्त्र हैं और समस्त मन्त्र अध्यात्मवादियोंके कण्ठस्थ करने योग्य हैं। सूक्तकी उक्तियाँ इतनी सूक्ष्मतम, इतनी गहनतम, इतनी अद्भुत और इतनी चमत्कारकारिणी हैं कि पढ़कर विस्मयाभिभूत हो जाना पड़ता है। ये समाधि- तस ऋषिकी प्रचण्ड चेतनाके जाज्वल्यमान प्रतीक हैं। वीतराग ऋषिकी गहन-गम्भीर गिरा प्रथम मन्त्रमें सुनिये— 'महाप्रलय दशामें असत् (सियारके सींगके समान अस्तित्व- हीन) नहीं था। सत् (जीवात्मा आदि) भी नहीं था। पृथिवी भी नहीं थी और आकाश तथा आकाशमें विद्यमान सातों भुवन भी नहीं थे। आवरण ([illegible]) भी [illegible] था? कहाँ किसका स्थान था? [illegible] गम्भीर [illegible] था।' द्वितीय मन्त्र [illegible]

अमरता भी नहीं थी, रात और दिनका भेद भी नहीं था। वायुशून्य और आत्मावलम्बनसे श्वास-प्रश्वास-युक्त केवल एक ब्रह्म थे। उनके अतिरिक्त कुछ नहीं था।' तृतीय मन्त्र—सृष्टिके प्रथम अन्धकार (वा मायारूप अज्ञान-)से अन्धकार (जगत्कारण) ढका हुआ था। सभी अज्ञात और सब अविभक्त था। अविद्यमान वस्तुके द्वारा वह सर्वव्यापी आच्छन्न था। तपस्याके प्रभावसे वही एक तत्त्व उत्पन्न हुआ।' चतुर्थ मन्त्र—'सर्व-प्रथम परमात्माके मनमें काम (सृष्टिकी इच्छा) उत्पन्न हुई। उससे सर्व प्रथम बीज (उत्पत्तिकारण) निकला। बुद्धिमानोंने बुद्धिके द्वारा अन्तःकरणमें विचार करके अविद्यमान वस्तुसे विद्यमान वस्तुका निरूपण किया।' सप्तम मन्त्र—'ये नाना सृष्टियाँ कहाँसे हुईं? किसने सृष्टियाँ कीं और किसने नहीं कीं—यह सब वे ही जानें, जो इनके स्वामी परम धाममें रहते हैं।'

इन ज्ञानगर्भ और रहस्यमय वचनोंके अतिरिक्त भी भगवान्‌के सम्बन्धमें यत्र-तत्र उल्लेख है। १०।३१।८ में कहा गया है—'द्युलोक और भूलोक ही अन्तिम नहीं हैं; इनके ऊपर भी और कुछ है। ईश्वर प्रजाका बनानेवाला और द्यावा-पृथिवीका धारण करनेवाला है। वह अन्नका प्रभु है।' १०।११४।५ का कथन है—'परमात्मा एक हैं; परंतु क्रान्तदर्शी विद्वान् उनकी अनेक प्रकारसे कल्पना करते हैं।'

यह कल्पना वा मान्यता लौकिक संस्कृत साहित्यमें श्रीराम, श्रीकृष्ण आदिके रूपोंमें है और वैदिक वाङ्मयमें इन्द्र, अग्नि और विश्वकर्मा आदिके रूपोंमें। जैसे संस्कृतमें श्रीराम, श्रीकृष्णका विशद वर्णन है, वैसे ही वेदमें इन्द्र और अग्निका। ऋग्वेदके साढ़े दस हजार मन्त्रोंमेंसे साढ़े तीन हजार मन्त्रोंमें इन्द्रकी और ढाई हजार मन्त्रोंमें अग्निकी विवृति है। जैसे रामजी और कृष्णजी साक्षात् परमात्मा माने जाते हैं, वैसे ही अनेक मन्त्रोंमें इन्द्र और अग्नि भी। जैसे राम और कृष्णका अद्वितीय और अलौकिक विवरण पाया जाता है, वैसे ही इन्द्र और अग्निका भी।

इन्द्रके सम्बन्धमें कुछ मन्त्र देखिये—'मेधावी इन्द्र! तुम ईश्वर हो। तुमने अपनी शक्तिसे सूर्यके दो चक्रोंमेंसे एकका हरण कर लिया। शुष्ण असुरका वध करनेके लिये कर्तन-साधक वज्र लेकर वायुके समान वेगगामी अश्वके साथ आओ।' (मण्डल १, सूक्त १७५, मन्त्र ४) 'मनुष्यो और असुरो! जिन्होंने व्यथित पृथिवीको दृढ़ किया है, जिन्होंने प्रकुपित पर्वतोंको नियन्त्रित किया है, जिन्होंने प्रकाण्ड अन्तरिक्षको बनाया है और जिन्होंने द्युलोकको निस्तब्ध किया है, वे ही इन्द्र हैं।' (२।१२।२) 'इन्द्रने मनुके लिये जल और पृथिवीकी सृष्टि की।' (२।२०।७) 'सम्पूर्ण देवोंके प्रतिनिधि इन्द्र तीन प्रकारकी (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) मूर्तियाँ धारण करते हैं और इन रूपोंको धारण कर वे अलग-अलग प्रकट होते हैं। वे मायाद्वारा अनेक रूप धारण करके यजमानोंके पास उपस्थित होते हैं।' (६।४७।१८) 'इन्द्र! तुम ईश्वर हो। रक्षाके लिये स्तोता तुम्हें बुलाते हैं।' (७।२१।८) 'इन्द्रकी महिमा सबके तेजको अभिभूत कर देती है। वे मनुष्योंको धारण करते हैं। उनकी महिमा समुद्रसे भी अधिक है। उनका तेज सारे संसारको परिपूर्ण करता है।' 'स्वर्ग, पृथिवी, जल, पर्वत आदि सबपर इन्द्रका आधिपत्य है। बली और बुद्धिशाली व्यक्तियोंपर इन्द्रका आधिपत्य है। नयी वस्तुएँ पानेके लिये और प्राप्त वस्तुओंकी रक्षाके लिये (योग-क्षेमके लिये) इन्द्रकी प्रार्थना करनी होती है।' (१०।८९।१ और १०) इन्द्रोक्ति—'द्यावा पृथिवी—दोनों मेरे एक पार्श्वके समान भी नहीं हैं।' 'मेरी इतनी शक्ति है कि यदि कहो तो इस धरित्रीको एक स्थानसे दूसरे स्थानमें ले जाकर रख सकता हूँ।' 'इस पृथिवीको मैं भस्म कर सकता हूँ। जिस स्थानको कहो, उसे मैं विध्वस्त कर सकता हूँ।' (१०।११९।७, ९ और १०) 'जो सृष्टिकर्ताओंके भी सृष्टिकर्त्ता हैं, जो भुवनाधिपति हैं, जो रक्षक और शत्रु-विजेता हैं, उन इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ।' (१०।१२८।७)

इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि वेदमें इन्द्रको परमात्मा माना गया है। इन्द्रकी अद्भुत विभूतियों और अलौकिक ऐश्वर्योंका जो वर्णन है, वह केवल परमात्मामें ही घटित होता है। यही बात अग्निके सम्बन्धमें भी पायी जाती है। कुछ उद्धरण पढ़िये—

'अग्नि! तुम्हारे जो पूजक हैं, उनके यज्ञमें स्तुतिकी मर्यादाकी रक्षा करो।' (३।२४।४) इसके अगले सूक्तके प्रथम और पञ्चम मन्त्रोंमें अग्निको सर्वज्ञ और नित्य कहा गया है। तृतीय मण्डलके २६वें सूक्तके ७वें मन्त्रमें अग्निका कहना है—'मैं परब्रह्म शाश्वत परमतत्त्व हूँ। प्रकाश मेरा नेत्र है। मेरे मुखमें अमृत है। मेरे त्रिविध (वायु, सूर्य, दीप्ति) प्राण हैं। मैं अन्तरिक्षको मापनेवाला हूँ। मैं अक्षय उत्ताप हूँ।' १०।५।७ में आपत्यत्रित

ऋषि कहते हैं—'अग्नि सृष्टिके पहले अव्यक्त थे और सृष्टि होनेपर व्यक्त हुए। वे कारणात्मा हैं। वे आकाशमें सूर्य-रूपसे जगमे हैं। वे स्त्री-पुरुष दोनों हैं।' १०। ७९। १में 'मरणशील मनुष्योंमें अमर-स्वभाव अग्निकी महिमाको मैं देखता हूँ।'

दशम मण्डलके ८१ और ८२ सूक्त विश्वकर्माके ईश्वरत्व-प्रतिपादक हैं। कहा गया है—'सृष्टि-कालमें विश्वकर्मा-का आश्रय क्या था ? कहाँसे और कैसे उन्होंने सृष्टिकार्यका प्रारम्भ किया ? विश्वद्रष्टा देव विश्वकर्माने किस स्थानपर रहकर पृथिवी और आकाशको बनाया ?' 'वह कौन वन और उसमें कौन-सा वृक्ष है, जिससे द्यावा-पृथिवीकी रचना की गयी ? विद्वानो ! अपने मनसे पूछकर देखो कि किस पदार्थके ऊपर खड़े होकर विश्वकर्मा विश्वका धारण करते हैं।' (१०। ८१। २ और ४) 'विश्वकर्माने प्रथम जलको उत्पन्न किया। पश्चात् द्यावा-पृथिवीको बनाया।' 'जिन विश्वकर्माने सारे प्राणियोंको उत्पन्न किया, उन्हें तुमलोग नहीं जानते हो। तुम्हारा अन्तस्तल उन्हें समझनेकी सामर्थ्य नहीं रखता। अज्ञानसे आच्छन्न होकर लोग नाना प्रकारकी कल्पनाएँ करते हैं। वे अपने लिये भोजन करते और स्तुतियाँ करके स्वर्ग-प्राप्तिकी चेष्टा करते हैं—ईश्वरतत्त्वका विचार नहीं करते।' (१०। ८२। १ और ७)।

यहाँ मन्त्रके अन्तिम वाक्यपर ध्यान देनेकी आवश्यकता है। अनेक लोगोंकी धारणा है कि 'वैदिक वाङ्मयकी मन्त्र-संहिताओंमें केवल क्रियाबहुलता है, कर्मकाण्ड है, यज्ञ-वाद है और यह सब स्वर्गप्राप्तिके लिये है। ब्रह्मतत्त्वके विवेचनका विषय है ही नहीं।' इस धारणाका स्पष्ट खण्डन उक्त वाक्यमें है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि 'ब्रह्मात्मैक्य-चिन्तन और जीवन्मुक्ति-विवेकका वैदिक संहिताओंमें अभाव है।' इसका उत्तर इस मन्त्रमें है—'संसारमें जो तृण-भक्षण करनेवाले हैं, वे मैं ही हूँ। जो अन्न (धान्य) और जौ खानेवाले मनुष्य हैं, वे मैं ही हूँ। विस्तृत हृदयाकाशमें जो अन्तर्यामी ब्रह्म हैं, वे मैं ही हूँ।' (१०। २७। ९) इससे बढ़कर विराट् दृष्टि, सर्वव्यापक स्वानुभूति और ब्रह्मात्मैक्यज्ञान कहाँ है ? जड और चेतनके समग्र प्रपञ्चको आत्म-सागरमें निमग्न कर लेनेवाली इस संविद्से अधिक कहीं, किसी भी संस्कृत साहित्यमें क्या कुछ है ? यही तो अध्यात्म-वादका चरम लक्ष्य है।

यह भी कहा जाता है कि 'यज्ञ-यागसे महान् पुण्य होता है, जिसका फल स्वर्गप्राप्ति है। परंतु पुण्यकी इयत्ता होते ही स्वर्गसे पतन हो जाता है।' बड़े उल्लासके अद्वैतवादी कहते हैं—'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति परंतु याज्ञिकोंका स्वर्ग ऐसा है ही नहीं। यज्ञोत्पन्न पुण् अक्षय्य होता है। उसकी क्षीणताका तो प्रश्न ही नहीं हमारे छः शास्त्रोंमें पाँचवाँ शास्त्र है जैमिनीय मीमांसा। मतसे स्वर्ग नित्य है, स्वर्गसुख शाश्वत है और मोक्ष मुक्तिके समान ही स्वर्गनिवास पूर्णानन्दमय है। मीमांस सिद्धान्त है कि मुक्तावस्थामें भी मन रहता है; क्योंकि म बिना आनन्दकी अनुभूति वा भोग हो ही नहीं सकत सामान्यजनकी बुद्धिमें भी यह सिद्धान्त उचित, उपर और हृदयग्राह्य है।

पुराणादिमें जैसे दस, चौबीस वा असंख्य अवतार म गये हैं, वैसे ही वैदिक संहिताओंमें भी ३३, ३३३९ अ असंख्य देव माने गये हैं। जैसे कर्म और गुणके अनुस 'विष्णुसहस्रनाम' वा 'गोपालसहस्रनाम' आदिमें भगवान हजारों नाम और नामोंका गुणगान तथा नामोंका माहात्म्य वैसे ही वैदिक मन्त्र-संहिताओंमें भी अगणित देवोंके गु कर्मानुसार नाम और नामोंकी महिमा है। जैसे पुराणोंमें—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।

—भगवान्‌के असंख्य अवतार हैं—कहकर भी प्रधा रूपसे दस अवतार चुन लिये गये हैं, वैसे ही वेदोंमें असंख देवताओंका उल्लेख रहते हुए भी यज्ञादि सम्पादनके लि ३३ प्रधान देवोंको चुन लिया गया है।

१। १३९। ११ में कहा गया है—'पृथिवीस्थानीय ११, अन्तरिक्षस्थानीय ११ और द्युस्थानीय ११ देवता हैं। १। ३४। ११, १४। ५। २ और १०। ५५। ३ आदि भी ३३ देवोंका उल्लेख है। तैत्तिरीयसंहिता (१। ४। १० १) में भी यही बात है। शतपथ ब्राह्मण (४। ५। ७। २) में ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, आकाश और पृथिवी ३३ देवता हैं और ऐतरेय ब्राह्मण (२। २८) में ११ प्रयाजदेव, ११ अनुयाजदेव और ११ उपयाजदेव ३३ देव हैं। विष्णुपुराणके मतसे ११ रुद्र, १२ आदित्य, ८ वसु और प्रजापति तथा वषट्कार ३३ देव हैं। ये मतभेद अवतारोंके मतभेदके समान हैं। अनेक स्थानोंमें श्रीकृष्ण अष्टम अवतार हैं और अनेकमें हलधर बलराम। श्रीकृष्ण साक्षात् भ

रामनामकी परिक्रमासे विजयी गणेश

माने गये हैं। ऋग्वेदके एक मन्त्र (१० । ६५ । १) में अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, वायु, पूषा, सरस्वती, आदित्यगण, विष्णु, मरुत्, सोम, अदिति, रुद्र और ब्रह्मणस्पति आदिका उल्लेख है—जो 'मिलकर अपनी महिमासे अन्तरिक्षको पूरित करते हैं।' देवोंका एक नाम अन्तरिक्षसद् है। इनके अतिरिक्त बृहस्पति, त्वष्टा, भग, उषा, यम, विश्वेदेव, सूर्य, अश्विनीकुमार आदि-आदि भी प्रसिद्ध वैदिक देवता हैं। ऋग्वेदके ३ । ९ । ९ और १० । ५२ । ६ में ३३३९ देवता बताये गये हैं।

शक्ति और शक्तिमान्‌के द्वारा निखिल ब्रह्माण्ड संचरणशील हैं। इन्हींको माया और मायावी, प्रकृति और पुरुष आदि भी कहा जाता है। शिवके बिना शक्ति निराधार हो जाती है—टिक ही नहीं सकती और शक्तिशून्य शिव शवके समान हैं। यही शक्ति 'परा देवता' कहलाती है। ज्यों-ज्यों जगत्‌का विकास होता है, त्यों-त्यों यह परादेवता (मूलशक्ति) नाना रूपोंको धारण करती जाती है। विश्वमें आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक आदि जितनी शक्तियाँ हैं, सभी इसी देवताके भेदमात्र हैं। एक ही अग्निके अनेक स्फुलिंगोंके समान एक ही शक्तिकी सब विभूतियाँ हैं।

दैवतवादके प्रधान ग्रन्थ 'बृहद्देवता'में पहले ही कहा गया है—'प्रयत्न करके प्रत्येक मन्त्रके देवताका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।' दैवत-ज्ञान प्राप्त करनेवाला मानव वेदार्थ और वेद-रहस्य समझता है। 'बृहद्देवता'का कहना है कि 'शव (मुर्दे-)की भी आँखें रहती हैं; परंतु वह इसलिये नहीं देख सकता कि उसका चेतनाधिष्ठान नहीं है। जबतक जड नेत्रका अधिष्ठाता चेतन रहता है, तबतक वह भलीभाँति देखता है। जड-पदार्थमें स्वयं कर्तृत्व-शक्ति नहीं है, इसीलिये उसका अधिष्ठान चेतन माना गया है। अनेक जड-पदार्थोंके अनेक चेतन अधिष्ठाता माने गये हैं। ये ही अनेक देवता हैं।

निरुक्तकार यास्कका मत है—'देवो दानाद् द्योतनाद् दीपनाद् वा।' (निरुक्त दैवतकाण्ड, १ । ५) अर्थात् भोज्य आदि सारे पदार्थ देनेवाले, लोकोंमें भ्रमण करनेवाले और प्रकाशित होनेवालेको 'देव' या 'देवता' कहा जाता है। गुणकर्मानुसार अनेक नामोंसे अनेक देवताओंके स्तवन किये गये हैं। जहाँ ओषधि, जल, वायु, शाखा आदि जड-पदार्थोंको देवतावत् माना गया है, वहाँ औष[धि] आदि वर्णनीय हैं और उनके अधिष्ठाता देवता स्तवनी[य] हैं। फलतः मन्त्र-संहिताओंमें प्रत्येक जड-पदार्थका ए[क] अधिष्ठाता माना गया है; इसलिये जडकी स्तुति चेतनक[ी] तरह की गयी है।

चेतन और जड—दोनोंमें इन्द्रकी स्तुति सर्वाधिक [की] गयी है। कुछ उद्धरण देखिये—'पुरातन, मध्यतन औ[र] अधुनातन स्तोत्रोंके द्वारा जो इन्द्र संवर्धित होते हैं, उन इन्द्रको यजमान, रक्षक यज्ञके द्वारा अपने सामने [ले] आता है।' (३ । ३२ । १३) इससे यह भी ज्ञात हो[ता] है कि नाना प्रकारके स्तवन होते थे। 'सोमवाले यज्ञ वैदिक उपासनाके साथ इन्द्रका स्तोत्र अभिलाषावर्द्ध[क] हो। धनाधिपति इन्द्र स्तोताओंकी स्तुतियोंके द्वारा अर्चनी[य] हैं। द्युलोकनिवासी और स्तुतियोंके अधिपति इन्द्र रक्ष[क] हैं।' (६ । २४ । १) इससे जाना जाता है कि देवों[की] उपासना वा भक्तिमें आर्यलोग तल्लीन रहते थे। 'इन्द्र अपने पथ-भ्रष्ट उपासकको मार्ग दो।' (६ । ४७ । २०) 'जिस समय कवि (स्तोता) सोमधनको ग्रहण करते हु[ए] स्तवन करते हैं, उस समय इन्द्र स्वर्गमें शक्तिको प्र[कट] करते हैं।' (९ । ७ । ४) 'स्वर्ग, पृथिवी, जल, पर्वत—सबपर इन्द्रका आधिपत्य है। बली और बुद्धिमान् व्यक्ति[यों] पर इन्द्रका ही आधिपत्य है। नयी वस्तुएँ पानेके लि[ये] और प्राप्त वस्तुओंकी रक्षाके लिये इन्द्रकी प्रार्थना कर[नी] होती है।' (१० । ८९ । १०) इस मन्त्रसे विदित हो[ता] है कि अपने योग-क्षेमके लिये आर्यलोग प्रार्थनाको अनिव[ार्य] समझते थे। यह उच्चतम परम्परा आर्य-संतानमें आजत[क] प्रचलित है।

इन्द्रकी ही तरह ऋग्वेदके हजारों मन्त्रोंमें अग्नि[-] देवका भी स्तवन किया गया है। 'हमारे यज्ञमें अ[ग्नि] देवताओंकी स्तुतियोंका विस्तार करते हैं।' (१ । १४१ । ११) यह ठीक ही है। यज्ञाग्निके प्रज्वलित होनेके अनन्[तर] ही देवोंका आवाहन किया जाता और उनके विस्तृ[त] स्तोत्र किये जाते हैं। इसीलिये कई मन्त्रोंमें अग्नि[को] स्तोत्र-निर्माता भी कहा गया है। 'हम अत्रि ऋषिके वंश[ज] मेधावी, पवित्र, अभीष्टवर्षक और तरुण अग्निके लि[ये]

वन्दनासहित स्तोत्रका पाठ करते हैं। गविष्ठिर ऋषि आकाशमें प्रदीप्त और विस्तृत गतिवाले आदित्याग्निके लिये नमस्कारके साथ स्तोत्र पढ़ते हैं।' (५।१।१२) 'अग्निदेव! भरद्वाज-वंशजोंके निर्दोष स्तवनको ग्रहण करो। उनके प्रति कृपा करो।' (६।१०।६) 'स्तोताओ! तुम प्रत्येक यज्ञमें स्तोत्रके द्वारा शक्तिशाली अग्निकी बार-बार स्तुति करो।' (६।४८।१) इसी तरह अन्यान्य देवोंकी स्तुति-प्रचुरता है। एक स्थान (१०।१८।१४) पर कहा गया है—'प्रजापति! मेरी पूजनीय स्तुतिको उसी तरह रक्खो, जैसे वेगशाली अश्वको रस्सीसे बाँधकर रक्खा जाता है।' दूसरे स्थान (१०।२६।१) पर कथित है—'पूषा देवताके लिये अतीव उत्कृष्ट स्तोत्र प्रस्तुत किये गये हैं।' अन्यत्र (१०।६६।१४ और १५) उक्त है—'वशिष्ठके समान ही वशिष्ठके वंशजोंने स्तुति की। अपने मङ्गलके लिये वशिष्ठके समान ही देव-पूजा की।' 'इन्होंने अमर देवोंकी स्तुति की।' एक मन्त्र (१०।३२।४) में तो इतनी दूरतक कहा गया है कि 'स्तोत्रोंकी प्राचीन और पूजनीय माता गायत्री है जिसकी सात महाव्याहृतियाँ हैं।' कदाचित् इसीलिये आजतक हिंदूजातिपर गायत्रीका अखण्ड साम्राज्य है।

चेतनाशून्य पदार्थोंकी भी स्तुतियाँ की गयी हैं। कहा गया है—'ब्राह्मणलोग नदियोंकी सुन्दर स्तुति करते हैं।' (३।३३।१२) 'हे शोभन प्रादुर्भाववाली उषा! 'स्तोतालोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।' (५।७९।१) स्तोताओ! अन्तरिक्षके पुत्र और सेचनकर्ता पर्जन्य (मेघ-) के लिये स्तोत्र गाओ।' (७।१०२।१) जड-पदार्थोंकी ऐसी स्तुतियाँ प्रचुर मात्रामें हैं। भगवद्गीतामें जैसे भगवान् श्रीकृष्णने चेतन तत्त्वोंके साथ जड-वस्तुओंको भी अपनी विभूति या अंश बताया है, वैसे ही वैदिक आर्योंने चेतन देवोंके अतिरिक्त जिन जड-पदार्थोंमें भगवानकी विभूति देखी, उनकी भी स्तुति की है। जैसा कि पहले कहा गया है, विभूतिमान् वस्तुओंके अतिरिक्त भी आर्य-लोग प्रत्येक जड-पदार्थका एक चेतन अधिष्ठाता भी मानते थे; इसलिये जिन प्राकृतिक वस्तुओंकी स्तुति की है, उनके स्थूल रूपकी नहीं की है, प्रत्युत उनकी शासिका वा अधिष्ठात्री चेतनशक्तिकी की है।

वस्तुतः देवता वा दिव्यशक्तियाँ चारों तरफ हैं—बाहर, भीतर, नीचे, ऊपर—सर्वत्र। इसलिये ऋषिलोग सबमें—वृक्ष, शाखा, पर्ण आदितकमें देव-ही-देव देखते थे। अनुमिति की जा सकती है कि ऋषिलोग जब अपनेको चारों ओरसे देवोंसे ही घिरा हुआ अनुभव करते होंगे, तब उनका समाज कितना सुखद, सरस और कितना आनन्दमय और कितना सौरभमय रहा होगा। यदि आप अपनेको क्षणभरके लिये भी देवोंसे घिरा हुआ अनुभव करें तो आपके सारे दुःख-दारिद्र्य भाग जायँ और आप चिदानन्दलहरीमें निमग्न हो जायँ। यदि आप देवोंमें ही विचरें, सोएँ, जागें तो आपका जीवन दिव्य और भव्य बन जाय। जो लोग इस रहस्यको नहीं समझते, वे कहा करते हैं कि 'वेदोंमें ओषधियाँ वैद्योंसे बातें करती हैं, द्यावा-पृथिवी बोलती हैं, जल और वायु, चमस और स्रुवा—सब-के-सब चलते, वर देते और धन देते हैं। जड पदार्थ ये सब कैसे कर सकते हैं?'

बात यह है कि वेद प्रधानतः आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं। उनमें चेतनवादकी प्रधानता है। वैदिक मन्त्रोंके साथ विहार करनेवाले ऋषि चेतनमें रमण करते थे। उनके प्राण, मन और मस्तिष्क चेतनानुस्यूत थे। ऐसे पुरुष सभी पदार्थोंको चेतनमय देखते थे। वे चेतनके साथ ही खाते-पीते, सोते-जागते और बोलते-बतराते थे। वे कुछ बनावट नहीं करते थे; वस्तुतः ऐसा ही अनुभव करते थे। जो महात्मा चेतन-गत-प्राण हैं वे अभी भी ऐसा ही अनुभव करते और जड पदार्थोंसे बातें करते हैं। जो 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' मन्त्रको अपने जीवनमें घोल लेते हैं, वे पशु, पक्षी, कंकड़ और ठीकरोंसे भी बातें करते हैं। भला जो वैद्य अपनी ओषधियोंसे बातें नहीं करेगा, वह भेषजका क्या मर्म समझेगा? जो वीर अपनी तलवारसे बातें नहीं करता, उससे यश और वर नहीं पाता, वह भी कोई वीर है? सचाई तो यह है कि अपनेमें चेतनाका, आह्लाद और आनन्दका जितना ही विकास होगा, मनुष्य उतना ही जड वस्तुओंसे चेतनवत् व्यवहार करेगा। इसके विपरीत जिसमें प्रचण्ड चेतनाका अभाव है, जिसके मन, मस्तिष्क और प्राण जडानुगत हैं, वह तो मानवको भी जड समझेगा और उसपर जघन्य अत्याचार करेगा। यह प्रतिदिन प्रत्यक्ष देखा जाता है।

वैदिक प्रार्थनाएँ और उनका महत्त्व

(लेखक—मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी वेदान्तभूषण, साहित्यरत्न)

पादौ यावकरञ्जितौ सुरुचिरौ शोणौ लसन्नूपुरा-
वंसे शार्ङ्गधनुर्वरं कटितटे पीताम्बरं सुन्दरम्।
कण्ठे मौक्तिकरत्नहारममलं दिव्यं करे कङ्कणं
बिभ्रन्मूर्ध्नि किरीटकं परिणये सीतापतिः पातु नः ॥

वैसे तो प्रार्थना एवं स्तुति प्रायः पर्यायवाची ही मानी जाती हैं और पृथक्-पृथक् होनेपर भी एक ही अर्थमें व्यवहृत होती हैं; परंतु दोनों शब्द दो अर्थोंके द्योतक हैं। किसीके पूर्ण यशोगान एवं प्रशंसाका नाम स्तुति है, किंतु 'अर्थ उपयाञ्चायाम् (चु० आ० से,) धातुमें 'प्र' उपसर्ग एवं 'क्त' प्रत्यय लगाकर 'प्रार्थना' शब्दकी रचना शब्दशास्त्रियोंने की है। अपनेसे विशिष्ट व्यक्तिसे दीनतापूर्वक कुछ माँगनेका नाम 'प्रार्थना' है। वेदोंमें कहा गया है—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।
(ऋग्वेद १०।९०।३; शु० यजु० ३१।३; अथर्व० १९।६।३)

त्रिपाद एवं एकपाद नामसे ब्रह्मके ऐश्वर्यका संकेत है। इसीको साम्प्रदायिकोंकी भाषामें 'उभय विभूति' कहा जाता है। इस उभय मायापाद एवं सच्चिदानन्दादि ब्रह्मपाद विभूतियोंमें ब्रह्मसे विशिष्ट कोई नहीं है। इसीसे पुरुषसूक्तीय तृतीय मन्त्रके पूर्वार्द्धमें—'अतो ज्यायांश्च पूरुषः।' से व्यक्त किया गया है। अतः जीवके लिये जितने भी आवश्यक पदार्थ हैं, सबकी याचना परमात्मासे ही करनी चाहिये, अन्यसे नहीं। इसे वेदोंने बार-बार वर्णन किया है। तन्त्रागमोंमें प्रार्थना करनेकी विधि बतलाते हुए कहा गया है—

अञ्जली परमा मुद्रा सद्यो देवप्रसादिनी ।

'दोनों कर-पल्लवोंके सम्पुटीकरणका नाम 'अञ्जली-मुद्रा' है।' इस परम श्रेष्ठ अञ्जली-मुद्रापूर्वक याचना करनेसे परमेश्वर शीघ्र ही प्रसन्न होकर प्रार्थीकी मनोकामना पूर्ण करते हैं। एक बात सदैव स्मरण रखने योग्य है कि महाभारतमें, जो पंचम वेद माना जाता है, भीष्मपर्वान्तर्गत 'गीतापर्व'में भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः ।' (गीता १५।१५)

'सम्पूर्ण वेदोंसे मैं ही वेद्य (जाननेयोग्य) हूँ।' विष्णु-सहस्रनाममें परमात्माके जितने नाम आये हैं, उनमें नब्बे प्रतिशतसे भी अधिक नाम वैदिक देवताओंके हैं। अतः वेदोंमें जहाँ राम, कृष्ण, विष्णु, शिव आदिके नाम अनेक बार आये हैं, वहीं अग्नि, इन्द्र, वायु, वरुण आदि नामोंसे भी उन्हें स्मरण किया गया है। अतएव उन सब नामोंसे एकमात्र परमात्मा ही अभिहित हैं। अतः इन्द्र, अग्नि, वरुण, वायु आदि नामोंकी प्रार्थनाओंको ब्रह्मकी ही प्रार्थना समझना चाहिये, लोकमें एवं पुराणोंमें तत्तद्वाच्य अन्य देवोंकी नहीं।

प्रार्थना व्यक्तिगत भी होती है और सामूहिक भी। दोनों प्रकारकी प्रार्थनाएँ वेदोंमें प्रचुर रूपसे हैं। यहाँतक कि वेदों (मन्त्रसंहिताओं मात्र) का लगभग तृतीयांश भाग केवल प्रार्थनाओंसे ही ओतप्रोत है। यदि सभी मन्त्रोंको एकत्र संकलन कर दिया जाय तो एक बड़ा मोटा ग्रन्थ तैयार हो जाय। अतः यहाँ केवल स्थाली-पुलाकन्यायका ही अनुसरण किया जाता है। परंतु यह स्मरण रखना चाहिये कि वेद भगवान्ने ईश्वरकृत जो सात मर्यादाएँ प्रसारित की हैं, उनका पालन करनेवाला ही विशेषरूपसे प्रार्थनाका यथार्थ फल प्राप्त करता है अर्थात् प्रार्थीमें श्रुतिकथित सप्तमर्यादाएँ सुरक्षित होनी चाहिये। जो व्यक्ति सप्तमर्यादाओंमें किसी एक मर्यादाका अथवा सबका उल्लङ्घन कर चुका हो परंतु जिसने पुनः अपना सुधार कर लिया हो और आगे भी उन मर्यादाओंका अतिक्रमण न करनेपर दृढ़प्रतिज्ञ हो, वही पुरुष वैदिक-प्रार्थनाओंका यथार्थ फल प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकता है। जिज्ञासुओंके अवलोकनार्थ उपर्युक्त सप्तमर्यादाओंका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

ऋग्वेदका निम्नलिखित मन्त्र है—

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः
तासामेकामिदभ्यंहुरो गात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥
(ऋग्वेद १०।५।६)

महर्षि श्रीयास्काचार्यने अपने निरुक्ति-शास्त्रमें इस मन्त्रकी व्याख्या इस प्रकार लिखी है—

प्राणस्वरूप प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं, अतः मैं आपको ही प्रत्यक्ष ब्रह्मके नामसे पुकारूँगा। मैं ऋत नामसे भी आपको पुकारूँगा; क्योंकि सारे प्राणियोंके लिये जो कल्याणकारी नियम है, उस नियमरूप ऋतके आप ही अधिष्ठाता हैं। तथा मैं आपको 'सत्य'के नामसे पुकारा करूँगा; क्योंकि सत्यके अधिष्ठातृ देवता आप ही हैं। वे सर्वव्यापी अन्तर्यामी परमेश्वर मुझे सत्-आचरण एवं सत्-भाषण करनेकी और सत्-विद्याको ग्रहण करनेकी शक्ति प्रदान करके इस जन्म-मरणरूप संसार-चक्रसे मेरी रक्षा करें। तथा वे ब्रह्मवक्ताकी अर्थात् आचार्यकी रक्षा करें। रक्षा करें मेरी और रक्षा करें मेरे आचार्यकी।'

सामूहिक-प्रार्थनाके सहस्रों मन्त्रोंमेंसे ये उपर्युक्त मन्त्र उदाहरणस्वरूप हैं। इसी प्रकार वैयक्तिक प्रार्थनाएँ भी हैं। वैसे तो व्यक्तिकी विभिन्न कामनाओंका अन्त नहीं होता, नित्य-नित्य प्रतिपल नयी-नयी कामनाएँ हृदयान्तरमें उद्भूत हुआ ही करती हैं और उन कामनाओंकी पूर्त्तिके लिये ईश्वर-प्रार्थनाके सहस्रों मन्त्र वेदोंमें हैं, उनमेंसे कुछ यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

ॐ पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम्। अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान् वरुण तासु शाधि॥

(ऋग्वेद २। २८। ९)

'हे प्रभो! मेरे द्वारा किये हुए समस्त ऋणोंको दूर कीजिये। ऐसा कीजिये कि मैं दूसरोंकी कमाई न खाऊँ। अपने परिश्रमसे कमाकर खाऊँ। मेरे जीवनमें अभी बहुत-से उषाकाल आनेवाले हैं। अतः मुझे ऐसा बनाइये कि मैं अपने पुरुषार्थसे जीवन-यापन करूँ।'

ॐ नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम्॥ १॥ स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा॥ २॥ मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात्॥ ३॥

(अथर्व० १६। ४। १, २, ३)

'हे भगवन्! ऐसी कृपा कीजिये—मुझे ऐसा पुरुषार्थ दीजिये कि मैं अपने पुरुषार्थसे सम्पत्तिका केन्द्र बनूँ। मैं समान उन्नतिवाले जनोंके बीचमें आदरपूर्वक रहूँ। मैं मनुष्योंमें विस्तृत एवं अखण्ड कीर्त्तिवाला बनूँ। अपने गृ कुटुम्बमें सुखसे रहते हुए मेरा उषाकाल, मध्याह्नकाल : सायंकाल सुखदायी एवं स्फूर्तिदायक हो। मैं उत्तम स आत्मसम्मानकी वृद्धि पाऊँ। मेरे समीप बैठनेवाले स हों। मैं दीर्घजीवी होकर सत्कर्म करनेवाला बनूँ।'

ॐ अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतः सर्वः॥

(अथर्व० १९। ५१। १

'हे प्रभो! आप मुझे ऐसा बनाइये कि मैं दस सहस्र गुना शारीरिक शक्तिसे सम्पन्न होऊँ। मेरा आत्मबल द सहस्रगुना बढ़ जाय। मेरे नेत्र, श्रोत्र, प्राण, अपान, व्यान सब पूर्ण स्वस्थ रहकर दस सहस्रगुनी शक्ति प्राप्त करें।

इस प्रकार वेदोंमें प्रार्थनाओंका उल्लेख है, जिनका यह किंचिन्मात्र दिग्दर्शन कराया गया है। अर्थानुसंधानपूर्वक प्रार्थना करनेके सम्बन्धमें श्रीयास्काचार्यजीकी निरुक्तिमें स्पष्ट लिखा गया है कि बिना अर्थ जाने हुए जो व्यक्ति वेदमन्त्रोंका पाठ करता है, वह यथार्थ फल नहीं प्राप्त करता। वह मनुष्य ठूँठे पेड़के सदृश एवं मिट्टीके खंभोंके समान है। यथा—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभू-
दधीत्यवेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते
नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥

(निरुक्त नैघण्टुक० १। ६। १८)

अतः अर्थ समझते हुए ही वेदमन्त्रोंका प्रयोग करना चाहिये। वेदमन्त्र ही नहीं, कोई भी मन्त्र, पद्य-प्रार्थना प्रभृति बिना अर्थ समझे हुए यथार्थ फलदायी नहीं होते। वैदिक प्रार्थनाओंकी तो महत्ता ही विशेष है। वेदोंमें वर्णित प्रार्थनाएँ अपना विशेष स्थान रखती हैं। कार्योंकी सिद्धिके लिये उनका मन्त्रवत् प्रयोग होता है। प्राचीनकालमें वेदोंके ज्ञाता ऋषि-महर्षि इन्हीं वेदवर्णित प्रार्थनाओंके द्वारा आध्यात्मिक उत्थान किया करते थे और विश्वकल्याणके निमित्त भी इनको प्रयोगमें लाते थे। आज भी वैदिक प्रार्थनाओंके महत्त्वको समझकर उनसे लाभ उठाया जा सकता है।
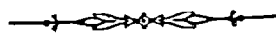
यो देवानां नामधा एक एव

(लेखक—डा० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल एम्० ए०, डी० लिट्०)

वेदोंमें 'एको देवः' यह एक ब्रह्म-विषयक सिद्धान्त है। किंतु अनेक देवोंके रूपमें उस ब्रह्मकी नाना दिव्य-शक्तियोंका वर्णन किया गया है। अनेक देवोंके नाम उस एक ब्रह्मकी ही संज्ञाएँ हैं। ऋषियोंने आरम्भमें ही इस तत्त्वको सम्यक् रूपसे जान लिया था और निश्चित शब्दोंमें इसका उल्लेख किया है—

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥
(ऋ० १०। ८२। ३)

अर्थात् वह ईश्वर सबका पिता या पालन करनेवाला जनक है। वही इस विश्वके सब धर्मोंका विधान करनेवाला है। वह समस्त भुवनोंके विज्ञानका अधिपति है। देवोंके जितने नाम हैं वे सब उसी एक ईश्वरमें घटित होते हैं। फिर भी उसका रहस्य ज्ञात नहीं होता। अतएव उसका सबसे महान् संकेत 'संप्रश्न' है, अर्थात् वह एक अज्ञेय तत्त्व है, जिसे सदा एक प्रश्नके रूपमें ही मानना होगा। वह बुद्धिके लिये अप्रतर्क्य है। वह एक गूढ़ पहेली है। जिसे 'शीर्ष-प्रहेलिका' भी कहा गया है। उसकी मीमांसा बहुधा रूपोंमें की जाती है, फिर भी उस प्रश्नका कोई समाधान या उत्तर प्राप्त नहीं होता। वह ब्रह्म या ईश्वर-तत्त्व 'प्राणमय सुपर्ण' भी कहा गया है। अनेक कवि उस एक सुपर्णका अपनी वाक्-शक्तिसे नाना रूपोंमें वर्णन करते हैं—

सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।
(ऋ० १०। ११४। ५)

एक ब्रह्मके बहुधा भावकी कल्पना ऋग्वेदका मुख्य दार्शनिक सिद्धान्त है। उस विलक्षण ब्रह्मतत्त्वके लिये 'एक' और 'बहुधा' इन दोनों पक्षोंका प्रतिपादन वेदोंमें पाया जाता है। ऋषियोंने अपने मानसिक आनन्दकी अनुभूतिसे गद्गद होकर एक ओर उस अखण्ड चैतन्यके लिये **'एकमेवाद्वितीयम्'** कहा है और दूसरी ओर उसकी नाना-देवात्मक शक्तियोंसे मुग्ध होकर उसीके सम्बन्धमें **'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'** यह मत प्रकट किया है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
(ऋ० १। १६४। ४६)

अर्थात् इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, गरुत्मान्, सुपर्ण, यम, मातरिश्वा—ये सब एक ही ईश्वरके अनेक नाम हैं। ज्ञानी लोग जिस दृष्टिकोणसे ईश्वरकी शक्तिका विचार करते हैं, वैसी ही संज्ञा या नामके द्वारा उसका वर्णन करते हैं। वस्तुतः उस ईश्वरकी सहस्रों महिमाएँ हैं। उस अनन्त महिमाशाली ब्रह्मके उतने ही नाम हैं जितनी वाक्की शक्तियाँ हैं—

सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद्ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्।
(ऋ० १०। ११४। ८)

जितने छन्द हैं, सब उसी ईश्वरकी महिमाका वर्णन करते हैं। वह सब छन्दों या वेद-वाणियोंमें व्याप्त विश्वरूप सुपर्ण है, या वर्णरूप प्राण है। उसीकी महती सर्जन-शक्तिमें विश्व जन्म ले रहा है। उन सब छन्दोंको जिनका पर्यवसान ब्रह्ममें है, कौन पूरी तरह जानता है? किसीकी बुद्धिमें छन्दोंके सब अर्थ प्रतिभासित हो सके हैं?

कश्छन्दसां योगमा वेद धीरः। (ऋ० १०। ११४। ९)

कवियोंने अपनी बुद्धिके बलसे इस विश्वका यज्ञके रूपमें वर्णन किया है—

यज्ञं विमाय कवयो मनीषः। (ऋ० १०। ११४। ६)

और इस विराट् यज्ञका यज्ञपति देव वही एक ब्रह्म है। उस यज्ञके देवको ही अग्नि भी कहा है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।
(ऋ० १। १। १)

वही यज्ञका देवता है, वही पुरोहित, ऋत्विज और होता है और वही प्रत्येक अध्यात्मकेन्द्रमें मन, प्राण और पञ्चभूत—इन सात रत्नोंका आधान करनेवाला है। इन्हीं सात रत्नोंको पुराणोंकी परिभाषामें **'महदादिविशेषान्ताः'** कहा गया है।

ऋग्वेदमें जब ईश्वरको 'अग्नि' शब्दसे कहा जाता है तो सब देवोंका उसमें अन्तर्भाव समझ लिया जाता है। ब्राह्मण-ग्रन्थोंकी स्पष्ट परिभाषा है—

अग्निः सर्वा देवताः। (श० १। ६। ३। २०)

जहाँ अग्निकी सत्ता होती है, वहीं सब देवता निवास करते हैं। अग्निके रूपमें विश्वकी सब दिव्य शक्तियाँ या

देवगण मानवके अध्यात्म-केन्द्रमें निवास करते हैं। मूलतः ऋग्वेदमें ही अग्निके सर्वदेवमय होनेका विस्तारसे उल्लेख किया गया है—

'हे अग्नि, तुम! प्रतिदिन अपने तेजसे प्रकाशित होते हो। तुम जलोंके भीतरसे और पाषाणके भीतरसे एवं वन-वृक्षों और ओषधियोंके भीतरसे प्रकट होते हो। हे मनुष्योंके सम्राट्! तुम्हारा शुद्ध रूप सब ओरसे प्रकट हो रहा है।

'हे अग्नि! यज्ञके साथ प्रधान ऋत्विज तुम ही हो, तुम ही हमारे गृहपति यजमान हो।

'हे अग्नि! तुम वृषभ इन्द्र हो। तुम ही त्रिलोकीको अपने तीन विराट् चरणोंमें नापनेवाले विष्णु हो। तुम ब्रह्मा और ब्रह्मणस्पति हो। तुम अपनी शक्तिसे सबको धारण करते हो।

'हे अग्नि! तुम व्रतधारी राजा वरुण हो। तुम ही सब चमत्कारोंका विधान करनेवाले मित्र हो। तुम सत्पति अर्यमा हो। तुम ही अंशु सोम हो।

'हे अग्नि! तुम ही त्वष्टा हो।

'हे अग्नि! तुम द्युलोकके महान् शक्तिशाली असुर रुद्र हो। तुम ही मरुद्गण हो और तुम ही अन्नपति हो। तुम ही वेगवान् वातके रूपमें गमन करते हो। तुम ही रक्षक पूषा हो।

'तुम ही द्रविणोदा अर्थात् द्रविणरूप रत्नोंके देनेवाले हो। तुम ही सविता देव हो। तुम ही भग हो। तुम ही वसुओंके स्वामी हो।

'हे अग्नि! तुम्हें ही लोग पिता, भ्राता, पुत्र और सखाके रूपमें मानते हैं।

'हे अग्नि! तुम ही ऋभु हो और निकट होनेसे सदा पूजनीय हो।

'हे अग्नि! तुम ही इडा, भारती, सरस्वती—इन तीन देवियोंके रूप हो।

'हे अग्नि! तुम ही श्रेष्ठतम प्राणशक्ति हो (उत्तमं वयः)। तुम ही श्री और तुम ही रयि हो।

'हे अग्नि! तुम ही आदित्योंके मुख और देवोंकी जिह्वा हो। तुम्हारे द्वारा ही देव आहुतियोंका भक्षण करते हैं।

'तुम्हारे द्वारा ही विश्वेदेव और मर्त्य-मनुष्य अन्न लेते हैं। तुम ओषधियोंके पवित्र शिशु हो।

'तुम्हारी महिमा द्युलोक और पृथिवीमें व्याप्त है।'

(ऋ० २। १। १–१५)

इस प्रकार इस सूक्तमें सर्वदेवत्व या सर्वदेवमय अग्निके स्वरूपका उपबृंहण पाया जाता है, जो ऋग्वेदका मौलिक दृष्टिकोण है। जहाँ अग्नि रहता है, वहीं वह अपने साथ सब देवोंको ले आता है (स देवा एह वक्षति)। अथवा इसीको दूसरे प्रकारसे कहें तो जो अग्निको समर्पित किया जाता है वह उसे सब देवोंके पास ले जाता है अर्थात् अग्नि ही देवोंतक पहुँचनेका साधन है (स इद्देवेषु गच्छति)।

प्रश्न होता है कि यह अग्नि क्या है? एक ओर विराट्-रूपमें अग्नि ब्रह्मकी भी संज्ञा है, जो ब्रह्म सब देवोंका अधिष्ठान और आरम्भण है और दूसरी ओर अग्निका स्वरूप प्राण है। इसे ही ऋग्वेदमें और भगवद्गीतामें वैश्वानर कहा गया है—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

(भगवद्गीता १५। १४)

अर्थात् प्रत्येक अध्यात्मकेन्द्र या शरीरमें प्राण और अपानके संघर्षसे युक्त जो वायुमें अन्नको पचानेवाली शक्ति है, वही वैश्वानर अग्नि है और वही ईश्वरका रूप है। वह वैश्वानर एक ओर सब प्राणधारियोंके भीतर है और दूसरी ओर समस्त विश्वके लिये वही सूर्यरूपमें विद्यमान है। इसे ही अध्यात्म और अधिदैवतका नित्य सम्बन्ध कहते हैं। इसीके लिये ऋग्वेदमें कहा है—

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा
हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे
वैश्वानरो यतते सूर्येण॥

(ऋ० १। ९८। १)

'वैश्वानर अग्नि इसी पाञ्चभौतिक देहमें अभिव्यक्त होता है और यहीं उसकी समस्त चेष्टाएँ होती हैं। प्राणापानके रूपमें इस शरीरमें विद्यमान रहते हुए वैश्वानर अग्नि सूर्यके साथ स्पर्धा करता है, अर्थात् विराट् सूर्य और आध्यात्मिक वैश्वानर इन दोनोंका छन्द या स्पन्दन समान है।' जैसा कहा है—

प्राणो वै समञ्चनप्रसारणम्।

(श० ब्रा० ८। १। ४। १०)

अर्थात् समस्त विश्वका संकोच-विकास अग्नि, प्राण या ब्रह्मके नियमित स्पन्दनका ही रूप है । यह ऋषियोंका अनुभव था कि उसे ही अग्नि, हिरण्यगर्भ, प्रजापति, नारायण, प्राण—इन अनेक नामोंसे कहा गया है—

ब्रह्मयज्ञो वा एष यत् पूर्वेषां चयनम् ।
(मैत्रा० उप० १ । १)

× × ×

अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तःपुरुषे ।
(बृह० ५ । ९ । ११ तथा मैत्रा० २ । ६)

× × ×

अग्निर्वायुरादित्यः कालो यमः प्राणोऽन्नम् ।
ब्रह्मा रुद्रो विष्णुरित्येकेऽन्यमभिध्यायन्ति ॥
(मैत्रा० ४ । ५)

× × ×

ब्रह्मणो वावैता अग्रयास्तनवः परस्यामृतस्याशरीरस्य ।
(मैत्रा० ४ । ६)

× × ×

ब्रह्म खल्विदं वाव सर्वम् ।
(मैत्रा० ४ । ६)

× × ×

हिरण्यवर्णः शकुनो हृद्यादित्ये प्रतिष्ठितः ।
मद्गुर्हंसस्तेजोवृषः सोऽस्मिन्नग्नौ यजामहे ॥
(मैत्रा० उप० ६ । ३४)

इस प्रकार सृष्टिका जो मूल-तत्त्व है, उसके ही अनेक नाम वेदोंमें आते हैं । वह प्राण या चेतनारूप है । जैसा कहा है—

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥
प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥
प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
(अथर्व० ११ । ४ । १, २, १२, १५)

इस प्रकार प्राण ही प्रजापति और प्राण ही ईश्वर एवं प्राण ही ब्रह्म है । यह भारतीय अध्यात्म-विद्याकी आधार-शिला है । जो विराट् जगत्में ब्रह्म है, वही अध्यात्ममें प्राण, प्राणचेतना, संवित् या आत्मा है । किंतु यह उल्लेखनीय है कि जो विराट्रूपमें ब्रह्म है उसकी शक्ति अनादि, अनन्त है । अनेक नामों और रूपोंसे उसीकी अभिव्यक्ति हो रही है । इस विश्वको एक वृक्ष या अश्वत्थ कहा गया है । इस प्रकार-के अनन्त वृक्षोंकी समष्टि परात्पर ब्रह्मरूपी वन है । उस परात्पर ब्रह्मसे परे और कुछ नहीं है—

तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ।
(ऋ० १० । १२९ । २)

ऋग्वेदमें प्रश्न किया है—

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस
यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु
तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥
(ऋ० १० । ८१ । ४)

'वह कौन-सा वन था और कौन-सा वह वृक्ष था, जिससे गढ़-छीलकर द्युलोक और पृथ्वीको बनाया गया है ? हे मनीषियो ! अपने मनसे उसका विचार करो जिसने भुवनोंको धारण कर रक्खा है और जो इन सबका अधिष्ठाता है ।'

इन प्रश्नोंका उत्तर तैत्तिरीय ब्राह्मणमें इस प्रकार पाया जाता है—

ब्रह्म तद्वनं ब्रह्म स वृक्ष आस
यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा प्रब्रवीमि वो
ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥
(तै० ब्रा० २ । ८ । ९ । ६)

अर्थात् ब्रह्म ही वह वन है और ब्रह्म ही वह वृक्ष है जिससे गढ़-छीलकर द्युलोक और पृथ्वीको बनाया गया है । हे मनीषियो ! मैं अपने मनके विचारसे कहता हूँ कि ब्रह्म ही लोकोंको धारण करते हुए इनका अधिष्ठाता है ।

इस प्रकार वैदिक मान्यताके अनुसार ब्रह्म ही परमतत्त्व है । उसीमें सब देवों, सब लोकों और सब यज्ञोंका पर्यवसान है । वही महान् शक्तिसम्पन्न इन्द्र है । उसके समान और कोई नहीं है और न उससे बढ़कर कोई है । यदि यह आकाश और यह पृथ्वी अनन्तगुना बड़ी हो जायँ तो भी उस ईश्वरकी महिमाको पूरी तरह प्रकट नहीं कर सकतीं । यह ऋषियोंकी युक्ति थी कि उस महान् ब्रह्मको कभी 'सहस्रशीर्षः पुरुषः'के रूपमें कहा है, कभी दशाङ्गुल पुरुषके रूपमें, कभी महिमा-देवोंके रूपमें, कभी विराट्रूपमें, कभी नारायण-पुरुषरूपमें, कभी प्रजापतिरूपमें, कभी विश्वकर्मारूपमें, तो कभी धाता-विधातारूपमें । इस प्रकार उसके नाम और

रूपोंका अन्त नहीं है। वही सूर्यके रूपमें सदा प्रत्यक्ष दर्शन दे रहा है। जैसा यजुर्वेदके ब्रह्मोद्य प्रकरणमें स्पष्ट कहा है—

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः।

(यजु० २३। ४८)

अर्थात् जो सूर्यकी ज्योति है, उससे ब्रह्मकी ज्योतिका कुछ आभास प्राप्त हो रहा है। यह सूर्य भी एक नहीं है—किंतु इसीकी सूत्ररेखामें पिरोये हुए कोटि-कोटि सूर्य इस अनन्त ब्रह्माण्डमें हैं और ब्रह्मकी ज्योति उन सबसे महान् है। इस प्रकार ऋषियोंने देखा कि ब्रह्म या देव-तत्त्वके नाम-रूपोंका अन्त नहीं है। जहाँतक सहस्राक्षरा वाणीका विस्तार है, सभी ब्रह्मके नाम हैं और जहाँतक विश्वमें रूपोंका विस्तार है, सभी ब्रह्मतत्त्वकी अभिव्यक्ति है।

इस पद्धतिपर सोचते हुए वेदोंमें ऋषियोंने भगवान्का रुद्ररूपमें वर्णन किया। उसकी भी दो कोटियाँ हैं। एक ओर कहा गया है—

एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे।

अर्थात् रुद्र एक है दो नहीं। दूसरी ओर कहा है—

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्।
तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥

(यजु० १६। ५४)

अर्थात् रुद्रोंकी संख्या नहीं है। वे अनन्त हैं। वस्तुतः जितने देव हैं, वे सब भगवान् रुद्रके ही रूप हैं। विश्वमें जितने नर-नारी, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वन-वनस्पति अथवा जितने भी प्राणधारी चेतन पदार्थ हैं, वे सब रुद्रकी शक्तिसे ही जीवित हैं। इनमेंसे लगभग शताधिक रुद्रोंका परिगणन यजुर्वेदके शतरुद्री अध्यायमें किया गया है। वह बहुत ही उदात्त वर्णन है, जिसमें व्यापक दृष्टिसे विश्व और समाजके व्यष्टि और समष्टि जीवनपर दृष्टि डालते हुए अनेक प्राणियों-का परिगणन पाया जाता है। उन नामोंमें साधु और असाधु, सत् और असत्, व्यक्ति और विराट्, अध्यात्म और अधिदैवत जगत्को रुद्रका रूप मानकर प्रणामभाव अर्पित किया गया है। 'नमस्ते रुद्र मन्यवे' यही सबकी टेक है। रुद्रके दो रूप हैं। एक घोर, दूसरा अघोर या शान्त। तस्कर, स्तेन, व्रात आदि घोर रूप हैं। नाना व्याधियाँ और रोगादि भी रुद्रके घोर रूप हैं। जो अशिव और पापिष्ठ हैं, उन्हें शान्त और शिव बनाना यही रुद्रोंके नमस्कारका फल है। आज संसारमें हम देख रहे हैं कि शस्त्रास्त्रधारी, निषंगी, कवची, उग्र, भीम, अग्रेवध, दूरेवध (दूरसे मारने[illegible]) हन्त्र और हनीयस्, इषुकृत्, धनुष्कृत्—इन प्राचीन अनेक नये-नये रूप दुर्मति एवं अघपूर्ण भावोंसे जातिको आतङ्कित कर रहे हैं। इनसे त्राणका [illegible] उपाय भगवान् रुद्रकी शिवरूपमें आराधना है—

यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे
विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्।
या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे॥
मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव।

(यजु० १६। ४८, ४९, [illegible])

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधी-
र्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे॥

(यजु० १६। १[illegible])

इन वाक्योंमें आर्त मानवका भगवान्के समक्ष चीत्[illegible] पाया जाता है कि उनकी करुणाका अवतार हमारे पुत्र-पौत्रों गोष्ठ और गौओंपर, ग्राम और बस्तियोंपर बना रहे [illegible] विध्वंसकी ज्वालाओंसे हमारी रक्षा हो।

रुद्रका घोररूप मृत्यु या काल है, जो लोकोंका क्ष[illegible] और संहार करनेके लिये सदा प्रवृत्त है। अणु-अस्त्र औ[illegible] अन्नका अभाव दोनों महाकालके ही रूप हैं। इनसे रक्षा[illegible] उपाय भगवान्के प्रति शुद्ध हृदयसे किया हुआ नमस्कार य[illegible] प्रणामभाव है। उसीके साथ भगवान्के अनन्त नामोंक[illegible] स्मरण है। नामोंके अपरिमित और असंख्यात शब्दों[illegible] ऋषियोंने संग्रह या संक्षेपकी रीतिसे ओंकार या प्रणवको ईश्वरका वाचक कहा है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

(कठोप० १। २। १५)

ओंकार बीजगणितके संकेतकी भाँति [illegible] कहा गया है। वेदोंमें चतुष्पाद [illegible] एक पादमें निर्गुण [illegible] विश्व है। इसीको ओंकारकी [illegible]

व्यक्त किया जाता है । ईश्वरके नामोंका जो शब्दात्मक विस्तार है, उसे ही प्रणवके संक्षिप्त प्रतीकद्वारा व्यक्त किया जाता है । **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** का फल यही है कि चतुष्पाद ब्रह्मके स्वरूपका स्थूल और सूक्ष्म अनुभव किया जाय; विश्वके जन्म, स्थिति और संहारके जो दुर्धर्ष नियम हैं, उनका परिज्ञान किया जाय और भगवान्‌की अनन्त करुणाका आवाहन करते हुए आत्मसमर्पण किया जाय ।

भगवान्‌की महाकरुणाके आवाहनका एक उत्तम उदाहरण शुनःशेपकी करुण प्रार्थना है । शुनःशेपके पिता अजीगर्तने उसे वरुणको बलि देनेके लिये यूपसे बाँध दिया । राजा हरिश्चन्द्रने अपने पुत्र रोहिताश्वकी रक्षाके लिये उसके स्थानमें शुनःशेपकी बलि देनी चाही । इस प्रकार शुनःशेपके चारों ओर निष्ठुर मृत्युका ताना-बाना बुन गया । उसने रक्षाका कोई उपाय न देखकर भगवान् वरुणसे ही प्रार्थना की ।

'हे देव वरुण ! हम मनुष्य होनेके नाते आपके व्रतका दिन-प्रति-दिन उल्लङ्घन करते हैं ।

'हमें मृत्युके अर्पण मत करो और अपने क्रोधका भागी मत बनाओ ।

'हे वरुण ! अपनी वाणियोंसे हम तुम्हारे हृदयको अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं, जैसे कोई सारथि रश्मियोंसे अश्वोंको वशमें करता है ।

'मेरे मनोभाव मुझसे दूर-दूर भागते हैं । केवल धन-प्राप्ति ही उनकी इच्छा है, जैसे पक्षी अपने घोंसलोंमें जाते हैं ।

'कब हम दूर-द्रष्टा, शक्तिशाली, वरुणको प्रसन्न कर सकेंगे ।

'मित्र और वरुण दोनों एक साथ विचरते हैं, व्रती उपासकको कभी नहीं छोड़ते ।

'हे वरुण ! तुम आकाशमें उड़नेवाले पक्षियोंके और समुद्रमें चलती हुई नावोंके मार्गको जानते हो ।

'तुम घूमते हुए कालचक्रके बारह महीनोंको और तेरहवें मलमासको भी जानते हो ।

'तुम वायुके बृहत् मार्गको और देवोंके स्थानोंको भी जानते हो ।

'तुम व्रतको धारण करके मनुष्योंके बीचमें निवास करते हुए संकल्पपूर्वक अपने साम्राज्यका संचालन करते हो ।

'वहींसे तुम विश्वके भूत-भविष्यका अवलोकन करते हो ।

'हे मेधावी देव ! तुम समस्त पृथ्वी और द्युलोकके स्वामी हो । अपने मार्गपर चलते हुए तुम मेरा आवाहन सुनो ।

'हे देव ! हमारे जीवनकी रक्षाके लिये तुम हमारे उत्तम, मध्यम और अधम बन्धनोंसे मुक्त करो ।'

(ऋ० १ । २५ । १—२१)

शुनःशेपकी इस तरह करुण प्रार्थनासे भगवान् वरुण प्रसन्न हुए और उसे उसके जीवनका वरदान दिया । हरिश्चन्द्रका यूप और अजीगर्तका परशु वरुण देवकी कृपासे शुनःशेपका कुछ नहीं बिगाड़ सके ।

इसी प्रकारकी एक सच्ची प्रार्थना वरुणके लिये भक्त वशिष्ठने की थीः—

'हे राजा वरुण ! मैं मृत्युके कारण इस पृथ्वीकी मिट्टी-के घरमें प्रवेश न करूँ । हे बलधारी देव ! प्रसन्न होओ । रक्षा करो ।

'मैं मशककी तरह फूला हुआ अहंकारसे फुरफुराता घूमता हूँ । हे बलधारी देव ! प्रसन्न होओ, रक्षा करो ।

'हे पवित्र और शक्तिशाली देव! अपने संकल्पकी दीनताके कारण मैं तुमसे विपरीत रहा हूँ। हे बलधारी देव! प्रसन्न होओ, रक्षा करो।

हे देव! जलके बीचमें खड़ा हुआ भी मैं प्यासा हूँ। हे बलधारी देव! प्रसन्न होओ, रक्षा करो।

हे वरुण! मनुष्य होनेके नाते हमने जो पाप देवोंके विरुद्ध किया है और हे देव! अपने चित्तकी न्यूनतासे हमने जो तुम्हारे धर्मका उल्लङ्घन किया है, उसके कारण हमारा विनाश मत करो।'

इस प्रकार सच्चे हृदयसे भगवान्‌के प्रति अपने पापोंकी क्षमा-प्रार्थना मनुष्यको पापमुक्त करती है और वह नयी शक्ति प्राप्त करके पवित्र, दिव्य जीवनका अधिकारी बनता है। देव और मानवकी सजातीयताका सिद्धान्त वेदको मान्य है—

अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम्
(ऋ० ८। २७। १

अतः मनुष्यका अधिकार है कि अपने दिव्य स्व की अनुभूति करे और नाम-स्मरण एवं प्रार्थनाके द्व अनन्त अनादि देवताके साथ सम्बन्ध स्थापित करे।

वेदमें नामद्वारा नामका आराधन

(लेखक—आचार्य श्रीविश्वबन्धुजी)

नाम नाम्ना जोहवीति,
पुरा सूर्यात् पुरो (रा उ) षसः।
यद् अजः प्रथमं संबभूव,
स ह तत् स्वराज्यम् इयाय,
यस्मान् नाऽन्यत् परम् अस्ति भूतम् ॥ १ ॥
(अथर्ववेद १०। ७। ३१)

अभी पौह नहीं फूटी, अभी सूर्य नहीं उभरा (भक्त) नामद्वारा नामका बार-बार आराधन कर र है—'ज्यों ही (वह) मूले (कारण) प्रथमतः बढ़ा (त्यों ही) वह उस विस्तार पर जा पहुँचा, जिससे और को बड़ा विस्तार न (था, और न) है (ही)' ॥ १ ॥
(अथर्ववेद १०। ७। ३१

यस्य भूमिः प्रम-
ऽन्तरिक्षम् उतो (त उ) दरम्।
दिवं यश् चक्रे मूर्धानं,
तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ २ ॥
(अथर्ववेद १०। ७। ३२)

भूमी जिसकी पाद-प्रतिष्ठा है,
और अन्तरिक्ष जिसका उदर है,
द्युलोकको जिसने माथा बनाया,
उस परम ब्रह्मको प्रणाम ॥ २ ॥
(अथर्ववेद १०। ७। ३२)

यस्य सूर्यश् चक्षुश्,
चन्द्रमाश् च पुनर्-णवः।
अग्निं यश् चक्र आस्यं,
तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३ ॥
(अथर्ववेद १०। ७। ३३)

सूर्य जिसकी आँख है,
बार-बार नया-नया चन्द्र (भी) जिसकी आँख है,
अग्निको जिसने मुख बनाया,
उस परम ब्रह्मको प्रणाम ॥ ३ ॥
(अथर्ववेद १०। ७। ३३)

यस्य वातः प्राणाऽपानौ,
चक्षुर् अङ्गिरसोऽभवन्।
दिशो यश् चक्रे प्रज्ञानीस्,
तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ४ ॥
(अथर्ववेद १०। ७। ३४)

वायु जिसके प्राण-अपान बना,
तारे जिसकी आँख बने,
दिशाओंको जिसने कान बनाया,
उस परम ब्रह्मको प्रणाम ॥ ४ ॥
(अथर्ववेद १०। ७। ३४)

यो भूतं च भव्यं च,
सर्वं यश्च् चाऽधितिष्ठति ।
स्वर् यस्य च केवलं,
तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ५ ॥
(अथर्ववेद १० । ८ । १)

भूतपर जिसका अधिकार है,
वर्तमानपर जिसका अधिकार है,
सभी कुछपर जिसका अधिकार है,
भविष्य जिस एकके ही वशमें है,
उस परम ब्रह्मको प्रणाम ॥ ५ ॥
(अथर्ववेद १० । ८ । १)

यतः सूर्य उदे (ति >) त्य्,
अस्तं यत्र च गच्छति ।
तद् एव मन्येऽहं ज्येष्ठं,
तद् उ नाऽत्येति किंचन ॥ ६ ॥
(अथर्ववेद १० । ८ । १६)

सूर्य जिससे उदय होता है,
और जिसमें लीन हो जाता है।
मैं उसे ही परम मानता हूँ,
कोई भी पदार्थ उससे और परे नहीं पहुँच पाता ॥ ६ ॥
(अथर्ववेद १० । ८ । १६)

पूर्णात् पूर्णम् उदचति,
पूर्णं पूर्णेन सिंच्यते ।
उतो तद् अद्य विद्याम,
यतस् तत् परि षिच्यते ॥ ७ ॥
(अथर्ववेद १० । ८ । २९)

पूर्णसे पूर्ण उद्गत होता है,
पूर्ण पूर्ण द्वारा सृजा जाता है।
परन्तु उसे अभी (भी) हम जाननेमें लगे हैं,
जिससे वह (परम पूर्ण) परि-सृष्ट होता है ॥ ७ ॥
(अथर्ववेद १० । ८ । २९)

वैदिक भक्ति-भावना

(लेखक—डा० श्रीमुंशीरामजी शर्मा, डी० लिट्०)

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
(ऋग्वेद १ । १६४ । ४६)

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥

अनामी अक्षर परम तत्त्व हम जीवोंकी अपेक्षासे अनेक नामोंवाला बनता है। उसका मूल नाम ॐ है जिसे प्रणव भी कहा जाता है। प्रणवका अर्थ है प्रकृत्या नवीन। जो सदैव सद्यः है, नित्य नवीन है, उसका कोई क्या नाम रख सकता है और उसके किस रूपका आकलन कर सकता है? नाम और रूप तो सतत परिवर्तनशील वस्तुओंके रक्खे जाते हैं; क्योंकि वे स्वल्पकालिक हैं। जो नित्य नवीन है, वह तो पकड़में ही नहीं आ पाता। महात्मा सूरदासकी गोपियाँ (जो श्रीमद्भागवत तथा सूरसागर दोनोंके अनुसार ऋचाओं-का रूप हैं और संख्यामें सोलह सहस्र हैं) इसीलिये कहती हैं—

स्याम सों काहे की पहिचान।
निमिष निमिष वह रूप न वह छवि रति कीजे जेहि मानि ॥

प्रणवकी महिमा इसी अग्राह्य तथ्यमें विद्यमान है; पर हम जीव उस अनामीके अपनी अपेक्षासे नाम रखते हैं और क्योंकि हम अनेक हैं, वृत्तियाँ अनेक हैं, अतः प्रभुके नाम भी अनेक हो जाते हैं। ऋग्वेदकी ऊपर उद्धृत ऋचा इसी आधारपर कहती है कि वह एक है, परंतु विप्रोंने उसका विविध नाम-रूपोंद्वारा उल्लेख किया है। प्रभुके अनेक नाम उस अनामीतक हमें पहुँचा देते हैं। जो अगन्तव्य है वह इन्हीं नामोंद्वारा गन्तव्य बन जाता है। इस रहस्यका उद्घाटन निम्नाङ्कित ऋचा करती है—

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥
(ऋग्वेद ३ । ३७ । ३)

विविधरूपा वाणियाँ विविध प्रकारके शब्दोंद्वारा उच्चरित होकर उसके जो अनेक नाम लेती हैं, उन नामोंके कीर्तन-द्वारा मानव अपनी अल्पीयसी शक्तिका अनुभव करता है, विनयशील बनता है और परिणामतः अहंकारको संयमित

एवं शमित कर लेता है । जिस व्यक्तिने अहंकारको दबा लिया, उसे अयज्ञिय पाशोंसे मुक्ति मिल गयी । पाशोंका मूल अहंकार ही है । जब मूलको ही वश कर लिया तो पाश स्वतः प्रभावहीन हो गये । नामके जापकी यह महिमा साधकके लिये बड़ा भारी सहारा है । ओऽम्, अल्लाह, लॉर्ड, गॉड, खुदा, इन्द्र, अग्नि, शिव, राम आदि किसी भी नामसे याद करें, हमारा स्वर उसके दिशारूपी कानोंमें पड़ ही जायगा । यदि हृदयसे ध्वनि निकली तो वेदकी निम्नाङ्कित ऋचाके अनुसार वह सुनी जायगी और सुनते ही प्रभु निश्चितरूपसे अपनी रक्षा-शक्तियोंके साथ भक्तके समीप प्रकट हो उठेंगे—

आ घा गमद् यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिर्वाजेभिरुप नो हवम् । (ऋग्वेद १ । ३० । ८)

मानव सामान्य स्तरपर जब विघ्न-बाधाओंसे पीड़ित होता है तब प्रथम तो अपने ही पुरुषार्थका आश्रय लेता है । जब अपना पुरुषार्थ काम नहीं देता तब किसी सहायककी ओर आशाभरी आँखोंसे देखने लगता है । सहायक भी मिल जाते हैं पर वे भी कुछ समयके लिये ही साथी बन पाते हैं । सभी समयों, सभी देशोंमें जो साथ दे सके ऐसा कोई भी सहायक इस नाम-रूपके जगत्में दृष्टिगोचर नहीं होता । हाँ, वह अनामी, वह अरूप, वह सर्वव्यापक, वह सर्वान्तर्यामी परमतत्त्व ही एकमात्र ऐसा है जो कभी हमारा साथ नहीं छोड़ता । वेद इसीको जीवात्माका सखा मानता है और कहता है; **'माचिद् अन्यद् विशंसत'**—'मानव ! तुम प्रभुके अतिरिक्त अन्य किसीकी भी प्रशंसा या स्तुति मत करो ।' प्रभुके ही गुण बार-बार गाओ, उसीकी आराधना करो । तुम्हारा सबसे बड़ा रक्षक वही है ।

नह्यन्यं बलाकरं मर्डितारं शतक्रतो । त्वं न इन्द्र मृळय ॥ (ऋग्वेद ८ । ८० । १)

यो नः शश्वत् पुराविथामृध्रो वाजसातये । स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ (ऋग्वेद ८ । ८० । २)

'प्रभो ! खूब देख लिया, इस विश्वको भलीभाँति छान डाला, पर तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी सुखप्रदाता नहीं मिला । प्रभो ! तुम्हीं सुखी करो, तुम्हीं दुःखसे छुड़ाओ ।' विश्वमें हिंसक और हिंस्र फैले हुए हैं । ऐसा कोई भी नहीं है जो हिंसाका आखेट न बना हो । जो हिंसक हैं वे भी दूसरोंका आहार बन जाते हैं । अहिंस्र वहाँ एक ही है । प्रभुपर किसीका अस्त्र नहीं चल सकता । वे सबको त्राण देनेवाले हैं; शाश्वत कालसे वे भक्तोंकी रक्षा करते आये हैं । वे ही प्रभु मुझे सुख एवं शान्ति प्रदान करें ।'

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ (ऋग्वेद ६ । ४७ । ११)

'प्रभो ! तुम्हीं त्राता हो, तुम्हीं अविता या सहायक हो । तुमसे अधिक बलवान् यहाँ कोई भी नहीं है, मैं इसीलिये तुम्हें बुला रहा हूँ; क्योंकि तुम सुहृद् हो, सुगमतासे पुकारे जाने योग्य हो । हे सर्वशक्तिसम्पन्न ! तुम मेरे-जैसे अनेकोंके द्वारा पुकारे जाते हो और तुम सबको सहायता देते हो । स्वामिन् ! मुझे भी स्वस्ति दो, शान्ति दो, मेरा कल्याण करो ।'

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ (ऋग्वेद ७ । ८९ । ३)

'नाथ ! दैन्यके वशीभूत होकर मैं कर्तव्यपथसे विपरीत चला गया हूँ, विपत्तियोंके बीहड़ वनमें भटक रहा हूँ । तुम्हीं मुझे पुनः कर्तव्यपथपर लगाओ और सुखी करो ।'

परि पूषा परस्ताद् हस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु ॥ (ऋग्वेद ६ । ५४ । १०)

'प्रभो ! कर्तव्य-पथसे विचलित होकर मैं अपना सर्वस्व खो बैठा हूँ । मेरी समग्र दैवी सम्पदा मुझसे छीन ली गयी है । जो कुछ भौतिक वैभव था उसे भी लुटेरे लूट ले गये । आज मैं दाने-दानेके लिये तरस रहा हूँ, कण-कणके लिये हाथ फैला रहा हूँ । जिनसे कभी याचना नहीं की, उनकी अभ्यर्थना कर रहा हूँ । मेरी इस दयनीय स्थितिको देखकर संगी-साथी हँस रहे हैं । मेरी प्राणशक्ति निर्बल पड़ गयी है, इन्द्रियाँ जवाब देने लगी हैं । कैसे सँभालूँ अपनी इस प्रजाको । इनकी व्याकुलता और त्राहि-त्राहिका कातर स्वर अब सुना नहीं जाता । इसीलिये आज तेरे द्वारपर आया हूँ, तेरे शरणागत हूँ । हे अशरणशरण ! हे निर्बलके बल ! हे असहायके अवलम्ब ! तुम पूषा हो, पोषक हो । कृशको सशक्त बनानेवाले ! रख तो दो आज अपना दक्षिण वरद हस्त मेरे सिरपर । तुम्हारी किंचित् दयादृष्टि ही मुझे निहाल कर देगी और मेरा खोया हुआ धन मुझे पुनः प्राप्त हो जायगा ।'

सं पूषन्न् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति । य एवेदमिति ब्रवत् ॥ (ऋग्वेद ६ । ५४ । १)

'स्वामिन् ! तुम सर्वज्ञ हो । मुझे ऐसा ज्ञान [illegible]

वेदोंमें प्रभुभक्ति एवं प्रार्थनासे अघमर्षणका विधान

(लेखिका—श्रीमती वेदवती शर्मा, व्याकरणोपाध्याया)

मनुष्य न चाहते हुए भी अपनी निर्बलतासे अथवा ानसे अथवा काम, क्रोध आदिके वशीभूत होकर जानते अथवा न जानते हुए पाप-कर्म करता है। शास्त्रीय ोंके अनुसार पाप-कर्मोंका वा शुभ-कर्मोंका क्षय विना ाके नहीं होता, यह निश्चित सिद्धान्त है। साथ ही शास्त्र- र अनेक प्रकारके जप-तप आदिके द्वारा पाप-कर्मोंका । कहते हैं और पुण्य-कर्मोंको भी निष्काम भावसे करनेपर धनका कारण नहीं मानते। इस प्रकार शास्त्रीय वचनोंमें स्पर विरोध भासित होता है।

विरोधका परिहार—कई लोग इस विरोधके परिहार- लिये कहते हैं कि 'जप-तप आदिके द्वारा कृतकर्मोंके ोंका क्षय नहीं होता, किंतु जप-तप आदिसे मनुष्यकी द्धि निर्मल हो जाती है और उससे वह आगे बुरे कर्म रनेसे बच जाता है।' हमें यह कथन ठीक नहीं लगता। दि कृतकर्मोंका क्षय जप आदिसे न होता हो तो शास्त्रकार तकर्मोंके क्षयके लिये विविध प्रकारके जप-तप आदिका ाधान क्यों करते? इसलिये मेरा तो विचार है कि जप-तप ादिके द्वारा कृतकर्मोंके फलोंका क्षय किसी-न-किसी सीमा- क अवश्य ही होता है। जप-तपके द्वारा बुद्धिके निर्मल होनेपर भविष्यमें बुरे कर्मोंसे बच जाना तो उसका आनुषङ्गिक फल है।

जप-तप प्रभु-भक्तिका ही एक रूप है। जो मनुष्य प्रभु- की भक्ति करेगा, चाहे वह किसी भी रूपसे क्यों न करे, पर करे शुद्ध हृदयसे, तो वह निश्चय ही भव-सागरसे पार हो जायगा। परमात्मा सब प्राणियोंका माता-पिता, बन्धु, सखा है और साथ ही वह कृपालु है और दयालु भी। भक्त लोग उसे 'आशुतोष' कहते हैं। फिर ऐसा प्रभु अपने पुत्रोंके, सेवकोंके दुःखोंको भला क्यों न दूर करेगा? हाँ, होना चाहिये अपने किये बुरे कर्मोंके लिये हृदयमें पश्चात्तापकी और प्रभुसे क्षमायाचनाकी भावना। जो व्यक्ति परम स्नेह- मयी माताके समान प्रभुकी गोदमें बैठकर अपने किये कर्मों- के लिये क्षमायाचना करता है, भला परम दयालु मातृस्वरूपा परमा शक्ति क्या अपने पुत्रोंके दुःखोंको दूर न करेगी? सांसारिक माताएँ भी अपने पुत्रके सुखके लिये सर्वस्व त्याग कर देती हैं। तभी तो शास्त्रकारोंने कहा है—

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

फिर भला सर्वजगज्जननी क्या अपने पुत्रोंकी प्रार्थना नहीं सुनती? अवश्य सुनती है और दुःखोंको दूर करती है।

तभी तो सब प्राणी दुःख पड़नेपर उसीका स्मरण करते हैं। यदि उसके स्मरणसे दुःख दूर न होते हों तो उसे क्यों कोई स्मरण करे!

प्रभु-भक्तिके अनेक रूप हैं। उन सबमें श्रेष्ठ प्रकार है सायं-प्रातः-संध्याके रूपमें प्रभुके चरणोंमें उपस्थित होना। वेद स्वयं कहता है—

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि ॥ (ऋ० १ । १ । ७)

अर्थात्—हे प्रकाशस्वरूप भगवन्! जैसे सांसारिक पिता अपने पुत्रोंके लिये सुखकारी होता है, उसके दुष्कर्मोंपर ध्यान न देता हुआ सदा उसके कल्याणकी कामना करता है, इसी प्रकार हे अग्ने! सर्वपापप्रणाशकेश्वर! आप भी हमारे दुष्कर्मोंपर ध्यान न देकर हमारी भूलोंको क्षमा करके हमें कल्याणसे युक्त करें।

हे परम कृपालो परमेश्वर!

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥
(ऋ० १ । २४ । १५)

'आप वरुण हैं। सबसे श्रेष्ठ हैं और अपने भक्तोंको वरण करनेवाले—स्वीकार करनेवाले हैं। आप हमारे उत्तम—अत्यन्त उत्कृष्ट पापोंके क्लेशमय बन्धनको, अधम, हलके साधारण पापोंके बन्धनको और मध्यम कोटिके पापोंके बन्धनको विश्रथय—ढीला कर दें, क्षीण कर दें, नष्ट कर दें, जिससे हम कर्मोंके दुःखरूप फलोंको प्राप्त न हों; क्योंकि आप आदित्यरूप हैं। जैसे सूर्य अच्छे-बुरे सभी स्थानोंसे जलोंको ग्रहण करके उसे शुद्ध कर देता है, उसी प्रकार आप भी हमें स्वीकार करके—हमारे पापोंको क्षीण करके हमें शुद्ध और पवित्र बनानेवाले हैं। हम आपके व्रतमें—आपके उपासना-रूप शुभ कर्ममें लगे हुए पापरहित होकर सुखके—कल्याणके अधिकारी बनें।'

हे दयालो! हम आपसे ही पाप-कर्मोंके क्षयकी प्रार्थना इसलिये करते हैं कि आप ही—

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति।
कृतानि या च कर्त्वा ॥ (ऋ० १ । २५ । ११)

'इस सारे अद्भुत संसार-रचयिता आप ही घट-घटवासी होकर हमारे किये गये वा किये जानेवाले सभी कर्मोंको देखते हैं, आपसे हमारी कोई भी बात छिपी हुई नहीं है।'

इसलिये हे भक्तोंको वरण करनेवाले प्रभो!—

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युरा चके ॥ (ऋ० १ । २५ । १९)

'हमारी इस प्रार्थनाको सुनो और सुनकर हमारी दुःखोंसे रक्षा करो। मैं अपनी रक्षा चाहनेवाला तुम्हारा भक्त तुम्हें ही पुकारता हूँ।'

किसलिये पुकारता हूँ?

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत।
अवाधमानि जीवसे ॥ (ऋ० १ । २५ । २१)

इसलिये कि 'हे सर्वशक्तिमन् प्रभो! आप मुझपर कृपा करके उत्कृष्ट—अत्यन्त दृढ जो मेरे पाप-कर्मोंका पाश है उसे खोल दें, मध्यमकोटिके पाशको काट डालें और अधम—निकृष्ट कोटिके पाशको भी सुखपूर्वक जीवनके लिये नष्ट कर दें।'

वेदकी इस प्रकारकी प्रार्थनाओंसे स्पष्ट है कि प्रभुकी भक्ति करनेसे, उसका स्मरण करनेसे, उसके आगे अपने पापोंके लिये क्षमा माँगनेसे न केवल कृतकर्मोंके फलोंसे ही मनुष्य बच जाता है, अपितु भविष्यके दुःखोंसे भी बच जाता है। इसलिये वैदिक मतमें प्रभु-भक्तिको सबसे महान् पापनाशक माना है। ऋग्वेदका एक सूक्त है जिसका नाम ही अघमर्षण (पाप दूर करनेवाला) है। प्रतिदिन आर्य सायं-प्रातः इस सूक्तका संध्यामें पाठ करते हैं।

हाँ, भक्तिसे पापनिवृत्ति तभी होगी जब वह मानसिक हो; दिखावटी नहीं हो और साथ ही कृत पाप-कर्मोंके लिये मनमें पश्चात्तापयुक्त प्रायश्चित्तकी प्रबल भावना हो।

वेदादि सद्ग्रन्थोंमें भगवन्नामकीर्तन

(लेखक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम' साहित्याचार्य)

वेदोंके संहिताभाग मन्त्ररूप ही हैं। मन्त्रोंका स्वाध्याय और जप किया जाता है। स्वाध्याय तथा जप कीर्तनके ही अङ्ग हैं; क्योंकि इन सबमें वागिन्द्रियका व्यापार समानरूपसे होता है। अन्तर इतना ही है कि जपमें मन्त्रोंका उच्चारण मन्दस्वरसे और कीर्तनमें उच्चस्वरसे होता है। पर यह अन्तर व्यावहारिक है। वास्तवमें उच्चारणमात्र ही कीर्तन है, मन्दस्वरसे हो या उच्चस्वरसे, जपके रूपमें हो या स्वाध्यायके। मानस-जपमें वागिन्द्रियका व्यापार नहीं होता, अतः वह कीर्तनमें अन्तर्भूत नहीं है। कीर्तन दो तरहके हैं—सकृत् कीर्तन और आवृत्त कीर्तन। स्वाध्याय सकृत् कीर्तनके अन्तर्गत है और जप आवृत्त कीर्तनके। कीर्तन भगवान्‌के नाम, लीला, गुण और धामोंका होता है। वेदोंके मन्त्रभागमें कहीं साक्षात् परमात्माका और कहीं उनके अंशभूत विभिन्न देवताओंका स्तवनात्मक कीर्तन किया गया है।

मन्त्रभागमें नामकीर्तनसम्बन्धी प्रमाण-वचन ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं है। प्रमाण-वचन तो स्मृतियों और पुराणादि ग्रन्थोंमें ही ढूँढ़ने चाहिये। मन्त्रभाग तो कीर्तनीय मन्त्ररूप ही है। इसका तो जप, स्वाध्याय या कीर्तन ही होना चाहिये। इनके कीर्तनकी विधि भी स्पष्ट मिलती है—**'ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।'** तथा मनुजीने इनका स्वाध्याय या कीर्तन न करनेसे हानि भी बतलायी है—**'अनभ्यासेन वेदानाम्''''मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति।'** (मनु०)

ऋग्वेदके प्रथम मन्त्रमें ही यज्ञ-देवता विष्णुका 'अग्नि'के नामसे स्तवन किया गया है—**'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्'**। अब कतिपय अन्य मन्त्रोंपर दृष्टिपात कीजिये—

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद
ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन
महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे॥
(ऋग्वेद १। १५६। ३)

विद्वद्वर लक्ष्मीधरने इस मन्त्रकी विशद व्याख्या इस प्रकार लिखी है—'इति श्रूयते। दीर्घतमसो वाक्यमेतत्, **अस्यार्थः**—उकार छन्दःपूरणार्थः, हे जानन्तः स्वार्थकुशला जनास्तं देवम् 'अस्ति कश्चिदीश्वरः' इत्याबालगोपालप्रसिद्धम्, पूर्व्यं पुरातनं सर्वस्याधिष्ठानमधिष्ठातारं च; ऋतस्य गर्भम्, उपनिषद्स्तज्जन्यज्ञानस्य वा उदरे वर्तमानम्, औपनिषद-सिद्धान्तसिद्धयाथात्म्यं स्तोतारः—वैदिकास्तान्त्रिकाः पौराणिकाः पौरुषेयैर्वा स्तुध्वमिति विपरिणामः। न चैतावतैव स्तोतव्यमिति कश्चिदस्ति नियमः, यथा विद, यथा जानीथ तथा स्तुध्वं सर्वैः स्तुध्वमिति भावः। ततश्च जनुषा पिपर्तन [illegible]तनादेशः कर्मकर्तृव्यत्ययश्च, जनुषा जन्मना पिपर्तन पिपृत पूर्वं जन्मनः पूर्तिं प्राप्नुत जन्मानि समापयतेति भावः। अथवा तं देवं जनुषा पिपर्तन स्वच्छन्दचरितेन [illegible] जन्मना पूरयत सत्याश्रयनामैरन्वितं वर्णयतेत्यर्थः। अथैवमपि वयं स्तोतुमसमर्थाः, अतः भगवतः श्रीमता-माप्याविवक्तन सदा कीर्तयत—हे विष्णो व्यापक ते महः प्रकाशं स्वस्वरूपप्रकाशिकां सुमतिं शोभनां मतिं भजामहे' इति अत्रापि व्यत्ययः 'भजामहे' इति। ब्रह्मविद्यामाशासानाः कीर्तयतेत्यर्थः।

उपर्युक्त व्याख्याका भाव यों है—इस प्रकार श्रुतिवचन है। यह मन्त्र दीर्घतमा ऋषिका वाक्य है। इसका भावार्थ इस प्रकार है—('तमु' इस पदमें) उकार छन्दःपूर्तिके लिये है। हे जाननेवाले—स्वार्थकुशल लोगो! 'कोई ईश्वर है' इस प्रकार जो बच्चों और ग्वालोंतकमें प्रसिद्ध हैं तथा जो पूर्व्य—पुरातन अर्थात् सबके अधिष्ठान एवं अधिष्ठाता हैं, इसी प्रकार जो ऋतके गर्भ हैं यानी उपनिषद् अथवा उससे होनेवाले ज्ञानके उदरमें (भीतर) विद्यमान हैं, तात्पर्य यह कि उपनिषद्‌के सिद्धान्तसे जिनके यथार्थ स्वरूपकी सिद्धि होती है, उन देव (परमेश्वर-) की तुम सब वैदिक, तान्त्रिक, पौराणिक अथवा पौरुषेय वचनोंसे स्तुति करो। यहाँ (क्रियाका विधिसूचक अर्थ होनेके कारण) 'स्तोतारः'के स्थानमें 'स्तुध्वम्' (स्तुति करो) इस प्रकार विपरिणाम (परिवर्तन) कर लेना उचित है। पूर्वोक्त प्रकारसे (उनकी महिमाका वर्णन करते हुए) ही स्तुति करनी चाहिये, ऐसा नियम नहीं है। तुमलोग जैसा समझते हो—जैसा जानते हो, तदनुरूप ही उनकी स्तुति करो—वैसे मन्त्रोंद्वारा उनका स्तवन करो—यह तात्पर्य है। 'जनुषा पिपर्तन' यहाँ

(थ प्रत्ययके स्थानमें) वैदिक-प्रक्रियाके अनुसार 'तनप्' आदेश हुआ है और कर्म तथा कर्ताका व्यत्यय भी हुआ है। भाव यह है कि उक्त रूपसे स्तवन करके तुम-लोग जन्मसे पूर्ण हो जाओ—अपने जन्मकी पूर्णता लाभ करो अर्थात् अपने जन्मको समाप्त कर डालो (पुनः जन्म-मृत्युके चक्करमें न पड़कर मुक्त हो जाओ) अथवा 'तं देवं जनुषा पिपर्तन—उन परमेश्वरको स्वतन्त्रतापूर्वक आचरित—स्वीकृत नाना प्रकारके जन्मों—अवतारोंसे पूर्ण करो। भाव यह कि मत्स्य आदि अवतारोंसे युक्त उन भगवान्का वर्णन (गुणगान) करो। (यदि ऐसा समझो कि) हम इस प्रकार भी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं तो उन भगवान्के श्रीयुक्त नामोंका ही सदा कीर्तन किया करो (और कीर्तन करते समय ऐसा संकल्प करो कि) 'हे विष्णो—हे व्यापक परमेश्वर ! हम आपके महः—प्रकाशको अर्थात् आपके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाली सुमति—सुन्दर बुद्धिको धारण करें !' भाव यह हुआ कि ब्रह्मविद्याकी आशा रखते हुए कीर्तन करो। यहाँ (भजामहे इस क्रियामें) भी (लोट् लकारका लट् लकारके रूपमें) व्यत्यय हुआ है। अर्थके अनुसार 'भजामहै' होना चाहिये।

नाममन्त्र ही पुरुषार्थका प्रमुख साधक है—इस भावको प्रकाशित करनेवाले और भी अनेक मन्त्र हैं—

'कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।'
'अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।'
(ऋग्वेद १। २४। १-२)

'सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि।' (ऋग्वेद ७। २२। ५)

'हम देवताओंमें किस एकके, किस नामवाले मनोहर देवताके नामका जप या कीर्तन करें।' 'जो देवताओंमें प्रथम हैं, उन मनोहर देवता अग्नि—सर्वव्यापी परमात्माके नामका बारंबार कीर्तन करते हैं।' 'मैं सदा आप परमात्माके यशको सूचित करनेवाले नामका कीर्तन करता हूँ।'

'मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे।'
(ऋग्वेद ८। ११। ५)

'हम मरणधर्मा मनुष्य आप अमरदेवता परमात्माके नामका बारंबार कीर्तन करते हैं।'

पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम्।
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ।
ॐ तत्सत् ॐ
(ऋग्वेद ६। १। ४)

देवस्य (परम पूजनीय आपके) **पदं** (पादारविन्दको) **नमसा** (नमस्कारके द्वारा) **व्यन्तः** (प्रकट करते हुए) **रणयन्तः** (परस्पर उन्हींका गुण-कीर्तन करते-करते) (आत्मकल्याणके लिये) **सन्दृष्टौ** (और आपके दर्शनके लिये) **अन्ते** (अन्तमें) **श्रवसि** (नामोंकी महिमाविशेषको) **अवश्रवे** (शास्त्रोंके द्वारा सुने जानेपर) **आपन्नमृक्तम्** (कीर्तनाश्रित भक्तोंको शुद्ध करनेवाले) (चित्स्वरूप) **यज्ञियानि** (यज्ञार्ह) **नामानि** (उन नामोंका ही) [यजमानोंने] **दधिरे** (निश्चयरूपसे अपनाया—ग्रहण किया है) [क्योंकि] **तत्सत्** (वे परब्रह्मस्वरूप हैं)।

प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके॥
(ऋग्वेद ७। १००।)

शिपिविष्ट (हे विष्णो !) **ते** (आपके) [नामके] (उन) **वयुनानि** (सामर्थ्योंको) **विद्वान्** (जानकर) (उस प्रसिद्ध) **नामार्यः** (नामश्रेष्ठका) **शंसामि** (प्रकृष्टरूपसे कीर्तन करूँगा) **अतव्यान्** (मैं क्षुद्र होनेपर भी) **अस्य रजसः** (इस ब्रह्माण्डके) **पराके** (उस पार) **क्षय** (स्थित) **तवसं** (महान् ऐश्वर्यसे युक्त) **त्वा** (आपका) **गृणामि** (कीर्तन करूँगा)।

'अग्निं गीर्भिर्हवामहे' (ऋग्वेद ८। ११। ६)

'हम वाणीद्वारा अग्नि (परमात्मा) को पुकारते हैं।'

× × ×

(शुक्ल यजुर्वेद)

शुक्ल यजुर्वेदसंहिताका सम्पूर्ण मन्त्रभाग स्वाध्याय, कीर्तन एवं जपके योग्य है। इससे द्विजातियोंका ब्रह्मयज्ञ सम्पन्न होता है। गीतोक्त स्वाध्याय-यज्ञकी भी इससे पूर्ति होती है। यद्यपि सम्पूर्ण संहिताका ही नित्य स्वाध्याय उचित है तथापि इसमें भी शतरुद्रिय[1], पुरुषसूक्त[2] तथा शिवसङ्कल्पादि[3] मन्त्र विशेषरूपसे कीर्तनके योग्य हैं। इनमें साक्षात् परमेश्वर का ही, उनके नाम, गुण तथा यशोराशिका वर्णन करते हुए स्तवन किया गया है। मानसिक दुर्भावनाओंको हटाने, सद्विचार लाने तथा अपना सर्वथा कल्याण होनेके लिये अभ्यर्थना की गयी है। अन्तिम अध्याय 'ईशावास्योपनिषद्' है। इसके स्वाध्यायसे ज्ञानयज्ञकी पूर्ति होती है।

१—'शतरुद्रिय' मन्त्र यजुःसंहिताके १६वें अध्यायमें है।
२—'पुरुषसूक्त' यजुःसंहिताके ३१वें अध्यायमें देखिये।
३—'शिवसङ्कल्पादि' सूक्त संहिताके ३४वें अध्यायमें है।

'हे पुरुयशो ! हे महान् ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! अग्निके समान तेजस्वी, परम पवित्र एवं त्रिकालदर्शी ऋषियोंने स्तोत्रोंद्वारा जिनका स्तवन किया है, उन्हीं आपको हमारी यह कीर्तनमयी वाणी बढ़ावे,—अत्यन्त आनन्दित करे।'

सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ (३३।८३)

'यज्ञोंमें, जहाँ ब्राह्मणोंका राज्य है, हम इन परमेश्वरके बल—सामर्थ्यकी सच्ची महिमाका बखान (कीर्तन) करते हैं।'

अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा। (३३।९७)

'इन परमेश्वरकी महिमाका मनुष्य आज भी पहलेकी ही भाँति कीर्तन करते हैं।'

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रꣳ हवामहे,
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं
प्रातः सोममुत रुद्रꣳ हुवेम ॥ (३४।३४)

'मैं अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विनीकुमार, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम और रुद्र—इन नामोंसे बारंबार परमेश्वरका आवाहन (कीर्तन) करता हूँ।'

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन। स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ (३४।४१)

'हे पूषन्! (हे परमेश्वर!) आपके लिये किये जानेवाले कर्ममें हम कभी नाशको न प्राप्त हों तथा इस शुभ कर्ममें सदा आपका स्तवन-कीर्तन करते रहें।'

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाꣳसः समिन्धते। विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ (३४।४४)

'जागरणशील निष्काम ब्राह्मणगण भगवान् विष्णुके उस परमधामको प्रकाशित करते हैं अर्थात् उसकी महत्ताका कीर्तन करते हुए श्रद्धालु जिज्ञासुओंको उसका उपदेश करते हैं।'

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ (३४।५७)

'ब्रह्मणस्पति देवता अवश्य ही उस उक्थ मन्त्रका कीर्तन करते हैं, जिसमें इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमाने नि[वास] किया है।'

ॐ क्रतो स्मर। (४०।१[५])

'हे कर्म करनेवाला जीव! तू उस रक्षक (परमेश्व[र]) का नामस्मरण (नाम-कीर्तन) कर।'

(उपनिषद्)

योगसूत्रमें 'तस्य वाचकः प्रणवः'के द्वारा ॐकार[को] परमात्माका वाचक नाम कहा गया है। इस 'ॐकार[की] उपासनाका अर्थ है भगवान्के नामकी उपासना, उस[का] चिन्तन, जप एवं कीर्तन। प्रश्नोपनिषद्में कहा है कि 'ॐक[ार] ही अपर और पर ब्रह्म है; इसके चिन्तनसे मनुष्य अप[नी] श्रद्धाके अनुसार अपर और पर ब्रह्ममेंसे किसी भी एकको [प्राप्त हो] जाता है'—

···'परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः। तस्माद् विद्वानेतेनैव [आ]यतनेनैकतरमन्वेति।' (प्रश्न० ५।२)

केवल ॐकारका ही आश्रय लेनेसे परब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है—

तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्-
यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥ (प्रश्न० ५।७)

माण्डूक्योपनिषद्में तो केवल ॐकारकी ही महत्ताका प्रतिपादन हुआ है। 'ॐ' यह अक्षर (अविनाशी परमात्मा) है। यह सम्पूर्ण जगत् उसीका विस्तार है। भूत, भविष्य और वर्तमान सब ॐकार है। जो त्रिकालातीत वस्तु (परब्रह्म) है, वह भी ॐकार ही है—

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव। (१)

तैत्तिरीय श्रुति भी इस भावको अभिव्यक्त करती हुई, ॐकारके भजन-चिन्तनसे परमात्माकी प्राप्ति बताती है—

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदꣳसर्वम्।···ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति ब्रह्मैवोपाप्नोति। (वल्ली १ अनु० ८)

'ॐ' यह ब्रह्म है। यह सम्पूर्ण जगत् भी ॐ से भिन्न

नहीं है। जो ब्राह्मण ब्रह्मप्राप्तिकी भावनासे प्रणवका उच्चारण (कीर्तन या जप) करता है, वह ब्रह्मको ही प्राप्त होता है।'

तैत्तिरीय० वल्ली ३ अनु० १०। ५ में जो गेय साममन्त्र प्रस्तुत किया गया है, वह कीर्तनका ही महत्त्व सूचित करता है। 'एतद् गायन्नास्ते' से उस मन्त्रके गान (कीर्तन-) का ही विधान किया गया है।

कठोपनिषद्में यमराजने 'तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्' से 'ॐकार' का प्रसंग चलाकर कहा है—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥
(क० १। २। १६)

'यह ॐकार ही अपर एवं पर ब्रह्म है। इसे जानकर कीर्तन-जप आदिके द्वारा इसकी उपासना करके जो जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह उसके करतलगत हो जाती है।'

यही श्रेष्ठ अवलम्बन है। इसे जानकर साधक ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है—

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥
(क० १। २। १७)

श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् तथा श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद्में राममन्त्रके जप-कीर्तनकी महत्ता बतलायी गयी है। गोपालपूर्वतापनीय और गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद्में श्रीकृष्णके नामों तथा तत्सम्बन्धी मन्त्रके कीर्तन, भजन, स्तवन आदिकी विधि एवं महिमा कही गयी है। कलिसन्तरणोपनिषद्में 'हरे राम०' मन्त्रके कीर्तनकी आवश्यकता तथा महत्ता प्रतिपादित हुई है। इसी प्रकार अन्यान्य उपनिषदोंमें भी नाम-कीर्तनकी महत्ता प्रकट करनेवाले संकेत-वाक्य उपलब्ध होते हैं।

(याज्ञवल्क्यस्मृति) आचाराध्याय

स्मृतियोंमें भी प्रायः जप और स्वाध्यायके रूपमें ही कीर्तनका महत्त्व बताया गया है। जप और स्वाध्यायका कीर्तनमें ही अन्तर्भाव है, यह हम पहले बता आये हैं। निम्नाङ्कित श्लोकोंसे स्वाध्याय अथवा जपके महत्त्वपर प्रकाश पड़ता है।

ब्रह्मचारि-प्रकरण

स्नानमब्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः।
सूर्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः॥२२॥
गायत्रीं शिरसा सार्द्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम्।
प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिरयं प्राणसंयमः॥२३॥
प्राणानायम्य सम्प्रोक्ष्य तृचेनाब्दैवतेन तु।
जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात्॥२४॥

'ब्रह्मचारीके लिये जलदेवतासम्बन्धी वेदमन्त्रोंद्वारा मार्जन, प्राणायाम, सूर्योपस्थान और गायत्री-मन्त्रका जप नित्य कर्तव्य है। शिरोभागके साथ ही प्रणवयुक्त व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्रका तीन बार जप 'प्राणायाम' कहलाता है। प्राणायाम करके मार्जनके मन्त्रसे सिरपर जल छिड़ककर संध्याके समय जबतक तारे न निकल आवें पश्चिमाभिमुख हो गायत्री-जप करता रहे।'

प्राणायाम, उपस्थान, मार्जन और गायत्री-जप इनमें भगवद्विभूतियोंकी तथा भगवान्‌की महिमाओंका गायन एवं भगवन्नामका कीर्तन है।

वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयस्करः परः॥४०॥

'वेदका स्वाध्याय ही द्विजातिमात्रके लिये सबसे बढ़कर कल्याणकारी साधन है।' वेदके स्वाध्यायमें भगवान्‌के नाम, गुण और लीलाओंका कीर्तन स्पष्ट है।

द्विजके लिये ऋक्, यजुष्, साम, वाकोवाक्य (वैदिक प्रश्नोत्तर), पुराण, नाराशंसी (रुद्रदैवत मन्त्र), गाथिका, इतिहास और वारुणी आदि विद्याओंके स्वाध्यायका माहात्म्य है।

'……ऋचोऽधीते……'॥४१॥ 'यजूंषि शक्तितोऽधीते ……॥४२॥ '……योऽन्वहं पठेत्।
सामानि…………………॥४३॥
वाकोवाक्यं पुराणं च नाराशंसीश्च गाथिकाः।
इतिहासांस्तथा विद्याः शक्त्याधीते हि योऽन्वहम्॥४५॥
× × × ×
यं यं क्रतुमधीते च तस्य तस्याप्नुयात् फलम्॥४७॥
त्रिर्वित्तपूर्णपृथिवीदानस्य फलमश्नुते।
तपसश्च परस्येह नित्यस्वाध्यायवान् द्विजः॥४८॥

'द्विज वेदके अन्तर्गत जिस-जिस यज्ञके प्रतिपादक मन्त्र-भागका स्वाध्याय करता है, उस-उसका फल वह पाता है। जो द्विज नित्य वेद पढ़ता है, वह धनसे भरी हुई सारी पृथ्वीके दानका और सर्वोत्तम तपस्याका फल पाता है।'

अन्तमें वेदाध्ययनका फल इस प्रकार बताया गया है—

ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेह जायते पुनः॥५०॥

'वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है और इस संसारमें फिर कभी

जन्म नहीं लिया।' वेद ब्रह्म है और ब्रह्मके कीर्तनसे ब्रह्म-तत्त्वकी उपलब्धि या बोध स्वाभाविक है।

हुत्वाग्नीन् सूर्यदैवत्यान् जपेन्मन्त्रान् समाहितः।
वेदार्थानधिगच्छेच्च शास्त्राणि विविधानि च ॥ ९९ ॥
वेदाथर्वपुराणानि सेतिहासानि शक्तितः।
जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थं विद्यां चाध्यात्मिकीं जपेत् ॥१०१॥
बलिकर्मस्वधाहोमस्वाध्यायातिथिसत्क्रियाः।
भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणां महामखाः ॥१०२॥
.... ।
स्वाध्यायं सततं कुर्यान्न पचेदन्नमात्मने ॥१०४॥

'गृहस्थ पुरुष अग्निहोम करके सावधानतापूर्वक सूर्यदेवता-के मन्त्र जपे। तदनन्तर वेदके अर्थका स्वाध्याय करे तथा अन्य अनेकों प्रकारके शास्त्रोंको पढ़े और सुने। ऋगादि तीन वेद, अथर्ववेद, पुराण, इतिहास और अध्यात्मविद्या (उपनिषद्) का जप (स्वाध्याय) करे। इससे जप-यज्ञ सिद्ध होता है। बलिवैश्वदेव, स्वधा (तर्पण और श्राद्ध), होम, स्वाध्याय (जप, पाठ और कीर्तन), अतिथिसत्कार—ये पाँच क्रमसे भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ और मनुष्ययज्ञ कहलाते हैं। केवल अपने लिये रसोई न बनाये।' इन सबमें विश्वरूप भगवान्‌का पूजन, स्तवन और कीर्तन है।

(स्नातक-प्रकरण)

न स्वाध्यायविरोध्यर्थमीहेत .... ॥१२९॥

'स्वाध्याय (पाठ, जप और कीर्तन-)में बाधा डालनेवाले धनके उपार्जनकी इच्छा न करे।'

(श्राद्ध-प्रकरण)

सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति त्र्यृचम्।
जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः ॥२३९॥

'व्याहृतिसहित गायत्री, 'मधुवाता ऋतायते' आदि ऋचाओंका जपकर ब्राह्मणोंसे सानन्द भोजनकी प्रार्थना करे और वे भी मौनभावसे भोजन करें।' गायत्री-जप भगवन्नाम-कीर्तन या भगवत्स्तवन ही है।

प्रायश्चित्ताध्याय (अशौच-प्रकरण)

अब्लिङ्गानि जपेच्चैव गायत्रीं मनसा सकृत् ॥२९३॥
तपो वेदविदां क्षान्तिर्विदुषां वर्ष्मणो जलम्।
जपः प्रच्छन्नपापानां मनसः सत्यमुच्यते ॥ ३२ ॥

'स्पर्श-दोषकी निवृत्तिके लिये वरुणदेवतासम्बन्धी मन्त्र तथा मन-ही-मन एक बार गायत्री-मन्त्रका जप करे।' 'वेद जाननेवाले पुरुषोंकी शुद्धिका साधन तप है। विद्वानोंके लिये क्षमा, शरीरके लिये जल, गुप्त पापोंके लिये जप और मनके लिये सत्य ही शुद्धिका साधन है।'

(वानप्रस्थ-प्रकरण)

स्वाध्यायवान् दानशीलः सर्वसत्त्वहिते रतः ॥ ४८ ॥

'वानप्रस्थको चाहिये कि वह वेद पढ़ा करे, दान दे और सब प्राणियोंके हितमें तत्पर रहे।'

यहाँ भी वेदका स्वाध्याय कीर्तनके महत्त्वका सूचक है।

(यतिधर्म-प्रकरण)

अधीतवेदो जपकृत् .... ॥ ५७ ॥

'जिसने वेद पढ़ा हो, गायत्री या भगवन्नामोंका जप करता हो, वह संन्यास ग्रहण करे।' इस प्रकार चारों आश्रमोंमें स्वाध्याय—कीर्तन एवं जपका महत्त्व प्रतिपादित होता है।

(प्रायश्चित्त-प्रकरण)

अरण्ये नियतो जप्त्वा त्रिर्वै वेदस्य संहिताम्।
शुद्ध्येत वा मिताशित्वात् प्रतिस्रोतः सरस्वतीम् ॥२४९॥

'वनमें जाकर नियमपूर्वक रहते हुए सम्पूर्ण वेदका तीन बार पाठ करे अथवा स्वल्पाहारी होकर सरस्वती नदीके किनारे-किनारे पश्चिम समुद्रतक यात्रा करे तो पापसे शुद्ध होता है।'

इस प्रकार स्वाध्याय और कीर्तन मात्रसे पापोंका क्षय बताया गया।

महापापोपपापाभ्यां योऽभिशंसेन्मृषा परम्।
अब्भक्षो मासमासीत स जापी नियतेन्द्रियः ॥२८५॥

'जो दूसरोंपर महापाप और उपपातकका झूठा दोष लगावे, वह इन्द्रियोंका संयम करके एक मासतक केवल जल पीकर रहे और बराबर जप करता रहे, तो उस पापसे छुटकारा पाता है।'

गोष्ठे वसन् ब्रह्मचारी मासमेकं पयोव्रतः।
गायत्रीजाप्यनिरतः शुद्ध्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥२८९॥

'ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करके एक मासतक केवल दूध पीकर गोशालामें निवास करते हुए गायत्री-मन्त्रका जप

पापहारक, आरोग्यप्रदायक तथा सम्पूर्ण भूतोंसे रक्षक कहा गया है—

श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति ।
रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम ॥
(मार्कण्डेयपु०)

महाभारतमें पहले ही नर-नारायणके नमस्कार एवं कीर्तनका आदेश है। जब कौरव-सभामें द्रौपदीका वस्त्र उतारा जाने लगा, उस समय उसने भगवान्‌का स्मरण करके उनके विभिन्न नामोंका कीर्तन किया—गोविन्द ! कृष्ण ! द्वारकानाथ ! गोपीजनवल्लभ ! केशव ! रमानाथ ! व्रजनाथ ! महायोगिन् ! विश्वभावन ! आदि नामोंका उच्चारण करके भगवान्‌को पुकारा। इसका फल यह हुआ कि धर्मस्वरूप महात्मा श्रीकृष्णने वस्त्रावतार धारण करके द्रौपदीकी लाज रक्खी।

कृष्णं च विष्णुं च हरिं नरं च
त्राणाय विक्रोशति याज्ञसेनी ।
ततस्तु धर्मोऽन्तरितो महात्मा
समावृणोद् वै विविधैः सुवस्त्रैः ॥
(महा० सभा० ६८ । ४६)

यहाँ कुछ वचनोंका दिग्दर्शनमात्र कराया गया है। यदि नाम-महिमाके प्रतिपादक समस्त वचनोंका एकत्र संकलन किया जाय तो एक विशाल ग्रन्थ बन सकता है। अतः सब लोगोंको मङ्गलमय भगवन्नामका आश्रय लेकर अपने जीवनको सफल बनाना चाहिये।

एकाक्षर-ब्रह्मविवेक

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

श्रीगीतामें भगवान्‌ने कहा है कि 'ॐ' यह एकाक्षर परब्रह्म है—'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' * (गीता ८ । १३)। इसपर आचार्य शंकरका 'ब्रह्मणोऽभिधानभूतमोङ्कारम्' यह शाङ्करभाष्य है। गीता१०।२५में भी कहा है—'गिरामस्म्येकमक्षरम् ।' मनु (२ । ८३) ने भी कहा है—'एकाक्षरं परं ब्रह्म'—'ओमिति ब्रह्माभिधानम्' [मेधातिथि], 'परब्रह्मावाप्तिहेतुत्वात्' [कुल्लूक], 'तदभिधायकत्वात्' [राघवानन्द]। कठोपनिषद्‌की श्रुति भी कहती है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपाꣳसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदꣳ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥
एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥
(१ । २ । १५-१६)

पतञ्जलिने १ । २५में इसे परमात्माका वाचक बतलाया है और इसके जपसे समाधिका सिद्ध होना कहा है। विद्यारण्यने समाधिको परम सुखद कहा है, पर उसमें दीर्घकालतक अवस्थानको बहुत कठिन माना है—'यद्यप्यसौ चिरकालसमाधिदुर्लभो नृणाम् । तथापि क्षणिको ब्रह्मानन्दं निश्चाययत्यसौ' [११-१९], योगवासिष्ठ (५ । ७८ । २१), जीवन्मुक्तिविवेक, पञ्चदशी आदिमें मनोराज्य जीतने तथा समाधिप्रवेशका सर्वोत्तम उपाय इस ओङ्कारके जपको ही माना है—

शक्यं जेतुं मनोराज्यं निर्विकल्पसमाधितः ।
सुसम्पादः क्रमात् सोऽपि सविकल्पसमाधिना ॥
दीर्घप्रणवमुच्चार्य मनोराज्यं विजीयते ।
एतत्पदं वसिष्ठेन रामाय बहुधेरितम् ॥
(पञ्चदशी ४ । ६१-६३)

योगवासिष्ठमें कच, बलि, प्रह्लाद आदिकी समाधि-विश्रान्तिमें ओङ्कारका ही जप-ध्यान निर्दिष्ट है—

उच्चारयन्नोङ्कारं च घण्टास्वनमिव क्रमात् ।
(कचविश्रान्ति ४ । ५८ । ११)

इति संचिन्तयन्नेव बलिः परमकोविदः ।
ओङ्कारादर्धमात्रायां भावयन्मौनमाश्रितः······
प्राप्तमहापदः ।
(बलिविश्रान्ति ५ । २७ । ३२)

---

* प्रायः यह वचन सभी उपनिषदोंमें भी आता है। यथा—अमृतनादोपनिषद् २१, तारसारोप० १२, ध्यानबिन्दूप० ९, रामोत्तरता० २ । १ । ५, माण्डू० १-८, महानारा० ११-५, प्रणवोप० २, अमृत० १, सूर्यो० ८, छान्दो० २ । २३ । ४, योगवा० ५ । ५४ । २ इत्यादि

ओमित्येकोचिताकारो विकारपरिवर्जितः ।

(प्रह्लादविश्रान्ति ५ । ३५ । १)

अथर्वशिख-उपनिषद्‌में ओङ्कारके स्मरणसहित समाधिके एक क्षणको भी सैकड़ों यज्ञोंसे बढ़कर बतलाया है—'क्षणमेकं क्रतुशतस्यापि' [३ । १०] इसमें तथा अथर्वशिर उपनिषद्‌में प्रणवके अनेक नामोंकी व्युत्पत्ति भी बतलायी गयी है—'ऊर्ध्वमुन्नयति इति ओङ्कारः । प्राणान् परमात्मनि प्रणाययति इति एतस्मात् प्रणवः । तारणात् तारः । सर्वे देवा संविशन्ति इति विष्णुः ।' इत्यादि । अर्थात् उत्थानकारक होनेके कारण इसे ओङ्कार, प्राणको परमात्मामें लीन करानेके कारण प्रणव, सभी प्रकारके क्लेश-भय आदिसे तारनेके कारण तार, सबोंको बढ़ानेके कारण ब्रह्म, विष्णु, प्रकाश तथा महादेव आदि इसके नाम हैं । शिवपुराण १–१५, स्कन्द० काशीखण्ड ७३ । ८९—११९, नागरखण्ड १९९ तथा बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति पृ० २२६२–६३ (मोरसंस्करण) में भी प्रणवके अगणित नामोंकी व्याख्या है ।

सर्वदुःखसमुत्थानाद् भवग्राहार्णवाकुलात् ।
चिन्तितस्तारयेद्यस्मात्तेन तारो निगद्यते ॥

(बृ० यो० २ । १२०)

इस ओङ्कारके ध्यानकी भी शास्त्रोंमें बड़ी महिमा है—

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
क्षणमेकाग्रचित्तस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

(गरुडपु० ३२४ । २०, काशीखण्ड ४१ । ४२, पैङ्गलोपनिषद् ३ । १२)

उपनिषद्, योगदर्शन, पञ्चदशी आदिमें इसे धर्ममेघ कहा गया है; क्योंकि यह चतुरस्र अमृतमयी पुण्यधाराका वर्षण करता है ।

'ओमभ्यादाने' (पा० ८ । २ । ८७) आदिके अनुसार प्रणव सदा ही दीर्घ, प्लुत तथा अतिदीर्घ उच्चारणीय है । अवयवांशकी दृष्टिसे इस प्रणवको पुनः त्र्यक्षर, चतुरक्षर तथा षोडश मात्राओंतक भी माना है । * बाष्कलके मतसे ॐकारकी एक ही मात्रा होती है । रुचकायन इसकी दो मात्रा, नारद २½, मौद्गल ३, वसिष्ठ ४, मनु ३, पराशर ४ और याज्ञवल्क्यजी इसे अमात्र मानते हैं । अमात्र या एकाक्षरका तात्पर्य दीर्घप्रणव [illegible] भी है । दीर्घप्रणव-जपसे ही निरालम्बभावना या समाधिसिद्धि होती है । दीर्घप्रणवमें एक ही उच्चारण होता है ।

प्रणवको वेदादि, वेदसार आदि भी कहा जाता है । पहले इसे उच्चारण करके ही वेदारम्भ, पाठारम्भ, मन्त्रारम्भ आदि करनेका विधान है—

ओंकारः पूर्वमुच्चार्यस्ततो वेदमधीयते ।

अन्तमें भी इसीका उच्चारण कर वेदादि बन्द करनेका विधान है । यदि आदि-अन्तमें इसका उच्चारण नहीं किया जाता तो वेदपाठ नष्ट हो जाता है । मन्त्रमें भी मन्त्रता नहीं आती—

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा ।
स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ॥

(मनु० २ । ७४; विष्णुधर्मो० ३ । २३३ । ७२)

इसलिये प्रत्येक वैदिक-तान्त्रिक आदि मन्त्रके प्रारम्भमें ही ॐकार लगानेका विधान है । इससे भी इसकी अत्यधिक महत्ता सुस्पष्ट है ।

ऐतिहासिक दृष्टिसे भी (सर्वादि, वेदादि, गणेशादिसे भी) ॐकारके सर्वप्राचीन प्रथम भगवन्नाम होनेकी बात आती है—

ॐकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ ॥ *

मनुने इसके अ, उ, म—इन तीन अक्षरोंको ऋक्, यजुः, साम—इन तीनों वेदोंसे दूहकर निकाला बतलाया है (२ । ७५) । बृहन्नारदीयमें 'अ'कारको ब्रह्मा, 'उ'कारको विष्णु तथा 'म'कारको शिवका रूप माना है—

अकारं ब्रह्मणो रूपमुकारं विष्णुरूपवत् ।
मकारं रुद्ररूपं स्यादर्धमात्रं परात्मकम् ॥

'बिधि हरि हर मय बेद प्रान सो'

—में गोस्वामी तुलसीदासजीने 'बेद-प्रान' से ॐका का ही स्मरण किया है तथा इसी वचनका ध्यान दिला है । पुष्पदन्तने शिवमहिम्नःस्तोत्रके २७वें श्लो 'ओमिति पदम्' में तथा इसकी व्याख्यामें मधुसूद सरस्वतीने ॐकारको ब्रह्मा, विष्णु आदि देवत्र

---

* आद्यं यत्त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन् प्रतिष्ठिता ।
स गुह्योऽन्यस्त्रिविद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ॥

(मनु० ११ । २६५)

तथा बृहत्पाराशरस्मृति १२ । २६५, योगचूडामणि, आत्मबोध योगतत्त्व० १३४—इत्यादि ।

* बच्चे भी जन्मते, रोते, बोलते 'ॐ' आदि कहते है 'सूतसंहिता' यज्ञवैभवखण्डमें 'हाँ' के लिये भी 'ॐ' कहने निर्देश किया गया है ।

भूरादि तीनों लोक, तीनों वेद, अवस्था, प्रकाश, काल आदि धारण दिखाया है। बृहत् पाराशरस्मृतिमें भी—

> प्रणवो हि परं तत्त्वं त्रिवेदं त्रिगुणात्मकम्।
> त्रिदैवतं त्रिधामं च…
> त्रिमात्रं च त्रिकालं च त्रिलिङ्गं कवयो विदुः।

—इत्यादिसे यही कहा है।

योगियोंके विचारसे निष्कल ॐकारमें ११ मात्राएँ हैं। इनके नाम अ, उ, म, विन्दु, अर्द्धचन्द्र, निरोध, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी और समना हैं। वे ज्योतिरूप ॐका दर्शन करते हैं। समस्त विश्व प्रणवमें स्थित है। अन्तमें दृश्य, दर्शन, द्रष्टा—त्रिपुटीका इसीमें लय होता है—

> 'ॐकारमात्रं सचराचरं जगत्।'
> (अध्यात्मरा० उत्तर० रामगीता ५। ४८)

माण्डूक्यादि सभी उपनिषदोंमें मुख्यतया केवल इसीका वर्णन है। योगियोंकी पद्धतिसे विन्दु आदिके बाद समनाकी साधना कर विशुद्ध कैवल्यदशामें प्रवेश होता है। वहाँ सभी भेदोंका सर्वथा अन्त हो जाता है। इसीको परागति, कैवल्य, निर्वाण, ॐकार-प्राप्ति आदि कहा गया है। पद्मपादाचार्य आदिके 'प्रपञ्चसार', 'प्रणवपटल', 'प्रणवार्थ-दीपिका' आदि ग्रन्थोंमें प्रणवतत्त्वका विस्तृत सरस निरूपण है।

प्राचीन वाङ्मयमें नाम और प्रार्थना

(लेखक—राष्ट्रपति-पुरस्कृत डॉ० कृष्णदत्तजी भारद्वाज एम्०ए०, पी-एच्०डी०, आचार्य)

अति प्राचीन युगमें जब मानवका मन सत्त्वगुण-भूयिष्ठ था, श्रीभगवान्‌के अनेक नाम महर्षियोंकी ऋतम्भरा प्रज्ञामें प्रस्फुरित हुए। प्रभु तो वस्तुतः एक ही हैं, परंतु वे अनेकानेक कल्याण-गुणोंके आगार हैं। उन्हीं गुणोंको प्रकट करनेके लिये अनेक नामोंका प्राचीन तत्त्ववेत्ताओंने निरूपण किया। उन साक्षात्कृतधर्मा तत्त्वद्रष्टाओंमें कोई किसीसे ज्ञान-राशिमें न्यून नहीं था। परंतु उनकी शब्दावली तो हमारी परिमित अक्षरोंवाली वर्णमालाके ही ध्वनि-विशेषोंसे ग्रथित थी। जिस प्रभुका उन्होंने दर्शन किया, उसके दिव्य सद्गुणोंकी अभिव्यक्तिके लिये उन्होंने अपने शब्द-कोशोंको टटोला, तो 'मधु', 'प्राण', 'ज्योति' और 'आकाश' जैसे शब्दोंके ही अवलम्बनसे उन्होंने संतोष किया। भावुक प्रेमी सदैव अपने प्रेमपात्रको 'प्राण' और 'जीवन' जैसे शब्दोंके प्रयोगद्वारा सम्बोधित करना चाहता है। वास्तवमें इन शब्दोंसे बढ़कर (जो कि लौकिक हैं) उस अलौकिक तत्त्वके सम्बोधनके लिये और कोई शब्द दिखायी भी तो नहीं देते।

अपने उपास्यके उपासनमें उन प्रज्ञ उपासकोंको एक दिव्य माधुर्यकी अनुभूति हुई। अनुभूति क्या थी—प्रेमकी अपूर्व मदिरा थी, जिसके सतत प्रवाहमें अहर्निश अवगाहन करते रहनेसे वे नित्य-निरन्तर मदिर-अवस्थामें समाहित रहा करते थे। जब कभी वे व्युत्थित होते तो अपनी अनुभूतिको, जो कि दिव्य और अलौकिक थी, अपने अन्तेवासियोंके सम्मुख लौकिक शब्दोंमें अभिव्यक्त करते तो वे उसके लिये 'मधु' शब्दका प्रयोग करते थे—

> **विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः।** (ऋग्वेद १। १५४। ५)

कभी वे अनुभव करते थे कि जगतीमें प्राचीसे प्रतीचीतक, उदीचीसे अवाचीतक, सर्वत्र उस प्रभुके कृपा-कटाक्षसे जीवन-रस आ रहा है जिसके सीकर-मात्रसे अनेकानेक जीव प्राणवान् हो रहे हैं। उन्होंने स्वयं अपने अन्तस्‌में भी उसीको विराजमान देखा, तो उनकी वाग्झरीसे उस परम-तत्त्वके लिये 'प्राण', 'प्राण'की झङ्कार झङ्कृत हो उठी।

वैदिक तत्त्ववेत्ताओंने कभी दर्शन किया कि वह मधुमय और प्राणमय तत्त्व तमोमयी प्रकृतिसे नितान्त विलक्षण है। उसमें अज्ञानान्धकारका अणुमात्र भी सम्पर्क नहीं है। वह तो दिव्य तेजस्विनी सत्ता है। उन्हें विशद प्रतीति हुई कि उस अनन्त—द्युतिमान्‌की ही आभासे भुवन-भास्कर सूर्य, निशा-नाथ चन्द्र और अग्निदेव [illegible]

१. ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा। (योगसूत्रम् १। ४८)
…अन्वर्था च सा, सत्यमेव बिभर्ति, न तत्र विपर्यासगन्धोऽप्यस्ति…… (व्यासभाष्यम्)

२. (अ) [illegible]
([illegible] १। ११। ८)
(आ) [illegible]
(इ) [illegible]

कल्याणकी सुविधाके लिये महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने भगवान्‌के प्राचीन-महर्षि-प्रतिपादित उन सहस्रनामोंका स्तोत्र रच दिया है, जिनका पितामह भीष्मने धर्मराज युधिष्ठिरको उपदेश दिया था। इन नामोंका जप वहाँ सर्वोत्तम धर्म बताया गया है[१९]। शास्त्रोंमें भगवान्‌के अन्यान्य रूपोंके सहस्रनामस्तोत्र भी उपलब्ध हैं, जिनका इच्छानुसार जप किंवा पाठ करके साधक कल्याणभागी बन सकते हैं।

प्रार्थनाकी सार्वभौमता

नामके जपके साथ-साथ उसके अर्थका भी अनुसंधान करना चाहिये[२०]। भगवान्‌के अनेकानेक नामोंमेंसे अपने अभीष्ट केवल एक नामका भी जप किया जा सकता है और एकसे अधिक नामोंका भी। भगवन्नामावलीके अर्थका अनुसंधाता जीव जब अपने आराध्यकी गरिमाकी ओर निहारता है, तब उसे अपनी लघिमा भी समझमें आ जाती है। वह कहता है, 'कहाँ वह अनन्त ब्रह्माण्डोंका कर्त्ता, भर्त्ता, हर्त्ता, निखिल हेय-प्रत्यनीक, कल्याण-गुण-महार्णव; और कहाँ मैं अनन्त जन्म-जन्मान्तरोंसे प्रपञ्चकी सुख-दुःख-मोह-तरङ्गिणीमें निमज्जनोन्मज्जन-निमग्न तुच्छ जीव। वह अपने प्रभुकी महा-शक्तिसम्पन्नताके समक्ष अपनी निर्बलताको समर्पण कर देता है। इस आत्मसमर्पणके समय वह गाता है—

प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्। (ऋग्वेद ७। १००। ३)

अर्थात् भगवान् विष्णु सभी बलवानोंसे बलवत्तर हों। यह वचन भगवान्‌के लौकिक 'जय-जयकार'का वैदिक रूपान्तर है।

यह समस्त विश्व श्रीभगवान्‌की एकपाद्‌विभूति है[२१]। इनकी ही लीलासे इसके सृष्टि-स्थिति-प्रलय होते रहते हैं[२२]। यह जानकर सात्त्विक जीव उन्हींकी शरण ग्रहण करता है[२३]। वह जो चाहता है, उन्हींसे माँगता है। त्रिभुवनमें कोई जीव ऐसा नहीं, जिसे याचनाकी आवश्यकता न हो। कोई धर्मकी याचना करता है, तो किसीको अर्थकी ला[illegible] कोई अपनी कामनाओंकी पूर्त्ति चाहता है, तो [illegible] हृदयमें मोक्षकी अभिलाषा है। अपने अभीष्टकी याच[illegible] प्रार्थना है। संसारमें ये चार ही पुरुषार्थ हैं। समस्त [illegible] अभिलाषाएँ इनमें ही अन्तर्भुक्त हैं। इनकी ही प्राप्ति[illegible] वे प्रार्थना किया करते हैं। यह स्वाभाविक है। ध्यान [illegible] ही रखना चाहिये कि अर्थ-निमित्तक और काम-नि[illegible] प्रार्थनाएँ धर्म-सङ्गत ही हों। यही आर्य-संस्कृतिकी मानव[illegible] देन है। पुरुषार्थोंकी दृष्टिसे चतुर्विध प्रार्थनाके उदाहरण दिये जा रहे हैं।

धर्म-निमित्तक

ॐ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि
तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥
(शुक्ल यजुर्वेद १। [illegible])

अर्थात् हे धर्माध्यक्ष अग्निदेव! मैं नियम-धर्मका पा[illegible] करूँगा। मैं उसका निर्वाह कर सकूँ। मुझे (आपकी दयासे[illegible] उसमें सिद्धि प्राप्त हो। मैं असत्यका परित्याग कर सत्य[illegible] अङ्गीकार कर रहा हूँ।

अर्थ-निमित्तक

(अ) **दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या**
महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।
उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा
प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥
(शुक्ल यजुर्वेद ५। १[illegible])

(आ) दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या
महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यै-
रा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥
(अथर्ववेद ७। २६। ८)

अर्थात् अयि भगवन् विष्णो! आप इस धरा-धाम[illegible] अथवा उपरितन गगन-मण्डलसे अथवा मध्यम अन्तरिक्ष[illegible] धन-सम्पत्ति लेकर अपने वाम और दक्षिण कर-कमल पूर्ण कर लीजिये और तत्पश्चात् चाहें तो वाम करसे अथवा दक्षिण करसे ही वह धन-सम्पत्ति मुझे प्रदान कीजिये।

---

१९. एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।
यद् भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ॥
(श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् ८)

२०. तज्जपस्तदर्थभावनम्। (योगसूत्रम् १। २८)

२१. पादोऽस्य विश्वा भूतानि। (ऋग्वेद १०। ९०। ३)

२२. लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्। (ब्रह्मसूत्रम् २। १। ३३)

२३. अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥
(भगवद्गीता १०। ८)

देवताओंने भी प्राचीन कालमें यजनके द्वारा उस इज्य पुरुषका समाराधन किया था—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः। (ऋग्वेद १ । १६४ । ५०)

भगवान्‌के पूजनके द्वारा ही धन-धान्य, पुत्र-पौत्र आदि लौकिक सम्पत्ति-प्राप्तिकी प्रथा प्राचीनकालमें प्रचलित थी—

(अ) रयिश्च मे रायश्च—यज्ञेन कल्पन्ताम्।
(शुक्ल यजुर्वेद १८ । १०)

(आ) व्रीहयश्च मे यवाश्च मे—यज्ञेन कल्पन्ताम्।
(शुक्ल यजु० १८ । १२)

(इ) सूश्च मे प्रसूश्च मे—यज्ञेन कल्पन्ताम्।
(शुक्ल यजु० १८ । ७)

काम-पूर्ति-निमित्तक

धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे॥
(श्रीसूक्तम्)

अर्थात् हे लक्ष्मीमाता ! आपकी प्रसन्नतासे मुझे धनकी प्राप्ति हो । हे देवि ! मेरे मनकी सभी कामनाएँ भी पूर्ण हों ।

मोक्ष-निमित्तक

असतो मा सद् गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मा अमृतं गमय । (बृहदारण्यक १ । ३ । २८)

अर्थात् प्रभो ! प्रपञ्चसे बचाकर हमें प्रपञ्चातीत पदपर प्रतिष्ठापित कीजिये, अज्ञानान्धकारसे निकालकर हमें ज्ञानका आलोक प्रदर्शित कीजिये एवं **पुनर्जन्म और पुनर्मरणके चक्रसे निवृत्त करके हमें दिव्य अमृत-रसका पान करा** दीजिये ।

भगवत्प्रीति-निमित्तक

कतिपय उदारमना व्यक्ति मोक्षकी भी अभिलाषा न करते हुए भगवान्‌की प्रार्थना केवल उनकी प्रीतिके ही लिये करते हैं । ऐसे भक्त कहते हैं—

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
(ऋग्वेद ७ । १०० । ७)

अर्थात् अयि विष्णो ! मैं आपके निमित्त यह वषट्[24] अर्थात् उपायन निवेदन कर रहा हूँ । हे यज्ञाधार ! कृपा करके मेरे अर्पित किये इस नैवेद्यको स्वीकार कर लीजिये ।

अहेतुक भक्त अपनी प्रार्थनाके विनिमयमें किसी सांसारिक पदार्थकी कामना नहीं करता । वह तो बस यही कहता है कि हे प्रभो ! मेरी ये सुन्दर स्तुतियाँ आपके आमोदकी ही वृद्धि करें—

वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे॥
(ऋग्वेद ७ । १०० । ७)

व्यक्ति, परिवार, ग्राम, नगर, राष्ट्र और विश्वके हितके दृष्टिकोणसे पाँच प्रकारकी प्रार्थनाएँ हैं जिनके वैदिक निदर्शन संक्षेपमें नीचे दिये जा रहे हैं ।

वैयक्तिक

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ (शुक्ल यजुर्वेद ३४ । ६)

लेकर रश्मि-जालको करमें और सजाकर कोड़ेको ।
चतुर सारथी जिधर चाहता उधर चलाता घोड़ेको ॥
इसी तरह मन घुमा रहा है मानवको भी यहाँ वहाँ ।
ऐसा कोई स्थान नहीं है, नहीं पहुँचता शीघ्र जहाँ ॥
अजर-अमर है प्रेरक है जो जन-जनके इन हृदयोंका ।
मेरे उस मनमें हो मंगल-पूर्ण उदय शिव भावोंका ॥

पारिवारिक

(अ) मित्रावरुणनन्दन महर्षि वसिष्ठकी एक वैष्णव-सूक्तकी समाप्तिमें उक्ति है—

यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।
(ऋग्वेद ७ । १०० । ७)

अर्थात् हे भगवद्-विभूतियो ! आपलोग हम सबकी सदा रक्षा कीजिये । हमारा कल्याण हो ।

(आ) ऋग्वेदीय श्रीसूक्तके आनन्दादि ऋषियोंमेंसे प्रत्येककी भावना है—

तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्॥

अर्थात् हे जातवेद देव ! आप माता लक्ष्मीदेवीको मेरे घरमें लिवा लाइये । वे यहाँ विराजमान हों । मेरे इस घरको छोड़कर वे कभी न जायँ । उनके यहाँ आनेसे मुझे प्रचुर सुवर्ण, गाय-घोड़े, दास-दासी और पुत्र-पौत्रोंकी प्राप्ति हो ।

(इ) ...**पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्...॥** (यजुर्वेद ३ २)

---

२४. वह् प्रापणे धातुः+डषट प्रत्ययः । उह्यते प्राप्यते भगवत्सेवायाम् इति वषट् ।

अर्थात् हम सब लोग सौ वर्षतक जीवित रहें, नेत्रोंसे देखते रहें, कानोंसे सुनते रहें, मुखोंसे बोलते रहें और कभी दीन दुःखी न हों।

(६) भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः। (शुक्ल यजुर्वेद २५ । २१)

अर्थात् हे देवगण! हम सब लोग कानोंसे कल्याणकारिणी वार्ताएँ सुनें। हे आराध्यगण! हम सब लोग नेत्रोंसे मङ्गलमयी घटनाएँ देखते रहें। हमारे अङ्गोंमें कम्पादि रोग न हों। आपकी स्तुतियाँ करते हुए हमलोग अपने शरीरोंमें देव-प्रदत्त आयुका उपभोग करें।

ग्राम-नगर-निमित्तक

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने
क्षयद्-वीराय प्र भरामहे मतीः।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे
विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्॥
(ऋग्वेद १ । ११४ । १)

अर्थात् अङ्गिराके पुत्र महर्षि कुत्स कह रहे हैं कि हम सब लोग अपनी सम्मिलित प्रार्थनाओंको भगवान् शंकरके समक्ष समर्पित कर रहे हैं। वे ओजस्वी हैं, जटाजूटधारी हैं और हैं वीरगण-सेवित। उनकी कृपासे हमारे मनुष्यवर्ग और पशुवर्गमें सर्वथा सुमङ्गल हो। इस गाँवमें सभी लोग हृष्ट-पुष्ट रहें, नीरोग रहें।

राष्ट्रिय

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्। (शुक्ल यजुर्वेद २२ । २२)

अर्थात् (भावानुवाद)

हे प्रभो! इस देशके सब ब्राह्मणोंमें ज्ञान हो।
ब्रह्मका विज्ञान हो सद्-बुद्धि विद्या-मान हो॥
क्षत्रियोंमें शूरता हो, वीरता हो धीरता।
शस्त्रचालनमें निपुणता और हो गम्भीरता॥
वैश्य भर दें देशको व्यापारके आनन्दसे।
हों वाटिका उपवन सुशोभित मूल, फल औ कन्दसे॥
हों कलाकौशलनिरत सब शूद्र भी नित नेमसे।
सुव्यवस्था देशमें स्थापित करें मिल प्रेमसे॥
गायें यहाँकी हों घटोध्नी दूध दधि घृत दें हमें।
पीयूषकी नदियाँ बहा दें, शक्ति दें, बल दें हमें॥
औ बैल हलके भारको तो भार ही मानें नहीं।
होवें सबल ऐसे कि जिससे सुख बढ़े हों सब कहीं।
घोड़े यहाँके दौड़नेमें वायुसे बातें करें।
होवें स्त्रियाँ निज शीलसे जो देशको उन्नत करें॥
होवें युवक जयशील वाग्मी सभ्य उत्साही तथा।
औ इन्द्र वर्षा देशमें करते रहें, हर दें व्यथा॥
गेहूँ चना चावल तिलादिक अन्नकी श्रीवृद्धि हो।
आरोग्यकारी औषधोंसे स्वास्थ्यकी भी सिद्धि हो॥
इस विश्वमें सर्वत्र वार्ता देशके सम्मानकी।
फैले; तथा दीर्घायु हो, हे ईश! इस यजमानकी॥

विश्व-जनीन

त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्या
मप्रयुतामेवयावो मतिं दाः॥
(ऋग्वेद ७ । १०० । २)

अर्थात् हे मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले विष्णो! सर्वव्यापक प्रभो! आप प्रत्येक व्यक्तिको मति अर्थात् मनन किंवा सदसद्-विवेचनकी शक्ति दीजिये। एवं वह सद्-बुद्धि भी दीजिये जिससे विश्वकी जनताका कल्याण हो।

प्रार्थना-स्थल

प्रार्थना करनेके लिये कोई एक स्थान नहीं बताया जा सकता। जिस पवित्र स्थानमें—नदी-तट, गिरि-शिखर, एकान्त कन्दरा, सर-कूल, उपवन-प्रदेश, तीर्थ-स्थान, अथवा गृहैकदेशमें बैठकर चित्तकी चञ्चलता दूर होकर उसमें एकाग्रताका संचार हो, वहाँ ही प्रार्थना करनी चाहिये। देव-मन्दिर इस कार्यके लिये सर्वोत्तम स्थल हैं। वैदिक कालसे ही देव-स्थानोंके निर्माणकी परम्परा चली आ रही है। षड्-विंश ब्राह्मण (५-१०) में स्पष्ट ही देवतायतनोंका और दैवत-प्रतिमाओंका उल्लेख है। महर्षि अथर्वाने असंदिग्ध पदावलीमें ऋषियोंके देवाधिष्ठित प्रस्तर[२५] शालग्राम अथवा किसी अन्य शिलामयी भगवन्मूर्तिको प्रणाम किया है—

ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय।
(अथर्ववेद १२ । २ । ६)

---

२५. पाषाण-प्रस्तर-ग्रावोपला-ऽश्मानः शिला दृषत्। (अमरकोषः २ । ३ । ४)

वर्तमान युगमें प्रार्थनाकी आवश्यकता

प्रार्थनाकी उपादेयता सभी युगोंमें रही है। महान् ऋषि-मुनि संत-महात्मा समय-समयपर श्रीभगवान्‌के नामका आश्रय लेकर स्वयं उनके पादपद्मोंमें अपनी प्रार्थनाएँ समर्पित करते रहे हैं और जनतासे भी कराते रहे हैं। सच्चे हृदयकी प्रार्थना सदा सफल हुई है और आगे भी होती रहेगी। आज [illegible] प्रार्थनाकी [illegible] विशेषतः अपने देशको [illegible] श्रीभगवान्‌के चरण कमलोंमें [illegible] और भ्रष्टाचारकी घन-घटा हट [illegible] पर आस्तिकता और सदाचारके [illegible] सर्वत्र शान्ति और सद्‌भावनाका पुनरुज्जीवन हो।

श्रीभगवन्नामस्मरण और प्रार्थना

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा शास्त्री सारस्वत, विद्यावागीश, विद्याभूषण, विद्यानिधि)

तीन काण्ड हुआ करते हैं, १—कर्मकाण्ड, २ उपासनाकाण्ड और ३ ज्ञानकाण्ड। इनमें पहलेके दो काण्ड चित्तकी शुद्धिके लिये अवलम्बित किये जाते हैं। इससे पुरुष ज्ञानकाण्डका अधिकारी हो जाता है। उपासनाकाण्ड मध्यका काण्ड होनेसे देहली-दीपक-न्यायसे दोनोंसे सम्बन्ध रखता है और दोनोंमें लाभ पहुँचाता है; अतएव उपासनाकाण्डका महत्त्व सर्वोपरि है। इसी उपासनाकाण्डका ही अङ्ग भक्ति वा प्रार्थना हुआ करता है।

पुरुष बड़ा अभिमानी होता है। समझता है कि मैं सभी कुछ कर सकता हूँ। मुझसे जो टक्कर लेगा, मैं उसे पीस डालूँगा। इसी अभिमानवश वह किसीकी सहायता लेनेमें अपनी हीनताका अनुभव करता है। यही अभिमान बढ़कर नास्तिकताको प्रश्रय देनेवाला सिद्ध हो जाता है। परंतु जब उसपर आपत्ति आती है, तब वह भी अपने-आपको असहाय अनुभव करता है; तब वह किसी शक्तिकी सहायताकी अपेक्षा अनुभव करता है। जब नास्तिक रूस हिटलरके आक्रमणके सङ्कटमें फँस गया था तब उसने भी उन दिनों धार्मिक स्वतन्त्रताकी घोषणा करके उस महती शक्ति भगवान्‌के आगे घुटने टेक दिये थे। तभी उसे सफलता भी मिली।

बहुत-सी आपत्तियाँ ऐसी आ पड़ती हैं; अथवा पुरुषके जीवनमें ऐसी गाँठें आ पड़ती हैं, जिनका खोलना वा सुलझाना उसके लिये कठिन हो पड़ता है। वह भी देखता है कि 'मेरा कोई साथी भी इस समय मेरा सहायक सिद्ध नहीं हो सकता है; अब मैं किसकी सहायता लूँ।' अन्तमें वह इस संसारसे ऊपर उठकर दृष्टि डालता है; तब उसे एक शक्तिका अनुभव होता है और वह उसकी ओर झुकता है और चाहता है कि वह शक्ति मेरी सहायक बन जाय।

पर वह शक्ति साक्षात् तो सामने होती नहीं, तब वह अपने हृदयके तारका उससे सम्बन्ध (कनेक्शन) जोड़ता है; तब वह अपने आपको अकेला न समझकर उस आपत्तिको हटानेमें अपनेको सक्षम समझने लग जाता है। बस, यही भगवन्नाम-स्मरण और प्रार्थनाका मूल हो जाता है। यह मानुषी शक्ति न होकर दैवी शक्ति होती है, जो उस दीन प्रार्थनाको सुनती भी है। तभी तो कहा है—

'आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥'

(भगवद्गीता ७। १६)

इसमें भक्तोंके चार भेदोंमें 'आर्त'का प्रथम स्थान है।

वह महाशक्ति अङ्गी होती है। पर अङ्गीकी सेवा किसी अङ्गद्वारा ही सम्पन्न होती है। सो उसके अङ्ग देवता ही होते हैं। जैसे कि वेदमें कहा है—

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवान् एके ब्रह्मविदो विदुः ॥

(अथर्ववेद सं० १०। ७। २७)

भगवद्गीतामें भी कहा है—

'पश्यामि देवांस्तव देव देहे······
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थम्।'

(११। १५)

'पश्यादित्यान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।'

(११। ८)

—इसलिये सनातनधर्ममें भी देवपूजाका प्रमुख स्थान है। वेदमें भी वही देवपूजा भरी हुई है।

जैसे हमें किसीकी सेवा-पूजा करनी है तो वह अङ्गी तो उसका आत्मा होता है, पर वह सूक्ष्म होता है, हमारी पकड़में नहीं आ सकता। अतः हम उसकी सीधी तो पूजा कर

नहीं सकते, उसके किसी अङ्गको ही उस अङ्गीकी सेवाका माध्यम बनाते हैं। उस अङ्गकी पूजासे प्रसन्न आत्मारूप अङ्गी ही होता है; इसी प्रकार जब हम भगवान्‌की पूजा-प्रार्थना करना चाहते हैं, तब अतिशयतः सूक्ष्म 'नेति' 'नेति' होनेके कारण वह तो हमारी पकड़में आ नहीं सकता; अतः हमें उस अङ्गी (गीता १० । २०) की पूजाके लिये उसके अपने इष्ट अङ्ग देवविशेषके माध्यमसे ही उस अङ्गी भगवान्‌की पूजा करनी पड़ती है।

यह बात अवश्य स्मरण रखनी चाहिये कि हमें सेवा-पूजा तो भगवान्‌की ही करनी है; पर उसमें माध्यम उस भगवान्‌के किसी अङ्गको ही रखना पड़ता है। यह देवपूजा भगवद्गीतानुसार 'साध्य' नहीं होती, 'साधन' होती है—भगवत्पूजाका माध्यम होती है। जैसे हमें गुरुजीकी पूजा करनी है, तो हम उनके अङ्ग—गलेमें ही पुष्पमाला डालते हैं। वहाँ अङ्ग-पूजा उद्दिष्ट नहीं होती, किंतु अङ्गविशेषकी पूजासे अङ्गकी ही पूजा उद्दिष्ट होती है; इसी प्रकार अङ्गी भगवान्‌की पूजाके लिये अङ्ग देवविशेषकी पूजा ही करनी पड़ती है। इससे भगवान् ही प्रसन्न होते हैं। इस विषयमें स्पष्टता देखनेके इच्छुक महोदय हमारी 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमालाका* पञ्चम और अष्टम पुष्प देखें। अस्तु।

उस भगवान्‌की पूजा वा भक्तिके भी बहुत-से उपाय होते हैं; उसमें—

> श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
> अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
> (श्रीमद्भागवत ७ । ५ । २३)

भगवान्‌का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, पूजन, वन्दना, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—ये उपाय रक्खे गये हैं। इनमें कीर्तन-स्मरण भी भक्तिके अङ्ग रूपमें आये हैं। कीर्तन या स्मरण भगवान्‌के नामका ही होगा—यह स्वाभाविक है। इसलिये नामकी उपासना वेदके उपनिषद्भागमें भी आयी है—'**नाम उपास्स्व**' (छान्दोग्य० ७ । १ । ४)।

वेदके मन्त्रभागमें भी कहा है—'**यत् ते नाम सुहवम्**' (अथर्व० ७ । २० । ४) 'तेरा नाम बुलानेमें अच्छा है'; अथर्ववेदमें अन्यत्र भी कहा है—'**नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषस**।' (१० । ७ । ३१) (भक्त सूर्योदयसे पूर्व, उषाकालसे पूर्व भगवान्‌के नामके साथ दूसरे नामको भी पुकारता है।) इसी कारण भगवद्गीतामें भी कहा है—'**तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च**' (८ । ७) भगवान् कहते हैं कि 'सब समय मेरा स्मरण करते चलो और संसारी व्यवहाररूप युद्ध भी करते चलो।'

कुछ लोग कहते हैं कि 'भगवान्‌का नाम लेते रहना बेकार बनना है।' पर यह ठीक नहीं। भगवान् बेकार बैठनेको नहीं कहते। वे तो कहते हैं—'भगवान्‌का स्मरण करते जाओ और संसारी काम भी करते जाओ।' यहाँ दोनों बातें कही हैं। '**सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः**' (९ । १४) यहाँ भगवान्‌का सतत—निरन्तर (सब कामोंमें) कीर्तन बताया है; और संसारी प्रयत्न करते रहना भी। इसी कारण ऋग्वेद (शा०) संहितामें भी कहा है—

> **इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम्।**
> **इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते।**
> (४ । २५ । ८)

'छोटे-बड़े और मध्यम इन्द्रको बुलाते हैं। रास्तेमें अ[illegible] जाते, उठते-बैठते और कहीं निवास करते हुए भी [illegible] बुलाते हैं। संसारी कार्यरूप युद्ध करते हुए वा खाना-पी[illegible] चाहते हुए भी उसी ऐश्वर्यशाली इन्द्रको बुलाते वा स्म[illegible] करते-कराते हैं।' इन्द्र एक देव हैं। भगवान् श्रीकृष्ण[illegible] उसे अपनी विभूति बतलाया है—'देवानामस्मि वास[illegible]' (गीता १० । २२) अतः इन्द्रसे भगवान् लिये जा सकते हैं। वेदमें अन्यत्र भी कहा है—'**इन्द्रं वयमनूराधं हवाम**' (अथर्व० १९ । १५ । २) '**राधया अनुगतम् इन्द्रं परमैश्व[illegible] शालिनं भगवन्तं कृष्णं वयमाह्वयामः स्तुमो वा**' हम राधासे अनुगत ऐश्वर्यशाली श्रीकृष्ण परमेश्वरकी स्तु[illegible] करते हैं।

इन्हीं वचनोंके समर्थक वेदमें भी कहा है—'[illegible] ते नाम स्वयशो विवक्मि' (ऋ० सं० ७ । २२ । [illegible]) 'हम सदा तेरा यशस्वी नाम कहते हैं, वा कहें।' यहाँपर

* 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमालाके आठ पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं। नवम पुष्प मुद्रणार्थ प्रस्तुत है। ग्रन्थमाला विद्वानोंसे प्रशंसित है। मँगानेके इच्छुक लेखकके नामसे श्रीसनातनधर्मालोक-ग्रन्थमाला कार्यालय, फर्स्ट बी० १९, पो० लाजपतनगर, नई दिल्ली १४से मँगा सकते हैं।

शब्द याद रख लेना चाहिये। 'अस्य नाम महद् यशः' (यजुर्वेद माध्यं० ३२ । ३) यहाँ भगवान्‌के नामको बड़े यशवाला माना है । 'चारु इन्द्रस्य नाम' (ऋ० सं० ९ । १०९ । १४) यहाँ इन्द्रके नामको मनोहर बताया है । 'यत् ते अनाधृष्टं नाम यज्ञियम्' (यजुःमाध्यं० सं० ५ । ९) यहाँ भगवान्‌के नामको यज्ञस्वरूप माना है । 'विश्वा हि वो नमस्यानि वन्द्या नामानि' (ऋ० सं० १० । ६३ । २) यहाँ भगवान् वा देवोंके सभी नामोंको वन्दनीय माना है । कारण यह है कि भगवान्‌के नाम रूढ़ि नहीं होते, किंतु यौगिक होते हैं । गुण-नाम होते हैं, उनमें भगवान्‌के वा भगवान्‌के अङ्गोंके गुण संनिहित होते हैं । उनमें हमें लौकिक-पारलौकिक सभी प्रकारके लाभ मिलते हैं । हमारे चित्तकी शुद्धि होती है । हम उन गुणोंका मनन करते हैं; अंशतः उन्हें अनुसृत करनेकी चेष्टा करते हैं । इससे हमारी जहाँ—भगवान्‌में रुचि बढ़ती है, वहाँ उनसे हम अपने-आपको सुधार भी सकते हैं । तभी तो वेद भगवान्‌के नामकीर्तनके लिये बार-बार कहता है—'मनामहे चारु देवस्य नाम । (ऋ० सं० १ । २४ । १) । 'मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे । (ऋ० सं० ८ । ११ । ५) (हम मनुष्य अमर्त्य (अमर) भगवान्‌के मनोहर नामका मनन करते हैं ।) 'भूरि नाम वन्दमानो दधाति' (ऋ०सं० ५ । ३ । १०) यहाँ नामकी वन्दना आयी है ।

नामका महत्त्व निष्कारण नहीं है । यदि नामकीर्तनमें शक्ति नहीं तो किसीको 'मूर्ख' नाम कहनेसे दूसरा हमसे क्यों चिढ़ जाता है ? 'विद्वद्धुरीण' नाम कहनेसे क्यों श्रोता प्रसन्न हो जाता है ? नाम-नामीका सम्बन्ध अटूट होनेसे, उस नामसे हम नामवालेकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं । इसलिये नामकी महिमा नामीकी महिमासे भी बढ़ जाया करती है । नामकी राशिसे ही तो ज्योतिषीलोग नामवालेका सर्व. भविष्य बतला देते हैं । अतः भगवान्‌के नाम भगवान्‌के समूचे चित्रको हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं । इसी कारण हमारे धर्ममें नामकीर्तनका बहुत प्रचार है ।

भगवान्‌के नामोंका आरम्भमें कीर्तन करके हम फिर भगवान्‌की प्रार्थना करते हैं । प्रार्थनाका महत्त्व भी सर्वविदित ही है । हम पहले कह चुके हैं कि प्रार्थना करनेसे आपत्तिकालमें उत्साहित होकर हम उस आपत्तिको भगा देते हैं; पर शर्त यह है कि वह प्रार्थना निरी स्वार्थकी न हो । उसमें अपना भी हित हो, अपने देश या जातिका भी हित हो; तब वह निःस्वार्थ भावसे होकर लाभदायक सिद्ध हो जाती है ।

लौकिक संस्कृतमें प्रार्थनाके दो लकार रक्खे गये हैं—एक विधिलिङ्, दूसरा लोट् । वेदमें तीसरा लेट् लकार भी प्रार्थनामें आता है । प्रार्थनाके लिये तीन-तीन लकार रखनेसे प्रार्थनाका महत्त्व स्वयं स्फुट हो जाता है । आप वेद (मन्त्र-भाग) को उठा लीजिये; आपको अधिकतर वही लोट्, लिङ् तथा लेट् लकार ही दीखेगा । प्रसिद्ध गायत्रीमन्त्र ही देख लीजिये । अतः प्रार्थनाका वैदिक होना भी सिद्ध हो रहा है । प्रार्थना होती है आर्त अवस्थामें । वह जिस समय हृदयसे निकल रही होती है, उस समय अभिमानका लेश भी नहीं रहता । अतः उस समय हृदय निर्मल एवं निष्कलङ्क होता है । तब वैसी प्रार्थना स्वीकृत भी हो जाती है ।

वैयक्तिक राग-द्वेष छोड़कर अपने राष्ट्र, जाति वा धर्मकी रक्षाके लिये जो प्रार्थनाएँ की जाती हैं, वे सब वेदादि शास्त्रानुकूल हैं । परमात्मासे सच्चे भावसे, दृढ़ संकल्पके साथ विश्वासपूर्वक जो प्रार्थनाएँ की जाती हैं, वे सफल भी हुआ करती हैं । आज विश्वपर संकट छाया हुआ है । हमारे राष्ट्रपर शत्रु दाँत गड़ाये बैठे हैं, इधर कुदृष्टि रक्खे हुए हैं । इससे जहाँ हम अपना पुरुषार्थ करें, सैनिक-बल बढ़ावें; देशके लिये बलिदानार्थ तैयार रहें, वहाँ भय-निवारणार्थ प्रार्थनाएँ भी करें । शत्रुकी भारी संख्या होनेसे, तैयारी अधिक रहनेसे वहाँपर की हुई वैदिक प्रार्थना, मनके अनासक्त भावसे निकली हुई प्रार्थना, दृढ़ संकल्पसे की हुई प्रार्थना अवश्य सफल होगी । प्रार्थनाका मूल नामस्मरण है, सो हमें इधर जुट जाना चाहिये । इसीलिये जगत्‌के हृदय एवं केन्द्रभूत भारत-राष्ट्रके कल्याण चाहनेवाले 'कल्याण'ने भी इस उपस्थित विश्वसंकटके समय उसके निवारणार्थ 'श्रीभगवन्नाम-महिमा और प्रार्थनाङ्क' निकालकर जनताको एतदर्थ जो प्रेरणा दी है, यह बहुत उचित किया है । इस संकटके समय उस संकटके निवारणार्थ जनता अवश्य सहयोग देगी—ऐसा हमें दृढ़ विश्वास है । यह 'कल्याण' का निजी वैयक्तिक कार्य नहीं, यह विश्वका कार्य है; अतः इसमें सभी लोग सहयोग देकर इस विश्वसंकटको दूर करनेमें भगवान्‌के चरणोंमें प्रार्थना करें । उसे भगवान् अवश्य सुनेंगे, सुनेंगे । एवमस्तु ।

भगवन्नाम-संकीर्तन और सद्गुण या सदाचार

(लेखक—श्रद्धेय श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)

शमायालं जलं वह्नेस्तमसो भास्करोदयः ।
शान्त्यै कलेरघौघस्य नामसंकीर्तनं हरेः ॥*

छप्पय

है कलि कलमल खानि पापमें स्वाभाविक रुचि ।
होइ न साधन भजन न जप तप संयम व्रत शुचि ॥
अलप आयु लघुबुद्धि अलप पौरुष वीरज बल ।
कलियुग साधन सरल सरस हरिकीर्तन केवल ॥
जैसे जरती अगिनि कूँ, करै शान्त जल तमहिं रवि ।
त्यों कलि दुरगुन दमन हित, प्रभु कीर्तन कूँ कहहिं कवि ॥

शास्त्रोंमें सर्वत्र भगवन्नाम-संकीर्तनकी महिमा गायी गयी है । वेदोंसे लेकर आधुनिक भाषा ग्रन्थोंतकमें सर्वत्र हरिनाम-महिमा भरी पड़ी है । 'कल्याण'में तथा विभिन्न धार्मिक पत्र-पत्रिकाओं तथा ग्रन्थोंमें शास्त्रोंके अनेक उद्धरण देकर असंख्य लेख इस विषयमें छपे हैं । मैंने भी इस विषयपर अपने ग्रन्थोंमें, प्रवचनोंमें इस-फिरकर वे ही सब शास्त्रीय बातें कही हैं । उन्हींको इस विशेषाङ्कमें अनेकों बार पुनः दुहराया जायगा । अतः उन बातोंका अब मैं पिष्टपेषण क्या करूँ ।

आजकल मैं ग्वारिया बन गया हूँ । एक वर्षका मैंने 'गो-सेवा-व्रत' ले रक्खा है । वृन्दावनमें रहता हूँ, दूध ही पीता हूँ, नित्य प्रातः वृन्दावनसे दूसरी ओर यमुनापार गौओंको लिवा जाता हूँ, वहीं गौओंको चराता हूँ । पचास एकड़ भूमि गौओंके लिये ली है, उसीमें गौओंके लिये खेती कराता हूँ । दिनभर कृषि-गोपालनके ही काममें लगा रहता हूँ । इतना थक जाता हूँ कि सायंकाल लौटकर आते ही सो जाता हूँ । ऐसा जीवन बन गया है, मानो मैंने जीवनमें कभी लिखा-पढ़ा ही नहीं । लेखकी कौन कहे—पत्रोंका उत्तर भी नहीं देता, दूसरोंसे दिलाता हूँ । ऐसी स्थितिमें लेख क्या लिखूँ । बहुत-से बन्धुओंके पत्र आते हैं, कह देता हूँ, 'मैंने बहुत लेख लिखे हैं—उन्हींमेंसे किसीको फिर छाप दो ।' प्रतीत होता है, भाईजीको पता होगा । उन्होंने मुझे विशेषरूपसे आग्रह किया—'वैसे तो ३ बहुत-से लेख मेरे पास हैं । फिर भी इस विशेषाङ्कके लिये नया लेख लिख ही दें । इसीलिये मैं इस लेखको रहा हूँ । इसमें शास्त्रीय गम्भीरता न होगी; क्योंकि तो यह लेख एक ग्रामीण ग्वारियाका है—जैसा भी कुछ यह भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके आदे पालन मात्र है ।

हमारे शास्त्रोंमें सद्गुणोंकी ही महिमा है । सद्गुण समुच्चयका ही नाम 'धर्म' है । आजकल धर्म श सम्प्रदाय, फिरका, मजहब, रिलीजन, अथवा दलके अ प्रयुक्त होने लगा है । जैसे हिंदू-धर्म, मुसलिम, ईसा यहूदी, पारसी, बौद्ध आदि धर्म । किंतु जिसे आर्य—वैदि सनातन वर्णाश्रमधर्म कहते हैं, उसमें और इन सम्प्रदा और मजहबोंमें आकाश-पातालका अन्तर है । आजक धर्मका मोटा अर्थ यह है कि हिंदू वह जो चोटी, जनेऊ तिलक-कण्ठी पहने, राम-कृष्णादि अवतार माने, गङ्गादि तीर्थ पुनर्जन्ममें विश्वास करे, अपने नाम राम-कृष्ण आदिके नाम रक्खे आदि-आदि । सिख वह जो अमृत छक ले, पंच-कका धारण करे, गुरुओंपर—ग्रन्थ साहबपर विश्वास रक्खे । ईसाई वह जो ईसा-बाइबिल माने, बपतिस्मा करा ले । मुसलमान वह जो मुहम्मद साहबको रसूल माने, कुरानपर विश्वास करे, चोटी-जनेऊ न रक्खे । अपने नाम खुदाबक्स, अल्लादीन आदि रक्खे । इसी प्रकार सभी सम्प्रदायोंको समझना चाहिये । जो तिलक-माला धारण न करे, उसे वैष्णवलोग वैष्णव नहीं मानेंगे । यही दशा सभी सम्प्रदायोंकी है । आजकल लिङ्गोंपर—चिह्नोंपर—ऊपरी बातोंपर ही विशेष ध्यान दिया जाता है । प्राचीनमें—या आर्य-वैदिक सनातन वर्णाश्रम-धर्ममें ऊपरी चिह्नोंपर तनिक भी बल नहीं दिया जाता था । वहाँ सर्वत्र सद्गुणोंपर बल दिया जाता था । आज-कल चन्दन-जनेऊ न धारण करे, उसे लोग ब्राह्मण नहीं मानते । प्राचीनकालमें ब्राह्मण कौन—जिसमें शम, दम, तप, शौच, शान्ति, कोमलता, ज्ञान, विज्ञान औ

* जैसे प्रज्वलित अग्निको शान्त करनेमें जल समर्थ है, जैसे घोर अन्धकारको छिन्न-भिन्न करनेमें भुवनभास्कर सूर्य समर्थ हैं, वैसे ही कलिकालके, जो दम्भ, कपट, मद, मत्सरादि दोष-समूह हैं, उन्हें शान्त करनेको भगवन्नाम-संकीर्तन समर्थ है ।

आस्तिक्य आदि सद्गुण हों। क्षत्रिय कौन—जिसमें शौर्य, तेज, धृति, दक्षता, धैर्य, दान और ईश्वरभाव आदि सद्गुण हों।* यम किसे कहते हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहको।† धी, विद्या, सत्य और अक्रोध। धर्म क्या है? धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह,

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

परम धर्म क्या है—सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा, युक्तायुक्त-विचार, शम, दम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, संतोष, समदर्शिता, साधुसेवा, सांसारिक भोगोंसे शनैः-शनैः निवृत्ति, प्रारब्ध-चिन्तन, मौन, आत्मचिन्तन, समस्त प्राणियोंमें अन्न-जलादिका विभाग करके भोजन करना, प्राणिमात्रमें विशेषकर मानवमात्रमें ईश्वरबुद्धि, हरिकथाश्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, पूजा, नमस्कार, प्रभुमें दास्यभाव, सख्यादि भाव और आत्मसमर्पण करना। इन तीस सद्गुणोंवाले धर्मको 'परम धर्म' कहते हैं। इसीका आचरण मानवजातिके समस्त स्त्री-पुरुष समानभावसे कर सकते हैं।‡

इन उद्धरणोंसे यही प्रतीत होता है कि पहले धर्मका लक्षण भीतरी सद्गुणोंका विकास ही माना जाता था। ऊपरी चिह्न—वेशभूषा और चोटी आदिके कर्म-कलाप गौण थे और यह प्राचीन परम्परा [illegible] एक अङ्ग थे। इसीलिये परमार्थके समस्त साधनोंमें यम नियमोंपर सर्वप्रथम बल दिया जाता था। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह—ये यम और शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान—ये नियम। इनमें भी विशेष बल यमोंपर, भीतरी सद्गुणोंपर दिया जाता था। शास्त्रकारोंका कहना है—यमोंका निरन्तर सेवन करो, नियमोंका कदाचित् सेवन करो; क्योंकि नियमोंको तो लोग दम्भके लिये भी सेवन करते हैं। श्रीमद्भागवतमें प्रह्लाद-स्तुतिमें एक बहुत ही बढ़िया श्लोक है। वे कहते हैं—मौन, व्रत, श्रुत, तप, अध्ययन, स्वधर्मपालन, शास्त्रोंकी व्याख्या, एकान्त-वास, जप, समाधि—ये दस साधन अपवर्ग अर्थात् मुक्तिको देनेवाले हैं; किंतु जो अजितेन्द्रिय हैं, उनके लिये ये साधन केवल पेट पालनेके साधन—आजीविकामात्र ही होते हैं; किंतु जो दम्भसे इनको करते हैं, उनके दम्भ न खुलनेतक तो आजीविकाके साधन होते हैं और दम्भ खुलनेपर आजीविकाके भी साधन नहीं होते। अर्थात् ये सद्गुण अजितेन्द्रियोंके लिये व्यर्थ हैं।*

इन सब बातोंसे यही सिद्ध होता है कि कोई भी साधन जबतक इन्द्रियजित् होकर सद्गुणोंका आचरण करते हुए न किया जाय, तबतक सफल नहीं होता। शास्त्रोंमें इसी एक बातपर बार-बार बल दिया गया है। वे तो यहाँतक कहते हैं—चाहे तुम कितने भी धर्मशास्त्र पढ़ लो, चाहे तुम चारों वेदोंको अङ्गोंसहित कण्ठस्थ भी क्यों न कर लो, किंतु यदि तुममें सदाचार-सद्गुण नहीं हैं तो वे सब व्यर्थ हैं। सदाचारहीन पुरुषको समस्त वेद भी पावन नहीं कर सकते।† क्योंकि गुण जितेन्द्रिय गुणज्ञके ही पास जाकर गुण होते हैं। वे दुराचारी गुणरहित अपात्रके पास जाकर उलटे दोष बन जाते हैं। जैसे वर्षाका जल नदियोंमें पड़नेसे ही स्वादिष्ट मीठा पेय बनता है, समुद्रमें पड़नेसे वह मीठा जल भी

---

* शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥
(गीता १८। ४२-४३)

† अहिंसासत्यमस्तेयब्रह्मचर्यपरिग्रहा यमाः (यो० सू० २। ३)

‡ सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्॥
संतोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति॥
(श्रीमद्भागवत ७। ११। ८—१२)

* मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म-
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम्॥
(श्रीमद्भागवत ७। ९। ४६)

† न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः॥
आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।

[illegible] हो जाता है।* जैसे विद्या, धन और शक्ति—ये तीनों [illegible] सद्वस्तु हैं, किंतु सज्जन इनका उपयोग ज्ञान, दान और दूसरोंकी रक्षामें करते हैं। दुर्जन अपात्र इसका उपयोग [illegible], मद तथा दूसरोंको पीड़ा देनेमें करते हैं। अपात्रके [illegible] पहुँचकर सद्गुण भी दोष बन जाते हैं।

इन सबसे ऐसा लगता है कि विना सत्पात्रताके, विना सद्गुणोंके समस्त साधन निष्फल हैं। उनसे लाभके स्थानमें हानि ही होती है। क्या यही बात भगवन्नाम-संकीर्तन [illegible] नाम-जपके सम्बन्धमें नहीं है?

प्रायः तार्किक लोग मुझसे ऐसी ही शंका करते हैं, अनेक उदाहरण देते हैं। झूसी (प्रयाग)में हमने एक वर्षमें अखण्ड वर्ष-व्यापी नाम-जप-संकीर्तन-यज्ञ किया था। उसमें साधक मौनी, [illegible]हारी रहकर सदाचारके नियमोंका पालन करते हुए प्रतिदिन एक लाख नाम-जप और तीन घंटे कीर्तन करते—ऐसा नियम था। एक लड़का छः महीनेतक हमारे यहाँ रहा। वह बार-बार कहता—'श्रीकृष्ण मेरे पास आये, मुझे माखन खानेको दे गये' आदि। जब वह हमारे यहाँसे गया तब एक वकीलके पास गया। उसने मेरा नाम लेकर अपना परिचय दिया कहा—'मैं छः महीने उनके अनुष्ठानमें रहा हूँ, मुझे कहीं १०)-२०) महीनेकी कोई चपरासीकी नौकरी दिला दीजिये।' वे वकील मेरे भी प्रेमी थे। उन्होंने आकर मुझसे कहा—'महाराजजी! आपने 'कल्याण' में लेख लिखा था—

पय अहार फल खाय जपु राम नाम षट मास।
सकल सुमंगल सिद्धि सब करतल तुलसीदास॥

—आपके यहाँ उसने छः महीने रहकर इतना कठिन अनुष्ठान किया, फिर भी वह १०)-२०) रु० की नौकरीको मेरे पास गया। इससे तो लगता है उसे कोई भी सिद्धि नहीं मिली।'

उन्हें मैंने क्या उत्तर दिया, यह तो अब याद नहीं। किंतु इसका उत्तर यही है—'नामजप और कीर्तनसे तथा धनसे कोई सम्बन्ध नहीं। आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—इन पाँचों चीजोंका निश्चय जब प्राणी माताके गर्भमें रहता है तभी हो जाता है। भगवान्का भक्त धनी भी हो सकता है, निर्धन भी हो सकता है। बहुत-से भक्त ऐसे हुए हैं जो जीवनभर दाने-दानेको तरसे हैं। भीख माँगते-माँगते ही उनकी आयु बीती है। दामाजी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं तथा सभी त्यागी संत-महान्त भी। इसके विपरीत पाण्डव, अम्बरीष आदि चक्रवर्ती राजा भी भगवद्-भक्त हुए हैं। इसलिये वह नौकरी खोजने गया, इससे उसका जप-कीर्तन इतने दिनका व्यर्थ गया, यह कोई बात नहीं।'

एकने पूछा—'कोई डाकुओंका दल है, जिसमें डाकू शुद्ध रामानन्दी साधुके वेषमें रहते हैं—रात्रि-रात्रिभर सीताराम-सीतारामका अखण्ड कीर्तन करते हैं, सीतारामकी गगनभेदी ध्वनि लगाते हैं और फिर गाँवोंमें जाकर डाका डालते हैं। उनके लिये आप क्या कहते हैं?' कइयोंने मुझे आकर ताने दिये—'अमुक आपके बड़े अनुयायी बनते हैं, स्थान-स्थानपर अखण्ड कीर्तन कराते हैं, उनके कीर्तनमें अधिकांश स्त्रियाँ आती हैं। इधर कीर्तन होता रहता है, उधर वे स्त्रियोंके साथ पाप करते रहते हैं। इसे तो हम दुराचारका अड्डा मानते हैं।'

मैं इन बातोंको सुनता हूँ और लज्जाके कारण अपना सिर नीचा करता हूँ। कुछ लोग ईर्ष्यावश संदेहमें झूठी बात भी उड़ा देते हैं और कुछ सच्ची भी हैं। किंतु भगवन्नामका आश्रय लेकर पाप करना तो सर्वसम्मत अनर्थ है। इसमें दो मत हो ही नहीं सकते। किंतु शास्त्रकारोंका कहना इतना ही है कि भगवन्नाम-संकीर्तन कैसे भी किया जाय, भगवान्के नामोंका जप किसी प्रकार किया जाय, वह व्यर्थ नहीं जाता। दूसरे साधन तो यदि कुपात्र करे, सद्गुणहीन करे तो उसका साधन व्यर्थ और हानिकारक होगा। किंतु भगवन्नाम भावसे, कुभावसे, संकेतमें, परिहाससे, हेलासे, बहानेसे, भीख माँगनेके लिये, रपट जानेपर, गिर जानेपर कैसे भी लिया जाय उससे मङ्गल ही होगा। नामापराध करते हुए भी नाम जपा जाय तो नामापराध-जैसे अपराधका भी शमन हो सकता है। फिर भी पात्र-कुपात्रके प्रभावसे उसका प्रभाव देरमें पड़ता है।

एक व्यक्ति सदाचारी है, सुपात्र है, सद्गुण उसमें विद्यमान हैं। वह नाम-जप-संकीर्तन करेगा तो सद्गुणोंके कारणसे उसकी वाणीमें ओज, तेज, प्रभाव तथा [illegible] रहेगी। दूसरा कुपात्र है, सद्गुणोंसे रहित है। वह नाम-जप-कीर्तन करेगा तो उसकी वाणीमें उतना ओज, तेज नहीं होगा। उसका प्रभाव भी लोगोंपर न पड़ेगा, किंतु उसका नाम-जप व्यर्थ नहीं जायगा। नाम तो [illegible] [illegible] ही। इस विषयमें एक दृष्टान्त है।

* गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।
आस्वाद्यतोयाः प्रवहन्ति नद्यः समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः॥

फल नरकोंमें करोड़ों वर्ष भोगने पड़ते हैं। मनुष्य मनसे, वचनसे, कर्मसे निरन्तर पाप-ही-पाप करता रहता है। तब आप मनसे, वचनसे, कर्मसे निरन्तर भगवान्‌का नाम लेते रहो, समस्त पाप नष्ट हो जायँगे। आपने एक बार नाम लिया। मान लीजिये, आपके समस्त पाप नष्ट हो गये, फिर पाप न करें और नाम लेते रहें तो फिर पापका फल नहीं भोगना पड़ेगा। आप चाहें कि एक बार नाम लेकर फिर मनमाने पाप करते रहें, तब तो पापका फल भोगना ही होगा। भगवान्‌का नाम व्यर्थ नहीं जायगा। अन्तमें जैसी मति रहती है, वैसी गति होती है। अन्त समयमें भगवन्नाम-स्मरण हो, जिह्वासे भगवान्‌के नाम उच्चारण करते हुए शरीर त्याग करे, जैसे मृगदेहमें जड-भरतजीने अपने शरीरको गंडकी-जलमें स्पष्ट भगवान्‌के नाम लेते-लेते छोड़ा। तब आपकी दुर्गति न होगी। परंतु अन्तसमयमें भगवान्‌का नाम उसीकी वाणीसे निकलेगा, जिसने जीवन-भर भगवन्नाम-जप-कीर्तनका अभ्यास किया हो। परीक्षाके पत्र तो एक ही दिन लिखने पड़ते हैं किंतु कोई चाहे जिस दिन परीक्षा हो उसी दिन लिखकर हम उत्तीर्ण हो जायँ तो यह नहीं हो सकता। परीक्षामें तो वही उत्तीर्ण होगा जिसने पहलेसे अभ्यास किया हो—वही परीक्षाके दिन यथार्थ उत्तर लिख सकेगा। जो मनसे, वचनसे भगवान्‌का सदा स्मरण करते हैं, उनको पाप स्पर्श भी नहीं कर सकता। किंतु जो विना मनके केवल अभ्यासवश भगवान्‌का नाम लेते रहते हैं, उनका भी नामस्मरण व्यर्थ नहीं जाता। इस विषयका एक दृष्टान्त है।

बंगालमें श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी एक बड़े अच्छे नामी भगवद्भक्त हो चुके हैं, वे परमहंस रामकृष्णदेवके समकालीन थे। अभी-अभी बँगलामें उनका पाँच भागोंमें जीवनचरित्र छपा है। उसमें एक प्रसङ्ग है।

एक बार वे वृन्दावनमें रहते थे। उसी समय किसी दिन वे रात्रिमें वृन्दावनकी परिक्रमा कर रहे थे। उन्होंने देखा मेरे सामने कोई माला-झोली लिये वैष्णव चल रहा है। वे आगे बढ़े तो कोई दिखायी नहीं दिया। फिर कुछ देर पश्चात् दिखायी देने लगा। फिर वे आगे बढ़े तो फिर कोई नहीं। वे समझ गये यह कोई प्रेत है। उन्होंने अपने कमण्डलुसे जल लेकर उसके ऊपर छिड़का। वह खड़ा हो गया।

गोस्वामीजीने पूछा—तुम कौन हो?

उसने कहा—प्रभो! मैं गोविन्ददेवजीके मन्दिरका पुजारी था।

गोस्वामीजीने कहा—तब तुम्हारी यह दुर्गति कैसे हुई?

उसने कहा—प्रभो! मैंने भगवान्‌की भेंटका द्रव्य चुराया था, इसीसे मेरी यह दुर्गति हुई।

उन्होंने कहा—तुम झोली-माला भी लिये हुए हो, नाम-जप भी करते हो, परिक्रमा भी दे रहे हो, यह क्या बात है?

उसने कहा—नाम जपनेका, परिक्रमा देनेका मेरा पहलेसे स्वभाव पड़ा है, इससे मैं यह करता हूँ। आप मेरे लड़केसे कह दें, अमुक स्थानपर द्रव्य रक्खा है, वह भगवान्‌के कोषमें दे दे और मेरे निमित्त कीर्तन-सप्ताह आदि करा दे। गोस्वामीजीने उनके पुत्रसे कहलाकर यह सब करा दिया। इससे उनकी प्रेत-योनि छूट गयी।

अब आप सोचें—प्रेतयोनि कितनी निकृष्ट योनि है। सुनते हैं दूसरे प्रेत उनको यातना देते हैं। प्रेत प्यासे मरते हैं, पानी नहीं पी सकते। कोई सुकृत कर्म नहीं कर सकते। सदा क्रोधमें भरे रहकर दूसरोंका अनिष्ट ही करते रहते हैं।

देवताका द्रव्य अपहरण करना घोर पाप है, इसके फल-स्वरूप उन्हें प्रेतयोनि तो मिली, किंतु भगवन्नामके प्रभावसे प्रेतयोनिमें भी उनको नामजपका अभ्यास बना रहा। उनका व्रजका वास नहीं छूटा, वृन्दावनकी परिक्रमा भी वे देते रहे। इन्हीं सबके कारण सिद्धपुरुषके दर्शन हो गये, पापका प्रायश्चित्त भी हो गया और प्रेतयोनि भी छूट गयी। यह सब बेमनके केवल अभ्यासके कारण नाम-जपका ही तो प्रभाव है।

यह बात तो पुरानी है। लगभग पचास-साठ वर्ष पहलेकी होगी। अभी-अभी कुछ ही दिन पहलेकी बात है—एक बुढ़िया भूलसे एक दिन रात्रिमें यमुना-स्नानको गयी। वहाँ उसने देखा बहुत-से मन्दिरोंके अधिकारी बैठे ध्यान कर रहे हैं। वह उन्हें पहचानती थी। उसने आश्चर्यके साथ पूछा—'तुम तो मर गये थे न? उन्होंने कहा—'हमने देवद्रव्य चुराया था, इससे हमें यह योनि मिली है। हम प्रेत हैं।'

उन्होंने घोर पाप किया, किंतु वृन्दावनवास और भगवान्‌का नाम लेनेसे यही हुआ कि इनको व्रजवास मिला, [illegible] मिली, ध्यानमें रुचि रही। जैसे काशीमें मरनेपर मुक्ति होती है, किंतु पापियोंको काशीमें रहकर भी भैरवी यातनाएँ तो भोगनी ही पड़ती हैं। इसीलिये भक्त वहाँ नहीं [illegible]।

हमारी मुक्ति हो जाय। वे तो यही कहते हैं—'मैं चाहे स्वर्गमें रहूँ, पृथिवीपर रहूँ या नरकमें रहूँ। मेरी कामना यही है कि मरणसमयमें आपके चरणोंका स्मरण बना रहे।* हे प्रभो! मैं यह नहीं चाहता, मेरा संसार-बन्धन छूट जाय। दुःख-सुख तो पूर्वजन्मोंके अनुरूप प्रारब्धानुसार होते रहें। मैं तो यही चाहता हूँ कि मेरा किसी भी योनिमें जन्म हो; आपके चरणोंमें भक्ति बनी रहे।' यही बात सनकादि कुमारोंने भगवान्‌से कही—'हमने आपके पार्षदोंको क्रोधमें भरकर शाप दे दिया। इससे भले ही हमें नरक मिले; किंतु वहाँ भी आपके चरणोंकी स्मृति बनी रहे।'

आजकल नाम-जापकोंमें चार प्रकारके लोग हैं। एक तो वे जो दम्भ-पाखण्डसे नाम लेकर—अपनेको भक्त प्रकट करके अपना नीच स्वार्थ साधते हैं। भगवन्नामके द्वारा संसारी भोगोंको प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं। दूसरे वे जो पहले तो शुद्ध भावसे भगवान्‌के नामकीर्तनका प्रचार-प्रसार करते हैं, किंतु अजितेन्द्रिय होनेके कारण अधिक ख्याति—प्रतिष्ठा हो जानेपर नामकीर्तनको अपना व्यापार बना लेते हैं। तीसरे वे जो भीतरसे तो भक्त होते हैं, ऊपरसे उसे प्रकट नहीं करते। यही नहीं, भगवान्‌का विरोध करते हैं। और चौथे वे जो भीतरसे भी भक्त होते हैं और अपने भजन-कीर्तनद्वारा असंख्य लोगोंका उद्धार करते हैं, लोगोंको भक्तिमार्गकी ओर लगाते हैं। ऐसे लोग भुवनको पावन करनेवाले कहलाते हैं।

जो दम्भसे या पाखण्डसे भी वेष बना लेते हैं। दिखावेको भी भजन करते हैं, इस जीवनमें या अगले जीवनमें अपने नामकी बिरुद रखनेके कारण कभी-न-कभी भगवान् उनपर भी कृपा कर ही देते हैं।

एक तालाबमें मछली मारनेकी मनाही थी। एक मल्लाह रात्रिमें चोरीसे नित्य मछली मार लाता। किसीने राजासे कह दिया। राजा रात्रिमें चुपकेसे गया। दूरसे घोड़ेको देखकर मल्लाह घबराया। उसने तुरंत सब मछलियाँ और जालको जलमें फेंक दिया। नंगा तो वह था ही, शरीरपर कीच लगाकर, आसन बाँधकर भगवान्‌का भजन करने लग गया। राजाने आकर देखा कोई मछलीचोर नहीं है। यह तो एकान्तमें कोई साधु भजन कर रहा है। वह प्रणाम करके चुपकेसे लौट गया।

अब देखिये दम्भसे-कपटसे स्वार्थवश उसने वेष बनाकर भजन किया। चाहता तो राजाके चले जानेपर फिर भी चोरी करता, किंतु भगवान्‌ने उसपर कृपा की। उसने सोचा—'केवल झूठा वेष बनानेपर, दम्भसे भजन करनेपर मैं दण्डसे—कारावाससे छूट गया, इतना बड़ा राजा प्रणाम करके चला गया; यदि मैं सच्चे हृदयसे भजन करूँ, यथार्थमें भगवद्भक्त साधु बन जाऊँ, तो निश्चय ही भवसागरसे पार हो जाऊँगा।' वह साधु-शरणमें जाकर भजन करने लगा और सच्चा साधु बन गया।

दूसरे, अजितेन्द्रिय होनेसे बीचमें विषयभोगोंमें फँस जाते हैं। यह अधिकतर कुसंगमें होता है। कभी-कभी घोर अपमान होनेसे, अपने ही अनुयायी भक्तोंद्वारा तिरस्कार होनेसे अथवा किसी सच्चे साधुके चेतानेसे इस जन्ममें या अगले जन्ममें उनपर भी भगवान्‌की कृपा हो जाती है। अजामिल ऐसा ही था। आरम्भमें तो वह बहुत ही शान्त, दान्त, तितिक्षु, मातृ-पितृभक्त, वेदज्ञ, आस्तिक तथा जप-तप करनेवाला बड़ा सदाचारी ब्राह्मण था। प्रारब्धवश वह कुसंगमें पड़ गया, सभी सद्गुण भुला दिये। फिर भगवान्‌ने कृपा की, साधु मिला दिये। उनके कहनेसे लड़केका नाम 'नारायण' रख दिया। उस सांकेतिक नामके ही उच्चारणसे वह यमयातनासे छूट गया। इसीपर उसे वैराग्य हो गया और फिर वह हरिद्वारमें जाकर घोर तपस्या-भजन करने लगा। उसका उद्धार हो गया। तीसरे ऐसे होते हैं जो भीतर-ही-भीतर तो भजन करते हैं, किंतु कभी उसे अन्य लोगोंपर प्रकट नहीं करते। यही नहीं, कभी-कभी वे भगवान् या भक्तोंका विरोध भी करते हैं। वे भी भक्त तो हैं ही किंतु वे ऐसे धनी हैं, जिनके पास बहुमूल्य चिन्तामणि हो, किंतु उसे सबसे छिपाये रहते हों। इससे स्वयं उनको तो आन्तरिक संतोष रहता है, किंतु सर्वसाधारणपर प्रकाश नहीं पड़ता। असली बात तो छिपती नहीं। कभी-न-कभी उनके पश्चात् प्रकट ही हो जाती है। ऐसे लोग भी बहुत ही अच्छे हैं।

एक राजा प्रजाकी बड़ी सेवा किया करते थे, अपनी रानीसे बहुत प्रेम करते थे। उनकी रानी भी उनसे अत्यधिक स्नेह करती थी, किंतु उसे एक ही बड़ा भारी दुःख था—राजा न तो कभी भगवान्‌का नाम लेते, न कभी राजसभामें

---

* दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो
नरके वा नरकान्तक प्रकामम्।
अवधीरितशारदारविन्दौ
चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि॥

संत-महात्माओंसे सत्सङ्ग करते । रानीको यह बहुत बुरा लगता, वह कभी कहती तो राजा हँसकर टाल देते थे ।

एक दिन राजा सो रहे थे, रानी भी उसके पासमें थी । सहसा राजाके मुखसे भगवान्‌का नाम निकला । रानीको अत्यधिक प्रसन्नता हुई । प्रातःकाल उसने बड़ा भारी उत्सव किया, असंख्यों धन दान-पुण्य किया । राजाने पूछा—'आज किस बातका उत्सव हो रहा है ?' रानीने कहा—'प्राणनाथ ! बड़ी प्रसन्नताकी बात है, रात्रिमें आपके मुखसे भगवान्‌का नाम निकल गया ।'

राजाने आश्चर्यसे पूछा—'नाम निकल गया ?'

रानीने कहा—'हाँ, प्राणनाथ !'

तुरंत राजाने कहा—'अरे ! जब नाम ही निकल गया तो इस शरीरको रखनेसे भी क्या लाभ ?' उन्होंने शरीरको त्याग दिया । ऐसे लोगोंको गुप्त भक्त कहते हैं ।

सुनते हैं हमारे स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू भी ऐसे ही गुप्त भक्त थे । उनके देहान्तके पश्चात् समाचारपत्रोंमें उनके नौकरका समाचार प्रकाशित हुआ था कि पण्डितजी जहाँ भी जाते एक बुद्ध भगवान्‌की मूर्ति, एक गीताकी पुस्तक साथ ले जाते और स्नान करके कुछ देर एकान्तमें बैठते ।

एक महात्माने भी मुझसे कहा था—मैंने पंडितजीसे पूछा—'आप ईश्वरको क्यों नहीं मानते ? तो उन्होंने हँसकर कह दिया—'मानते क्यों नहीं, सबके सामने गाते नहीं फिरते । राजनीतिमें सब करना पड़ता है ।' एक सज्जन बताते थे । एक साधु प्रायः पण्डितजीके पास जाते थे । चुनावमें भी वे पण्डितजीका प्रचार करने उनके क्षेत्रमें गये थे । मैं भी उन्हें जानता हूँ । उन्होंने इन्दिरा गान्धीसे पूछा—'पण्डितजी भगवान्‌को नहीं मानते ?' इन्दिराजीने कहा—'बैठिये, मैं आपको दिखाती हूँ ।' जब स्नान करके पण्डितजी एक कमरेमें घुस गये तो एक छिद्रसे इन्दिराजीने उन्हें देखनेको कहा । पण्डितजी ध्यानस्थ बैठे थे ।*

ये बातें मैंने सुनी-सुनायी लिखी हैं । इनमें सत्य कितना है इसे तो भगवान् ही जानें । किंतु वे जितना घोर नास्तिक अपनेको प्रकट करते थे, उतने भीतरसे नास्तिक थे नहीं । गोस्वामी गणेशदत्तजी उनके जन्मदिवसपर उनसे जप आदिका संकल्प कराते, घृतमें परछाईं दिखाकर दान-पुण्य कराते, उनके नामसे गोस्वामीजी हरिद्वारमें जप कराते । अपने माता-पिता-पत्नीके उन्होंने यज्ञोपवीत पहनकर शास्त्रीय विधिसे पण्डितोंके कहनेके अनुसार श्राद्धतर्पण किये । इधरका तो मुझे पता नहीं, क्योंकि इधर बहुत दिनोंसे मेरा-उनका संसर्ग [illegible] गया था । किंतु सन् २१ में मैं उनके साथ रहा । पाँच म[illegible] हम दोनों लखनऊकी एक ही जेलमें रहे । मैंने अपनी आँ[illegible] प्रत्यक्ष उन्हें मोटा जनेऊ पहनकर ध्यानमें बैठे देखा [illegible]

यह सन् २० या २१ की बात है—बुलन्दशहरके खु[illegible] नामक स्थानमें मैं संस्कृतका विद्यार्थी था । उसी विद्य[illegible] अवस्थामें मैं वहाँ राजनीतिक कार्य करने लगा । उन दि[illegible] असहयोग, विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार तथा सविनय आज्ञाभङ्ग आन्दोलन चल रहे थे । इसके पहले आगरेमें एक प्रान्त[illegible] राजनीतिक सम्मेलन हुआ । उन दिनों पण्डितजी अखि[illegible] भारतीय नेता नहीं थे, प्रान्तीय नेता थे । प्रान्तीय कांग्रेस[illegible] सम्भवतः मन्त्री थे । मैं भी खुरजासे उस सम्मेलनमें गया । सर्वप्रथम पण्डितजीके मुझे वहीं दर्शन हुए । मैं सर्वसाधन[illegible] विहीन अर्थरहित संस्कृतका विद्यार्थी था । मैं पण्डितजीसे मिला । मैंने वैसे ही उनसे कहा—'पण्डितजी ! खुरजा चलिये ।' बिना सोचे उन्होंने तुरंत कहा—'अच्छा चलूँगा ।' सायंका[illegible]

* आध्यात्मिक जगत्‌में प्रसिद्ध श्रीश्रीमाता आनन्दमयीके प्रति पण्डितजीकी बड़ी श्रद्धा थी । वे इतने कार्यव्यस्त होनेपर भी जब समय मिलता, माताजीके दर्शनार्थ जाया करते थे । श्रीनेहरूजीकी धर्मपत्नी स्वर्गीय कमलाजी माताजीकी भक्त थीं । वे माताजीके पास रात-रात भर रहा करती थीं । माताजीने कहा था कि 'कमलाजीको ध्यानमें श्रीकृष्णकी झाँकी हुआ करती है ।' कमलाजीको माताजीने जो माला दी थी, वे उसे अपनी पुत्री इन्दिराजीको दे गयी थीं, जो अबतक उनके पास सुरक्षित है । तभीसे श्रीपण्डितजी भी माताजीके पास जाया करते थे । माताजी भी समय-समयपर उनकी कोठीपर जाया करती थीं । गत २९ फरवरी १९६४ को माताजी उनके यहाँ गयी थीं । यही उनसे उनका अन्तिम मिलन था । श्रीमती इन्दिराजीके विशेष अनुरोधसे माताजीने श्रीनेहरूजीके श्राद्धोपलक्ष्यमें प्रार्थनादि कार्यक्रममें ब्रह्मचारिणी पुष्पा आदिको भजन-कीर्तन आदिके लिये दिल्ली भेजा था । माताजीके पास पण्डित नेहरूजीके ऐसे कई अप्रकाशित छाया-चित्र हैं, जिनमें उनकी भक्ति-विनम्रताका पता लगता है । उनमेंसे दो चित्र 'आनन्दवार्ता' अगस्तके अङ्कमें छपे हैं, उन्हें इस अङ्कमें दिया जा रहा है । इन चित्रोंमें [illegible] और गलेमें मालाएँ सुशोभित हैं । इससे [illegible] श्रीनेहरूजी भगवान्‌को केवल मानते ही नहीं [illegible] करते थे ।—सम्पादक

वे अपने हाथकी एक मंजूसा (हैंडबैग) लेकर बिना किसी नौकर-साथीके मेरे साथ अकेले चल दिये। स्वयं ही उन्होंने मेरी और अपनी ड्योढ़े दरजे (इंटर) की टिकट ली और रात्रिभर भीड़में चलकर प्रातः ४ बजे खुरजा पहुँचे। मैं उन्हें इक्केसे अपने यहाँ ले गया। वह शहरमें एक गंदा अड्डा था, न ठीकसे ठहरनेका, न शौचका प्रबन्ध था। वे स्वयं ही जल लेकर नहा लिये। जमीनपर ही बिस्तर लगा लिया। अपनी धोती-कुर्ताको साबुन लगाकर स्वयं ही धोकर सुखा लिया। मेरे पास कोई साधन नहीं था, मैं एक पासके जैन सेठके यहाँसे रोटी-दाल माँग लाया। प्रतीत होता है, तबतक वे भारतीय ढंगसे रोटी तोड़ना नहीं जानते थे। वे पूरी रोटीमें उँगली घुसाते, अँगुलीसे छेद करके उसे तोड़ते। पहले कौरको खाते, उसके ऊपर थाली उठाकर दाल पीते। मुझे बड़ी हँसी आयी। तीन दिन मैं रात-दिन उनके साथ रहा। वे खूब मोटा खद्दरका जनेऊ पहनते थे और स्नानके पश्चात् लगभग आधे घंटे आसन लगाकर आँखें बंद करके ध्यान करते थे। पीछेसे उन्होंने जनेऊ तो उतार ही दिया था। ध्यानका उनका कार्य-क्रम चलता रहा या नहीं—इसका मुझे स्वयं पता नहीं; किंतु सुनता यही रहता था कि वे नियमित ध्यान और शीर्षासन करते हैं। चाहे कुछ भी हो, वे कोई पूर्वजन्मके योगी ही रहे होंगे। तभी तो इतनी लोकप्रियता, ख्याति और प्रभाव बढ़ा। कुछ वर्ष पूर्व समाचारपत्रोंमें छपा था कि पं० मोतीलाल नेहरूके कोई संतान नहीं थी। अतः वे, पण्डित मदनमोहन मालवीय और पं० दीनदयालुजी शर्मा व्याख्यान-वाचस्पति—तीनों व्यक्ति ऋषिकेशमें एक त्यागी महात्माके पास गये। वे पेड़पर रहते थे। उसीमें एक पात्र लटका रहता था, जो उसमें डाल जाता, एक बार उसे ही खाते। एक बार उतरकर शौच-स्नानको जाते। नहीं तो, सदा पेड़पर ही रहकर तितिक्षा करते। उन्हींसे तीनोंने प्रार्थना की। महात्माने कहा—'इसके पुत्रका योग नहीं है।' मालवीयजीने कहा—'महाराज! आप सर्वसमर्थ हैं, कैसे भी कीजिये।' तब उन्होंने कहा—'अच्छा, हमको ही फिर आना पड़ेगा।' दूसरे दिन ये तीनों गये तो वे महात्मा पेड़के नीचे मरे हुए पड़े थे। इसके ठीक नौ महीने पश्चात् पं० जवाहरलाल नेहरूका जन्म हुआ।

पत्रकारोंने पण्डितजीसे जाकर यह बात पूछी। उन्होंने यही कहा—'इस बातका मुझे तो पता नहीं, मेरे पिताने तो मुझसे यह बात कही नहीं।'

चाहे जो हो यह बात बहुत प्रसिद्ध थी। मुझको सर पद्मपतिजी सिंहानिया बताते थे कि हमारे पिता सेठ कमलापतिजी सिंहानियाके पं० मोतीलालजी नेहरू वकील थे। हमारे पिता उन्हें बार-बार चिढ़ाते थे। 'इतने अंग्रेजी पढ़े-लिखे वकील होकर पुत्रके लिये साधुके पास गये थे।'

यह तो निश्चय ही है बिना त्याग-तपस्याके इतनी निर्भीकता, ख्याति, राजयोग, शत्रुंजय योग नहीं हो सकता। ऐसे ही लोग 'गुप्त भक्त' कहलाते हैं। संस्कारहीन पुरुषोंके साथ रहनेसे उनकी विचारधारा बदल जाती है, किंतु पूर्वजन्मोंके कुछ संस्कार तो रहते ही हैं। ऐसे लोग दूसरोंका अनिष्ट न भी करें, पर उनसे धर्म-सदाचारका प्रचार-प्रसार नहीं होता।

चौथे वे लोग हैं, जो भीतर-बाहरसे—दोनों ओरसे भक्त हैं। भीतर हृदयमें अगाध प्रेम भरा है। उनके समस्त कार्य लोकोपकारकी भावनासे ही होते हैं। वाणीसे भगवन्नाम या भगवत्कथा ही निकलती है। भगवान्‌का नाम-कीर्तन, गुण-कीर्तन करते-करते जिनकी वाणी गद्गद हो जाती है, हृदय प्रेमसे पिघला-सा रहता है, जहाँ तनिक ठेस लगी कि फूट पड़ता है, वे कभी प्रेममें रोते हैं, कभी ठहाका मारकर हँस पड़ते हैं, कभी निर्लज्ज होकर गाने लगते हैं और कभी नाचने लगते हैं। ऐसा नामप्रेमी संकीर्तनानुरागी भक्त त्रिभुवनको पावन करता फिरता है। ऐसे ही भक्तके लिये भागवतमें भगवान्‌ने कहा है—

> वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं
> रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
> विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च
> मद्‌भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥
> (११। १४। २४)

ऐसे भक्तोंके दर्शनसे ही पाप कट जाते हैं। गीतामें भी भगवान्‌ने भजन करनेवालोंको आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—इन चार श्रेणियोंमें बाँटा है और सभीको सुकृती कहा है। इन बातोंसे यही निष्कर्ष निकलता है कि भगवान्‌के नामका जप कभी व्यर्थ नहीं जाता। उससे सभी दशामें कल्याण-ही-कल्याण है।

कुछ भाई मुझसे आकर कहते हैं—'आपके अमुक साथी, पहले तो उनका बड़ा प्रभाव था, लाखों आदमियोंसे

उन्होंने कीर्तन-भजन कराया था। किंतु अब तो वे स्वयं अपनेको पुजवाने लगे। अपनी पूजा करवाते हैं, स्त्रियाँ उनको पञ्चामृतसे स्नान कराती हैं, सब उनका चरणामृत लेते हैं आदि-आदि।'

पूजा कराना, अपनेको ईश्वर मानना—कुछ अच्छा काम नहीं है। भक्तिमार्गमें तो विघ्न ही है; किंतु जीवके न जाने कितने जन्मोंके संस्कार हैं, कितनी वासनाएँ भरी हुई हैं। भगवान् तो वाञ्छाकल्पतरु हैं। वे जीवकी सभी इच्छाओंको पूर्ण करते हैं। किसी जन्मकी जीवकी पूजा करानेकी, ईश्वर बननेकी वासना छिपी रहती है। भगवान् उसे अनेक रूपोंसे पूरी कर देते हैं। बहुत-से कहकर पूजा-प्रतिष्ठा कराते हैं। कुछको न चाहते हुए भी अपने अनुगत भक्तोंके विवश करनेपर करानी पड़ती है। पर ऐसा न कराना सामर्थ्यकी बात है। अतः जहाँतक हो भगवन्नाम-जापक और कीर्तन करनेवालोंको इस लौकिक प्रतिष्ठा-पूजासे यथाशक्ति यथासामर्थ्य सर्वथा बचना ही चाहिये। और भगवान्‌की कृपासे बच रहना कठिन नहीं है।

इसलिये जहाँतक हो अपनेमें भगवान्‌की यथार्थ भक्ति लानेकी सतत चेष्टा करनी चाहिये। सद्गुण पूरे तो केवल श्रीभगवान्‌में ही हैं। समस्त ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—ये पूर्णरूपसे भगवान्‌में ही हैं। इन छःका नाम 'भग' है, वे जिनमें हों वे ही भगवान् हैं। एक-एक सद्गुणका फल स्वर्गादि पुण्यलोकोंकी प्राप्ति है, किंतु भक्तिका फल तो भगवान् हैं। भगवान्‌में भक्ति होनेपर सभी सद्गुण ही आ जाते हैं। अतः एक-एक सद्गुणकी प्राप्तिके पृथक्-पृथक् प्रयत्न न करके भगवान्‌की भक्तिके लि[ये] रुदन करना चाहिये, उसीके लिये छटपटाना चाहिये, उ[नके] नामोंका जप करना चाहिये तथा उन्हींके गुण, कर्म और ना[मका] कीर्तन करना चाहिये। भक्ति आनेपर सभी सद्गुण ही आ जाते हैं। और जो मनके पीछे दौड़ते रहते हैं, [वि]भोगोंको ही समस्त सुखोंका मूल मानकर उनकी प्राप्तिके प्रयत्नशील रहते हैं, उनके पास सद्गुण कैसे आ [सकते] हैं? अतः समस्त सद्गुण भक्तिसे—भगवन्नामसे प्राप्त हैं। यही बात श्रीमद्भागवत (५ । १८ । १२) में [कही] गयी है—

> यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
> सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
> हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
> मनोरथेनासति धावतो बहिः॥

छप्पय

> शम दम जप तप शौच सत्य संतोष सरलता।
> ब्रह्मचर्य व्रत त्याग तितिक्षा मृदुता ऋजुता॥
> करै कीरतन कृष्ण नाम कैकें जो रोवै।
> सब सद्गुन तिहि आइँ भक्ति भगवत् जिहि होवै॥
> भक्तिहीन जे नर अधम, नहिं पावैं गुन प्रभुचरन
> आ[वैं] अपने आपईं, भक्तिमान पै सकल गुन

रामनामकी कृपासे निश्चिन्तता

> सब अँग हीन, सब साधन बिहीन, मन-बचन मलीन, हीन कुल-करतूति हौं।
> बुधि-बल-हीन, भाव-भगति-बिहीन, हीन-गुन, ग्यान-हीन, हीन-भाग हूँ, बिभूति हौं॥
> तुलसी गरीबकी गई-बहोर रामनामु, जाहि जपि जीहँ रामहू को बैठो धूति हौं।
> प्रीति रामनामसों, प्रतीति रामनामकी, प्रसाद रामनाम कें पसारि पाय सूति हौं॥
>
> (तुलसीदासजी—कवितावली)

मैं (योगके आठों) अङ्गोंसे हीन हूँ, सब साधनोंसे रहित हूँ, मन-वचनसे मलिन हूँ तथा कुल और कर्मोंमें बड़ा पतित हूँ। मैं बुद्धि-बलहीन, भाव और भक्तिसे रहित, गुणहीन, ज्ञानहीन तथा भाग्य और ऐश्वर्यसे भी रहित हूँ। दीन तुलसीदासकी हीन अवस्थाका उद्धार करनेवाला तो रामका नाम ही है जिसे जिह्वासे जपकर मैं रामजीको भी छल [रहा] हूँ। परंतु मुझे रामनामसे ही प्रीति है; रामनाममें ही विश्वास है और मैं रामनामकी ही कृपासे पैर पसारकर (निश्चिन्त होकर) सोता हूँ।

भगवन्नाम—निरुक्ति और प्रभाव

(लेखक—डा० श्रीबलदेवजी उपाध्याय एम्० ए०, डी० लिट्०)

भगवन्नामकी महिमाका वर्णन करना असम्भव है; क्योंकि जिस प्रकार भगवान् अनन्त हैं, उनके नाम भी अनन्त हैं तथा उन नामोंकी महिमा भी अनन्त है। जिस प्रकार भगवान्के स्वरूप तथा गुणका वर्णन करना असम्भव है, उसी प्रकार उनके नामोंका भी वर्णन असम्भव ही है। आवश्यकता है दृढ़ विश्वासकी। अपनी अभिरुचिके अनुसार अनन्तके अनन्त नामोंमेंसे किसी एक नामको चुन लेना चाहिये और उसी नामका स्मरण तथा मनन यथाशक्ति करते रहनेकी आवश्यकता है। इसी भगवन्नामके विषयमें कतिपय तथ्य यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।

भगवान्के नामोंके प्रकारका वर्णन या विवेचन भी एक प्रकारसे असम्भव ही है। परंतु सामान्यरूपसे हम उन्हें दो भागोंमें विभाजित कर सकते हैं। (१) गुण-नाम तथा (२) कर्म-नाम। कुछ नाम तो भगवान्के गुणोंके आधारपर निश्चित किये जाते हैं—जैसे 'भक्तवत्सल' नाम। भगवान्के भक्तोंके प्रेमी होनेके कारण यह नाम उन्हें दिया गया है। कर्म-नाम भगवान्के किसी विशिष्ट कर्मको लक्षितकर निर्दिष्ट हैं—जैसे 'हरि' तथा 'कंस-निषूदन' आदि नाम। पापोंके हरणकर्त्ता होनेके कारण भगवान्का नाम 'हरि' है, तो पापाचारी कंसके मारनेके कारण उन्हें 'कंसनिषूदन' नाम प्राप्त हुआ है। प्रधानरूपसे इन्हीं गुण तथा कर्मके आधारके ऊपर भगवान्के नाम वेद-शास्त्रोंमें निर्धारित किये गये हैं। प्रमाणमें भगवान्का यह वचन है—(शान्ति०, नारायणीयपर्व, ३४१।८-९-१०)

> ऋग्वेदे सयजुर्वेदे तथैवाथर्वसामसु।
> बहूनि मम नामानि कीर्तितानि महर्षिभिः॥
> गौणानि तत्र नामानि कर्मजानि च कानिचित्।

महाभारतके इन वचनोंके आधारपर श्रीमद्भागवतके इस प्रसिद्ध श्लोक 'गुणकर्मनाम्नाम्'का यही तात्पर्य है कि भगवान्के नाम दो प्रकारके होते हैं—गुण-नाम और कर्म-नाम। इसलिये इस शब्दका यह उचित विग्रह होगा— **'गुणाश्च कर्माणि चेति गुणकर्माणि तेषां नामानि तेषाम्'।** समग्रपदको द्वन्द्व समास मानना ठीक नहीं। फलतः **'गुणाश्च कर्माणि च नामानि च तेषाम्'** विग्रह स्वारस्य नहीं रखता। श्लोक यहाँ दिया जाता है—

> एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां
> संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्।
> विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि
> नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम्॥
> (श्रीमद्भागवत ६।३।२४)

भगवान्के कतिपय नामोंका निर्वचन

(१) वासुदेव—इस शब्दका प्रथम अंश 'वासु' शब्द 'वस आच्छादने' (ढकना) तथा 'वस निवासे' (रहना)—इन दो धातुओंसे निष्पन्न होता है।

(क) वासयति आच्छादयति विश्वमिति वासुः।

(ख) वसत्यस्मिन् विश्वमिति वासुः। वासुश्चैव देवश्चेति वासुदेवः।

जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे समस्त जगत्को आच्छादित करता है, उसी प्रकार इस विश्वको आच्छादित करनेके कारण भगवान् 'वासुदेव' नामसे अभिहित किये जाते हैं। सब जगत् उन्हींमें निवास करता है—रहता है—इस कारण भी वे इस नामसे अभिहित होते हैं। इस प्रकार 'वासुदेव' शब्दके भीतर **'ईशावास्यमिदं सर्वम्'** तथा **'कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः'** दोनों श्रुति-वाक्योंका तात्पर्य समाविष्ट है। इस निर्वचनका प्रमाण महाभारत तथा विष्णुपुराणके ये वचन हैं—

> छादयामि जगद् विश्वं भूत्वा सूर्य इवांशुभिः।
> सर्वभूताधिवासश्च वासुदेवस्ततो ह्यहम्॥
> (शान्तिपर्व ३४१।४१)

> सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः।
> ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते॥
> (विष्णु० १।२।१२)

(२) केशव—इस नामकी व्युत्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रकारोंसे दी गयी है। (क) महाभारतके अनुसार—**सूर्य,** अग्नि तथा चन्द्रमाकी किरणें जो प्रकाशित होती हैं वे ही

भगवान्‌के केश-पदवाच्य हैं और उनके धारण करनेके कारण ही भगवान् 'केशव' पुकारे जाते हैं—

सूर्यस्य तपतो लोकानग्नेः सोमस्य चाप्युत।
अंशवो यत्प्रकाशन्ते ममैते केशसंज्ञिताः॥
सर्वज्ञाः केशवं तस्मान्मामाहुर्द्विजसत्तमाः॥
(शान्ति० ३४१। ४८-४८½)

इस पद्यकी नीलकण्ठी व्याख्या—'केशैः केशवत् सूक्ष्मैः सूर्यादिरश्मिभिः तद्रूपेण वा वाति गच्छति इति केशवः।' इसी अर्थको लक्ष्यकर गीताका (१५। १२) वचन है—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

केशव नामके जपनेका सद्यःफल है नेत्रकी प्राप्ति। इस प्रसंगमें अन्धे 'दीर्घतमा' ऋषिके चक्षुष्मान् बननेकी वैदिक कथाका निर्देश शान्तिपर्व अ० ३४१। ४९–५७ में विस्तारसे किया गया है।

(ख) 'विष्णुसहस्रनाम'के भाष्यमें शंकराचार्यने इसकी व्युत्पत्ति तीन प्रकारोंसे की है—

१. 'अभिरूपाः केशाः यस्य'—अत्यन्त सुन्दर केशोंसे सम्पन्न होनेसे 'केशव'।

२. केशीके वध करनेके कारण 'केशव'—

यस्मात्त्वयैव दुष्टात्मा हतः केशी जनार्दन।
तस्मात् केशवनाम्ना त्वं लोके ख्यातो भविष्यसि॥
(विष्णु० ५। १६। २३)

यहाँ 'केशीवधक' शब्दसे पृषोदरादित्वात् सिद्धि मानी गयी है।

३. क=(ब्रह्मा)+अ (विष्णु)+ईश (शिव)=केश अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूप त्रिमूर्ति। ये तीनों जिसके वशमें रहकर अपने निर्दिष्ट कार्योंका सम्पादन करते हैं वह परमात्मा है—'केशव'।

(३) पृश्निगर्भ—पृश्नि जिसका गर्भ या गर्भ-स्थानीय हो उसे 'पृश्निगर्भ' कहते हैं। पृश्निके अर्थ हैं—अन्न, वेद, जल तथा अमृत। ये भगवान्‌के सर्वथा गर्भरूपसे रहते हैं अर्थात् निवास करते हैं, इसलिये वे 'पृश्निगर्भ' नामसे संकेतित किये जाते हैं।

पृश्निरित्युच्यते चान्नं वेद आपोऽमृतं तथा।
ममैतानि सदा गर्भः पृश्निगर्भस्ततो ह्यहम्॥
(शान्ति० ३४१। ४५)

—इस नाम जपनेका फल भी निर्दिष्ट है। 'त्रित' नामक ऋषिको उनके एकत और द्वित नामक भ्रा[illegible] ईर्ष्यावश कूपमें गिरा दिया था। वहाँसे वे प्रार्थना व[illegible] भगवान्‌का यही विशिष्ट नाम लेकर—'पृश्निगर्भ! त्रि[illegible] इस नामके कीर्तनका सद्यःफल उन्हें प्राप्त हुआ [illegible] उस अन्धकूपसे बाहर निकल आनेमें समर्थ हुए। वैदिक कथा ऋग्वेदमें अनेक मन्त्रोंमें निर्दिष्ट है।

(४) हरि—भगवान्‌का यह सुप्रसिद्ध नाम [illegible] इसकी व्युत्पत्ति नारायणीयपर्व (अ० ३४२। ६८) इस प्रकार है—

इडोपहूतयोगेन हरे भागं क्रतुष्वहम्।
वर्णश्च मे हरिः श्रेष्ठस्तस्माद् हरिरहं स्मृतः॥

'हरि' शब्दकी व्युत्पत्ति दो प्रकारसे दी गयी है—([illegible] 'इडोपहूता सह दिवा' मन्त्रके द्वारा आहूत भगवान् य[illegible] स्वनिर्दिष्ट हविर्भागको ग्रहण करते हैं तथा (ख) उ[illegible] वर्ण (रंग) हरित है—हरिन्मणि (नीलमणि) के स[illegible] उनका रूप नितान्त सुन्दर तथा रमणीय है। विष्णुस[illegible] नाममें ३५९वाँ नाम 'सर्वहरिः' है, जिसकी व्याख्[illegible] शंकराचार्यने पूर्वोक्त श्लोकको उद्धृतकर भगवान्‌को य[illegible] हविष्‌का ग्रहणकर्त्ता माना है। यह व्याख्या 'यज्ञो विष्णुः' वैदिक आधारके ऊपर आधृत है।

(५) कृष्ण—'कृष्ण'शब्दकी महाभारतीय व्याख्[illegible] विलक्षण है। भगवान्‌ने इस शब्दकी निरुक्तिके प्रसंग[illegible] स्वयं कहा है—

कृषामि मेदिनीं पार्थ भूत्वा कार्ष्णायसो महान्।
कृष्णो वर्णश्च मे यस्मात् तस्मात् कृष्णोऽहमर्जुन॥
(महाभारत शान्ति० ३४२। ७९

'मैं काले लोहेकी बड़ी कील बनकर पृथ्वीका कर्ष[illegible] करता हूँ और मेरा वर्ण भी कृष्ण है—काला है, इसीलि[illegible] मैं 'कृष्ण' नामसे पुकारा जाता हूँ।' अन्य ग्रन्थोंमें इस शब्दकी निरुक्ति भिन्न प्रकारसे की जाती है।

भगवन्नामोंमेंसे कतिपय नामोंकी निरुक्ति दिखलानेका यही तात्पर्य है कि गुण-कर्मके अनुसार विभिन्न निरुक्तियाँ महाभारत तथा पुराणोंमें प्रदर्शित की गयी हैं। भगवान्‌के गुणोंकी न इयत्ता है, न कर्मोंकी। फलतः इन निरुक्तियोंमें वैभिन्न्य होनेपर भी आश्चर्य नहीं होता। वक्ताकी अभिरुचिके अनुसार ही उनमें भेदकी कल्पना की जानी उचित है।

एक और तथ्य ध्यान देने योग्य है। जिस प्रकार विभिन्न मन्त्रोंकी उपासनाका फल शास्त्रोंमें भिन्न-भिन्न बतलाया गया है, भगवान्के नामोंके जपका फल भी उसी प्रकार समझना चाहिये। सप्तशतीके मन्त्रोंका चुनाव उद्देश्य-की सिद्धिके लिये भिन्न प्रकारका मन्त्र-शास्त्रमें बतलाया गया है। भगवन्नामोंके विषयमें भी यही बात है। पूर्वोक्त निरुक्तियोंको दिखलाते समय नारायणीयपर्वमें नाम-जपके विभिन्न उद्देश्योंकी ओर भी संकेत किया गया है। यथा केशवके जपनेका फल है—अन्धे मनुष्यको चक्षुका लाभ तथा पृश्निगर्भ नामके जपनेका फल है—जलमें पड़े हुए या डूबते हुए मनुष्यका उस आपत्तिसे उद्धार। नामजपके सार्वभौम प्रभावका यह संकोचीकरण नहीं है; प्रत्युत नाम-निरुक्तिकी उपयोगिता दिखलानेके लिये शास्त्रकी एक विशिष्ट सूझ है। इन नामोंकी एक दीर्घकालीन परम्परा है अर्थात् वेदमें भी ये नाम परमतत्त्वके द्योतनार्थ प्रयुक्त किये जाते थे और उसी वैदिक परम्पराके अन्तर्गत पुराणोंकी परम्परा समन्वित होती है। जो आलोचक वेद और पुराणके तात्पर्योंमें भेद-दृष्टि अपनानेके पक्षपाती हैं, उन्हें स्मरण रखना चाहिये। महाभारतका यह सुपुष्ट मत—

> इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
> बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥

'इतिहास तथा पुराणके द्वारा वेदका समुपबृंहण करना चाहिये। शैलीका भेद भले ही हो, परंतु पुराण वेदके द्वारा प्रतिपादित सत्य तथा तदर्थका विस्तार करते हैं।'

भगवन्नामका प्रभाव

भगवान्के नामोंके जपनेका फल पुराणोंमें बड़े विस्तारके साथ वर्णित है। नाम-जपके माहात्म्यका वर्णन करना असम्भव ही है। नामके ग्रहण करते ही नामीका रूप साधकके मानस-नेत्रके सामने स्पष्टतः प्रतिबिम्बित हो उठता है। नामीके समान नाम भी चिन्मय-वपु होता है। नामके दिव्यरूप होनेसे उसमें एक अद्भुत शक्ति होती है। **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** सूत्रके द्वारा महर्षि पतञ्जलिका साधकोंको यह उपदेश है कि नामका जप करते समय उसके द्वारा द्योतित अर्थकी भावना अवश्यमेव करनी चाहिये; क्योंकि नाम और नामीका, शब्द और अर्थका एक अविभाज्य नित्य सम्बन्ध सर्वदा स्थापित रहता है। नामकी प्रभविष्णुताके ऊपर अनुभव-सम्पन्न संतों और साधकोंका आग्रह होना नितान्त नैसर्गिक है। गोस्वामीजीने तो नामको रामसे भी बढ़कर सिद्ध कर दिया है। तथा बालकाण्डके आरम्भमें ही उनका 'नाम रामायण' अपनी अलौकिक नूतनताके हेतु साधकोंमें पर्याप्त-रूपेण प्रख्यात है। नामको गोस्वामीजीने 'चतुर दुभाषी' कहकर साधन-जगत्के एक महनीय तथ्यकी अभिव्यक्ति की है। दुभाषीका कार्य होता है विभिन्न भाषा बोलनेवाले व्यक्तियों-के बीच सुबोध माध्यमका कार्य निष्पन्न करनेवाला। नामका भी यही स्वरूप है। भक्त भगवान्के स्वरूपको जाननेमें यदि समर्थ नहीं है, तो 'नाम' उसे बतलानेमें सर्वथा कृत कार्य होता है। नामके द्वारा भक्त भगवान्के सामने पहुँचने में तथा उनका रसास्वादन करनेमें सर्वथा समर्थ होता है। इसलिये 'नाम'की महिमासे पुराण तथा भक्ति-साहित्य भरा पड़ा है।

पाप दूर करनेका महौषध है—नामस्मरण। प्रायश्चित्त पाप दूर करनेका सुगम उपाय माना जाता है अवश्य, परंतु उसमें उतना प्रभाव तथा व्यापकत्व नहीं होता। इस विषय में विष्णुपुराणका यह वचन कितना प्रमाणभूत है—

> यस्मिन् न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
> विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः।
> मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यव्ययः
> किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते॥
> (विष्णु० ६। ८। ५६)

आशय है कि 'जिसमें चित्त लगानेवाला नरकगामी नहीं होता, जिसके चिन्तनमें स्वर्गलोक भी विघ्नरूप है; जिसमें चित्त लग जानेपर ब्रह्मलोक भी तुच्छ प्रतीत होता है, और जो अविनाशी प्रभु शुद्ध-बुद्धिवाले पुरुषोंके हृदयमें स्थित होकर उन्हें मुक्ति प्रदान करते हैं; उस अच्युतका चिन्तन करनेसे यदि पाप विलीन हो जाते हैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?'

नामके द्वारा सैकड़ों जन्मोंके किये पापोंकी राशि उसी प्रकार जल जाती है, जिस प्रकार आगसे रूईका ढेर—

> **सकृत् स्मृतोऽपि गोविन्दो नृणां जन्मशतैः कृतम्।**
> **पापराशिं दहत्याशु तूलराशिमिवानलः॥**

'नाम-स्मरण करते ही भगवान् ज्यों-ही साधकके हृदयमें विराजते हैं, त्यों-ही उसके समस्त दोषोंको नष्ट कर देते हैं। जिस प्रकार ऊँची-ऊँची लपटवाला अग्नि वायुके साथ मिलकर सूखी घासके ढेरको जला डालता है'—

यथाग्निरुद्धतशिखः कक्षं दहति सानिलः।
तथा चित्तस्थितो विष्णुर्योगिनां सर्वकिल्बिषम्॥
(विष्णु० ६। ७। ७४)

अजामिलका उपाख्यान नामस्मरणके विषयमें नितान्त निश्चित है। मरते समय भोलेसे भी यदि भगवान्‌का नाम उच्चारित हो जाय, तो शुभ फल होनेमें तनिक भी विलम्ब नहीं होता। पुत्रको बुलानेकी अभिलाषासे उच्चारित 'नारायण' नाम न होकर 'नामाभास' ही तो है; परंतु इसके सार्वभौम प्रभावसे प्रत्येक भक्त परिचित है। नामके शोधन-के विषयमें श्रीमद्भागवतका प्रख्यात पद्य है—

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि-
स्तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-
स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम्॥
(६। २। ११)

नामके उच्चारणमात्रसे ही पवित्रकीर्ति भगवान्‌के गुणोंका सद्यः ज्ञान हो जाता है जिससे साधकका चित्त उसमें रमने लगता है। नामस्मरणका यही परम उद्देश्य है; भगवान्‌के निश्छिद्र गुणोंमें अपने-आपको लगा देना और तदुत्पन्न रसका आस्वादन करना। अन्य फल गौण हैं। यही तो मुख्य फल है। भगवान्‌में उनके गुण, लीला और स्वरूपमें लग जानेका एकमात्र सुलभ साधन है—नाम-संस्मरण।

नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः॥
(श्रीमद्भागवत ६। २। १०)

भगवान्‌के नामका स्मरण प्रतिक्षण होना चाहिये। एक क्षणके लिये भी उसकी विस्मृति होना महान् अपराध है। नाम ही ऐसी वस्तु है जो भगवान्‌की रसमयी मूर्ति हमारे नेत्रोंके सामने सर्वदा उपस्थित कर देती है। अन्य साधनोंसे यह कार्य सुचारुरूपसे नहीं हो सकता। इसीलिये शास्त्रका वचन है—

एकस्मिन्नप्यतिक्रान्ते मुहूर्ते ध्यानवर्जिते।
दस्युभिर्मुषितेनेव युक्तमाक्रन्दितुं भृशम्॥
(विष्णुसहस्रनामभाष्यमें उद्धृत)

लुटेरोंने किसी सम्पत्तिशाली धनाढ्यको लूट लिया हो, तो चिल्लाना ही स्वाभाविक होता है। उसी प्रकार यदि जीवका एक भी क्षण भगवान्‌के ध्यानके बिना बीत जाय तो उसे अत्यन्त विलाप करना चाहिये और यह ध्यान भगवान्‌के नामद्वारा ही अनायास सिद्ध हो सकता है।

कलियुगकी महिमा

नाम-स्मरणकी उपादेयता इस कलिकालमें विशेषरूपसे मानी गयी है। विष्णुपुराण (अंश ६, अ० २। ६, ८) में इसका वर्णन बड़े ही नाटकीय ढंगसे किया गया मिलता है। अल्प आयाससे महत् फलकी प्राप्ति करनेकी जिज्ञासा मुनियोंको वेदव्यासजीके पास ले गयी। वे गङ्गाजीमें उस समय स्नान कर रहे थे। पानीसे ऊपर आते ही वे जोरोंसे चिल्लाने लगे—

'शूद्रः साधुः कलिः साधुः
योषितः साधु धन्यास्तास्ताभ्यो धन्यतरोऽस्ति कः?'

मुनि लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ इस नवीन अर्थके द्योतक वाक्य-पुञ्जपर। स्नानसे निवृत्त होनेपर जब मुनियोंने अपने संदेहका निराकरण चाहा, तब वेदव्यासने इन तीनोंकी धन्यताके विषयमें अपना निश्चित मत प्रकट किया। फलकी सिद्धिका चतुर्युगीय अनुपात इस प्रकार व्यासजीने बतलाया—दस वर्ष (सत्ययुग), एक वर्ष (त्रेता), एक मास (द्वापर), एक दिन-रात (कलि)। तात्पर्य यह है कि सत्ययुगमें तप, ब्रह्मचर्य तथा जपादिकी सिद्धिके लिये ३६०० दिन लगते हैं, वहाँ कलियुगमें एक अहोरात्रि ही पर्याप्त है। इतना ही नहीं, साधनकी लघुताकी दृष्टिसे भी कलियुग धन्य है—

ध्यायन्कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
(विष्णु० ६। २। १७)

कृतयुगमें (चञ्चल चित्तसे दुःसाध्य) ध्यान, त्रेतामें (दीर्घव्ययसाध्य) यज्ञ, द्वापरमें (महनीय साधनोंकी सहायतासे) अर्चनासे जो फल प्राप्त होता है वही कलिमें केशवके (अल्प आयाससे साध्य) कीर्तनसे होता है। इसी तथ्यको इसी अध्यायमें पराशरजीने पुनः दुहराया है—

अत्यन्तदुष्टस्य कलेरयमेको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत्॥
(विष्णु० ६। २। ३९)

वेदव्यासजीकी दृष्टिमें कलिकी धन्यताका यही कारण है। श्रीमद्भागवतमें तथा अन्य पुराणोंमें भी यह मान्यता दुहरायी गयी है। (देखिये—भाग० १२। ३। ५२) नाम-मन्त्रकी सार्वकालिक व्यवस्था इस सर्व सतकोंके आलम्बनकी क्षमता प्रदान करती है (भाग० १२। १२। ४६)। जिस प्रकार सूर्य अन्धकारको तथा प्रचण्ड बवण्डर मेघको समग्ररूपसे दूर

कर देता है, उसी प्रकार भगवान्का संकीर्तन प्राणियोंके व्यसन तथा विपत्तिको दूर फेंक देता है' (श्लोक ४७)। इसीलिये कलियुगके मानवोंका परम कर्तव्य है कि वे भगवान्के अनन्त नामोंमेंसे किसी नामको चुन लें और उसीका यथाशक्ति निरन्तर कीर्तन किया करें। यह कीर्तन उभय लोकोंमें अभीष्टफलका प्रदाता होता है। इस लोकमें ऐहिक, भौतिक कल्याण तथा परत्र पारलौकिक निःश्रेयसकी सद्यःप्राप्ति भगवन्नामके जपसे तुरंत होती है। इसलिये इस मार्गका आश्रयण प्रत्येक मानवका कर्तव्य होना चाहिये। ब्रह्माजीका नामस्मरणविषयक यह पद्य साधकको सर्वदा ध्यानमें रखना चाहिये—

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा
संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये॥

(श्रीमद्भागवत ३। ९। १५)

नाम-जपके प्रधान आचार्य, ज्ञानी [illegible] भगवन्नामके कीर्तनकार नारदजीकी यह उक्ति मानवोंके लिये [illegible] काम करती है। इसे कौन भूल सकता है?

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्॥

(श्रीमद्भागवत १। ५। २२)

पुण्यकीर्ति भगवान्के गुणोंका कीर्तन मनुष्योंकी तपस्याका, वेदाध्ययनका, स्वनुष्ठित यज्ञका, सुन्दर कथनका, ज्ञान तथा दानका अस्खलित फल बतलाया गया है। फलतः भगवान्की अनुकम्पासे ही उनके नामके स्मरणमें नि-लगता है। भगवान्की अनुकम्पासे हम नाम-जपके रसिक बनें। तथास्तु।

भक्तिमें भगवन्नाम और प्रार्थनाका स्थान

(लेखक—पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र, का०-व्या०-सां०-स्मृ०-तीर्थ)

श्रीमद्भगवद्गीताके सातवें अध्यायके १६वें श्लोकमें चार तरहके सुकृती अर्थात् धर्माचरण करनेवाले कहे गये हैं, जो मेरा (भगवान्का) भजन करते हैं। वे हैं आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। ऐसा भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं कहा है। यथा—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

यह बात सबको विदित है कि जबतक मनुष्य निरुपाय नहीं होता और लौकिक साधनोंको कार्यान्वित करके असफल नहीं होता, तबतक वह भगवान्की शरण ग्रहण नहीं करता; क्योंकि मनुष्यका ऐसा स्वभाव होता है कि वह पहले अपनी शक्तिको काममें लाता है। उसमें सफलता न मिलनेपर अपने सगे-सम्बन्धियों और सहायकोंकी आशा करता है। जब सब तरफसे निराश होता है, तब भगवान्की शरणमें जाता है और जब सब तरफसे अन्धकार—निराशा ही दिखायी पड़ती है, तभी हृदयमें सच्ची अनन्यताका भाव उत्पन्न होता है। हृदयमें ज्यों ही भगवान्के प्रति अनन्यताका भाव उत्पन्न हुआ, त्यों ही उसकी वाणीमें, स्वरमें, आँखोंके आँसुओंमें वह शक्ति आ जाती है कि भगवान्को वहाँ बरबस जाना पड़ता है। यह है प्रार्थनाकी शक्ति।

द्रौपदी और गजेन्द्रकी परिस्थिति जब ऐसी हुई कि अपनी और आत्मीयोंकी शक्ति निष्फल हो गयी; द्रौपदीका जिनपर भरोसा था, वे काष्ठकी मूर्तिकी तरह निश्चेष्ट बैठे देखे गये। उनके हाथोंका बल तो पहले ही जवाब दे चुका था। अब केवल एक ही क्षणका समय था कि पाण्डवोंकी पत्नी और कृष्णकी परम प्रिया द्रौपदी सभाके बीच निरावरण हो जाती। उस समय द्रौपदीके हृदयकी अवस्थाको स्वयं द्रौपदी ही जान सकती है। शब्दोंसे वर्णन करना कठिन ही नहीं, बिल्कुल असम्भव है। उस समय द्रौपदीको महर्षि वसिष्ठका उपदेश स्मरण हुआ कि बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़नेपर भगवान् श्रीकृष्णका ही स्मरण करना चाहिये। यथा—

ज्ञातं मया वसिष्ठेन पुरा गीतं महात्मना।
महत्यापदि सम्प्राप्ते स्मर्तव्यो भगवान् हरिः॥

(महाभारत सभा० अ० ६८)

द्रौपदीने अनन्यशरणा होकर हृदयसे भगवान्का स्मरण किया—

गोविन्देति समाभाष्य कृष्णेति च पुनः पुनः ।
मनसा चिन्तयामास देवं नारायणं प्रभुम् ॥
आपत्स्वभयदं कृष्णं लोकानां प्रपितामहम् ।
गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ॥
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ॥
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन ॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम् ॥
इत्यनुस्मृत्य कृष्णं सा हरिं त्रिभुवनेश्वरम् ।
प्रारुदद् दुःखिता राजन् मुखमाच्छाद्य भामिनी ॥

(महाभारत सभा० ६८ । ४०-४४)

"द्रौपदीने वारंबार 'गोविन्द' और 'कृष्ण' का नाम लेकर पुकारा और आपत्तिकालमें अभय देनेवाले लोकोंके प्रपितामह प्रभु नारायणदेव भगवान् श्रीकृष्णका मन-ही-मन चिन्तन किया । (वह बोली—) 'हे गोविन्द ! हे द्वारकावासी श्रीकृष्ण ! हे गोपाङ्गनाओंके प्राणवल्लभ ! हे केशव ! कौरव मेरा अपमान कर रहे हैं, इस बातको क्या आप नहीं जानते ? हे नाथ ! हे लक्ष्मीनाथ ! हे व्रजनाथ ! हे संकट-नाशन जनार्दन ! मैं कौरवरूप समुद्रमें डूबी जा रही हूँ; मेरा उद्धार कीजिये ! हे सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! महायोगिन् ! विश्वात्मन् ! विश्वभावन ! गोविन्द ! कौरवोंके बीच कष्टमें पड़ी हुई मुझ शरणागत अबलाकी रक्षा कीजिये ।' (वैशम्पायनने जनमेजयसे कहा—) 'राजन् ! इस प्रकार त्रिभुवनके स्वामी श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका बार-बार चिन्तन करके मानिनी द्रौपदी दुखी हो अंचलसे मुख ढककर जोर-जोरसे रोने लगी !"

याज्ञसेन्या वचः श्रुत्वा कृष्णो गह्वरितोऽभवत् ।
त्यक्त्वा शय्याऽऽसनं पद्भ्यां कृपालुः कृपयाभ्यगात् ॥
कृष्णं च विष्णुं च हरिं नरं च
त्राणाय विक्रोशति याज्ञसेनी ।
ततस्तु धर्मोऽन्तरितो महात्मा
समावृणोद् वै विविधैः सुवस्त्रैः ॥

(महाभारत सभा० ६८ । ४५-४६)

"द्रौपदीकी करुण प्रार्थना सुनकर कृपालु श्रीकृष्ण गद्गद हो गये तथा शय्या और आसनको छोड़कर दयासे द्रवित हो पैदल ही दौड़ चले । द्रौपदी अपनी रक्षाके लिये 'श्रीकृष्ण', 'विष्णु', 'हरि' और 'नर' आदि भगवन्नामोंको जोर-जोरसे पुकार रही थी । इसी समय धर्मस्वरूप महात्मा श्रीकृष्णने वहाँ पधारकर अव्यक्तरूपसे उसकी साड़ीमें प्रवेश किया और विविध भाँतिकी सुन्दर साड़ियोंके द्वारा द्रौपदीको ढक दिया ।"

इस प्रकार वस्त्रके रूपमें भगवान् वहाँ तुरंत आ पहुँचे । मायापतिके सामने क्या कभी मायावी दुर्योधन और दुःशासनका मनोरथ पूर्ण हो सकता था ? कभी नहीं । दस हजार हाथीके बलसे सम्पन्न दुःशासनके हाथ थक गये परंतु द्रौपदीकी साड़ीका अन्त नहीं हुआ । अन्तमें लज्जासे नीचा सिर करके वह बैठ गया । सभामें भगवान् श्रीकृष्णकी जयकी ध्वनि गूँज उठी ।

भगवान्‌की प्रार्थनामें भगवान्‌के नाम, गुण और प्रभावका ही तो उल्लेख होता है और उन्हींके प्रभावसे प्रार्थना सफल होती है ।

गजेन्द्रने भी ऐसी ही परिस्थितिमें भगवान्‌को स्मरण किया था । जब गजेन्द्रने पानी पीनेके लिये जलमें प्रवेश किया तब दुर्भाग्यवश किसी बलवान् ग्राहने क्रोधसे उसका पैर पकड़ लिया । उसके साथ उसके सहायक सैकड़ों हाथी और हथिनियाँ थीं । उसने अपनी सहायताके लिये उनको बुलाया । वह स्वयं भी बहुत बलवान् था । परंतु जब भाग्य प्रतिकूल होता है तब सभी उपाय निष्फल हो जाते हैं । इसलिये उसके सहायकोंका प्रयत्न निष्फल हो गया और वे उसको ग्राहसे छुड़ानेमें समर्थ नहीं हुए । वे तत्पर खड़े होकर रोने और चिल्लाने लगे ।

किसी कविने कहा भी है—

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता ।

अब उसको अपने बलका ही भरोसा रह गया । ग्राहके साथ युद्ध करते हुए उसको एक हजार वर्ष बीत गये । कभी हाथी ग्राहको खींचकर जलसे बाहर ले आता, कभी ग्राह हाथीको खींचकर जलमें ले जाता । इस युद्धको देवताओंने बहुत आश्चर्यसे देखा । जब हाथीका बल घटने लगा, तब उसके मनमें चिन्ता बढ़ी । श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें राजा परीक्षित्‌ने ग्राह और गजेन्द्रकी कथा पूछी थी तब शुकदेवजीने उनसे इस कथाका वर्णन किया था ।

भगवान्‌का वस्त्रावतार

दुःसासनकी भुजा थकित भइ वसन रूप भये स्याम

द्रौपदीने अनन्यशरणा होकर हृदयसे भगवान्‌का स्मरण किया—

गोविन्देति समाभाष्य कृष्णेति च पुनः पुनः।
मनसा चिन्तयामास देवं नारायणं प्रभुम्॥
आपत्स्वभयदं कृष्णं लोकानां प्रपितामहम्।
गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय॥
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव॥
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्॥
इत्यनुस्मृत्य कृष्णं सा हरिं त्रिभुवनेश्वरम्।
प्रारुदद् दुःखिता राजन् मुखमाच्छाद्य भामिनी॥

(महाभारत सभा० ६८। ४०–४४)

"द्रौपदीने वारंवार 'गोविन्द' और 'कृष्ण' का नाम लेकर पुकारा और आपत्तिकालमें अभय देनेवाले लोकोंके प्रपितामह प्रभु नारायणदेव भगवान् श्रीकृष्णका मन-ही-मन चिन्तन किया। (वह बोली—) 'हे गोविन्द! हे द्वारकावासी श्रीकृष्ण! हे गोपाङ्गनाओंके प्राणवल्लभ! हे केशव! कौरव मेरा अपमान कर रहे हैं, इस बातको क्या आप नहीं जानते? हे नाथ! हे लक्ष्मीनाथ! हे व्रजनाथ! हे संकट-नाशन जनार्दन! मैं कौरवरूप समुद्रमें डूबी जा रही हूँ; मेरा उद्धार कीजिये! हे सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! महायोगिन्! विश्वात्मन्! विश्वभावन! गोविन्द! कौरवोंके बीच कष्टमें पड़ी हुई मुझ शरणागत अबलाकी रक्षा कीजिये।' (वैशम्पायनने जनमेजयसे कहा—) 'राजन्! इस प्रकार त्रिभुवनके स्वामी श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका बार-बार चिन्तन करके मानिनी द्रौपदी दुखी हो अंचलसे मुख ढककर जोर-जोरसे रोने लगी!"

याज्ञसेन्या वचः श्रुत्वा कृष्णो गह्वरितोऽभवत्।
त्यक्त्वा शय्याऽऽसनं पद्भ्यां कृपालुः कृपयाभ्यगात्॥
कृष्णं च विष्णुं च हरिं नरं च
त्राणाय विक्रोशति याज्ञसेनी।
ततस्तु धर्मोऽन्तरितो महात्मा
समावृणोद् वै विविधैः सुवस्त्रैः॥

(महाभारत सभा० ६८। ४५-४६)

"द्रौपदीकी करुण प्रार्थना सुनकर कृपालु श्रीकृष्ण गद्गद हो गये तथा शय्या और आसनको छोड़कर दयासे द्रवित हो पैदल ही दौड़ चले। द्रौपदी अपनी रक्षाके लिये 'श्रीकृष्ण', 'विष्णु', 'हरि' और 'नर' आदि भगवन्नामोंको जोर-जोरसे पुकार रही थी। इसी समय धर्मस्वरूप महात्मा श्रीकृष्णने वहाँ पधारकर अव्यक्तरूपसे उसकी साड़ीमें प्रवेश किया और विविध भाँतिकी सुन्दर साड़ियोंके द्वारा द्रौपदीको ढक दिया।"

इस प्रकार वस्त्रके रूपमें भगवान् वहाँ तुरंत आ पहुँचे। मायापतिके सामने क्या कभी मायावी दुर्योधन और दुःशासनका मनोरथ पूर्ण हो सकता था? कभी नहीं। द[illegible] हजार हाथीके बलसे सम्पन्न दुःशासनके हाथ थक ग[illegible] परंतु द्रौपदीकी साड़ीका अन्त नहीं हुआ। अन्तमें लज्[illegible] नीचा सिर करके वह बैठ गया। सभामें भगवान् श्रीकृष्ण जयकी ध्वनि गूँज उठी।

भगवान्‌की प्रार्थनामें भगवान्‌के नाम, गुण और प्रभा[illegible] का ही तो उल्लेख होता है और उन्हींके प्रभावसे प्रार्थ[illegible] सफल होती है।

गजेन्द्रने भी ऐसी ही परिस्थितिमें भगवान्‌को स्मरण किय[illegible] था। जब गजेन्द्रने पानी पीनेके लिये जलमें प्रवेश किया तब दुर्भाग्यवश किसी बलवान् ग्राहने क्रोधसे उसका पैर पकड़ लिया। उसके साथ उसके सहायक सैकड़ों हाथी और हथिनियाँ थीं। उसने अपनी सहायताके लिये उनको बुलाया। वह स्वयं भी बहुत बलवान् था। परंतु जब भाग्य प्रतिकूल होता है तब सभी उपाय निष्फल हो जाते हैं। इसलिये उसके सहायकोंका प्रयत्न निष्फल हो गया और वे उसको ग्राहसे छुड़ानेमें समर्थ नहीं हुए। वे तटपर खड़े होकर रोने और चिल्लाने लगे।

किसी कविने कहा भी है—

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।

अब उसको अपने बलका ही भरोसा रह गया। ग्राहके साथ युद्ध करते हुए उसको एक हजार वर्ष बीत गये। कभी हाथी ग्राहको खींचकर जलसे बाहर ले आता, कभी ग्राह हाथीको खींचकर जलमें ले जाता। इस युद्धको देवताओंने बहुत आश्चर्यसे देखा। जब हाथीका बल घटने लगा, तब उसके मनमें चिन्ता बढ़ी। श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें राजा परीक्षित्‌ने ग्राह और गजेन्द्रकी कथा पूछी थी तब शुकदेवजीने उनसे इस कथाका वर्णन किया था।

भगवानका वस्त्रावतार

दुःसासनकी भुजा थकित भइ बसन रूप भये स्याम

तात्पर्य यह है कि जबतक हाथीको अपने बलका, सहायकोंका तथा हथिनियोंका भरोसा रहा, तबतक उसने भगवान्‌का स्मरण नहीं किया। जब वह सब तरफसे हताश हो गया और उसपर प्राणसंकट उपस्थित हो गया, तब उसने भगवान्‌का स्मरण किया। उस संकटकालमें भगवान्‌की स्मृतिसे, जलमें डूबते हुएको जैसे कोई नाव मिल जाय, उसी तरह उसके मनको सहारा मिल गया।

उस समय संसारके सभी सम्बन्धियोंको वह भूल गया। एकमात्र भगवान् ही उसके दृष्टिगोचर होने लगे। इस तरह जब उसको अनन्यता प्राप्त हो गयी, तब उसके हृदयसे प्रार्थनाके शब्द निकल पड़े—

> **ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम्।**
> **पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥**
> **यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।**
> **योऽस्मात् परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ॥**
> (श्रीमद्भागवत ८।३।२-३)

राजा परीक्षित्‌के मनमें ऐसा संदेह न रह जाय कि वह तो हाथी था। तमोगुण पशु-पक्षियोंमें अधिक होता है, इससे भगवान्‌की स्मृति और स्तुति उसके मनमें कैसे जागरित हुई। इसलिये कहा—

> **एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि।**
> **जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥**
> (श्रीमद्भागवत ८।३।१)

अर्थात् उसने पूर्वजन्ममें शिक्षा पायी थी। भगवान्‌के नाम, गुण और प्रभावको वह जानता था। उस पूर्वजन्मकी शिक्षाने उसके हृदयसे तमोगुणको हटाकर सत्त्वगुणका प्रकाश ला दिया।

गीतामें भगवान्‌ने जिन चार प्रकारके भक्तोंका उल्लेख किया है, उनमें तीन तो सकाम भक्त हैं और चौथा निष्काम भक्त ज्ञानी होता है। श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके सातवें अध्यायके १०वें श्लोकमें कहा है कि—

> **आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।**
> **कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥**

कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस मनुष्यको जिस चीजकी आवश्यकता होती है, वह अपनी आवश्यकताकी पूर्तिके लिये उस वस्तुके स्वामीके पास जाकर उससे प्रार्थना करता ही है। परंतु वे आत्माराम निर्ग्रन्थ मुनि तो ऐसे हैं कि जिनको किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, कोई इच्छा नहीं, नित्य-निरतिशय आनन्दाम्बुधिमें निमग्न हैं—वे भी उनकी अहैतुकी भक्ति करते हैं, उनकी स्तुति करते हैं, उनके नाम-गुण और प्रभावको गाते रहते हैं; क्योंकि भगवान्‌के गुण ही ऐसे हैं।

विचारकी दृष्टिसे देखा जाय तो 'भक्ति' उसीको कहते ही हैं, जिसमें भगवन्नामका जप हो; क्योंकि भक्ति शब्द 'भज् सेवायाम्' धातुसे क्तिन् प्रत्यय करनेपर बनता है। भगवान्‌की सेवा उनकी आज्ञाओंका पालन करना और उनके नामकी शरण लेना है। भगवान्‌की आज्ञा है—दुराचारसे दूर रहनेकी और सदाचारको अपनानेकी, साथ-ही-साथ भगवान्‌के अतिरिक्त दूसरे किसीका भरोसा न करनेकी।

सेवा करना अत्यन्त कठिन है, इसीलिये किसी साधकका कहना है कि 'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः' इसलिये भक्ति जितनी सुगम है, उतनी ही कठिन भी है। सेवामें अपनी इच्छाको सर्वांशतः त्याग करके अपने सेव्यकी इच्छाको अपनी इच्छा बना लेना पड़ता है। उसमें निरन्तर अपने सेव्यका ध्यान रखना पड़ता है। आजतक जितने भक्त हुए हैं, सबने भगवान्‌की इच्छामें ही अपनी इच्छाको मिला दिया है। इस जीवनमें सुख और दुःख जो कुछ प्राप्त होता है, उसको वे भगवान्‌का प्रसाद समझकर उद्विग्नतारहित होकर भोगते हैं।

भगवान्‌के नाम-जपसे भगवान्‌में भक्ति उत्पन्न होती है। भगवान् शंकर और ब्रह्मा भी भगवन्नामका जप करते हैं। भगवद्भक्तिमें नामकी प्रधानता है। संत शिरोमणि तुलसीदासजीने उत्तरकाण्डके पहले दोहेमें, जब हनुमान्‌जी लंकासे अयोध्यामें आते हैं, तो उन्होंने भरतजीकी जो अवस्था देखी और उसका जो चित्रण किया है, उससे ज्ञात हो जाता है कि भक्तिमें नामकी कैसी प्रधानता है। यथा—

> राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
> बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत ॥
> बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
> राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात ॥

भरतकी भक्तिको देखनेसे हनुमान्‌जीको बहुत प्रसन्नता

गये। उनका शरीर पुलकित हो गया; आँखोंसे आँसू [illegible] लगे। फिर उन्होंने भरतजीसे कहा—

[illegible] निरत सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाती॥
[illegible] तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥

भक्ति तो अपने इष्टदेवकी आराधना चाहती है। सदा भगवान्के नामों, गुणों और प्रभावका स्वयं जप करते रहना ही भक्ति है। नवधाभक्तिमें भगवन्नाम-जप दूसरी भक्ति है, जैसे पहली भक्ति श्रवण है, दूसरी भक्ति कीर्तन है। कीर्तन भगवन्नामका ही प्रधान रूपसे होता है। भक्तको जिस वस्तुकी आवश्यकता होती है, उसको वह भगवान्से ही माँगता है और उनके नाम, गुण तथा प्रभावको गाता है। निष्कामभावसे भगवान्की महिमाका वर्णन 'स्तुति' है और किसी वस्तुके लिये भगवान्के नाम-गुणका वर्णन 'प्रार्थना' है। सकामभावसे स्तुति करनेपर भगवत्कृपासे ऐहिक सुखकी प्राप्ति होती है और पारलौकिक सुखकी प्राप्ति भी होती है।

श्रीमद्भागवतमें व्यासजीने लिखा है, जो वचन भगवन्नाम, यश और प्रभावसे रहित उच्चरित होता है, उससे पापकी ही वृद्धि होती है। अतः सज्जन पुरुष भगवान्के नाम, यश, गुणको सुनते हैं और स्वयं भी गाते हैं। यथा—

तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत्
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥
(श्रीमद्भागवत १।५।११)

अतः भगवद्भक्तिके प्रधान अङ्ग भगवन्नाम-जप और भगवान्की प्रार्थना हैं।

गुरु नानककी आध्यात्मिक साधना और उनका 'जपजी'

(लेखक—सरदार सर सुरेन्द्रसिंहजी मजीठिया महोदय)

अवतारके रूपमें पुरुष-सिंह गुरु नानकका नाम सिद्ध-[illegible]के समान शताब्दियोंसे प्रख्यात है। गम्भीर काव्य-[illegible]भा, विश्वस्त और सुन्दर व्यवहार, स्पष्ट और सूक्ष्म [illegible]ज्ञान, प्रभावोत्पादक अलौकिक शक्ति, सत्यके स्वरूपकी [illegible]र्दृष्टि तथा शान्त और दीप्त स्वरके द्वारा आचारविधिके [illegible]नमें अद्वितीय गुरु, समर्थ थे।

वे गह्वर-स्रोतमें तीन दिनतक पानीके अंदर पड़े और इस आध्यात्मिक अनुभवका सम्बन्ध 'जपजी' था। इस अद्वितीय प्रार्थनाकी पुस्तकमें मनोहरता और [illegible]से, उच्च विचार और अन्तर्ज्ञानका समावेश है। इसमें [illegible]बन-दर्शन तथा प्रामाणिक आध्यात्मिक साधनाका [illegible]म्मिश्रण है।

'जपजी' जिसने शताब्दियोंतक कोटि-कोटि साधकोंको [illegible]ध्यात्मिक अनुभवके क्रमिक विकासके पथमें अग्रसर किया [illegible] एक सार्थक शब्द है। इसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है—[illegible]प जल्प' व्यक्तायां वाचि। जल्पनं बारं बारं उच्चारणम्" [illegible]रंबार उच्चारणका अर्थ है 'जप'। इसका दूसरा अभिप्राय [illegible]ह है कि भगवान्को प्रत्यक्ष करना जप है। इस साधनामें [illegible]ाता ध्येयाकार हो जाता है—'तज्जपस्तदर्थभावनम्'। एक और इसकी अत्यावश्यक परिभाषा है—निर्बाध अन्तः-करण-प्रकाश। यह सूक्ष्म करुणार्द्र अन्तःकरणकी विशुद्ध दीप्ति है। इस निर्णयात्मक स्थितिमें सारे बन्धन छिन्न हो जाते हैं।

जपके तीन प्रकार हैं—वाचिक, उपांशु और मानस। बोलकर जप करना वाचिक है। उपांशु जपमें केवल ओठ हिलते हैं और मानस जप भीतर अन्तःकरणमें होता है। इसमें तीसरा प्रकार मानस जप प्रशस्त है। पुस्तकमें लिखे मन्त्र और जिह्वासे उच्चारित होनेवाले मन्त्रमें महान् अन्तर है। 'मन्त्र' शब्द 'मन्त्रि' धातुसे निकला है, जिसका अर्थ है 'गुप्तप्रभाषण'। अर्थात् जो कानमें बहुत धीमे स्वरमें सुन पड़े, उसे 'मन्त्र' कहते हैं। जब मन्त्र चुपचाप मौन भाषामें उच्चारित होता है तो विशेषरूपसे उसका परिणाम आनन्दप्रद होता है। 'गुप्तवीर्यवती विद्या, निर्वीर्या च प्रकाशिता।' यह शास्त्र विधान है कि मन्त्र-ज्ञानको जितना ही गुप्त रक्खा जाता है, उतनी ही उसमें आन्तरिक शक्ति पैदा होती है तथा प्रकट करनेसे उसकी शक्ति क्षीण होती है। इसका एक कारण है। लोग यह भय ठीक ही करते हैं कि बिना विचारे अन्धाधुन्ध दीक्षा देनेसे एक आन्तरिक आत्मरमरा ही मिट जायगी।

सिक्ख गुरुओंके मौलिक विचारके मुख्य सिद्धान्त ये हैं—ईश्वर अनादि और अनन्त है। जिसका कभी नाश न हो उसे 'अक्षर' कहते हैं। ईश्वर अक्षरस्वरूप है। नित्य शुद्ध तत्त्व है। शब्द-तत्त्वसे, इसके विभिन्न अर्थमें विश्वकी सृष्टि और परिवर्तन होता है। सिक्ख-सम्प्रदायका मूल आधार है—गुरुवाणी। 'वाणी' शब्दका एक गम्भीर अर्थ 'वाक् नयति' अर्थात् जो अन्तःशब्दको प्रसरित करती है, वह वाणी है। यह श्रोताकी मनोवेगात्मक गुत्थीको सुलझा देती है और उसे निर्णय करनेकी स्वतन्त्रता प्रदान करती है। वह वाणी धन्य है जो कभी किसीका मजाक नहीं उड़ाती है, बल्कि भूले-भटके और असहायको आश्रय प्रदान करती है।

हमारा युग मौलिकताका पुजारी है। लोग व्यर्थ पूछ बैठते हैं कि यह ग्रन्थ मौलिक है या नहीं ? मौलिकता निश्चयपूर्वक व्यक्तिगत सनक है या अनपेक्ष्य देन है। गुरु नानककी मौलिकता किस बातमें थी ? क्या यह एक विशेष दृष्टिके अन्वेषणमें है या प्रसङ्गके चुनावमें ? क्या उन्होंने परम्परागत विधि-नियमकी अवहेलना की थी ? क्या यह अन्तःशक्तिका उद्गार था ? सूक्ष्म विवेचना करनेपर हमें ज्ञात होता है कि जब गुरु नानकने एक प्रचलित सम्प्रदायको स्वीकार किया, तो उनके विचार बिल्कुल नये रूपमें प्रकट होने लगे। उनकी मौलिकता इस बातमें थी कि उनमें वस्तुओंको निरीक्षण करने और उनके नये आकार-प्रकार और गुणोंको व्यक्त करनेकी क्षमता थी। यही कारण था कि उन्होंने अद्भुत रीतिसे काल्पनिक उपादान लेकर भावोंकी सृष्टि की। उनकी कल्पना तत्त्वोंके गव्यमें सीधा उतरती है और मनको मोह लेती है, हृदयको द्रवित करती है तथा आनन्दसे पुलकित कर देती है।

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति ॥'

अर्थात् नवीनता और हर्ष, रमणीयता और आनन्द सौन्दर्यकी मूल सामग्री हैं।

मुख्य प्रश्न यह है कि 'जपजी' क्यों मुग्ध करता है ? विचार करनेपर हम देखते हैं कि इसमें नवीनता और आनन्द है। यह सुन्दर है, अतएव यह [illegible] है।

जपजीकी सारी शक्ति और विश्वास इसकी विचारपूर्ण योजनामें है। जैसे,

बीज-मन्त्र—एक ॐकार।

नाम-मन्त्र—सत नाम।

गुरु-मन्त्र—वाहि गुरु।

मूल मन्त्र—एक ॐकार सतनाम कर्ता पुरुष, निर्भौ, निर्वैर, अकालमूर्त्त, अजोनि, स्वयं, गुरुप्रसाद।

जप—आद सच, जगद सच, है भी सच, नानक होसी भी सच।

मूलमन्त्रमें ३५ अक्षर और १२ चिह्न हैं—जिनमें ८ विधेय विधिमुख और ४ निषेधमुख। विधिमुखकी पद्धतिमें एक, ओंकार, सत्, नाम, कर्त्ता, पुरुष, स्वयं और गुरुप्रसाद हैं। विधिमुखमें दीप्तिकी ध्वनि है और निषेधमुखमें अन्धकारपर जोर दिया जाता है।

प्रत्येक मन्त्रका अधिकार-क्षेत्र होता है और उसकी अपनी सीमा होती है। उससे प्रतिफलित होनेवाला प्रभाव भीतरसे उत्पन्न होता है। इस आध्यात्मिक अनुसंधानमें उद्देश्यकी पवित्रता आधारका काम करती है। यदि मनमें विचार उठते रहते हैं और मन उड़ान भरता रहता है तो मन्त्रकी मौलिक प्रतिध्वनि और स्वाभाविक गुण नष्ट हो जाते

हैं तथा मन्त्रकी दीप्ति धूमिल हो जाती है। इनमेंसे किसी मन्त्रके तेज और अनुभवसे साधक अपनेको भरपूर कर सकते हैं। यह कहना सत्यका अपलाप है कि ये मन्त्र एकमें मिले हैं। वस्तुतः ये एक दूसरेसे पूर्णतः पृथक् हैं। बीजमन्त्र प्रेरक होता है। नाममन्त्र गहराईतक आन्दोलित करता है। मूलमन्त्र एक भावात्मक प्रवृत्ति है। तदनन्तर उद्घोष करनेवाली पङ्क्तियाँ जैसे—'आद सच' इत्यादिमें किसी प्रकारकी भी अहंकी अपेक्षा नहीं है। ३८ पद मानो पङ्ख पसारकर उड़ते जाते हैं और आचारके शिखरको स्पर्श करते हैं। अन्तिम पद हमारे हृदयमें भगवान्‌के नामकी अमिट छाप छोड़ जाता है। जपजीकी समाप्ति आशावादी स्वरमें होती है।

जपजीकी वाक्यरचना सुगठित और सुस्पष्ट है। रस-दृष्टिके साथ-साथ उसमें विस्तृत स्वरग्राम हैं और मन्द-मन्द प्रवाहके साथ दार्शनिक स्रोत उसके पदके महत्त्वको बढ़ाते हैं। बीज और मूलमन्त्रको गुरुत्व प्रदान करनेके लिये मानस जपकी आवश्यकता है। पदोंके रागोंको सुर-तालमें गाना चाहिये। जपजीमें 'वाहि गुरु'का उल्लेख नहीं है। आगे चलकर यह सिक्खोंके आध्यात्मिक चिन्तनका एक मुख्य सिद्धान्त बन जाता है।

हमारे इस कुसमयमें जो बात एक समय अभीष्ट होती है, वही दूसरे समयमें बला बन जाती है। जपजीके विषयमें लोगोंकी अभिरुचि ज्यों-की-त्यों कैसे बनी रह गयी? गुरु नानक वस्तुतः जादू कर गये हैं। उन्होंने इसको हमारी जीती-जागती संस्कृतिका एक सौदा बना दिया है। प्रार्थनाकी पुस्तकमें जीवनको गतिशील करनेकी शक्ति होनी चाहिये। इस दृष्टिकोणसे देखनेसे जपजीमें तीन प्रकारकी विशेषताएँ हैं—यह अतिशयोक्तिपूर्ण अलङ्कारदोषसे मुक्त है और इसके विपरीत, इसकी भाषा सुसंयत और सुमधुर है। इसके अतिरिक्त, इसके दार्शनिक विचारमें पूर्णताके भाव भरे हैं और इसका दृढ़ मत है कि भगवान्‌से विमुख होना दुःखमय है।

एडवर्ड ल्यूस-स्मिथ जैसे सौन्दर्यशास्त्रविशारदोंका मत है कि प्रणयनसे व्याख्याकी ओर जाना कलाकृतिमें ह्रासका बोधक है। हमारे विचारसे यह कलाका एक वास्तविक उद्बोधन है। गुरु नानकने एक सार्वभौम संस्कृतिकी सृष्टि की है और उसके भीतर निहित शक्तिकी व्याख्या की है।

जपजीकी आभ्यन्तरिक शक्ति मनस्तत्त्वके विवेचनमें निहित है। प्रत्येक तार्किक मनुष्यको प्रमाण तथा प्रमाणित करनेके लिये दृष्टान्तका आश्रय लेना पड़ता है। एक प्रार्थनाकी पुस्तक उनकी विचारधारामें मौलिक परिवर्तन कर सकती है। जपजीमें अधिकांश ध्येय वस्तुके साथ-साथ उसकी साधनाके प्रकार भी हैं। सुन्दरके अर्थ तथा सुन्दर होनेके कारणोंपर मि० मूरके सिद्धान्तकी समीक्षा करना धृष्टता होगी। इस विषयमें अन्तर्ज्ञान हमारा ठीक मार्गप्रदर्शन नहीं करता; क्योंकि यह एक वैयक्तिक मनोवृत्ति है, जिसके विभिन्न अर्थ हो सकते हैं। प्रोफेसर फिण्डले कुछ आगे बढ़कर यह तर्क उपस्थित करते हैं कि 'चूँकि सुन्दरताके विभिन्न आधार हैं, अतएव उसका कोई विशिष्ट आकार-प्रकार नहीं है।' गुरु नानकके विचारने गुण और प्रयत्नमें एक आन्तरिक ऐक्य स्थापित करके मि० मूरकी मौलिक भूलोंका कथञ्चित् समाधान किया है।

प्रोफेसर फिण्डलेने मनकी एक नयी फिलासफीकी अवतारणा की है, जिसमें मनके ढाँचे, अनुभवके नमूने और प्रादुर्भावकी शैलीकी विवेचना की गयी है। गुरु नानकके विचारसे सृष्टिकर्ताका ज्ञान एक मानसिक घटना है। केवल सतर्कताकी उच्च भूमिमें पहुँचनेपर यह घटना समीप आ जाती है। इस सतर्कताका मूल है—आध्यात्मिक साधना। प्रोफेसर फिण्डलेके मतसे मनके अभ्युदयका अर्थ है—'वस्तुओंको उनके स्वरूपमें नहीं, बल्कि एक संयतरूपमें देखना चाहिये, जिससे लक्ष्यकी प्राप्तिमें सहायता मिले।' जपजी इस प्रकारके साध्यकी सिद्धिके लिये एक मानसिक अभ्युदयका साधन है।

प्रोफेसर फिण्डले आधुनिक धार्मिक लक्ष्योंपर कटु प्रहार करते हुए कहते हैं कि 'धार्मिक लक्ष्यमें केवल वे उच्चतम रूप या गुणके अंश नहीं होते, जिनका हमें मूल्याङ्कन करना है, बल्कि उनके भीतरके भावों या आचार-व्यवहारको अद्भुत रीतिसे तोड़-मरोड़कर उपस्थित किया जाता है, जिसमें स्थूलको सूक्ष्ममें बदल दिया जाता है। जो सहज बुद्धिगम्य है उसको विडम्बनामय और दुर्बोध बना देते हैं। जो अत्यन्त कृपालु और कल्याणकारी है, उसको बहुधा भयावह और अमङ्गलजनक चित्रित करते हैं।'

वे कहते हैं कि 'ईश्वरका अस्तित्व नहीं है; क्योंकि ठीक तौरपर उनका निर्वचन नहीं हो सकता। सिंहासनके समीप हम अनेकों दृष्टान्त दे सकते हैं; परंतु स्वर्गमें ईश्वरका सिंहासन खाली है। अतिरिक्त इसके, ईश्वर इतना अधिक ऊँचा है कि विश्वास नहीं किया जा सकता।' तथापि वे उत्सुकता-

…आ ! नैतिकताकी इस बनियागिरीके युगमें ज्ञान और भक्तिके बीच झूठा वैषम्य प्रदर्शित किया जाता है।

कुछ अंशतक परम्परागत संदेह अपनायी हुई साधनाके प्रति आकूल असर करता है। तथापि इस कारण हमको तत्त्वको ग्रहण करनेसे विमुख नहीं होना चाहिये।

भक्तिके प्रमुख स्वरूप हैं—शरणागति और माधुर्य। प्रथम साधनामें भगवान्‌के ऐश्वर्य-स्वरूपकी उपासना की जाती है और पूर्ण आत्मसमर्पण किया जाता है। दूसरी साधनामें भगवान्‌के प्रियजनोंके प्रति मधुर स्नेह प्रदान करते हुए भावमयी सेवामें साधक विश्वास करता है। भक्त माधुर्यमय हो जाता है। उसके रोम-रोमसे माधुरी टपकती है। माधुर्य-सेवामें भावुक कवि रैदासने अपने प्रियतम प्रभुके साथ मानसिक सहवास किया था। वे एक रोमाञ्चकारी वगत गीतमें पूछते हैं कि 'वे एक लज्जाशीला कुँवारी कन्याके समान क्यों सुन्दर वेषभूषामें सजधजकर, प्रियतमके प्रति कटाक्षपात करें, यदि मन्द मुसकानके द्वारा वह अनुराग नहीं प्रदर्शित करते।' कभी-कभी भक्तको अपने स्वीकृत सिद्धान्तके विषयमें संदेह होता है। उस समय उसका आत्मोपालम्भ और कोमल शब्दोंमें व्यङ्ग्य सुनने ही योग्य होता है। भक्ति आन्तरिक निर्घोषकी निकासीका द्वार है और ज्ञान उसका परमोच्च स्वरूप है। दोनोंको एक दूसरेका विरोधी समझना हानिकर है, कदाचित् बहुत बड़ी हानि है। मधुसूदन सरस्वती इसका रामबाण नुसखा प्रदान करते हुए कहते हैं—'भक्तिर्ज्ञानाय जायते।' भक्ति ज्ञानका पुलकित रूप है।

जपजीमें इन भावोंका वर्णन विशेष आनन्ददायक है। सारी विधि आन्तरिक समता और प्रतिध्वनिपर आधारित है। यह आधुनिक चिन्तनकी दोनों आध्यात्मिक विधियों—तन्त्र-प्रयोग और कुतर्कके आश्रयसे मुक्त है। जपजी विविध सत्यधर्मोंका दिग्दर्शन है। कुछकी गवेषणा की ग… है और एक चरम सत्यकी स्थापना हुई है जो एक अ… अद्वितीय परब्रह्म है।

इस मध्य शताब्दीमें, जिसमें कल्पनाका प्रवेशद्वार संकीर्ण है, प्रेम अपनी मनोरमता खो चुका है; वाणी अज्ञानका परामर्श देती है, मनुष्यका हृदय कुमार्गी हो गया है। ऐसी दशामें बुद्धिमानी इसीमें है कि मनुष्य 'पुरातन धर्मके पुरातन स्वरूप' में आरूढ़ रहे। जो प्रयोजनीय था और आज भी है, वह है आभ्यन्तरिक धर्म। अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि मनोवैज्ञानिक सारी बुराइयोंके लिये समाजको नहीं, मनको दोषी ठहराते हैं। संसद-सदस्यके उत्तेजनात्मक भाषणके बिना आज बौद्धिक या सामाजिक क्षेत्रमें परिवर्तन नहीं होता। यह समझना कठिन है कि आन्तरिक मानवकी पदमर्यादा या विधायकोंका स्वतः न्याय्य यथार्थवाद—इन दोनोंमें कौन अधिक अनिश्चित है। सुप्रसिद्ध जर्मन नाटककार ब्रेख्ट… आचारनीतिके वर्तमान दिवालियापनपर व्यङ्ग्य नहीं, तो अट्टहास करते हुए कहता है कि 'बहुत-से विद्या-बुद्धि सम्पन्न लोगोंके लिये सुन्दर आभ्यन्तरीय जीवन केवल सुन्दर बाह्य जीवनका निरा रूपान्तरमात्र है।'

प्रोफेसर बुर्जुम विश्वासोत्पादक ढंगसे कहते हैं कि हम मनुष्यको पुनः विश्वके केन्द्रस्थलमें स्थापित करेंगे, जहाँसे उसको विज्ञान और शिल्पने निकाल बाहर कर दिया है। उन्होंने स्वाभाविक दार्शनिक होनेके मानवाधिकारपर जोर दिया है। तब आधुनिक मानव जो संशयग्रस्त हो गया है, अन्तमें ज्ञान प्राप्त करेगा और तभी वह आभ्यन्तरीय उल्लासका अनुभव कर सकेगा—गाते हुए बीज मन्त्र, एक ॐकार।

हरिनाम ही आधार है

है हरि नाम को आधार।
और इहिं कलिकाल नाहीं, रह्यौ बिधि-ब्यौहार ॥
नारदादि सुकादि मुनि मिलि, कियौ बहुत बिचार।
सकल स्रुति-दधि मथत पायौ, इतोई घृत-सार ॥
दसौं दिसि तें कर्म रोक्यो, मीन कौं ज्यौं जार।
सूर हरि कौ सुजस गावत, जाइ मिटि भव-भार ॥

(सूरदासजी)

भगवन्नामका महत्त्व

(लेखक—श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय एम्० ए०)

श्रीचैतन्यमहाप्रभु श्रीवृन्दावन-धामका दर्शन करके पुरी लौटते समय कुछ दिनके लिये वाराणसीमें ठहर गये थे। वहाँ श्रीचन्द्रशेखरके घर उन्होंने डेरा डाला, जो ब्राह्मण नहीं थे; तथा तपन मिश्रके घर भिक्षा लेने जाते थे। वाराणसी वेदान्तियोंका गढ़ था और वे लोग श्रीचैतन्य-महाप्रभुके प्रेमोन्मादको कोई महत्त्व नहीं देते थे। एक दिन एक ब्राह्मण भक्तने श्रीचैतन्यमहाप्रभु और बहुतसे संन्यासियोंको आमन्त्रित किया। संन्यासियोंने श्रीचैतन्यमहाप्रभुसे कहा—'आप तो संन्यासी हैं और वेदान्तका अध्ययन संन्यासीका मुख्य कर्त्तव्य है। वैसा न करके आप हरिका नाम लेकर गाते और नाचते हैं, आप ऐसा क्यों करते हैं ?' श्रीचैतन्यमहाप्रभुने अत्यन्त नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—

"गुरुने मुझको बेसमझ देखकर यह आदेश दिया कि 'तुम मूर्ख हो, तुम्हारा वेदान्तमें अधिकार नहीं है। तुम सदा 'कृष्ण' मन्त्रका जप करो—यह मन्त्र-सार है। 'कृष्ण' नामसे तुम संसारसे मुक्त हो जाओगे और तुम श्रीकृष्णके चरणोंकी प्राप्ति कर सकोगे। कलिकालमें नामके अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं है। 'कृष्ण' नाम सब मन्त्रोंका सार है—यही शास्त्रका रहस्य है। श्रीकृष्ण तत्त्व-वस्तु हैं। कृष्ण-भक्ति प्रेमरूपा है। नाम-संकीर्तन आनन्दस्वरूप है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥'

"इस आज्ञाके अनुसार मैं तभीसे नाम लेता हूँ। नाम लेते-लेते मेरा मन भ्रमित हो गया। मैं धीरज नहीं रख सका और उन्मत्त होकर, जैसे मदमत्त मनुष्य हँसता, रोता, नाचता, गाता है वैसे ही मैं भी करने लगा। फिर धीरज धारण करके मैंने मनमें विचार किया कि 'कृष्ण' नामसे मेरा ज्ञान ढक गया है। मैं पागल हो गया हूँ, मेरे मनमें धैर्य नहीं रह गया है। यह सोचकर मैंने गुरुजीके चरणोंमें यह निवेदन किया कि 'हे प्रभु ! बताइये—आपने ऐसा क्या मन्त्र दिया जिसने जप करते-करते ही मुझे पागल बना दिया। वह मुझे कभी हँसाता है, कभी नचाता है और कभी रुलाता है।' मेरी बात सुनकर गुरुजीने हँसकर कहा—

"'कृष्ण' नाम महामन्त्रका यही तो स्वभाव है। जो भी उसे जपता है, उसीका श्रीकृष्णमें भाव (प्रेम) हो जाता है। 'कृष्णके प्रति प्रेम होना'—यही तो वह परम पुरुषार्थ है, जिसके सामने अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थ तृणके समान हैं। यह पञ्चम पुरुषार्थ प्रेमानन्दामृतसागर है, मोक्षादि आनन्द इसकी एक बूँद भी नहीं है। 'कृष्ण नामका फल है—'कृष्णमें प्रेमाभक्ति'—यही शास्त्र कहता है। सौभाग्यसे तुम्हारे अंदर इस प्रेमाका उदय हुआ है। प्रेमाका स्वभाव है चित्त-तनमें क्षोभ और श्रीकृष्ण-चरणकी प्राप्तिके लिये लोभ उत्पन्न कर देना। प्रेमके स्वभावसे ही भक्त हँसता-रोता-गाता है, उन्मत्त होकर नाचता है, इधर-उधर दौड़ता है। स्वेद, कम्प, रोमाञ्च, अश्रु, गद्गदता, विवर्णता, उन्माद, विषाद, धैर्य, गर्व, हर्ष, दैन्य—इन विभिन्न भावोंसे प्रेमाभक्ति भक्तोंको नचाती है और उनको श्रीकृष्ण आनन्द-सुख-सागरमें डुबा देते हैं। बहुत अच्छा हुआ जो तुमको यह परम पुरुषार्थ प्राप्त हो गया। तुम्हारे इस प्रेमसे मैं भी कृतार्थ हो गया। अब तुम नाचो, गाओ, भक्तोंके साथ संकीर्तन करो और इसके द्वारा त्रिभुवनमें कृष्ण नामका उपदेश करो।"

"गुरुजीके इन वचनोंपर दृढ़ विश्वास करके मैं निरन्तर कृष्णनामका संकीर्तन करता हूँ। वह कृष्णनाम मुझे कभी नचाता है, कभी गान कराता है। मैं अपनी ही इच्छासे गाता-नाचता हूँ। कृष्णनामसे मैं जिस आनन्द-सिंधुका आस्वादन करता हूँ, उसके सामने मुझे ब्रह्मानन्द एक खद्योतके समान प्रतीत होता है।"

श्रीचैतन्यमहाप्रभुके मधुर वचनको सुनकर और उनसे तर्क-वितर्कमें परास्त होकर संन्यासीलोग अपने मतका त्याग करके भक्तिवादके अनुयायी बन गये।

श्रीशंकराचार्यने विष्णुसहस्रनामके १०वें श्लोकके अपने भाष्यमें बृहन्नारदीयपुराणके इस श्लोकको उद्धृत किया है, परंतु उसमें थोड़ा-सा पाठभेद है। जैसे—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

श्रीशंकराचार्य ज्ञानमार्गके प्रबल समर्थकके रूपमें

अधिक हैं; परंतु वे भी भगवन्नामके उच्चारणकी आवश्यकता स्वीकार करते हैं। अतएव यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भगवन्नाम सभी लोगोंके लिये अत्यन्त हितकारी है, चाहे कोई भक्तिमार्गी हो या ज्ञानमार्गी।

गीतामें श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(८।१४)

'जो अन्य सारी चिन्ताओंका त्याग करके सदा मेरा चिन्तन करता रहता है, वह मुझे आसानीसे प्राप्त कर लेता है।'

निरन्तर भगवन्नाम लेते रहना भगवान्को सदा याद रखनेका अच्छा साधन है। सदा भगवान्को स्मरण रखना बड़ा कठिन है; क्योंकि इसमें चित्तवृत्तियोंके निरोधकी आवश्यकता है। सदा भगवन्नाम लेना कहीं आसान है। अतएव यह कलियुगके लिये एकमात्र उपयोगी है, क्योंकि चित्तवृत्तियोंके निरोधकी शक्ति मनुष्यमें क्षीण हो गयी है। व्यासने कहा है—'कलिर्धन्यः'—'कलियुग धन्य है।' उनके शिष्योंने कहा—'कलियुगमें तो पाप बहुत होते हैं। आप इसको धन्य क्यों कहते हैं?' व्यासजी बोले, 'मैं कलियुगको धन्य इसलिये कहता हूँ कि कलियुगमें भगवान्को प्राप्त करना अधिक आसान है। कलियुगमें निरन्तर केवल भगवान्का नाम लेनेसे मनुष्य उनको प्राप्त कर सकता है। यह दूसरे युगमें सम्भव नहीं है।' श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराणमें भी कलियुगकी यह महिमा गायी गयी है।

साधारणतः भगवन्नामका जप करनेसे निश्चयपूर्वक आध्यात्मिक उन्नति होती है; परंतु इस मार्गमें विघ्न पड़ते हैं। सबसे भयानक विघ्न है विष्णुभक्तका अनादर करना और दूसरा भयानक विघ्न है शास्त्रोंकी अवहेलना करना। शास्त्र भगवद्विधान हैं। कभी-कभी शास्त्रोंका कोई-कोई विधान हमको गलत जान पड़ता है। ऐसी अवस्थामें हमको अपनी इस आस्थापर दृढ़ रहना चाहिये कि शास्त्रोंमें गलती हो ही नहीं सकती। हमारी नासमझीसे शास्त्रोंके कुछ विधान, वस्तुतः ठीक होते हुए भी, हमको गलत जान पड़ते हैं। इसको समझनेके बदले, यदि हम शास्त्रविधानका अपवाद करते हैं तो इससे भयानक अपराध होता है तथा इस अपराधके कारण हमारा भगवन्नाम-जप काम नहीं देता। भगवन्नामका जप करनेपर भी मांस-मछली तथा दूसरी निषिद्ध वस्तुएँ खानेपर आध्यात्मिक उन्नतिमें बाधा पड़ती है। ब्राह्मणके लिये त्रिकाल-संध्या न करना भी एक अपराध है; क्योंकि वेद कहते हैं—

'अहरहः संध्यामुपासीत।'

'प्रतिदिन संध्योपासना करनी चाहिये।'

जिनके लिये तर्पण करनेका विधान है, उनको तर्पण अवश्य करना चाहिये; क्योंकि वेद कहते हैं—

'देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।'

(तैत्तिरीय उपनिषद् १।२।२)

'देवाराधना और पितृकर्म-सम्बन्धी कार्योंमें प्रमाद नहीं करना चाहिये।'

सारांश यह है कि शास्त्रोंने जो विधान किया है, उन कर्मोंको, जहाँतक हो सके पालन करना चाहिये, तथा शास्त्रोंके द्वारा निषिद्ध कर्मोंसे सदा बचना चाहिये। शेष समयमें भगवान्का नाम लेना चाहिये।

ब्रह्मसूत्र (४।१।१) में लिखा है—'आवृत्तिः असकृत उपदेशात्'। इसका अर्थ यह है कि भगवान्की पूजा और स्मरण बारंबार करना चाहिये (आवृत्तिः असकृत्); क्योंकि वेद ऐसा कहते हैं (उपदेशात्)।

बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है—

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।' आत्मा (यहाँ ब्रह्मसे तात्पर्य है) को देखना चाहिये (द्रष्टव्यः) अर्थात् प्रत्यक्ष करना चाहिये। इसलिये पहले सुनना चाहिये (श्रोतव्यः) अर्थात् हमें सुनना चाहिये कि वेद उसके विषयमें क्या कहते हैं। तब (मन्तव्यः) उसके बारेमें चिन्तन करना चाहिये। तत्पश्चात् (निदिध्यासितव्यः) निदिध्यासन अथवा ध्यान। ध्यानका अर्थ है सतत और अविच्छिन्न चिन्तन। नाम-जप करते हुए भगवत्स्मृति या भगवच्चिन्तनके लिये माला सहायता करती है

भगवन्नाम निरन्तर लेते रहनेका फल बतलाते हुए श्रीचैतन्यमहाप्रभुने निम्नलिखित श्लोककी रचना की है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥

'हे प्रभु ! तुमने अपने बहुत-से नामोंकी रचना की है, तुमने अपनी सारी शक्ति उनमें अर्पित कर दी है तथा नामजपके द्वारा स्मरण करनेके लिये किसी समय-विशेषका नियम नहीं रक्खा है । (सब अवस्थाओंमें तुम्हारा नामस्मरण किया जा सकता है) ऐसी तुम्हारी कृपा है । परंतु खेद है कि दुर्भाग्यवश तुम्हारे नाममें मेरा अनुराग नहीं पैदा हुआ ।'

अब मैं भगवन्नामके गानकी महिमापर ऋग्वेद-संहिताकी एक ऋचा उद्धृत करके इस लेखका उपसंहार करूँगा ।

प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट
नामार्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्
क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥
(ऋग्वेद ७ । १०० । ५)

'हे विष्णु ! मैं आपके श्रेष्ठ नामके सामर्थ्योंको जानकर आज आपके प्रसिद्ध नामका कीर्तन एवं आपका गुणगान करूँगा ।'

भगवन्नाम और प्रार्थना

(लेखक—श्रीताराचन्दजी पाण्ड्या)

१ सितम्बर सन् १९६४ के 'हिंदुस्तान'में 'युनाइटेड न्यूज' द्वारा प्रेषित खबर छपी है कि कादुर (मैसूर)के भूतपूर्व सरपंच श्रीवीरन्ना दो महीने पहले अपनी आँखोंकी रोशनी खो चुके थे । कई अच्छे डाक्टरोंको दिखानेपर उन सभीने इसे ला-इलाज बताया । निराश हो श्रीवीरन्नाने अपने परिवारकी देवीके मन्दिरमें जाकर प्रार्थना की । घर लौटकर भी वे प्रतिदिन प्रातःकाल देवीसे प्रार्थना करते और एक सप्ताह बाद जब वे एक दिन भावमग्न हो भजन गा रहे थे कि उनकी आँखोंकी रोशनी लौट आयी और उन्हें पहलेकी तरह दीखने लगा ।

ऐसी अगणित घटनाएँ प्रत्येक देशमें, प्रत्येक गाँव और स्थलमें, प्रत्येक कालमें और प्रत्येक धर्म और मजहबके माननेवालोंके साथमें घटी हैं, जिनमें अपने इष्टदेवकी प्रार्थना या उसके नाम-स्मरणसे, अन्य कोई उपाय न करनेपर भी, व्याधियाँ मिट गयी हैं और संकट दूर हो गये हैं अथवा सफलताकी आशा न रहनेपर भी अकस्मात् या चमत्कारिक ढंगसे उपाय सफल हो गये हैं । सम्भव है, इन कथाओंमें कई असत्य (कल्पित), भ्रमजनित या अतिशयोक्तिपूर्ण हों, लेकिन फिर भी इनमेंसे बहुत-सी सत्य और वास्तविक हैं; यह प्रायः प्रत्येक व्यक्तिको अनुभव हुआ होगा । प्रार्थनासे हुमायूँकी बीमारी उसके पिता बादशाह बाबरमें आ गयी और हुमायूँ स्वस्थ हो गया, यह इतिहासप्रसिद्ध बात है ।

कुछ लोग कहेंगे कि उपर्युक्त घटनाएँ प्रार्थना या नाम-स्मरणका नहीं, किंतु विश्वासका चमत्कार है । लेकिन सभी सूरतोंमें विश्वास इतना तीव्र या जाग्रत् होता हो, यह नहीं कहा जा सकता । कई बार विश्वास अल्प या आंशिक होनेपर भी फल होता है, बल्कि फल होनेके बाद विश्वास होता है और कई बार सफलतामें विश्वास होनेपर भी तथा तीव्र मनोकामना होनेपर भी इच्छा पूरी नहीं होती । अस्तु, अगर विश्वासको ही कारण माना जाय, तो भी यह तो मानना पड़ेगा कि प्रार्थना या नाम-स्मरणके जरिये विश्वास जाग्रत्, बलवान् तथा केन्द्रित हो जाता है ।

कुछ कहेंगे कि प्रार्थना आदिसे जो सफलता मिलती है वह इष्ट-देवता नहीं, किंतु स्थानविशेषकी संरक्षक अदृश्य, अतिमानवीय शक्तियाँ देती हैं । परंतु इसमें भी प्रार्थना आदिके अवलम्बनको, कम-से-कम निमित्तके तौरपर कार्यकारी मानना पड़ता है ।

सभी धर्मोंमें प्रार्थना तथा प्रभुके नाम-स्मरणकी महिमाका बारंबार प्रतिपादन एवं उपदेश है ! और तो और, जो इष्टदेवको कर्ता-हर्ता नहीं मानते हैं, उनमें भी प्रार्थना और नाम-स्मरणका भरपूर विधान है और उनकी अतुल महिमाका बखान है ।

हिंदू-धर्ममें वेदोंके मन्त्र प्रायः प्रार्थनारूप ही हैं और सभी पुराण प्रार्थना और नाम-स्मरणकी महिमासे ओतप्रोत

है। जब कभी जगत्पर संकट आया है, तब देवोंने ब्रह्मा आदिके साथ परमात्माकी प्रार्थना की है। नारदादि मुनि तो सदैव ही नामकीर्तन करते रहते हैं। प्रभु-नाममें सब वर्णों और आश्रमोंका अधिकार है। नाममें सब पापोंका नाश हो जाता है और कलियुगमें तो नाम ही मुख्य साधन है। जगह बारंबार उल्लेख है। द्रौपदी-चीर-हरण, गजेन्द्र-संकट-मोचन, अजामिल-जैसे सैकड़ों उपाख्यान पुराणोंमें भरे पड़े हैं।

ॐ परब्रह्मका नाम है; परब्रह्म ही है और इसके स्मरण और चिन्तनसे परब्रह्म तथा सभी सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। यह उपनिषदोंमें बारंबार बताया गया है। उदाहरणतः प्रश्नोपनिषद् (पञ्चम प्रश्न), मुण्डकोपनिषद् (द्वितीय मुण्डकका द्वितीय खण्ड); माण्डूक्योपनिषद्, कठोपनिषद् (१ । २ । १५—१७), तैत्तिरीयोपनिषद् (शिक्षावल्लीका ८वाँ अनुवाक), छान्दोग्योपनिषद् (अध्याय १,खण्ड १—५)। उपनिषदोंमें जगह-जगह कई सुन्दर प्रार्थनामय मन्त्र भी हैं, जैसे तैत्तिरीयोपनिषद् (शिक्षा वल्ली, चतुर्थ अनुवाक), ईशावास्योपनिषद् १५-१८।

भगवद्गीतामें भी आया है कि 'मैं परमात्मा शब्दोंमें ॐ हूँ और यज्ञोंमें जपयज्ञ हूँ' (१० । २५), अर्थात् भगवान्‌का नाम जपना सब यज्ञोंमें सर्वश्रेष्ठ और प्रधान है।

मनुजीने भी कहा है कि ॐ परब्रह्म ही है और विधियज्ञ (वेद-पाठ-)से जपयज्ञ दसगुना बड़ा है। विधियज्ञसहित चार पाकयज्ञ (पितृकर्म, होम, बलि, वैश्वदेव)—ये सब जपयज्ञके सोलहवें अंशके भी बराबर नहीं हैं; और ब्राह्मण जप करनेसे ही सब सिद्धियोंको पा जाता है, वह चाहे यज्ञादि अन्य कर्म करे या नहीं करे। (मनुस्मृति २ । ८४—७)

पारसियोंके धर्मग्रन्थ जेन्द-अवेस्तामें कई सुन्दर प्रार्थनाएँ हैं। 'ओर्मज्द यास्त'में आया है कि 'मेरा (प्रभुका) नाम परम पवित्र और परम महिमाशाली है। अर्दिबेहिस्त यास्तमें लिखा है कि प्रार्थना अहरिमानके सब प्राणियोंसे अधिक शक्तिशाली है। यह सबसे महान् और सबसे उत्तम मन्त्र है।'

यहूदियोंका धर्मग्रन्थ Old Testament भी प्रार्थनाओंसे भरा पड़ा है। उसकी एक पुस्तक भजनावली (Psalms) में डेढ़ सौ प्रार्थनाएँ हैं। Job में लिखा है कि 'तू प्रभुसे प्रार्थना कर और वह तेरी सुनेगा।' (२२ । २७)। 'कोई रथोंपर विश्वास करते हैं और कोई घोड़ोंपर, लेकिन हम तो प्रभुके नामका स्मरण करेंगे' (Psalms २० । ७)। 'मैंने परमात्माको पुकारा और उसने मेरी सुनी और मेरे सब भयोंको दूर कर दिया।' (Psalms ३४ । ४) 'सब चेतन और अचेतन सृष्टिको प्रभुके नामकी प्रशंसा करनी चाहिये; क्योंकि उसका नाम ही सबसे उत्तम है।' (Psalms १४८ । १३)

ईसाइयोंकी धर्मपुस्तक बाइबलके New Testament से भी कुछ वचन नीचे दिये जाते हैं—

'इसलिये मैं तुमसे कहता हूँ कि जब तुम प्रार्थना करते हो तब तुम जिन चीजोंको चाहते हो, विश्वास करो कि तुम उनको पाओगे।' (मार्क ११ । २४) 'माँगो और तुमको दिया जायगा; खोजो और तुम पाओगे; खटखटाओ और यह तुम्हारे लिये खुल जायगा; क्योंकि प्रत्येक आदमी जो माँगता है, पाता है; वह जो खोजता है, उसे मिलता है और वह जो (द्वार) खटखटाता है, उसके लिये (द्वार) खुलता है।' (मेथ्यु ७ । ७—८)

मुस्लिम-मतमें भी प्रार्थनाका खास महत्त्व है। यह रोजानाका आवश्यक कर्तव्य है।

'परमात्माके महान् नामको गाओ' (कुरान ५६ । ९६)

'परमात्माका नाम बोलो और उसकी पूरी तरहसे भक्ति करो।' (कुरान ७३ । ९)

'वह समृद्ध बनता है जो अपने आपको शुद्ध बनाता है और प्रभु-नामका स्मरण करता है और प्रार्थना करता है।' (कुरान ८७ । १५—१६)

'स्वर्गकी कुंजी प्रार्थना है और प्रार्थनाकी कुंजी पवित्रता है।' 'ऐ तू जो प्रार्थना करता है, माँग और यह तुझको दिया जायगा।' (हदीस, मिस्कत-उल-मस्बीह)

'प्रार्थना ईमान लानेवालेका हथियार है।' (अली इब्न अबु तालिब, खलीफा अली)

बौद्धधर्ममें भी प्रार्थनाका महत्त्व है। तिब्बत, नेपाल आदिमें बौद्धधर्मानुयायी 'ॐ मणि पद्मे हुँ'की या बुद्ध व बोधिसत्वोंके अन्य नामोंकी माला चरखियों आदिपर जपते हैं।

जैनधर्ममें भी भक्तामरस्तोत्र, विषापहार, कल्याण-मन्दिर आदि अनेक प्रार्थना-स्तोत्र हैं, जिनमें तथा अन्य अनेक

प्रार्थनाका विस्तार है, भगवन्नाम उसका संक्षिप्त रूप है। स्थूलसे सूक्ष्म बलवान् होता है, इसलिये प्रार्थनासे नाम अधिक प्रभावशाली है। नामसे परमात्माके स्वरूपका स्मरण तथा ध्यान सुगम होता है। नामाक्षरोंका चिन्तन हृदयमें, मस्तिष्कमें तथा शरीरके अन्य किसी भागमें आसानीसे हो सकता है। प्रत्येक अक्षरके उच्चारणका प्रभाव शरीरपर तथा मनपर भी पड़ता है। प्रत्येक अक्षर, जैसा कि उसके अक्षर नामसे ही सूचित है, अक्षर परमात्माका वाचक है।

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि प्रार्थना या नाम-स्मरण शुभ भावनासे या निष्काम भावनासे करना चाहिये। मुख्य तो पवित्र भावना अर्थात् आन्तरिक पवित्रता है। क्षेत्र, आसन आदि बाह्य पवित्रता तो गौण है, यानी वहींतक उपयोगी है, जहाँतक कि आन्तरिक पवित्रताके लिये सहायक है। सभी धर्म प्रार्थनाके लिये आन्तरिक पवित्रता एवं पवित्र उद्देश्यपर जोर देते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें १२वें अध्यायमें श्लोक ११ से २० तक कर्मफल-त्याग करके भक्ति करनेका उपदेश है तथा बताया है कि सब प्राणियोंसे मैत्री रखनेवाला; ममता, अहंकार, क्रोध, भय, इच्छा आदिसे रहित; समता और संतोषसे युक्त भक्त ही भगवान्‌को प्यारा है।

'भावकी शुद्धि ही सबसे बड़ी पवित्रता है और वही प्रत्येक कार्यमें श्रेष्ठताका हेतु है।' (पद्मपुराण, भूमिखण्ड, ६६। ८६)

'यत्नपूर्वक अपने मनको शुद्ध करो, दूसरी बाह्य शुद्धियोंसे क्या प्रयोजन है।' (पद्मपुराण, उपर्युक्त, ६६। ९०)

'हृदय शुद्धि, क्रियाशुद्धि, कुलशुद्धि, शरीरशुद्धि और वाक्शुद्धि—इन पाँचों शुद्धियोंमें हृदयकी शुद्धि सबसे बढ़कर है।' (महाभारत, आश्वमेधिकपर्व)

मनुस्मृतिमें भी लिखा है कि 'विधियज्ञ (वेदपाठ) से जपयज्ञ दसगुना, उपांशु जप सौगुना और मानस जप हजारगुना बड़ा

प्रार्थना ही क्यों, सभी उपासनाओंका सच्चा और परम लक्ष्य सांसारिक वस्तुओंसे स्वाधीनता और परमात्म-स्वरूप (अर्थात् निजी स्वाधीन असीम आनन्द, ज्ञान आदि) से तन्मयता है
स्पष्ट है कि अपना इष्टदेव भी ऐसे ही गुणोंवाला
चाहिये। किंतु अन्य देवोंसे की गयी प्रार्थनाओंका सांसारिक फल मिलना अशक्य नहीं है, बशर्ते कि ब
पूर्वकर्म दुर्बल हों, यद्यपि उसका परिणाम अच्छा और स्थायी नहीं होता है। गलत श्रद्धा भी आखिर अ
शक्तिशाली आत्माकी ही शक्तिका रूप होनेसे उसका आत्मिक तथा मानसिक शक्तियोंपर तथा बाह्य परिस्थितियों
अद्भुत प्रभाव पड़ सकता है और कुछ वासनाओंकी ओर ध्य
केन्द्रित हो जानेसे अन्य वासनाएँ मन्द पड़ जानेपर आत्मा
कुछ शक्तियाँ कुछ अधिक जाग्रत् और व्यक्त भी हो सकती हैं
श्रीमद्भगवद्गीतामें लिखा है कि 'जिसकी जैसी प्रकृति है उसकी वैसी ही श्रद्धा है। यह पुरुष श्रद्धामय है, सात्त्विक पुरुष देवताओंकी उपासना करते हैं, रजोगुणी यक्ष-राक्षसोंकी और तामसी पुरुष भूतों-प्रेतोंकी।' (१७। ३-४) 'जो मुझे जिस तरह और जैसा मानकर भजता है मैं भी उसे वैसा ही फल देता हूँ। सांसारिक कर्मोंकी सिद्धि चाहनेवाले लोग देवताओंकी उपासना करते हैं; क्योंकि (यह उपासना सुगम होनेसे) इसमें सिद्धि शीघ्र मिलती है (भले ही वह अस्थायी और दुःखान्त हो)।' (४। ११-१२) 'आर्त, जिज्ञासु, सांसारिक पदार्थोंकी इच्छा करनेवाला और ज्ञानी—ये चार प्रकारके मनुष्य मुझे भजते हैं, लेकिन इनमें ज्ञानी श्रेष्ठ है और वह मुझे प्रिय है; क्योंकि वह मुझ ही (परमात्मस्वरूप) से प्रेम करता है, मुझहीसे युक्त रहता है और मुझहीमें चित्त लगाये रहता है और मेरा ही आसरा लेता है।' (७। १६—१८) 'सांसारिक कामनाओंसे विक्षिप्त बुद्धिवाले लोग अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार मुझ (गतकाम परमात्मा-) से भिन्न अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं। जो उपासक जिस देवको श्रद्धासे भजना चाहता है, उसी देवमें उस उपासककी श्रद्धा मैं दृढ़ कर देता हूँ। उस श्रद्धाके अनुसार वह

मनुष्य उसी देवकी आराधना करता है और उसीसे अपने मनोरथोंको पाता है, यद्यपि इन मनोरथोंकी प्राप्ति कर्मोंके नियमानुसार तथा मेरे (यानी अनन्त शक्तिमयी आत्माहीके) प्रभावसे होती है (और वह उपासक ऐसा नहीं समझता है)। परंतु उन अल्पबुद्धिवालोंका वह फल नाशवान् है तथा उन देवताओंको पूजनेवाले उन्हीं देवताओंको प्राप्त होते हैं (यानी उन्हीं देवताओंके स्वभाव-जैसे स्वभावको प्राप्तकर भटकते रहते हैं) जब कि मेरे उपासक मेरे स्वभावको प्राप्त होते हैं' (गीता ७ । २०—२३)।

प्रश्न हो सकता है कि 'देश आदिपर संकट आनेपर क्या केवल भगवत्प्रार्थनापर ही अवलम्बित रहें ?' इसका उत्तर यह है कि निःसंदेह प्रार्थना कभी निष्फल नहीं होती है। लेकिन जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है—वस्तुओंके नियमानुसार इसका फल मिलनेमें विलम्ब हो सकता है, यह भी सम्भव है कि इच्छित समयपर इसका फल पर्याप्त मात्रामें न मिले और ऐसी सूरतमें लौकिक कामनाओंवालोंमें धैर्यका रहना कठिन है। अतएव सावधानी, लगन और परिश्रमसे बाहरी साधन जुटाकर उनका भी निपुणतासे उपयोग करना चाहिये (संसारी आदमी अपने अन्य सांसारिक कार्योंमें भी बाह्य उपायोंसे प्रयत्न करते ही हैं) और साथ ही भगवत्प्रार्थना या नाम-जपका भी आसरा लेना चाहिये। इन दोनों उपायोंके सम्मेलनसे सफलताकी निश्चिततामें वृद्धि ही होगी। लेकिन यदि फिर भी सफलता न मिले तो यह विचारकर कि पूर्व-कर्मोंसे बँधी बाधाएँ प्रबल हैं, समता धरनी चाहिये और उन बाधाओंको निर्बल करनेके लिये तथा बाह्य उपायोंमें त्रुटि हो तो उसे दूर करनेके लिये समुचित चेष्टा करते रहना चाहिये। संकटमें देवोंने भी बाह्य उपाय भी अपनाये थे। लौकिक कामनाओंका पूरा होना पराधीन है। कई बातें प्रारब्ध आदिके अधीन हैं। यह स्मरणीय है कि देश आदिके सम्बन्धमें कइयोंके प्रारब्ध आदिका फल होता है और व्यक्तिगत लौकिक कामनाओंमें भी प्रायः परस्परविरोधी शक्तियोंका कार्य रहता है। उदाहरणतः युद्धमें दोनों पक्ष अपनी-अपनी विजयके लिये प्रार्थना करते हैं; और व्यक्तिगत जीवनमें भी एक व्यक्ति किसी चीजको चाहता है तो कई अन्य उसे वह चीज मिलना पसंद नहीं करते। यदि कोई प्रभुपर ही विश्वास करे तो वह लौकिक इच्छा तथा लाभ-हानिकी परवा क्यों करे ?

अन्तमें अब हम प्रार्थनाके विषयपर कुछ पाश्चात्य विद्वानोंके विचारोंको देते हैं—

'जो प्रार्थना करना चाहता है, उसे अवश्य उपवास करना चाहिये और पवित्र बनना चाहिये। उसे अपनी आत्माको मोटा और अपने शरीरको दुबला बनाना चाहिये।'

(कवि चॉसर)

He prayeth well who loveth well
Both man and bird and beast.
He prayeth best who loveth best
All things both great and small;.
For the dear God who loveth us,
He made and loveth all.

अर्थात् वही अच्छी तरहसे प्रार्थना करता है जो सब मनुष्यों, पक्षियों और पशुओंसे और सब छोटी और बड़ी चीजोंसे अच्छी तरह प्रेम करता है। (एस० टी० कॉलेरिज)

O Lord of courage grave,
O Master of this night of spring!
Make firm in me a heart too brave
To ask Thee anything.

अर्थात् हे स्वामी ! मजबूत बना मेरे हृदयको जो इतना बहादुर है कि तुझसे कुछ नहीं माँगता है। (जॉन गाल्सवर्दी)

'प्रार्थनामें हृदयके सहयोगके बिना केवल ओठोंसे सफलता नहीं मिलती है।'

(हेरिक)

'मैं यह प्रार्थना नहीं करता हूँ कि तू मेरे किसी एक भी पापको धवल कर दे। मैं तो केवल तुझे धन्यवाद देता हूँ कि मैं इससे ज्यादा पापी नहीं हुआ हूँ'।' (हेरी केम्प)

Who rises from prayer a better man, his prayer is answered.

अर्थात् जो प्रार्थनाके बाद ज्यादा अच्छा मानव बन जाता है, उसीकी प्रार्थनाकी सुनवाई हुई है। (जार्ज मेरेडिथ)

'मेरे शब्द ऊँचे उड़ते हैं, लेकिन मेरे भाव तो नीचे ही रह जाते हैं। बिना भावोंके शब्द स्वर्गतक कभी नहीं पहुँचते हैं।'

(शेक्सपियर—'हेमलेट')

'जब हमारी प्रार्थनाकी सुनवाई हो जाती है तो समझ लो कि देवगण हमें दण्डित करना चाहते हैं।'

(ओस्कर वाइल्ड)

...If by prayer
Incessant I could hope to change the will
Of Him who all things can, I would not cease
To weary Him with my assiduous cries.

अर्थात् अगर निरन्तर प्रार्थनासे मैं उसकी इच्छाको बदल सकनेकी आशा कर सकता होता जो सब कुछ कर सकता है तो मैं अपनी लगातार पुकारोंसे उसे परेशान करना कभी बंद नहीं करता।' (मिल्टन)

उपर्युक्त अन्तिम दो वचन सकाम प्रार्थनाकी बुराइयाँ बतानेके लिये हैं।

नाम तथा प्रार्थनाकी अनन्त महिमा

(लेखक—पं० श्रीसूरजचन्दजी सत्यप्रेमी 'डाँगीजी')

प्रकृष्ट अर्थ यानी उत्कृष्ट प्रयोजनको प्रार्थना कहा गया है। सर्वदा, सर्वत्र, सर्वथा सर्वेश्वरकी शाश्वत अनुभूति ही नाम-साधना है।

'तुका म्हणे राम नाम। चैतन्य निज धाम॥'

संत तुकाराम महाराजकी घोषणा है कि रामनाम चैतन्य-स्वरूप होनेसे आत्माका अपना घर है—अपना प्रकाश है—चिद्विलास है। 'नाम काल नहिं खाय'

नाम मृत्युसे निर्भय बनाता है। अपने गुरुदेव नानक फर्माते हैं—'सत् श्री अकाल'

नाम 'सत्' है। उसकी शक्ति समझनेपर कालसे क्या डरना? और उनकी शिक्षा छोटे-छोटे बच्चोंको दीवालोंमें चुना जानेपर भी मौतके घाट उतार देनेपर भी कदापि मनको भयभीत न कर सकी।

यों तो प्रभुके अनन्त नाम हैं; परंतु—

बनामे आँ कि ऊ नामे नदारद।
बहर नामे कि ख्वानी सर बदारद॥

प्रभुका एक नाम यह भी है—'अनामी'। सचमुच उसका कोई एक नाम नहीं है, इसलिये जिस नामसे आप पुकारेंगे उसी नामसे वह बोल उठेगा। हाँ, पुकारा जाय केवल उसे—केवल एकको ही; क्योंकि वह अन्तस्तलकी परा वाणीका भी प्रकाशक है। कबीर साहबकी साखी है—

'कीड़ी के पग नेवर बाजे वह भी साहब सुनता है।'

इसलिये बिना वाणीके भी—बिना मनके भी दम्भ और पाखण्डसे भी कोई नामका उच्चारण करे, उसका भी उद्धार प्रभु करते ही हैं। कारण कि किसी भी भावसे क्यों न हो, जिसने एक बार प्रभुको पकड़ लिया: उसे पकड़नेवाला चाहे छोड़ना भी चाहे तो भी प्रभुका नाम उसे नहीं छोड़ सकता, उद्धार किये बिना मानता ही नहीं। यह बात आप पूतनासे पूछें। दम्भसे भी वह माता बनने गयी और भगवान्‌ने अपने मुखसे उसे पकड़ा तो फिर दम्भका फल पाते समय वह प्रभुको छोड़ना चाहती थी, पर भगवान् कब छोड़नेवाले थे। दूधके साथ-साथ वे उसके प्राण भी पी गये। भगवान्‌का नाम यदि पाखण्डीके मुँहमें भी आ गया तो वह उसके प्राणोंका दम्भ अवश्य पान कर जायँगे। पूतनाको भी उन्होंने माताकी गति दी। यह भागवतमें प्रसिद्ध है—

'लेभे गतिं धात्र्युचितां'

गोस्वामीजी भी यह फर्माते हैं—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

कुभावसे भी प्रभुका नाम लिया तो मङ्गल-ही-मङ्गल है। मम्—गल, उसकी ममता गल जाती है। सम—सार-समता आयी कि असार संसारमें सार प्राप्त हो जाता है। समता आयी तो 'सार', नहीं तो 'भार'—यही संसारका प्रयोजनभूत तत्त्व है।

दुनियामें मनुष्यको अपने नामका मोह ही दुःख देता है और जन्म-मरणके चक्करमें डालता है। 'क'=कञ्चन-'का'=कामिनी छूट जाती है, परंतु अपने नामकी 'की'—कीर्तिका मोह नहीं छूटता; इसीलिये कै=कैवल्य पद दुर्लभ है। कीर्तिका मोह छोड़नेके लिये नामकीर्तनके सिवा और कोई उपाय नहीं है। चैतन्य भगवान् अपने श्रीमुखारविन्दसे फर्माते हैं—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥

इस प्रकार सभी सिद्धियाँ श्रीकृष्ण-नाम-संकीर्तनसे उपलब्ध हो जाती हैं ।

'जनम जनम के खत जो पुराने
नामहि लेत फटे ।'
'नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं ।
करहु बिचार सुजन मन माहीं ॥'

यह अन्धश्रद्धाका प्रश्न नहीं है । सज्जनोंको सुविचार करनेके लिये श्रीगोस्वामीजी कहते हैं । जब अपना नाम ही मिट गया, केवल प्रभु-नाम ही रह गया तो अपने कर्म कहाँ बाकी रहे ?

भव सागर सब सूख गया है
फिकर नहीं मोहे तरनन की ।
मोहे लागी लटक गुरु-चरनन की ॥

पर यह नाम-मन्त्र गुरु-चरणकी लगन हो, तब प्राप्त होता है । लघु-चरण या संकुचित सीमित आचरण हो तो क्या लाभ ? लोभकी मात्रा मिटे तब 'लाभ-ही-लाभ' लिखा समझो । रूढ़िसे भी यदि नाम-रटन किया तो टेप रिकार्डपरसे जैसे पुराना सब शब्द-संस्कार मिट जाता है, उसी प्रकार मनपरसे चित्रगुप्तके लेख यानी गुप्तचित्रोंकी विकृतियाँ जल जाती हैं । सूखा पुराना घास जैसे चिनगारी पड़ते ही जल्दी भस्म हो जाता है, उसी प्रकार रामनामका स्फुलिङ्ग पड़ते ही सब पाप जल जाता है ।

श्रीवर्द्धमान भगवान् फर्माते हैं कि मन्त्रदीक्षा लेते ही 'सब्ब पाव घणा सणो' सर्वपापका प्रणशन हो जाता है ।

'जय एकलिंग'के नामसे महारानी पद्मिनी, महाराणा साँगा और महाराणा प्रतापने अपनी संस्कृतिका संरक्षण कर लिया । 'गिरिधर गोपाल'के नामसे ही भक्तिमयी 'मीराँ' ने असूर्यपश्या होनेपर भी घरपर नाचकर धर्मके बीज और फलके रसको सर्वत्र बरसा दिया ।

रामचरितमानसके 'रामनाम'ने ही गाँधीके गोली खाते समय धैर्य बँधाया । वे तो रामनामको सब रोगोंकी ओषधि मानते थे । रामदासके नामजपने ही उन्हें 'समर्थ' पद देकर भयंकर समयमें भी छत्रपतित्वका संरक्षण किया । नामदेवके नामने तो गजब कर दिया; भगवान्‌को सगुण साक्षात्कार करवा दिया । पारसनाथके नाममन्त्रसे सर्प भी धरणीन्द्र बन गया । नाम-मन्त्रसे स्वार्थताकी सर्वार्थता बनती है और सर्वार्थताकी परमार्थता बनकर सच्ची प्रार्थना कहलाती है । 'पावर हाउस'से 'कनकशन' तो है ही, [illegible] कि प्रकाश आया । [illegible] बनना इसीलिये [illegible] हमारा न मैं और [illegible] गये । हनुमानजीने तो [illegible] जो नाम हमारा । [illegible] भाई, हमारा नाम [illegible] लङ्कामें विभीषणको प्रभु-नामने ही [illegible]

राम नाम जब सुमिरन कीन्हा । [illegible]

प्रभुका नाम ही सज्जनका [illegible] है । [illegible] प्रभुके नामसे ही श्रीहनुमानजीको [illegible] प्रतापसे ही राक्षस विभीषणको हनुमानजीसे [illegible] करवाया और रामनामके प्रतापसे ही श्रीहनुमानजीको श्रीविभीषणजीने जगज्जननीकी उपस्थिति [illegible] । राक्षसोंको लक्ष्मीका पता है पर रामका नहीं और [illegible] जानवरोंको रामका पता है पर लक्ष्मीका नहीं । रामनामके प्रतापसे शैतान और हैवान इन्सान बनकर भगवान्‌का साक्षात्कार कर सकते हैं, निर्बल और दुर्बल सबल बनकर प्रबल भक्ति प्राप्त कर सकते हैं । दुष्ट और कनिष्ठ श्रेष्ठ बनकर परमेष्ठी-पदपर अधिष्ठित हो सकते हैं । आर्तध्यानी, रौद्र-ध्यानी, धर्म-ध्यानी बनकर शुक्ल ध्यानतक पहुँच सकते हैं । आर्त और अर्थार्थी—जिज्ञासु बनकर ज्ञानी बन सकते हैं । विश्वामित्र और वसिष्ठके द्वैतने राम-नामसे ही अद्वैतके दर्शन किये और श्रीरामने अपने नामके प्रतापसे ही अद्वैतस्वरूप होनेपर भी द्वैतरूप दोनोंको गुरु बनाया । रामनामके प्रतापसे ही विदेहको लक्ष्मी पुत्रीके रूपमें मिली और दशेन्द्रियके रथ दशरथ (देह)को राम मिले । सुतीक्ष्णको अगस्त्यके द्वारा निर्गुणकी प्राप्ति और अगस्त्यको सुतीक्ष्णके द्वारा सगुण-दर्शन रामनामका ही प्रताप है—

सगुन अगुन बिच नाम सुसाखी ।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी ॥

राम-नाम और प्रार्थनाकी महिमा कौन बखान करे ? परम सयाने गुरुदेव गुमानसिंहजी कहते हैं —

मेरे मनकी मैं ही जानूँ और न जाने कोई ।
कै तो बिरला संत पिछाणें, कै सद्गुरु, कै साईं ॥
कहत न बने 'गुमने' कासों कहुँ ज्यों गूँगे गुड़ खाई ॥
राम नाम सुखदाई संतो राम नाम सुखदाई ॥

श्रीगुसाईंजी लिखते हैं—

'प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं । जलधि लाँघि गे अचरज नाहीं ॥'

यह मुद्रिका कैसी थी ?

'राम नाम अंकित अति सुंदर ।'

इसीलिये हनुमानजीने मुखमें रक्खी और इसीके प्रतापसे समुद्र पार कर गये ।

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहि बाट ॥

जगज्जननीके समान हमारे प्राण भी अजपा जाप—श्वासोच्छ्वासमें रामनामके प्रतापसे ही टिके हुए हैं। कहीं वे प्राण पवनके समान हनुमान्‌सरीखा भक्त-मन प्रकट कर दें तो कल्याण हो जाय। फिर वह बंदर होकर किसीका घर भी जला दे और बगीचा भी उजाड़ दे तो मङ्गलमय है। और सोनेकी लङ्का जलेगी क्या; वह तो मलरहित हो जायगी।

जय हनुमाना, अति बलवाना,
राम नाम रसिया रे।
प्रभु मन बसिया रे॥

'हिय निर्गुन नयननि सगुन रसना राम सुनाम।'

रसनासे राम-नाम न रटे तो रस कहाँ ?

'जीह जसोमति हरि-हलधर से'

जीभपर 'रा' बलराम और 'म' कृष्ण कायम रहे तो हमारी काली-काली मथुरा हरी-हरी हो जाय वृन्दावन और बरसाना आनन्दसे भर जाय।

नाम-ब्रह्मकी उपासना

(लेखक—आचार्य श्रीअक्षयकुमार बन्धोपाध्याय एम्० ए०)

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥

हे भगवन् ! तुम्हारी कृपा असीम है। तुम स्वरूपतः अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति, अनन्त गुण, अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यके नित्य आधार हो तथा हमारी मन-वाणीके अगोचर हो; परंतु तुम निज कृपासे नामरूपमें अवतीर्ण होकर हमारी मन-वाणीके गोचरीभूत हो जाते हो। परंतु तुम्हारे इस निखिल वैचित्र्यमय मायिक जगत्‌में तुम्हारे ही लीला-विधानमें मनुष्यकी विचित्र प्रकृति, विचित्र रुचि, विचित्र बुद्धि तथा विचित्र भाषा है। तुम्हारा एक विश्वजनीन विशुद्ध नाम सब मनुष्योंको रुचिकर नहीं हो सकता—सभी श्रेणीके मनुष्योंके हृदयको आकृष्ट नहीं कर पाता; इसलिये करुणासे द्रवित होकर तुमने मनुष्यमात्रकी मन-वाणीके सामने अपनेको प्रकट करनेके उद्देश्यसे अपने नामको अनेक प्रकारसे व्यक्त किया है; विभिन्न देश और विभिन्न कालमें तथा विभिन्न भाषाओंमें तुम नाना प्रकारके नाम-विग्रह धारण कर उनके सामने उपस्थित हुए हो। इस प्रकार असंख्य नामोंमें मनुष्य-समाजके सामने अपनेको प्रकट करके तथा मनुष्य-मात्रको अपनी ओर आकर्षित करनेकी व्यवस्था मानो तुमको परितृप्ति नहीं हुई, तुम्हारी कृपाशक्ति नहीं हुई, इसलिये तुमने अपनी सब श्रेणीके मानव कृतार्थ करनेके लिये सबको मायाके आवरण और मुक्त करके अपने इस लीला-जगत्‌में अपने सचित् स्वरूपके साथ सुपरिचित करानेके लिये अपने प्रत्येक अचिन्त्यशक्तिसमन्वित तथा सौन्दर्य-माधुर्यमण्डित उनके मन और वाणीके सम्मुख उपस्थित किया है ही, अपने इन सब नामोंको स्मरण करानेके लिये—जप मनन और ध्यान करानेके लिये तुमने कोई विशेष स निर्धारित नहीं किया है। तुम्हारे नामकी साधनाके लि कालाकाल नहीं है, कोई शुचि-अशुचि नहीं है, कोई या नियमका बन्धन नहीं है। तुम ऐसे प्रेमकल्पतरु अहैतुक कृपासिन्धु हो। मनुष्यको अपने अमृतास्वा अधिकारी बनानेकी मानो तुम्हारी असीम अभिलाषा किंतु हे करुणासिन्धु! मुझ-जैसे संसारी जीवका ऐसा दुर्भ कि तुम्हारा इतना अनुग्रह होनेपर भी तुम्हारे प्रति मेरा अनुराग नहीं हुआ। तुम्हारे नाममें मेरी रुचि नहीं हु

प्रेमघनमूर्त्ति, जीव-दुःख-कातर महाप्रभु श्रीकृष्ण ने अपने हृदयमें भगवद्-विमुख संसारी जीवोंके दुः

गम्भीरतापूर्वक अनुभव करके अश्रुधार बरसाते हुए खेदपूर्वक कहा था कि जो निखिल जगत्के—

'गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।'

(गीता ९। १८)

—हैं, वे अपनी करुणासे अपनेको नितान्त सहज और इन्द्रियगोचर करके संसारके त्रिविध तापसे संतप्त मनुष्यके सम्मुख अवतरित हो रहे हैं और उसको प्रेमामृत तथा शान्ति-सुधाका आस्वादन कराना चाहते हैं। परंतु मनुष्य इस संसारमें निरन्तर संतप्त होते हुए भी इसकी सम्मोहिनी शक्तिके वशीभूत होकर उनका प्रत्याख्यान करता है—उन्हें अति निकट पाकर भी आदर नहीं करता और न उनके प्रति अनुरक्त होता है। भला, इससे बढ़कर दुर्भाग्यकी बात और क्या हो सकती है? संसारी मनुष्य जागतिक व्यवहारमें दूसरे किसी सांसारिक मनुष्यके द्वारा कोई क्षणिक, सामान्य उपकार पानेपर भी उसके प्रति कृतज्ञतासे आप्लुत हो जाता है और उसका कोई प्रत्युपकार करनेके लिये व्यस्त रहता है, परंतु आजन्म भगवान्की असीम कृपाका उपभोग करके भी मनुष्य उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन नहीं करता। वे सब प्रकारके संतापोंसे मुक्त करनेके लिये अवतरित हुए हैं, तथापि उनकी करुणा स्वीकार नहीं करता तथा उनको प्रेमसे ग्रहण नहीं करता। अहा कैसी माया है! कैसा महामोह है! संसारके मोहसे मुग्ध मनुष्यकी यह दुर्दशा देखकर महाप्रभुके समान करुणासे द्रवित-हृदय कोई सद्गुरु अपने क्रन्दनको संवरण नहीं कर पाते। वे भगवान्के सामने रोते हैं।

मानवजातिका इतिहास साक्षी है कि मनुष्यकी सांसारिक परिस्थिति जितनी जटिल है, जीवन-संग्राम जितना कष्टप्रद है, मनुष्यकी विचारशक्ति और कर्मशक्ति सांसारिक आवश्यकता-की पूर्तिके क्षेत्रमें जितने अधिक परिमाणमें व्यय होती है, सांसारिक सुख और ऐश्वर्यकी साधनाने मानवजीवनमें जितनी प्रमुखता प्राप्त की है, मनुष्य बेखबर होकर अर्थ और कामकी सेवामें जितना लग रहा है तथा अपनी सारी शक्ति लगाकर भी इस मार्गसे जीवनमें संतोष, आनन्द, शान्ति और तृप्ति-का संधान नहीं कर पाता है, उतना ही सत्यं-शिवं-सुन्दरं करुणामय भगवान् मानो मनुष्यको शान्ति और आनन्द प्रदान करनेके लिये सहज और सरल होकर मनुष्यके सामने अवतीर्ण होते हैं। चिन्मय धामके आनन्दको पार्थिव जगत्में वितरण करनेके लिये वे अवतीर्ण होते हैं, नाम रूपमें प्रकट होते हैं। इस अनन्त वैचित्र्यसे संकुल नामरूपात्मक जगत्में नामरूपातीत सच्चित्-शिवानन्दघन भगवान नामोंमें और विचित्र रूपोंमें अवतीर्ण होकर विचित्र [illegible] विचित्र रसके खेल खेलकर मायामुग्ध सांसारिक [illegible] अपनी ओर आकर्षित करते हैं और उनको सब [illegible] भ्रान्ति और संतापसे मुक्त करने तथा अपने [illegible] परमानन्दका आस्वादन करानेकी चेष्टा करते हैं [illegible] अधिक करुणाका परिचय और क्या हो सकता है? [illegible] संसारी जीव उनके प्रति आकृष्ट नहीं होता, उस [illegible] से विमुख होकर संसारके संताप-भोगमें ही मत्त [illegible] इससे बढ़कर दुर्भाग्यकी बात और क्या हो सकती है?

विविध प्रकृति, रुचि और संस्कारसे विशि[illegible] विविध भाषा-भाषी मनुष्यके हृदयको आकृष्ट कर[illegible] कितने अद्भुत हृत्कर्ण-रसना-रसायन नामोंमें उन्होंने [illegible] व्यक्त किया है। ब्रह्म, परमात्मा, भगवान्, ब्रह्मा, शिव, नारायण, वासुदेव, गोविन्द, शम्भु, शंकर, महेश्वर, राम, कृष्ण, हरि, दुर्गा, काली, तारा, अन्नपूर्णा अल्लाह, जिहोवा आदि उनके असंख्य नाम हैं। [illegible] नाम अर्थपूर्ण हैं। वैदिक मन्त्रोंमें इन्द्र, चन्द्र, वायु, सूर्य, अग्नि, प्रजापति—ये सब भी उनके ही नाम हैं

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।'

(ऋग्वेद १। १६४

प्रत्येक नामका अर्थ वह परमात्मा ही है। प्रत्येक [illegible] उनका वाचक है और वे ही प्रत्येक नामके वाच्य [illegible] नामोंका शाब्दिक अर्थ पृथक्-पृथक् प्रतीयमान [illegible] भी तात्पर्यार्थ वही एक अद्वितीय, सर्वकारण[illegible] सर्वमङ्गलालय, अनन्तगुणाधार, अनन्त करुणामहार्ण[illegible] तत्त्व है। वे अखिल ब्रह्माण्डके पिता, माता, धात[illegible] प्रभु हैं। वे विश्वकी आत्मा हैं, सब जीवोंकी आत्मा [illegible] निष्क्रिय होकर भी अनादि अनन्त काल और अनन्त [illegible] के अक्षय स्रोत हैं। वे निर्विकार होकर भी विविध [illegible] तरङ्गोंके अधिष्ठान, आश्रय, धारक और पोषक [illegible] गुणातीत होकर भी अनन्त गुणोंके खेल खेल रहे हैं [illegible] अखिल जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलयका विधान [illegible] हैं। सब प्रकारके विरोधी भावोंका सामञ्जस्य और स[illegible] करना उनका स्वभाव है। अनन्त नामोंमें वे ही मनुष्य-स[illegible] अपना परिचय प्रदान कर रहे हैं। सभी नामोंके नामी [illegible] हैं। सब नामोंमें वे ही विलसित हैं और वे ही दीप्ति[illegible] करते हैं तथा सब नामोंके भीतर उनका ही आत्मप्र[illegible] और प्रत्येक नामके भीतर उन्होंने अपनी अपरिमित का[illegible]

कारिणी तथा आनन्ददायिनी शक्ति निहित कर रक्खी है। सभी नाम तदात्मक हैं और सभी नामोंके साथ उनका अभेद सम्बन्ध है।

नाम और नामीमें यदि वस्तुतः भेदबुद्धि है तो जान लो कि नामके भीतर उनकी पहचान हुई ही नहीं है। विभिन्न नामोंके शाब्दिक तथा शब्दार्थ-भेदके द्वारा भ्रममें पड़कर लक्ष्यार्थको विभिन्न माननेपर धोखा खाना पड़ता है। किसी नामके शाब्दिक या आक्षरिक अर्थकी ओर अधिक आग्रह होनेपर बुद्धि संकीर्ण हो जाती है और नामका यथार्थ अर्थबोध नहीं होता तथा नामके भीतर नामीकी उपलब्धि नहीं होती। सभी नाम उसी एक अद्वितीय परम तत्त्वकी महिमाके व्यञ्जक हैं। प्रत्येक नाम उसकी अनन्त महिमामें एक-एक प्रकारकी महिमाकी ओर मानवचित्तको विशेषरूपसे आकृष्ट करते हैं। सभी नाम उनके विशेषण हैं और वे सभी नामोंके विशेष्य हैं। विशेषणोंके बहुत्वके कारण विशेष्य बहुत नहीं होता। स्वरूपतः कोई भी विशेषण विशेष्यसे भिन्न नहीं होता। यद्यपि नाम बहुत हैं और नामी एक है, तथापि नाम और नामी अभिन्न हैं। परंतु इन असंख्य नामोंके भीतर उन्होंने ऐसी शक्ति निहित कर रक्खी है कि प्रत्येक नाम अतीन्द्रियको इन्द्रियोंके संयोगके योग्य बना देता है। अतिमानसको मनका आस्वाद्य बना देता है। प्रत्येक नामके सहारे हमारी प्राकृत इन्द्रियाँ और मन मानो अप्राकृत सच्चिदानन्दमय राज्यमें समुत्थित होकर प्रकृतिके अधीश्वरके साथ सम्मिलित होते हैं और उनके अनन्त महिमान्वित स्वरूपका आस्वादन करते हैं। नामकी यह अचिन्त्य शक्ति किसी एक विशेष नाममें या किसी एक भाषाके विशेष प्रकारकी महिमाके द्योतक नामसमूहमें आबद्ध नही हैं। अहैतुक कृपासिन्धु श्रीभगवान्‌ने सभी जातिके मनुष्योंको अपनी मायाशक्तिके बन्धनके दुःखदायी, दुर्धर्ष प्रभावसे मुक्त करनेके लिये सब भाषाओंके दिव्य नामोंके भीतर इस अचिन्तनीय, अज्ञानान्धकारनाशिनी, बन्धन-मोचनकारिणी, प्रेमामृतास्वादिनी आत्मस्वरूपभूत महाशक्तिको निहित कर रक्खा है।

अनन्त शक्तिके आधार, सच्चिदानन्दघन, एकमेवाद्वितीय परमतत्त्वने एक ओर जिस प्रकार अपनी ही मायाशक्तिका विस्तार करके, अनन्त वैषम्यमय विश्वप्रपञ्चकी रचना करके अपनेको स्वयं सबके अन्तरालमें छिपा रक्खा है, उसी प्रकार दूसरी ओर अपनी कृपाशक्ति (विद्याशक्ति या गुरु-शक्ति) को प्रकट करके मायाधीन जीवके मन-बुद्धि-हृदयसे मायाके पर्देको हटाने और अपने स्वरूपको प्रकाशित करनेकी व्यवस्था कर रक्खी है। जीवके बन्धन और मोक्षको लेकर लीलामय चिरकालसे लीला कर रहे हैं। अपनी कृपाशक्तिको वे असंख्य रूपोंमें प्रकट कर रहे हैं। उनकी मायाशक्तिकी जैसी विचित्र सृष्टि है, जीवको संसारमें मोह-मुग्ध रखनेमें, जैसा उसका विचित्र कौशल है, उनकी कृपाशक्तिका भी वैसा ही विचित्र खेल है। जीवको मोहमुग्ध करके अपने अमृत-मय स्वरूपका आस्वादन करानेके लिये वे उसी प्रकारके विचित्र कौशलका सहारा लेते हैं।

उनकी कृपाशक्तिके विविध खेलोंके भीतर असंख्य दिव्य नामरूपोंमें उनका अपूर्व आत्मप्रकाश है। इन सर्वशक्तिसमन्वित तथा रसमण्डित असंख्य नामरूपोंमें आत्मप्रकाश करके उन्होंने मानो अपने इस मायिक संसार और मायातीत प्रेमानन्दघन-चित्स्वरूपके बीच एक अति सुन्दर सेतुबन्धकी रचना की है। मायिक जगत्‌का कोई भी मनुष्य भगवान्‌के किसी भी नामका ऐकान्तिक अनुरागके साथ आश्रय लेकर, श्रवण-कीर्तन, स्मरण, मनन और ध्यान करके मायाके प्रभावसे मुक्त होने तथा इस जगत्‌में, इस प्राकृत देहमें ही भगवान्‌के स्वरूपभूत परमानन्दका आस्वादन करनेमें समर्थ होता है।

भगवान्‌ने अपनी इस निखिल सृष्टिके बीच मनुष्यको स्वतन्त्र अहंबोध, स्वतन्त्र विचारशक्ति, इच्छाशक्ति, क्रिया-शक्ति तथा अनुभवशक्ति द्वारा अलंकृत करके विशेषरूपसे गौरवान्वित किया है। इसके साथ ही मनुष्यके ऊपर उन्होंने विशेष उत्तरदायित्वका भार भी अर्पण किया है। इस मायिक जगत्‌में, मायिक देहमें मायातीत भगवान्‌का तथा उनके स्वरूपभूत परमानन्दका आस्वादन तथा सम्भोग करनेके लिये विशेषाधिकार उन्होंने मनुष्यको ही दिया है तथा मनुष्य अपने स्वतन्त्र पुरुषार्थके प्रयोगसे अपनी विचार-शक्ति, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति तथा प्रेमशक्तिके सुनियन्त्रित व्यवहारके द्वारा इस प्रेमानन्दको प्राप्त करे—यही उनका विधान है। मनुष्यको उन्होंने अपने देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और हृदयका स्वामी बनाकर सिरजा है; अन्यान्य जीवोंके समान दासत्व करनेके लिये इसकी सृष्टि नहीं की है। परंतु उसे यह प्रभुता अपने प्रयत्न, अपनी साधनाके द्वारा सुप्रतिष्ठित करनी पड़ेगी। साधनहीन 'मनुष्य' मनुष्यपदवाच्य नहीं है। अपनी साधनाके द्वारा देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और

हृदयको सुनियन्त्रित कर मनुष्य इस मायिक जगत्में अपने जीवनको भागवतजीवनमें उन्नत करे और भगवान्के स्वरूप-भूत ज्ञान, प्रेम, सौन्दर्य, माधुर्य और आनन्दका उपभोग करे—यह विशेष अधिकार और उत्तरदायित्व उन्होंने मनुष्यको प्रदान किया है।

इस साधनपथको सुगम करनेके उद्देश्यसे कृपामय श्रीभगवान् अपनी इस मायिक लीलाके क्षेत्रमें, विभिन्न नाम, विभिन्न रूप तथा विभिन्न भावोंमें विविध विचित्र अप्राकृत लीलाका विस्तार करके मनुष्यके इन्द्रिय, मनः बुद्धि और हृदयको आकर्षित करते हैं। परंतु मनुष्यको भगवत्कृपासे प्राप्त अपनी स्वतन्त्र विचारशक्ति, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति तथा प्रेमशक्तिके सदुपयोगके द्वारा भगवान्को ग्रहण करना पड़ेगा; उनके साथ अनुरागका सम्बन्ध स्थापित करना पड़ेगा; प्रेमसे उनके सामने आत्मनिवेदन करना पड़ेगा तथा उनके विभिन्न नाम-रूप तथा लीलाका रसास्वादन करना पड़ेगा। भगवान्ने मनुष्यको अहंबोध दिया है, पुरुषार्थकी सामर्थ्य दी है। उस अहंबोध तथा पौरुषको कृतार्थ करनेके लिये सारी विधि-व्यवस्था भी कर दी है। वे स्वयं अति सहज बनकर मनुष्यके सामने उपस्थित हुए हैं। इतनेपर भी यदि मनुष्यका पुरुषार्थ जाग्रत् न हो, उनके प्रति अनुराग न हो, उनके साथ युक्त होकर अपने जीवनको कृतार्थ करनेके लिये उससे प्रयत्न न बन पड़े, तो इसे दुर्भाग्यके सिवा क्या कहें?

भगवान्ने अहैतुकी कृपासे मनुष्यकी साधनाको भी कितना सहज और सरल करनेका प्रयास किया है। मानव-सृष्टिके आदियुगसे जितनी भाषाओंकी सृष्टि हुई है, सब भाषाओंमें भगवद्वाचक नाम परिदृष्ट होते हैं। पृथिवीपर ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसमें भगवत्-स्वरूप-निर्देशक कोई नाम न हो। इससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि भगवान्ने मनुष्य-सृष्टिके साथ-साथ मनुष्यकी चेतनाके भीतर, मन-बुद्धि-हृदयके भीतर भगवद्भावनाको अनुस्यूत कर रक्खा है तथा उनकी जिह्वासे स्वतःस्फूर्त भावमें भगवन्नामको प्रकट किया है। आपाततः मनुष्यके मन, बुद्धि और हृदय स्वभावतः बहिर्मुख रूपसे प्रतीयमान होनेपर भी तथा बहिर्जगत्के साथ ओतप्रोत-रूपमें दीख पड़नेपर भी वस्तुतः मनुष्यके अन्तर्हृदयमें भगवद्भावना स्वभावसिद्ध है और इनका भगवान्के प्रति आकर्षण भी स्वाभाविक है। भगवान्के सृष्टि-विधानमें मनुष्य मायिक संसारके द्वारा चाहे जितना प्रभावित हो, चाहे जितना वह जीवन-संग्राममें विव्रत होकर अपनी विचारशक्ति, इच्छाशक्ति और क्रिया-शक्तिको बाह्यजगत्की ओर दौड़ानेके लिये बाध्य क्यों न हो; उसकी अन्तरात्मा पराशक्तिकी प्राप्तिके लिये ज्ञात या अज्ञात रूपमें भगवान्की ओर उन्मुख होती है। वह संसारमें मोह-मुग्ध होकर कहीं भी शान्ति नहीं पाता। मनुष्य जो किसी जागतिक विषय-भोगमें शान्ति नहीं पाता, यह भी उसके प्रति भगवान्की विशेष कृपा है। भगवान् उसके चित्तको सदा आकर्षित करते हैं और वह सर्वदा अन्तःकरणसे भगवान्को चाहता है। अतएव भगवान्का नाम उसकी रसनामें अपने-आप स्फुरित होता है। यह भगवान्की अहैतुकी कृपाका अपूर्व निदर्शन है। किंतु इस स्वभावसिद्ध भगवद्भावनाको और भगवन्नामको साधनाके द्वारा विकसित करना पड़ेगा। इस सांसारिक जीवनकी सारी जटिलता और सारी आवरण-विक्षेपात्मिका शक्तिके विरुद्ध संग्राम करके भगवद्भावनाका प्राधान्य अपने जीवनमें प्रतिष्ठित करना पड़ेगा।

मानव-जगत्में जितने भगवद्वाचक नाम जितनी भाषाओंमें प्रचारित हुए हैं, सब नामोंके प्रति श्रद्धा रखना आवश्यक है, सब नामोंको एक ही भगवान्के विभिन्न शब्दमय विग्रहके रूपमें विश्वास करना प्रत्येक मनुष्यकी साधनाका अङ्ग होना चाहिये। परंतु प्रत्येक साधकका सब भाषाओंके असंख्य पवित्र भगवन्नामोंके साथ परिचित होना सम्भव नहीं है, उनके प्रति प्रगाढ़ अनुराग रखना भी सम्भव नहीं है। इसी कारण करुणामय भगवान् विभिन्न देशोंमें, विभिन्न कालोंमें, विभिन्न गुरु या आचार्योंके रूपमें—अपनी विशेष विभूति प्रकट करके विशेष-विशेष नामका विशेषरूपसे प्रचार किया करते हैं। जिस देशमें, जिस कालमें, जिस जाति और सम्प्रदायके भीतर जिनका जन्म हुआ है, उनके लिये उसी देश-कालके गुरुओंसे प्राप्त विशेष-विशेष नामका प्रगाढ़ अनुरागके सहित आश्रय लेकर उसमें भगवत्स्वरूपानुभूतिके लिये विशेष रूपसे मन, बुद्धि और हृदयको लगाना आवश्यक है। ज्ञात और अज्ञात सब नामोंमें श्रद्धा तथा अपने अभीष्ट नामके प्रति हार्दिक प्रेम—ये प्रत्येक साधकके जीवनको भागवतजीवनमें उठानेके लिये सहायक बनते हैं।

वर्तमान युगमें भारतवर्षके सब प्रदेशोंके और सभी सम्प्रदायोंके आचार्य धर्मार्थी लोगोंको विशेष रूपसे नाम-

भगवानका उपदेश देते हैं। नामके भीतर नामीको उपलब्ध करना पड़ेगा। जो जिस नामसे उपासना करते हैं, उसी नामको भगवान्‌के साक्षात् शब्दमय विग्रहके रूपमें धारणा करके हृदय, मन और वाणीसे उसी नामसे सेवा करनी चाहिये। रसनासे नामका उच्चारण, कानसे नामका श्रवण, अन्तःकरणमें नामीका चिन्तन, पूर्ण हृदयसे नाम-नामीसे प्रेम, देह-इन्द्रिय और प्राण उनको निवेदन कर देना—इनका निष्ठापूर्वक नियमित रूपसे अभ्यास करना आवश्यक है। नामके सहारे नामीकी उपासना, नामको लेकर हृदयको नामीमय: भगवन्मय बनानेका प्रयास करना—यही इस कर्मबहुल युगमें सर्वापेक्षा सहज योग महापुरुषोंने सिखलाया है। यह नाम-साधना प्रत्येक साधक जिस प्रकार एकाकी अपने मन-प्राणसे कर सकता है, उसी प्रकार अपनी गोष्ठीके सब लोगोंके साथ मिल-जुलकर भी कर सकता है। सबके साथ उच्च स्वरसे नामकीर्तन, हृदयसे नाम-जप और नामीके स्वरूपका ध्यान, कर्मजीवनको भगवत्सेवामें लगाना, सब कार्योंमें उनकी सेवाबुद्धिका अनुशीलन और नियमित रूपसे उनका स्मरण-मनन—ये सब नाम-साधनाके अङ्ग हैं। एक बात अवश्य याद रखने योग्य है कि नैतिक चरित्रकी शुद्धिके विना नाम जाग्रत् नहीं होता, नाम लेनेपर भी भगवान्‌का प्रकाश अनुभवमें नहीं आता। शुद्ध चित्तसे, प्रेमपूर्वक, निष्कपट भावसे नाम-साधना करनेपर ही करुणाघन तनुधारी भगवान् नामके भीतर सुदीप्त रूपमें आत्मप्रकाश करते हैं।

मानव-जगत्‌में विभिन्न भाषाओंमें भगवान्‌के जो असंख्य पवित्र और सुन्दर नाम प्रचलित हुए हैं, वे सभी शक्ति-समन्वित हैं और सभीमें भगवान्‌का आत्मप्रकाश है। परंतु उन सबका मूलाधार एक अत्यन्त सहज, अत्यन्त सुन्दर और अतिशय शक्तिसमन्वित एकाक्षर सार्वजनीन महानाम है। वह महानाम ॐ है। गीता (८। १३)में भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म।'

माण्डूक्य-उपनिषद्‌में घोषित हुआ है—

'ओमित्येतदक्षरम्, इदं सर्वं तस्योपव्याख्या[नं] भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वम् ॐकार एव। यच्चा[न्यत्] त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव।' इत्यादि—

'ॐ'—यह नाम ही अक्षर-ब्रह्म है। यह सब न[ाम]रूपमय अखिल विश्व ॐकारका ही मानो उपव्याख्य[ान] है, यह एकाक्षर ब्रह्म अनन्त नामरूपोंमें आत्मप्रका[श] कर रहा है। भूत, वर्तमान, भविष्यत्—सब इसी ए[क] ॐकारके भीतर अवस्थित हैं। इस नामरूपके ऊपर [जो] त्रिकालातीत सत्य है, वह भी ॐकार ही है। 'ॐ' सर्वात्मक है, सर्वमय है, सर्वातीत है, सगुण और निर्गुण है।

बृहदारण्यक उपनिषद् उपदेश करता है—

'ओमित्येव जानीथ आत्मानम्, अन्या वाचो विमुञ्च[थ] अमृतस्यैष सेतुः।'

''ॐ'—इस एक अक्षरको आत्मा (परमात्मा) के रूपमें जानो और सब बात छोड़ो। अमृतका यह सेतु है।'

वेद-उपनिषद् आदि सब शास्त्रोंने इस एकाक्षर महानाम प्रणवको परम तत्त्वके रूपमें कीर्तन किया है। इस अनादि, अनन्त, पूर्ण वैचित्र्यमय विश्व-प्रपञ्चके हृदय-केन्द्रमें यह महानाम अपने-आप नित्य झङ्कृत हो रहा है तथा सब जीवोंके हृदय-केन्द्रमें भी नित्य यह महानाम ध्वनित हो रहा है। इसका आदि-अन्त नहीं है। किसी कारणसे, किसी संघातसे यह ध्वनि उत्पन्न नहीं होती। इसी कारण इसको 'अनाहत नाद'के नामसे पुकारते हैं। सब भाषाओंके सब नामोंका मूल स्रोत यही महानाम ॐ है। सब नामोंका पर्यवसान और पूर्ण सार्थकता महानाममें है। सब नाम और सब रूप ॐकारमें विलीन हो जाते हैं। इस ॐकारकी भी वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा अवस्था है। परा अवस्थामें ॐ और ब्रह्म, नाम और नामी—**'सर्वतोभावेन एकीभूत'** साधकके चित्त और परमात्मा-में सम्यक् समाहित हैं। इसी अवस्थामें नाम-साधनाकी सम्यक् सिद्धि होती है। इसी अवस्थामें 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' है।

नाम स्वयं भगवान् ही है

(लेखक—गोलोकवासी आचार्य श्रीरसिकमोहन विद्याभूषण)

विज्ञान और धर्म

संसारके प्रत्येक सभ्यदेशके शास्त्रग्रन्थ हमें बताते हैं कि इस जगत्का एक स्रष्टा है जो सर्वव्यापी, सर्वद्रष्टा, सर्वशक्तिमान् और अपने उत्पन्न किये हुए प्राणियोंके प्रति सर्वदयापूर्ण है। मनुष्योंमें एक ऐसा भी वर्ग है जो ऐसे किसी स्रष्टामें विश्वास नहीं करता। ऐसे लोग स्वयं वैज्ञानिक होनेका ढोंग करते हैं; परंतु वस्तुतः वे बौद्धिक यन्त्रमात्र हैं और अधिकांशतः 'स्वैराचारी' हैं। ऐसे लोग 'अनीश्वरवादी' अथवा 'नास्तिक' कहलाते हैं। कुछ ऐसे भी नीतिवादी या सदाचारवादी हैं, जिन्होंने बिना धर्मका आश्रय लिये नीति अथवा आचारकी एक योजना बनानेके कार्यमें श्रम किया है। यह एक बिल्कुल अप्राकृतिक प्रकारका विच्छेद और उनके मानसिक निर्माणमें कुछ अभावका स्पष्ट चिह्न है। विज्ञानकी सच्ची भावना तो धर्मके विरुद्ध नहीं है। प्रकृतिके सच्चे और पूर्ण अध्ययनसे धर्मके सुन्दर रूपोंपर प्रकाश पड़ता है। प्रोफेसर हक्सले कहते हैं—

'सच्चा विज्ञान और सद्धर्म जुड़वाँ बहनके समान हैं और एकको दूसरेसे अलग करनेसे दोनोंकी मृत्यु निश्चित है। विज्ञानके आधारमें जितनी वैज्ञानिक गम्भीरता और दृढ़ता होगी, उतनी ही उसकी उन्नति होगी। तत्त्वज्ञानियोंके महान् कार्य उनकी बुद्धिकी अपेक्षा उनके धार्मिक प्रवृत्तिमय मनके द्वारा नियन्त्रित बुद्धिके ही परिणाम अधिक हैं। सत्यने उनके तार्किक उपकरणोंकी अपेक्षा उनकी श्रद्धा, उनके प्रेम, उनके हृदयकी सरलता और उनके आत्म-त्यागके प्रति ही अधिक आत्मार्पण किया है।' ये श्रीहक्सले एक प्रसिद्ध अंग्रेज वैज्ञानिक थे। जनरूढ्या वे वैज्ञानिकोंमें वैज्ञानिक थे। सच्चा विज्ञान सच्चे धर्मका कभी विरोध नहीं कर सकता।

ईश्वरका अस्तित्व

बहुत-से लोग समझते हैं कि विज्ञान अधार्मिक है, पर वस्तुतः विज्ञान कभी धर्मद्रोही नहीं हो सकता। उस विज्ञान-की उपेक्षा है जो अधार्मिक होती है, उस चतुर्दिक् सृष्टिके अध्ययनके प्रति अस्वीकृति है जो अधार्मिक है। विज्ञानमें निष्ठा एक मौन उपासना है; अध्ययन किये जानेवाले पदार्थों और फलतः उनके हेतुमें विधाताकी प्रतिष्ठा अथवा उसकी मौन स्वीकृति है। यह केवल श्रद्धा नहीं है वरं कार्यरूपमें व्यक्त होनेवाली निष्ठा है; यह केवल मौखिक आदर-प्रदर्शन नहीं है वरं समयके त्याग, विचार और अध्यवसायद्वारा सिद्ध आदर है। परंतु संसारमें ऐसे लाखों स्त्री-पुरुष हैं जो ईश्वर तथा उनके प्रति कर्तव्यपालनके सम्बन्धमें पूर्णतः विमुख हैं। वे इस संसारके दैनिक झंझटों, संकटों और हाहाकारके बीच रह रहे हैं और कदाचित् ही कभी आत्मा और परमात्माके विषयमें सोचते हैं। वे नहीं जानते कि हम 'उसी'में रह और चल रहे हैं एवं हमारी सत्ता 'उसी'के अन्तर्गत है और 'वह' इस जगत्के प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ और प्राणीमें वर्तमान है। अपनी अन्तःप्रकृतिमें किञ्चित् डूबकर देखनेसे हमें इस महान् सत्यका अनुभव होने लगेगा कि इस जगत्की प्रत्येक वस्तु एक-दूसरेसे सम्बन्धित और परस्पराश्रयी है एवं यह विशाल विश्व 'उसी'की अभिव्यक्ति है, उसीमें अनुप्राणित है और उसीके द्वारा जीवित है। इस प्रकार जगत्की प्रकृति, उस अनन्त और निरन्तर सम्बन्धकी ओर, जो हमारे और 'उस'के बीच है, पूर्णतः निर्देश करती है और स्पष्टतः बताती है कि 'उस'के प्रति हमारे स्थायी कर्तव्य हैं। यह हमारा एक निश्चित कर्तव्य है कि हम 'उसे' निरन्तर अपने मनके समक्ष रक्खें।

ईश्वरकी सेवाके साधन

अब यह देखना चाहिये कि 'उसे' अपने सम्मुख रखनेका साधन क्या है? यह बहुत स्पष्ट और सरल है। जब हमारा कोई मित्र अन्धकारमें किसी भीड़में खो जाता है तब हम उसे प्राप्त करने अथवा खोज निकालनेके लिये क्या करते हैं? हम जोरसे उसे पुकारते हैं। हम उसे उसका नाम लेकर यों पुकारते हैं कि हमारी आवाज उसके पास निश्चितरूपसे और शीघ्रतापूर्वक पहुँच जाय। वह प्रत्युत्तर देता है और हमको अपने दर्शनसे कृतार्थ करता है। केवल यही एक प्रभावशाली और फलदायी उपाय है।

ईश्वरका नामोच्चार (जप) सब साधनाओंमें श्रेष्ठ है

[illegible] शास्त्रोंमें ईश्वरोपासनाके अनेक मार्ग बताये गये हैं। यहाँ हम अन्य मार्गोंपर विचार न करके केवल [illegible] ही [illegible] हैं, जो अत्यन्त सरल एवं [illegible] है; पापोंका प्रक्षालन करनेमें पूर्णतः समर्थ है और परम [illegible] तथा अपवर्ग, परिपूर्ण आनन्द एवं परिपूर्ण भगवत्प्रेम (अर्थात् स्वयं ईश्वर ही है; क्योंकि ईश्वर तथा उनका प्रेम दोनों अभिन्न हैं; प्रेम ईश्वर है और ईश्वर प्रेम है।) की प्राप्तिमें जितनी भी विघ्न-बाधाएँ हैं, सबको दूर करनेवाला है। शास्त्रोंके प्रमाणपर हम जोरके साथ कह सकते हैं कि उपासनाकी यह विधि, और केवल यही विधि, हमारी आध्यात्मिक उन्नतिकी सर्वग्राही विधि है। वेदोंसे लेकर पुराणोंतक, हमारे शास्त्रग्रन्थ इच्छित फलोंकी प्राप्तिमें इसकी परम उपयोगिता, महत्त्व एवं प्रभावशीलताको एक स्वरसे स्वीकार करते हैं। पुस्तकों, पुस्तिकाओं एवं पत्रकोंके रूपमें, भगवन्नामकी महिमा प्रकट करनेवाले शास्त्रवचनोंके बहुत-से उपयोगी संग्रह भी हैं। जो लोग इस विषयमें शास्त्रोंके विचार जानना चाहते हैं, उनको इन पुस्तकोंका अध्ययन करना चाहिये।

यहाँ मैं, अपने क्षुद्र ज्ञानके सहारे, संक्षेपमें शास्त्र-वचनोंके भावोंको दिखानेकी चेष्टा करूँगा। भगवन्नामोच्चारकी महिमाके विषयमें शास्त्र-सिद्धान्तोंपर तात्त्विक विवेचन सूक्ष्म एवं रहस्यकी बातोंसे पूर्ण होनेके कारण उसका वर्णन करना मेरी शक्तिसे बाहर है। मैं इस विषयपर यहाँ अपने विचार प्रकट करूँगा। इन विचारोंको मैंने अपने आध्यात्मिक गुरुओंकी शिक्षा और निर्देशके तथा साधनाके निजी अनुभवोंके आधारपर स्थिर किया है।

ईश्वरकी धारणा

ईश्वर-प्राप्तिके साधनोंपर विचार करनेसे पूर्व ईश्वरकी धारणापर विचार कर लेना आवश्यक है। सभ्यताके आदिम युगोंसे ही मनुष्यका मस्तिष्क और हृदय इस जीवनके बादके जीवन तथा हमारी नियतिको रूप देनेवाली, नियन्त्रित एवं प्रभावित करनेवाली किसी व्यक्त अथवा अव्यक्त शक्तिकी कल्पना करता आया है। यह एक तथ्य है कि कतिपय परिस्थितियोंमें मानव-मन और मानव-हृदय किसी अदृश्य शक्तिके विषयमें सोचता है और उससे सहायता ग्रहण करना चाहता है।

इसके अतिरिक्त परमार्थविद्या, विशेषतः भारतीय परमार्थ-विद्या, एक ऐसी सत्ताका वर्णन करती है जो समस्त उपाधियों या गुणोंसे रहित और मानव-ज्ञानके लिये अज्ञेय है। यह 'निर्विशेष परब्रह्म' है, जिसका प्रतिपादन श्रीशंकराचार्यने अपने वेदान्तसूत्रोंके भाष्यमें किया है। यह ब्रह्म और कुछ नहीं, आध्यात्मिक प्रणिधान है; फिर भी यह वह सिद्धि है जिसकी कुछ श्रेणियोंके विचारक श्रद्धापूर्वक इच्छा करते हैं। किंतु ये विचार भी, अपनी उपासनाकी प्रारम्भिक अवस्थामें प्राप्य वस्तुके प्रतीक-स्वरूप निरन्तर 'ॐकार' का उच्चार या धीरे-धीरे पाठ करते हैं। इस विधिको वे 'जप' कहते हैं। पतञ्जलिने अपने योगसूत्रमें इसका सारांश यों दिया है—

तस्य वाचकः प्रणवः। (१ । २७)

'उसका वाचक—निर्देशक—प्रणव है।'

प्रणव ॐ का वैज्ञानिक नाम है और शास्त्रोंकी आज्ञा है कि इस अक्षरका सदा उच्चार करना चाहिये। वेद, उपनिषद् तथा अन्य सब हिंदू-धर्मग्रन्थ इसे प्रभुका सबसे पवित्र नाम मानकर इसी विधिका समर्थन करते हैं। छान्दोग्य उपनिषद्में इसका वर्णन है और भगवद्गीतामें भी इसकी प्रतिध्वनि है, जिसमें कहा गया है—

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥
(८ । १२-१३)

'हे अर्जुन! सब इन्द्रियोंके द्वारोंको रोककर अर्थात् इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर तथा मनको हृद्देशमें स्थिर करके और अपने प्राणको मस्तक (दोनों भ्रुवोंके बीच) में स्थापन करके योगधारणामें स्थित होकर जो पुरुष, 'ॐ' ऐसे इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझको चिन्तन करता हुआ, शरीरको त्यागकर जाता है, वह पुरुष परम गतिको प्राप्त होता है।'

'योगदर्शन' का दूसरा सूत्र यों है—

तज्जपस्तदर्थभावनम्। (१ । २८)

इसका भी यही अर्थ है कि ॐका जप और उसके अर्थपर भावना या ध्यान दोनों साथ-साथ चलना चाहिये।

'जप'का मतलब है—विधिवत् शब्दका बार-बार उच्चार और भावनाका मतलब है कि इसके द्वारा जिस पदार्थ, ईश्वरका निर्देश होता है उसकी मानसिक धारणा । ईश्वरमें अपने विचारोंको केन्द्रित करनेके ये दो साधन हैं । अतः समाधिकी अवस्थातक पहुँचनेके लिये योगीको निरन्तर प्रणवका जप करना और उसकी भावनापर अपने ध्यानको केन्द्रित करना चाहिये । जप और ध्यान या भावनाकी इस विधिसे परमात्माकी अनुभूति होती है और सब बाधाएँ दूर हो जाती हैं ।

नामके साथ ईश्वरका ऐक्य

इन्द्रियोंका स्वाभाविक कार्य यह है कि वे बाह्य पदार्थों-का अनुभव प्राप्त करनेके लिये बाहरकी ओर फैलें और उन्हें मस्तिष्कतक पहुँचायें । किंतु योगी इसे दबा देता है इसलिये इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं और अपनी प्राप्य वस्तुओंको अंदर ही पा लेती हैं । इसीलिये कहा जाता है कि उनका कार्य उलटा हो जाता है । जिन बाधाओंको दूर करना है, वे हैं—अभिलाषा, अवसाद, संदेह, असावधानता, आलस्य, संसारपरायणता या दुनियादारी, विभ्रम, योगकी किसी अवस्थाकी अप्राप्ति और उसमें अस्थिरता । ये निश्चित स्थानसे हमें हटाते और डगमग करते हैं, इसलिये ये विघ्न हैं । ये ध्यानके शत्रु हैं और जपद्वारा दूर होते हैं ।

उपर्युक्त सूत्रमें महर्षि पतञ्जलिने एकाक्षर प्रणवद्वारा व्यक्त भगवन्नाम-जपका महत्त्व, उपयोग, गुणकारिता और प्रभाव बड़ी सुन्दरता और स्पष्टतासे प्रदर्शित किया है । ऋषिके कथनानुसार प्रणव केवल ईश्वरका वाचक है, स्वयं ईश्वरके साथ उसका ऐक्य नहीं है । निर्देशक, वाचक, नाम, अभिव्यक्तिशील शब्द, जहाँ वह पूर्णतः प्रकर्षको प्राप्त होता और संगीतमय हो जाता है, प्रणव अर्थात् ॐ ही है । यह निर्देशक या वाचक स्वयं निर्देश्य या वाच्य नहीं है । यह केवल 'उसे' (ब्रह्म या ईश्वरको) प्राप्त करनेका साधन है । वेदान्तसूत्रके अपने भाष्यमें श्रीशंकराचार्यने भी यही मत प्रकट किया है ।

परंतु भक्त वैष्णव इस मतसे बहुत आगे गये हैं । वे अधिकारके साथ कहते हैं कि राम, कृष्ण इत्यादि भगवन्नामोंका परम ब्रह्मके साथ पूर्णैक्य है । वे पूर्णतः वही हैं जो ईश्वर या ब्रह्म है । इस बातको सिद्ध करनेके लिये वे निम्नलिखित प्रमाण देते हैं—

> नामचिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः ।
> नित्यशुद्धः पूर्णमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः ॥

'कृष्णनाम चिन्तामणि है—सब अभिलषित फलोंको देनेवाला है । यह चैतन्य-रसविग्रह है, नित्य है, शुद्ध है, पूर्ण है, मुक्त है तथा नाम और नामीकी अभिन्नताको व्यक्त करता है ।'

उपर्युक्त पाठ ही बँगलामें, किञ्चित् संक्षिप्तरूपमें, निम्नलिखित पदमें प्रकट है—

> जेइ नाम सेइ कृष्ण भज श्रद्धा करि ।
> नामेर सहित आछेन आपनि श्रीहरि ॥

'चूँकि परब्रह्म (श्रीहरि) अपने नाममें विद्यमान है और चूँकि वह और उसका नाम एक है, इसलिये पूर्ण श्रद्धाके साथ उसकी सेवामें आत्मार्पण करो; तुम इसके द्वारा निश्चित-रूपसे पूर्णता प्राप्त करोगे ।'

आप्तवाक्यका प्रमाण

इन वक्तव्योंमें पूर्ण विश्वास करना बड़ा कठिन है । संतों और ऋषियोंद्वारा व्यक्त सत्य सर्वातिरिक्त है । वह उन लोगोंकी विचार-शक्तिसे परे है जिनको अपने हृदयमें भगवत्कृपारूपी ज्वालाके स्फुलिङ्ग प्राप्त नहीं हुए हैं । हम साधारण मनुष्य इस सत्यकी आत्मामें कठिनतासे ही प्रवेश कर सकते हैं । हमारी जानकारीमें तो नाम कुछ अक्षरोंसे बना है; ऐसा नाम स्वयं ब्रह्मसे अभिन्न कैसे हो सकता है ? हम इसके लिये कोई कारण नहीं बता सकते । वस्तुतः युक्तिवादकी सम्पूर्ण सांसारिक विधियाँ इस सत्यको प्रकट करनेमें असमर्थ हैं । इस जगत्में बहुत-सी ऐसी चीजें हैं—विशेषतः वे वस्तुएँ जो सर्वातिरिक्त हैं—जिनकी व्याख्या साधारण बुद्धिसे नहीं की जा सकती । ऐसी ही बातोंके लिये संतों और ऋषियोंके शब्द, जिन्हें 'आप्तवाक्य' कहा जाता है, प्रमाण माने जाते हैं ।

वैष्णव संतोंके अतिरिक्त शास्त्रोंके कतिपय प्रामाणिक भाष्यकारोंने भी ईश्वर और उसके नाममें अभिन्नता स्वीकार की है । महाभारतके प्रसिद्ध भाष्यकार नीलकण्ठने हमें बताया है कि 'ॐ' शब्द स्वयं ब्रह्म है । ऊपर गीताके जो दो श्लोक उद्धृत किये गये हैं उनकी टीकामें वे लिखते हैं—'यदि कोई देवदत्तको उसके नामसे पुकारता है तो जिस व्यक्तिको बुलाया जाता है वह (देवदत्त) पास आ जाता

है। अतः जब ईश्वरका कोई भक्त ब्रह्मका नामोच्चार करता है तो वह ईश्वरकी उपस्थितिका अनुभव करता है। इससे यह प्रकट होता है कि ॐ शब्द ब्रह्मका नाम है और यह नाम तथा ब्रह्म अभिन्न हैं। टीका यह है—

ओङ्कारस्वरूपम् एकाक्षरम्—एकं च तदक्षरं च वर्णो ब्रह्म च—ब्रह्म व्याहरन् उच्चरन् मां च तदर्थभूतम् अनुस्मरन्, यो हि देवदत्तं स्मृत्वा तन्नाम व्याहरति तस्मै देवदत्तोऽभिमुखो भवतीति एवं ब्रह्मणो नामोच्चारणेन संनिहिततरं व्यापकं ब्रह्म भवतीत्यर्थः, संनिहिते च ब्रह्मणि यो देहं त्यजन् म्रियमाणो प्रयाति ऊर्ध्वनाड्या याति स परमां गतिं संनिकृष्टब्रह्मस्वरूपं याति यामेव प्रकृत्य श्रूयते एषास्य परमा गतिरेषास्य परमा सम्पदेषास्य परम आनन्द इति, तामेव गतिं शुद्धं ब्रह्मैव प्राप्नोति ब्रह्मलोकप्राप्तिद्वारा।

नीलकण्ठने सचमुच पाठमें प्रकट विचारकी आत्मामें प्रवेश किया है। भगवद्गीताके एक दूसरे टीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्तीका भी ऐसा ही मत है। वे न केवल एक महान् पण्डित थे, वरं भगवान्‌के परम भक्त भी थे। उक्त दो श्लोकोंकी अपनी टीकामें उन्होंने बड़ी स्पष्टता और जोरके साथ इसका प्रतिपादन किया है कि ॐको ब्रह्म-स्वरूप ही समझना चाहिये।

छान्दोग्य उपनिषद्‌में हमें एक वाक्य मिलता है—

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत।

यद्यपि ॐ शब्दके कई अर्थ हैं पर यहाँ यह शब्द-ब्रह्म—परब्रह्मके अर्थमें ही प्रयुक्त हुआ है। पुनः

अथो नाम ब्रह्मेत्युपासीत।

इस श्रुतिका उल्लेख करते हुए ब्रह्मसूत्रमें एक सूत्र है—

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्। (४।१।५)

यह सूत्र हमारे इस वक्तव्यको पुष्ट करता है—

जेइ नाम सेई कृष्ण भज श्रद्धा करि।
नामेर सहित आछेन आपनि श्रीहरि॥

अब हम बलपूर्वक कह सकते हैं कि यह निष्कर्ष श्रुति और स्मृतिके प्रबल प्रमाणोंपर आश्रित है, परंतु हमें भय है कि यह सब हमारे पाठकोंके मनमें नाम और नामीके अभिन्नत्वकी धारणाको पुष्ट करनेमें विशेष सहायक न होगा। पर, इतना तो हम जोर देकर कह सकते हैं कि यह वक्तव्य निराधार अथवा अप्रामाणिक नहीं है।

लोगोज़ और नाम-ब्रह्म

ईसाई परमार्थ-शास्त्रमें हम देखते हैं कि आरम्भमें शब्द था और शब्द ईश्वरके साथ था और शब्द ईश्वर था। 'न्यू टेस्टामेंट'में संत जॉनका यह वचन वैदिक साहित्यकी प्रतिध्वनि-सा मालूम पड़ता है।

यह सिद्धान्त कि ईश्वरका नाम परमेश्वरसे अभिन्न है, हिब्रू-धर्मग्रन्थोंसे भी समर्थित होता है। बहुत पहले फीलो जूडासकी रचनाओंमें भी इस सिद्धान्तकी खोज की जा सकती है। हिब्रू-ग्रन्थोंमें 'जीहोवा' शब्द ईश्वरकी शक्तिको प्रकट करता है। वह स्वर्गकी सृष्टि करता है; वह जगत्‌का शासन करता है। इसी प्रकार फिलिस्तीनी यहूदियोंमें, चैल्डी व्याख्याकार प्रायः सदैव ही ईश्वरको सीधे कार्य न करके 'मेमरा' अथवा शब्दद्वारा कार्य करते हुए चित्रित करते हैं। यूनानी ज्ञानग्रन्थोंमें शब्द विवेकसे अभिन्न है पर विवेकका सदा जिक्र आता है और शब्दका वर्णन बहुत ही कम बार किया गया है। फीलोका लोगोज़ प्रादुर्भूत पदार्थोंमें सबसे प्राचीन एवं सबसे अधिक सामान्य या व्यापक है। वह ईश्वरकी नित्य प्रतिमा है। यह वह बन्धन है जिससे सब पदार्थ एक-दूसरेसे बँधे हुए हैं। वह सब वस्तुओंका अनुभव करता है; वह सब वस्तुओंको धारण किये हुए है। लोगोज़ अनन्त शब्द है। तदनुसार संत जॉन कहते हैं कि सब वस्तुओंका जन्म या निर्माण शब्दसे हुआ और यह स्रष्टा शब्द ही अभिव्यञ्जक—प्रकाशकर्ता भी है। शब्द जीवन है, शब्द आलोक है और शब्द आत्मस्थित सत्ता है। वह जगत्-जीवनका केन्द्र और स्रोत है। ईश्वर प्रेम है। प्रेम वह सम्बन्ध है जो ईश्वर तथा उसकी इच्छाकृत सम्पूर्ण सृष्टिके बीच है। प्रेम ईश्वरकी सत्ताका बन्धन है। ईश्वर आलोक है। इसका तात्पर्य यह है कि वह परिपूर्ण प्रज्ञात्मक एवं नैतिक सत्य है। वह विचार-जगत्‌में सत्य है और वह कर्म-जगत्‌में सत्य है। वह सर्वज्ञाता और परिपूर्ण पवित्र सत्ता है। इस प्रकार लोगोज़ प्रकाश है—वह प्रकाश जो ईश्वरका सार-तत्त्व है। इस तरह शब्द ईश्वरीय तत्त्वका प्रकाश करता है।

मैं समझता हूँ कि अब इस विषयपर अधिक लिखना अनावश्यक है। भगवन्नाम या शब्द स्वयं ईश्वरसे अभिन्न है। यह पदार्थोंके साधारण नामकी तरह नहीं है। जब हम 'जल' कहते हैं तो 'जल' शब्द हमारी पिपासाको शान्त नहीं

करता; परंतु जब हम ठीक और उचित विधिसे भगवन्नामका उच्चारण करते हैं तो उस शब्दकी ध्वनि उसके (ईश्वरके) पास पहुँचती है और उसका ध्यान हमारी ओर आकर्षित होता है ।

नाम-साधनाकी सार्वदेशिकता

नाम-साधना अर्थात् भगवन्नामके द्वारा ईश्वरकी उपासनाकी विधि प्रायः सार्वदेशिक है । विश्वके लगभग सभी प्रधान धार्मिक सम्प्रदायों—हिंदू, मुसलमान, ईसाई तथा दूसरे लोगोंने पाप-प्रक्षालन तथा ईश्वरीय विभूतिकी प्राप्तिके लिये इस विधिको अपनाया है । हमारे शास्त्रोंमें स्पष्टरूपसे कहा गया है कि नामोपासना अथवा शास्त्रीय विधिसे निरन्तर भगवन्नामके जपके अतिरिक्त कर्म-शक्तियोंको निष्प्रभाव या असफल करनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है । अन्य विधियों वा साधनोंसे जो कुछ लाभ हो सकता है वह सब इससे निश्चितरूपमें होता है; यह हमको सब प्रकारके अपराधों एवं पापोंसे मुक्त करता है और यह नित्य एवं अनन्त आनन्दतक हमें पहुँचाता है । हम इस वक्तव्यके समर्थनमें वेद, उपनिषद् तथा पुराणोंसे अनेक श्लोक दे सकते हैं । इनके अतिरिक्त भारतके सब भागों एवं संसारके अन्य देशोंके साधु-संतोंके सहस्रों पद, दोहे, भजन और उक्तियाँ हैं ।

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुद्वारा इस सिद्धान्तका समर्थन

नवद्वीपके श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु अपने कालमें ही सहस्रों विद्वानोंद्वारा पूजित थे और आज भी लाखों आदमी उन्हें ईश्वरका अवतार मानते हैं । उनके परम महत्त्वपूर्ण एवं प्रिय विचारके रूपमें 'श्रीचैतन्य-चरितामृत'में इस सिद्धान्तका प्रबल समर्थन मिलता है । ईश्वरसे उनके नामकी अभिन्नताके सम्बन्धमें उन्होंने निम्नलिखित घोषणा की थी—

> कृष्ण नाम कृष्ण स्वरूप दुइ त समान ॥
> नाम, विग्रह, स्वरूप, तिन एकरूप ।
> तिने भेद नाइ तिन चिदानन्दरूप ॥
> देह-देही, नाम-नामी, कृष्णे नाहिं भेद ।
> जीवेर धर्म नाम-देह-स्वरूप-विभेद ॥

जो इस विधि (भगवन्नाम-जप-) से ईश्वरकी उपासना करते हैं उनको कार्यतः और सांसारिक तथा आध्यात्मिक सब प्रकारके लाभ देनेमें श्रीकृष्णका नाम स्व श्रीकृष्णके तुल्य है । नाम, विग्रह, स्वरूप—तीनों एक हैं; एक ही सत्ताकी इन तीन दशाओंमें कोई भेद नहीं है । तीनों चिदानन्दरूप हैं । जहाँतक श्रीकृष्णका सम्बन्ध है—देह-देही, नाम-नामीमें भेद नहीं है । पर जीवके विषयमें यह बात नहीं है । वहाँ उसके शरीर और उसकी जीवात्मा तथा नाम एवं उसकी सत्तामें निश्चित भेद है ।

> अतएव कृष्णेर नाम-देह-विलास ।
> प्राकृतेन्द्रिय ग्राह्य नहे, हय स्वप्रकाश ॥
> कृष्णनाम, कृष्णगुण, कृष्णलीलावृन्द ।
> कृष्णेर स्वरूप सम, सब चिदानन्द ॥

अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि कृष्णका नाम, देह, विलास हमारी प्राकृत इन्द्रियोंद्वारा ग्राह्य नहीं है । वे स्वप्रकाशित हैं ।

इन वक्तव्योंके पश्चात्, इस ग्रन्थमें, इस सिद्धान्तके समर्थनमें श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके एक प्रेमी भक्त तथा भक्ति-सम्प्रदायके एक प्रामाणिक प्रतिपादक श्रीपाद रूपगोस्वामीलिखित 'भक्तिरसामृतसिन्धु' से एक श्लोक दिया गया है—

> अतः श्रीकृष्णनामादि भवेद्ग्राह्यमिन्द्रियैः ।
> सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः ॥

नाम-साधनाका प्रभाव

इस पद्यका तात्पर्य अत्यन्त अनुभवातीत और अत्यधिक आध्यात्मिक है । इसका मतलब यह है कि नामकी भावना और अर्थ हमारी इन्द्रियोंके लिये सर्वथा अग्राह्य हैं । नामका निरन्तर उच्चार अथवा जप तथा भगवत्-लीलाकी कथाओंका श्रवण उस आध्यात्मिक लोकका मार्ग है जहाँ सच्चे तत्त्वका अस्तित्व है । सत्यकी सिद्धिके लिये प्रधान आवश्यकता इस बातकी है कि निष्ठापूर्वक निरन्तर भगवन्नामका जप किया जाय । भगवन्नामोच्चारका प्रथम प्रभाव तो यह है कि हमारा मन सब प्रकारके कुविचारों तथा दुरभिलाषाओंसे मुक्त होकर निर्मल हो जाता है । दूसरा प्रभाव यह होता है कि यह अपने प्रभावकारी अथवा गुणकारी होनेका दृढ़ विश्वास स्थापित कर देता है । तीसरी बात यह होती है कि यह सत्संगकी ओर हमारी रुचि बढ़ाता है । चौथी बात यह कि इससे हम निरन्तर नामोच्चार अथवा भजनमें लगे रहते हैं । पाँचवाँ परिणाम यह होता है कि हमारी आध्यात्मिक उन्नतिके मार्गमें जो विघ्न-बाधाएँ आती हैं, उन्हें दूर कर देता है । छठा

यह किसीको अपने अभ्यासमें आसक्त कर देता है। सातवें हमें नाममें स्वाद आने लगता है। आठवाँ हमारा हृदय नाम-साधनाके सौन्दर्य-बिन्दुमें केन्द्रित हो जाता है जो अन्य सब आकांक्षाओंको आत्मसात् कर लेता है। नवीं बात यह होती है कि हमारे अन्तश्चक्षुओं और बादमें हमारी आँखोंके समक्ष भी यह निरतिशय आनन्द और नित्य ज्ञानके अवतार श्रीकृष्णकी मनोरम मूर्तिको उपस्थित कर देता है। इस प्रकार हमारा कार्य पूर्ण हो जाता है।

हमारे शास्त्रोंमें इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेवाले सहस्रों श्लोक हैं कि इस जगत्‌के दुःखोंसे मुक्त होने तथा सर्वोच्च आनन्द एवं अनन्त सुख, जो ईश्वर अपने प्रेमी भक्तोंको दे सकता है, प्राप्त करनेके जितने साधन हैं उनमें नाम-साधना सर्वोत्तम है। 'बृहन्नारदीय पुराण'ने बड़े बलपूर्वक यह बात घोषित की है कि नाम-साधनाके अतिरिक्त कलियुगमें मुक्ति प्राप्त करनेका दूसरा उपाय नहीं है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

नाम-साधना उपासनाकी सर्वोच्च विधि है

उपर्युक्त श्लोक शास्त्रविहित अन्य विधियोंको त्यागकर भगवन्नाम-जपकी उपयोगिता, महत्त्व और प्रभावमें विश्वास उत्पन्न कराता है। अब यह प्रश्न उठता है कि इस उपासनाके लिये निश्चित विधि क्या होनी चाहिये? इसके लिये एकाधिक मार्ग हैं। कुछ लोग निरन्तर जोरसे नामोच्चार करते हैं; दूसरे लोग १०८ मणियों या दानोंकी मालापर भगवन्नाम लेते रहते हैं। एक बार भगवान्‌का नाम लेनेपर एक मणि आगे कर दी जाती है और इस प्रकार कितनी बार भगवान्‌का नाम लिया गया, यह पता चलता रहता है। नाम-साधनाकी यह विधि प्रायः सार्वदेशिक है और न केवल हिंदूधर्मके विविध सम्प्रदायोंमें प्रचलित है, वरं दूसरे धर्मोंके अनुयायियोंमें भी इसका प्रचार है। मालाका उपयोग रोमन कैथलिक और मुसलमान भी करते हैं। बंगालके वैष्णव अपनी धार्मिक साधनाका प्रधान अङ्ग मानकर इसका उपयोग करते हैं। उनमेंसे बहुतेरे प्रायः निरन्तर मालाका उपयोग करते रहते हैं। कभी-कभी वे जोर-जोरसे भगवन्नाम लेते और हाथोंको ऊपर उठा-उठाकर मत्त-से होकर नृत्य करते हैं; साथ ही मृदङ्ग और करताल जोरोंसे बजाया करते हैं, इसे वे 'नाम-संकीर्तन' कहते हैं। संकीर्तनकी यह विधि बंगालमें पहली बार नदियाके 'अवतार' श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने प्रचलित की, जिन्हें उनके शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकारके भक्तोंने स्वयं श्रीकृष्णके रूपमें देखा और घोषित किया था। वे श्रीगौराङ्गके रूपमें प्रकट हुए अर्थात् बाह्यतः उन्होंने श्रीराधाका रंग और स्वभाव ग्रहण किया और अंदर अपनेको सुरक्षित रखा। इस अवतारकी लीलाका बाह्य उद्देश्य और तात्पर्य यह था कि सामान्यजनोंको मुक्तिका एक साधन प्राप्त हो और वे नामोच्चारके द्वारा प्रभु श्रीकृष्ण परमेश्वरके प्रति आनन्दमय, असीम प्रेम प्राप्त कर सकें। महामन्त्र अथवा तारक-ब्रह्मका जो सूत्र प्राचीन ऋषियों, संतों और साधुओंको ज्ञात था, एक बार सम्पूर्ण देशमें उसका प्रचार हो गया। वह सुप्रसिद्ध सूत्र है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

सामान्यतः इस मन्त्रका मनमें अथवा जोरसे उच्च किया जाता है। गायनके रूपमें यह जोरके साथ गाया जाता है। श्रीकृष्ण-नाम-संकीर्तनकी प्रशंसामें स्वयं श्रीकृ चैतन्य महाप्रभु-रचित संस्कृतका प्रसिद्ध श्लोक है—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥

'जो श्रीकृष्ण-नाम-संकीर्तन हमारे हृदयको निर्मल करत है, जो उस दर्पणके समान है जिसमें ईश्वरत्व प्रतिबिम्बि है, जो संसारके प्रति आसक्तिरूपी महादावाग्निको शान करता है, जो श्रेयरूपी कैरवके लिये चन्द्रिका वितर करनेवाला है, जो विद्यावधूजीवन है, जो आनन्दरूपी समुद्र बढ़ानेवाला है, जिसके प्रतिपदमें पूर्णामृतका स्वाद है अ जो प्रत्यक् आत्माको शान्तिदायक है उसकी जय हो।'

ठाकुर नरोत्तमदास एक सच्चे और निष्ठावान् वैष्णव उन्होंने अपनी एक प्रार्थनामें लिखा है—

गोलोकेर प्रियधन हरिनाम संकीर्तन।
रति ना जन्मिल केन ताय॥
संसारेर विषानले निरवधि हिया ज्वले।
जुड़ाइते ना करनु उपाय॥

इन पंक्तियोंमें एक ऐसे सत्यका संकेत है जिसपर ई

इसका तात्पर्य यह है कि भगवन्नामकी महिमा इतनी अद्भुत है कि यदि यह अंशतः शुद्ध या अशुद्ध, किसी प्रकार और किसी रूपमें हमारे कानतक पहुँचता है, हमारी जिह्वाको स्पर्श करता है अथवा हमारे विचारमें प्रवेश करता है तो सांसारिक इच्छाओं, पापों एवं दोषोंसे हमारी मुक्ति निश्चित है; परंतु जब स्वास्थ्य, धन अथवा किसी अन्य सांसारिक पदार्थकी प्राप्तिके लिये भगवन्नामका जप या उपयोग किया जाता है तब इसका प्रभाव घट जाता है। श्रीजीवगोस्वामीने अपने ग्रन्थ 'भक्ति-संदर्भ'में अजामिलद्वारा मृत्युके समय भगवन्नाम-जपकी महिमाका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। वे कहते हैं कि भगवन्नाम-उच्चारकी महिमाकी सफाई किसी मनोवैज्ञानिक क्रम अथवा साधनाके परिणामके रूपमें नहीं दी जानी चाहिये। शास्त्रोंमें ऐसे व्यक्तियोंके उदाहरण भी मिलते हैं जिनका भगवन्नाम-महिमामें कोई विश्वास नहीं था पर उन्होंने यों ही, संयोगवश, बिना नामकी गुणकारिता, प्रभाव वा महिमाका विचार किये मृत्युके समय भगवन्नाम लिया और वे भगवान् विष्णुके दूतोंद्वारा सर्वोच्च लोकको भेज दिये गये। जैसे अग्नि अपने सम्पर्कमें आनेवाली प्रत्येक वस्तुको जला डालती है वैसे ही भगवन्नाम सब पापोंको, उनके बीज अथवा संस्कारोंके साथ, नष्ट कर देता है। यह न तो पापीके हेतुपर विचार करता है और न उस व्यक्तिकी योग्यता-अयोग्यतापर ही। जो अन्तिम श्वासके साथ भगवन्नामकी महिमाका विचार किये बिना उसका उच्चार करता है, भगवन्नाम इस प्रकारका कोई भेद किये बिना ही नाम लेनेवालेको मुक्ति प्रदान करता है।

नाम-साधना और इसकी स्वतन्त्र शक्ति

किसी फल अथवा परिणाममें नाम-साधनाका किसी अन्य उपासना-विधिसे अन्तःसम्बन्ध अथवा सह-सम्बन्ध नहीं है। आध्यात्मिक जगत्में किसी प्रकारका वाञ्छित फल देनेमें यह अन्य सब विधियोंसे ऊपर है। यह दीक्षा अथवा पुरश्चर्याकी प्रतीक्षा नहीं करता। 'श्रीचैतन्य-चरितामृत' में भगवन्नामकी प्रशंसामें एक श्लोक है जो इसकी स्वतन्त्र महिमाको व्यक्त करता और कहता है कि इसे किसी अन्य उपासना-विधिके सहयोगकी आवश्यकता नहीं है—

आकृष्टिः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसा-
माचाण्डालममूकलोकसुलभो वश्यश्च मोक्षश्रियः।
नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते
मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः॥

इसी ग्रन्थमें उपर्युक्त श्लोकका बंगला पद्यमें निम्नलिखित अनुवाद किया गया है—

दीक्षा-पुरश्चर्या-विधि अपेक्षा ना करे।
जिह्वास्पर्शे आचाण्डाले सबारे उद्धारे॥
आनुषंगे फल करे संसारेर क्षय।
चित्त आकर्षिया करे कृष्ण-प्रेमोदय॥
एई कृष्णनामे करे सब पाप क्षय।
नवविध- भक्तिपूर्ण नाम हइते हय॥

'भक्तिसंदर्भ' में नाम-साधनाकी सुगमता और सार्वदेशिकताका प्रतिपादन करनेवाले बहुत-से शास्त्रीय श्लोक उद्धृत किये गये हैं।

इससे प्रकट होता है कि उपासकोंका एक वर्ग ऐसा था, जिसने उपासनाकी अन्य सब विधियोंको छोड़कर केवल 'नाम-साधना' को अपनाया था। श्रीपाद जीवगोस्वामीने अपने 'भक्ति-संदर्भ'में इस विषयका विवेचन करते हुए सिद्ध किया है कि मन्त्र और कुछ नहीं, भगवन्नामका सार हैं, जिनमें अधिक प्रभावशीलता होती है और जो जीवात्मा एवं स्वयं परमेश्वरके बीचके सम्बन्धको प्रकट करते हैं। उन्होंने शास्त्रवाक्योंके आधारपर इन बातोंकी बड़े तर्कसंगत ढंगसे विवेचना की है। उनका कहना है कि भगवन्नाम, केवल भगवन्नाम ही, उपासककी सब इच्छाओंकी पूर्ति करनेमें पूर्णतः समर्थ है। अन्य सब विधियोंसे स्वतन्त्र केवल नाम ही हमें ईश्वरके राज्यतक पहुँचा सकता और असीम आनन्द प्रदान कर सकता है।

ननु भगवन्नामात्मका एव मन्त्राः, तत्र विशेषणे नमःशब्दालंकृताः श्रीभगवता श्रीमदृषिभिश्चाभिहितशक्तिविशेषाः श्रीभगवता सममात्मसम्बन्धविशेषप्रतिपादकाश्च। तत्र केवलानि श्रीभगवन्नामान्यपि निरपेक्षाण्येव परमपुरुषार्थफलपर्यन्तदानसमर्थानि।

मैं समझता हूँ कि इतनी बातें पाठकोंको आश्वस्त करनेके लिये पर्याप्त हैं कि किसी समय 'नाम-साधना' ईश्वरोपासनाकी एक सर्वलोकप्रिय विधि थी और आज भी भारतमें बहुसंख्यक स्त्री-पुरुष इसका अभ्यास करते हैं। परंतु अन्य साधनाओंसे इसकी महत्ता और उपयोगिता प्रदर्शित करनेके लिये जो कुछ कहा गया है, उससे यह समझ लेना

चाहिये कि यद्यपि 'नाम-साधना' एक स्वतन्त्र सत्य साधना है, पर वह ईश्वरोपासनाकी अन्य विधियोंको अनुत्साहित नहीं करती। निश्चय ही 'नाम-साधना' अत्यन्त शक्तिशाली समझी जाती है पर उसमें भी साधकोंके लिये कुछ सीमाएँ और सावधानताएँ हैं। जो लोग इस उपासना-विधिका अनुसरण करना चाहते हैं, उनको शास्त्रोंमें बताये उन प्रलोभनोंसे एवं दूषणोंसे बचनेमें बहुत सावधान रहना चाहिये जो हमारी आध्यात्मिक उन्नतिमें बाधक हैं और हमें लक्ष्यभ्रष्ट करते हैं। इनका शास्त्रीय नाम 'नामापराध' है और 'नाम-साधना' में निर्बाध सफलता प्राप्त करनेके लिये इनसे पूरी तरह बचना चाहिये।

श्रीचैतन्यमहाप्रभु एवं सामूहिक संकीर्तन

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुद्वारा प्रचलित और विकसित किये हुए नाम-संकीर्तनकी उपासना-विधिका उल्लेख मैं कर चुका हूँ। हमारी जातिके विचारवान् निरीक्षकोंने इस बातको लक्ष्य किया है कि जातीय संस्कृतिके विकासमें संगीतका, जो सामञ्जस्यका मूर्तिमान् रूप, कलाओंमें सबसे उदात्त है और धर्माचारमें जिसका इतना प्रचार है, बड़ा ही महत्त्वपूर्ण भाग है। यह ध्यानमें सहायता करता है, अशान्त मनको शान्त एवं निरुद्वेग करता है और भावनाओं-को सुसंस्कृत करता है। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने सामूहिक उपासनाकी लोकप्रिय विधि चलायी और इसका अत्यन्त अद्भुत एवं आश्चर्यकर परिणाम हुआ। जो लोग इसमें सम्मिलित होते थे, बिल्कुल आत्म-विस्मृत हो जाते थे, आनन्दावेशकी गहरी अनुभूतियोंमें डूब जाते थे और आध्यात्मिकरूपसे परिपूर्ण एवं असीम कल्याण तथा आनन्द-के क्षेत्रमें पहुँच जाते थे। श्रीचैतन्यमहाप्रभु और नित्यानन्दप्रभु संकीर्तन-प्रणालीके जन्मदाता माने जाते हैं। पर यह बात वहींतक सत्य है, जहाँतक उनके द्वारा आविष्कृत एवं प्रचारित 'प्रणाली'का सम्बन्ध है। वस्तुतः भगवत्पूजामें भगवन्नामके उच्चारकी प्रथा उतनी ही प्राचीन है, जितने प्राचीन वेद हैं। वैदिककालके पुजारियोंका एक वर्ग 'सामगस' के नामसे प्रसिद्ध था। ये लोग ईश्वरीय पूजाके समय वैदिक मन्त्रोंका गान करते थे और उनके द्वारा लौकिक सफलता, लाभ एवं उन्नतिके लिये देवोंकी सहायता लेते थे। यह प्रथा श्रीकृष्ण-चैतन्यके समयतक प्रचलित थी, जिन्होंने इसे सब स्वार्थपूर्ण लौकिक अभिलाषाओंसे मुक्तकर शुद्ध ईश्वरीय उपासनाका रूप दिया। उन्होंने स्वयं सर्वोच्च आध्यात्मिक आनन्द एवं सर्वोच्च चारुताके लिये इसका अभ्यास किया। ऋषियोंके सामगान और श्रीगौराङ्ग महाप्रभुद्वारा प्रवर्तित नामगानमें बड़ा भारी अन्तर है। ऋषिगण मन्त्रोंका पाठ शब्दोंके उच्चारण एवं मन्त्र-सम्बन्धी छन्दशास्त्र तथा व्याकरणके नियमोंपर पूर्ण ध्यान रखते हुए करते थे। उनका विश्वास था कि इन नियमोंका ज़रा भी अतिक्रम होनेसे न केवल उद्देश्य-भङ्ग हो जाता है वरं उलटा परिणाम होता है। किंतु नाम-गानमें लोगोंके लिये इस प्रकारकी सावधानीकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। शुद्ध या अशुद्ध, सावधानीसे अथवा असावधानीके साथ, किसी प्रकार भगवन्नाम लिया जाय, उससे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति अवश्य होगी। वैष्णवोंकी भगवन्नामकी महिमा और अन्तःशक्तिमें अटल श्रद्धा है। उनका विश्वास है कि जैसे अग्निमें ज्वलनशील पदार्थोंको जला देनेकी स्वाभाविक शक्ति है, वैसे ही भगवन्नाम-में पापोंको नष्ट कर देने और उसका गलत या सही, सावधानीके साथ अथवा असावधानीसे उच्चार करनेवालोंको पवित्र आनन्द देनेकी शक्ति है। किसी पदार्थका स्वाभाविक गुण-धर्म तो अपनेको प्रकट करेगा ही। भगवन्नामका अपना गुण-धर्म है। इसमें पापोंको समूल नष्ट कर देने और मानवात्माको अनन्त आनन्दके क्षेत्रमें उठाकर पहुँचा देनेकी प्राकृतिक एवं प्रच्छन्न शक्ति है।

श्रीगौराङ्ग-नित्यानन्दद्वारा प्रवर्तित नाम-संकीर्तन ईश्वरीय ध्वनिका एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक रूप है। इसका प्रभाव क्षणभङ्गुर नहीं है। यह न केवल इन्द्रियोंको ही सुखद है वरं हमारी आत्मापर यह सीधा, बड़ी प्रबलता और शक्तिके साथ अपना प्रभाव डालता है। श्रोताओंपर इसका जो प्रभाव पड़ता है, उसका बड़ा विशद वर्णन 'श्रीचैतन्यभागवत' और 'श्रीचैतन्य-चरितामृत' के लेखकोंने किया है। पाठकोंसे हमारा अनुरोध है कि इस विषयपर उनके वक्तव्योंको इन ग्रन्थोंमें पढ़ें। हमारा अनुवाद उसकी छायाको भी न स्पर्श कर सकेगा।

बदले नारियलका दूध लेना पड़ा। इससे उन्हें दस्त आने लगे। संध्यातक दुर्बलता इतनी बढ़ गयी कि बाहरसे [illegible] आते-आते चक्कर आने लगे। सहारा लेकर चलते हुए भी लड़खड़ाने लगे—मैंने सावधानीसे उनका सिर सँभाल रक्खा था; निर्मल बाबूको जोरसे पुकारा। वे आये और हम दोनोंने मिलकर उन्हें बिछौनेपर सुला दिया। फिर सोचा, कहीं बापू ज्यादा बीमार हो गये तो लोग मुझे मूर्ख कहेंगे। पासके देहातमें ही सुशीला बहिन हैं, उन्हें न बुलवा लूँ? मैंने चिट्ठी लिखी और उसे भिजवानेके लिये निर्मल बाबूके हाथमें दी थी कि इतनेमें बापूको होश आया और मुझे पुकारा—'मनुड़ी!' मैं पास गयी तो कहने लगे—'तुमने निर्मल बाबूको हाँक देकर बुलाया, यह मुझे बिल्कुल नहीं रुचा। तुम अभी बच्ची हो, इसलिये तुम्हें माफ तो कर सकता हूँ परंतु तुमसे मेरी आशा यही है कि तुम और कुछ न करके केवल सच्चे हृदयसे रामनाम लेती रहो। मैं अपने मनमें तो रामनाम ले ही रहा था। परंतु तुम भी निर्मल बाबूको बुलानेकी जगह रामनाम शुरू कर देती तो मुझे बहुत अच्छा लगता। अब देखो, यह बात सुशीलासे न कहना और न उसे चिट्ठी लिखकर बुलाना; क्योंकि मेरा सच्चा डाक्टर तो राम ही है जहाँतक उसे मुझसे काम लेना होगा, वहाँतक मुझे जिलायेगा, नहीं तो उठा लेगा।'

'सुशीलाको न बुलाना', यह सुनते ही मैं काँप उठी और तुरंत निर्मल बाबूके हाथसे चिट्ठी छीन ली। चिट्ठी फट गयी। बापूने पूछा—'क्यों, तुमने चिट्ठी लिख भी डाली थी न?' मैंने विवश हो स्वीकार किया। तब कहने लगे—'आज तुम्हें और मुझे ईश्वरने बचा लिया। यह चिट्ठी पाकर सुशीला अपना काम छोड़ मेरे पास दौड़ी आती, वह मुझे बिल्कुल पसंद न आता। मुझे तुमसे और अपने-आपसे चिढ़ होती। आज मेरी कसौटी हुई। यदि रामनामका मन्त्र मेरे हृदयमें पूर्णतः रम जायगा तो मैं कभी बीमार होकर न मरूँगा। यह नियम केवल मेरे लिये ही नहीं, सबके लिये है। हर आदमीको अपनी भूलका फल भोगना ही पड़ता है। मुझे जो दुःख भोगना पड़ा, वह मेरी किसी भूलका ही परिणाम होगा। फिर भी अन्तिम क्षणतक रामनामका ही स्मरण होना चाहिये। वह भी तोतेकी तरह नहीं, वरं सच्चे हृदयसे लिया जाना चाहिये। जैसे रामायणमें एक कथा है कि हनुमान्‌जीको जब सीताजीने मोतीकी माला दी तो उ डाला क्योंकि उन्हें देखना था कि उसमें या नहीं। यह बात सच है या नहीं, इ क्यों करें? हमें तो इतना ही सीखना है कि चट्टानी शरीर हम अपना न भी बना स जैसी आत्मा तो जरूर बना सकते हैं। इ आदमी चाहे तो सिद्ध कर सकता है। हो सकत न भी कर पाये। यदि सिद्ध करनेकी चेष्टा करे तो गीतामाताने कहा ही है कि मनुष्यको प्रयत्न और फल ईश्वरके हाथमें छोड़ देना चाहिये। मुझे और सबको प्रयत्न तो करना ही चाहिं उसी दिन एक बीमार बहिनको पत्र लिखते हु यही बात लिखी—'संसारमें यदि कोई अ तो वह रामनाम है।'

पाप-हरण कैसे होता है ?

यरवदा मन्दिरसे अपने एक पत्रमें गांधीज था—'राम-जपके द्वारा पाप-हरण इस प्रकार हो नाम-जपके द्वारा पाप-हरण तो होगा ही, इस साथ वह नाम-जप आरम्भ करता है। पाप-हरण आत्मशुद्धि। श्रद्धाके साथ नाम जपनेवाला थ सकता अर्थात् जो जीभसे बोला जाता है वह हृदयमें उतरता है और उससे आत्मशुद्धि होती अनुभव निरपवाद है। ······नाम-जपपर मेरी अटूट है।'

यह रामनाम बापूको इतना सिद्ध हो गया उत्तरजीवनमें उठते-बैठते, चलते-फिरते भी वह जप चलता रहता था। यह प्रायः वही स्थिति थी जिसे 'अजपा जप' कहा है। इस अवस्थामें माला भी ि हो जाती है। गांधीजी स्वयं ही लिखते हैं—''जब मुझे रामनाम जपनेमें मदद करती है तब माला हूँ। जब इतना एकाग्र हो जाता हूँ कि माला मालूम होती है तब उसे छोड़ देता हूँ—

'करका मनका छाड़िकै, मनका मनका फेर

—मैं एक ऐसे समयकी प्रतीक्षामें हूँ जब राम जप करना भी एक उपाधि अनुभव होने लगे। भाईके प्रश्न करनेपर उन्होंने कहा था—'अनुभव कि मनुष्य किसी भी हालतमें हो, सोता ही क्यों

यदि अभ्यास पड़ गया है और रामनाम हृदयस्थ हो गया है, तो जबतक हृदय चलता है, तबतक रामनाम हृदयमें चलता ही रहना चाहिये ।'……'जब नामने हृदयका स्वामित्व पा लिया हो तब जप कैसे करते हैं, यह सवाल निरर्थक है; क्योंकि जब नाम हृदयमें स्थान लेता है तब उच्चारणकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती ।'……'ऐसा आदमी सोता है तब भी उसका राम जागता है। खाते-पीते, काम करते हुए भी राम तो उसके साथ रहेगा ही। इस साथीका खो जाना ही मनुष्यकी वास्तविक मृत्यु है।'

३० जनवरी १९४८ को, अपनी मृत्युके कुछ ही पूर्व गांधीजीने मनुसे कहा था—'अन्तिम साँसतक हमें रामनाम रटते रहना चाहिये ।' और उनके जीवनके अन्तिम शब्द भी थे—'रा……म हे रा……!'

रामनाम-सिद्धिसे गांधीजीको वह स्थिति भी प्राप्त हुई जिसके विषयमें तुलसीदासजीने कहा है—

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥

यदि हम उनके रामको अपनी जिह्वापर रख सकें और जिह्वासे फिर धीरे-धीरे हृदयमें उतार लें तो हम उनके सच्चे अनुयायी कहे जा सकते हैं।

'राम-नाम सिर्फ कुछ खास आदमियोंके लिये नहीं है; वह सबके लिये है। जो राम-नाम लेता है, वह अपने लिये भारी खजाना जमा करता जाता है। और यह तो एक ऐसा खजाना है, जो कभी खूटता नहीं। जितना इसमेंसे निकालो, उतना बढ़ता ही जाता है। इसका अन्त ही नहीं। और जैसा कि उपनिषद् कहता है—'पूर्णमेंसे पूर्ण निकालो, तो पूर्ण ही बाकी रह जाता है' वैसे ही राम-नाम है। यह तमाम बीमारियोंका एक शर्तिया इलाज है, फिर चाहे वे (बीमारियाँ) शारीरिक हों, मानसिक हों या आध्यात्मिक हों। राम-नाम ईश्वरके कई नामोंमेंसे एक है। ××× आप रामकी जगह कृष्ण कहें या ईश्वरके अनगिनत नामोंमें-से कोई और नाम लें, तो उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लड़कपनमें अँधेरेमें मुझे भूत-प्रेतका डर लगा करता था। मेरी आयाने मुझसे कहा था—'अगर तुम राम-नाम लोगे तो तमाम भूत-प्रेत भाग जायँगे।' मैं तो बच्चा ही था, लेकिन आयाकी बातपर मेरी श्रद्धा थी। मैंने उसकी सलाहपर पूरा-पूरा अमल किया। इससे मेरा डर भाग गया। अगर एक बच्चेका यह अनुभव है तो सोचिये कि बड़े आदमियोंके बुद्धि और श्रद्धाके साथ राम-नाम लेनेसे उन्हें कितना फायदा हो सकता है? लेकिन शर्त यह है कि राम-नाम दिलसे निकले। क्या बुरे विचार आपके मनमें आते हैं? क्या काम या लोभ आपको सताते हैं? यदि ऐसा है तो (इन्हें मिटानेके लिये) राम-नाम-जैसा कोई जादू नहीं। ×××

'फर्ज कीजिये कि आपके मनमें यह लालच पैदा होता है कि बिना मेहनत किये बेईमानीके तरीकेसे आप लाखों कमा लें, लेकिन यदि आपको राम-नामपर श्रद्धा है तो आप सोचेंगे कि बीवी-बच्चोंके लिये आप ऐसी दौलत क्यों इकट्ठा करें जिसे वे शायद उड़ा दें? अच्छे आचरण और अच्छी शिक्षाके रूपमें उनके लिये आप ऐसी विरासत क्यों न छोड़ जायँ, जिससे वे ईमानदारी और मेहनतके साथ अपनी रोटी कमा सकें? आप यह सब सोचते तो हैं, परंतु कर नहीं पाते। मगर राम-नामका निरन्तर जप चलता रहे तो एक दिन वह आपके कण्ठसे हृदयतक उतर आयेगा और वह राम-बाण चीज साबित होगा। वह आपके सब भ्रम मिटा देगा, आपके झूठे मोह और अज्ञानको छुड़ा देगा। तब आप समझ जायँगे कि आप कितने पागल थे, जो बाल-बच्चोंके लिये करोड़ोंकी इच्छा करते थे, बजाय इसके कि उन्हें राम-नामका वह खजाना देते, जिसकी कीमत कोई पा नहीं सकता, जो हमें भटकने नहीं देता, जो मुक्तिदाता है। आप खुशीसे फूले नहीं समायेंगे। अपने बाल-बच्चों और अपनी पत्नीसे कहेंगे 'मैं करोड़ों कमाने गया था, मगर वह कमाना तो भूल गया, दूसरे करोड़ लाया हूँ।' आपकी पत्नी पूछेगी 'कहाँ है वह हीरा, जरा देखूँ तो?' जवाबमें आपकी आँखें हँसेंगी, मुँह हँसेगा, आहिस्तासे आप जवाब देंगे—'जो करोड़ोंका पति है, उसको हृदयमें रखकर आया हूँ। तुम चैनसे रहोगी, मैं भी चैनसे रहूँगा।'

(२)

(लेखक—हनुमानप्रसाद पोद्दार)

पुराने संस्मरण

(क)

पुरानी बात है—बम्बईमें श्रीबालूरामजी 'रामनामके आढ़तिया' आये हुए थे। वे लोगोंको नाम-जप करनेका नियम दिलवाते और अपनी बहीमें उनकी सही करवा लेते थे। लाखों सही करवायी होंगी उन्होंने। बहियोंके ढेर ये

उनके पास। उनकी बहीमें सभी सम्प्रदायों और मतोंके हस्ताक्षर मिलेंगे। यहाँतक कि मुसलमान, ईसाई, पारसी आदिसे भी वे उनके अपने मत और विश्वासके अनुसार प्रतिदिन प्रभु-नाम लेने या प्रभु-प्रार्थना करनेकी प्रतिज्ञा करवाया करते थे। यही उनकी आदत थी। उन दिनों पूज्यपाद महामना मालवीयजी महाराज और पूज्य महात्माजी—दोनों ही बम्बई पधारे हुए थे। आढ़तियाजीने सेठ जमनालालजीसे तो सही करवा ही ली थी; उन्होंने कहा—'महात्माजी और श्रीमालवीयजीके पास भी मुझे ले चलो।' श्रीजमनालालजीने मुझको बुलवाया और हम तीनों लेबरनम रोडपर महात्माजी-के पास गये। सेठजीने आढ़तियाजीका परिचय कराया। बापू बहुत ही प्रसन्न हुए और हँस-हँसकर आढ़तियाजीकी बही देखने और उनकी तारीफ करने लगे। आढ़तियाजीने बही खोलकर सामने रख दी और सही करनेका अनुरोध किया। इसपर महात्माजीने मुसकराकर कहा—'जब मैं अफरीकामें था, तब तो रामनामकी माला बहुत जपा करता था; परंतु अब तो दिन-रात जो कुछ करता हूँ, सब राम-नाम-के लिये ही करता हूँ, इसलिये मैं खास समय और संख्याके लिये हस्ताक्षर क्यों करूँ?' आढ़तियाजीको बापूकी बात सुनकर संतोष हुआ। फिर हमलोग राजाबहादुर श्रीगोविन्द-लालजी पित्तीके बँगलेपर, जहाँ पूज्य मालवीयजी ठहरे हुए थे, गये। मालवीयजी सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने आढ़तियाजीकी बहीमें लिख दिया—'मैंने जबसे होश सँभाला, भगवान्‌का नित्यप्रति स्मरण करता हूँ और जबतक जीऊँगा, करता रहूँगा।'

(ख)

'कल्याण'का 'भगवन्नामाङ्क' निकलनेवाला था। सेठ जमनालालजीको साथ लेकर मैं बापूके पास गया रामनामपर कुछ लिखवानेके लिये। बापूने हँसकर कहा—'जमनालालजी-को क्यों साथ लाये। क्या मैं इनकी सिफारिश मानकर लिख दूँगा? तुम अकेले ही क्यों नहीं आये?' सेठजी मुसकराये। मैंने कहा—'बापूजी! बात तो सच है, मैं इनको इसीलिये साथ लाया कि आप लिख ही दें।' बापू हँसकर बोले, 'अच्छा, इस बार माफ करता हूँ, आइंदा ऐसा अविश्वास मत करना।' फिर कलम उठायी और तुरंत नीचे लिखा संदेश लिख दिया—

'नामकी महिमाके बारेमें तुलसीदासने कुछ भी कहनेको बाकी नहीं रक्खा है। द्वादश मन्त्र, अष्टाक्षर इ० सब मोहजालमें फँसे हुए मनुष्यके लिये शान्तिप्रद हैं। इसमें भी शङ्का नहीं है। जिससे जिसको शान्ति मिले उस मन्त्रपर वह निर्भर रहे। परंतु जिसको शान्तिका अनुभव ही है और जो शान्तिकी खोजमें है उसको तो अवश्य राम-नाम पारसमणि बन सकता है। ईश्वरके सहस्र नाम कहे हैं, उसका अर्थ यह है कि उसके नाम अनन्त हैं। गुण अनन्त हैं इसी कारण ईश्वर नामातीत और गुणातीत भी है। परंतु देहधारीके लिये नामका सहारा अत्यावश्यक है और इस युगमें मूढ़ और निरक्षर भी रामनाम-रूपी एकाक्षर मन्त्रका सहारा ले सकता है। वस्तुतः राम उच्चारणमें एकाक्षर ही है और ॐकार और राममें कोई फरक नहीं है। परंतु नाम-महिमा बुद्धिवादसे सिद्ध नहीं हो सकती है। श्रद्धा-से अनुभवसाध्य है।'

संदेश लिखकर मुसकराते हुए बापू बोले—'तुम मुझसे ही संदेश लेने आये हो जगत्‌को उपदेश देनेके लिये या खुद भी कुछ करते हो? रोज नामजपका नियम लो तो तुम्हें संदेश मिलेगा, नहीं तो मैं नहीं दूँगा।' मैंने कहा—'बापूजी! मैं कुछ जप तो रोज करता ही हूँ, अब कुछ और बढ़ा दूँगा।' बापूने यह कहकर कि—'भाई, बिना कीमत ऐसी कीमती चीज थोड़े ही दी जाती है'—मुझे संदेश दे दिया। सेठजीको कुछ बातें करनी थीं। वे ठहर गये। मैंने चरण-स्पर्श किया और आज्ञा प्राप्त करके मैं लौट आया।

(ग)

मैं बम्बईसे राजपूताना जा रहा था। अहमदाबादमें बापूके दर्शनार्थ रुक गया। वेटिंग रूममें सामान रखकर साबरमती आश्रम पहुँचा। दोपहरका समय था। बापू बैठे कुछ लिख रहे थे। मैंने जाकर चरणोंमें प्रणाम किया। बापूने सिरपर हाथ रखकर पास बैठा लिया। मेरे हाथमें 'कल्याण' का अङ्क था। वे उसे लेकर देखने लगे। 'कल्याण' के द्वारा प्रतिवर्ष कुछ समयके लिये षोडशाक्षर मन्त्रके जापके लिये ग्राहकोंसे अनुरोध किया जाता है और जपका समय पूरा हो जानेपर जप किये जानेवाले स्थानोंके नाम तथा जपकी संख्या 'कल्याण'में छापी जाती है। उस अङ्कमें वह संख्या छपी थी। संख्या मुझे याद तो नहीं है, परंतु दस करोड़से कुछ ज्यादा ही थी। बापूने उसीको पढ़ा और सब बातें सुनीं। सुनकर

बहुत ही संतुष्ट हुए, कहा—'तुम यह बहुत अच्छा करा रहे हो। इतने जप करनेवालोंमें कुछ भी यदि हृदयसे जप करनेवाले निकलेंगे तो उनका तथा देशका बड़ा कल्याण होगा।' फिर हँसकर बोले—'मैं भी जप करता हूँ, परंतु मैं तो तुम्हें सूचना नहीं भेजूँगा। देखो यह मेरी माला।' इतना कहकर तकियेके नीचेसे माला निकालकर दिखायी और बोले—'मैं रात-बिरात चुपके-चुपके जपा करता हूँ।' माला पुरानी हो गयी थी, कुछ मनिये टूट गये थे। वृन्दावनसे आयी हुई तुलसीकी दो मालाएँ मेरी जेबमें थीं। मैंने प्रार्थना की—'बापूजी! माला टूट गयी है, मेरे पास वृन्दावनसे आयी हुई दो माला हैं। आप इनमेंसे एक ले लें।' बापूने कहा—'तो तुम मुझे माला देने आये हो?' मैंने कहा—'नहीं, मैं तो दर्शन करने आया था। यह तो प्रसङ्गवश बात हो गयी।' बापूने कृपा करके माला ले ली। मैं कुछ देर बैठा। बापूने और भी कई बातें कहीं। मुझे ठीक याद नहीं आ रही। मुझे उसी शामको जाना था, इसलिये मैं कुछ देरके बाद वहाँसे स्टेशन चला आया।

(३)

(संकलनकर्ता प्रेषक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

गाँधीजीके रामनाम-महिमाके सम्बन्धी कुछ उद्गार

'रामनामके गीत गानेके लिये यदि कोई मुझसे कहे तो मैं सारी रात गाया करूँ। सो यदि आप अपनेको दुखी और पतित मानते हों और हम सब पतित हैं तो सुबह, शाम और सोते समय राम-नामका रटन करो और पवित्र होओ।'

× × ×

'मैं अपने उन पाठकोंके सामने भी इसे पेश करता हूँ जिनकी दृष्टि धुँधली न हुई हो और जिनकी श्रद्धा बहुत विद्वत्ता प्राप्त करनेसे मन्द न पड़ गयी हो। विद्वत्ता हमें जीवनकी अनेक अवस्थाओंसे पार ले जाती है, पर संकट और प्रलोभनके समय वह हमारा साथ बिल्कुल नहीं देती। उस हालतमें अकेली श्रद्धा ही उबारती है। राम-नाम उन लोगोंके लिये नहीं है जो ईश्वरको हर तरहसे फुसलाना चाहते हैं और हमेशा अपनी रक्षाकी आशा उससे लगाये रहते हैं। वह उन लोगोंके लिये है जो ईश्वरसे डरकर चलते हैं और जो संयमपूर्वक जीवन बिताना चाहते हैं पर अपनी निर्बलताके कारण उसका पालन कर नहीं पाते।'

× × ×

'इसलिये पाठक खूब समझ लें कि राम-नाम हृदयका बोल है। सीताकी दी हुई मालाके मनके हनुमानने फोड़ डाले; क्योंकि वे देखना चाहते थे कि अंदर राम-नाम है या नहीं? अपनेको समझदार समझनेवाले सुभटोंने उनसे पूछा—'सीताजीकी मणिमालाका ऐसा अनादर?' हनुमानने जवाब दिया—'यदि उसके अंदर राम-नाम न होगा तो सीताजीका दिया होनेपर भी वह हार मेरे लिये भारभूत होगा।' तब उन समझदार सुभटोंने मुँह बनाकर पूछा—'तो क्या तुम्हारे भीतर राम-नाम है?' हनुमानने तुरंत अपना हृदय चीरकर दिखाया और कहा—'देखो अंदर राम-नामके सिवा अगर और कुछ हो तो कहना।' सुभट लज्जित हुए, हनुमान्पर पुष्पवृष्टि हुई और उस दिनसे रामकथाके समय हनुमान्का आवाहन आरम्भ हुआ।'

× × ×

'आपने राम-नामसे मलेरियाका इलाज सुझाया है। मेरी कठिनता यह है कि शारीरिक बीमारियोंके लिये आत्मिक शक्तिपर भरोसा करना मेरी समझसे बाहर है। मैं पक्की तरहसे यह भी नहीं जानता कि मुझे अच्छा होनेका हक भी है या नहीं। और क्या ऐसे समयमें जब मेरे देशवाले इतने दुःखमें पड़े हैं, मेरी अपनी मुक्तिके लिये प्रार्थना करना ठीक होगा? जिस दिन मैं राम-नाम समझ जाऊँगा, उस दिन मैं उनकी मुक्तिके लिये प्रार्थना करूँगा। नहीं तो, मैं अपने-आपको आजसे अधिक स्वार्थी अनुभव करूँगा।' यह एक मित्र लिखते हैं।

'मैं मानता हूँ कि ये मित्र सत्यकी सच्ची तलाश करनेवाले हैं। उनकी इस कठिनताकी खुल्लमखुल्ला चर्चा मैंने इसलिये की है कि उन-जैसे बहुतोंकी कठिनाइयाँ इसी तरहकी हैं।'

'दूसरी शक्तियोंकी तरह आध्यात्मिक शक्ति भी मनुष्यकी सेवाके लिये है। सदियोंसे थोड़ी-बहुत सफलताके साथ शारीरिक रोगोंको ठीक करनेके लिये उसका उपयोग होता रहा है। इस बातको छोड़ भी दें, तो भी यदि शारीरिक बीमारियोंके इलाजके लिये सफलताके साथ उसका व्यवहार हो सकता हो, तो उसका उपयोग न करना सख्त गलती है; क्योंकि आदमी जड भी है और चेतन भी। और इन दोनोंका एक-दूसरेपर असर होता है। अगर आप मलेरियासे बचनेके लिये कुनैन लेते हैं और इस बातका खयाल भी नहीं करते कि करोड़ोंको कुनैन नहीं मिलती तो आप उस इलाजके इस्तेमालसे क्यों इनकार करते हैं, जो आपके अंदर है? क्या सिर्फ इसलिये कि करोड़ों अपनी जहालतव

मकानके उसका इस्तेमाल नहीं करते ? अगर करोड़ों अनजाने, या हो सकता है, जान-बूझकर भी, गंदे रहें, तो क्या आप अपनी सफाई और स्वास्थ्यका ध्यान छोड़ देंगे ? उनकी गलत कल्पनाके कारण अगर आप साफ नहीं रहेंगे, तो गंदा और बीमार रहकर आप उन्हीं करोड़ोंकी सेवाका फर्ज भी अपने ऊपर नहीं ले सकेंगे और यह बात तो पक्की है कि आत्माका रोगी या गंदा होना (उसे अच्छी और साफ रखनेसे इनकार करना) बीमार और गंदा शरीर रखनेसे भी बुरा है ।'

× × ×

'इस तरह प्राकृत और संस्कृत दोनों प्रकारके मनुष्य राम-नाम लेकर पवित्र होते हैं; परंतु पावन होनेके लिये राम-नाम हृदयसे लेना चाहिये । जीभ और हृदयको एक-रस करके राम-नाम लेना चाहिये । मैं अपना अनुभव सुनाता हूँ । जब-जब मुझपर विकट प्रसंग आये हैं, मैंने राम-नाम लिया है और मैं बच गया हूँ । अनेक संकटोंसे राम-नामने मेरी रक्षा की है ।' ('नवजीवन' ३० । ४ । २५)

'करोड़ोंके हृदयका अनुसंधान करने और उनमें ऐक्य भाव पैदा करनेके लिये एक साथ राम-नामकी धुन-जैसा दूसरा कोई सुन्दर और सबल साधन नहीं है । कई नौजवान इसपर एतराज करते हैं कि मुँहसे राम-नाम बोलनेसे क्या लाभ जब कि हृदयमें जबर्दस्ती राम-नामकी धुन जाग्रत् की ही नहीं जा सकती । लेकिन जिस तरह गायन-विद्याविशारद, जबतक सुर नहीं मिलते, तबतक बराबर तार कसता रहता है और ऐसा करते हुए जैसे उसे अकस्मात् योग्य स्वर मिल जाता है, उसी तरह हम भी भावपूर्ण हृदयसे राम-नामका उच्चारण करते रहें तो किसी-न-किसी वक्त अकस्मात् ही हृदयके छुपे हुए तार एकतार हो जायँगे । यह अनुभव मेरे अकेलेका नहीं है, कई दूसरोंका भी है । मैं खुद इस बातका साक्षी हूँ कि कई एक नटखट लड़कोंका तूफानी स्वभाव निरन्तर राम-नामके उच्चारणसे दूर हो गया और वे रामभक्त बन गये हैं । लेकिन इसकी एक शर्त है । मुँहसे राम-नाम बोलते समय वाणीको हृदयका सहयोग मिलना चाहिये; क्योंकि भावना-शून्य शब्द ईश्वरके दरबारतक नहीं पहुँचते ।'

['गांधीवाणी' से]　　('नवजीवन' ७ । ३ । २९)

महामना मालवीयजी और भगवन्नाममहिमा

(श्रद्धेय पं० श्रीमदनमोहनजी मालवीय महाराजके व्याख्यानका सारांश और उनके नाम-सम्बन्धी कुछ संस्मरण (ले०—हनुमानप्रसाद पोद्दार)

(१)

(झूसी नाम-संकीर्तनयज्ञकी पूर्णाहुतिके अवसरपर दिये हुए व्याख्यानका सारांश)

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥

सज्जनो ! यह परम पवित्र प्राचीन तीर्थ है । पृथ्वी-मण्डलमें कोई नगर प्रयागके समान प्राचीन नहीं है । ऋग्वेद तकमें, जो संसारका सबसे प्राचीन ग्रन्थ है, प्रयागकी महिमा आयी है । इसीलिये इसे तीर्थोंका राजा कहते हैं । भीष्मने युधिष्ठिरको भगवती भागीरथीका माहात्म्य बतलाते हुए कहा—'प्रयागमें शरीर छोड़नेकी बड़ी महिमा है ।' मैं भी जब-जब प्रयाग आता हूँ तब-तब गङ्गाजीको पार करते हुए उनसे प्रार्थना करता हूँ कि 'माँ ! अन्त समयमें मुझे अपनी गोदमें अवश्य स्थान देना ।' प्रयागके आसपास जितने स्थान हैं, उनमें किसी समय देवता और ऋषि बसते थे । इसीलिये इनमेंसे एकका नाम है—देवरिखा । माघमें दस हजार तीर्थ प्रयागमें आकर एकत्र होते हैं । आज हमलोगोंकी अपनी संस्कृति और अपने धर्मके साथ-साथ तीर्थोंमें भी श्रद्धा जाती रही । यह अँगरेजी शिक्षाका बुरा प्रभाव है ।

पुरुषोंकी अपेक्षा हमारी बहिनोंमें अधिक श्रद्धा पायी जाती है। तीर्थस्नानके लिये पुरुषोंकी अपेक्षा वे ही अधिक संख्यामें आती हैं।

भगवन्नामकी महिमा आपलोग बहुत बार सुन चुके हैं और आगे भी सुनेंगे। संसारमें बहुत-से भाई कहते हैं—'नामके उच्चारणसे क्या होता है? भगवान्‌के नामको भूलकर भी एक बार लेनेसे मनुष्य संसारसागरसे तर जाता है, ऐसा वेद-पुराण कहते हैं। फिर उसे बार-बार रटनेसे क्या लाभ?' बात बिल्कुल ठीक है। संसार-समुद्रसे तारनेके लिये एक ही नाम काफी है। परंतु संतोंने इस मनको पारेसे भी चञ्चल बताया है—'यह मन पारद हू तें चंचल'। इसे बाँध रखनेके लिये बार-बार नाम लेनेकी आवश्यकता है। बार-बार नामोच्चारण करनेसे जब यह स्थिर हो जायगा, तब एक ही नाम हमारे लिये पर्याप्त होगा। जबतक यह स्थिर नहीं हो जाता, तबतक बार-बार नाम लेना आवश्यक है। वेद-शास्त्र—सबने भगवान्‌के नामकी महिमा गायी है। शुक्ल यजुर्वेदका 'नमस्ते रुद्र मन्यव' यह सारा-का-सारा अध्याय नामकी महिमासे भरा है। पुराणोंमें तो स्थान-स्थानपर नामकी महिमाका उल्लेख मिलता है।

मनुस्मृतिपर कुल्लूक भट्टकी टीका है। उसमें तपका स्वरूप इस प्रकार वर्णित है—

ब्रह्मचर्यं जपो होमः काले शुद्धाल्पभोजनम्।
अरागद्वेषलोभाश्च तप उक्तं स्वयम्भुवा॥

अर्थात् ब्रह्मचर्य, जप, होम, समयपर शुद्ध एवं अल्प भोजन करना तथा राग, द्वेष एवं लोभसे रहित होना इसीको ब्रह्माजीने 'तप' कहा है। इसी तपका साधन करनेसे आपलोग नामकी महिमाको जान गये हैं।

भीष्म जब सब धर्मोंका उपदेश कर चुके तब युधिष्ठिरने उनसे प्रश्न किया—

युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत।
को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः॥
किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्॥

(महाभारत, अनुशासन० १४९। १, ३)

'सब धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्म आपको कौन-सा जँचता है? जीव किस मन्त्रका जप करनेसे जन्म-मृत्युके बन्धनसे छूट जाता है?'

इसके उत्तरमें भीष्म बोले—

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः॥
तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम्।
ध्यायन् स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च॥
अनादिनिधनं देवं सर्वलोकमहेश्वरम्।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत्॥
ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम्।
लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम्॥
एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा॥

(महाभारत, अनुशासन० १४९। ४—८)

'मनुष्यको चाहिये कि वह निरन्तर सावधान रहकर संसारके स्वामी, देवाधिदेव, अनन्त पुरुषोत्तम भगवान्‌की सहस्रनामके द्वारा स्तुति करे, उन्हीं अव्यय पुरुषका भक्तिपूर्वक नित्य अर्चन करे; उन्हींका ध्यान, उन्हींका स्तवन, उन्हींको नमस्कार एवं उन्हींकी पूजा करे। उन आदि-अन्तसे रहित, समस्त लोकोंके महेश्वर, जगत्‌के अधिनायक, ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेवाले, सारे धर्मोंको जाननेवाले, सारे लोकोंकी कीर्तिको बढ़ानेवाले, लोकनाथ, महद्भूत तथा समस्त भूतोंकी उत्पत्तिके कारण भगवान् नारायणका नित्य स्तवन करनेसे मनुष्य समस्त दुःखोंसे तर जाता है। सारे धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्म मुझे यही मान्य है कि मनुष्य भक्तिपूर्वक सदा कमलनयन भगवान्‌का स्तुतियों-द्वारा पूजन करे।'

यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'जिनकी स्तुतिका ऊपर विधान किया गया है वे भगवान् कैसे हैं?' इसी शङ्काके उत्तरमें भीष्मपितामह कहते हैं—

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम्॥
पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता॥

(महाभारत, अनुशासन० १४९। ९-१०)

'वे भगवान् परम महान् तेज हैं, परम महान् तप हैं, परम महान् ब्रह्म हैं, सबसे श्रेष्ठ गति हैं, पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाले हैं, मङ्गलोंके भी मङ्गल हैं, देवताओंके भी देवता हैं और भूतप्राणियोंके अविनाशी पिता हैं।'

ऊपरके वर्णनसे हम भगवन्नामकी महिमाको कुछ-कुछ समझ सकते हैं। जो भगवान् ऐसे हैं उनका नाम कितना महान् होगा, इसका हम कुछ-कुछ अनुमान लगा सकते हैं। दूसरे धर्मवाले भी भगवान्‌के नामको जपते हैं। मुसलमान तथा ईसाई भी नामका आदर करते हैं। मुसलमानोंके ९९मन्त्रोंकी माला तो प्रसिद्ध ही है। परंतु नामकी महिमा जैसी सनातनधर्मके ऋषियोंने समझी, वैसी किसीने नहीं समझी। ऊपर विष्णुसहस्रनामका उल्लेख हम कर ही चुके हैं। महाभारतके उसी (अनुशासन) पर्वमें शिवसहस्रनाम भी है। नामके सम्बन्धमें हमलोगोंकी आदरबुद्धि वैदिक ऋषियों तथा पुराणोंके कालसे चली आती है। मध्ययुग तथा अर्वाचीन कालके संतोंने भी नामकी महिमा बहुत गायी है। गोस्वामी तुलसीदासजी तो नामकी महिमामें बहुत कुछ कह गये हैं। वे कहते हैं—

रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
ाम बर बरन जुग सावन भादवँ मास॥
र मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिअ जोऊ॥
भ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥

। स्मरण सबके लिये सुलभ एवं सबको सुख देनेवाला संसारमें लाभ और परलोकका भी निबाह होता है। र यह राम-नाम है। गोसाईंजी महाराज फिर

सुमिरत सुठि नीके। राम लषन सम प्रिय तुलसी के॥
न सरिस सुभ्राता। जगपालक बिसेष जग त्राता॥
न जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥
तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
. . . .

ी गीध सुसेवकन्हि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
उधारे अमित खल बेद बिदित गुनगाथ॥

ाईंजी रामसे भी नामको बड़ा मानते हैं। वे कहते ने तो एक तपस्वीकी स्त्री अहल्याका ही उद्धार किया, मने तो करोड़ों खलोंकी कुमतिको सुधार दिया। थजीने तो शबरी, गीध आदि सुसेवकोंको ही श्रेष्ठ , किंतु नामने तो इतने खलोंका उद्धार किया जिनकी ानती ही नहीं है।

फर कहते हैं—

केत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचार सुजन मन माहीं॥
. . . .

सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोहदल
. . . .

ब्रह्म राम तें नाम बड़ बरदायक बरदानि।
रामचरित सतकोटि महँ लिअ महेस जिअँ जानि।

इस प्रकार गोसाईंजीने युक्तियोंसे यह सिद्ध कर कि नाम नामीसे भी बड़ा है। गोसाईंजी रामनामकी म को कहते हुए अघाते नहीं। वे फिर कहते हैं—

नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहल
ध्रुव सगलानि जपेउ हरिनाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठ

नाम राम को कलपतरु कलि कल्याननिवास।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदास॥
राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल॥

राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोहनिसा लवलेसा।
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना।
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना।

जेहि इमि गावहि बेद बुध जाहि धरहि मुनि ध्यान।
सोइ दसरथसुत भगत हित कोसलपति भगवान॥

गुरु नानकने भी नामकी महिमामें बहुत कुछ कहा है वे कहते हैं—

नानक राम नाम बिस्तारा कचन भरा मनूरा।
कह नानक सोई नर सुखिया राम नाम गुन गावे।
और सकल जग माइया निरभय पद नहि पावे॥

नाम न जपहु अभाग तुम्हारा। जुग दाता प्रभु राम हमारा॥

कबीरजी भी कहते हैं—

तजि अभिमान लेहु मन मोल। रामनाम हिरदै महँ तोल॥
अब कहु राम भरोसा तोरा। तब काहूका कौन निहोरा॥
कहै कबीर जो खोजहु जहाना। राम समान न देखहु आना॥

कोइ गावै कोई सुनै हरीनाम चित लाय।
कह कबीर संसय नहीं अंत परम गति पाय॥

राम जपहु जिय ऐसे ऐसे। ध्रुव प्रहलाद जपेउ जिअ जैसे।
राम राम जपि निरमल भए। जनम जनमके किलिबिष गए

यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'जिस रामनामकी इतनी महि शास्त्रों और संतोंने एक स्वरसे गायी है वह रामनाम किस वाचक है?' यह रामनाम दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामच का ही वाचक है, जो साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा थे र

जो त्रेतायुगमें इस धराधाममें अवतीर्ण हुए थे। 'राम'का अर्थ शास्त्रोंमें इस प्रकार भी किया गया है—

रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च।
अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते॥

अर्थात् जो परमात्मा निराकाररूपसे स्थावर-जंगम सारे भूत-प्राणियोंमें रमण कर रहा है, वही राम है।

नामकी महिमा मैं आपको कहाँतक सुनाऊँ? अजामिल-का आख्यान तो आपने कई बार सुना होगा। वह महान् पापी था। उसने अपने छोटे पुत्रका नाम रख छोड़ा था 'नारायण'। जब वह मरने लगा तब यमदूत आकर उसके सूक्ष्म शरीरको ले जाने लगे। उसने भयभीत होकर अपने छोटे पुत्रको पुकारा। अन्त समय उसके मुखसे पुत्रके बहाने भी 'नारायण' नामका उच्चारण सुन वहाँ भगवान् श्रीविष्णुके दूत उपस्थित हो गये और उसके सूक्ष्म शरीरको यमदूतोंसे छीन लिया। यमदूत दौड़े हुए यमराजके पास पहुँचे और उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इसपर यमराजने कहा कि 'भूलसे भी भगवान्‌का नाम लेनेवालेको हम नहीं पकड़ सकते।' क्योंकि 'यत्तस्तद्विषया मतिः।' जिस वस्तुका हम नाम लेते हैं, उसीके आकारका हमारा मन हो जाता है। जब हम किसी बधिकका नाम लेते हैं तो हमारे सामने उस बधिकका चित्र खड़ा हो जाता है। सतीका नाम लेनेसे सतीका आदर्श हमारे ध्यानमें आ जाता है। साधुका नाम लेनेसे हमें साधुका ध्यान होता है। हलवाईका नाम लेनेसे हमें तुरंत पूरी-कचौरीका खयाल हो जाता है। ज्योतिषीका नाम लेनेसे हमें पत्रा खोलकर फलादेश कहते हुए ज्योतिषीका ध्यान हो जाता है। इसी प्रकार परमात्माका नाम लेनेसे अन्य सब विषयोंसे हमारा ध्यान हट जायगा और हमारी परमात्मविषयक मति हो जायगी। 'शिव' 'शिव' कहते ही हमारे सामने मङ्गलका रूप खड़ा हो जाता है। 'शिव'का अर्थ है—मङ्गल, आनन्दका बधावा। 'शिव' कहते ही हमारे मनमें आनन्दका बधावा बजने लगता है। 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रका उच्चारण करते ही शिवजीका मन्दिर ध्यानमें आ जाता है। मैं जब मृत्युञ्जय-मन्त्रका जप करने लगता हूँ, उस समय मेरा मन हठात् भगवान् विश्वनाथ-के दरबारमें पहुँच जाता है, शरीरसे अन्यत्र रहते हुए भी मैं अपनेको मनसे वहीं पाता हूँ। उस समय मुझे और कोई बात याद नहीं रहती। परमात्माका नाम लेनेसे हमें उस दोषोपकारी, सर्वव्यापक, त्रिकालसत्, जगत्‌की रचना-पाल और संहार करनेवाले महान् तत्त्वका ध्यान हो आता है—

एक अनंत त्रिकाल सत, व्यापक शक्ति विशाल।
सिरजत पालत हरत जग, महिमा बरनि न जाय॥

संसारभरको नियन्त्रणमें रखनेवाली एक मह शक्ति है जो अनन्त है, तीनों कालोंमें सत्य है, सब जगह व्याप रही है। उसीने सबको बनाया वही सबका पालन करती है और वही सबका संह करनेवाली है। उसीके बलसे सारे नक्षत्र घूम रहे हैं, उसी शक्तिसे संसारके सारे व्यवहार चलते हैं। वह थी भी, रहे भी और है भी। उसकी महिमाका वर्णन कौन कर सक है? भगवान्‌का नाम लेनेसे हमें इस शक्तिका ध्यान आयेग फिर वह शक्ति कैसी है? 'पवित्राणां पवित्रम्' पवित्रोंको पवित्र करनेवाली है। उसके सामने किसी मलिन वस्तु ध्यान ही नहीं आयेगा; क्योंकि वह पवित्रतम है। उसका न लिया नहीं कि मनका पाप भागा। जिस प्रकार लाल देखते ही चोर भाग जाते हैं, उसी प्रकार भगवन्नामरूप दि प्रकाशके सामने पापरूपी चोर ठहर नहीं सकते। अ बापके सामने क्या कोई पाप कर सकता है? अपने पिता मौजूदगीका ध्यान आते ही मन पापसे हट जाता है। भगवान् तो जगत्‌के पिता हैं, पिताओंके भी पिता हैं और सब जगह मौजूद हैं। उनका ध्यान होनेपर क्या पाप ठ सकते हैं?

हमने प्रारम्भमें कहा था कि कुछ लोग यह शङ्का क हैं कि भगवान्‌का नाम बार-बार लेनेसे क्या लाभ है? इस उत्तर हम पहले दे चुके हैं। फिर भी इस सम्बन्धमें कु कहते हैं। बात यह है कि रात-दिनके २४ घंटोंमें हमारा कुछ है, सब उन्हींकी कृपासे है। उनके बिना हमारा कु भी नहीं है। गोसाईं तुलसीदासजीने 'विनयपत्रिका कहा है—

प्रभु तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधन धाम बिबुध दुरलभ तनु मोहि कृपा करि दीन्हों
कोटिन मुख कहि जात न प्रभुके एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं दीजै परम उदार

तुलसीदासजी कहते हैं—हे प्रभो! आपने इस दार बड़ा अनुग्रह किया जो इसे देवताओंको भी दुर्लभ, मनुष्यदेह दिया। हमारे यदि करोड़ मुख हों तो भी

भगवान्‌के उपकारोंका वर्णन नहीं कर सकते। फिर भी मनुष्य इतना मूर्ख है कि ऐसे परम दयालु प्रभुको भी वह क्षणमात्र ी नहीं भजता। इस मनको साढ़े तेईस घंटे मनमानी ोरपर उछल-कूद करने दो, कम-से-कम आध घंटे तो इसे ँधकर रक्खो। जिस समय तुम भगवान्‌के सहस्रनामका ाठ करोगे, कम-से-कम उस समय तो तुम्हें और-और बातोंका ान नहीं आयेगा, भगवान्‌का ही ध्यान आयेगा। तेज खारकी हालतमें जबतक हमारे सिरमें बर्फकी ठंडी पट्टी ी रहेगी, तबतक हमें सुख और शान्ति मिलती रहेगी। ों ही हमने उसपर बर्फ रखना छोड़ा कि फिर दाह शुरू हो ायगा। इसी प्रकार जितने क्षणोंतक हम भगवान्‌के मङ्गल- ्र नामकी आवृत्ति करते रहेंगे, तबतक हमें अपार शान्ति ार आनन्द मिलता रहेगा और हमारा मन पाप और ोंसे बचा रहेगा। इसलिये कम-से-कम दिनमें दो बार ्-दस, पंद्रह-पंद्रह मिनटतक भी यदि हम नाम-स्मरणका भ्यास करेंगे तो उससे हमें मनको निगृहीत करनेमें बड़ी ्ायता मिलेगी। मैं जिस समय विष्णुसहस्रनामका पाठ ्ता हूँ, उस समय मेरी वृत्तियाँ सब ओरसे खिंचकर ावान्‌में लग जाती हैं। मनुष्य भगवान्‌के स्मरणमात्रसे ्भय हो जाता है। सप्तशतीमें कहा है—

'दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः।'

'दुर्गे! रक्षा करो।' यह कहते ही मनमें शक्ति आ जाती धर्ममें प्रवृत्ति होती है। इसलिये हम सबको चाहिये कि ावान्‌के नामका नित्य नियमपूर्वक जप करें।

जप किस प्रकार होना चाहिये, इसका आदर्श आपलोग ्ारके सामने रख रहे हैं। ऐसा तुलसीदासजी महाराजने ्हा है—

पय अहार फल खाइ जपु रामनाम षटमास।
सकल सुमंगल सिद्धि सब करतल तुलसीदास॥

आपलोग वही कर रहे हैं। राग-द्वेष-लोभको छोड़कर, ीभके चटोरेपनको त्यागकर तपस्या करनेसे और साथ-ही- ्ाथ भगवान्‌के नामका जप करनेसे किस पापीका पाप नहीं छूटेगा और किस पुण्यात्माका पुण्य नहीं बढ़ेगा? अतः यथालाभ संतुष्ट रहकर साधकलोग फिर इस यज्ञमें शामिल हों, यही मेरी आकांक्षा है।

(२)

नामस्मरणकी आवश्यकता

(गीतावाटिका, गोरखपुरके अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन-यज्ञमें दिये हुए महामना पं० मदनमोहनजी मालवीयके व्याख्यानका सारांश)

आजकल नामजपपर बहुत जोर दिया जाता है। आप सब लोग भी भगवन्नामके जप और कीर्तनमें ही लगे हुए हैं। किंतु आप यह तो बतलाइये कि नामजप क्यों करना चाहिये? इससे क्या लाभ है? लोग कहते हैं, भगवान्‌का नाम लेनेसे पाप कटते हैं; परंतु इसमें युक्ति क्या है? आप-मेंसे कोई भी इसका उत्तर दें। बात यह है कि हम जिस समय किसी वस्तुका नाम लेते हैं तो तत्काल हमें उसकी आकृति और गुण आदिका भी स्मरण हो जाता है। जब हम 'कसाई' शब्दका उच्चारण करते हैं तो हमारे मानसिक नेत्रोंके सामने एक ऐसे व्यक्तिका चित्र अङ्कित हो जाता है जिसकी लाल-लाल आँखें हैं, काला शरीर है, हाथमें छुरा है और बड़ा क्रूर स्वभाव है। 'वेश्या' कहते ही हमारे हृदयपटलपर वेश्याकी मूर्ति अङ्कित हो जाती है। इसी प्रकार जब हम भगवान्‌का नाम लेते हैं तो सहसा हमारे चित्तमें भगवान्‌के दिव्य रूप और गुणोंकी स्मृति जाग्रत् हो जाती है। भगवन्नाम-स्मरणसे चित्त अनायास ही भगवदाकार हो जाता है। भगवदाकार चित्तमें भला पाप-तापके लिये गुंजाइश कहाँ है? इसीलिये नामस्मरण पापनाशकी अमोघ ओषधि है।

बिना जाने भगवान्‌का नाम लेनेसे भी किस प्रकार पाप नष्ट हो जाते हैं, इसके विषयमें श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्धमें आया हुआ अजामिलका अद्भुत प्रसङ्ग प्रख्यात है। मरते समय मुखसे 'नारायण' शब्द निकलते ही वहाँ विष्णुभगवान्‌के पार्षद उपस्थित हो गये। उन्होंने तुरंत ही उसे यमदूतोंके पाशसे छुड़ा लिया। जब यमदूतोंने उसके पापमय जीवनका वर्णन करते हुए उसे यमदण्डका पात्र बतलाया तो भगवान्‌के पार्षदोंने उनके कथनका विरोध करते हुए कहा—

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि।
यद् व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः॥
एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम्।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम्॥
सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम्।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः॥

(श्रीमद्भागवत ६।२।७-८, १०)

'इसने तो अपने करोड़ों जन्मोंके पापोंका प्रायश्चित्त कर दिया; क्योंकि इस समय इसने विवश होकर भगवान्‌का मङ्गलमय नाम उच्चारण किया है। इसने जो 'नारायण' यह चार अक्षरोंका नाम उच्चारण किया है, इतनेसे ही इस पापीके समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो गया। समस्त पापियोंके लिये भगवान् विष्णुका नाम लेना ही सबसे अच्छा प्रायश्चित्त है; क्योंकि ऐसा करनेसे भगवद्विषयक बुद्धि होती है।'

विष्णुदूतोंके इस प्रकार समझानेपर यमराजके सेवक यमलोकको चले गये और वहाँ ये सब बातें धर्मराजको सुनाकर उन्होंने उनसे पूछा—'महाराज! इस लोकमें धर्माधर्मका शासन करनेवाले कितने अधिकारी हैं और हमें किसकी आज्ञामें रहना चाहिये? भला, ये दिव्य पुरुष कौन थे और उस महापापीको हमारे पाशसे छुड़ाकर क्यों ले गये?' तब यमराजने कहा—

परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च
ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम्।
(श्रीमद्भागवत ६। ३। १२)

इत्यादि। अर्थात् मेरे भी ऊपर एक और स्वामी है जो समस्त स्थावर-जंगमका शासक है और जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है। उन सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्रीहरिके दूत, जो उन्हींके समान रूप और गुणवाले हैं लोकमें विचरते रहते हैं और श्रीहरिके भक्तोंको, उनके शत्रु और मृत्यु आदि सब प्रकारकी आपत्तियोंसे बचाते रहते हैं। संसारमें मनुष्यका सबसे बड़ा धर्म यही है कि वह नाम जपादिके द्वारा भगवान्‌के चरणोंमें भक्ति करे। देखो, यह भगवन्नामोच्चारणका ही माहात्म्य है कि अजामिल-जैसा पापी भी मृत्युके पाशसे मुक्त हो गया।'

महाभारत अनुशासनपर्वके विष्णुसहस्रनाम प्रसङ्गमें पितामह भीष्मने भगवान्‌के सहस्रनामोंके पाठको ही सर्वश्रेष्ठ बतलाकर यह कहा—

'भगवान् ही सबसे अधिक पूजनीय देव हैं और भगवन्नामस्मरण ही सबसे बड़ा धर्म और तप है।'

भगवन्नामकी महिमा ऐसी ही विचित्र है। इसके उच्चारणमात्रसे ग्रह, नक्षत्र एवं दिक्शूलादिके दोष निवृत्त हो जाते हैं। मुझको मेरी माताजीने यह आशीर्वादात्मक वरदान दिया था कि 'तू यात्रा आरम्भ करनेसे पूर्व 'नारायण' इस नामका उच्चारण कर लिया कर, फिर कोई विघ्न नहीं होगा।' माताजीके इस आशीर्वादसे मुझे इसका प्रत्यक्ष अनुभव है। मैं जिस समय 'नारायण' इस प्रकार उच्चारण करके यात्रा आरम्भ करता हूँ तो सारे विघ्न दूर खड़े रहते हैं।

यही बात श्रीमद्भागवतके 'नारायणकवच'नामक प्रसिद्ध स्तोत्रमें भी बतलायी गयी है। यह स्तोत्र भी भागवतके छठे स्कन्धमें ही है। वहाँ कहा है—

यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो नृभ्य एव च।
सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योऽहोभ्य एव वा॥
सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात्।
प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयःप्रतीपकाः॥
(६।८।२७-२८)

'ग्रह, नक्षत्र, मनुष्य, सरीसृप, हिंस्र जीव अथवा पापोंसे हमें जो भय प्राप्त हो सकते हैं तथा हमारे श्रेयोमार्गके जो-जो प्रतिबन्ध हैं वे इस भगवन्नामरूप अस्त्र (कवच) का कीर्तन करनेसे क्षीण हो जायँ।'

नाम लेनेसे मनुष्यके सारे पाप उसी प्रकार कट जाते हैं जैसे दूध डालनेसे चीनीका मैल कट जाता है। नामका प्रभाव हमारे चित्तको सर्वथा व्याप्त कर लेता है। जिस प्रकार जलमें तेलकी एक बूँद डालनेपर भी वह सारे जलके ऊपर फैलकर उसे ढक लेती है, उसी प्रकार अर्थानुसंधानपूर्वक किया हुआ थोड़ा-सा भी नाम-जप मनुष्यके सारे पापोंको नष्ट कर देता है। अतः नामजपसे पापका नाश होकर दिव्य शान्ति प्राप्त होती है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

महामना मालवीयजीके कुछ भगवन्नाम-सम्बन्धी संस्मरण

(१) महामना एक बार गोरखपुर पधारे थे और मेरे पास ही दो-तीन दिन ठहरे थे। उनके पधारनेके दूसरे दिन प्रातःकाल मैं उनके चरणोंमें बैठा था। वे अकेले ही थे। बड़े स्नेहसे बोले—''भैया! मैं तुम्हें आज एक दुर्लभ तथा बहुमूल्य वस्तु देना चाहता हूँ। मैंने इसको अपनी मातासे वरदानके रूपमें प्राप्त किया था। बड़ी अद्भुत वस्तु है। किसीको आजतक नहीं दी, तुमको दे रहा हूँ। देखनेमें चीज छोटी-सी दीखेगी। पर है महान् 'वरदान-रूप'।'' इस प्रकार प्रायः आध घंटेतक वे उस वस्तुकी महत्तापर बोलते गये। मेरी जिज्ञासा बढ़ती गयी। मैंने आतुरतासे कहा—'बाबूजी! जल्दी दीजिये, कोई आ जायँगे।'

तब वे बोले—'लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात है। एक दिन मैं अपनी माताजीके पास गया और बड़ी विनयके साथ मैंने उनसे यह वरदान माँगा कि 'मुझे आप ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मैं कहीं भी जाऊँ—सफलता प्राप्त करूँ।'

"माताजीने मेरे सिरपर हाथ रक्खा और कहा—'बेटा ! बड़ी दुर्लभ चीज दे रही हूँ। तुम जब कहीं भी जाओ तो जानेके समय 'नारायण' 'नारायण' उच्चारण कर लिया करो। तुम सदा सफल होओगे।' मैंने श्रद्धापूर्वक सिर चढ़ाकर माताजीसे मन्त्र ले लिया। हनुमानप्रसाद ! मुझे स्मरण है, तबसे अबतक मैं जब-जब चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण करना भूला हूँ, तब-तब असफल हुआ हूँ। नहीं तो, मेरे जीवनमें—चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लेनेके प्रभावसे कभी असफलता नहीं मिली। आज यह महामन्त्र—परम दुर्लभ वस्तु मेरी माताकी दी हुई महान् वस्तु तुम्हें दे रहा हूँ। तुम इससे लाभ उठाना।" यों कहकर महामना गद्‌गद हो गये।

मैंने उनका वरदान सिर चढ़ाकर स्वीकार किया और इससे बड़ा लाभ उठाया। अब तो ऐसा हो गया है कि घरभरमें सभी इसे सीख गये हैं। जब कभी घरसे बाहर निकला जाता है, तभी बच्चे भी 'नारायण-नारायण' उच्चारण करने लगते हैं। इस प्रकार रोज ही—किसी दिन तो कई बार 'नारायण'की और साथ ही पूज्य मालवीयजीकी पवित्र स्मृति हो जाती है।

(२) महामनाके एक पुत्र बड़े अर्थसंकटमें थे। उनको महामनाने तारमें लिखा—"तुम आर्त होकर विश्वाससे गजेन्द्रस्तुतिका पाठ करो, इससे तुम्हारा संकट दूर हो जायगा।' फिर एक पत्रमें उनको लिखा—'भगवान्‌पर विश्वास रक्खो, धैर्य मत छोड़ो और गजेन्द्र-स्तुतिका आर्तभावसे विश्वासपूर्वक पाठ करो*। मैं एक बार नाकतक ऋणमें डूब गया था, गजेन्द्रस्तुतिके पाठसे मैं ऋणमुक्त हो गया था, तुम भी इसका आश्रय लो।" अपने कष्टमें पड़े पुत्रको बिना पूर्ण विश्वासके कौन पिता ऐसा लिख सकता है।

भगवन्नाम—सर्वोत्तम प्रायश्चित्त

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड, वेदाचार्य)

आज समस्त विश्व विविध कष्टोंसे समाक्रान्त है। वेदादि शास्त्रों, ऋषि-मुनियों, संत-महात्माओं और विद्वानोंका सिद्धान्त है कि आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक आदि सभी प्रकारके संकटोंसे मुक्त होनेके लिये भगवन्नाम ही एक ऐसा महत्त्वपूर्ण सरल साधन है, जिसके द्वारा मानव अक्षय सुख-शान्ति प्राप्त कर परमपद पा सकता है।

कलियुगमें भगवन्नामकी विशेष महिमा बतलायी गयी है। भगवन्नाम सभी अमङ्गलोंका नाश करनेवाला, शाश्वत सुख-शान्तिको देनेवाला, अन्तःकरणको पवित्र करनेवाला और भगवद्भक्तिको उत्पन्न करनेवाला है। भगवन्नाम ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके सुख देता है।

भगवन्नाममें अमोघ शक्ति है। भगवन्नामके सदृश और कोई महत्त्वप्रद और पुण्यप्रद वस्तु नहीं है। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह सर्वदा और सभी अवस्थाओंमें भगवन्नामके नित्य-निरन्तर स्मरणका ऐसा अभ्यास बना ले, जिससे उसकी जिह्वा सर्वदा भगवन्नामका उच्चारण करती रहे। जो मनुष्य ऐसा अभ्यास कर लेता है, वह जीवित ही दिव्य परमोज्ज्वल प्रकाश पाकर अनन्त भवसागरको अनायास पार करनेकी क्षमता प्राप्त कर लेता है और अन्तमें मङ्गलमय भगवान्‌का सांनिध्य पाता है।

भगवन्नामकी अपूर्व महिमा है। भगवन्नामके प्रभावसे मनुष्यकी आत्मामें स्वतः दिव्य प्रकाश हो जाता है, जिससे चित्तके सारे मल (विकार) दूर हो जाते हैं। उसकी चित्तवृत्ति शनैः-शनैः एकाकाररूपमें परिणत हो जाती है, जिससे उसका जीवन 'ब्रह्ममय' बन जाता है। वह अखिल-ब्रह्माण्डनायक भगवान्‌के साथ एकात्मताका अनुभव करने लगता है और विश्वजनीन समस्त जड-चेतन पदार्थोंमें भगवान्‌की ही दिव्य अलौकिक छवि देखने लगता है। पश्चात् वह संसारके क्षणिक और मिथ्या पदार्थोंसे मुख मोड़कर जन्म-जन्मान्तरके लिये भगवान्‌का और भगवन्नामका प्रेमी भक्त बन जाता है। भगवान्‌का भक्त बननेके बाद वह सदा-सर्वदा समस्त प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियोंसे परिपूर्ण होकर आत्मतृप्तिका अनुभव करता हुआ परम पद पाता है।

भगवन्नामका अद्भुत प्रताप है। भगवन्नामके प्रतापसे नारद, ध्रुव, प्रह्लाद, वाल्मीकि आदि जगद्वन्दनीय हो गये।

* श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धका तीसरा अध्याय यह स्तुति है। गीताप्रेससे अलग भी प्रकाशित हो चुकी है।

भगवन्नामके प्रतापसे भक्त प्रह्लादकी अग्निमें, सर्पदंशनसे और सिंह आदिसे रक्षा हुई। भगवन्नामके प्रतापसे मीराँबाई विषरूपमें दिये हुए चरणामृतका पान करके भी जीवित रह गयी। भगवन्नामके प्रतापसे द्रौपदीकी कौरव-सभामें रक्षा हुई। भगवन्नामके प्रतापसे ही ग्राहके द्वारा ग्रस्त गजेन्द्रका उद्धार हुआ।

भगवन्नामके माहात्म्यके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें इतना अधिक कहा गया है कि उसका एकत्र संग्रह एक नये पुराणका रूप ले सकता है—

'अशेषजगदंहसां किमपि नाम निर्णेजनम्।'

(भगवन्नामकौमुदी ३। ८)

'संसारके समस्त प्रकारके पापोंका नाशक भगवान्‌का नाम है।'

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्वा वा विवशो ब्रुवन्।
'हरये नमः' इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात्॥

(श्रीमद्भागवत १२। १२। ४६)

'जो मनुष्य गिरते-पड़ते, फिसलते, कष्ट भोगते अथवा छींकते समय विवशतासे भी ऊँचे स्वरसे 'हरये नमः' कहता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

सर्वधर्मोज्झिता विष्णोर्नाममात्रैकजल्पकाः।
सुखेन यां गतिं यान्ति न तां सर्वेऽपि धार्मिकाः॥

(अग्निपुराण)

'समस्त धर्मोंसे रहित मनुष्य भी केवल भगवान्‌के नामका उच्चारण करनेसे सुखपूर्वक उस उत्तम गतिको प्राप्त करते हैं, जिसे धर्मात्मा पुरुष भी प्राप्त नहीं कर सकते।'

सर्वधर्मबहिर्भूतः सर्वपापरतस्तथा।
मुच्यते नात्र संदेहो विष्णोर्नामानुकीर्तनात्॥

(वैशम्पायनसंहिता)

'समस्त धर्मोंसे परित्यक्त और समस्त प्रकारके पापोंसे संलग्न पुरुष भी यदि भगवान् विष्णुके नामका कीर्तन करता है तो वह निस्संदेह समस्त पापोंसे छुटकारा पा जाता है।'

कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्त्तते।
भस्मीभवन्ति राजेन्द्र महापातककोटयः॥

(विष्णुधर्म०)

'हे राजेन्द्र! जिसकी वाणीमें 'कृष्ण' यह मङ्गलप्रद नाम रहता है, उसके करोड़ों महापातक तत्काल भस्म हो जाते हैं।'

न गङ्गा न गया सेतुर्न काशी न च पुष्करम्।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्॥
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः।
अधीतास्तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्नरमेधैस्तथैव च।
याजितं तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

([illegible])

'जिस भाग्यशाली मनुष्यकी जिह्वापर 'हरि' इन दो अक्षरोंवाले भगवान्‌का नाम विराजमान रहता है, उसके लिये गङ्गा, गया, सेतुबन्ध रामेश्वर, काशी एवं पुष्कर तीर्थका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। उसने भगवन्नामके प्रभावसे ऋग्वेदादि चारों वेदोंका अध्ययन कर लिया और अश्वमेधादि विशिष्ट यज्ञोंको भी कर लिया।'

नारायणायेति शब्दोऽस्ति वागस्ति वशवर्तिनी।
तथापि नरके घोरे पतन्तीति किमद्भुतम्॥

'नारायण (भगवान्) नामके होते हुए और अपने वशमें रहनेवाली वाणीके रहते हुए भी मनुष्य जो नरकमें गिरते हैं, यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है।'

वेदादि शास्त्रोंमें पापोंसे निवृत्त होनेके लिये अनेक प्रायश्चित्त बतलाये हैं, किंतु उन समस्त प्रायश्चित्तोंमें भगवन्नामके उच्चारणको विशेषरूपसे प्रधानता दी है। भगवन्नामके उच्चारणमात्रसे मनुष्य समस्त प्रकारके पापोंसे मुक्त होकर भगवान्‌के उस परमपद (परम धाम)को प्राप्त करता है, जहाँसे फिर उसे लौटना नहीं पड़ता—

'यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम।'

(गीता १५। ६)

श्रीमद्भागवत (६। २। ७) में अजामिलका उपाख्यान प्रसिद्ध है। भ्रष्टाचारपरायण और दासीपति होनेपर भी वह भगवान् 'नारायण'के नाम-उच्चारणके प्रभावसे अपने करोड़ों जन्मोंके समस्त प्रकारके पापोंसे तत्काल मुक्त हो गया।

भागवत (६। २। ११-१२) में लिखा है—

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि-
स्तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-
स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम्॥

नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते
मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे।
तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरे-
र्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः॥

'बड़े-बड़े ब्रह्मवादी ऋषि-मुनियोंने पापनिवारणार्थ कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि विविध प्रकारके व्रत एवं प्रायश्चित्त बतलाये हैं; किंतु उन समस्त प्रायश्चित्तोंसे पापीकी वैसी शुद्धि नहीं होती, जैसी कि भगवान्‌के नामोच्चारणसे होती है; क्योंकि भगवान्‌के नामोच्चारण करनेसे मनुष्यके चित्तमें भगवान्‌के गुणोंका दिव्य प्रकाश होता है। प्रायश्चित्त करनेके बाद भी यदि मनुष्यका चित्त पुनः कुमार्गकी ओर प्रवृत्त हो, तो पूर्णरूपसे उसका प्रायश्चित्त नहीं है। अतः जो मनुष्य ऐसा प्रायश्चित्त करना चाहें जिससे पापकर्मों और वासनाओंकी जड़ ही समूल नष्ट हो जाय, तो उन्हें भगवान्‌का ही गुणगान करना चाहिये; क्योंकि उससे मनुष्यका चित्त सर्वथा पवित्र हो जाता है।'

नाम्नां मुख्यतरं नाम कृष्णाख्यं यत् परंतप।
प्रायश्चित्तमशेषाणां पापानां मोचकं परम्॥
(स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड)

'भगवान्‌के अनेक नामोंमें 'कृष्ण'का नाम मुख्य है जो समस्त प्रकारके पापों और प्रायश्चित्तोंको नष्ट कर देता है।'

प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि वै।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्॥
(विष्णुपुराण २। ६। ३७)

'जितने भी तपस्यात्मक और कर्मात्मक प्रायश्चित्त हैं, उन सबमें भगवान् कृष्णका स्मरण ही सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त है।'

भागवत (३। ३३। ७) में लिखा है—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

'अहो! जिसकी जिह्वापर तुम्हारा (भगवान्‌का) पवित्र नाम रहता है, वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है; क्योंकि जो तुम्हारे नामका कीर्तन करते हैं, उन श्रेष्ठ पुरुषोंने तप, यज्ञ, तीर्थ-स्नान और वेदाध्ययन—सब कुछ कर लिया। उनके लिये कीर्तन ही सब कुछ है।'

विष्णुपुराण (६। २। १७) में लिखा है कि भगवन्नामका संकीर्तन करनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होती है।

और भी कहा है—

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव॥
(विष्णुपुराण ६। ८। १९)

'जिस प्रकार सिंहके भयसे व्याकुल होकर गीदड़ प्राणरक्षार्थ इधर-उधर भागते फिरते हैं, उसी प्रकार पापी मनुष्य भी यदि विवश होकर भगवन्नामका कीर्तन करता है, तो वह तत्काल समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

भगवन्नाम-कीर्तनके बारेमें लिखा है कि जिस स्थानमें भगवन्नाम-कीर्तन होता है, वह स्थान अत्यन्त पवित्र और 'तीर्थ' बन जाता है और वहाँ समस्त तीर्थ तबतक रहते हैं जबतक भगवान्‌के नामका कीर्तन होता रहता है। अतः जो व्यक्ति भगवन्नाम-कीर्तनमें सम्मिलित होकर श्रद्धा-भक्तिसे भगवान्‌के नामका उच्चारण करते हैं, उनके पाप-पुञ्जोंका नाश हो जाता है और वे 'वैकुण्ठलोक'की प्राप्तिके अधिकारी बन जाते हैं।

'कलौ तद्धरिकीर्तनात्।'
(भागवत १२। ३। ५२)

'कलौ संकीर्त्य केशवम्।'
(विष्णुपुराण ६। २। १७)

—इत्यादिके अनुसार कलियुगमें भगवान् श्रीकृष्णके कीर्तनको प्रधानता दी गयी है। भगवान् श्रीकृष्णका नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सरल है। कृष्ण नामके स्मरण और उच्चारण आदिका सबको समान अधिकार है। अतः सभी लोगोंको श्रद्धा-भक्तिसे भगवन्नामका उच्चारण कर परमपद (मोक्ष) प्राप्त करना चाहिये।

लिखा भी है—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजादयः।
यत्रतत्रानुकुर्वन्ति विष्णोर्नामानुकीर्तनम्॥
सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेऽपि यान्ति सनातनम्॥

भगवन्नाम-कीर्तनमें देश, काल, पात्र, शुचि, अशु आदिका कोई विशेष नियम नहीं है; अतः किसी भी अव में कहीं भी भगवन्नाम-कीर्तन किया जा सकता है—

क्योंकि इस युगमें कीर्तनमात्रसे परमपदकी प्राप्ति होती है। सत्ययुग आदिमें भी जो जीव अपने धर्मके प्रभावसे मुक्त नहीं हो सके, वे भी कलियुगमें कीर्तनमात्रके प्रभावसे मुक्त हो जाते हैं। दोषोंके समुद्र कलियुगमें एक महान् गुण (यह) है कि नाम-संकीर्तनसे ही मनुष्य चारों पदार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं। हे विप्रवर ! सत्ययुग आदिमें भी भगवान्‌का नाम-कीर्तन तप आदिके द्वारा साध्य होता था; पर कलियुगमें यह साध्य और साधन दोनों बन गया है। इसलिये कलियुगमें विष्णुका नाम-कीर्तन उत्तम है। यह भक्तोंके लिये साध्य और साधन दोनों बताया गया है। जिस किसी भावसे सतत हरि-कीर्तन करता हुआ व्यक्ति पापका त्यागकर सद्गति प्राप्त करता है; फिर जो श्रद्धासे कीर्तन करता है, उसका तो कहना ही क्या है। कलियुगमें नामकीर्तन करनेवाले ही महान् भगव भगवान्‌के प्रिय हैं। अतएव हे विप्र ! श्रद्धासे होकर सब प्रकारसे श्रीकृष्णका कीर्तन करो; यही मह

'एवमादिवचनैः श्रद्धाभक्त्योरभावेऽपि न समस्तं दुरितं नाशयतीत्युक्तम्, किमुत श्रद्धादिपू नामसंकीर्तनं नाशयतीति ।' (

'इस प्रकारके वचनोंसे सिद्ध होता है कि श भक्तिके अभावमें भी किया गया नाम-कीर्तन समस नाश करता है; फिर श्रद्धा आदिके साथ किया सहस्रनामकीर्तन (पापोंका) नाश करेगा, इसमें ही क्या है।'

शास्त्र एवं संतोंका साक्ष्य—'कलियुग केवल नाम अधारा'

(लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन')

कलियुग केवल नाम अधारा

भगवन्नाम-स्मरण मानव-जीवनका एक सिद्ध रसायन है। शास्त्र एवं संत-समुदाय दोनोंने इसे मानवकी आध्यात्मिक उन्नतिका सरलतम साधन बताया है और लोकानुभवसे निरन्तर इस सत्यकी पुष्टि होती रही है। प्रभुकी प्राप्तिके और जितने भी मार्ग हैं वे सब सत्य एवं प्रभावशाली होते हुए भी दुर्गम हैं। उनके लिये संस्कारकी शुद्धता, पवित्राचरण, शुद्ध ब्रह्मचर्य, कठोर आत्मनियन्त्रण—मतलब अत्यन्त दुष्कर यम-नियमपूर्वक जीवन-यापनकी आवश्यकता होती है जो बढ़ते हुए भौतिक प्रभावोंके इस युगमें, सर्वसाधारणके लिये प्रायः असाध्य हैं। योगमार्ग, ज्ञानमार्ग इत्यादि सामान्य मानवके लिये आज अकल्पनीय हैं। भगवन्नाम-जप ही एक ऐसा साधन है जो आज सबके लिये सुलभ है। इसमें ऊँच-नीच, जाति-पाँति, वर्णावर्ण किसी प्रकारका भेद-भाव भी नहीं है। यह प्रत्येक मनुष्यके लिये साध्य है और प्रत्येक अवस्थामें किया जा सकता है; और यों तो सर्वकाल और स्थितिमें भगवन्नाम प्रभावकारी है; किंतु कलिमें तो वही एकमात्र साधन है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥
(बृहन्नारदीय० १-।४१।१५)

गोस्वामी तुलसीदासजीने यही बात अपने सरल कह दी है—'कलियुग केवल नाम अधारा।'

इस रसायनका पान करो

मानव-मन आज भ्रम-विजड़ित है। वह संशयसे भर गया है। इस संशयके कारण वह शरीरसे जर्जर, मनसे विकृत एवं आत्मदीप्तिसे शून्य हो रहा है। मनुष्य सब प्रकारसे अस्वस्थ है। आत्मा पङ्गु हो गयी है; अन्तर विषयासक्त एवं विषाक्त हो गया है। इस अस्वस्थतासे मानवको उबारनेके लिये भगवन्नाम ही एकमात्र रसायन है। यह अनुभवसिद्ध है; बार-बारका परीक्षित है; तब भी आश्चर्य है कि लोग इसका सेवन न करके संशयास्पद कठिन ओषधियोंके पीछे भागते फिरते हैं—

इदं शरीरं शतसंधिजर्जं
पतत्यवश्यं परिणामि पेशलम्।
किमौषधैः क्लिश्यसि मूढ दुर्मते
निरामयं कृष्ण रसायनं पिब ॥

इस निरामय कृष्णरसायनको छोड़ मूढ़ न जाने किन ओषधियोंकी खोज करते फिरते हैं—

तुलसिदास हरिनाम सुधा तजि सठ हठि पियत विषय विष माँगी।
सूकर स्वान सृगाल सरिस जन जनमत जगत जननि दुख लागी ॥

प्रेम-मतवाली मीरां

पग बाँध घुँघरु मीरांँ नाची रे ।

मीराँका विषपान
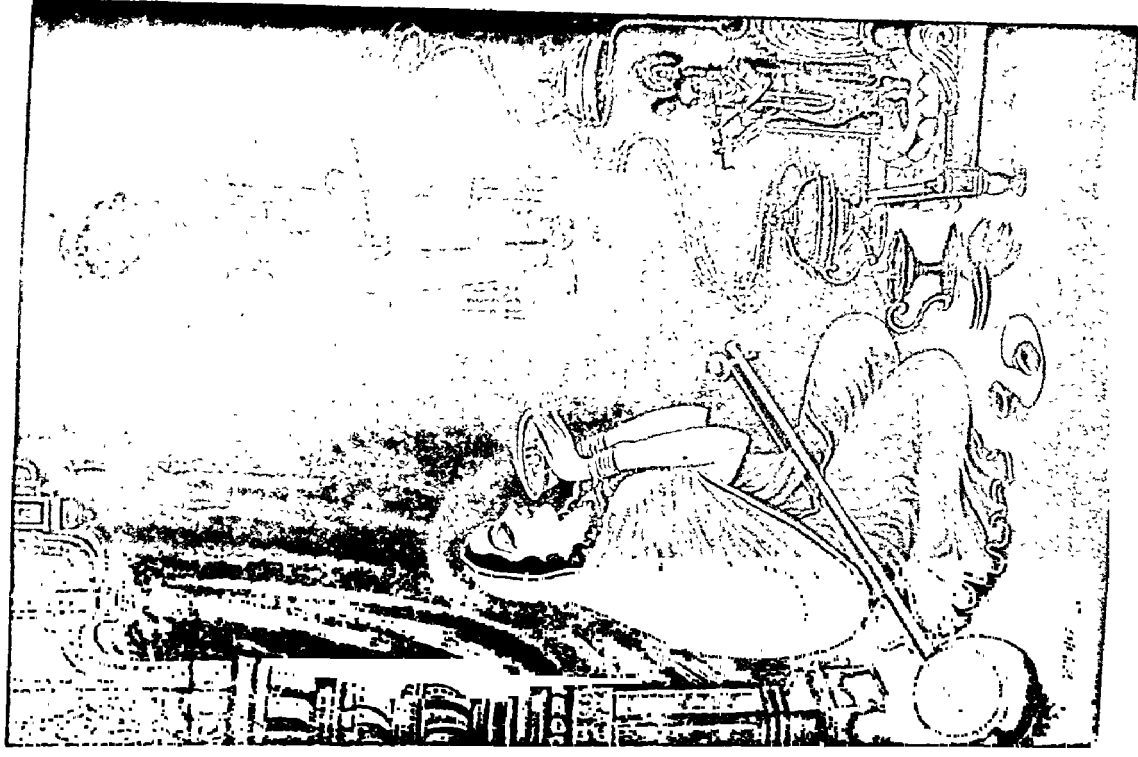
भगवन्नामामृतको छोड़ दुर्बुद्धि लोग हठ करके और माँग-माँगकर विषय-विष पी रहे हैं। ये मनुष्य सूअर, कुत्ते, सियारके समान केवल अपनी जननियोंको जन्मका दुःख भोगनेके लिये संसारमें जन्म लेते हैं और यह सब तब हो रहा है जब कि हरिनामकी सुधा सर्वत्र सुलभ है; इसके लिये किसीको कोई दाम नहीं देना पड़ता—मुफ्त मिलती है। वह शरीर, मन, आत्मा सबको निर्मल करती है।

संतोंकी साखी (साक्ष्य)

शास्त्र तो पुकार-पुकारकर कहते ही हैं कि भगवन्नामकी शरणमें आओ—भगवन्नामका आश्रय लो; किंतु शत-शत संतोंने अपने ही जीवनमें उसका प्रयोग करके देखा है कि वह क्या-से-क्या कर देता है, मनुष्यको कहाँ उठा देता है, उसमें कैसे लोकोत्तर आनन्दकी सृष्टि करता है। इसीलिये जितने भी संत हैं, विविध सम्प्रदायों और प्रान्तोंके, सभी अपनी-अपनी जनवाणीके माध्यमसे इसके माहात्म्यकी घोषणा करते हैं। यही एक ऐसा मार्ग है जो विविध मार्गोंका समीकरण है, जहाँ सब सहमत हैं। कबीर, सूर, तुलसी, मीराँ, नरसैया, नानक, एकनाथ, तुकाराम, रामदास, चण्डीदास इत्यादि सब नामका गुण गाते हैं।

पिउके देसको जाती बहुरिया

कबीर मगन हैं कि उन्हें नामरूपी कण्ठहार मिल गया है; सँकरे खटोलेमें पाँच दुर्बल कहार उठाये चले जा रहे हैं। पालकीके द्वार बंद हैं किंतु बहुरियाको द्वार खोलनेकी चाबी मिल गयी है। उसने प्रीतिकी चूनर पहिन ली है; वह नाच-नाच उठती है कि अब पुनः इस नगर—मैकेमें आना न होगा, सीधे पिउके देशमें जाकर रुकेगी—

पायो सत नाम गरे कै हरवा।

साँकर खटोलना रहनि हमारी, दुबरे दुबरे पाँच कहँरवा।
ताला-कुंजी हमें गुरु दीनी, जब चाहौं तौ खोलौं किवँरवा॥
प्रेम-प्रीतिकी चुनर हमारी, जब चाहौं तौ नाचौं सहरवा।
कहैं कबीर सुनौ भाई साधो, बहुरि न ऐबै एही नगरवा॥

कैसे प्रेमिल ढंगसे सौन्दर्य एवं स्नेहके मृदुल रूपक-द्वारा कबीरने मुक्तिका साधन 'नाम'को बताया है। पर कहीं-कहीं तो उन्होंने बड़ी कड़वी भाषामें कहा है कि 'जिस मुखसे राम-नाम नहीं निकलता, उसमें धूल पड़ी समझना चाहिये।'

कहत कबीरा जा मुख राम नहिं, वा मुख धूल भरी।

कबीर तो रात-दिन राम-नाम-प्रेममें मस्त हैं; नाम छूटता ही नहीं। राम-विरहके भुजङ्गने ऐसा डँसा है कि कोई तन्त्र-मन्त्र काम नहीं करता। नाम-वियोगी देह छोड़ ही देता है और जीता भी रहा तो होश-हवासमें नहीं रहता; पागल हो जाता है।

विरह भुवंगम तन डसा, मंत्र न लागै कोय।
नाम-वियोगी ना जिय, जिय तो बाउर होय॥

हारेको हरिनाम

संसार-सागरके विषम जालमें फँसे हुए प्राणी जब डूबने लगते हैं तब कोई सगा-सम्बन्धी उन्हें बचा नहीं पाता। अपना बल निरर्थक हो जाता है। जब कोई काम नहीं आता तब उस डूबते प्राणीको कौन बचाता है? डूबते समय, मुँहमें पानी भर जानेसे पूरा नाम भी नहीं निकल पाता, परंतु प्रभु आधे नामपर ही दौड़ पड़ते हैं। वही सूरदासके चिर-किशोर प्रभु—

जब लगि गज बल अपनो बरत्यौ नेक सरो नहिं काम।
निर्बल ह्वै बल राम पुकारयौ, आये आधे नाम।
'सूर' किसोर-कृपातें सब बल हारेको 'हरि' नाम॥

'पायो चारु नाम चिंतामनि'

तुलसी कहते हैं—'संसार-चक्रमें पड़ा न जाने कहाँ-कहाँ फिरा; बड़ी फजीहत हुई। कुछ हाथ न आया। बराबर नष्ट होता गया, किंतु अब नष्ट नहीं होऊँगा। राम-कृपासे भव-निशा बीत चली है। अब जगकर फिर सोनेकी चेष्टा न करूँगा। बड़ी परीशानीके बाद नामरूपी चिन्तामणि मिल गया है, अब इसे अपने हृदयसे न जाने दूँगा!'—

अबलौं नसानी अब न नसैहौं।

रामकृपा भव-निसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं।
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं॥

वे अपने अनुभवसे कहते हैं कि 'कलिमें रामका नाम सब अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला कल्पवृक्ष है'—

कलि नाम कामतरु राम को।
दलनिहार दारिद-दुकाल-दुख, दोष घोर घन-घाम को।

'अनबोलत मोरी बिरथा जानी'

वे प्रेममें मानकी मधुरिमाका स्वाद ही जानते हैं, जिन्हें उससे काम पड़ा है। किंतु नानककी अबोली प्रीति भी देर

तब न रह सकी। उसे बोलना पड़ा। आखिर भगवान्‌ने अपना नाम पुकारनेपर उनको विवश ही कर दिया—

अनबोलत गोरी बिरथा जानी, अपनो नाम जपायो।
कहु नानक गुरु बंधन काटे, बिछुरत आनि मिलायो॥

फिर तो नामकी ऐसी बान पड़ी कि वे कह उठे—

रे मन! राम सों कर प्रीत।
स्रवन गोविंद गुन सुनो अरु गाउ रसना गीत॥

बार-बार मनको हटककर याद दिलाते हैं कि 'तेरी उम्र बीती जा रही है। ऐ मूर्ख! अब तो हरिनाम स्मरण कर ले—

सुमिरन कर ले मेरे मना।
तेरी बीती जाती उमिर हरिनाम बिना॥
देह नैन बिनु, रैन चंद्र बिनु, धरती मेह बिना।
जैसे पंडित बेद-विहीना तैसे प्रानी हरिनाम बिना॥

सब तज हरि भज

अरे प्राणी! अब भी जग जा। भगवान्‌का स्मरण कर। यही साथ जायगा, और कुछ नहीं। सहजराम कहते हैं—

जाग जीव सुमिरन कर हरि को, भोर भयो है भाई रे।
सुमिरन बिना संग नहिं कोई, जीव अकेलो जाई रे॥

खालस कहते हैं—'तूने क्रोध नहीं छोड़ा, झूठ नहीं छोड़ा, तब सत्यका त्याग क्यों कर दिया? जिसके स्मरणसे सब कुछ मिलता है, जिसकी गोदमें सब सुखोंका निवास है उसे क्यों छोड़ बैठा है?'—

नाम जपन क्यों छोड़ दिया।
क्रोध न छोड़ा, झूठ न छोड़ा, सत्य वचन क्यों छोड़ दिया?
जेहि सुमिरन तें अति सुख पावे, सो सुमिरन क्यों छोड़ दिया?

नरसैया कहते हैं—

नारायणनुं नामज लेतां, वारे तेने तजीए रे।
अवर वेपार तुं मेल मिथ्या करी,
कृष्णनुं नाम तुं राख मोयें।

नामका नाता नहीं तोड़ा जाता

प्रियतमकी यादमें तड़पती विरहिणी मीराँके पास लोग आते हैं। वैद्य आते हैं, हाथ पकड़कर देखते हैं। मीराँ खीझती है। ये बपुरे रोगका निदान करनेमें असमर्थ हैं। रोग कुछ और है, वे बताते कुछ और हैं। मीराँ त विरहाग्निमें जल रही है। वे व्यर्थ ओषधि दे रहे हैं।

'मूरख बैद मरम नहिं जाणै, कसक कलेजे मायँ।'

उसे तो एक घड़ीको भी चैन नहीं है; जो जीवनक जीवन, प्राणका प्राण है उसके बिना जीना कैसे सम्भव है?

तुम हो मेरे प्राणजी, कसे जीवन होय?
प्राण गमाया झूरताँ रे, नण गमाया रोय।
घायल-सी घूमत फिरूँ रे, मेरो दरद न जाणै कोय।

मीराँ कहती है—'मैं क्या करूँ, मुझसे नामका यह नाता किसी तरह नहीं टूटता।'

नातो नामको जी, म्हासूं तनक न तोड्यो जाय

यह नामका रोग जिसे लगता है वही इसे जानत जिसके कलेजेमें तीर लगा है वही उसका दर्द जान है। इसकी बेचैनीका वर्णन कौन कर सकता है?—

छिन मंदिर छिन आँगणे रे, छिन-छिन ठाढ़ी होय।
घायल सी घूमूँ खड़ी रे, म्हारी बिथा न बूझे कोय॥

महाराष्ट्रके संतकवि नामदेव कहते हैं—'जैसे ब बिना अकेली गाय व्याकुल रहती है या पानी बिना म तड़पती है वैसे ही गरीब नामदेव रामनाम बिना रहा है।'

मोहिं लागत ताळाबेली,
बछरे बिनु गाय अकेली।
पनिआ बिनु मीन तलफै,
ऐसे रामनाम बिनु बापुरो नामा॥

इस प्रकार संतोंका साक्ष्य एक मतसे यही है कि कलि नाम ही आधार है।

एकमात्र तीर्थ

शास्त्र एवं संत दोनों कहते हैं कि जिसकी जिह्वापर ह का नाम है उसे गङ्गा, गया, सेतुबन्ध रामेश्वर, का पुष्कर कहीं जानेकी आवश्यकता नहीं है। काशीमें तप क अग्नि तापकर कायाकल्प करने, अश्वमेधयज्ञ या स्वर्ण करनेसे जो पुण्य होता है, उसकी तुलना हरिनाम-स्मरणके से नहीं की जा सकती।

न गङ्गा न गया सेतुर्न काशी न च पुष्करम्।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

बारानसी तपु करै उलटि तीरथ मरै,
अगिन दहै काइया कलपु कीजै।
असुमेध जगु कीजै सोना गरभु दान
दीजै, रामनाम सीर तऊ न पूजै।
(नामदेव)

जीवनकी जटिलताओंमें फँसे, हारे-थके, आर्त-विपन्न सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये आजके जीवनमें हृदयसे प्रभुनाम-स्मरण ही एकमात्र तप है, एकमात्र साधन है, एकमात्र धर्म है !

श्रीरामनाममें स्वामित्व

(लेखक—श्रीश्रीकान्तशरणजी)

जीवमात्र ईश्वरके सनातन अंश हैं। वे अपने अंशीसे पृथक् होनेसे अज्ञानवश नाना दुःख पाते हैं। उपासनाकी रीतिसे अंशी—ईश्वरकी प्राप्तिके नौ सम्बन्ध कहे गये हैं—

१—पिता-पुत्र, २—रक्ष्य-रक्षक, ३—शेष-शेषी, ४—भर्तृ-भार्या, ५—ज्ञातृ-ज्ञेय, ६—शरीर-शरीरी, ७—भोक्ता-भोग्य, ८—आधार-आधेय और ९—स्व-स्वामी; तथा—

पिता च रक्षकः शेषी भर्त्ता ज्ञेयो रमापतिः।
स्वाम्याधारो ममात्मा च भोक्ता चेति मनूदिता॥
(जिज्ञासापञ्चक)

साधनकी दृष्टिसे मुमुक्षु क्रमशः इन 'पिता-पुत्र' आदि सम्बन्धोंकी भावना करता हुआ अन्तमें 'स्व-स्वामि' भावकी भावना करता है। नामजपमें नामार्थ-मननके रूपमें नामी (रूप-)के ही गुणोंकी भावना होती है। उन गुणोंकी भावनाके अनुसार रूप ही अपने नाम-जापकके मनोरथोंकी पूर्ति करता है। अतः नाम और नामी अभिन्न हैं। कहा भी है—
'समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥'
(रामचरितमानस बाल० २१)

अतः यहाँ रूपके स्वामित्वके गुणोंसे नामका स्वामित्व कहा जाता है। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने विधिवत् रामनामाराधन करके सिद्धि पायी है। इसका निर्णय त्रिपाद-विभूति साकेतलोककी सभामें हुआ है; यथा—

मारुति मन रुचि भरत की लखि लखन कही है।
कलिकालहुँ नाथ नाम सों प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है॥
बिहँसि राम कह्यो सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।
(विनयपत्रिका २७९)

अतएव उनके द्वारा कही हुई उनकी अनुभूत नामाराधनकी प्रक्रियाएँ कही जाती हैं। श्रीगोस्वामीजीने राम-नामाराधनकी विशद रीतियाँ रामचरितमानस बाल० दो० १८–२७—इन नौ दोहोंमें लिखी हैं। उनमें क्रमशः दोहोंमें उपर्युक्त नवों सम्बन्धोंके लक्ष्य हैं। यहाँ १९वें दोहेमें नवों सम्बन्धोंके सूक्ष्म बीजरूप कहे गये हैं—

'राम लखन सम प्रिय तुलसी के' से
जीह जसोमति हरि हलधर से।

—तक क्रमशः नवों दोहे इन्हींके साक्षात्कारके हैं। इनमें नामके स्वामित्वका नवाँ बीजरूप इस प्रकार है—

'जीह जसोमति हरि हलधर से।'

जीभ (वैखरीवाणी)रूपिणी श्रीयशोदाजीके लिये (श्रीराम-नामके दो वर्ण रा, म) श्रीकृष्ण और बलरामके समान हैं।

विशेष—जैसे श्रीकृष्ण भगवान् श्रीदेवकीजीके गर्भसे प्रकट होकर गुप्त रीतिसे आकर श्रीयशोदाजीके पुत्र कहाये और श्रीबलरामजी भी श्रीदेवकीजीके ही गर्भसे प्रकट होकर मित्रताके संयोगसे श्रीयशोदाजीके पुत्र[1] कहाये हैं। वैसे ही 'राम' यह नाम उच्चारणके समय प्रथम इसके दोनों वर्ण (रा, म) नाभि-स्थानरूपी मथुराकी परावाणी-रूपिणी देवकीसे स्फुरित होते हैं—

नाभिहृत्कण्ठजिह्वोत्थाश्चतस्रः क्रमतो गिरः।
परा तथा च पश्यन्ती मध्यमा वैखरी च ताः॥ ४१॥
श्रीसीतारामयोस्तत्त्वं वर्णनं सा परा भवेत्।
याथात्म्यजीवतत्त्वं च पश्यन्ती कथयेत्तदा॥ ४२॥
स्वर्गादीन् धर्मकामार्थान् वर्णयेत् सा तु मध्यमा।
व्यवहारे वैखरी प्रोक्ता केवलं यच्च प्राकृतम्॥ ४३॥
(जिज्ञासापञ्चक)

अर्थात् नाभि, हृदय, कण्ठ और जिह्वासे क्रमशः परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणीके उत्थान होते हैं।

श्रीगीतारामतत्त्वका वर्णन परा वाणीका कार्य है। जीवतत्त्व-निरूपणमें पश्यन्ती; अर्थ, धर्म और काम तथा स्वर्ग आदिके निरूपणमें मध्यमा तथा व्यवहारकी बातोंमें वैखरी वाणीकी प्रवृत्ति रहती है।

श्रीकृष्णकी भाँति 'रा' अकेला ही मुखरूपी गोकुलमें आकर जीभरूपिणी यशोदाजीसे प्रकट होता है। श्रीयशोदा-जीकी भाँति जिह्वा भी इस 'रा'को अपने पुत्रकी भाँति निजोच्चरित ही मानती है और 'म'रूपी बलरामजीको ओष्ठस्थानरूपिणी रोहिणीने भी प्रसिद्धरूपमें अपना स्पर्श-जन्य पुत्र ही समझा है। ये दोनों (यशोदा और रोहिणीकी भाँति) इन दोनों वर्णोंको परा वाणीरूपिणी देवकीके गर्भसम्भूत नहीं जानतीं। वैखरी वाणीसे नाम लेनेमें मकार उच्चारणके समय जीभसे जो ओष्ठका संयोग होता है, यही यशोदा और रोहिणीकी मित्रतासे बलरामजीकी प्राप्ति है।

जैसे श्रीकृष्ण और बलरामके एकत्र होनेपर श्रीयशोदा-जीके द्वारा ही दोनोंका लालन-पालन होता था, वैसे ही जीभको भी श्रद्धा एवं उत्साहसे पुत्रवत् निजोच्चरित दोनों वर्णोंका अहर्निश लालन-पालनरूपमें प्रेमपूर्वक रटन करना चाहिये।

यहाँतक दोनों वर्णों (रा, म) की उत्पत्ति एवं संगका रूपक हुआ और क्रिया कही गयी। आगे इनके स्वामित्वसे लाभ दिखाते हैं—'हरि हलधर से'—क्लेश हरण करनेवालेको 'हरि' कहा जाता है। यहाँ आशय यह है कि यदि जिह्वा यशोदाजीकी भाँति स्नेहपूर्वक दोनों वर्णोंका लालन-पालनरूप रटन करती रहे तो ये दोनों वर्ण (रा, म) इसके ऊपर आनेवाली सभी बाधाओंके क्लेशोंका हरण करते हुए इसे आनन्दपूर्वक रखते हैं।

सम्बन्ध—जैसे श्रीयशोदाजीसे सेवित श्रीकृष्ण-बलरामने उनपर आयी हुई सभी बाधाओंको स्वतः जान-जानकर, उनसे उनकी रक्षा की है, वैसे जीभसे सेवित श्रीरामनाम अपने आश्रित जापककी काल, कर्म, गुण और स्वभावकी बाधाओं-से क्रमशः उसके चित्त, बुद्धि, अहंकार और मनको सुरक्षित रख इसकी रक्षा करता है।

यह नाम-वन्दनाके नवें दोहेके प्रसङ्गोंसे दिखाता हूँ; क्योंकि वही दोहा इस 'स्व-स्वामि' सम्बन्धके साक्षात्कारका है।

काल-बाधासे चित्त-रक्षण

गोकुलमें श्रीयशोदाजी दोनों बालकोंका आनन्दपूर्वक पालन कर रही थीं। उसी समय वहाँ अपने कुचोंमें कालकूट लगाकर पूतना आयी। उसने श्रीकृष्णको दूधके साथ विष पिलाकर मारना चाहा था; परंतु उसके छलको भगवान् श्रीकृष्णने जान लिया और उसे मार डाला, उसे माताकी-सी गति दी। यथा—

'गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातु की गति दई ताहि कृपालु जादवराइ॥'
(विनयपत्रिका २१४)

वैसे ही जापक (सत्ययुगी) शुद्ध सत्त्ववृत्तिसे नामाराधनमें निमग्न रहता है और कालवृत्ति पूतनाकी भाँति संयोग-वियोग आदिके द्वारा विषयसम्बन्धी हर्ष-विषाद आदि कालकूट लगाकर आती है। वह आत्मवृत्ति-का नाशक है। जैसे पूतनाने सुन्दर रूपसे आकर श्रीकृष्णको दूध पिलानेके मिससे विष देना चाहा था, वैसे ही काल-प्रेरित लोग जापकके पास नाना भोग-सामग्री एवं भोज्यपदार्थ आदि लेकर आते हैं और अपनी बातोंमें लगा इसका नाम-जप छुड़ा देते हैं। उनका भाव तो यह रहता है कि इससे जापक अन्य उपाय एवं भिक्षासे अवकाश पा विशेष नाम रटेगा। नामशिशु मोटा होगा; पर इसमें जापक उनके कनौड़ होकर उनके पाप-पुण्य एवं दुःख-सुखमें भागी हो जाता है। यही इसका विषवत् परिणाम है। जैसे श्रीकृष्णने पूतनाको मार डाला, वैसे यहाँ नाम अपने जापकको विवेक देता है; उससे वह इन कालप्रेरित संयोग-वियोगादिसे निर्लिप्त होकर विशेष नामरत होता है, इसीको नाम-वन्दनाके नवें दोहेमें कहा गया है—

'नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥'

इसमें संयोग-वियोग आदि जगत्‌के जालरूपमें कालकी करालतासे नामका रक्षकत्व कहा गया है।

यही यहाँ काल-बाधासे चित्तवृत्तिकी रक्षा-विधि है।

कर्मबाधासे बुद्धिकी रक्षा

जैसे वहाँ यशोदा आदि श्रीवृन्दावन आये, वैसे जापक-की वृत्ति कभी त्रेतायुगकी-सी प्राप्त होती है। उसमें कुछ रजोगुणका सम्पर्क रहता है, तब हृदयमें बुद्धिकी प्रधानता रहती है। वहाँ श्रीकृष्ण-बलराम बछड़े चराने लगे, तब ब्रह्माजीको मोहकी बाधा हुई। वैसे ही यहाँ नाम-जापक-की बुद्धिके देवता ब्रह्माजीकी अनवधानतासे बुद्धिपर कर्म-बाधा होती है। इसमें कर्तृत्वाभिमान आता है। व

भगवान्‌ने अपना सृष्टि-कर्तृत्व दिखा उनका मोह छुड़ाया है, वैसे ही नामद्वारा विवेक प्राप्त होता है कि कर्मोंके कर्तृत्वमें ईश्वरका नियम्य होनेसे जीव स्वतन्त्र कर्त्ता नहीं है। इस प्रकार नाम कर्म-बाधा निवारण करता है।

यही नाम-वन्दनाके नवें दोहेमें कहा गया है—

राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥

अर्थात् जापकका लोक-परलोक हित-विधायक नाम ही है। यह इसके सभी मनोरथ पूर्ण करता है। लौकिक सुखोंमें माता-पिताके समान अनहित चाहनेपर भी नहीं देता। 'मैं अपने कर्मोंसे ही लोक-परलोकके हित सम्पन्न करता हूँ' यह भ्रम नहीं रहता।

इस प्रकार नामद्वारा बुद्धिकी कर्म-बाधासे रक्षा होती है।

गुण-बाधासे त्रिधा अहंकारकी रक्षा

जैसे वहाँ वृन्दावनमें ही कालीदहमें कालीनागकी बाधाका संयोग, गोवर्धन-पूजापर इन्द्रका कोप और श्रीनन्दजीके वरुणलोक हरे जानेकी बाधा हुई थी और तीनों बाधाओंसे श्रीकृष्णने ही रक्षा की थी। वैसे ही यहाँ बुद्धिकी कार्यावस्था त्रिधा अहङ्कार है, इसके तीनों गुणोंकी बाधाएँ होती हैं।

जापकको द्वापरयुगकी वृत्ति (दो भाग रजोगुण, एक भाग सत्त्वगुण और एक भाग तमोगुण) में गुण-बाधासे रक्षाकी आवश्यकता पड़ती है। (क) सत्त्वगुण बढ़कर सुखकी स्पृहा बढ़ा, तदर्थ सत्कर्मकी प्रेरणा करता है। जैसे वहाँ कंसने नन्द आदिसे कालीदहके कमल माँगे थे, वैसे यहाँ मनरूपी कंस कर्मचेष्टापर आत्मविवेकरूपी कमलवत् निर्लिप्त वृत्तिकी आकाङ्क्षा करता है। वह वृत्ति निष्काम कर्मसे प्राप्त होती है; किंतु जापक निवृत्तचित्तसे नामरत है। अतः इसे इस कर्मके अङ्गभूत सत्त्वगुण यमुनाके कालीदहके समान और कर्मवृत्ति सहस्रों विषैली कामनारूपी फणोंसे युक्त कालीनागके समान भयंकर जान पड़ती है। इससे यह नन्द-यशोदाकी भाँति रोता है।

इसपर वहाँ श्रीकृष्णने अपनी क्रीड़ासे यमुनाजीके उस दहमें कूदकर और कालीनागको नाथकर कमलपुष्प दे कंसको संतुष्ट कर दिया और कालीनागको सदाके लिये अन्यत्र भेज दिया, वैसे ही नाम कर्मयोगके फलस्वरूप आत्मविवेकका [illegible] कर मनको [illegible] कर देता है और बढ़ते हुए सत्त्वगुणको शान्त कर देता है

जथा भूमि सब बीजमय [illegible]।
[illegible] नाम सब [illegible]॥
([illegible])

[illegible] नाम लेत [illegible] मुकुत [illegible]।
([illegible])

(ख) वहाँपर इन्द्रपूजा छुड़ाकर भगवान्‌ने [illegible] पूजा करायी है। इसपर इन्द्रने [illegible]। भगवान्‌ने गोवर्धन धारणकर [illegible] द्वारा इन्द्रका [illegible] किया है। वैसे ही जापकपर द्वापरके दो भाग [illegible] वृद्धिपर चपलता आती है और इन्द्रियोंके [illegible] करनेकी आवश्यकता पड़ती है। तब नामरूपी श्रीकृष्ण [illegible] विवेक देते हैं कि इन इन्द्रियोंके द्वारा [illegible] हृषीक (इन्द्रियों) की तृप्ति हृषीकेशकी सेवामें होती है। कहा भी है—

'हृषीकेण हृषीकेशसेवनं [illegible]।'

अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा उनके प्रेरक परमात्माका सेवन करना 'भक्ति' है। 'भक्ति' करती हुई इन्द्रियाँ अन्तःकरणके साथ पवित्र हो तृप्त हो जाती हैं। वहाँ इन्द्रके कोपके समान भक्ति करते समय इन्द्रियाँ विषय-स्पृहाओंकी झड़ी लगा देती हैं, तब यहाँ नामाराधित भगवान् इसकी भक्तिनिष्ठ श्रद्धाका (गीता ७। २१-२२ की रीतिसे) धारणकर विवेकरूप सुदर्शनचक्रका योगकर इससे भक्ति करा इसके प्रारब्धसम्बन्धी विषय-चेष्टाओंको भक्तिमें लगा समाप्त कर देते हैं। आगेके लिये कर्म-संस्कार बनते ही नहीं। यही इन्द्रके जलकी समाप्ति है। वहाँ इन्द्र अधीन हो गया, वैसे ही यहाँ इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं। यही नामद्वारा रजोगुणसे रक्षा और नवधा भक्तिकी सिद्धि है।

(ग) वहाँ श्रीनन्दजी एकादशी व्रत कर ब्राह्ममुहूर्तसे पहले यमुना-स्नान करने गये। वहींसे जलके देवता वरुणके दूत उन्हें पकड़ ले गये। तब श्रीकृष्णने वरुणलोक जाकर उन्हें छुड़ाया है। वहींपर वरुणसे भी पूज्य श्रीकृष्णको देखकर श्रीनन्दजीको उनके ऐश्वर्यका विवेक हुआ है। वैसे जापकपर तमोगुण-वृद्धिमें विवेकद्वारा उसे शान्त करनेकी आवश्यकता पड़ती है। श्रीनन्दजीने एकादशी व्रत किया था, उसी प्रसंगमें

वे बाँधे गये थे, वैसे यह जापक भी एकादशी-व्रतपर दृष्टि देता है—

एकादसी एक मन बस कैसेहु करि जाइ।
सोइ ब्रत कर फल पा आवागमन नसाइ॥
(विनयपत्रिका २०३)

'एकादशीके समान एक मनको ही किसी प्रकारसे वश कर ले जाय तो वही (एकादशी) व्रतका फल पाता है, उसका आवागमन (जन्म-मरण) नष्ट हो जाता है।'

एकादशी भगवान्की ग्यारहवीं इन्द्रिय है। उस दिन मुमुक्षु अपनी ग्यारहवीं इन्द्रिय मनको वशमें करनेके उद्देश्यसे अन्नका त्याग कर उसके द्वारा विष्णु (व्यापक परमात्मा) से यह भाव प्रकट करता है कि मैं अब संसारमें जन्म नहीं चाहता। यथा—

'अन्नमयं हि सौम्य मनः।'
(छान्दो० अ० ६)

'अन्नाद्भवन्ति भूतानि।'
(गीता ३। १४)

यही विवेक है। यह शास्त्ररूप यमुनामें मननरूपी स्नानमें समझता है कि जीभके देवता वरुणके द्वारा मैं बाँधा गया हूँ; क्योंकि रसनाके भोगसे ही तृष्णा-बन्धन होता है। नामरूपी श्रीकृष्ण उस बन्धनसे भी छुड़ाकर अपने ऐश्वर्यका विवेक करा देते हैं।

इस प्रकार नाम विवेक देकर तमोगुणसे रक्षा करता है; क्योंकि तमोगुणसे शब्दादि विषय होते हैं। उन्हींसे जीव भव-बन्धनमें पड़ता है। इस प्रकार नाम कर्म, भक्ति और विवेक देकर तीनों गुणोंकी बाधाओंसे रक्षा करता है। इसीको नाम-वन्दनाके नवें दोहेमें स्पष्ट कहा गया है—

'नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥'

अर्थात् कलियुगमें कर्म, भक्ति और विवेक नहीं सिद्ध हो पाते। रामनाम ही एक (प्रधान) सहारा है (इसीसे तीनों प्राप्त हो जाते हैं)।

यहाँ नामद्वारा गुणबाधासे त्रिधा अहंकारका सं[illegible] है।

स्वभाव-बाधासे मनकी रक्षा

मुमुक्षु जापकपर जब कभी प्रारब्धानुसार कलियुगकी [illegible] आती है, तब यह कलि-ग्रसित जगत्के अनुसार स्व[illegible] बाधासे मनकी रक्षा चाहता है। उससे रक्षाका प्रसङ्ग भी न[illegible] वन्दनाके नवें दोहेके अन्तमें कहा गया है—

'कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू[illegible]

'कपटनिधान कलियुग कालनेमिके समान है अ[illegible] नाम सुन्दर मतिमान्, बलवान् श्रीहनुमान्जीके समान है।'

श्रीहनुमान्जीने सुमतिसे कालनेमिके कपटको जान[illegible] बलसे उसे मार डाला है। वैसे ही नाम जापकको सुमति दे[illegible] कलियुगके जालका ज्ञान करा देता है और फिर बल[illegible] वैराग्य देकर उससे उसका नाश करा देता है। बल [illegible] वैराग्य है; यथा—

'जब उर बल बिराग अधिकाई॥'
(रामचरित० उत्तर० १२२)

इस प्रकार नामका स्वामित्व संक्षेपमें कहा गया है [illegible] यह अपने आश्रित जापककी काल, कर्म, गुण और स्वभावकी बाधाओंपर क्रमशः इसके चित्त, बुद्धि, अहंकार और मनकी रक्षा करता है। श्रीरामनाममें ये सब गुण स्पष्ट ही कहे गये हैं—

काल करम गुन सुभाउ सबके सीस तपत।
राम नाम महिमा की चरचा चले चपत॥
(विनयपत्रिका १३०)

धर्म-कल्पद्रुमाराम हरिधाम पथि संबलं मूलमिदमेव एकं।
भक्ति, वैराग्य, विज्ञान, सम, दान, दम नाम आधीन साधन अनेकं॥
तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं।
येन श्रीरामनामामृत पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालं॥
(विनयपत्रिका ४६) *

* यहाँपर नामके एक ही लक्ष्य स्वामित्वपर मैंने सूक्ष्ममें लिखा है। नाम-वन्दनाके नवें दोहेपर 'श्रीमन्मानस-नाम-वन्दना' नामका मेरा एक ग्रन्थ ही है। वह 'खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, खेमवाड़ी बम्बई'में छपा है।

कलियुगमें भगवन्नाम ही परम साधन

(लेखक—प्रो० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र एम० ए०)

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥

(श्रीमद्भागवत १० । ८ । १३)

सत्ययुगमें शुक्लमूर्ति धारण करके ध्यानका उपदेश, त्रेतामें रक्तवर्ण धारण करके यज्ञका उपदेश, द्वापरमें कृष्णवर्ण धारण करके अर्चनाका उपदेश और कलियुगमें पीतवर्ण धारण करके भगवान्ने संकीर्तनका उपदेश दिया है । श्रीमद्भागवतमें वर्णित नवधा भक्तिके लक्षणोंमें एक लक्षण भगवान्का नाम-कीर्तन है। भगवान्के नाम, रूप, गुण और महिमाका श्रवण, कीर्तन, स्मरण तथा भगवान्की पाद-सेवा, पूजन और वन्दन तथा दासभाव एवं सखाभाव तथा आत्मसमर्पण नवधा भक्ति है । यह जो नौ प्रकारकी भक्ति है, इनमें भगवान्का नामजप तथा नामकीर्तन सब प्रकार सुगम एवं सर्वजनसुलभ है । भगवान्के नामकी बड़ी महिमा है । इस कुटिल कलिकालमें एकमात्र भगवन्नाम ही जीवोंका सहारा है । सनक, सनन्दन, नारदादि ऋषियोंने मुक्तकण्ठसे नामकी महिमा गायी है । भगवान्का वचन है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

(पद्मपुराण उत्तर० ९४ । २३)

भगवान्का वास न तो वैकुण्ठमें है, न योगियोंके हृदयमें। जहाँ भगवान्के भक्त प्रेमविह्वल होकर उनका नामस्मरण एवं गुणकीर्तन करते हैं, वहीं भगवान् आ विराजते हैं । भागवतका मुख्य प्रतिपाद्य विषय भागवतधर्म ही है । इस भागवतधर्मको न देवता जानते हैं, न ऋषि; मनुष्यकी बात तो दूर रही; **'धर्मं तु साक्षाद् भगवत्प्रणीतं न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः'** । (श्रीमद्भा० ६ । ३ । १९) इस धर्मके मुख्य ज्ञाता ब्रह्मा, शिव, नारद, सनत्कुमार, कपिल, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, शुकदेव आदि हैं । यह परम गोपनीय विशुद्ध धर्म है । इसे जान लेनेपर अमृतत्व प्राप्त हो जाता है ।

'गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।'

(श्रीमद्भा० ६ । ३ । २१)

भागवतके एकादश स्कन्धमें इस भागवतधर्मकी विशद व्याख्या की गयी है। अज्ञानी जीवोंके उद्धारके लिये भगवान्ने श्रीमुखसे इस धर्मका उपदेश किया है। इस धर्मका मुख्य लक्षण है—भगवान्के मङ्गलमय नामका [illegible] तथा उनके गुणोंका श्रवण एवं कीर्तन । [illegible]

यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित् ।
धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥

(११ । २ । ३[illegible]

'जो आँख मूँदकर भगवान्का नामजप एवं गुणकी[illegible] करता है, वह न तो कल्याण-मार्गमें स्खलित हो सकता है [illegible] न पतित ।'

कथा है कि व्यासजी जब सरस्वती नदीके तटपर एका[illegible] वास कर रहे थे, उस समय उनके मनमें यह प्रश्न उठा [illegible] ज्ञान, वैराग्य धारण करने तथा अनेकानेक धर्मग्रन्[illegible] रचयिता होनेपर भी उन्हें अपनेमें कुछ अपूर्णताका [illegible] अनुभव हो रहा है—'असम्पन्न इवाभाति' (१ । ४ । ३[illegible] मनको शान्ति नहीं मिल रही है। इस अशान्तिके कारणका वि[illegible]षण नारदजीने भागवतके प्रथम स्कन्धमें इस प्रकार किया है[illegible]

भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् ।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥
यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः ।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ॥

(१ । ५ । ८-[illegible]

अर्थात् भगवान्के निर्मल यशका गान तो व्यासज[illegible] किया, धर्मकी व्याख्या भी की, किंतु भगवान्की महिम[illegible] कीर्तन नहीं किया । भगवद्भक्तिकी उसमें कमी रह गयी [illegible] इस कमीकी पूर्ति उन्होंने श्रीमद्भागवतकी रचना करके क[illegible] भगवान्की यह भक्ति किस प्रकार हो सकती है ? भागवतक[illegible] का वचन है—

यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मा-
दार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ।
हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं
कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥

(५ । २५ । १[illegible]

अर्थात् दूसरेके मुखसे श्रवण करके या आकस्मिक रू[illegible] दुःखपीड़ित होकर या परिहासमें यदि महापापी व्यक्ति भगवान्का नामकीर्तन करता है तो वह सब पापोंसे तत्[illegible]

मुक्त हो जाता है। श्रीमद्भागवतमें शुकदेवजीने महाराज परीक्षित्को उपदेश देते हुए कहा है—

तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम्॥
(२।१।५)

'हे राजन्! रोग, शोक, मृत्युभयसे युक्त संसारमें जो जीव अभय होनेकी इच्छा करता है, उसे सर्वात्मभावसे भगवान् हरिके नाम, रूप, गुण, स्वरूप एवं लीलाका श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण करना चाहिये।' महामुनि कपिलदेवजीने कहा है—भगवान्के भक्तोंका संग लाभ करके भगवान्के नाम, रूप, गुण, लीलासम्बन्धी परमानन्दमयी कथाओंका कीर्तन होता है; हृदयानन्दप्रद, श्रुतिमधुर उन सब कथाओंको सुनकर एवं उनके द्वारा उपदिष्ट पथका अनुगमन करके नित्यमुक्तस्वरूप, नित्यानन्दप्रद भगवान् हरिमें क्रमशः श्रद्धा, अचल विश्वास, रति एवं प्रेमाभक्ति सुदृढ़ होती है। केवल वस्तुज्ञान लाभ करके परमतत्त्व भगवान्को नहीं जाना जा सकता। पदार्थतत्त्वज्ञानद्वारा भगवद्भक्तिका मार्ग सुगम नहीं हो सकता। प्रजापति ब्रह्माने श्रीहरिसे कहा है—'हे सर्वव्यापी! जो सब साधक आपकी भक्ति न करके केवल भौतिक वस्तुओंका ज्ञानार्जन करनेमें लगे रहते हैं, उनका परिश्रम उसी प्रकार व्यर्थ सिद्ध होता है, जिस प्रकार भूसीको पीसकर अन्न निकालनेका प्रयत्न।' बिना भक्तिके वास्तविक पदार्थ-ज्ञान भी प्राप्त नहीं हो सकता। परम भागवत महात्मागण ईश्वरके अनुग्रहसे सहज ही तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

भगवत्प्राप्तिके जितने साधन हैं उनमें भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है। वेद-स्मृति-विहित यज्ञ-दानादि कर्म, सांख्य-शास्त्र-वर्णित प्रकृति-पुरुषका विवेक-ज्ञान अथवा योगशास्त्र-वर्णित यम-नियमादि अष्टाङ्गयोग—इन सबसे भगवद्वशी-कारिणी भक्ति श्रेष्ठ है।

'सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा।'
(नारदकृत भक्तिसूत्र २५)

क्यों श्रेष्ठ है? इसके उत्तरमें कहा गया है—

'स्वयं फलरूपतेति ब्रह्मकुमाराः।' (नारदभक्तिसूत्र ३०)

भगवान् ब्रह्मा और उनके पुत्र सनक-सनन्दनादि ब्रह्मचारी, सिद्ध तथा महर्षियोंका कथन है कि कर्म, योग, ज्ञानादिद्वारा जो पुरुषार्थ सिद्ध होता है, भक्ति स्वयं उस अमृत फलके स्वरूप है।

'अन्यान्यसाधननिरपेक्षपरमानन्दप्रदायिनी।'

भगवद्भक्ति स्वयं ही आत्मज्ञान, कैवल्य-मुक्ति और ब्रह्मानन्द तथा भगवान्के साथ दास्य-सखा-वात्सल्य एवं प्रेम-सम्बन्धके कारण परमानन्द-रस प्रदान करती है।

नवधा भक्तिके मूर्तरूप भरतजी थे। श्रीरामकथाका श्रवण एवं उनके नामका स्मरण करके वे अत्यन्त आह्लादित हो उठते थे।

हनुमान्जी जब लंकाविजयके पश्चात् भरतजीके पास पहुँचकर उनका संदेश सुनाते हैं, तब भरतजी कहते हैं—

बहूनि नाम वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम्।
शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम्॥
(वा० रा० युद्ध० १२६। १)

'श्रीरामचन्द्रजीको वनमें गये बहुत वर्ष बीत गये, किंतु उसके बाद आज ही अपने स्वामीका प्रीतिजनक गुण-कीर्तन मैं सुन रहा हूँ।'

इसी प्रकार जब गुहने भरतजीको प्रणाम किया उस समय उसने देखा कि मेघके समान श्याम शरीरवाले, चीरवस्त्र पहने हुए तथा जटा-मुकुट धारण किये हुए भरतजी श्रीरामका स्मरण-चिन्तन एवं नाम-कीर्तन कर रहे हैं।

राममेवानुशोचन्तं राम रामेतिवादिनम्।
ननाम शिरसा भूमौ गुहोऽहमिति चाब्रवीत्॥
(अध्यात्मरामायण २।८।२१)

इस प्रसंगका वर्णन तुलसीदासजीने इस प्रकार किया है—

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥

बार-बार रघुनाथजीका संवाद सुनकर भी भरतजीको तृप्ति नहीं होती थी। सम्पूर्ण चरित्रको सुनकर वे परमानन्दमें लीन हो गये। वे मनको अतिशय हर्षित करनेवाली वाणीमें हनुमान्से बोले—

'चिरस्य पूर्णः खलु मे मनोरथः।'
(वा० रा० ७। १२६। ५५)

'अहो! आज मेरा बहुत दिनोंका मनोरथ पूर्ण हुआ।'

भक्तप्रवर महाकवि तुलसीदासजीने तो अपने रामचरित-मानस तथा विनयपत्रिकामें नामजप एवं नाम-कीर्तनको सर्वाधिक महत्त्व दिया है। कलियुगकी भक्तिका निरूपण करते हुए उन्होंने लिखा है—

अग्निका स्पर्श करेगा तो उसका शरीर जलेगा ही।' इसलिये प्रतिदिन प्रातःकाल कर्मजीवनमें प्रवृत्त होनेके पूर्व नाम-जप या नाम-कीर्तन कुछ समयतक अवश्य कीजिये। इससे चित्त-को बड़ी शान्ति मिलेगी, मन निष्कलुष होता जायगा और भगवान्‌में आस्था सुदृढ़ होती जायगी।

वर्तमान भौतिकवादी सभ्यतामें मनुष्यका जीवन अत्यन्त कर्मव्यस्त हो गया है। अहर्निश हम धन-संचयमें लगे रहते हैं। धन-संचयका लक्ष्य होता है—भोग्य पदार्थोंद्वारा अपनेको आप्यायित करना। किंतु भोग-लालसाकी तो कभी तृप्ति होती नहीं।

'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।'
(मनु० २। ९४)

इस प्रकारके भोगपरायण वातावरण एवं व्यस्त जीवनमें मनुष्यसे नाम-जप-कीर्तन एवं भजनके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं हो सकता। इसीलिये भक्तिको और भक्तिके [illegible] रूपोंमें भी नाम-जप एवं कीर्तनको सबके लिये सुलभ [illegible] गया है। कलियुगके मनुष्योंके लिये अन्य कोई गति न[illegible]

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

'अहो! मनुष्यकी विषयलोलुपता कैसी आश्चर्य[illegible] है। कोई-कोई तो बोलनेमें समर्थ होनेपर भी भगवन्ना[illegible] उच्चारण नहीं करते; किंतु हे जिह्वे! मैं तुझसे कहता हूँ 'गोविन्द! दामोदर! माधव! इस नामामृतका ही नि[illegible] प्रेमपूर्वक पान करती रह।'

वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चि-
दहो जनानां व्यसनाभिमुख्यम्।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव
गोविन्द दामोदर माधवेति॥

नाम-महिमा

(लेखक—स्वर्गीय श्रीभीमचन्द्र चटर्जी बी० एस-सी०, एम० आई०, ई० ई०, एम० आई० ई०, एफ० आर० एस० ए०)

मानव-सभ्यताके प्रारम्भसे ही भगवन्नामकी महिमा स्वीकार की गयी है। यह बात भलीभाँति ज्ञात है कि जब तुम किसीको अपने मनका प्रेम प्रकट करनेवाले मधुर शब्दों-से पुकारते हो और उसे 'भाई' कहते हो तो वह कैसा प्रफुल्लित होता है? तब तुम उससे कोई भी काम करवा सकते हो। परंतु यदि उसी आदमीको कटुस्वरमें पुकारा जाय और उसे 'गधा' कहा जाय तो वह उससे असंतोष प्रकट करेगा और तुम जो भी काम उससे कराना चाहोगे, उसे करने-से इन्कार कर देगा। जब किसीको 'भाई' कहकर पुकारा जाता है तो वह वस्तुतः भाई ही नहीं हो जाता; इसी प्रकार जब उसे 'गधा' कहा जाता है तो वह गधा भी नहीं हो जाता; परंतु कठोर एवं कटुतापूर्ण शब्द चाहे कितने ही निरर्थक हों, अपमान प्रकट करते हैं। इसीलिये वे क्रोधकी भावना उत्पन्न करते हैं। इसका कारण यह है कि शब्द अथवा नाममें उसकी अपनी एक अन्तर्हित शक्ति होती है।

महान् संत कबीरने कहा है—

'सबसे मीठा बोलो। इससे तुम सबको सुखी कर सकोगे। कठोर शब्दोंका त्याग कर दो। यह सबको वशमें करनेका मन्त्र है।'[1]

इससे सिद्ध है कि शब्द केवल रिक्त या निरर्थक ध्वनि नहीं हैं। चाहे जिस विधिसे परीक्षा की जाय, शब्दशक्ति[illegible] बोध सहज ही प्राप्त किया जा सकता है। यदि साधार[illegible] शब्दोंमें यह प्रभाव है तब भगवन्नामकी तो बात ही क[illegible] है? इसमें कोई संदेह नहीं कि भगवन्नाममें भगवान्[illegible] सम्पूर्ण शक्ति निहित है।

'जहाँ कहीं भी कृष्ण नामका उच्चारण होता है व[illegible] वहाँ स्वयं कृष्ण अपनेको व्यक्त करते हैं।'[2]

'हे अनेक नामोंमें व्यक्त होनेवाले प्रभो! तुमने इ[illegible] नामोंमें अपनी सम्पूर्ण (आध्यात्मिक) शक्ति भर दी है।'[3]

प्रभो! तुम्हारे नाम असंख्य हैं। वे व्यर्थ या खाली शब्द ही नहीं हैं। इनमेंसे प्रत्येक तुम्हारी आध्यात्मिक शक्तिसे पूर्ण है। जब कोई भक्तिपूर्वक इन नामोंको लेता है, तब तुम्हार[illegible] शक्ति भक्तकी आत्मामें प्रवेश कर जाती है और वह तुम्हार[illegible] सर्वव्यापक सत्ताके भावसे ओतप्रोत हो उठता है।

१. सबसे मीठा बोलिये, सुख उपजै चहुँ ओर।
बसीकरन यह मंत्र है, तज दे बचन कठोर॥

२. जाहाँ जाहाँ नाम ताहाँ ताहाँ कृष्ण स्फुरे।

३. 'नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिस्तत्रार्पिता…'

अनुमान और शास्त्रवाक्य ।'[१५] साधारणतः हम प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणमें विश्वास करते हैं। परमात्मा इनके परे है और उसकी सत्ता सिद्ध पुरुषों एवं शास्त्रोंके वाक्यों-द्वारा प्रमाणित है ।[१६]

सर ओलिवर लॉज इसे इस प्रकार कहते हैं—'जो वस्तुएँ हमारे ज्ञानके लिये बहुत ऊँची हैं, उनके सम्बन्धमें जानकारी हमें कैसे हो सकती है ?'

'हमें मानवजातिके महान् शिक्षकों, प्रवक्ताओं, कवियों और संतोंसे शिक्षा लेनेका प्रयत्न करना चाहिये। हमें उनकी स्वानुभूतिपूर्ण रचनाओंको समझने और उनकी व्याख्या करनेकी चेष्टा करनी चाहिये ।'[१७]

'हमें कवि और कलाकार, धर्मात्मा और सदाशय पुरुष मिलते हैं, जिन्होंने नित्य सत्ताका दर्शन करना सीखा है। इसलिये यदि हमें पूर्णतः आत्मदर्शन करना हो तो हमें उनको भी अपना शिक्षक बनाना चाहिये ।'[१८]

और अपने शास्त्रोंमें हमें ये वाक्य मिलते हैं—

'ईश्वर पुरुषविशेष है जो सर्वबन्धनोंसे मुक्त है और कर्म एवं कर्मफल अथवा कर्मबीजसे प्रभावित नहीं है ।'[१९]

'उसका निर्देशक प्रणव (ॐ) है। जपमें उसी उच्चारण एवं ध्यान करना चाहिये ।'[२०]

प्रणवकी महिमाका ध्यान [करने और ॐका जप] करने हमें क्या फल मिलेगा ?

'इसके फलस्वरूप मुमुक्षुके हृदयमें ज्ञानका उदय होग और आध्यात्मिक उन्नतिके मार्गकी सम्पूर्ण बाधाएँ दूर हो जायँगी ।'[२१]

इस ज्ञानयोगकी सिद्धिको स्वयं श्रीभगवान्का प्रसाद समझना चाहिये ।

'उन निरन्तर मेरे ध्यानमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक मुझे भजनेवाले भक्तोंको मैं वह बुद्धियोग (तत्त्वज्ञानरूप योग) देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं ।'[२२]

'उनपर अनुग्रह करनेके लिये ही मैं स्वयं उनके अन्तःकरणमें एकीभावसे स्थित रहकर अज्ञानसे उत्पन्न हुए अन्धकारको प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपकद्वारा नष्ट करता हूँ ।'[२३]

जब हृदय निरन्तर जप करने और प्रणवकी महिमाका ध्यान करनेसे निर्मल हो जाता है, तब मूर्तिमान् चेतना अथवा शरीरी आत्माकी सिद्धि ज्ञानके द्वारा होती है। फिर, कोई विघ्न-बाधा नहीं रह जाती। बिना किसी बाधाके समाधि-अवस्थाकी प्राप्ति होती है।

ये विघ्न क्या हैं ?

'बीमारी, थकावट, संशय, प्रमाद, आलस्य, भोग्य वस्तुओंमें आसक्ति, भ्रान्ति, योगकी अनवस्थिति, अस्थिरचित्तता—ये सब मनको चञ्चल एवं अशान्त करनेवाली चीजें हैं ।'[२४]

---

१५. 'प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ।' (योगसूत्र १ । ७)

१६. सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात् ।
तस्मादपि यदसिद्धं परार्थमाप्तागमात् ··· ··· ॥

17. "We should strive to learn from great teachers, the Prophets and poets and saints of the human race and should seek to know and interpret their inspired writings." ("The Substance of Faith allied with Science" by Sir oliver Lodge P. 132.)

18. "We find the poets and artists, the men of holiness and the men of goodness; they too have learned to see existence *sub specie aeternitatis* and they too must be our teachers, if the spirit is to fully comprehend itself." (Haldane's "Pathway to Reality", Vol. II, p. 269.)

१९. 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।' (योगसूत्र १ । २४)

२०. 'तस्य वाचकः प्रणवः ।' 'तज्जपस्तदर्थभावनम् ।' (योगसूत्र १ । २७-२८)

२१. 'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।' (योगसूत्र १ । २९)

२२. तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ (गीता १० । १०)

२३. तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ (गीता १० । ११)

२४. 'व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ।' (योगसूत्र १ । ३०)

जो मुमुक्षु योगमें पारंगत नहीं है, उसकी आत्मसाधना एवं समाधिकी प्राप्तिमें जो कारण बाधक होते हैं उन्हें ही 'विघ्न' कहा जाता है । ये विघ्न कई प्रकारके होते हैं । मुख्य-मुख्य ऊपर गिनाये गये हैं ।

१८७७ ई० में ए० लेविरुके लिये निजी रूपसे मुद्रित 'क्रिप्टिक मैसनरी' में निम्नलिखित वाक्य मिलते हैं—

'ज़ोरोस्टर (अथवा मन्दिरनिर्माणके ८०० वर्ष पूर्व हुए ज़रथुस्त्र) जेंदावेस्तामें लिखते हैं—स्वयं ईश्वरने प्रत्येक जाति या देशको ऐसे नाम दिये हैं, जिनकी शक्ति अवर्णनीय है और जिनमें रहस्य भरा हुआ है । इसीलिये यह शब्द यहूदियों-के मनमें अवर्णनीय शक्तिवाला सिद्ध हुआ । इसने उनको एक जाति या राष्ट्रके रूपमें संघटित रक्खा और उनको महान् शक्ति दी । हिंदुओंके पास महान् प्रभावकारी शक्तिसे पूर्ण एक ऐसा शब्द है कि किसी ब्राह्मणके एक बार उसका उच्चारण करनेसे स्वर्ग हिल जाय, पृथ्वी अपनी धुरीपर डगमगा उठे, मृतक जीवित हो जाय, जीवित प्राणी मर जायँ, व्यक्ति जहाँ चाहे पहुँच जाय और उच्चारण करनेवालेमें देवोंका ज्ञान उत्पन्न हो जाय । यह शब्द ॐ, 'ओम' या 'आन' है और त्रिमूर्तिका है । 'आन' शब्द मिस्री भाषाका है । यह सबसे पुराना देवता माना जाता था; क्योंकि प्लेटो (अफ़लातून) ने, जिसने मिस्री स्रोतोंसे अनेक बातोंका ज्ञान प्राप्त किया था, लिखा है—'मुझे उस 'आन' देवके विषयमें बताओ—जो था, है और जिसका कभी जन्म नहीं हुआ ।' वे 'आन' को वही महिमा देते हैं जो यहूदी 'जीहोवा' को प्रदान करते हैं । किंतु हिंदुओं, चैल्डियनों और मिस्रियोंके कतिपय शब्दोंमें इतनी घनिष्ठ समानता है कि हम यह बात मान सकते हैं कि उनका स्रोत या उद्गम एक ही है । यहूदी नामकी शक्तिमें विश्वास रखते थे । उनका विश्वास था कि नामसे उनकी बुराइयाँ दूर हो जाती हैं, पहलेसे खतरोंका पता लग जाता है, मृतक जी सकता है, आकाश या स्वर्गसे अग्नि आ सकती है, भवन टुकड़े-टुकड़े हो सकते हैं, उसके शत्रुओंका अङ्ग-भङ्ग एवं विनाश हो सकता है । यह शब्द उन (यहूदियों) को महत् ज्ञानसे पूर्ण कर सकता है; इसके उच्चारणसे स्वर्ग एवं पृथ्वी हिल जाते हैं और देवदूत आश्चर्य-चकित हो उठते हैं ।

'.................न्यायाधीश-भवनके सबसे निचले हिस्सोंकी खोज करनेपर उन्हें एक महराबदार तहखाना मिला, जिसमें संगमर्मरका एक स्तम्भ था । इसपर बहुमूल्य रत्नोंसे जटित एक त्रिकोण बना था जिसमें यूनानी शब्द 'ओम' खुदा हुआ था । इसको पा जानेसे वह ऐसे ज्ञान एवं अनुभूतिसे भर गया कि उसका नाम [illegible] और आजतक गूँज रहा है ।

अब हम पुराणोंके एक दो उदाहरण देते हैं —

'हे कृष्ण, हे गोविन्द, हे हरे, हे मुरारे, हे नाथ, हे नारायण, हे वासुदेव, हे गोप-गोपियोंके स्वामी, हे अनन्त नारायण ! हमें आवागमनके सागरके पार कीजिये ।'[25]

जब ऋषि-मुनियोंने देखा कि उनके चारों ओर दावाग्नि धधक रही है और किसी ओरसे निकलनेका मार्ग नहीं है, तब उपर्युक्त रूपमें उन्होंने भगवन्नामका गायन आरम्भ किया । प्रभुकी कृपा वर्षाके रूपमें आयी, अग्नि बुझ गयी और वे पूर्ववत् खेलने लगे ।

प्राचीन कथाओंमें विश्वास करना कठिन होता है । पर देखिये पदार्थवादी रूसो क्या कहता है—

'एक रविवारको, जब मैं माँके पास था, 'ओरेटरी' के एक मकानमें, जो माँके द्वारा लिये हुए मकानसे लगा था, आग लग गयी । इस मकानमें 'ओरेटरी' (एक प्रकारकी साधुमण्डली) की रसोईकी भट्ठी थी और सूखी हुई लकड़ियाँ भरी थीं । बहुत शीघ्र सर्वत्र आग फैल गयी । मकान बड़े खतरेमें था । उसको लपटोंने घेर लिया था; क्योंकि हवा उधरकी ही थी । प्रत्येकने जल्द-से-जल्द सामान हटा लेनेकी तैयारी की और मेरे पुराने कमरेके सामनेके बगीचेमें ले जाकर रखनेका निश्चय किया ।

'मैं इतना घबरा गया था कि जो भी चीज मेरे हाथ लगती उसे खिड़कियोंसे बाहर फेंक देता; यहाँतक कि पत्थरका एक बड़ा खल भी, जिसे मैं शायद ही दूसरे समय उठा सकता, मैंने फेंक दिया । इसी प्रकार मैं एक बड़ा दर्पण भी फेंकने जा रहा था कि किसीने मुझे रोक दिया । बिशप (धर्माचार्य) महाशय भी, जो माँसे मिलने आये थे, चुप न बैठे रहे । वे माँको बगीचेमें ले गये और वहाँ उसके तथा एकत्र हुए अन्य लोगोंके साथ प्रार्थना करने लगे । कुछ समय बाद, जब मैं वहाँ गया, मैंने सबको घुटनेके बल झुके हुए पाया । मैंने भी वैसा ही किया । धर्माचार्यकी प्रार्थनाके समय हवाका रुख बदल गया, पर यह इतने आकस्मिक रूपमें और ऐसे ठीक समयपर हुआ कि जिन लपटोंने

२५. श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव । गोपेश गोपीश भवार्णवेऽस्माननन्त नारायण रक्ष रक्ष ॥

मकानको घेर लिया था और खिड़कियोंके रास्ते अंदर आ रही थीं, उनका रुख ब्राह्मणकी दूसरी ओर पलट गया और मकानको कुछ भी हानि नहीं पहुँची ।'

बादको, अपनी पुस्तक 'कनफेशन्स' (अपराध-स्वीकृतियाँ) में रूसोने लिखा है—'इस घटनाको चमत्कार कहनेमें मैं गलतीपर था । मैंने विशपको प्रार्थना करते देखा था और इस प्रार्थनाके बीचमें, ठीक मौकेपर, मैंने हवाके रुखको पलटा हुआ देखा था । इसे मैं प्रामाणिकतापूर्वक कह सकता हूँ । पर इनमेंसे एक चीज दूसरेका कारण थी, इसे मैं नहीं कह सकता था; क्योंकि इसे सम्भवतः मैं जान भी न सकता था ।' (रूसोकी पुस्तक 'कनफेशन्स' पृष्ठ १०८ एव्री मैन्स लाइब्रेरी संस्करण) ।

एक वृद्ध ब्राह्मणको हत्याके अपराधमें फाँसीकी सजा हुई थी । वह बनारस जेलमें अपनी फाँसीकी कोठरीमें बैठा अपने अन्तिम दिन गिन रहा था । जिस गाँवमें ब्राह्मण रहता था, उसमें एक खून हुआ था । पुलिसने चार गवाहोंको इस ब्राह्मणके विरुद्ध झूठी शहादत (गवाही) देनेको राजी किया । इससे उसे फाँसीकी सजा मिली । इन गवाहोंको सिखाते समय पुलिसने उन्हें वचन दिया था कि सेशन अदालतसे ब्राह्मणको हल्की सजा मिलेगी, पर बादमें वह छोड़ दिया जायगा । पुलिसने गाँववालोंपर दबाव डालकर और उनको धमकाकर गवाह बनाया था और वे अदालतमें पेश हुए थे । जब ब्राह्मणको मालूम हुआ कि उसे फाँसीकी सजा हुई है तो उसी समयसे वह मृत्युतक भगवन्नामोच्चारणका निश्चयकर रामनाम जपने लगा । जेलमें भी वह केवल रामनाम जपता रहता । जेलके अन्य सामान्य कैदियोंने उसे अपने उपहास और विनोदका लक्ष्य बनाया पर वे जपको खण्डित करनेमें असमर्थ रहे । इसके पूर्व मैंने कभी किसीको इतनी तन्मयतासे भगवान् रामका नाम जपते नहीं देखा था । इस प्रकार दिन बिताते हुए वह हाईकोर्टके निर्णयकी प्रतीक्षा कर रहा था । एक दिन जेलमें बड़ा तहलका मचा । पता लगाने-पर मुझे मालूम हुआ कि जब उन गवाहोंको पता लगा कि ब्राह्मणको फाँसीकी सजा हुई है, तब वे अपने कुटुम्बके सम्पूर्ण आदमियोंके साथ सेशन जजके पास पहुँचे और उसको सारी कहानी ठीक-ठीक सुना दी कि किस प्रकार पुलिसने उनको झूठी गवाही देनेपर राजी किया, जिसके फलस्वरूप ब्राह्मणको फाँसीकी सजा हुई । उन लोगोंने प्रार्थना की कि 'ब्राह्मणके बदले वे अपने सारे कुटुम्बके साथ फाँसीपर चढ़ा दिये जायँ ।' विज्ञ जजने परिस्थितिको समझकर ब्राह्मणकी सजा हटा दी और झूठी गवाही जुर्ममें उन गवाहोंको दो-दो वर्षकी कड़ी सजा दी । तो ब्राह्मणकी जान बचानेके लिये अपनी जान दे[ने] तैयार थे, इसलिये उन्होंने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक य[ह] स्वीकार किया । इसी कारण जेलमें तहलका मचा हुआ 'रामनाम्'का यह प्रभाव देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हु[ई]

बब्बाकुम्ब-रहस्य

'बब्बाकुम्ब-रहस्य'में ली बब्बाकुम्ब हत्यारा था । जि[सका] खून हुआ था, उसका नाम मिस एम्मा केसे (M[iss] Emma Keyse) था और उसकी अवस्था हत्याके [समय] ७० वर्षकी थी । वह रानी विक्टोरियाकी अर्दलीमें रही महिला (Lady-in-Waiting) थी । उसके सि[रपर] दो गहरे प्रहार हुए थे, जिससे पीछेकी तरफ उसकी खो[पड़ी] चूर-चूर हो गयी थी और गला दोनों तरफ कानतक [काट] दिया गया था । गलेके पीछे जो रीढ़की हड्डी होती है, [वह] भी काट दी गयी थी ।

'ली'के पाजामोंकी परीक्षासे पता चला कि उनपर का[फी] खून गिरा था और खूनको धोनेका प्रयत्न किया गया है । एक खाली तेलके डिब्बेपर खून लगे हाथके निशान पाये ग[ये] थे, जो लीके दाहिने अँगूठे और उँगलियोंसे बिल्कुल मिल[ते] थे । मिस केसेकी हत्याके अपराधमें लीकी संदेहमें गिरफ्तारी हुई थी । इसपर लीने केवल इतना कहा—'ओह ! केव[ल] संदेहपर ! अच्छा, ठीक है !' इसके बाद उसने अपने कं[धे] हिलाये और हँसा । लीने अपनेको निर्दोष बताया और जाँच तथा मजिस्ट्रेटकी परीक्षाके समय बिल्कुल शान्त बना रहा; यद्यपि उसके विरुद्ध प्रमाण हर तरहसे काफी थे ।'

बीस मिनटके सलाह-मशविरेके बाद जूरीने उसे अपराधी घोषित किया और जजने सजा सुनाते हुए कहा—'मुझे इसका आश्चर्य है कि एक आदमीके चेहरेपर, जो इतना अमानुषिक अपराध कर सकता है, ऐसी शान्ति है, जैसी तुम्हारे चेहरेपर दिखायी पड़ी है ।'

इसपर लीने उत्तर दिया—'माई लार्ड ! मैं इतना शान्त हूँ, इसका कारण यह है कि मैंने अपने ईश्वरमें विश्वास रक्खा है और माई लार्ड ! मेरा ईश्वर जानता है कि मैं निरपराध हूँ ।' इसके बाद वह मुसकराता हुआ प्रसन्नताके साथ कटघरेसे बाहर निकला ।

सोमवार, २३ फरवरी १८८५ को एक्जेटर जेलमें लीकी फाँसी होनेवाली थी। उसे बाकायदा फाँसी देनेके लिये लाया गया; पर जैसा कि ज्ञात है, फाँसी नहीं हुई। असाधारण रूपसे आश्चर्यजनक परिस्थिति उत्पन्न हुई। फाँसी लगानेवाला बेरी नामका आदमी था और वध-काष्ठ नया-नया ही बना था और स्थायीरूपसे रखनेके विचारसे बननेके कारण उसकी बनावट बड़ी मजबूत थी।

वजन उठानेका यन्त्र (लीवर) घुमाया गया पर फंदा नहीं गिरा। दूसरी बार लीवर घुमाया गया और वार्डरोंने दोनों तरफ जोरसे लातका धक्का दिया पर फंदा नहीं हिला। चेहरेपर फाँसीकी टोपी पहने हुए लीको वहाँसे ज्यों ही हटाया गया, पलड़ा झूल गया। किंतु छः मिनट बाद जब फिर उसे फाँसीके तख्तेपर चढ़ाया गया तो उसने कार्य करनेसे इन्कार कर दिया। लीको उसकी कोठरीमें ले जाया गया और झूलनेवाले तख्तेके किनारे काटे गये। ८ बजकर १० मिनटपर पुनः उसे फाँसीपर चढ़ानेके लिये लाया गया पर फिर वही बात हुई; तख्ता नहीं गिरा। फिर लीको उसकी कोठरीमें ले जाया गया। होम सेक्रेटरी (स्वराष्ट्र-सचिव) को लिखा गया। फाँसी स्थगित हो गयी और बादमें वह फाँसीकी सजा आजन्म कारावास दण्डमें बदल गयी।

उस शारदीय प्रभातमें मैंने स्वयं वधस्तम्भपर खड़े होकर तख्ते काटनेके प्रयत्नमें जो निशान उसपर थे, उन्हें देखा। यह प्रयत्न असफल हुआ था। जिस दिन लीको फाँसी होनेवाली थी, उससे पहली रातको उसने एक स्वप्न देखा था कि तीन बार उसे फाँसी देनेका यत्न किया जायगा परंतु उसकी जिंदगी बच जायगी। ली जेलको भलीभाँति जानता था; क्योंकि वह पहले भी जेल आ चुका था।

यह स्वप्न उसने वार्डर बेनेटको बताया था और बेनेटने इसकी रिपोर्ट दूसरे दिन तड़के ही एक्जेटर जेलके गवर्नरसे की थी। हर तरहकी खबरदारीके बावजूद भी ली फाँसीसे बच गया।

इस कथाका परिणाम और अधिक उल्लेखनीय है। गवर्नर अपने पास एक पाकेट पञ्चाङ्ग रखता था जिसमें प्रत्येक तिथिके साथ धर्मग्रन्थसे एक वाक्य दिया गया था। फरवरी १८८५ के उस दिन, जब अपराधीको फाँसी दी जानेवाली थी, उस पञ्चाङ्गमें ये वाक्य मिले—'निस्संदेह **प्रभुने ही यह किया है।'**

(मेमॉयर्स ऑव फेमस ट्रायल्स। लेखक—ईवलीन वर्नोवी एम्० ए०, एस्० सी० एल्०, द्वितीय संस्करण—पृष्ठ २१९—२२५)

गीतामें भगवान्‌ने ठीक ही कहा है—

'……यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भावसे मुझको निरन्तर भजता है, तो वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है।'

'वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे कौन्तेय (अर्जुन)! तुम निश्चयपूर्वक सत्य जानो कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।'*

इलाहाबादमें यमुनापुलके पास एक अन्धी स्त्री यमुनाके करारेसे तटपर पानी पीनेके लिये नीचे उतरी। दुर्भाग्यवश वह फिसलकर नदीमें गिर पड़ी और धारामें बह गयी। वर्षाका समय था और नदी पूरे जोरपर थी। यह घटना रातको हुई। रात भी अँधेरी थी। संयोगवश राय साहब लालमोहन बनर्जी किलेके पास अपनी नावपर आनन्द ले रहे थे। बिजलीकी क्षणिक चमकमें उन्होंने देखा कि कोई काली चीज नदीकी धारामें बही जा रही है। जब उन्होंने उसकी तरफ नाव बढ़ायी, उनको मनुष्यकी वाणी सुनायी दी—'हे पिता! हे राम!' यह एक संयोग था कि उन्होंने स्त्रीको देखा और बड़ा कष्ट उठाकर उसकी रक्षा की। नदीकी धारा इतनी तेज थी कि स्त्रीको तटपर लानेके प्रयत्नमें उनकी नाव लगभग एक मीलतक धारामें बह गयी। राय साहबने लगभग सौ प्राणियोंको यमुनामें डूबनेसे बचाया। माघ मेलाके समय वे अपने पुत्रके साथ यमुनामें अपनी नावपर रहते थे और डूबते हुए आदमियोंकी रक्षाका प्रयत्न करते थे। यह उनका एक प्रियकार्य (हाबी) था। वह स्त्री अस्पतालमें भरती की गयी और सावधानीसे चिकित्सा करनेपर उसके प्राण बच गये। सिटी मजिस्ट्रेट तथा अन्य लोगोंको इससे बड़ा आश्चर्य हुआ कि तैरना न जाननेवाली एक अन्धी औरत वर्षाकी बाढ़से पूर्ण यमुनामें डूबनेसे किस प्रकार बच गयी। स्पष्ट है कि जब स्त्रीने देखा कि उसकी जान खतरेमें है तब उसने परम-पिताकी शरण ली और उन्होंने उसके प्राण बचा लिये।

---

* अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥
(गीता ९। ३०-३१)

एक दिन कुछ मित्रोंके साथ मैं रायपुरकी एक सड़कपर टहल रहा था कि मैंने देखा, दो मुसल्मान लड़के अपनी गायोंको मैदानमें चराने ले जा रहे हैं। इनमेंसे एककी अवस्था ८ वर्षकी और दूसरेकी १२ वर्षके लगभग थी। खेतसे धान काटकर एक जगह—खलिहानमें—रख दिया गया था और सूखी घासकी एक ढेर कर दी गयी थी। खेतके बीचमें लोगोंके निरन्तर आने-जानेसे एक पगडंडी बन गयी थी। एकाएक छोटा लड़का रुक गया। पगडंडीपर ही एक बड़ा कोबरा साँप आक्रमण करनेको तैयार बैठा था। लड़केने एक [illegible] खड़े होकर 'अल्लाह मैं मरा' कहते हुए आँख मूँदकर लकड़ी चलायी। लकड़ी जोरसे उस विषधरके फणमें लगी और उसने इतने जोरसे उसे जमीनपर दबा दिया कि साँप अपना फण न उठा सका। साँप बहुत छटपटाया परंतु लकड़ीसे अपनेको छुड़ा न सका और इसी चेष्टामें आध घंटे बाद उसके प्राण निकल गये। तब दोनों लड़के इनामकी आशासे, साँपको सिटी मजिस्ट्रेट श्रीन्यूबरीके बँगलेपर ले गये।

रामनाम स्वयं रामसे भी अधिक शक्तिमान् है। उस भक्तकी जय हो जो सदैव भगवन्नामका जप करता है!

भगवन्नाम-जप-कीर्तन ही सुलभ साधन

(लेखक—श्रीकामतासिंहजी, एडवोकेट, धर्मभूषण, साहित्यालङ्कार)

भगवत्प्रेम-प्राप्ति साधनोंसे नहीं होती। यह तो भगवत्-कृपापर ही निर्भर है। शास्त्रोंने अनेक मार्ग बताये हैं। इसके लिये कोई कहते हैं इस संसारी सत्यता-असत्यतापर विचार करते रहो। कोई कहते हैं योग-प्राणायाम करो। कोई कहते हैं निष्काम होकर यज्ञयाग करते रहो। परंतु इस युगमें ये सभी कार्य असम्भव नहीं तो दुरूह अवश्य हैं। देश-काल और पात्र—सभी इन साधनोंके विपरीत हैं। युगके प्रभावसे देश-काल-पात्र भी शुद्धताकी अपेक्षा रखते हैं। संत-शिरोमणि श्रीतुलसीदासजीने भी यही कहा है—

कलिजुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा॥
यह कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥

इस कलिकालमें तो भगवन्नाम-जप-कीर्तन ही आधार है। इसमें शुचि-अशुचि, देश-काल-पात्रकी उतनी अपेक्षा नहीं। यदि अपात्र है तो नामके प्रभावसे पात्र बन जायगा। यदि बुरा देश है तो तीर्थ बन जायगा।

लगन हो, रटन हो और नामपर विश्वास हो, इस नाम-जपके प्रभावसे सब कुछ हो सकता है।

नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचार सुजन मन माहीं॥

नामकी महिमाके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा जाय थोड़ा ही है। इसीलिये कहा भी है—

राम राम रटते रहो, जब लग घटमें प्रान।
कबहूँ दीनदयालके भनक परैगी कान॥

'नारायण' नामकी महिमा

है जगमें अघ कौन महान न जाको कियो करवायो अजामिल।
त्यागि दई अपनी धनिका गनिका सग पाप कमायो अजामिल॥
अंत समै जमदूतन सों डरि पूतहिं पास बुलायो अजामिल।
अच्छर चारि—'नरायन'को कहि धाम-नरायन पायो अजामिल॥

—रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

'तस्य वाचकः प्रणवः ।'

'प्रणव ईश्वरका वाचक—ईश्वरकी शब्द-मूर्ति है ।'

सीधे ढंगसे सोचिये । बिना नामके कोई पदार्थ कभी आपके मनमें आता है ? मनमें तो दूर, नेत्रोंके सामने भी कुछ आ जाय और आप उसका नाम न जानते हों तो उसके सम्बन्धमें कुतूहलके अतिरिक्त कुछ सोच पाते हैं ? मनुष्यके सम्पूर्ण विचार शब्दात्मक हैं । बिना शब्दके हम कुछ नहीं सोच सकते । इसलिये हम कहते हैं—नाम और नामीमें अभेद होता है ।

सीधा ही प्रश्न आप कर सकते हैं—'तब चीनी कहनेसे मुख क्यों मीठा नहीं होता ? अग्नि कहनेसे जिह्वा क्यों नहीं जलती ?'

प्रश्न ठीक है । यहाँ केवल यह बात आपने ध्यानमें नहीं रक्खी कि चीनी, अग्नि अथवा इस प्रकारके दूसरे नाम किसी पदार्थके कल्पित ही नाम होते हैं । वे पदार्थके वास्तविक नाम नहीं हैं । जैसे अग्निका जो लाल रूप है—लपटका जो रंग है वह अग्निका ठीक रूप है । सब देशमें, सब कालमें अग्निका वह रूप सबका जाना-पहिचाना है । लेकिन 'अग्नि' यह नाम तो बहुत देशोंमें, बहुत भाषाओंमें कोई नहीं जानता । तब अग्निका नाम अग्नि या फायर ? दोनों नहीं । दोनों ही कल्पित हैं । अग्निका वास्तविक नाम ढूँढ़ने जायँगे तो अग्निका मूल ढूँढ़ना होगा और वह मूल ढूँढ़नेपर अग्नितत्त्व भी मौलिक रूपमें नहीं मिलेगा । मिलेगा परमात्मा; क्योंकि सबका मूल परमात्मा है । 'ब्रह्मैवेदं सर्वम् ।' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।' आदि श्रुतियाँ स्पष्ट कहती हैं ।

तब नाम-नामीका अभेद कहाँ है ? परमात्मामें । क्योंकि सब पदार्थोंका मूल, सब आकृतियोंका [illegible] परमात्मा ही है । परमात्मा ही विश्वरूपमें अभिव्यक्त है । इसीलिये विष्णुसहस्रनाममें भगवान्‌का पहिला नाम 'विश्व' आया है । रूप, आकृति, पदार्थ सब परमात्मा हैं । अर्थात् नामी सर्वत्र परमात्मा ही है । आप दूध कहो, चीनी कहो, अग्नि कहो—सबके रूपमें परमात्मा ही है ।

नामी परमात्मा और नाम ? वह भी परमात्मा । व्याकरणशास्त्रने कहा—'अकारो वासुदेवः स्यात्' 'अ' अक्षर वासुदेव है और यही 'अ' कण्ठ-तालु आदि उच्चारणके स्थान तथा उच्चारण-प्रयत्नके भेदसे समस्त अक्षरोंका रूप लेता है । जैसे कण्ठसे 'अ' को मन्दप्रयत्नसे बोलने लगे तो वह 'क' हो गया, इस प्रकार समस्त स्वर तथा व्यञ्जन और इनसे बननेवाले नाम उस वासुदेव परमात्माके ही रूप हैं । सब नाम अक्षरोंसे बनते हैं । अतएव सभी नाम परमात्मा हैं ।

रूप भी परमात्मा और नाम भी परमात्मा । अतएव नाम और नामी दोनों परमात्मा होनेसे नाम-नामीका अभिन्नत्व अपने-आप सिद्ध हो गया ।

यदि ऐसा है, तो तुम कड़खू, मड़छू, उड़घू आदि क्यों नहीं जपते ? कोई भी सार्थक या निरर्थक शब्द रटा जा सकता है । राम, कृष्ण, गोविन्द, नारायण, वासुदेव, शिव, दुर्गा, गणपति-जैसे शब्दोंको ही भगवन्नाम मानने तथा इनका ही जप करनेका तुम्हारा आग्रह क्यों है ?

यह बात समझने योग्य है । सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् भगवद्रूप है । यह बात सब शास्त्र और संत मानते हैं । भक्तकी ठीक दृष्टि ही यह है—

'मैं सेवक सचराचर रूप रासि भगवंत ।'

लेकिन ऐसा होनेपर भी पूजा मन्दिरमें ही की जाती

है । कोई भी स्थानपर या बबूल, बेर-जैसे वृक्षोंमें पूजन नहीं करता । बात यह है कि पूजनके लिये केवल यह आवश्यक नहीं है कि जहाँ पूजन किया जाय, वहाँ पूज्य उपस्थित हो । वह तो सर्वव्यापक है, सर्वत्र उपस्थित है । आवश्यक यह है कि पूजकके मनमें वहाँ पूज्यकी भावनाका उद्रेक हो और जिस पीठमें पूजन हो रहा है, उसमें भी पूजकके अन्तःकरणको शोधित करनेवाला सात्त्विक शक्तिका प्रवाह विद्यमान हो । इसीलिये मन्दिरोंके श्रीविग्रहोंमें भी वे अधिक माननीय तथा प्रभावशाली माने जाते हैं, जो किसी महापुरुषकी आराधनासे प्रकट हुए तथा भक्त महापुरुषोंद्वारा आराधित होते रहे हैं ।

प्रकृति त्रिगुणात्मिका है । इसमें जैसे सब पदार्थ त्रिगुणात्मक हैं और उनमेंसे कोई सत्त्वगुण-प्रधान, कोई रजोगुण-प्रधान तथा कोई तमोगुण-प्रधान है, वैसे ही शब्द भी जब प्राकृत उच्चारणमें आते हैं, तब वे त्रिगुणात्मक होते हैं । उनमें कोई सात्त्विक, कोई राजस और कोई तामस प्रभाव उत्पन्न करनेवाले हैं । संस्कार-परम्पराके कारण कुछ विशेष नामोंमें हमारा भगवद्भाव है—जैसे मन्दिरकी मूर्ति या शालिग्राममें । कुछ शब्द नित्यरूपसे दिव्य प्रभाव उत्पन्न करनेवाले हैं । महापुरुषोंने उनका जप-अनुष्ठान किया है । इससे उनमें अपार शक्ति आ गयी है । इसीलिये हम उसी प्रकार कुछ शब्दोंको भगवन्नाम मानते तथा उनका जप करनेका आग्रह करते हैं, जिस प्रकार मन्दिरमें पूजा करनेका हमारा आग्रह है ।

इतने सब शब्द या नाम क्यों ? कोई एक ही ईश्वरका नाम क्यों सबके लिये निश्चित न कर दिया जाय ? अनेक नाम और अनेक रूप मानकर तो समाजमें राग-द्वेष, कलह-संघर्ष ही फैलता देखा जाता है ।

कलह-संघर्ष, राग-द्वेष अज्ञानके कारण, अहंकारके कारण अथवा स्वार्थके कारण फैलता है । इसका धर्म या उपासनासे कोई सम्बन्ध नहीं है । जो सम्प्रदाय एक ही धर्म, एक ही नाम, एक ही ग्रन्थ मानते हैं, उनमें कम संघर्ष और रक्तपात नहीं हुआ है । ईसाइयोंमें परस्पर युद्ध हुए हैं, होते हैं । तैमूरलंग, नादिरशाह-जैसोंने लाखों मुसलमानोंका कत्लेआम कराया है । अब भी मुस्लिम देशोंमें परस्पर राग-द्वेष, संघर्ष कम नहीं है । इसलिये यह बात मनसे निकाल देनी चाहिये कि अनेक भगवन्नाम या अनेक भगवद्रूप राग-द्वेषके कारण हैं ।

सब मनुष्य एक रुचि, एक योग्यता, एक स्वभावके नहीं हैं । आप क्या यह पसंद करेंगे कि लोगोंकी रुचिपर प्रतिबन्ध लगा दिया जाय और उन्हें एक-जैसा ही भोजन करनेपर बाध्य किया जाय ? कोई नमक कम खाता है, कोई अधिक । किसीको मीठा पसंद है, किसीको खट्टा या चरपरा । स्वास्थ्यशास्त्र कहता है कि भोजन रुचिके अनुकूल हो तभी उसका ठीक पाचन होता है और वह स्वास्थ्यकारी बनता है, जब कि भोजन गलेसे नीचे उतरते ही उसके स्वादका प्रश्न समाप्त हो जाता है । इतने क्षणिक कालके लिये भी रुचिका कितना सम्मान समाजमें आवश्यक माना जाता है और उसकी पूर्तिके लिये हम-आप कितना श्रम, उद्योग तथा व्यय करते हैं, यह आप अनुभव करें ।

साधन क्षणिक नहीं होता; उसका सम्बन्ध अनन्त जीवनसे है । इस जीवनमें भी उसे निरन्तर दीर्घकालतक दैनिक क्रममें लाना पड़ता है । ऐसे विषयमें मनुष्यकी रुचिका ध्यान न रक्खा जाय तो परिणाम क्या होगा ? कोई स्वभावसे क्रोधी है, कोई शान्त; किसीकी प्रकृति हँसमुख है, किसीकी गम्भीर । अपनी रुचि, अपने स्वभावके अनुसार साधन होगा, तब उसमें मनुष्यका आकर्षण होगा; उसका मन लगेगा । शान्त-स्वभाव व्यक्ति महाभैरवका ध्यान करना पसंद नहीं करेगा; वहाँ उसका मन नहीं लगेगा । इसी प्रकार सहज उग्र व्यक्तिका आकर्षण नन्द-नन्दनमें नहीं होगा ।

रुचिके अतिरिक्त एक वस्तु और है—अधिकार । जैसे सब विद्यार्थी एक योग्यताके नहीं होते, सबको एक कक्षामें नहीं बैठाया जा सकता, वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति साधनके क्षेत्रमें एक भूमिपर नहीं है । जीवन अनन्त है और—

'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥'

(गीता ६ । ४५)

इसलिये जो व्यक्ति जैसी रुचि तथा जैसे अधिकारका है, अपने पिछले जीवनोंसे जिस साधनके क्रममें चला आ रहा है, उसके लिये वैसा ही साधन, वैसा ही भगवद्रूप, वैसा ही भगवन्नाम अधिक उपयुक्त है । उसके आश्रयणमें ही वह शीघ्र प्रगति कर सकता है । यों तत्त्वतः सभी भगवद्रूप तथा सभी भगवन्नाम समान रूपसे अनन्त-अचिन्त्य-शक्ति-सम्पन्न हैं । उनमें तारतम्यकी कल्पना ही नामापराध है । लेकिन साधकके लिये दृढ़ निष्ठा आवश्यक है । जैसे एक लड़कीका एक लड़केसे विवाह हो गया । ऐसा नहीं है

कि उस लड़केसे अधिक बलवान्, रूपवान्, गुणवान्, धनवान् लड़के संसारमें रहे नहीं। लेकिन उस लड़कीके लिये तो उसका वह पति ही सर्वस्व है, दूसरेका विचार ही उसके लिये अधर्म है। इसी प्रकार जब साधक एक नाम, एक रूपका आश्रय ले लेता है तो उसके लिये वही सर्वस्व है। उसको लेकर कहीं तुलनाका विचार ही उसके लिये निष्ठामें व्यभिचार है। उसका जीवन तो अब उसके इष्ट एवं नामके साथ विवाहित हो गया।

यह बात हुई पारमार्थिक उन्नतिके सम्बन्धमें। मनुष्यके पुरुषार्थ चार हैं—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। मोक्ष केवल पुरुषार्थ है, ऐसी बात नहीं है। मोक्ष परम पुरुषार्थ है। मनुष्य-जीवनकी सफलता ही है—जन्म-मरणके चक्रसे छूट जानेमें; किंतु जिनकी रुचि संसारमें ही लगी है, उनके लिये भी भगवन्नाम कामतरु है। यह कल्पवृक्ष उनकी कामना भी पूर्ण करनेवाला है।

नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाए। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए॥
जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥
चहू चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहिं बिसेषि पिआरा॥
—रामचरितमानस-बालकाण्ड

यह बात केवल भावनाकी नहीं है। ऐसी भी नहीं है कि आप इसे समझना चाहें और न समझ सकें। यह तो एक तथ्य है और इसे समझना उत्तम है।

'सीय राम मय सब जग जानी'—यह बात भी भावनाकी नहीं है। जगत् एक चिन्मय ब्रह्मतत्त्वमें प्रतीयमान है—विवर्त है, आप ऐसा मानें, तो और यह न मानकर सच्चिदानन्दका अविकृत परिणाम मानें तो भी—दृश्यमान प्रपञ्चकी कोई वास्तविक सत्ता किसी आस्तिक-दर्शनकी दृष्टिसे मानी नहीं जा सकती। जगत् तथा जगत्‌के सब पदार्थ, सब कार्य प्रतीत ही हो रहे हैं। उनका अधिष्ठान परमात्मा है और इन पदार्थों तथा कार्योंके कारण रूपमें विद्यमान है शब्द—शब्द अर्थात् परमात्माका नाम। भले भौतिक रूपमें आप उसे नभकी तन्मात्रा कह लें।

एक परमात्मामें इतने दृश्य, इतने कार्य क्यों प्रतीत हो रहे हैं? कल्पनासे, अज्ञानसे—सीधे शब्दोंमें भावनाकी दृढ़तासे। इसे स्पष्टरूपमें समझना हो तो इस प्रकार समझना होगा। एक व्यक्तिको कोई अच्छा सम्मोहनकर्ता सम्मोहित (मेस्मराइज्ड) कर देता है। अब उस सम्मोहित व्यक्तिको वह केवल अंगारा दीखता ही नहीं, उससे उसे गरमी लगती है। सम्मोहित व्यक्तिको बरफका टुकड़ा दिखाकर वह कहता है—'यह अंगारा है' तो उसे वह अंगारा ही दीखता है। इतना ही नहीं, यदि वह उसके हाथपर डाल दिया जाय तो छाला पड़ जायगा, यह निश्चित तथ्य है। अब हिमखण्डमें इतनी उष्णता आयी कहाँसे? सम्मोहित व्यक्तिकी संशयरहित भावनासे।

हम आप सबको यह जो सांसारिक प्रपञ्च दीख रहा है, यह कैसे दीख रहा है? यह वस्तुतः है नहीं। यह दीख रहा है मोहके कारण। मोह—वही मोह जो सम्मोहितको होता है। जीव अपने ही जन्म-जन्मके कर्मसंस्कारोंकी भावनासे मोहित हो रहा है।

मोह निसा सब सोवनिहारा। देखहिं सपन अनेक प्रकारा॥

यह जो दीख रहा है, तथ्य नहीं है—स्वप्न है, इस बातको शास्त्रों तथा संतोंने बहुत प्रकारसे कहा है। हम-आप जो स्वप्न देखते हैं रात्रिको, वे स्वप्न दिनमें किये अथवा सोचेके संस्कारसे ही दीखते हैं। इसी प्रकार यह जगत्‌रूप महास्वप्न हमारे ही जन्म-जन्मके कर्मसंस्कारोंसे व्यक्त हुआ है। पूर्वमीमांसाशास्त्र तो जीवके द्विविध प्रारब्ध मानता ही है—व्यष्टि-प्रारब्ध तथा समष्टि-प्रारब्ध। व्यष्टि-प्रारब्ध देह तथा देहके भोगका हेतु है तथा जीवोंके समष्टि-प्रारब्धसे पृथ्वी, पर्वत, नदी-समुद्र, सूर्य-चन्द्र-तारक, वायु-अग्नि आदिकी अभिव्यक्ति होती है। प्रारब्ध कर्म-संस्कार ही है, यह आप जानते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व कर्म-संस्कारोंकी अभिव्यञ्जना है।

अब आप किसी भी उद्देश्य-विशेषसे भगवन्नामका आश्रय लेते हैं, तब क्या होता है? समस्त जागतिक पदार्थ एवं कार्यका जो मूल है, जो इन रूपोंमें अभिव्यक्त है, आपने सीधे उस तत्त्वसे—उस परमात्मासे सम्बन्ध बना लिया है। यह वही परमात्मा है, जिसके सम्बन्धमें श्रुति कहती है—

'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।'

वह जड नहीं है—नाम जड शब्द नहीं है, अपने

नामी [illegible] है । [illegible] आनन्द-
[illegible] नाममें है । जो नाम इतने विविध
[illegible] कारण व्यक्त हो
रहा है, वह [illegible] द्वारा आश्रय लिये जानेपर आपकी
भावनाके अनुसार अपने व्यक्त पदार्थ रूप अथवा क्रिया-
में परिवर्तन कर देता है; इसमें आश्चर्यकी तो कोई
बात नहीं है । ऐसा न हो तो आश्चर्यकी बात यही मानी
जानी चाहिये; क्योंकि जो चेतन है, दयाधाम है, उसका
आश्रय लेनेपर हमारी भावना भला सफल क्यों नहीं
होगी ? इसमें यदि देर होती है तो इसका केवल यही
कारण है कि हम स्वयं अस्थिर अथवा संदिग्ध-चित्त
हैं । या तो हम जो चाहते हैं वह पूरा होगा या इसमें
हमें हमारा विश्वास नहीं है अथवा हम कोई बात
स्थिरचित्तसे चाहते ही नहीं । क्षणमें कुछ और क्षणमें
कुछ और चाहनेके स्वभावके कारण हमारी भावना परिपक्व
होकर मूर्त्त नहीं हो पाती ।

जगत्का मूल कारण शब्द—भगवन्नाम है । वह चेतन है, वह दयालु है । जगत्के समस्त क्रिया एवं पदार्थ-रूपमें वही व्यक्त है । उसे कुछ लाना-बनाना नहीं पड़ता । हमारी भावना—कर्म-संस्कारके अनुसार ही वह इन रूपोंमें दीख रहा है । अतः उसका आश्रय करके हम जो भी विश्वासपूर्वक एवं दृढ़तासे चाहेंगे, वह हमें प्राप्त होगा; क्योंकि हमारी भावनाके अनुसार अपनेको बदलते रहना—यही तो उस चित्-तत्त्वका स्वभाव है । इसलिये भगवन्नाम कल्पतरु है । ऐसा कोई कार्य नहीं जो नामके आश्रय लेनेपर न हो । ऐसा कोई पदार्थ या स्थिति नहीं, जिसे नामका आश्रय दिला न सके ।

यहींपर मनुष्यकी समझदारी परखी जाती है । आप जागना-ज्ञानवान् होना पसंद करते हैं या मूर्च्छित—मोहग्रस्त रहना, मूर्ख बने रहना ? आपको अज्ञान—स्वप्न-बन्धन पसंद है अथवा ज्ञान, जागृति, मोक्ष ?

यदि आप नामका आश्रय लेकर भी कोई जगत्का पदार्थ चाहते हैं, किसी जागतिक स्थितिमें ही परिवर्तन चाहते हैं तो वह आपको अवश्य प्राप्त होगा; किंतु जगत् जब स्वप्न है, तब आपकी चाह स्वाप्निक ही हुई। आप स्वप्नमें ही तनिक परिवर्तन चाहते हैं और उस परिवर्तनके प्राप्त होनेपर स्वप्न देखते रहनेको—मोहग्रस्त रहनेको प्रस्तुत हैं । आपको बन्धन—मूर्च्छा पसंद है । जागृति—ज्ञान-मोक्षकी ओरसे आपने अभी नेत्र बंद कर रखा है ।

यह तो सम्भव नहीं है कि हम स्वप्न भी देखते रहें और जागते भी रहें । जागना है तो स्वप्नका त्याग—स्वप्नकी उपेक्षा करनी ही पड़ेगी । स्वप्न बुरा—दुःखद हो या उत्तम—सुखद । जागृतिके लिये स्वप्नका कोई मूल्य नहीं है । अतः यदि आपको जागृति—ज्ञान-मोक्ष अभीष्ट है तो जगत्के पदार्थ एवं स्थितिके सम्बन्धमें उपेक्षा वृत्ति अपनानी होगी । उसे जैसे भी रहना हो, रहे ।

भगवन्नाम तो अपने नामीसे अभिन्न है । वह तो है ही चित्स्वरूप । अतः यदि आप स्वयं स्वाप्निक पदार्थोंमें पड़े नहीं रहना चाहते तो नामका आश्रय अपने-आप आपके स्वप्नको, मोहको, बन्धनको काट देगा । जन्म-जन्मसे चली आती यह मोहनिद्रा नामके प्रकाशसे तिरोहित हो जायगी ।

अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ हैं । इनमेंसे अर्थ केवल अपवादरूप कृपण पुरुषोंका पुरुषार्थ है । अन्यथा वह धर्म अथवा कामका साधनमात्र है । धर्मको जो लौकिक तथा पारलौकिक—स्वर्गादिके भोगोंका—कामका साधन नहीं बनाता, उसका धर्म उसे मोक्षकी ओर ले जाता है । काम है स्वप्नका भोग—मोहनिद्राका विलास । उसे त्यागनेकी तत्परता होनी चाहिये आपमें । तब आप समझदार कहलानेके अधिकारी होंगे ।

भगवन्नाम कामतरु है । उससे आप जो चाहेंगे, प्राप्त होगा । इसलिये श्रद्धा, विश्वास तथा तत्परतासे उसका आश्रय लीजिये । इसके साथ यदि आपमें समझदारी है तो नामका आश्रय लेकर किसी सांसारिक कामनाका पोषण मत कीजिये । संसारके आवागमनका उच्छेद ही लक्ष्य बनाइये ।

बापूका राम-नाम, विनोबाका चिन्तन

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

बापू और विनोबा !

दोनों रामके भक्त, दोनों राम-नामके पुजारी ।

बापूने समय-समयपर राम-नामके बारेमें जो कहा और लिखा, उसका एक संग्रह श्रीभारतन् कुमारप्पाने तैयार किया—'राम-नाम'। विनोबाने उस 'राम-नाम' पर गहरा चिन्तन किया, वह भी पुस्तकरूपमें छपा है—'राम-नाम एक चिन्तन'।*

भक्तको प्रत्येक कार्यमें भगवान्‌का हाथ दिखायी पड़ता है। अपनी पुस्तककी प्रस्तावनामें विनोबा लिखते हैं—

'राम-नाम-सम्बन्धी गांधीजीके विचारोंका संग्रह ठीक उसी समय मेरे हाथ लगा, जब कि मुझे उसकी जरूरत थी। उस समय भगवान्‌ने मेरे पास उसे भेजा। मानो मेरे लिये बापूने अपना संदेश इस पुस्तकके रूपमें दिया।

'मैं डेढ़-दो वर्षोंसे भारत-यात्रा कर रहा था। यात्राका मुझे उतना विशेष अनुभव न होनेसे अनियमितता हो गयी, जिससे शरीरमें रोगने प्रवेश किया और मुझे पेट-दर्द शुरू हो गया। इस तरह मानो ईश्वरने मुझे प्राकृतिक उपचार और राम-नामका प्रयोग करनेका यह अवसर दिया। सदा-सर्वदा संनिधिमें रहनेवाले 'कृपालु'ने मानो भक्तकी अल्प धृष्टता आजमानी चाही। स्वयं ही पढ़ायी हुई विद्याकी गुरु परीक्षा लिया करते हैं, वैसा ही यह प्रसङ्ग मुझे दिखायी पड़ने लगा।

'इस कालमें मैंने अपने अवान्तर कार्य अलग रख दिये थे; क्योंकि वह विश्रामका समय माना गया था। उसी समय बापूके राम-नामसम्बन्धी विचारोंका संग्रह मेरे हाथ आया। मुझे लगा, धन्वन्तरिने मेरे रोगके लिये दिव्य वल्ली ही भेजी और मैं उसका आस्थासे सेवन करने लगा।

'उन विचारोंको पचानेके लिये मैंने जो चिन्तन किया, वही पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहा है। यह लेख पढ़कर बहुतोंने अत्यन्त संतोषजनक उद्गार व्यक्त किये। बहुतोंके पत्र मेरे पास आये कि इस लेखने उनके जीवनको नयी दिशा दी। विशिष्ट पञ्चेन्द्रियोंको पौष्टिक अन्न मिले, पर पचा नहीं पाता। उसे ही पचाकर दिया जाय, तो पचता है। इसी तरहकी यह बात है।

'जिस तरह नाम-स्मरणकी श्रद्धा मैंने अपने हृदयमें रखी थी और उसका अनुभव भी किया, उसी रीतिसे इस लेखमें भी मैंने उसे पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत किया है। इसमें मैंने चिन्तन और अनुभवको ठीक-ठीक जोड़नेका अवसर दिया और ठीक मुझे भी उससे लाभ हुआ। तुलसीदासने रुग्णावस्थामें 'हनुमान-बाहुक' लिखा। उससे उनका रोग मिटनेमें मदद मिली, ऐसा कहा जाता है। वही उपमा थोड़ी चीजको किस तरह शोभा देगी ? फिर भी सिर्फ मेरे लिये यह लेख 'हनुमान-बाहुक' ही हुआ है।'

आइये, अब हम बापूके 'राम-नाम' और उसपर विनोबाके 'चिन्तन' की हलकी-सी झाँकी करें।

चिन्तनका विवेचन

विनोबाने 'राम-नाम'का अपना चिन्तन ५ अध्यायोंमें बाँटा है—

१. अन्तरङ्ग प्रवेश,
२. त्रिविध मुक्तियाँ,
३. राम-नामका उपचार,
४. त्रिविध चिन्ता और
५. नाम-साफल्य।

अन्तरङ्ग प्रवेश

बापूके 'राम-नाम'-सम्बन्धी विचार-संग्रहकी चर्चा करते हुए विनोबा लिखते हैं—

'परमेश्वरके नामकी महिमा सब धर्मोंने गायी है। यद्यपि हर धर्मकी, जीवनकी तरफ देखनेकी, अपनी-अपनी दृष्टि होती है, तथापि इस विषयमें न उनमें कोई दृष्टि-भेद है, न विचार-भेद। भगवान्‌के अनेक गुणोंके अनुसार अनेक नामोंकी कल्पना करके अपनी-अपनी रुचि और आवश्यकताके अनुरूप उस-उस नामका जप या सब नामोंका सम्मिलित जप करनेकी प्रथा सब धर्मोंने चलायी है और दुनियाभरके सब संतोंने अपने अनुभवसे उसकी पुष्टि की है। सगुण-

* गांधी—'राम-नाम', प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद। विनोबा—'राम-नाम—एक चिन्तन,' प्रकाशक—सर्वसेवा-संघ प्रकाशन, काशी।

[illegible] मिट गया है। नानकका 'जपुजी' [illegible] विभिन्न सम्प्रदायोंके होते हुए [illegible] कोई भिन्नता नहीं [illegible]। 'भागवत' [illegible] माना है और कुरान अल्लाहके 'अस्मा [illegible] ([illegible]) करता है। एक [illegible] इतना ही फर्क है।

[illegible] भाषामें [illegible] भरा साहित्य विपुल [illegible] कोई भाषा किसी भाषासे पिछड़ी [illegible]। [illegible], चैतन्य, तुकाराम, नरसी मेहता या [illegible] भिन्न भिन्न भाषाओंमें लिखते हैं, लेकिन मानो एक तर्जुमा कर [illegible] हैं। तुलसीदासकी रामायणमें तो भी नामको श्रेष्ठ बतलाया है और दोनोंकी तुलना की एक परम मधुर छोटी-सी नामायन ही उन्होंने लिख गांधीजीने यहींसे स्फूर्ति पायी है और उसका अर्थ अनुभवसे हमारे सामने खोल दिया है।'

देमें नाम महिमाका वर्णन करते हुए विनोबा —

नामानुभूतिका प्रथम उद्‌गार, जो हमें वाङ्मयमें है, वह वेद है। ऋग्वेदमें 'नाम' शब्द तो सौ-एक या होगा, लेकिन सारे वेदका सार परमेश्वर-नाम ही। उपनिषदोंने घोषणा की है—

र्वे वेदा यत् पदं आमनन्ति।'

रे वेद ईश्वरके नामका ही आमनन करते हैं।'

भक्त तुकाराम कहता है—

र अनंत बोलिला। अर्थ इतुकाचि साधिला।

ठोवासि शरण जावें। निज-निष्ठा नाम गावें॥

यद्यपि वेदने अनन्त व्याख्यान किया है, तथापि सार यही विठ्ठलकी शरण जाना और उसका नाम निष्ठापूर्वक । वेद स्वयं अपने बारेमें कहते हैं—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्तत् न वेद किम् ऋचा करिष्यति॥'
(ऋग्वेद १। १६४। ३९)

वेदकी सारी ऋचाएँ यानी वेदमन्त्र एक अक्षरमें—एक स्वर-नाममें, जो कि हृदयके परम आकाशमें छिपा हुआ बैठाये हुए हैं। उसको जो नहीं जानेगा, वह वेदके लेकर क्या करेगा? वह अक्षर 'ओऽम्' माना गया। सबमें रममाण रहिया 'राम' है।

वेदमें परमेश्वरका 'चारु नाम' गानेवाले कई म लेकिन उन सबमें नीचेका मन्त्र भक्तजनोंमें विश्रुत है—

'मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे।
विप्रासो जातवेदसः॥
(ऋग्वेद ८। ११

'हे परमेश्वर, हम मरणधर्मी हैं, तू अमृतस्वरूप हम ज्ञानके उत्सुक (विप्र) हैं, तू जाननेवाला ज्ञानम हम (अल्प) तेरे विशाल नामका मनन करते हैं।' नामके मननका जिक्र है, न कि केवल उसके उच्चा और यही गांधीजी बार-बार दोहराते जाते हैं—

'राम-नाम हृदयसे लेना है, सिर्फ वाणीसे नहीं। नाम केवल बाह्य क्रिया नहीं है, वह अन्तःशोधनका साधन है।'

हम जरा यह भी देख लें कि 'नाम' शब्दका अ क्या होता है। 'नाम' शब्द 'नम्' धातुसे बना है, 'नम्रता' और 'नमस्कार' साधित हैं। भक्तको नाम अस सत्यमें ले जायगा, अन्धकारसे प्रकाशमें ले जायगा, मृ अमृतमें ले जायगा। इसके पहले उसे वह नम्र बनाये नम्रताके बिना सत्य-शोधन नहीं होता, इसलिये सारे वैज्ञा नम्र होते हैं। नम्रताके बिना चित्तशोधन नहीं होता, इस सारे आध्यात्मिक नम्र होते हैं। बापूकी वह अद्‌भुत प्रार्थ 'हे नम्रताके देव, तेरी अपनी नम्रता तू हमें दे।' यहाँ [illegible] आये बिना नहीं रहती।

वेदमें ईश्वरको 'नम्रतामूर्ति' बतानेवाला एक वाक्य इस तरह है—

'नम इत् उग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीं उत द्याम्।'
(ऋग्वेद ६। ५१। ८)

'नम्रता ही ऊँची है। मैं नम्रताकी उपासना करता हूँ। नम्रताने पृथ्वी और स्वर्गको धारण किया है।' आखिरी वाक्यसे स्पष्ट है कि यहाँ नम्रता परमेश्वरकी संज्ञा है। बापूने ईश्वरकी नम्रताका वर्णन करते हुए 'दीन भंगीकी हीन कुटियाके निवासी' कहकर पुकारा है।

वेदोंमें कहा है,—'तेरे सख्यको कोई टाल नहीं सकता; क्योंकि जो गाय चाहता है, उसके सामने तू गाय बनकर खड़ा होता है; जो घोड़ा चाहता है, उसके लिये तू घोड़ा बनता है'—

'गौरसि गव्यते, अश्वो अश्वायते भव।'

बढ़ता है, त्यों-त्यों शरीरकी क्षीणता बढ़ती है। पूर्ण नीरोग शरीर बिल्कुल क्षीण भी हो सकता है। बलवान् शरीरमें बहुत अंशमें रोग रहते हैं।'

(३) तीसरा उपाय बताया गया है—राम-नामका, जिसे वे सर्वोत्तम उपाय या सुवर्ण-नियम कहते हैं।

'अपनी-अपनी भावनाके अनुसार भगवान्‌के किसी भी नामका जप किया जा सकता है। जपमें हमें तल्लीन हो जाना चाहिये। जपते समय दूसरे विचार आयें, तो परवा नहीं। फिर भी यदि श्रद्धा रखकर हम जप करते रहेंगे, तो अन्तमें सफलता अवश्य प्राप्त करेंगे।'

सारांश आहार-शुद्धि, वैज्ञानिक दृष्टि और नाम-स्मरण—ये तीन उपाय हुए निर्विकारिताकी प्राप्तिके। लेकिन तीनोंका संक्षेप आखिर वे राम-नाममें ही करते हैं। वे कहते हैं—

'ब्रह्मचर्यकी रक्षाके जो नियम माने जाते हैं, वे तो खेल ही हैं। सच्ची और अमर रक्षा तो राम-नाम ही है।'

फिर तौल-सम्हालकर कहते हैं—

'यह अचूक साधन पानेके लिये एकादश व्रत तो हैं ही, मगर कई साधन ऐसे होते हैं कि उनमेंसे कौन-सा साधन और कौन-सा साध्य है, कहना मुश्किल हो जाता है।'

इतना कहकर फिरसे अपनी निष्ठा दृढ़ करते हैं—

'संयमका सुनहरा रास्ता और उसकी अमर रक्षा राम-नाम ही है।'

ये शब्द पढ़कर मुझे याद आया, बचपनमें कण्ठ कराया गया—'रामरक्षास्तोत्र' अद्भुत है, उस स्तोत्रकी कल्पना।'

(ङ) रोग-मुक्ति

अब राम-नामसे रोग-मुक्ति। इस पुस्तकका आधेसे अधिक हिस्सा इसीने लिया है। उससे चित्तपर यह असर नहीं होना चाहिये कि यही नाम-स्मरणका सर्वोत्तम लाभ है। इस विषयका इतना विस्तार इसलिये हुआ है कि गरीबोंके लिये कुदरती इलाज ढूँढ़ते हुए बापूको यह सूझा है और उस प्रचारमें वे लगे हुए थे, इसलिये इसपर इन दिनों वे हमेशा बोलते रहे—

'राम-नाम सब जगह मौजूद रहनेवाली रामबाण दवा है, इसको शायद मैंने पहले-पहल उरलीकांचनमें ही साफ-साफ जाना था।'

अपने बारेमें लिखते हैं—

'मेरे विचारके विकार क्षीण होते जा रहे हैं, फिर भी उनका नाश नहीं हो पाया। यदि मैं विचारोंपर भी पूरी विजय पा सका होता, तो पिछले दस वर्षोंमें जो तीन रोग मुझे हुए, वे कभी न होते।'

अपनी मृत्युके एक दिन पहले लिखे हुए पत्रमें वे कहते हैं—

'इस बार किडनी और लिवर दोनों बिगड़े हैं। मेरी दृष्टिसे यह राम-नाममें मेरे विश्वासके कच्चेपनकी वजहसे है।'

बापूके साथ प्रथम संवादमें ही उनकी यह श्रद्धा मैंने सुनी थी। ७ जून १९१६को मैं पहली बार उनके पास पहुँचा। तब अहमदाबादके नजदीक कोचरबमें आश्रम चलता था। वे तरकारी काटने बैठ गये और मुझे उन्होंने उस रोज उस कामकी दीक्षा दी। फिर जो संवाद हुआ, उसमें मेरी प्राथमिक जानकारी हासिल करनेके बाद उन्होंने अपने कुछ विचार मेरे लिये प्रकट किये। उनमें पूर्ण निर्विकार पुरुष शरीरसे भी नीरोग होना ही चाहिये, यह अपनी श्रद्धा उन्होंने दर्शायी थी और वह फौरन मेरे गले उतर गयी।

जहाँ परमेश्वरका नाम, वहाँ निर्विकारिता; जहाँ निर्विकारिता, वहाँ पूर्ण आरोग्य—यह एक ऐसी श्रद्धा है, जिसका हमें अवश्य संग्रह करना चाहिये। इस श्रद्धाने मुझे बहुत आश्वासन दिया है, इसलिये भी मुझे वह प्रिय हो गयी है।

आत्मिक स्वास्थ्य और शारीरिक स्वास्थ्यके साहचर्यका जिक्र करते हुए इस पुस्तकमें दो-तीन जगह एक विशेष भाव प्रकट हुआ है, जो गहरे विचारमें ले जाता है।

'मैंने जो देखा और धर्मशास्त्रमें पढ़ा है, उसके आधारपर इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि जब मनुष्यमें उस अदृश्य शक्तिके प्रति पूर्ण जीवित श्रद्धा पैदा हो जाती है, तब उसके शरीरमें भीतरी परिवर्तन होता है। लेकिन यह सिर्फ इच्छा करनेमात्रसे नहीं हो जाता। उसके लिये सावधान रहने और अभ्यास करते रहनेकी जरूरत रहती है। दोनोंके होते हुए भी ईश्वरकृपा न हो, तो मानव-प्रयत्न व्यर्थ है।'

यह एक प्रेस-रिपोर्टका सारांश है । इससे दो साल बादके एक लेखमें बापूने इसे अधिक स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया है ।

एक ज्ञानीने तो मेरी बात पढ़कर यह लिखा है कि 'राम-नाम ऐसी कीमिया है, जो शरीरको बदल डालती है । वीर्यको इकट्ठा करना दबाकर रक्खे हुए धनके समान है, उसमेंसे अमोघ शक्ति पैदा करनेवाला तो राम-नाम ही है । राम-नामके स्पर्शसे वीर्य ऊर्ध्वगामी बनता है ।'

शरीरके दिव्य रूपान्तरका यह दावा प्राचीन योग-साहित्यमें पाया जाता है । योग-साहित्यके दावेमें और बापूके कथनमें साम्य-सा दीखता है । योग-साहित्य जिस दिव्य देह-परिवर्तनकी बात करता है, वह एक प्रकारकी सिद्धि है और बापूकी कल्पनाका दिव्य परिवर्तन परम शुद्धि और ईश्वरीय आविर्भावका सहज परिणाम है ।

राम-नामसे रोगमुक्तिका अर्थ यहाँतक पहुँच जाता है । वह विकार-मुक्तिका एक पर्यायमात्र है ।

राम-नामका उपचार

बापूके राम-नामके उपचारका विश्लेषण करते हुए विनोबा लिखते हैं—

'जहाँ तत्त्वविचारसे हम व्यावहारिक विनियोगमें उतरते हैं, वहीं बापूकी भूमिका कुछ मुलायम हो गयी है । वे लिखते हैं—

'रामभक्त कुदरतके कानूनपर चलेगा; इसलिये उसे किसी तरहकी बीमारी होगी ही नहीं । होगी भी तो उसे पञ्च महाभूतोंकी मददसे अच्छी कर लेगा । किसी भी उपायसे भौतिक दुःख दूर कर लेना, जो शरीरको ही आत्मा नहीं मानते, उनका काम नहीं है । आत्माको पृथक् जाननेवाला शरीरके जानेसे घबराता नहीं, दुखी नहीं होता और सहज ही उसे छोड़ देता है । वह देहधारी डाक्टरों-वैद्योंके पीछे नहीं भटकता ।'

अब इसमें एकके पीछे एक—तीन विचार दर्शाये गये हैं—

१. भक्तको बीमारी नहीं होगी ।

२. होगी भी, तो वह आहारादि-परिवर्त्तनसे उसे दुरुस्त कर लेगा ।

३. अगर दुरुस्त न हो सका, तो शान्तिसे देह छोड़ेगा । व्यावहारिक विनियोगमें विचारकी निराग्रह दृढ़ताका सौम्य रूपान्तर स्पष्ट है ।

उरलीकाञ्चनके व्याख्यानसे यह अधिक स्पष्ट हो जायगा—

'कुछ बीमारियाँ तो ऐसी हैं, जिनका इस दुनियामें कोई इलाज ही नहीं है । जैसे, अगर शरीरका कोई अङ्ग खण्डित हो गया हो, तो उसे फिरसे पैदा कर देनेका चमत्कार राम-नाममें कहाँसे आयेगा ? लेकिन उसमें इससे भी बड़ा चमत्कार कर दिखानेकी ताकत है । अङ्ग-भङ्ग या बीमारियोंके बावजूद सारी जिंदगी अथक शान्तिके साथ बितानेकी शक्ति राम-नाम देता है और मौतके दुःख और चिन्ताकी विजयके डरको मिटा देता है । यह क्या कोई छोटा-मोटा चमत्कार है ?'

राम-नामका उपचार बतानेमें केवल भावनामय कल्पना-शक्तिसे काम नहीं लिया है, लेकिन विचार व्यवहारमें किस तरह लाया जा सकता है, इसका पूरा ध्यान रक्खा गया है ।

बापूने अपने इस उपचारके बारेमें जो तफसीलमें चीजें समझायी हैं, उन सबका सार मैं तीन सूत्रोंमें रक्खूँगा ।

१. देहकी अधिक आसक्ति रखनी नहीं चाहिये । उससे हम देहको चाहे परिपुष्ट रख भी सकें; आत्माको क्षीण करते हैं । बाज दफा तो उससे हम देहकी भी हानि करते हैं ।

२. गरीबोंसे एकरूप हो जाना चाहिये । कम-से-कम बीमारीकी हालतमें तो अपने लिये मर्यादा-सी बाँध लेनी चाहिये कि जो उपचार करोड़ों गरीब कर ही नहीं सकते, उसकी आशा छोड़नी होगी ।

३. आसपासकी सृष्टिको हमें अपना दुश्मन नहीं, बल्कि मित्र समझना चाहिये । सृष्टिसे डरना नहीं चाहिये । प्रकाश, हवा, धूप वगैरहकी खुले दिलसे पूरी सहायता लेनी चाहिये ।

'राम-नाम' पुस्तकमें यत्र-तत्र बिखरी हुई सूचनाओंकी चर्चा करते हुए अन्तमें विनोबा लिखते हैं—

'इन सब बातोंका थोड़ेमें मतलब जीवन-परिवर्तन है ।'

(अ) हमेशा शुद्ध, स्वच्छ, युक्त और मित आहार और विशेष प्रसंगोंमें अल्प आहार और निराहार ।

(आ) देह, वाणी, मनकी शुद्धि और आसपासके सब वातावरणकी स्वच्छता ।

(इ) कुदरतपर प्यार और उसका उन्मुक्त सेवन ।

(ई) योग्य परिश्रम और विश्रामकी व्यवस्था ।

(उ) अपनेको देहसे भिन्न मानना, प्राणिमात्रकी सेवामें लग जाना और विशुद्ध चित्तसे परमेश्वरका निरन्तर स्मरण करना ।

यह है जीवनचर्या । इसीको 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं । यही राम-नामका उपचार है ।

त्रिविध चिन्ता

विनोबा मानते हैं कि वैष्णव आदि भक्तोंने जिस निष्ठासे राम-नामकी महिमा गायी है, वही निष्ठा इस पुस्तकके पन्ने-पन्नेमें दीख पड़ती है । फिर भी वे कहते हैं कि दोनोंमें एक बड़ा फर्क है । वह यह कि भक्तोंका नाम-प्रचार स्वच्छन्द, स्वैर और सर्वचिन्ता-विमुक्त था । लेकिन इनके नाम-प्रचारके पीछे तीन चिन्ताएँ लगी हैं—(१) सकामताकी चिन्ता, (२) वहमका डर और (३) मौखिकता ।

(१) सकामताकी चिन्ता

बापू लिखते हैं—

'ऐसे पवित्र मन्त्रका उपयोग किसीको आर्थिक लाभके लिये हरगिज नहीं करना चाहिये । बहुत-से स्थानोंमें केवल आडम्बरके लिये, कुछ स्थानोंमें अपने स्वार्थके लिये इसका जप होता हुआ हमने देखा है ।'

विनोबा इस प्रसंगकी चर्चा करते हुए कहते हैं—

'भक्तोंने तो यहाँतक कहा था कि नाम-स्मरण चाहे व्यक्तिगत स्वार्थके लिये ही क्यों न किया जाय, कुछ-न-कुछ कल्याण ही करेगा । मैं दोनों भाषाओंका रसास्वादन कर लेता हूँ । एक है बुद्धियुक्त तत्त्वार्थ-कथन, जो विश्लेषणकी चिन्ता रखता है । दूसरा है, भावनामय अर्थवाद, जो सुननेवालेमें कुछ अक्ल मान लेता है । गीताने दोनों भाषाओंका उपयोग किया है, फिर भी उसको निष्कामताका ही विशेष आग्रह रहा है ।

'राम-नाम हम लेते जायँ और भिन्न-भिन्न कामनाएँ रखते जायँ, फिर चाहे वे कामनाएँ फलित भी हों, इससे रामनाम दूषित होगा । वह अन्यदेवताका नाम बन जायगा और कभी तो वह रावण नाममें भी परिवर्तित हो जायगा,—यह चिन्ता इस पुस्तकमें पदे-पदे दीख पड़ती है, जो सर्वथा योग्य ही है ।

लेकिन जो मनुष्य चालू प्रवाहके अनुसार डाक्टरी इलाज करवाता होगा, वह राम-नाम लेनेका अधिकारी नहीं, ऐसा इसका ऐकान्तिक अर्थ मैं नहीं करूँगा और न बापूकी भी वैसी मंशा हो सकती है ।

बचपनमें मैं बहुत रोगग्रस्त रहता था और डाक्टरी दवाएँ मुझे दी जाती थीं । माँ दवा पीते समय बोलनेके लिये कहती—

'औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः ।'

—वैसे ही मैं बोलता था । लेकिन एक दिन उसके अर्थका खयाल आया और मैंने माँसे कहा—'इसका अर्थ तो मुझे यह दीखता है कि गङ्गाजलको औषध समझो और भगवान्‌को वैद्य ।'

माँ बोली—'यह अर्थ तो ठीक है, लेकिन इसके लिये वैसी योग्यता चाहिये । तेरे और मेरे लिये इसका दूसरा अर्थ है ।'

मैंने पूछा—'कौन-सा ?'

बोली—'डाक्टरको भगवान् समझो और जो भी औषध वह देगा, उसे गङ्गाजल समझो ।'

मुझे माँकी यह बात उस भूमिकापर आज भी जँचती है ।

एक वैद्यने कहा—'यह तो रोग असाध्य हो जाय, तबका वचन है ।' मैंने यह अर्थ भी कबूल कर लिया ।

एक निसर्गोपचारकने मुझसे कहा—'यह वाक्य दैवशरणता नहीं, बल्कि निसर्गोपचार बता रहा है ।' उसका अर्थ यह है कि दवाइयाँ मत लो, जलोपचार करो, नारायणहरिको यानी सूर्यनारायणको वैद्य समझते रहो अर्थात् उनकी किरणोंका यथाशास्त्र सेवन करो ।' यह भी मैंने मान लिया । लेकिन इससे मैंने समझ लिया कि 'राम-नाम-उपचार' निसर्गोपचारसे भी भिन्न है ।

यहाँ कोई पूछेगा—'आप नामके साथ निसर्गोपचार जोड़ भी देते हैं और उससे उसको अलग भी करते हैं । नामके साथ सकामताको दूषण भी देते हैं और आरोग्यकी कामना भी रखते हैं, यह सब क्या है ?'

इसका जवाब यही है कि नामस्मरणसे आरोग्यकी अपेक्षा इसलिये रक्खी जाती है कि आत्मा स्वरूपतः रोग-रहित है । इसलिये रोगरहित रहनेकी अपेक्षाका अर्थ 'स्वरूपावस्थामें रहना' इतना ही होता है । इसलिये इस अपेक्षाकी गिनती कामनामें नहीं करनी चाहिये । आत्मा रोगरहित है, वैसे ही देहरहित भी है । इसलिये नामस्मरण करते हुए देह या शरीर छूट जाय तो भी हर्ज नहीं । उस तरह शान्तिपूर्वक शरीर छूटना नामोपचारकी निष्फलता नहीं, बल्कि सफलता ही होगी ।

नामस्मरणके साथ निसर्गोपचारको इसलिये जोड़ते हैं कि निसर्गोपचारसे मतलब युक्ताहार-विहारादि जीवनचर्यासे है । राम-नामके साथ उसको नहीं जोड़ते, तो अयुक्त आहार-विहारको जोड़ना पड़ेगा जो विपरीत वर्तन होगा । निसर्गोपचारसे राम-नामको अलग भी करते हैं; क्योंकि निसर्गोपचारको आजकल एक बहुत लम्बा-चौड़ा, कभी-कभी तो दवाइयोंसे भी ज्यादा खर्चीला, ढोंग-सा बना रक्खा गया है ।

(२) बहमका डर

विनोबा कहते हैं कि राम-नामके मुक्त प्रचारमें दूसरी चिन्ता, जो इस पुस्तकमें बहुत ही दीख पड़ती है, वह है 'बहम'के प्रचारकी ।

बापू लिखते हैं—

'राम-नाम तो बहमका दुश्मन है। वह विश्वास-चिकित्सासे भिन्न वस्तु है । अगर मैं ठीक समझा हूँ तो विश्वास-चिकित्सामें यह माना जाता है कि रोगी अन्धविश्वाससे अच्छा हो जाता है । यह मानना तो जीवित ईश्वरके नामकी हँसी उड़ाना है । राम-नाम सिर्फ कल्पनाकी चीज नहीं है । परमात्मामें ज्ञानके साथ विश्वास हो और उसके साथ-साथ कुदरतके नियमोंका पालन किया जाय, तभी किसी दूसरी मददके बिना रोगी अच्छा हो सकता है । अगर कोई अपने अंदर परमात्माको पहचान ले, तो एक भी गंदा या फिजूल खयाल मनमें नहीं आ सकता । जहाँ विचार शुद्ध हो, वहाँ बीमारी आ ही नहीं सकती ।'

जाहिर है कि बापूका यह रामनाम शुद्ध बुद्धिवादसे जरा भी विसंगत नहीं है ।

दूसरी जगह बापूने इसे और साफ किया है—

'रामनाम कोई जादू-टोना नहीं है । राम-नाम गणितका एक ऐसा सूत्र या फारमूला है, जो थोड़ेमें बेहिसाब खोज और तजुर्बेको जाहिर कर देता है ।'

मेरी गणितप्रेमी बुद्धि इस वाक्यसे प्रसन्न हो रही है । योग और गणित एक ही वस्तुके दो पहलू और दो नाम हैं । सांख्य और योग दोनों गणित हैं । सांख्य है शुद्ध गणित (Pure Mathematics) और योग है उसका विनियोग, यानी व्यावहारिक गणित (Applied Mathematics)।

'राम-नाम आत्मशोधनकी प्रक्रिया है, न कि मूढ़ विश्वाससे काल्पनिक देवी-देवताओंको या आत्मासे अत्यन्त भिन्न किसी सर्वाधिकारी परमेश्वरको फुसलानेकी ।'

(३) मौखिकता

विनोबा कहते हैं—तीसरी चिन्ता इस पुस्तकमें यह है कि राम-नाम केवल मौखिक न रह जाय । राम-नाम केवल शब्द नहीं है । वह तो एक परम सूक्ष्म और परिपूर्ण विचार है ।

बापू कहते हैं—'सिर्फ मुँहसे राम-नाम रटनेसे कोई ताकत नहीं मिलती । ताकत पानेके लिये यह जरूरी है कि सोच-समझकर नाम जपा जाय और जपकी शर्तोंका पालन करते हुए जिंदगी बितायी जाय । ईश्वरका नाम लेनेके लिये इन्सानको ईश्वरमय जिंदगी बितानी चाहिये ।'

आचार और विचारके समान ही उच्चारका भी स्वतन्त्र मूल्य है । तुलसीदासने एक समर्पक दृष्टान्तसे यह विशद किया है—

> रामनाम मनि दीप धरु जीह देहरीं द्वार ।
> 'तुलसी' भीतर बाहेरहु जो चाहसि उजियार ॥

बापूने खुले दिलसे इसे स्वीकार किया है । एक प्रश्नोत्तर देखिये—

प्रश्न—क्या राम-नामको हृदयमें ही रखना काफी नहीं है या उसके उच्चारणमें कोई खास विशेषता है ?

उत्तर—मेरा विश्वास है कि राम-नामके उच्चारणका विशेष महत्त्व है । अगर कोई जानता है कि ईश्वर सचमुच उसके हृदयमें बसता है, तो मैं मानता हूँ कि उसके लिये मुँहसे राम-नाम जपना जरूरी नहीं है । लेकिन मैं ऐसे किसी आदमीको नहीं जानता । उलटे मेरा अपना अनुभव कहता

है कि मुँहसे राम-नाम जपनेमें कुछ अनोखापन है। क्यों या कैसे, यह जानना आवश्यक नहीं।

एक और वचन, जो इससे भी अधिक स्पष्ट है—

'राम-नामका निरन्तर जप चलता रहे तो एक दिन वह आपके कण्ठसे हृदयतक उतर आयेगा।'

सारांश, भक्तिमार्गके तीन खतरे हैं—सकामता, मूढ़ विश्वास और मौखिकता। इन्हें टालना बहुत जरूरी है। इन त्रिदोषोंसे भक्तिके सुगम मार्गमें काँटे बिछ जाते हैं। ज्ञान और कर्मयोग, इन दो पटरियोंपर राम-नामकी गाड़ी चल रही है। उसमें जहाजका विहार नहीं है।

नाम-साफल्य

'राम-नाम' और उसकी सफलताकी चर्चा करते हुए विनोबा कहते हैं—'रामनाममें एक जगह इतनी ऊँची उड़ान है कि उसे साधारण वायुयान-विहार नहीं कहा जा सकता। उसे वायुयानद्वारा मङ्गल आदि ग्रहोंपर जानेकी उपमा देनी पड़ेगी। गाँधीजीकी यह आकांक्षा इस पुस्तकमें एक जगह सफल हुई है। चिन्तन पृथ्वीके आकर्षणसे पार हो गया है और राम-नामका जप करते-करते राम-नाम ही उड़ गया है। बापू लिखते हैं—

'मैं अपने जीवनमें ऐसे समयकी अवश्य आशा करता हूँ कि जब राम-नामका जप भी प्रतिबन्धक मालूम पड़ेगा। जब मैं यह समझूँगा कि राम वाणीसे भी परे है, तब मुझे नामका जप करनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी।'

विष्णुसहस्रनाममें यही विचार दो शब्दोंमें सूचित किया है। सहस्रनाम कोई विचार-चर्चा करनेवाला तो ग्रन्थ नहीं है। एकके पीछे एक, भगवान्‌के नाम देता जाता है। उनमें दो नाम ये दिये हैं—

शब्दातिगः, शब्दसहः

'भगवान् शब्दसे परे है, लेकिन शब्दोंको सहन कर लेता है।' उसको हमारे शब्दोंकी जरूरत भी क्या है और शब्दोंसे उसका वर्णन हो भी क्या सकता है? हम अपने मनसे उसकी स्तुति करने जाते हैं, लेकिन वास्तवमें उससे उसकी निन्दा ही होती है। तो क्या चुप रहना ही ठीक नहीं?

'हो सकता है, लेकिन बनावटी चुपसे कोई फायदा नहीं। जीते-जागते मौनके लिये तो बड़ी भारी साधनाकी जरूरत है।'

लेकिन इसका अर्थ भी ठीकसे समझ लेना चाहिये। साधारण तौरपर इसका अर्थ हम समझते हैं—निरन्तर सत्कृति। कृतिवादी हमेशा कहते हैं कि विचारके मुताबिक अगर हम कृति करते हैं, तो बोलनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती।

कृतिवाद कहता है—प्रार्थना, नामस्मरण, पूजापाठ आदिकी वस्तुतः कोई जरूरत नहीं है। हम चौबीस घंटे सत्कर्ममें रत रहें तो बस है। उतना नहीं कर सकते, तो उसकी पूर्तिमें प्रार्थना आदि कर लेते हैं। करिये, लेकिन उससे बहुत लाभकी अपेक्षा मत रखियेगा। उसमें बहुत दफा तो समय बेकार जायगा, ढोंग भी होगा। चित्तका काल्पनिक समाधान होनेसे आचरणके दोषोंको सह लेनेकी वृत्ति निर्माण होगी, शायद निष्क्रियता भी बढ़ेगी। बेहतर तो यही है कि हम कर्ममें ही रत रहें। कर्मशुचिका मार्ग भी कर्म ही बतायेगा।

बापू जहाँ राम-नामसे भी मुक्त होनेकी बात करते हैं, वहाँ वे कृतिवाद नहीं सोच रहे हैं। बल्कि उनके विचारकी उड़ान बहुत ही ऊँची है, जिसकी कल्पना कृतिवादको असह्य होगी। बापूका भाव उन्हींके शब्दोंमें देख लीजिये—

'एक सच्चा विचार सारी दुनियापर छा सकता है, उसे प्रभावित कर सकता है। वह कभी बेकार नहीं जाता। विचारको बोल या कामका जामा पहनानेकी कोशिश ही उसकी ताकतको सीमित कर देती है। ऐसा कौन है जो अपने विचारको शब्द या कार्यमें पूरी तरह प्रकट करनेमें कामयाब हुआ हो?' आगे कहते हैं—

'आप यह पूछ सकते हैं कि अगर ऐसा है तो फिर आदमी हमेशाके लिये मौन ही क्यों न ले? वसूलन तो यह मुमकिन है, लेकिन जिन शर्तोंके मुताबिक मौनविचार पूरी तरह क्रियाकी जगह ले सकते हैं, उन शर्तोंको पूरा करना बहुत मुश्किल है। मैं खुद अपने विचारोंपर इस तरहका पूरा-पूरा काबू पा लेनेका कोई दावा नहीं कर सकता, लेकिन मेरे दिलमें इसकी एक तस्वीर खिंच गयी है।'

इसमें जहाँ शब्दका निषेध किया है, वहाँ कृतिका भी निषेध किया है। यहाँ हम संन्यासके करीब पहुँच चुके हैं। कर्मयोगी गाँधीके दिलमें जो तस्वीर खिंच गयी है, वह संन्यासकी है। इसके लिये मेरा कोई इलाज नहीं है।

है कि मुँहसे राम-नाम जपनेमें कुछ अनोखापन है। क्यों या कैसे, यह जानना आवश्यक नहीं।

एक और वचन, जो इससे भी अधिक स्पष्ट है—

'राम-नामका निरन्तर जप चलता रहे तो एक दिन वह आपके कण्ठसे हृदयतक उतर आयेगा।'

सारांश, भक्तिमार्गके तीन खतरे हैं—सकामता, मूढ़ विश्वास और मौखिकता। इन्हें टालना बहुत जरूरी है। इन त्रिदोषोंसे भक्तिके सुगम मार्गमें काँटे बिछ जाते हैं। ज्ञान और कर्मयोग, इन दो पटरियोंपर राम-नामकी गाड़ी चल रही है। उसमें जहाजका विहार नहीं है।

नाम-साफल्य

'राम-नाम' और उसकी सफलताकी चर्चा करते हुए विनोबा कहते हैं—'रामनाममें एक जगह इतनी ऊँची उड़ान है कि उसे साधारण वायुयान-विहार नहीं कहा जा सकता। उसे वायुयानद्वारा मङ्गल आदि ग्रहोंपर जानेकी उपमा देनी पड़ेगी। गाँधीजीकी यह आकांक्षा इस पुस्तकमें एक जगह सफल हुई है। चिन्तन पृथ्वीके आकर्षणसे पार हो गया है और राम-नामका जप करते-करते राम-नाम ही उड़ गया है। बापू लिखते हैं—

'मैं अपने जीवनमें ऐसे समयकी अवश्य आशा करता हूँ कि जब राम-नामका जप भी प्रतिबन्धक मालूम पड़ेगा। जब मैं यह समझूँगा कि राम वाणीसे भी परे है, तब मुझे नामका जप करनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी।'

विष्णुसहस्रनाममें यही विचार दो शब्दोंमें सूचित किया है। सहस्रनाम कोई विचार-चर्चा करनेवाला तो ग्रन्थ नहीं है। एकके पीछे एक, भगवान्‌के नाम देता जाता है। उनमें दो नाम ये दिये हैं—

शब्दातिगः, शब्दसहः

'भगवान् शब्दसे परे है, लेकिन शब्दोंको सहन कर लेता है।' उसको हमारे शब्दोंकी जरूरत भी क्या है और शब्दोंसे उसका वर्णन हो भी क्या सकता है? हम अपने मनसे उसकी स्तुति करने जाते हैं, लेकिन वास्तवमें उससे उसकी निन्दा ही होती है। तो क्या चुप रहना ही ठीक नहीं?

'हो सकता है, लेकिन बनावटी चुपसे कोई फायदा नहीं। जीते-जागते मौनके लिये तो बड़ी भारी साधनाकी जरूरत है।'

लेकिन इसका अर्थ भी ठीकसे समझ लेना चाहि साधारण तौरपर इसका अर्थ हम समझते हैं—निर सत्कृति। कृतिवादी हमेशा कहते हैं कि विचारके मुता अगर हम कृति करते हैं, तो बोलनेकी कोई आवश्यक नहीं रहती।

कृतिवाद कहता है—प्रार्थना, नामस्मरण, पूजाप आदिकी वस्तुतः कोई जरूरत नहीं है। हम चौबीस घ सत्कर्ममें रत रहें तो बस है। उतना नहीं कर सकते, उसकी पूर्तिमें प्रार्थना आदि कर लेते हैं। करिये, लेकि उससे बहुत लाभकी अपेक्षा मत रखियेगा। उसमें बहु दफा तो समय बेकार जायगा, ढोंग भी होगा। चित्तक काल्पनिक समाधान होनेसे आचरणके दोषोंको सह लेनेक वृत्ति निर्माण होगी, शायद निष्क्रियता भी बढ़ेगी। बेहतर तो यही है कि हम कर्ममें ही रत रहें। कर्मशुचिका मार्ग भी कर्म ही बतायेगा।

बापू जहाँ राम-नामसे भी मुक्त होनेकी बात करते हैं, वहाँ वे कृतिवाद नहीं सोच रहे हैं। बल्कि उनके विचारकी उड़ान बहुत ही ऊँची है, जिसकी कल्पना कृतिवादको असह्य होगी। बापूका भाव उन्हींके शब्दोंमें देख लीजिये—

'एक सच्चा विचार सारी दुनियापर छा सकता है, उसे प्रभावित कर सकता है। वह कभी बेकार नहीं जाता। विचारको बोल या कामका जामा पहनानेकी कोशिश ही उसकी ताकतको सीमित कर देती है। ऐसा कौन है जो अपने विचारको शब्द या कार्यमें पूरी तरह प्रकट करनेमें कामयाब हुआ हो?' आगे कहते हैं—

'आप यह पूछ सकते हैं कि अगर ऐसा है तो फिर आदमी हमेशाके लिये मौन ही क्यों न ले? वसूलन तो यह मुमकिन है, लेकिन जिन शर्तोंके मुताबिक मौनविचार पूरी तरह क्रियाकी जगह ले सकते हैं, उन शर्तोंको पूरा करना बहुत मुश्किल है। मैं खुद अपने विचारोंपर इस तरहका पूरा-पूरा काबू पा लेनेका कोई दावा नहीं कर सकता, लेकिन मेरे दिलमें इसकी एक तस्वीर खिंच गयी है।'

इसमें जहाँ शब्दका निषेध किया है, वहाँ कृतिका भी निषेध किया है। यहाँ हम संन्यासके करीब पहुँच चुके हैं। कर्मयोगी गाँधीके दिलमें जो तस्वीर खिंच गयी है, वह संन्यासकी है। इसके लिये मेरा कोई इलाज नहीं है।

साधना चलाता है, तब उसमेंसे भक्तिकी सुगन्ध प्रकट होती ही है। ज्ञान, कर्म, भक्तिके त्रिवेणी-संगमसे ही पुरुषको उत्तम स्थिति प्राप्त होती है। अन्तरात्मा ही परमात्मा-पदको प्राप्त करता है। इस जीवनसाधनाको समझकर उसका अनुशीलन करनेवाला ही नाम-संकीर्तनमें गायेगा—

'ॐ नमो नारायणाय पुरुषोत्तमाय'

भगवान्‌की सनातन उपासनाका यही युगानुकूल सुन्दर स्वरूप है।

(२)

राम-नाम

मनुष्यकी दुर्बलताका अनुभव करके हमारे परम कारुणिक साधु-संतोंने उद्धारके बहुत-से रास्ते ढूँढ़े। अन्तमें उन्हें भगवान्‌का नाम मिला। इससे उन्होंने गाया कि—राम-नाम ही हमारा आधार है। सब तरहसे हारे हुए मनुष्यके लिये बस, राम-नाम ही एक तारक मन्त्र है। राम-नाम यानी श्रद्धा—ईश्वरकी मङ्गलमयतापर श्रद्धा। शक्ति, बुद्धि, कर्म, पुरुषार्थ सब सत्य हैं, परंतु अन्तमें तो राम-नाम ही हमारा आधार है।

लेकिन आजकलका जमाना तो बुद्धिका जमाना कहलाता है। इस तार्किक युगमें श्रद्धाका नाम ही कैसे लिया जाय?

सच है कि दुनियामें अबुद्धि और अन्धश्रद्धाका साम्राज्य छाया है। तर्क, युक्ति और बुद्धिकी मददके बिना एक कदम भी नहीं चला जा सकता। बुद्धिकी लकड़ी हाथमें लिये बिना छुटकारा ही नहीं। परंतु बुद्धि अपङ्ग है। जीवन-यात्रामें आखिरी मुकामतक बुद्धि साथ नहीं देती। बुद्धिमें इतनी शक्ति होती तो पण्डितलोग कभीके मोक्ष-धामतक पहुँच चुके होते। जो चीज बुद्धिकी कसौटीपर खरी न उतरे, उसे फेंक देना चाहिये। बुद्धि-जैसी स्थूल वस्तुके सामने भी जो न टिक सके, उसकी कीमत ही क्या? परंतु जहाँ बुद्धि अपना सर्वस्व खर्च करके थक जाती है और कहती है—**'न एतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति'** श्रद्धाका क्षेत्र शुरू हो जाता है। बुद्धिकी मदद भी मुसाफिरीके लिये निकल पड़ता है। परंतु जहाँ रुक जाती है, वहाँ आगे पैर कैसे रक्खा जाय? होता है, वही श्रद्धाके पीछे-पीछे अज्ञातकी अँधेरी गुफामें प्रवेश करके उस **'पुराणगह्वरेष्ठ'** को प्राप्त कर सकता है।

बालककी तरह मनुष्य अनुभवकी बातें करता है। माना कि अनुभव कीमती वस्तु है, परंतु मनुष्यका अनुभव है ही कितना? क्या मनुष्य भूत-भविष्यका पार पा चुका है? आत्माकी शक्ति अनन्त है। कुदरतका उत्साह भी अथाह है। केवल अनुभवकी पूँजीपर जीवनका जहाज भविष्यमें नहीं चलाया जा सकता। अनुभवको तुच्छ गिननेवाली श्रद्धा, अन्तःप्रेरणा और प्राचीन ... हमें जहाँ ले जाय, वहाँ जानेकी कला हमें सीखनी चाहिये। जल जाय वह अनुभव, धूल पड़े उस अनुभवपर, जो हमारी दृष्टिके सामनेसे श्रद्धाको हटा देता है। दुनिया यदि आजतक बढ़ सकी है तो वह अनुभव या बुद्धिके आधारपर नहीं, परंतु श्रद्धाके आधारपर ही। इस श्रद्धाका भाथा जबतक खाली नहीं होता, तबतक यात्रामें पैर ... पड़ते ही रहेंगे; तभीतक हमारी दृष्टि अगला रास्ता देख सकेगी और तभीतक दिनके अन्त होनेपर आनेवाली रात्रिकी तरह बार-बार आनेवाली निराशाकी थकान अपने आप ही उतरती जायगी। इस श्रद्धाको जाग्रत् रखनेका—इस श्रद्धाकी आगपरसे राख उड़ाकर इसे हमेशा प्रदीप्त रखनेका—एकमात्र उपाय है—राम-नाम।

राम-नाम ही हमारे जीवनका साथी और हमारा हाथ पकड़नेवाला परम गुरु है।

राम-नाम बिना जीवन व्यर्थ

कहत हैं, आगे जपिहैं राम।
बीचहिं भई और की औरै, पर्‍यौ काल सौं काम॥
गरभ-बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयो विश्राम।
बालापन खेलत ही खोयो, जोवन जोरत दाम॥
अब तौ जरा निपट नियरानी, कर्‍यौ न कछुवै काम।
सूरदास प्रभुकौं बिसरायौ बिना लियें हरि-नाम॥

—सूरदास

कल्याणकारी भगवन्नाम

(लेखक—प्रसिद्ध नामप्रचारक स्व० श्रीयादवजी महाराज)

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

परम कृपालु प्रभुके पवित्र नामको हमारे शास्त्रोंमें कलियुगका मुख्य धर्म माना है। इसके अतिरिक्त अन्य जो-जो धर्म हैं, वे जिनसे बन सकें, उनके लिये हैं; परंतु कल्याणकारी प्रभुका मङ्गल नामस्मरण तो सभीके लिये है।

दुराचारियोंका भी दुराचारी—अत्यन्त पापी मनुष्य भी इसको जप सकता है। पवित्रमें पवित्र संत भी इसीका स्मरण करता है। मूर्ख भी इसे भज सकता है। महापण्डित भी इसका रटन कर सकता है। उच्चसे उच्च ब्राह्मण भी नाम ले सकता है और नीचसे नीच जातिका मनुष्य भी इसे ग्रहण कर सकता है। सारांश यह कि छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, नीरोग-रोगी, देशी-विदेशी सबके द्वारा सब जगह उपयोगमें लाया जा सके—नाम-जप एक ऐसा निर्दोष और सरल साधन है।

इसमें न उम्रकी बाधा है न योग्यताकी, न देशकी बाधा है न कालकी, न वर्णकी बाधा है न जातिकी, न धर्मकी बाधा है न पुण्यकी, न स्त्रीकी बाधा है न पुरुषकी! न इसमें किसी प्रकारकी मेहनत है, न खर्चका सवाल है। बालकसे लेकर वृद्धतक, पृथ्वीके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक बिना किसी बाधाके जिसका प्रसार हो सकता है, यह एक ऐसा सहज मार्ग है।

इसीसे गम्भीर तत्त्वज्ञानसे भरे हुए हमारे शास्त्रोंने नाम-साधनको उत्तम समझकर उसे मुख्य धर्म माना है और जगत्की प्रत्येक जातिने हमारे प्राचीन ऋषियोंके इस सिद्धान्तको किसी-न-किसी रूपमें स्वीकार किया है। श्रीमद्भगवद्गीताके दशम अध्यायमें श्रीभगवान्ने श्रीमुखसे स्वयं कहा है—

'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि ॥'

सर्वयज्ञोंमें 'जपयज्ञ' मैं हूँ। यज्ञ तो बहुतसे हैं, जैसे इन्द्रादि देवताओंके निमित्त किया जानेवाला 'देवयज्ञ', प्रत्येक कर्मको प्रभुके अर्पण करना और प्रत्येक कर्ममें उसी प्रभुको समझना 'ब्रह्मार्पणयज्ञ', सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें रखकर संयमका साधन करना 'इन्द्रियनिग्रहयज्ञ' प्राणिमात्रपर दया रखते हुए गरीबोंको यथाशक्ति दान करना 'दानयज्ञ', महान् प्रभुके लिये यथासाध्य सहनशीलता रखते हुए मौज-शौककी अनेक वस्तुओंकी प्राप्तिका साधन रहनेपर भी प्रसन्नतापूर्वक उनका त्याग करना 'तपयज्ञ', महात्मा पतञ्जलिप्रणीत योगशास्त्रके अनुसार योगसाधनसे निर्विकल्प समाधितक पहुँचना 'योगयज्ञ' और सर्वव्यापी अलौकिक परमात्माके सत्य-स्वरूपकी पहचान करा देनेवाले ज्ञानकी प्राप्तिके लिये आचरण करना 'ज्ञानयज्ञ' कहलाता है। इनके सिवा इसी तरहके अन्यान्य अनेक यज्ञोंका वेदोंमें विस्तारसे वर्णन है। श्रीगीताजी तथा अन्य धर्मग्रन्थोंमें भी वर्णन है। परंतु प्रभुने उन सब यज्ञोंको गौण मानकर नामस्मरणरूपी जपयज्ञकी ही श्रेष्ठता दिखलायी है। नामस्मरणकी आवश्यकता और उसकी उच्चताके लिये भगवान्के इन वचनोंसे बढ़कर हमलोगोंको और कौन-सा प्रमाण चाहिये?

शास्त्र जिसकी अपरिमित प्रशंसासे भरे हैं और नारद, शारद, शेष, महेश और गणेश जिसे निशिदिन रटते हैं, उस भगवन्नामको हमें क्यों भूलना चाहिये? जिस वस्तुकी अन्तमें जरूरत पड़ेगी, उसका यदि सुगमता हो तो, अभीसे संग्रह क्यों नहीं करना चाहिये?

मनुष्य जब असाध्य व्याधियोंसे घिरकर, पराधीन होकर, मरणशय्यापर सोता है, उस समय योग, यज्ञ, व्रत, तप, तीर्थ, स्नान, ध्यान, पाठ, पूजा, देवदर्शन आदि करने या किसी भी नियमके पालनकी उसमें शक्ति नहीं रहती। ये सभी साधन उत्तम हैं, परंतु उस समय सामर्थ्य न होनेके कारण उसके लिये सभी निरुपयोगी हो जाते हैं। उस विकट बेलामें एक प्रभुका नाम ही उस दीन, हीन और सब तरहसे अशक्त बने हुए जीवका एकमात्र अवलम्बन होता है।

जीवके अन्त समयका सच्चा साथी वही है। अपने संसारके सगे-सम्बन्धी और स्नेही देहमें आत्मा है, तभीतकके साथी हैं। आत्मा जिस समय देहको त्यागकर जाता है, उस समय ऐसा कोई भी सम्बन्धी नहीं है जो सहायता करनेके लिये साथ चल सके। एक भगवन्नाम ही उस समय सहायक

साधना चलाता है, तब उसमेंसे भक्तिकी सुगन्ध प्रकट होती ही है। ज्ञान, कर्म, भक्तिके त्रिवेणी-संगमसे ही पुरुषको उत्तम स्थिति प्राप्त होती है। अन्तरात्मा ही परमात्मा-पदको प्राप्त करता है। इस जीवनसाधनाको समझकर उसका अनुशीलन करनेवाला ही नाम-संकीर्तनमें गायेगा—

'ॐ नमो नारायणाय पुरुषोत्तमाय'

भगवान्‌की सनातन उपासनाका यही युगानुकूल सुन्दर स्वरूप है।

(२)

राम-नाम

मनुष्यकी दुर्बलताका अनुभव करके हमारे परम कारुणिक साधु-संतोंने उद्धारके बहुत-से रास्ते ढूँढ़े। अन्तमें उन्हें भगवान्‌का नाम मिला। इससे उन्होंने गाया कि—'राम-नाम ही हमारा आधार है। सब तरहसे हारे हुए मनुष्यके लिये बस, राम-नाम ही एक तारक मन्त्र है। राम-नाम यानी श्रद्धा—ईश्वरकी मङ्गलमयतापर श्रद्धा। युक्ति, बुद्धि, कर्म, पुरुषार्थ सब सत्य हैं, परंतु अन्तमें तो राम-नाम ही हमारा आधार है।

लेकिन आजकलका जमाना तो बुद्धिका जमाना कहलाता है। इस तार्किक युगमें श्रद्धाका नाम ही कैसे लिया जाय?

सच है कि दुनियामें अबुद्धि और अन्धश्रद्धाका साम्राज्य छाया है। तर्क, युक्ति और बुद्धिकी मददके बिना एक डग भी नहीं चला जा सकता। बुद्धिकी लकड़ी हाथमें लिये बिना छुटकारा ही नहीं। परंतु बुद्धि अपङ्ग है। जीवन-यात्रामें आखिरी मुकामतक बुद्धि साथ नहीं देती। बुद्धिमें इतनी शक्ति होती तो पण्डितलोग कभीके मोक्ष-धामतक पहुँच चुके होते। जो चीज बुद्धिकी कसौटीपर खरी न उतरे, उसे फेंक देना चाहिये। बुद्धि-जैसी स्थूल वस्तुके सामने भी जो न टिक सके, उसकी कीमत [illegible] परंतु जहाँ बुद्धि अपना सर्वस्व खर्च करके [illegible] और कहती है—'न एतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्ष[illegible]' श्रद्धाका क्षेत्र शुरू हो जाता है। बुद्धिकी [illegible] भी मुसाफिरीके लिये निकल पड़ता है। परं[illegible] रुक जाती है, वहाँ आगे पैर कैसे रक्खा ज[illegible] होता है, वही श्रद्धाके पीछे-पीछे अज्ञातकी [illegible] प्रवेश करके उस 'पुराणगह्वरेष्ठ' को प्राप्त कर स[illegible]

बालककी तरह मनुष्य अनुभवकी बातें [illegible] माना कि अनुभव कीमती वस्तु है, परंतु [illegible] अनुभव है ही कितना? क्या मनुष्य भूत-भ[illegible] पा चुका है? आत्माकी शक्ति अनन्त है। [illegible] उत्साह भी अथाह है। केवल अनुभवकी पूँजीप[illegible] जहाज भविष्यमें नहीं चलाया जा सकता। [illegible] तुच्छ गिननेवाली श्रद्धा, अन्तःप्रेरणा और प्रा[illegible] हमें जहाँ ले जाय, वहाँ जानेकी कला हमें सीखन[illegible] जल जाय वह अनुभव, धूल पड़े उस अनु[illegible] हमारी दृष्टिके सामनेसे श्रद्धाको हटा देता है [illegible] यदि आजतक बढ़ सकी है तो वह अनुभव य[illegible] आधारपर नहीं, परंतु श्रद्धाके आधारपर ही। इस [illegible] भाथा जबतक खाली नहीं होता, तबतक यात्रामें [illegible] पड़ते ही रहेंगे; तभीतक हमारी दृष्टि अगला रा[illegible] सकेगी और तभीतक दिनके अन्त होनेपर उ[illegible] रात्रिकी तरह बार-बार आनेवाली निराशाकी थका[illegible] आप ही उतरती जायगी। इस श्रद्धाको जाग्रत् रख[illegible] इस श्रद्धाकी आगपरसे राख उड़ाकर इसे हमेशा [illegible] रखनेका—एकमात्र उपाय है—राम-नाम।

राम-नाम ही हमारे जीवनका साथी और हमार[illegible] पकड़नेवाला परम गुरु है।

राम-नाम बिना जीवन व्यर्थ

कहत हैं, आगे जपिहैं राम।
बीचहिं भई और की औरे, पर्‌यौ काल सौं काम॥
गरभ-बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयो बिश्राम।
बालापन खेलत ही खोयो, जोवन जोरत दाम॥
अब तौ जरा निपट नियरानी, कर्‌यौ न कछुवै काम।
सूरदास प्रभुकौं बिसरायौ बिना लिएँ हरि-नाम॥

—सूरदास

कल्याणकारी भगवन्नाम

(लेखक—प्रसिद्ध नामप्रचारक स्व० श्रीयादवजी महाराज)

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

परम कृपालु प्रभुके पवित्र नामको हमारे शास्त्रोंमें कलियुगका मुख्य धर्म माना है। इसके अतिरिक्त अन्य जो-जो धर्म हैं, वे जिनसे बन सकें, उनके लिये हैं; परंतु कल्याणकारी प्रभुका मङ्गल नामस्मरण तो सभीके लिये है।

दुराचारियोंका भी दुराचारी—अत्यन्त पापी मनुष्य भी इसको जप सकता है। पवित्रमें पवित्र संत भी इसीका स्मरण करता है। मूर्ख भी इसे भज सकता है। महापण्डित भी इसका रटन कर सकता है। उच्चसे उच्च ब्राह्मण भी नाम ले सकता है और नीचसे नीच जातिका मनुष्य भी इसे ग्रहण कर सकता है। सारांश यह कि छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, नीरोग-रोगी, देशी-विदेशी सबके द्वारा सब जगह उपयोगमें लाया जा सके—नाम-जप एक ऐसा निर्दोष और सरल साधन है।

इसमें न उम्रकी बाधा है न योग्यताकी, न देशकी बाधा है न कालकी, न वर्णकी बाधा है न जातिकी, न धर्मकी बाधा है न पुण्यकी, न स्त्रीकी बाधा है न पुरुषकी ! न इसमें किसी प्रकारकी मेहनत है, न खर्चका सवाल है। बालकसे लेकर वृद्धतक, पृथ्वीके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक बिना किसी बाधाके जिसका प्रसार हो सकता है, यह एक ऐसा सहज मार्ग है।

इसीसे गम्भीर तत्त्वज्ञानसे भरे हुए हमारे शास्त्रोंने नाम-साधनको उत्तम समझकर उसे मुख्य धर्म माना है और जगत्की प्रत्येक जातिने हमारे प्राचीन ऋषियोंके इस सिद्धान्तको किसी-न-किसी रूपमें स्वीकार किया है। श्रीमद्भगवद्गीताके दशम अध्यायमें श्रीभगवान्‌ने श्रीमुखसे स्वयं कहा है—

'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि ॥'

सर्वयज्ञोंमें 'जपयज्ञ' मैं हूँ। यज्ञ तो बहुतसे हैं, जैसे इन्द्रादि देवताओंके निमित्त किया जानेवाला 'देवयज्ञ', प्रत्येक कर्मको प्रभुके अर्पण करना और प्रत्येक कर्ममें उसी प्रभुको समझना 'ब्रह्मार्पणयज्ञ', सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें रखकर संयमका साधन करना 'इन्द्रियनिग्रहयज्ञ' प्राणिमात्र-पर दया रखते हुए गरीबोंको यथाशक्ति दान करना 'दानयज्ञ', महान् प्रभुके लिये यथासाध्य सहनशीलता रखते हुए मौज-शौककी अनेक वस्तुओंकी प्राप्तिका साधन रहनेपर भी प्रसन्नता-पूर्वक उनका त्याग करना 'तपयज्ञ', महात्मा पतञ्जलिप्रणीत योगशास्त्रके अनुसार योगसाधनसे निर्विकल्प समाधितक पहुँचना 'योगयज्ञ' और सर्वव्यापी अलौकिक परमात्माके सत्य-स्वरूपकी पहचान करा देनेवाले ज्ञानकी प्राप्तिके लिये आचरण करना 'ज्ञानयज्ञ' कहलाता है। इनके सिवा इसी तरहके अन्यान्य अनेक यज्ञोंका वेदोंमें विस्तारसे वर्णन है। श्रीगीताजी तथा अन्य धर्मग्रन्थोंमें भी वर्णन है। परंतु प्रभुने उन सब यज्ञोंको गौण मानकर नामस्मरणरूपी जपयज्ञकी ही श्रेष्ठता दिखलायी है। नामस्मरणकी आवश्यकता और उसकी उच्चताके लिये भगवान्‌के इन वचनोंसे बढ़कर हमलोगोंको और कौन-सा प्रमाण चाहिये ?

शास्त्र जिसकी अपरिमित प्रशंसासे भरे हैं और नारद, शारद, शेष, महेश और गणेश जिसे निशिदिन रटते हैं, उस भगवन्नामको हमें क्यों भूलना चाहिये ? जिस वस्तुकी अन्तमें जरूरत पड़ेगी, उसका यदि सुगमता हो तो, अभीसे संग्रह क्यों नहीं करना चाहिये ?

मनुष्य जब असाध्य व्याधियोंसे घिरकर, पराधीन होकर, मरणशय्यापर सोता है, उस समय योग, यज्ञ, व्रत, तप, तीर्थ, स्नान, ध्यान, पाठ, पूजा, देवदर्शन आदि करने या किसी भी नियमके पालनकी उसमें शक्ति नहीं रहती। ये सभी साधन उत्तम हैं, परंतु उस समय सामर्थ्य न होनेके कारण उसके लिये सभी निरुपयोगी हो जाते हैं। उस विकट बेलामें एक प्रभुका नाम ही उस दीन, हीन और सब तरहसे अशक्त बने हुए जीवका एकमात्र अवलम्बन होता है।

जीवके अन्त समयका सच्चा साथी वही है। अपने संसारके सगे-सम्बन्धी और स्नेही देहमें आत्मा है, तभीतकके साथी हैं। आत्मा जिस समय देहको त्यागकर जाता है, उस समय ऐसा कोई भी सम्बन्धी नहीं है जो सहायता करनेके लिये साथ चल सके। एक भगवन्नाम ही उस समय सहायक

हो सकता है। अतएव उस महामङ्गलकारी आनन्दस्वरूप प्रभुके पवित्र और दुःखनाशक नामका, सदा-सर्वदा प्रेमके साथ अधिक-से-अधिक स्मरण करते रहो!

भगवन्नाम ही त्रिविध तापोंसे जले-भुने मनुष्योंको शान्ति देनेवाला है, वही दुःखमें डूबे हुए लोगोंके लिये सुखका स्थान है। घोरसे घोर कर्म करनेवाले पापियोंको वही पावन करनेवाला है। मायाके अन्धकारमय भूलभुलैयामें दिव्य ज्योतिरूप बनकर वही सच्चा मार्ग दिखलानेवाला है। विषसे भरे हुए संसारमें वह अमृत है; मीठेसे मीठा है और मधुरसे भी अत्यन्त मधुर है। जिसने एक बार उसका स्वाद ले लिया उसे फिर अन्य सारे स्वाद रसहीन और तुच्छ लगने लगते हैं। भवसागरमें डूबते हुए प्राणीके लिये वह नौका है। मोक्षमार्गके प्रवासीका वह सच्चा मित्र है, जीवको प्रभुके साथ मिलानेमें वह महान् गुरु है, अन्तःकरणमें रमनेवाली मलिन वासनाओंका नाश करनेके लिये दिव्य औषध है। वह भक्तोंका दिव्य भूषण है और ऋषियोंका परम धन है। उसे जाननेवाले जीवन्मुक्त होते हैं।

जयति जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम।
जयति जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम॥

जय हो! जय हो! जगत्के मङ्गल करनेवाले हरिनामकी जय हो! जय हो!

बारंबार उस जगत्के मङ्गलकारी हरिनामकी जय-जयकार हो! जय-जयकार हो!

(२)

एक बड़ा धनी सेठ था। उसके पास एक सीधा गरीब ग्रामीण रहा करता था। एक दिन सेठने उसे अपना डंडा दिया। उस भोले हँसमुख ग्रामीणने पूछा—'सेठजी, मैं इसका क्या करूँ?' सेठने हँसते-हँसते जवाब दिया कि 'इसे तू अपने पास रख, तुझसे बढ़कर कोई मूर्ख कभी मिले तो उसे दे देना, इतने दिनतक अपने पास रखना।' उसने कहा—'बहुत ठीक।' यों कहकर वह चला गया और उस डंडेको लिये गाँवमें फिरने लगा। सेठ जब मिलता तब उससे पूछता—'क्यों? क्या तुझे अपनेसे बढ़कर कोई मूर्ख अभी नहीं मिला? तब तो मैंने तुझको सबसे बड़ा मूर्ख समझकर सच्ची ही परख की है!' इस तरह सेठ उससे दिल्लगी किया करता।

सेठ बीमार पड़ा, एक दिन बीमारी बहुत बढ़ गयी, मरनेका समय नजदीक मालूम पड़ने लगा। उस समय उस ग्रामीणने आकर सेठसे पूछा।

ग्रामीण—क्यों सेठजी, क्या करते हो?

सेठ—अब तो चलनेकी तैयारी है।

ग्रामीण—लौटकर कबतक आओगे?

सेठ—भाई, अब मुझे तो वहाँ जाना है जहाँसे लौटकर नहीं आया जा सकता।

ग्रामीण—पाथेय और राहखर्च तो साथ ले लिया है न?

सेठ—भाई! यहाँका पाथेय वहाँ काम नहीं आता। मैंने धन तो बहुत कमाया था परंतु इस जगत्से मिली हुई सारी चीजोंको अन्तमें यहीं छोड़ जाना पड़ता है। संसारके लोग जिस वस्तुको धन समझते हैं, महात्मा उसे धन नहीं मानते।

कबीरने कहा है—

कबीर सब जग निर्धना, धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सो जाणिये, जाके रामनाम धन होय॥

परंतु भाई! इस रामनाम-धनमें मैं तो कंगाल हूँ, रंक हूँ, भिखारी हूँ। इसीसे इस भरे हुए घरमें जैसे खाली हाथ आया था, वैसे ही खाली हाथ जा रहा हूँ।

ग्रामीण—तुम तो जाते हो, अब यह तुम्हारा डंडा किसे दूँ?

सेठ—तुझसे कहा था न, कि जो तुझे अपनेसे अधिक मूर्ख दीखे, उसे ही दे देना। इसमें पूछना क्या है?

ग्रामीण—तो सेठ! यह तुम्हारा डंडा तुम्हीं रक्खो!

सेठ—क्यों? किसलिये?

ग्रामीण—जहाँ थोड़े दिन रहना है, उस जगत्के लिये तो इतना महान् प्रयास और इतना बड़ा वैभव! इतनी सम्पत्ति और इतना अटूट धन! और जहाँ अनन्त काल रहना है वहाँके लिये कुछ भी नहीं। इससे बढ़कर मूर्खता और क्या होगी? मैं मूर्ख हूँ तो तुम मूर्खशिरोमणि हो; इसलिये लो, अपना डंडा सँभालो!

ग्रामीणके आखिरी शब्द सेठके हृदयको चीरकर अंदर प्रवेश कर गये। बड़ा असर हुआ और उस समय सेठसे जो कुछ बन पड़ा सो उसने कर लिया!

* * * *

एक संतको रामनामका जप करते देखकर किसी नास्तिकने कहा—'महाराज! समयको क्यों नष्ट कर रहे हो? रामनाम-जपसे क्या होगा? क्या लड्डू-लड्डू या रोटी-रोटी कहनेसे कभी पेट भरता है?' संतने कहा—'भविष्यमें मुझे ऐसा उपदेश देनेका कभी कष्ट नहीं उठाओगे तो तुम्हारा मुझपर बड़ा उपकार होगा! अरे, तुम्हारे लड्डू और तुम्हारी रोटी तो जड है परंतु मेरा प्रभु तो चैतन्यस्वरूप और सर्वव्यापी है। मैं किसीको भी न सुनाकर यदि मनमें उसका नाम जपता हूँ तो भी वह सुन लेता है। लड्डू और रोटीके साथ भगवन्नामकी तुलना कैसे की जा सकती है?'

काशीमें एक दिन गङ्गाकिनारे भक्त कबीरजी बैठे हुए थे। एक जिज्ञासुने उनसे जाकर पूछा कि 'महाराज! शास्त्रोंमें जहाँ-तहाँ ज्ञानकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। परंतु किसीसे अगर ज्ञानके सम्बन्धमें पूछा जाता है तो उत्तर मिलता है कि ज्ञान तो अनहद है; उसकी कोई हद ही नहीं बतलाता। इसलिये क्या करना चाहिये?' कबीरजीने कहा—

'ज्ञानकी हद मैं जानता हूँ।' जिज्ञासुने कहा 'तो महाराज! बतलानेकी कृपा कीजिये।'

तब कबीरने कहा—

पढ़नेकी हद समझ है, समझणकी हद ज्ञान।
ज्ञानकी हद हरिनाम है, यह सिद्धांत उर आन॥

ज्ञानी भी ज्ञानकी कथा कहते-कहते अन्तमें भगवन्नाम-स्मरण करते हैं और तभी वे शान्ति पाकर विरामको प्राप्त होते हैं; अतएव तू हरिनाममें चित्त लगा।

* * * *

जब बोलनेकी शक्ति नहीं होगी, प्राणपखेरू इस देह-पिंजरमेंसे उड़ गया होगा तब पीछेसे सभी कहेंगे 'रामनाम सत्य है'; परंतु जबतक शरीर ठीक है, देहमें आत्मा है, जीभमें दो शब्द बोलनेकी ताकत है, तबतक रामनाम लेनेकी सीख कोई नहीं देता। इस बातको तो कोई भाग्यशाली संत ही समझाता है।

* * * *

जिसको धन, माल, सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र, मकान, ऐश्वर्य या कीर्ति किसीकी भी जरूरत नहीं थी, जो सबको छोड़कर जंगलमें एकान्त वृक्षके नीचे जाकर बैठ गया था, ऐसे सर्वत्यागी तपस्वीको भी भगवन्नामकी तो जरूरत थी! उसने सारी दुनियाको छोड़ दिया था, परंतु भगवन्नामको नहीं छोड़ा; पर जब कि तुमको धन, माल, स्त्री, पुत्र, मान, इज्जत आदि सबकी जरूरत है, तब उस प्रभुको कैसे भूलते हो?

जो देनेवाला है, उसीको भूल जाओगे तो फिर वह तुम्हें कैसे सम्हालेगा? त्यागी सब कुछ छोड़कर भी प्रभुको रटते हैं; तुम सब कुछ रखकर भी उसे याद नहीं करते। जिसने आजतक एक पलके लिये भी तुमको नहीं भुलाया, उसे तुम भी मत भूलो, भैया! मत भूलो!

तुलसी हठि हठि कहत नित, चित सुन हित करि मान।
लाभ राम सुमिरन बड़ो, बड़ी बिसारे हान॥

* * * *

पासमें धन होता है तो मन्दिर बनवाया जा सकता है, तीर्थयात्रा की जा सकती है, यज्ञ किया जा सकता है, दान हो सकता है; परंतु वृत्तियोंको अन्तर्मुखी करके एकाग्रचित्तसे राम-नाम कभी नहीं लिया जा सकता। राम-राम-राम करनेसे क्या होता है? यों कह देना बड़ा सहज है; परंतु राम-राम करना बड़ा कठिन है।

राज वृथा गजराज वृथा
बनिता सो वृथा, सब साज वृथा ते।
गर्व वृथा गुण सर्व वृथा
अरु द्रव्य वृथा गये दान दया ते॥
यार वृथा परिवार वृथा
संसार वृथा गुरु नित्य चेताते।
एक रामके नाम बिना जगमें
धिक्कार, सभी चतुराईकी बातें॥

तुलसी सोई चतुरता, जे राम-नाम लवलीन।
परधन परमन हरनको, बेस्या बड़ी प्रबीन॥

* * * *

एक धनी सेठने एक संतको अपने विशाल वैभव और महलोंके बड़े-बड़े ठाठ दिखलाये। सब कुछ देख चुकनेके बाद साधुने पूछा—'सेठ! यह सब तो ठीक है परंतु चौकीदार रक्खा है या नहीं?' सेठने कहा—'महाराज! चौकीदार न हो तो दिन-दहाड़े बदमाश लूटकर न ले जायँ? इन सबकी सम्हालके लिये बहुत-से चौकीदार रक्खे हैं।' संतने कहा—

'यह तो तुमने बाहरके मालकी रक्षाके लिये बाहरके चौकीदारोंकी बात कही। मैं तो तुम्हें भीतरके चौकीदारके सम्बन्धमें पूछ रहा हूँ।' सेठने हाथ जोड़कर कहा—

'महाराज ! आपकी गूढ़ बात मैं तो नहीं समझ सका। अन्तरके चौकीदारका क्या अर्थ ?' संतने कहा—'सेठ ! राम-नाम अंदरका चौकीदार है। जैसे तुम्हारे घरमें अनेक अमूल्य वस्तुएँ भरी हैं, इसी प्रकार तुम्हारे अन्तरमें उनसे भी बढ़कर अमूल्य वस्तुएँ भरी पड़ी हैं। जैसे चौकीदारके बिना अपने घरकी चीजें चोरी चली जाती हैं, इसी प्रकार अंदरके चौकीदारके बिना अपने अंदर रहनेवाली अनेक ऊँची-ऊँची चीजें चोरी चली जाती हैं। रामनामके चौकीदार बिना उत्तम नीति चोरी जाती है। इस चौकीदारके बिना जगत्के प्रपञ्चमें हृदयकी शान्ति चली जाती है; भलमनसाई और भक्ति चली जाती है; दया, क्षमा और परोपकार आदि चले जाते हैं और सारा विवेक-ज्ञान चला जाता है। परंतु यदि राम-नामरूपी चौकीदार अंदर रक्खा जाता है तो ये सब बढ़िया-बढ़िया चीजें चोरी जानेसे बच जाती हैं। ये सब दैवी सम्पत्तिकी व जीवनको सुधारनेवाली हैं, जीवनमें रस भरनेवाली हैं अन्तमें मोक्षधामतक पहुँचानेवाली हैं। जैसे इस बा महलकी लौकिक वस्तुओंके चोरी न जानेके लिये कड़ा प्रबन्ध कर रक्खा है, इसी प्रकार तुम्हारा अन्तःव जो अनन्त ब्रह्माण्डके मालिक प्रभुके रहनेका घर है, घरकी अलौकिक वस्तुएँ चोरी न जायँ, इसके लिये तुम्हें प्रबन्ध करना चाहिये।' इस बातको सुनकर सेठ संतके चरणोंमें गिर पड़ा और उसके उपदेशानुसार जी बिताकर चलता बना !

> पुराननको पार नहिं बेदनको अंत नहिं,
> बानी तो अपार कहाँ-कहाँ चित्त दीजिये।
> लाखनकी एक कहूँ, कहूँ एक क्रोरनकी,
> सबहीको सार एक रामनाम लीजिये॥

श्रीभगवन्नाम और स्मरण-भक्ति

(लेखक—श्रीआत्मानन्दजी)

> पळशी तूं तरी नाम कोठें नेशी।
> आम्ही अहर्निशीं नाम घोकूँ॥
> आम्हां पासोनियाँ जातां नये तुज।
> तें हें वर्म बीज नाम घोकूँ॥
> देवा आम्हां तुसें नाम हें पाहिजे।
> मग भेटी सहजे देणें लागे॥
> भोळे भक्त आम्ही चुककोंपि कर्म।
> सांपडलें वर्म रामदास॥ १॥

'प्रभो ! चाहे आप हमसे कितना ही दूर भागते रहें, आप निश्चय ही अपना नाम तो हमसे छीन नहीं सकते; हम अहर्निश उसे रटते रहेंगे। वास्तवमें आप हमसे अलग हो ही नहीं सकते, दूर जा ही नहीं सकते। इस बातको भली-भाँति जानकर हम आपके नामकी रट लगाये रहेंगे। बस, हमें आवश्यकता इसी बातकी है कि आपके नामको पकड़े रहें, उससे चिपटे रहें; फिर तो आप निश्चय ही हमारे सामने प्रकट होंगे, प्रकट हुए विना रह न सकेंगे। हम भोले भक्त अबतक बड़ी भूलमें रहे; अन्तमें हमें आपको पानेका गुर हाथ लग ही गया।'

(समर्थ रामदास)

कल्याण-प्राप्तिके लिये साधकको चाहिये कि वह अपनी प्रकृति एवं रुचिके अनुसार नवधा भक्तिमेंसे किसी एक प्रकारकी भक्तिका अभ्यास शुरू कर दे। प्रकटरूपमें इन नौ प्रकारकी भक्तियोंमेंसे किसी एक प्रकारकी भक्तिका ही आश्रय लेकर भक्त क्रमशः भीतर-ही-भीतर आगे बढ़ता रहता है और बढ़ते-बढ़ते जब वह भक्तिकी अन्तिम सीढ़ी—'आत्म-निवेदन' भक्तिपर पहुँच जाता है, तब उसे भगवत्साक्षात्कार हो जाता है। भक्तहृदयके लोगोंका यह विश्वास होता है कि जीवनमें भगवान् ही उनके प्रधान अवलम्ब हैं, अथवा वे ही उनके प्राणाधार हैं। वे यह समझते हैं कि उनके जीवनका मुख्य कर्तव्य उसे इस प्रकार ढालना, इस प्रकारका बनाना है कि जिससे भगवान्में अतिशय प्रेम होकर उनका साक्षात्कार हो सके। हमारे पूर्वजोंने—भारतीय ऋषि-मुनियोंने अपने विशाल अनुभवके आधारपर परिपक्व विचारके द्वारा यह निश्चय किया है कि नवधा भक्तिमें स्मरण-भक्ति ही वर्तमान युगके लिये सर्वोत्तम साधन है। इसमें न तो एक कौड़ीका खर्च है, न इसके लिये शास्त्रोंके अध्ययनकी आवश्यकता है और न इसमें किसी प्रकारका शारीरिक परिश्रम है; और इसका अभ्यास सब समय सब अवस्थाओंमें, सब प्रकारके लोग कर सकते हैं—चाहे वे किसी धर्म, किसी जाति, किसी मत, किसी स्थिति और किसी भी उम्रके हों—स्त्री हों अथवा पुरुष। यही कारण है कि स्मरण-भक्ति सबसे अधिक सुसाध्य

एवं सरल मानी जाती है, यद्यपि इसमें भगवान्‌के प्रति अटल विश्वास एवं कठिन-से-कठिन परिस्थितिमें भी इसे अक्षुण्ण रखनेकी अनवरत मानसिक चेष्टाकी बड़ी आवश्यकता होती है। भारतीय संतोंने सभी युगोंमें पूरे उत्साहके साथ उन सब लोगोंको, जो उनके सम्पर्कमें आये और जो कठिन साधन नहीं कर सकते थे, इसी भक्तिका उपदेश दिया। स्मरण-भक्ति (जिसे साधारणतः लोग नाम-स्मरण कहते हैं) का अर्थ है—भगवान्‌के किसी भी पवित्र नामका (जो भक्तको प्रिय हो) मन-ही-मन उच्चारण करना अथवा नामके सहारेसे नामी (भगवान्-) का चिन्तन करना। भगवन्नामकी बार-बार आवृत्ति करनेका नाम है 'जप'। 'जप' शब्दका धात्वर्थ यही है। नाम-जप हमारे अंदर सांसारिक पदार्थोंके प्रति, जो सभी अनित्य हैं, वैराग्य उत्पन्न करके हमें जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुड़ा देता है। इसका अभ्यास यदि बराबर चलता रहे तो यह एक दिन अवश्य हमें भगवान्‌का साक्षात्कार एवं मोक्षकी प्राप्ति करा देता है। शास्त्र इस बातकी घोषणा करते हैं कि असुर-बालक प्रह्लाद, राजकुमार ध्रुव, देवी शबरी, महर्षि वाल्मीकि (जो अपने जीवनके आरम्भमें एक विख्यात डाकू थे) तथा प्राचीन युगके अनेकों बड़े-बड़े महात्मा इस साधनके अभ्याससे आध्यात्मिक पूर्णताको प्राप्त कर चुके हैं। आधुनिक कालके इतिहासमें भी इस प्रकारके कई उदाहरण मिलते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी (जो जातिके ब्राह्मण थे), संत तुकाराम (जो वैश्यकुलके थे), गोरा कुम्हार (जो शूद्र थे), चोखा मेला (जो अन्त्यज थे), संत कबीर (जो जातिके जुलाहे थे), देवी मीराँ (जो राजघरानेकी थीं) तथा स्वामी रामदास (जो संन्यासी थे)—ये सभी स्मरण-भक्तिके द्वारा ही ऊँची-से-ऊँची स्थितिको प्राप्त हुए थे। इनके अतिरिक्त विभिन्न जाति एवं धर्मोंके वृद्ध-युवा, धनी-गरीब, स्त्री-पुरुष एवं सभी आश्रमोंके अनेकों ऐसे संत हो गये हैं जिन्होंने स्मरण-भक्तिके द्वारा भगवान्‌को प्राप्त किया। वे सभी उच्चतम कोटिके संत थे। उन्होंने अपने निजी उदाहरणसे स्मरण-भक्तिका माहात्म्य प्रकट किया। वर्तमान युगमें भी ऐसे लोगोंके उदाहरण मिल सकते हैं, जिन्हें इस साधनसे लाभ हुआ है। इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्यमात्रके कल्याणके लिये भगवन्नाम सभी कालमें उपयोगी है।

कुछ लोगोंका मत यह है कि वैखरी वाणीके द्वारा भगवन्नामके स्पष्ट उच्चारणका नाम ही नामस्मरण है। एक प्रकारसे यह ठीक भी है; क्योंकि मनमें पहलेसे ही नामका उच्चारण सम्भव है। परंतु इस विचारसे वास्तवमें नामस्मरण न कहकर नामोच्चारण कहना अधिक सुसङ्गत होगा। अवश्य ही इससे मनकी एकाग्रता एवं श्रवणेन्द्रियकी शुद्धि होती है। यही नहीं, शास्त्रोंमें तो नामकी यहाँतक महिमा कही गयी है कि मरते समय यदि किसीके मुखसे भगवन्नामका उच्चारणमात्र हो जाय तो केवल उतनेसे ही उसका कल्याण होना निश्चित है। इसीलिये नामोच्चारणके अभ्यासपर इतना जोर दिया गया है। परंतु दुर्भाग्यवश प्रतिकूल प्रारब्धके कारण बहुधा अन्त समयमें लोगोंकी बोली बंद हो जाती है, जिसके कारण वे नामोच्चारण कर नहीं पाते। परंतु ऐसी स्थितिमें मरणासन्न व्यक्तिको भगवन्नाम सुनानेसे भी बहुत शुभ परिणाम होता देखा गया है; क्योंकि मृत्युके समय प्राणीको जो असह्य वेदना हुआ करती है, उसमें भगवान्‌की स्मृति छूट जानेका भय रहता है और नामश्रवणसे भगवत्स्मृतिको जगानेमें सहायता मिलती है। इसीलिये हमारे शास्त्रोंमें ऐसा विधान किया गया है कि मरणासन्न व्यक्ति जिस कोठरी या कमरेमें हो, वहाँका वातावरण शान्त होना चाहिये। वहाँपर जो लोग मौजूद हों, उनके द्वारा कोई ऐसी क्रिया नहीं होनी चाहिये जिससे मुमूर्षुकी वृत्तियोंमें विक्षेप हो और मुमूर्षु व्यक्तिके मित्रों एवं सम्बन्धियोंको चाहिये कि वे उसकी अन्य प्रकारकी सेवा करनेके साथ-ही-साथ धीमे स्वरमें उसे भगवान्‌के मधुर नामोंका श्रवण कराते रहें। मनुष्यके जीवनमें उसकी सबसे बड़ी सेवा यही मानी गयी है कि अन्तसमयमें उसे भगवान्‌के पावन नामोंका श्रवण कराया जाय।

भक्तिकी साधनामें केवल भगवन्नामके मानसिक जपकी अपेक्षा भी भगवच्चिन्तनका स्थान अवश्य ऊँचा है; क्योंकि भगवच्चिन्तनमें ध्यान भी आ जाता है, जिसके द्वारा साधक नामीके स्वरूपमें गहरी डुबकी लगानेमें समर्थ होता है और ध्यानसे, ध्यानरहित नामस्मरणकी अपेक्षा, भगवत्साक्षात्कार बहुत जल्दी होता है। नामोच्चारण तो नामस्मरणमें छिपा रहता है।

कभी-कभी जब भक्त भगवान्‌के चिन्तनमें तन्मय हो जाता है तो उनका पवित्र नाम उसकी वैखरी वाणीसे अनायास निकल पड़ता है। नामोच्चारणकी अपेक्षा नामस्मरण

निस्संदेह भक्तिकी उच्चतर साधना है और नामोच्चारणकी अपेक्षा नामस्मरणका फल भी अधिक होता है; क्योंकि उससे साधकका जीवन सब ओरसे पवित्र हो जाता है—उसके मन, वाणी और शरीर तीनों शुद्ध हो जाते हैं। नामस्मरणसे मानस रोगोंकी निवृत्ति तो होती ही है, साथ ही यदि शरीरमें किसी प्रकारकी व्याधि या पीड़ा हो तो मन दूसरी ओर लग जानेके कारण उसकी तीव्रता भी कम हो जाती है। नामस्मरणका पूरा लाभ तो तब होता है जब उसका अभ्यास तैलधारावत् अविच्छिन्नरूपसे किया जाय; उसका तार कभी टूटे ही नहीं। स्मरण निरन्तर होने लगे, इसके लिये यह आवश्यक है कि साधक नियमितरूपसे तथा निश्चित समयतक इसका एकाग्र मनसे प्रतिदिन अभ्यास करे और क्रमशः स्मरणके समयको बढ़ाता जाय। यदि सम्भव हो और साधक आवश्यक समझे तो अपने उपासना-गृहकी पवित्रताको बढ़ानेके लिये उसे भगवान् तथा संतोंके चित्रोंसे सजा ले, ताकि उन मूक चित्रोंसे मिलनेवाले महान् उपदेशोंकी उसे बार-बार स्मृति होती रहे। परंतु प्रारम्भिक अवस्थामें साधकको अनुभव होगा कि उसका मन भगवन्नामके साथ जबर्दस्ती बाँधे जानेमें आनाकानी करता है; क्योंकि मन स्वभावसे ही नवीनताका प्रेमी है, उसे लगातार एक ही व्यापारमें लगे रहना पसंद नहीं है; और सामान्यतः वह संसारका ही चिन्तन करना, नामस्मरणको छोड़कर दूसरी ही उधेड़बुनमें लग जाना अधिक पसंद करता है, जिसका उसकी ध्येय वस्तुसे कोई सम्बन्ध नहीं होता। जो साधक दृढनिश्चयी एवं दृढसंकल्प होता है, वह इस प्रकारके अनुभवसे घबराता नहीं, हताश नहीं होता; परंतु अपने पवित्र उद्देश्यकी सिद्धिके लिये भगवान्में पूर्ण विश्वास करके धैर्यपूर्वक एवं तत्परताके साथ अपने चञ्चल मनको उसके लिये नियत किये हुए कार्यमें बार-बार लगानेका अभ्यास करता (देखिये गीता ६। २५-२६)। दूसरे साधकोंके बहुमूल्य अनुभवोंसे लाभ उठानेके लिये वह सत्सङ्गका सेवन करता है तथा श्रवण एवं कीर्तनके उसे अनेकों अवसर प्राप्त होते रहते हैं, जिससे उसे मनोबल प्राप्त होता है एवं उसके मनमें आत्मविश्वास उत्पन्न होता है। कभी-कभी साधक केवल नामस्मरणके द्वारा अपने मनको निगृहीत करनेमें असमर्थ पाता है। अतः मनको एकाग्र करनेके लिये वह अपने मानसिक नेत्रोंके सामने भगवान्‌की एक मनोमोहक मनुष्याकार मूर्ति स्थापित करता है। इस उपायसे उसका चित्त भगवान्‌में अधिक सुगमतासे स्थिर हो जाता है। वह प्रारम्भमें हृदयमें ही भगवान्‌के चरणकमलोंका ध्यान करता है। नवधा भक्तिकी अगली सीढ़ी—पादसेवन-भक्तिका प्र[illegible] होता है। नामस्मरण एवं मूर्तिध्यान—इन द्विविध साध[illegible] अभ्यास करनेसे साधकका मन अधिक ठहरने लगता है धीरे-धीरे वह अपने विद्रोही मनको निगृहीत करनेमें [illegible] होता है। मनका यह गुण है कि स्वभावसे मुलायम ह[illegible] कारण लगातार चेष्टा करनेपर इसे उच्चतर शक्तियोंके प्रभ[illegible] लाया जा सकता है। अतः साधकके बार-बार समझ[illegible] यह उसकी बात मान लेता है, उसके द्वारा नियत किये [illegible] काममें स्थिरतासे लग जाता है और अन्तमें संसारका चि[illegible] छोड़कर भगवान्‌के चरणकमलोंसे चिपट जाता है—चि[illegible] जाता है। इस प्रकार साधक पादसेवनकी मंजिलको सफ[illegible] पूर्वक तै कर लेता है। इसके बाद वह एक-एक करके न[illegible] शिखातक भगवान्‌के सम्पूर्ण श्रीअङ्गोंका ध्यान कर[illegible] और अन्तमें उनके मन्दस्मितयुक्त मुखारविन्दपर चित्[illegible] टिका देता है। इस ध्यानके साथ-साथ वह भगवान्‌की मा[illegible] पूजा भी करता है और इस प्रकार अर्चन-भक्तिकी भूमिक[illegible] प्रवेश करता है।

इस भूमिकामें पहुँचकर भक्त भगवान्‌की महिमाको [illegible] रूपसे जान लेता है, उसका अहङ्कार विलीन हो जाता [illegible] और वह अत्यन्त विनम्रभावसे भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रण[illegible] करता है—उनके चरणोंमें लोट जाता है। इस प्रकार [illegible] वन्दन-भक्तिकी भूमिकामें पहुँच जाता है। इसके बाद उ[illegible] यह अनुभव होता है कि मनुष्यमात्र तथा कीट-पतङ्गादि [illegible] लेकर पशु-पक्षी आदि सभी निम्न कोटिके जीव भी भगवान्[illegible] ही रूप हैं और उन सबकी सेवा भगवदुपासनाका ही अ[illegible] है। यों समझकर वह छोटे-से-छोटे प्राणीकी भी बड़े चाव[illegible] सेवा करता है और इस प्रकार आगे चलकर वह दास्यभक्तिक[illegible] भूमिकामें पहुँच जाता है। परंतु जीवकी आध्यात्मिक स्थिति क्रमशः ऊँची-से-ऊँची होती चली जाती है और वह सदा दास्यकी ही स्थितिमें नहीं रहता। कपीश्वर हनुमान्‌की ऋष्यमूक पर्वतपर पहले-पहल भगवान् रामचन्द्रजीसे भेंट हुई; तभीसे वे अपनेको श्रीरामका दास मानने लगे औ[illegible] अन्ततक उन्होंने अपना यही बाना रक्खा। परंतु अपन[illegible] दास्य-भक्तिके द्वारा उन्होंने यह अनुभव किया कि जीवात्मा[illegible] रूपमें मैं भगवान्‌का प्रतिबिम्ब हूँ और प्रत्यगात्माके रूपमें उनसे अभिन्न हूँ। संसारमें भी देखा जाता है कि ईमानदा[illegible]

और योग्य नौकर अपने मालिककी नेकनामीके साथ नौकरी बजाकर तरक्की पा जाते हैं और अपने मालिकके सहायक अथवा मुनीम बन जाते हैं और अन्तमें उनके साझेदार भी हो जाते हैं। इसी प्रकार जो भक्त दास्यभक्तिका पार्ट पूरी तरह निभा लेते हैं, उन्हें इस सेवाके पुरस्कारमें मित्रता (सख्य-भक्ति) का दर्जा मिलता है। इस भूमिकाकी बाहरी पहचान यह होती है कि साधक भगवान्‌के उच्च श्रेणीके भक्तोंकी अन्तरङ्ग गोष्ठियोंमें प्रवेश पा जाता है और उसे इस योग्य समझ लिया जाता है कि वह अपने आध्यात्मिक अनुभवोंका दूसरोंके साथ मिलान कर सके। यह सभी लोग जानते हैं कि ज्यों-ज्यों अधिक समय बीतता है और दो मित्र एक-दूसरेसे अपने मनकी बात कहकर तथा अपनी बीती हुई सुनाकर और कठिन समयमें एक-दूसरेकी सहायता करके, दुःखमें धीरज बँधाकर तथा बीमारी आदिमें सेवा करके हृदयसे एक-दूसरेके अधिक निकट होते जाते हैं—यहाँतक कि उनके हृदय एक प्रकारसे अभिन्न हो जाते हैं, त्यों-त्यों उनकी मित्रता अधिकाधिक गाढ़ होती जाती है; परंतु अपने-अपने स्वाँगके अनुकूल उन्हें बाहरी भेद रखना ही पड़ता है। यही बात भक्त और भगवान्‌के सम्बन्धमें भी माननी चाहिये। जबतक भक्तका शरीर एवं बाह्य जगत्‌में अध्यास रहता है, तबतक उसे यह अनुभव होता है कि मैं भगवान्‌से पृथक् हूँ। परंतु भगवान्‌से गाढ़ प्रेम हो जानेपर उसके लिये भगवान्‌का पार्थक्य असह्य हो जाता है। अतः भक्तिकी चरम सीमापर पहुँचकर वह अपने शरीर और आत्मा दोनोंको बिना किसी शर्तके भगवान्‌के अर्पण कर देता है। उसे यह अनुभव हो जाता है कि मेरा यह नश्वर शरीर, जिसे मैं अबतक अपना स्वरूप मानकर उससे प्रेम करता रहा हूँ, मुझे कुछ ही कालके लिये भगवान्‌की उपासनाके निमित्त, अर्थात् भगवान्‌के नित्य स्वरूपका अनुभव करनेके लिये और न केवल मनुष्यमात्रकी अपितु मनुष्येतर प्राणियोंकी भी सेवा करनेके लिये, धरोहररूपमें मिला है और उसे किसी भी समय बिना क्षणभरकी पूर्वसूचनाके मुझसे छीना जा सकता है, वापस लिया जा सकता है। इस प्रकार वह आत्मनिवेदनकी भूमिकामें पहुँच जाता है और अब उसे भगवान्‌से पृथक् होनेका भाव नहीं सताता। ऊपर बताये हुए भावोंमेंसे किसी भी भावको लेकर जो साधक भक्तिका साधन आरम्भ कर देता है और बराबर किये ही चला जाता है, उकताकर उसे छोड़ नहीं देता, वह भगवद्विश्वासके बलसे अपने-आप ही आगेकी भूमिकाओंमें पहुँच जाता है। स्मरण-भक्ति जब गाढ़ हो जाती है और भक्तका मन उसके काबूमें हो जाता है, तब उसे परा भक्ति प्राप्त होती है, जिसमें जीवका यह भ्रम कि 'मैं भगवान्‌से भिन्न हूँ'—मिट जाता है। परंतु भक्तकी यह स्थिति अधिक दिनोंतक ठहरती नहीं, जिसके कारण उसे दुःख होता है। कहते हैं कि स्मरणकी अत्यन्त गाढ़ अवस्थामें भक्त आत्मनिवेदनकी भूमिकामें पहुँच जाता है और उस स्थितिमें कुछ समयतक परा भक्तिका आनन्द लूटता है। इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो गयी कि भगवान्‌के नाममें महान् शक्ति है।

इन सब बातोंका निचोड़ अथवा निष्कर्ष यह है कि भगवन्नामके स्मरणरूपी शस्त्रके द्वारा साधक अपनी विशृङ्खल वृत्तियों (बहिर्मुख मन-) को निगृहीत कर लेता है और उन्हें अन्तर्वीक्षण एवं सदाचारके मार्गमें चलाता है और चित्तवृत्ति-निरोधके द्वारा, जो भक्तिकी पूर्णता एवं मोक्षकी प्राप्तिके लिये आवश्यक है, हृदयके दुर्गपर अधिकार कर लेता है। यह है स्मरण-भक्तिकी महिमा।

उच्च स्वरसे श्रीहरिनाम-संकीर्तनकी महिमा

पशु, पक्षी, कीटादि प्राणी जो स्वयं नामोच्चारणमें असमर्थ हैं, वे हरिनामको सुनकर ही उत्तम गतिको प्राप्त करते हैं। श्रीकृष्णके नाम-जपसे तो मनुष्य आप ही तरता है; परंतु अति ऊँचे स्वरसे संकीर्तन करनेसे वह दूसरोंको भी तारता है। जप करनेवालेकी अपेक्षा उच्च स्वरसे संकीर्तन करनेवाला सौगुना अधिक फल पाता है। प्रेमपूर्वक उच्चकण्ठसे श्रीकृष्ण-नाम-संकीर्तन करते रहनेपर तमाम जीव श्रवणमात्रसे ही मुक्त हो जाते हैं। भैया! तुम्हारे सामने भयानक प्रलय आ रहा है। हरिनाम लो; दूसरा उपाय नहीं। अपने भावी कल्याणके लिये भयानक मोह और पापोंको छोड़कर सब प्रकारसे हरिनामको अंगीकार करो। संकीर्तनरूप सूर्यके प्रभावसे पापरूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है।

—प्रभु श्रीजगद्बन्धु

नाम-जपकी साधना

(लेखक—स्वामीजी श्रीतपस्यानन्दजी महाराज)

जप किसे कहते हैं ?

'जप' का धात्वर्थ है—हृदयमें भगवान्‌का नाम लेना। किसी मन्त्रको या नामको उसके अर्थकी भावना हुए बारंबार भीतर-ही-भीतर दुहराया जाता है; स्फुट ो कुछ नहीं कहा जाता। जपका वास्तविक स्वरूप यही रंतु व्यवहारमें इसके दो रूप और भी प्रचलित हो ; अधिकार-भेदसे। मन्त्र या नामका उच्चारण जीभ होठके द्वारा इस प्रकार भी किया जा सकता है जिसमें करनेवाला उसे सुनता रहे, और कोई न सुने। जप ी एक विधि यह भी है कि वाणीद्वारा स्पष्टरूपसे नाम त्रका उच्चारण किया जाय, जिसमें और लोग भी उसे कें। परंतु जपमें और प्रार्थना-स्तुतिमें बड़ा अन्तर जपमें मन्त्र या नाम छोटा-सा होता है और उसीकी र आवृत्ति की जाती है तथा यह कार्य व्यक्तिगतरूपसे ा है, सामूहिकरूपमें नहीं। जपमें मुख्य बात नाम त्रकी लगातार आवृत्ति ही है, इसीलिये प्रणाली यह अँगुलियोंपर या मालापर जपकी संख्या रक्खी है।

ंसारके प्रायः सभी मुख्य धर्मोंमें जपकी प्रथा प्रधान ापक रूपसे चली आयी है। जो धर्म जितने गहरे ाम्भीर हैं, उनमें जपकी महत्ता उतनी ही अधिक ; की गयी है। प्रत्येक आस्तिक रोमन कैथलिक ा व्यवहार करता है। यही बात मुसलमानोंके साथ भी तसबीह (माला) रखते और जप करते हैं। था हिंदूधर्ममें तो, जहाँ धार्मिक क्रिया-कलापका इतना है, प्रायः प्रत्येक साधनामें जप एक मुख्य अङ्ग हो । इस प्रकार यह बात अत्यन्त स्पष्ट है कि संसारके सभी धर्मोंने एकमतसे आध्यात्मिक उत्थान एवं के लिये जपकी उपयोगिताको स्वीकार किया है और हुत ऊँचा स्थान दिया है।

जपका मनोवैज्ञानिक रहस्य

ह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि साधनरूपमें जपका इसी कारण इतना अधिक है कि इसके द्वारा चित्तकी वृत्तियोंको एकाग्र कर ध्येय वस्तुपर ठहरानेमें बड़ी मदद मिलती है। चित्तको एकाग्र करनेकी इस क्रियामें दो बातें होती हैं। पहली बात तो यह होती है कि साधकको अपना चित्त समस्त बाह्य पदार्थोंसे हटाना पड़ता है और फिर जब चारों ओरसे हटकर उसकी चित्तवृत्तियाँ एकाग्र हो जाती हैं तो साधक उन्हींको अपना लक्ष्य बनाकर इस प्रकार चेतना-के रहस्यको समझनेकी चेष्टा करता है। जपके मनोवैज्ञानिक महत्त्वको ठीक-ठीक हृदयङ्गम करनेके लिये यह आवश्यक है कि साधक ऊपर बतायी हुई प्रक्रियाकी विशिष्ट कठिनाइयों-पर ध्यान दे। बाहरके किसी पदार्थपर चित्तको एकाग्र करना आसान है। यदि मनुष्यकी ज्ञातव्य विषयमें थोड़ी भी रुचि है तो उस विषयकी स्थिरता तथा उसका निश्चित आकार-प्रकार स्वयं ही उसके मनको भागनेसे रोककर उसीपर स्थिर करनेमें सहायक होगा। इसके अतिरिक्त जब हम किसी बाह्य पदार्थपर चित्तको जमाते हैं तो मन उतने समय-के लिये अपने स्वरूपका लक्ष्य छोड़ देता है और अपनेको एक बाह्य एवं स्थूल साँचेमें ढालकर तदाकार बन जाता है।

परंतु बाह्य पदार्थोंसे चित्तको हटाकर जब हम अपने भीतर ले जाकर उसे टिकाना चाहते हैं तो उस समय बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है; क्योंकि भीतरमें न तो वैसी कोई मूर्ति ही है, न आकृति ही, जहाँ चित्तको ठहरने-का आधार मिले और जहाँसे चित्त भाग न सके। साधक जैसे ही अपनी इन्द्रियोंको बाह्य वस्तुओंसे हटाकर मनको ढीला छोड़ देता है तथा निर्विषय करनेकी चेष्टा करता है—जो मनको अन्तर्मुखी करनेकी प्रथम सीढ़ियाँ हैं—तो उस समय मनकी तरलता इतने विकटरूपमें सामने आने लगती है कि साधक उसे देखकर घबरा उठता है। ऐसी अवस्थामें होता क्या है कि साधकके चित्तरूपी पर्देपर ऐसे-ऐसे चित्र, ऐसी-ऐसी स्मृतियाँ, जो किसी बाह्य वस्तुके चिन्तनमें उसे कभी नहीं सताती, सिनेमाकी फिल्मकी तरह बड़ी तेजीसे दौड़ने लगती हैं और उसका चित्त, जिसने अभी आत्म-निरीक्षणका अभ्यास प्रारम्भ किया होता है, उधरसे बलात् खींचा जाकर नाना प्रकारकी अतीत स्मृतियों एवं चित्र-विचित्र कल्पनाओंके जालमें फँस जाता है। फिर

मन समग्ररूपसे संसारका चित्र बनानेके काममें ही लग जाता है। मनकी ऐसी ही अवस्थाको लक्ष्यमें रखते हुए अर्जुनने भगवान्से कहा था—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥
(गीता ६। ३४)

'हे कृष्ण! यह मन बड़ा चञ्चल और प्रमथन स्वभाववाला है, बड़ा ही दृढ़ और बलवान् है। इसलिये उसको वशमें करना मैं वायुको वशमें करनेकी भाँति अति दुष्कर मानता हूँ।'

ऐसी स्थितिमें यदि साधक आत्मनिरीक्षण तथा ध्यानका अभ्यास करना चाहे तो उसके लिये केवल दो ही मार्ग रह जाते हैं। एक तो यह कि उसका मन अपने ही संकल्प-विकल्पका द्रष्टा बनकर अपनी ही लीलाओंको देखते रहनेका अभ्यास करे, अर्थात् अपने भीतर जो चित्र, संकल्प या मूर्तियाँ खड़ी होती हों उन्हें तटस्थ होकर केवल देखा भर करे। परंतु इसमें बड़ा खतरा यह है कि द्रष्टा अपने स्थानसे भ्रष्ट होकर दृश्यमें ही जा मिले; क्योंकि मनके रचे हुए चित्रों और संकल्प-विकल्पोंमें इतना मादक आकर्षण रहता है कि उन्हें अलगसे देखते रहना और उनमें लुभा न जाना कठिन है। अथवा वह एक थके हुए संतरीकी तरह निद्रासे अभिभूत होकर सो जायगा। ये ही दो खतरे इस साधनामें हैं। यदि कोई साधक पूरी सावचेतीके साथ इन दोनों प्रत्यवायोंको जीत सके और अन्ततक दर्शककी भाँति तटस्थ बना रहे तो मनकी उछल-कूद शीघ्र ही बंद हो जायगी और ध्यानकी प्रगाढ़ स्थिति शीघ्र ही प्राप्त हो जायगी।

परंतु जो व्यक्ति ध्यानकी इस प्रक्रियाको कठिन अथवा असम्भव मानता है, उसे नाम-जपके द्वारा ही चित्तकी एकाग्रता तथा ध्यानका अभ्यास करना होगा। यहाँ हम नामकी रसात्मक अनुभूतिकी चर्चा न कर केवल मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे ही नामकी साधनापर विचार करेंगे, जिसमें यह प्रकट हो जाय कि नाम-जपकी साधनासे किस प्रकार आत्म-निरीक्षण एवं मनकी सतर्कतामें सहायता मिलती है। सबसे पहली और मुख्य बात तो यह है कि अर्थकी भावनाके साथ जब नाम-जप किया जाता है तो चित्तकी गतिके लिये एक निश्चित मार्ग तैयार हो जाता है और टिकावके लिये उसे एक सहारा मिल जाता है, जिससे मन इधर-उधर भागने अथवा नाना प्रकारके संकल्प-विकल्प करनेमें लगा रहता है। घोड़ेको जब चलाते हैं तो उसकी आँखोंके दोनों ओर आड़ कर देते हैं, जिससे वह केवल सामने देख पाता है, इधर-उधर नहीं ताक सकता। ठीक इसी प्रकार मनकी सारी गतिको एक ही दिशामें मोड़कर उसे साधा जाता है। इसके अतिरिक्त यदि मन अपनी ओर समझसे हटकर इधर-उधर भटकने भी लगे तो लगातार नाम-जप करते रहनेसे किसी-न-किसी क्षण उसकी स्मृति होगी ही। उस समय मनको एक झटका-सा लगेगा और फिर वह अपने निश्चित मार्गपर चलने लगेगा, जिसपर हम उसे चलाना चाहते हैं। इस प्रकार मनकी लगामको बार-बार खींचनेसे उसकी चञ्चलता धीरे-धीरे कम हो जाती है और वह ठीक रास्तेपर चलने लगता है। आत्म-निरीक्षणके अभ्यासमें भी, जैसा कि हम पहले कह आये हैं, पीछे यही स्थिति प्राप्त हो जाती है।

परंतु जपमें जो मनकी क्रिया होती है, उसपर अधिक गहरा विचार करनेपर यह पता चलेगा कि इसमें अत्यधिक सावचेती तथा सतर्कताकी आवश्यकता होती है; क्योंकि एक ही नाम अथवा मन्त्रकी बारंबार आवृत्ति करनेपर चित्तमें जो चित्र या मूर्ति बनती है, उसपर चित्तको जमाये रखना खिलवाड़ नहीं है। मन्त्रकी आवृत्तिसे धीरे-धीरे चित्तमें जो एक भावधारा उत्पन्न होती है, उसमें दो प्रत्यवाय—दो बाधाएँ ऐसी विकट होती हैं जिनके कारण उस भावधाराके छिन्न-भिन्न होनेका भय रहता है। पहली कठिनाई तो यह होती है कि चित्तमें संकल्प-विकल्पोंका उठना बंद नहीं होता—बार-बार वह मनमाने दृश्य लाकर उपस्थित करता है, जिससे उस क्षीण भावधाराके टूटने तथा मार्गसे हट जानेका भय रहता है। दूसरी बाधा यह है कि मन कभी भी अपनी जप-साधनासे विरत होकर आलस्य और नींदका शिकार हो जा सकता है, जिससे कि वह भावधारा कठोर होकर जडताका एक ठोस पुंज बन जा सकती है। दोनों ही अवस्थाओंमें चित्तकी निर्विषयता एवं एकाग्रता टूट जाती है। इसलिये जपके ठीक तरहसे चलानेका अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि जिस भावकी आप आवृत्ति करते हैं, उसीपर चित्तको एकाग्र करनेकी चेष्टा करें; परंतु साथ ही इस बातकी भी खूब सावधानी रक्खें कि हृदयका रस पूर्णतः उसी ओर प्रवाहित होता रहे और भीतर इतना होश

बना रहे कि जिसमें मन थककर या मार्ग छोड़कर नींद-की शरण न ले ले, तन्द्रामें लीन न हो जाय।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनको द्रष्टा बनाने तथा मनुष्यके क्षुद्र 'अहं' के पीछे रहनेवाली सत्य वस्तुके स्वरूपका अनुसंधान करनेके अभ्यासके लिये जिन-जिन बातोंकी आवश्यकता है, वे सब बातें हमें जपके साधनमें प्राप्त होती हैं।

भक्तिके अङ्गरूपमें जपका साधन

जपकी साधनाके महत्त्वको भलीभाँति हृदयङ्गम करनेके लिये उसपर मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे ही विचार करना पर्याप्त नहीं है। उसके साथ ही यह भी जानना चाहिये कि जपका भक्तिके साथ क्या सम्बन्ध है। कारण कि जिसकी हम बार-बार आवृत्ति एवं चिन्तन करते हैं, वह कोई सामान्य शब्द नहीं है—वह तो भगवान्‌का पावन नाम है और यह स्मरण रहे कि भगवान्‌के नामकी शक्ति अपार है। श्रीमद्भागवतका वचन है कि शास्त्रोंमें जिन-जिन प्रायश्चित्तोंका विधान पाया जाता है, उनसे खास-खास पापोंका ही मार्जन होता है। परंतु नामकी साधनासे तो पापकी वृत्ति ही उच्छिन्न हो जाती है—जड़-मूलसे। इसी कारण नामकी साधना सर्वोपरि एवं सबसे निराली है। नामकी अतुल शक्तिका निदर्शन पुराणकी निम्नलिखित आख्यायिकामें हुआ है। एक बार भगवान् श्रीकृष्ण तुलापर बैठे और सत्यभामाजीने उन्हें तौलनेके लिये सुवर्ण और रत्नोंकी बहुत बड़ी ढेरी तराजूके दूसरे पलड़ेपर रक्खी। परंतु भगवान् जिस पलड़ेमें बैठे थे, वह जमीनसे उठातक नहीं। फिर तुलसीके एक पत्तेपर भगवान्‌का नाम लिखकर उसे दूसरे पलड़ेपर रक्खा। ऐसा करते ही भगवान्‌वाला पलड़ा एकदम ऊपर उठ गया। जो साधक नामकी इस अपार महिमाको समझकर पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वासके साथ नाम-साधनामें प्रवृत्त होता है, वह वस्तुतः एक ऐसी शक्ति प्राप्त कर लेता है जो उसके सम्पूर्ण अस्तित्वको आमूलतः पलट देगी और उसका जीवन कुछ और ही हो जायगा; क्योंकि भगवान्‌का नाम भगवान्‌से भिन्न नहीं है—किंबहुना नाम तो भगवान्‌की अपेक्षा भी अधिक महिमामय है, अधिक तेजस्वी है, जैसा कि ऊपरकी कथासे स्पष्ट हो जाता है। नाम-साधनाके आरम्भमें साधककी इच्छाएँ और वासनाएँ अपनी हिलोरमें उसके मनको एक बार भले ही चञ्चल कर दें; परंतु यदि साधक अपनी श्रद्धा और आस्थामें अडिग रहा, स्खलित नहीं हुआ तो यह नाम ही उसके समस्त योगक्षेमका वहन करने लगता है और उस समय साधककी इच्छाएँ तथा वासनाएँ वैसे ही दब जाती हैं, जैसे पत्थरसे दबा देनेपर कागज। इतना ही नहीं, नामकी निरन्तर साधनासे हृदयमें भगवान्‌की प्रीति उत्पन्न होती है, उनके चरणोंमें अपने आपको लुटा देनेकी साध जगती है और मन शीघ्र ही अपने इष्टके स्वरूपमें लीन हो जाता है, जो जीवनका सच्चा स्वरूप है। अपने भीतर ही अपनी खोयी हुई 'निधि' के दर्शन हो जाते हैं। अथवा नाम-जपका साधक नामके द्वारा भगवान्‌को पुकारकर यह कह सकता है कि 'प्रभु उसके अन्तःपुरमें पधारकर उसके हृदयरूपी सिंहासनपर विराजमान हों।' वह नामके द्वारा अपनी हृदयगुफामें सोयी हुई शक्तिको जगा सकता है। बार-बारकी आतुर पुकार उस दिव्य शक्तिको जगा देती है और जब वह शक्ति जग जाती है तो मनुष्यकी पाशविक चेतना धीरे-धीरे दिव्य ईश्वरीय चेतनामें परिणत हो जाती है।

इस प्रकार धीरे-धीरे, किंतु निश्चितरूपसे नाम-जपके द्वारा मनुष्यके अन्तःकरणमें एक अद्भुत एवं अकल्पित परिवर्तन हो जाता है—मनुष्य कुछ-का-कुछ हो जाता है; वह पशुसे देवता बन जाता है। नाम-जप किस प्रकार मनुष्यको उस अज्ञात एवं सुदूर लक्ष्यतक पहुँचा देता है और वह भी ऐसे मार्गोंसे जिनकी सत्तापर ही हमें विश्वास नहीं होता जबतक हम उनपर चलकर उनको जाँच नहीं लेते। इसे श्रीरामकृष्ण परमहंसने बड़े ही सुन्दर ढंगसे समझाया है। वे कहते हैं—'जपका अर्थ है एकान्तमें बैठकर, मन-ही-मन भगवान्‌का नाम लेना। यदि श्रद्धा और भक्तिके साथ नाम लिया जाय और मन-प्राणको उसीमें लीन करनेकी चेष्टा होती रहे तो निश्चय ही भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। उनका दर्शन, स्पर्श, सम्भाषण सब कुछ मिल सकता है। मान लो, एक लकड़ीका बहुत बड़ा शहतीर गङ्गाजीके अंदर डाल दिया गया है और उसका एक छोर साँकलसे बाँधकर उस साँकलका दूसरा छोर किनारेपर एक मजबूत खूँटेसे बाँध दिया गया है। यदि तुम साँकल पकड़े-पकड़े चले जाओ तो तुम गङ्गामें डुबकी लगा सकते हो और उसीके सहारे-

सहारे उस शहतीरतक पहुँच सकते हो । इसी प्रकार यदि तुम नाम-जपकी साधनामें पूर्णतया लग जाओ, तल्लीन हो जाओ, तो यह निश्चय मानो कि तुम एक-न-एक दिन भगवान्‌को अवश्य-अवश्य प्राप्त कर लोगे ।'

अर्थपर लक्ष्य रखते हुए जपने और यों ही जपनेमें भेद

नाम-जपके साधकोंके लिये एक और बहुत महत्त्वकी बात कहनी रह गयी है । क्या यों ही—बिना समझे-बूझे नाम जपते रहनेमें भी कोई लाभ है या नाम-जपसे लाभ उठानेके लिये उसके अर्थ और भावपर लक्ष्य रखना आवश्यक है ? बुद्धि तो निस्संदेह यही निर्णय देगी कि जहाँतक हो सके, सबको अर्थपर दृष्टि रखते हुए ही नाम-जप करना चाहिये । परंतु प्रश्न पेचीदा है । इसपर कुछ अधिक गौर करनेकी आवश्यकता है । कई ऐसे विश्वासके धनी हो गये हैं, जिनकी यही मान्यता है कि चाहे जैसे भी हो भगवान्‌का नाम लिये जाओ, नाममें स्वयं इतनी शक्ति है कि चाहे तुम उसके अर्थपर दृष्टि रक्खो या न रक्खो, नाम अपना काम स्वयं कर लेगा । वे एक दृष्टान्त देकर अपनी बातको पुष्ट करते हैं । कहते हैं कि 'पानी पीते ही प्यास बुझ जाती है—चाहे तुम जानो या न जानो कि पानीमें कौन-कौनसे गुण हैं ।' इस दृष्टान्तमें दोष दिखलानेकी आवश्यकता नहीं है । ऐसा माननेवालोंकी नीयत और विश्वास तो अवश्य ही स्तुत्य हैं । हमें यह माननेमें भी कोई आपत्ति नहीं है कि न जपनेकी अपेक्षा किसी प्रकार भी नाम जपना बहुत ही लाभप्रद और कल्याणकारी है । परंतु इस सिद्धान्तमें एक बहुत बड़ी कचाई है, जिसे प्रत्येक साधकको समझ लेना चाहिये । यदि साधक ऐसा मान बैठे कि यों ही नाम जपते जाना चाहिये तो उसके आध्यात्मिक जीवनमें एक अजीब शिथिलता और सुस्ती आ जायगी । उसकी सारी भक्ति एक खाना-पूरीके रूपमें हो जायगी—बस, एक बँधी-बँधायी प्रणाली तथा परिपाटीके भीतर उसकी साधना घुटती रहेगी । साधनामें एक जीवित जाग्रत् विश्वास तथा सक्रिय चेष्टाका अभाव हो जायगा और रह जायगा केवल एक निश्चेष्ट पुण्य कमानेका भाव, जिसमें हृदयकी सारी शङ्काओंपर पत्थर सरकाकर केवल पुण्य लूटनेकी ही लालसा मुख्य हो जाती है । संक्षेपमें कहना चाहें तो हम यों कह सकते हैं कि ऐसी भावनाका पोषण कर मनुष्य 'सुभीतेका धर्म' (Comfortable Religion) अंगीकार कर लेता है ।

जब यों ही, बिना अर्थपर लक्ष्य रखते हुए, नाम जप करनेमें उतना लाभ नहीं है तो फिर नामके प्रत्येक वर्णोंके रहस्यपूर्ण अर्थ करना भी व्यर्थ-सा ही है, हानिकर भले ही न हो । इस प्रकार बारीकियाँ निकालनेसे उन लोगोंकी श्रद्धा और रुचि अलबत्ता जाग सकती है, जो कठोर दार्शनिक हैं और जिन्हें ऐसी ही बातें रुचिकर होती हैं जिनमें कुछ रहस्य अथवा अलौकिकताकी गन्ध आती हो । परंतु एक सच्चे भक्तके लिये तो यह धारणा ही यथेष्ट है कि जिस नामका वह जप कर रहा है, वह भगवान्‌का है—अतएव दिव्य है; इस धारणासे ही उसके भीतर प्रभु-प्रेमकी ज्वाला जाग उठेगी और उसका चित्त प्रभुमें लीन हो जायगा । नाम-जपमें मुख्य बात यह नहीं है कि आप भगवान्‌के नाम अथवा मन्त्रमें अर्थकी बारीक-से-बारीक खूबियाँ—सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भाव निकाल सकते हैं या नहीं । मुख्य बात तो आपके भावकी शुद्धता एवं सबलता है, जिससे कि आप नाम-जपके साथ भगवान्‌का सम्बन्ध जोड़ सकें । यदि चित्तपर नाम-जपसे सम्बन्धित तथ्यों और अनेक प्रकारके अर्थोंका बोझा न हो तथा उन तथ्यों और अर्थोंको ठीक क्रमसे तथा परस्पर सम्बन्धके साथ स्मरण रखनेका फालतू काम जिम्मे न हो तो उपर्युक्त सिद्धान्तके अनुसार नाम-जप करनेसे अधिक सफलता मिल सकती है ।

इस सत्यका निदर्शन निम्नलिखित इतिहाससे भली-भाँति हो जाता है । महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव दक्षिण भारतमें तीर्थयात्राके लिये निकले थे । मार्गमें उन्हें संस्कृतके एक प्रकाण्ड पण्डित मिले, जो गीतापर संस्कृतमें पाण्डित्यपूर्ण प्रवचन कर रहे थे । श्रोताओंमें एक ऐसे सज्जन भी थे जो संस्कृतसे सर्वथा अनभिज्ञ थे । परंतु फिर भी प्रवचन सुनते समय उनकी आँखोंसे आनन्दाश्रुओंका अजस्र प्रवाह चल रहा था । उनसे पूछा गया कि 'आप प्रवचन समझ तो कुछ भी नहीं रहे हैं, फिर इतना रो क्यों रहे हैं ?' वे बोले—'भाई, मैं तो गीता सुनते समय यही देख रहा हूँ कि रथमें बैठे हुए अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्ण उपदेश कर रहे हैं ।' ऐसी प्रगाढ़ भक्ति और अटूट विश्वास था उनका गीताके भगवद्वाणी होनेमें—उनके लिये इतना ही पर्याप्त था और इतनेहीसे उन्हें यह दिव्य अनुभव हो रहा था ।

ीताकी दार्शनिक एवं नैतिक बारीकियोंके विस्तृत विवेचनसे उन्हें क्या मतलब था ? भगवान्‌के नामके सम्बन्धमें भी बहुत अंशोंमें यही सिद्धान्त लागू है । नामका वास्तविक अर्थ उसीने समझा है, जिसकी नाममें श्रद्धा और प्रेम है; उसकी अमोघ एवं अतुलनीय दिव्य शक्तिमें विश्वास है। उसे उसकी व्याकरणसम्बन्धी तथा दार्शनिक सूक्ष्मताओंसे परिचित होनेकी उतनी आवश्यकता नहीं ।

अब अन्तमें हम नामके सम्बन्धमें परमहंस रामकृष्ण-देवके विचारोंका उल्लेख कर इस लेखको समाप्त करेंगे । कोई धर्मोपदेशक परमहंसजीसे यह कह रहे थे कि भगवत्प्राप्तिके लिये 'नाम' लेना ही पर्याप्त है । इसके उत्तरमें परमहंसदेवने उनसे यह कहा—'हाँ महाराज, मैं भी यह मानता हूँ कि भगवान्‌के नामका अमित प्रभाव है, परंतु क्या बिना प्रेमके नाम लेना वस्तुतः 'नाम लेना' कहा जायगा ? आत्मामें प्रभुके लिये भूख जगनी चाहिये, एक तड़प होनी चाहिये । जीभसे तो राम-राम रट रहे हैं, परंतु मन कञ्चन-कामिनीमें उलझ रहा है—ऐसे नाम लेनेसे क्या लाभ ? साँप झाड़नेवाले गारुड़ मन्त्र तो पढ़ते ही हैं, साथ ही गोंइठेका धुआँ भी करते हैं । खाली मन्त्र पढ़नेसे काम नहीं चलता । इसमें रत्तीभर भी संदेह नहीं कि भगवान्‌का नाम लेनेसे मनुष्यके सारे पाप धुल जाते हैं । परंतु अभी एक क्षण नाम लिया और दूसरे ही क्षण अनेक प्रकारके पापाचरणोंमें लग गये—ऐसा नाम लेना किस कामका ? ऐसे लोगोंमें इतनी हिम्मत नहीं होती, इतना मानसिक बल नहीं होता कि वे शपथ ले लें, व्रत ले लें कि जो कुछ हो गया सो तो हो गया, अब भविष्यमें पाप नहीं करेंगे, पापके रास्ते जायँगे ही नहीं । गङ्गामें स्नान करनेसे अवश्य ही सारे पाप धुल जाते हैं; परंतु स्नान करके जो पुनः पापमें प्रवृत्त हो जाते हैं, उनकी क्या दवा है ? उनके लिये क्या उपाय है ? उनके सम्बन्धमें शास्त्र कहते है पाप किनारेके वृक्षोंपर जाकर ताकमें बैठे ऐसे मनुष्य जब स्नान करके उधरसे निक उन वृक्षोंसे कूदकर पुनः उनके सिरोंपर जा इसलिये भाई ! सदा-सर्वदा भगवान्‌का नाम ले उसे पकड़े रहो; परंतु साथ ही प्रभुसे यह करते रहो कि हे प्रभो ! मुझे अपना प्रेम अपनी प्रीति दो । हे प्रभो ! कामिनी, क कीर्ति-जैसे नश्वर पदार्थोंमें जो मेरी आसक्ति नष्ट हो जाय और हृदयके सम्पूर्ण अनुरागसे भजूँ, तुम्हारा ही गुण गाऊँ ।'

किंतु भगवान्‌का नाम लेते ही हमारी प्र भगवान्‌में नहीं हो जाती—इस कारण हमें हताश होकर नाम-जपकी साधना छोड़ भी नहीं दे क्योंकि कुछ ही दिनके अभ्यासके अनन्तर नाम दीखने लगेगा और हमारा उससे लाभ होग होगा । यदि श्रद्धा है, सचाई है, लगन है कोई संदेह नहीं कि मनुष्य समय पाकर जीवनकी उच्चतर सीढ़ियोंपर चढ़ेगा और उसका विकास होगा । इस सम्बन्धमें भी परमहंस र महाप्रभु चैतन्यदेवके वचनोंको उद्धृत करते हैं—'भगवान्‌के नाममें अपार शक्ति है । तुरं लाभ भले ही न प्रतीत हो, परंतु कुछ दिन नाम करते रहनेपर अवश्य ही लाभ होगा । मकानके डाला हुआ बीज भी किसी समय जमीनपर प है और जलके संसर्गको पाकर अङ्कुरित होता है त उसमें पत्ते, फूल और फल भी लगने लगते हैं सब उस दिन ही क्यों न हो, जब कि मकानमें द वह फट जाय और गिर पड़े । इसलिये धैर्यके र करते रहना चाहिये—देर-सबेरका प्रश्न मनको

रामनामसे पापियोंको भी भगवत्प्राप्ति

रघुपति बिपति-दवन ।
परम कृपालु, प्रनत-प्रतिपालक, पतित-पवन ॥
क्रूर, कुटिल, कुलहीन, दीन, अति मलिन जवन ।
सुमिरत नाम राम पठये सब अपने भवन ॥
गज-पिंगला-अजामिल-से खल गनै धौं कवन ।
तुलसिदास प्रभु केहि न दीन्हि गति जानकी-रवन ॥

—तुलसीदासजी

नाम-महिमा

(लेखक—प्रोफेसर श्रीशंकरराव, बी०, टांडेकर)

श्रीतुकाराम महाराज कहते हैं कि 'मैं भक्तिकी महिमाको दिखलाकर ब्रह्मज्ञानी पुरुषको भी उसके लिये उत्कण्ठित बनाऊँगा, मुक्त पुरुषोंकी आत्मस्थिति छुड़ा दूँगा। हरिनाम-कीर्तनसे जीवन ब्रह्ममय हो जाता है तथा वह कीर्तन ऐसा भाग्यप्रद है कि भगवान् भी भक्तके ऋणी बन जाते हैं। इसलिये तीर्थयात्रा करनेवालोंको भजनमें लगाकर आलसी बना दूँगा तथा स्वर्गनिवास और स्वर्ग-सुख-भोगोंको भी उसके आगे कटु बना दूँगा। भक्तिके सम्मुख तपस्वी लोगोंका अभिमान छुड़ा दूँगा तथा यज्ञ और दानको लज्जित कर दूँगा। केवल भगवन्नामके बलपर मैं पुरुषार्थसे चरम भक्तिको प्राप्त करूँगा और इहलोकमें लोगोंमें धन्य-धन्य कहलाऊँगा; क्योंकि मैंने (तुकारामने) उस परम भाग्यरूपी भक्तिको देखा है।'*

पाश्चात्य देशोंमें जिस समय ईश्वर-विषयक प्रश्नोंकी चर्चा छिड़ती है, उस समय 'ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करनेवाले कौन-कौनसे प्रमाण पेश किये जा सकते हैं?'—इस प्रकारकी चर्चा बहुधा प्रारम्भमें होती है परंतु हमारे यहाँ इससे भिन्न ही प्रणाली है। भारतीय मनुष्योंकी मनःसृष्टि ही ऐसी हुई है कि उसमें कुछ बातें, बिना उत्पन्न किये ही, स्वभावतः सजी हुई मिलती हैं। उदाहरणार्थ—पुनर्जन्मपर विश्वास, कर्म-सिद्धान्त, आत्माका अमरत्व इत्यादि। ईश्वरके अस्तित्वका प्रश्न भी प्रायः इसी प्रकारका है। अति प्राचीनकालमें ऋषियोंने उपनिषद्‌की दृष्टिसे विचारकर अपने अनुभवसे स्पष्ट भाषामें यह बतला दिया था कि 'ईश्वर है और उसका ज्ञान प्राप्त करनेमें ही जीवनकी सफलता है तथा उसका ज्ञान न प्राप्त होनेसे मनुष्य महान् विनाशको प्राप्त होता है।'

'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।'
(केनोपनिषद् २।५)

'यदि इस जन्ममें ईश्वरको जान लिया तो सब ठीक हो गया; न जान सका तो बड़े महाविनाशको प्राप्त होगा।' यह बात हमलोगोंके रग-रगमें समायी हुई है। इसलिये ईश्वर विषयक प्रश्नकी चर्चा छिड़नेपर, 'ईश्वर है या नहीं और यदि है तो इसके कौन-से प्रमाण हैं?'—इत्यादि प्रश्नोंको उठाकर उनकी चर्चा करनेकी अपेक्षा इसके अस्तित्वको स्वीकारकर तथा उसकी प्राप्तिको मानवजीवनकी सफलता मानकर हम उसकी प्राप्तिके साधनोंका ही विचार करते हैं। परंतु आजकल इसमें बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। आधुनिक शिक्षित पुरुषोंका मन अनीश्वरवादकी ओर अधिक झुकने लगा है। इसका कारण पाश्चात्य शिक्षाका संस्कार तो है ही, समय (युग-)की महिमा भी ऐसी ही है; क्योंकि समाजसत्तावाद (Communism) के बहुत सिद्धान्त भी अनीश्वरवादकी ओर झुकने लगे हैं। परंतु ईश्वरको किसीके मानने न माननेसे क्या मतलब है। ईश्वर है, वह सत्य है और सत्य किसीकी स्वीकृतिकी अपेक्षा नहीं रखता। वह तो है ही। अतएव इसी निश्चयपर दृढ़ रहना चाहिये। यहाँ मैं ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करनेका व्यर्थ प्रयास न करके इस लेखमें भगवत्प्राप्तिके सुगम और सुलभ साधनस्वरूप भगवन्नामके माहात्म्यके विषयमें संक्षेपमें कुछ विचार करूँगा।

१—इतिहास

उपर्युक्त कथनानुसार हमारे देशमें अति प्राचीनकालमें—इतने प्राचीनकालमें जब कि प्राचीन भूभागमें, जो राष्ट्र आज अग्रगण्य कहे जाते हैं, उनमेंसे कितनोंका इस स्वरूपमें उदय भी नहीं हुआ था, उस कालमें—'क्या संसारका कोई कारण है, यदि है तो वह चेतन है या जड, उसके साथ मनुष्यका क्या सम्बन्ध है, उसका साक्षात्कार हो सकता है या नहीं, यदि हो सकता है तो किस उपायसे?' इस प्रकारके गहन तात्त्विक विषयोंपर चर्चा चलाकर एतद्विषयक सिद्धान्त निश्चित किये जाते थे। पवित्र गङ्गातटके समान रम्य स्थानमें निवास, साधारण सादा रहन-सहन, खाने-पीनेकी चिन्ताका

---

* घोंटवीन लाल ब्रह्मज्ञान्या हातीं। मुक्तां आत्मस्थिती सांडवीन ॥
ब्रह्मभूत काया होतसे कीर्तनीं। भाग्य तरी ऋणी देव ऐसा ॥
तीर्थभ्रानकासी आणीन आलस। कडू स्वर्गवास करिन भोग ॥
सांडवीन तपोनिधा अभिमान। यज्ञ आणि दान लाजवीन ॥
भक्तिभाग्य सीमा साधीन पुरुषार्थ। ब्रह्मींचा जो अर्थ निजठेवा ॥
धन्य म्हणवीन इहलोकीं लोकां। भाग्य आम्हीं तुका देखियेला॥
(श्रीतुकाराम, साम्प्रदायिक गाथा, अभंग ३६–९)

अभाव—इन परिस्थितियोंमें तत्कालीन ऋषियोंको इन प्रश्नोंकी साङ्गोपाङ्ग और शान्त रीतिसे चर्चा करनेमें सुविधा थी। वह चर्चा किस प्रकारकी होती थी इस बातका पता हमें उपनिषदोंसे लग जाता है। अन्य आवश्यक प्रश्नोंके साथ परमेश्वरकी प्राप्तिके साधनोंका भी विचार होता था। उपनिषदोंमें ज्ञान, योग और कर्म—इन साधनोंके साथ-साथ नाम-मार्गका भी उल्लेख मिलता है। केनोपनिषद् खण्ड ४ श्लोक ६ में स्पष्ट लिखा हुआ है कि 'तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यम्।' छान्दोग्य-उपनिषद्के सातवें अध्यायके प्रथम खण्डमें भी नामकी उपासनाका उल्लेख है। नाम-मार्ग अन्य साधनोंके समान ही प्राचीन है; बल्कि योगादि साधनोंकी अपेक्षा भी उसका अधिक प्राचीन होना बहुत ही स्वाभाविक है। जगन्नियन्ता ईश्वर है, एक बार यह मान लेनेपर उसको समीप बुलानेका सहज मार्ग मानव-स्वभावके अनुसार यदि है तो उसको पुकारना ही है। माँको सामने देखकर जैसे बच्चा रो-रोकर उसे पुकारता है, उसी प्रकार व्याकुल होकर प्रेमसे उस छिपी हुई जगन्माताको दर्शन देनेके लिये पुकारना ही स्वाभाविक मार्ग है। उपनिषदोंमें इसका जो संक्षिप्त-सा उल्लेख मिलता है, इसका कारण यह है कि वे ग्रन्थ तत्त्व-चर्चा-विषयक हैं। अतः तत्कालीन ऋषि-मुनियोंकी बुद्धिसे निकले हुए सिद्धान्त सूत्ररूपसे उनमें लिखे गये हैं। यही कारण है कि भावना-प्रधान तथा अन्तःकरणको द्रवीकृत होनेवाले मार्गका उनमें स्वभावतः ही विस्तार नहीं है। परंतु इस मार्गका उनमें उल्लेख है, इस बातको ध्यानमें रखना चाहिये। इस विषयमें इतना लिखनेका कारण यही है कि बहुतेरे लोग इस मार्गको अर्वाचीन और अधिक-से-अधिक मध्ययुगका मानते हैं। परंतु उपर्युक्त चर्चासे यह मालूम हो जाता है कि उनका ऐसा समझना भूल है। हाँ, नाम-साधनके सच्चे महत्त्वको जानकर, उससे पूरा-पूरा लाभ उठाकर, उसका लाभ सब जीवोंको प्रदान करनेका श्रेय यदि किसीको प्राप्त है तो वह अवश्य ही मध्यकालीन साधु-संतोंको है। उपनिषदोंके द्रष्टा ऋषि-मुनियोंका झुकाव ज्ञानकी ओर था। उस समय ईश्वर-विषयक चर्चा तथा उसकी प्राप्तिके साधनोंका अनुष्ठान गुफाओं अथवा आश्रमोंमें होता था। मध्ययुगीन नामनिष्ठ (भक्त-) लोगोंने हरिभक्तिकी महिमा अधिक बढ़ायी और ईश्वर-विषयक प्रश्नोंको गुफाओं और आश्रमोंसे निकाल चौराहोंपर लाकर सबके लिये उन्हें सुलभ कर दिया। यह कहना असंगत न होगा कि इस युगका आरम्भ श्रीमद्भागवतपुराणसे हुआ है। श्रीमद्भागवत (११।५।३६) में कलियुगका वर्णन करते समय स्पष्टरूपसे कहा है कि—

'यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते।'

'श्रीभगवान्‌के नाम-संकीर्तनसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—सभी अर्थोंकी प्राप्ति होती है।' श्रीविष्णुपुराण (६।२।१७) में भी यह स्पष्टतः कहा गया है कि 'नाम-संकीर्तन ही इस कलियुगका धर्म है।' नारदके 'भक्तिसूत्र' भी इसी प्रकारके हैं। परंतु इसकी अपेक्षा भी नामका प्रसार ईश्वरके नामका जयघोष करते हुए भारतभरमें यदि किसीने किया है तो वे प्रान्तीय भाषाओंमें कविता करनेवाले महापुरुष महात्मागण हैं। उनमेंसे कुछ प्रमुख महात्माओंके नाम कबीरदास, तुलसीदास, रैदास, दादू, चरणदास, नानक, मीराँबाई, नरसी मेहता, चैतन्य, ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास और पुरन्दरदास प्रभृति हैं और इसी नामके श्रेष्ठत्वको सिद्ध करनेवालोंकी परम्परा अर्वाचीन साधु स्वामी रामकृष्ण परमहंसतक पहुँची है।

इस विषयमें ध्यान देनेयोग्य एक अचरजकी बात तो यह है कि नामकी श्रेष्ठता तथा उसकी सामर्थ्यके विषयमें भारतके विभिन्न प्रदेशोंके सभी साधुओंका एकमत है। भारतके साधुओंको तो भगवन्नामकी श्रेष्ठता स्वीकृत है ही; बल्कि पाश्चात्त्य देशके साधु भी नामके महत्त्वको जानकर उसकी स्तुति करते हैं। चौदहवीं शताब्दीके एक पाश्चात्त्य साधुने 'The Cloud of Unknowing' नामक एक सुन्दर ग्रन्थ लिखा है। उसमें 'नाम कैसा होना चाहिये तथा उसका क्या उपयोग है?' इसका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। यहाँ हम उसके वाक्य उद्धृत करते हैं—

'And if thou desirest to have this intent lapped and folden in one word, so that *thou mayest* have better hold thereupon, take thee but a little word of one syllable, for so it is better *than of* two; for the shorter the word, *the better* it accordeth with *the work* of the spirit. And such a word is this word 'God' or this word 'Love.' *Choose* whichever thou wilt, or another; whatever word thou likest best of one syllable. And fasten this word to thine heart, so that it may never go thence for anything that befalleth.

'This word shall be thy shield and thy spear, whether thou ridest, or peace or war.' (The Cloud of Unknowing, p. 26-27.)

अर्थात् 'यदि तुम अपनी अभिलाषाको एक शब्दमें संनिहित और संचित करना चाहते हो जिससे तुम उससे अधिक लाभान्वित हो सको तो केवल एकस्वरयुक्त एक शब्द चुनो जो दो स्वरवाले शब्दसे अच्छा होगा; क्योंकि जितना ही छोटा शब्द होता है उतना ही अधिक आत्मशक्तिके अनुकूल होता है और ऐसा शब्द 'भगवान्' या 'प्रेम' है। इसमें तुम जो चाहो चुन सकते हो; एक स्वरवाले जिस शब्दको तुम अधिक पसंद करते हो, चुनो और उस शब्दको अपने हृदयमें इस प्रकार रख लो जिससे वह कभी, किसी भी वस्तुकी प्राप्ति होनेपर, बाहर न निकले। यह शब्द, तुम चाहे अश्वारोहण करो, शान्तिमें रहो अथवा युद्ध करो, सदा तुम्हारी ढाल और तलवारका काम देगा।'

ऐसा ही महत्त्व 'Thomas a Kampis' के लिखे हुए 'Imitation of Christ' नामक ग्रन्थमें भी मिलता है। तात्पर्य यह है—नामकी महत्ताका गुणगान प्राचीन, अर्वाचीन, पौरस्त्य, पाश्चात्त्य सभी संतोंने किया है।

२—दूसरे साधनोंके साथ नामकी तुलना

नाम-माहात्म्यके वर्णन करनेमें सब साधु-संतोंका जो एकमत दीख पड़ता है तथा अनेकों साधु हरि-चिन्तनमें मग्न होकर संसारके त्रिविध दुःखोंको जो भूले हुए दीख पड़ते हैं, इसके अनेक कारण हैं। उनमेंसे यहाँ मुख्यतः दो बातोंका विचार करना है—एक तो अन्य साधनोंकी अपेक्षा नामकी सुलभता और दूसरी नामकी अन्तरङ्गता। पहले नामकी सुलभताका विचार करना है।

ज्ञान, योग, कर्म आदि भगवत्प्राप्तिके प्रसिद्ध साधन हैं। हमें इस लेखमें यह सिद्ध नहीं करना है कि ये सब भगवत्प्राप्तिके साधन नहीं हैं। हमें तो यही दिखलाना है कि इन सब साधनोंकी अपेक्षा नाम-साधनकी सुलभता कहाँतक है तथा पीछे यह भी दिखलाना है कि नाम-साधन सुलभ होनेपर भी वैसा ही फलदायी है जैसे अन्य साधन हैं।

यदि सब साधनोंका राजा कहलानेका गर्व किसीको प्राप्त है तो वह ज्ञानको है। 'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्' तथा 'ज्ञान जयाचें हातीं। तो चि समर्थ मुक्ति॥' अर्थात् ज्ञानी ही मुक्त होता है। इस प्रकारके सैकड़ों अर्थयुक्त वचन पण्डित, साधु, ज्ञानी पुरुषोंके ग्रन्थोंमें मिलते हैं। परंतु इस श्रेष्ठताकी सिद्धि यद्यपि मुखसे या वाद-विवादद्वारा करना सुगम है, तथापि ज्ञानका पूरा-पूरा भाव करना, दृढ़ अपरोक्षानुभूतिके द्वारा 'तत्त्वमस्यादि' महावाक्योंका अनुभव प्राप्तकर 'वासुदेवः सर्वमिति' की सम्यक् अनुभूति बहुत ही दुर्घट है। उसके प्राप्त करनेके साधनोंका विचार करते समय जान पड़ता है कि तीव्र जिज्ञासु भी निराशाके गर्तमें जा गिरेगा। ज्ञानकी प्राप्तिके लिये मुख्यतः तीन बातोंकी आवश्यकता है, पहली तैलबुद्धि, दूसरी साधनचतुष्टयसम्पन्नता और तीसरी बात है—शब्दपरनिष्णात ज्ञानी गुरुका प्रसाद।

इन तीनोंपर विचार करनेसे यही मालूम होता है कि सामान्य मनुष्यके लिये इन तीनोंमेंसे एकका भी प्राप्त होना दुर्लभ है। बहिर्मुखी इन्द्रियोंके लिये नित्य दीख पड़नेवाले स्थूल जगत्को मायिक समझकर उसके अधिष्ठान परब्रह्मकी सत्यताको बुद्धिमें निश्चय करनेके लिये पहले शास्त्राभ्यासकी आवश्यकता है। विभिन्न शास्त्रोंकी 'ख्याति'की चर्चा, सविकल्पक प्रत्यक्ष तथा निर्विकल्पक प्रत्यक्षमें सूक्ष्म भेद, स्फोटके समान वाद—ये सामान्य मनुष्यकी बुद्धिकी कक्षाके बाहरकी बातें हैं। बल्कि इनमें श्रम करके शास्त्रोंकी एक-वाक्यताके दुर्गम गढ़को जीतकर शास्त्रसिद्धान्तको बुद्धिगम्य कर लेनेपर भी क्या काम निकल सकता है ? केवल पुराने सिद्धान्तोंका समझना ही नहीं है, बल्कि नये-नये सिद्धान्तोंके रचनेवाले पण्डित बढ़ते जाते हैं, उनके सिद्धान्तोंका भी जानना आवश्यक है। परंतु ऐसी बुद्धिसे केवल पाण्डित्य प्राप्त होगा; ईश्वरकी प्राप्ति इससे न होगी। उसके लिये तो वैराग्यकी आवश्यकता है। जैसे पाश्चात्त्य जर्मन देशके प्रसिद्ध दार्शनिक कैण्टने कहा है कि 'अनुभवके बिना प्रत्यक्ष व्यर्थ है और प्रत्यक्षके बिना अनुभव निष्प्रयोजनीय है।' (Percepts without concepts are blind and concepts without percepts are empty,) उसी प्रकार एकनाथजीने विवेक और वैराग्यकी जोड़ीके सम्बन्धमें कहा है—'विवेक बिना वैराग्य अन्धा है और वैराग्यके बिना विवेक पङ्गु है; जैसे धृतराष्ट्रने ज्येष्ठ होनेपर भी नेत्र बिना स्वराज्यको खो दिया।'

तीनों लोकोंमें प्रज्वलित अग्निके समान विषयोंका नाश करनेवाली प्रखर 'दृष्ट-आनुश्रविकविषय-वितृष्णा' के बिना ज्ञानका उत्पन्न होना कभी सम्भव नहीं। साबुन कितना ही

अच्छा क्यों न हो, परंतु जिस पानीसे कपड़ा धोना है, यदि वही गँदला है तो वह साबुन जिस प्रकार निरुपयोगी हो जाता है उसी प्रकार ज्ञान कितना ही अधिक क्यों न हो, वैराग्य-द्वारा यदि अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं हुई तो केवल बुद्धिगम्य ज्ञानका कोई भी उपयोग नहीं हो सकता। थोड़ी देरके लिये मान भी लिया जाय कि ऐसे ही वैराग्य, विवेक तथा साधन-चतुष्टयकी प्राप्ति हो सकती है, परंतु तीसरी बात अर्थात् श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ पुरुषका समागम और प्रसादकी प्राप्ति तो अत्यन्त ही दुर्लभ है। इस विषयमें श्रीमद्भागवतमें यह विदेहकी उक्ति प्रसिद्ध ही है—

'तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्।'

(श्रीमद्भागवत ११।२।२९)

—मन्त्र-तन्त्रके उपदेश करनेवाले गुरु घर-घर मिलते हैं परंतु शिष्यको ईश्वरका साक्षात्कार करा देनेवाले गुरु अत्यन्त दुर्लभ हैं। एकनाथने भी ऐसा कहा है कि 'चकोर-शावकको ही प्राप्त होनेवाला चन्द्र-किरणरूपी अमृत मनुष्य-की बुभुक्षाको शान्त करे तो यह सम्भव है। बौना मनुष्य महासागरको अपने बाहुबलसे पार कर ले तथा अविराम चलनेवाले सूर्यचक्रकी गतिको रोक ले तो यह भी सम्भव है, परंतु सच्चे सत्पुरुषकी प्राप्ति दुर्लभ है। तात्पर्य यह कि इन सब बातोंके योगके द्वारा ज्ञान-प्राप्ति होना तक्षकके फणकी मणिको प्राप्त करके उसे जीवित शेरकी नाकके बालमें पिरोकर गलेमें पहननेके समान कठिन ही नहीं, बल्कि प्रायः असम्भव है।'

परंतु नाम-स्मरणकी बात ऐसी नहीं। उसके लिये अत्यन्त कुशाग्र-बुद्धिकी आवश्यकता नहीं है। भक्ति-शास्त्रोंमें ध्रुव, उपमन्यु, प्रह्लाद आदि भक्तबालकोंने कुमारावस्थामें ही शास्त्राध्ययनके पूर्व ही जगदीश्वरको प्राप्त कर लिया था। ये कथाएँ प्रसिद्ध ही हैं। प्रेमसे 'हरि-बोल' अथवा 'रामकृष्णहरि' की धुनि लगानेमें विद्वत्ताकी आवश्यकता नहीं। तुकारामका यही कहना है कि 'येईल वैसा बोल रामकृष्ण' टेढ़ा-मेढ़ा जो कुछ हो, प्रेमसे गानेवाले अपने भक्तबालककी उपेक्षा सर्व जीवोंकी जननीरूप परमात्मासे नहीं हो सकती। इसका अर्थ यह नहीं कि भक्तको जान-बूझकर अनाड़ी रहना चाहिये। परंतु अधिकतर ऐसा देखनेमें आता है कि बड़े प्रभावशाली वक्ताकी अपेक्षा माँको अपने लालकी तोतली बोली ही अधिक प्यारी लगती है और उसीमें उसे आनन्द आता है। इसी प्रकार उलटा-सीधा, परंतु प्रेमसे उच्चारण किया हुआ शब्द, अति प्यारा लगता होगा। तुकाराम भी कहते हैं सहायक भगवान् अन्तरके प्रेमका आस्वादन कर [illegible] भावको देखता है।'

इसका तात्पर्य यही है कि निष्काम [illegible] अधिक बुद्धि न होनेपर भी काम चल सकता [illegible] ईश्वर बुद्धिका उत्पादक है। अतः वह अपने भक्त [illegible] उत्कृष्ट ज्ञान दे देता है; यह बात पूर्वकालके [illegible] तथा अर्वाचीनकालके तुकाराम, नामदेव प्रभृतिके [illegible] प्रसिद्ध है।

प्रेमपूर्वक हरिनाम-स्मरणमें एक और आनन[illegible] यह है कि नाम-स्मरण करनेवालेमें वैराग्य धीरे-[illegible] आप उत्पन्न होने लगता है तथा स्वयं परमात्म[illegible] गुरुरूपसे उपदेश देते, दर्शन देते और कृतार्थ [illegible] इसके लिये बहुतेरे साधु-संतोंके चरित्र प्रमाणरू[illegible] होते हैं। नामसे चित्तकी शुद्धि किस प्रकार होत[illegible] हम आगे बतलायेंगे। अभी प्रसिद्ध संत तुका[illegible] तीन-चार वचनोंको देकर यह प्रसङ्ग समाप्त करते हैं-

"मेरा मन जो महामलसे गंदा बना था, (भगव[illegible] स्फटिक-जैसा शुद्ध हो गया। जिनको भगवान् 'विठ्ठल' अक्षरोंका स्वाद मिला है, उनको उसके सामने अ[illegible] फीका हो जाता है। मेरे भगवान् विठोबाका कैसा भाव है कि वे स्वयं ही गुरु बनकर आये हैं। ह[illegible] स्मरणसे तुरीया आदि समस्त अवस्थाएँ प्राप्त होत[illegible] सगुण भक्ति ही मुख्य उपासना है। शुद्धभावको [illegible] भगवान् इष्टमूर्तिमें दर्शन देते हैं। भगवान्का नाम ही [illegible] और फल (साधन और साध्य) दोनों हैं। सांसारिक गुरुके दास नहीं हो सकते; क्योंकि विषयी लोग वैरा[illegible] नाम सुनते ही काँपने लगते हैं। परंतु पण्ढरीनाथ भ[illegible] का नाम वैसा नहीं है। उसके लिये श्रमकी आवश्यकता [illegible] पड़ती, वह सब अवस्थामें मधुर ही लगता है।"

तात्पर्य यह कि सांसारिक मनुष्योंको धीरे-धीरे वि[illegible] वैराग्ययुक्त बनाकर, उन्हें भगवान्की प्राप्तिके लिये उत्क[illegible] कर, उनको गुरुका समागम कराकर अन्तमें सुलभ री[illegible] ईश्वर-साक्षात्कार कराना, इत्यादि बातें नाम-स्मरणद्वार[illegible] जाती हैं, यह बात साधुओंकी उक्ति और उनके अनु[illegible] सिद्ध है। अतएव सांसारिक मनुष्योंके लिये ज्ञानमा[illegible] अपेक्षा नाम ही सुलभ साधन है।

योगशास्त्रके विषयमें तो अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। योगके लिये वैराग्य और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य आदिकी आवश्यकता होती है। तथा उसके लिये 'शुचौ देशे' पवित्र एकान्तमें रहनेके लिये तैयार होना चाहिये। एवं यह शरीर-चक्र जिस प्राण-वायुके आधारसे चलता है, उस वायुका निरोध, प्राण और अपानकी समता, प्राणका सुषुम्नानाड़ीमें प्रवेश आदि बातोंके लिये साधकके द्वारा होनेवाली योगविद्याकी क्षमता प्राप्त होनी चाहिये। परंतु ये सारी बातें दुर्घट हैं। इतना होनेपर भी योगमार्गके स्वतन्त्र होनेसे उसमें ऋद्धि-सिद्धियोंके अनेक प्रतिबन्धक हैं और इन ऋद्धि-सिद्धिरूपी रेशमकी गाँठोंको काटनेके लिये तीक्ष्ण वैराग्यरूपी तलवारकी धारकी आवश्यकता है। यही कारण है कि स्वयं योगीलोग भी सामान्य मनुष्योंको इस मार्गमें न जानेके लिये उपदेश देते हैं। प्रसिद्ध योगिराज संत ज्ञानदेव कहते हैं—

'योगमार्गमें बड़े उत्साहसे नवों द्वारोंका अवरोध करके कुण्डलिनीको तीनों नाड़ियोंके मध्य सुषुम्नामें संचरण करना पड़ता है। मुनिलोगोंका कहना है कि इस मार्गके साधनमें न लगकर निशिदिन श्रीभगवान‍्का चिन्तन करो जो मुक्ति-स्थान (मोक्षरूप) है। योगमार्गमें हाथ-पैर टूटकर मृत्युकी प्राप्तितक हो जा सकती है और उससे मोह तथा तृष्णाका नाश तो होता नहीं, फिर ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? यह बड़ी भारी भूल है जो तुम भगवान‍्के चरणोंमें सिर नहीं नवाते। हे मानव-प्राणी! यदि तुम्हें मुक्तिकी अभिलाषा है तो अपने मनको मुकुन्दमें रमाओ।'

अच्छा, योगके लिये इतना जी-जानसे परिश्रम करनेपर फल क्या मिलता है? केवल 'चित्त-वृत्ति-निरोध!' परंतु नामनिष्ठ संत अपने अनुभवके द्वारा यह आश्वासन देते हैं कि चञ्चलताके लिये प्रसिद्ध मन और 'बलवान्' तथा 'प्रमाथि' कहलानेवाली इन्द्रियाँ नाम-चिन्तनके द्वारा साधकके वशमें हो जाती हैं। पैठणक-ग्राम-निवासी एकनाथ महाराज अपना अनुभव कहते हैं—'हरि-नाम लेते-लेते जनार्दनके दास एकनाथकी इन्द्रियाँ विषय और कामको भूल ही गयीं।'*

तुकोबा कहते हैं—'नाम लेनेसे मन शान्त और स्थिर होता है तथा जिह्वासे अमृतरस झरने लगता है तथा भगवत्प्राप्तिके अनेकों शकुन होने लगते हैं।'†

तात्पर्य यह कि नाम-चिन्तनके द्वारा इन्द्रियोंकी और चित्तकी शुद्धि होती है एवं मनमें एकाग्रता आती है। अतः यह कहनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती कि नाम-चिन्तन योगसे भी सुलभ है।

अब रहा साधन-कर्म। यह तो [illegible] ही है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं कि—

'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।'

(४। १६)

और आजकल तो 'मेरा कर्म क्या है?' इसका निर्णय करना और उसके अनुसार यथाविधि अनुष्ठान करना बहुत ही कठिन हो गया है। इसके अतिरिक्त श्रुति, स्मृति, निबन्धादि ग्रन्थोंका विचार करके विहित कर्मोंका निर्णय कर लेनेपर भी उसका आचरण करना इस परिवर्तित परिस्थितिमें अत्यन्त ही कठिन बल्कि असम्भव-सा हो गया है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि लेखकका अभिप्राय स्वकर्मका त्याग सूचित करनेका है। बल्कि [illegible] बात तो यह है कि कर्मका अधिकार, देश, काल—इन सबको देखकर ही कर्मानुष्ठानको निश्चित करना पड़ता है। एक समयका कर्म दूसरे समयमें होनेसे फलदायी नहीं रहता। तात्पर्य यह है कि कर्मकी गति तथा स्थिति गहन है। नामकी स्थिति इसकी अपेक्षा बिल्कुल ही भिन्न है। नामका अधिकार सब वर्णोंको, अन्त्यजोंको भी एक समान ही है। सब आश्रम, सब वर्ण, सब लिङ्गके मनुष्योंको नाम एक समान ही ग्राह्य है। इसमें समय, शुद्धि तथा नर-नारीकी कोई क़ैद नहीं है। भगवन्नाम सर्वसाधारणके लिये प्रायश्चित्त-स्वरूप तो प्रसिद्ध ही है। इस विषयमें ज्ञानदेवका एक बहुत ही अच्छा अभंग है। उसका महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार है—

'मन्त्रोंके विषयमें कहा जाता है कि उन्हें अशौचमें नहीं जपना चाहिये और न औरोंको सुनाना ही चाहिये; क्योंकि ऐसा करनेसे लाभ तो होता नहीं, उलटे हानि होती है; परंतु ऐसी बात मन्त्रराज श्रीहरि-नामके जपमें नहीं है। श्रीनारायण-नामकी तो हाथ उठाकर ऐसी गर्जना करनी

* एका जनार्दनीं घेतां हरिचें नाम।
　निमालीं इन्द्रियें विषय विसरलीं काम॥

† नामघेतां मन निवे। जिह्वे अमृतचि स्रवे॥
　होताती वरवे। ऐसें शकुन लाभाचें॥

चाहिये कि गाने और सुननेवाले मस्त हो जायँ। नामके द्वारा ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यज पर्यन्त सब मुक्तिके अधिकारी हैं।'

तात्पर्य यह है कि इसमें देश-कालकी कोई अड़चन ही नहीं है। नाम-चिन्तन सदा-सर्वदा पवित्र है तथा चाण्डाल, सुवर्ण चुरानेवालेके समान पातकी तथा वेश्या आदि सबका इसमें समान अधिकार है एवं जिस गङ्गामें स्नान करनेसे इनकी शुद्धि होती है—वह तीर्थ नाम-गङ्गा ही है। भागीरथी पापोंका नाश करनेवाली है, यह ठीक है; परंतु वह भी कभी-कभी 'ऐसा महापापी तो पहले कभी नहीं देखा-सुना था' यों कहकर अपने कानोंपर हाथ रख सकती है। लेकिन सब प्रायश्चित्तोंने जिनको त्याग दिया था—उन वाल्मीकि, अजामिल, गणिका-जैसोंका उद्धार इसी पवित्र साधन नामसे ही हो गया। इस विषयमें ज्ञानदेवने (गीता ९। १४ श्लोक) 'सततं कीर्तयन्तो माम्' पर बहुत ही अच्छी टीका की है। पाठकोंसे हम उसके पढ़नेके लिये आग्रहपूर्वक अनुरोध करते हैं।

अन्धकारके नाशके लिये सूर्यको तथा शिकारको पकड़नेके लिये सिंहको जैसे औरोंकी सहायताकी अपेक्षा नहीं होती, उसी प्रकार नामको भी भगवत्प्राप्ति प्रदान करनेमें अन्य साधनोंकी अपेक्षा नहीं होती। नाम साधकको सहज ही ईश्वरमें मिला देता है। यही कारण है कि नामके अन्तरङ्ग साधन होनेके कारण हमने ऊपर वैसा कहा है।

नामके ऊपर एक शङ्का हो सकती है कि 'परमेश्वर तो निर्गुण निराकार प्रसिद्ध है तथा नाम, रूप, सम्बन्ध, जाति, क्रिया, भेद आदिकी प्रतीति केवल साकार और सगुण वस्तुमें ही होती है अर्थात् अजाति, अनाम और निर्गुण परमेश्वरको नाम देना तथा उस नामका अवलम्बन कर उसके द्वारा परमेश्वरको प्राप्त करनेकी चेष्टा करना बिना नींवके मकान उठानेके समान ही मूर्खतापूर्ण है। अनामीको नाम कहाँसे प्राप्त हो सकता है?' शङ्का ठीक ही है; परंतु यह जैसी कठिन दीख पड़ती है, उतनी कठिन है नहीं। इसमें थोड़ा-सा भ्रममात्र है। ब्रह्म अथवा ईश्वरको नाम नहीं है, इसमें कोई नवीनता नहीं; परंतु विचारने योग्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कौन-सी साकार वस्तु अपने साथ नाम लेकर पैदा होती है? क्या किसीने नवजात शिशुको अपने सिरपर नामका सिक्का लगाकर जन्मते देखा है? शिशुके जन्मके उपरान्त ही उसके माँ-बाप उसका नामकरण-संस्कार करते हैं, उसे पालनेमें रखते हैं और उसका नाम धरते हैं। परंतु आश्चर्यकी बात यह है कि बारंबार उस नामसे पुकारते-पुकारते वह बच्चा उससे इतना अभ्यसित हो जाता है कि दस-पाँच आदमियोंके बीच यदि वह सोया हुआ हो और उसका नाम लेकर पुकारा जाय तो वही जाग उठता है। उसी प्रकार तुम्हारी, हमारी, सबकी माता श्रुति भगवतीने, संसार-भयसे त्रस्त हुए जीव अपना दुखड़ा सुनानेके लिये भगवान्‌के पास जायँ, इस उद्देश्यसे, प्रारम्भमें भगवान्‌का 'ओ३म्' नाम रख दिया और सब जीवोंके लिये उसके साथ व्यवहारका मार्ग खोल दिया।

मूलमें भगवान्‌का एक ही नाम था, पीछे उन्हें सहस्रों नाम प्राप्त हुए और वे भगवान् ऐसे दयालु हैं कि प्रेमसे किसी भी नामसे पुकारनेपर ध्यान देते हैं और पुकारनेवालेका [illegible] दूर करते हैं।

३—नाम और अन्तःकरण-शुद्धि

ऐसी ही एक और दूसरी शङ्काका विवेचन करना है उसका निराकरण कर इस लेखके अन्तिम और महत्त्वपू[illegible] विषय 'अव्यावृत नाम-स्मरणसे प्राप्त होनेवाली स्थिति' क[illegible] विचार किया जायगा।

ऊपर हम लिख चुके हैं कि नाम-स्मरणसे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। प्रबल (अजेय) इन्द्रियाँ भी साधकके वशमें हो जाती हैं। इसपर स्वभावतः यह शङ्का उठ सकती है कि 'चित्त-शुद्धि और नाम-स्मरणमें ऐसा कौन-सा सम्बन्ध है कि नाम-स्मरणके साथ चित्तकी शुद्धि होती ही है?' इसका उत्तर यह है कि सद्भाव और प्रेमसे यदि साधक नित्य नाम-स्मरण करे तो नाम और नामीका प्रत्यक्ष सम्बन्ध होनेके कारण क्रमशः जैसे-जैसे उसकी वृत्ति भगवन्नाममें तल्लीन होती जायगी, वैसे-ही-वैसे वह राजस और तामस विषयोंसे दूर होता जायगा और नामी अर्थात् परमात्माका रंग उसके अन्तःकरणपर चढ़ता जायगा। हमें व्यवहारमें भी ऐसा ही अनुभव मिलता है। बच्चेको मरे चाहे छः महीने बीत गये हों, उसकी माताके सामने उस बच्चेका नाम लेते ही उसके नेत्रोंसे आँसू टपके बिना नहीं रहते। नाम-उच्चारणके साथ ही वृत्तिमें नामीकी स्थिति हो जाती है। जो बात विचारसे, ज्ञानसे अथवा चर्चासे नहीं होती, वही क्षणमात्रके प्रेमसे सिद्ध हो जाती है। भावना अथवा प्रेममें ऐसा बल है कि

अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये विचारोंकी अपेक्षा कहीं अधिक उसका उपयोग होता है, ऐसा मानस-शास्त्रवेत्ताओंका कहना है। तात्पर्य यह है कि प्रेमपूर्वक नाम-चिन्तन होनेपर धीरे-धीरे अन्तःकरण सात्त्विक हो ही जायगा। इस विषयमें यह दृष्टान्त दिया जा सकता है कि मालिकके घरमें आनेपर जानवर स्वयं उस घरको छोड़कर दूसरे टूटे-फूटे सूने घरोंकी ओर चले जाते हैं। इसी प्रकार नाम-स्मरणसे अन्तःकरणमें हृषीकेशका निवास होनेपर काम-क्रोधादि कुत्तोंका वहाँ रहना सम्भव नहीं हो सकता। अपरिपक्व बुद्धिवाले नास्तिककी बातोंपर विश्वास करनेकी अपेक्षा हम उन महात्माओंके वचनोंपर क्यों न विश्वास करें, जिन्होंने अपना सारा जीवन साधनामें बिताया तथा जिनके मिथ्यावादी होनेकी तनिक भी शङ्का नहीं की जा सकती? भगवत्साक्षात्कारका अनुभव जैसा उन्हें मिला, वैसा हमें भी मिल सकता है यदि हम उनके कथनानुसार सद्भाव तथा प्रेमके साथ नित्य नियमपूर्वक भगवान्‌का नाम लिया करें। श्रीएकनाथ महाराजने कहा है—

'जिसे परमार्थकी अभिलाषा हो, वह सब झमेलोंको छोड़े और नित्य नियम तथा आदरपूर्वक भगवद्भजन प्रारम्भ कर दे। खण्डन-मण्डन छोड़कर वासुदेवके नामकी ही रट लगाया करे। आदरपूर्वक नाम-स्मरण करनेसे अनायास ही मुक्तिकी प्राप्ति होगी।'

इस प्रकार प्रेमसे, भावशुद्ध अन्तःकरणसे नियमपूर्वक नाम-स्मरण करनेपर साधककी वृत्ति बदलने लगती है, उसे जाग्रत्-दशामें अखण्ड भगवन्नाम तथा गुणके कीर्तन करनेकी लालसा लगी रहती है। इसी स्थितिकी दृढ़ता हो जानेपर उसका भगवद्विषयक प्रेम दृढ़ होता जाता है और स्वप्नमें भी उसकी वैसी स्थिति हो जाती है तथा दिन-दिन उसका भगवान्‌में प्रेम बढ़ता जाता है। अन्तमें उस भक्तकी देहस्फूर्ति प्रेमकी बाढ़में बिलीन हो जाती है। उसके शरीरमें आठों सात्त्विक भाव प्रकट होते हैं तथा वह विदेहावस्थाको प्राप्त हो जाता है। इसीको 'प्रेमसमाधि' अथवा 'प्रेमोन्मादावस्था' कहते हैं। भक्ति शास्त्रका इसके परे कुछ साध्य नहीं है; परंतु विशेष आश्चर्यकी बात यह है कि इस अवस्थाका निर्वचन पण्डितलोग अपने ज्ञानबलसे कर ही नहीं सकते। इस अवस्थाको प्राप्त हुआ पुरुष कभी गाता, कभी रोता, कभी खिलखिलाकर हँसते हुए नाचने लगता है। बहिर्मुख वृत्तिवाले पुरुष, चाहे वे शास्त्रोंके पण्डित ही क्यों न हों, ऐसे पुरुषको पागल समझते हैं। परंतु भक्ति-शास्त्रज्ञ महात्मा कहते हैं कि 'उनके गाने, रोने और नाचनेमें जगत्‌का उद्धार होता है।' अभी थोड़े ही दिन हुए जब साधु रामकृष्ण परमहंसने इसी उन्माद-अवस्थामें अपने समीपके एक मनुष्यको पैर छुवाकर उसको इष्टदेवका दर्शन करा दिया; यह बात प्रसिद्ध ही है। यह विदेह-अवस्था केवल काल्पनिक स्थिति नहीं है, बल्कि अनुभवसिद्ध सत्य है। इसके साक्षी अनेकों महात्मा पुरुष हैं। नारदजी अपने भक्तिसूत्र (४-५-५०) में लिखते हैं—

यं लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति तृप्तो भवति। यत्प्राप्य न किञ्चिद् वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति। स तरति स तरति स लोकाँस्तारयति।

'जिस प्रेमको पाकर पुरुष सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है, तृप्त हो जाता है; जिसे पाकर फिर किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता, किसी बातका सोच नहीं करता, किसीमें द्वेष या राग नहीं करता, विषय-सेवनमें उत्साह नहीं करता, वह तरता है, वह तरता है; और वह लोकोंको तारता है।

४—प्रेमोन्मादकी अवस्था

श्रीमद्भागवतमें कहा है—

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥
(११।२।४०)

'इस प्रकार प्रेमका व्रत लेकर अपने परमप्रिय प्रभुके नाम-संकीर्तनका अनुरागी वह भाग्यवान् पुरुष अलौकिक भावसे कभी खिलखिलाकर हँसता है, कभी रोता है, कभी चिल्लाता है, कभी ऊँचे स्वरसे गाने लगता है और कभी उन्मत्तके समान नाच उठता है।'

परमात्मासे प्रार्थना है कि हमारे भारतदेशमें नित्य ऐसे ही महात्मा पैदा हों; क्योंकि देहकी विस्मृति करानेवाला प्रेम भगवत्कृपाके बिना प्राप्त नहीं हो सकता।

इस उच्च भूमिकाको पहुँचानेवाला नाम-स्मरण किस प्रकार होना चाहिये, यह बतलाकर इस लेखको समाप्त किया जायगा। वस्तुतः इसका विचार तो ऊपर हो ही गया है; परंतु यहाँ उसका थोड़ा-सा स्पष्टीकरण होना आवश्यक

है। वैखरी वाणीद्वारा नामोच्चारण करना तो केवल साधनका आरम्भ है। नामोच्चारण किया जाय परंतु उसके साथ-साथ स्मरण होना भी आवश्यक है। तुकाराम महाराज कहते हैं—

'कण्ठसे नाम-उच्चारण करते समय यही भावना और अनुभव भी करना चाहिये कि भगवान् मेरे सामने खड़े हैं; इसी प्रकार ध्यान धरना चाहिये और मन-ही-मन चिन्तन करना चाहिये।' श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—'विठ्ठलको स्मरण करते समय उस नामीके रूपका भी चिन्तन करो।' यह नाम-स्मरण ऊपर कहे अनुसार प्रेमपूर्वक तथा भावपूर्वक होना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं—

राम राम सब कोउ कहत ठग ठाकुर अरु चोर।
बिना प्रेम रीझै नहीं तुलसी नंदकिसोर॥

पहलेके महात्माओंको नाम-स्मरणद्वारा परमात्माकी प्राप्ति होनेका कारण यही है कि उन्होंने नाम-स्मरण प्रेमपूर्वक किया था। नाममें प्रेम होनेकी परीक्षा यही है कि नाम-स्मरणमें लग जानेपर सभी लौकिक सुख-दुःखोंकी स्मृति नहीं रहती और स्वप्नमें भी नामकी ही धुनि होती रहती है।

गोपियाँ, श्रीचैतन्य, तुकाराम, तुलसीदास, कबीर उ आधुनिक कालके श्रीरामकृष्ण परमहंसके समान भगवत्प्रे सबको प्राप्त होना कठिन है; तथापि उनके प्रेमका लेशमा ही हम भारतवासियोंको प्राप्त हो तथा हमारे इस भारतदेश यह भगवत्प्रेमकी ज्योति इसी प्रकार सदा जलती रहे, उस प्रेमस्वरूप श्रीहरिके चरणोंमें यही प्रार्थना करके इ लेखको समाप्त करता हूँ।

श्रीरामनामकी महत्ता

(लेखक—विविध-विद्या-विशारद पं० श्रीआनन्दघनरामजी तासगाँवकर)

अति प्राचीनकालसे श्रीरामनाम-स्मरणकी जो इतनी महिमा चली आयी है, इसका कारण क्या है? यह रामनामका स्मरण हमारे ऐहिक या पारमार्थिक कल्याणमें क्या और कैसे काम आता है, यह जानना चाहिये। रामनामका यह प्रचार केवल पुरानी लीक पीटते चले जानेका ही एक नमूना है या इसमें कोई गम्भीर तथ्य भी है, यह जाननेके लिये इस नामकी महिमा जिन्होंने बतायी है, उनकी योग्यता क्या और कितनी थी, यह देखकर आज जिन आधिभौतिक शास्त्रोंकी इतनी उन्नति हुई है, उन आधिभौतिक शास्त्रोंकी कसौटीपर कसकर यह देखना होगा कि इस रामनामकी महिमा कितनी उज्ज्वल है और उससे कितना बड़ा उपकार हो सकता है। ऐसा करनेसे आधुनिक कालके सुशिक्षित मनुष्यको इस विषयमें कोई संदेह नहीं रहेगा और वह इसका उपयोग करके अपना व्यावहारिक और पारमार्थिक लाभ प्राप्त कर लेगा।

उपनिषदोंमें वर्णित महिमा

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

(रामपूर्वतापिन्युपनिषद् १।६)

'योगीलोग जिस अनन्त नित्यानन्द चिदात्मामें रममाण होते हैं, उसीका रामपदसे बोध होता है। उसीको परब्रह्म कहते हैं।'

मन्त्रोऽयं वाचको रामो वाच्यः स्याद्योग एतयोः।
फलदश्चैव सर्वेषां साधकानां न संशयः॥

(रामपूर्वतापिन्युपनिषद् ४।२)

'यह मन्त्र रामका वाचक है और राम वाच्य हैं। इन दोनोंका जो योग है वह सब प्रकारके साधकोंको फल देनेवाला है, इसमें कोई संदेह नहीं।'

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव॥

(रामोत्तरतापिन्युपनिषद्)

स्वयं श्रीरामचन्द्र भगवान् शंकरसे कहते हैं—'हे शिव! मुमूर्षुके दाहिने कानमें जिस किसीको राममन्त्रका उपदेश हो और जो कोई इस प्रकार जप करे, वह मुक्त होगा।'

गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदः।
वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः॥

(रामोत्तरतापिन्युपनिषद्)

'गणेश, शिव, शक्ति, सूर्य और विष्णु—इन सब नामोंके जपसे होनेवाले कल्याणकी अपेक्षा रामनाम-मन्त्रके जपका फल अधिक है।'

इस प्रकार रामनामके जपकी महिमा उपनिषदोंने गायी है। अब मन्त्रशास्त्रकी दृष्टिसे राम इन अक्षरोंके उच्चारणमें क्या शक्ति है, यह देखना चाहिये।

वर्णोच्चार-गुण-धर्म-वर्णन

'र' वर्ण दाहकर विकृतिकर है।
'अ' स्वर सर्वगत और आकर्षक है।
'म' वर्ण विद्वेषी मोहनकर है।

(अक्षमालिकोपनिषद्)

बीजाक्षर गुण-वर्णन

'र' अग्निबीज है।
'आ' वायुबीज है।
'म' आकाशबीज है।

पृथ्वीबीज स्तम्भक, आपबीज शान्तिकर, अग्निबीज दाहक, वायुबीज चालक और आकाशबीज संक्षेपक है। इन अक्षरोंके मिश्रोच्चारणका परिणाम-विकृति पञ्चमहाभूतोंकी स्थूल सृष्टिपर तथैव अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतोंके सूक्ष्म स्वरूपपर भी घटित होता है। आकाशसे पृथ्वीतक आनेमें जैसे सूक्ष्मसे स्थूलमें आना होता है, वैसे ही स्थूलको पुनः लौटाकर पृथ्वी और आपको अग्नि, वायु और आकाशमेंसे होकर इनके भी परे जो मूलस्वरूप अर्थात् ब्रह्मस्वरूप है उसमें ले जानेकी सामर्थ्य भी इन्हीं अक्षरोंमें अर्थात् रामनाममें है। देखिये, गुसाईं तुलसीदासजी क्या कहकर रामनामका वन्दन करते हैं—

'बंदौं रामनाम रघुबर के। हेतु कृसानु भानु हिमकर के॥'

शरीरमें प्राणोंका कार्य चलानेवाली जो इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ हैं, उनके अधिष्ठाता देवता इस रामनाममें आ जाते हैं। कृशानु (अग्नि) सुषुम्नाके, भानु (सूर्य) पिंगलाके और हिमकर (चन्द्र) इडाके अधिष्ठाता देवता हैं। इन देवताओंको जगाकर, श्वास-प्रश्वासको सम करके प्राणको सुषुम्ना-नाड़ीमें ले जाकर समाधि-सुखमें उसे पहुँचानेकी सामर्थ्य इस रामनाममें है। यही नहीं, अखिल ब्रह्माण्डको चलानेवाली जो ये अग्नि, सूर्य और सोम-शक्तियाँ हैं, इनपर भी स्वामित्व स्थापित करनेकी सामर्थ्य इस रामनाममें है; इसीलिये इस रामनामका वन्दन करते हैं।

रामनामकी इस अद्भुत सामर्थ्यका रहस्य भी तुलसीदासजीने रहस्यमय भाषाके द्वारा ही कथन किया है। वे कहते हैं—

एक छत्र एक मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥

'एक छत्र और एक मुकुट मनि' यानी अर्धमात्रा और उसपर बिन्दी। इनके साथ सब वर्णोंसहित अथवा किसी अक्षरयुक्त वर्णसहित जिस 'अ'कारका योग होता है और उस अकारके योगसे इस प्रकार जो ओंकारस्वरूप है, वही 'राम' इन दो वर्णोंमें शोभायमान है। रामनामका उच्चार ॐकारका ही उच्चार है। 'रेफस्योर्ध्वा गतिः।' 'मोऽनुस्वारः।' ये वचन और सूत्र प्रसिद्ध हैं। 'र' कार रेफ चिह्न सूचित करता है, वही छत्र है। 'म' कार बिन्दु चिह्न सूचित करता है, वही मुकुटमणि है और दोनोंको जोड़नेवाला 'आ' है जो 'अ' का ही दीर्घस्वरूप है। इसलिये र् आ म—'राम' ॐकारस्वरूप ही है। ॐकारके जपका जो कुछ माहात्म्य वेदों और उपनिषदोंने बताया है, वही माहात्म्य रामनामके जपका है। रामनामके जपका स्वयं अनुभव प्राप्त करके तुलसीदासजीने उसकी इतनी महिमा गायी है। परंतु शब्दादि प्रमाणोंपर जिनका विश्वास नहीं, उन आधुनिक नवशिक्षितोंका इतनेसे समाधान न होगा। उन्हें आधिभौतिक शास्त्रीय पद्धतिसे ही रामनामकी महिमा जँचा देनी होगी।

आधिभौतिक पद्धतिसे विवेचन करनेके लिये, इस विषयको ध्वनि शास्त्रकी दृष्टिसे देखना होगा। ध्वनिनिर्माण करनेवाली इन्द्रियोंके सम्बन्धसे इन्द्रिय-विज्ञान भी देखना होगा। फिर शरीर और मनका सम्बन्ध होनेसे शरीर-विज्ञान और मानस-शास्त्रकी दृष्टिसे भी इसकी जाँच करनी होगी।

इस शरीरमें भिन्न-भिन्न कार्य करनेवाले पर साथ ही परस्परावलम्बी अनेक भाग हैं—(त्वचा, स्नायु, नसें, हड्डी, ज्ञानतन्तु इत्यादि)। इन सबके संयोगसे शरीर बनता और चलता है। एक ही शरीरके अंदर ये भिन्न-भिन्न स्थूल और सूक्ष्म शरीर ही हैं। इनमें ज्ञानतन्तु सबसे सूक्ष्म है। इन सबके अंदर कोई चालक शक्ति है, जिसके बिना ये शरीर अपना काम नहीं कर सकते। शरीरके इन भिन्न-भिन्न भागोंकी स्थूल और सूक्ष्म क्रिया-शक्तिके ज्ञानके लिये इनके कुछ खास नाम रक्खे हैं—जड-इन्द्रियसमूह शरीरको जड अथवा स्थूल-देह, शुद्ध मानस-शक्तिको सूक्ष्म-देह और आत्मशक्तिको कारण-देह कहा है।

इस देहका इस अखिल ब्रह्माण्डके साथ निकट सम्बन्ध है। ब्रह्माण्डके पञ्च महाभूतोंके अंशसे ही यह शरीर बना

है और ब्रह्माण्डकी उष्णता, विद्युत् और प्राण—इन शक्तियोंसे ही वह क्रियायुक्त हुआ और कार्य कर रहा है। इतनी बातें सामने रखकर अब हम यह देखें कि मुखसे निकलनेवाले शब्द या ध्वनिका क्या परिणाम होता है।

(१) ध्वनिसे प्रकम्पन होता है। यह प्रकम्पन स्पष्ट या अस्पष्ट, धीमा या तेज, ह्रस्व या दीर्घ जैसा होगा वैसा वह वातावरणमें आन्दोलन उत्पन्न करके फैलने लगेगा।

(२) इस आन्दोलनसे वातावरणमें कम्पके वर्तुलाकार रूप उत्पन्न होते हैं।

(३) फिर इन वर्तुलोंके मिलनसे विशिष्ट आकृतियाँ बनती हैं।

(४) कम्पके उस वायुमण्डलमें जो सूक्ष्म और स्थूल द्रव्य हों, उनपर उन आकृतियोंका परिणाम होता है।*

(५) इस प्रकार सूक्ष्मरूपसे होनेवाला यह परिणाम योग्य संस्कार होनेसे सतत कार्य करता रहे तो स्थूल कार्यका निर्माण होता है।

---

* कल्याणके 'साधनाङ्क'में पं० श्रीभगवानदासजी अवस्थी एम्० ए०का—'जपयोगका वैज्ञानिक आधार' शीर्षक एक लेख छपा था। उसका कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है। इससे शब्दसे आकृति बननेके विज्ञानके सम्बन्धमें कुछ परिचय प्राप्त होगा।—

"आश्चर्यने सभीको अवाक् कर रक्खा था। विस्मयविस्फारित नेत्रोंसे सभी स्त्री-पुरुष वह अविश्वसनीय घटना देख रहे थे। यदि उनकी आँखोंके सामने वह न दिखलायी गयी होती तो सुननेपर उन्हें किसी तरह भी विश्वास न होता। पर सामने, होश-हवासके दुरुस्त रहते, अपनी आँखोंसे देखते हुए वे उसे माननेको विवश थे।

लार्ड लीटनके एक सजे-सजाये कमरेमें ऊँचे दर्जेके खास-खास विद्वानों तथा विदुषियोंका एक दल एकत्र था। सभी बीसवीं शताब्दीके विज्ञान तथा आविष्कारों—खोजोंसे भलीभाँति परिचित थे। बहुत-से तो विज्ञानके पारदर्शी पण्डित थे। उनके सामने एक गायिका एक साधारण-से बाजेपर रागदारीके साथ गाना गा रही थी।

गायिकाने एक राग छेड़ा। पर्देपर खास तरहके सितारेके रूपकी आकृतियाँ नाचती-कूदती दिखायी दीं। रागके बंद होते ही आकृतियाँ भी देखते-देखते गायब हो गयीं।

गायिकाने दूसरा राग छेड़ा। बात-की-बातमें दूसरे प्रकारकी आकृतियाँ सामने आयीं।

राग बदलते गये। आकृतियाँ भी बदलती गयीं। कभी तारे दीख पड़ते, कभी टेढ़ी-मेढ़ी सर्पाकार आकृतियाँ नजर आतीं, कभी त्रिकोण, षट्कोण दिखलायी देते, कभी रंग-बिरंगे फूल अपनी शोभासे मुग्ध करते, कभी भीषण आकृतिवाले समुद्री जन्तु प्रकट होते, कभी फलों-फूलोंसे लदे वृक्ष सामने कभी एक ऐसा दृश्य दृष्टिगोचर होता जिसमें पीछे तो नीलसमुद्र लहराता नजर आता और सामने नाना प्रकारकी छोटी-बड़ी शिलाओंके बीचमें नाना रूप-रंग, आकार-प्र पत्र-पुष्प-फलोंसे लदे वृक्ष मन्द-मन्द वायुके झोंकोंसे लह फल-फूलोंकी वर्षा करते दीख पड़ते।

जैसे-जैसे राग बदलते गये, वैसे-ही-वैसे आकृतियाँ भी बद गयीं। दर्शक चकित-स्तम्भित चित्रलिखे-से चुपचाप देखते र अन्तमें गायिकाने राग बंद किया। आकृतियाँ अदृश्य हो गयं दर्शक-मण्डलीको चेत आया। सब अपने-अपने उद्गारोंको प्र करने लगे।

लार्ड महोदयने गायिकाका परिचय देते हुए कहा—'अ प्रसिद्ध अन्वेषिका श्रीमती वाट्स ह्यूस (Watts Hughes हैं। आपको एक बार इस बाजेपर एक राग छेड़ते समय एक विशे प्रकारकी सर्पाकृति प्रकट होती दीख पड़ी। फिर आप जब-जब उस रागको छेड़तीं, तब-तब वही आकृति प्रकट होती। इससे आपने यह निष्कर्ष निकाला कि राग और आकृतिका कोई प्राकृतिक सम्बन्ध अवश्य है। एक खास रागके छेड़नेपर एक खास आकृति प्रकट हो जाती है। तब आपने अनेक वर्षोंतक इसी विषयको लेकर अनुसंधान किया। उसका जो फल हुआ है, वह आज आपके सामने प्रदर्शित किया गया है।'

इसी प्रकार फ्रांसमें दो बार इसी विषयको लेकर प्रदर्शन और परीक्षण किये गये हैं। एकमें तो मैडम लैंगने एक राग छेड़ा था जिसके फलस्वरूप देवी 'मेरी'की आकृति शिशु जेजस क्राइष्टको गोदमें लिये हुए प्रकट होती दीख पड़ी थी। दूसरी बार एक भारतीय गायकने 'भैरव राग' छेड़ा था, जिसके फलस्वरूप भैरवकी भीषण आकृति प्रकट हुई थी।

इसी प्रकार इटलीमें भी परीक्षण हो चुका है। एक युवतीने एक भारतीयसे सामवेदकी एक ऋचाको सितारपर बजाना सीखा। खूब अभ्यास कर लेनेके अनन्तर उसने एक बार एक नदीके किनारे रेतमें सितार रखकर उसी रागको छेड़ा। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहाँ रेतपर एक चित्र-सा बन गया। उसने अन्य कई विद्वानोंको यह बात बतायी।

(६) इस ध्वनिकम्पका परिणाम इथर नामक (जिसे प्रवहवायु कहते हैं) अत्यन्त सूक्ष्म द्रव्यपर भी होता है और उससे उसकी समतामें भी प्रकम्पन-कार्य आरम्भ होता है ।

(७) इथरमें होनेवाली यह कम्पन-क्रिया ही प्राणतेज (Odic light) है ।

(८) इथरमें होनेवाले ये सूक्ष्म कम्प तेज और उष्णताके रूपमें त्वक् और नेत्रके द्वारा ज्ञात होनेकी कक्षामें आ जाते हैं, तभी उन्हें व्यवहारमें तेज और उष्णता कहते हैं ।

इस प्रकार इथरपर होनेवाली ध्वनिके परिणामका विचार हुआ । अब शरीरके किन-किन भागों और द्रव्योंपर क्या परिणाम होता है, इसका विचार करें ।

मुँहसे मन्त्रोच्चार करनेके पूर्व उस उच्चारका अपने मनमें उत्पन्न होना आवश्यक होता है । मनमें उत्पन्न हुए बिना वह मुँहसे निकल ही नहीं सकता । पर मनके भी पूर्व उसका अपने मस्तिष्कमें किसी सूक्ष्म अनुद्भूत-सी अवस्थामें होना जरूरी है । मस्तिष्कमें होनेसे ही वह मनमें उत्पन्न होकर मुखके द्वारा बाहर निकलता है ।

पिण्ड-ब्रह्माण्डके शाश्वत और व्यापक वस्तु-स्वरूप तथा विचार-स्वरूपका बोध करानेवाले श्रीराम-मन्त्रके कम्प (Vibrations) मस्तिष्कके अन्तर्भागके सूक्ष्म-सूक्ष्मतर तन्तुओंको कम्पित किये हुए वहीं अनुद्भूत रूपमें रहते हैं । ऐसा न हो तो उन कम्पोंका कहींसे उत्थान नहीं हो सकता । इन अनुद्भूत कम्पोंका उत्थान होनेपर वे कम्प वहाँसे ज्ञानवान् नाड़ी-जाल (Sympathetic Nerve) में, फिर ज्ञानेन्द्रिय नाड़ी-जाल (Sensory) के वाग् नाड़ी-जालमें रहनेवाले शब्दोत्पादक (Hypoglossal Nerve) गतिमान् (Motor Nerve) ज्ञान-तन्तुओंको प्रेरित करते और जीभको कम्पित करके मन्त्रका स्पष्ट उच्चारण कराते हैं । राममन्त्रके कम्प इस प्रकार बाह्य वातावरणपर पवित्र और समर्थ परिणाम करके फिर लौटकर शरीरके अन्तर्भागोंपर परिणाम करते हुए मूल उत्पत्ति-स्थानमें जा पहुँचते हैं । सृष्टि-शास्त्रका यह अबाधित सिद्धान्त है कि जो-जो शक्ति जिस-जिस मूल स्थानसे उठकर क्रियामें प्रवृत्त होती है, वह शक्ति फिर उसी मूल उत्पत्ति-स्थानमें आकर अपना वर्तुल (Circulation) पूरा करके ही लयको प्राप्त होती है । इस नियमके अनुसार रामनामके जो कम्प अपने मूल स्थानसे उठकर मुँहतक आकर बाहर निकलते हैं और फिर वर्तुल पूरा करते हुए लौटते हैं, वे शरीरमें अंदरकी ओर जाते हुए जीभके स्नायुओंमेंसे होकर गतिमान् ज्ञान-तन्तुओंमें जाते हैं । वहाँसे ज्ञान-तन्तुओंके शब्दज्ञानरज्जु (Auditory Nerve) में कम्प उत्पन्न करते व्युत्क्रम रीतिसे ज्ञानवान् ज्ञानतन्तु-जालमें कम्पित करते हुए जब मानस-द्रव्यमें जाते हैं, तभी वे अपने और दूसरोंके शरीरके शब्दका स्वरूप पकड़ सकते हैं । वहीं उनके अर्थका कार्यनिर्माण होता है और श्रीरामस्वरूप तेज अवतरित होकर मस्तिष्क-पिण्डान्तर्गत ब्रह्महृदय (Seat of the Soul) में विलीन हो रहता है । इस प्रकार यह पूरी क्रिया प्रत्येक जपमें होती है और राम-मन्त्रके जपसे, स्थूल और सूक्ष्म क्रियास्वरूप संस्कारसे, मानस-शक्तिमें विद्युत् और प्राणमें प्रकम्पन उत्पन्न होते हैं और उनके संघ तथा संघसमुच्चयसे सूक्ष्म और शान्त तेजोमय आकृति निर्माण होती है ।

इस तेजोमय देवताकृतिमें उष्णता नहीं, शान्ति होती है (**सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसमप्रभम्**) । इस आकृति-की निर्माणक्रियामें मन्त्र शब्दोच्चार, मन्त्र अर्थाकार और भावना-स्वरूप जितना ही समर्थ और दृढ़ होगा, उससे उतने ही अधिक तेजस्वी और बलवान् मानसिक तेज-

---

उन्होंने उस चित्रका फोटो लिया । चित्र वीणा-पुस्तकधारिणी सरस्वतीका निकला । जब-जब वह युवती तन्मय होकर उस रागको छेड़ती, तब-तब वही चित्र बन जाता ।

पश्चिमी देशोंके अनेक विज्ञानवेत्ताओंने समय-समयपर प्रदर्शन करके यह प्रमाणित कर दिया है कि एक खास तरहके रागके छेड़नेपर एक खास तरहकी आकृति बन जाती है ।

इस विज्ञान और आविष्कारोंके युगमें भी यह प्रमाणित हो चुका है कि रागोंसे आकृतियोंका एक विशेष वैज्ञानिक और प्राकृतिक सम्बन्ध है । (रागके बलपर शून्यसे सवर्ण साकार आकृतियाँ प्रकट की जा सकती हैं ।) इसी वैज्ञानिक आधारपर भारतमें शताब्दियों पूर्व 'जपयोग' का प्रासाद निर्मित हुआ था । ईश्वरप्राप्तिके अनेक साधनोंमें 'जप' एक प्रधान साधन था । साधकोंको विशेष अक्षरोंका उच्चारण एक विशेषरूपसे करना पड़ता था । साधनामें सफल होनेपर उसे उक्त अक्षरोंसे सम्बन्ध रखनेवाले देवताके दर्शन हो जाते थे । उसके अभीष्टकी सिद्धि हो जाती थी ।

कम्पन और चैतन्य विद्युत्-कम्पन होते हैं और उसी परिमाणमें युक्त उस देवताके सूक्ष्म अथवा स्थूल देहका उदय होता है। मन्त्रशास्त्रके नियमानुसार इस प्रकार जपके द्वारा उस देवताका वह आकार हमारे मानसिक द्रव्यमें उच्च भूमिकापर सूक्ष्मरूपसे तैयार होने लगता है और जैसे-जैसे इसका संस्कार सतत जपसे दृढ़ होता है वैसे-वैसे हमारे सम्पूर्ण शरीर और मनमें पवित्र शुद्ध भक्ति फैलकर वह मनुष्यको इसी मनुष्यदेहमें देव बना डालती है। उसे ज्ञानयुक्त भक्त और मुक्त बना देती है। श्रीरामनामके जपमें इतनी सामर्थ्य है।

इस प्रकार वेद और उपनिषद्के वचनोंसे, अनुभवी संतोंकी वाणीसे, मन्त्रशास्त्रसे, शरीरशास्त्र और मनोविज्ञानसे तथा ध्वनिशास्त्रसे श्रीरामनामके जपकी अपार महिमा सिद्ध होती है।

राम-नामकी महिमा

(लेखक—महामहोपाध्याय डा० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी०लिट्०)

श्रीभगवान्‌के रूप, लीला और गुणोंकी भाँति ही उनका नाम भी अप्राकृत और चिदानन्दमय है। नाम अलौकिक शक्तिसम्पन्न है। नामके प्रभावसे ऐश्वर्य, मोक्ष और भगवत्प्रेम-तककी प्राप्ति हो सकती है। नामाभासको छोड़कर गुरुप्रदत्त शक्तिसे सम्पन्न नामका यदि विधिपूर्वक अभ्यास किया जाय तो उससे जीवके सभी पुरुषार्थ सिद्ध हो सकते हैं। नामके जाग्रत् होनेपर उसके प्रभावसे सद्गुरुकी प्राप्ति और तदनन्तर सद्गुरुसे इष्टमन्त्ररूपी विशुद्ध बीजकी प्राप्ति हो सकती है। बीजके क्रम-विकाससे चैतन्यकी अभिव्यक्ति होती है और देह एवं मनकी सारी मलिनता दूर होकर सिद्धावस्थाका उदय हो जाता है। मन्त्रसिद्धि वस्तुतः भूतशुद्धि और चित्तशुद्धिके फलस्वरूप होती है। इस अवस्थामें स्व-भावकी प्राप्ति हो जाती है, इसलिये समस्त अभावोंकी निवृत्ति हो जाती है। यद्यपि यह अवस्था सिद्धावस्थाके अन्तर्गत मानी जाती है; परंतु यही भगवद्भजनकी प्रारम्भिक अवस्था है। माताके गर्भसे उत्पन्न मलिन देहसे यथार्थ भगवद्भजन नहीं होता। इसलिये, और राजमार्गके भगवद्भजनकी सुलभताके लिये मायिक अशुद्ध देहके उच्च-स्तरपर भावदेहकी अभिव्यक्ति आवश्यक होती है। भावदेहमें जो भजन होता है, वह स्वभावका भजन होता है; वह विधिमार्गकी नियमबद्ध उपासना नहीं है। मन्त्र-चैतन्यके बाद विधिमार्गकी कोई सार्थकता नहीं रह जाती।

भक्तके भावदेहके विकासके साथ-साथ उसकी भाव-रञ्जित दृष्टिके सम्मुख इष्टदेवताका ज्योतिर्मय धाम अपने-आप ही प्रस्फुटित हो जाता है। इसके पश्चात् भजनके प्रभावसे भावरूपा भक्तिके प्रेमभक्तिमें परिणत होनेपर पूर्ववर्णित ज्योतिर्मय धाममें इष्टदेवताका स्वरूप प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगता है। यही प्रेमकी अवस्था है। इसके बाद भक्त और उसके इष्टकी पृथक् सत्ता विगलित होकर दोनोंके एकीभूत हो जानेपर रसकी अभिव्यक्ति होती है। यही अद्वैत अवस्था है। इसी अवस्थामें भक्तके स्थायी भावके अनुरूप अनन्त प्रकारकी नित्य लीलाओंका आविर्भाव हुआ करता है। यही भक्ति-साधनाकी सिद्धावस्था है।

श्रीभगवान्‌का नाम इस प्रकार रसके स्वरूपमें अपनेको प्रकट करता है। इसीका नाम साधनाका साधारण तत्त्व है।

श्रीरामनाम श्रीभगवान्‌का एक विशिष्ट नाम है। इसकी महिमा अनन्त है। शास्त्रोंने इसीको 'तारक ब्रह्म' कहा है। यह प्रणवसे अभिन्न है, इस बातको भी ऋषि-मुनियोंने बार-बार बतलाया है। कहा जाता है कि परम भागवत श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीको देहत्यागके कुछ दिनों-पूर्व अलौकिक भावसे श्रीमन्महावीरजीने रामनामका रहस्य बतलाया था। उन्होंने कहा कि विश्लेषण करनेपर रामनाममें पाँच अवयव या कलाओंकी प्राप्ति होती है। इनमें प्रथमका नाम 'तारक' है और पिछले चारों नाम क्रमशः—'दण्डक', 'कुण्डल,' 'अर्धचन्द्र' और 'बिन्दु' हैं। मनुष्य स्थूल, सूक्ष्म और कारण देहको लेकर इस मायिक जगत्‌में विचरण करता रहता है। जबतक मायाका भेद नहीं होता, तबतक महाकारण देहकी प्राप्ति नहीं हो सकती। साधकको गुरुपदिष्ट क्रमके अनुसार स्थूल देहके समस्त तत्त्वोंको नामके प्रथम अवयव 'तारक'में लीन करना पड़ता है। स्थूल देह एवं अन्यान्य तीनों देह पाञ्चभौतिक हैं। स्थूलमें अस्थि, त्वक् आदि पाँच पृथ्वीके; मेद, रक्त, रेतः आदि पाँच जलके;

क्षुधा, तृष्णा आदि पाँच तेजके; दौड़ना, चलना आदि पाँच वायुके और काम, क्रोध, लोभ आदि पाँच आकाशके कार्य हैं। अन्य तीनों देहोंमें भी इसी प्रकार पञ्चभूतोंके अंश हैं। प्रत्येक तत्त्वकी पाँच प्रकृति होती हैं। इसीसे स्थूलदेहमें पाँच तत्त्वोंकी पचीस प्रकृति हैं। इसी प्रकार अन्य तीनों देहोंमें पचीस प्रकृति हैं।

'साधना'के प्रभावसे स्थूलदेहके पाँचों तत्त्व जब 'तारक'में लीन हो जाते हैं, तब सूक्ष्मदेहके पाँचों तत्त्वोंको नामके दूसरे अवयव 'दण्डक'में लीन करना पड़ता है। इधर पूर्वोक्त तारक भी स्थूल तत्त्वोंको अपने अंदर लेकर 'दण्डक'में लीन हो जाता है। इसके बाद कारणदेहके तत्त्व नामके तीसरे अवयव 'कुण्डल'में लीन हो जाते हैं। साथ ही दण्डक भी कुण्डलमें लीन हो जाता है। कारणदेहकी निवृत्तिके पश्चात् शुद्ध सत्त्वमय महाकारण-देहको नामके चतुर्थ अवयव 'अर्धचन्द्र'में लीन करना पड़ता है। महाकारण-देह तक जडका ही खेल समझना चाहिये। हाँ, महाकारण देह जड होनेपर भी शुद्ध है; परंतु स्थूल, सूक्ष्म और कारण जड अशुद्ध हैं। महाकारण देहके अर्धचन्द्रमें लीन हो जानेके बाद 'कैवल्य'-देहमात्र बच रहता है। यह विशुद्ध चित्स्वरूप और जड सम्बन्धसे रहित है। अर्धचन्द्रके बादका नामका पाँचवाँ अवयव या कला विन्दुरूपसे प्रसिद्ध है। विन्दु पराशक्ति श्रीजानकीजीका आश्रय लिये बिना कलातीत श्रीराघवका संधान नहीं मिल सकता। विन्दुके अतीत रेफ ही परब्रह्म श्रीरामचन्द्र हैं। विन्दुरूपिणी सीताजी और रेफरूपी श्रीरामचन्द्रजीमें दृढ़ अनुराग जब अचल हो जाता है, तब भवबन्धनसे मुक्ति मिल जाती है और तभी सिद्ध पञ्चरसोंका आस्वादन हो सकता है; इससे पहले नहीं। शान्तरसके रसिक प्रह्लादादि, दास्यके हनूमान् आदि, सख्यके सुग्रीव-विभीषणादि, वात्सल्यके दशरथ आदि और शृङ्गार-रसके मूर्तस्वरूप जनकपुरकी युवतियाँ—विशेषतः श्रीजानकीजी स्वयं हैं।

कैवल्यदेहमें चित्तत्त्वका स्फुरण वर्तमान है। उसके बाद तत्त्वातीत ब्रह्म वस्तु है, जो शक्तिरूपमें श्रीजानकीजीके नामसे और शक्तिके आश्रयरूपसे श्रीरामके नामसे भक्तोंके लिये सुपरिचित हैं। महावीरजीने जो उपदेश दिया है, उसका तात्पर्य यही है कि विन्दुका आश्रय लिये बिना निष्कल परब्रह्मकी ओर अग्रसर नहीं हुआ जा सकता। वैसे प्रयत्नसे बड़े अनर्थकी सम्भावना है।

> तुलसी मेटैं रूप निज बिंदु सीयको रूप।
> देखि लखै सीता हिये राघव रेफ अनूप॥
> तुलसी जो तजि सीयको बिंदु रेफमें चाहु।
> तौ कुंभी महँ कल्पसत जाहु जाहु परि जाहु॥

अतएव जो रामनामके रसिक हैं, वे अर्धचन्द्रविन्दु और रेफको एक कर डालते हैं; पृथक् नहीं होने देते। और इस एकमें ही उनके आस्वादनके लिये अचिन्त्य विचित्र लीलाएँ प्रस्फुटित हो उठती हैं।

रसना ! तू राम-राम क्यों नहीं रटती ?

> रुचिर रसना तू राम राम राम क्यों न रटत।
> सुमिरत सुख सुकृत बढ़त, अघ-अमंगल घटत॥
> बिनु श्रम कलि-कलुषजाल कटु कराल कटत।
> दिनकरके उदय जैसे तिमिर-तोम फटत॥
> जोग, जाग, जप, बिराग, तप, सुतीरथ-अटत।
> बाँधिबेको भव-गयंद रेनुकी रजु बटत॥
> परिहरि सुर-मनि सुनाम, गुंजा लखि लटत।
> लालच लघु तेरो लखि तुलसि तोहिं हटत॥

(श्रीतुलसीदासजी)

गोस्वामी तुलसीदासजीकी नामनिष्ठा

(लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन')

यों तो भगवन्नामके सुयशसे शास्त्र-ग्रन्थ एवं समस्त संतवाणी भरी हुई है, किंतु इसका जैसा सर्वाङ्गीण विवेचन और विस्तृत वर्णन महात्मा तुलसीदासजीने किया है वैसा अन्यत्र प्राप्त नहीं है। भगवन्नाम स्वयं भगवद्रूप है, इस सत्यकी प्रतिष्ठा उन्होंने अपनी अनेक रचनाओंमें प्रबल रूपसे की है। नाम और नामीमें कोई भेद नहीं है, बल्कि नाम लेनेसे ही नामीका ज्ञान होता है और हमारी आँखोंके आगे वह रूप ग्रहण करता है। नाम ही रूपको जन्म देता है; और नामरूपाश्रयसे ही भगवद्भक्तिकी प्रथम अनुभूति होती है।

रामचरितमानसका प्रारम्भ करनेके पश्चात्, बालकाण्ड-में गोस्वामीजी भगवन्नाम—उनके शब्दोंमें रामनाम—की वन्दना करते हुए कहते हैं—

'इसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेशका निवास है। यह वेदका प्राण है। शिव इसी मन्त्रका जप करते हैं और काशीमें जीवकी मुक्तिके लिये इसीका प्रयोग करते हैं। इसीकी महिमासे गणेशजीकी सबसे पहले पूजा होती है। इसीके प्रतापको जाननेके कारण वाल्मीकि उलटा जप करके भी विशुद्ध हो गये।'

रामनाम-मणिदीप धरु

नाम एवं नामीकी एकता और रूपके नामाधीन होनेकी विवेचना करते हुए गोस्वामीजी आदेश करते हैं—

रामनाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजियार॥

'जैसे द्वारकी देहरीपर रक्खा दीपक कोठरीमें और कोठरी-के बाहर भी प्रकाशका प्रसार करता है वैसे ही यदि तू अपने बाहर और भीतर प्रकाश चाहता है तो जीभकी देहरीपर रामनामका मणिदीप रख ले।'

फिर भक्तोंके प्रकारभेदकी चर्चा करते हुए कहते हैं कि चार प्रकारके जो भक्त होते हैं, उन सबके लिये भगवन्नाम सर्वश्रेष्ठ अवलम्ब है। सभी युगोंमें नामकी महिमाका गान होता रहा है; किंतु 'कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ।'

नाम रामसे भी बड़ा है

गोस्वामीजीके रोम-रोममें रामका वास था। एक भी रामकी चिन्ताके बिना वे रह नहीं पाते थे। उनके एकमात्र उपास्य थे। वे उन्हें परब्रह्मस्वरूप थे। उन्हीं तुलसीका कहना है कि नाम तो रामसे भी है और यह कहकर ही नहीं रह जाते, इसके लिये देते हैं; दोनोंकी विशद तुलना करते हैं—

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सु[illegible]
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल [illegible]
राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सु[illegible]
रिषि हित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिब[illegible]
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नाम जिमि रबि निसि [illegible]
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नामु प्रत[illegible]
दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किए पा[illegible]
निसिचर निकर दले रघुनंदन। नामु सकल कलि कलुष निकं[illegible]

सबरी गीध सुसेवकन्हि सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ॥

'रामने भक्तकी कामना पूर्ण करनेके लिये मानव-श[illegible] धारण किया। अनेक संकट सहकर साधुसमाजको सुखी किय[illegible] किंतु नामका प्रेमपूर्वक जप करनेसे तो भक्त अनायास मङ्ग[illegible] मय हो उठता है। रामने एक अहल्याका उद्धार किय[illegible] नामने कोटि-कोटि दुष्टों एवं मतिहीन लोगोंको सुधार दि[illegible] है। रामने भव (शिव-)के धनुषका भञ्जन किया तो ना[illegible] भव-भयका भञ्जन करता है। प्रभुने एक दण्डकारण्यको अप[illegible] चरणोंसे सुहावना बनाया तो नामने असंख्य जनमानस[illegible] पावन बनाया है। रामने राक्षस-दलका संहार किया [illegible] नाम कलिके समस्त पापोंको नष्ट कर देनेवाला है। रामने शबरी, जटायु इत्यादि सेवकोंको सद्गति प्रदान की तो नामने असंख्य पापियोंका उद्धार किया है और उसकी गुण-गाथा वेदविदित है।'

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सब कोऊ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे॥
राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥

इसीलिये बार-बार कहते हैं—

राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु,
राम जपु मूढ़ मन बार-बारं ।
सकल-सौभाग्य-सुख-खानि जिय जानि सठ !,
मानि बिस्वास बद बेदसारं ॥
(विनयपत्रिका ४६)

और भी—

राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा ।
रामनाम-नव-नेह-मेह को मन हठि होहि पपीहा ॥
रामनाम गति, रामनाम मति, रामनाम अनुरागी ।
ह्वै गये, हैं, जे होहिंगे आगे, ते गनियत बड़भागी ॥
(विनयपत्रिका ६५)

इस संसार-सागरसे पार उतारनेवाली नाव यह नाम ही है, उसका जप कर—

राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे ।
घोर भव-नीर-निधि नाम निजु नाव, रे ॥
(विनयपत्रिका ६६)

'तेरे लिये और कोई गति नहीं है । हे प्राणी ! जबतक तू राम-राम नहीं जपेगा, तबतक चाहे जहाँ चला जाय तुझे त्रयताप दग्ध करते रहेंगे । गङ्गाके तीरपर तुझे पानी नहीं मिलेगा; कल्पवृक्षके नीचे जानेपर भी तुझे दुःख-दारिद्रय सताते रहेंगे; स्वप्नमें भी तुझे सुख न मिलेगा; बार-बार जन्म लेकर तुझे संसारमें रोना पड़ेगा; जितना ही तू छूटनेकी चेष्टा करेगा, उतना ही बँधता जायगा; यदि अमृतमें सानकर खायगा तो भी भोजन तेरे लिये विषका काम करेगा । इसलिये तीनों लोकों एवं तीनों कालोंमें तेरे-जैसे दीनके लिये राम-नाम ही एकमात्र गति है, जैसे मीनकी गति जल है ।'

राम राम राम जीव जौलौं तू न जपिहै ।
तौलौं, तू कहूँ जाय, तिहूँ ताप तपिहै ॥
सुरसरि-तीर बिनु नीर दुख पाइहै ।
सुरतरु-तरे तोहिं दारिद सताइहै ॥
जागत बागत सपने न सुख सोइहै ।
जनम-जनम जुग-जुग जग रोइहै ॥
छूटिबे के जतन बिसेष बाँध्यो जायगो ।
ह्वैहै बिष भोजन, जो सुधा सानि खायगो ॥
'तुलसी' तिलोक तिहूँ काल तोसे दीन को ।
राम नाम ही की गति, जैसे जल मीन को ॥
(विनयपत्रिका ६७)

इसलिये 'तू स्नेहपूर्वक राजा रामका नाम-स्मरण कर, जो संबलहीनका संबल है, असहायका मित्र है, अभागेका भाग्य है, गुणहीनका गुण है, गरीबका ग्राहक है, दीनका दयार्द्र दानी है, पंगुका हाथ-पाँव, अंधेकी आँख, भूखेका माँ-बाप, निराधारका आधार, भवसागरका सेतु, सत्य-सुखका कारण है ! रामनाम-जैसा पतितपावन दूसरा नहीं है, जिसका स्मरण कर 'तुलसी' जैसे ऊसरका सुन्दर भूमिमें परिवर्तन हो गया ।'

सुमिरु सनेह सों तू नाम राम राय को ।
संबल निसंबल को, सखा असहाय को ॥
भाग है अभागे हू को, गुन गुनहीन को ।
गाँहक गरीब को, दयालु दानि दीन को ॥
कुल अकुलीन को सुन्यो है, बेद साखि है ।
पाँगुरे को हाथ-पाँय, आँधरे को आँखि है ॥
माय-बाप भूखे को, अधार निराधार को ।
सेतु भवसागर को, हेतु सुख-सार को ॥
पतित-पावन राम-नाम सों न दूसरो ।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ॥
(विनयपत्रिका ६९)

इससे सिद्ध है कि भगवन्नाम सबके लिये, सब कालोंके लिये, सब स्थितिमें पाप-ताप-मोचन है और सर्वत्र सुलभ होनेके कारण उसके द्वारा जितने प्राणियोंका उद्धार सम्भव है, उतनी संख्यामें स्वयं भगवान्ने भी अपने विविध अवतारोंमें प्राणियोंका उद्धार न किया होगा । भगवान् बड़े तपसे या भक्तिकी चरम सीमापर पहुँचनेके पश्चात् ही प्राप्य हैं; किंतु भगवन्नाम अत्यन्त सरल, सुलभ और सर्व-स्थानीय है । इससे सिद्ध है कि भगवन्नाम स्वयं भगवान्से भी अधिक जनहितकर एवं पावनकारी है ।

भगवन्नामकी शक्ति तथा तद्विषयक शङ्काओंका समाधान

(लेखक—पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम' साहित्याचार्य)

संसारका प्रत्येक प्राणी सच्चिदानन्दघन परमात्माका अंश है; अतः नित्य सत्ता, नित्य चैतन्य और नित्य आनन्द उसका सहज स्वरूप है। परंतु अनादिकालसे अविद्याके वशीभूत होकर वह अपने-आपको भूल गया है। इसीलिये अमृतस्वरूप होकर भी मृत्युसे डरता है, सुखस्वरूप या यों कहिये, सुखका सिन्धु होनेपर भी अपनेको दुःखसे आक्रान्त मानता और लेशमात्र सुखके लिये लालायित रहता है। नित्यमुक्त होकर भी बद्ध-अवस्थाके क्लेश भोगता है। इस भ्रमका निवारण करनेके लिये ही शास्त्रों, संतों तथा परम दयालु भगवान्‌ने विविध उपाय बताये हैं, अनेकानेक साधनोंका उपदेश दिया है। कर्म, उपासना और ज्ञान—सभी मार्ग जीवको उसके लक्ष्यतक पहुँचानेवाले हैं। कर्मसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर स्वरूपकी स्मृति हो जाती है, फिर तो वह ज्ञानमय—आनन्दमय होकर परब्रह्म परमात्मासे अभिन्न हो जाता है, उसके सारे दुःख-शोक सहसा विलीन हो जाते हैं; मानो वे कभी हुए ही न हों। उपासनासे जगत्‌की आसक्ति मिटती है, उसकी ओरसे विरक्ति होती और प्रभुके चरणोंमें निरन्तर अनुरक्ति बढ़ती है। फिर विशुद्ध प्रेमकी उपलब्धि करके जीव अपने प्रेमास्पद भगवान्‌का नित्य सेवा-सौभाग्य, साहचर्य-सुख पाकर कृतार्थ हो जाता है। इन सब साधनोंमें सुगमताकी दृष्टिसे भक्ति या उपासनाका मार्ग ही जीवके लिये अधिक उपयोगी है।* इसमें अधिकार या योग्यताका प्रश्न नहीं है। जीवमात्र सदा सभी अवस्थाओंमें भगवद्भजनका अधिकारी है। धर्म-कर्मके नाना स्वरूप और विधान देखकर संशयमें पड़े हुए जीवोंको भगवान् पुकार-पुकारकर कहते हैं—'तुम सब धर्मोंको छोड़कर एकमात्र मेरी शरणमें आ जाओ। मैं तुम्हें सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा, शोक मत करो।'† भगवान्‌के इस प्रेमाह्वानको जो न सुने, उससे बढ़कर भाग्यहीन और कौन होगा? वे कहते हैं—"जो एक बार भी शरणागत होकर यह याचना करता है कि 'प्रभो! मैं आपका हूँ, मुझे बचाइये।' उसे मैं सब भूतोंसे अभय कर देता हूँ। ऐसा करना मेरा व्रत है।"‡ यहाँ किसी भी जीवके लिये 'नाहीं' नहीं है। भगवान्‌के सम्मुख होते ही जीवके कोटि-कोटि जन्मोंके पापपुञ्ज क्षणभरमें भस्म हो जाते हैं।§ भगवान्‌की कितनी दया है जीवपर। उन्होंने एक नहीं, अनेक—सहस्र-सहस्र नाम धारण किये, उनमें अपनी सारी-की-सारी शक्ति अर्पित कर दी और उन नामोंके स्मरणके लिये कोई समयका बन्धन भी नहीं रक्खा, सोते-जागते, चलते-फिरते, खाते-पीते—हर समय उन नामोंको याद किया जा सकता है, लिया जा सकता है। उन दीन-बन्धुकी तो इतनी दया, ऐसा अनुग्रह! किंतु हमारा कैसा दुर्भाग्य है कि भगवन्नाममें अनुराग ही नहीं हुआ—

> नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
> स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
> एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
> दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः॥

भगवान्‌के नाम, रूप, लीला और धाम सब एक हैं, एक-सी महिमावाले हैं। उपनिषद्‌में एक प्रश्न है—'**स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठितः?**' 'भगवन्! वह परमात्मा किसमें प्रतिष्ठित है?' इसका उत्तर दिया गया है—'**स्वे महिम्नि**' 'अपनी ही महिमामें।' इससे सिद्ध है कि भगवान्‌का धाम भी भगवान्‌से भिन्न नहीं है। रूप और नाम तो अभिन्न हैं ही। उनका नाम, रूप, धाम या लीला नित्य है, चिन्मय आनन्दस्वरूप है। वहाँ दूसरा कुछ भी नहीं है। अतः इनमें-से किसीका भी कीर्तन भगवान्‌का ही कीर्तन है। फिर भी नामका कीर्तन अधिक सरल और सुगम है। संतोंने नामको नामीसे भी बढ़कर बताया है। साक्षात् भगवान्‌ने दर्शन देकर कतिपय पापियोंका ही उद्धार किया होगा, परंतु उनके

* 'अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ'। (नारदभक्तिसूत्र ५८)

† सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(गीता १८। ६६)

‡ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(वाल्मीकीय रामायण युद्ध० १८। ३३)

§ सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
(रामचरितमानस)

नाममें असंख्य अमियोंका समुद्धार सम्भव हुआ है। * कलियुगमें तो संसार-सागरसे पार उतरनेके लिये एकमात्र भगवान्‌का नाम ही सुदृढ़ नौका है। अन्यथा कोई गति नहीं है। †

भगवान्‌के सभी नाम उन्हींकी भाँति चिन्मय हैं, भक्त-वाञ्छाकल्पतरु हैं। अतएव उनकी महिमा, उनकी शक्ति अनन्त है। तान्त्रिक विचारधाराके अनुसार परम शिव परमात्माके दो स्वरूप हैं—निर्गुण और सगुण। निर्गुण निष्कल है और सगुण सकल। सकल परमेश्वरसे शक्तिका, शक्तिसे नादका और नादसे बिन्दुका प्राकट्य होता है। इस बिन्दुसे पुनः बिन्दु, नाद और बीज प्रकट होते हैं। ये बिन्दुके ही त्रिविध भेद हैं। बिन्दु शिवरूप है और बीज शक्तिरूप। इन दोनोंका समवाय नाद है। इनसे रौद्री आदि शक्तियाँ प्रकट होती हैं, जो रुद्र आदिकी जननी हैं। भिद्यमान बिन्दुसे जो नाद प्रकट होता है वही शब्दब्रह्म है। ‡ शब्दब्रह्म क्या है, इस विषयमें विद्वानोंका मतभेद है। कोई आन्तर स्फोटको शब्दब्रह्म मानता है, कोई बाह्य स्फोट (वाक्य स्फोट) को। परंतु तान्त्रिक आचार्य सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर व्याप्त चैतन्यको ही शब्दब्रह्मकी संज्ञा देते हैं। * चैतन्यरूपिणी नादात्मिका शक्ति ही कुण्डलिनीरूप होकर वर्णोंके रूपमें अभिव्यक्त होती है। वही मूलाधारमें परा, हृदयमें पश्यन्ती, बुद्धिमें मध्यमा और वागिन्द्रियमें वैखरी वाणी है। अकारादि समस्त वर्ण तथा वेदोंका आदिबीज प्रणव उसीका स्वरूप है। वही बीज और मन्त्र है। वेदादि शास्त्र भी वही है। उसीकी शब्दब्रह्म संज्ञा है। † इस विवेचनसे सिद्ध है कि अक्षर नाम, मन्त्र और वेदादि शास्त्र चैतन्यशक्तिसे अनुस्यूत हैं। शापादिके कारण जिन मन्त्रोंकी चैतन्यशक्ति सुप्त या मूर्छित है, उनमें उस चैतन्यको जाग्रत् करनेके लिये शापोद्धार या उत्कीलन आदिकी क्रियाएँ की जाती हैं, कहीं-कहीं शक्ति-बीजका पुट दिया जाता है। चैतन्यमय होनेसे ही भगवन्नामोंकी शक्ति अनिर्वचनीय कही गयी है। अतः कल्याणकामी साधकोंको सदा ही भगवन्नामोंका स्मरण एवं कीर्तन करना चाहिये।

दुर्भाग्यसे कुछ लोगोंका भगवन्नामकी महिमापर विश्वास नहीं जमता है। उनके मनमें संशय उठते रहते हैं। ऐसे लोगोंको 'भगवन्नामकौमुदी'का अध्ययन करना चाहिये। इसमें नामकीर्तनकी महिमाका बड़ी प्रौढताके साथ सप्रमाण प्रतिपादन किया गया है। शास्त्रार्थकी शैलीसे पूर्वपक्षकी

---

* 'उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥
'मोरे मत बड़ नाम दुहूँ तें।'
राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
निसिचर निकर दले रघुनंदन। नाम सकल कलि कलुष निकंदन॥
(श्रीरामचरितमानस)

† नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
कालिजुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि भव उतरहिं पारा॥
(श्रीरामचरितमानस)

हरेर्नामैव नामैव हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

‡ निर्गुणः सगुणश्चेति शिवो ज्ञेयः सनातनः।
निर्गुणः प्रकृतेरन्यः सगुणः सकलः स्मृतः॥
सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद् बिन्दुसमुद्भवः॥
परशक्तिमयः साक्षात्त्रिधासौ भिद्यते पुनः।
बिन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः॥
बिन्दुः शिवात्मको बीजं शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः।
समवायः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः॥
रौद्री बिन्दोस्ततो नादाज्ज्येष्ठा बीजादजायत।
वामा ताभ्यः समुत्पन्ना रुद्रब्रह्मरमाधिपाः॥
भिद्यमानात्पराद् बिन्दोरव्यक्तात्मा रवोऽभवत्।
शब्दब्रह्मेति तं प्राहुः सर्वागमविशारदाः॥
(शा० ति० १। ६। १२)

स रवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।
(शा० ति० टीका १। १२)

* शब्दब्रह्मेति शब्दार्थं शब्दमित्यपरे जगुः।
(शा० ति० १। १२)

एके आचार्याः शब्दार्थमान्तरस्फोटं शब्दब्रह्मेत्याहुः। यथा हि निरंश एवाभिन्नो नित्यो बोधस्वभावः शब्दार्थतय आन्तरस्फोटः, इति। अपरे वैयाकरणाः पूर्वपूर्ववर्णोच्चारणाभिव्यक्तं तत्तत्पदसंस्कार-सहायचरमपदग्रहणोद्बुद्धं वाक्यस्फोटलक्षणं शब्दमखण्डैकार्थप्रकाशकं शब्दब्रह्मेति वदन्ति।

चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे मतिः।
(शा० ति० १। १३)

† शब्दब्रह्मेति यद् वेदशास्त्रं वेदास्ययमुच्यते।
(वर्णिका)

वेदादिबीजं श्रीबीजं शक्तिबीजं मनोभवम्।
(शा० ति० १। ५८)

उद्भावना करके सभी तरहकी शङ्काओंका निराकरण किया गया है। उत्तम युक्तियों और प्रबल प्रमाणोंद्वारा जोरदार शब्दोंमें इस बातकी पुष्टि की गयी है कि भगवन्नामोंकी महिमा अमित, अगाध और अनन्त है। नाम-कीर्तनसे न केवल पापोंका क्षयमात्र होता है, अपितु वासना और प्रारब्धका भी नाश होकर परम पुरुषार्थ (मोक्ष) की उपलब्धि हो जाती है। यहाँ संक्षेपसे उक्त ग्रन्थकी सार बातें बतायी जाती हैं। ग्रन्थकार कहते हैं—

अत्र श्रीमद्भगवन्नाममाहात्म्यस्य प्रतिपादकानि पुराणवचनान्युदाहृत्य विचार्यन्ते—किमेतान्यविवक्षितस्वार्थान्युत स्वार्थपराणीति ? यदा स्वार्थपराणि, तदापि किं साक्षात्पापक्षयहेतोः कस्यचिदङ्गभावेन भगवन्नामकीर्तनं पापक्षयहेतुः ? उत स्वप्राधान्येन ? यदापि स्वप्राधान्येन, तदापि किं श्रद्धाभक्तिज्ञानवैराग्याभ्यासदेशकालविशेषादिसापेक्षत्वेन ? उत तन्नैरपेक्ष्येणेति ? (प्रथम परिच्छेद)

'इस ग्रन्थमें भगवान्‌के नामोंकी महिमाके प्रतिपादक पुराणवचनोंको उद्धृतकर इस बातका विचार किया जाता है कि इनका (भगवन्नामकीर्तनको पापनाशक बतलाना आदि) मुख्य अर्थ विवक्षित है या नहीं ? यदि विवक्षित है, तो यह भगवन्नामकीर्तन पापनाशके साक्षात् कारणभूत किसी (मन्वादि स्मृतिकारोंद्वारा बताये हुए प्रायश्चित्त) का अङ्ग होकर पापक्षयका हेतु है या स्वयं प्रधान रूपसे ? यदि स्वयं प्रधान रूपसे है, तो भी श्रद्धा, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, अभ्यास तथा विशिष्ट देश-कालादिकी अपेक्षा रखता है या नहीं ?'

इन प्रश्नोंके तीन भाग हैं। इनमें पहले भागका उत्तर प्रथम परिच्छेदमें अनेकों शङ्का-समाधानोंका उल्लेख करके दिया गया है। उपसंहारमें इस प्रकार कहा है—

तस्माद्विवक्षितार्थस्यैव नामकीर्तनस्य पापक्षयहेतुत्वप्रतिपादकानि पुराणवचनानि। (प्रथम परिच्छेद)

इसलिये पुराणवचन, जो नामकीर्तनको पापक्षयका हेतु बतलाते हैं, विवक्षित अर्थवाले ही हैं। तात्पर्य यह कि वे जो कुछ कहते हैं, ज्यों-का-त्यों ठीक है, अक्षरशः सत्य है। नामकी मिथ्या प्रशंसा करनेवाले 'अर्थवाद वचन' वे नहीं हैं। दूसरे परिच्छेदके आरम्भमें दूसरे प्रश्नको उठाते हुए कहते हैं।

एवं स्थिते नामकीर्तनस्य पापक्षयं प्रतिसाधनत्वे पुनरिदं विचार्यते—किं कस्यचित् साधकस्याङ्गभूतं सत्? उत स्वयमेव साधकमिति ? (द्वितीय परिच्छेद)

'इस प्रकार पूर्व परिच्छेदमें किये हुए विचारके अनुसार नामकीर्तनका पापक्षयमें कारण होना सिद्ध हो जानेपर पुनः इस बातका विचार किया जाता है कि वह नामकीर्तन पापक्षयके प्रधान साधक किसी प्रायश्चित्तका अङ्ग होकर साधक है या स्वयं ही प्रधान रूपसे ?'

इस प्रश्नके उत्तरमें पहले पूर्वपक्षका सविस्तर प्रतिपादन करके फिर प्रमाणों और युक्तियोंके द्वारा उसका खण्डन किया गया है। पूर्वपक्षी नामकीर्तनको स्वतन्त्र साधन नहीं मानता, परंतु ग्रन्थकारका सिद्धान्त इस प्रकार है—

स्वप्रधानमेव पुरुषोत्तमकीर्तनं पापप्रध्वंसनहेतुः।

(द्वितीय परिच्छेद)

'भगवान् पुरुषोत्तमका नामकीर्तन स्वयं प्रधानरूपसे पापनाशका कारण होता है (किसी दूसरे प्रायश्चित्तका अङ्ग होकर नहीं)।'

इसकी पुष्टिमें अजामिल आदिके दृष्टान्त, अनेकानेक शास्त्रीय प्रमाणवचन तथा नाना तर्क-युक्तियोंका उल्लेख किया गया है और यह स्थिर किया गया है कि—

केवलमेव हरिकीर्तनं कृत्स्नपापक्षयहेतुः। नान्यसमुच्चितम्। नतरामन्याङ्गभूतम्। (द्वितीय परिच्छेद)

'केवल हरिकीर्तन ही सम्पूर्ण पापोंके नाशका हेतु है; किसी अन्यके साथ मिलकर या किसी अन्यका अङ्गभूत होकर नहीं।'

कर्मात्मक प्रायश्चित्तोंकी अपेक्षा कीर्तन-भक्तिमें विशेषता है।

नरकहेतुः संस्कारः प्रायश्चित्तैर्निवर्त्यते, न सजातीयोत्पादकः, भक्त्या पुनरुभयविधोऽपीति भक्तेरेवात्यन्तिकशुद्धिहेतुत्वं न कर्मणाम्।

(द्वितीय परिच्छेद)

'[प्रत्येक कर्मके दो संस्कार होते हैं, एक तो स्वर्ग या नरकका हेतु है और दूसरा वासनारूपसे नूतन कर्म करानेवाला होता है] नरकका हेतुभूत संस्कार ही प्रायश्चित्तसे निवृत्त होता है, वासनारूपसे नूतन सजातीय कर्म करानेवाला नहीं; परंतु भक्तिसे दोनों प्रकारके संस्कार निवृत्त होते हैं। अतः भक्ति ही आत्यन्तिक शुद्धिका हेतु है कर्म नहीं।'

यदि प्रायश्चित्तोंकी अपेक्षा नामकीर्तनसे ही पूर्णतया पाप निवृत्त होता है, तो सुकर होनेके कारण सबकी नामकीर्तनमें ही प्रवृत्ति होगी। स्मृतियोंमें बताये हुए बड़े-बड़े व्रतोंको कौन करेगा ? ऐसी दशामें स्मृतियोंका उच्छेद हो जायगा। इसलिये एक व्यवस्था होनी चाहिये कि अमुक अधिकारीके लिये स्मृतिप्रतिपादित प्रायश्चित्त कर्तव्य है और अमुकके लिये नामकीर्तन।

तृतीय परिच्छेदमें सिद्धान्तीने इस प्रश्नपर विचार करके यही निर्णय किया है कि स्मृति और पुराणोक्त साधनोंमें व्यवस्था नहीं; विकल्प ही मान्य है। विकल्पका अभिप्राय यह है कि जिसकी इच्छा हो वह पापक्षयके लिये स्मृतिकथित व्रतका आचरण करे और जिसकी इच्छा नामकीर्तन करनेकी हो, वह नामकीर्तन ही करे। ऐसी दशामें स्मृतियाँ बाधित हों तो हो जायँ, पौराणिक वचनोंका स्वारस्य भंग नहीं किया जा सकता।

एक बारके और अनेक बारके कीर्तनसे होनेवाले फलोंमें क्या अन्तर है ? यह बताते हैं—

'अत्यन्तशुद्धिसाधनमावृत्तिगुणकं कृष्णकीर्तनम्, अत्यन्तशुद्धिश्च सह वासनाभिः पापानां परिक्षयः। भविष्यद्भिः पापैरनुपश्लेषः फलमावृत्तेः।' 'प्रारब्धपरिक्षये च युक्तमेवावृत्त्यपेक्षणम्।' (तृतीय परिच्छेद)

'अनेकों बार किया हुआ श्रीकृष्णकीर्तन अत्यन्त शुद्धिका साधन है। वासनाओंके साथ समस्त पापोंका नाश हो जाना ही अत्यन्त शुद्धि है। भविष्यमें भी पापोंका सम्पर्क न होना आवृत्तिका फल है।' 'प्रारब्धका क्षय करनेके लिये कीर्तनकी आवृत्तिकी अपेक्षा करनी उचित ही है।'

इस प्रकार सम्पूर्ण प्राचीन पापोंके साथ ही उनके संस्कारका और प्रारब्धका भी क्षय कीर्तनकी आवृत्ति करनेसे होता है। यहाँ सूक्ष्मरूपसे यह सिद्धान्त बताया गया है। ग्रन्थकारने इसके समर्थनमें प्रबल प्रमाणों और अकाट्य युक्तियोंका उल्लेख किया है।

एक बारके कीर्तनका फल देखिये—

अप्रारब्धप्राचीनपापक्षये सकृत्कीर्तनमेव साधनमिति निरपवादम्। अत्र वचनानि सन्त्यनन्तानि। (तृतीय परिच्छेद)

'प्रारब्ध भिन्न प्राचीन पापोंका क्षय करनेके लिये एक बारका ही कीर्तन साधन है—एक बारके ही कीर्तनसे समस्त प्राचीन पापोंका क्षय हो जाता है, यह निर्बाध सिद्धान्त है। इसके समर्थक असंख्य शास्त्रीय वचन हैं।'

कीर्तनसे मोक्ष प्राप्त होता है, इसका क्रम ग्रन्थमें यों बताया गया है—

कीर्तनात् पापक्षयः, तदावृत्त्या तद्विषयाणां वासनानां प्रचयः, अपचयश्च पापवासनानाम्, ततो भगवज्जनसेवासात्म्यम्, ततस्तदुपवर्णितमहिमनि भगवति पुण्यश्लोकशेखरे भगवती नैष्ठिकी भक्तिः, ततः शोकादीनामत्यन्तोच्छेदः, ततः सत्त्वस्य परमोत्कर्षः, ततस्तत्त्वसाक्षात्कारः, ततो मुक्तिरिति। अयमर्थः श्रीमद्भागवते सविस्तरमुपवर्णितः। (तृतीय परिच्छेद)

'एक बारके कीर्तनसे पापका क्षय होता है, कीर्तनकी आवृत्ति करनेसे कीर्तनविषयक वासनाओंकी वृद्धि और पापवासनाओंका ह्रास होता है, इसके पश्चात् भगवान्के भक्तजनोंकी सेवामें निरन्तर लगन होती है, फिर उनके द्वारा वर्णन की हुई महिमासे युक्त भगवान् पुण्यश्लोक-शिरोमणिमें सौभाग्यशालिनी नैष्ठिकी भक्तिका उदय होता है, उससे शोक आदिका अत्यन्त नाश हो जाता है। तत्पश्चात् सत्त्वगुणकी अत्यधिक मात्रामें वृद्धि होती है, फिर तत्त्वका साक्षात्कार होता है और उससे मुक्ति हो जाती है। यह विषय श्रीमद्भागवतमें विस्तारके साथ वर्णित है।'

अब प्रश्न होता है कि भगवान्के सभी नाम मिलकर ऐसी शक्ति रखते हैं कि अलग-अलग एक-एक नाममें भी यही शक्ति है ? यदि अलग-अलग नामोंमें शक्ति मानी जाय तो क्या कुछ ही ऐसे नाम हैं, जो अलग-अलग ऐसी शक्ति रखते हैं या सभी नामोंमें पृथक्-पृथक् यही शक्ति है ? यदि सभी नामोंमें शक्ति है तो भगवान्के हजारों नामोंमेंसे एक-न-एक नाम सभी अपने जीवनमें सुन लेते या उच्चारण कर लेते होंगे, उन सबके पाप नष्ट हो जानेसे नरककी सृष्टि ही व्यर्थ होगी ? इसके अलावा, सभी नामोंमें बराबर ही सामर्थ्य है तो एकसे ही पुरुषार्थकी सिद्धि हो जानेके कारण अन्य नाम व्यर्थ ही हैं तथा सब नामोंमें समान शक्ति माननेपर यह दोष आता है कि एक ही रामनामको हजार नामोंके बराबर कैसे बताया जा सकता है ? क्या एक दीपकमें जितना प्रकाश होगा, एक हजार दीपकमें भी उतना ही होगा ?

तदुत्तरकालभाविना मृगासक्तिरूपेण कर्मणा निकृष्ट-देहारम्भः; अथवा मृगत्वमपि तज्जातिस्मरण-वैराग्यभूतदयादिगुणोपेतत्वान्मोक्षानुकूलमेवेति न तदारम्भकस्य कर्मणो निवृत्तौ प्रयतते भक्तिः । जयविजययोश्च वैकुण्ठवासिनोरपि ब्रह्मविदवमानादधःपतनम् । ब्रह्मविदवमानजनितं हि दुरितं दुरत्ययं भगवदुपासनेनापि भगवद्भक्तावमानजनितं च । प्रपञ्चितं चैतत्तृतीयस्कन्धे ।

'भगवान्‌के सभी नामोंमेंसे प्रत्येकका ही ऐसा सामर्थ्य है। इससे नरककी सृष्टि निरर्थक नहीं होगी; क्योंकि प्राचीन पापके किसी प्रकार दग्ध हो जानेपर भी उसके बाद होनेवाले पापोंसे और महात्माओंके अनादरसे नरकमें गिरना भी सम्भव है। [यदि कहें, कीर्तनकी आवृत्ति कर लेनेसे कोई भी नरकमें नहीं गिरेगा; अतः नरकसृष्टि व्यर्थ ही है, तो यह भी ठीक नहीं; क्योंकि]—सबके द्वारा कीर्तनकी आवृत्ति ही होगी—ऐसा नियम नहीं है। अतएव जिनपर भगवान् ऋषभदेवका अनुग्रह भी हो चुका था, उन राजा भरतको भी अपना प्रत्यक्ष अनुभव विघ्नसे आवृत हो जानेके कारण तथा विक्षेपोंद्वारा भगवान्‌की उपासना उच्छिन्न हो जानेसे उसके बाद होनेवाले मृगासक्तिरूप कर्मके द्वारा निकृष्ट मृगदेहकी प्राप्ति हुई। अथवा उनकी मृगयोनि भी पूर्व-जन्मकी स्मृति, वैराग्य और जीवदया आदि गुणोंसे युक्त होनेके कारण मोक्षके अनुकूल ही थी, इसलिये उसके आरम्भक कर्मकी निवृत्तिके निमित्त भक्तिने प्रयत्न ही नहीं किया। महात्माओंका अपमान करनेसे भी नरककी प्राप्ति होती है। वैकुण्ठधाममें निवास करनेवाले जय और विजयका ब्रह्मज्ञानी सनकादिकोंके अपमानसे अधःपतन हुआ था। ब्रह्मज्ञानियों तथा भगवद्भक्तोंके अपमानसे होनेवाले पापसे तो भगवान्‌की उपासनाद्वारा भी उद्धार पाना कठिन है। श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धमें इसका विस्तार-पूर्वक वर्णन है।'

''और जो यह कहा था कि 'एक नामसे ही पुरुषार्थ-सिद्धि हो जानेसे अन्य नाम निरर्थक हो जायँगे' यह भी ठीक नहीं; क्योंकि विभिन्न पुरुषोंके द्वारा भिन्न-भिन्न नामोंका उपयोग हो जानेसे सभी नामोंकी पुरुषार्थ-साधनता सिद्ध हो जायगी। फिर जो यह कहा था कि 'समान महिमावाले नामोंका समाहार हो जानेसे एक राम-नामकी हजार दूसरे नामोंके समान महिमा नहीं हो सकती; जैसे एक दीपका प्रकाश हजार दीपोंके प्रकाशके बराबर नहीं हो सकता;' सो यह कथन भी परिच्छिन्न (परिमित) प्रभाववाले दीपक आदिमें ही संघटित हो सकता है; निरङ्कुश (अपरिमित) महिमावाले भगवन्नामोंमें नहीं। चिन्तामणिका समूह हो या एक चिन्तामणि, कल्पवृक्षोंका वन हो या एक कल्पवृक्ष तथा कामधेनुओंका समुदाय हो या एक कामधेनु, इनके प्रभावमें कोई अन्तर नहीं होता। एकसे भी सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी; अतः भगवान्‌का एक नाम भी हजारों नामोंका कार्य पूर्ण करनेके कारण हजारके समान कहा जा सकता है वास्तवमें सभी नामोंमें अनन्त प्रभाव है।''

कुछ लोग कहते हैं—'जैसे दवाका नाम लेने मात्र रोग दूर नहीं होता, 'चीनी' कहनेसे ही मुँह मीठा न होता, 'तलवार'का उच्चारण करनेसे ही जीभ नहीं क जाती, उसी प्रकार भगवान्‌का नाम लेनेमात्रसे पापक्ष नहीं हो सकता। फिर नामकीर्तन क्यों किया जाय इसके उत्तरमें कई बातें कही जा सकती हैं। पहली ब यह कि दवा-चीनी आदि जड वस्तुका नाम है; अतः न लेनेसे उसकी उपस्थिति नहीं होती; परंतु चेतनका न लेनेसे उसकी उपस्थिति देखी जाती है। जैसे लो 'देवदत्त !' कहकर पुकारनेसे देवदत्त नामवाला म उपस्थित होता है और आवश्यक कार्य पूर्ण करता है; उ प्रकार भगवान्‌का नाम लेनेसे भगवान्‌की उपस्थिति जानेके कारण पापक्षयादि कार्योंकी सिद्धि हो जाती

इसके अतिरिक्त, देवदत्त तो अन्यत्र एक स्थानमें रहता है। अतः पुकारने या बुलानेसे आता है, परंतु भगवान् तो सर्वत्र हैं और सर्वदा उपस्थित रहते हैं; 'नाम लेनेसे उनकी कृपादृष्टि मात्र होती है। यदि कहें, 'क्या भगवान् विषम दृष्टि रखनेवाले हैं, जो नाम लेनेवालोंपर ही कृपादृष्टि करते हैं, औरोंपर नहीं?' तो इसका उत्तर यह है कि जैसे कल्पवृक्ष सबपर समान रूपसे छाया करता है, समान रूपसे सबकी कामनाएँ पूर्ण करता है; तो भी जो उसके पास जाता है, वही उससे लाभ उठाता है। इसी प्रकार भगवान्‌की तो सबपर समानरूपसे ही कृपा है, किंतु जो नामकीर्तन आदिके द्वारा भगवान्‌का सहारा लेता है, वही उनकी कृपाका अनुभव करता है। यदि सामने रसका समुद्र ही लहराता हो और कोई संतप्त पुरुष मोहवश उसमें गोता न लगावे तो समुद्रका क्या दोष है?

दूसरी बात यह है कि रोग दूर करनेमें दवा ही कारण है, दवाका नाम नहीं; परंतु पापक्षयमें भगवान्‌का नाम भी मुख्य कारण है। यदि कहें 'नाम तो केवल शब्दमात्र है; उससे क्या कार्य सिद्ध होगा?' तो ठीक नहीं; क्योंकि गाली और निन्दा शब्दद्वारा ही होती है, जिससे प्राणोंके लेने-देनेकी नौबत आ जाती है और स्तुति-प्रशंसा भी शब्दोंद्वारा ही की जाती है, जिसे सुनकर कितने ही अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं। काव्य-रचना भी शब्दोंद्वारा ही होती है, जिससे नौ प्रकारके रसोंका आस्वादन होता है। दुर्जनोंकी वाणीसे हृदय व्यथित हो जाता है। प्रियतमके शब्दोंको सुनकर मानसमें आनन्दकी लहरें उठने लगती हैं। ऐसा क्यों होता है? क्या इससे शब्दोंमें प्रभावोत्पादक शक्तिकी सिद्धि नहीं होती है? विद्वानोंने शब्दोंमें अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना शक्ति ढूँढ़ निकाली है। इन शक्तियोंसे एक ही शब्दके अनेक चमत्कारजनक अर्थ प्रकट होते हैं। तान्त्रिक दृष्टिके अनुसार प्रत्येक शब्द और वर्ण चैतन्य शक्तिस्वरूप ही हैं। सभी भगवतीके स्वरूप हैं। परमात्माका सृष्टिविषयक संकल्प 'एकोऽहं बहु स्याम्' इस वेदवाणीद्वारा ही व्यक्त हुआ और सृष्टि सम्पादित हो गयी। अतः अनेक विद्वान् शब्दसे ही जगत्‌की सृष्टि मानते हैं। ऋषियोंके शाप और वरदान वाणीद्वारा ही प्रकट होकर तत्काल कार्यसाधक होते देखे गये हैं; अतः शब्दसे क्या नहीं हो सकता। जब शब्दसामान्यमें इतनी शक्ति है, तब भगवन्नामकी अमोघ शक्तिके विषयमें क्या हो सकता है? अतः भगवन्नामसे पापक्षयादिके साथ समस्त पुरुषार्थकी सिद्धि होती है, यह मान कोई आपत्ति नहीं है। शास्त्र तो इसका समर्थन ही हैं।

कुछ लोगोंका कहना है कि 'श्रद्धा या मनकी एकाग्रताके बिना कीर्तन हो ही नहीं सकता। यदि होता है निष्फल। एकाग्रता और श्रद्धा सबके लिये सुलभ न अतः कीर्तन सर्वोपयोगी नहीं हो सकता।' ऐसे लोगोंसे यह नम्र निवेदन है कि जब शास्त्र-पुराण कहते हैं 'अवहेलनापूर्वक भगवन्नाम लेनेसे भी सारे पाप धुल जाते हैं' तब आप किस आधारपर यह कहनेका साहस करते हैं कि श्रद्धाके बिना लिये गये नामसे कोई फल ही नहीं होता? पुराणका वचन है—

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥

(श्रीमद्भागवत ६।२।१४)

'संकेत, परिहास, स्तोभ या अवहेलनापूर्वक किया हुआ भगवन्नामका उच्चारण भी समस्त पापोंका नाशक होता है, यह महापुरुषोंने अनुभव किया है।'

गोस्वामी तुलसीदासजी भी कहते हैं—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

लोकमें भी अनिच्छा या अश्रद्धासे किये गये कार्यकी भी सफलता देखी गयी है। आप अनिच्छा या अश्रद्धासे भी जब भोजन करने बैठते हैं और भोजन करने लगते हैं तो मनमें दूसरी बातें सोचते रहनेपर भी आपके आगेकी रसोई समाप्त होती जाती है और उस भोजनसे भी आपकी भूख मिटती ही है। इसी प्रकार श्रद्धा और एकाग्रताके अभावमें भी जप और कीर्तन हो सकते हैं और उनका फल भी मिल सकता है। शास्त्र तो डंकेकी चोट कहता है—

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥

(ना० पूर्व० ११।१००)

'अनिच्छा या एकाग्रता तो दूर रहे, दुष्ट चित्तवाले

लोगोंद्वारा दुर्भावनापूर्वक स्मरण किये गये हरिनामसे भी समस्त पापोंका हरण हो जाता है । अनिच्छासे भी कोई आगको छू ले तो वह जले बिना नहीं रह सकता ।' वस्तुगुण प्रकट होता ही है, वह इच्छा या अनिच्छाको नहीं देखता । भगवन्नाम वह वस्तु है, जो उच्चरित होने-पर पापको जलाये बिना रह नहीं सकती । यह दूसरी बात है कि श्रद्धा और एकाग्रताका कीर्तन और जप आदिमें बहुत बड़ा उपयोग है ।

'मानस'में भगवन्नाम

(लेखक—श्रीराजेन्द्रसिंहजी राजावत)

मानस ही क्या, समस्त धर्म-ग्रन्थ भगवन्नामकी पावन महिमासे भरे पड़े हैं; फिर भी उन लीलामयके मधुर नाम तथा मनमोहिनी लीलाओंका पार नहीं । जिस भगवन्नामके विषयमें वर्णन करनेमें जहाँ शारदा, शेष, शिव, विधाता, आगम, निगम तथा पुराणादिने भी हार मान ली—सब 'नेति' 'नेति' कहकर परास्त हो गये, वहाँ मुझ मन्दबुद्धिमें इतनी सामर्थ्य कहाँ कि भगवन्नामके विषयमें किंचिन्मात्र भी लिख सकूँ । 'मानस'की ही एक अर्द्धालीने प्रेरित किया—

'सब जानत प्रभु प्रभुता सोई । तदपि कहे बिनु रहा न कोई ॥'

बस, इसी सिद्धान्तको लेकर यह असफल प्रयास कर बैठा । मेरी ओरसे तो इस लेखमें कुछ भी नहीं है; जो भी है सो सब 'मानस'का । मेरी तो, बस, त्रुटियाँ मात्र इसमें हैं ।

श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामीजीने भगवन्नामके विषयमें जो वर्णन किया है वह विशद है तथा वेद-पुराणोंका सार है और उस सारका भी सार मात्र है । 'भगवन्नाम' स्वयं श्री-गोस्वामीजीके शब्दोंमें—

'भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक ।'

वह विश्वविदित गुण कौन-सा है ? जिसके बिना कविता ही गुणरहित (निस्सार) रह जाती है ? उस जगप्रसिद्ध अद्वितीय अनुपम गुणके विषयमें आगे लिखते हैं—

'एहि महँ रघुपति नाम उदारा ।'

प्रभु रघुपति (भगवान् राम-) के नाममें ऐसी क्या विशेषता है, जिसे विश्वविदितकी संज्ञा दी ? क्या अन्य भगवन्नामोंमें इतनी विशेषता नहीं अथवा अन्य नामोंका वर्णन मानसमें नहीं हुआ ? आदि प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है । उक्त शंकाओंके समाधानमें इसी चौपाईमें उक्त भगवन्नामको पञ्च अनुपम गुणोंसे विभूषित करके यह सिद्ध कर दिया गया है कि भगवन्नाम अद्वितीय तथा सबका सार मात्र है—

एहि महँ रघुपति नाम उदारा ।
अति पावन पुरान श्रुति सारा ॥
मंगल भवन अमंगल हारी
उमा सहित जेहि जपत पुरारी ॥

आइये, अब इन पाँचों अनुपम गुणोंका विवेचन करके देखें कि तुलसीदासजीने अपने कथनको कहाँतक निभाया है तथा कैसे सिद्ध किया है ?

सर्वप्रथम गुण 'उदार' है । यह भगवन्नाम उदार है—अन्य नामोंकी तुलनामें सर्वश्रेष्ठ है । इस विषयमें तुलसी-दासजीने एक लंबी सूची प्रस्तुत की है, जिसके ध्यानपूर्वक अध्ययनसे स्वतः ही सिद्ध हो जाता है कि भगवन्नाम कितना उदार है । गोस्वामीजी तो यहाँतक कह गये हैं कि अन्य नामोंसे सर्वाधिक पाप क्षीण करनेकी शक्ति इसमें निहित है । अतः—

'राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥'

—की पुष्टि स्वयं श्रीमुखसे ही 'तथास्तु' कहलाकर करायी।

यही नहीं, यहाँतक वर्णन कर गये कि स्वयं भगवान् रामसे ही नामको उदार (बड़ा) बता दिया और इसका वर्णन बड़े ही पाण्डित्य-पूर्ण ढंगसे मानसमें किया है । आइये, इस उदारताका तुलनात्मक अध्ययन अपने भी करें—उन्हींके शब्दोंमें—

राम	नाम
(१) राम भगत हित नर तनु धारी । सहि संकट किए साधु सुखारी ॥	(१) नामु सप्रेम जपत अनयासा । भगत होहिं मुद मंगल बासा ॥
(२) राम एक तापस तिय तारी ।	(२) नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥
(३) रिषि हित राम सुकेतुसुता की । सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी ॥	(३) सहित दोष दुख दास दुरासा । दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा ॥
(४) भंजेउ राम आपु भव चापू ।	(४) भव भय भंजन नाम प्रतापू ॥
(५) दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन ।	(५) जन मन अमित नाम किए पावन ॥
(६) निसिचर निकर दले रघुनंदन ।	(६) नामु सकल कलि कलुष निकंदन ॥
(७) सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ ।	(७) नाम उधारे अमित खल, बेद बिदित गुन गाथ ॥
(८) राम सुकंठ बिभीषन दोऊ । राखे सरन जान सबु कोऊ ॥	(८) नाम गरीब अनेक नेवाजे । लोक बेद बर बिरिद बिराजे ॥
(९) राम भालु कपि कटकु बटोरा । सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा ॥	(९) नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं । करहु बिचारु सुजन मन माहीं ॥
(१०) राम सकुल रन रावनु मारा । सीय सहित निज पुर पगु धारा ॥	(१०) सेवक सुमिरत नामु सप्रीती । बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती ॥
अतः अन्तमें (११) 'ब्रह्म राम तें............,	(११) ....'नामु बड़'

उक्त तुलनात्मक अध्ययनसे स्वतः ही सिद्ध हो जाता है के रामसे ही नहीं, ब्रह्म और राम दोनोंसे ही नाम बड़ा (उदार) है । यह निर्विवाद है ।

द्वितीय गुण 'अति पावन' है । उदार होनेके साथ-ही-साथ अति पवित्रता भी आवश्यक है । इस विषयमें गोस्वामीजी लिखते हैं—

'सुमिरि पवन सुत पावन नामू ।'

× × × ×

'तीरथ अमित कोटि सम पावन ।
नाम अखिल अघ पूग नसावन ॥'

यही नहीं, इसके साथ ही यह विशेषता भी है कि सम्पर्कमें आनेवालेको भगवन्नाम 'अति पावन' बना देता है ।

स्वपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात ।
रामु कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात ॥

× × × ×

'पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना ।'

× × × ×

आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे ।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते ॥

× × × ×

'रघुपति राघव राजाराम । पतित पावन सीताराम ॥'

तृतीय गुण 'पुराण-श्रुति-सार' है । उदार भी हो और बड़प्पनके साथ-साथ पवित्रता भी; पर यदि वेद-पुराण, श्रुति आदिसे निन्दित है तो सारी विशेषताएँ व्यर्थ; जिसे वेद-शास्त्र, पुराणोंका समर्थन प्राप्त है, वही श्रेष्ठ है । अतः तीसरी अनुपम विशेषता भगवन्नामकी यही है कि यह श्रुति-पुराणोंसे समर्थन ही प्राप्त नहीं, अपितु उनका सार मात्र ही है । सार कहते हैं—तत्त्वको । अर्थात् सार, तत्त्व, प्राण, आत्मा तथा बीज—ये एक ही अर्थके द्योतक हैं । अतः गोस्वामीजी लिखते हैं—

'बिधि हरि हर मय बेद प्रान सो ।'

× × × ×

'बेद तत्त्व नृप तव सुत चारी ।'

'सार' है वही 'बीज' है और बीजसे ही सबकी उत्पत्ति होती है । अतः नाम (राम-) से ही सबकी उत्पत्ति है । इस बीजके आशयको गोस्वामीजी आगे स्पष्ट करते हैं । जहाँ नामकी वन्दना की है—

'बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिम कर को॥'

अर्थात् कृसानु, भानु तथा हिमकरका भी सार (बीज) 'राम नाम' ही है। 'राम' में 'र्' 'अ्' 'म्' क्रमशः अग्नि, सूर्य तथा चन्द्रके बीजाक्षर हैं। महारामायणमतानुसार— '**रकारो अनलबीजम्', 'अकारो भानुबीजम्'** तथा '**मकारश्चन्द्र-बीजश्च'** से यही सिद्ध होता है। इसी कारण इस भगवन्नाममें त्रिताप-हरण-शक्ति निहित है। 'विधि-हरि-हर-मय' से भी यही बीज (सार) का तात्पर्य निकलता है।

विधि, हरि, हरकी उत्पत्ति राम-नामसे ही है। महारामायणमें लिखा है—

रकाराज्जायते ब्रह्मा रकाराज्जायते हरिः।
रकाराज्जायते शंभू रकारात् सर्वशक्तयः॥

विधि, हरि, हरकी त्रिगुणात्मक सृष्टि है। ये त्रिदेव (सत्, रज, तम) त्रिगुणके रूप हैं। तीनों गुणोंकी उत्पत्ति इन्हीं त्रिदेवोंसे मानते हैं और इनकी उत्पत्ति राम-नामसे। अतः त्रिगुणोंका बीज (सार) भी राम-नाम ही है—यही सिद्ध होता है।

सत्, चित्, आनन्दका वाचक भी क्रमशः 'र' चित् का, 'अ'कार सत्का तथा 'म'कार आनन्दका द्योतक है। महा-रामायणमतानुसार—

चिद्वाचको रकारः स्यात् सद्वाच्योऽकार उच्यते।
मकारानन्दवाची स्यात् सच्चिदानन्दमव्ययम्॥

यही नहीं भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्यका भी सार राम-नाम ही है—र् अ् म्—क्रमशः वैराग्य, ज्ञान तथा भक्तिके ही बीज (सार) हैं। महारामायणमें इसे भी सिद्ध किया गया है—

रकारो हेतुर्वैराग्यं परमं यच्च कथ्यते।
अकारो ज्ञानहेतुश्च मकारो भक्तिहेतुकम्॥

अतः भक्ति, ज्ञान, वैराग्यका भी हेतु (सार) राम-नाम ही है—यही सिद्ध होता है। उक्त सारे प्रमाणोंको दृष्टिगत रखते हुए ही गोस्वामीजीने भगवन्नामको 'श्रुति-पुराण-सार' के विशेषणसे युक्त किया है। जिस प्रकार शरीरमेंसे सार (प्राण) निकाल लिये जायँ तो क्या बचता है—मिट्टी (निस्सार)। उसी प्रकार वेद, श्रुति, पुराणोंमेंसे साररूप भगवन्नाम निकाल लें तो कुछ भी नहीं बचता। अतः श्रुति-पुराणमें सार मात्र भगवन्नाम है—यह स्वतः ही सिद्ध हो जाता है।

चतुर्थ गुण 'मङ्गलभवन' है। जो अति 'उदार' है, 'अति पावन' तथा 'श्रुतिपुरान-सार' है। वह अमङ्गलका कर्ता हो ही कैसे सकता है? फिर भी गोस्वामीजी इस विषयमें चुप नहीं रहते; लिखते हैं—

'भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥'

× × ×

'मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की॥'

× × × ×

'जग मंगल गुन ग्राम राम के'

जब प्राणीपर विपत्ति आती है, दुःख पड़ता है या अमङ्गल आता हुआ दिखायी देता है तो स्वतः ही मुखसे 'हे राम!' या 'हाय राम!' यों राम-रामकी करुणध्वनि निकल जाती है; आत्मा अनायास ही उस मङ्गलकर्ता पावन मधुर नामको पुकार उठती है और फिर उस प्राणीका मङ्गल होते देर नहीं लगती—

'मङ्गलं तदभूत्सर्वं मन्मन्त्रोच्चारणाच्छुभात्।'

(पद्मपुराण)

पञ्चम गुण 'अमङ्गलहारी' है। प्रत्यक्षको प्रमाणकी आवश्यकता नहीं होती। भगवन्नामका अमङ्गलहारी होना उक्त प्रमाणोंसे स्वतः ही सिद्ध हो जाता है। भगवन्नाम-से तो बड़े-बड़े अमङ्गल ही क्या, भाग्यमें लिखे हुए अनिष्ट-कारी योग भी मिट जाते हैं—

'मेटत कठिन कुअंक भाल के।'
'भागत अभागु, अनुरागत बिरागु भागु।'

× × ×

तथा

'आई मीचु मिटति जपत रामनाम को॥'

(कवि० उ० ७५)

'तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम्॥'

(रामरक्षास्तोत्र)

जिस भगवन्नाममें मृत्यु तथा यमदूतोंतकको भगा देनेकी सामर्थ्य है, वह अमङ्गलहारी क्यों नहीं होगा? जितने भी अमङ्गल हैं, वह प्राणी अपने पूर्वकृत पापोंके फलस्वरूप प्राप्त करता है और भगवन्नाममें पापनाशनकी अद्भुत शक्ति निहित है—

तुलसी अघ सब दूरि गे 'रा' अच्छर के लेत।
फिर नेरे आवत नहीं 'म' अच्छर कहि देत॥

पाप और तापरूपी अमङ्गलोंका तो नाश हो ही जाता है; साथ-ही-साथ लोक तथा परलोक भी सुधर जाता है। कितनी अद्भुत महिमा है—

'समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के ॥'

वास्तवमें बिना नामजप पूर्वकृत पापोंका क्षय नहीं हो सकता। नामस्मरण किया और पाप-तापोंसे मुक्ति मिली—तुलसीकी ही लेखनीसे—

'राम राम राम जीय जौलौं तू न जपिहैं।
तौलौं तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपिहैं ॥'
(वि० प० ६८)

'ऐसेऊ कराल कलि कालमें कृपालु! तेरे,
नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए ॥
(कवि० उ० ७९)

अमङ्गलोंसे भरे हुए इस कलिकालमें जहाँ यज्ञ, तप, पूजा तथा योगादि सब क्रियाएँ सफल नहीं हो पातीं, वहाँ कलियुगके अमङ्गलोंको नष्ट करनेमें भगवन्नाम अमोघास्त्र है।

'राम नाम नर केसरी कनककसिपु कलिकाल।'

जिस प्रकार हिरण्यकशिपु सबके लिये अवध्य था। उसे नष्ट करनेमें एकमात्र नृसिंह भगवान् ही सफल हुए। ठीक उसी प्रकार कराल कलियुगमें अन्य क्रियाएँ कुण्ठित हो जाती हैं, पर नाम ही एकमात्र ऐसा साधन है जो कभी भी कुण्ठित नहीं होता।

इस बातकी पुष्टि श्रीतुलसीदासजीने कई अनुपम तर्कोंद्वारा की है। कहीं भगवन्नामको कल्पवृक्षकी उपमा देकर सिद्ध किया है—

'नाम राम को कलपतरु कलि कल्यान निवास।'

× × ×

'नाम कामतरु काल कराला।'

तो कहीं सब युगोंमें भक्ति मुक्ति प्राप्त करनेकी प्रणालीको भिन्न-भिन्न कर समझाते हुए बताया है—

ध्यान प्रथम जुग मख बिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ॥'

× × ×

'कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।'

× × ×

जुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी ॥
। बिबिध जग्य नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं ॥
द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा

पर कलियुगके लिये तो ये उपाय निष्फल हैं। यहाँ केवलमात्र एक ही उपाय काम देता है जो कि इस अमङ्गलरूपी भवसिन्धुको पार करनेका एकमात्र आधार है—

'कलिजुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा ॥

× × ×

'जासु नाम सुमिरत इकबारा। उतरहिं नर भव सिंधु अपारा ॥'

× × ×

'नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू ॥'

× × ×

'सो भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं ॥'

श्रीतुलसीदासजी तो यहाँतक कह गये हैं कि कलियुगमें ही नहीं, चारों युगोंमें, तीनों कालोंमें तथा तीनों लोकोंमें ही भगवन्नाम अमङ्गलको हरण करनेवाला सिद्ध हुआ है।

'चहुँ जुग तीन काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका ॥'

× × ×

'चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ।'

चारों युगोंके प्रमाण भी गोस्वामीजी अपनी लेखनीसे दे गये हैं तथा अन्य ग्रन्थोंमें भी कम नहीं है। आइये देखिये—पहले सत्ययुगमें—

'नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू ॥'

× × ×

'ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरिनाऊँ।'

× × ×

'नारद जानेउ नाम प्रतापू।'

त्रेताके नाम-स्मरणमें मानस ही भरा पड़ा है। असंख्य उदाहरण हैं—हनुमान्‌जी—

'सुमिरि पवनसुत पावन नामू।'

गृध्रराज जटायु, जिनके वचन हैं—

'जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होहिं श्रुति गावा ॥'

इसी पावन अमङ्गलहारी नामके प्रतापसे श्रीरामदर्शन सुलभ हो सके, यही नहीं—

'तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम।'

यह सौभाग्य तो स्वयं दशरथको भी प्राप्त नहीं हो सका था। इसीलिये इस द्विजामिषभोगी पक्षीको भी—

'गति दीन्ही जो जाँचत जोगी।'

और शबरी भी तो त्रेतामें ही हुई थी। उस महाभागाके विषयमें तुलसी लिखते हैं—

'जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि अस नारि।'

द्वापरमें तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही नाम-जपका समर्थन करते हुए अर्जुनको उपदेश देते हैं—

नामस्मरणमात्रेण प्राणान्मुञ्चन्ति ये नराः।
फलं तेषां न पश्यामि भजामि तांश्च पार्थिव॥
तस्मान्नामानि कौन्तेय भजस्व दृढचेतसा।
राम राम सदा युक्तास्ते मे प्रियतमाः सदा॥

तुलसीकी लेखनी ही द्वापरके विषयमें कहाँ चुप है—

'नामप्रताप बड़े कुसमाज,
बजाई रही पति पाण्डुवधूकी।'
(कवि० उ० ८९)

रही बात कलियुगकी, सो इस कराल कलियुगमें तो सिवा भगवन्नामके दूसरा कोई साधन ही नहीं है, जो अमङ्गलोंका नाश कर सके।

'एहि कलि काल न साधन दूजा।'
× × ×
यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार।
श्रीरघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार॥
—आदि।

इस विषयमें ऊपर भी लिखा जा चुका है कि भगवन्नाममें जो अमङ्गलनाशक शक्ति है, वह अन्य किसी भी क्रियामें नहीं। तिसपर कलियुगमें यह विशेषरूपसे फल देता है।

'कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ।'

यह नाम सतत मङ्गल ही करनेवाला है, अमङ्गल तो करता ही नहीं; चाहे इसे उलटा जपो चाहे सीधा, सर्वथा ही मङ्गलदायक है। यह विशेषता केवल इसी नाममें निहित है कि उलटा जाप करनेसे भी अभिमत फलदाता सिद्ध होता है—

'उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीक भए ब्रह्म समाना॥'
'जान आदि कबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥'

धन्य है भगवन्नाम! जो अनुपम पञ्चगुणोंसे विभूषित तथा अन्यान्य असंख्य गुणोंसे शोभायमान है। अपने जापकोंको सदैव इच्छित फल देता है तथा स्वतः ही आनेवाले अमङ्गलोंका नाश करता रहता है।

यह नाम ऐसा 'अनुपम' अद्वितीय है, इसीलिये भगवान् आशुतोषने इसे ही अपने जप करनेके लिये चुना है—

'महामंत्र जेहि जपत महेसू।'
× × ×
'नाम प्रभाउ जान सिव नीको'
× × ×
'रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि।'
× × ×
'उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजन जगत सब सपना॥'
× × ×
'नाम प्रताप संभु अबिनासी।
साज अमंगल मंगल रासी॥'
'उमा सहित जेहि जपत पुरारी।'

भगवान् 'शिव' तथा माँ 'उमा'को माया तथा ब्रह्मस्वरूप माना है—यथा 'तुम्ह माया भगवान सिव;' माता उमाके लिये तो भक्तवर नारद कहते हैं—

'अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि।'

तथा—

'जग संभव पालन लय कारिनि।'
'भव भव बिभव पराभव कारिनि।
बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि॥'
—आदि।

जो पावन नाम सर्वोपरि शक्ति तथा ब्रह्मका भी वन्दनीय एवं जपनीय है, उसकी महिमा भला कौन कह सकता है? वह तो अलौकिक है तथा अकथनीय है। मानसकार भक्तराज प्रातःस्मरणीय गोस्वामीजीका यही उद्देश्य था कि इस सांसारिक भवाटवीमें भटके हुए प्राणियोंको इस भगवन्नामके माध्यमसे अनुपम प्रकाश मिले तथा भगवन्नाम-जप करके वे इस कराल कलिकालके कुकर्मोंसे बचकर उस सर्वगुणराशि अमृतमयकी सहज ही प्राप्ति कर सकें। मानसकी रचनाका मुख्य उद्देश्य ही मानसकारका यही था। उन्होंने अपने इस उद्देश्यकी, यत्र-तत्र प्रायः सभी स्थलोंपर (मानसमें), इंगित किया है एवं सारमात्र रामचरितमानसका

नाम ही बनाया है। उनकी आन्तर वाणीसे वास्तविक सत्यता स्वतः ही प्रकट हो जाती है। वे स्वयं ही स्पष्ट कह देते हैं कि—

'ब्रह्म राम तें नामु बड़ बरदायक बरदानि।'

जो निर्गुण (ब्रह्म) तथा सगुण (श्रीराम) से बड़ा है उसकी महिमाको कहना तो दूर, अनुमान लगाना भी दूभर है। इस स्वार्थी युगमें महात्मा श्रीतुलसीदासजीने जगत्के कल्याणके लिये प्रायः प्रत्येक धर्मावलम्बियोंको मानसके द्वारा एक बड़ा ही दिव्य संदेश दिया है, जो सांसारिक यात्राको तो सफल करता ही है, पारलौकिक यात्राके भी लिये स्वतः ही उपयुक्त साधन जुटा देता है। वह दिव्य संदेश है 'भगवन्नाम-जप'। भगवन्नामकी महिमा अपरिमित है—

'कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुन गाई॥

अतः प्रत्येक प्राणीका इसीमें सहज भला है कि वह 'मानस'का अनुपम दिव्य संदेश अपने जीवनमें उतार ले—

'रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि।
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥'

अर्थात् मनसा (सुमिरिय), वाचा (गाइय) तथा कर्मणा (सुनिय)। सर्वदा यही पावन भगवन्नाम मननीय, कथनीय तथा श्रवणयोग्य है। यही है 'मानस'का सार तथा मानसकारका उद्देश्य।

'भगवान् राम तथा उनके पावन नामकी जय।'

योगदर्शनमें नाम-महिमाका गान

(लेखक—श्रीहरप्रसादजी अग्रवाल, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

भगवन्नाम-महिमाका गान करनेमें दर्शनशास्त्र किसी भी भक्तिमार्गके ग्रन्थसे पीछे नहीं रहे हैं। इसका परिचय हमको पातञ्जल-योगदर्शनमें पर्याप्त मात्रामें मिलता है। यही नहीं, बल्कि उक्त दर्शनमें भगवन्नामके जपको बहुत बड़ा महत्त्व दिया है। समाधिपादके २८वें सूत्रमें **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'**में बतलाया गया है कि उसका (ईश्वरका) जप उसके अर्थकी भावनाके साथ करे। २९वें सूत्रमें उसका फल बतलाया गया है कि ऐसा करनेसे अन्तरायोंका अभाव होता है और आत्माका दर्शन होता है। इसके पहले २३वें सूत्रमें यह बतलाया गया है कि 'ईश्वरप्रणिधान'से समाधिका लाभ होता है। २४, २५, २६वें सूत्रमें ईश्वरके स्वरूपका निरूपण किया और बतलाया गया है कि—ईश्वर किसे कहते हैं। २७वें सूत्रमें बतलाया कि उस ईश्वरका वाचक—(नाम) 'प्रणव' है। इससे सिद्ध होता है कि २८वें सूत्रमें प्रणवका जप उसके अर्थ ईश्वरकी भावनाके साथ करनेके लिये कहा गया है और साथ ही इससे यह भी सिद्ध होता है कि 'ईश्वरप्रणिधान' और **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** एक ही बात है।

अब यह देखना है कि **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'**की क्रियामें क्या करना होगा। स्पष्ट है कि ॐका जप और ईश्वर,—जिसका स्वरूप, २४, २५, २६वें सूत्रमें दिया है, उसकी भावना करनी होगी। २४वें सूत्रमें ईश्वरको क्लेश, कर्म, कर्मफल और उसकी वासनाओंसे अछूता बतलाया है। २५वें सूत्रमें उसको सर्वज्ञताका असीम भण्डार बतलाया और २६वेंमें बतलाया कि वह सदा रहनेवाला गुरु है। अर्थात् उसका किसी भी कालमें बाध नहीं होता। अब इसका यह आशय हुआ कि ॐका जप करते-करते ऊपर लिखे ईश्वरके स्वरूपका ध्यान करना आवश्यक है। ऐसा करनेसे व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थित्व—ये ९ अन्तराय, जो चित्तको विक्षिप्त करनेवाले हैं, उनका अभाव होकर आत्माका साक्षात्कार हो जाता है। किंतु यहाँ यह समझ लेना बहुत आवश्यक है कि यह साधन उसी साधकको बतलाया गया है कि जिसका चित्त एक स्थानपर स्थिर रहने योग्य हो गया हो। जिसका चित्त अभी इस योग्य न हुआ हो, उसके लिये पहले अविद्यादि क्लेशोंको ढीला करनेका आदेश साधनपादके पहले सूत्रमें दिया गया है और कहा गया है कि तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधानसे चित्त समाधिके योग्य होता है तथा अविद्या आदि क्लेश हलके पड़ जाते हैं। यहाँपर भी नाम-जपकी महिमा बतलायी गयी है; क्योंकि स्वाध्यायका अर्थ प्रणव, गायत्री आदिका जप तथा सद्ग्रन्थोंका पठन-पाठन है। इसलिये यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ उच्च साधकको ध्यानके साथ नाम-जप करना चाहिये, वहाँ मध्यम साधकको ध्यानके बिना भगवन्नाम-जप करना उपयोगी है। नवीन साधकको अष्टाङ्गयोगमें यम-नियमके पालन करनेका आदेश दिया गया है। वहाँ नियममें

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान आते हैं, अर्थात् नवीन साधकके लिये भी भगवन्नाम-जप अनिवार्य है। जो जिस योग्यताका साधक है, उसको उसी प्रकारसे भगवन्नाम-जप करनेका आदेश दिया गया है। इस प्रकार भगवन्नाम-जप सभी श्रेणीके साधकोंके लिये परम उपयोगी तथा सभी अन्तरायोंका नाशक और आत्माका दर्शन करानेवाला है। इससे अधिक और क्या लाभ होगा कि अन्तरायोंका अर्थात् चित्तके विक्षेपोंका अभाव हो जाय और आत्माका दर्शन हो। स्वरूप-स्थिति ही योगदर्शनका चरम लक्ष्य है। वह भगवन्नाम-जप करते-करते ही प्राप्त हो जाती है। यही नहीं, साधन-पादके ४४ वें सूत्रमें बतलाया गया है कि स्वाध्यायसे 'इष्ट-देवता'की प्राप्ति होती है और ४५वेंमें बतलाया है कि ईश्वर-प्रणिधानसे 'समाधि लाभ' होता है। अर्थात् ध्यानके बिना जप करनेसे अपने इष्ट देवतासे मिलन होता है और ध्यान-सहित नामजपसे समाधिका लाभ होता है। इससे अधिक भगवन्नामकी क्या महिमा हो सकती है? इसलिये सिद्ध हुआ कि ईश्वरके नामका जप सर्वोपरि साधन है और उसकी महिमा योग आदि दर्शनोंमें भी मुक्तकण्ठसे गायी गयी है।

भगवन्नामकी महत्ता

(लेखक—डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, व्याकरण-साहित्याचार्य, नेपाल)

इस नामरूपात्मक सम्पूर्ण जगत्में नाम तथा रूपमें बौद्धिक तादात्म्य होनेपर भी 'रूप'से 'नाम'का ही अधिक महत्त्व है। प्रत्येक सृष्टिके आरम्भमें परमात्मासे वेदोंके द्वारा नामोंका उपदेश पाकर ही **नलिनोद्भव प्रजापति** धाता **'यथापूर्वमकल्पयत्'**—इसके अनुसार रूपोंका सर्जन करते हैं। इसलिये नाम नित्य एवं अविनाशी माने जाते हैं और रूप परिवर्तनशील। व्यावहारिक जगत्में भी देखा जाता है कि एक ही स्थानपर अनेक प्रासादोंके उद्भव और विनाश होते हैं; परंतु उन सबोंके लिये व्यवहृत होनेवाला 'प्रासाद' नाम सदासे चला आ रहा है और भविष्यमें भी चलता रहेगा। अतएव धर्मसंस्थापनके लिये युग-युगमें अवतीर्ण होनेवाले परमात्माके 'राम' 'कृष्ण' आदि नाम अनादिकालसे चले आ रहे हैं और अनन्तकालतक चलते रहेंगे। परंतु उनके तत्तद्रूपोंके व्यावहारिक जगत्में आविर्भाव और तिरोभाव होते हैं। यद्यपि पारमार्थिक दृष्टिसे राम, कृष्ण आदि नाम तथा उनके रूप दोनों ही नित्य ही हैं, तो भी लीला-दृष्टिसे रूपोंका आविर्भाव-तिरोभाव देखा ही जाता है, जैसे कि स्वयं भगवान्ने गीतामें कहा है—**'तदात्मानं सृजाम्यहम्' 'सम्भवामि युगे युगे'** (अ० ४। ७-८) इत्यादि। यहाँ भगवान् श्रीकृष्णके आत्मसर्जन तथा आत्मोद्भवकी बात स्पष्ट ही है, वहीं युगे-युगेके द्वारा यह भी सुस्पष्ट हो जाता है कि 'राम, कृष्ण' आदि नामके ही पूर्वयुगीन तिरोभूत रूप पुनः युगान्तरमें आविर्भूत हो जाते हैं।

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः॥

(श्रीमद्भागवत १२। २। ३३)

यहाँ इस धराधामसे भगवद्रूपके तिरोभावकी बात स्पष्ट ही है। इससे नामोंका नित्यत्व तथा पारमार्थिक दृष्टिसे चिन्तन नित्य होनेपर भी रूपोंका समय-समयपर आविर्भाव-तिरोभाव सिद्ध होते हैं। अतः नाम-रूपोंमें नामका अधिक महत्त्व सुस्पष्ट हो जाता है।

दूसरी बात यह है कि भक्त जब सच्चे हृदयसे उन नामोंकी पुकार करता है, तब न केवल उसके अन्तर्मानसमें ही रूपका प्राकट्य होता है, अपितु उसके सामने बाह्य जगत्में भी उस रूपका प्राकट्य हो जाता है। अतः उन रूपोंकी प्रकटतामें भी नामकी ही कारणता है। इससे भी नाम-रूपोंमें नामका प्राथम्य एवं माहात्म्य स्पष्ट है।

भक्त जब भक्तिसे भगवान्का भजन करता है, उस स्थितिमें उसे भयकी सम्भावना ही नहीं है। जब सर्वशक्तिमान् भगवान् स्वयं उस भक्तके सरस हृदयसे लेकर उसके चारों ओर विराजमान हो जाते हैं, तब भला भय किससे और कैसे ?

'भजनं भक्तिः' इस भावार्थक **'क्तिन्'** प्रत्ययान्त **'भक्ति'** का अर्थ होता है—अन्तःकरणका भगवदाकार रूप होना। **'भजनम् अन्तःकरणस्य भगवदाकारतारूपं भक्तिः'** तथा—

द्रुतस्य भगवद्धर्माद् धारावाहिकतां गता ।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते ॥
(भक्तिरसायन १ । ३)

इस फलरूपा भक्तिमें परम पुरुषार्थरूप परम सुख होनेके कारण भय आदिका अवकाश कहाँ ? करणमें 'क्तिन्' प्रत्यय करनेसे निष्पन्न 'भक्ति'शब्द श्रवणादि साधनरूप नवधा भक्तिका बोधक होता है। इस साधनरूप भक्तिके द्वारा भी अन्तःकरण भगवदाकार ही किया जाता है, जैसे कि मधुसूदन सरस्वतीने कहा है—

'भज्यते सेव्यते भगवदाकारमन्तःकरणं क्रियते अनया इति करणव्युत्पत्त्या भक्तिशब्देन श्रवणकीर्तनादिसाधनमभिधीयते ।' (भक्तिरसायन पृ० ८)

भक्तिके द्वारा जब भक्तके सरस द्रुतचित्तमें साक्षात् परमानन्दस्वरूप भगवान् स्वयं प्रकट होते हैं तब दुःख, भय आदि किस बातका ?

भगवान् परमानन्दस्वरूपः स्वयमेव हि ।
मनोगतस्तदाकाररसतामेति पुष्कलम् ॥
(भक्तिरसायन १ । १०)

ज्ञानपुरस्सर भक्तिसे नाम-कीर्तन करनेवाले प्रह्लाद, गजेन्द्र तथा अज्ञानसे केवल पुत्रके नामसंकेतसे भगवन्नामका उच्चारण करनेवाले भक्तोंके भगवत्कृपा प्राप्त करनेके और समस्त दुःखोंसे छूटकर मुक्त होनेके शतशः उदाहरण शास्त्र-पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं ।

परम भागवत श्रीशुकाचार्यने कहा है कि जिन्होंने यहाँ भगवान् श्रीकृष्णके पादारविन्दोंमें उनके गुणोंके अनुरागी अपने मनको एक बार भी लगाया है वे निष्पाप प्राणी न तो यमको या न पाशधारी यमदूतोंको स्वप्नमें भी देखते हैं—

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो-
निर्वेशितं तद्गुणरागि यैरिह ।
न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ॥
(श्रीमद्भागवत ६ । १ । १९)

सदसद्विवेकशील पण्डितराजके भक्त-हृदयका यह भावोद्गार कितना सत्य एवं स्वाभाविक है—

वज्रं पापमहीभृतां भवगदोद्रेकस्य सिद्धौषधं
मिथ्याज्ञाननिशाविशालतमसस्तिग्मांशुबिम्बोदयः ।
क्रूरक्लेशमहीरुहामुरुतरज्वालाजटालः शिखी
द्वारं निर्वृतिसद्मनो विजयते कृष्णेति वर्णद्वयम् ॥
(भामिनीविलास ४ । १५)

अर्थात् 'पापरूपी पर्वतका वज्र, सांसारिक महान् रोगका सिद्ध औषध, मिथ्याज्ञानरूपी रात्रिके विशाल अन्धकारका सूर्यबिम्ब, प्रचण्ड क्लेशरूपी वृक्षका अत्युग्र ज्वालाओंसे प्रज्वलित पावक तथा मोक्ष-मन्दिरका द्वार 'कृष्ण' यह वर्णद्वय सर्वोत्कृष्ट है ।'

इतना ही नहीं 'कृष्ण' इस वर्णद्वयमें जो माधुर्य है, वह जीवको क्या कहीं अन्यत्र मिलता है ? संसारमें बार-बार भ्रमण करते हुए जीवने द्राक्षा और शर्कराका आस्वाद लिया, मधुर दुग्धका पान किया, स्वर्ग जाकर सुधापान तथा अप्सराओंके अधरोंका भी पान किया; परंतु क्या उसे 'कृष्ण' इस वर्णद्वयकी वास्तविक मधुरिमाका आभास भी और किसी वस्तुमें मिला ?

मृद्वीका रसिता सिता समशिता स्फीतं निपीतं पयः
स्वर्यातेन सुधाप्यधायि कतिधा रम्भाधरः खण्डितः ।
सत्यं ब्रूहि मदीयजीव भवता भूयो भवे भ्राम्यता
कृष्णेत्यक्षरयोरयं मधुरिमोद्गारः क्वचिल्लक्षितः ॥
(भामिनीविलास ४ । १४)

भगवन्नामका भक्तिपूर्ण भजन तो वस्तुतः दुःखासम्भिन्न निरतिशय सुखरूप ही है—

'निरुपमसुखसंविद्रूपमस्पृष्टदुःखम् ।'
(भक्तिरसायन पृ० ५)

अतः सत्य, शिव, सुन्दर-स्वरूप भगवन्नाम-संकीर्तनके अतिरिक्त मुक्तिका कोई दूसरा सहज मार्ग नहीं है। खास करके इस कलियुगमें तो—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी कहा है—

कलिजुग केवल नाम अधारा । सुमिरि सुमिरि भव उतरहु पारा ॥

इस दोषागार कलियुगका यही तो एक महान् गुण है कि भगवान् श्रीकृष्णके संकीर्तनमात्रसे सारी आसक्तियाँ मिट जाती हैं और भगवत्-प्राप्ति हो जाती है—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥
(श्रीमद्भा० १२ । ३ । ५१)

उपर्युक्त पुराणादि-प्रमाणोंसे भगवन्नाम-संकीर्तन ही इस कराल कलिकालमें एक मङ्गलमय मार्ग है ।

नाम-साधन

(लेखक—श्रीभार्गव वासुदेव खांवेटे)

नामकी महिमा अगाध है। इसकी अलौकिक सामर्थ्यका वर्णन अशेषतः कोई भी नहीं कर सकता। संत लोग इसकी कुछ महिमा स्वानुभवसे गाते हैं और वही हमलोगोंके लिये आधार हो जाता है।

श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—'प्रजापति जब सृष्टि रचते हैं तब नामकी आवृत्ति किया करते हैं और तभी सृष्टि-रचनामें समर्थ होते हैं। जिन भगवान्से ब्रह्मा उत्पन्न हुए उन भगवान्को ब्रह्माने नहीं पहचाना और सृष्टि रचने चले। पर जब सृष्टि रच नहीं सके, तब उन्होंने नाम लिया और नाम लेनेसे सृष्टि रचनेमें समर्थ हुए।' (ज्ञानेश्वरी अ० १७। ३३५, ३३७)

'यह नाम कहाँसे उत्पन्न हुआ, इसका आश्रय क्या है?' इसके विषयमें श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—'आकाशको जैसे आकाशका ही आश्रय है, वैसे ही इस नामको नामीका अभेद आश्रय है। आकाशमें उदय होनेवाले सूर्य ही जैसे सूर्यको प्रकाशित करते हैं, वैसे ही भगवान् ही अपना नाम व्यक्त करते हैं।' (ज्ञानेश्वरी अ० १७। ४०३, ४०४)

इस नामका आश्रय करके जो भजन-कीर्तन या स्मरण किया जाता है उसके विषयमें ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—'नाम-कीर्तनसे पापोंके प्रायश्चित्त बतलानेका व्यवसाय ही नष्ट हो जाता है; क्योंकि नामसंकीर्तन लेशमात्र भी पाप रहने नहीं देता। यम-दमादि इसके सामने फीके पड़ जाते हैं, तीर्थ अपने स्थान छोड़ जाते हैं, यमलोकका रास्ता ही बंद हो जाता है। यम कहते हैं, हम किसको यातना दें; दम कहते हैं, हम किसका दमन करें; तीर्थ कहते हैं, हम क्या भक्षण करें; यहाँ तो दवाके लिये भी पाप-ताप नहीं रह गया! भगवन्नाम-संकीर्तन इस प्रकार संसारके दुःखोंको नष्ट कर देता है कि सारा विश्व आनन्दसे ओतप्रोत हो जाता है। नाम-संकीर्तन करनेवाले भगवद्भक्त पौ फटनेके पहले ही प्रकाश कर देते हैं; अमृतके बिना ही जिला देते हैं; योगके बिना ही नेत्रोंके सामने भगवान्को प्रत्यक्ष करा देते हैं और वे राजा-रङ्कमें भेद नहीं मानते, छोटे-बड़ेका विचार नहीं करते; सारे जगत्के लिये ही आनन्दधाम बन जाते हैं वैकुण्ठलोकमें तो बिरला ही कोई जा सकता है, पर इस नाम-संकीर्तनसे इन भगवद्भक्तोंने सारे विश्वको ही वैकुण्ठ बना डाला है। सहस्रों जन्म कोई तपस्या करे, तब वह भगवान्का नाम लेनेमें समर्थ होता है। जिसके नामकी यह महिमा है, वे भगवान् बतलाते हैं—

> नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
> मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥
>
> (पद्मपुराण उत्तर० ९४। २३)

'कारण भगवद्भक्त भगवान्के गुणोंसे इतने तृप्त होते हैं कि वे देश-कालको भूलकर भगवन्नाम-संकीर्तनमें ही मगन रहते हैं। 'कृष्ण-विष्णु-हरि-गोविन्द' नामके ही छन्द गाया करते हैं।' (ज्ञानेश्वरी अ० ९। १९७–२१०)

इसलिये श्रीतुकाराम महाराज कहते हैं—'उठते-बैठते भगवन्नाम लेनेसे संसारके दुःख छूट जाते हैं। इस लाभको कोई न छोड़े; इससे भगवान्के चरण मिलते हैं। नामसे बढ़कर कोई भी साधन नहीं है। तुम जो चाहो करो, पर नाम लेते रहो; इसमें भूल न हो। यही मेरा सबसे पुकार-पुकारकर कहना है। कण्ठसे नाम उचारो तो सामने भगवान् खड़े हैं। इसी रीतिसे उनका ध्यान करो, मनसे उनका चिन्तन करो। नामकीर्तनमें यही बड़ी सुविधा है कि भगवान् जो ब्रह्मादिकोंके भी ध्यानमें सहसा नहीं आते, वे आ जाते हैं। सार वस्तुको ग्रहण करो, मनसे हरिरूपको देखो। चारों वेद जिसके लिये हैं, उसका नाम कण्ठमें धारण कर लो। क्यों व्यर्थके लिये इतने कष्ट उठा रहे हो? अन्य किसी साधनकी कोई जरूरत नहीं। अठारहों पुराणोंमें नामके सिवा और कोई बात नहीं है। गीताका जिसने उपदेश किया, वही इस ईंटपर (पंढरपुरके विट्ठल भगवान्) पधारे हैं। हरिनाम लेते रहो, बस, यही सार है। वेदोंकी वाणी अनन्त है, पर सार इतना ही है कि श्रीविट्ठलकी शरण लो और निष्ठाके साथ नाम जपते रहो।'

इस प्रकार नामकी महिमा श्रीज्ञानेश्वर महाराज और श्रीतुकाराम महाराजने अपने ग्रन्थोंमें स्थान-स्थानपर गायी है और यही बतलाया है कि नामसे भगवान् मिलते हैं। श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि 'नामोच्चारके द्वारा अखिल संसारको हम सुखमय करेंगे, तीनों लोक आनन्दसे भर देंगे।'

जो लोग अपने जीवनको सुखमय बनाना चाहते हों वे शास्त्रों और संतोंके वचनोंपर पूर्ण विश्वास कर अखण्ड नाम-स्मरण करना आरम्भ कर दें। भगवान् सबको ऐसी ही बुद्धि दें, यही उनके चरणोंमें मेरी प्रार्थना है।

नामजपमें विधिकी अप्रधानता

(लेखक—श्रीजयनारायणलालजी, एडवोकेट)

(१) भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(२) अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥
(श्रीमद्भागवत ६।२।१८)

(३) बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥

(४) राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं॥

नामजप मानवजीवनका सर्वोपरि सर्वसुलभ साधन है। यह नामजप चार वाणियोंसे होता है। (१) परा वाणी (नाभिसे मानसिक जप), (२) पश्यन्ती वाणी एवं उपांशु (हृदयसे), (३) मध्यमा वाणी (कण्ठसे), (४) वैखरी वाणी (जिह्वा, ओष्ठ और दन्त्यके सामूहिक संयोगसे)।

वैखरी जप विधिवत् या विधिहीन होता है। विधिवत् वह है जो नामीके रूपका ध्यान करते हुए, उसके नामार्थका मनन करते और लीलाओंका चिन्तन करते हुए शुद्ध सात्त्विक रूपसे भावके साथ किया जाय। और विधिहीन वह है जो किसी भी प्रकारसे हो जाय। वस्तुतः नामजपमें किसी भी विधि-विधान, देश, काल, अवस्थाकी कोई प्रधानता या अपेक्षा नहीं है। जिस किसी प्रकारसे, जिस किसी अवस्था या परिस्थितिमें जहाँ कहीं हों, जैसे भी हों, अहर्निश नामजप होते रहना वाञ्छनीय है।

सुखं शयाना निलये निजेऽपि
नामानि विष्णोः प्रवदन्ति मर्त्याः।
ते निश्चितं तन्मयतां व्रजन्ति
गोविन्द दामोदर माधवेति॥

मन्त्रजपमें विधिका विधान आवश्यक है, बिना उसके वह फलदायक नहीं। 'मनोमध्ये मन्त्रः, मन्त्रमध्ये मनः।' किंतु यह बात नाम-जपमें लागू नहीं है। नामजप विधि-हीन हो या विधिसहित हो, फलदायक अवश्य है। मात्राकी बात अलग है। पूज्यचरण भक्तमूर्धन्य कविकुल-कैरव-कलाधर गोस्वामी तुलसीदासजीने 'मानस'में पूर्णतः इस बातको स्पष्ट कर दिया है। उपर्युक्त चौपाई 'भायँ-कुभायँ'में निहित है कि नामजप चाहे भावसे हो या बिना भावसे, कुत्सित भावसे हो या क्रोधमें अथवा उ सर्वथा सर्वत्र कल्याणमय ही है।

नामजप भावप्रधान नहीं, वरं वस्तुप्रधान है। भाव उपेक्षणीय है। जैसे अग्निस्पर्श वस्तुप्रधान है, भाव-प्रधान नहीं है। अग्निस्पर्श अवश्य ही जलायेगा, जलने-जलानेका भाव हो या न हो। इसी प्रकार नामजप भी अवश्य फलदायक होगा—भाव हो या न हो। पुनः सत्य-असत्य, हिंसा-अहिंसा, दान-चोरी—ये सब कर्म भावप्रधान हैं। इनके भावानुसार करनेसे पुण्य-पाप होगा, किंतु भावके अभावमें कुछ भी फल नहीं। जैसे बच्चे, पागल या निद्रित व्यक्ति या सिंहादि पशुयोनिवाले इन कर्मोंको करें तो उनको फलाफल कुछ नहीं; क्योंकि उनको भाव नहीं है। मर्त्यलोकमें मनुष्ययोनिमें ही सभी साधन फलोत्पादक होते हैं, अन्य लोकों या योनियोंमें नहीं; क्योंकि वे तो केवल भोगलोक या भोगयोनि हैं, कर्मयोनि नहीं। लेकिन ब्रह्मलोकसे पाताल-तक या पशुयोनिमें भी नामजप अवश्य फल देता है। 'मंगल दिसि दसहूँ'का यही अर्थ है। विजयदोहावलीमें एक दोहा आता है—

भाव सहित संकर जप्यो, कहि कुभाव मुनि बाल।
कुंभकरन आलस जप्यो, अनख जप्यो दसभाल॥

(१) भायँ—शंकरजी—

'तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥'

(२) कुभायँ—वाल्मीकि—

'जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥'

(३) अनख—रावण—

'कहाँ राम रन हतौं प्रचारी।'

(४) आलस—कुम्भकर्ण—

'राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक॥'

चारों युगोंके उदाहरणसे नामजपमें विधिकी अप्रधानता सिद्ध है।

(१) सत्ययुगमें—अजामिल ब्राह्मणने यमदूतोंको देखकर पुत्रको पुकारा। किसी लक्ष्य या भावसे 'नारायण' शब्दका

कभी भी उच्चारण नहीं किया, तो भी केवल यह नामोच्चारणमात्र उसकी मुक्तिके लिये पर्याप्त हो गया।

'घोर जमालय जात निवार्यो सुतहित सुमिरत नाम॥'

पुनः—

'तर्यो गयंद जाके अर्ध नाम।'

गज-ग्राह-युद्धमें गजने अपनी सूँड़के अग्रभाग—नथुनाके डूबते समय, जिसके डूबनेसे उसकी मृत्यु हो जाती, नथुनाको फैलाकर 'रा' यह आधा नाम लेनेका संकेतमात्र किया। 'म' का उच्चारण वह नहीं कर सकता था; क्योंकि वैसा होनेसे नथुना डूब जाता। बस, यही पर्याप्त हो गया।

(२) त्रेतायुगमें—वाल्मीकि—

'उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥'

(कोई भाव नहीं)

गीध पशुयोनिके थे। निषादराज निम्न कुलके थे।

जीवन्ती वेश्या नाम रटती थी।

वाल्मीकिजी डकैती करते थे। गीधराज राग-द्वेष-वृत्तिके तथा मांसाहारी वृत्तिके साथ-साथ नामाराधन करते थे। निषादराज मान-क्रोधादिके साथ और वेश्या विषय-रत हो जीभरूपी तोतेसे नाम रटती थी। किसीका नामजप विधिपूर्वक नहीं था, किंतु सभी-के-सभी पार लग गये। रामजीने नामकी लज्जा रक्खी।

(३) द्वापरमें—त्राहि तीनि कही द्रौपदी।

(४) कलियुगमें तो नामजापक भक्तोंकी भरमार है। गोस्वामी तुलसीदासजी, नामदेवजी, मीराबाई प्रभृति

'सो धौं को जो नाम लाज तें नहिं राख्यो रघुबीर।'

कलिमें तो केवल नामजप ही एकमात्र साधन है।

'कलिजुग केवल नाम अधारा।'

'कलि न बिराग जोग संजम समाधि रे।'

'नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं।'

कलिकालमें सब विधियोंके बिना ही केवल नामजपसे कल्याण हो जानेवाला है। उच्चारणहीनता, लक्षणहीनता, मनमलीनता, विधिहीनता कितनी ही हो कुछ, कोई बात नहीं।

कैसेहु पामर पातकी जो लई नामकी ओट।
गाँठी बाँध्यो राम सों परख्यो न फिरि खर खोट॥

एक बार श्रीकृष्ण भगवान् भागे जाते थे। यशोदाजी पीछा करती थीं। नहीं पकड़े जायँ—तब सत्ययुग, त्रेता, द्वापरके भक्तोंकी शपथ दीं; किंतु नहीं ठहरे। फिर कलिके भक्तोंकी शपथ दीं तो ठहर गये। पूछनेपर कहा कि कलिके भक्त मुझे प्रियतम हैं, क्योंकि नाम-जापक हैं। उनकी शपथ मान ली।

नाम प्रभाव सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो॥

यदि कोई कहे कि नामके प्रभावसे, पत्थरमेंसे कमलका फूल उग गया तो वह सही बात है, सम्भव है। अतः विधिवत् या अविधिवत् जैसे-कैसे हो, नामजप स्वभाव हो जाना चाहिये।

रामनाम-कल्पतरु

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो रामको नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो॥
करम, उपासन, ग्यान, बेदमत, सो सब भाँति खरो।
मोहि तो सावनके अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो॥
चाटत रह्यौ स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परुसि धरो॥
स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरो-नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि-कटक तरो॥
प्रीति-प्रतीति जहाँ जाकी, तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय-बाप दोउ आखर, हौं सिसु-अरनि अरो॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम-नामहि ते तुलसिहि समुझि परो॥

(विनयपत्रिका)

राम नाम कलि-संकट-मोचन

वर्तमान युगका प्रभाव कुछ ऐसा है कि हम प्रत्येक वस्तुको बुद्धिकी कसौटीपर कसकर ग्रहण करना चाहते हैं; सभी बातपर भी संदेह करते हैं। कितनी बार बचपनमें सुना है, पुस्तकोंमें पढ़ा है और संतोंने कहा है कि भगवान्‌का नाम सम्पूर्ण मङ्गलोंका विधान कर सकता है और जीवनके कष्टोंका अशेष हरण कर सकता है, पर सुने-पढ़े सत्यपर मन नहीं टिकता। हम विश्वास नहीं करते हैं कि ऐसा हो भी सकता है क्या ! किंतु कभी अपने जीवनमें अथवा अपने किसी स्वजनके जीवनमें ऐसी कोई बात घटित हो जाती है कि सारे सुने-पढ़े सत्यका सत्य सामने आ जाता है। उसपर मनकी सरलता रीझ जाती है और हम सरल मनसे उसपर विश्वास कर लेते हैं।

घटना मेरे मित्रकी है। मित्र बीकानेर राज्यके एक भागमें ग्राम्य पाठशालाके निरीक्षणके लिये गये थे। राजस्थानमें आज भी ऊँट ही सवारीका सर्वश्रेष्ठ साधन है। एक बार एक गाँवसे दूसरे गाँव जानेके लिये उन्होंने एक ऊँटको भाड़ेपर तय किया। ऊँटसे यात्रा सुबह तीन-चार बजे आरम्भ की। मित्रने देखा कि ऊँटवान 'राम'-नामका लगातार जप कर रहा है। १० मिनट, २० मिनट-तक मित्र महोदय वह जप सुनते रहे। दस मिनट और निकल गये। सुनते-सुनते आधा क्या, पूरा एक घंटा हो गया। मेरे मित्र भी थोड़े आस्तिक हैं। उनसे नहीं रहा गया। वे ऊँटवानसे पूछ ही बैठे—'क्यों भाई ! तुम 'राम-राम' लगातार कैसे जप रहे हो ? नाम-जपकी चाट तुमको कैसे लग गयी ?' ऊँटवान थोड़ा मुसकराया, थोड़ा सकुचाया और उसने बातको टालनेकी चेष्टा की, पर मित्रके आग्रह करनेपर ऊँटवानने कहा—

''मेरे जीवनका एक प्रसङ्ग है, जिसने मुझे रामका नाम दिया। मेरे गाँवसे सटकर ही पंजाब प्रान्तकी सरहद है। पंजाबसे राठ जातिके लोग प्रायः गाय-बछिया-पशु आदि खरीदनेके लिये आया ही करते हैं। मेरे घरपर एक बछिया थी, जिसे एक राठने खरीद लिया, पर उसने एक बात कही। उसने कहा—'इस बछियाको मेरे घरतक पहुँचाना पड़ेगा। अभी यह बछिया तुम्हारे खूँटेसे और तुमसे हिली-मिली है; अतः मेरे साथ जायगी नहीं। तुम मेरे मेरे खूँटेसे बाँध दोगे तब दाम दूँगा।' उसकी बा स्वीकार कर ली। बछिया लेकर मैं चला। राह गड्ढा पड़ा जो बरसाती पानीसे भरा था। ईंट व लिये काफी मिट्टी खोदकर निकाल ली गयी थी। अतः बहुत चौड़ा तथा ज्यादा गहरा था, इतना गहरा वि व्यक्ति आसानीसे डूब जाय। मेरी बछिया मेरे सा रही थी। इधर-उधर भागती बछिया एक बार ऐसी उ कि संयोगसे उस गड्ढेमें जा गिरी। मुझे अपनी असाव पर बड़ा खेद हुआ। उसे बचानेके लिये मैं भी ग कूद गया। कूदनेके पहले मुझे पता नहीं था कि गड्ढा ज गहरा है और मुझे लेनेके देने पड़ जायँगे ? बछियाके क्या बचाता, मुझे अपनी ही जानके लाले पड़ गये। तै तो आता नहीं था, मैं पानीमें डूबने लगा। जीवनका सामने दीखने लगा। कोई पास नहीं, कोई सहारा न संकट भी कुछ इस प्रकारका आया कि पाँव पान तहमें जाकर मिट्टीकी दलदलमें धँस गये। अब तो जीवन आशा पूर्णतः छूट गयी। निराशा छा गयी। मन-ही-म भगवान्‌को याद किया। अंदर-ही-अंदर राम-रामकी लग गयी। रक्षाके लिये गुहार करने लगा। इतनेमें क्या हु कि अचानक मुझे ऐसा लगा कि किसीने झटका देकर मु ऊपर उठा लिया है, दलदलसे पैर निकल गये हैं और पानीकी सतहपर आ गया हूँ। उसी समय मेरे सामने तैरती हुई बछिया निकली। उसकी लंबी पूँछ मेरी पकड़में आ गयी। वह तो तैरकर पार हो ही रही थी, उसक पूँछको पकड़े-पकड़े मैं भी तैरता हुआ पार हो गया।

जीवनके इस संकटमें ही मुझे 'राम-नाम'की प्राप्ति हुई। 'राम'के स्मरणने विपदाकी उस घड़ीमें मेरी रक्षा की। इतना ही क्यों, उसके बादमें भी अनेक विपदाओंमें इस राम-नामने मेरी रक्षा की है। अब तो यही मेरे जीवनका आधार है, आश्रय है।''

ऊँटवानके इस जीवन-प्रसङ्गको सुनकर मेरे मित्र अत्यधिक प्रभावित हुए। उनकी नाम-निष्ठा और भी बढ़ गयी।

—[illegible]

ज्यौतिषशास्त्रमें भगवन्नाम तथा प्रार्थनाका चमत्कार

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

ज्यौतिषशास्त्रकी परिभाषा आदिके सम्बन्धमें 'कल्याण' वर्ष ३८ के ७वें अङ्कमें पर्याप्त लिखा जा चुका है। बहुधा लोग यही समझते हैं कि ज्यौतिषादिके द्वारा केवल भूत-भविष्यका ज्ञान ही हो सकता है, पर उसमें परिवर्तन किसी प्रकार भी नहीं किया जा सकता। किंतु यदि ऐसी बात होती तो वास्तवमें शास्त्रका कोई उपयोग नहीं था। न कोई पुनः ज्यौतिषकी पूछ ही करता। वास्तवमें शास्त्रकी यही शास्त्रता है कि वह शोक-मोह-क्लेश आदिको पूर्णतया दूर कर सके। जो भी वस्तु शोक-मोह-क्लेशको दूर-कर सुख-शान्ति प्रदान करनेमें सहायक होती है, वही योग्यताक्रमसे आदरणीय होती है। किंतु शास्त्रोंको इस दिशामें कहीं सर्वप्रथम, कहीं द्वितीय स्थान (अर्थात् भगवान्के बाद) प्राप्त है। ब्रह्मसूत्रके 'शास्त्रयोनित्वात्' सूत्रमें वेदादि शास्त्रोंको भगवान्की भी योनि माना है।

तुलसी सो सब भाँति परम प्रिय पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद······॥

आदिका भी यही भाव है।

वास्तवमें योग, ज्यौतिष, वेदान्त, भक्ति आदि सभी शास्त्रोंका तात्पर्य एकमें ही दीखता है। प्रायः सभी संतों तथा शास्त्रोंका एक ही उपदेश है कि 'सदा भगवान्का स्मरण किया जाय।' यही दुर्भाग्य है कि प्राणी आत्मस्वरूप भगवान्को भूल जाय—

इयमेव परा हानिरुपसर्गोऽयमेव हि।
अभाग्यं परमं चैतद् वासुदेवं न यत् स्मरेत्॥

'व्यासो वदत्यखिलवेदपुराणवेत्ता
नारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः।'

ठीक ज्यौतिष-शास्त्रका भी यही मत है। वह सभी विपत्तियोंका प्रतीकार भगवत्स्मरणद्वारा ही बतलाता है। वृद्धपाराशरमें दशान्तर्दशाके प्रसङ्गमें निरन्तर यही बतलाया गया है कि यदि दशानायकमें अन्तर्दशाका स्वामी ९,१२ स्थानोंमें हो तो भारी क्लेश होगा। यदि दशानायक दूसरे सातवें घरका स्वामी हो तो अकाल-मृत्यु भी हो सकती है। दशानायक ६,८,११,१२ का स्वामी हो तो चोर, सर्प, रोगादिका भय होगा। किंतु वह तुरंत ही इन दोषोंकी शान्तिका उपाय भी बतलाता है। उसका कथन है कि यदि इन आपत्तियोंका कारण बुध बन रहा हो तो 'विष्णुसहस्रनाम'का पाठ करना चाहिये। यदि इन भावोंका स्वामी दशानायक गुरु हो तो 'शिवसहस्रनाम'का पाठ करना चाहिये। यदि सूर्यद्वारा हो तो 'सूर्यसहस्रनाम' एवं 'आदित्यहृदय'का पाठ करना चाहिये। इसी प्रकार अन्यान्य ग्रहोंमें भी 'दुर्गासप्तशती', 'शिवाभिषेक', 'नाम-जप', 'मृत्युञ्जय-जप' आदि उपाय बतलाये गये हैं। ये सभी स्तोत्र-पाठ, उपासना, जप, सहस्रनाम आदि भगवत्स्मरण-ध्यानके प्रकार भी नाम-जप ही हैं। उपासना-पद्धतिमें भेद तात्कालिक चमत्कारके लिये है। अन्यथा समाहित होकर भगवत्स्मरण-जपके किसी भी प्रकारसे लाभ होगा ही।

ज्यौतिपशास्त्र-सारसर्वस्व

गुरु अथवा शास्त्र परम कल्याणमें सदा सहायक होते हैं। वास्तवमें भगवान्को भूल जाना ही दुर्भाग्य है। इसलिये वे किसी प्रकार प्राणीको जब पुनः भगवत्स्मरणमें लगा देते हैं तो प्राणीका सारा पाप-ताप-दुर्भाग्य दूर हो जाता है। तत्त्वदर्शियोंकी दृष्टिमें भगवान्का निरन्तर स्मरण ही सर्वोपरि श्रेष्ठ कार्य एवं परम सौभाग्यपूर्ण स्थिति है। इसलिये ज्यौतिषशास्त्र या ज्योतिषी विद्वान् पीड़ित प्राणीको तत्काल ही भगवत्स्मरणमें लीन करा देता है। इस तरह वह उनका कल्याण कर देता है। जबतक प्राणी विश्वास-के साथ भगवत्स्मरणमें लीन है, वह निश्चयेन सुखी है। इसी दृष्टिसे सत्सङ्गको भी सर्वोपरि सुख कहा गया है;* क्योंकि उसमें विशुद्ध भगवत्स्मरण ही कराया जाता है। उपनिषदोंमें भी विशुद्ध भगवत्स्मरणको सर्वोपरि सुख बतलाया गया है। यथा—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो
निवेशितस्यात्मनि यत् सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥
(भवसंतारणोपनिषद् ३। ३१)

अर्थात् सर्वथा भगवान्में प्रवृत्त व्यक्तिको जो सुख

* (१) तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥
(श्रीरामचरितमानस, सुन्दर०)
(२) तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥
(श्रीमद्भागवत १। १८। १३)

होता है, उसका वाणीद्वारा किसी भी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता। वह सर्वथा लोकोपरि अद्भुत होता है; उसका तो केवल अन्तर्हृदयमें ग्रहण—अनुभवमात्र ही हो सकता है। इसी प्रकार जब मनुष्य भगवान्‌को भूल बैठता है और संसारके किसी अन्य प्रपञ्चमें प्रवृत्त होता है तो प्रत्यक्ष ही उतनी ही बड़ी हानि समझनी चाहिये—

'हानि कि जग एहि सम कछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई॥'

इसलिये ज्यौतिषादि शास्त्र वास्तवमें परम कल्याणकारी हैं। वे भगवान्‌को भूले हुए प्राणीको भगवान्‌की स्मृति करवा कर तत्काल उसका श्रेय सम्पादन कर देते हैं। इधर लोगोंने अष्टग्रही तथा क्षयमास आदिकी बहुत मखौल उड़ायी, किंतु इस समय देशमें तथा बाहर जैसे भयानक परिणाम देखनेमें आये हैं तथा आ रहे हैं, उससे ज्यौतिषका चमत्कार विवश होकर स्वीकार करना पड़ता है। इसकी दवा एकमात्र भगवत्स्मरण है। अष्टग्रहीके समय जो विपत्तिके बादल कई सप्ताहतक घिरे रहे तथा शीतलहरी आदिका उपक्रम आरम्भ हुआ था, वह व्यापक संकीर्तनके प्रभावसे कुछ दिनके लिये शान्त हो गया था; किंतु लोग प्रभुको तुरंत भूल गये; फलतः 'क्षयमास'के बाद स्थिति विकट हो गयी है। इसीलिये विशेषकर 'कल्याण'के इस अङ्कका आयोजन किया जा रहा है। यदि व्यापकरूपसे न भी हो तो भी कुछ पाठक स्वयं तो इधर प्रवृत्त हो ही सकते हैं। भगवद्भजनका सौभाग्य जिस व्यक्तिका हो जाता है, उसके परम कल्याणमें संदेहका कोई अवसर नहीं रह जाता।

आयुर्वेदमें भगवन्नाम-मन्त्रादिकी महत्ता

(लेखक—पं० श्रीवंशीधरजी शास्त्री चतुर्वेद, साहित्यायुर्वेद-सांख्य-योग-दर्शनाचार्य)

अनादिकालसे विश्वविजयिनी वैजयन्तीसे विभूषित, स्वकीयविशिष्ट विभासे दिगन्तरोंको विभासित करनेवाला आयुर्वेद-प्रसादीयकलश अध्यात्मवादमय-हिरण्यसे ओत-प्रोत है। यह अध्यात्मवादमय सुवर्ण केवल इस प्रासादके कलशमें ही नहीं, प्रत्युत आधारशिलासे लेकर शिखरावधि प्रत्येक अणु-अणुमें संनिहित है।

महामहिममण्डित इस तत्त्वके संनिधानवश ही यह प्रासाद भारतीय संस्कृतिके दुर्भाग्यारम्भ दिवससे ही आरब्ध अनेकानेक स्वदेशी एवं विदेशी आघातोंको सहन करके भी अपनी सुदृढता, भव्यता तथा सार्वजनीनता इत्यादि लोकोत्तर गुणराजिको अद्यावधि सुरक्षित रखनेमें समर्थ हो सका है। भगवती श्रुतिकी प्रमाणमूर्धन्यता-साफल्य प्राप्त कर सका है। भगवती श्रुतिकी प्रमाणमूर्धन्यता-का मुक्तकण्ठसे उद्घोषक तदविरोधसे ही अन्य प्रमाणोंके प्रामाण्यका पोषक अध्यात्मवाद किंवा आस्तिकता अथवा दृश्यादृश्यादि भेद विभिन्न समस्त पदार्थनिवहकी संचालिका अघटितघटनापटीयसी सर्वाधिक बलीयसी महीयसी शक्तिकी स्वीकृति—ये सब परस्पर पर्याय ही हैं; जो कि दृश्य पदार्थातिरिक्त अन्य पदार्थोंके अस्वीकारक, प्रत्यक्षैकचक्षुष्क, अविचारित रमणीय भौतिकवादके सर्वथा विरुद्ध हैं।

अतः अध्यात्मवादानुप्राणित आयुर्वेदमें मन्त्र, प्रार्थना, नामकीर्तन, नमन, यजन इत्यादि भगवत्सम्बन्धित विशिष्ट विधियोंके विधानका महत्तम स्थान स्वयमेव सिद्ध हो जाता है।

'इह खल्वायुर्वेदमष्टाङ्गमुपाङ्गमथर्ववेदस्य।'
(सुश्रुत सूत्रस्थान १)

'चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानामथर्ववेदे भक्तिरादेश्या।'
(चरकसंहिता सू० ३०। ९)

इत्यादि आर्षवचन आयुर्वेदको अथर्ववेदका उपवेद बतलाते हैं।

एवं—

'ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेद इत्याह भगवान् व्यास स्कन्दो वा॥'
(चरणव्यूह)

इत्यादि वचन आयुर्वेदको ऋग्वेदका उपवेद निर्दिष्ट करते हैं।

'उप' उपसर्ग सामीप्यसम्बन्धका द्योतक है। अतः वेदों-के साथ आयुर्वेदका सम्बन्ध प्रतीत होनेसे यथा वेदमें रोग-निवृत्त्यर्थ प्रार्थनादिका निर्देश है तथैव आयुर्वेदमें भी एतदर्थ प्रार्थनादिका निर्देश प्रेक्षावत्सम्मत ही है।

जिस प्रकार हेय, हेयहेतु, हान, हानोपाय—यों चतुर्व्यूहात्मक योगशास्त्र है उसी प्रकार आयुर्वेद भी रोग, रोगहेतु, आरोग्य, भैषज्य—यों चतुर्व्यूहात्मक है। यह पातञ्जल-दर्शन द्वितीयपादीय पंद्रहवें सूत्रके व्यासभाष्यमें प्रतिपादित है।

उनमें रोगपरिहारोपायभूतत्वेन भैषज्यात्मकव्यूहमें तथा आरोग्यासाधारणकारणत्वेन लक्षणावृत्तिसे आरोग्याभिधव्यूहमें भगवदर्चना, तदुपासना, तन्नाम-जपादिका समावेश होता है।

इस व्यूहचतुष्टयमें रोगात्मक व्यूह प्रधान है। अतः चिकित्साकी सुकरताके लिये आयुर्वेदमें अनेक प्रकारसे रोगोंके भेद प्रदर्शित किये गये हैं। इनमें एक भेद कर्मज भी है। सामान्यतः सर्वविधरोगोपशमनार्थ, मुख्यतः कर्मजरोगोंके उपशमनार्थ प्रार्थना होम-यज्ञादिका विधान विहित है जैसा कि कर्मजके लक्षणसे ही प्रतीत होता है।

यथाशास्त्रं तु निर्णीतो यथाव्याधिचिकित्सितः।
न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः॥
पुण्यैश्च भैषजैः शान्तास्ते ज्ञेयाः कर्मदोषजाः॥

(योगरत्नाकर)

अपि च चिकित्सामें सर्वप्रथम रोग-परीक्षाका आदेश प्रदान करता हुआ चरकसंहिताका—

'रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्।'

—यह वचन रोगप्राधान्य प्रदर्शित करता है।

रोगज्ञानोपायीभूत निदानादि प्रकारपञ्चकमें रोगहेतुत्वेन एवं चिकित्सासौकर्यार्थ भी निदानज्ञानका विशेष स्थान है। अतः निदानवर्जनात्मक ही सामान्यतः चिकित्साका विधान **'सामान्यतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम्'**—इस वाक्यसे सिद्ध होता है।

रोगराजमें ज्वरके सर्वप्राधान्यका प्रतिपादक निम्नाङ्कित अग्निवेश वचन है—

देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली।
ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा॥
तस्य प्राणिसपत्नस्य ध्रुवस्य प्रलयोदये॥
इत्यादि।

(चरक चि० ३। ४२)

इसके अतिरिक्त 'माधवनिदान'के ज्वरनिदानके प्रथम श्लोककी मधुकोश व्याख्यामें संकलित अनेक वचन भी इस मतकी पुष्टि करते हैं। दक्षयज्ञ-विध्वंसके समय कुपित भगवान् रुद्रके निःश्वाससे ज्वरोत्पत्ति पुराणादिमें वर्णित है। आयुर्वेदमें भी यह मत मान्यतया स्वीकृत है। अतएव यावन्मात्र ज्वरोंमें रुद्रकोपको विप्रकृष्ट कारण मधुकोशकार श्रीविजयरक्षित मानते हैं—

'विप्रकृष्टो रुद्रकोपः।' (माधवनिदान ५ श्लोक)।

इसी प्रकार अभिचार एवं अभिशापको आगन्तुक ज्वरका कारण माना जाता है।

अभिघाताभिचाराभ्यामभिशापाभिषङ्गतः।
आगन्तुर्जायते.................................।

(सुश्रुत० उत्तर० अ० ३९)

अतः 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' इस न्यायसे ज्वरहेतुभूत देवप्रकोपादिके शमनके लिये शिवाराधना, श्रीविष्णुसहस्रनामपाठ, तारा-अर्चना, मन्त्रजप, वेदपाठ, होम, मणि-धारण इत्यादिका विधान भी युक्तियुक्त तथा ग्रन्थोंमें निर्दिष्ट हैं। 'स्थालीपुलाकन्याय'से कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरम्।
पूजयन् प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात्॥
विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम्।
स्तुवन् नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति॥
ब्रह्माणमश्विनाविन्द्रं हुतभक्षं हिमाचलम्।
गङ्गां मरुद्गणांश्चेष्टान् पूजयन् जयति ज्वरान्॥
भक्त्या मातापितॄणां च गुरूणां पूजनेन च।
ब्रह्मचर्येण तपसा सत्येन नियमेन च॥
जपहोमप्रदानेन वेदानां श्रवणेन च।
ज्वराद्विमुच्यते शीघ्रं साधूनां दर्शनेन च॥

(चरकसंहिता चि० स्था०, ३। १९६-२००)

'भगवती उमा, नन्दी आदि अनुचरों तथा मातृकाओंके साथ भगवान् शंकरका इन्द्रिय-निग्रहपूर्वक पूजन करनेवाला शीघ्र ही विषम ज्वरसे मुक्त हो जाता है। हजारों मस्तकवाले (विश्वरूप), चराचरपति, सर्वव्यापक भगवान् विष्णुकी उनके सहस्रनामद्वारा स्तुति करनेवाला सब प्रकारके ज्वरोंको दूर भगा देता है। ब्रह्मा, अश्विनीकुमार, इन्द्र, अग्नि, हिमाचल, गङ्गाजी तथा उनचास मरुद्गणोंका यज्ञद्वारा पूजन करनेवाला ज्वरोंपर विजय पा लेता है। माता-पिताकी भक्तिसे, बड़ोंका आदर-सम्मान करनेसे, ब्रह्मचर्यके द्वारा, तपश्चर्यासे, सत्यभाषणसे, शौच-संतोष आदि नियमोंके पालनसे, मन्त्र-जप, हवन तथा दानसे, वेद-पाठके श्रवणसे एवं संतोंके दर्शनसे भी मनुष्य अविलम्ब ज्वरसे सर्वथा मुक्त हो जाता है।'

मातरं पितरं देवान् वैद्यान् विप्रान् हरं हरिम्।
पूजयेच्छीलयेद् दानदमसत्यदयार्जवान्॥

धारयेच्च शुचिर्मूर्ध्ना मणिमन्त्रमहौषधीः ।
आर्यावलोकितं चार्यां शबरीमपराजिताम् ॥
प्रणमेदार्यतारां च सर्वज्वरनिवृत्तये ।

इत्यादि

(अष्टाङ्गसंग्रह, चि० स्था० ३अ०)

'सब प्रकारके ज्वरोंसे त्राण पानेके लिये माता-पिता, देवता, वैद्य, ब्राह्मण, भगवान् शंकर एवं विष्णु भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। दान, इन्द्रियदमन, सत्यभाषण, दया एवं शरीर-मन-वाणीकी सरलताका अभ्यास करे। मस्तकपर मणि, मन्त्र एवं ओषधियोंको धारण करे। भगवान् अवलोकितेश्वर शिव तथा देवी अपराजिता नामकी शबरी तथा आर्या तारा-को प्रणाम करे।'

विष्णोर्नामसहस्रस्य पठनं श्रवणं श्रुतेः ।

इत्यादि

(योगरत्नाकरः, ज्वरचिकित्सा)

भगवान् विष्णुके सहस्रनामोंका पाठ तथा उपनिषदोंका [श्र]वण ज्वर-नाशमें सहायक होता है।

इसी प्रकार आयुर्वेदीय प्रत्येक ग्रन्थमें इन सब प्रकारोंका [उ]ल्लेख सर्वत्र उपलब्ध होता है।

अन्य देवोपासनाके अतिरिक्त ज्वरका साकार वर्णन [क]से उसका अर्चनाप्रतिपादन भी आयुर्वेदकी अपनी विशेषता [है]। रुद्रांशसे उत्पन्न ज्वर भी पूजनीय-जन-कोटिमें समाविष्ट [हो]ते हैं। अतएव उनका पूजन-तर्पणादि भी उनकी निवृत्तिमें [पू]र्णतया समुपदिष्ट हैं।

ज्वरस्तु पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यति ।

(विदेह—)

ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः ।
भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥
मूर्तिमान् हरजो ज्ञेयः पापिनां नाशकारकः ॥

(हरिवंश)

ऐसे स्थलोंपर विविध देवोंकी विविध प्रकारकी उपासनाओंके [का]रसे परस्पर-विरोधादिकी आशङ्का सर्वथा अनुचित एवं [भ्र]मावह है। अतः इस विषयमें 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' [एक]मेवाद्वितीयं ब्रह्म'—इत्यादि श्रुति तथा—

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ७ । ७)

सितनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते न[भः ।]
भ्रान्तदृष्टिभिरात्मापि तथैकः सन् पृथक् पृथ[क् ॥]

(विष्णुपुराण २ । १६)

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः

(विष्णुपुराण १ । २)

इत्यादि पुराण, इन सबमें ओतप्रोत एक तत्त्वका [प्रतिपादन] करते हैं। अतः एकतत्त्वात्मकतया ये सब एक ही हैं [के]वल प्रत्ययभेदमात्रसे भिन्न प्रतीतिविषय 'हरि' एवं 'हर' यथा एक प्रकृतिनिष्पन्नतया वस्तुतः अभिन्न ही हैं, तच्छब्दवाच्य भगवान् हरि एवं भगवान् हर भी परस्परात्मक ही नहीं, अपितु परस्पर प्रणतिसे प्रसन्न सर्वविधसिद्धिप्रदाता भी हैं*।

तथा च 'शक्तिशक्तिमतोरभेदः'—इस न्याय-सर[णिके] अनुसरणसे भगवती तारा इत्यादि भी इनसे अभिन्न सिद्ध होती हैं।

अतः ज्वरोपशमनार्थ इनके अर्चन, नामजप, हो[म,] प्रार्थना इत्यादि सब उपाय भी फलप्रद सिद्ध होते हैं। इ[स] प्रकारसे आयुर्वेदातिरिक्त ग्रन्थोंमें वर्णित—

त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद् भयम् ।
यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद् भयम् ॥

(श्रीमद्भागवत १० । ६३ । २९)

'रोगार्तो मुच्यते रोगात्' (श्रीविष्णुसहस्रनाम १२८)

वसन्ते सानन्दे कुसुमितलताभिः परिवृते
स्फुरन्नानापद्मे सरसि कलहंसालिसुभगे ।
सखीभिः खेलन्तीं मलयपवनान्दोलितजलैः
स्मरेद्यस्त्वां तस्य ज्वरजनितपीडापसरति ॥

(आनन्दलहरी, २०)

'हे भगवति शिवे ! आनन्ददायक वसन्तऋतुमें नाना रंगोंके कमलोंसे सुशोभित, पुष्पित लताओंसे परिवेष्टित तथा कलहंसोंकी पंक्तियोंसे रमणीय सरोवरमें, जिसका जल मलयानिलके झकोरोंसे तरङ्गित है, अपनी सखियोंके साथ क्रीडा करती हुई आपका जो स्मरण करता है, उसकी ज्वरजनित पीड़ा दूर हो जाती है।'

---

* माधवीमाधवावीशौ सर्वसिद्धिविधायिनौ ।
वन्दे परस्परात्मानौ परस्परनुतिप्रियौ ॥

(माधवस्तोत्र)

—इत्यादि वाक्योंका एवं श्रीललितासहस्रनाम अपामार्जन-प्रभृति स्तोत्रादि-प्रतिपादित फलश्रुतियोंका सामञ्जस्य स्वयमेव सम्यक्तया सम्पन्न हो जाता है।

इसी प्रकार आयुर्वेदमें कुष्ठका पापरोग पदसे व्यपदेश करते हुए भगवान् धन्वन्तरिने तो अपना मत यहाँतक प्रकट किया है कि जबतक कुष्ठकारणीभूत पापपुञ्ज प्रनष्ट नहीं होते, तबतक वह व्यक्ति जन्म-जन्मान्तरमें भी इस रोगसे मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता; क्योंकि इसकी उत्पत्तिके मुख्य हेतु ब्रह्महत्यादि पापकर्म ही हैं। यथा—

ब्रह्मस्त्रीसज्जनवधपरस्वहरणादिभिः ।
कर्मभिः पापरोगस्य प्राहुः कुष्ठस्य सम्भवम् ॥
म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातेऽपि गच्छति ।
नातः कष्टतरो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्तितम् ॥

(सुश्रुत, नि० स्था० ५ । २३-२४)

पापाभिध तूलके सद्यः समूल दहनके विषयमें—

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥

—इत्यादि वचनोंके अनुसार भगवन्नामसे समस्त पापोंका नष्ट होना प्रसिद्ध है।

अतः ऐसे रोगोंके विनाशार्थ नाम-जप, प्रार्थना, अर्चन-एवं साक्षात्भगवत्स्वरूप भक्तजनसेवन इत्यादि उपाय औषधादि उपायोंकी अपेक्षा अधिक महिमामण्डित निर्णीत होते हैं। इस विषयमें आयुर्वेदोक्त सूर्योपासना आदित्य-हृदयस्तवादि पाठविधानके साथ-साथ सूर्यशतकस्तवसे मयूरकविका कुष्ठनाश, चैतन्यसमागमसे कुष्ठीको स्वास्थ्य-लाभ एवं श्रीरामचरणामृतपानसे टिहरीनरेशको आरोग्य-लाभ इत्यादि अनेकानेक उदाहरण साधारणजन भी जानते हैं। शीतलामें आयुर्वेदानुमत शीतलाष्टकपाठ, तत्पूजनादिके चमत्कार[1] का साक्षी तो घर-घरमें उपलब्ध हो जाता है।

१.व्रतदमयमसेवात्यागशीलाभियोगो द्विजसुरगुरुपूजा सर्वसत्त्वेषु मैत्री ।
शिवशिवसुतताराभास्कराराधनानि प्रकटितमलपापं कुष्ठमुन्मूलयन्ति ॥
(वाग्भट चि० १९ अ०)

'ब्रह्मचर्य आदि व्रत, इन्द्रियनिग्रह, सेवा, त्याग (दान) तथा उत्तम स्वभाव, ब्राह्मणों, देवताओं तथा गुरुजनोंकी पूजा, सभी प्राणियोंके साथ मित्रता, भगवान् शंकर, गणेशजी, भगवती तारा एवं भगवान् सूर्यका आराधन—ये सब साधन उस कुष्ठ रोगको निर्मूल कर देते हैं, जो नाना प्रकारके मलोंसे युक्त पापोंके प्रकट होनेपर ही होता है।

योगदर्शन-साधनपादके 'हेयं दुःखमनागतम्।' (२।१६) इस सूत्रके अनुसार यथा योगशास्त्रमें अनागत दुःख निवारणार्थ साधनोपदेश दृष्टिगोचर होता है, वैसे ही आयुर्वेदमें भी अनागतबाधप्रतिषेधार्थ अन्वर्थाभिध—

'अनागतबाधप्रतिषेधनीयोऽध्यायः'—

—इत्यादि स्थलोंपर शारीरिक नियमोंके साथ-साथ मन्त्र जप, देवार्चन, यजन, महीसुर-वन्दन इत्यादिका निर्देश उपलब्ध है जो कि इन साधनोंमें शास्त्रकारोंकी महती श्रद्धाको व्यक्त करता है। योगशास्त्रके सदृश ही आयुर्वेदके भी अङ्गोंकी संख्या आठ है।

कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान् ।
अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संस्थिता ॥

(वाग्भट, सूत्रस्थान १ अ०)

इनमें 'काय' नामक प्रथमाङ्गमें समागत रोग-शमनार्थ तो नाम-जपादिका विधान समुल्लिखित हो ही चुका है। 'बाल' नामक द्वितीयाङ्गका समारम्भ गर्भाधानकालसे होता है; अतः श्रेष्ठ संतानकी प्राप्तिके लिये गर्भाधानकालमें—

'आहिरसि आयुरसि०'

—इत्यादि मन्त्रोंका जप-विधान, गर्भकालमें देवपूजादि सीमन्तोन्नयनादिका विधान एवं जन्मके पश्चात् जातकर्मसंस्कार विधानका निर्देश करता हुआ आयुर्वेद देवार्चना, मन्त्र-जप इत्यादि दिव्य साधनोंको तपस्वी, यशस्वी, मनस्वी संतानोंकी प्राप्तिका कारण स्वीकार कर इन साधनोंकी श्रेष्ठताको स्वीकार करता है।

देवताब्राह्मणपराः शौचाचारहिते रताः ।
महागुणान् प्रसूयन्ते विपरीतास्तु निर्गुणान् ॥

(सुश्रुत, शारीर० ३ । २१)

यहाँ 'देवर्षीणां च नारदः'—इस वाक्यानुसार भगवदंश परमभागवत देवर्षि नारदके कुछ समयके सत्सङ्गसे ही कयाधूगर्भस्थित दैत्यराज हिरण्यकशिपुके भी अंशमें भगवद्भक्तिका बीजारोपण हो जाना प्रसिद्ध उदाहरण है।

इसके अतिरिक्त स्कन्दकी रक्षाके लिये श्रीशिवद्वारा प्रादुर्भावित पाँच मनुष्यविग्रह एवं सात स्त्रीविग्रह-ग्रहोंसे बालकों-की रक्षाके लिये मन्त्र, पूजन, जप, होम, बलिप्रदान-इत्यादि विधियाँ आयुर्वेदीय बाल-चिकित्सा-पद्धतिकी अपनी अद्वितीय

रता है। 'ग्रह' नामक अङ्गमें तो देवार्चन, स्तवन, ा इत्यादि उपाय ही औषधकी अपेक्षा प्रधानरूपसे ादित हैं; क्योंकि शक्तिसम्पन्न ग्रह कुपित होनेपर गेत रोगीका विनाश कर सकते हैं।

अतएव इन उच्चकोटिके ग्रहोंकी पूजनादि विधि के सदृश सम्पन्न करनी चाहिये एवं अपवित्र वस्तुओंका भी यहाँ निषिद्ध है।

वैद्यातुरौ निहन्युस्ते ध्रुवं क्रुद्धा महौजसः।'
न चाचौक्षं प्रयुञ्जीत प्रयोगं देवताग्रहे।'
(सु० उत्तर० ६० । ३०)

वग्रहा इति पुनः प्रोच्यन्ते शुचयश्च ये।
ववच्च नमस्यन्ते प्रत्यर्च्यन्ते च देववत्॥
(सु० उत्तर० ६० । १८)

ायुर्वेदका 'दंष्ट्रा' नामक अङ्ग विषमात्रोपलक्षक है। ; जीवोंमें सर्प सर्वमुख्य हैं। अतः आयुर्वेदमें नके भेद, विष, विषवेग तथा विषयुक्त अन्य प्राणियोंके ं उनके विष इत्यादिका विशद विवेचन किया इनकी चिकित्सामें औषधादि भौतिक साधनोंकी अपेक्षा त्यादि दिव्य साधनोंके महत्त्वकी स्वीकृतिमें भगवान् के ये वचन प्रमाण हैं—

ब्रह्मर्षिभिः प्रोक्ता मन्त्राः सत्यतपोमयाः।
न्ति नान्यथा क्षिप्रं विषं हन्युः सुदुस्तरम्॥
ं तेजोमयैर्मन्त्रैः सत्यब्रह्मतपोमयैः।
या निवार्यते क्षिप्रं प्रयुक्तैर्न तथौषधैः॥
(सु० कल्प० ५ । ५)

र्षियों एवं ब्रह्मर्षियोंके द्वारा कहे हुए मन्त्र सत्य एवं त होते हैं। वे कभी मिथ्या नहीं होते और उग्रसे उग्र तुरंत नाश कर देते हैं।

र्प-विषके समान ही अलर्क-विषकी भयंकरता, प्रभाव- ; सद्यःप्रसरणशीलता, आशुप्राणापहारकता केवल ्में ही नहीं, प्रत्युत—

पुनरपि दैवदुर्विपाकादालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसक्तम्।'
(उत्तररामचरित, प्रथमाङ्क)

—इत्यादि वचनोंसे साहित्यशास्त्रमें भी प्रसिद्ध है। इस रोगमें अलर्काधिपति यक्षकी प्रार्थनादिका निर्देश की महत्ताको अभिव्यक्त करता है।

अलर्काधिपते यक्ष सारमेय गणाधिप
अलर्कजुष्टमेतन्मे निर्विषं कुरु माचिरात्।
(सु० कल्प०, ७

केवल शारीरिक रोगोंमें ही नहीं, अपितु मा व्याधियोंमें भी इन साधनोंसे सिद्धिलाभ आयुर्वेदसम्म क्योंकि मानसिक व्याधियोंमें मुख्य अपस्मारमें रुद्र एवं गणोंकी पूजाका विधान है।

'पूजां रुद्रस्य कुर्वीत तद्गणानां च नित्यशः॥'
(सु० उ० ६१)

महामारी, महायुद्ध इत्यादि हेतुजन्य भीषणतम जन-संहारमें अधर्मकी कारणता एवं तन्नाशार्थ भगवदर्चन, भगवन्नामजप, भगवत्प्रार्थना आदिका विधान चरकसंहिताके विमानस्थानीय जनपदोध्वंसनीयाध्यायमें सम्यक्तया वर्णित है।

आयुर्वेदीय रसचिकित्सापद्धति भी सर्वमान्य सर्वसमादृत सद्यःचमत्कारिणी-सरणि है, जिसके अनुसरणसे आरोग्य-प्राप्ति अनन्यसाधारणतया होती है। अतएव भगवान् शंकराचार्यके गुरु भगवत्पूज्यपाद श्रीगोविन्दाचार्य, श्रीगुरु गोरक्षनाथ एवं नागार्जुनादि सिद्धसत्तमोंने एतद्विषयक ग्रन्थरत्न-निर्मितिसे इसकी सुषमाकी अभिवृद्धि कर इसे अनिर्वचनीय बनाया है। इसमें रससिद्ध्यर्थ 'अघोरेभ्योऽथ॰।' इस मन्त्रसे रक्षा-विधान, विष्णुध्यान, शिवपूजन, रसशालाके पूर्वभागमें शिव-स्थापन इत्यादि प्रकार पूजन, मन्त्रजप इत्यादिकी श्रेष्ठताको प्रकट करते हैं।

सम्पूज्य श्रीगुरुं कन्यां वटुकं च गणाधिपम्।
योगिनीं क्षेत्रपालांश्च चतुर्धा बलिपूर्वकम्॥
ततस्तु निभृते स्थाने सुमुहूर्ते विधोर्बले।
सुदिने शुभनक्षत्रे रसशोधनमाचरेत्॥
अघोरेण च मन्त्रेण रसं प्रक्षाल्य पूजयेत्॥
(आयुर्वेदप्रकाश १ अ०)

'अपने गुरुदेव, कुमारी कन्या, वटुक, भगवान् गणनायक, चौसठ योगिनियों तथा क्षेत्रपालोंको चार प्रकारकी बलि देते हुए पूजन करके तदनन्तर एकान्त स्थानमें, उत्तम कालमें शुभ नक्षत्र एवं उत्तम श्रेष्ठ वारमें चन्द्रमाका बल देखकर रस-शोधन करे और अघोर मन्त्रसे रसका प्रक्षालन करके पूजन करे।

'शुभेऽह्नि विष्णुं परिचिन्त्य कुर्यात्
सम्यक् कुमारीवटुकार्चनं च॥' इत्यादि॥

सुतप्तखल्वे निजमन्त्रयुक्तां
विधाय रक्षां स्थिरसारबुद्धिः ।
अनन्यचित्तः शिवभक्तियुक्तः
समाचरेत् कर्म रसस्य तज्ज्ञः ॥
(रसेन्द्रसारसंग्रह, प्रथमाध्याय)

'शुभ दिनमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके कुमारी कन्या एवं बटुकका भलीभाँति पूजन करे ।

'रस-तत्त्वका जाननेवाला भलीभाँति तपायी हुई खरलमें अपने मन्त्रके द्वारा रक्षा करके स्थिर एवं दृढ़तायुक्त बुद्धिसे अनन्यचित्त होकर शिव-भक्तिपूर्वक रस-शोधन करे ।'

'शंकरं पूर्वदिग्भागे स्थापयेद् भिषजाग्रणीः ॥'
(रसतरङ्गिणी, प्रथम तरङ्ग)

'श्रेष्ठ वैद्यको चाहिये कि वह पूर्व दिशामें भगवान् शंकरकी स्थापना करे ।'

वैद्य, औषध, रोगी एवं परिचारक—ये चिकित्साके चार पाद आयुर्वेदमें निर्दिष्ट हैं । इनमें भी यज्ञविधानमें अध्वर्युके समान एवं घटनिर्माणमें कुम्भकारके समान वैद्य ही सर्वप्रधानतया निर्दिष्ट है ।

भिषग् द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् ।
गुणवत् कारणं ज्ञेयं विकारव्युपशान्तये ॥
मृद्दण्डचक्रसूत्राद्याः कुम्भकाराद्दते यथा ।
नावहन्ति गुणं वैद्यादृते पादत्रयं तथा ॥
(चरक, सूत्रस्थान ९२, ९)

वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषजं परिचारकः ।
एते पादाश्चिकित्सायाः कर्मसाधनहेतवः ॥
वैद्यहीनास्त्रयः पादा गुणवन्तोऽप्यपार्थकाः ।
उद्गातृहोतृब्रह्माणो यथाध्वर्युं विनाध्वरे ॥
(सु० सूत्र ३४ । १४, १६)

जैसे वैद्य औषधादि लौकिक साधनोंसे दोषवैषम्यजनित रोगोंसे रुग्णका त्राण करता है, वैसे ही 'पुरोहित' मन्त्रादि दिव्य साधनोंके द्वारा कर्मजनित रोगोंसे त्राण दिलाता है, किंतु वैद्यको पुरोहितके अनुवर्तनका निर्देश प्रदानकर भगवान् धन्वन्तरि स्वयमेव औषधादिकी अपेक्षा मन्त्रादि दिव्य साधनोंकी श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं ।

दोषागन्तुजमृत्युभ्यो रसमन्त्रविशारदौ ।
रक्षेतां नृपतिं नित्यं यत्तौ वैद्यपुरोहितौ ॥
ब्रह्मा वेदाङ्गमष्टाङ्गमायुर्वेदमभाषत ।
पुरोहितमते तस्माद्वर्तेत भिषगात्मवान् ॥
(सु० सूत्र ३४ । ६-७)

इस पर्यालोचनसे यह सिद्ध होता है कि **'पापं रोगस्य कारणम्'**—यह सिद्धान्त आयुर्वेदानुमोदित है एवं भगवन्नामातिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु पापनिवारणमें अतिशायी नहीं है । अतः आरोग्यफलक आयुर्वेदशास्त्रमें भी कल्याण-कल्पद्रुम इन साधनोंका महत्त्व दृष्टिगोचर होता है ।

अन्तमें समस्त आधि-व्याधिविनाशक नामात्मक धामको प्रणति समर्पित करके लेख समाप्त करता हूँ ।

समस्तदुस्तरव्याधिसंघध्वंसपटीयसे ।
अच्युतानन्तगोविन्दनाम्ने धाम्ने नमो नमः ॥

राम-नाम-अङ्कको महिमा

अद्भुत राम नाम के अंक ।
धर्म-अँकुर के पावन द्वै दल, मुक्ति-वधू-ताटंक ॥
मुनि-मन-हंस-पच्छ-जुग, जाकैं बल उड़ि ऊरध जात ।
जनम-मरन-काटन कौं कर्तरि, तीछन बहु बिख्यात ॥
अंधकार-अज्ञान हरन कौं रबि-ससि जुगल-प्रकास ।
वासर-निसि दोउ करैं प्रकासित महा कुमग अनयास ॥
दुहूँ लोक सुखकरन, हरन दुख, वेद-पुराननि साखि ।
भक्ति ज्ञान के पंथ सूर ये, प्रेम निरंतर भाखि ॥

(सूरदासजी)

विशेषता है। 'ग्रह' नामक अङ्गमें तो देवार्चन, स्तवन, प्रार्थना इत्यादि उपाय ही औषधकी अपेक्षा प्रधानरूपसे प्रतिपादित हैं; क्योंकि शक्तिसम्पन्न ग्रह कुपित होनेपर वैद्य सहित रोगीका विनाश कर सकते हैं।

अतएव इन उच्चकोटिके ग्रहोंकी पूजनादि विधि देवताके सदृश सम्पन्न करनी चाहिये एवं अपवित्र वस्तुओंका प्रयोग भी यहाँ निषिद्ध है।

'वैद्यातुरौ निहन्युस्ते ध्रुवं क्रुद्धा महौजसः।'
'न चाचौक्षं प्रयुञ्जीत प्रयोगं देवताग्रहे।'
(सु० उत्तर० ६० । ३०)

देवग्रहा इति पुनः प्रोच्यन्ते शुचयश्च ये।
देववच्च नमस्यन्ते प्रत्यर्च्यन्ते च देववत्॥
(सु० उत्तर० ६० । १८)

आयुर्वेदका 'दंष्ट्रा' नामक अङ्ग विषभागोपलक्षक है। विषयुक्त जीवोंमें सर्प सर्वमुख्य हैं। अतः आयुर्वेदमें सर्प, उनके भेद, विष, विषवेग तथा विषयुक्त अन्य प्राणियोंके भेद एवं उनके विष इत्यादिका विशद विवेचन किया गया है। इनकी चिकित्सामें औषधादि भौतिक साधनोंकी अपेक्षा मन्त्र इत्यादि दिव्य साधनोंके महत्त्वकी स्वीकृतिमें भगवान् धन्वन्तरिके ये वचन प्रमाण हैं—

देवब्रह्मर्षिभिः प्रोक्ता मन्त्राः सत्यतपोमयाः।
भवन्ति नान्यथा क्षिप्रं विषं हन्युः सुदुस्तरम्॥
विषं तेजोमयैर्मन्त्रैः सत्यब्रह्मतपोमयैः।
यथा निवार्यते क्षिप्रं प्रयुक्तैर्न तथौषधैः॥
(सु० कल्प० ५ । ५)

देवर्षियों एवं ब्रह्मर्षियोंके द्वारा कहे हुए मन्त्र सत्य एवं तपसे पूत होते हैं। वे कभी मिथ्या नहीं होते और उग्रसे उग्र विषका तुरंत नाश कर देते हैं।

सर्प-विषके समान ही अलर्क-विषकी भयंकरता, प्रभावकारिता, सद्यःप्रसरणशीलता, आशुप्राणापहारकता केवल आयुर्वेदमें ही नहीं, प्रत्युत—

'एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकादालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसक्तम्।'
(उत्तररामचरित, प्रथमाङ्क)

—इत्यादि वचनोंसे साहित्यशास्त्रमें भी प्रसिद्ध है। इस भयंकर रोगमें अलर्काधिपति यक्षकी प्रार्थनादिका निर्देश मन्त्रादिकी महत्ताको अभिव्यक्त करता है।

अलर्काधिपते यक्ष सारमेय गणाधिप
अलर्कजुष्टमेतन्मे निर्विषं कुरु माचिरात्॥
(सु० कल्प०, ७। ८)

केवल शारीरिक रोगोंमें ही नहीं, अपितु मानसिक व्याधियोंमें भी इन साधनोंसे सिद्धिलाभ आयुर्वेदसम्मत है; क्योंकि मानसिक व्याधियोंमें मुख्य अपस्मारमें रुद्र एवं उनके गणोंकी पूजाका विधान है।

'पूजां रुद्रस्य कुर्वीत तद्गणानां च नित्यशः॥'
(सु० उ० ६१)

महामारी, महायुद्ध इत्यादि हेतुजन्य भीषणतम जनसंहारमें अधर्मकी कारणता एवं तन्नाशार्थ भगवदर्चन, भगवन्नामजप, भगवत्प्रार्थना आदिका विधान चरकसंहिताके विमानस्थानीय जनपदोध्वंसनीयाध्यायमें सम्यक्तया वर्णित है।

आयुर्वेदीय रसचिकित्सापद्धति भी सर्वमान्य सर्वसमादृत सद्यःचमत्कारिणी-सरणि है, जिसके अनुसरणसे आरोग्य-प्राप्ति अनन्यसाधारणतया होती है। अतएव भगवान् शंकराचार्यके गुरु भगवत्पूज्यपाद श्रीगोविन्दाचार्य, श्रीगुरु गोरक्षनाथ एवं नागार्जुनादि सिद्धसत्तमोंने एतद्विषयक ग्रन्थरत्न-निर्मितिसे इसकी सुषमाकी अभिवृद्धि कर इसे अनिर्वचनीय बनाया है। इसमें रससिद्ध्यर्थ 'अघोरेभ्योऽथ०।' इस मन्त्रसे रक्षाविधान, विष्णुध्यान, शिवपूजन, रसशालाके पूर्वभागमें शिवस्थापन इत्यादि प्रकार पूजन, मन्त्रजप इत्यादिकी श्रेष्ठताको प्रकट करते हैं।

सम्पूज्य श्रीगुरुं कन्यां वटुकं च गणाधिपम्।
योगिनीं क्षेत्रपालांश्च चतुर्धा बलिपूर्वकम्॥
ततस्तु निभृते स्थाने सुमुहूर्ते विधोर्बले।
सुदिने शुभनक्षत्रे रसशोधनमाचरेत्॥
अघोरेण च मन्त्रेण रसं प्रक्षाल्य पूजयेत्॥
(आयुर्वेदप्रकाश १ अ०)

'अपने गुरुदेव, कुमारी कन्या, बटुक, भगवान् गणनायक, चौसठ योगिनियों तथा क्षेत्रपालोंको चार प्रकारकी बलि देते हुए पूजन करके तदनन्तर एकान्त स्थानमें, उत्तम कालमें शुभ नक्षत्र एवं उत्तम श्रेष्ठ वारमें चन्द्रमाका बल देखकर रसशोधन करे और अघोर मन्त्रसे रसका प्रक्षालन करके पूजन करे।

'शुभेऽह्नि विष्णुं परिचिन्त्य कुर्यात्
सम्यक् कुमारीवटुकार्चनं च॥' इत्यादि॥

श्रीविग्रहके सामने किया गया जप तो अनन्त फलदायक माना गया है'—

गृहे जपः समं विद्याद् गोष्ठे शतगुणं भवेत्।
नद्यां शतसहस्रं तु अनन्तं शिवसंनिधौ॥

(लिङ्गपुराण ८५। १०६)

इसी प्रकार 'समुद्रतटपर, देवह्रदपर, पर्वतशिखरपर, देवालयोंमें, पवित्र आश्रमोंमें जपसंख्या करोड़गुनी अधिक बढ़ जाती है। भगवान् शिवके सामने, ध्रुवतारा अथवा भगवान् सूर्यकी ओर मुँह करके जपनेसे तथा जल, दीपक, अग्नि, गौ तथा गुरुके सामने जप करनेसे भी जप बहुत सबल श्रेष्ठ तथा विशेष फलदायक माना गया है'—

समुद्रतीरे देवह्रदे गिरौ देवालयेषु च।
पुण्याश्रमेषु सर्वेषु जपः कोटिगुणो भवेत्॥
शिवस्य संनिधाने च सूर्यस्याग्रे गुरोरपि।
दीपस्य गोर्जलस्यापि जपकर्म प्रशस्यते॥

(लिङ्गपुराण ८५। १०७-८)

प्रायः यही बात हरिभक्तिविलास, पूजापङ्कजभास्कर, तन्त्रसार, शारदातिलक, मन्त्रमहार्णव, गायत्रीपुरश्चरणपद्धति तथा वृद्धहारीत, विश्वामित्र, बृहत्पाराशर आदि स्मृतियोंमें कही गयी है। वसिष्ठसंहिताके वचनसे 'गायत्रीपुरश्चरण-पद्धति' में तथा योगिनीहृदयके वचनसे 'तन्त्रसार' में तुलसीवन, बिल्ववृक्ष, अश्वत्थमूल, आमलकी (आँवला-) मूल एवं जलराशि आदिके जपको विशेष सिद्धिप्रद माना गया है—

उद्यानानि विविक्तानि बिल्वमूलं तटं गिरेः।
तुलसीकाननं गोष्ठं वृषशून्यं शिवालयम्॥
अश्वत्थामलकीमूलं गोशालाजलमध्यतः।
कोटिर्देवालये प्रोक्तमनन्तं शिवसंनिधौ*॥

(योगिनीहृदय, तन्त्रसार पृ० २८ चौखम्बा-संस्करण; शारदातिलक २।१३८-१३९)

* देवीभागवत ११। २१। २-३ में भी यही बात कही गयी है। यथा—

पर्वताग्रे नदीतीरे बिल्वमूले जलाशये।
गोष्ठे देवालयेऽश्वत्थे उद्याने तुलसीवने॥
पुण्यक्षेत्रे गुरोः पार्श्वे चित्तैकाग्र्यस्थलेऽपि च।
पुरश्चरणकृन् मन्त्री सिद्ध्यत्येव न संशयः॥

जपमें मालाका नियम

स्थानादिकी तरह माला भी जप-परिणामके तारतम्यमें वृद्धिकारक तथा सहायक होती है। इस सम्बन्धमें तन्त्रसारका मत इस प्रकार है—

अङ्गुलीगणनादेकं पर्वणाष्टगुणं भवेत्।
पुत्रजीवैर्दशगुणं शतं शंखैः सहस्रकम्॥
प्रवालैर्मणिरत्नैश्च दशसाहस्रकं स्मृतम्।
तदेव स्फटिकैः प्रोक्तं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते॥
पद्माक्षैर्दशलक्षं स्यात् सौवर्णैः कोटिरुच्यते।
कुशग्रन्थ्या कोटिशतं रुद्राक्षैः स्यादनन्तकम्॥

(प्रायः ठीक ये ही श्लोक कल्पभेदसे लिङ्गपुराण (८५। १०९—१११) में भी आये हैं।

अर्थात् 'अंगुलियोंपर एक मन्त्र-जपसे एक, पर्वपर जपनेसे आठगुना, पुत्रजीव (इंगुदीवृक्षसे मिलता-जुलता एक बड़ा-सा वृक्ष) की मालासे जपनेसे दसगुना, शंखसे सौगुना, मूँगेकी मालासे जप करनेसे हजारगुना, मणियों तथा रत्नोंकी मालासे जप करनेसे दस हजारगुना, स्फटिककी मालासे भी दस हजारगुना, मौक्तिक (मोती) की मालासे जप करनेसे लाखगुना, पद्माक्षकी मालासे जप करनेसे दस-लाखगुना, सुवर्णकी मालासे जप करनेसे करोड़गुना, कुश-ग्रन्थिसे जप करनेसे अरबगुना तथा रुद्राक्षकी मालासे जप करनेसे तो जप अनन्तगुना हो जाता है।'

वैष्णव-मन्त्रोंमें तुलसीकाष्ठकी माला श्रेष्ठ मानी गयी है। गणेशजीके नाम-मन्त्र-जपोंमें हाथीदाँतकी माला प्रशस्त मानी गयी है। त्रिपुरासुन्दरीकी उपासनामें रक्तचन्दन अथवा रुद्राक्षकी माला प्रशस्त मानी गयी है—

वैष्णवे तुलसीमाला गजदन्तैर्गणेश्वरे।
त्रिपुरायाः जपे शस्ता रुद्राक्षै रक्तचन्दनैः॥

(तन्त्रसार)

कालिकापुराणमें कामनाभेदसे भी मालाभेदका विधान कहा गया है। कुशग्रन्थिकी मालाको सर्वपापनाशक माना गया है। पुत्रजीवकी माला पुत्रदायक, मणिमाला सर्वा-भीष्टदायक तथा मूँगेकी मालाको विपुल धनदायक माना गया है—

कुशग्रन्थिमयी माला सर्वपापप्रणाशिनी।
पुत्रजीवफलैः क्लृप्ता कुरुते पुत्रसम्पदम्॥

निर्मिता॥ रौप्यमणिभिर्जपमालेप्सितप्रदा।
प्रवालैर्विहिता माला प्रयच्छेद्विपुलं धनम्॥*

एक ही मालामें तुलसी, रुद्राक्ष, पुत्रजीव, पद्माक्ष, भद्राक्ष आदिका माधुर्य नहीं करना चाहिये। पूरा कार्य किसी एक ही तरहकी मालासे सम्पन्न करे तो श्रेष्ठ है—

'नान्यन्मध्ये प्रयोक्तव्यं पुत्रजीवादिकं च यत्।'
(तन्त्रसार, कालिकापुराण)

सनत्कुमारसंहितामें मालाके सूत्रोंसे भी फलकी विशेषता बतायी गयी है।

कपासके सूतसे गूँथी गयी माला धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-दायक मानी गयी है। कन्याद्वारा काता सूत हो तो और अधिक महत्त्वपूर्ण है। सूतके रंगकी भी विशेषता सनत्कुमारजीने अपनी संहितामें निर्दिष्ट की है। उजला शान्तिकर्ममें, लाल वशीकरणमें, पीला अभिचार-कर्ममें और काला सूत मोक्ष तथा ऐश्वर्यसिद्धिमें लाभदायक माना गया है। वर्णक्रमसे भी इसी प्रकार सूत्र-भेद निर्दिष्ट है। —ब्राह्मणके लिये उजला, क्षत्रियके लिये पीला, वैश्यके लिये काला सूत्र निर्दिष्ट है। 'लाल सूत्रकी मालाके लिये सभी वर्णोंको छूट है'—

'सर्वेषामेव वर्णानां रक्तं सर्वेप्सितप्रदम्।'

ॐकारका जप करते हुए माला गूँथनेकी विधि है।

मालाकी आकृति गोपुच्छ अथवा सर्पकी होनी चाहिये। सद्योजात मन्त्रद्वारा† पञ्चगव्यसे संस्कार कर वामदेव मन्त्र-से चन्दन-अगरु-पुष्पादिसे मलकर अघोरमन्त्रसे उसे धूपित करना चाहिये। अन्तमें प्राणप्रतिष्ठा कर—

ॐ माले माले महामाले सर्वतत्त्वस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥
(वाराहीतन्त्र; तन्त्रसार

—इस मन्त्रसे उसकी पूजा करनी चाहिये।

योगिनीहृदयमें मालाकी प्रार्थना यों बतलायी गयी है—

ॐ त्वं माले सर्वदेवानां सर्वसिद्धिप्रदा मता।
तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोऽस्तु ते॥

मन्त्र-नामजप करते समय मालाका गिर पड़ना या टूट जाना अशुभ माना गया है। उस समय 'ह्रीं' इस मायाबीजसे उसकी पूजा करनी चाहिये। जप होनेके बाद भी उपर्युक्त मन्त्र तथा लाल फूलसे पूजा कर उसे गोमुखीमें रख देना चाहिये।

लिङ्गपुराण, गौतमीतन्त्र तथा तन्त्रसार आदिमें कामना-भेदसे मालापर विभिन्न अंगुलियोंके प्रयोगका भी विधान निर्दिष्ट है—

अङ्गुष्ठं मोक्षदं विद्यात्तर्जनी शत्रुनाशिनी।
मध्यमा धनदा शान्तिं करोत्येषा ह्यनामिका॥
कनिष्ठा रक्षणीया सा जपकर्मणि शोभने।
अङ्गुष्ठेन जपेज्जप्यमन्यैरङ्गुलिभिः सह॥
अंगुष्ठेन विना कर्म कृतं तदफलं यतः।
(लिङ्गपुराण ८५। ११४-११६)

अर्थात् 'नामजपमें अंगूठा मोक्षदायक, तर्जनी शत्रु-नाशक, मध्यमा अँगुली धनदायक तथा अनामिका शान्तिप्रद कही गयी है। जपकर्ममें कनिष्ठिका अँगुलीका प्रयोग निषिद्ध माना गया है। अंगूठेके विना कोई भी सत्कर्म अपूर्ण माना गया है; अतः जपयज्ञमें अंगूठेका स्पर्श निरन्तर आवश्यक माना गया है। अंगूठे तथा किसी अन्य अँगुलीके संयोगसे कामनाभेदसे जप करना चाहिये।' यदि माला अपवित्र पदार्थसे छू जाय तो उसे धो देना चाहिये। टूट जाय या गिर जाय तो १०८ बार भगवन्नामका जप करना चाहिये—

'प्रमादात् पतिता हस्ताच्छतमष्टोत्तरं जपेत्।'
(वैशम्पायनसंहिता)

---

* अग्निपुराण (३२७। २-३) में कुछ मतान्तर है—

हेमरत्नमयं भूत्यै महाशंखं च मारणे।
आप्यायने शंखसूत्रं मौक्तिकं पुत्रवर्द्धनम्॥
स्फाटिकं भूतिदं कौशं मुक्तिदं रुद्रनेत्रजम्।
धात्रीफलप्रमाणेन रुद्राक्षं चोत्तमं ततः॥

† सद्योजात मन्त्र इस प्रकार बतलाया गया है—

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः।
भवे भवे नातिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः॥
(स्वच्छन्द-माहेश्वरतन्त्र)

जापकके मुखकी दिशाके भेदसे भी फलपरम्पराका तारतम्य प्रदर्शित है। यथा—

> तत्पूर्वाभिमुखं वश्यं दक्षिणं चाभिचारिकम्।
> पश्चिमं धनदं विद्यादुत्तरं शान्तिकं भवेत्॥
> (लिङ्गपुराण ८५। ११३)

अर्थात् 'पूर्वाभिमुख होकर जप करना वशीकरण-प्रयोगमें लाभदायक है। आभिचारिक कृत्योंमें दक्षिण मुखकी विधि है। श्रीप्राप्तिके प्रयोगमें पश्चिममुख बैठना प्रशस्त है तथा शान्ति-पौष्टिक कृत्योंमें जापकको उत्तरमुँह होकर बैठना चाहिये।'

जपमें आसनोंकी विशेषता

भगवन्नाम-मन्त्र-जपमें आसनोंका भी फल बतलाया गया है। 'हंसमाहेश्वरतन्त्र'में कम्बल, कृष्णाजिन, व्याघ्र-चर्म, कुशासन, वंशासन, पाषाणासन, तृणासन, वस्त्रासन तथा पल्लवासनकी बात आयी है। इनमें कुश, मृगचर्म तथा लाल कम्बल विशेष प्रशस्त माने गये हैं। शेष निषिद्ध हैं—

> 'श्रेष्ठं च रक्तकम्बलम्।'
> कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि।
> कुशासने मन्त्रसिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा॥
> (तन्त्रसार, हंसमाहेश्वर)

'चैलाजिनकुशोत्तर' न्यायसे वस्त्रासनका भी उपयोग हो सकता है, ऐसा गौतमीय तथा योगिनीहृदयतन्त्रमें निर्दिष्ट है।

जपमें कुछ विशेष ध्यान देनेकी बातें

जपमें अन्यमनस्कता, अनवधानता, नग्नशिरता, अपवित्रता, राग-रोष, बहिरालाप—ये सब भयानक बाधक कहे गये हैं। जापकको परान्नभक्षण नहीं करना चाहिये। मन्त्रजापी जिसका अन्न खाता है, उसीको फल मिलता है।

> यस्यान्नपानपुष्टाङ्गः कुरुते धर्मसंचयम्।
> अन्नदातुः फलस्यार्द्धं कर्तुश्चार्द्धं न संशयः।
> तस्मात् सर्वप्रयत्नेन परान्नं वर्जयेत् सुधीः॥
> जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात्।
> मनो दग्धं परस्त्रीभिः कथं सिद्धिर्वरानने॥
> (कुलार्णवतन्त्र ?)

किंतु इस परान्नमें त्रिविधाश्रमवासियोंके भैक्ष्य-भिक्षाप्राप्त अन्नकी गणना नहीं की गयी है। उसमें उनका स्वत्व शेष है—'भिक्षायां तस्य स्वस्वत्वोत्पादनात्।' (तन्त्रसार) मन-की शुद्धि, पवित्रता, संयम, मौन, वैराग्य, मन्त्रार्थचिन्तन, अव्यग्रता तथा अनिर्वेद—ये जप-सिद्धिकी प्रधान सामग्रियाँ कही गयी हैं।—

> मनःसंहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम्।
> अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः॥

'शिखा खोलकर जपना, पगड़ी या कुर्ता आदि पहनकर जपना, पैर फैलाकर, नंगा होकर जपना, व्यग्रचित्त, क्रुद्ध होकर जपना, जूता आदि पहने जपना—निषिद्ध है।'

> उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशो गणावृतः।
> अपवित्रकरोऽशुद्धः........................
> उपानद्गूढपादो वा यानशय्यागतस्तथा।
> प्रसार्य न जपेत् पादौ........................

किंतु मानस-जपमें कोई भी दोष नहीं माना गया है—

> 'मानसे तु नियमो नास्ति।'
> अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन्नपि।
> मन्त्रैकशरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत्॥
> न दोषो मानसे जापे सर्वदेशेऽपि सर्वदा।
> जपनिष्ठो द्विजश्रेष्ठोऽखिलयज्ञफलं लभेत्॥
> (तन्त्रसार)

'शुद्ध, अशुद्ध, जाते, आते, सोते किसी भी अवस्थामें मनसे मन्त्रोंका जप किया जा सकता है। मानस-जप सर्वदेश और सर्वकालमें हो सकता है और वह जपनिष्ठ द्विज समस्त यज्ञफलको प्राप्त करता है।'

इस तरह जपयज्ञकी विधिके विषयमें यहाँ कुछ निवेदन किया गया। पाठक इस पूरे अङ्कमें इस सम्बन्धकी पर्याप्त सामग्री देखेंगे और उससे पूरा लाभ उठानेकी कृपा करेंगे।

निर्मिता रौप्यमणिभिर्जपमालेप्सितप्रदा।
प्रवालैर्निर्मिता माला प्रयच्छेद्विपुलं धनम्॥*

एक ही मालामें तुलसी, रुद्राक्ष, पुत्रजीव, पद्माक्ष, भद्राक्ष आदिका माधुर्य नहीं करना चाहिये। पूरा कार्य किसी एक ही वस्तुकी मालासे सम्पन्न करे तो श्रेष्ठ है—

'नान्यन्मध्ये प्रयोक्तव्यं पुत्रजीवादिकं च यत्।'
(तन्त्रसार, कालिकापुराण)

सनत्कुमारसंहितामें मालाके सूत्रोंसे भी फलकी विशेषता बतलायी गयी है।

कपासके सूतसे गूँथी गयी माला धर्म, अर्थ, काम, मोक्षदायक मानी गयी है। कन्याद्वारा काता सूत हो तो और अधिक महत्त्वपूर्ण है। सूतके रंगकी भी विशेषता सनत्कुमारजीने अपनी संहितामें निर्दिष्ट की है। उजला सूत शान्तिकर्ममें, लाल वशीकरणमें, पीला अभिचार-कर्ममें और काला सूत मोक्ष तथा ऐश्वर्यसिद्धिमें लाभदायक माना गया है। वर्णक्रमसे भी इसी प्रकार सूत्र-भेद निर्दिष्ट है। यथा—ब्राह्मणके लिये उजला, क्षत्रियके लिये पीला, वैश्यके लिये काला सूत्र निर्दिष्ट है। 'लाल सूत्रकी मालाके लिये सभी वर्णोंको छूट है'—

'सर्वेषामेव वर्णानां रक्तं सर्वेप्सितप्रदम्।'

ॐकारका जप करते हुए माला गूँथनेकी विधि है।

मालाकी आकृति गोपुच्छ अथवा सर्पकी होनी चाहिये। सद्योजात मन्त्रद्वारा† पञ्चगव्यसे संस्कार कर वामदेव मन्त्रद्वारा चन्दन-अगरु-पुष्पादिसे मलकर अघोरमन्त्रसे उसे धूपित करना चाहिये। अन्तमें प्राणप्रतिष्ठा कर—

ॐ माले माले महामाले सर्वतत्त्वस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥
(वाराहीतन्त्र; तन्त्रसार

—इस मन्त्रसे उसकी पूजा करनी चाहिये।

योगिनीहृदयमें मालाकी प्रार्थना यों बतलायी गयी है—

ॐ त्वं माले सर्वदेवानां सर्वसिद्धिप्रदा मता।
तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोऽस्तु ते॥

मन्त्र-नामजप करते समय मालाका गिर पड़ना या टूट जाना अशुभ माना गया है। उस समय 'ह्रीं' इस मायाबीजसे उसकी पूजा करनी चाहिये। जप होनेके बाद भी उपर्युक्त मन्त्र तथा लाल फूलसे पूजा कर उसे गोमुखीमें रख देना चाहिये।

लिङ्गपुराण, गौतमीतन्त्र तथा तन्त्रसार आदिमें कामनाभेदसे मालापर विभिन्न अंगुलियोंके प्रयोगका भी विधान निर्दिष्ट है—

अङ्गुष्ठं मोक्षदं विद्यात्तर्जनी शत्रुनाशिनी।
मध्यमा धनदा शान्तिं करोत्येषा ह्यनामिका॥
कनिष्ठा रक्षणीया सा जपकर्मणि शोभने।
अङ्गुष्ठेन जपेज्जप्यमन्यैरङ्गुलिभिः सह॥
अंगुष्ठेन विना कर्म कृतं तदफलं यतः।
(लिङ्गपुराण ८५। ११४–११६)

अर्थात् 'नामजपमें अंगूठा मोक्षदायक, तर्जनी शत्रुनाशक, मध्यमा अँगुली धनदायक तथा अनामिका शान्तिप्रद कही गयी है। जपकर्ममें कनिष्ठिका अँगुलीका प्रयोग निषिद्ध माना गया है। अंगूठेके बिना कोई भी सत्कर्म अपूर्ण माना गया है; अतः जपयज्ञमें अंगूठेका स्पर्श निरन्तर आवश्यक माना गया है। अंगूठे तथा किसी अन्य अँगुलीके संयोगसे कामनाभेदसे जप करना चाहिये।' यदि माला अपवित्र पदार्थसे छू जाय तो उसे धो देना चाहिये। टूट जाय या गिर जाय तो १०८ बार भगवन्नामका जप करना चाहिये—

'प्रमादात् पतिता हस्ताच्छतमष्टोत्तरं जपेत्।'
(वैशम्पायनसंहिता)

---

* अग्निपुराण (३२७। २-३) में कुछ मतान्तर है—

हेमरत्नमयं भूत्यै महाशंखं च मारणे।
आप्यायने शंखसूत्रं मौक्तिकं पुत्रवर्द्धनम्॥
स्फाटिकं भूतिदं कौशं मुक्तिदं रुद्रनेत्रजम्।
धात्रीफलप्रमाणेन रुद्राक्षं चोत्तमं ततः॥

† सद्योजात मन्त्र इस प्रकार बतलाया गया है—

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः।
भवे भवे नातिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः॥
(स्वच्छन्द-माहेश्वरतन्त्र)

'जुलूसवालोंके नारे सुनकर जिन लोगोंके दिल नहीं दहले थे, वे हाथ ऊँचे करें।' जवाबमें पाँच पुरुष और केवल तीन स्त्रियोंने हाथ ऊँचे किये।

मुझे इस बातसे बड़ी चोट पहुँची और रातभरकी बेचैनीके बाद दूसरे ही दिन सबेरे मैंने उनसे सामूहिक राम-धुन-कीर्तनका मर्म समझाया। बादमें उन सबने अपनी बरबाद ठाकुरबाड़ीके सामने इकट्ठा होना शुरू किया। अपने बीसियों प्रवचनोंमें मैंने उन्हें जो बात समझायी, उसका तात्पर्य यह है कि जो ईश्वरका भय रक्खे, ईश्वर उसका सब भय हरण करता है। मृत्युका भय हमें कायर बनाता है; किंतु भगवान्‌का भय समस्त भौतिक भयको मिटाता है।

दृष्टान्तके तौरपर मैंने पूछा कि 'जगत्‌में क्या कोई ऐसा व्यक्ति है, जो मरेगा नहीं ? इससे उल्टे क्या किसीकी मृत्यु एकसे अधिक बार हो सकती है ? अगर नहीं, तो आदमी अपने धर्म और प्रतिष्ठाकी रक्षा करते-करते मर्दानगीसे दुष्टके खंजरका मुकाबला करते हुए मरे, यह अच्छा कि प्लेग, हैजा या शीतलासे तड़प-तड़पकर मरे यह अच्छा ? और यदि हम सचमुच ईश्वरको अपना प्रियतम, सखा या रक्षकके रूपमें मानते हैं, तो उसका बुलावा आनेपर हम क्यों डरें ? क्या हम यह नहीं मानते कि उसकी मरजीके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता........ ?

'सवाल यह है कि हममें ईश्वरपर ऐसी जीवन्त श्रद्धा है या नहीं ? ऐसी जीवन्त श्रद्धा निर्बल-से-निर्बलको भी बलवान्-से-बलवान्‌की टक्कर झेलनेकी शक्ति देगी। अस्त्र-शस्त्र उसे भयभीत न कर सकेंगे। आखिर मृत्युसे बढ़कर तो और कुछ भी वे नहीं दे सकते न ?

'उदाहरणस्वरूप रामधुन-कीर्तन चल रहा हो, तब अगर हजारों गुंडोंका एक दल लाठी, भाला, छुरा इत्यादि लेकर हमपर चढ़ आये और सब स्त्री-पुरुष और बच्चे उसकी ओर तनिक भी ध्यान न देते हुए केवल अपने कीर्तनमें लीन रहें और मर जायँ, मगर न इधर-उधर भागें, न डगमगायें और न चेहरेका रंग पीला पड़ने दें, तो गुंडे हक्के-बक्के रह जायँगे। वे अनुभव करेंगे कि इन निःशस्त्र स्त्री, पुरुष और बच्चोंकी पीठपर कोई ऐसी शक्ति है, जो हमारे पास नहीं है और जो लाठी एवं भालेकी शक्तिसे कहीं बढ़-चढ़कर है और मौतके भयको भी परास्त कर देती है। शर्त सिर्फ इतनी है कि हमारे दिलोंमें न तो भयका लवलेश हो, न गुस्सा या द्वेष !'

हमने बहनोंको निर्भयताका मन्त्र देनेका विशेष यत्न किया। स्त्रीको निर्बल माना गया है और वह खुद अपने-आपको निर्बल मानने लगी है। पुरुष भले अपने-आपको फुसला लें कि वे अपने भुजबलसे अपनी रक्षा कर लेंगे; किंतु स्त्री तो इस तरह अपनेको फुसला भी नहीं सकती। उसका तो एकमात्र सहारा आत्मबल, सत्याग्रह और रामबल ही है। इसलिये 'निर्बलके बल राम' का ही स्मरण उसके हर श्वास-उच्छ्वासके साथ होना चाहिये।

हमारे शास्त्रोंमें लिखा है कि अन्तकालमें जो 'राम'का नाम लेता है, वह ईश्वरको पाता है। किंतु मौतकी तो घड़ी कोई नहीं। वह किसी भी क्षण आ सकती है। इसलिये हमारी तैयारी इसके लिये प्रतिक्षण रहनी चाहिये। एक क्षणके लिये भी हमसे भगवान्‌का चिन्तन छूटना नहीं चाहिये।

और अगर राम-नामका स्मरण केवल कण्ठसे नहीं बल्कि हृदयसे भी होता है, तो उसकी झलक हमारे दिन-प्रति-दिनके जीवनकी छोटी-से-छोटी घटनामें भी दीखनी चाहिये। यदि इस तरहसे आप रामनामको अपनायें तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आप गुंडोंके सामने नहीं काँपेंगी, बल्कि गुंडे आपके सामने काँपेंगे।

आखिरके उद्गार यों ही मेरे अन्तःकरणसे निकल गये। सम्भव है, अगर मैं इसपर विचार करने बैठता, तो मुँहसे निकालते जबान रुकती।

शुरूमें बहनोंको सीधी कतारमें सिर ऊँचा करके खड़े कराना और ऊँचे स्वरसे ताकतके साथ भय और लज्जाके बिना रामधुन गवाना कोई आसान बात न थी। परंतु थोड़े समय बाद उनका सारा संकोच दूर हो गया और आखिर यह हालत हो गयी कि जहाँ पहले रामधुन गानेमें पुरुष पहल किया करते थे और स्त्रियाँ अनुकरण करती थीं, वहाँ थोड़े समय बाद गानेमें स्त्रियाँ पहल करने लगीं और पुरुष उनके पीछे-पीछे चलते थे !

अन्यायकी आँधीमें राम-नामकी निष्कम्प दीपशिखा

(लेखक—श्रीप्यारेलालजी)

[साम्प्रदायिक उन्मादका करुणतम आखेट था नोआखाली—पूर्वी बंगालका आतङ्कग्रस्त इलाका और इस त्रास एवं आत जब जन-जनके धैर्यका बाँध टूट रहा था, बापू (महात्मा गाँधीजी)के वैयक्तिक सचिव श्रीप्यारेलालने उन्हें रामनाम संजीवनी पिलायी। परिणाम चमत्कारी था। पूर्वी बंगालका वातावरण एक बार सनातन आस्थाके जयघोषसे गुं हो उठा।—सम्पादक]

जब हम पहले-पहल नोआखालीमें गये तो वहाँ सबसे करुण दृश्य स्त्रियोंका नजर आता था। उनके माथेपर मङ्गलचिह्न न था, कलाइयोंमें चूड़ियाँ न थीं। उनकी चूड़ियाँ तो दंगेमें जबरन् तोड़ दी गयी थीं। उनके माथेका सुहाग-चिह्न मुसल्मान बनाते समय मिटा दिया गया था। कई बार उन्होंने अपने हाथों ही डरके मारे उसे उतार दिया था। उनके चेहरे फीके और मुर्झाये हुए थे। उनकी आँखोंसे अभीतक भय टपकता था। उसे देखकर आदमीका जी भर आता था। बाहर सामान्यतः उनकी हिम्मत जबान खोलनेकी नहीं होती थी। बात करनी होती थी, तो वे घरके अंदर ले जाकर ही अपनी रामकहानी सुनाती थीं और वह भी भाव-शून्य मरी-सी भाषामें। इस निष्प्राण जीवनसे उनका उद्धार 'रामनाम'के मन्त्रने ही किया। मेरे पास इसके सिवा उनको देनेके लिये और कुछ न था।

मैं अपने उस अनुभवको कभी भूल नहीं सकता, जब पहली बार शाहपुरकी एक उजड़ी हुई बाड़ीमें लोगोंकी लगभग बीस-तीसकी टोलीसे मैंने रामधुनका गान कराया। वे सब-के-सब बहुत गरीब थे। कोई माली था, कोई धोबी और कोई चौकीदार। उनके मालिक वहाँसे भाग गये थे और बाड़ीकी रक्षाका काम उनपर छोड़ गये थे। पहली बार जब हम उनकी बाड़ीमें गये तो छोटे-छोटे लड़के-लड़कियोंकी एक टोली वहाँ खेल रही थी। अपरिचित चेहरोंको देखते ही वे डरके मारे भागकर घरके अंदर घुस गये। उनके माँ-बापने हमें बतलाया कि थोड़े ही समय पहलेतक वे मुसल्मानी वस्त्र पहना करते थे। एक मौलवी उन्हें रोज नमाज सिखाने आया करता था। उनपर आतङ्कका वायु-मण्डल छाया हुआ था। 'दुनियामें हमारा कोई नहीं। हम निराश्रय हैं।'—बस, यही उनका विलाप था।

'तुम कभी रामनाम लेते हो ?' मैंने उनसे पूछा।

'कैसे लें ? हिम्मत नहीं पड़ती।'

'आखिर अपने घरोंमें तो ले सकते हो ? इसमें डर है ?'

'आप नहीं जानते हमपर क्या गुजरी है ?'

'अच्छा, तो आजसे शुरू करो। चलो, अभी साथ बोलो।'

उन्होंने मेरी बात मान ली। जैसे-जैसे रामधुन-गानका जमता गया, वे अपने-आपको, अपने आस-पासकी चीजें बिल्कुल भूल गये और उनके चेहरोंपर एक नया तेज झलकने लगा। उनकी आँखोंमें आशाकी एक नयी कि फूट पड़ी। यह भाव चला गया कि उनका कोई नहीं। उन्होंने 'निर्बलके बल राम' को पा लिया था।

इसके बाद हमने दो गाँवोंके सब स्त्री-पुरुषोंको ए जगह इकट्ठा करके उनका सम्मिलित हरि-कीर्तन कराया यह इस जगहके लिये एक बड़ी चीज थी। शाहपुर बाजार पिछले दंगेके बाद पहली ही बार शङ्खनाद सुननेमें आया।

हमारे पड़ोसके गाँव कारटरखीलमें पुनर्वासका का बहुत देरसे शुरू हुआ था। उसकी उद्घाटन-क्रिया पिछ अप्रैल महीनेमें हुई थी। वहाँ सवर्ण-अवर्ण सबका ए सहभोज किया गया। इसी समय शाहपुर बाजारमें मुसल्मानों का एक जुलूस 'अल्लाहो अकबर' इत्यादिके नारे लगाता हुआ सामने डिस्ट्रिक्ट बोर्डके रास्तेसे गुजरा। खबर मिली कि किसी अपरिचित व्यक्तिने एक मालीकी बाड़ीमें घुसकर वहाँ अकेले एक मालीके लड़केको पीट दिया है।

शरारत करनेवालेका कुछ पता न चला। मैं जुलूसके पीछे-पीछे सोमपाड़ा बाजारतक गया। जुलूसमें कई लोग ऐसे थे, जिनसे मेरी दोस्ती हो चुकी थी। जब मुझे तसल्ली हो गयी कि वे कुछ फसाद नहीं करना चाहते, तो मैं वहाँ लौटा। सहभोज अभी चल रहा था। मैंने लोगोंसे कहा।

'जुलूसवालोंके नारे सुनकर जिन लोगोंके दिल नहीं दहले थे, वे हाथ ऊँचे करें।' जवाबमें पाँच पुरुष और केवल तीन स्त्रियोंने हाथ ऊँचे किये।

मुझे इस बातसे बड़ी चोट पहुँची और रातभरकी बेचैनीके बाद दूसरे ही दिन सवेरे मैंने उनसे सामूहिक राम-धुन-कीर्तनका मर्म समझाया। बादमें उन सबने अपनी बरबाद ठाकुरबाड़ीके सामने इकट्ठा होना शुरू किया। अपने बीसियों प्रवचनोंमें मैंने उन्हें जो बात समझायी, उसका तात्पर्य यह है कि जो ईश्वरका भय रक्खे, ईश्वर उसका सब भय हरण करता है। मृत्युका भय हमें कायर बनाता है; किंतु भगवान्-का भय समस्त भौतिक भयको मिटाता है।

दृष्टान्तके तौरपर मैंने पूछा कि 'जगत्में क्या कोई ऐसा व्यक्ति है, जो मरेगा नहीं? इससे उल्टे क्या किसीकी मृत्यु एकसे अधिक बार हो सकती है? अगर नहीं, तो आदमी अपने धर्म और प्रतिष्ठाकी रक्षा करते-करते मर्दानगीसे दुष्टके खंजरका मुकाबला करते हुए मरे, यह अच्छा कि प्लेग, हैजा या शीतलासे तड़प-तड़पकर मरे यह अच्छा? और यदि हम सचमुच ईश्वरको अपना प्रियतम, सखा या रक्षकके रूपमें मानते हैं, तो उसका बुलावा आनेपर हम क्यों डरें? क्या हम यह नहीं मानते कि उसकी मरजीके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता ....?

'सवाल यह है कि हममें ईश्वरपर ऐसी जीवन्त श्रद्धा है या नहीं? ऐसी जीवन्त श्रद्धा निर्बल-से-निर्बलको भी बलवान्-से-बलवान्की टक्कर झेलनेकी शक्ति देगी। अस्त्र-शस्त्र उसे भयभीत न कर सकेंगे। आखिर मृत्युसे बढ़कर तो और कुछ भी वे नहीं दे सकते न?

'उदाहरणस्वरूप रामधुन-कीर्तन चल रहा हो, तब अगर हजारों गुंडोंका एक दल लाठी, भाला, छुरा इत्यादि लेकर हमपर चढ़ आये और सब स्त्री-पुरुष और बच्चे उसकी ओर तनिक भी ध्यान न देते हुए केवल अपने कीर्तनमें लीन रहें और मर जायँ, मगर न इधर-उधर भागें, न डगमगायें और न चेहरेका रंग पीला पड़ने दें, तो गुंडे हक्के-बक्के रह जायँगे। वे अनुभव करेंगे कि इन निःशस्त्र स्त्री, पुरुष और बच्चोंकी पीठपर कोई ऐसी शक्ति है, जो हमारे पास नहीं है और जो लाठी एवं भालेकी शक्तिसे कहीं बढ़-चढ़कर है और मौतके भयको भी परास्त कर देती है। शर्त सिर्फ इतनी है कि हमारे दिलोंमें न तो भयका लवलेश हो, न गुस्सा या द्वेष?'

हमने बहनोंको निर्भयताका मन्त्र देनेका विशेष यत्न किया। स्त्रीको निर्बल माना गया है और वह स्वयं अपने-आपको निर्बल मानने लगी है। पुरुष भले अपने-आपको फुसला लें कि वे अपने भुजबलसे अपनी रक्षा कर लेंगे; किंतु स्त्री तो इस तरह अपनेको फुसला भी नहीं सकती। उसका तो एकमात्र सहारा आत्मबल, सत्याग्रह और रामबल ही है। इसलिये 'निर्बलके बल राम' का ही स्मरण उसके हर श्वास-उच्छ्वासके साथ होना चाहिये।

हमारे शास्त्रोंमें लिखा है कि अन्तकालमें जो 'राम'का नाम लेता है, वह ईश्वरको पाता है। किंतु मौतकी तो घड़ी कोई नहीं। वह किसी भी क्षण आ सकती है। इसलिये हमारी तैयारी इसके लिये प्रतिक्षण रहनी चाहिये। एक क्षणके लिये भी हमसे भगवान्का चिन्तन छूटना नहीं चाहिये।

और अगर राम-नामका स्मरण केवल कण्ठसे नहीं बल्कि हृदयसे भी होता है, तो उसकी झलक हमारे दिन-प्रति-दिनके जीवनकी छोटी-से-छोटी घटनामें भी दीखनी चाहिये। यदि इस तरहसे आप रामनामको अपनायें तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आप गुंडोंके सामने नहीं काँपेंगी, बल्कि गुंडे आपके सामने काँपेंगे।

आखिरके उद्गार यों ही मेरे अन्तःकरणसे निकल गये। सम्भव है, अगर मैं इसपर विचार करने बैठता, तो मुँहसे निकालते जबान रुकती।

शुरूमें बहनोंको सीधी कतारमें सिर ऊँचा करके खड़े कराना और ऊँचे स्वरसे ताकतके साथ भय और लज्जाके बिना रामधुन गवाना कोई आसान बात न थी। परंतु थोड़े समय बाद उनका सारा संकोच दूर हो गया और आखिर यह हालत हो गयी कि जहाँ पहले रामधुन गानेमें पुरुष पहल किया करते थे और स्त्रियाँ अनुकरण करती थीं, वहाँ थोड़े समय बाद गानेमें स्त्रियाँ पहल करने लगीं और पुरुष उनके पीछे-पीछे चलते थे!

संकीर्तनप्रेमियोंके प्रति

(लेखक—स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी अवधूत)

कलिपावनावतार, प्रेममूर्ति, भावनिधि श्रीश्रीगौराङ्गदेव कीर्तनके विषयमें अपने श्रीमुखसे कह रहे हैं—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

जो कीर्तन करनेवाले हैं उन्हें चाहिये कि वे अपने कुल, विद्या, रूप, जाति और धनादिके मदको सर्वथा तिलाञ्जलि दे दें; अपनेको महान् और दूसरोंको तुच्छ न समझें । केवल इतना ही नहीं, अपितु तृणसे भी सुनीच—अत्यन्त नीच होकर रहें । अर्थात् जिस प्रकार तृण दलित होनेपर थोड़ी ही देरमें फिर सिर उठा लेता है, उस अपमानके कारण अपना कोई पराभव नहीं समझता; उसी प्रकार कीर्तनप्रेमीको भी तिरस्कार और अपमानसे पराभूत नहीं होना चाहिये; उसे भी भगवान्‌की कृपा ही समझना चाहिये । इस प्रकार अत्यन्त दीनभावसे प्रभुके प्रत्येक विधानमें प्रसन्न रहना चाहिये । यही नहीं, उसमें वृक्षसे भी बढ़कर अत्यन्त सहनशीलताकी भी आवश्यकता है । जिस प्रकार वृक्ष जाड़ा, गरमी और वर्षादि ऋतुओंके द्वन्द्वोंको सहन करता है; अपनी ही शाखाका छेदन करनेवालोंपर भी छाया करता है और पत्थर या ढेला मारनेवालेको भी बहुत मीठा फल देता है; उसी प्रकार कीर्तनप्रेमियोंको भी अपने विरोधियोंके किये हुए तिरस्कार, उपहास एवं उपेक्षा आदिको बेपरवाहीके साथ सहन करना चाहिये । यदि कोई कटु-भाषण करे तो उसे मीठी बोली बोलकर प्रसन्न करना चाहिये तथा किसीके मर्मभेदी शब्द सुनकर भी किसी प्रकार क्षुब्ध नहीं होना चाहिये । गोसाईं श्रीतुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

'बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें । खल के बचन संत सह जैसें ॥'

इस प्रकार अत्यन्त विनम्र और सहनशील होकर किसी प्रकारके मानकी इच्छा न रखते हुए तथा स्वयं सबका सम्मान करते हुए सर्वदा श्रीहरिका नाम-कीर्तन करे । तभी प्रभुका प्रसाद प्राप्त होता है ।

कीर्तनप्रेमीमें भाव, आचार और शरीर तीनोंकी संशुद्धिकी बड़ी आवश्यकता है । इनका विवरण इस प्रकार है—

भाव-संशुद्धि—कीर्तनकारको केवल प्रभुप्रेमकी ही अभिलाषा होनी चाहिये । उसे मान, बड़ाई, ईर्ष्या, द्वेष एवं लोभ आदि सब प्रकारके मलिन भावोंसे दूर रहना चाहिये । कीर्तनप्रचारका बहाना करके दम्भपूर्वक अपना स्वार्थ-साधन नहीं करना चाहिये । आजकल कीर्तनकी ओटमें बड़ा अनर्थ भी हो रहा है । कोई भोली-भाली अबलाओंको एकत्रित कर उनकी श्रद्धाका दुरुपयोग करनेकी चेष्टा करते हैं तो कोई इसीसे अपनी आजीविका चला रहे हैं और कोई अपनेको भक्त कहलाकर पुजवानेके लिये किसी कीर्तन मण्डलीमें घुस जाते हैं । इस प्रकारके भाव कीर्तनके सर्वथा विरुद्ध हैं । इन मलिन भावोंसे रहित होना ही 'भावसंशुद्धि' है । जिसका शुद्ध भाव होता है, वह केवल प्रभुप्रेमसे प्रेरित होकर उन्हींको रिझानेके लिये और उन्हींको सुनानेके लिये उनके पवित्र नामोंका कीर्तन करता है; उसे लोक या किसी भी प्रकारकी लौकिक वस्तुकी तनिक भी इच्छा नहीं होती ।

आचार-संशुद्धि—शुद्ध आचारके बिना तो श्रीभगवान्‌के पवित्र नामोंके उच्चारणका अधिकार ही नहीं होता । जो लोग अपनी संस्कृतिको छोड़कर पाश्चात्य सभ्यताका अनुकरण करते हुए भक्ष्याभक्ष्यका कोई विचार नहीं करते—होटलोंमें सबके स्पर्श किये हुए अपवित्र चाय, बिस्कुट, डबलरोटी अथवा अण्डा-मांस-मदिरादिका सेवन करते हैं, वे व्यर्थ ही अपनेको प्रभुप्रेमी बतलाते हैं । प्रभुप्रेमी कभी स्वधर्मकी अवहेलना नहीं करते । जो धर्मका तिरस्कार करते हैं, उनका चित्त शुद्ध कैसे हो सकता है ? और जिनका चित्त ही अशुद्ध है, उन्हें भगवान् या भगवन्नाममें वास्तविक प्रेम कैसे हो सकता है ?

कुछ लोग भगवन्नामके आधारपर जाति-पाँतिके भेदको मिटाना चाहते हैं । वे कहते हैं—

'हरिको भजै सो हरिका होई । जाति पाँति पूछै ना कोई ॥'

ठीक है, हरिका होनेके लिये तो हरिको भजना ही एकमात्र उपाय है । भगवान्‌की स्वयं कोई जाति-पाँति नहीं है । इसलिये वे जीवको अपनानेमें जाति-पाँतिका विचार अवश्य ही नहीं करते । परंतु जीव तो कर्मोंके अधीन है और उन्हें कर्मानुसार ही जाति आदिकी प्राप्ति भी हुई है । अतः उ

कर्मबन्धनसे छूटनेके लिये उन्हें अपने-अपने वर्णाश्रमानुकूल धर्मोंका पालन करना ही चाहिये। आजतक जो निम्न वर्णोंमें उत्पन्न हुए कबीर, रैदास, सदना, नामदेव और धन्ना आदि भक्त हुए हैं, वे अवश्य ही भक्त थे पर उन्होंने भी अपने जातिगत या समाजोचित आचारका त्याग नहीं किया था; फिर हमलोग किस प्रकार उसकी उपेक्षा करनेका साहस करते हैं? चातुर्वर्ण्यकी व्यवस्था स्वयं भगवान्‌की की हुई है—**'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'** (गीता ४। १३)। अतः जीवोंको उसका उच्छेद करनेका अधिकार नहीं है।

शारीरिक संशुद्धि—कीर्तन करनेवालोंको शारीरिक शुद्धिका भी बहुत ध्यान रखना चाहिये। नियमानुकूल स्नानादि करना तथा शुद्ध और सात्त्विक आहारका सेवन करना—ये इसके प्रधान अङ्ग हैं। ऐसा न करनेसे शरीर और मनमें तमोगुणकी वृद्धि होती है, जो भजन-भावका बहुत बड़ा प्रतिबन्धक है। जो लोग राजस-तामस प्रकृतिके हों, उनके स्पर्श किये हुए पदार्थ भी भोजन नहीं करने चाहिये। शरीरको तामसिक मलिन अपवित्र पदार्थोंके सेवनसे सदा दूर रखना चाहिये। हमारे शास्त्रोंमें तो भगवद्भजनके लिये शरीर और स्थानकी शुद्धिपर बहुत जोर दिया गया है। अतः कीर्तनकारको भी इनका अवश्य पूरा ध्यान रखना चाहिये। उसे कीर्तन-स्थानको भी गोमय, कदलीपत्र, आम्रपत्र, मङ्गलघट और धूप-दीपादिसे सुशोभित करना चाहिये तथा श्रीभगवान्‌का चित्रपट स्थापित करके उनके सामने कीर्तन करना चाहिये। देवालयोंमें तो ये सब बातें स्वभावतः ही सुलभ होती हैं। अतः कीर्तनके लिये सबसे उपयुक्त स्थान देवस्थान, निर्जन नदीतीर अथवा तीर्थस्थानादि ही हैं। ऐसे स्थानोंपर नित्य कीर्तन करनेका सुयोग न हो तो अपने घरमें ही किसी कमरेको लीप-पोतकर ठीक कर लेना चाहिये तथा उसे ऐसी वस्तुओंसे सुसज्जित करना चाहिये, जिससे कीर्तनानन्दका उद्दीपन हो। लीपने-पोतने लायक कमरा न हो तो उसे साफ, शुद्ध तथा सात्त्विक बिछावन आदिसे सम्पन्न रखना चाहिये।

× × ×

पद-कीर्तनमें आजकल सूर, तुलसी और मीराँ-जैसे सच्चे भक्तों तथा सर्वमान्य संतोंकी वाणियोंके स्थानमें आधुनिक गजल, कव्वाली, रेखते और ठुमरियोंकी बाढ़ आने लगी है। सिनेमाके गाने भी स्थान पाने लगे हैं। इसका कारण कीर्तनकारोंकी भावशून्यता ही है। वे भगवान्‌को रिझानेकी अपेक्षा मनचली जनताको प्रसन्न करने तथा अपनी क्षुद्र लोकवासनाको तृप्त करनेमें ही अपनी कृतकार्यता समझने लगे हैं। सूर, तुलसी, मीराँ, कबीर, दादू, नरसी, हरिदास, हरिवंश, तुकाराम, नंददास, हितहरिवंश, नारायणस्वामी और ललितकिशोरी आदि भावुक भक्त और सच्चे त्यागी संतोंकी रचनामें जो अलौकिक शक्ति और प्रसाद है, वह आधुनिक विलासप्रवण लोगोंकी वाणीमें आ ही नहीं सकता। वाणी तो वक्ताका हृदय ही होती है; अतः भक्त-हृदयसे निकली हुई वाणी ही हमारे भक्तिभावको उद्दीप्त कर सकती है; उन महापुरुषोंके अनुभवपूर्ण हृदयसे निकले हुए भावपूर्ण पद ही हमारे हृदयके कल्मषको धोकर स्वच्छ करनेमें समर्थ हैं और उन्हींके द्वारा अश्रु-रोमाञ्चादि सात्त्विक भावोंका विकास हो सकता है। इसलिये हमें प्राचीन आचार्य और संतजनोंके पद और वाक्योंद्वारा ही कीर्तन करना चाहिये, तभी हमें कीर्तनका सच्चा आनन्द मिल सकता है। पण्डितराज जयदेवका गीतगोविन्द एक बड़ा अपूर्व ग्रन्थ है। उसके विषयमें प्रसिद्ध है कि उसका प्रेमपूर्वक गान करनेपर तो स्वयं भगवान् उसे सुननेको आते हैं। कहते हैं, एक बार जगन्नाथपुरीमें एक मालीकी लड़की फूल तोड़नेके समय गीतगोविन्दके पद गाया करती थी। उस समय भगवान् जगन्नाथदेव उसके पीछे-पीछे घूमा करते थे। तब बागके काँटेदार वृक्षोंमें उलझनेसे उनका वस्त्र फट जाता। भगवत्प्रेममें मतवाली उस बालिकाको इसका कुछ भी पता नहीं था; किंतु पुजारीलोग देखते कि भगवान्‌के वस्त्र फट जाते हैं और उनके पास कोई जाता भी नहीं है। एक दिन भगवान्‌ने स्वप्नमें उन्हें इसका सारा रहस्य बता दिया। तब उन्होंने बड़े आदरसे उस बालिकाको लाकर भगवान्‌को पद सुनानेकी सेवामें नियुक्त कर दिया। ऐसी अपूर्व शक्ति आजकलकी भाव-शून्य रचनामें कहाँसे आयेगी? ऐसी ही बातें सूर, तुलसी आदि अन्यान्य भक्तोंकी वाणियोंके विषयमें भी प्रसिद्ध हैं। अतः भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये प्रेमपूर्वक उन्हींका गान करना चाहिये। (अवश्य ही गीतगोविन्दके अधिकारी सब नहीं हैं।)

× × ×

इस मनुष्यजीवनका कोई भरोसा नहीं है। इसके प्रत्येक श्वासका बड़ा मोल है। अतः उसका पूरा सदुपयोग करना चाहिये। एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। पता

नहीं एक बार बाहर निकलनेपर फिर तुम्हारा श्वास लौटकर आवे या न आवे। इसलिये निरन्तर नाम-कीर्तन करो।

सांस-सांसपर कृष्ण भज, वृथा साँस मत खोय।
ना जाने या साँसको आवन होय, न होय॥

जो जीवनके इन अमूल्य श्वासोंको व्यर्थ गँवा देता है, उसे पीछे पछतानेके सिवा और कुछ हाथ नहीं लगता।

इसका प्रत्येक श्वास भगवत्स्मरणका साधन होनेसे अमूल्य रत्नके समान है। एक भी श्वास व्यर्थ खोना बड़ी भारी मूर्खता है। परंतु यदि अन्तिम श्वासका भी भगवच्चिन्तनमें उपयोग हो जाय तो भी हमारे सारे पाप-ताप कटकर हमें अमर पदकी प्राप्ति हो सकती है। अतः अब भी समय है। जीवनके प्रत्येक क्षणको महान् मूल्यवान् समझकर हमें उसका भगवच्चिन्तनमें ही सदुपयोग करना चाहिये, विषयरूप कंकड़-पत्थर बटोरनेमें उसे नष्ट नहीं करना चाहिये।

× × ×

भगवत्प्रेमकी बातें बड़ी गूढ़ हैं। उनका यथावत् रहस्य प्रेमीजन ही जानते हैं। रंगमहलमें क्या होता है—यह तो महलोंके भीतर रहनेवाला ही जान सकता है। जंगलमें भेड़ चरानेवाला गड़ेरिया महलोंके सुखकी कल्पना कैसे कर सकता है? प्रेमरसकी परख भी प्रेम-पारखी रसिक जौहरी ही कर सकते हैं। विषयी लोग तो शाक-भाजी बेचनेवालोंके समान हैं। वे उसका मूल्य क्या जानें? यही बात किसी रसिकने कैसे मार्मिक शब्दोंमें कही है—

महलीकी गति महली जानै, को जानै बाहरवारो।
नृपकी रैन-चैन को कहा जाने भेड़ चरावनहारो॥
रस-रतननको रसिक जौहरी नीके परखनहारो।
बाकी कहा परख करि जानै मूरी बेचनहारो॥

ठीक है, रसिककी बातें रसिक ही जान सकते हैं, अरसिक नहीं जान सकते—

'भगवतरसिक रसिककी बातें रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना।'

अतः यदि भगवत्प्रेमकी सच्ची लगन है तो प्रेमियोंका ही सङ्ग करो। वे निरन्तर श्रीकृष्णलीलाका कीर्तन करते हुए प्रेमानन्दमें छके रहते हैं। प्रेम ही उनका धन है। वे ही तुम्हें भी प्रेमदान कर सकते हैं।

सच्चे प्रेमी एक क्षणको भी भगवच्चिन्तनके बिना नहीं जाने देते। उनका तो सारा समय भगवद्गुणगान, भगवत्-प्रसादके आस्वादन, भगवद्धामोंकी यात्रा, भगवज्जनोंकी सेवा और भगवद्विग्रहोंके दर्शनादिमें ही जाता है। सचमुच, मनुष्यजीवनकी सार्थकता भी इसीमें है। यदि भगवत्कर्मके सिवा किन्हीं अन्य कामोंमें समय जाता है तो जीवन व्यर्थ ही है। यही बात रसिकशिरोमणि श्रीहरिदासजी महाराज भी कहते हैं—

गायौ न गुपाल मन लायके निवारि लाज,
पायौ न प्रसाद साधुमंडलीमें जायके।
धायौ न धमकि बृंदा-बिपिनकी कुंजनमें,
रह्यौ न सरन जाय बिट्ठलेस रायके॥
नाथ जू न देखि छक्यौ छिनहू छबीली छबि,
सिंह पौरि परयौ नाहिं सीसहू नवायके।
कहै हरिदास तोहि लाजहू न आवै नेक,
जनम गँवायौ न कमायौ कछु आयके॥

रात-दिन राम रटो

न मिटै भवसंकटु, दुर्घट है तप, तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलिमें न बिरागु, न ग्यानु कहूँ, सबु लागत फोकट झूँठ-जटो॥
नटु ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक-कौतुक-ठाट ठटो।
तुलसी जो सदा सुखु चाहिअ तौ, रसनाँ निसिवासर राम रटो॥

इस संसारका संकट मिट नहीं सकता, क्योंकि तप तो कठिन है; और तीर्थोंमें अनेक जन्मोंतक विचरते रहो, किंतु कलियुगमें न कहीं वैराग्य है, न ज्ञान है। सब सारहीन और असत्यपूरित प्रतीत होता है। नटकी भाँति अपने पेटरूपी कुत्सित पेटारेसे करोड़ों इन्द्रजालके कौतुकका ठाट मत ठटो। गोसाईंजी कहते हैं कि जो सदा सुख चाहते हो तो जिह्वासे रात-दिन राम-नाम रटते रहो।

मुक्तिका राजमार्ग—नाम-जप

(लेखक—श्रीराजमंगलनाथजी त्रिपाठी)

मनुष्यका स्थान चराचर जगत्के जीवोंमें बहुत ऊँचा है। वह अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोषोंसे निर्मित होनेके कारण परमेश्वरके पाँच अंशोंसे युक्त होता है और चौरासी लाख योनियोंसे ऊपर उठा हुआ है। वह परमात्म-तत्त्वको पानेका अधिकारी है। जिनके पाप अवशिष्ट हैं, वे भवबन्धनमें पड़े रहेंगे। उन्हें द्वन्द्वोंके मोहमें मुग्ध रहना है। संसार असत् है, असत्कार्यसे मनुष्य संसारमें बँधता है। परमात्मा सत् है। सत्कार्य ही मनुष्यको परमात्म-तत्त्वकी ओर अग्रसर करता है। सत्कार्यसे पापोंका क्षय होता है। सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंके मोहसे मुक्ति मिलती है। द्वन्द्वमुक्त होकर मनुष्य भगवान्की सेवाका, भजनका दृढ़ व्रत लेता है। धन्य हैं ऐसे पुण्यशाली भक्त! भगवान्की अमरवाणी है—

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥
(गीता ७। २८)

परंतु, भगवान्का भजनरूपी सत्कार्य कैसे सम्पन्न हो? वैसे तो भगवान्ने अपना मार्ग साफ बतला दिया है—'**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।**' 'जो जिस रूपमें भजेगा, मैं उसको उसी रूपमें मिलूँगा।' फिर भी भक्तिका मार्ग सरल नहीं होता। 'एहिं सर आवत अति कठिनाई' **बड़े अनुभवीका कथन है। सकामभावसे हो, चाहे निष्कामसे—जो भगवान्का भजन आवश्यक समझता है, उसे एकान्तनिष्ठा और अनन्य-शरणागतिका सहारा लेना पड़ता है। तभी अभीष्ट-की सिद्धि हो सकती है।**

अनन्य शरणागतिके लिये कुछ अभ्यास करना पड़ेगा। शोक-मोहसे मुक्त करनेवाली परमार्थनिरूपिणी भगवान्की वाणी ही मार्ग-प्रदर्शन भी करेगी।

'मदीयोपासनां कुरु, मामेव प्राप्स्यसि'

इससे बढ़कर प्रोत्साहन क्या होगा?

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि॥ (गीता १३। १०)

—इससे बढ़कर भगवान्को जाननेका, भगवान्को और भगवान्की अहैतुकी कृपा प्राप्त करनेका मार्ग कहाँ मिलेगा? सम्भवतः इससे भी बढ़कर एक और यज्ञानुष्ठान है। उसे भी भक्तोंकी कल्याणकामनासे भगवान्ने स्वमुखसे कह ही दिया है—'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।' (गीता १०।२५) तब तो वस्तुतः राजमार्ग मिल गया। भक्त भक्तिभावनामें भीज-भीजकर अपने परमरसामृतमूर्ति इष्टदेव भगवान्को उनका नाम लेकर पुकारे, उनकी कृपा, करुणा और शरणकी याचना करे।

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

नामोच्चारणकी औषधसे तापत्रयका विनाश अवश्यम्भावी है। जपयज्ञकी महिमा ही ऐसी है। भवाब्धिमें डूबते-उतराते मनुष्योंको पार लगानेके लिये नामोच्चारणरूपी नौकासे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं।

'कहत कबीर नाव नहिं छाड़ौ, गिरत परत चढ़ि ऊँचा।'
'कलि महँ केवल नाम अधारा।'

क्रान्तदर्शी सभी ज्ञानी भक्त इस विषयमें एकमत हैं। इस महायज्ञका अनुष्ठान सफल होगा तपसे। साधारण तप नहीं, परम तप। **स्मृति कहती है—**

'मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः।'

'मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता ही परम तप है।' इस परम तपके द्वारा नाम-जप करता हुआ मनुष्य शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और समाहित होकर भगवान्की प्रीति पाकर भगवन्मय हो जाता है—भक्त-भगवान् एक प्राण हो जाते हैं।

'अहं प्राणश्च भक्तानां भक्ताः प्राणा ममापि च।'
(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

कुछ प्रख्यात भगवन्नामोंके अर्थ

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

अनन्त हैं भगवान्‌के नाम । उनकी गणना कर पाना किसीके लिये सम्भव नहीं है । सहस्रनाम ही बहुत-से प्रचलित हैं । यहाँ तो केवल कुछ थोड़े-से लोकप्रचलित नामोंका अर्थ दिया गया है । इन नामोंका यही और इतना ही अर्थ नहीं है, इनके अन्यान्य बहुत-से अर्थ भावुकों तथा विद्वानोंने किये हैं और किये जा सकते हैं । भगवन्नाम साक्षात् भगवत्स्वरूप है । उसमें अचिन्त्य शक्ति है । जपोच्चारणमात्रसे वह अपना प्रभाव प्रकट करता है । लेकिन उसका अर्थ भी हृदयंगम हो तो अधिक तथा शीघ्र लाभ होता है, यह बात संत तथा शास्त्र मानते हैं । इसीलिये यह प्रयास है ।

१—**ॐ**—यह प्रणव है । इसमें अ, उ, म्—ये तीन अक्षर, अर्धमात्रा तथा बिन्दु—ये अङ्ग हैं । यह सगुण-निर्गुण उभयात्मक समग्र परमात्म-तत्त्वका वाचक है । इसमें 'अ' सत्त्वगुण तथा सृष्टिपालक भगवान् विष्णुका, 'उ' रजोगुण तथा ब्रह्माजीका, 'म्' तमोगुण तथा शिवका वाचक है । अर्धमात्रा प्रकृतिकी सूचक है और बिन्दु परब्रह्मका बोधक है । इस प्रकार प्रणव समग्र ब्रह्मका वाचक है । सम्पूर्ण वेदका प्रणवसे ही प्रादुर्भाव माना जाता है । साम्यावस्था-प्राप्त प्रकृतिमें जो सृष्टिके लिये प्रथम क्षोभ हुआ, उसकी ध्वनि प्रणवकी है । यह अनाहत नाद है और इसका उच्चारण 'दीर्घघण्टा-निनादवत्' होता है ।

२—**ब्रह्म**—विष्णुपुराणने कहा है कि जो समस्त भेदोंसे रहित, सत्तामात्र, वाणीका अविषय एवं स्वसंवेद्य है, उस ज्ञानका नाम 'ब्रह्म' है । श्रुतिने भी 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' कहा है । इस प्रकार यह शब्द निर्गुण-निराकार परमात्म-स्वरूपका बोधक है ।

३—**परमात्मा**—यहाँ 'आत्मा' शब्दका अर्थ जीव है । उस आत्मा (जीव) से जो श्रेष्ठ है, वह 'परमात्मा' है । गीतामें '**अक्षरादपि चोत्तमः**' कहकर पुरुषोत्तम परमात्मरूपका वर्णन है । सृष्टिका जो मूल कारण है; जिसके संसर्गके बिना प्रकृतिमें सृजन-क्रिया सम्भव नहीं, उस सविशेष सर्वव्यापक चित्-तत्त्वको 'परमात्मा' कहते हैं ।

४—**भगवान्**—'भग' शब्दका अर्थ करते हुए कहा गया है कि सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण ज्ञान तथा सम्पूर्ण वैराग्यके एकीभावको 'भग' कहते हैं । ये छः पूर्णरूपसे जिसमें नित्य निवास करें, वे 'भगवान्' हैं । यह परमात्मतत्त्वके नित्य, शाश्वत, सगुण स्वरूपका वाचक है ।

५—**ईश्वर**—उत्पत्ति, पालन, प्रलयमें समर्थ तथा 'कर्तुम-कर्तुमन्यथाकर्तुम् समर्थ'को 'ईश्वर' कहते हैं । सम्पूर्ण प्राणियोंमें जो अन्तर्यामीरूपसे स्थित है, वह अन्तर्यामी परमात्मा 'ईश्वर' कहा जाता है । गीताने कहा है—'**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।**' (गीता १८ । ६१) 'अन्तर्यामी रहकर ईश्वर सबका संचालक है ।'

६—**नारायण**—'नार' में जो घर बनाकर रहते हैं, उन्हें 'नारायण' कहा जाता है । 'नार' कहते हैं—जलको, ज्ञानको और नरको भी । इसलिये कारणार्णवशायी परम पुरुष 'नारायण' हैं । ज्ञानके द्वारा जिन्हें प्राप्त किया जाय वे 'नारायण' हैं और नरके सखा, नरके अन्तर्यामी भी 'नारायण' हैं ।

७—**विष्णु**—जो पृथ्वी तथा आकाश एवं सम्पूर्ण लोकोंमें व्याप्त हैं और इन लोकोंसे भी जिनका विस्तार अधिक है, वे भगवान् व्यापक होनेसे तथा विस्तीर्ण होनेसे 'विष्णु' कहे जाते हैं ।

८—**जनार्दन**—'अर्द' धातुका अर्थ पीड़ा, नाश तथा याचना होता है । जो प्रलयकालमें सबका नाश कर देते हैं अथवा जो अवतार लेकर दुष्टजनोंका दमन करते हैं और भक्तलोग जिनकी प्रार्थना करते हैं; जो एकमात्र याचना करने योग्य वरेण्य हैं; वे प्रभु 'जनार्दन' कहे जाते हैं ।

९—**माधव**—'मा' का अर्थ है माया अथवा लक्ष्मी । माया-पति अथवा लक्ष्मीके पति होनेसे भगवान्‌का नाम 'माधव' है ।

१०—**हृषीकेश**—'हृषीक' कहते हैं इन्द्रियोंको । जो मन-सहित समस्त इन्द्रियोंका स्वामी है; जिस अन्तर्यामीकी शक्तिसे मन-इन्द्रियाँ काम करती हैं और जो इन्द्रियों तथा मनसे परे है, वह 'हृषीकेश' है । '**यो बुद्धेः परतस्तु सः ।**' (गीता)

११—**पद्मनाभ**—जिसकी नाभिमें जगत्कारणरूप पद्म स्थित है, वे 'पद्मनाभ' कहे जाते हैं ।

१२—**केशव**—क—ब्रह्मा, अ—विष्णु और ईश—शिव; 'क्रम

अश्च ईशश्च यद् वशे'—ये तीनों जिसके वशमें रहते हैं, वे परमात्मा 'केशव' कहलाते हैं।

१३–मधुसूदन–अर्थात् प्रलय-समुद्रमें मधु नामक दैत्यको मारनेवाले भगवान् विष्णु।

१४–हरि–जो यज्ञमें हविके भागका हरण-ग्रहण करते हैं, वे प्रभु यज्ञभोक्ता होनेसे 'हरि' हैं। **'हराम्यघं स्मर्तृणाम्'** भगवान्‌ने कहा है कि मैं अपना स्मरण करनेवालोंके पापका हरण-नाश कर देता हूँ, इसलिये मेरा नाम 'हरि' है।

१५–अच्युत–जिनके स्वरूप, शक्ति, सौन्दर्य, ऐश्वर्य, ज्ञानादिका कभी किसी कालमें, किसी भी कारणसे, किञ्चित् भी ह्रास नहीं होता, वे भगवान् 'अच्युत' कहे जाते हैं।

१६–वैकुण्ठ–भगवान्‌ने महाभारत शान्तिपर्वमें बताया है कि मैंने पञ्चतत्त्वोंको परस्पर मिश्रित किया, इसलिये (प्रकृतिके विविध तत्त्वोंकी गतियोंको कुण्ठित करनेसे) मेरा नाम 'वैकुण्ठ' है। अथवा जहाँ पहुँचकर जीवकी आवागमनकी गति कुण्ठित हो जाती है, वह प्रभु 'वैकुण्ठ' हैं।

१७–मुकुन्द–मुक्तिदाता होनेसे भगवान्‌को 'मुकुन्द' कहा जाता है।

१८–श्री–शोभा, सम्पत्ति, ऐश्वर्यस्वरूपा होनेसे पराशक्ति 'श्री' कही जाती है।

१९–लक्ष्मी–जो महाशक्ति सबकी लक्ष्यरूपा हैं, सभी जिनकी कृपा चाहते हैं, वे लक्ष्यभूता पराशक्ति 'लक्ष्मी' कहलाती हैं।

२०–रमा–सृष्टि, स्थिति, प्रलय जिनकी क्रीडा है; जिनकी शक्तिसे निखिल ब्रह्माण्ड क्रीड़ा कर रहे हैं, जो नित्य क्रीड़ामयी हैं, वे आदि शक्ति 'रमा' कही जाती हैं।

२१–शिव–निस्त्रैगुण्य–त्रिगुणरहित शुद्ध सच्चिदानन्दतत्त्व 'शिव' कहलाता है। अशुभनिवारक, कल्याणस्वरूप होनेसे भी वे 'शिव' कहे जाते हैं।

२२–शंकर–'शं' का अर्थ है—कल्याण। जीवके परम कल्याणकर्ता होनेसे भगवान् शिवको 'शंकर' कहा जाता है।

२३–शम्भु–'शं' का अर्थ है मङ्गल। वह जिसके द्वारा प्राप्त होता है, वे प्रभु 'शम्भु' कहे जाते हैं।

२४–मृड–(मृड् हर्षे) जो आनन्दस्वरूप हैं तथा सम्पूर्ण जगत्‌को हर्षित करते हैं।

'मृडनाम हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः।'

(भागवत)

२५–पशुपति–'पशुः जीवः' पराधीनता ही पशुत्व है। अतः कर्मपराधीन जीवमात्र पशु हैं। इन जीवोंके संचालक, नियन्त्रक, पालक होनेसे भगवान् शिव 'पशुपति' कहलाते हैं।

२६–स्थाणु–स्थाणु अर्थात् स्थिररहनेवाला। निर्विकार, निष्क्रिय, अविचल होनेसे शंकरजीको 'स्थाणु' कहा जाता है।

२७–शर्व–'शृणाति संहरतीति' जो प्रलयके समय समस्त जगत्‌का संहार करते हैं।

२८–ईशान–'ईशानः नियन्ता'—समस्त प्राणियोंके परम नियामक होनेसे भगवान् शिवका नाम 'ईशान' है।

२९–रुद्र–रुलानेवाले। जो प्रलयकालमें प्रजाका संहार करके सबको रुलाते हैं वे 'रुद्र'। अथवा 'रुद् ददाति' वाक्-शक्तिके प्रदाता। शिवपुराणके अनुसार 'रुद्र'का अर्थ है—दुःखों तथा दुःखोंके कारणको दूर कर देनेवाले।

> रुर्दुःखं दुःखहेतुं वा तद् द्रावयति यः प्रभुः।
> रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम्॥

३०–महादेव–सबसे श्रेष्ठदेवता। जो समस्त भावोंको छोड़कर अपने ही ज्ञान एवं ऐश्वर्यसे महिमान्वित हैं। 'देव-प्रकाशक' अतः 'महादेव'–परम प्रकाशक।

३१–उमा–'उ शिवं माति–मिमीते' जो भगवान् शंकरमें अभिन्नरूपसे (अर्धनारीश्वर रूपमें भी) स्थित होकर उन्हें माप रही हैं; जो शिवमें व्याप्त हैं; वे पराशक्ति उमा हैं।

३२–दुर्गा–'दुःखेन गम्यते'—जिनकी प्राप्ति बड़े कष्टसे होती है।' **'दुर्गतिं नाशयति इति दुर्गा'** जो भक्तकी दुर्गतिका निवारण करनेवाली हैं, वे पराशक्ति 'दुर्गा' कही जाती हैं।

३३–ब्रह्मा–अव्यक्त ब्रह्म (निराकार परमात्मा) को जो साकाररूपमें 'आनयति' लाते हैं—सृष्टि करते हैं, उन जगत्स्रष्टाको 'ब्रह्मा' कहा जाता है।

३४–हिरण्यगर्भ–ब्रह्माण्डरूप हिरण्मय अण्डमें जो व्याप्त हैं। यह जगत्‌रूप हिरण्य अण्ड जिनसे व्यक्त हुआ; वे ब्रह्माजी 'हिरण्यगर्भ' कहे जाते हैं।

३५–अज–जो जन्म नहीं लेता—अजन्मा है। अजा–माया, जिसको पराभव नहीं दे पाती।

३६–संकर्षण–प्रलयकालमें जो सम्पूर्ण प्रजाको अपनेमें आकर्षित कर लेते हैं।

३७—शेष—प्रलयमें सम्पूर्ण सृष्टिके नष्ट हो जानेपर भी जो बचे रहते हैं।

३८—भानु—प्रकाशमान, स्वयंप्रकाश एवं सर्वावभासक।

३९—सूर्य—'सूते श्रियमिति सूर्यः'—जो शोभा—कान्तिको उत्पन्न करते हैं।

४०—रवि—'रसनादिति रविः'—जो समस्त रसोंका ग्रहण करते हैं तथा रसकी (जलकी) वृष्टि करते हैं।

४१—सविता—'प्रजानां तु प्रसवनात्'—सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिके जो मूल कारण हैं।

४२—आदित्य—अदितिके पुत्र। 'द्यति खण्डयतीति दितिः, न दितिः—अदिति।' जो सबके पालक हैं और किसीका भी अमङ्गल नहीं करते।

४३—गणेश—गण (भूतगण, जीवगण) के स्वामी अर्थात् समस्त प्राणियों तथा पदार्थोंके परमाधिपति।

४४—राम—'रमन्ते योगिनो यस्मिन्' जिसमें योगीगण रमते—अपने चित्तको लगाते हैं। अथवा 'रमते सर्वेषु भूतेषु'—जो सबके हृदयमें विहार करते हैं, वे परमात्मा 'राम' कहलाते हैं।

४५—सीता—'सीता सीराग्रतो जाता'—जो महाराज जनककी यज्ञभूमिमें हलाग्रसे उत्पन्न हुईं। अथव बन्धने, सिनाति—खण्डयति'—जो भव-बन्धनकी प हैं—उन महाशक्तिको 'सीता' कहते हैं।

४६—कृष्ण—'कृषिर्भूवाचकः शब्दः णश्च निर्वृत्ति 'कृष्‌का अर्थ सत्ता अथवा आकर्षण तथा 'ण' का आनन्द' अतः 'कृष्ण'का अर्थ आनन्दकी सत्ता, आनन्द अथवा आनन्दका आकर्षण, मूर्तिमान् आकर्ष

४७—वासुदेव—'वसुनि—अन्तःकरणे दीव्यति'जो अन्तःकरणोंमें प्रकाशित है और समस्त अन्तःक प्रकाशित करता है, वह अन्तर्यामी परमात्मा।

४८—शौरि—शूरसेनके वंशमें उत्पन्न श्रीकृष्ण। जिनमें नित्य निवास करती है, जिनकी कृपासे प्राणी मा जीतनेका शौर्य प्राप्त करता है, वे भगवान्।

४९—गोविन्द—'गवाम् इन्द्रः गोविन्दः' गायोंके इन्द्र अथवा सम्पूर्ण इन्द्रियोंके स्वामी। 'गोभिः विन्द्यते इन्द्रियैः प्राप्यते' जो सगुण साकार परमात्मा इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त होते हैं, जिनकी प्राप्ति ही इन्द्रियोंकी परम सफलता है।

५०—राधा—'राध्-साध संसिद्धौ'—जो आराधनारूपा हैं और आराधनाकी सिद्धि जिनकी कृपासे ही होती है। या जो श्रीकृष्णकी आत्मा हैं।—'आत्मा तु राधिका प्रोक्ता।'

श्रीरामनामसे मुझे शान्ति मिली

यद्यपि रामनामपर कुछ लिखनेका मैं अपनेको अधिकारी नहीं समझता, परंतु जब मुझसे पूछा गया है तो मैं अपने अनुभवकी कुछ बातें कह रहा हूँ।

श्रीरामनामपर मेरा बड़ा विश्वास है। जब-जब मुझे किसी तरहकी अड़चन या अशान्ति हुई है तब-तब मैंने नाम-स्मरण किया है और उससे मुझे शान्ति मिली है, यह मेरा अनुभव है। इस सम्बन्धमें जिन-जिन विद्वानोंसे मेरी बातें हुई हैं, सबका प्रायः एक मत मिला है। यद्यपि मुझे जितना नाम-स्मरणके कार्यमें लगना चाहिये, उतना मैं अभी नहीं लग सका हूँ। परंतु मेरा विश्वास और अनुभव यह कहनेके लिये मुझे वाध्य कर रहा है कि रामनाम शान्ति प्राप्त करनेके लिये एक बड़ा उत्तम साधन है। अवश्य ही पाप-वृत्तिको छोड़कर नाम लेना चाहिये। जो लोग रामनामका बहाना लेकर पाप करनेमें नहीं सकुचाते, मेरी समझसे वे अपराधी बनते हैं। रामनाम लेनेवालोंको मनसे पवित्र बनना चाहिये। पापकी भावना छोड़ देनी चाहिये और विश्वास करके नाम-स्मरण करना चाहिये। केवल माला लेकर बैठनेसे काम नहीं चलेगा। सब प्रकारकी लोक-सेवाके कार्योंको ईश्वरसेवाके भावसे रामनामका स्मरण करते हुए करना चाहिये।

इसके सिवा रामनामके प्रेमीके लिये सत्यका आचरण अवश्य कर्तव्य है। मेरी समझसे सच्चे भावसे रामनामका स्मरण करनेवाला असत्यका प्रयोग नहीं कर सकता।

—स्व० भाई श्रीजमनालालजी बजाज

सहस्र नाम सम सुनि सिव बानी ।
जपि जेईं पिय संग भवानी ॥

श्रीभगवन्नाम-प्रशस्तिकणिका

(लेखक—काव्यवेदान्ततीर्थ महाकवि पं० श्रीवनमालिदासजी शास्त्री)

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥

(श्रीचैतन्यमहाप्रभुः)

इस मायामय जगत्में श्रीकृष्ण-संकीर्तन ही विजयको प्राप्त होता है। (१) यह—चित्तरूपी दर्पणका शोधन करनेवाला है, (२) संसारस्वरूप महादावानलको मिटानेवाला है, (३) कल्याणरूपिणी कुमुदिनीके विकासके लिये चन्द्रिकाका विस्तार करनेवाला है, (४) विद्यारूप वधूका जीवनस्वरूप है, (५) आनन्दरूपी समुद्रका बढ़ानेवाला है, (६) पद-पदपर पूर्ण अमृतका आस्वाद करानेवाला है एवं (७) बाहर-भीतरसे सर्वतोभावेन अन्तःकरणपर्यन्त स्नान करा देता है, अर्थात् जीवके अन्तःकरणके समस्त पाप-ताप धो डालता है। इस प्रकार श्रीनाम-संकीर्तनकी सात भूमिकाएँ हैं। आचाण्डाल-पामर-पर्यन्त इन सात भूमिकाओंपर यथाधिकार पहुँचा देनेके कारण कर्म-ज्ञानादि साधनोंकी अपेक्षा श्रीहरिनाम-संकीर्तनकी ही इस जगत्में पूर्ण विजय है। 'परं विजयते'—इस पदसे प्रभुने यह शिक्षा भी दी है कि जैसे ज्ञान-कर्म आदि साधन भक्तिकी सहायताके बिना दुर्बल रहते हैं और अपना पूर्ण फल नहीं दे सकते, वैसे भक्तिबीज हरिनाम-संकीर्तन ऐसा परापेक्षी नहीं है। अर्थात् यह कर्म-ज्ञान आदिकी सहायताकी अपेक्षा नहीं करता; उनके बिना ही परं केवलं विजयते। अतः किसी महापुरुषने कहा है कि—

ब्रह्माण्डानां कोटिसंख्याधिकाना-
मैश्वर्यं यच्चेतना वा यदंशः।
आविर्भूतं तन्महः कृष्णनाम
तन्मे साध्यं साधनं जीवनं च॥

'अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका जो ऐश्वर्य एवं समस्त चैतन्य पदार्थ जिनका अंशमात्र हैं, ऐसे तेजःस्वरूप श्रीकृष्ण ही नामरूपसे आविर्भूत होते हैं। अतः वह श्रीकृष्ण-नाम ही मेरा—आराध्य, साध्य, साधन और जीवन है।'

भगवान् श्रीवेदव्यासजी भी कहते हैं—

विष्णोर्नामैव पुंसः शमलमपहरत् पुण्यमुत्पादयच्च
ब्रह्मादिस्थानभोगाद्विरतिमथ गुरोः श्रीपदद्वन्द्वभक्तिम्।
तत्त्वज्ञानं च विष्णोरिह मृतिजननभ्रान्तिबीजं च दग्ध्वा
सम्पूर्णानन्दबोधे महति च पुरुषं स्थापयित्वा निवृत्तम्॥

'भगवान्का नाम ही जीवमात्रके पापोंका अपहरण करता हुआ, श्रीकृष्णके भजनयोग्य पुण्यको उत्पन्न करता हुआ, ब्रह्मलोकपर्यन्तके भोगोंसे वैराग्यको उत्पन्न करता हुआ, श्रीगुरुदेवके चरणारविन्द-द्वन्द्वमें भक्तिको बढ़ाता हुआ, भगवद्विषयक तत्त्वज्ञानको विकसित करता हुआ, नामपरायण जीवमात्रकी जन्म-मरणरूपी भ्रान्तिकी हेतुभूत अविद्याको जलाकर, अखण्ड सच्चिदानन्दघन-ज्ञानस्वरूप श्रीभगवान्की सेवामें जीवको सदैवके लिये स्थापित कर निवृत्त हो जाता है अर्थात् पूर्वोक्त कार्योंसे भिन्न और कोई कर्त्तव्य-कार्योंका शेष न रहनेके कारण भगवन्नाम शान्त हो जाता है।'

श्रीभगवन्नामकौमुदीकार श्रीलक्ष्मीधर कविवर कहते हैं—

अंहः संहरदखिलं सकृदुदयादेव सकललोकस्य।
तरणिरिव तिमिरराशिं जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम॥
आकृष्टिः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसा-
माचाण्डालममूकलोकसुलभो वश्यश्च मोक्षश्रियः।
नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते
मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः॥

'जिस प्रकार सूर्यदेव उदय होने मात्रसे सम्पूर्ण अन्धकार-समूहको नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार श्रीहरिका नाम एक बार उच्चारणमात्रसे ही जीवमात्रके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट कर देता है। अतएव जगन्मङ्गलप्रद श्रीहरि-नामकी जय हो। यह श्रीकृष्णनामात्मक महामन्त्र—ऐसा विचित्र शक्तिशाली एवं सुलभ है कि जिह्वाके स्पर्शमात्रसे ही फलीभूत हो जाता है और आत्माराम आप्तकाम विशुद्ध चित्तवाले जनोंको भी अपनी ओर आकर्षित कर लेनेसे सर्वश्रेष्ठ वशीकरण-मन्त्र है; और यज्ञ, योग, तप, दानादि द्वारा भी नष्ट न होनेवाले बड़े-बड़े महापातकोंको भगानेका एक विचित्र उच्चाटन-मन्त्र

है। एवं सर्वदेश-कालादिमें भी कीर्तनीय होनेके कारण सुलभ भी इतना है कि मूक (गूँगा) व्यक्तिके अतिरिक्त चाण्डालपर्यन्त सभी इसका कीर्तन कर सकते हैं। कीर्तन करनेकी इच्छामात्रसे ही यह अपनी अहैतुकी कृपासे जनमात्रके वशीभूत हो जाता है और दुर्लभ मोक्षलक्ष्मी तो इसके पीछे-पीछे ही लगी डोलती है। अन्य मन्त्रोंकी तरह यह अनुष्ठानके लिये गुरुद्वारा दीक्षा, सदाचार, दक्षिणा एवं पुरश्चरण आदिकी किंचित् भी अपेक्षा नहीं करता।'

नामनिष्ठ किसी भक्तने भी कहा है—

> वेपन्ते दुरितानि मोहमहिमा सम्मोहमालम्बते
> सातङ्कं नखरञ्जनीं कलयति श्रीचित्रगुप्तः कृती।
> सानन्दं मधुपर्कसम्भृतिविधौ वेधाः करोत्युद्यमं
> वक्तुं नाम्नि तवेश्वराभिलषिते ब्रूमः किमन्यत्परम्॥

"हे ईश्वर! आपके नामोच्चारण करनेकी अभिलाषा करने मात्रसे सम्पूर्ण पाप काँपने लग जाते हैं, संसारमें बढ़ा हुआ, अर्थात् पुत्र, पौत्र, कलत्र, भृत्यादिमें आसक्तिरूप मोह भी मोहित होकर भाग जाता है और प्राणीमात्रके पाप-पुण्यके लेखक, यमराजके प्रधान मन्त्री न्यायशीलकुशल श्रीचित्रगुप्तजी भी अपनी नहरनीको शीघ्र ही आशंकापूर्वक उठाते हैं। अर्थात् 'इस नामोच्चारणकी अभिलाषावाले जीवका नाम तो मैंने पापियोंकी श्रेणीमें लिख रक्खा है; परंतु अब तो इसने नामोच्चारणकी अभिलाषा की है; अतः इसका नाम पापियोंकी श्रेणीसे काट देना चाहिये; नहीं तो श्रीनाममाहात्म्यके विशिष्ट ज्ञाता श्रीयमराजजी मुझपर कहीं कुपित न हो जायँ'— इस विचारसे श्रीचित्रगुप्तजी अपनी नहरनी शीघ्र उठाते हैं। एवं श्रीब्रह्माजी भी 'यह नामोच्चारण करनेकी अभिलाषावाला व्यक्ति ब्रह्माण्डको भेदकर अवश्य ही हरिधामको जायगा'—ऐसा विचारकर उसकी पूजाके लिये आनन्दपूर्वक मधुपर्कादि सामग्री जुटानेके लिये उद्यत हो जाते हैं। अतएव हे प्रभो! आपके मङ्गलमय श्रीनामका माहात्म्य इससे अधिक और क्या कहें।"

श्रीधरस्वामीजी भी अपनी भावना व्यक्त करते हैं—

> सदा सर्वत्रास्ते ननु विमलमाद्यं तव पदं
> तथाप्येकं स्तोकं नहि भवतरोः पत्रमभिनत्।
> क्षणं जिह्वाग्रस्थं तव तु भगवन्नाम निखिलं
> समूलं संसारं कषति कतरत् सेव्यमनयोः॥

'हे भगवन्! यद्यपि आपके श्रीअङ्गकी प्रभास्वरूप निर्मल, निष्कल, निष्कारण, निराकार ब्रह्म सदैवसे व्यापकरूपेण सर्वत्र विराजमान है तथापि उस व्यापक ब्रह्मने संसाररूपी वृक्षके एक छोटे-से पत्रका भी छेदन नहीं किया। किंतु हे प्रभो! आपका मङ्गलमय नाम यदि क्षणभर भी अपनी अहैतुकी कृपासे जिह्वाके अग्रभागमें विराजमान हो गया तो नामग्राही जनके सम्पूर्ण संसारवृक्षको समूल नष्ट कर देता है। अतः प्रभो! आप ही बताइये इन दोनोंमेंसे कौन सेवनीय है?'

श्रीमद्भागवतके बारहों स्कन्धोंमें भगवन्नाम-प्रशस्ति है। देखिये—

> आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्।
> ततः सद्यो विमुच्येत यद् बिभेति स्वयं भयम्॥
> (१।१।१४)

'यह जीव जन्म-मृत्युके घोर चक्रमें पड़ा हुआ है। इस स्थितिमें भी यदि वह कभी भगवान्‌के मङ्गलमय नामका उच्चारण कर ले तो उसी क्षण उससे मुक्त हो जाय; क्योंकि भगवान्‌से एवं उनके नामसे स्वयं भय भी भयभीत रहता है।'

> एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
> योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्॥
> (२।१।११)

श्रीशुकदेवजी परीक्षित्‌से कहते हैं कि 'जो लोग इस लोक या परलोककी किसी भी वस्तुकी इच्छा रखते हैं या इसके विपरीत संसारमें दुःखका अनुभव करके जो उससे विरक्त होना चाहते हैं और जो निर्भय मोक्षपदको प्राप्त करना चाहते हैं, उन साधकोंके लिये तथा योगसम्पन्न सिद्ध ज्ञानियोंके लिये भी समस्त शास्त्रोंका यही निर्णीत सिद्धान्त है कि वे भगवानके नामोंका प्रेमसे संकीर्तन करें।'

> अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
> तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥
> (३।३३।७)

माता देवहूति श्रीकपिलदेव भगवान्‌से प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि 'अहो भगवन्! वह चाण्डाल भी इसीलिये श्रेष्ठ है कि उसकी जिह्वाके अग्रभागमें आपका नाम विराजमान है। जो श्रेष्ठ पुरुष आपका नाम उच्चारण करते रहते हैं, उन्होंने तप, हवन, तीर्थस्नान, सदाचारका पालन और वेदाध्ययन—सब कुछ कर लिया।'

स प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां
दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम्।
कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते
यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥
(४ । ७ । ४७)

दक्षके यज्ञका अनुसंधान करते हुए ब्राह्मणगण श्रीहरिकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि 'हे यज्ञेश्वर ! जब लोग आपके नामका संकीर्तन करते हैं, तब यज्ञके सारे विघ्न नष्ट हो जाते हैं। हमारा यह यज्ञरूप सत्कर्म नष्ट हो गया था, अतः हम आपके दर्शनोंकी इच्छा कर रहे थे। अब आप हमपर प्रसन्न हो जाइये; आपको नमस्कार है।'

नैवंविधः पुरुषकार उरुक्रमस्य
पुंसां तदङ्घ्रिरजसा जितषड्गुणानाम्।
चित्रं विदूरविगतः सकृदाददीत
यन्नामधेयमधुना स जहाति बन्धम्॥
(५ । १ । ३५)

श्रीप्रियव्रतजीके लोकोत्तर ऐश्वर्यको सुनकर चकित हुए परीक्षित्‌के प्रति श्रीशुकदेवजी बोले—'हे राजन् ! जिन्होंने भगवच्चरणारविन्दोंकी रजके प्रभावसे शरीरके भूख-प्यास, शोक-मोह और जरा-मृत्यु—इन छः गुणोंको अथवा मनके सहित छः ज्ञानेन्द्रियोंको जीत लिया है, उन भगवद्भक्तोंका ऐसा पुरुषार्थ होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि वर्ण-बहिष्कृत चाण्डाल आदि नीच योनिका पुरुष भी भगवान्‌के नामका केवल एक बार यदि उच्चारण कर लेता है तो तत्काल संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि-
स्तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-
स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥
(६ । २ । ११)

यमदूतोंको समझाते हुए विष्णुदूत कहते हैं कि—'हे यमदूतो ! बड़े-बड़े ब्रह्मवादी ऋषियोंने पापोंके बहुतसे प्रायश्चित्त—कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि बताये हैं; परंतु उन प्रायश्चित्तोंसे पापीकी वैसी जड़से शुद्धि नहीं हो पाती, जैसी कि भगवान्‌के नामोंका या उनसे गुम्फित पदोंका उच्चारण करनेसे होती है; क्योंकि वे नाम पवित्रकीर्ति भगवान्‌के गुणोंका ज्ञान करानेवाले हैं।'

सप्तम स्कन्धमें—श्रीप्रह्लादजीके द्वारा नवधाभक्ति-वर्णनमें—

'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।'
(७ । ५ । २३)

'पादसेवनम्' इत्यादि वाक्यमें और युधिष्ठिरके प्रति सनातन-धर्मके उपदेश देनेके प्रसंगमें—

'श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।'
(७ । ११ । ११)

इत्यादि श्रीनारदजीके वाक्यमें श्रीहरिनामसंकीर्तन जीवमात्रका धर्म बताया है।

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥
(८ । २३ । १६)

भगवान् वामनसे बलिके यज्ञमें शुक्राचार्यजी कहते हैं कि 'हे भगवन् ! आपका नामसंकीर्तन यज्ञमें मन्त्रोंकी अनुष्ठान-पद्धतिकी, देश, काल, पात्र और वस्तुओंसे होनेवाली सारी भूलोंको सुधार लेता है। अर्थात् आपका नाम सारी त्रुटियोंको पूरी कर देता है।'

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥
(९ । ५ । १६)

श्रीअम्बरीष राजाको धन्यवाद देते हुए दुर्वासा ऋषि कहते हैं कि—'राजन् ! जिन प्रभुके मङ्गलमय नामके श्रवणमात्रसे जीव निर्मल हो जाता है, उन्हीं तीर्थपद भगवान्‌के चरणकमलोंके जो दास हैं, उनके लिये कौन-सा कर्तव्य शेष रह जाता है ?'

यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च।
सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥
(१० । ३४ । १७)

श्रीकृष्णचरणस्पर्शसे अजगरयोनिसे छूटा हुआ सुदर्शन नामक विद्याधर श्रीकृष्णकी स्तुति करता हुआ कहता है कि 'हे अच्युत ! मैं आपके दर्शनमात्रसे ब्राह्मणोंके शापसे विमुक्त हो गया, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। जो पुरुष आपके नामोंका उच्चारण करता है, वह अपने-आपको और समस्त श्रोताओंको भी तुरंत पवित्र कर देता है। फिर मुझे तो आपने स्वयं अपने चरणकमलोंसे स्पर्श किया है। तब भला, मेरी मुक्तिमें क्या संदेह हो सकता है ?'

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः।
यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥
(११।५।३६)

निमि राजाको उपदेश देते हुए श्रीकरभाजन नामक योगेश्वर कहते हैं कि 'राजन्! कलियुगमें केवल नाम-संकीर्तनसे ही सारे स्वार्थ और परमार्थ प्राप्त हो जाते हैं। ...ो इस युगका गुण जाननेवाले सारग्राही श्रेष्ठ पुरुष ...की बड़ी भारी प्रशंसा करते हैं।'

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥
(१२।३।५२)

...ीशुकदेवजी परीक्षित्से कहते हैं कि 'हे राजन्! ...में भगवान्का ध्यान करनेसे, त्रेतामें बड़े-बड़े यज्ञोंके ...नकी आराधना करनेसे और द्वापरमें विधिपूर्वक उनकी ...रनेसे जो फल मिलता था, वह कलियुगमें केवल नामके संकीर्तनमात्रसे प्राप्त हो जाता है।'

...स प्रकार नाम-माहात्म्यपरक बहुत-बहुत श्लोक श्री-...वतमें विद्यमान हैं। उन सबका विन्यास इस अल्प ...वाले लेखमें कैसे सम्भव है, अतः प्रत्येक स्कन्धका ...क श्लोक देकर दिग्दर्शनमात्र किया गया है।

नाम-जापककी भावना

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥
(श्रीचैतन्यमहाप्रभुः)

श्रीचैतन्यमहाप्रभु विषाद एवं दैन्यमें भरकर कहते हैं 'हे भगवन्! जीवोंकी भिन्न-भिन्न रुचिको रखनेके ...ही तो आपने अपने मुकुन्द, माधव, गोविन्द, राम, ...ा, दामोदर आदि अनेक नाम रक्खे और प्रत्येक नाममें ...नी सम्पूर्ण शक्ति भी स्थापित कर दी और उन नामोंके ...णके विषयमें देश, काल, पात्र, शुद्धाशुद्धि आदिका ...धन भी तोड़ दिया। हाय प्रभो! आपकी तो जीवोंपर ...ी अहैतुकी कृपादृष्टि-वृष्टि है; तथापि मेरा तो ऐसा दुर्भाग्य ...कि आपके नाममें अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ।'

नाम-जापककी प्रार्थना

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ॥
(श्रीचैतन्यमहाप्रभुः)

'हे प्रभो! आपका नाम ग्रहण करते समय मेरे नयन बहती हुई अश्रुधारासे, मेरा मुख गद्गद वाणीसे और मेरा शरीर पुलकावलियोंसे कब व्याप्त होगा?'

भगवन्नामनिष्ठा

का त्वं मुक्तिरुपागतास्मि भवती कस्मादकस्मादिह
श्रीकृष्णस्मरणेन देव! भवतो दासीपदं प्रापिता।
दूरे तिष्ठ मनागनागसि कथं कुर्या अनार्यं मयि
त्वद्गन्धान्निजनामचन्दनरसालेपस्य लोपो भवेत् ॥

कोई नामनिष्ठ भक्त कहता है कि प्रश्न—'अरी तू कौन है?' उत्तर—'मैं मुक्ति हूँ, सेवामें उपस्थित हूँ।' प्र०—'तो तुम अकस्मात् यहाँपर क्यों आयी हो?' उ०—'हे देव! श्रीकृष्णके स्मरणके प्रभावसे मैं आपके दासीपदको प्राप्त हुई हूँ। अतः आप मुझे अपनी सेवामें रख लीजिये।' इसपर भक्त बोला—'अरी! दूर खड़ी रहो! नितान्त निरपराधी मुझपर भगवत्सेवासे विमुख करके क्यों कुठाराघात कर रही हो? तुम्हारी तो सुगन्धिमात्रसे मेरे नामरूपी चन्दन-रसके आलेपका लोप हो जायगा। अर्थात्—तुमको स्वीकार करनेसे न तो (मैं भगवद्दास हूँ) यह मेरा नाम रहेगा, न सेवायोग्य रूप रहेगा। और विशेष क्या कहूँ? मैं जो अपने उपास्य श्रीकृष्णके मङ्गलमय मधुर नामोंका कीर्तन कर रहा हूँ, वह सारा कीर्तनानन्द भी धूलमें मिल जायगा। अतः तुम कृपया मेरे सामनेसे दूर हट जाओ।'

नामकीर्तनकी परिपाटी

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥
(श्रीचैतन्यमहाप्रभुः)

'नामसंकीर्तन करनेवाला भक्त अपनेको तृणसे भी नीचा समझकर, स्वयं वृक्षसे भी सहनशील बनकर, स्वयं अमानी होकर, दूसरोंको मान देनेवाला बनकर, सदैव श्रीहरि-नाम-संकीर्तन करता रहे।'

नाम-समाधि

(श्रीभगवन्नाम-स्मरणके साधनको अधिक प्रभावशाली बनानेके कुछ अमोघ उपाय)

(लेखक—श्रीराम माधव चिंगले, एम्० ए०)

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां
सकलनिगमवल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम ॥*
(स्कन्दपुराण)

रामनाम मनि दीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जो चाहसि उजियार ॥

१—नाम-स्मरणकी सार्वभौम आवश्यकता

किसी भी विचारवान् पुरुषको यह देखते देर न लगेगी कि मनुष्यमात्रको नामस्मरण-सरीखे लोक-परलोकमें आत्यन्तिक कल्याणकारी, सुलभ-से-सुलभ परमार्थ-साधनकी सब काल और सब परिस्थितियोंमें निरपवादरूपसे आवश्यकता है। दुःख और संकटमें दुःख और संकटकी निवृत्तिके लिये, सुखमें कहीं भविष्यमें दुःख उत्पन्न न हो इसलिये, साधकोंको सिद्धावस्थाकी प्राप्तिके लिये और सिद्धोंको सिद्धिकी रक्षा और लोकसंग्रहके लिये, संसारी लोगोंको धर्म, अर्थ और काम—इन तीन पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके लिये और परमार्थ-मार्गियोंको मोक्षरूप चतुर्थ पुरुषार्थकी प्राप्तिके लिये इसकी नितान्त आवश्यकता है। आबालवृद्ध सबके लिये सब परिस्थितियोंमें यह साधन उपादेय तथा व्यवहार्य है। न इसमें देशका बन्धन है न कालका, न अवस्था और परिस्थितिका। कष्ट सबसे कम और फल सबसे अधिक और श्रेष्ठ—यह है इसकी विशेषता।

२—सबीज नामका महत्त्व

वैसे तो किसी भी रूपमें लिया हुआ भगवन्नाम व्यर्थ नहीं जाता; वह अपना प्रभाव दिखाता ही है; फिर भी सबीज नाम अर्थात् किसी योग्य नामधारक गुरुके द्वारा ग्रहण किया हुआ नाम अधिक और शीघ्र फलदायक होता है इसीलिये अध्यात्ममार्गमें गुरु, शास्त्र, सम्प्रदाय और परम्परा अपना महत्त्व रखते हैं। इसका शास्त्रोक्त कारण यह है कि अधिकारी गुरु केवल नामोपदेश ही नहीं करते, वे नामके साथ ही शक्तिपात भी करते हैं। इसके फलस्वरूप साधकके हृदयमें अनादिकालसे वर्तमान अज्ञानावरण दूर होकर तन्मूलक मल-विक्षेपादिकी निवृत्ति होकर भगवन्नामके लिये अनुकूल क्षेत्र बन जाता है। इस कारण भगवन्नाम शीघ्र ही अपना प्रभाव दिखाता है। गुरुके जीवन और अनुभवकी ओर देखकर शिष्यके मनमें भी नाममें श्रद्धा और अभीष्ट फलप्राप्तिके विषयमें निस्संदिग्धता उत्पन्न हो जाती है। शास्त्र-प्रतीति और गुरुप्रतीतिको देखकर शिष्यके लिये आत्मप्रतीतिका मार्ग सुकर हो जाता है।

३—श्रद्धापूर्वक लिया हुआ भगवन्नाम हमारा मार्गदर्शक गुरु बन जाता है

नाम-स्मरणकी प्राथमिक अवस्थामें हमें गुरु, भक्तिशास्त्र इत्यादिके सदृश बाह्य साधनोंकी आवश्यकता होती है; किंतु एक बार हमारे हृदयमें भगवन्नामके लिये अनन्य श्रद्धा और भक्तिके उत्पन्न हो जानेपर हमें किसी बाह्य साधनकी आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसी स्थितिमें अनन्त कल्याण-गुणोंका आकर और अकथ महिमासे युक्त साक्षात् भगवत्स्वरूप भगवन्नाम स्वयं ही हमारा मार्गदर्शक गुरु बनकर इष्ट दिशामें हमारी बुद्धिको प्रेरणा देकर हमारा पथ-प्रदर्शन करने लगता है। इसके फलस्वरूप देखते-ही-देखते हमारा जीवन आमूलाग्र बदल जाता है। पतितोंको पावन और दीनोंका उद्धरण करनेमें भगवन्नाम-स्मरणसे बढ़कर दूसरा साधन नहीं। 'उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना ॥' यह कोई किंवदंती नहीं, सत्य इतिहास है। भगवन्नामको आप न छोड़िये, नाम आपको कभी न छोड़ेगा।

४—श्रीभगवन्नामकी अगाध महिमाको न भूलिये

श्रीभगवन्नामको छोटी-सी या साधारण-सी वस्तु न

---

* हे शौनक ! मधुर वस्तुओंमें भी सबसे अधिक मधुर, मङ्गलोंका भी मङ्गलरूप, सारी श्रुतिलताका श्रेष्ठ फलस्वरूप, चिन्मय यह 'कृष्ण' नाम श्रद्धा अथवा अवहेलनापूर्वक एक बार भी उच्चारण किया जानेपर मनुष्यमात्रका उद्धार कर देता है।

समझते हैं। नामके विषयमें इस प्रकारकी समझ अज्ञानमूलक निरी भ्रान्त धारणा है। नाम-स्मरणका साधन आपाततः सरल और नगण्य-सा दीखता है, किंतु यह अज्ञानियोंकी दृष्टि है। भौतिक-विज्ञानसे अपरिचित प्राकृतजन अणुको क्षुद्र समझकर कोई कीमत नहीं देते; किंतु उसके वास्तविक रहस्यसे परिचित वैज्ञानिक अणुकी रचनात्मक और संहारक द्विविध स्वरूपकी प्रचण्ड शक्तिसे परिचित होते हैं। वे इसका योग्य उपयोग करके मानव-जातिका अनन्त उपकार या संहार करनेकी क्षमता रखते हैं। इसी प्रकार दुनियाके सभी श्रेष्ठ नामधारक संत और भक्त नामकी अनन्त मङ्गलमयी शक्तिसे परिचित होते हैं। भगवन्नाम दीखनेमें भगवान्‌के वामनरूप-जैसा है। वह दीखनेमें तो छोटा किंतु अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करनेपर अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंको अपनेमें समा सकता है। साक्षात् भगवत्स्वरूप भगवन्नामकी महिमा स्वयं परमात्माके समान ही अनन्त, अगाध और अकथनीय है—

अमित महत्ता नामकी को करि सकै बखान।
जाके उच्चारन करत बिकत आप भगवान॥

५—नाम-नामीका अभेद है

नामधारक साधकोंको इस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तको न भूलना चाहिये कि भगवन्नामका साक्षात् नामी भगवान्‌के साथ अभेद है। इस विषयमें पर्याप्त शास्त्रीय और व्यावहारिक प्रमाण हैं और इसके साथ ही अधिकारी सिद्ध नामधारकोंके अनुभवोंका भी पूर्ण समर्थन प्राप्त है। इन सबका इस विषयमें एकमुखसे निर्णय है कि श्रीभगवान्‌का मङ्गलमय नाम, उनका दिव्य श्रीविग्रह और उनका सच्चिदानन्दस्वरूप—तीनों एकरूप हैं। पुराणादिमें इस विषयमें पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। उदाहरणार्थ पद्मपुराणका निम्न श्लोक ही लीजिये—

नामश्चिन्तामणिः कृष्णचैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥

'चूँकि नाम और नामीमें अभिन्नता है इसलिये चैतन्यरस-विग्रह श्रीकृष्णजीके समान उनका चिन्तामणिके तुल्य नाम भी पूर्ण, शुद्ध, नित्य और मुक्त है।'

श्रीचैतन्यमहाप्रभु भी इसी सिद्धान्तपर स्वानुभवके ऊपर बहुत जोर दिया करते थे—

नाम विग्रह और स्वरूप तीनों एक रूप।
तीनों है अभिन्न तीनों चिदानन्दरूप॥

भक्त बालकरामजी भी 'नाम आप भगवान् हैं'—इस सिद्धान्तको बार-बार दोहराया करते थे। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने भी इसी सिद्धान्तका बहुत ही उत्तमताके साथ समर्थन किया है—

'देखिअ रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥'

महाराष्ट्र संत तुकाराम कहते हैं—'तुका म्हणे नाम। चैतन्य निजधाम।' अर्थात् भगवन्नाम साक्षात् चैतन्यस्वरूप भगवान् ही है। समर्थ श्रीरामदास पुनरुक्तिपूर्वक कहते हैं—'नाम ब्रह्म नाम ब्रह्म'—ताकि किसीके मनमें इस विषयमें शङ्काके लिये अवकाश न रहे। वामन पण्डित कहते हैं—'नाम आणि मुरारी। दोन नसती।' यानी नाम और मुरारि भगवान् दो नहीं हैं। वैदर्भ संत श्रीगुलाबराव महाराजके अनुसार जिस प्रकार भगवान्‌के सगुणरूपधारी अवतारके विग्रह भगवत्स्वरूपके 'अनध्यस्त विवर्त' होते हैं (यथा सुवर्णसे बने हुए अलंकार सुवर्णके 'अनध्यस्त विवर्त' होते हैं) उसी प्रकार भगवान्‌के सभी दिव्य नाम उनके ध्वनिरूप अवतार ही हैं। इसीलिये भगवन्नामोंमें भगवान्‌की अद्भुत वस्तु-शक्ति निहित होती है।

तन्त्र और मन्त्र-शास्त्रमें सभी मन्त्र साक्षात् भगवत्स्वरूप बतलाये गये हैं। इसीलिये वे अनन्त शक्तिसे सम्पन्न होते हैं—

तथैव मन्त्रराजोऽहं नादरूपोऽव्ययः शिवः।
यदधीनं जगत् सर्वं मन्त्राधीनोऽहमेव हि॥
मन्त्रोऽहं मन्त्रगम्यात्मा मन्त्राकारो निरामयः।
स एव मन्त्रराजोऽहमचिन्त्योऽनन्तशक्तिदः॥

भगवान्‌के सभी नाम निस्संदेह दिव्यशक्तिसे सम्पन्न मन्त्र ही हैं। शास्त्रकारोंने रामनामको यथार्थताके साथ 'तारक ब्रह्म' कहा है।

नाम व्यञ्जक है, नामी परमात्मा व्यंग्य हैं। व्यञ्जकके बिना व्यंग्य परमात्माकी अभिव्यक्ति नहीं होती। इस तरह विचार करनेपर भी नाम-नामीका अभेद सिद्ध होता है।

व्यवहारमें भी हम देखते हैं कि लोग अपना नाम करनेके लिये कितना त्याग करते हैं। हजारों मनुष्य सो रहे हों, उनमेंसे उठता वही है जिसका नाम लेकर पुकारा जाय। ये व्यावहारिक जीवनकी बातें भी नाम-नामीका अभेद बतलाती हैं।

६—उक्त सिद्धान्तका साधनाभ्यासकी दृष्टिसे लाभ

नाम-नामीके अभेदके सिद्धान्तको पूरी तरहसे आत्मसात् करनेका महान् इष्टफल यह होता है कि भगवन्नामके उच्चारणके साथ ही हमें धीरे-धीरे बढ़ते हुए अभ्यासके फलस्वरूप सर्वव्यापक, अणु-रेणुमें व्याप्त अन्तर्यामी प्रभुकी निरन्तर उपस्थिति और संनिधिका भी भान होने लगता है। नाम-नामीका स्मरण करा देता है, इसलिये इस साधनको नाम स्मरण कहा गया है। इसी आशयसे पातञ्जल-योगदर्शनमें जिसका जप किया जाय उसके अर्थकी भावनाका आदेश दिया गया है (**'तज्जपस्तदर्थभावनम्'**)। भगवन्नामोच्चारणके साथ स्वयं नामी भगवान्‌की उपस्थितिका अनुभव नामाभ्यासमें प्रगतिका महत्त्वपूर्ण और निस्संदिग्ध लक्षण है। सच्चिदानन्द स्वरूप साक्षात् भगवान्‌की उपस्थितिका निरन्तर भान हमारे जीवनको आमूलाग्र बदल देता है। **'तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि ! तुझमें यह सारा संसार ।'**—इस प्रार्थनाकी पंक्तिके अनुसार हम सर्वत्र भगवद्भावका अनुभव करने लगते हैं, हमारा सम्पूर्ण जीवन ही भगवन्मय होने लगता है। भगवान्‌की निरन्तर संनिधिमें प्रत्यक्ष कृतिरूपमें पाप करना तो दूर रहा, पापकी कल्पनासे भी हम मन-ही-मन लज्जित हो उठते हैं। मङ्गलमय भगवान्‌के प्रभावसे बड़ी-से-बड़ी विपत्ति भी हमें विचलित नहीं कर सकती—**'यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥'** इसी कारणसे नित्य नये आनन्द और माङ्गल्यका स्रोत हमारे अन्तःकरणमें उमड़ता रहता है। मजेकी बात तो यह है कि यह आनन्द और माङ्गल्यका स्रोत नामधारक तक ही सीमित नहीं रहता। वह दुनियाके तापत्रयसे ग्रस्त मानवोंको दुःख और दैन्यसे छुड़ाकर सच्ची शान्ति और शाश्वत सुख प्रदान करता है। श्रीनारदजी अपने भक्तिसूत्रमें कहते हैं—

'स तरति स तरति स लोकांस्तारयति ।'

(भक्तिसूत्र ५०)

अर्थात् 'वह स्वयं तो तरता ही है किंतु दूसरोंको भी तार देता है।'

७—श्रीभगवन्नाम सच्चा रत्न-चिन्तामणि या कल्पवृक्ष है

नाम-नामीके अभेदका एक महत्त्वपूर्ण उपसिद्धान्त यह है कि भगवन्नाम नामीके साथ अभिन्न होनेके कारण सभी मनोकामनाएँ पूर्ण करनेवाला रत्न-चिन्तामणि या कल्पवृक्ष है। लौकिक कामधेनु या रत्न-चिन्तामणि और नाम-चिन्तामणि या कल्पवृक्षमें एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है। लौकिक कामधेनु या रत्न-चिन्तामणिको पाकर तो शायद कामनाओंकी पूर्तिके फलस्वरूप ये कामनाएँ कम होनेके स्थानपर बढ़ भी सकती हैं; किंतु नाम-चिन्तामणि या कल्पवृक्षको पाकर निष्कामभाव प्राप्त होनेसे कामनाओंकी जड़ ही कट जाती है। इस कारण अनुत्तम शान्तिसुखका लाभ होता है। पुनश्च, लौकिक कामधेनु और रत्न-चिन्तामणि तो स्वार्थमूलक संघर्षकी जड़ रहे हैं; क्योंकि ये स्वरूपतः ही परिच्छिन्न हैं, किंतु नाम-चिन्तामणि या कल्पवृक्ष स्वरूपतः ही अनन्त और सर्वथा अपरिच्छिन्न है। अतएव इसको समानरूपसे सब एकसमयावच्छेदेन प्राप्त कर सकते हैं और इसके द्वारा सबके स्वार्थकी पूर्ति एक साथ हो सकती है। चारों पुरुषार्थ तो इसके द्वारा मिल ही जाते हैं, किंतु भगवच्चरणारविन्दोंमें साध्यस्वरूपा अनपायिनी भक्ति या परम प्रेमरूप दुर्लभ पञ्चम पुरुषार्थकी भी इसके द्वारा प्राप्ति हो जाती है। सच्चे भगवद्भक्त इस नामचिन्तामणिको पाकर प्रथम तीन पुरुषार्थोंकी बात तो दूर रही, चतुर्थ पुरुषार्थ—मोक्षकी भी इच्छा नहीं रखते। श्रीमद्भागवतमें स्वयं भगवान्‌ने इसी आशयको व्यक्त किया है—

> न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
> न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
> न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
> मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥
>
> (११ । १४ । १४)

अर्थात्—'जिसने अपने स्वयंको मेरे अर्पण कर दिया है वह मुझे छोड़कर न तो ब्रह्माका पद चाहता है और न देवराज इन्द्रका; उसके मनमें न तो सार्वभौम सम्राट् बननेकी इच्छा होती है और न वह स्वर्गसे भी श्रेष्ठ रसातलका ही स्वामी होना चाहता है तथा वह योगकी बड़ी-बड़ी सिद्धियों और मोक्षतककी भी अभिलाषा नहीं करता।' महाराष्ट्र संत श्रीज्ञानेश्वरजीने तो मोक्षकी कामना करनेवालोंका यह कहकर उपहास किया है कि 'ऐसे लोग मूर्ख हैं; क्योंकि वे मुक्तिरूप दासीका अनुसरण करते हैं।' ठीक ही तो है; मुक्ति भगवच्चरणारविन्दोंकी दासी है। अतएव स्वामीको छोड़कर दासीका अनुसरण करनेमें कौन-सी बुद्धिमानी है ! स्वामीके प्रसन्न होनेपर उनके इशारेपर नाचनेवाली दासी छायाकी तरह आपके पीछे फिरेगी। कितनी बड़ी यह

भगवन्नामकी महिमा है। उसे रत्न-चिन्तामणि या कामधेनु कहनेमें यत्किञ्चित् भी अतिशयोक्ति नहीं। यदि है तो कुछ न्यूनोक्ति ही है।

८—साधक-दशामें नामस्मरण करते समय निष्कामभावकी आवश्यकता

भगवन्नामरूपी रत्न-चिन्तामणिको पाकर उसका क्षुद्र लौकिक कामनाओंके लिये विनियोग करना तो मानो राजाधिराजके सम्मुख जाकर उनके 'वरं ब्रूहि' कहनेपर गाजर और मूली माँगनेके समान ही हास्यास्पद है। ध्यान रहे, भगवान् अपने भक्तोंके सच्चे हितैषी हैं। वे उनके बिना कहे ही उनका हित करनेमें संलग्न रहते हैं। हाँ, यह हो सकता है कि अज्ञानमूलक अदूरदृष्टिके कारण जिसमें हमें आपाततः अपना अहित दिखायी देता है, उसीमें अन्ततोगत्वा सर्वज्ञ श्रीभगवान्‌को हमारा हित अभीष्ट हो। इसी प्रकार जिसमें हमें आपाततः हमारा हित दिखायी देता है, उसमें सर्वज्ञ भगवान्‌को हमारा अहित दिखायी देता हो। भक्तवत्सल भगवान् तो निरन्तर अपने भक्तोंका हित करनेमें ही तत्पर रहते हैं। इसलिये वे उन्हें मिथ्या मायिक प्रलोभनोंसे निरन्तर छुड़ाते ही रहते हैं। इस दृष्टिसे विचार करनेपर तथाकथित सांसारिक विपत्ति भी मनुष्यकी सच्ची हितू बन जाती है। माता कुन्तीने विपत्तिका सच्चा स्वरूप पहचाना और भगवान्‌से विपत्तिकी ही माँग की ताकि भगवान्‌का निरन्तर स्मरण बना रहे। सम्पत्तिके मदमें भगवान्‌का विस्मरण होनेका भय रहता है। ऐसी सम्पत्ति किस कामकी, जिसमें हम प्रभुको भूल जायँ। इससे तो तथाकथित विपत्ति ही अच्छी जिसमें निरन्तर प्रभुका स्मरण बना रहता है। इसीलिये कहा गया है कि प्रभुका विस्मरण ही सच्ची विपत्ति है और उनका स्मरण ही सच्ची सम्पत्ति है—

> विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
> विपद्विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः॥

सच बात तो यह है कि जिसके हृदयमें मङ्गलायतन भगवान् सुप्रतिष्ठित हो गये, उसके लिये नित्य निरतिशय आनन्द और मङ्गल ही है। भगवत्स्वरूपकी अज्ञानमूलक विस्मृतिमें ही समस्त दुःख-दैन्यादि जन्म पाते हैं। भगवद्भक्तके लिये सब काल और सब दिशाएँ सुखमय ही हैं।

९—श्रीभगवन्नाममें स्वभावतः ही पापनाशक और पुण्योत्पादक शक्ति है

भगवन्नाम और नामी—भगवान्‌में अभेदका एक और महत्त्वका उपसिद्धान्त यह निकलता है कि भगवत्स्वरूप भगवन्नाममें स्वाभाविकरूपसे पापप्रणाशक और पुण्योत्पादक द्विविध शक्ति रहती है। जैसे अग्निमें दाहकता और प्रकाशकी स्वभावतः ही होती है, वैसे ही भगवन्नाममें उक्त शक्ति होती है। अनुभवी संतोंने तो इस विषयमें तक कहा है कि भगवन्नाममें जितनी शक्ति है, उतने लोकोंमें पाप ही नहीं हैं। इसमें यत्किंचित् भी अतिशय नहीं है। अनन्त और अमर्याद भागवत-शक्तिसे स भगवन्नामके सामने बेचारे पापकी गुजर ही क्या है! प्र और अन्धकारमें स्वभावतः ही विरोध होता है। जरासे प्रक से कितने ही वर्षोंका निविड़ अन्धकार क्षणार्धमें दूर हो ज है—इसे सब जानते हैं। यही बात भगवन्नाम और पाप भी है। इसीलिये भगवान्‌ने स्वयं ही अपने भक्तोंको अभ प्रदायक सनद दे रक्खी है कि जब जीव मेरे सम्मुख आता तब उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। इ लेखकको एक नामधारक अनुभवी महात्मा कहा करते थे कि नामसे पाप उसी प्रकार कटते हैं जिस प्रकार दरजीकी कैंची कपड़ा। तत्त्वतः देखनेसे सभी पाप अज्ञानमें ही जन्म पाते हैं। भगवत्स्वरूप भगवन्नामसे स्वरूपज्ञानोत्पत्तिद्वारा अज्ञान निवृत्त होकर पापोंकी जड़ ही कट जाती है। अतएव पापोत्पत्तिकी सम्भावना ही मिट जाती है। साधक-दशामें भगवन्नाम एक ओर जहाँ पापोंका नाश करके भगवत्प्राप्तिके प्रतिबन्धोंको दूर कर देता है, वहाँ दूसरी ओर वह पुण्योत्पत्तिद्वारा भगवत्प्राप्तिको सुकर कर देता है। अब हम इस विषयमें निम्न शास्त्रीय प्रमाणोंको उद्धृत करते हैं—

(१) सकृत् स्मृतोऽपि गोविन्दो नृणां जन्मशतैः कृतम्।
पापराशिं दहत्याशु तूलराशिमिवानलः॥

'श्रीगोविन्द एक बार स्मरण किये जानेपर भी मनुष्योंके सैकड़ों जन्मोंमें किये हुए पापपुञ्जको इस प्रकार तुरंत ही भस्म कर देते हैं जिस प्रकार अग्नि रूईके ढेरको जला देती है।'

(२) शमायालं जलं वह्नेस्तमसो भास्करोदयः।
शान्तिः कलौ ह्यघौघस्य नामसंकीर्तनं हरेः॥

'अग्निको शान्त करनेमें जल और अन्धकारको दूर करनेमें सूर्य समर्थ है तथा कलियुगमें पापसमूहकी शान्तिका उपाय श्रीहरिका नामसंकीर्तन है।'

(३) हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥
(बृ० नारदीय १। ११। १००)

'श्रीहरि दुष्टचित्तवान् पुरुषोंके द्वारा स्मरण किये जानेपर भी उनके समस्त पापोंको हर लेते हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अनिच्छासे स्पर्शित अग्नि भी जला ही डालती है।' इस प्रकारके इस विषयमें अनेकानेक प्रमाण हैं।

१०—श्रीभगवन्नाममें स्वभावतः ही रोगनाशक शक्ति है

भगवान् धन्वन्तरिका यह श्लोक प्रसिद्ध है कि '**अच्युतानन्तगोविन्द**'-नामोच्चारणरूपी ओषधिसे सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। यह बात मैं सत्य-सत्य ही कहता हूँ।'

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

ध्यान रहे यह बात किसी साधारण व्यक्तिद्वारा नहीं कही गयी है। साक्षात् धन्वन्तरि यह कहते हैं और किसी प्रकारका मनमें संदेह न रहे, इसलिये 'सत्य' शब्दको दुहराते हैं। महात्मा गाँधी भी 'रामनामसे सब रोगोंकी निवृत्ति होती है'—इस सिद्धान्तको पूर्णतया मानते थे। जरा-सा विचार करनेपर इस बातकी सत्यताका हमें पता चलता है। सभी रोग पापमूलक होते हैं। नाममें पापनाशक शक्ति स्वाभाविक है। इसलिये भगवन्नाम रोगकी जड़ पापको ही दूर कर देता है। फिर रोग दूर होनेमें देर क्या लगेगी? एक करोड़ नामजपसे 'तनुस्थान' शुद्ध हो जाता है और रोग-बीज नष्ट हो जाते हैं। पाप अधिक प्रबल होनेकी दशामें स्पष्ट ही उत्कटकोटिके और अधिक संख्यामें नाम-जपकी आवश्यकता है। इस प्रकार नामसे रोगनिवृत्ति कार्यकारण-भावके नियमानुसार सिद्ध है। नामसे जब भवरोग-सदृश दुर्धर्ष रोग नष्ट हो जाता है तब साधारणसे शरीरगत रोग दूर हों इसमें आश्चर्य ही क्या?

११—नामधारकको नामापराधोंसे और पापोंसे बचना आवश्यक है

नामस्मरणकी प्रारम्भिक साधनावस्थामें सत्-निन्दा आदि दस नामापराधोंसे और सब तरहके नैतिक और धार्मिक पापोंसे बचना आवश्यक है। यह बात ठीक है कि भगवन्नाममें स्वाभाविक पापनाशक शक्ति है; तथापि इसका यह अर्थ नहीं कि आप नामकी ओटमें चाहे जो पाप करें और भगवन्नाम-जैसी पवित्र वस्तुको पापोंके हजम करनेका साधन बना लें। इसका फल यह होगा कि आपके ही हितमें आपके हृदयमें स्थित पापप्रवृत्तिका निर्मूलन करनेके लिये आपको भयंकर दण्ड मिलेगा। इससे अच्छा तो यही है कि आप नामस्मरणका व्रत लेनेपर हेतुपुरस्सर कोई पाप न करें। अनजानमें कोई पाप हो जाय तो पश्चात्तापयुक्त अन्तःकरणसे अधिक संख्यामें नामजप करें और भविष्यमें इस प्रकारका प्रमाद न होने दें। किये हुए पापोंके लिये अन्तःकरणमें पूर्ण पश्चात्तापकी भावना और भविष्यमें पापोंसे दूर रहनेका संकल्प—ये दोनों बातें नामधारकके लिये आवश्यक हैं। भगवन्नामको पापके हजम करनेका साधन बनानेसे बढ़कर दूसरा पातक नहीं। पद्मपुराणमें ऐसे मनुष्यके विषयमें कहा है—

'नाम्नो बलाद् यस्य हि पापबुद्धिर्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः।'

'जो नामका सहारा लेकर पापोंमें प्रवृत्त होता है, वह अनेक प्रकारके यम-नियमोंके द्वारा भी शुद्ध नहीं होता।' निम्न दोहा भी इसी अर्थका बोधक है—

जे नर नाम प्रताप बल करत पाप नित आप।
वज्रलेप ह्वै जायँ ते अमिट सुदुष्कर पाप॥

श्रीभगवन्नाम भवरोगकी रामबाण ओषधि है; किंतु ओषधि-सेवन करते समय जब लौकिक बीमारीमें भी पथ्य-परहेज पालन करना पड़ता है, तब भला इतने बड़े रोगकी चिकित्सामें थोड़ा पथ्य-परहेजका ध्यान क्यों न रक्खा जाय?

१२—नामस्मरण करते समय श्रीभगवन्नामके साथ अभीष्ट गुणोंका साहचर्य स्थापित कीजिये

नामस्मरणकी प्रारम्भिक दशामें आत्मजाग्रतिके उत्पन्न होते ही हम पाते हैं कि हमारे अन्तःकरणमें अनादि अविद्याके प्रभावसे अनेक दुर्गुण और अनेक कुसंस्कार घर किये रहते हैं। ये दल-बलके साथ नाम-स्मरण-जैसे परमार्थसाधनके समय विघ्न बनकर हमारे सामने आते हैं। साधकमें प्रारम्भमें इन्हें पराजित करनेका बल नहीं होता। अतएव साधक घबराकर इनके अधीन हो जाता है और साधनको

छोड़ बैठता है। किंतु यदि हम भगवन्नामका वास्तविक स्वरूप समझ लेते हैं तो हमें ऐसा करनेका अवसर ही नहीं आता। ध्यान रहे नामका नामीके साथ अभेद है। नामी भगवान् अनन्त कल्याण-गुणोंके आकर और समस्त हेय-गुणोंसे रहित हैं। अतएव भगवन्नामोच्चारणके साथ ही हमारे सामने भगवान्‌के दिव्य गुणोंका चित्र उपस्थित हो जाना चाहिये—विशेषतया उन गुणोंका, जिनका कि हम अपने स्वयंमें अभाव पाते हैं और जिनके विरुद्ध गुणों-दुर्गुणोंको हम अपनेमें पाते हैं। साधकदशामें हमें दो बातें करनी पड़ती हैं—एक तो दोषापनयन और दूसरा गुणाधान। यानी पहिली बात है—अन्तःकरणगत दोषोंको दूर करना और दूसरी बात है—उनके स्थानमें सद्गुणोंकी स्थापना करना। अब यदि हम नामोच्चारणके साथ नामी भगवान्‌में परिपूर्ण-रूपमें वर्तमान दिव्यगुणोंका भी चिन्तन करने लग जायँ तो इन गुणोंके भगवत्कृपासे और नामस्मरणके वस्तुगत प्रभावसे हमारे अन्तःकरणमें भी प्रतिष्ठित होनेमें देर न लगे। दुर्गुणों और हेय बातोंको निकालनेका सुगम उपाय है—सद्गुणों और ग्राह्य बातोंको अपने हृदयमें स्थान दे देना। रात-दिन हेय गुणोंका चिन्तन करना और उनके साथ संघर्ष करनेका प्रयत्न करना तो मानो उनकी शक्तिको बढ़ाना है। उनके विरोधी गुणोंको स्थान देना और उन्हींका चिन्तन करना—यह मार्ग इससे कहीं अधिक अच्छा है। हममें यदि काम-क्रोधादि घर किये हुए हैं तो पहले तो हमें इनके कारण होनेवाले अनर्थों और दुष्परिणामोंके अनिष्ट स्वरूपको तथा इनसे सर्वथैव छुटकारा पानेकी आवश्यकताको भलीभाँति समझ लेना चाहिये। फिर भगवत्स्वरूपमें परिपूर्ण रूपसे विद्यमान इनके विरुद्ध पवित्रता, शान्ति, संतोष इत्यादि गुणोंका चिन्तन करना चाहिये। प्रत्येक भगवन्नामके साथ परमात्माके इन तथा इस प्रकारके दिव्य गुणोंसे मण्डित स्वरूपका चिन्तन करनेसे हमारे जीवनमें भी इन गुणोंकी सुगमतया प्रतिष्ठा हो सकेगी। श्रीशंकराचार्यकृत विष्णु-सहस्रनाम-भाष्यमें भगवन्नामके साथ सम्बद्ध इस प्रकारके अनेकानेक गुणोंकी बहुत ही हृदयङ्गम व्याख्या की गयी है।

१३—नामस्मरणमें पूर्णतया मनोयोग हो

नामस्मरणकी अधकचरी दशामें प्रायः यह होता है कि मुखसे तो नामोच्चारण होता है, किंतु मनसे अनेक प्रकारके विषयोंका या सांसारिक बातोंका चिन्तन होता रहता है। यह यन्त्रवत् नामोच्चारण है, नामस्मरण नहीं। इसका वर्णन निम्न दोहेमें सम्यक्‌तया किया गया है—

> माला तो करमें फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
> मनुआ तो दसदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहि॥

महाराष्ट्र संत एकनाथ कहते हैं कि 'यह तो नाममात्रका स्मरण है। यथार्थमें तो यह विस्मरण ही है। सच्चा नाम-स्मरण तो वह है जिसमें नामोच्चारण करते ही नामी भगवान् मूर्तिमन्त रूपसे हमारे सामने खड़े हो जायँ।' साधनाकी प्रारम्भिक अवस्थामें यदि यह सम्भव न हो सके तो कम-से-कम साधकद्वारा उपासनाके लिये स्वीकृत भगवद्रूप तो प्रत्येक नामोच्चारणके साथ ध्यानका विषय बन ही जाना चाहिये। इस प्रकार नाम और नामीके स्वरूपमें सामञ्जस्य स्थापित हो जानेसे ही सच्चा नामस्मरण कहा जा सकता है। ऐसा ही नामस्मरण शीघ्र फलप्रद होता है। नामस्मरणकी परिपक्व दशामें तो नाम, नामी और नामधारक—इन तीनोंमें दिव्य अद्वैतमयी एकात्मताका अनुभव आता है। तीनोंमेंसे किसीका भी पृथक्‌तया अनुभव ही नहीं आने पाता। जरासे नाम-स्मरणसे हम अद्वैतानुभूतिकी कितनी उदात्त भूमिकापर पहुँच जाते हैं।

१४—नामस्मरणकी अन्तरात्मा अनन्य भगवत्प्रेम है

अबतक हमने नामस्मरणविषयक अनेक महत्त्वपूर्ण बातोंपर विचार किया है; किंतु ये बातें बहिरङ्ग स्वरूपकी हैं। नामस्मरणका अन्तरङ्ग—उसकी अन्तरात्मा तो है अनन्य भगवत्प्रेम; अन्तःकरणमें उमड़ता हुआ भगवत्प्रेम। और सब बातें हों और केवल यह एक बात न हो तो साधक-की वही अवस्था होगी जो कि सौभाग्यसिंदूरविहीन विधवा स्त्रीके अलंकारधारण और सौन्दर्य-प्रसाधनकी होती है। किंतु अनन्य भगवत्प्रेम हो और शेष बातें न भी हों तब भी इस प्रेमके प्रभावसे ये सब बातें साधकके अन्तःकरणमें गोवत्स-न्यायसे स्वयं ही आकर वास करने लगती हैं। श्रीमद्भागवत-में स्वयं श्रीभगवान्‌ने उद्धवजीसे इस प्रेमलक्षणा भक्तिका निरूपण निम्न श्लोकोंमें उत्तमताके साथ किया है—

> न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
> न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥
> (११।१४।२०)

'हे उद्धव! योगसाधन, ज्ञान-विज्ञान, धर्मानुष्ठान, जप-पाठ और तप-त्याग मुझे प्राप्त करानेमें उतने समर्थ नहीं हैं

जितनी कि मेरी दिन-प्रतिदिन बढ़नेवाली अनन्य प्रेममयी भक्ति ।'

धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥
(११।१४।२२)

'जो मेरी भक्तिसे रहित हैं, उनके चित्तको सत्य और दयासे युक्त धर्म और तपस्यासे युक्त विद्या भी भलीभाँति पवित्र करनेमें असमर्थ है ।'

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ।
विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुद्ध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः ॥
(११।१४।२३)

'जबतक अनन्य प्रेमाभक्तिके कारण सारा शरीर पुलकित नहीं हो उठता, चित्त पिघलकर गद्गद नहीं हो जाता, आँखोंसे प्रेमानन्दके आँसू छलकने नहीं लगते तथा अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग भक्तिकी बाढ़में चित्त डूबने-उतराने नहीं लगता, तबतक इसके शुद्ध होनेकी कोई सम्भावना नहीं है ।'

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥
(११।१४।२४)

'जिसकी वाणी प्रेमसे गद्गद हो रही है, चित्त प्रेमके प्रकर्षसे द्रवीभूत हो रहा है, इसी प्रेमावेशमें आकर जो कभी तो अनवरतरूपसे रोने लगता है और कभी खिलखिलाकर हँसने भी लगता है, जो कभी जन-लज्जा छोड़कर उच्चस्वरसे गाने लगता है और कभी नाचने लगता है। हे उद्धव ! इस स्थितिको प्राप्त हुआ मेरा प्रिय भक्त न केवल अपनेको, अपितु सारे संसारको पवित्र कर देता है ।'

जब भगवन्नामोच्चारणके साथ अन्तःकरणकी ऐसी स्थिति होने लगे तब समझ लीजिये कि आप अब नामस्मरणकी गहराईमें घुस चुके हैं । अब तीनों लोकोंके वैभवका प्रलोभन आपको लव-निमिषार्धके लिये भी भगवद्भक्तिसे अलग नहीं कर सकता । इस स्थितिको प्राप्त करनेवालोंमें अग्रपूजाका मान रखनेवाली हैं—व्रज-गोपाङ्गनाएँ, जिनकी प्रेमाभक्तिका वर्णन सुनकर अभक्तोंके हृदयोंमें भी भक्ति-प्रेमका स्रोत उमड़ पड़ता है । पुण्यभू भारतने ऐसे अनेक वैष्णवाग्र्योंको जन्म दिया है जिनके केवल स्मरणसे अनेक पाप नष्ट हो जाते हैं । श्रीचैतन्यमहाप्रभु तथा स्वामी श्रीरामकृष्ण परमहंसदेवकी भगवन्नाम सुनते ही तदाकारवृत्ति हो जाती थी—सीधे समाधि लग जाती थी । भगवान् रामकृष्णदेव कहा करते थे कि 'जितना प्रेम मनुष्य स्त्री-पुत्रादिमें करता है उससे आधा प्रेम भी परमात्माके साथ करे तो वह दयाघन आपको अपनाये बिना न रहेगा । लोग स्त्री-पुत्रादिके लिये घड़ाभर आँसू बहाते हैं, किंतु भगवत्प्रेमके कारण कितने लोग आँसू बहाते हैं ? गोस्वामी तुलसीदासजीने भी अपने 'मानस'में परमात्मासे यही प्रार्थना की है कि—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥

ध्यान रहे, सच्ची भगवद्भक्ति और सच्चा भगवत्प्रेम दुर्लभ वस्तु है । केवल भगवत्कृपासे ही इनकी प्राप्ति सम्भव है; किंतु जो सर्वार्पण-भावपूर्वक भगवान्‌की अनन्य शरण ग्रहण कर चुके हैं, उन्हें भगवत्कृपासे यह स्थिति अनायास प्राप्त हो जाती है । अनन्य शरणका अर्थ है—एक भगवान्‌को छोड़कर और सब बाहरी आश्रयोंका त्याग—

'अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता' (नारदभक्तिसूत्र १०)

एक बार भी इस सच्चे भगवत्प्रेमका रंग मनुष्यको लग जाय तो वह फिर कभी कम नहीं हो सकता । वह तो उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है और अपने तथा स्वयंके आराध्य प्रभुके बीचमें आनेवाले सभी प्रतिबन्धोंको लीलया दूर करता चला जाता है । उमड़ते हुए भगवत्प्रेमके आगे प्रतिबन्धक विघ्नोंके हिमालय भी क्षणार्धमें दूर हो जाते हैं । सभी भगवत्प्रेमी नामधारकोंकी इस विषयमें एकवाक्यता है

१५—नामसमाधि

इस प्रकार भगवन्नाम-स्मरणके उपर्युक्त बहिरंग और अन्तरंग साधनोंसे सम्पन्न होकर जब हम नामाभ्यास करने लगते हैं, तब नामाभ्यासकी प्रगल्भ अवस्थामें हमें 'नामसमाधि'की अवस्था प्राप्त होने लगती है । इस अवस्थामें हमारा नामजप केवल वैखरी वाणीसे ही नहीं होता । हमारे रोम-रोमसे नामजप होने लगता है । हम मुखसे तो भगवन्नामोच्चारण करते ही हैं, किंतु इसके साथ ही हमारी सारी ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ और अन्तःकरणचतुष्टय भगवन्नामसे आप्लावित होकर भगवन्नाममय हो जाते हैं । हम कानोंसे भगवन्नामकी दिव्य मधुर ध्वनि सुनते हैं, रसनासे दिव्य भगवन्नामामृतका आस्वादन करने लगते हैं, त्वगिन्द्रियसे मानो भगवन्नामके दिव्य स्पर्शका अनुभव करते हैं, नेत्रोंसे भगवन्नामके दिव्य

स्वरूपका दर्शन करते हैं। हमारे अन्तःकरण-चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) के समस्त व्यापार भगवन्मय हो उठते हैं। केवल इतना ही नहीं, बाह्य जगत् भी हमारे लिये भगवन्नाममय हो जाता है। विश्व-ब्रह्माण्डके अणुरेणुको हम भगवन्नामसे ओतप्रोत पाते हैं। सिवा एक भगवत्स्वरूप भगवन्नामके हम और किसी विषयका अनुभव ही नहीं करते। हमारे सारे शारीरिक एवं मानसिक व्यापार नाममय अतएव भगवन्मय हो उठते हैं (क्योंकि नाम-नामीका अभेद है) और हम अपने-आपको अनन्त नामामृतसिन्धुमें ही निमज्जित पाते हैं। हमारी सारी चित्तवृत्तियाँ सभी विषयोंसे हट जाती हैं और हम नामस्वरूपमें यानी भगवत्स्वरूपमें ही अवस्थित हो जाते हैं। फिर इस भागवत-अवस्थासे हटकर विषयाभिमुख-वृत्ति करना भी हमारे लिये कठिन हो जाता है। व्यवहारकालमें भी हमारी यह नामसमाधि या नाममय अवस्था भङ्ग नहीं होने पाती; निरन्तर यह नामकी लौ लगी ही रहती है। इस प्रकार हम भगवन्नामके सुलभ साधनके अवलम्बसे राजयोग-हठयोगादिकी कष्टसाध्य समाधिके क्लेशोंसे बचकर इन्हींके चित्तवृत्तिनिरोधरूप ध्येयको और समाधिको सुगमतया प्राप्त कर लेते हैं।

इस नामसमाधिमें भी दो प्रकार हैं—एक 'अन्वय समाधि', दूसरी 'व्यतिरेक समाधि'। व्यतिरेक समाधिमें हम केवल भगवत्स्वरूप भगवन्नामको छोड़कर और किसी भी वस्तुका अनुभव नहीं करते। सारा कार्यप्रपञ्च—दृश्य-जगत्—उस समय अपने मूलकारण भगवत्स्वरूपमें लीन हो जाता है। व्यतिरेक समाधिमें हम व्यवहार-जगत्के समस्त व्यापारोंसे उपरत होकर केवल भगवत्स्वरूप भगवन्नाममें ही लीन रहते हैं। अन्वय समाधिका अनुभव हम व्यवहारकालमें करते हैं। इसमें हम सकल दृश्य-प्रपञ्च-को भगवन्नाममय यानी भगवन्मय ही पाते हैं। 'सकलमिदमहं च वासुदेवः', 'वासुदेवः सर्वम्'—इस प्रकारके सार्वात्म्य-बोधक प्रमाण हमारे लिये केवल शब्द न रहकर हमारे प्रत्यक्ष अनुभवका विषय बन जाते हैं। इसी भागवत-भूमिका-में हमारे सब व्यवहार होते हैं। इस उदात्त भूमिकापर हमारे क्षुद्र अहं-ममभावको यानी 'मैं और मेरा'—इस परिच्छिन्न अहंकारमूलक व्यवहारको तनिक भी अवकाश नहीं रहता।

उक्त नामसमाधिकी भी हम दो अवस्थाएँ पाते हैं—एक तो 'साधकावस्था' और दूसरी 'सिद्धावस्था'। साधकावस्थामें हमें बार-बार मन और इन्द्रियोंको नामामृतसागरमें निमज्जित करना पड़ता है। किंतु नामाभ्यासकी सिद्ध[illegible] जागते-सोते, उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते[illegible] अवस्थामें हमारा नामजप अखण्डरूपसे औ[illegible] चलता रहता है। सुषुप्तिमें भी उसमें खण्ड नहीं[illegible] कुछ सिद्धावस्थाप्राप्त नामधारकोंके अनुभव [illegible] विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं। भगवत्साक्षात्कारसे [illegible] पूज्य गुरुदेव कहा करते थे कि उनके अन्तःकरण[illegible] 'नारायण' नामकी धुन लगी ही रहती है। आप[illegible] साँसके साथ यह बात स्वाभाविक हो गयी थी। श्रीगोंदवलेकर महाराज नामके सुप्रसिद्ध परम राम[illegible] हो गये हैं। एक बार डॉक्टरने रोगपरीक्षाके हे[illegible] सीनेपर स्टेथॉस्कोप लगाया और आश्चर्य यह [illegible] नाड़ीके शब्दके उन्हें 'श्रीराम जय राम जय जय [illegible] त्रयोदश अक्षरमन्त्रकी ध्वनि ही सुनायी दी। डॉक्टरने शायद भ्रम हो गया होगा; किंतु बार-बार ध्या[illegible] भी वही अनुभव हुआ। यह नामाभ्यासकी उत्क[illegible] सिद्धावस्था है। इसे हम भगवन्नामजपकी 'सहज अवस्था' भी कह सकते हैं। उत्कट नामाभ्यासके फलस्व[illegible] रामभक्त और श्रेष्ठनामधारक, वैष्णवाग्रणी, प्रातः[illegible] श्रीहनुमान्‌जीके शरीरका रोम-रोम राममय हो ग[illegible] और हृदयमें निरन्तर नामके साथ नामी [illegible] श्रीरामचन्द्रजीके ध्यानके फलस्वरूप भगवान्‌की[illegible] विराजमान रहती थी। कहते हैं कि महाराष्ट्रके अस्पृश्य संत श्रीचोखामेलाके मृत कलेवरसे भी उनके आर[illegible] श्रीविठ्ठलके नामकी ध्वनि सुनायी दी थी।* कितनी [illegible] यह नामनिष्ठा है और भगवत्कृपासे उसका कितना श्रे[illegible] मिलता है; इस बातके ये ज्वलन्त उदाहरण हैं। भगवत[illegible] प्रत्येक नामधारक इस उदात्त भूमिकाको प्राप्त [illegible] सकता है।

१६—नाम और नामीका सगुण तथा नि[illegible] साक्षात्कार और मानव-जीवनकी कृतकृत्य[illegible]

उक्त अवस्थाकी प्राप्तिके साथ ही हमें भगव[illegible] दिव्य स्वरूपका और नामीके साथ उसके अभेद[illegible] साक्षात्कार हो जाता है। इसके साथ ही जिनके नामक[illegible]

* कहा जाता है कि बरहजके परमहंसजी (बाबा राघ[illegible] जीके गुरु) के रोम-रोमसे प्रणवकी ध्वनि सुनायी देती थी।
—स[illegible]

जप करते हैं, उन नामी भगवान्‌का भी हमें सगुण साक्षात्कार हो जाता है। जहाँ नाम है, वहाँ नामी भगवान् दूर किस प्रकार हो सकते हैं? सगुण साक्षात्कारके अनन्तर अपने आराध्य-देवकी कृपासे ही उनके तात्त्विक निर्गुणस्वरूपका भी साक्षात्कार जरासे प्रयत्नसे—इच्छामात्रसे हो जाता है। सगुण साक्षात्कारी भक्त ही श्रीभगवान्‌के निर्गुण स्वरूपके साक्षात्कारके उत्तम अधिकारी कहे गये हैं। अपनी सिद्धावस्थामें ऐसे परमभागवत लोककल्याणमें ही अपना शेष समय बिताते हैं। ऐसे परमभागवतोंको पाकर ही भगवती वसुंधरा पुण्यवती कही गयी है।

देखिये! एक आपाततः छोटेसे दीखनेवाले नामस्मरणके साधनसे मनुष्य कितनी उदात्त भूमिका प्राप्त कर सकता है। धन्य है ऐसा भगवन्नाम और धन्य हैं ऐसे नामधारक! इन्हें बार-बार प्रणाम है।

नाम-महिमा

(लेखक—श्रीश्रीअंगराय लिंगम् अय्यर कृष्णमूर्ति)

श्रीकृष्ण-भक्तोंने और अनेक पुराणोंने ऐसा कहा है कि भगवान्‌के नामका केवल कीर्तन करनेसे कलियुगके प्राणी उसी स्थितिको प्राप्त कर सकते हैं, जिस स्थितिकी प्राप्ति यज्ञ, अर्चन और तपके द्वारा पूर्व-युगों अर्थात् कृत, द्वापर और त्रेता युगोंमें होती थी। किसी एक श्लोकमें ऐसा निर्दिष्ट है कि इस कलियुगमें सर्वबन्धनोंसे रहित मार्ग केवल भगवान्‌के नामका कीर्तन है। उपर्युक्त उदाहरणोंके देनेका प्रयोजन यह नहीं है कि मोक्ष-प्राप्तिके अन्य साधनोंकी अवगणना की जाय; अपितु इतना ही उद्देश्य है कि वर्तमान युगमें, जिसमें भगवान्‌के अस्तित्वपर ही संदेह किया जा रहा है, प्राणीको यह विश्वास हो जाय कि शाश्वत सुखकी, जिसकी सभी कामना करते हैं—प्राप्तिका भी एक सरलतम मार्ग है।

इस धारणाके साथ यदि हम साधनपथपर चलते हैं और नाम-कीर्तन आरम्भ करते हैं तो स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि 'उस नामका उच्चारण किस प्रकार करें? कब करें? क्या नाम-संकीर्तनका कुछ फल होगा? नाम-संकीर्तनमें क्या-क्या निषिद्ध है और कौन-कौनसे पालनीय नियम हैं?' आदि-आदि।

इन प्रश्नोंके उत्तर पानेके पूर्व सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि भगवान्‌के अस्तित्वमें तथा उनके नाम-संकीर्तनसे प्राप्त होनेवाले लाभमें हमारा सुदृढ़ विश्वास हो। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है कि 'जो इन बातोंमें संदेह करेगा, वह नष्ट हो जायगा।' इतना ही नहीं, अपने दिन-प्रतिदिनके जीवनमें भी पूर्ण विश्वास परमावश्यक है, जिससे हम अपने कार्योंमें सफल हो सकें। कार्यालयोंमें हम इसी विश्वासपर कार्य करते हैं कि आगामी पहली तारीखको हमें हमारा वेतन मिल जायगा। बैंकमें हम रुपया इसी विश्वासके आधारपर जमा करते हैं कि आवश्यकता पड़नेपर हमें हमारा रुपया मिल जायगा। इस प्रकार प्रत्येक वस्तुका गहराईसे विश्लेषण करनेपर यही निष्कर्ष निकलता है कि मानवका अस्तित्व विश्वासपर ही टिका हुआ है। हाँ, यह अवश्य है कि व्यक्ति-व्यक्तिमें इसका स्तर अलग-अलग है। कुछ वस्तुओंको हम अपनी आँखोंसे देख सकते हैं, कुछ विचारोंको हम सुनकर समझ सकते हैं और कुछ विचारोंको हम चिन्तनके द्वारा ग्रहण कर पाते हैं। विश्वास-सम्बन्धी समस्त विचार ऊपर लिखे किसी-न-किसी वर्गमें आते ही हैं। यहाँतक कि वे वस्तुएँ, जो देखी और सुनी जा सकती हैं, उन वस्तुओंपर भी विश्वास टिकानेके लिये किसी-न-किसी अंशमें चिन्तन और विश्लेषणकी आवश्यकता पड़ती है। अतः हम स्वयं कल्पना कर लें कि 'भगवान्' नामसे अभिहित वस्तुको, जो न देखी जा सकती है और न सुनी जा सकती है, प्राप्त करनेके लिये कितने धैर्य और प्रयत्नकी आवश्यकता है। हमारा चिन्तन उचित रीतिसे हो सके, इसके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि भगवान्‌के अस्तित्व और उसके नाम-संकीर्तनसे होनेवाले लाभपर सहज विश्वास हो।

उदाहरण

दूसरा प्रश्न हमारे सामने आता है कि भगवान्‌में हमारा विश्वास तो है, पर क्या नाम-संकीर्तन करनेसे हम भगवान्‌को प्राप्त करनेमें सफल हो सकेंगे? इस प्रश्नके उत्तरके लिये हम श्रीपुरन्दरदासजीके, जो इस धरा-धामपर आजसे छः सौ वर्ष पूर्व अवतीर्ण हुए थे, जिन्हें नारदजीका अवतार कहा जाता है और जो दक्षिण भारतके कर्नाटकी संगीतके

प्रणेता माने जाते हैं, एक पदपर विचार करें। अपने एक पदमें वे कहते हैं—'हे नाथ! यदि मुझमें इतनी क्षमता बनी रहे कि मैं आपके नामका कीर्तन करता रहूँ तो मुझे न आपकी और न आपकी कृपाकी कामना है।'

अपने कथनके पोषणमें उन्होंने महान् भक्तोंके उदाहरण दिये हैं, जिन्हें विभिन्न संकटोंके अवसरपर भगवान्‌से संरक्षण मिला है। इनमें सर्वप्रथम गजेन्द्रचरित्र है, जिसमें गज और ग्राहका द्वन्द्व है। वे कहते हैं—'जब गज ग्राहद्वारा पकड़ लिया गया, उसकी सम्पूर्ण शक्ति समाप्त हो गयी, उसके सहस्रों स्वजनोंने उसे असहाय छोड़ दिया, तब उस गजने आपको 'आदिमूल' कहकर पुकारा। तभी आपने दौड़कर ग्राहका वध तथा गजका उद्धार किया। उस संकटके समय केवल 'उनका' ही नाम गजेन्द्रके मुखसे निकला और ज्यों ही निकला, उस नामने रक्षा की।'

नाम-महिमाके अतिरिक्त उपर्युक्त कथानकसे यह एक तथ्य प्रतिपादित होता है कि जब कोई व्यक्ति अपने अन्य सभी स्वजनोंके द्वारा असहाय छोड़ दिया जाता है, इस अवस्थामें भी भगवान् अच्युत एक ऐसे हैं, जो कभी असहाय नहीं छोड़ते और उनके नामका उच्चारण करते ही वे तत्क्षण सहायता करनेको प्रस्तुत रहते हैं।

श्रीपुरन्दरदासने अपने प्रसिद्ध पदमें दूसरा उदाहरण प्रह्लादचरित्रका दिया है। उन्होंने बताया है कि "हिरण्यकशिपुने अपने पुत्रको अनेक प्रकारसे प्रताड़ना दी कि उनका पुत्र उन्हें ही विश्वका सर्वोच्च व्यक्ति समझे और 'हरि'के नामका उच्चार नहीं करे; किंतु भक्तोंमें अग्रगण्य प्रह्लाद 'हरि'के नामका उच्चार निष्ठापूर्वक करते रहे। अन्तमें क्रोधसे भरे हुए हिरण्यकशिपुने एक खम्भेकी ओर संकेत करते हुए क्षुब्ध वाणीमें पूछा—'वह हरि, जिसके नामका उच्चारण तुम निरन्तर करते रहते हो, क्या इस स्तम्भमें है?' प्रह्लादने उत्तर दिया कि 'वे सर्वव्यापी हैं और वे इस स्तम्भमें भी निश्चित हैं।' ऐसा सुनते ही हिरण्यकशिपु और भी क्षुब्ध हो उठा और उसे काट डालनेके उद्देश्यसे स्तम्भपर तलवार चलायी। ऐसी स्थितिमें भी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई भक्तिसे प्रह्लादने 'हरि'के नामका उच्च स्वरसे स्मरण किया। अपने भक्त प्रह्लादके द्वारा स्मरण किये जानेपर भगवान् विष्णुको (हरिको) आना पड़ा और उस स्तम्भमें उपस्थित होना पड़ा। भगवान्‌ने हिरण्यकशिपुको एक वरदान दे रक्खा था, जिसमें भगवान् बँधे थे। उस वरदा[illegible] हिरण्यकशिपुके प्राण-हरणके लिये अनेक विचित्र शर्तें लग गयी थीं। इसके बाद भी किसी भी परिस्थितिमें अपने भक्त[illegible] प्रार्थनाको पूर्ण करनेके लिये तथा अपने वरदानके शब्दों[illegible] रक्षाके लिये भगवान् विष्णु एक विचित्र आकृति, 'नृसिं[illegible] रूपमें उस स्तम्भसे प्रकट हुए और हिरण्यकशिपुके प्राणों[illegible] अन्त कर दिया।"

इस कथाका विश्लेषण करनेसे पुनः उसी तथ्य[illegible] प्रतिपादन होता है कि अपने पिताद्वारा भीषण यातनाओं[illegible] जैसे अपनी माताके द्वारा ही विष दिया जाना, पर्वतके शिखर[illegible] गिराया जाना, हाथियोंसे कुचलवाया जाना और अन्तमें स्व[illegible] अपने पिताद्वारा तलवारसे मृत्यु-दण्डकी धमकी दिया जाना— ऐसी भीषण यातनाओंके बाद भी प्रह्लादका भगवान्‌में जै[illegible] विश्वास था, वैसा ही सहज विश्वास हमारा भी भगवान्‌में हो[illegible] प्रसङ्गवशात् यह बात जान लेनेकी है कि यद्यपि प्रह्ला[illegible] अच्छी तरह जानता था कि हरिके द्वारा मेरे पिताजीका व[illegible] होगा, किंतु फिर भी ऐसी असाधारण परिस्थितिमें पड़क[illegible] प्रह्लादने कभी भी वह विश्वास, जो हरिकी भक्तिमें था, नहीं खोया।

तीसरा उदाहरण द्रौपदीका है, जिसकी गणना भारतवर्षकी पञ्च-कन्याओंमें है। दुर्योधनकी राजसभामें, जहाँ विद्वान् कृपाचार्य, वयोवृद्ध भीष्मपितामह, वीराग्रगण्य द्रोणाचार्य, नीतिज्ञ विदुर, द्रौपदीके पाँचों वीर पति पाण्डव तथा अन्य अनेक योद्धा उपस्थित थे, उस राजसभामें दुःशासन अपने भाई दुर्योधनकी आज्ञा पाकर द्रौपदीको केश पकड़कर खींच लाया। स्त्री-धर्मके अनुसार द्रौपदी रनिवाससे बाहर आनेकी स्थितिमें नहीं थी। उसकी लज्जाका अपहरण करनेके लिये दुःशासन उसकी साड़ीको भरी सभामें खोलने लगा। असहाया द्रौपदीने हाथ जोड़कर सहायताकी याचना की। राजसभामें उपस्थित कोई भी बड़े व्यक्ति, यहाँतक कि उसके पाँचों पति भी इस अत्याचारके विरोधमें एक शब्द भी नहीं बोल सके। अन्तमें द्रौपदी पुकार उठी—'हे भगवान् श्रीकृष्ण! हे द्वारकावासी! हे यादव! आप कहाँ हैं? आप अपने करोंमें शङ्ख-चक्र-गदा-जैसे शस्त्र धारण करते हैं। आप फिर इस दीनात्माकी रक्षा क्यों नहीं करते? मेरी वर्तमान दयनीय दशासे अवगत होकर भी आप उदासीन क्यों हैं?'

तभी भगवान्‌की कृपासे द्रौपदीकी साड़ी, जिसे दुःशासन खींच रहा था, बढ़ने लगी और अनन्त विस्तारकी हो गयी। कहीं भी साड़ीका अन्त न पाकर थकित और हतोत्साहित दुःशासनने साड़ी खींचना छोड़ दिया।

इस कथानकमें भी कुछ महत्त्वपूर्ण बातें ध्यान देने योग्य हैं। जिस समय दुःशासनद्वारा द्रौपदीकी लज्जाका अपहरण हो रहा था और जब कोई भी उसकी रक्षाके लिये नहीं आया; उस समय पहले तो द्रौपदीने, जैसा भी तत्कालीन परिस्थितिमें सम्भव हो सकता था, अकेले अपनी लज्जाको बचानेका प्रयास किया। पर इस स्थितिमें भगवान् श्रीकृष्ण उसकी रक्षाके लिये नहीं आये; क्योंकि द्रौपदीके मनमें यह भावना तो थी ही, वह स्वयं ही अपनी रक्षा कर लेगी। इस प्रयासमें असफल होनेपर द्रौपदीको अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णसे सच्ची और सकरुण प्रार्थना करनी पड़ी। अपने सिरसे ऊपर अपने दोनों हाथोंको उठाकर, जोड़कर कातर स्वरमें पुकारा—'हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे अक्षय!' भगवान् श्रीकृष्ण उस समय रुक्मिणीके साथ चौपड़ खेल रहे थे। ज्यों ही द्रौपदीने 'अक्षय' कहकर पुकारा, त्यों-ही उसकी साड़ी अक्षय हो गयी—अन्तरहित विस्तारवाली हो गयी। द्रौपदीकी भक्ति इस बातकी शिक्षा देती है कि 'हमारे मनसे 'अहं'की भावना पूर्णतः समाप्त हो जानी चाहिये तथा भगवान्‌के प्रति पूर्णसमर्पण होना चाहिये।'

चौथा उदाहरण अजामिलका है। अजामिल जातिके ब्राह्मण थे; किंतु उनका एक भीलनीसे प्यार हो गया और वे अपने सम्पूर्ण धर्मको भुलाकर उसके साथ अनैतिक जीवन व्यतीत करने लगे। उस भीलनीसे अनेक संतानें उत्पन्न हुईं और अन्तिम संतानका नाम 'नारायण' रक्खा गया। अपने जीवनके अन्तिम क्षणोंमें, जब कि अजामिल अस्वस्थ थे, एक दिन उन्होंने देखा कि उनके प्राण लेनेके लिये यमदूत आये हैं। वे पहचान नहीं सके कि ये यमदूत हैं। उन्हें चोर समझकर डरके मारे उन्होंने अपने पुत्र 'नारायण'को पुकारा। तभी उनका प्राणान्त हो गया। ज्यों ही अजामिलने 'नारायण' कहा, भगवान् विष्णुके पार्षद उस स्थानपर पहुँच गये। पार्षदोंने कहा कि 'मृत्युके समय उसने भगवान् विष्णुके नामका उच्चारण किया है; अतः वे अजामिलको वैकुण्ठलोक ले जानेको आये हैं।' तब भगवान् विष्णुके पार्षदों तथा यमदूतोंके मध्य विवाद हुआ। पार्षदोंने स्पष्ट-स्पष्ट कहा कि 'यदि कोई मनुष्य विनोदमें या अनिच्छासे या क्रोधमें या व्यङ्गमें या भयसे भी भगवान् विष्णुके नामोंका उच्चारण करता है तो उसकी रक्षा भगवान् करते हैं। इस अजामिलने मृत्युके समय भगवान्‌के नामका उच्चारण किया है। अतः हम इसे वैकुण्ठ ले जायँगे' और अन्ततः वे उसे ले गये।

अपने शास्त्रोंके अनुसार जीवका अगला जन्म उसकी मृत्युके क्षण होनेवाली विचारधारा या बोले गये शब्दोंके अनुसार होता है। यदि सौभाग्यसे कोई व्यक्ति मृत्युके समय भगवान्‌का स्मरण करे या नामका उच्चारण करे तो उसे स्वतः मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इसी सत्यसे प्रेरित होकर हमारे महान् ऋषियोंने जैसे आद्यशंकराचार्य, रामानुज, कुलशेखर आळवार आदिने भगवान्‌से प्रार्थना की है कि 'जीवनके अन्तिम क्षणमें भगवान्‌का चिन्तन और गायन करनेका सौभाग्य प्राप्त हो।' उन्होंने यह भी प्रार्थना की कि 'यह हो सकता है कि जीवनके अन्तिम क्षणमें भगवान्‌के नामका उच्चारण न हो पाये; अतः युवावस्थामें, जब कि शरीरमें पूर्ण शक्ति है, जो कुछ प्रार्थना हो पाती है, उसीको सुनकर भगवान् हमपर अनुग्रह करें, हमें क्षमा करें तथा हमारी रक्षा करें।' इससे स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि यदि हम अपने बाल्यकालसे ही नाम-संकीर्तन प्रारम्भ कर दें तो इस अभ्यासके फलस्वरूप भगवान्‌के नामका उच्चारण स्वतः ही वृद्धावस्थामें भी होता रहेगा। नाम-महिमाको प्रदर्शित करनेके लिये अजामिल-चरित्र एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है कि किस प्रकार भगवन्नाम, भले अनजाने ही, लिये जानेपर वह भगवत्-प्राप्ति भी करा सकता है।

पदके आगामी छन्दोंमें ध्रुव, वाल्मीकि तथा अन्योंकी महिमाका गुणगान किया गया है। ध्रुव-कथा बतलाती है कि उसके नामका उच्चारण करनेसे सभी कामनाओंकी पूर्ति होती है। नाम-महिमा प्रस्तुत करनेके लिये दूसरा उदाहरण वाल्मीकि-चरित्रका है। वाल्मीकि डाकू थे; पर 'राम-नाम'का उपदेश प्राप्त करनेके लिये सौभाग्यसे उनकी भेंट नारदजीसे हो गयी। उपदेश प्राप्त होनेके बाद भी वे 'राम'का उचित प्रकारसे उच्चारण नहीं कर सके। तब नारदमुनिने उनको 'मरा' नामक एक वृक्ष दिखाकर, वृक्षके ही नामको रटनेके लिये कहा, जो उलटनेपर स्वतः ही 'राम-राम' हो जाता है। जो कभी डाकू था, वही बिना अन्न-जल ग्रहण किये एक ही आसनसे स्थिर बैठकर निरन्तर 'मरा-मरा' जपता रहा और ऐसी स्थिति आयी कि शरीर वल्मीक (दीमकका घर) से ढक गया।

इसी कारण आप 'वाल्मीकि' कहलाये। यहाँ यह बात देखनेमें आती है कि यद्यपि डाकूने भगवान्‌के नामका उलटा जप किया, फिर भी इन्हें भगवान्‌का अनुग्रह प्राप्त हुआ और इन्हें भगवती सीता, लव-कुशके दर्शनके उपरान्त महाकाव्य रामायणके लिखनेका श्रेय प्राप्त हुआ। वस्तुतः नाम-महिमा अद्भुत है। पुरन्दरदासजीने यही कहकर अपने पदको समाप्त किया है कि 'विश्वमें ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसकी भगवन्नाम-महिमासे समता की जा सके।'

पुरन्दरदासजीद्वारा दिये गये सभी उदाहरण पौराणिक हैं; किंतु यदि हम विगत छः सौ वर्षोंमें भारतवर्षमें जन्म लेनेवाले महान् भक्तोंके जीवन-वृत्तको देखें तो ज्ञात होगा कि जिस भक्तने भगवान्‌के नामका भक्तिसहित संकीर्तन किया, उसे भगवान्‌के साक्षात् दर्शन मिले। आन्ध्रदेशके रामदासकी हृदयस्पर्शी कहानी, कन्नड़के पुरन्दरदासजीकी भावपूर्ण गाथा, महाराष्ट्रके छत्रपति शिवाजी तथा उनके गुरु समर्थ रामदासजीका साहसिक वृत्त, पंढरपुरके नामदेव, उत्तर-भारतकी मीराँबाई, केरलके नारायणभट्ट हरि—जिनकी विख्यात कृति 'नारायणीयम्' है, त्यागराज स्वामीका महान् चरित्र—जिनका जन्म दक्षिण भारतमें कुछ ही सौ वर्ष पूर्व हुआ, जिन्होंने कर्नाटकी संगीतका पुनरुद्धार किया और जिनकी रामभक्ति अभी भी सबको याद आती है—आदि-आदि नाम-महिमाके उदाहरण हैं। इन महान् पुरुषोंका जीवन-वृत्त इस बातका प्रमाण है कि पौराणिक गाथा असत्य अथवा कल्पित नहीं है; अपितु पूर्वयुगोंके महान् व्यक्तियोंके अत्यधिक भक्तिपूर्ण जीवनकी झलक है।

और भी अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, किंतु नाम-महिमाको हृदयङ्गम करनेके लिये ऊपर दिये गये उदाहरण पर्याप्त हैं और इन उदाहरणोंका सार यही है कि भगवन्नाम लेनेका हमें सतत अभ्यास हो। संकटके समय गजेन्द्रकी तरह नामोच्चार करें; विपरीत स्थितियोंके मध्य प्रह्लादकी तरह सुदृढ़ भक्ति रहे; असहायावस्थामें द्रौपदीकी तरह पूर्ण समर्पण कर दें; इन सबके फलस्वरूप होगा यह कि जीवनके अन्त समयमें अजामिलकी तरह हम भगवान्‌के नामको ले सकेंगे।

नाम-कीर्तनमें पालनीय नियम

नामकी महिमाको समझनेके बाद स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि क्या कुछ ऐसे भी नियम हैं, जिनका नाम-कीर्तनमें पालन होना चाहिये? नाम-संकीर्तनके लिये किन्हीं कठोर नियमोंका विधान नहीं किया गया है। भक्तोंने यही कहा है कि नाम-संकीर्तन कभी भी किया जा सकता है। पुरन्दरदासजीने कहा है कि 'प्रातःकाल सोकर उठनेसे रात्रिमें सोनेतक निरन्तर नाम-जप करते रहो—यहाँतक कि खाते-पीते, नहाते-धोते, बालकोंसे हँसते-बोलते अर्थात् घरके समस्त कार्योंको करते समय भी।'

ऐसा कहा जाता है कि 'रामनाम' का ९६ करोड़ जप करनेसे श्रीत्यागराज स्वामीको भगवान् रामके साक्षात् दर्शन मिले थे। छोटेसे मानवजीवनमें ९६ करोड़ जप कर लेना वस्तुतः आश्चर्यमें डालनेवाली वस्तु है; परंतु त्यागराजजी ऐसा कैसे कर सके? उन्होंने अपने अन्तर्मनको 'राम-नाम'के निरन्तर जपका इतना अभ्यास करा दिया था कि बाहरसे वे कोई क्रिया करते रहें, उनका अन्तर्मन सतत 'राम' 'राम' की आवृत्ति करता रहता था और इस प्रकार वे अपने जीवनमें ९६ करोड़ नाम-जप कर सके। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि बिना काल या क्रियाकी बाधाके हम नाम-संकीर्तन कर सकते हैं। स्वयं श्रीत्यागराजजीने अपने एक पदमें नाम-संकीर्तनकी विधिको बताया है। उनका कथन है कि 'भगवान्‌के रूपके चिन्तनसे विरहित नाम-जपका कोई लाभ नहीं है।' इसका यह अर्थ नहीं है कि चिन्तनसे विरहित जपसे लाभ होगा ही नहीं। इसका अर्थ इतना ही है कि जिनका नाम हम ले रहे हैं, यदि उनके स्वरूपको हम भलीभाँति समझ लेते हैं तो हमें अपने प्रयासमें फलकी प्राप्ति शीघ्र होगी। उन्होंने अपने पदमें इस बातको दृष्टान्तोंद्वारा स्पष्ट किया है। उन्होंने एक दृष्टान्त 'राम' शब्दका लिया है, जिसके दो अर्थ हैं। (क) पहला अर्थ है—भगवान्‌का नाम और (ख) दूसरा अर्थ है—एक सुन्दर स्त्रीका नाम। 'राम'का उच्चारण करते समय यदि हम अपने मनमें उस सुन्दर स्त्रीका चिन्तन करते हैं तो हमें भगवान् रामका अनुग्रह प्राप्त नहीं होगा। उसी प्रकार 'अज'का अर्थ ब्रह्मा भी है और बकरा भी। 'अज' का जप करते समय यदि बकरेका ध्यान करते हैं तो भगवान् ब्रह्माकी कृपा कैसे प्राप्त हो सकती है? यद्यपि नाम-संकीर्तनमें कोई बन्धन या नियमन नहीं है; फिर भी श्रीमद्बोधेन्द्रस्वामीने, जो शंकराचार्य-पीठको सुशोभित कर चुके हैं और जो 'नाम-सिद्धान्तम्'के प्रणेता कहलाते हैं,

कुछ ऐसे अपराधोंका उल्लेख किया है जिनसे बचना आवश्यक है, अन्यथा नाम-संकीर्तन प्रारम्भ कर देनेपर भी प्रगति अवरुद्ध हो सकती है। उन्होंने अपने एक श्लोकमें निम्नलिखित अपराधोंकी ओर संकेत किया है—

(१) महापुरुषोंकी निन्दा करना।
(२) नाम-संकीर्तनमें अश्रद्धा रखनेवालोंसे नाम-संकीर्तनकी महिमा कहना।
(३) भगवान् विष्णु और भगवान् शिवमें अन्तर समझना।
(४) गुरुके परामर्शको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखना।
(५) वेदोंद्वारा प्रतिपादित नियमोंकी उपेक्षा करना।
(६) वैदिक ऋचाओंकी तथा नाम-संकीर्तनकी तुलना करना।
(७) संध्या-वन्दन आदि नित्य-नैमित्तिक कृत्य नहीं करना।
(८) नाम-महिमाके कारण भगवान्का अनुग्रह-पात्र होनेकी अहंता।

उनका कथन है कि पूर्ण श्रद्धाके साथ 'राम' शब्दका केवल एक बार उच्चारण ही मनुष्यको पावन बना देगा, अवश्य ही उसमें पूर्वलिखित दोष न हों। इस प्रसङ्गपर श्रीलीलाशुकविरचित 'कृष्ण-कर्णामृत'के श्लोकका स्मरण हो आया, जिसमें स्नान, संध्या-वन्दन आदिका उल्लेख है। जब उनका मन श्रीकृष्णकी लीलाओंके चिन्तनमें पूर्णतः तल्लीन था, तल्लीनताकी प्रगाढ़तामें ऐसी स्थिति हो गयी कि शरीरकी, संसारकी सुध-बुध खो गयी और इस स्थितिमें कुछ दिवस निकल गये; ऐसी स्थितिमें स्वाभाविक ही उनके द्वारा नित्य-नैमित्तिक कृत्य सम्पन्न नहीं हुए—जैसे स्नान, संध्या-वन्दन आदि। अतः वे कहते हैं—

'संध्या-वन्दन! आपका कल्याण हो। हे स्नान! तुम्हें प्रणाम। हे देवता और पितरो! आपलोग हमें क्षमा करें, हम आपके तर्पण-कार्यमें समर्थ नहीं रहे। अब तो जहाँ कहीं भी बैठकर कंससूदन, यादवकुलोत्तंस श्रीकृष्णका ही बार-बार स्मरण करके हम अपने पापोंको दूर करेंगे। अब हमें और किसीसे क्या तात्पर्य, क्या मतलब, क्या लेना-देना?'

किंतु कुछ लोगोंने इस श्लोकका अन्यथा प्रकारसे अर्थ लगाया है। ऐसे व्यक्तियोंका यह कथन है कि लीलाशुककी मान्यताके अनुसार 'नाम-संकीर्तन' के साधन-पथके पथिकको वैदिक धर्मके पालनकी आवश्यकता नहीं है। फिर भी यदि हम श्रीमद्बोधेन्द्रस्वामीके उद्धृत श्लोकको समझें और जिस मनःस्थितिमें लीलाशुकने संध्या-वन्दन-देवताओंसे प्रार्थना की है, उसकी वास्तविकताको ध्यानमें रक्खें तो यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि वेदानुमोदित धर्मोंका पालन किये बिना नाम-संकीर्तन फलदायक नहीं होता। अतः नाम-संकीर्तनके समय पूर्वोक्त अपराधोंसे नितान्त बचना चाहिये।

गुरुका महत्त्व

लेखका उपसंहार करनेके पूर्व नाम-संकीर्तन करनेके लिये भगवन्नामके चुनावके विषयमें कुछ कह देना आवश्यक है। इस सम्बन्धमें भी कोई विशेष नियम नहीं बताया जा सकता। भगवान्के किसी नाम-रूप-विशेषको स्वीकार करनेके बाद पूर्ण एकाग्र मनसे नाम-संकीर्तन करना चाहिये। भगवान्के किस स्वरूपका चुनाव करें, यह गुरुके उपदेश तथा भक्तकी अपनी परिस्थिति और अन्तःप्रेरणापर निर्भर करता है। यह चुनाव विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, भवानी आदि किसीका भी हो सकता है। यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है कि जब किसी एक स्वरूपपर मनको एकाग्र करके नाम-संकीर्तन आरम्भ करते हैं, तब भगवान्के दूसरे स्वरूपोंके प्रति न घृणा हो और न अन्य कोई भ्रान्त धारणा हो। एक दूसरी बात और महत्त्वपूर्ण है। गुरुके उपदेशके अनुसार नाम-संकीर्तन करनेसे अधिक शक्तिकी प्राप्ति होती है; अपेक्षाकृत उसके, जब कि नाम-संकीर्तन स्वेच्छा और स्वनिर्णयानुसार किया जाता है। किंतु योग्य गुरुकी प्राप्ति कैसे हो? ऐसा कहा जाता है कि यदि किसी कार्यको ईमानदारीसे करनेकी लालसा है और वह उचित रीतिसे करना प्रारम्भ करता है तो 'गुरु' स्वयं द्वारपर आ जाते हैं और उचित पथ-प्रदर्शन करते हैं।

इस कलियुगमें भगवान्को प्राप्त करनेके लिये नाम-संकीर्तन सबसे अधिक सरल मार्ग है। अतः उसके (भगवान्के) अस्तित्वमें पूर्ण विश्वास रखते हुए हर एक व्यक्तिको अपनी नित्य पूजाके लिये 'उसके' किसी एक स्वरूपका चुनाव कर लेना चाहिये और योग्य गुरुके आदेशके अनुसार उसीका नाम-संकीर्तन करना चाहिये। ऊपर दिये गये उदाहरणोंमें जिन-जिन कठिन परिस्थितियोंका

उल्लेख आया है, उनमें भी नाम-संकीर्तन करना चाहिये और करना चाहिये पूर्वसंकेतित सभी नामापराधोंसे बचते हुए। तब अवश्य ही वह व्यक्ति इन्हीं आँखोंसे भगवान्के दर्शन तथा मोक्षकी प्राप्ति उसी प्रकार कर सकता है, जिस प्रकार कुछ सौ वर्ष पूर्व तिरुवय्यरके स्वामी त्यागराज कर चुके हैं।

नाम प्रभाव सोच नहिं सपने

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

'आप समर्थ हैं, अधिकारी हैं, अतः आपको प्रयत्न करना चाहिये!' महर्षि वसिष्ठके लिये अपने यजमानकी यशोवृद्धि-कामना सहज स्वाभाविक है। उनका यजमान भी तो कोई साधारण पुरुष नहीं है। सूर्यवंशका राजसिंहासन—मनुके वंशधरोंमें इस सिंहासनपर अबतक तो त्रिलोकपूजित, सुरासुरजय-पराक्रमी ही आसीन हुए हैं; किंतु नाभागके पुत्र अम्बरीष-जैसी भक्ति, इतना अकल्पनीय भगवद्विश्वास—स्वयं वसिष्ठजी चकित रह जाते हैं। इतनी नम्रता, ऐसी सर्ववत्सलता ऋषियोंमें भी कहाँ दृष्ट होती है। अतः महर्षि चाहते हैं कि उनके यजमानका पराक्रम भी लोकविश्रुत हो। आज वे स्वयं राजभवन पधारे हैं। महाराजने अर्घ्य निवेदित किया, चरण धोये, चन्दन-पुष्पमाल्यादिसे सविधि अर्चन जब समाप्त हुआ, बद्धाञ्जलि, नतमस्तक सम्मुख खड़े नरेशसे महर्षिने कहा।

'यह जन तो आज्ञाका अनुगामी है!' बड़ी विनम्रतापूर्वक अम्बरीष कह रहे थे—'सेवककी क्या सामर्थ्य और कैसा अधिकार—वह तो आपकी अपरिसीम कृपाका प्रसाद है जो अनायास इस अनधिकारीको प्राप्त हो जाया करता है। आपकी आज्ञाका पालन हो सके, जीवनके वे क्षण धन्य हुए।'

'राजन्! आपके पूर्वज अश्वमेध-पराक्रम हुए हैं। आपमें लोकैषणाकी गन्ध नहीं है। यह मैं जानता हूँ; किंतु भगवान् श्रीहरि यज्ञमूर्ति हैं। अश्वमेध उनकी अर्चाका श्रेष्ठतम समारोह है।' महर्षिने गम्भीरतापूर्वक अपनी इच्छा व्यक्त की—'मैं चाहता हूँ कि आप इसका संकल्प करें और उचित प्रयत्नमें लगें।'

'आपकी इच्छा है, अतः इस सेवकके लिये तो यह कर्तव्य ही है।' बिना एक क्षण कुछ सोचे, बिना हिचकके नरेशने स्वीकृति सूचित कर दी। 'श्रीचरण आवश्यक निर्देश करें। महर्षिजनोंको आमन्त्रित करनेकी धृष्टता करूँ भी तो क्या किसी नरपतिका निमन्त्रण वे वीतराग तपोधन स्वीकार करेंगे? दूसरी कोई कठिनाई तो ज्ञात नहीं होती।'

सत्ययुगका काल नहीं था। त्रेता प्रारम्भ हो गया था। पृथ्वीपर केवल मनुष्य ही नहीं थे। उपदेवताओंकी अनेक जातियाँ भी थीं पृथ्वीपर—दानव, राक्षस, यक्ष, किन्नर, नाग, वानर, रीछ आदि। ये सब उपजातियाँ जन्मसिद्ध, अतर्क्य शक्तिशाली और उनमेंसे अनेक सुरासुरजयी, महामायावी। अश्वमेधका अर्थ है—सम्पूर्ण पृथ्वीके नरेशोंको विजित करके उनसे प्रभुत्व-स्वीकृतिरूप कर प्राप्त करना और अम्बरीष इस अर्थको न जानते हों, ऐसी बात तो नहीं है। किंतु उनको तो अश्वमेध कर लेना एक सामान्य हवन-जैसा लगता है। इसी सामान्य भावनासे स्वीकृति दे दी उन्होंने। उन्हें कठिनाई एक ही दीखती है—'महर्षिगण कदाचित् उनका आमन्त्रण स्वीकार न करें।'

'ऐसा कोई ऋषि नहीं है जो नाभाग-नन्दनके आमन्त्रणका अनादर करनेका साहस करे।' वसिष्ठजी भरितकण्ठ बोले—'महाभागवतके अन्नसे परिपूत होनेकी इच्छा सुर भी करते हैं। आपका दर्शन एवं संलाप तापसोंकी तपस्याका फल है; किंतु आपका विनय उचित है। ऋषियोंको मैं आमन्त्रित करूँगा और वे आमन्त्रण पाते ही प्रस्थान करेंगे, इसमें मुझे संदेह नहीं है।'

'मुझे तो श्रीहरिकी इस महती अर्चाका श्रेय मिलना है!' अम्बरीषके नेत्रोंमें अश्रु आ गये। शरीर पुलकित हो गया। गद्गद कण्ठ कह रहे थे—'प्रभु ही आपके रूपमें स्वयं पधारे हैं। ऋषिगणको आमन्त्रित कर दें। समय एवं आवश्यक सामग्रीका आदेश दें। यज्ञीय अश्व अलभ्य नहीं है। श्यामकर्ण अश्वोंकी तो एक विशद संख्या अपने-आप एकत्र हो गयी है। अब देखता हूँ कि प्रभुने ये अश्व अपनी अर्चनाके लिये इस जनको दिये हैं।'

महर्षि वसिष्ठ भी एक क्षण अपने यजमानका मुख देखते रह गये। वे एक ही अश्वमेधयज्ञकी बात कहने आये थे। उन्हें इसीमें संदेह लगता था कि अम्बरीष इस विशाल कार्यको करना भी चाहेंगे या नहीं। लेकिन वे तो कह रहे हैं कि उनकी अश्वशालामें जितने श्यामकर्ण अश्व हैं, उतनी बार अश्वमेधयज्ञ उन्हें करना है—अनवरत करना है। श्रीहरिकी अर्चा है यह; तो उसमें आलस्य कैसा?

महर्षि भृगु तथा अंगिरा अध्वर्यु बनकर बैठेंगे तो यज्ञशालाकी ओर दृष्टि उठानेका साहस भी किसी विघ्न-देवताको नहीं होगा। इस सम्बन्धमें चिन्ताका कोई कारण नहीं है। रक्षा तथा विघ्न-वारण सर्वत्र न की जा सके, ऐसी बात भी नहीं है। कोई एक ऋषिकुमार भी रुष्ट हो जाय तो दण्डधर यमके पद भी काँपने लगते हैं; किंतु यज्ञकी एक मर्यादा है। यज्ञशालाकी सीमाके बाहर विघ्नकर्ताका प्रतीकार स्वयं यजमानके पराक्रमको ही करना चाहिये। इसमें भी दीक्षित यजमान शस्त्र ग्रहण नहीं कर सकता।

'यज्ञमें अध्वर्युकी अर्चा तो आवश्यक है; किंतु ऋषि पूजनीय होकर पधारेंगे। वे सचिन्त क्यों हों, कहीं भी?' अम्बरीषने सरलतापूर्वक कह दिया—'सर्वत्र सबकी रक्षा तो 'श्रीहरिका नाम' करता है। उस अनन्त करुणार्णवकी उपस्थितिमें शिशुपर कहीं कोई विघ्न आवे, इसकी आशङ्का ही कहाँ है?'

'कहीं कोई आशङ्का नहीं राजन्!' सहसा महर्षि वसिष्ठका स्वर अत्यन्त गम्भीर हो गया। 'तुम-जैसे नामनिष्ठ भगवद्-विश्वासीके लिये कहीं कोई आशङ्का नहीं। तुम्हारे कार्यमें अवरोध उपस्थित करनेकी शक्ति कभी किसीमें हो नहीं सकती।'

महर्षिने तत्काल महायज्ञके लिये आवश्यक निर्देश सचिव-सेवकोंको देने प्रारम्भ कर दिये।

× × ×

'महाराज अम्बरीष अश्वमेधयज्ञ करने जा रहे हैं!' समाचार तो प्रसारित होना ही था। इस समाचारने साधुशील, सात्त्विक नरेशोंको हर्षित किया। 'हमारे सौभाग्यका उदय हुआ। उन महाभागवतके पदोंमें प्रणत होकर सुर भी अपना जीवन सार्थक मानते हैं। उनके सम्राट् होनेपर उनका चरणाभिवादन हमारा स्वत्व हो जायगा। हम उनके पार्श्वमें खड़े होनेका गौरव प्राप्त करेंगे। अन्यथा वे अतिशय विनम्र—किसीको कहाँ वे अभिवादनका अवसर देते हैं।'

'महाराज अम्बरीष अश्वमेधयज्ञ करेंगे!' एक समाचा और आया—'अमुकने उनके यज्ञीय अश्वको अवरुद्ध करनेक निश्चय कर लिया है।'

'हमारा जीवन धन्य हो जाय यदि उन महाभागव अश्वरक्षामें देहपात हो।' बिना किसीके कहे, बिना कि संदेशके अनेक राजधानियोंमें सेना शस्त्र-सज्ज हो गयी। अ उनके यहाँतक आ जाय तो आगे अश्वका अनुगमन वे स्व करेंगे। किंतु जब अश्व आया—अश्व-रक्षकोंके साथ ए संदेश भी आया उस साधु-सम्राट्का—'आप सब इस जनवं सेवाका सौभाग्य देकर कृतार्थ करें। अश्व तो श्रीनारायणव अर्चाका उपलक्षण मात्र है। उनकी इच्छाका प्रतीक। उसवे साथ जो लोग हैं पर्याप्त हैं वे।'

'अश्वरक्षक पर्याप्त हैं?'—भक्तश्रेष्ठ अम्बरीष कहते हैं तं पर्याप्त हैं; किंतु थोड़ेसे रक्षक और उनके साथ भी सामान्य धनुष तथा त्रोण हैं। वे सैनिक कम लगते हैं। वे तीर्थयात्र साधु अधिक हैं। उनके पास हैं करतालें, एकतारे, जप मालिका। अश्व चलता है तो उसके पीछे सशस्त्र सावधान रक्षक नहीं चलते। चलते हैं अम्बरीषके अनुगामी—एकतारेक झंकृति, करतालके शब्द और उच्चस्वरसे—'नारायण हरि गोविन्द!' का गान करती, नृत्य एवं कीर्तन-तन्मय मण्डली अश्व स्थिर हो जाय तो उसके रक्षक वृक्षोंके नीचे जपमालिक लेकर बैठ जाते हैं। अश्वमेधीय दिग्विजययात्रा है यह औ ऐसी अद्भुत जिसकी कल्पनातक किसीने कभी न की हो।

'अरक्षित अश्व!' साधु नरेशोंको बड़ा कष्ट होता है सम्राट्का आदेश टाला नहीं जा सकता—उनकी वह उमङ्ग वह सैन्यसज्जा, उन्होंने तो आदेशकी अपेक्षा भी नहीं की थी। अब अश्वको अपनी सीमातक सम्मानपूर्वक पहुँचाक संतोष कर लेना है उन्हें; किंतु अश्व इसी प्रकार सुरक्षित पहुँचेगा भी?

वह तो पहुँचेगा। अम्बरीष जिसके भरोसे निश्चिन्त हो गये हैं, वह प्रमाद करना जो नहीं जानता। अश्व अयोध्यासे जिस क्षण चला, क्षीराब्धिमें शेषकी शय्यापर सिन्धुसुताके लगा, उनके आराध्यके चरण किञ्चित् काँप गये हैं। 'नाथ!' उन भुवनात्मिकाने पलकें उठायीं।

''अम्बरीषने अश्वमेधके लिये पूजित अश्वको प्रणिपात किया है। वह कहता है—'अश्वकी रक्षा तो हरिका नाम कर लेगा।' अतः देवि···'' परमपुरुषने केवल अपने ऊर्ध्व दक्षिण

'करें भी क्यों ? नामका आश्रय लेकर चिन्ताकी आवश्यकता भी कहाँ रह जाती है ।'

यज्ञीय अश्व लौट रहा था । उसका स्वागत करनेके लिये ऋषिगणको भी सीमातक जाना था ।

भगवन्नामसे सर्वपाप-नाश और नवीन प्रारब्धका निर्माण

(लेखक—ज्यो० भू० पं० श्रीइन्द्रनारायणजी द्विवेदी)

प्रारब्ध, भवितव्यता, कर्मविपाक और दैव—ये सब पर्यायवाची शब्द हैं । जन्म-जन्मान्तरीयकृत शुभाशुभ कर्मोंके फलोंको ज्योतिर्विज्ञानमें 'दैव' कहा गया है । उसीको 'कर्म-विपाक' भी कहते हैं और उस जन्मकालीन ग्रह-विज्ञानके द्वारा ज्योतिषीलोग जन्मपत्रमें उसी दैवको फलादेशके रूपमें लिखते हैं और इसी कारण ज्योतिषियोंको 'दैवज्ञ' कहा गया है—

'पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते ।'

पूर्वजन्मकृत कर्मको 'दैव' कहते हैं । अतएव उस दैवके रचयिता हम हैं और जन्मके बाद हम जो शुभाशुभ कर्म करते हैं, उसके द्वारा हमारे दैवकी नित्य रचना होती रहती है । मनुष्य अपने पूर्वकृत पापोंको उसके प्रायश्चित्तद्वारा मिटा सकता है और अपने पूर्वकृत पुण्यको अपने पापकर्मोंद्वारा क्षीण भी कर सकता है । पौराणिक कथानकोंमें विविध महात्माके रूपमें ऐसे उदाहरण हमको मिलते हैं कि मनुष्यने देवताओं तथा महात्माओंके आशीर्वादके द्वारा तथा देवा-पचार और महापुरुषोंके अपचारके द्वारा शापित होकर अपने दैवमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं ।

'दैव दैव आलसी पुकारा' की बात व्यर्थ है; क्योंकि जब दैवके रचयिता हम हैं, तब हमको अपने पुरुषार्थसे विरत होना नहीं चाहिये । वरं उसमें विशेष उत्साहके साथ अपने दैवको उत्तमोत्तम बनाना चाहिये । मानव-शरीर पाकर हम वह कार्य कर सकते हैं, जिसको देवयोनियाँ भी नहीं कर सकतीं । हम भगवन्नाम-जप और भगवान्‌की नैष्ठिकी भक्तिके द्वारा अपने सब पापोंको विनष्ट कर उस पदको प्राप्त कर सकते हैं, जिसको इन्द्रादि देवता भी नहीं कर सकते । भगवन्नाममें पाप-विनाश करनेकी वह शक्ति है कि मनुष्यमें उतने पाप करनेकी शक्ति ही नहीं है । विद्वानोंने प्रारब्ध दो प्रकारके बतलाये हैं—एक 'दृढ़', जिसका परिणाम भोगना ही पड़ता है और दूसरा 'अदृढ़', जिसको हम तदनुकूल प्रायश्चित्तरूपी दान-पुण्य, यज्ञ, तप आदिके द्वारा मिटा सकते हैं । यह तो सामान्य व्यक्तियोंके लिये है । भगवद्भक्तोंके लिये नहीं । मनुष्य चाहे अन्त्यजरूप पाप-योनि-धारी हो; शूद्र-स्त्री-वैश्य-क्षत्रिय-शरीरधारी हो और चाहे मनुष्यके अन्तिम शरीर पुण्यमय ब्राह्मण-शरीरधारी हो; वह भगवन्नाम-संकीर्तनके द्वारा परमपदको प्राप्त कर सकता है ।

सारांश यह कि मनुष्य अपने निष्काम पुण्य कर्मोंद्वारा सब कुछ प्राप्त कर सकता है; किंतु किसी अभिलाषासे कर्म करना बन्धनका कारण होता है । अतएव मनुष्यको अपने परम कर्तव्यरूप निष्काम भक्तिके द्वारा भगवन्नाम-जप करना मानवताको सफल बनाना है ।

सर्वप्रकारकी बन्धन-मुक्तिके लिये आशु फलदायक, सिद्ध-अनुभूत रुद्रावतार श्रीहनुमत्कृत, श्रीराम-स्तुति

हा नाथ ! हा नरोत्तम ! हा दयालो !
सीतापते ! रुचिरकुण्डलशोभिवक्त्र !
भक्तार्तिदाहक ! मनोहररूपधारिन् !
मां बन्धनात् सपदि मोचय मा विलम्बम् ॥

(पद्मपुराण पातालखण्ड ५३ । १४)

(प्रेषक—वैद्य पं० 'व्यापक' रामायणी)

मानव-जातिकी आशा

(लेखक—पं० श्रीमधुसूदनजी बाजपेयी)

आज सामान्यतः सम्पूर्ण मानव-जातिपर और विशेषतः हिंदू-जातिपर जो एक घोर निराशाका अन्धकार छाया हुआ है उसमें आशा-किरण है—ईश्वर-प्रार्थना, जो हमारे मृतप्राय विश्वासको पुनर्जीवित करनेवाली संजीवनी बूटी है ।

आप वही हैं जो आपके विचार और विश्वास हैं। ईश्वर स्वयं न किसीको अच्छाई देता है, न बुराई। जो जैसा सोचता है, वह वैसा बन जाता है। दुःखका चिन्तन करनेसे दुःख मिलता है तथा सुखका चिन्तन करनेसे सुख। बन्धनका चिन्तन करनेसे बन्धन है, मोक्षका चिन्तन करनेसे मोक्ष। मन ही मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण है। ईश्वरका चिन्तन करना ही समस्त अच्छाइयोंका चिन्तन करना है। मनुष्यका चिन्तन शब्दमय है; अतः ईश्वरका नाम जपना ही ईश्वरका चिन्तन है। यही नामोच्चारणकी महिमा है। जो साममय है, वह प्रभुमय है; उसके लिये समस्त विश्व प्रभुमय है।

नामोच्चारणके घटनेसे कलियुगकी विकरालता बढ़ती जा रही है । देश-कालके समस्त दुष्प्रभावोंकी रामबाण चिकित्सा भगवन्नाम-जप है। 'जैसा राजा वैसी प्रजा'—यह सच है; परंतु यह भी सच है कि 'जैसी प्रजा वैसा राजा।' प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र स्वयं अपना भाग्य-निर्माता है। प्रत्येक राष्ट्र वैसा ही है, जैसा उसका सामूहिक चिन्तन है। राष्ट्रमें सद्विचारोंका प्रचार-प्रसार ही वास्तविक राष्ट्र-निर्माण है । सद्विचारोंका सार भगवन्नाम है । भगवन्नाम ही सफलताकी कुंजी है। भगवन्नामके बलसे ही हम अखण्ड और अजेय होकर शुभ युग-परिवर्तन कर सकते हैं। सबसे बड़ी सजीव रचनात्मक शक्तिका अजस्र स्रोत भगवन्नाम है। जहाँ विश्वासपूर्वक नामोच्चारण है, वहाँ साक्षात् भगवान् हैं ।

यदि कोई राष्ट्र ऋण, रोग, दारिद्र्य, अकाल, महामारी, भ्रष्टाचार, दुर्बलता, आपसी फूट तथा देशद्रोहका शिकार है तो उसे पुनरुज्जीवित करनेमें समर्थ महारसायन भगवन्नाम है । भगवन्नाम ही उसके विधायकों, न्यायकर्ताओं तथा प्रशासकोंको सद्बुद्धि प्रदान करेगा; भगवन्नाम ही जनतामें एकता और देशभक्तिका संचार करेगा तथा सैनिकोंको विजेता बनायेगा। जो ईश्वर-विमुख है, धर्म-विमुख है, उसे 'कोटि बैरी सम' त्याग दीजिये; उसके साथ असहयोग कीजिये और भक्ति-पक्षको प्रबल बनाइये । जितना ही नाम-बल बढ़ेगा, उतना ही कलि-बल घटेगा ।

भारतीय जाति किंवा हिंदू-जातिको सृष्टिके आदिकालमें सनातन और सार्वभौम मानव-धर्मका ज्ञान ईश्वरीय वरदानके रूपमें प्राप्त हुआ था, जिसका सार 'योग' है। उस योगका वर्णन बादमें द्वापर युगमें स्वयं श्रीभगवान्ने श्रीमद्भगवद्गीताके रूपमें किया। गीतामें भगवान्ने अपने भक्तको बारंबार यही आदेश-उपदेश दिया है कि 'मेरी शरणमें आ; मुझे याद करता रह और युद्ध करता जा; मेरा अनन्य चिन्तन कर ।' प्रभुका अनन्य चिन्तन करते हुए जो जन उनकी उपासना करते हैं, उनका योगक्षेम स्वयं प्रभु वहन करते हैं। वास्तवमें भक्ति ही ईश्वरवादी मानव-धर्मका सार है। भक्तिका सबसे सरल रूप है—प्रार्थना, जिसमें भक्त सर्वव्यापक, सर्वसमर्थ भगवान्से अपने अभीष्ट अर्थकी याचना करता है; क्योंकि वह भगवान्के अतिरिक्त किसीसे कोई याचना नहीं करता; अयाचना उसका व्रत होता है । भक्तका अभीष्ट अर्थ कष्ट-निवारण भी हो सकता है और ज्ञान भी। अपने लिये प्रार्थना करनेवाले भक्त तीन प्रकारके होते हैं—आर्त, जिज्ञासु तथा अर्थार्थी। भक्तोंकी चतुर्थ श्रेणी ज्ञानियोंकी है, जो अपने लिये नहीं, अपितु विश्वकल्याणके लिये प्रार्थना करते हैं। जैसे यह प्रार्थना—

> न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
> कामये दुःखतप्तानामार्तानामार्तिनाशनम् ॥

—'मुझे न तो राज्यकी, न स्वर्गकी, न तो मोक्षकी कामना है। मेरी यही कामना है कि दुःखोंकी आगमें जल रहे लोगोंको सुख-शान्ति प्राप्त हो।'

भगवान्से जो भी प्रार्थना की जाती है, उसका कुछ-न-कुछ फल अवश्य अनुभव होता है और तत्काल अनुभव होता है । जितनी ही तन्मयतासे प्रार्थना की जाती है, उतना ही अधिक फल होता है । संसारके प्रत्येक देशके प्रत्येक युगके भक्तोंका अनुभव इसकी साक्षी देता है। प्रार्थना चाहे जब, चाहे जहाँ, चाहे जिन शब्दोंमें की जा सकती है या मौन-प्रार्थना भी हो सकती है; क्योंकि यह हृदयकी वस्तु है। प्रार्थना एकान्तमें भी की जा सकती है और सामूहिक रूपमें भी । यदि समूहका प्रत्येक सदस्य प्रार्थनामें हार्दिक सहयोग दे तो सामूहिक प्रार्थना करनी

चाहिये, अन्यथा अपने हृदयके एकान्तमें ही प्रार्थना करना उत्तम है। जिस प्रकार भक्तिका सरलतम रूप प्रार्थना है उसी प्रकार प्रार्थनाका सरलतम रूप नामोच्चारण है। अन्य कुछ न कहकर ईश्वरको पुकारने मात्रसे भी वे प्रभु हमारी सुनते हैं। प्रभुकी ओर उन्मुख होना ही प्रार्थना है; फिर तो वे हमारे कहनेसे पहले ही सुन लेते हैं। नामजपकी विशेषता यह है कि यह समस्त सांसारिक कर्तव्योंका पालन करते हुए निरन्तर चल सकता है तथा चलना चाहिये।

हिंदूजातिका पुनरुत्थान एवं समस्त विश्वमें शुभ युग-परिवर्तन व्यक्तिगत एवं सामूहिक भगवन्नाम-जपसे ही सम्भव है तथा अवश्यम्भावी है; ऐसा हृदयमें सुदृढ़ विश्वास होता है। नामके बलसे हिंदूजाति संगठित होकर, अपनी अजेय आकर्षण-शक्तिसे राष्ट्रीय एकता स्थापितकर, भारतीय राष्ट्रको विश्वकल्याणके लिये अन्ताराष्ट्रीय नेतृत्व प्रदान करे, यही मानवजातिके आशाकेन्द्र भावी अवतार भगवान् कल्किसे बारंबार प्रार्थना है।

आयुर्वेदके आचार्य भगवान् धन्वन्तरिने भगवन्नामके उच्चारणको सर्वरोगनाशक अमृत बताया है। भगवन्नामका अमृत पानकर ही आज मानवजातिका पुनरुत्थान होकर उस स्वाराज्यके युगका प्रभात सम्भव है, जिसके विषयमें कहा गया है—

> आत्मानं सर्वभूतेषु सर्वभूतानि चात्मनि।
> समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति॥

—'भगवान्‌को सब जीवोंमें तथा सब जीवोंको भगवान्‌में देखते हुए समदर्शी आत्मयाजी स्वाराज्य (मोक्ष) प्राप्त करता है।'

आइये, ईश्वरसे प्रार्थना करें कि 'हे प्रभो! हमारा जीवन प्रार्थनामय हो, जपमय हो, कीर्तनमय हो!' प्रभुकी कृपासे ही भक्ति प्राप्त होती है। ईश्वरका नाम लेकर प्रातःकाल जागिये तथा ईश्वरका नाम लेकर ही रात्रिको शयन कीजिये; आपका दिन मङ्गलमय बीतेगा। ईश्वरका नाम लेकर अपना प्रत्येक उद्योग प्रारम्भ कीजिये तथा उसका नाम लेकर ही समाप्त कीजिये; आपको सफलता मिलेगी। ईश्वरका नाम लेकर परीक्षाकी तैयारी कीजिये तथा उसका नाम लेकर ही परीक्षा दीजिये; आप उत्तीर्ण होंगे। नामकी नौकाके सहारे आप संसार-सागरको पार कर जायँगे। ईश्वर कृपा करें, हम उनके भक्त बनें, हमारा जीवन प्रार्थनामय हो, जपमय हो। ॐ तत्सत्॥

कृष्ण, तुम्हारा नाम

कृष्ण, तुम्हारा नाम—
भुवन-तमिस्रा निःशब्द नीरव प्रकृति
लीन जीव चिज्ज्योति
जब थी,
बना ज्योतिर्मय लोकपद्म,
पद्म-सम्भव बना,
बना स्वयं त्रिभुवन,
त्रिभुवन-जनाधार
ज्योतित निखिल-धाम।
कृष्ण, तुम्हारा नाम॥

कृष्ण, तुम्हारा नाम—
मानव मन श्रान्त-क्लान्त—
पथ-भ्रान्त,
आलोकहीन तमसाक्रान्त।
किंतु;
जब अभीप्सु उन्मुख, आकुल—
होता है,
उसका सार्वकालिक, समुज्ज्वल, सदय नित्य—
आश्रय अभय अभिराम।
कृष्ण, तुम्हारा नाम॥

कृष्ण, तुम्हारा नाम—
सर्वदा समुपलब्ध अनायास अनाबाध,
दूरीकृत दुर्धर्ष दुर्गुण
युग-गुण, कुहू-प्रपञ्च,
सुधास्रावी, स्वरूप तुमसे अभिन्न
सुहृत्तम शुभ काम।
कृष्ण, तुम्हारा नाम॥

—श्रीसुदर्शन सिंह

भगवन्नामामृत

(रचयिता—पं० श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी 'मित्र' शास्त्री)

विषय विषम-विष चिन्तन तजकर, अघहर हरिका ध्यान धरो ।
भगवन्नाम अमृत है मित्रो ! इसका प्रतिपल पान करो ॥

(१)

शुक, सनकादि, देवऋषि नारद पीकर इसको बने अजर ।
मुनि मृकण्डसुत इसको पीकर हुए सदाके लिये अमर ॥
शबरी, गणिका, गीध, अजामिल पीकर इसको गये सुधर ।
ध्रुव, प्रह्लाद इसीको पीकर गये अगम भवसागर तर ॥
प्रभुपद-पोत सुलभ कर इससे, तुम भवनीर-निधान तरो ।
भगवन्नाम अमृत है मित्रो ! इसका प्रतिपल पान करो ॥

(२)

बने विज्ञ हनुमान, विभीषण, वाल्मीकि इसको पीकर ।
मीराँबाई विष-प्यालेको, घूँट गयीं इसके बलपर ॥
शालग्राम बन गया उनको, काला नाग महाविषधर ।
राणाका उद्योग विफल कर, मिले उन्हें प्रियतम गिरिधर ॥
यह इतिहास श्रवण-पुटकोंमें, सुरसरि सलिल समान भरो ।
भगवन्नाम अमृत है मित्रो ! इसका प्रतिपल पान करो ॥

(३)

तुलसी, सूर, कबीर, तुकाको मिला इसीसे यश अक्षय ।
नाभा, नानक, नरसी, नरहरि पीकर इसे रहे निर्भय ॥
गुरु गोविन्दसिंहकी इससे धर्मयुद्धमें हुई विजय ।
श्रीचैतन्य महाप्रभु इसको पीकर हुए युगल-रसमय ॥
यह पीयूष प्राप्त है तो मत काल-व्याल-भय मान डरो ।
भगवन्नाम अमृत है मित्रो ! इसका प्रतिपल पान करो ॥

(४)

धना भक्त, रविदास, सदन भी पीकर इसको बने विमल ।
पीकर यही मलूकदासका जगमें जीवन हुआ सफल ॥
तुम भी बनकर 'मित्र' परस्पर, विकसित कर लो हृदय-कमल ।
ईर्ष्या-द्वेष-दम्भ-छल तजकर, खोजो भगवत्प्रेम अचल ॥
भौतिक, दैविक औ आध्यात्मिक ताप तथा अज्ञान हरो ।
भगवन्नाम अमृत है मित्रो ! इसका प्रतिपल पान करो ॥

राम-नाम जपु नीच !

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

'आप कभी मुझे भी स्मरण करते हैं ?' नरेशने साधुसे प्रश्न किया।

'हाँ-हाँ' साधु बोले—'मैं आपका भी स्मरण करता हूँ।'

'मुझे कब स्मरण करते हैं आप ?' नरेशने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

'जब भगवान् विस्मृत हो जाते हैं।'—बड़ी ही निश्चिन्ततासे साधु बोले—'तब आपकी याद आ जाती है।'

सच्चे साधु भगवान्के अतिरिक्त भला और किसे याद करेंगे ? निरन्तर स्मृतिसे वे भगवान्के प्रीति-भाजन हो जाते हैं और अन्ततः भगवान्के धाममें भगवान्के ही समीप रहते हैं, किंतु जो जगदाधार स्वामीके अतिरिक्त धन-पुत्र आदिकी स्मृतिमें तल्लीन रहते हैं, उन्हें बार-बार पृथ्वीपर अनेक योनियोंमें भटकना ही पड़ता है।

शेख सादी कहते हैं कि 'एक बार मैं हेजाज (अरबका वह प्रान्त जिसमें मक्का-मदीना है) जा रहा था। मेरे काफिलेमें कई बड़े ही सज्जन और बहादुर जवान थे। मार्गमें चलते-चलते थक जानेपर कभी-कभी वे लोग मनोरञ्जनार्थ भक्तिरसमें डूबे और धार्मिक भावनाओंसे भरे शेर कहने लगते थे। बड़ा आनन्द आता था। सभी प्रसन्न हो जाते थे, किंतु उस काफिलेमें एक ऐसा व्यक्ति भी था, जो साधुओंको देखते ही क्रुद्ध हो जाता था। कदाचित् उसे विदित ही नहीं था कि सच्चा साधु क्या होता है। साधुके त्याग, तप एवं भगवत्प्रेमसे वह सर्वथा अपरिचित था।

'अन्तमें मेरा काफिला चलते-चलते नवीं-हिलाल (एक गाँव, जो ईरानसे हेजाज जाते समय मार्गमें मिलता है) नामक नखलिस्तानके पास पहुँचा। वहाँ खजूरके अत्यधिक वृक्ष थे, जिनकी घनी छायासे सर्वत्र हरियाली थी।

'वहाँ एक काला-कलूटा अरबी बालक आया और अत्यन्त मधुर वाणीमें गीत गाने लगा। अद्भुत जादूका-सा प्रभाव था उसकी तानमें। पक्षियोंने उड़ना छोड़कर अपने पंख समेट लिये। इतना ही नहीं, उस व्यक्तिका ऊँट भी मत्त होकर नृत्य करने लगा। उसने नाचते-नाचते अपने सवारको धरतीपर पटक दिया और एक ओर भाग गया।

'किंतु वह सवार ! सूखे ठूँठकी तरह चुपचाप खड़ा रहा। अरबी बालककी उस मोहिनी तानका उसपर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा।

'यह देखकर मुझसे रहा नहीं गया। मैंने उस व्यक्तिसे कहा—'भाई ! इस विलक्षण तानसे पशु-पक्षीतक मुदित हो गये; किंतु तुमपर किंचित् प्रभाव नहीं पड़ा ? तुम्हें विदित है कि प्रत्यूष वेलामें बुलबुलने क्या कहा ? तुम कैसे मनुष्य हो जो प्रेमसे इतने अनभिज्ञ हो ? अरबी बालकके गीतसे ऊँट तो प्रसन्नतासे नाच उठा, पर तुम्हें तनिक भी खुशी नहीं हुई। क्या तुम पशुसे भी गये-बीते हो ?'

सच है, मैदानोंमें आँधियाँ चलती हैं और सरोवरके वृक्ष मस्तक झुका देते हैं, किंतु पाषाण-शिलापर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रत्येक वस्तु जो दीखती है, भगवान्के गुणानुवाद गाती है। इसे अच्छी प्रकार साधु पुरुष ही जानते हैं। उसके पुष्पके लिये केवल बुलबुल ही उसकी प्रशंसाके गीत नहीं गाती, बल्कि प्रत्येक काँटा उसकी प्रशंसाके गीत गानेके लिये जिह्वा बना हुआ है।

वस्तुतः है भी यही बात। तृण-लता-गुल्म, नद-नदियाँ, गिरिशृङ्ग एवं महासागर, पशु-पक्षी—सभी अपने स्वरोंमें उस परम प्रभुके गुणानुवाद गाते हैं। सभी अपनी ... उनका नाम लेते हैं।

नाम और नामीमें कोई अन्तर नहीं। हम सबके इस कलिमें नाम अत्यन्त सुगम साधन है। शिव, कृष्ण, हरि, दुर्गा—सभी नाम उस एक महिमामय स... प्रभुके हैं। नामकी महिमा अपार है। भगवान् वेदव्यास... अपने मुखारविन्दसे कहा है—

> मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ रामेति नाम यः स्मरेत्।
> स पापात्मापि परमं मोक्षमाप्नोति जैमिने ॥

सूर्यपुत्र श्रीयमदेवने अपने दूतोंको बताया है—"हे दू... यदि उन्होंने मरते समय 'राम' इन दो अक्षरोंका स्म... किया है तो वे मुझसे कभी दण्डनीय नहीं हैं। उस 'रा... नामके प्रतापसे भगवान् नारायण उनके प्रभु हो गये।"

> दूता यदि स्मरन्तौ तौ रामनामाक्षरद्वयम्।
> तदा न मे दण्डनीयौ तयोर्नारायणः प्रभुः ॥

'ब्रह्मरहस्य'में भगवान् शंकरने जगज्जननी पार्वतीसे कहा है—

'पार्वती ! निश्चय ही राम-नामके श्रवण और कीर्तन... भगवान् राम महान् पापसे भी उद्धार करते हैं। देवेशि... मैं सत्य कहता हूँ, इसे सुनकर धारण कर लो कि इस संसार... नाम-संकीर्तनको छोड़कर कोई दूसरा मुक्त करनेवाला साध...

नहीं। जो श्रद्धा या अवहेलनासे भी एक बार राम-नामका उच्चारण करता है, वह सब पापोंसे पवित्र हो जाता है। सब आचरणोंसे हीन तथा संताप और क्लेशयुक्त भी राम-नाम-संकीर्तनद्वारा सनातन ब्रह्मपदको प्राप्त हो जाता है।'

नियतं रामनाम्नस्तु कीर्त्तनाच्छ्रवणाच्छिवे।
महतोऽप्येनसः सत्यमुद्धरेद्राघवो बली॥
सत्यं ब्रवीमि देवेशि श्रुत्वेदमवधारय।
नामसंकीर्तनादन्यो मोचकोऽत्र न विद्यते॥
सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनामेति मङ्गलम्।
हेलया श्रद्धया वापि स पूतः सर्वपातकैः॥
सर्वाचारविहीनोऽपि तापक्लेशादिसंयुतः।
श्रीरामनाम संकीर्त्य याति ब्रह्म सनातनम्॥

राम-नामकी महिमासे सने भारतीय धर्म-शास्त्र, स्मृतियाँ, पुराण भरे पड़े हैं। महात्मा सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास तथा मीराँबाई आदि अनेक संतोंके जीवन, नामके प्रज्वलित उदाहरण हमारे सम्मुख हैं। श्रीतुलसीदासजी तो धोखेसे भी राम-नाम ले लेनेवालेके लिये कहते हैं—

तुलसी जाके मुखन ते धोखेहु निकसत राम।
ताके पगकी पगतरी मोरे तनको चाम॥

अद्वितीय नाम-प्रेमी एवं अनन्य-भक्त नामामृत-पानका अलौकिक आनन्द प्राप्त करनेके कारण चाहते हैं कि सभी मनुष्य इस परमोपयोगी, अलभ्य, अलौकिक आनन्दकी प्राप्ति करें। जो इस आनन्दसे किसी प्रकार वञ्चित रहते हैं उनपर स्नेहवश उनके मनमें खीझ भी उत्पन्न होती है।

एक बारकी बात है। एक साधु 'अलख-अलख' पुकारता जा रहा था। 'अलख-अलख'की उसकी ध्वनि श्री-तुलसीदासजीके कानमें भी पड़ी। उनके मनमें खीझ उत्पन्न हुई; उसी समय बोल उठे—

हम लख हमहिं हमार लख हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखै राम नाम जपु नीच॥

निर्गुणी संत व भगवन्नाम

(लेखक—पं० श्रीपरशुरामजी चतुर्वेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

कबीरसाहब, नानकदेव, दादूदयाल आदि निर्गुणी संतोंने भगवन्नामके लिये प्रायः 'नामं', 'रामनामं', 'हरिनाम', एवं 'नाम निरंजन'-जैसे शब्दोंके प्रयोग किये हैं तथा नाम-स्मरणको ही सर्वश्रेष्ठ भक्तिसाधनाके रूपमें स्वीकार करते हुए सभीको उसे अपनानेके उपदेश भी दिये हैं। संत सुन्दरदासके अनुसार संतोंने मिलकर हरिनामकी साधनाको साररूपमें ग्रहण किया है तथा उन्होंने सभी क्रियाओंका मन्थन करके इसे घृतवत् निकाल लिया है और शेषको तक्र मानकर उनका परित्याग कर दिया है; क्योंकि उनकी दृष्टिमें ये सभी निरर्थक ठहरती हैं।

'सुंदर सबही संत मिलि, सार लियो हरिनाम।
तक्र तजी घृत काढ़िकै, और क्रिया किहि काम॥'

इसी प्रकार कबीरसाहबने भी एक स्थलपर कहा है कि हरि-नामका भजन ही वस्तुतः भक्ति कहलाने योग्य है, अन्य बातें तो 'अपार दुःख' जैसी ठहरायी जा सकती हैं—

'भगति भजन हरि नाउँ है, दूजा दुःख अपार।'

अतएव रैदासजीने तो परमात्माकी 'आरती'का एक लंबा-सा रूपक बाँधते हुए उसके लिये प्रयोगमें आनेवाली सारी सामग्रियों—जैसे आसन, हुरसा, चन्दन, केसर, दीया, बाती, फूलमाला, चँवर आदिसे लेकर अन्तरगतिमें भोग लगाये जानेवाले हरितकको केवल 'नाम' शब्दसे ही अभिहित करना उचित समझा है। गुरु नानकदेवने कहा है कि 'जो कुछ भी रचना है वह सभी नाम है, उसके बिना कोई भी स्थान रिक्त नहीं है'—

'जेता कीया तेता नांउ। विणु नांवै नाहीं को थांउ।

तथा ऐसा कथन करके वे परमात्माके प्रति अनेक बार न्योछावर जाते हैं।

निर्गुणी संतलोग हरिनामके महत्त्वका वर्णन करते-करते थकना नहीं जानते तथा उसके स्मरणका परिणाम बतलाते समय उसके आगे अन्य किसी भी कामको हेय ठहरानेसे भी नहीं चूकते। गुरु नानकदेवने अपने एक पदमें बतलाया है कि 'यदि मेरे शरीरको एक-एक रत्तीकी तोलमें काटकर होम किया जाय अथवा प्रतिदिन अग्नि प्रज्वलित करके तन और मन दोनोंकी समिधा की जाय और इस प्रकारके लाखों-करोड़ों कर्म किये जायँ तो भी ये हरिनामकी तुलनामें नहीं ठहरते; तथा इसी प्रकार यदि मेरे

सिरपर आरा रखवाकर आधा-आधा काट दिया जाय, चाहे इसे हिमालयमें गला दिया जाय अथवा चाहे मैं सोनेके किले दान कर दूँ या अनेक श्रेष्ठ घोड़ों एवं हाथियोंको दानमें दे दूँ; फिर भी ये हरिनामकी तुलनामें आने योग्य नहीं और न गोदान या भूमिदानको ही इस कोटिमें लाया जा सकता है।' जैसे—

तनु बैसंतरि होमिए इक रती तोलि कटाइ।
तनु मनु समधा जे करी अनदिनु अगनि जलाइ॥
हरिनामै तुलि न पुजई जे लख कोटी करम कमाइ॥
अरध सरीरु कटाइए सिरि करवतु धराइ।
तनु हैमंचलि गालिये भी मनते रोगु न जाइ॥
कंचनके कोट दानु करी बहु हैवर गैवर दानु।
भूमिदानु गउवा घनी अंतरि गरब गुमानु॥
हरिनामै तुलि न पुजई भाई।

संत दादूदयालका भी कहना है कि 'वास्तवमें राम-नामके बिना जीवकी भीतरी जलन दूर नहीं हो सकती। यों तो जाने कितने लोगोंने अनेक उपाय किये, किंतु वे अन्तमें ठहर नहीं सके और नष्ट हो गये।' जैसे—

एक रामके नाँव बिन, जिवकी जलनि न जाइ।
दादू केते पचि मुए, करि करि बहुत उपाइ॥

इसीलिये कबीरसाहबने भी कहा है कि 'नामके रंचक-मात्र भी स्मरण होनेपर एक पलकमें ही करोड़ों कर्मोंका क्षय हो जाया करता है तथा नामके बिना अनेक जन्मोंतक भी पुण्य करनेपर कहीं ठौर-ठिकाना नहीं लगता' जैसे—

कोटि करम किण पलकमें, जे रंचक आवै नाँउ॥
जुग अनेक जो पुंनि करै, नही नाँउ बिनु ठाँउ॥

निर्गुणी संतोंकी रचनाओंमें वास्तविक हरिनाम-स्मरणकी कुछ विशेषताओंका भी परिचय मिलता है और वहाँपर यह पता लगते देर नहीं लगती कि ऐसी साधनाके लिये केवल मुखसे रामका नाम ले लेना मात्र पर्याप्त नहीं है। इस सम्बन्धमें दादूदयालका कहना है कि 'रामका नाम तो सभी लेते हैं किंतु इसकी साधनामें यह बात विशेष रूपसे उल्लेखनीय है कि हम साधारण साधक जहाँ उस एकके साथ मिलकर फिर अनेकमें आ जाता है, वहाँ दूसरा उसके साथ एक होकर उसमें प्रवेश कर जाता है। अपनी-अपनी सीमाके भीतर तो सभी नाम ले लिया करते हैं; किंतु दादू उन्हींपर बलि जाता है जो उस निःसीम (बेहद) में लीन हो जाते हैं'—

दादू राम नाम सब कोइ कहै, कहिबे माँहि बमेक।
एक अनेकौं फिरि मिले, एक समाना एक॥
दादू अपणी अपणी हदमें, सब कोइ लेवै नाँउ।
जे लागे बेहद सूँ तिनकी मैं बलि जाँउ॥

ऐसी साधनामें, दादूदयालके अनुसार नामस्मरण पीड़ाके साथ अर्थात् आर्तभावसे होना चाहिये, प्रेमाभक्तिके साथ गुणगान होना चाहिये तथा सानुराग तल्लीन बन जाना चाहिये, जिससे उसके परिणामस्वरूप प्राण, मन एवं सुरति—ये तीनों ही उस रामके स्मरणमें एक साथ लग जायँ जो शून्य ब्रह्म (निर्गुण परमतत्त्व) और 'निजठाम' रूप भी है। जैसे—

नाँव सपीड़ा लीजिये, प्रेम भगति गुन गाइ।
दादू सुमिरण प्रीति सौं, हेत सहित ल्यौ लाइ॥
प्राण कँवल मुखि राम कहि, मन पवना मुखि राम।
दादू सुरति मुखि राम कहि, ब्रह्म सुंनि निज ठाम॥

उनके शिष्य सुन्दरदासने इसी बातको इस प्रकार भी कहा है कि 'जो कोई अपनी सुरतिको समेट करके मनसा, वाचा एवं कर्मणा—स्मरणमें लीन हो जाता है उसके अधीन स्वयं हरि हो जाया करते हैं।' जैसे—

सुंदर सुरति समेटि करि, सुमिरन सौं लैलीन।
मन बच क्रम करि होत है, हरि ताके आधीन॥

दादूदयालजीके एक अन्य शिष्य संत रज्जबजीका भी कहना है कि 'जो स्मरण मुखसे होता है वह मानवीय कोटिका कहला सकता है और इसी प्रकार जो दिलसे किया जाता है, उसे हम देवकोटिका कह सकते हैं; किंतु जो जप सम्पूर्ण जीवकी ओरसे होता है, वही वस्तुतः परमज्योतिमें लीन कर दिया करता है और वही सच्ची सेवा भी कहलाने योग्य है।' जैसे—

मुख सूँ भजे सु मानवी, दिल सूँ भजे सु देव।
जिव सूँ जपै सु जोतिमैं, रज्जब साची सेव॥

परंतु निर्गुणी संतोंकी पंक्तियोंमें हमें केवल रामनामके महत्त्व अथवा उसके स्मरण-सम्बन्धी साधनाके स्वरूपका परिचय मात्र ही उपलब्ध नहीं होता और न केवल इतने मात्रसे वे संतुष्ट रह जाते ही दीख पड़ते हैं। हमें वहाँपर

ऐसे भी अनेक स्थल मिलते हैं, जहाँ उन्होंने अपनी उक्त प्रकारकी क्रियाओंके फलस्वरूप उपलब्ध निजी अनुभवका भी वर्णन किया है, जो न केवल हमें उनकी 'रहनी'का स्पष्ट विवरण प्रस्तुत करता है, अपितु जो हमें कम रोचक भी नहीं जान पड़ता। उदाहरणके लिये अपने अनुभवका परिचय देते हुए संत नामदेव कहते हैं कि 'मेरा मन किसी मापनेवाले गजके रूपमें परिणत हो गया है और मेरी जिह्वा कतरनेवाली कैंचीका काम कर रही है, जिन दोनोंकी सहायतासे माप-मापकर मैं यमकी फाँसी काटता जा रहा हूँ। मुझे जात-पाँतसे कोई मतलब नहीं और मैं दिन-रात रामका नाम जपनेमें ही लगा हूँ। मैं भक्ति करता हूँ और आठों पहर हरिके गुण गाता तथा अपने स्वामीके ध्यानमें लगा रहता हूँ; सोनेकी सुई है एवं रूपेका धागा है तथा नामदेवका चित्त हरिमें लीन है।' जैसे—

मन मेरे गजु जिह्वा मेरी काती, मपि मपि काटउँ जम फाँसी।
कहा करउ जाती कहा करउ पाती, रामको नामु जपउ दिनराती॥
भगति करउ हरिके गुन गावउ, आठ पहर अपना खसम धिआवउ।
सुइनेकी सुई रूपेका धागा, नामेका चितु हरि सउ लागा॥

इसी प्रकार संत कबीर भी, अपने विषयमें चर्चा करते हुए अपने एक पदके अन्तर्गत बतलाते हैं कि 'हरिका नाम मेरे लिये एक इस प्रकारका धन है, जिसे न तो मैं अपनी गाँठमें बाँधा करता हूँ और न इसकी बिक्री करके ही मैं अपनी जीविका चलाया करता हूँ। नाम ही मेरे लिये खेती-बारी है, जिसके आधारपर भक्ति करके मैं परमात्माकी शरण-में रहा करता हूँ और वही मेरी माया तथा पूँजी भी है, जिसके बलपर मैं उसके अतिरिक्त किसी अन्यके पास जाने-की कभी आवश्यकता नहीं समझता। नाम ही मेरा बन्धु है और वही भाई है। जिसके सम्बन्धमें मुझे विश्वास है कि वह अन्तिम समयमें भी मेरी सहायता करेगा। मुझ निर्धनको यह नाम-जैसी निधि मिल गयी है और इसका महत्त्व मेरे लिये उसी प्रकारका है, जैसा किसी रंकके लिये मिष्ठान्नका हुआ करता है।' जैसे—

इहु धन मेरे हरिको नाँउ। गाँठि न बाँधउ बेंचि न खाँउ॥
नाँउ मेरे खेती नाँउ मेरे बारी। भगति करउ जब सरनि तुम्हारी॥
नाँउ मेरे माया नाँउ मेरे पूजी। तुमहि छाड़ि जानउँ नहिं दूजी॥
नाँउ मेरे बंधिय नाँउ मेरे भाई। अंतकी बेरियाँ नाँउ सहाई॥
नाँउ मेरे निर्धन ज्यूँ निधि पाई। कहै कबीर जैसे रंक मिठाई॥

इसके द्वारा नामके प्रति उनकी परम आस्था भी प्रकट होती है। इसके अतिरिक्त नामस्मरणद्वारा प्रभावित संत कबीर साहबकी वे प्रसिद्ध साखियाँ भी उद्धृत की जा सकती हैं, जिनमेंसे एकमें उन्होंने कहा है कि 'मेरा मन रामका स्मरण करता-करता उनमें लीन हो गया है और वह अब राम ही हो गया है। इस कारण मैं अब किसे नमस्कार करूँ।' इसी प्रकार उन्होंने अपनी दूसरी साखीमें भी कहा है कि 'तूं-तूं करता-करता मैं अब तुझमें परिवर्तित हो गया हूँ और मुझमें 'मैंपना'की अब कोई गन्धतक नहीं रह गयी, जिसका एक परिणाम यह है कि मैं तेरे ऊपर बलि जाता हूँ और मुझे सर्वत्र तूँ-ही-तूँ दीख पड़ रहा है'—

मेरा मन सुमिरे राम कूँ, मेरा मन रामहि आहि।
अब मन रामहि है गया, सीस नवावौं काहि॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूँ॥

गुरु नानकदेव भी कहते हैं कि 'मेरे मनमें रामनाम बिंध गया है; अब मैं अन्य विचार क्या करूँ। शब्दकी सुरतिसे सुख उत्पन्न होता है और प्रभुके प्रेममें अनुरक्त होना सभी सुखोंका सारस्वरूप है। अब मुझे तू जिस प्रकार चाहे रख, मेरे लिये तो केवल हरिनामका ही आधार है।' जैसे—

राम नामि मनु बेधिया, अवरु कि करी बिचारु।
सबद सुरति सुखु ऊपजे, प्रभु रातउ सुख सारु॥
जिउ भावै तिउ राखु तूँ, मैं हरिनामु अधारु।

इसी प्रकार नाम-स्मरणके ही फलस्वरूप संत हरिदास निरंजनीकी भी दशा ऐसी हो गयी है कि वे इस प्रकार कह उठते हैं—'अब मैं हरिके अतिरिक्त अन्य किसीके भी निकट प्रार्थी बनकर नहीं जा सकता और उसीके भजनमें मग्न होकर नाचा करता हूँ। हरि ही मेरा कर्ता है और उसीके द्वारा मैं निर्मित हूँ तथा मैंने उसीको अपना मन समर्पित भी कर दिया है। मैंने ज्यों ही उसका ज्ञान, ध्यान एवं प्रेम उपलब्ध किया, त्यों ही मैंने उसके प्रति अपनेको समर्पित कर दिया। हरि वा रामके नामका व्रत हृदयमें धारण करता हूँ और उस परम उदारको एक क्षणके लिये भी नहीं भूलता। मैंने हरिका नाम बार-बार गाकर अपने भाव प्रकट किये, जिसका परिणाम यह हुआ कि मेरा मन मगन हो गया और मैं गगनके मठमें निवास करने लग गया हूँ। मुझ हरिदासने आशाके बन्धनको छोड़ दिया तथा निर्गुण हरिकी अपनी पुरीमें भी मेरा अब निवास हो गया।' जैसे—

अब मैं हरि बिन आन न जाँचू, भजि भगवंत मगन है नाँचू।
हरि जोग करता, हूँ हरि कीया, मैं मेरा मन हरि कूँ दीया॥
ग्यान ध्यान प्रेम हम पाया, जब पाया तब आप गवाँया।
हरि रामनाम व्रत हिरदै धारौं, परम उदार निमष न बिसारौं॥
हरि गाइ गाइ गावैया गाया, मन भया मगन गगन मठ छाया।
जन हरिदास आस तजि पासा, हरि निरगुन निज पुरी निवासा॥

रामनामको अपना सर्वस्व समझनेवाले तथा उसके द्वारा प्राप्त स्वानुभूतिके कारण भावावेशमें आ जानेवाले दादूदयाल अपने एक पदमें नामके विषयमें अपना उद्गार इस प्रकार प्रकट करते हैं। उनका कहना है—'अरे नाम और नाम ही सबका सिरमौर है और मैं उसके प्रति अपनेको न्योछावर करता हूँ। वह पार किये जानेमें कठिन भवसागरके पार उतार देता है और नरकसे रक्षा करता है तथा वह सभी प्रकारसे तत्त्वतः निर्मल है। वह नूरको दिखलाता है, तेजके साथ मिला देता है और उसी प्रकार ज्योतिको जाग्रत् भी करता है तथा वह सभी सुखोंका प्रदाता अमृत है, जिसमें रत होनेके कारण मैं मत्त बन गया हूँ।'

नाँउरे नाँउरे सकल सिरोमनि, नाँउरे, मैं बलिहारी जाँउरे।
दूतर तारै पार उतारै, नरक निवारै नाँउरे॥
तारणहारा भौ जल पारा, निर्मल सारा नाँउरे।
नूर दिखावै, तेज मिलावै, जोति जगावै नाँउरे॥
सब सुखदाता अमृत राता दादू माता नाँउरे।

परंतु इतना मत्त हो उठनेपर भी संत दादूदयालको उस रामरसके द्वारा पूरी तृप्ति हो जाती नहीं दीख पड़ती। उसके मीठेपनका स्वाद इन्हें इतना अधिक पसंद है कि ये उसे कितना भी पीते चले जायँ, इन्हें पूरा संतोष नहीं हो पाता; प्रत्युत ये पछताते ही रह जाते हैं। इनका कहना है कि 'मुझे इस बातकी हौंस ही बनी रह गयी कि इस अनुपम वस्तुसे मैं जितना चाहिये उतना लाभ नहीं उठा सका।

सुमिरण का साँसा रह्या, पछितावा मन माँहि।
दादू मीठा राम रस, सजका पीया नाँहि॥
दादू जैसा नाँव था, तैसा लीया नाँहि।
हौंस रही यहु जीव मैं, पछितावा मन माँहि॥

जिससे यह भी ध्वनित होता है कि उसका महत्त्व वर्णनातीत भी होगा। उधर संत मलूकदास इतने आश्वस्त जान पड़ते हैं कि उन्हें कदाचित् किसी भी प्रकारके स्मरणादिकी आवश्यकता नहीं। अपनी एक साखीद्वारा ये बतलाते हैं कि 'मैं न तो माला जपता हूँ और न अपनी अँगुलियोंको काममें लाता हूँ। मैं अपनी जिह्वाद्वारा भी रामनामका उच्चारण करना आवश्यक नहीं समझता, क्योंकि स्वयं हरि ही मेरा स्मरण करते हैं और मैं अब सानन्द हूँ।'

माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पाया बिश्राम॥

जिस स्थितिके लिये कहा जा सकता है कि पूर्ण आत्मसमर्पणका भाव आ जानेके कारण, उसमें कोई भी साधना अनिवार्य नहीं है।

निर्गुणी संतोंने दूसरे लोगोंको अपने जीवनमें नामको यथोचित महत्त्व देनेके लिये बार-बार प्रोत्साहित किया है। कभी उन्हें चेतावनी दी है, कभी इसका मार्ग सुझाया है तो कभी इसके महत्त्वको हृदयङ्गम करानेके लिये तर्क भी दिये हैं। उनका प्रयत्न बराबर यही रहा है कि सभी कोई इसकी ओर यथेष्ट ध्यान दें, इसे समझें तथा न केवल इसे एक साधनाके रूपमें ही अपनानेकी चेष्टा करें, प्रत्युत इसे अपने जीवनके एक आवश्यक अङ्गके रूपमें भी ग्रहण करें। कबीर साहबका कहना है कि 'राम-नामकी लूट पड़ी है, यदि हो सके तो तू भी लूट ले, अन्यथा मरते समय पछताना पड़ेगा। अरे, जबतक दियेमें बत्ती जल रही है तबतक निर्भय बनकर तू रामका जप करता जा; जब तेल घट जायगा और इसी कारण जिस समय बत्ती आप-से-आप बुझ जायगी, उस दशामें तो तुझे बराबर सोते रहना ही पड़ेगा। इस समय तो जाग जा।' जैसे—

लूटि सकै तो लूटि लै, राम नाम की लूटि।
फिरि पाछैं पछिताहुगे, प्रान जाहिंगे छूटि॥
कबीर निरभै राम जपि, जबलगि दीवै बाति।
तेल घटै बाती बुझै, तब सोवैगा दिन राति॥

इसी प्रकार दादूदयाल भी कहते हैं कि 'उस हरिरसका पान करनेमें एक क्षणका भी विलम्ब न होने दो। बार-बार उसका स्मरण करते रहो जिससे वह कहीं विस्मृत न हो जाय और तुम्हारे हाथसे चला जाय। हरिका नाम अत्यन्त सुन्दर है, इसे तुम अपने हृदयसे विस्मृत न होने दो; उसकी मूर्तिको मनमें सदा बने रहने दो और प्रत्येक श्वासके साथ स्मरण करते चलो।'—

दादू हरि रस पीवताँ, रती बिलंब न लाइ।
बारंबार सँभालिये, मति वै बीसरि जाइ॥

पंच ततु मिलि काइया कीनी ।
तिस महि राम रतनु लै चीनी ॥
आतम रामु रामु है आतम ।
हरि पाईऐ सबदि विचारा हे ॥ ७ ॥
... ...

हरि गुर पूरे की ओट पराती
गुर मुखि हरि लिव गुरमुखि जाती
नानक राम नामि मति ऊतम
हरि बखसे पारि उतारा हे ॥

श्रीभगवन्नामके फलस्वरूप श्रीराधाजीका प्राकट्य

ब्रह्माण्डपुराण उत्तरखण्डके षष्ठ अध्यायमें कात्यायनीदेवीके द्वारा श्रीवृषभानुके वर प्राप्त [illegible] कथा है।*

वृषभानु संतानहीन होनेके कारण बड़े दुःखसे जीवन बिता रहे थे। तब पहले-पहल उनकी पत्नीने उनसे कात्यायनीदेवीकी आराधना करनेके लिये कहा। वृषभानुजीके कठोर तपस्या करनेपर वाग् आकाशवाणीके द्वारा उन्हें आदेश दिया—

हरिनाम विना वत्स वर्णशुद्धिर्न जायते ।
तस्माच्छ्रेयस्करं राजन् हरिनामानुकीर्तनम् । गृहाण हरिनामानि यथाक्रममनिन्दित ॥

'वत्स! हरिनामके विना वर्ण-शुद्धि नहीं होगी। अतएव राजन्! हरिनामका कीर्तन ही क[illegible]कारी है। तुम पवित्र हरिनामोंको ही क्रमसे ग्रहण करो।'

उन्हींके निर्देशसे क्रतुमुनिके द्वारा वृषभानुको हरिनाम प्राप्त हुआ। उस नामका प्रकार था—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

क्रतुमुनिने और भी कहा—

इत्यष्टशतकं नाम्नां त्रिकालं कल्मषापहम् । नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु विद्यते ॥

क्रतुने आगे चलकर कहा—

शाक्तो वा वैष्णवो वापि सौरा वा शैव एव वा । गाणपत्यो लभेद् वर्णशुद्धिं नामानुकीर्तनात् ॥
यस्य कर्णपुटे राजन् न विशेद्धरिनामकम् । शवस्य कर्णौ तावेव विष्टे शुद्धिमतो व्रजेत् ॥

वृषभानुकी तपस्या और इस नाम-जपसे प्रसन्न होकर कात्यायनी देवी उनके सामने प्रकट हो ग[illegible] और उन्होंने वृषभानुसे वर माँगनेके लिये कहा। यद्यपि वृषभानुने संतान-प्राप्तिकी कामनासे साध[illegible] आरम्भ की थी तथापि वे कात्यायनी देवीसे बोले—'आपके दर्शनसे ही मेरे सारे अभीष्ट पूर्ण हो गये।' [illegible] कात्यायनीदेवीने उनके पूर्व अभीष्ट और कामनाकी पूर्तिके लिये उनको एक ज्योतिर्मय डिम्ब दिया। उस[illegible] श्रीराधाका प्राकट्य हुआ। इस प्रकार 'नाम'के फलस्वरूप वृषभानुने संतान प्राप्त की।

(भारताजिर २१ । ३

---

* प्रचलित ब्रह्माण्डपुराणमें यह प्रसङ्ग नहीं मिलता। श्रीनरेशचन्द्र चक्रवर्तीने इसे ढूँढ़नेका बहु[illegible] प्रयास करके कलकत्तेकी 'नेशनल लाइब्रेरी'के ग्रन्थमें इसे प्राप्त किया है।

पंच तनु मिलि काइया कीनी ।
तिस महि राम रतनु लै चीनी ॥
आतम रामु रामु है आतम ।
हरि पाईए सबदि विचारा हे ॥ ७ ॥
... ...

हरि गुर पूरे की ओट पराती ।
गुर मुखि हरि लिव गुरमुखि जाती ॥
नानक राम नामि मति ऊतम ।
हरि बखसे पारि उतारा हे ॥ १

श्रीभगवन्नामके फलस्वरूप श्रीराधाजीका प्राकट्य

ब्रह्माण्डपुराण उत्तरखण्डके षष्ठ अध्यायमें कात्यायनीदेवीके द्वारा श्रीवृषभानुके वर प्राप्त हों कथा है ।*

वृषभानु संतानहीन होनेके कारण बड़े दुःखसे जीवन बिता रहे थे । तब पहले-पहल उनकी र पत्नीने उनसे कात्यायनीदेवीकी आराधना करनेके लिये कहा । वृषभानुजीके कठोर तपस्या करनेपर वाग्देव आकाशवाणीके द्वारा उन्हें आदेश दिया—

हरिनाम विना वत्स वर्णशुद्धिर्न जायते ।
तस्माच्छ्रेयस्करं राजन् हरिनामानुकीर्तनम् । गृहाण हरिनामानि यथाक्रममनिन्दित ॥

'वत्स ! हरिनामके बिना वर्ण-शुद्धि नहीं होगी । अतएव राजन् ! हरिनामका कीर्तन ही कल्याण कारी है । तुम पवित्र हरिनामोंको ही क्रमसे ग्रहण करो ।'

उन्हींके निर्देशसे क्रतुमुनिके द्वारा वृषभानुको हरिनाम प्राप्त हुआ । उस नामका प्रकार था—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

क्रतुमुनिने और भी कहा—

इत्यष्टशतकं नाम्नां त्रिकालं कल्मषापहम् । नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु विद्यते ॥

क्रतुने आगे चलकर कहा—

शाक्तो वा वैष्णवो वापि सौरो वा शैव एव वा । गाणपत्यो लभेद् वर्णशुद्धिं नामानुकीर्तनात् ॥
यस्य कर्णपुटे राजन् न विशेद्धरिनामकम् । शवस्य कर्णौ तावेव विष्टे शुद्धिमतो व्रजेत् ॥

वृषभानुकी तपस्या और इस नाम-जपसे प्रसन्न होकर कात्यायनी देवी उनके सामने प्रकट हो गयीं और उन्होंने वृषभानुसे वर माँगनेके लिये कहा । यद्यपि वृषभानुने संतान-प्राप्तिकी कामनासे साधना आरम्भ की थी तथापि वे कात्यायनी देवीसे बोले—'आपके दर्शनसे ही मेरे सारे अभीष्ट पूर्ण हो गये ।' पर कात्यायनीदेवीने उनके पूर्व अभीष्ट और कामनाकी पूर्तिके लिये उनको एक ज्योतिर्मय डिम्ब दिया । उसीसे श्रीराधाका प्राकट्य हुआ । इस प्रकार 'नाम'के फलस्वरूप वृषभानुने संतान प्राप्त की ।

(भारतजिर २१ । ३७)

* प्रचलित ब्रह्माण्डपुराणमें यह प्रसङ्ग नहीं मिलता । श्रीनरेशचन्द्र चक्रवर्तीने इसे ढूँढ़नेका बहुत प्रयास करके कलकत्तेकी 'नेशनल लाइब्रेरी'के ग्रन्थमें इसे प्राप्त किया है ।

'कृष्ण'नाममें लीन श्रीराधाजी
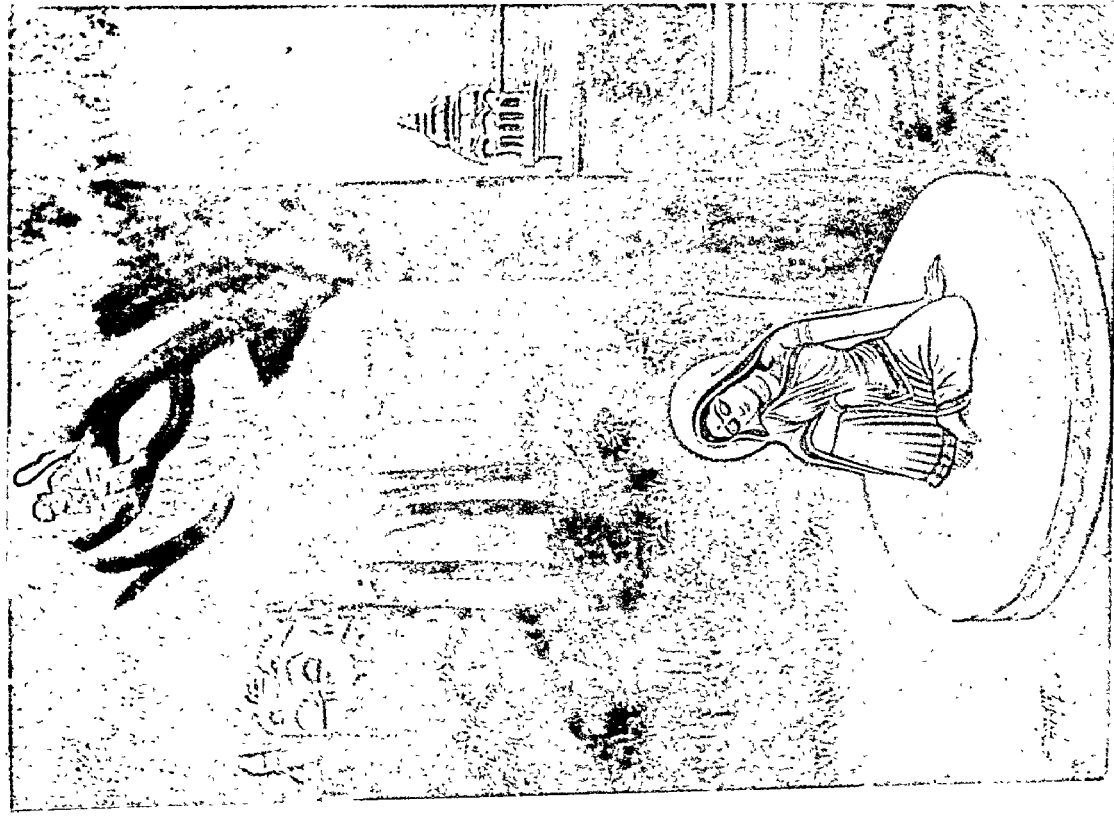
'राम'नाममें लीन श्रीसीताजी

जपयज्ञ और प्रेमयज्ञ

(लेखक—पण्डित श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री, सद्विद्यालङ्कार)

आज हम विश्वभरके बड़े विलक्षण एवं महान् दो यज्ञोंकी यहाँ चर्चा करेंगे। उनमेंसे एक यज्ञका नाम है—'प्रेमयज्ञ' और दूसरे महायज्ञका नाम है—'जपयज्ञ'। इन दोनों महायज्ञोंका एक ही संकल्प है। इष्टकी प्राप्तिस्वरूप दोनोंका आराध्य भी एक ही है—'प्रेमास्पद'। दोनों महायज्ञोंका फल और कार्य एक होनेसे हम इन दोनों महायज्ञोंको एकमें भी समाविष्ट कर सकते हैं।

हाँ, प्रेम किसी सांसारिक व्यक्तिके प्रति किया जाता हो तो उसमें कुछ अन्तर अवश्य पड़ जाता है। यदि वही प्रेम आत्मा या भगवान्‌के प्रति है तो दोनों महायज्ञ एक ही हैं।

दूसरी बात यह है कि स्वार्थके लिये किसी व्यक्तिके शरीरकी उपासनाको यदि 'प्रेम' कहा जाय तो वह 'प्रेम' शब्दकी अवहेलना या अनर्थ-कल्पना ही होगी। ऐसे प्रेमको 'प्रेम' नहीं, 'वासना' ही कहना उचित है।

जपयज्ञकी प्रारम्भिक भूमिकामें भी क्वचित् दम्भका प्राधान्य बढ़ जाता है। ऐसे साधक 'भक्त'के नामसे प्रसिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। परंतु जो अनर्थ प्रेमकी विपरीततामें होता है, वह अनर्थ इस जपयज्ञमें नहीं होता; क्योंकि दम्भसे, अभिमानसे या द्वेषसे भी भगवन्नामका उच्चारण करनेवालेका भी परिणाममें मङ्गल होता है।

'नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ'। यह स्वयं श्रीगोस्वामीजीकी घोषणा है।

'मरा'-'मरा' जपनेवाला डाकू रामरूप बन जाता है। द्वेषपूर्वक अनेकों गालियाँ देनेवाले शिशुपालकी आत्मज्योति भगवान् श्रीकृष्णके तेजमें विलीन हो जाती है और कपटपूर्वक चतुर्भुज श्रीकृष्णका कृत्रिम रूप धारण करनेवाला पौण्ड्रक सचमुच भगवत्स्वरूप बन जाता है। यह 'जपयज्ञ' की ही महत्ता है।

उदाहरणार्थ—गुड़ या शक्करको गालियाँ देकर भी खाते जाइये, खारे समुद्रके अन्तस्तलमें या अँधेरेमें भी खाइये, मीठे ही लगेंगे। इसी प्रकार भगवन्नाम-जपकी यह अलौकिक चमत्कृति है। नामजप करते-करते तदाकार बन जाना—यही नामजपकी महत्ता है।

आजका तथाकथित नकली प्रेम तो रिकार्डके दो-चार गाने सुनकर भी हो जाता है, किंतु जिस त्वरासे ऐसा प्रेम बनता है, उसी त्वरासे वह मिट भी जाता है। ऐसी वासनाको—इस आसक्तिको 'प्रेम' शब्दसे पुकारना तो पवित्र 'प्रेम'का भयंकर अपमान करना है।

प्रेमके भौतिक उदाहरणमें हम लैला-मजनूको ले सकते हैं। यद्यपि उन दोनोंमें परस्पर शारीरिक वासना नहीं थी, पर दैहिक मिलनकी उत्कण्ठा तो थी ही; किंतु उस प्रेममिलनमें संसारकी अभेद्य दीवार बाधारूप बन चुकी थी। मजनूके प्रेममें पगली-सी बनी हुई लैलाको एक सुवर्णमुद्रा दिखलाकर किसी एक विनोदप्रिय व्यक्तिने पूछा—

'यह सोनेकी मुहर मैं तुझे या तेरे मजनूको देना चाहता हूँ। तू ही बता, यह तुझे दी जाय या मजनूको?'

'मुझे नहीं चाहिये'—लैलाने तत्काल उत्तर दिया—'मजनूको ही दे दो; मेरा सुख तो उसीके सुखमें संनिहित है।'

उसी व्यक्तिने मजनूके पास जाकर उसके सामने भी यही प्रश्न रक्खा—'यह स्वर्णमुद्रा तुझे दी जाय या लैलाको?'

'मुझे नहीं'—एक उष्ण निःश्वासपूर्वक मजनूने कह दिया—'लैलाको ही दे दो, उसके सुखमें ही मेरा सुख है।'

उसी व्यक्तिने अपने हाथमें एक पत्थर लेकर लैलासे पूछा—'तुझे या मजनूको यह पत्थर मारनेका मेरा निश्चय है। अब तू ही बता, तुझे मारूँ या मजनूको?'

हाथ जोड़कर रोते हुए लैलाने कहा—'कृपा करके मुझे ही मार दीजिये, ताकि मेरा मजनू बच जाय।'

वही पत्थर दिखलाकर उसने मजनूसे पूछा तो मजनूने हाथ जोड़कर कहा—'लैलाके भागका और मेरे भागका—दोनों ही पत्थर मुझे ही मारो। मेरे और लैलाके प्रेममें मैं ही अपराधी हूँ। लैलाका कोई दोष नहीं है।'

यही है—प्रेमयज्ञका इहलौकिक भव्य दृष्टान्त। बस, इसी स्थानपर प्रेमयज्ञ और जपयज्ञ दोनों एक बन जाते हैं। ऐसे प्रेमी या ऐसे जापक अपने प्रियतमके साथ तद्रूप बन जाते हैं।

यदि आपको जपयज्ञके यजमान बनना है तो आपका मन—आपका चित्त केवल इष्टनाममें ही जुड़ा रहे—अनिष्टका चिन्तन ही न करे।

—और प्रेमयज्ञके होता बननेके लिये तो हम नीचे लिखे पवित्र शब्दोंका ही उपयोग करेंगे—

सीस काटिके भुँइ धरै, ऊपर राखे पाँव।
इश्क चमनके बीचमें, ऐसो होय तो आव॥

प्रेमयज्ञ हो या नामयज्ञ—दोनोंमें ही अहंता और ममताकी आहुति देना आवश्यक है। इस दुर्भेद्य अन्तरायके दूर हो जानेके बाद प्रेमी-प्रेमास्पदके बीचमें अन्य कोई व्यवधान नहीं रह जाता। जपयज्ञमें भी उपास्य और उपासकके बीचका वह दुर्भेद्य अन्तराय दूर होते ही अद्वैत सुखकी प्राप्ति होती है। अतएव प्रेमयज्ञ और जपयज्ञ दोनों महायज्ञ अन्तिम परिणाममें तो एक ही हैं। मीराँको आप प्रेमयोगिनी कहिये या जपयोगिनी—दोनों एक ही है। इसी तरह भगवान् चैतन्यको आप जपमूर्ति भी कह सकते हैं और प्रेममूर्ति भी। ऐसे प्रेमियोंका ध्यान, चिन्तन या स्मरण स्वयं ही जप बन जाता है।

प्रेमोन्मादिनी गोपीजनोंको आप प्रेमीकी उपमा दीजिये या उन्हें विप्रयोगी जापक भक्तकी श्रेणीमें रख दीजिये—दोनों ही बराबर हैं। उनका श्वास-प्रश्वास, उनके प्राण और उनकी समस्त शारीरिक क्रियाएँ अपने लिये नहीं, किंतु अपने प्रियतमके लिये हैं। प्रेमके सिवा अन्य वस्तु मात्र उन्हें अग्राह्य है। इसीसे वे जप, तप, यम, नियम, वैराग्य, ध्यान, समाधि आदि क्रियाओंसे पर बन जाती हैं। इस विषयमें मैं एक उदाहरण देकर लेखको समाप्त करूँगा।

बंगालके महात्मा श्रीशिशिरकुमार घोषने 'कालाचाँद-(कृष्णचन्द्र-) गीता' नामक एक सुन्दर ग्रन्थ लिखा है। उसीके एक अंशका यह भाषान्तर है—

"श्रीकृष्णके प्रेमकी भिखारिणी पाँच सखियाँ निकुञ्जमें बैठी थीं। इसी समय एक महान् तपस्वी साधु उस मार्गसे निकला। उसने कौपीन पहन रक्खी थी, सिर मुँड़ा था। अङ्गोंपर 'श्रीकृष्ण-हरि' नाम लिखे थे। साधुने देखा अपने रूपसे आभा फैलाती हुई सब बालाएँ निकुञ्जमें बैठी हैं। उनके मुखकमल सरल और निर्मल हैं। आँखोंसे प्रेम छलक रहा है। साधुको देखते ही उन सबने उठकर उसके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'हम अपने कृष्ण-धनको खोकर वनमें भटक रही हैं। कोई उपाय बताओ जिससे वे मिल जायँ।' उन सखियोंके भावपूर्ण मुखोंका निरीक्षण कर साधुकी आँखें भर आयीं। साधुने दुखी होकर कह 'अरी बेसमझ! सुनो। (तुम्हें यों) कृष्ण कहाँ मिले हजारों वर्ष तप करनेपर भी ध्यानमें भी जिनकी इ नहीं होती, तुमलोग निकुञ्जमें बैठकर फूल गूँथती उन्हें कैसे पा लोगी?'

इसपर कुलकामिनीने कहा—'साधुबाबा! हम भलीभाँति जानती हैं, कृष्ण-जैसा धन यों ही नहीं जाता। अतः तुम जो कहोगे, हम वही सब करेंगी। कृ लिये प्राण दे देंगी।'

साधुने कहा—'उपवास करके शरीरको सुखाओ, कृष्ण-कृपा प्राप्त होगी। जितना ही तुम्हारा शरीर शीर्ण हो क्रमशः उतनी ही कृष्णकी करुणा बढ़ेगी।'

साधुकी यह बात सुनकर वे सब नव-तरुणियाँ रह गयीं और एक-दूसरीके मुखकी ओर देखने लगीं उन्होंने कहा—'हम दुःख पायेंगी और कृष्ण सुखी हों यह तो कभी हो नहीं सकता। हमारे दुःखकी बात सु ही वे रो-रोकर अपनेको खो देते हैं। हम दुःख उठा उनको रुलावें—यह कैसा भजन है?'

साधुने हँसकर कहा—'केशोंकी ममता छोड़नी हो और सिर मुँड़ाना होगा। फिर तुलसीके नीचे सिर रगड़ होगा—तब कृष्ण पिता प्रसन्न होंगे।'

इतना सुनते ही वे सब नवबालाएँ चौंककर ए दूसरीकी ओर देखने लगीं। तदनन्तर रंगिणीने कहा—'साधुबाबा! सुनो! यह तुमने क्या बात सुनायी? केश मुँड़ देंगी और वेणी न बाँधेंगी तो जूड़ेमें चम्पा कैसे लगायें और कैसे मालतीकी मनोहर माला गूँथकर जूड़ेपर लपेटेंगी उस हमारी बाँकी वेणीको देखकर रसिकशेखर कृष्ण कित प्रसन्न होते हैं, हम उनके मनकी बात जानती हैं। वे इस कितने सुखी होते हैं, उपवाससे वे सुखी नहीं होंगे।'

कङ्गालिनी बोली—'साधुबाबा! जब हम अश्रुजलसे उनके अरुण चरणयुगलको धोती हैं, तब इन केशोंसे ह उन्हें पोंछती हैं। जब केश मुँड़वा देंगी, तब प्रियतमके पै धोकर हम किससे पोंछेंगी।'

कुलकामिनीने कहा—'हम योग-त्याग करके उनको क्यों फुसलायेंगी? वे तो हमारे पराये नहीं हैं, अपने ही हैं। वे हमारे स्वामी होते हैं, हम स्नेह-सेवा करके ही उन्हें संतुष्ट करेंगी।'

प्रेमतरङ्गिणी बोली—'उनके विरहमें जब हम अत्यन्त दुखी हो जाती हैं, तब इन केशोंको खोलकर देखती हैं। ये काले केश हमें कृष्णकी स्मृति कराते हैं। अतएव इन्हें, हे सखी! मैं तो नहीं मुँड़वा सकूँगी।'

सजलनयनाने कहा—'जब हम केश मुँड़वाकर कौपीन पहनकर दुःखिनीका वेश बना लेंगी, तब तो हमारे वे कृष्णचन्द्र रो-रोकर व्याकुल हो जायँगे। मैं उनको अच्छी तरह जानती हूँ।'

तब रसरङ्गिणीने साधुसे पूछा—'साधुबाबा! सुनो-सुनो, हमें संदेह हो रहा है तुम किसको 'कृष्ण' कहते हो? वह कृष्ण है कौन और उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है? (वह तुम्हारा क्या लगता है?)।'

इसके उत्तरमें साधुने कहा—'अरी बेसमझ लड़कियो! कृष्ण दो नहीं हैं। वे सबके ईश्वर हैं। वे जब संतुष्ट होते हैं, तब सम्पत्ति और रुष्ट होनेपर विपत्ति आती है। वे सर्वोपरि दण्डधर हैं; उनको प्रसन्न करनेके लिये मैं कितने दुःख उठाता हूँ, तब भी उन्हें संतुष्ट नहीं कर पाता। कहीं उनका कोई नियम भङ्ग न हो जाय, इसी भयकी बात सोच-सोचकर मरा जाता हूँ।' साधुकी बात सुनते ही उन सबके चेहरे खिल उठे। तदनन्तर उन सबने विनयपूर्वक कहा—'साधु! तुम्हारी बातोंसे तो प्राण ही निकल गये थे। अब मालूम होता है—प्राण लौट आये हैं। तुम जिनकी बात कहते हो, वे कोई भी हों, हमारे प्राणनाथ तो नहीं हैं। हमारे जो श्रीकृष्ण हैं, वे तो हमारे पति हैं; न वे दण्डधारी हैं और न वरदाता ही। हम उनकी निजजन हैं—उनकी पत्नी हैं। उनका जो कुछ है, सभी हमलोगोंका है। उनसे हम किस कारणसे कुछ चाहेंगी, जब कि भण्डारकी चाभी ही हमारे हाथमें है? और दण्डकी बात सुनकर तो मनमें डर लगता है। हम सब उनकी ही हैं, तब वे दण्ड क्यों देंगे? जब कुपथ्य करनेपर रोग होता है, तब अपने घरवालोंको कड़वी औषध भी खिलायी जाती है, व्रण होनेपर उसे छुरीसे कटवाया भी जाता है। कौन कहता है कि यह दण्ड है? वे हमारे प्राणनाथ तो केवल मङ्गलमय हैं; हम उनके प्रति कितना उत्पात करती हैं? यदि घरका स्वामी ही शासन न करे तो बताओ, कौन करेगा? हमारे प्राणनाथ स्नेहसे दण्ड भी देते हैं तो वह दण्ड नहीं है, वह तो उनका परम प्रसाद है।'

और सुनिये—

'तुमलोग पुरुष हो; राजसभामें जाते हो, राज्यके लिये राजाको कर देते हो। हमें यदि कोई कर चुकाना होगा तो निश्चय ही हमारे पति चुकायेंगे। दण्ड हो या पुरस्कार—इस बातको पति ही जानें, हमें इसमें कुछ भी अधिकार नहीं है। यदि उस राजासे कुछ काम होगा तो उसे प्राणनाथ ही जानें; हम तो रमणी हैं। हमने तो अपना सारा दायित्व प्रियतमको अर्पण कर दिया है, देह-प्राण-मन सब उनके चरणोंमें सौंप दिये हैं; हम तुम्हारे उस 'राजा कृष्ण' की सेवा नहीं कर सकेंगी। राजसभामें तो जाते ही हम भयसे मर जायँगी। पुरस्कारके लिये हम राजसभामें जायँ? हम तो सरलहृदया रमणी हैं, कैसे स्तुति की जाती है—यह नहीं जानतीं। तुम साधु-ऋषि हो या मुनि हो; तुम्हारे चरणोंमें हम क्या कहें, यह भी नहीं जानतीं। हम तो संसारी हैं—पतिके घरमें रहती हैं; संसारसे बाहर नहीं जा सकतीं। हमें प्राणनाथ कृष्ण छोड़ गये हैं, इसीसे वनमें उन्हें खोजती-फिरती हैं। वे इस वनमें ही छिपे रहते हैं; तुमने उन्हें कहीं देखा हो तो कृपा करके बतलाओ। बस, यही बात है।'

उस समय उन निर्मल, सरल बालाओंको देखकर साधुकी आँखोंमें जल भर आया। साधुने कहा—'बालाओ! मैं एक निवेदन करता हूँ। मैं तुमलोगोंकी बातोंको भलीभाँति समझ नहीं पा रहा हूँ। तुम्हारे उन पतिका कैसा रूप है, मुझे उनका स्वरूप समझाकर कहो?' इस बातके सुनते ही सब सखियाँ आनन्दमग्न हो गयीं और उनके मुख प्रफुल्लित हो गये।

रसरङ्गिणी कहती हैं—

'उनके कमल-नयन हैं। सुन्दर चाँद-सा मुखड़ा है। हमारे पतिने वनमाला धारण कर रक्खी है—

सुनो—वही, वही, वही; उसीने तो कुलका किनारा तोड़ दिया।' सब करताली बजाने लगीं—'सुनो साधु! सुनो, उसके अगणित गुण हैं, कैसे बतावें।'

'कृतार्थ कर दिया'—कहकर कङ्गालिनीने रङ्गिणीके चरण पकड़ लिये। सजलनयना गुण बतलाने चली कि उसका कण्ठ रुक गया। प्रेमतरङ्गिणी उसे पकड़कर बार-बार उसका मुख चूमने लगी। कुलबालाने उठकर कहा—'सखियो! आओ, एक बार नाचें।'

वे सब करताली बजाकर मुखसे 'हरि-हरि'—बोलने लगीं और अङ्गोंको झटका-झटकाकर एक ही पैर जमीनपर

प्रेमतरङ्गिणी बोली—'उनके विरहमें जब हम अत्यन्त दुखी हो जाती हैं, तब इन केशोंको खोलकर देखती हैं। ये काले केश हमें कृष्णकी स्मृति कराते हैं। अतएव इन्हें, हे सखी! मैं तो नहीं मुँड़वा सकूँगी।'

सजलनयनाने कहा—'जब हम केश मुँड़वाकर कौपीन पहनकर दुःखिनीका वेश बना लेंगी, तब तो हमारे वे कृष्णचन्द्र रो-रोकर व्याकुल हो जायँगे। मैं उनको अच्छी तरह जानती हूँ।'

तब रसरङ्गिणीने साधुसे पूछा—'साधुबाबा! सुनो–सुनो, हमें संदेह हो रहा है तुम किसको 'कृष्ण' कहते हो? वह कृष्ण है कौन और उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है? (वह तुम्हारा क्या लगता है?)।'

इसके उत्तरमें साधुने कहा—'अरी बेसमझ लड़कियो! कृष्ण दो नहीं हैं। वे सबके ईश्वर हैं। वे जब संतुष्ट होते हैं, तब सम्पत्ति और रुष्ट होनेपर विपत्ति आती है। वे सर्वोपरि दण्डधर हैं; उनको प्रसन्न करनेके लिये मैं कितने दुःख उठाता हूँ, तब भी उन्हें संतुष्ट नहीं कर पाता। कहीं उनका कोई नियम भङ्ग न हो जाय, इसी भयकी बात सोच-सोचकर मरा जाता हूँ।' साधुकी बात सुनते ही उन सबके चेहरे खिल उठे। तदनन्तर उन सबने विनयपूर्वक कहा–'साधु! तुम्हारी बातोंसे तो प्राण ही निकल गये थे। अब मालूम होता है–प्राण लौट आये हैं। तुम जिनकी बात कहते हो, वे कोई भी हों, हमारे प्राणनाथ तो नहीं हैं। हमारे जो श्रीकृष्ण हैं, वे तो हमारे पति हैं; न वे दण्डधारी हैं और न वरदाता ही। हम उनकी निजजन हैं—उनकी पत्नी हैं। उनका जो कुछ है, सभी हमलोगोंका है। उनसे हम किस कारणसे कुछ चाहेंगी, जब कि भण्डारकी चाभी ही हमारे हाथमें है? और दण्डकी बात सुनकर तो मनमें डर लगता है। हम सब उनकी ही हैं, तब वे दण्ड क्यों देंगे? जब कुपथ्य करनेपर रोग होता है, तब अपने घरवालों-को कड़वी औषध भी खिलायी जाती है, व्रण होनेपर उसे छुरीसे कटवाया भी जाता है। कौन कहता है कि यह दण्ड है? वे हमारे प्राणनाथ तो केवल मङ्गलमय हैं; हम उनके प्रति कितना उत्पात करती हैं? यदि घरका स्वामी ही शासन न करे तो बताओ, कौन करेगा? हमारे प्राणनाथ स्नेहसे दण्ड भी देते हैं तो वह दण्ड नहीं है, वह तो उनका परम प्रसाद है।'

और सुनिये—

'तुमलोग पुरुष हो; राजसभामें जाते हो, मार्गके लिये राजाको कर देते हो। हमें यदि कोई कर चुकाना होगा तो निश्चय ही हमारे पति चुकायेंगे। दण्ड हो या पुरस्कार—इस बातको पति ही जानें, हमें उसमें कुछ भी अधिकार नहीं है। यदि उस राजाने कुछ काम लिया तो उसे प्राणनाथ ही जानें; हम तो रमणी हैं। हमने तो अपना सारा दायित्व प्रियतमको अर्पण कर दिया है; देह-प्राण-मन सब उनके चरणोंमें सौंप दिये हैं; हम तुम्हारे उस 'राजा कृष्ण' की सेवा नहीं कर सकेंगी। राजसभामें तो जाते ही हम भयसे मर जायँगी। पुरस्कारके लिये हम राजसभामें जायँ? हम तो सरलहृदया रमणी हैं, कैसे स्तुति की जाती है—यह नहीं जानतीं। तुम साधु-ऋषि हो या मुनि हो; तुम्हारे चरणोंमें हम क्या कहें, यह भी नहीं जानतीं। हम तो संसारी हैं—पतिके घरमें रहती हैं; संसारसे बाहर नहीं जा सकतीं। हमें प्राणनाथ कृष्ण छोड़ गये हैं, इसीसे वनमें उन्हें खोजती-फिरती हैं। वे इस वनमें ही छिपे रहते हैं; तुमने उन्हें कहीं देखा हो तो कृपा करके बतलाओ। बस, यही बात है।'

उस समय उन निर्मल, सरल बालाओंको देखकर साधुकी आँखोंमें जल भर आया। साधुने कहा—'बालाओ! मैं एक निवेदन करता हूँ। मैं तुमलोगोंकी बातोंको भली-भाँति समझ नहीं पा रहा हूँ। तुम्हारे उन पतिका कैसा रूप है, मुझे उनका स्वरूप समझाकर कहो?' इस बातके सुनते ही सब सखियाँ आनन्दमग्न हो गयीं और उनके मुख प्रफुल्लित हो गये।

रसरङ्गिणी कहती हैं—

'उनके कमल-नयन हैं। सुन्दर चाँद-सा मुखड़ा है। हमारे पतिने वनमाला धारण कर रक्खी है—

सुनो–वही, वही, वही; उसीने तो कुलका किनारा तोड़ दिया।' सब करताली बजाने लगीं—'सुनो साधु! सुनो, उसके अगणित गुण हैं, कैसे बतायें।'

'कृतार्थ कर दिया'—कहकर कङ्गालिनीने रङ्गिणीके चरण पकड़ लिये। सजलनयना गुण बतलाने चली कि उसका कण्ठ रुक गया। प्रेमतरङ्गिणी उसे पकड़कर बार-बार उसका मुख चूमने लगी। कुलबालाने उठकर कहा—'सखियो! आओ, एक बार नाचें।'

वे सब करताली बजाकर मुखसे 'हरि-हरि'–बोलने लगीं और अङ्गोंको मटका-मटकाकर एक ही पैर जमीनपर

टिकाकर नाचने लगीं। यों अपने दुःखको भूलकर करताली बजाती हुई सब सखियाँ नाच रही थीं। उन्हींके साथ वह साधुबाबा भी नाचने लगा और उसका भवबन्धन कट गया। × × × ×"

इसी अनन्य प्रेमकी जिसको भी प्राप्ति हो जाती है, वह चाहे ब्राह्मण हो या चाण्डाल, स्त्री हो या पुरुष, संसारी हो या वैरागी, पण्डित हो या मूर्ख, वही सचमुच कृतार्थजीवन है। वहाँ इन रेखाओंकी अपेक्षा ही नहीं रहती। भक्तिसूत्रकी भाषामें कहिये तो—

'यं लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति,
अमृतो भवति, तृप्तो भवति।'
(भक्तिसूत्र ४)

'प्रेम-प्रेम'की पुकार करनेसे मनुष्य प्रेमी नहीं बन सकता। प्रेमयज्ञ कहिये या जपयज्ञ कहिये; वे वस्तुतः हमारे समस्त ममत्व और सङ्गकी आहुति माँगते हैं। अतः हमें चाहिये कि हम अपने तमाम दुर्गुणोंको सर्वथा त्यागकर इस पवित्र यज्ञमें अपने सर्वस्वको स्वाहा कर दें—

प्रेमपन्थ पावकनी ज्वाळा, भाळी पाछा भागे जोने।
माँहि पड्या ते महासुख माणे, देखनारा दाझे जोने॥

'यह प्रेमपन्थ पावककी ज्वाला है। इसे देखते ही सर्वस्व स्वाहा हो जानेके भयसे लोग भाग छूटते हैं। पर जो इस प्रेमाग्निमें प्रविष्ट हो जाते हैं, उन्हें जरा भी आँच नहीं लगती, वरं महान् सुखकी अनुभूति होती है। हाँ, इस आनन्द प्राप्त करनेवालेको देखकर दुनियाके लोग अवश्य जलते-भुनते हैं।'

यही सर्वोच्च सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है। परम कृपालु नन्द-नन्दन-आनन्दकन्द हम सबको इस परमपदके अधिकारी बनायें। बोलो श्रीश्यामसुन्दरकी जय।

श्रीराम-मन्त्रका मूल

(लेखक—पूज्य स्वामी श्रीशिवानन्दजी)

(ॐ श्रीराम जय राम जय जय राम)

लङ्का-विजयके उपरान्त अयोध्यामें एक बार भगवान् श्रीराम अपने राज-दरबारमें विराजमान थे। उस समय राजा श्रीरामको कुछ आवश्यक परामर्श देनेके लिये देवर्षि नारद, विश्वामित्र, वसिष्ठ और अन्य अनेक ऋषिगण पधारे हुए थे।

जब कि एक धार्मिक विषयपर विचार-विनिमय चल रहा था, देवर्षि नारदने कहा—'सभी उपस्थित ऋषियोंसे एक प्रार्थना है। आपलोग अपने-अपने विचारसे यह बतावें कि 'नाम' (भगवान्का नाम) और 'नामी' (स्वयं भगवान्) में कौन श्रेष्ठ है?' इस विषयपर बड़ा वाद-विवाद हुआ; किंतु राज-सभामें उपस्थित ऋषिगण किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सके। अन्तमें देवर्षि नारदने अपना अन्तिम निर्णय दे दिया—'निश्चय ही नामीसे नाम श्रेष्ठ है और राज-सभाके विसर्जन होनेके पूर्व ही प्रत्यक्ष उदाहरणके द्वारा इसीकी सत्यता प्रमाणित कर दी जा सकती है।'

तदनन्तर नारदजीने हनुमान्जीको अपने पास बुलाया और कहा—'महावीर! जब तुम सामान्य रीतिसे सभी ऋषियोंको और श्रीरामको प्रणाम करो, तब विश्वामित्रको प्रणाम मत करना। वे राजर्षि हैं; अतः वे समान व्यवहार और समान सम्मानके योग्य नहीं हैं।' हनुमान्जी सहमत हो गये। जब प्रणामका समय आया, हनुमान्जीने सभी ऋषियोंके सामने जाकर सबको साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम किया; केवल मुनि विश्वामित्रको नहीं किया। मुनि विश्वामित्रजी-का मन कुछ क्षुब्ध हो उठा।

तब नारदजी विश्वामित्र मुनिके पास गये और बोले—'महामुने! हनुमान्की धृष्टता तो देखो! भरी राज-सभामें आपके अतिरिक्त उसने सभीको प्रणाम किया। उसे आप अवश्य दण्ड दें। आप ही देखिये, वह कितना उद्दण्ड और घमंडी है!'

बस, इतनेपर तो विश्वामित्र मुनि आगबबूला हो गये। वे राजा रामके पास गये और बोले—'राजन्! तुम्हारे सेवक हनुमान्ने इन सभी महान् ऋषियोंके बीचमें मेरा घोर अपमान किया है। अतः कल सूर्यास्तके पूर्व उसे तुम्हारे हाथों मृत्यु-दण्ड मिलना चाहिये।' विश्वामित्र रामके गुरु थे। अतः राजा रामको उनकी आज्ञाका पालन करना था। उसी समय भगवान् राम निश्चेष्ट-से हो गये, इसीलिये कि

उनको अपने हाथों अपने परम अनन्य स्वामिभक्त सेवकको मृत्युदण्ड देना होगा। 'श्रीरामके हाथों हनुमान्‌को मृत्यु-दण्ड मिलेगा'—यह समाचार बात-की-बातमें सारे नगरमें फैल गया।

हनुमान्‌जीको भी बड़ा ही खेद हुआ। वे नारदजीके पास गये और बोले—'देवर्षि! मेरी रक्षा करो। भगवान् श्रीराम कल मेरा वध कर डालेंगे। मैंने आपके परामर्शके अनुसार ही कार्य किया। अब मुझे क्या करना चाहिये?' नारदजीने कहा—'ओ हनुमान्! निराश मत होओ। जैसा मैं कहता हूँ, वैसा करो। ब्राह्ममुहूर्तमें बड़े सवेरे उठ जाओ। सरयूमें स्नान करो। फिर सरिताके बालुका-तटपर खड़े हो जाओ और हाथ जोड़कर '**ॐ श्रीराम जय राम जय जय राम**'—मन्त्रका जप करो। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तुमको कुछ नहीं होगा।'

दूसरे दिन प्रभात हुआ। सूर्योदयके पहले ही हनुमान्‌जी सरयूतटपर गये, स्नान किया और जिस प्रकारसे देवर्षि नारदने कहा था, तदनुसार हाथ जोड़कर भगवान्‌के उपर्युक्त नामका जप करने लगे। प्रातःकाल हनुमान्‌जीकी कठिन परीक्षा देखनेके लिये नागरिकोंकी भीड़-की-भीड़ इकट्ठी हो गयी। भगवान् श्रीराम हनुमान्‌जीसे बहुत दूर खड़े हो गये, अपने परम सेवकको करुणार्द्र दृष्टिसे देखने लगे और अनिच्छापूर्वक हनुमान्‌पर बाणोंकी वर्षा करने लगे। परंतु उनका एक भी बाण हनुमान्‌को वेध नहीं सका, सम्पूर्ण दिवस बाण-वर्षा होते रहनेपर भी हनुमान्‌जीपर कोई प्रभाव नहीं हुआ। भगवान्‌ने ऐसे शस्त्रोंका भी प्रयोग किया, जिनसे वे लङ्काकी रणभूमिमें कुम्भकर्ण तथा अन्यान्य भयंकर राक्षसोंका वध कर चुके थे। अन्तमें भगवान् श्रीरामने अमोघ 'ब्रह्मास्त्र' उठाया। हनुमान्‌जी भगवान्‌के प्रति आत्म-समर्पण किये हुए पूर्ण भावके साथ मन्त्रका जोर-जोरसे उच्चारण करके जप कर रहे थे। वे भगवान् रामकी ओर मुसकराते हुए देखते रहे और वैसे ही खड़े रहे। सब आश्चर्यमें डूब गये और हनुमान्‌की 'जय जय' का घोष करने लगे।

ऐसी स्थितिमें नारदजी विश्वामित्र मुनिके पास गये और बोले—'हे मुनि! अब आप अपने क्रोधका संवरण करें। श्रीराम थक चुके हैं। विभिन्न प्रकारके बाण हनुमान्‌का कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। यदि हनुमान्‌ने आपको प्रणाम नहीं किया, तो इसमें है ही क्या? अब इस संसारमें भ
की रक्षा कीजिये और इस प्रयागसे उन्हें सम्मानित कीजि
अब आपने श्रीरामके नामकी महत्ताको समझ लिया ही
है।' इन शब्दोंसे विश्वामित्र मुनि प्रभावित हो गये
'ब्रह्मास्त्रद्वारा हनुमान्‌को नहीं मारें'—ऐसा श्रीरामको आ
दिया। हनुमान्‌जी आये और अपने स्वामी श्री
चरणोंपर गिर पड़े एवं विश्वामित्र मुनिको भी
दयालुताके लिये प्रणाम किया। विश्वामित्र मुनिने
प्रसन्न होकर हनुमान्‌जीको आशीर्वाद दिया। उन्होंने श्री
प्रति हनुमान्‌की अनन्य भक्तिकी बड़ी सराहना की।

जब हनुमान्‌जी संकटमें थे, तभी सर्वप्रथम यह
नारदजीने हनुमान्‌को दिया था। अतः हे प्रिय साधक
जो भवाग्निसे दग्ध हैं, उन्हें अपनी विमुक्तिके लि
मन्त्रका जप करना चाहिये।

'श्रीराम'—यह सम्बोधन, भगवान रामके प्रति है। 'जय राम'—यह उनकी स्तुति है। 'जय जय राम' उनके प्रति पूर्ण समर्पण है। मन्त्रका जप करते समय यही भाव होना चाहिये कि 'हे राम! मैं आपकी
करता हूँ। मैं आपके शरण हूँ।' आपको तु
भगवान् रामके दर्शन मिलेंगे।

समर्थ स्वामी रामदासजीने इस मन्त्रका तेरह
जप किया और भगवान् श्रीरामके प्रत्यक्ष दर्शनका
उठाया। राम-नामकी अचिन्त्य शक्तिका प्रभाव
है। आप राम-नामका गुणगान करें। आप
जप कर सकते हैं और सुस्वरमें उसको गा भी सकते है
मन्त्रमें तेरह अक्षर हैं और तेरह लाख जपका एक पु
माना गया है। 'ॐ नारायण!'

उपर्युक्त १३ अक्षरके सिद्ध मन्त्रका तुम जप क
करते? और इससे जिस प्रकार अनेकोंको भगवान्‌की
हुई है, उसी प्रकार भगवान्‌की प्राप्ति क्यों नहीं कर ले

यह नाम तुम्हारे जीवनका सहारा बने, यह
तुम्हारी रक्षा करे, तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करे और
प्राप्ति करा दे। पूर्ण श्रद्धा-भक्तिके सहित भगवान्‌के
अखण्ड जप करनेसे तुम्हें इसी जन्ममें प्रभुका सा
हो जाय, यही मेरा आशीर्वाद है।

भगवन्नाम-लेखन [लिखित-जप]

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

भगवन्नामजप तथा कीर्तनके समान ही भगवन्नामका लिखित जप करनेकी प्रणाली भी बहुत प्राचीन है। यह प्रणाली कब कैसे चली, पता नहीं; किंतु चली यह संतोंकी परम्परासे और इसमें कोई संदेह नहीं कि जपकी यह अत्यन्त प्रभावशाली प्रणाली है। साधारण मनुष्यका मन जपमें लगा रहे, इसके लिये लिखित जप ही सबसे सुगम उपाय है।

जपके विषयमें शास्त्र तथा संत सभी मानते हैं कि वाचिक (वाणीसे बोलकर) जपकी अपेक्षा उपांशु (केवल ओष्ठ एवं जिह्वा हिलाते) जप करना उत्तम है। उपांशु जपसे भी मानसिक जप श्रेष्ठ है। मानसिक जपके भी कई भेद हैं और वे उत्तरोत्तर उत्तम माने जाते हैं। श्वासके साथ नाम या मन्त्रके उच्चारणकी भावना, नाड़ीकी गतिके साथ नामोच्चारणकी भावना तथा नाम या मन्त्रका मनके द्वारा ठीक उस प्रकार सोचना जैसे दूसरी सांसारिक बातें हम सोचते हैं—यह सब मानसिक जपके भेद हैं।

मन केवल भगवन्नाम ही सोचे, सामान्य व्यक्तिके लिये कुछ मिनट भी ऐसा कर पाना कठिन है। उपांशु तथा वाचिक जपके समय भी मन इधर-उधर चला जाता है। इसीलिये जपकी अपेक्षा संकीर्तन उत्तम माना गया है। लेकिन संकीर्तन देरतक नहीं चल सकता; और संकीर्तनके समय भी मन इधर-उधर न जाता हो, ऐसी कोई बात नहीं है।

इन सब बातोंको देखते हुए संतोंने लिखित जपकी प्रणाली प्रचलित की। यदि आप भगवन्नाम-लेखनके नियमोंका पालन करते हैं तो यह सम्भव ही नहीं है कि नाम-लेखनकालमें मन इधर-उधर भटक सके। मनोनिग्रहका यह बहुत सुगम साधन है। इसीलिये लिखित जप दूसरे सब जपोंसे श्रेष्ठ माना जाता है।

प्रायः लिखित जपकी प्रेरणा देनेवाले जितने लोग एवं संस्थाएँ हैं, वे एक—जैसे नियमोंका ही आश्रय लेती हैं। अतः नाम-लेखनके नियमोंमें कदाचित् ही अन्तर पाया जाता हो।

नाम-लेखनके नियम

१—आप दिन-रातमें कभी भी नाम-लेखन कर सकते हैं। कहीं भी बैठकर यह काम कर सकते हैं।

२—चलते-फिरते नाम लिखना उचित नहीं है। आसनपर या कुर्सीपर बैठकर नाम लिखना चाहिये।

३—स्वच्छ कागजपर, जिसपर पहले कुछ न लिखा गया हो, नाम-लेखन करना चाहिये। जिस कागजपर एक तरफ कुछ लिखा या छपा हो, वह नाम-लेखनके योग्य नहीं है। भोजपत्र या ताड़पत्रपर नाम लिखा जा सकता है। कागजके दोनों ओर नाम लिखा जाता है।

४—लाल स्याहीसे ही नाम लिखना चाहिये और यदि कोई कठिनाई न हो तो भगवन्नाम-लेखनकी लेखनी पृथक् रखनी चाहिये।

५—जहाँतक बन सके, सुन्दर स्पष्ट अक्षरोंमें नाम लिखना चाहिये। उतावलीमें घसीटकर नाम नहीं लिखना चाहिये।

६—कहीं लिखते समय भूल हो जाय तो उस अक्षरको काटिये-बनाइये मत। उसे जैसे-का-तैसा छोड़ दीजिये। उसके बाद नाम लिखिये।

७—आपको जो भगवन्नाम या मन्त्र अभीष्ट हो, उसीको लिख सकते हैं। प्रायः लोग 'राम' 'सीताराम' 'राधाकृष्ण' 'नारायण' अथवा पञ्चाक्षर शिवमन्त्र 'नमः शिवाय' लिखते हैं।

८—सबसे मुख्य बात यही है कि नाम लिखते समय मुखसे उपांशु अथवा मानसिक जप अवश्य करते रहिये।

९—नाम-लेखनके समय नाम-जपके अतिरिक्त कुछ मत बोलिये। मौन रहकर नाम-लेखन कीजिये।

इसका कोई नियम नहीं है कि प्रतिदिन कितना नाम लिखा जाय। इसका भी कोई नियम नहीं है कि एक दिनमें एक ही बार नाम लिखा जाय। मैं एक रेलवे गार्डको यह बात जानता हूँ कि जब वे अपने कार्यपर होते हैं, तब ट्रेनके

स्टेशनके अन्तिम सिगनलसे बाहर निकल जानेपर भगवन्नाम लिखनेमें लग जाते हैं और दूसरे स्टेशनका बाहरी सिगनल आनेतक नाम-लेखनमें लगे रहते हैं।

लिखित नामोंका क्या करें ?

यह प्रश्न प्रायः पूछा जाता है। प्रत्येक नाम-लेखन करनेवालेके सम्मुख यह समस्या आती है। सबसे पुरानी प्रथा यह है कि लिखे हुए नामोंमेंसे एक-एक नामको पृथक्-पृथक् काटकर उन्हें आटेकी गोलीमें मिलाकर वे गोलियाँ मछलियोंको खिला दिया करते थे। अब भी बहुत-से लोग ऐसा करते हैं। लेकिन इस प्रकार करना उचित नहीं लगता; क्योंकि कागज मछलियोंके पेटमें जाकर सम्भवतः उन्हें हानि कर सकता है।

दिवंगत गुजरातके प्रसिद्ध संत एवं कथावाचक श्रीपुनीतजी महाराजने बहुत अधिक भगवन्नाम-लेखन कराया और एक बहुत बड़ी संख्यामें इन लिखित भगवन्नामोंके समारोहपूर्वक श्रीनर्मदाजीमें विसर्जित किया। यह घटना कुछ ही वर्ष पूर्वकी है। लिखित भगवन्नामोंको किसी पवित्र नदीमें, किसी तीर्थमें विसर्जित कर देना सबसे सुगम तथा उत्तम मार्ग है। लेकिन किसी सरोवर, बावड़ी आदि ऐसे स्थानमें, जिसके जलमें प्रवाह न हो, यह कार्य नहीं किया जाना चाहिये।

कुछ संस्थाएँ लिखित भगवन्नाम अपने यहाँ सुरक्षित रखती हैं। उनके यहाँ लिखित नामोंकी पूजा-प्रदक्षिणा होती है। ऐसी कोई संस्था आपके द्वारा लिखित नाम रख लेना स्वीकार कर ले तो पहले उस संस्थाके कार्यकर्ताओंसे पत्रद्वारा अनुमति लेकर अपने लिखित नाम वहाँ भेज सकते हैं।

वाराणसीका 'राम-रमापति बैंक' लिखित नाम-जपका प्रचार करानेवाली पुरानी संस्था है। यह संस्था किसी भी आपत्तिको दूर करने अथवा किसी कामनाकी पूर्तिके लिये अमुक संख्यामें नाम उधार दिया, ऐसी सूचना देती है। उधार लेनेवालेको प्रतिदिन नियमपूर्वक कुछ निश्चित संख्यामें नाम-लेखन करके ऋण ली हुई संख्या पूरी कर देनी पड़ती है और लिखित नाम इस संस्थाको भेज देने पड़ते हैं। लेकिन यह संस्था केवल अपने द्वारा लिखवाये नाम ही अपने यहाँ रखना स्वीकार करती है। एक व्यक्तिको यह संस्था बारह-तेरह लाखसे अधिक नाम उधार नहीं देती।

वाराणसीमें ही 'ॐ नमः शिवाय' बैंक भी है और यह संस्था शिवपञ्चाक्षर-मन्त्रके लेखनका प्रचार करती है। अयोध्याके कुछ स्थानोंसे 'सीताराम' इस नामके लेखनका प्रचार किया जाता है। कुछ संस्थाएँ 'राम' केवल इतना नाम अथवा 'श्रीराम जय राम जय जय राम' के लेखनका प्रचार करती हैं। गायत्रीमन्त्रके लेखनका प्रचार भी चलता है और मथुराकी 'गायत्री तपोभूमि'में लिखित गायत्रीमन्त्र एक बड़ी संख्यामें संगृहीत भी हैं।

पचीस-तीस वर्ष पूर्व पशुपतिनाथ (नेपाल) में बड़ी संख्यामें लिखित राम-नामकी स्थापना करके उसपर एक स्तूप बना दिया गया था। उसकी पूजा तथा परिक्रमा होती है। दक्षिण अफ्रिकाके युगाण्डा, नैरोबी-जैसे क्षेत्रोंमें गुजराती संत 'बापाजी' ने कई स्थानोंपर सवा अरब लिखित राम-नामकी स्थापना करके 'राम-नाम-मन्दिर' बनवाये हैं।

कलकत्तेके 'अखण्ड हरिनाम संकीर्तन, भवन' लोहाघाटमें भी लिखित नामोंका बड़ा संग्रह प्रतिष्ठित है और उसकी पूजा होती है।

मानस-संघ, रामवन (सतना म० प्र०) के रामनाम-मन्दिरमें लगभग डेढ़ अरब लिखित राम-नाम संगृहीत हैं। इस मन्दिरकी लोग परिक्रमा करते हैं। यह संस्था निष्कामभावसे लिखे गये 'राम' इस नामको ही अपने यहाँ रखना स्वीकार करती है।

नाम-लेखन तथा उसका किसी भी पुण्यसरितामें प्रवाह ही सबसे सुगम तथा श्रेष्ठ मार्ग है। इसलिये लिखे नामोंकी सुरक्षाकी चिन्ता न करके नाम-लेखन करना उचित है। नाम-लेखनका मुख्य तात्पर्य मनको भगवन्नाम-स्मरणमें लगाये रखना है।

श्रीभगवन्नामका रहस्य

(लेखक—श्रीविजयशंकरप्रसाद रायजी 'पंकज')

कहा जाता है कि नेपोलियनने ला-प्लेस नामक फ्रांसके एक वैज्ञानिकसे पूछा था कि 'सृष्टिकी रचना समझनेके लिये क्या उनके द्वारा आविष्कृत नेबुलर सिद्धान्त (Nebular Theory) यथेष्ट है ? क्या इस अद्भुत रचनामें भगवान्‌का कोई हाथ नहीं है ?' ला-प्लेसने उत्तर दिया था कि 'मेरा सिद्धान्त (Theory) बुद्धिसे समझनेकी चीज है; परंतु भगवान् एक अज्ञात और अविज्ञेय पदार्थ हैं; उनको इस सिद्धान्त (Theory) की संज्ञामें लानेसे सृष्टि-प्रणालीके समझनेमें कठिनाई बनी ही रहेगी ।'

आजकल भी बहुत-से लोग इसी मतके अनुगामी हैं। वे कहते हैं कि जिनके विषयमें निस्संदेह हम कुछ जानते नहीं हैं, ऐसे भगवान्‌पर भरोसा करना और उनकी शक्तिके सहारे अपना कर्तव्य-कर्म करना बल-बुद्धि-सम्पन्न मनुष्यके लिये सराहनीय नहीं है । अनिर्देश्य भगवान्‌पर विश्वास करनेका अभिप्राय तो अपनेपर विश्वास खोना है और आत्मबलका सर्वथा विनाश करना है । इससे लाभदायक तो यह है कि हम अपना काम अपने-आप करनेके लिये आत्म-विश्वास उत्पन्न करें, कार्य-क्षमता संग्रह करें, अपनी विचार-शक्तिके अनुसार सब कार्योंका भलीभाँति निर्वाह करें और उसका फल इष्ट हो या अनिष्ट, अपने-आप भोगनेके लिये तैयार रहें । कर्मफल तो हमें भुगतना है ही । यदि ईश्वर कहीं होंगे भी तो वे हमारे कर्मोंका खण्डन नहीं कर सकते । तो फिर 'भगवान्, भगवान्' कहनेसे या उनके नामकी माला फेरनेसे क्या लाभ ?

ठीक है; भगवन्नाम जपनेसे कहीं कोई लाभ हो सकता है ? परंतु उनसे यदि कहा जाय कि 'आप चाहें या न चाहें, भगवान् सदा आपके साथ रहते हैं और आप उनका नाम सदा जपा करते हैं । आप जानते हों या नहीं ।' तो निश्चय उनको बड़ा आश्चर्य होगा । फ्रांसके एक लेखक मोलियरसे जब कहा गया कि आप सदासे ही गद्यमें ही बातचीत करते चले आये हैं, तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ । यही दशा हमारे उन भलेमानुष आत्माभिमानियों-की है ।

भगवान्‌के साथ रहते हुए भी वे भगवत्-सांनिध्यका अनुभव नहीं करते, भगवन्नाम जपते हुए भी उसपर विश्वास नहीं करते । परंतु यह भगवान्‌की असीम कृपा है कि मनुष्य चाहे उनका त्याग कर दे, परंतु वे त्याग नहीं करते हैं और न जीवनके शेष श्वासपर्यन्त उसे नाम-जपसे वञ्चित करते हैं ।

यह तत्त्व वेदों और उपनिषदोंमें, जिनको मनुष्य बुद्धि और ज्ञानकी पराकाष्ठा कहते हैं—विस्तारपूर्वक वर्णित है । उनमें मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंका वचन है कि 'भगवान् समस्त सृष्ट पदार्थोंमें—चेतन और जडमें, स्थावर और जङ्गममें नित्य आत्मरूपसे स्थित हैं ।' तैत्तिरीयोपनिषद्‌के एक मन्त्रमें आया है—

'स इदं सर्वमसृजत'''तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् ।' (२ । ६)

अर्थात् 'उस परमेश्वरने इस समस्त जगत्‌की रचना की और रचनाके अनन्तर स्वयं उसीमें अनुप्रविष्ट हो गया ।' यहाँ केवल यह बतलाया गया है कि भगवान् हमारे साथ साधारणतः किस भावसे रहते हैं ? छान्दोग्योपनिषद्‌में इसी तथ्यका विशेषभावसे मनुष्यके सम्बन्धमें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

'अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ।' (८ । १ । १)

अर्थात् 'यह मानव-शरीर ब्रह्मपुर है; क्योंकि इसके भीतर एक कमलाकार गृह है, जिसके भीतर आकाश है और उसमें रहस्यमय ब्रह्म रहते हैं, उसको जानना होगा ।' उसीका अन्वेषण करना होगा, इसका अर्थ स्पष्ट है कि मनुष्य-शरीरका गठन स्वभावतः ऐसा होता है कि उसके दहराकाशमें ब्रह्मका स्थान है; अतः जबतक यह शरीर है तबतक भगवान् उसके अन्तस्तलमें निवास करते हैं, उनका साथ कभी छूट ही नहीं सकता ।

ये ब्रह्म हमारे शरीरमें किस स्वरूपमें हैं ? भगवान् श्री-कृष्णने गीतामें अर्जुनको समझाया है—

'अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ।' (८ । ४)

'हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! इस शरीरमें मैं वासुदेव अधियज्ञरूपमें अवस्थित हूँ।'

इस शरीरमें प्राणशक्तिके द्वारा जो क्रियाएँ हुआ करती हैं और जीव इन्द्रियोंकी सहायतासे जो-जो कर्म करता है, उनको 'यज्ञ' कहा जाता है। भगवान् इस यज्ञके नियन्ता होनेके कारण जीव-शरीरमें 'अधियज्ञ' हैं।

और भगवान्‌ने यह भी कहा है—

'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः॥'

(गीता १०। २०)

'अर्जुन! मैं सब भूतोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा हूँ।' ऐसे उदाहरण गीता और उपनिषदोंसे अनेक दिये जा सकते हैं; उन सबका सारांश यह है कि मनुष्यको चाहे इस बातकी उपलब्धि न हो, उसको इसकी चेतना ही न हो, तो भी निस्संदेह यह कहा जा सकता है कि भगवान् सर्वत्र, सर्वदा हमारे साथ हैं और यह बात हृदयंगम होनेपर जब वह भक्तिसे भगवान्‌के भजनमें तत्पर हो जाता है, तब भगवान् कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु··························।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९। २९)

अर्थात् 'सब भूतोंमें मैं अवश्य ही समभावसे व्याप्त हूँ; परंतु जो मुझे भक्तिसे भजते हैं वे मुझमें रहते हैं और मैं भी उनमें रहता हूँ।'

बस, मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है, उसका जीवन धन्य हो जाता है और जीवनका उद्देश्य सफल हो जाता है। पर गीता या उपनिषद्‌की वाणी जिनको ग्राह्य न हो, वे इन वाक्योंको कैसे स्वीकार कर सकते हैं और कैसे विश्वास कर सकते हैं कि भगवान् इस समय इस स्थानपर उपस्थित हैं? वे अपनी बुद्धिकी बड़ाईमें, प्रमाणकी खोजमें रत्नको खो देते हैं। अब तो वर्तमान युगके वैज्ञानिक भी परमेश्वरकी संनिधिको अस्वीकार नहीं करते। पदार्थ-विज्ञान (Physics) के द्वारा उन्होंने प्रमाणित किया है कि चाहे जीवका शरीर हो, मिट्टीका ढेला हो या सोनेका अलंकार हो—सभी जागतिक वस्तुएँ इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, ड्युटरन इत्यादिसे बने हैं। ये अविभाज्य, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, वैद्युतिक परमाणु हैं। इसलिये किसी पदार्थका उत्पादन-कारण ज्योति या प्रकाशका कण कहा जाता है। और प्रकाश [illegible] को सब शास्त्रोंमें ईश्वरका प्रकट, [illegible] गया है। अतः मनुष्य कहीं भी रहे, वह [illegible] साथ और उनके पास रहा करता है; क्योंकि [illegible] और उसके आसपासके जड़-जीव सभी पदार्थोंमें [illegible] रहते हैं। श्रीगीताका वचन है—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥

(१३। १७)

'वह ब्रह्म सूर्याग्नि प्रभृति ज्योतियोंकी ज्योति है; वह तमोमय प्रकृतिसे अति परे है; वह ज्ञानस्वरूप है और विवर्तनसे ज्ञेयस्वरूप भी है—ज्ञान-साधनोंसे लभ्य है। वह सबके हृदयमें विशेषरूपसे प्रतिष्ठित है।' इन युक्तियोंके साथ श्रीपाल ब्रण्टन (Paul Brunton) [illegible] एक लेखांश पठनीय है। उन्होंने 'The Inner Reality' ('आभ्यन्तरिक वास्तविकता') नामक पुस्तकमें लिखा है—

'If God be light, and if all materia[l] objects without a single exception—whether you take your own physica[l] body or the chair upon which you ar[e] sitting—if all of these are nothing bu[t] condensations of that radiant energy o[f] light, do you not see that God is there[-]fore, everywhere present? It is not merel[y] a poetical fancy, but a literal fact tha[t] you cannot run away from God, n[o] matter where you go. The whol[e] material world is built up out of Go[d] and is filled with Him, and you ar[e] near and within God all the time. Ther[e] is no escape from Him, go where yo[u] will. He is infinite.'

अर्थात् 'भगवान् यदि प्रकाश हैं और बिना अपवाद जागतिक सभी पदार्थ—चाहे वह आपका भौतिक देह या जिसपर आप बैठे हुए हैं वह कुर्सी ही क्यों न हो—ये सभी एक ज्योतिर्मयी जाज्वल्यमान शक्तिके घनरूप हैं तब फिर आप कैसे नहीं देखते कि सर्वत्र भगवान् विराजमान हैं। यह बात कोरी कवि-कल्पना नहीं, [illegible] अक्षरशः सत्य है कि आप चाहे जहाँ भी जायँ भगवान्

दूर नहीं भाग सकते। सम्पूर्ण भौतिक जगत्की सृष्टि भगवान्‌से ही हुई है, उन्हींसे परिप्लुत है और आप सदा उनके समीप एवं उन्हींमें स्थित हैं। आप चाहे जहाँ भी जायँ उनसे बच नहीं सकते। वे अनन्त हैं।'

यद्यपि उपर्युक्त वाक्योंका अविश्वासी लोगोंपर कुछ भी प्रभाव नहीं है, तो भी यह बात वे अस्वीकार नहीं कर सकते कि भगवन्नाम-जपरूपी यज्ञमें वे भी—बिना जाने ही सही, सर्वदा लिप्त रहते हैं; परंतु यह उक्ति भी विचारणीय है।

मनुष्य प्रायः अपने समस्त कर्मोंका ज्ञानपूर्वक आचरण करता है, कदाचित् कोई कर्म अज्ञानतः हो जाय। परंतु जीवनके एक प्रकृष्ट कर्मका उसे चेत भी नहीं है और वह कर्म सर्वदा होता चला जा रहा है। जिस कार्यसे उसके जीवनकी स्थिति बनी रहती है, उसका उसे बोध भी नहीं है। वह जीवित है, इसका प्रधान लक्षण यह है कि उसका श्वास-प्रश्वास चल रहा है। परंतु वायुके इस प्रवाहका शरीरके भीतर जाना और शरीरसे बाहर निकलना, स्वभावतः ऐसे सरल भावसे चलता है कि उसका ध्यान उस ओर जाता ही नहीं है। जबतक इस प्रवाहका यन्त्र ठीक है, तबतक इस ओर दृष्टि डालनेकी आवश्यकता नहीं होती है।

यद्यपि साधारण मनुष्योंमें वायुकी इस गतिकी कोई धारणा भी नहीं है, परंतु मुनि-ऋषियोंने, योगी-तपस्वियोंने इस विषयपर गम्भीर भावसे सूक्ष्म विचार किया है। उन्होंने शरीरके भीतरके वायुकी अङ्ग-अङ्गमें परीक्षा की है; नाड़ियोंमें उसकी गतियोंका निरीक्षण किया है; विशेष-विशेष स्थानोंपर उसका कार्य अवलोकन किया है। इस अन्वेषणके फलस्वरूप एक श्वास-विज्ञान 'Science of breathing'का निर्माण हुआ जो कि संसारके किसी देशमें नहीं है।

इस विज्ञानके अनुसार हमारे शरीरमें वायुके पृथक्-पृथक् नाम और कार्य हैं—यथा (१) 'प्राणवायु'—यह नासिकाके अग्रभागसे बहिर्गमनकारी है; (२) 'अपान'—यह अधोगमनशील है, पायु इसका स्थान है; (३) 'समान'—यह अन्नादिका समीकारक है, शरीरके मध्य भागमें इसका स्थान है; (४) 'उदान'—यह उत्क्रमणकारी है। कण्ठमें इसका स्थान है; (५) 'व्यान'—यह शरीरके सब भागोंमें गमनकारी है। इनके अतिरिक्त (६) उद्गारके लिये 'नाग' वा[यु] (७) उन्मीलनके लिये 'कूर्म'; (८) क्षुधाके लिये 'कृकल' (९) जृम्भणके लिये 'देवदत्त' और (१०) शरीरपोषण[के] लिये 'धनंजय' वायु भी शरीरमें है।

मुनियोंने यह भी दिखाया है कि चन्द्रनाडी, सूर्यना[डी] और सुषुम्णा मार्गसे जब वायुका चलाचल होता है, त[ब] शरीर और मनपर इसका क्या प्रभाव पड़ता है। योगशास्त्र[में] कहा है—

श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।
(२। ४९)

'श्वास-प्रश्वासकी स्वाभाविक गतिका छेदन कर[ना] 'प्राणायाम' है।' और योगेश्वर श्रीहरिने गीतामें कहा है—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥
(४। २९)

'प्राणायामपरायण योगी कोई तो अपानवायुमें प्राणवायुको हवन करते हैं, कोई प्राणवायुमें अपानवायुको हवन करते हैं तथा अन्य योगी प्राण और अपानकी गतिको रोकते हैं।'

और यह भी—

स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ॥
(५। २७)

'बाहरके विषय-भोगोंको बाहर ही त्यागकर और नेत्रोंकी दृष्टिको भृकुटिके बीचमें रखकर, नासिकामें विचरनेवाले प्राण और अपानवायुको सम करें।'

यह एक राजयोगकी प्रणाली है, जिसको योगशास्त्रमें चौथे प्रकारका प्राणायाम कहा गया है। यह अनायास होनेवाले प्रकरणकी अद्भुत शक्ति है। यह मन, जो सदैव महान् चञ्चल है, इस उपायसे शान्त हो जाता है। प्राण और अपानकी गति रोकते-रोकते जब वह केवल नासाभ्यन्तरचारी बन जाता है, तब मनकी चञ्चलता कम होते-होते वह शान्त हो जाता है। मन्त्र-जप, धारणा-ध्यान इत्यादिमें समाहित होनेकी उसकी प्रवृत्ति बढ़ती है। उसकी विक्षिप्त अवस्था दूर हो जाती है और वह एकाग्र भावको प्राप्त होता है। अथवा इस प्रकरणका प्रयोग विपरीत भावसे भी हो सकता है—

अर्थात् मनको मन्त्रमें या इष्ट-चिन्तनमें दृढ़तासे लगानेका अभ्यास करना। इससे उसकी चञ्चलता दूर हो जाती है। मन शान्त होनेपर प्राणापानकी गतिका ह्रास अपने-आप धीरे-धीरे होता रहता है, तब वायु नासाभ्यन्तरचारी बन जाता है। दोनों उपायोंसे फल एक ही होता है।

परंतु श्वास-प्रश्वासका चलाचल अज्ञानतः होता है। हमारे शास्त्रकारोंको इसका पूर्ण अङ्क-ज्ञान था। वर्तमान शरीर-विज्ञानसे यह पता चला है कि प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य स्वाभाविक रीतिसे एक मिनटमें १५ बार श्वास-प्रश्वास ग्रहण और त्याग करता है। अर्थात् एक दिनके २४ घंटेमें २१,६०० बार श्वास-प्रश्वासकी क्रिया होती है। हमारे शास्त्रकार भी अनेक वर्षों पहले इस निर्दिष्ट संख्याको जानते थे। वे धर्मपरायण थे; जीवनको ईश्वरका दान समझते थे। इसलिये उन्होंने जीवनधारक इन श्वास-प्रश्वासोंको भगवान्के नामसे युक्त कर दिया, जिससे एक भी श्वास व्यर्थ न जाय। उन्होंने इस प्रकारसे देवताओंमें उनका विभाजन किया—

षट्शतानि गणेशस्य षट्सहस्रं प्रजापतेः।
षट्सहस्रं गदापाणेः षट्सहस्रं पिनाकिनः॥
सहस्रमात्मलिङ्गस्य सहस्रं परमात्मनः।
गुरोरेकसहस्रं स्यात् संकल्पोऽयमुदाहृतः॥

'छः सौ गणेशजीके लिये, छः हजार प्रजापति (ब्रह्माजी) के लिये, छः हजार पिनाकपाणि भगवान् शिवके लिये, छः हजार स्वयं गदाधर भगवान् विष्णुके लिये, एक हजार आत्माके लिये, एक हजार परमात्माके लिये और एक हजार गुरुके लिये—इस प्रकार यह संकल्प है।'

इन पदोंमें २१,६०० की पूर्णसंख्या है।

यह संकल्प प्रातःकालका है। जिससे दिन-रातका श्वास और प्रश्वास, जिनका हमें चेत नहीं रहता है, देवताओंके निरीक्षणमें रहते हुए स्वधर्मपालन करें। इस संकल्पको 'अजपा संकल्प' कहते हैं; क्योंकि इन २१,६०० श्वास-प्रश्वासोंमें जो जप स्वभावतः चलता रहता है, उस जपको बिरला ही कोई मनुष्य जान-बूझकर करता है, यही कारण है कि इसको 'अजपा' कहते हैं। इस अजपामें भगवान्का नाम सर्वदा चलता रहता है। मनुष्य ध्यान दे या न दे, जन्मसे मरणतक यह जप कभी बंद होता ही नहीं है। मानो यह शरीर सदा उन परमेश्वरका नाम-कीर्तन किया करता है, जिनकी अनुकम्पासे इसकी सृष्टि हुई है। मनुष्य अपने ज्ञान, बुद्धि, बलके अहंकारसे चाहे उन करुणामयकी करुणाको भूल जाय, उनके अस्तित्वको स्वीकार न करे; पर इस जड शरीरमें जो प्राण-क्रिया चलती है, भगवन्नाम ही उसकी जीवनीशक्ति है। नामका रट लगा रहता है। श्वास-श्वासमें शरीरके भीतरसे भगवन्नामका शब्द उत्थित हो रहा है, रोम-रोममें हरि बस रहे हैं—यह सूचना मिलती है।

श्वास-प्रश्वासकी गतिसे जो पूर्वोक्त स्वाभाविक नाम-जप होता है, उसको योगियोंने इस रूपसे देखा है—

हंकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।
हंसेति परमं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा॥

'वायु जो शरीरसे बाहर आता है उससे 'हं' शब्द उच्चारित होता है और जो बाहरसे भीतर जाता है उससे 'स' शब्द उच्चारित होता है; यह 'हंस' शब्द महामन्त्र है जिसका जीव सर्वदा जप किया करता है।'

हिंदू-शास्त्रमें 'हंस' एक रहस्यमय शब्द है। उसके गुह्य अर्थादि तत्त्वका अन्वेषण न कर, सरल अर्थ 'नारायण', 'भगवान्', 'परमेश्वर' कुछ स्वीकार कर लेनेसे ही हमारा प्रयोजन सिद्ध होता है। यह शब्द इसी अर्थमें उपनिषदोंमें व्यवहार किया गया है। यथा—

नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च॥
(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३। १८

'नवद्वारवाले शरीररूपी नगरमें रहनेवाला देही स्थाव और जङ्गम सम्पूर्ण जगत्को वशमें रखनेवाला 'प्रकाशम परमेश्वर' बाह्य जगत्में लीला कर रहा है।'

तथा हि—

एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय
(६। १५

'इस ब्रह्माण्डमें एक 'प्रकाशस्वरूप परमात्मा' स्थित वही जलमें स्थित अग्नि है; परमधामकी प्राप्तिके लिये दूस मार्ग नहीं है; परंतु उसे जानकर ही मनुष्य मृत्युरूपी समु पार हो जाता है।'

अतः श्वास-प्रश्वासमें जो भगवन्नाम स्वतः चल रहा और हमारी अज्ञान-अवस्थाके कारण मानो विकार दे है, उस नाम-रहस्यसे परिचित न होनेके कारण मनु

भगवान्के निकट अपराधी है। धृति-युक्त बुद्धिसे उस नामका व्याहरण करनेसे मनुष्य स्वधर्म-पालन कर सकता है। विपथ-गामी मनुष्य यदि अनिर्विण्ण होकर इस नाममें मन लगावे, इसीमें उसकी रति हो जाय तो वह एक ऐसी दैवीशक्तिका आहरण कर सकता है, जिससे वह भगवान्की संनिधिका अनुभव करनेमें समर्थ होता है। इस अनुभूतिका स्वाद साधकोंने अपने जीवनमें ग्रहण किया है। किसीको संदेह हो तो इसे ध्येय न समझकर वह इस बातकी अवश्य श्रद्धापूर्वक परीक्षा करे। साधनका पथ तो सरल है—अजपाका ज्ञान-पूर्वक जप करना; 'हंसकी गतिपर ध्यान देना।' परंतु किसी अनुभवी व्यक्तिकी सहायतासे इस जप-यज्ञमें प्रवृत्त होना युक्तियुक्त है।

भगवान्का परम पावन नाम मनुष्यके अन्तरमें स[...] प्रवाहित हो रहा है। इसकी पवित्र धारामें वह अपनेको अ[...] अपने जीवनको निर्धूतकल्मष बना सकता है। यह पावन क[...] शीघ्रातिशीघ्र आरम्भ करनेमें ही कल्याण है, क्योंकि एक-न[...] एक दिन मनुष्यको उस परमकी शरणमें अवश्यमेव आन[...] है। मनीषी जेरल्ड हर्ड (Gerald Heard) की उक्ति [...] कि 'इस काममें जितना विलम्ब होगा मनुष्यको उतना ह[...] दण्ड भोगना पड़ेगा।'

और जुगन तें कमलनयन कलिजुग बहुत कृपा करी

श्रद्धेय श्रीनाभाजी महाराजने अपने भक्तमालके ५५वें छप्पयमें रघुनाथ भक्तके उदाहरणमें उपर्युक्त पंक्ति लिखनेकी कृपा की है। इसकी टीकामें प्रियादासजी महाराजने इस घटनाका उल्लेख इस प्रकार किया है—

> विप्र हरिभक्त करि गौनो चल्यो तिया संग
> जाकै दूनौ रग ताकै बात लै जनाइये।
> मग ठग मिले द्विज पूछै अहो कहाँ जात
> जहाँ तुम जात यामें मन न पत्याइये॥
> पंथको छुटाय चाहै बनमें लिवाय जाय
> कहै अति सूधो पैंड़ो उरमें न आइये।
> बोले 'बीच राम' तउ हिये नेकु धकधकी,
> कहै वह बाम स्याम नाम कह पाइये॥

इत्यादि।

रघुनाथ नामके एक भक्त ब्राह्मण थे। वे विवाहके बाद अपनी स्त्रीको बिदा कराकर घर वापस जा रहे थे कि मार्गमें उन्हें ठग मिल गये। जब रघुनाथजीने उनसे पूछा कि 'आप कहाँ जायँगे' तो ठगोंने बतलाया कि 'जहाँ आप जायँगे।' भक्त ब्राह्मणको जब इस उत्तरसे संतोष न हुआ तो ठगोंने कहा कि 'हमारे आपके बीच रामजी हैं।' ब्राह्मण इसपर भी जानेको तैयार नहीं हुए, तब उनकी स्त्रीने कहा कि 'भगवान्का नाम इतना सहजमें नहीं मिलता, अतः आप चलिये।' ब्राह्मणको अपनी स्त्रीका भगवद्विश्वास देखकर प्रसन्नता हुई। वे चले। ठगोंने आगे जाकर उनको जानसे मार डाला। स्त्री बार-बार घूम-घूमकर अपने पीछेकी ओर देखती जाती थी। डाकुओंने बतलाया कि 'पीछे देखनेकी आवश्यकता नहीं है। हमलोगोंने तुम्हारे पतिको मार डाला है।' तब स्त्रीने कहा कि 'मैं तो उनको देख रही हूँ, जिनको तुमने बीचमें डाला था।'—

> बीच दियो सो कहाँ राम, कहि नारि पुकारी।
> आये सारंगपानि सोकसागर ते तारी॥

इसपर भगवान् शार्ङ्गपाणि राम हाथमें धनुष-बाण लेकर तत्काल आते दिखायी पड़े। उन्होंने आकर उन डाकुओंको मार डाला और ब्राह्मणको जिलाकर स्त्रीका शोकसागरसे उद्धार किया। इस प्रकार प्रभुकी कृपा कलियुगमें बड़ी सुलभ और अत्यधिक देखी जाती है। इस सम्बन्धमें शास्त्रोंके बहुत-से प्रमाण उपलब्ध होते हैं—

> यत् कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत्।
> द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत् कलौ॥

(श्रीविष्णुपुराण ६। २। १५, ब्रह्मपुराण २३०। ६२, स्कन्दपुराण सेतुखण्ड ४३। ३—५)

अर्थात् 'जो सत्ययुगमें दस वर्षतक तप आदि करनेसे, त्रेतामें एक वर्षके तपसे तथा द्वापरके एक महीनेके श्रेष्ठ धर्माचरणसे फल प्राप्त होता है, वह कलियुगमें एक दिन-रातके (अखण्ड) भगवन्नाम-जप-कीर्तनसे प्राप्त हो जाता है।'

बृहत्पाराशरस्मृतिमें कलियुगके सत्कर्मोंका फल सत्ययुगकी अपेक्षा दसगुना बतलाया गया है—

अस्मिन् कलौ च विदुषा विधिवत् कर्म यत्कृतम् ।
भवेद्दशगुणं तद्धि कृतादेर्युगतो ध्रुवम् ॥
(बृहत्पाराशर० ४ । ६३)

इसी ग्रन्थमें अन्यत्र कहा गया है कि 'सत्ययुगमें जो एक करोड़ मुद्रा देनेका, त्रेतामें एक लाखका और द्वापरमें एक हजार देनेका पुण्य होता है; कलियुगमें एक सौ मुद्रा देनेसे ही वह पुण्य प्राप्त हो जाता है'—

कृते यत् कोटिदस्य स्यात् त्रेतायां लक्षदस्य तत् ।
द्वापरेऽयुतदस्य स्याच्छतदस्य कलौ फलम् ॥
(बृहत्पाराशर० १ । ४०)

स्कन्दपुराणके सेतुमाहात्म्यके चौथे अध्यायमें यह बात बहुत बढ़ाकर कही गयी है—

कृते तु युगपर्यन्तं त्रेतायां लक्षपञ्चकम् ।
द्वापरे लक्षमेकं तु दिनैकेन फलं कलौ ॥
(स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्ड, धर्मारण्यखण्ड ४ । १०२)

अर्थात् 'सत्ययुगमें जो पूरे युगभर तप करनेसे पुण्य होता था, त्रेतायुगमें जो पाँच लाख वर्ष तप करनेका पुण्य मिलता था और द्वापरमें जो एक लाख वर्षोंतक तपोऽनुष्ठानका फल होता था, वह कलियुगमें एक ही दिन नामजपसे हो जाता है ।'

श्रीमद्भागवतमें आता है कि 'महाराज परीक्षित्ने जब अपनी दिग्विजययात्रामें कलियुगको देखा तो उसे मार डालना चाहा; किंतु जब उन्होंने देखा कि इसमें धर्म-कार्य बहुत ही शीघ्र सिद्ध होंगे, तो छोड़ दिया—

नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् ।
कुशलान्याशु सिद्ध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत् ॥
(श्रीमद्भागवत १ । १८ । ७)

कहते हैं कि अगणित भक्त-संत-मुनि-ऋषियोंने जब सत्ययुग आदिमें घोर तप-तितिक्षा आदिमें सफलता न देखी, तो भगवान्से कलियुगमें जन्म देनेकी प्रार्थना की; क्योंकि इसमें तत्काल ही नाम-गुण-कीर्तन-श्रवणसे प्राणी मुक्त हो जाता है, सिद्धि लाभ कर लेता है—

कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम् ।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥
(श्रीमद्भागवत ११ । ५ । ३८)

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ।
यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥
(श्रीमद्भागवत ११ । ५ । ३६)

'कलि केवल हरि गुन गन गाहा । गावत नर पावहिं भव थाहा ॥'

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास ।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥
कलिजुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग ।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग ॥

यों भी कहा जाता है कि जब राजा आदि बड़े लोग आपत्तिग्रस्त होते हैं, तो उन्हें कोई एक लोटा पानी, एक पाव सत्तू, एक टूटी झोंपड़ी आदिसे ही सेवा कर वश कर लेता है, इसी प्रकार एक पैर मात्र बचे हुए धर्मको कलियुगमें प्राणी थोड़ी भी सहायता कर उसे प्रसन्न कर अपना कल्याण कर लेता है । —जा० ना० श०

सच्चा सौदा

होउ मन राम-नाम कौ गाहक ।
चौरासी लख जीव-जोनि मैं भटकत फिरत अनाहक ॥
भक्तनि-हाट बैठि अस्थिर ह्वै, हरि नग निर्मल लेहि ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह तू, सकल दलाली देहि ॥
करि हियाव, यह सौंज लादि कै, हरि कै पुर लै जाहि ।
घाट-बाट कहुँ अटक होइ नहिं, सब कोउ देहि निबाहि ॥
और बनिज मैं नाहीं लाहा, होति मूल मैं हानि ।
सूर स्याम कौ सौदा साँचौ, कह्यौ हमारौ मानि ॥

—सूरदासजी

गुजरातके कुछ संत-भक्तोंकी वाणियाँ

नितान्त अपरिग्रही, नित्य परिव्राजक, सिद्ध संत मस्तरामजी भगवन्नाम-रसिक हो गये हैं। उनकी वाणी है—

भक्त भक्ति करे बहु भाँति, राम-नाम जपे दिनरात्रि।
अविद्या जाय अपाटा खाती, मस्तराम छोडी कुळ जाति ॥
दो अक्षर करो दोस्ती, तो उतरो भव पार।
मस्तराम महाराज कहे छे, राम नाम है सार ॥
हरि भजताँ हीरजा नहिं आवे, सहजे सीताराम।
मस्तराम कहे ओळखी लेजे, साँचु छे ए नाम ॥
नामे अनेक नर ओधारिया, ध्रुव प्रह्लाद अजाय।
मस्तराम कहे अनेक उद्धारिया, पला न पकड्या कोय ॥

× × ×

प्रज्ञाचक्षु संत श्रीप्रीतमदास सन् १७३० ई० में वावलामें उत्पन्न हुए थे। जातिसे वारोट थे। पंद्रह वर्षकी अवस्थासे ही भक्तिकाव्य करने लगे थे। इनका जीवन निष्काम-परमार्थ सेवासे परिपूर्ण था। अपने सीधे-सादे शब्दोंमें इन्होंने लोगोंको हरिका मार्ग सुझाया है। नामका आश्रय ही ये प्रधान मानते थे। ये कहते हैं—

रामनाम अमुलख रतन, जतन करे जे कोय।
सुखी रहे संसारमाँ, दीन दुखी नव होय ॥
रामनाम शंकर जपे, चतुरानन अहिराज।
रामनाम समरे सदा, सतगुरु संत समाज ॥
एवुं हरिनाम उच्चारे जेह। सदा सुखसागर झीले तेह ॥
मीठुं हरिनाम सुधा थी सार। जपे तेना जाये कोटि बिकार ॥
जेओ अंधकारमाँ आदित्य भासे।
एवु कलिकालमाँ नाम प्रकाशे ॥
चिंतामणि नाम सुरतरु कहावे। सेवे तेना ताप अनेक समावे ॥
विषय व्याल कालनी ज्वाल न लागे। नाम लेताँ महा अघ भागे ॥
नाम अधारे रह्या त्रिलोक। जपे जिव तेना टळे बहु शोक ॥
भारे भवरोग निवारण नाम। नाडाने निवास तणो विश्राम ॥
भाग्यनो भीरु नोधारा आधार। एवुं हरिनाम शिरोमणि सार ॥
संसार समुद्र तर्या नुं पोत। एवुं हरिनाम अखंड उद्योत ॥
जेनुं नाम शीतळ चंदन छाईं। प्राणी परिताप न पामे काईं ॥
एवुं हरिनाम आनन्द स्वरूप। मटाडे अमंगल मंगलरूप ॥
अंत समय नाम उच्चारे जेह। निश्चै मन दुःख न पामे तेह ॥
पित्री देव ग्रह पीडे न कोय। जेने हरिनाम हृदे माँ होय ॥
नाम महिमा कह्यो नव जाय। जेने वेदशास्त्र निरंतर गाय ॥
गौ कोटि आपे गंगामाँ दान। नावे गोविंदना नाम समान ॥
करे यज्ञ सुरसरी तीरे हजार। नावे हरिनाम समान लगार ॥
खनावे वापी कूप तड़ाग। नावे हरिनाम सहस्र भाग ॥
आपे भूमि हेम कन्यानाँ दान। नावे गोविन्दना नाम समान ॥
करे तीरथ व्रत अनेक। नावे हरिनामने तुल्ये रेख ॥
एवो हरिनाम महिमा अपार। जाणे मोटा मुनि जे जाणनहार ॥
अधम उधारण निर्मळ नाम। पतितोने आपे अविचळ धाम ॥
अजामिल नाम थकी तर्यो पापी। जाणे सर्व जगत महामुक्ति आपी ॥
पीडायो गजराज पोकार्युं नाम। टाळ्युं तेनुं संकट सुंदर शाम ॥
जाणे अजाणे उच्चारण कीधुं। तेनुं जमदूत नाम न लीधुं ॥
दिनकर नंद कहे पण खाकी। रखे हरिनाम लेतां जोत झांखी ॥
गुणकाना अवगुण सामुं न जोयुं। तेने धर्मराये पानियुं धोयुं ॥
प्रह्लादे प्रेमे लीधुं हरिनाम। हिरण्यकश्यपनो फेड्यो ठाम ॥
ध्रुवजु आकाशे जपे निरधार। मध्य लोक माहीं जपे त्रिपुरार ॥
पाताळे नाम जपे नित्य शेष। भूमि तणो भार न लागे लेश ॥
पिंड ब्रह्मांडे रह्यो रणकार। नामे करी शोभ्यो सउ संसार ॥
एवुं महा दुर्लभ सुंदर नाम। भजे तेने बेसे नहि काईं काम ॥
प्रीतम प्रेमे नाम जपो श्रीरंग। धरी नित्य नेह करो सतसंग ॥

× × ×

आज जिसे ओखाबंदर कहते हैं, उस द्वारिकाक्षेत्रमें झवेरचन्द नामक जैन वैश्यके घर अखैचन्दजीका जन्म हुआ था। ये बाल्यकालसे ही परम विरक्त तथा महाशक्ति भगवतीके भक्त थे। इनके जीवनके अनेक चमत्कार गुजरातमें प्रसिद्ध हैं। इन्होंने पिताके बहुत प्रयत्न करनेपर भी विद्या नहीं पढ़ी; किंतु जन्मसे ही इनमें देवीकी भक्ति थी और भगवतीकी स्तुतिके स्वतः उद्भूत पद गाते थे। ये जगदम्बासे कहते हैं—

मध दरिया बच्चे डोल्यु माजु वहाण नथी विश्राम।
एक नामनो आशरो तेरो करो भक्तनां काम ॥

'बीच समुद्रमें (संसारके मध्यधारामें) जहाज (जीवन) डगमगाने लगा (व्याकुल) है। मुझे विश्राम नहीं है। एक तुम्हारे नामका ही भरोसा है। भक्तका काम करो। (इसे पार उतारो।)'

× × ×

भक्त कवि दयारामभाई हुए हैं लगभग उन्नीसवीं शतीके अन्तिम भागमें, ये साहोदरा नागर गृहस्थ थे। पिता प्रभुराम आनन्दराम भट्ट और माता महालक्ष्मी (राजकुँवर बाई)। यद्यपि जन्म ननिहाल डभोईमें हुआ; किंतु पितृगृह चाँदोद था। बचपनसे भगवद्भक्तिमें निमग्न रहनेवाले दयाराम-भाईने बड़े होकर गुजराती साहित्यमें भक्ति-काव्यकी भागीरथी बहायी है। श्रीवल्लभ-सम्प्रदायके ये नैष्ठिक वैष्णव थे और तीन बार भारतवर्षकी इन्होंने तीर्थयात्रा की थी। इनके जीवन-प्राण श्रीकृष्ण हैं। इनका काव्य प्रायः व्रजभाषामें है। श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके प्रेममें ही जीवन समर्पित करनेवाले ये महाभाग कहते हैं—

नाम केशवनुं कानमां पडतां सहु थाये पवित्र।
शरदऋतुनां संगथी जेम निर्मळ नीर विचित्र॥
विचित्र जळ तेम जाति जाणो। सर्व शुचि सद्य नाम प्रमाणो॥
शुद्ध सुवर्ण जेवुं अग्निये थाय। मांज्ये ओप्ये तेवो मेलु न जाय॥

नामकीर्तन श्रीकृष्णनुं, कलिमां सहु साधनताज।
भवसागर तरवातणी, सहुने ये सुख पथ पाज॥
पाथ प्रगट, श्रम नहि, घणुं सहेलुं। दाम विना फळ थाय सहु पहेलुं॥
सर्वे अवस्थामां, सहु ठार। अघ उत्तम सहुने अधिकार॥

सतयुग जे फल ध्यानथी थातुं, त्रेतामां यज्ञथी जेह।
द्वापरे पूजाथी पावता सहु, कलि हरिकीर्तने तेह॥
तेथी अधिक पण फल गुन गातां। तो शुं थयुं तप तीरथ न्हातां॥
मणि मळ्यो ते शोधे शीद कोडी। विना विचारे मरे मूढ दोडी॥

कलिरूपी अशौचमां, कोई कर्मनो नहिं अधिकार।
अडे ना सूतक नामने, निर्भय नित्य करिए उच्चार॥
उच्चार मात्रे अभयपद आपे। सकल पाप-संतापने कापे॥
वेदशास्त्र सहु पुराण पुकारे। तो 'हरि हरि' तुं शे ना उचारे॥

नामे अजामेळ उद्धर्यो, नामे शिवे तार्या बहु पापी।
अवळे नामे वाल्मीकि तार्यो, अर्धे गुणिकाने गति आपी॥
आपी गति इत्यादिक बहुने। जेणे कर्यो आश्रय ते सहुने।
बे अक्षर मां बधो सार। जेणे लह्यो ते पाम्यो पार॥

× × ×

लगभग २०—२२ वर्ष पहले जिन्होंने निर्वाण प्राप्त किया, वे श्रीरंग अवधूत गुजरातके अच्छे संत थे। अवधूत तो अवधूत—उनका परिचय क्या। त्याग, वैराग्य और भक्ति उनका जीवन। भगवान् दत्तात्रेयके भक्त तथा संगीतशास्त्रके उत्तम ज्ञाता। गुजरातके दत्त भक्तोंकी उनमें बहुत श्रद्धा थी। अपनी मस्तीमें उन्होंने अनेकों पद-भजन कहे हैं। अपने एक पदमें वे कहते हैं—

जपी ले हरिनाम रसाळ, स्मरी ले सुन्दर रूप विशाळ।
जेथी नडे न आ कलिकाळ॥
श्रीराम जय राम जय जय राम। गोपीवल्लभ मेघश्याम॥
एनी लीला अपरंपार। गातां कदी न आवे पार॥
नाम हजारो नामी एक। रूप करोडो रूपी एक॥
सघले सहजे रंग निहाळ। बीजो झगडो व्यर्थ पसार॥
अंधाने रविनो शो ख्याल॥

—सु० सिं०

राम-नामका अवलम्ब

राम नाम अवलंब बिनु परमारथ की आस।
बरषत बारिद बूँद गहि चाहत चढ़न अकास॥
तुलसी हठि हठि कहत नित चित सुनि हित करि मानि।
लाभ राम सुमिरन बड़ो बड़ी बिसारें हानि॥
बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥
प्रीति प्रतीति सुरीति सों राम राम जपु राम।
तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिनाम॥

—तुलसीदासजी

महाराष्ट्रके कुछ संत और भगवन्नाम

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

महाराष्ट्रकी पवित्र भूमिपर श्रीज्ञानेश्वर, नामदेव, जनाबाई, सेना नाई, नरहरि सोनार, श्रीएकनाथ महाराज, श्रीतुकारामजी, समर्थ श्रीरामदासजी, निलोबाराय, कान्हू पात्रा, शिवदिन केसरी, भोलानाथ, निरञ्जन माधव, रङ्गनाथ स्वामी, मध्व मुनीश्वर, मोरोपन्त, श्रीधर स्वामी, मुक्तेश्वर और विठोबा अण्णा कन्हाडकर आदि अनेक संत उत्पन्न हो चुके हैं, जिनके कठोर तप, अद्भुत त्याग, अपरिसीम ज्ञान, अनुपम वैराग्य और अपूर्व भगवन्निष्ठासे महाराष्ट्र ही नहीं, सम्पूर्ण आर्य धरा उपकृत एवं धन्य हुई थी। उनके परम पवित्र आदर्श जीवन एवं पावनतम उपदेशोंसे अब भी इस देशका मङ्गल हो रहा है। इनकी करुणावरुणालयकी भक्ति, प्रभुके नाम-गुणोंकी श्रद्धा तथा मानव-निष्ठा अपूर्व थी। इन महापुण्यमय संतोंमें कुछके सम्बन्धमें यहाँ अत्यन्त संक्षेपमें लिखा जा रहा है।

संत श्रीज्ञानेश्वरजी

तीव्र वैराग्यके कारण आलन्दीके श्रीविट्ठल पन्त अपनी साध्वी सहधर्मिणी रुक्मिणीबाईको छोड़कर काशी चले गये और श्रीरामानन्द स्वामीसे दीक्षा लेकर संन्यास ग्रहण कर लिया। बारह वर्षके पश्चात् जब श्रीरामानन्द स्वामीको पता लगा कि चैतन्याश्रम (श्रीविट्ठल पन्त-) की पत्नी जीवित है और उसे कोई संतान नहीं तब श्रीस्वामीजी महाराजने चैतन्याश्रम (श्रीविट्ठल पन्त-) को आदेश देकर पुनः गृहस्थाश्रममें भेज दिया।

इन्हीं श्रीरुक्मिणीबाईकी पवित्र कोखसे श्रीविट्ठल पन्तके यहाँ भाद्रकृष्ण अष्टमी सं० १३३२ वि० में अर्द्धरात्रिमें श्रीज्ञानेश्वरजीने जन्म ग्रहण किया। ये पाँच वर्षके ही थे कि इनके माता-पिताने धर्ममर्यादाकी रक्षाके लिये त्रिवेणी-संगममें अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया। अब श्रीज्ञानेश्वरके बड़े भाई श्रीनिवृत्तिनाथ, उनके छोटे भाई केवल चार वर्षके सोपान और सबसे छोटी बहिन मुक्ताबाई थी।

ये चारों भाई-बहिन अनाथ-से थे, किंतु अलौकिक बुद्धि-मनके कारण ये कच्चा भिक्षान्न माँगकर लाते और भोजन बनाकर जीवन-निर्वाह करते। इसके अतिरिक्त इनका सारा समय भजन, कथा-कीर्तन एवं भगवच्चर्चामें ही बीतता। कुछ समय बाद इनके उपनयन-संस्कारके प्रश्नपर स्थानीय ब्राह्मणोंने इन्हें पैठणके ब्राह्मणोंका आदेश प्राप्त करनेके लिये भेज दिया। पैठणके ब्राह्मणोंने संन्याससे गृहस्थाश्रममें लौटे हुए पिताकी संतान होनेके कारण इन्हें सबके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए भक्ति-मार्गके अवलम्बनका निर्णय दिया। इन लोगोंने विद्वान् पण्डितोंकी आज्ञा स्वीकार की। किंतु इनके द्वारा भैंसेसे प्रणव एवं वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करा दिये जाने तथा दीवालके चला दिये जाने आदि अनेक अलौकिक चमत्कारोंको देखकर सब लोग बड़े प्रभावित हुए।

श्रीज्ञानेश्वरजीने भारतके तीर्थोंमें भ्रमण किया और कितने ही गृहस्थ, साधु, संन्यासी और योगियोंके मार्ग-दर्शक बनकर उनका कल्याण किया। चारों ओरसे दर्शनार्थी आपके पास आने लगे, पर आपने कुल इक्कीस वर्ष, तीन मास, पाँच दिनकी अल्पायुमें संवत् १३५३ वि० मार्गशीर्ष कृष्णा १३ को जीवित समाधि ले ली। श्रीज्ञानेश्वरजी महाराजके भावार्थ-दीपिका अर्थात् ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, हरिपाठके अभंग तथा चाङ्गदेव-पासठी (पैंसठी)—ये चार ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं।

श्रीज्ञानेश्वरजी महाराज कहते हैं, 'सब भूतोंमें श्रीहरिको देखो'—यह बतलाकर सद्गुरु श्रीनिवृत्तिनाथने 'राम-कृष्ण' मन्त्रसे मेरे सब अङ्गोंका प्रोक्षण किया, तब मुझे सर्वत्र हरिरूप दिखायी देने लगा।

अपने सद्गुरुसे आप याचना करते हुए कहते हैं—'हे मातः! मुझे ऐसा बना दो कि जहाँ-तहाँ मैं श्रीकृष्णके गुणगान करूँ और श्रोता श्रवण-राज्यपर बैठकर सुनें।'

श्रीज्ञानदेवजी कहते हैं—'सगुण निर्गुण एक गोविन्दु रे'—सगुण-निर्गुण दोनों एक गोविन्द् श्रीहरि ही हैं।

श्रीज्ञानेश्वरजीकी ज्ञानेश्वरीका नवाँ अध्याय 'वारकरी' भक्तोंको अत्यन्त प्रिय है। इसमें 'सततं कीर्तयन्तो माम्' इस श्लोकके 'कीर्तयन्तः' पदकी टीका करते हुए आप कहते हैं—'कीर्तनके नृत्यगानसे प्रायश्चित्तोंका व्यवसाय ही नष्ट हो गया; क्योंकि इस कीर्तनने ऐसा किया कि कहीं पापका नाम भी

न रह गया। तब यम कहने लगा कि 'अब किसका शासन करें?' दम कहने लगा, 'किसको दण्ड दें?' तीर्थ कहने लगे, क्या खायँ? 'क्योंकि दोष तो दवाके कामके लिये भी कहीं नहीं रह गया।' इस प्रकार मेरे नाम-संकीर्तनसे विश्वके सारे दुःख नष्ट हो जाते हैं और सारे विश्वमें महान् सुख गूँज उठता है। राव-रङ्क दोनों बराबर हो जाते हैं, छोटे-बड़ेमें कोई भेद नहीं रह जाता। जगत् सतत आनन्दका सदन बन जाता है।··· नाम-घोषकी ऐसी महिमा है कि सारा विश्व ही जगमगा उठता है।

तो मी वैकुंठीं नसे। वेळ एक भानु बिंबीं ही न दिसे॥
वरी योगियांची ही मानसें। उमरडोति जाय॥
परी तयां पाशीं पांडवा। मी हरपला गिंवसावा॥
जेथ नाम घोष बरवा। करिती माझा॥

'(और फिर) मैं वैकुण्ठमें नहीं रहता; चाहे मैं सूर्य-बिम्बमें भी कभी न देख पड़ूँ, योगियोंके मनसे भी चाहे कभी निकल जाऊँ, पर हे अर्जुन! जहाँ लोग मेरा नाम-संकीर्तन करते हैं, वहाँ मैं रहता ही हूँ—यदि न दिखायी दूँ तो भी मुझे वहीं ढूँढ़ना चाहिये। मेरा कीर्तन करनेवाले जो मेरे भक्त हैं, वे कीर्तन-सुखसे परम सुखलाभ कर, अपने अंदर आप ही निमग्न होकर देश-कालको भी भूल जाते हैं; और कृष्ण, विष्णु, हरि, गोविन्द—इन नामोंके काव्य-प्रबन्ध रचकर और उनमें विशद आत्मचर्चा करते हुए अखण्ड गान गाया करते हैं।'

कृष्ण विष्णु हरि गोविन्द। या नामांचे निखिळ प्रबन्ध॥
माझी आत्मचर्चा विशद। उदण्ड गाती॥

श्रीज्ञानेश्वरजी महाराजके अभंग बड़े प्रसिद्ध हैं। इनकी संख्या सत्ताईस हैं, पर ये सर्वोत्कृष्ट हैं। इनमें नाम-माहात्म्य बड़े ही प्रेमसे गाया गया है। सब जीवोंको हरिनाम लेनेका उपदेश उन्होंने दिया है। श्रीज्ञानेश्वरजी महाराजने कहा है—'योग-यागविधि, तीर्थाटन आदिसे नाम-स्मरण श्रेष्ठ और सुलभ है और नाम-स्मरणसे मेरा उद्धार हुआ।' जड जीवोंको नाम-स्मरणमें प्रवृत्त करानेके लिये श्रीज्ञानेश्वरजी महाराजके अभंग बड़े उपयोगी हैं। अभंगमें श्रीज्ञानेश्वरजी कहते हैं—

भगवान्‌के द्वारपर पलभर तो खड़े रहो।

× × ×

चारों वेद, छहों शास्त्र, अठारहों पुराण हरिके ही गीत गाते हैं।

× × ×

दिन-रात प्रपञ्चके लिये इतने कष्ट करते हो! भगवान्‌को क्यों नहीं भजते?

× × ×

जिसे भक्ति नहीं वह अभक्त पतित है। हरिको नहीं भजता, वह दैवका मारा है।

× × ×

हरिनाम उचारनेसे अनन्त पापराशि पलभरमें नष्ट हो जाती है।

× × ×

राम-कृष्णका नाम अनन्तराशि तप है। उसके सामने पापके झुंड भागते हैं।

× × ×

'हरि, हरि, हरि' शिवका मन्त्र है। जिसकी वाणी यह मन्त्र जपती है, उसे मोक्ष मिलता है।

शास्त्रका प्रमाण है, श्रुतिका वचन है कि 'नारायण' ही सब जपोंका सार है।

× × ×

नामोच्चारणमें काल-समयका कोई नियम नहीं। दोनों पक्षोंमें उद्धार है।

× × ×

राम-कृष्ण-नाम सर्व-दोष-हरण है। जड जीवोंके लिये हरि ही एक तरण-तारण हैं।

× × ×

एक नामका ही तत्त्व मनसे दृढ़ धर ले। हरि तुझपर करुणा करेंगे।

× × ×

'राम-कृष्ण-गोविन्द' नाम सरल है। गद्‌गद होकर वाणीसे इसका पहले जप कर।

× × ×

नामसे बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है। व्यर्थ और रास्तोंमें मत भटक।

× × ×

हरिके बिना यह सारा संसार झूठा व्यवहार है—व्यर्थका आना-जाना है।

× × ×

नाम-मन्त्र-जपसे कोटि पाप नष्ट होगा। 'कृष्ण' नामका संकल्प पकड़े रह।

× × ×

श्रीज्ञानेश्वरजी महाराजने 'राम-कृष्ण-हरी' अथवा अन्य किसी भगवन्नामका अहर्निश उच्चारण करना ही सर्वश्रेष्ठ साधन बताया है और कहा है कि इसी साधनके द्वारा मेरे पूर्वजोंको वैकुण्ठ मिला तथा मैं भी कृतकृत्य हुआ। आप कहते हैं—

हरि आदी रे हरि अन्ती रे। हरि व्यापक सर्वांभूतीं रे।
हरि जाणा रे हरि वाना रे। बाप रखुमादेवीवर राणा रे॥

'हरि आदिमें है, हरि अन्तमें है, हरि सब भूतोंमें व्यापक है। हरिको जानो, हरिको बखानो, रुक्मिणीदेवीके स्वामी राणा बाप हैं।'

श्रीज्ञानेश्वरजीकृत ज्ञानेश्वरीकी (अ० १८। १७९४–१८००) बड़ी सुन्दर 'वर-प्रार्थना' इस प्रकार है—

'अब विश्वात्मक भगवान् इस वाग्यज्ञसे प्रसन्न हों और प्रसन्न होकर मुझे यह प्रसाद दें॥ १॥ खलोंकी वक्रदृष्टि न रहे, सत्कर्ममें उनकी रति बढ़े, सब प्राणियोंमें परस्पर हार्दिक मैत्री स्थापित हो॥ २॥ अधर्मका अन्धकार दूर हो, विश्व स्वधर्म-सूर्यको देखे, जिसकी जो कामना हो वह पूर्ण हो॥३॥ सबकी सदा मङ्गलकामना करनेवाले भगवद्भक्तोंके समुदाय भूतलपर सदा मिलते रहें॥ ४॥ जो चलते हुए कल्पवृक्षाङ्कुर हैं, जीवित चिन्तामणिके ग्राम हैं, बोलते हुए अमृतार्णव हैं॥ ५॥ जो अलाञ्छन चन्द्र हैं, तापहीन मार्तण्ड हैं, ऐसे संत-सज्जन सदा सबके आप्त हों॥ ६॥ और क्या कहें, तीनों लोक सब सुखोंसे सब समय उस आदि-पुरुषका अखण्ड भजन करें॥ ७॥'

श्रीएकनाथजी

'श्रीराम-नामके बिना जो सुख है, वह केवल चर्मकुण्ड है। भीतर जो जिह्वा है, वह चमड़ेका टुकड़ा है।'

—श्रीएकनाथजी

'बस एक श्लोक!' पंद्रह-बीस दिनोंतक प्रतिदिन अपने हरि-विमुख पड़ोसीके समीप बैठकर एक दिन श्रीएकनाथजी महाराजने—श्रीविष्णुसहस्रनामका एक श्लोक लिखकर रटाना आरम्भ किया। बोले—'इतना प्रतिदिन आप रट लें। मेरी इतनी-सी प्रार्थना कृपापूर्वक स्वीकार कर लें।'

महीनों अपना बहुमूल्य समय देकर आपने उक्त व्यवसायी पड़ोसीको सम्पूर्ण श्रीविष्णुसहस्रनाम स्मरण करा दिया और अत्यन्त विनयसे उससे श्रीविष्णुसहस्रनामके दस पाठ प्रतिदिन करते रहनेका वचन ले लिया। संतपुरुषकी आज्ञाके पालनसे उक्त व्यवसायीने श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करते हुए सुखपूर्वक अपना प्राण त्याग किया।

श्रीएकनाथजी महाराजके प्रेमके वश हो स्वयं भगवान् श्रीखण्ड्याके वेशमें बारह वर्षोंतक उनके घर पानी भरते रहे।

श्रीसूर्यनारायणकी परम पतिव्रता पत्नीके गर्भसे आपने संवत् १५९० वि० में जन्म-धारण किया। ये निरे बालक थे, तभी माता-पिताका शरीरान्त हो गया। पालन-पोषण इनके पितामह श्रीचक्रपाणिजीने किया।

बारह वर्षकी आयुमें ही महाभारत, रामायण और पुराण श्रवण कर आप देवगढ़में श्रीजनार्दनपंतके चरणोंमें पहुँच उनकी सेवामें लग गये। गुरुकृपासे वहीं आपको श्रीदत्तात्रेयजीके दर्शन हुए। फिर गुरुकी आज्ञासे आप श्रीकृष्णोपासनाकी दीक्षा ले संत-समागम एवं भागवत-धर्म-प्रचारार्थ तीर्थयात्राके लिये निकल पड़े। इसी यात्रामें आपने चतुःश्लोकी भागवतपर ओवी छन्दमें ग्रन्थ लिखा। तीर्थयात्रा पूरी कर गुरुदेवकी आज्ञासे आपने परम सती गिरिजाबाईका पाणिग्रहण किया। आपका जीवन अत्यन्त भगवत्परायण था। अन्नदान और ज्ञान-दानका निरन्तर प्रवाह आपके यहाँ चला करता था। भगवान्‌की कथा, भगवन्नामका कीर्तन और भजन तथा प्राणिमात्रमें प्रभुके दर्शन कर उनकी सेवा-पूजा करनेमें श्रीएकनाथजीकी अद्भुत, अपूर्व एवं अश्रुतपूर्व निष्ठा थी। काशीसे चलकर प्रयागके त्रिवेणीका जल काँवरमें लेकर श्रीरामेश्वरम्‌की यात्रा करते समय मार्गमें रेतीले मैदानमें तृषासे छटपटाते गधेको देखकर आपने सारा (त्रिवेणी-संगमका) जल उसे पिला दिया। इससे आपको अत्यधिक संतोष एवं तृप्तिका अनुभव हुआ। आपने श्रीरामेश्वर-पूजनकी क्रिया सम्पन्न हुई, मान लिया।

पण्ढरीनाथ भगवान् श्रीविट्ठलका कीर्तन करते हुए एकनाथजीने कहा था—

'विट्ठल नाम खुला मन्त्र है, वाणीसे सदा इस नामको जपो। इससे अनन्त जन्मोंके दोष निकल जायँगे। संसारमें जो आये हो तो निरन्तर विट्ठल नाम लेनेमें जरा भी आलस मत करो। इससे साधन सधेंगे, भव-बन्धन टूटेंगे। विट्ठल-

नामका जप करो। एकनाथ जनार्दनमें रहकर उठते-बैठते, सोते-जागते, रात-दिन विट्ठलनामका जप करता है।'

'प्रेमसे हरिनाम गाओ। प्रेमसे कीर्तन-रंगमें मस्त होकर नाचो। इससे तरोगे, तरोगे, संसारसे तर जाओगे। इसमें कोई और दूसरी बात नहीं है। एक जनार्दनकी भक्तिका यह निजधाम है। इससे क्षणमात्रमें तर जाओगे।'

श्रीएकनाथजी महाराजके भागवत एकादश स्कन्ध, रुक्मिणी-स्वयंवर एवं भावार्थरामायण बड़े प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। कहते हैं कि भगवान् श्रीरामने स्वयं इनसे भावार्थरामायण लिखवाया था। इनके अतिरिक्त हस्तामलकटीका, शुकाष्टक-टीका, स्वात्मबोध, चिरञ्जीवपद, आनन्दलहरी, अनुभवानन्द, मुद्राविलास और लघुगीता आदि ८-१० छोटे ग्रन्थ हैं। इन सभी ग्रन्थोंमें श्रीएकनाथजी महाराजके अध्यात्म-विषयक अनुभव हैं। वे बड़े ही सुबोध एवं उपयोगी हैं। भक्ति और प्राप्तिके सम्बन्धमें आप कहते हैं—

'भक्ति कहते हैं—सब प्राणियोंमें भगवान्का सप्रेम भजन करनेकी युक्तिको। प्राप्ति कहते हैं—अपरोक्ष स्थितिको, जिससे अनिवार्य भगवत्स्फूर्ति होती है।'

'नाम-कीर्तन'के सम्बन्धमें श्रीएकनाथजी महाराज कहते हैं—'अन्तःशुद्धिका मुख्य साधन हरि-कीर्तन है। नामके समान और कोई साधन ही नहीं है।'

और पाप-राशिको भस्म कर भगवान्को प्राणार्पण करनेकी सरल विधि श्रीएकनाथजी महाराजके शब्दोंमें—'अपने मनको मुझे अर्पण करनेका सरल उपाय बतलाता हूँ। यह सरल उपाय है नाम-स्मरण। नाम-स्मरणसे पाप भस्म होता है।'

नामकी महिमा बताते हुए आप और कहते हैं—'सकाम नाम-स्मरण करनेसे वह नाम, जो इच्छा हो, वह पूरी कर देता है। निष्काम नाम-स्मरण करनेसे वह नाम पापको भस्म कर देता है।'

'पापका क्षालन होनेसे रज-तम जीत लिये जाते हैं और सत्त्वगुण बढ़ता है'

'सत्त्वगुणसे वैराग्यके पैर जम जाते हैं। वैराग्यसे विषय रौंदे जाते हैं। इससे आत्मज्ञानका उदय होता है।'

साधन बतलाते हुए आपने कहा है—'साधनोंमें मुख्य साधन भक्ति है। भक्तिमें भी नाम-कीर्तन विशेष है। नामसे चित्त-शुद्धि होती है—साधकोंको स्वरूप-स्थिति प्राप्त होती है।'

आपके कथनानुसार भगवद्भजनसे सब कुछ प्राप्त होता है। आप कहते हैं—'स्वधर्माचरणसे जो कुछ मिलता है, तपसाचरणसे जो कुछ मिलता है, विषय-त्यागसे, अष्टाङ्गयोगसे अथवा वाताम्बु-पर्णाशन-भोगसे जो कुछ मिलता है, वेदाध्ययन, सत्य वचन तथा अन्य जो-जो साधन हैं, उन साधनोंसे जो कुछ मिलता है; वह सब भगवद्भजनसे प्राप्त होता है।'

अपने परोपकारमय जीवन, उपदेश, दान, गृहस्थाश्रमके दिव्य आदर्श एवं भगवद्भक्ति तथा भगवद्भजनसे सबका मङ्गल करते हुए श्रीएकनाथजी महाराजने पुण्यतोया गोदावरीके पावन तटपर संवत् १६५६ वि०की चैत्र कृष्णा षष्ठीको अपना भौतिक शरीर त्याग दिया। आपके जीवनका मूलमन्त्र था, दो ही अक्षरोंका काम है, मुँहसे 'रामनाम' लो—

'दोंचि अक्षरांचें काम। वाचे म्हणा रामनाम॥'

नामप्रेमी श्रीतुकारामजी

'तेरा कीर्तन छोड़ मैं और कोई काम न करूँगा। लज्जा छोड़कर तेरे रंगमें नाचूँगा।'

—श्रीतुकारामजी

परम क्षमाशील संत तुकारामजी संवत् १६६५ वि०में दक्षिणके देहू नामक ग्राममें महाभागा श्रीकनका बाईके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। आपके पिताका नाम बोलोजी था। श्रीतुकारामजीके दो सहोदर और थे। बड़ेका नाम सावजी और छोटेका नाम कान्हाजी था। श्रीसावजी बड़े विरक्त थे। इस कारण पिताके वृद्ध होनेपर परिवारके भरण-पोषणका सारा दायित्व श्रीतुकारामजीपर पड़ गया।

कुछ दिनों बाद इनके माता-पिता तथा भाभी इस संसारको छोड़ चले। दो स्त्रियाँ, एक बच्चा, छोटा भाई तथा बहनें—इन सबको कमाकर खिलानेका भार एकमात्र इन्हींपर था। बड़े भाई तो पत्नीकी मृत्युसे अत्यधिक विरक्त होकर तीर्थ-यात्रामें चले गये थे।

श्रीतुकारामजीकी दूसरी पत्नी अत्यधिक कठोर स्वभावकी थीं; पर श्रीतुकारामजी बड़ी शान्तिसे प्रेमका व्यवहार करते और धीरे-धीरे घरके सब लोगोंको प्रभुके मार्गपर चलनेके लिये प्रेरित करते रहते। वे स्वयं तो मन-ही-मन (प्रभुकी प्राप्तिके लिये) अत्यधिक बेचैन रहते।

व्यवसायमें घाटा तथा अनेक संकट उन्हें घेरते जाते, कुछ उपलब्ध होता तो वह दीन-दुखी अथवा अन्य किसी शुभ कार्यमें व्यय हो जाता। अन्ततः आपने परिवारका सारा दायित्व अपने छोटे भाईको सौंपकर भगवद्भजन, कीर्तन और एकान्त ध्यानमें समय लगाना आरम्भ किया। कठिन साधनाके फलस्वरूप आपकी चित्तवृत्ति अखण्ड नाम-स्मरणमें लीन होने लगी। आप अत्यन्त तन्मयतासे कीर्तन करते और भगवत्कृपासे आपके मुखसे अभङ्ग वाणी निकलने लगी। इस प्रकार आपने भगवान् पाण्डुरङ्गका साक्षात्कार किया। आपकी अमृतमयी वाणीको सुन-सुनकर लोग कृतार्थ होने लगे। छत्रपति शिवाजी आपकी हरिकथाएँ प्रायः सुना करते थे।

आपकी भगवन्नाम-निष्ठा अद्वितीय थी। आपके अभंग बड़े ही सरस एवं भक्ति-भावपूर्ण हैं। संवत् १७०६ वि० चैत्र कृष्ण द्वितीयाको आपने इस धरा-धामको छोड़ दिया। नाम-जप एवं नाम-कीर्तन आपको प्राणप्रिय था। आप कहते हैं—

कीर्तन चांग कीर्तन चांग। होय अंग हरिरूप ॥ १ ॥
प्रेमछंदे नाचे डोले। हार पला देह भाव ॥ २ ॥

'कीर्तन बड़ी अच्छी चीज है। इससे शरीर हरिरूप हो जाता है। प्रेम छन्दसे नाचो डोलो। इससे देह-भाव मिट जायगा।'

श्रीभगवन्नाम-कीर्तनको भगवान्, भक्त और मङ्गलमय नामका त्रिवेणी-संगम बतलाते हुए श्रीतुकारामजीने गाया था—

कथा त्रिवेणीसंगम। देव भक्त आणि नाम ॥
ते थी चें उत्तम। चरण-रज-वंदितां ॥ १ ॥
जळती दोषांचे डोंगर। शुद्ध होती नारीनर ॥
गाती ऐकती सादर। जे पवित्र हरिकथा ॥ २ ॥

हरिकीर्तनमें भगवान्, भक्त और नामका त्रिवेणी-संगम होता है। कीर्तनमें भगवान्के गुण गाये जाते हैं, नामका जय-घोष होता है और अनायास भक्तजनोंका समागम होता है। कथा-प्रयागमें ये तीनों लाभ होते हैं। इनमेंसे प्रत्येक लाभ अमूल्य है। जहाँ ये तीनों लाभ एक साथ अनायास प्राप्त होते हैं, उस हरिकथामें योगदान कर आदरपूर्वक उसे श्रवण करनेवाले नर-नारी यदि अनायास ही तर जाते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या है। हरि-कथा पवित्र, फिर गानेवाले जब पवित्रतापूर्वक गाते और सुननेवाले पवित्रतापूर्वक सुनते हैं, तब ऐसे हरि-कीर्तनसे बढ़कर आत्मो[illegible] और लोकशिक्षाका और दूसरा साधन क्या हो सकता है!

'पांडुरंगा करूँ प्रथम नमन' (पांडुरंगको पहले न[illegible] करता हूँ)—तुकारामजीके ओवीरूप दो अभंग हैं। ये ब[illegible] बड़े हैं, पर हैं मधुर। प्रत्येक अभंग सौ चरणोंका पहला अभंग—

क्षीण झाला मज संसार संभ्रमें।

'संसारमें भटकते-भटकते मैं थक गया।' तो वह आप[illegible] थकावट दूर हुई? विश्रान्ति मिली? समाधान हुआ कैसे हुआ?

शीतळ या नामें झाली काया ॥ ५ ॥
'इस नामसे काया शीतल हुई।'

'हरि-नाम और हरि-गुण गाओ, और सब उपाय दुःख-मूल हैं। मेरा उद्धार हरि-कीर्तनसे हुआ। लोगोंको अपने अनुभवका ही मार्ग बतलाता हूँ।'

'वैकुण्ठ जानेका यह सुन्दर मार्ग है। राम-कृष्णका कीर्तन करो, दिण्डी पताका लिये उन्हींका संकीर्तन करते हुए यात्रा करो, सुजान हो, अजान हो, जो हो, हरि-कथा करो। मैं शपथ करके कहता हूँ कि इससे तर जाओगे।'

'निराश मत हो, यह मत कहो कि हम पतित हैं, हमारा उद्धार क्या होगा! मुझ-जैसा पतित और कोई न होगा; और लोग और साधन करते होंगे, पर मेरे लिये कीर्तन छोड़ और कोई साधन नहीं और इस साधनसे मैं तर गया।'

'मेरे जीको जंजालसे छुड़ाया, ऐसे दयालु मेरे प्रभु नारायण हैं। सतत श्रीविट्ठलका नाम मुखसे उचारूँ, यही मेरा नियम, यही मेरा धर्म है। तुमलोग और कहीं मत देखो; श्रीहरिकी कथा करो। उसीमें अकस्मात् तुम उन्हें देख लोगे। भावुक भक्तोंके हाथ भगवान् लगते हैं, अनेकों बड़े बुद्धिमान् माननेवाले मर मिटते हैं तो भी उन्हें भगवान नहीं मिलते। निर्गुण भगवान् भक्तिप्रिय माधुर्य [illegible] लिये अपनी इच्छासे सगुण बनकर प्रकट होते हैं। नित्

उनमें रंग जाय तो स्वयं ही चैतन्य हो जाय; फिर वहाँ निजानन्दकी क्या कमी रहे ? वे सुखके सागर ईंटपर खड़े हैं; वही एक कृपा करनेवाले हैं। हमें उन्हींके नामका विश्वास है। इसलिये वाणीसे उन्हींका नाम-संकीर्तन करते हैं। मुझ मूर्खको संतजनोंने ऐसा सिखाया है, उनके वचनपर विश्वास किये बैठा हूँ। श्रीविठ्ठलके चरण पकड़े बैठा हूँ। तुका कहता है, अब और कोई दूसरी इच्छा नहीं है।'

नाम-संकीर्तन कितना सरल पर कितना महत्त्वपूर्ण है, इसके लिये श्रीतुकारामजी शपथपूर्वक कहते हैं—

'नाम-संकीर्तनका साधन है तो बहुत सरल, पर इससे जन्म-जन्मान्तरके पाप भस्म हो जायँगे। इस साधनको करते हुए वन-वन भटकनेका कुछ काम नहीं है। नारायण स्वयं ही सीधे घर चले आते हैं। अपने ही स्थानमें बैठे चित्तको एकाग्र करो और प्रेमसे अनन्तको भजो। 'राम-कृष्ण-हरी-विठ्ठल-केशव' यह मन्त्र सदा जपो। इसे छोड़कर और कोई साधन नहीं है। यह मैं विठ्ठलकी शपथ करके कहता हूँ। तुका कहता है, यह साधन सबसे सुगम है; बुद्धिमान् धनी ही इस धनको यहाँ हस्तगत कर लेता है।'

जीवके कल्याणका मार्ग बताते हुए आप कहते हैं—

ऐके रे जना। तुझ्या स्वहिताच्या खुणा।
पंढरीचा राणा। मना माजी स्मरावा ॥ १ ॥
सकल शास्त्रांचें हें सार। हें वेदांचें गव्हर।
पाहतां विचार। ह्यचि करिती पुराणें ॥ २ ॥

'सुन रे जीव! अपने स्वहितकी पहचान सुन ले। पण्ढरीके राणाको मनमें स्मरण कर। सब शास्त्रोंका सार यह है, यही वेदोंका रहस्य है। पुराणोंका भी यही विचार है।'

श्रीतुकारामजी नाम-स्मरणको मुक्तिके ऊपरकी भक्ति बताते हैं—

'मुक्तीवरील भक्ति जाण। अखंड मुखीं नारायण ॥'

'मुखमें अखण्ड नारायण-नाम ही मुक्तिके ऊपरकी भक्ति है।'

नाम-स्मरण न करनेवालेके लिये आप यहाँतक कह देते हैं—'जिसके मुँहमें नाम नहीं वह मुँह चमारका कुण्डा है।'

भगवच्चिन्तन एवं भगवन्नामके लिये कोई समय नहीं, हर समय ही प्रभुके मधुर-मङ्गलमय नामका गीत गाना चाहिये। श्रीतुकारामजीकी वाणी है—

चिंतनासी न लगे वेळ। कांहीं तया न लगे मोल ॥
वाचे सदा सर्वकाळ। राम कृष्ण हरी गोविंद ॥ १ ॥

'चिन्तनके लिये कोई समय नहीं लगता, उसके लिये कुछ मूल्य नहीं देना पड़ता। सब समय ही 'राम कृष्ण हरि गोविन्द' नाम जिह्वापर बना रहे।'

और आप कहते हैं—

आयुष्य अंतवरी नाम-स्मरण। गीता भागवताचें श्रवण ॥
विष्णुशिवमूर्तिचें ध्यान। हेंचि देणें सर्वथा ॥

'जबतक जीवन है तबतक नाम-स्मरण करे, गीता-भागवत श्रवण करे और हरिहर-मूर्तिका ध्यान करे···।'

भगवन्नामकी श्रीतुकारामजीकी निष्ठा और भगवन्नामके प्रति श्रद्धा-भक्ति अपूर्व थी। नाम-कीर्तनसे आप अत्यन्त आनन्दित एवं तृप्त होते थे। आप कहते थे—'अन्तकालमें जिसके मुखमें नाम आ गया उसके सुखका कोई पार नहीं।'

अंतकाळीं ज्याच्या नाम आलें मुखा।
तुका म्हणे सुखा पार नाहीं ॥

समर्थ गुरु रामदास स्वामी

संवत् १६६५ वि० चैत्र शुक्ल नवमीके परम पवित्र रामजन्मके समय महाभागा राणूबाईने अपने द्वितीय पुत्रको जन्म दिया। यही बालक आगे चलकर समर्थ गुरु रामदासके नामसे आर्य-धरापर (आसेतु हिमाचल) प्रख्यात हुए।

इनके अग्रज गङ्गाधर (जिन्हें आगे 'श्रेष्ठ' या 'रामरामीदास' कहा गया) ने केवल नौ वर्षकी आयुमें मारुतिनन्दन श्रीहनुमान्‌की कृपासे उनका एवं जगत्‌के आराध्य श्रीरामका दर्शन प्राप्त कर लिया। पिता श्रीसूर्याजीपंत भगवान् भास्करके उपासक थे।

श्रीरामदासजी अलौकिक गुणोंके भण्डार थे। बाल्यकालसे ही बड़े चञ्चल, बड़े मेधावी एवं गुणग्राहक थे। अल्पायुमें ही इनके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह उत्तरोत्तर बढ़ता गया। बारह वर्षकी आयुमें पूजनीया माताकी आज्ञासे आप विवाह करने गये, किंतु विवाह-

मण्डपमें मङ्गलाचरणके पश्चात् ब्राह्मणोंके मुखसे 'शुभलग्न सावधान' सुना तो तुरंत (सावधान होनेके लिये) विवाह-मण्डपसे भाग खड़े हुए और बारह वर्षतक आपका पता ही नहीं चला।

आपने अपने जीवनमें कठोर तप, अखण्ड उपासना एवं निरन्तर भजन ही नहीं किया; भगवान्‌के नाम और भजनका सर्वत्र प्रचार भी किया। आप स्वयं कहते भी हैं—

भक्तियोगें देवाधिदेव। आपुला करावा ॥
शाहाणे करावे जन। पतित करावे पावन ॥
सृष्टीमधें भगवद्भजन। वाढवावें ॥

'भक्तियोगसे उस देवाधिदेव परमात्माको अपनाना चाहिये। लोगोंमें नाना प्रकारकी चतुराई फैलानी चाहिये। पतितोंको पावन करना चाहिये और संसारभरमें भगवद्-भजन बढ़ाना चाहिये।'

भजन-कीर्तनके माध्यमसे ब्राह्मण-साधु, विद्वान् एवं अल्पज्ञ तथा सभी लोग एक स्थानपर एकत्र हो सकते हैं। सबमें प्रेमका सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। इस प्रकार राष्ट्रमें सत्प्रेम एवं जागृति उदित हो सकती है, जिससे व्यक्ति, समाज एवं समूचे राष्ट्रका हित-साधन स्वाभाविक है। भजनसे अलौकिक एवं परम मङ्गलमय लाभके साथ देश-हितका साधन भी हो सकता है। श्रीरामदासजी महाराजकी वाणीमें—

ब्राह्मण मेळवाव्या। भक्त मण्डळया मानाव्या ॥
संतमण्डळया शोधाव्या। भूमण्डळीं ॥

परमात्माके ज्ञानपूर्ण भजनसे दसों दिशाएँ गूँज उठनी चाहिये। इस उपायसे कर्ममार्गी कर्मठ ब्राह्मण, ज्ञानमार्गी साधु-संत और केवल भजनप्रिय, सब जाति और वर्णके भक्तजन, एक दिलसे, प्रेमपूर्वक एकत्र हो सकते हैं।

छत्रपति शिवाजीने अत्यन्त आग्रहसे श्रीस्वामी रामदाससे दीक्षा ग्रहण की। श्रीस्वामीजीके आदेशसे श्रीशिवाजी धर्म-पूर्वक राष्ट्रोद्धार एवं राष्ट्रोत्थानमें लगे रहे। श्रीस्वामीजी महाराजने भगवन्नामका प्रचार घूम-घूमकर किया। आपने ग्यारह मारुति एवं लगभग सात सौ मठोंकी स्थापना की तथा दासबोध, मनोबोध, करुणाष्टक, आत्माराम रामायण, ओवी चौदह शतक, स्फुट ओवियाँ, षड्रिपु, पञ्चीकरण योग, चतुर्थमान, मानपञ्चक, पञ्चमान, स्फुट प्रकरण और स्फुट श्लोक नामक ग्रन्थ लिखे हैं। इनके द्वारा भगवन्नाम एवं भगवद्धर्मका बड़ा प्रचार हुआ।

संवत् १७३८ वि० माघकृष्ण नवमीको आपने 'राम' नाम लेकर अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। भगवन्नाम एवं कीर्तनके प्रति आपके हृदयमें बड़ी निष्ठा थी। इस कीर्तन-भक्तिका आपने आजीवन प्रचार किया और सदा सर्वत्र प्रचार करनेके लिये अपने भक्तोंको आदेश और प्रेरणा देते रहे। अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'दासबोध'में कीर्तनके सम्बन्धमें आप लिखते हैं—

'सगुण परमात्माके गुणोंका कीर्तन करना चाहिये और अपनी वाणीसे जगत्‌में यथास्थित भगवान्‌की प्रीति फैलानी चाहिये।' 'हरिकीर्तनसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भर देना चाहिये। अत्यन्त प्रेम और रुचिके साथ सदा-सर्वदा हरिकीर्तनके लिये तत्पर रहना चाहिये। भगवान्‌को कीर्तन बहुत प्रिय है, कीर्तनसे समाधान होता है। कलियुगमें बहुत मनुष्योंको हरिकीर्तन ही तारता है। ताल, मृदंग, हरिकीर्तन, संगीत, नृत्य, तान-मान और प्रकारकी कथाओंका अनुसंधान टूटने ही न देना चाहिये—बराबर जारी रखना चाहिये।

'सब वाद-विवादोंको छोड़कर परमात्माके गुणानुवादका कीर्तन करना चाहिये। इसीका नाम है—भगवद्भजन और यही दूसरी भक्ति है। भगवान्‌के गुणोंका कीर्तन करनेसे बड़े-बड़े पाप कट जाते हैं और उत्तम गति मिलती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि कीर्तन-भक्तिसे अवश्य भगवत्प्राप्ति होती है। कीर्तनसे वाणी पवित्र होती है, सत्पात्रता आती है और सारे मनुष्य सुशील या सदाचारी बनते हैं। कीर्तनसे मनकी चञ्चलता जाती है, बुद्धि स्थिर होती है और श्रोता-वक्ता दोनोंका संदेह दूर होता है। ब्रह्मपुत्र नारदजी सदा-सर्वदा हरिकीर्तन करते रहते हैं; इसी कारण उन्हें स्वयं नारायणकी पदवी मिली है। अतएव कीर्तनकी महिमा अगाध है, कीर्तनमें परमात्मा प्रगट होते हैं। जहाँ भगवान्‌के गुणानुवादका कीर्तन होता है, वहीं सारे तीर्थ और स्वयं वह जगदात्मा निवास करता है।'

भगवान्‌के नामकी महिमा और उनसे प्रार्थना

(लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान्‌के नामकी महिमा अपार है। उसका वर्णन जितना भी किया जाय, थोड़ा ही है। पूरा वर्णन तो कोई कर ही नहीं सकता। श्रीतुलसीदासजीने तो यहाँतक कह दिया है—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

इसपर साधकको विचार करना चाहिये कि 'भगवान्‌के नामकी इतनी महिमा होते हुए भी नामजप करनेवालोंके जीवनमें खास परिवर्तन नहीं दिखायी दे रहा है, दुर्गुण और दुराचारोंका सर्वथा नाश होकर पूरा सुधार नहीं हो रहा है—इसका क्या कारण है?' विचार करनेपर समझमें आ सकता है कि नामजपकी महिमापर श्रद्धा-विश्वासकी कमी है! यदि उसकी महिमापर श्रद्धा-विश्वास हो तो जप करते समय सांसारिक अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों, घटनाओं और पदार्थोंका चिन्तन-स्मरण और संकल्प नामजपमें विघ्न उपस्थित नहीं कर सकते। तथा भगवान्‌के नामस्मरण, चिन्तन और जपमें जो प्रेमकी, उत्साहकी और रसकी कमी है, वह भी भगवान्‌के नामकी महिमापर पूर्ण श्रद्धा-विश्वास हो जानेके बाद नहीं रह सकती। तथा भगवान्‌में प्रेम, उत्साह और रसकी वृद्धि होनेपर हरेक कार्य करते हुए भी भगवान्‌के नामका और उसके भावका स्मरण अपने-आप विना किसी परिश्रमके निरन्तर चल सकता है। श्रद्धा और प्रेमकी कमीके कारण खास नामजप करनेके समय दूसरे व्यर्थ संकल्प होते हैं अर्थात् संसारका स्मरण-चिन्तन होता रहता है, वह भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम हो जानेसे मिट सकता है।

साधकको विचार करना चाहिये कि जिस समय जो काम करना नहीं है, जिसके करनेका न तो वह समय है और न उसके करनेकी आवश्यकता ही है, उस समय उसका स्मरण-चिन्तन करनेमें अपने मनुष्य-जीवनका अमूल्य समय बर्बाद करना कितनी बड़ी भूल है। उसमें भी भगवान्‌की कृपासे उनके नाम-जप-स्मरणके निमित्त खास तौरपर जो एकान्तका समय निकाला गया है, उस समय भी यदि भगवान्‌के नामजप और स्मरणमें मन न लगकर सांसारिक चिन्तनमें ही लगा रहे—व्यर्थ संकल्पोंका अभाव होकर प्रेमपूर्वक भगवान्‌के नामका जप-स्मरण निश्चिन्त भावसे स्वाभाविक न हो तो भगवान्‌के नामकी और उनके स्वभाव तथा स्वरूपकी महिमा जो कुछ साधकने सुनी और शास्त्रोंमें पढ़ी है तथा स्वयं जिसका वह वर्णन करता है, उसपर साधकने विश्वास कहाँ किया है—यह सोचकर नामस्मरणमें श्रद्धा, उत्साह और प्रेमकी उत्तरोत्तर वृद्धि होनी चाहिये।

भगवान्‌के नामका महत्त्व समझनेवाला मनुष्य उसका प्रयोग सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्ति, रक्षा या वृद्धिके लिये नहीं कर सकता; क्योंकि कोई भी समझदार मनुष्य कौड़ियोंके बदलेमें रत्न खर्च नहीं करता। अतः यही समझना चाहिये कि सकामभावसे भगवान्‌के नामका जप-स्मरण करनेवाला मनुष्य उसकी महिमाको पूर्णतया नहीं जानता। इस कारण उसके जीवनमें जो परिवर्तन होना चाहिये, वह नहीं हो रहा है।

भगवन्नामकी महिमामें श्रद्धा-विश्वास होनेपर उसमें प्रेम होना निश्चित है। प्रेम होनेके बाद उसका स्मरण स्वाभाविक न हो, यह सम्भव नहीं तथा श्रद्धा-विश्वासपूर्वक प्रेमसे नामका और उसके भावका स्मरण-चिन्तन होनेपर साधकको भगवान्‌की प्राप्ति सुगमतासे हो सकती है—इसमें कोई संदेह नहीं है। अतः साधकको नाम-महिमामें अविचल विश्वास करना चाहिये।

भगवान्‌के नाम और स्वभावकी महिमापर श्रद्धा-विश्वास होनेपर साधककी इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदिका व्यवहार राग-द्वेषरहित हो जाता है। फिर विश्रामकालमें और कार्य करते समय भगवान्‌के नामका अर्थसहित स्मरण स्वाभाविक होने लगता है। परंतु जबतक मनुष्य सांसारिक सुखोंमें फँसा रहता है, तबतक उसका विश्वास भगवान्‌के नामस्मरणमें नहीं होकर संसारमें ही बिखरा रहता है। इस कारण वह अटल शान्तिको प्राप्त नहीं कर सकता।

नामस्मरणसे प्राप्त होनेवाली परमशान्तिका भी साधकको रस नहीं लेना चाहिये; क्योंकि उस शान्तिमें रस लेनेसे स्मरण-चिन्तनकी निरन्तरता नहीं रह सकती। उसका मन उस शान्तिका रस लेनेमें लग जाता है, इस कारण स्मरणमें शिथिलता आ जाती है। प्रेमकी वृद्धिमें भी रुकावट आ जाती है। इस कारण स्मरणमें स्वाभाविकता नहीं रहती।

कर्तव्यकर्म भी उस कार्यको भगवान्‌का समझकर उनकी प्रसन्नताके लिये निष्कामभावसे सुन्दरतापूर्वक पूरी शक्ति लगाकर ही करना चाहिये। इस भावसे कार्यके अन्तमें प्रियतम नाम और नामीकी मधुर स्मृति अपने-आप उदय होती है, उसमें किसी प्रकारका परिश्रम नहीं होता।

कर्म करनेकी और उसके फलकी आसक्ति साधनमें अत्यन्त बाधक है। उस आसक्तिकी निवृत्ति उपर्युक्त भावसे कार्य करनेपर तथा भगवान्‌के नामरूपकी प्रेमपूर्वक स्मृतिसे होती है।

कामनाकी पूर्तिके सुखका लोभ रहते हुए कोई भी साधक प्रेमी, योगी और ज्ञानी नहीं बन सकता। वर्तमानमें जो साधकगण योग, ज्ञान और प्रेमसे वञ्चित देखे जाते हैं, उसका खास कारण यही है कि वे भगवान्‌के नाम-स्मरण आदि सभी साधन कामनापूर्तिके लिये करते हैं, निष्कामभावसे नहीं करते। इसलिये रागद्वेषसे रहित होकर विश्वासपूर्वक एकमात्र प्रेमकी प्राप्तिके उद्देश्यसे तत्परताके साथ साधनपरायण होना चाहिये।

भगवान्‌के प्रेमकी लालसा अन्य कामनाओंके त्यागसे ही पुष्ट होती है, अतः कामनाके नाशके लिये भगवान्‌की शरण लेना परम आवश्यक है।

सांसारिक सुखकी प्राप्ति तो पशु-पक्षी आदि अन्य योनियोंमें भी हो सकती है, अतः वह विवेकसम्पन्न मनुष्य-जीवनका उद्देश्य नहीं है। इसकी प्राप्ति तो प्रभुकी कृपासे उनका स्मरण-चिन्तन करके उनका प्रेम प्राप्त करनेके लिये हो हुई है।

शास्त्रोंमें जहाँ-जहाँ ईश्वरकी महिमाका, उनके प्रभावका वर्णन है, उसे उनके नामकी ही महिमा समझनी चाहिये; क्योंकि नाम और नामीमें कोई भेद नहीं है। भगवान्‌के विषयमें जो कुछ कहा जाता है, वह उनके नामके द्वारा ही वाणीसे प्रकट किया जाता है। ॐ, राम, कृष्ण, हरि, ईश्वर, परमात्मा, भगवान् आदि उन्हींके अनन्त नाम हैं। इसीलिये श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी॥

नाम और नामीकी एकता करके माण्डूक्योपनिषद्‌में कहा गया है—

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव॥ १॥

'ॐ यह अक्षर ही सम्पूर्ण अविनाशी परमात्मा है। यह प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला जड-चेतनका समुदायरूप सम्पूर्ण जगत् उन्हींका उपव्याख्यान अर्थात् उन्हींका विस्तार है। जो स्थूल और सूक्ष्म जगत् पहले उत्पन्न होकर उनमें विलीन हो चुका है, जो इस समय वर्तमानमें दिखायी देता है तथा जो भविष्यमें होनेवाला है, वह सब-का-सब ओंकार ही है अर्थात् परब्रह्म परमात्मा ही है तथा जो तीनों कालोंसे अतीत है, वह भी ओंकार ही है। अर्थात् कारण, सूक्ष्म और स्थूल—इन तीन भेदोंवाला जगत् और इसको धारण करनेवाले परब्रह्मके जिस अंशकी इसके आत्मरूपमें और आधाररूपमें अभिव्यक्ति होती है, उतना ही उन परमात्माका स्वरूप नहीं है; इससे अलग भी वे हैं। अतः उनका अभिव्यक्त अंश और उससे अतीत भी जो कुछ है, वह सब परब्रह्म परमात्माका समग्र रूप है।'

अभिप्राय यह है कि जो कोई परब्रह्मको केवल साकार मानते हैं या निराकार मानते हैं या सर्वथा निर्विशेष मानते हैं, उन्हें सर्वज्ञता, सर्वाधारता, सर्वकारणता, सर्वेश्वरता, आनन्द, विज्ञान आदि कल्याणमय गुणोंसे सम्पन्न नहीं मानते, वे सब उन परब्रह्मके एक-एक अंशको ही परमात्मा मानते हैं। पूर्णब्रह्म परमात्मा साकार भी हैं, निराकार भी हैं तथा साकार-निराकार दोनोंसे परे भी हैं। सम्पूर्ण जगत् उन्हींका स्वरूप है और वे इससे सर्वथा अलग भी हैं। वे सर्वगुणोंसे रहित, निर्विशेष भी हैं और सर्वगुण-सम्पन्न भी हैं—यह मानना ही उन्हें सर्वाङ्गपूर्ण मानना है।

प्रश्नोपनिषद्‌के पाँचवें प्रश्नोत्तरसे सत्यकाम ऋषिने भगवान्‌के नाम ओंकारके महत्त्वको जाननेके लिये प्रश्न किया है। उसके उत्तरमें महर्षि पिप्पलादने भगवान्‌के नामकी भगवान्‌के साथ एकता करते हुए कहा है—

तस्मै स होवाच एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारः। तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति॥ २॥

'सत्यकाम! यह जो ॐ है, यह अपने लक्ष्य परब्रह्म परमेश्वरसे भिन्न नहीं है; इसलिये यही परब्रह्म है और यही उन परब्रह्मसे प्रकट हुआ उनका विराट्‌रूप अपरब्रह्म भी है। इस कारण इस ओंकारका ही आश्रय लेकर

इसका जप-स्मरण-चिन्तन करते हुए विद्वान् साधक उसके द्वारा अपने इष्टको पा लेता है।'

इसके बाद अगले मन्त्रोंमें भगवान्‌के नामका स्मरण-चिन्तन साधकको निष्कामभावसे उस परब्रह्म परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये ही करना चाहिये—यह रहस्य समझानेके लिये सकाम उपासनाका फल उत्तम भोगोंकी प्राप्ति और स्वर्गकी प्राप्ति बताकर निष्काम उपासनासे परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति बतायी गयी है। कठोपनिषद्‌में यमराजने भी भगवान्‌के नामकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा है—

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति
तपाꣳसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

(१।२।१५)

यमराज यहाँ परब्रह्म पुरुषोत्तमको परम प्राप्य बतलाकर उसके वाचक ॐकारको प्रतीकरूपसे उसका स्वरूप बतलाते हैं। वे कहते हैं कि 'समस्त वेद नाना प्रकार और नाना छन्दोंसे जिसका प्रतिपादन करते हैं, सम्पूर्ण तप आदि साधनोंका जो एकमात्र परम और चरम लक्ष्य है तथा जिसको प्राप्त करनेकी इच्छासे साधक निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान किया करते हैं, उस पुरुषोत्तम भगवान्‌का परम तत्त्व मैं तुम्हें संक्षेपमें बतलाता हूँ! वह है 'ॐ' यह एक अक्षर।'

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥

(कठउप० १।२।१६)

'यह अविनाशी प्रणव—ॐकार ही तो ब्रह्म (परमात्मा) का निर्विशेष स्वरूप है और यही सगुण स्वरूप है। अर्थात् सगुण ब्रह्म और परब्रह्म दोनोंका ही नाम ओंकार है। अतः इस तत्त्वको समझकर साधक इसके द्वारा किसी भी अपने अभीष्ट रूपको प्राप्त कर सकता है।'

एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥

(कठउप० १।२।१७)

'यह ॐकार ही परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिके लिये सब प्रकारके आलम्बनोंमेंसे सबसे श्रेष्ठ आलम्बन है और यही चरम आलम्बन है। इससे परे और कोई आलम्बन नहीं है अर्थात् परमात्माके श्रेष्ठ नामकी शरण हो जाना ही उनकी प्राप्तिका सर्वोत्तम एवं अमोघ साधन है। इस रहस्यको समझकर जो साधक श्रद्धा और प्रेमपूर्वक इसपर निर्भर हो जाता है, वह निस्संदेह परमात्माकी प्राप्तिका लाभ उठा लेता है।'

इस प्रकार उपनिषदोंमें भगवान्‌के नामकी उनके साथ एकता करते हुए नामकी महिमाका वर्णन किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीभगवान्‌ने नामजपको सर्वश्रेष्ठ बताते हुए कहा है—'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' अर्थात् सब यज्ञोंमें जपयज्ञ मैं हूँ! तथा नामकी नामीके साथ एकता करते हुए उसके उच्चारणका और अपने स्मरणका महत्त्व इस प्रकार दिखाया है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

(गीता ८।१३)

'जो पुरुष ॐ इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरा चिन्तन करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह पुरुष परमगतिको प्राप्त होता है।'

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८।१४)

'हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्य चित्तसे स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मुझे स्मरण करता है, उस निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

नामकी महिमाका वर्णन करते हुए गीतामें आगे भी कहा गया है—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥

(१७।२३)

'ॐ, तत्, सत्—यह तीन प्रकारका सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका नाम कहा गया है; उसीसे सृष्टिके आदिकालमें ब्राह्मण, वेद तथा यज्ञादिक रचे गये हैं।'

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥

(गीता १७।२४)

'इसलिये वेदका कथन करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंकी शास्त्र-विधिसे नियत की हुई यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्माके नामका उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं।'

योगदर्शनमें भी ईश्वरके नामकी महिमाका वर्णन करते हुए उसका नाम ओंकार बताया गया है (१ । २७) तथा उसका जप और अर्थका स्मरण करनेके लिये कहा गया है (१ । २८)। फिर उसका फल बताया गया है—

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥
(पात० १ । २९)

अगले दो सूत्रोंमें जिन विघ्नोंका वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है, ईश्वरके भजन-स्मरणसे उनका अपने-आप नाश हो जाता है और अन्तरात्माके (द्रष्टाके) स्वरूपका ज्ञान होकर कैवल्य अवस्था भी उपलब्ध हो जाती है; अतः यह निर्बीज समाधिकी प्राप्तिका बहुत ही सुगम उपाय है।

परमात्माके सगुण-साकार स्वरूपका और निर्गुण-निराकार स्वरूपका दोनोंका तत्त्व उनके नामद्वारा ही समझाया जाता है, अतः नामकी महिमा अपार है।

साधक नामका आश्रय लेकर प्रेमपूर्वक भगवान्‌का स्मरण-चिन्तन करते हुए उनमें तन्मय हो सकता है, अतः नाम और नामीमें कोई भेद नहीं है।

नाम-जप और स्मरण तथा स्वरूपके चिन्तनसे अन्तः-करण शुद्ध होकर जब मनुष्यका सर्वत्र समभाव हो जाता है, फिर वह किसीका भी बुरा नहीं चाहता तथा उसके द्वारा किसीका भी अहित नहीं होता। जो किसीका बुरा नहीं चाहता, वह अपनेसे अधिक सुखियोंको देखकर प्रसन्न होता है। उसके मनमें ईर्ष्या या द्वेषका भाव नहीं होता और दुखियों-को देखकर स्वाभाविक करुणा उत्पन्न होती है। किसी प्रकारके गुणका अभिमान नहीं होता। इस प्रकार नामकी महिमा अपार है; उसके विषयमें जितना कहा जाय कम ही है।

साधकको चाहिये कि अपनी कमजोरीको और दोषोंको देखकर निराश न हो। भगवान्‌की महिमापर पूर्ण विश्वास करके उनके शरण होकर करुण-भावसे प्रार्थना करे। उनकी कृपासे समस्त दोषोंका नाश होकर शीघ्र ही भगवान्‌के प्रेमकी प्राप्ति और उनका साक्षात्कार हो सकता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

इसलिये कठोपनिषद्‌में यमराजने नचिकेताको उपदे देते समय स्वयं भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना की है—

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत् परम्।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतꣳ शकेमहि ॥
(१ । ३ । २

यमराज कहते हैं—'हे परमात्मन्! आप हमें सामर्थ्य दीजिये, जिससे हम निष्कामभावसे यज्ञादि शुभक करनेकी विधिको भलीभाँति जान सकें और आप आज्ञापालनार्थ उनका अनुष्ठान करके आपकी प्रसन्न प्राप्त कर सकें तथा जो संसार-समुद्रसे पार होनेकी इच्छावा विरक्त पुरुषोंके लिये निर्भय पद है, उस परम अविनाशी आ परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान्‌को भी जानने और प्राप्त करने योग्य बन जायँ।'

इस मन्त्रमें यमराजने परमात्मासे उन्हें जाननेकी शक्ति प्रदान करनेके लिये प्रार्थना करके यह भाव दिखलाया कि परब्रह्म पुरुषोत्तमको जानने और प्राप्त करनेका सर्व उत्तम और सरल साधन उनसे प्रार्थना करना है।

साधकको सांसारिक सुखके लिये भगवान्‌से प्रार्थना नहीं करनी चाहिये। भगवान्‌से प्रार्थना तो एकमात्र उनके अनन्य प्रेम पानेके लिये, उनका दर्शन पानेके लिये औ साधनकी कमियोंको मिटानेके लिये ही करनी चाहिये। जब तक मनुष्यमें अपनी शक्तिका अभिमान रहता है, तबतक शरणागतिके भावसहित आन्तरिक प्रार्थना नहीं होती जब उसे अपनेमें साधनकी कमी असह्य हो जाय और उसके दूर करनेकी पूरी आवश्यकताका अनुभव हो जाय, तब विश्वासपूर्वक भगवान्‌के शरण होकर बालककी भाँति प्रभुके सामने करुणभावसे रोना चाहिये और जबतक आवश्यकता पूरी न हो, चैनसे नहीं रहना चाहिये। जब बालक कोई ऐसी वस्तु चाहता है, जिसे वह अपने बलसे प्राप्त नहीं कर सकता और उसकी प्राप्तिके बिना उससे रहा भी नहीं जाता—ऐसी परिस्थितिमें वह अपने माता-पिता आदिके निकट करके रो पड़ता है तब उनको उसके मनकी बात यदि उसका अहित करनेवाली न हो तो पूरी करनी पड़ती है, उसी प्रकार इस विषयमें भी समझना चाहिये। भगवान् तो माता-पिता आदिसे भी बहुत अधिक दयालु हैं तथा

सर्वसमर्थ हैं। अतः ये अपने प्यारे प्रेमी भक्तकी प्रार्थनाको पूरी करते हैं—इसमें कोई संदेह नहीं है।

साधकको चाहिये कि किसी भी परिस्थितिमें अधीर और निराश न हो, हर हालतमें भगवान्‌पर निर्भर रहे और यह दृढ़ विश्वास रखे कि प्रभु मेरी आवश्यकताको अवश्य पूरी करेंगे। इस विश्वासपर उनके प्रेमकी और उनसे मिलनेकी लालसाको हर समय जाग्रत् रखे और उत्तरोत्तर उसको बढ़ाता रहे तथा अपनेको सर्वथा असमर्थ समझकर उनसे प्रार्थना करता रहे !

श्रीतुलसीदासजीने विनयपत्रिकामें अनेक पदोंमें भगवान्‌से प्रार्थना की है। उनमेंसे एक पद निष्काम प्रार्थनाका इस प्रकार है—

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस बिस्वास भरोसो, हरो जीव जड़ताई॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि, बिपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग रामपद बढ़ै अनुदिन अधिकाई॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ-जहँ अपनी बरिआई।
तहँ-तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ अंड की नाईं॥
या जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभुही सों होहिं सिमिटि एक ठाईं॥
(पद १०३)

इस पदमें तुलसीदासजीने मोक्षकी भी कामना नहीं की है, एकमात्र भगवान्‌के अनन्य विशुद्ध प्रेमकी ही माँग की है। अतः साधकको सर्वथा निष्कामभावसे ही भगवान्‌से श्रद्धा-विश्वासपूर्वक प्रार्थना करनी चाहिये।

भक्त प्रह्लाद भगवान्‌का पूरा निष्कामभक्त था। उसने अनेक प्रकारकी विपत्ति आनेपर भी कभी उनका निवारण करनेके लिये या किसी प्रकारके सुखकी प्राप्तिके लिये भगवान्‌से प्रार्थना नहीं की, उन सब घटनाओंमें निमित्त बननेवाले व्यक्तियोंको भी बुरा नहीं माना तथा उनसे द्वेष नहीं किया, किसी प्रकार भी उनसे बदला लेनेकी इच्छा प्रह्लादके मनमें उत्पन्न नहीं हुई। विरोधी आचार-व्यवहार करनेवालोंपर कभी क्रोध नहीं आया तथा यह भाव भी नहीं आया कि ये लोग मेरे साथ बुराई कर रहे हैं। वह तो हर एक घटनामें प्रभुकी कृपाका ही दर्शन करता रहा।

गुरुपुत्रोंने उसे मारनेके लिये कृत्या उत्पन्न की। वह भक्त प्रह्लादजीको न मार सकी। तब उसने उन गुरुपुत्रोंको मार दिया। उसपर भी प्रह्लादने भगवान्‌से उनको जिला देनेके लिये ही प्रार्थना की—

सर्वव्यापिन् जगद्रूप जगत्स्रष्टर्जनार्दन।
पाहि विप्रानिमानस्माद् दुस्सहान्मन्त्रपावकात्॥
यथा सर्वेषु भूतेषु सर्वव्यापी जगद्गुरुः।
विष्णुरेव तथा सर्वे जीवन्त्वेते पुरोहिताः॥
यथा सर्वगतं विष्णुं मन्यमानोऽनपायिनम्।
चिन्तयाम्यरिपक्षेऽपि जीवन्त्वेते पुरोहिताः॥
ये हन्तुमागता दत्तं यैर्विषं यैर्हुताशनः।
यैर्दिग्गजैरहं क्षुण्णो दष्टः सर्पैश्च यैरपि॥
तेष्वहं मित्रभावेन समः पापोऽस्मि न क्वचित्।
यथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुरयाजकाः॥
(विष्णुपुराण १। १८। ३९–४३)

प्रह्लादजी कहने लगे—'हे सर्वव्यापी, विश्वरूप, विश्वस्रष्टा जनार्दन ! इन ब्राह्मणोंकी इस मन्त्राग्निरूप दुस्सह दुःखसे रक्षा करो। सर्वव्यापी जगद्गुरु भगवान् विष्णु सभी प्राणियोंमें व्याप्त हैं—इस सत्यके प्रभावसे ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ। यदि मैं सर्वव्यापी और अक्षय श्रीविष्णुभगवान्‌को अपने विपक्षियोंमें भी देखता हूँ तो ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ। जो लोग मुझे मारनेके लिये आये, जिन्होंने मुझे विष दिया, जिन्होंने आगमें जलाया, जिन्होंने हस्तियोंसे पीडित कराया और जिन्होंने सर्पोंसे डँसाया, उन सबके प्रति यदि मैं समान मित्रभावसे रहा हूँ और मेरी कभी पाप-बुद्धि नहीं हुई तो उस सत्यके प्रभावसे ये दैत्य-पुरोहित जी उठें।' ऐसा कहकर उनके स्पर्श करते ही वे ब्राह्मण स्वस्थ होकर उठ बैठे।

इसके सिवा हिरण्यकशिपुका वध हो जानेके बाद जब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर प्रह्लादसे वर माँगनेके लिये कहा, तब प्रह्लादने यही वर माँगा कि 'मेरे हृदयमें कहीं माँगनेकी इच्छा छिपी हो तो उसका नाश कर दीजिये।' श्रीमद्भागवत (७। १०। ७–९) में कहा गया है—

यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥
इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः।
ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना॥

विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ।
तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥

'मेरे वरदानिशिरोमणि स्वामी ! यदि आप मुझे मुँहमाँगा वर देना ही चाहते हैं तो यह वर दीजिये कि मेरे हृदयमें कभी किसी कामनाका बीज ही उत्पन्न न हो । हृदयमें किसी भी कामनाके उदय होते ही इन्द्रिय, मन, प्राण, देह, धर्म, धैर्य, बुद्धि, लज्जा, श्री, तेज, स्मृति और सत्य—ये सब-के-सब नष्ट हो जाते हैं । हे कमलनयन ! जिस समय मनुष्य अपने मनमें रहनेवाली कामनाओंका परित्याग कर देता है, उसी समय वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त कर लेता है ।' विष्णुपुराणमें कहा गया है—

नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ॥
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥
(१ । २० । १८-१९)

प्रह्लाद बोले—'हे नाथ ! सहस्रों योनियोंमेंसे मैं जिस-जिसमें भी जाऊँ, उसी-उसीमें हे अच्युत ! आपमें मेरी सर्वदा अक्षुण्ण भक्ति रहे । अज्ञानी पुरुषोंकी विषयोंमें जैसी अविचल प्रीति होती है, वैसी ही आपका स्मरण करते हुए मेरे हृदयसे कभी दूर न हो ।'

इसके सिवा प्रार्थनामें भी निष्कामभावका महत्त्व दिखाते हुए श्रीमद्भागवतमें कहा है—

तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ
आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमा विरिञ्चात् ।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण
कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥
कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः
क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ।
निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्
कामानलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः ॥
(७ । ९ । २४-२५)

'इसलिये मैं ब्रह्मलोकतककी आयु, लक्ष्मी, ऐश्वर्य और वे इन्द्रियभोग, जिन्हें संसारके प्राणी चाहा करते हैं, नहीं चाहता; क्योंकि मैं जानता हूँ कि अत्यन्त शक्तिशाली कालका रूप धारण करके आपने उन्हें ग्रस रक्खा है । इसलिये मुझे आप अपने दासोंकी संनिधिमें ले चलिये । विषय-भोगकी बातें सुननेमें ही अच्छी लगती हैं, वास्तवमें वे मृगतृष्णाके जलके समान नितान्त असत्य हैं और यह शरीर भी, जिससे वे भोग भोगे जाते हैं, अगणित रोगोंका उत्पत्ति-स्थान है । कहाँ वे मिथ्या विषय-भोग और कहाँ यह रोगयुक्त शरीर ? इन दोनोंकी क्षणभङ्गुरता और असारता जानकर भी मनुष्य इनसे विरक्त नहीं होता । वह कठिनाईसे प्राप्त होनेवाले भोगके नन्हे-नन्हे बिन्दुओंसे अपनी कामनाकी आग बुझानेकी चेष्टा करता है ।'

तथा यह भी कहा गया है कि साधारण जीव जो मोहवश आपकी भक्ति न करके विषयोंमें आसक्त हो रहे हैं, उनके मोहका नाश करके उनको अपना भक्त बना लीजिये—

एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्या-
मन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ।
पश्यञ्जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं
हन्तेति पारचर पीपृहि मूढमद्य ॥
(श्रीमद्भागवत ७ । ९ । ४१)

'इस प्रकार यह प्राणी अपने कर्मोंके बन्धनमें पड़कर इस संसाररूप वैतरणी नदीमें गिरा हुआ है । जन्मसे मृत्यु, मृत्युसे जन्म और दोनोंके द्वारा कर्म-भोग करते-करते यह भयभीत हो गया है । यह अपना है, यह पराया है—इस प्रकारके भेद-भावसे युक्त होकर किसीसे मित्रता करता है तो किसीसे शत्रुता । इस भवनदीसे सर्वदा पार रहनेवाले हे भगवन् ! आप इन मूढ़ प्राणियोंकी यह दुर्दशा देखकर इनको भी अब पार लगा दीजिये ।'

तथा दैत्य-बालकोंको उपदेश देते हुए भी प्रह्लादजीने अन्तमें विष्णुपुराणमें कहा है—

असारसंसारविवर्तनेषु
मा यात तोषं प्रसभं ब्रवीमि ।
सर्वत्र दैत्यास्समतामुपेत
समत्वमाराधनमच्युतस्य ॥
तस्मिन्प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं
धर्मार्थकामैरलमल्पकास्ते ।

समाश्रिताद्ब्रह्मतरोरनन्ता-
निस्संशयं प्राप्स्यथ वै महत्फलम्॥
(१ । १७ । ९०-९१)

'हे दैत्यो ! मैं आग्रहपूर्वक कहता हूँ, तुम इस असार संसारके विषयोंमें कभी संतुष्ट मत होना । तुम सर्वत्र सम-दृष्टि करो; क्योंकि समता ही श्रीअच्युतकी (वास्तविक) आराधना है । उन अच्युतके प्रसन्न होनेपर फिर संसारमें दुर्लभ ही क्या है । तुम धर्म, अर्थ, कामकी इच्छा कभी न करना; वे तो अत्यन्त तुच्छ हैं । उस ब्रह्मरूप महावृक्षका आश्रय लेनेपर तो तुम निस्संदेह (मोक्षरूप) महाफल प्राप्त कर लोगे ।'

अतः प्रह्लादके चरित्रपर ध्यान देकर साधकको सांसारिक दुःखकी निवृत्तिके लिये और सुखकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना न करके उनके दर्शन और प्रेमकी प्राप्तिके लिये तथा साधनविषयक कमजोरीको मिटानेके लिये ही श्रद्धा-विश्वासपूर्वक प्रार्थना करनी चाहिये । **भगवान् परम दयालु और सर्वसमर्थ हैं । प्रार्थना करनेवाले विश्वासी श्रद्धालु और प्रेमी भक्तकी करुणभावसे की हुई प्रार्थना वे अवश्य सुनते हैं और साधकका परम हित करते हैं ।** साधकको उसकी प्रतीति न हो तो भी पूर्ण विश्वास रखना चाहिये। किसी प्रकारके संदेहको मनमें स्थान नहीं देना चाहिये । हरेक परिस्थिति और घटनामें उनकी मङ्गलमय कृपा-का दर्शन करना चाहिये ।

श्रीमैत्रेयजीने भी विदुरजीसे श्रीमद्भागवतमें कहा है कि भगवान्‌के निष्कामी भक्त उनकी सेवाके सिवा अपने लिये कुछ नहीं माँगते—

न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयो
रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः ।
वाञ्छन्ति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो
यदृच्छयालब्धमनस्समृद्धयः ॥
(४ । ९ । ३६)

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—'तात ! तुम्हारी तरह जो लोग श्रीमुकुन्दपादारविन्दमकरन्दके ही मधुकर हैं—जो निरन्तर प्रभुकी चरणरजका ही सेवन करते हैं और जिनका मन अपने आप आयी हुई सभी परिस्थितियोंमें संतुष्ट रहता है, वे भगवान्‌से उनकी सेवाके सिवा अपने लिये और कोई भी पदार्थ नहीं माँगते ।'

यमराजने भगवान्‌के शरणागत भक्तोंकी महिमाका वर्णन करते हुए अपने दूतोंसे श्रीविष्णुपुराणमें कहा है—

कमलनयन वासुदेव विष्णो
धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे ।
भव शरणमितीरयन्ति ये वै
त्यज भट दूरतरेण तानपापान् ॥
(३ । ७ । ३३)

'हे कमलनयन ! हे वासुदेव ! हे विष्णो ! हे धरणीधर ! हे अच्युत ! हे शङ्खचक्रपाणे ! आप हमें शरण दीजिये—जो भक्त इस प्रकार पुकारते हों, उन निष्पाप शरणागत भक्तोंको तुम दूरसे ही त्याग देना । अर्थात् उनके पास नहीं जाना ।'

भगवान्‌से प्रार्थना करनेका प्रकार बताते हुए श्वेताश्वतरो-पनिषद्‌में कहा गया है—

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्
वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति ।
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥
(४ । १)

'जो परब्रह्म परमात्मा अपने निराकार स्वरूपमें रूप-रंग आदिसे रहित होकर भी सृष्टिके आदिमें किसी रहस्यपूर्ण प्रयोजनके कारण अपनी स्वरूपभूता नाना प्रकारकी शक्तियोंके सम्बन्धसे अनेक रूपोंको धारण करते हैं तथा अन्तमें यह सम्पूर्ण जगत् जिनमें विलीन भी हो जाता है—अर्थात् जो बिना किसी अपने प्रयोजनके जीवोंका कल्याण करनेके लिये ही उनके कर्मानुसार इस नाना रूपवाले जगत्‌की रचना, पालन और संहार करते हैं, वे परमदेव परमेश्वर वास्तवमें एक—अद्वितीय हैं । उनके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है । वे हमें शुभ (पवित्र) बुद्धिसे युक्त करें ।'

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥
(श्वेताश्वतर० ४ । १२)

'सबको अपने शासनमें रखनेवाले जो रुद्ररूप परमेश्वर इन्द्रादि समस्त देवताओंको उत्पन्न करते और बढ़ाते हैं तथा जो सबके अधिपति और महान् ज्ञानसम्पन्न (सर्वज्ञ) हैं, जिन्होंने सृष्टिके आदिमें सबसे पहले उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भको देखा था, अर्थात् जो ब्रह्माके भी पूर्ववर्ती हैं, वे परमदेव परमात्मा हमलोगोंको शुभ (पवित्र) बुद्धिसे संयुक्त करें, जिससे हम उनकी ओर बढ़कर उन्हें प्राप्त कर सकें। शुभ बुद्धि वही है, जो जीवको परम कल्याणरूप परमात्माकी ओर लगाये।'

यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतो देव एकः स्वमावृणोत्। स नो दधाद्ब्रह्माप्ययम्॥

(श्वेताश्वतर० ६। १०)

'जिस प्रकार मकड़ी अपनेसे प्रकट किये हुए तन्तुजालसे स्वयं आच्छादित हो जाती है, उसमें अपनेको छिपा लेती है, उसी प्रकार जिन एक देव परमपुरुष परमेश्वरने अपनी स्वरूपभूता मुख्य एवं दिव्य अचिन्त्यशक्तिसे उत्पन्न अनन्त कार्योंद्वारा स्वभावसे ही अपनेको आच्छादित कर रखा है, जिसके कारण संसारी जीव उन्हें देख नहीं पाते, वे सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्मा हमलोगोंको सबके परम आश्रयभूत अपने परब्रह्म स्वरूपमें स्थापित करें।'

उन परमेश्वरको प्राप्त करनेका सुगम उपाय सर्वतोभावसे उन्हींपर निर्भर होकर उन्हींकी शरणमें चले जाना है। अतः साधकको मनके द्वारा नीचे लिखे भावका चिन्तन करते हुए परमात्माकी शरणमें जाना चाहिये—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तꣳह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥

(श्वेताश्वतर० ६। १८)

'जो परमेश्वर निश्चय ही सबसे पहले अपने नाभिकमलमें ब्रह्माको उत्पन्न करते हैं, उत्पन्न करके उन्हें निस्संदेह समस्त वेदोंका ज्ञान प्रदान करते हैं तथा जो अपने स्वरूपका ज्ञान करानेके लिये अपने भक्तोंके हृदयमें तदनुरूप विशुद्ध बुद्धिको प्रकट करते हैं (गीता १०। १०), पूर्वमन्त्रोंमें वर्णित सर्वशक्तिमान् प्रसिद्धदेव परब्रह्म पुरुषोत्तमकी मैं मोक्षकी अभिलाषासे युक्त होकर शरण ग्रहण करता हूँ—वे ही मुझे इस संसार-बन्धनसे छुड़ायें।' ईशावास्योपनिषद्में कहा गया है—

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्।
ॐ क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर॥
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम॥

(मन्त्र १७-१८)

'हे परमात्मन्! मेरे ये इन्द्रिय और प्राण आदि अपने अपने कारण-तत्त्वोंमें लीन हो जायँ और मेरा यह स्थूल शरीर भी भस्म हो जाय। इनके प्रति मेरे मनमें किंचित् भी आसक्ति न रहे। हे यज्ञमय विष्णो! आप कृपा करके मेरा और मेरे कर्मोंका स्मरण करें। आपके स्मरण कर लेनेसे मैं और मेरे सब कर्म पवित्र हो जायँगे। फिर तो मैं अवश्य ही आपके चरणोंकी सेवामें पहुँच जाऊँगा। हे अग्निस्वरूप परमेश्वर! आप ही मेरे धन हैं—सर्वस्व हैं, अतः आपकी ही प्राप्तिके लिये आप मुझे उत्तम मार्गसे अपने चरणोंके समीप पहुँचाइये। मेरे जितने भी शुभाशुभ कर्म हैं, वे आपसे छिपे नहीं हैं, आप सबको जानते हैं; मैं उन कर्मोंके बलपर आपको नहीं पा सकता। आप स्वयं ही दया करके मुझे अपना लीजिये। आपकी प्राप्तिमें जो भी प्रतिबन्धक पाप हों, उन सबको आप दूर कर दें; मैं बारंबार आपको नमस्कार करता हूँ।'

यह मन्त्र ऋग्वेदमें भी इसी प्रकार आया है। इस प्रकार उपनिषदोंमें और वेदोंमें भगवान्से प्रार्थना करनेका विधान बहुत जगह किया गया है। मैंने उनमेंसे निष्काम प्रार्थनाके थोड़े-से उदाहरण पाठकोंके सम्मुख रखे हैं। इनका रहस्य समझकर साधकोंको भगवान्से श्रद्धा-विश्वास और प्रेमपूर्वक करुणा-भावसे प्रार्थना करनी चाहिये।

प्रार्थनाका स्वरूप

[एक महात्माका प्रसाद]

प्रार्थना की नहीं जाती, अपितु स्वतः होती है। प्रार्थना ही प्रार्थीका स्वरूप है। प्रार्थना प्रार्थीको लक्ष्यसे अभिन्न करनेमें समर्थ है। प्रार्थना वास्तविकताका आदर करनेसे स्वतः जाग्रत् होती है। मृत्युके भयसे भला कौन मानव भयभीत नहीं है ? अभय होनेकी माँग मानवमात्रमें स्वभावसे विद्यमान है। मृत्युके भयसे रहित करनेमें कोई परिस्थिति हेतु नहीं है। इस कारण सभी परिस्थितियोंके आश्रय तथा प्रकाशककी ओर दृष्टि स्वतः जाती है। मानव कह बैठता है—'कोई ऐसा होता जो मुझे अभय-दान देता।' अतः भयहारीमें आस्था स्वतः होती है। आस्थाकी पूर्णतामें ही श्रद्धा तथा विश्वास निहित है। श्रद्धा-विश्वासपूर्वक भयहारीको स्वीकारकर अभय होनेकी तीव्र माँग ही वास्तविक प्रार्थना है।

यह सभीको विदित है कि कामनापूर्ति कर्मसापेक्ष तथा निष्कामता विवेकसिद्ध है। किंतु कर्म-सामग्री कर्त्ताको किसी विधानसे मिली है। मिली हुई वस्तुको व्यक्तिगत मान लेना और दाताको स्वीकार न करना 'प्रमाद' है। इस प्रमादकी निवृत्ति आये हुए दुःखके प्रभावसे स्वतः होती है और फिर दुखी—'हे दुःखहारी!' पुकारने लगता है। भला, इस सत्यको कौन नहीं अपनायेगा ? सुखकी दासता तथा दुःखके भयके रहते हुए सभी प्रार्थी हैं। इस दृष्टिसे मानवमात्र प्रार्थी हैं। अब विचार यह करना है कि हमारी माँगमें वास्तविकताका अनादर तो नहीं है ? अर्थात् विवेकविरोधी माँग तो नहीं है ? दुःखके अभावसे ही सुखका प्रलोभन नाश होता है और फिर स्वतः दुखी दुःखहारीसे अभिन्न होता है। यह मङ्गलमय विधान है। दुःखका मूल भूल है अथवा यों कहो कि भूल मिटानेके लिये दुःखके वेषमें दुःखहारी ही आते हैं और सुखके प्रलोभनको खाकर दुखीको अपनाकर योग, बोध, प्रेमसे अभिन्न कर देते हैं।

भूलका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। निज ज्ञानका अनादर, मिली हुई स्वाधीनताका दुरुपयोग तथा दैवी गुणोंको व्यक्तिगत मान लेना ही तो भूल है। भूलजनित वेदनामें ही प्रार्थना निहित है। प्रार्थनासे मानवमात्रका सर्वतोमुखी विकास होता है। इतना ही नहीं, पुरुषार्थकी परावधि एकमात्र प्रार्थनामें ही निहित है। मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य आदिका सदुपयोग पुरुषार्थका सदुपयोग है। मिले हुएको अपना मानना भूल है। जिसने दिया है, वह अपना है। मानव प्रमादसे उन्हें भूल जाता है जो सदा-सदासे अपने हैं और परिवर्तनशील, उत्पत्ति-विनाश-युक्त वस्तु, अवस्था, परिस्थिति आदिको अपना मान लेता है। वे कितने अपने हैं कि सब कुछ देनेपर भी भास नहीं होने देते कि मैं दाता हूँ ? वे कितने उदार हैं कि उनको स्वीकार बिना किये भी वास्तविक माँगको पूरा करते हैं। उन्हींके प्रकाशमें चराचर जगत् प्रार्थी है। प्रार्थी अपनी माँगसे अभिन्न हो जाता है। यह दाताकी महिमा है। स्तुति और उपासना प्रार्थनामें ही निहित हैं। प्रार्थनाकी पूर्तिमें ही स्तुति उदय होती है। प्रार्थना स्वतः सर्वसमर्थसे सम्बन्ध जोड़ देती है। यही तो उपासना है। प्रार्थना उससे सम्बन्ध जोड़ देती है जिसे प्रार्थी नहीं जानता, अपितु जो प्रार्थीको जानता है।

संदेहकी वेदना होनेपर जिज्ञासाके रूपमें प्रार्थना ही अभिव्यक्त होती है। ज्यों-ज्यों जिज्ञासा सबल तथा स्थायी होती जाती है, त्यों-त्यों सभी निर्बलताएँ स्वतः नष्ट होती जाती हैं। जिस कालमें जिज्ञासासे भिन्न जिज्ञासुका कोई और अस्तित्व ही नहीं रहता, उसी कालमें जिज्ञासाकी पूर्ति स्वतः हो जाती है अर्थात् जिज्ञासु तत्त्वज्ञानसे अभिन्न हो जाता है, यह प्रार्थनाकी ही महिमा है। पुरुषार्थ 'अहं'को पोषित करता है और प्रार्थना 'अहं'को खाकर प्रार्थीको लक्ष्यसे अभिन्न करती है। इतना ही नहीं, पुरुषार्थी पुरुषार्थके आरम्भसे पूर्व प्रार्थी होता है। कारण कि सामर्थ्यके सदुपयोगसे भिन्न पुरुषार्थ कुछ नहीं है। सामर्थ्यकी माँग भी तो प्रार्थना ही है। इस दृष्टिसे प्रार्थनासे ही जीवनका आरम्भ होता है और प्रार्थनासे ही पूर्णता प्राप्त होती है।

प्रार्थना प्रार्थीकी सभी निर्बलताओंका अन्त कर निर्दोषतासे अभिन्न करती है। इतना ही नहीं, प्रार्थनासे प्राप्त निर्दोषता साधकको गुणोंके अभिमानसे रहित कर देती है। अतः सर्वांशमें दोषोंका अन्त एकमात्र प्रार्थनासे ही साध्य है।

प्रत्येक संकल्प-पूर्तिका सुख नवीन संकल्पको जन्म देता है और अन्तमें संकल्प-अपूर्ति ही शेष रहती है। इस दृष्टिसे

प्रार्थनासे अनेक लाभ

(लेखक—अनन्तश्री स्वामी श्रीशुकदेवानन्दजी सरस्वती महाराज, महामण्डलेश्वर)

मनुष्यको ईश्वरकी प्रार्थना तो अवश्य ही करनी चाहिये। जिस ईश्वरने मनुष्यका शरीर दिया है और उसकी रक्षाके लिये अन्न, फल, मेवा, सब्जी इत्यादि अनेक पदार्थ बनाये हैं, उसका कितना उपकार है—वह वाणीसे कहा नहीं जा सकता। गोस्वामीजीने विनयपत्रिकामें लिखा है—

'कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभु के एक एक उपकार।'

अर्थात्—करोड़ों मुखसे भी ईश्वरका एक-एक उपकार नहीं कहा जा सकता। उसका बदला देना तो दूरकी बात है, कम-से-कम हमें उनके उपकारको समझकर प्रार्थना तो अवश्य ही करनी चाहिये। जो उपकारको नहीं मानता, उसको बड़ा भारी पाप कृतघ्नता-दोषका होता है। सूरदास-जीने यहाँतक लिखा है—

मो सम कौन कुटिल-खल-कामी।
जो तनु दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नमकहरामी॥
भरि-भरि उदर बिषै कौं धायौ, जैसैं सूकर ग्रामी।
हरिजन छाँड़ि हरी-बिमुखन की निसदिन करत गुलामी॥
पापी कौन बड़ौ जग मो तें, सब पतितन में नामी।
'सूर' पतित कौं ठौर कहाँ है, तुम बिनु श्रीपति स्वामी॥

एक कुत्तेको भी रोटीका एक टुकड़ा डाल दो तो वह भी पूँछ हिलाकर मालिककी प्रार्थना करके तब रोटी खाता है। क्या हम कुत्तेसे भी गये-बीते हैं कि जिस ईश्वरने हमको सब कुछ दिया है, उसकी हम प्रार्थना भी न करें? इससे बड़ा पाप और कौन हो सकता है? विचार करके देखा जाय तो मनुष्य थोड़े-से धनके लिये धनवान्‌की प्रार्थना करता है, बलके लिये बलवान्‌की प्रार्थना करता है, विद्याके लिये विद्वान्‌की प्रार्थना करता है, तब हमें धन, बल या विद्या प्राप्त होती है। अगर हम ईश्वरकी प्रार्थना करें तो ईश्वर सर्वशक्तिमान हैं, उससे हमें सारी शक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं।

प्रार्थनासे बहुत लाभ होते हैं। जो नित्यप्रति ईश्वरकी प्रार्थना करते हैं, उनको अनेक प्रकारके अनुभव हुए हैं। लेख बढ़नेके कारण उनको लिखा नहीं जा सकता। अभी हालमें ही ३० अगस्तके अखबारमें पढ़ा था कि प्रार्थनासे एक अंधेको पुनः नेत्र-ज्योति मिल गयी। घटना इस प्रकारकी है। कादुर (मैसूर) ग्राम-पंचायतके भूतपूर्व अध्यक्ष श्रीबीरन्ना दो महीने पहले अपनी आँखोंकी रोशनी खो चुके थे। उन्होंने कई अच्छे डाक्टरोंको दिखाया; लेकिन सभीने कहा कि अब आँखोंकी रोशनी लौटना असम्भव है। डाक्टरोंसे निराश हो श्रीबीरन्ना अपने परिवारकी देवीके मन्दिरमें गये और देवीसे आँखोंकी रोशनी फिरसे प्रदान करनेकी प्रार्थना की। घर लौटकर भी वह हर सुबह देवीसे प्रार्थना करते थे। एक सप्ताह बाद एक दिन सुबहके समय जब वह भावमग्न हो भजन गा रहे थे, उनकी आँखोंकी रोशनी लौट आयी, उन्हें पहलेकी तरह दीखने लगा।

ईश्वरकी प्रार्थना करनेसे स्वयंको तो लाभ होता ही है, परंतु इससे सारे विश्वको भी लाभ पहुँचता है। प्रार्थनासे वातावरण शुद्ध होता है। आज देश और विश्वमें वातावरण अशुद्ध हो रहा है। लोगोंमें तामसी और राजसी भावनाएँ फैली हुई हैं, जिससे घोर अशान्ति है। देश और विश्वका वातावरण शुद्ध हो, इसके लिये प्रार्थना हर मनुष्यको करनी चाहिये। इस भौतिक युगमें भौतिक वस्तुओंकी बहुत उन्नति हुई। घर-घरमें रेडियो लगे हुए हैं। इसके द्वारा सभी लोग जानते हैं कि शब्दकी शक्ति कितनी ज्यादा है। एक स्थानसे ब्राडकास्ट होता है, वह सारे संसारमें फैल जाता है। अगर लोग ईश्वरकी प्रार्थना करेंगे तो वे प्रार्थनाके शब्द सारे विश्वमें फैल जायँगे और उससे बहुत लाभ हो सकता है—यह विज्ञ पुरुष स्वयं समझते हैं। आजकल प्रायः घरमें, नगरमें, प्रान्तमें, देशमें और विश्वमें लड़ाई-झगड़ों और वैमनस्यके शब्द फैले हुए हैं, जिससे दिन-दिन वातावरण अशुद्ध होता चला जा रहा है। लोगोंके हृदयमें घोर अशान्ति है। अगर मनुष्य व्यक्तिगत या सामूहिक प्रार्थना करे तो इससे वातावरण शुद्ध हो सकता है। अभी हालकी बात है कि जब चीनने भारतपर चढ़ाई की, उस समय भारतमें यत्र-तत्र खूब प्रार्थनाएँ हुईं कि देशकी विजय हो और विश्वमें शान्ति हो। उसका प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि चीनका युद्ध बंद हो गया और एक प्रकारसे भारतकी विजय ही हुई।

हमारा तो जनतासे विशेष अनुरोध है कि इस समय सब लोग भगवान्‌की प्रार्थना करें—फिर चाहे वह व्यक्तिगत हो या सामूहिक। प्रार्थनाका खूब प्रचार एवं प्रसार होना चाहिये।

भगवत्प्रार्थना

(लेखक—अनन्तश्री स्वामी श्रीपरमानन्द सरस्वतीजी महाराज एम्० ए०)

भगवत्प्रार्थना यथार्थमें अकारण-करुण, निखिल-ब्रह्माण्डनायक, पूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीभगवान्से शुद्ध हृदयकी वार्ता है, प्रभुसे भावनात्मक भेंट है। यह एकाकी भी की जा सकती है और सामूहिक रूपसे भी। एक दृष्टिसे हम कहें तो भगवत्प्रार्थना जीवका परमात्माके सम्मुख होना है। सुगम साधन है, पर फल महान् है।

'सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥'

इसीलिये प्रार्थना जीवके कल्याणका एक महत्त्वशाली साधन है।

विचार करना चाहिये कि प्रार्थनाका स्वरूप क्या है। परमात्माकी सत्ता, उसके औदार्य, वात्सल्य, सर्वविध सामर्थ्य, दयालुता आदि कल्याणमय गुणगणोंपर दृढ़ विश्वास हुए बिना किसी प्रकारकी कोई प्रार्थना नहीं बन सकती। इस विश्वासके अभावमें प्रथम तो प्रार्थना की ही नहीं जा सकती; कदाचित् किन्हीं परिस्थितियोंमें की भी जाय तो वह निरर्थक है।

विश्वासके अनन्तर प्रार्थनाका दूसरा अनिवार्य अङ्ग है—विनय। अभिमान और अहंकार प्रार्थनाके भावके विघातक हैं। गजेन्द्रको जबतक अपने बलका तथा अपने यूथके अन्यान्य गजोंके बल और साहाय्यका अभिमान रहा, तबतक उससे भगवत्प्रार्थना नहीं बनी। सहस्रों वर्षतक ग्राहसे संघर्ष करते-करते जब उसका मन, बल और ओज—सब शिथिल हो गये, अन्यान्य गज भी उसकी रक्षा करनेमें असमर्थ सिद्ध हुए, तब अन्ततोगत्वा सबका भरोसा छोड़कर उसने भगवान्की शरण ली।

प्रार्थनाका तीसरा अनिवार्य अङ्ग है—हृदयकी शुद्धता। लोकमें हम प्रबल शत्रुसे पराभूत होकर कोई और उपाय न देखते हुए अपने कुछ हितोंकी रक्षा करनेके लिये, मनमें कपट और दुर्भाव रखते हुए भी केवल नीतिकी दृष्टिसे भी कोई प्रार्थना कर सकते हैं। परंतु भगवत्प्रार्थना इस प्रकार नहीं हो सकती। यहाँ तो हृदयकी शुद्धता परमापेक्षित है।

दृढ़ भगवद्विश्वास, विनय और शुद्ध-हृदयतासे की हुई भगवत्प्रार्थना अवश्य सुनी जायगी। संक्षेपमें प्रार्थनाका यही स्वरूप है।

यों तो किसी बातके लिये भी प्रार्थना की जा सकती है, पर मुख्यरूपसे प्रार्थनाके तीन ही निमित्त हैं—संकट-निवारण, योगक्षेमकी प्राप्ति तथा परमात्मतत्त्वके बोधकी आकाङ्क्षा।

संसारमें अनेकों प्रकारके संकट आते रहते हैं। भगवत्कृपासे वे अनायास ही निवृत्त हो सकते हैं; क्योंकि परमात्मा सर्वसमर्थ, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं शक्त है, सत्य-संकल्प है, सर्वान्तर्यामी और सर्वभूतनियन्ता है। सभी प्राणियोंकी प्रवृत्ति-निवृत्ति परमात्माके संकल्पके ही अधीन है। अतः कहीं भी, किसीसे भी, कोई संकट उपस्थित हुआ हो, उसे दूर कर देनेमें परमात्माको कुछ भी भार नहीं; केवल उनमें कृपाका भाव उदय हो जाना चाहिये। भगवान्का अनुग्रहभाव उद्वेलित करनेका प्रार्थना अमोघ साधन है। द्रौपदीका चीर बढ़ाकर, ग्राहको चक्रसे छेदनकर, गजको उसके फंदेसे छुड़ाकर तथा प्रह्लादमें अपनी दिव्य अचिन्त्य शक्तिका प्रवेश कराके भगवान्ने उनके संकटोंका अनायास निवारण कर दिया। श्रीप्रह्लादजीने अपने इस दिव्य प्रभावका रहस्य बताते हुए कहा—

> न मन्त्रादिकृतस्तात न च नैसर्गिको मम।
> प्रभाव एष सामान्यो यस्य यस्याच्युतो हृदि॥
>
> (विष्णुपुराण १। १९। ४)

'हे पितः! कोई भी घातक प्रयोग जो मेरे ऊपर सफल नहीं होता, मेरा यह प्रभाव मन्त्रादि सिद्ध करनेसे नहीं उत्पन्न हुआ है और न यह मुझे निसर्गतः प्राप्त ही है। यह प्रभाव तो उन सब पुरुषोंमें होता ही है, जिनके हृदयमें भगवान् श्रीअच्युत विशेषरूपसे आविर्भूत होकर विराजमान हैं।' शक्तिका मूलस्रोत परमात्मा ही है, यह बतलाते हुए श्रीप्रह्लादजीने कहा—

> न केवलं मे भवतश्च राजन् स वै बलं बलिनां चापरेषाम्॥
>
> (श्रीमद्भागवत ७। ८। ८)

'पिताजी! केवल मेरा ही बल वह परमात्मा नहीं, अपितु आपमें भी जो बल है, वह भी उस परमात्मासे ही है। संसारमें जितने भी बलवान् हैं, उन सबका बल [illegible] परमात्मा ह

परमात्माके बलके एक अंशकी भी समता नहीं कर सकते। गीतामें इन शब्दोंमें अर्जुन अपनी अनुभूति व्यक्त करता है—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः॥
(११।३६)

'हे हृषीकेश! यह सर्वथा युक्त ही है जो जगत् आपके गुणोंका कीर्तन करके हर्ष और अनुरागको प्राप्त होता है। आपके भयंकर रौद्र रूपको देखकर राक्षसगण भी जो भयभीत होकर सब दिशाओंमें पलायन कर जाते हैं, वह भी सर्वथा युक्त ही है। सिद्धोंके समूह भी आपको जो निरन्तर नमन करते हैं, वह भी युक्त है; क्योंकि आप ऐसे ही महामहिम सामर्थ्यवाले हैं।'

देवगण भी जब-जब असुरोंसे बाधित हुए और अपने पराक्रमसे उन्हें परास्त करनेमें किसी प्रकार समर्थ न हुए, तब वे आत्मत्राणके लिये परमात्माकी ही शरणमें गये और दयालु भगवान्‌ने भी उनकी प्रार्थना स्वीकारकर सदा किसी-न-किसी उपायसे उनकी रक्षा की।

रक्षाकी प्रार्थना करना किसी प्रकारसे हेय नहीं है। परमात्माके अतिरिक्त निस्सीम बल देव, दानव, मानव किसी भी प्राणीमें नहीं है। जब किसीका अपना बल-पौरुष सब निरर्थक सिद्ध हुआ, तब भगवान्‌से प्रार्थना करना शिष्ट-सम्मत पथ है।

इस बातको सदा ध्यानमें रखना चाहिये कि—

यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।
(महाभारत, भीष्म० ४३।६०)

'जिस पक्षमें धर्म होता है, उसी पक्षमें भगवान् कृष्ण होते हैं और जिधर भगवान् कृष्ण होंगे, उधर ही विजय होगी।' अतः यदि भगवान्‌से कोई ऐसी प्रार्थना की गयी है, जो धर्म या न्यायके अनुकूल नहीं तो उसकी पूर्तिकी आशा कथमपि नहीं करनी चाहिये। वस्तुतः अधर्म और अन्यायके पथपर अग्रसर होकर विनय और शुद्धहृदयता सच्चे अर्थोंमें बन ही नहीं सकती। विनय और शुद्धहृदयता प्रार्थनाके मुख्य अङ्ग हैं, यह पूर्व कह आये हैं।

भगवान् सर्वभूत-सुहृद् हैं—स्वाभाविक ही सबका हित चाहते हैं। जो भी हमारी इच्छाओंकी पूर्तिमें बाधक हो अपना शत्रु मानकर हम यदि उसके विनाशकी [illegible] परमात्मासे करने लगें तो यह युक्त न होगा। अतः प्रा[illegible] औचित्य भी सर्वदा अनुपेक्षणीय (सदा ध्यानमें [illegible] योग्य) है।

पुरुषार्थ-सिद्धिके लिये अपनी रक्षा तो प्रथम अ[illegible] है; क्योंकि हम अपने अस्तित्वको रखकर ही कोई पुर[illegible] प्राप्त करनेका प्रयत्न कर सकेंगे। परंतु अस्तित्व-र[illegible] अनन्तर योग-क्षेमकी प्राप्ति दूसरी अनिवार्य वस्तु है, जि[illegible] बिना पुरुषार्थ-प्राप्तिके सभी प्रयत्न बाधित होंगे। योग-क्षे[illegible] स्वरूप व्यक्ति-व्यक्तिके लिये पृथक्-पृथक्-सा ही होता [illegible] रुचि, इच्छाएँ और आवश्यकताएँ व्यक्ति-व्यक्तिकी विल[illegible] हैं; अतः योग-क्षेमका स्वरूप भी भिन्न-भिन्न हो जाता है।

योग-क्षेमकी प्रार्थना कर तो सभी सकते हैं, पर [illegible] अपने अधिकार और योग्यताके अनुसार ही उसे परमात्मा[illegible] प्राप्त कर सकेंगे। भक्ति, सदाचार और भूत-हित-परायणता[illegible] हमारी योग्यता बढ़ती है तथा इसके विपरीत आचरण करने[illegible] हम अयोग्य होते जाते हैं। योग्य पुरुषद्वारा की हु[illegible] प्रार्थना विफल नहीं होती। अयोग्योंकी प्रार्थना कभी सुन[illegible] नहीं जाती। कारण स्पष्ट है—भगवद्द्रोह, दुराचार और पर[illegible] पीड़नसे दूषित हुए हृदयमें भगवद्विश्वास, विनय और शुद्धहृदयता सम्भव नहीं।

उत्तम पक्ष यह है कि अपने वैयक्तिक योगक्षेमकी याचना न करके विश्वमात्रके योगक्षेमकी याचना करनी चाहिये। ऋषियोंकी याचना यही थी—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥
अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः।
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम्॥
काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी शस्यशालिनी।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥

'सब सुखी हो जायँ, सब नीरोग हो जायँ, सब पवित्र आचार-विचारोंके हो जायँ, कोई भी दुःखका भागी न हो। जिनके पुत्र नहीं, वे पुत्रवान् हो जायँ, पुत्रवान् पौत्र प्राप्त करें। जो निर्धन हैं, वे धन-सम्पन्न हो जायँ, जो पुत्र-पौत्र और धन-सम्पन्न हैं, वे शतायु—पूर्णायु प्राप्त करें। समय-पर सुवृष्टि हो, पृथ्वी धन-धान्यसे परिपूर्ण हो—शस्यशालिनी

हो तथा हमारा यह देश क्लेश और क्षोभ उत्पन्न करनेवाली सभी बातोंसे रहित हो जाय। तत्त्वकी खोजमें लगे रहनेवाले ब्राह्मण सर्वथा भयरहित होकर तत्त्वानुसंधान करें।'

यह प्रार्थना अपने सभी शुभ कर्मोंके अन्तमें करते रहनेसे अपने लिये पृथक् योगक्षेमकी प्रार्थना करनेकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

भगवान्‌में अपना शुद्ध समाहित-चित्त समर्पित करनेका अभ्यास बढ़ाते-बढ़ाते जब वह इतना बढ़ जाता है कि मन सदा सब कार्योंमें भी भगवान्‌की स्मृति बनाये रखता है, उस अवस्थामें तो अनुरागसे परिपूर्ण भक्त अपनी जो-जो इच्छा व्यक्त करता है, उसे भगवान् उसी प्रकार प्रसन्नतासे पूरा कर देते हैं, जैसे उदार और दयालु पति सती, साध्वी और पतिपरायणा पत्नीकी इच्छाको।

जनार्दनं भूतपतिं जगद्गुरुं
स्मरन् मनुष्यः सततं महामुने।
दुःखानि सर्वाण्यपहन्ति साधय-
त्यशेषकार्याणि च यान्यभीप्सते॥

'निखिलभूतपति, जगद्गुरु भगवान् श्रीहरिका श्रद्धा और प्रेमसे निरन्तर स्मरण करते हुए मनुष्य अपने सब दुःखोंको दूरकर जिस-जिस कार्यको सिद्ध करना चाहता है, उसे सिद्ध कर लेता है।'

मनुष्य-जीवनका मुख्य लक्ष्य है—तत्त्व-जिज्ञासा—जीवस्य तत्त्व जिज्ञासा। यहाँपर 'जिज्ञासा' शब्दका अर्थ वही है जो ब्रह्मसूत्रके प्रथम सूत्र—'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'—में जिज्ञासाका है, इच्छा-साध्य विचार। बिना तत्त्वज्ञानके मुक्ति नहीं। ज्ञान बिना विचार किये नहीं होगा। पर विचार करते हुए भी आत्मतत्त्व—भगवत्तत्त्वका बोध परमात्माकी कृपाके अधीन ही है। उस कृपाके ही लिये मुख्यरूपसे प्रार्थना अपेक्षित है। श्रुतिभगवती इस तथ्यको सुस्पष्ट करनेके लिये कहती है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्॥

(कठ० १।२।२३)

'आत्मा न प्रवचनसे उपलब्ध होता है, न ग्रन्थार्थ-धारण करनेमें सक्षम सूक्ष्म बुद्धिद्वारा तथा न बहुत श्रवण करनेसे ही वह जाना जाता है। अपितु यह साधक प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न जिस परमात्माका वरण करता है, उसीसे अर्थात् उसीके अनुग्रहसे वह इसे प्राप्त करता है। उसका स्वात्म—याथात्म्य स्वयमेव उसके सामने प्रकट हो जाता है।'

सो जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई॥

अतः तत्त्वोपलब्धि, जो मनुष्यजीवनका परम फल है, परमात्माकी कृपाके अधीन होनेसे साधककी सच्ची प्रार्थनासे सुलभ हो जाती है।

संकट-निवारणार्थ, योगक्षेमार्थ तथा तत्त्वबोधार्थ की गयी प्रार्थनाओंमें तत्त्वबोधार्थ की जानेवाली प्रार्थनाएँ ही विशेष महत्त्वकी हैं। पुराणोंमें ऐसे इतिहास उपलब्ध हैं, जिनसे सिद्ध है कि तत्त्वचिन्तनमें रत साधकके संकट-निवारण और योगक्षेम-वहन परमात्मा स्वयमेव करते हैं।

—प्रेषक—श्रीरंगरूपमलजी लोढ़ा

अविद्या दूर करो

अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोधको पहिरि चोलना कंठ बिषयकी माल॥
महा मोहके नूपुर बाजत निन्दा सब्द रसाल।
भरम भयो मन भयो पखावज चलत कुसंगति चाल॥
तृस्ना नाद करत घट भीतर नाना बिधि दै ताल।
मायाको कटि फेटा बाँध्यो लोभ तिलक दै भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल।
सूरदासकी सबै अविद्या दूर करो नँदलाल॥

अन्तःशरीरकी ह्रास-वृद्धिपर प्रार्थनाका प्रभाव

(लेखक—श्रीस्वामीजी श्रीविज्ञानानन्दजी महाराज)

प्रार्थनामें भगवान्‌के सामने अपनी माँगका चिट्ठा नहीं [illegible]करना चाहिये। सुकरातका कथन है कि 'यदि तुम [illegible]नी आवश्यकताएँ प्रभुको समझाना ही प्रार्थनाका उद्देश्य [illegible]ते हो तो भगवान्‌की भगवत्ताके विषयमें तुम्हारी धारणा [illegible]न्त ही दयनीय है।' सुकरातका अज्ञेयवादी होना तो दूर, वह एक धर्मनिष्ठ मार्गद्रष्टा था और जहाँ उसने प्रार्थनाका [illegible]वाद किया है, वहाँ उसका लक्ष्य प्रार्थनाके नामपर होनेवाली [illegible]ता है। वह यथार्थ और सच्ची पूजाका कभी विरोधी न [illegible]। वह महान् ग्रीक तत्त्ववेत्ता आस्तिकताको नष्ट करना नहीं [illegible]ता था, बल्कि वह श्रद्धाको शुद्ध करना चाहता था।

प्राचीनकालके लोग, चाहे वे यूनानमें रहते हों या [illegible]के तटपर, तान्त्रिकके नामसे लाञ्छित होनेके बावजूद [illegible]नाके प्रशंसक थे। तथापि यह उन महात्माओंका दोष नहीं [illegible] बल्कि उनके आलोचकोंने अपने अज्ञानको छिपानेके लिये [illegible]के ज्ञानको 'तन्त्रवाद' कहकर आक्षेप किया। आश्चर्यकी [illegible] है कि पिछले युगमें वैज्ञानिक महात्मालोग भी अपने [illegible]सामयिक आलोचकोंकी प्रारम्भिक आलोचनाओंसे न बच [illegible]। प्रवञ्चकताको निर्मूल करनेके पहले गैलिलियोसे [illegible]नवर्गतक सारे वैज्ञानिकोंको अभियुक्त बनना पड़ा। अतएव [illegible]ई कारण नहीं है कि प्राचीनकालके प्रार्थना-प्रचारक [illegible] रहते। सरलहृदय प्रार्थनाके अनुयायी अपने मार्गसे [illegible]ऽभर भी नहीं हटे। वे लोग उन धूर्त साथियोंसे अलग [illegible]ते थे, जो एक ओर तो प्रार्थनाकी हँसी उड़ाते थे और [illegible]री ओर दोषदर्शी तथा उपहास करनेवाले विद्रोहियोंके [illegible]में चैनकी वंशी बजाते थे।

और यह वीरतापूर्ण युद्ध निष्फल नहीं हुआ। आज-[illegible]लके उदार वैज्ञानिकोंने प्रार्थना-सम्बन्धी युक्तिसंगत विवरण-[illegible] बहुत मान्यता प्रदान की है। 'नोबेल प्राइज' विजेता [illegible]क्टर कैरेल उन डाक्टरोंके दलके अगुआ हैं, जिन्होंने [illegible]गियोंके आरोग्यलाभके लिये प्रार्थनाकी व्यवस्था की है। [illegible]ारमें प्रथम अणुबम-प्रयोगके पापको मिटानेकी चेष्टा [illegible]ताके श्लोकद्वारा की गयी थी। जान पड़ता है कि वैज्ञानिक-[illegible]ग अपनी बहादुरी श्रीकृष्णको समर्पित करनेकी चेष्टा करते [illegible]। इसी हेतु उन्होंने गीताके श्लोकको चुना होगा। रिच्ची काल्डर (Ritchie Calder) ने 'Science in our lives' (Signet Key-book, p. 183) में लिखा है—'ऐसी सूचना मिली है कि जे. राबर्ट ओपेनहीमरने, जिस समय 'न्यू मेक्सिको' में पहला अणुबमका धड़ाका हुआ था, आँखोंमें चौंधियानेवाली उस चमकमें केवल एक बात सोची थी और वह थी हिंदुओंकी श्रीमद्भगवद्गीता-का एक उद्धरण—

'यदि आकाशमें एक साथ सहस्र सूर्य उदय हो जायँ तो वह प्रकाश परमात्माके तेजके समान होगा।'...'और'...'मैं लोकोंका नाश करनेवाला काल हूँ।' प्रथम अणुबमके यश या अपयशको, एक बोलमें, स्वयं भगवान्‌को समर्पण करनेमें वैज्ञानिकने नम्रताका परिचय दिया है। चाहे जो हो, उसने भगवान्‌को तो याद किया और नये अस्त्रका उत्तरदायित्व ग्रहण करनेके लिये उसकी स्वीकृति चाही।

अब समय आ गया है जब कि प्रार्थनाका मूल्याङ्कन करनेवाले विचारोंमें परिवर्तन होना चाहिये। अन्यथा इसमें पुनः मिलावट और गलत-फहमी आ जायगी। प्रार्थनाकी शुद्धता बनाये रखनेके लिये सर्वोपरि कर्तव्य है—विशुद्ध प्रार्थनाकी रूपरेखा तैयार करना।

प्रार्थनाके अतिरिक्त सारा प्रापञ्चिक काल, जिसमें इच्छा, आवश्यकता, लगन, लालसा और प्रलोभनकी दुर्गन्ध भरी रहती है, स्वयं अपने स्वरूपमें विराजमान रहता है। अच्छी या बुरी, चञ्चल चपलता, बाह्य या आन्तरिक किसी-न-किसी क्रियाकी ओर प्रेरित करती है और इस प्रकारकी सतत परिवर्तनशील नमनीयता वाञ्छनीय है या नहीं—इसका निर्णय उस क्रियाके परिणामसे किया जाता है। महत्त्वाकाङ्क्षी साधक जिस चरम प्रतिरोधका आश्रय लेना चाहता है, उसको भलीभाँति अध्ययन करके उसे त्याग देना चाहिये।

उदाहरणके लिये धमनीमें एक कोषको लीजिये। इसमें प्रतिसेकंड ७ मीटर गतिशीलता है (*Hand-Book of Physiology by Dr. Murray, 36th Edition p. 929*) इस स्थिरताके राज्यमें क्रोधके आक्रमणसे तार-स्पन्दन-क्रम, वेगमें परिवर्तन अथवा दोनोंकी वृद्धि हो जाती है।

अनुमानतः बेचारे संयुक्ताणु-कोष अधिक तेज, अर्थात् प्रति सेकंड ११ मीटर दौड़नेके लिये विवश किये जाते हैं। इस प्रकारकी अस्थायी वेगवृद्धिसे शक्तिका परिमाण कम हो जाता है—इस सहज धारणाका विज्ञानके द्वारा समर्थन होता है। अन्तमें, मनोविकारात्मक परिवर्तनका बार-बारका घात-प्रतिघात एक अभिशाप बन जाता है और वह स्पृहालु मनुष्यके विनाशका कारण बनता है; जिस विपरीत परिणामसे बचनेके लिये वह भागता रहता है, वह उसके माथे पड़ जाता है। खोयी हुई शक्तिकी गणना रक्तचाप, श्वास, मस्तिष्क-सम्बन्धी सम्भावनाएँ तथा दूसरे कुछ रोगोंके रूपमें की जा सकती है।

यदि और भी सुस्पष्ट रीतिसे इस परिस्थितिका रहस्योद्घाटन करना चाहें तो वैकल्पिकरूपमें एक ऐसे मनुष्यकी अवस्थाका अध्ययन करना पड़ेगा, जो ६० वर्षकी अवस्थामें अन्तिम साँस ले रहा हो। उसकी मृत्युके पूर्व एक दिनका अध्ययन कीजिये। मान लीजिये कि प्रार्थनाके समय उसकी नाड़ीकी गति प्रतिमिनट ७० है; जब वह साधारण संकटापन्न दशामें घिरा रहता है तब प्रतिमिनट ७८ तथा अति उद्विग्न दशामें औसत गति प्रतिमिनट ८० हो जाती है। कामके १६ घंटोंमें एक महत्त्वाकाङ्क्षी जादूगरकी अत्यन्त उद्विग्न अवस्थाओंमें, अनिच्छापूर्वक, १९२० बार अधिक, अन्तःशरीरकी ह्रास-वृद्धिपर आघात पड़ते हैं (२ आघात×६० मिनट×१६ घंटे)। यह शक्ति एक दिनमें उसके जीवनको २४ मिनट बढ़ा देनेके लिये पर्याप्त होती और इस प्रकार उसके सम्पूर्ण जीवनमें ८ महीनेसे अधिककी वृद्धि हो जाती। यह ध्यान देने योग्य बात है कि प्रतिमिनट २ के हिसाबसे यह नाड़ीकी गतिकी वृद्धि विशेषतः मनोविकारात्मक प्रक्रियाके साथ बेकार चली जाती है, जिसका उपयोग वास्तविक कर्मठ और शान्त जीवनमें किया जा सकता है।

मधुमक्खीके समान कार्यव्यस्त, कर्म और फुर्तीले परिवारके लोग तत्काल प्रतिवाद करते हुए कहेंगे कि 'हम लंबे और दीर्घकालीन जीवनकी अपेक्षा गतिशील और कर्ममय जीवन अधिक पसंद करते हैं।' यहाँ प्रश्न कुछ महीनों और वर्षोंका नहीं है; बल्कि विचारणीय यह है कि किस प्रकारकी मनोदशा और आदतोंमें मनके सुरको मिलाना है। जिनका शरीर उत्तेजित, कार्यव्यस्त अवस्थामें रहता है, वे आनुषङ्गिक विपत्तिकी उपेक्षा करते हैं। उनके तथाकथित लघु, मधुर तथा साहसिक कर्मोंके पीछे उनके आन्तरिक मनको आलस्य और कठिन निष्क्रियताकी अभूतपूर्व व्यथा भोगनी पड़ती है। इस विषयपर जो अभी हालमें पुस्तक लिखी गयी है, उसमें स्पष्टरूपसे उनको चेतावनी दी गयी है, जो सस्ते सौदेके रूपमें आनन्दमय स्वर्गकी प्राप्तिकी आशा लगाये बैठे हैं।

प्रार्थना निश्चयपूर्वक आत्मनिर्मित अजगरके आह्वानका सामना करनेका श्रेष्ठ साधन है। अन्तिम भयानक घड़ीके विषयमें पहलेसे ही निश्चय कर लेना श्रेयस्कर है।

प्रार्थनाके रूप-गुणपर विचार करनेके पहले यह महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है कि हमारे अन्तःशरीरकी ह्रास-वृद्धि कैसे होती है, इसके ऊपर भी ध्यानपूर्वक विचार कर लिया जाय। किसी भी तार्किक अध्यात्मवादीको अब इस बातमें संदेह नहीं रह गया है कि चिन्तनप्रक्रियाका अन्तःशरीरकी ह्रास-वृद्धिपर गहरा असर पड़ता है। एक अमेरिकन वैज्ञानिक पुस्तक—'Physics and Chemistry of Life' में साइमन (Simon) और शुस्टर (Schuster) महोदयने अन्तर्जगत्के परिवर्तनोंको ग्राफके द्वारा समझाया है। वे कहते हैं कि 'मनुष्य-शरीरमें प्रति सेकंड लगभग ३० लाख लाल रक्तकोष नष्ट होते जाते हैं; दूसरी ओर देखनेसे ३० लाख लाल रक्तकोष प्रतिसेकंड उत्पन्न होते हैं; क्योंकि शरीर निरन्तर संचित राशिको आह्वान करता रहता है, जिससे कोषोंकी संख्यामें संतुलन बना रहे। करीब तीन महीनेमें सारे रक्तकोष नये हो जाते हैं और रक्तके जीवित अणुओंमें जीवन और मृत्युका चक्र कहीं अधिक गतिसे चलता रहता है। जिस हिसाबसे ठोस टिस्सुओंमें तथा प्रवहणशील रक्तमें परिवर्तन होता है, उतनी ही तीव्र गतिसे अणुओंमें भी परिवर्तन होता रहता है। रक्षित मेद, जो एक समय माना जाता था कि भोजनको सुरक्षित रखनेका कोठार है, वस्तुतः वह क्रिसमसकी भीड़-भाड़में विभागीय भंडारके समान है। वह मेद भी रासायनिक क्रियामें सीझता है, उसका गलना और संश्लिष्ट होना पारस्परिक इतना संतुलित होता है कि कुछ ही महीनोंमें पूर्णतः नये मेदका भंडार तैयार हो जाता है। यही प्रक्रिया टिस्सुओं, स्नायु-रज्जुओं, स्नायुजाल, रक्तनलिकाकी दीवालों तथा पेशियोंमें भी होती है। यहाँतक कि अस्थियोंमें भी द्रुत परिवर्तन होते हैं, जैसे ही अन्तःशरीरकी ह्रास-वृद्धिकी सतत प्रक्रियामें संयुक्त अणुओंकी शृङ्खलाएँ टूटती और पुनः जुड़ती हैं।

सारांश यह है कि हमारे शारीरिक ढाँचेका प्रत्येक क्षुद्रतम अंश प्रत्येक सेकंडमें ज्यों-का-त्यों नहीं रहता और प्रत्येक ९० दिनमें उनमेंसे प्रत्येक अंश सुदीप्त हो उठता है।

जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त, यह त्रैमासिक परिवर्तन शरीरके सारे ढाँचेको पुनः नया बनानेमें मनुष्यको एक अवसर प्रदान करता है। प्रकृतिके इस वरदानका मनुष्य अपव्यय करता है, जब वह अपने अहंकारके वश होकर उसके पाञ्चभौतिक प्रतिरूपको क्षति पहुँचाता है और तीन महीनेके अन्तमें, मनोवेगात्मक उपद्रवके नामसे पहला साँचा जब दूसरे रूपमें आता है तो वह उस अंशतक विकृत हो जाता है, जिस अंशतक मनुष्य उसको प्रभावित करता है। मेरे इस कथनका समर्थन प्रो० अम्बरक्रोम्ब (Ambercrombe) के परीक्षणोंसे हो जाता है।

इस दोषावह ह्रासकी पूर्तिके लिये प्रतिदिन शान्तिसे क मिनटकी प्रार्थना करते रहनेसे १८० से १८६ दिनमें नुकूल परिवर्तन हो सकता है। अज्ञेयवादसे अभिभूत होकर नुष्य इस एक मिनटकी अनुभूतिके चमत्कारपर ध्यान नहीं ा। जिसने ठीक तौरपर इसका अनुभव किया है, वह ीकार करता है कि प्रार्थनाका एक मिनट अग्रिम १८६ नोंमें दिनभरकी क्रियाको विशुद्ध कर देता है। ज्ञान और ्वासकी दीप्ति चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो, उसमें ्नेकी पर्याप्त क्षमता होती है। जब एक सेकंडके अंशमें न्तःशरीरकी ह्रास-वृद्धिमें हस्तक्षेप करनेके लिये जीवाणु श करता है और लगभग १८ मिनटमें उसपर प्रभाव ाता है, तो उसको हम 'रोग' कहते हैं। आश्चर्यकी बात है कि ७ लेखोंके अनुसार इन्द्रियोंके शिक्षणमें ६ महीनेका समय जाता है। (मैत्र्युपनिषद् ६। २८; महाभारत, अनुगीता । ६६, १९वें अध्यायके अन्तमें)

एतावदेव वक्तव्यं नातो भूयोऽस्ति किंचन।
षण्मासान्नित्ययुक्तस्य योगः पार्थ प्रवर्तते॥

(१९। ६६)

यदि अन्तःशरीरकी ह्रास-वृद्धिमें होनेवाले परिवर्तनके की समीक्षा करें तो यह अवाध्योपक्रम और भी स्पष्ट हो ागा। शरीरमें एक विषाक्त आक्रमण होनेपर यह गुप्त ा प्रकट हो जाती है। जब कभी बाहरी जीवाणुके द्वारा ान्त होनेपर शरीरकी प्राकृतिक रक्षाके लिये रोगोत्पादक ाणुओंके विनाशक तत्त्व(Antibody) की सृष्टि करनी ये। प्राणीविज्ञानके शब्दकोषमें Antibody की ्या इस प्रकार मिलती है—

जब किसी प्राणीमें उत्पन्न हुआ प्रोटीन एक प्रकारके द्रव्य ऐंटीजेनसे, जिसके टिस्सू उससे बिल्कुल विभिन्न ह हैं, मिलता है तो रोगोत्पादक जीवाणुओंके विनाश तत्त्व अर्थात् ऐंटीबडी (Antibody) का ऐंटीजे (Antigen) के साथ रासायनिक मिश्रण होता है ऐंटीजेन अधिकांशमें प्रोटीन या कार्बोहाइड्रेट होता है औ प्रत्येक विशेष ऐंटीजेन अपने ढंगके एक या अने रोगोत्पादक जीवाणुओंके विनाशक तत्त्वों (Antibodies को, जो अन्य किसी Antigen से नहीं मिले होते, उत्प करनेमें प्रेरक बनता है। रोगोत्पादक जीवाणुओंके विनाश तत्त्वों (Antibodies) के निर्माणके महत्त्वका कारण यह है कि ये रक्तशोषक जीव, विशेषतः बैक्टिरिया, जीवाणुओं और संक्रामक रोगोत्पादक कीटाणुओंके द्वारा रीढ़ या बेरीढ़वाले प्राणियोंके ऊपर होनेवाले आक्रमणको रोकनेके लिये रक्षणयन्त्रका काम करते हैं। ये रोगोत्पादक-जीवाणु-विनाशक तत्त्व (Antibodies) पौधोंमें नहीं होते। जब रक्तशोषक जीव या उनके विषाक्त परिणाम टिस्सुओंमें प्रवेश करते हैं तो प्राणीके भीतर Antibodies की सृष्टि होती है, जो चक्कर लगाते हैं और शरीरके भीतर द्रव-अंशमें घुल जाते हैं। रक्तशोषक कीटाणु (Parasites) के द्वारा उत्पन्न अथवा उनके अङ्गके रूपमें निर्मित Antigens के द्वारा Antibody के उत्पादनमें प्रेरणा मिलती है। एक विशिष्ट Parasite में कतिपय Antigens होते हैं, जिनमें कुछ विलक्षण जाति या प्रकृतिके होते हैं और तदनुरूप सजातीय Antibody के विभिन्न किस्मोंके उत्पादक बनते हैं। कुछ परिस्थितियोंमें विभिन्न रोगोत्पादक कीटाणुओं (Pathogens) में एक ही प्रकारके Antigens होते हैं—जैसे टीकासे उत्पन्न कीटाणु और चेचकके कीटाणु। Antigens के साथ Antibody के मिश्रणसे रक्तशोषक कीटाणु (Parasites) मर जाते हैं या निष्क्रिय हो जाते हैं, अथवा Phagocytes के लिये अधिक उपयुक्त बन जाते हैं या उनके विषको प्रभावहीन कर देते हैं। अभी यह निश्चय नहीं हो सका है कि शरीरमें किस स्थानपर Antibodies बनते हैं (सम्भवतः macrophages में बनते होंगे); परंतु एक बार उत्पन्न हो जानेपर वे प्रायः रक्तमें पाये जाते हैं और Antigens के गायब होनेके बाद बहुत देरतक बने रह सकते हैं और उसी प्रकारके रक्तशोषक कीटाणुओं (Parasites) के द्वारा नयी रीतिसे संक्रान्त होनेपर रोगमुक्ति प्रदान करने

अगस्त्यका समुद्र-पान

नाम लेय मुनि कर गये सब सागर-जल-पान

हैं। Antibodies के कारण ही टीका या संचारणसे रोगमुक्ति होती है। प्रायः कोई भी अन्य प्रोटीन जब अन्तःसंचारित (inject) किया जाता है, तब रक्तशोषक कीटाणुओं (Parasites) से असम्बद्ध कोई भी द्रव्य Antigens का काम कर सकता है। तथा प्रतिक्रियाका वैशिष्ट्य विभिन्न प्रकारके प्रोटीनके लिये अद्भुत चेतनात्मक परीक्षणका काम करता है।

इस स्थितिमें Antibody के उत्पन्न होनेके स्थानकी अनिश्चितताके महत्त्वका संकेत आसानीसे 'मन' को सामने लाता है। अन्ततोगत्वा 'हेतु' या शरीरस्थ गति, द्रव्य-सम्बन्धी आइन्स्टाइनके समीकरण और स्थितिके नियमके अन्तिम अनुमानके विरुद्ध, पदार्थके ऊपर आरोपित नहीं की जा सकती। वैसी दशामें, स्पष्ट यह है कि मन (अर्थात् अद्रव्य) इन Antibodies का क्रियात्मक साधन बन जाता है। अब भी यदि किसीको 'मन'की क्रियाके विषयमें संदेह हो तो उसे रूसमें घटित एक आधुनिक घटनाकी जानकारी करनी चाहिये, जिसे 'Cure Yourself' नामक पुस्तकमें अध्याय १४ पृ० ९ में उद्धृत किया गया है। 'Soviet Union' की सं० ११८ में (जो नवम्बर १९५९ ई० में प्रकाशित हुई थी) ५२वें पृष्ठपर 'Injection against Burn' शीर्षक लेखमें निम्नलिखित समाचार छपा है—

'Sixth International Blood Transfusion Conference' में जो संयुक्त राष्ट्र अमरीकामें हुई थी, एक सोवियट वैज्ञानिक, श्रीनिकोलाई फ्योडोरोवने 'जलेपर औषध-प्रयोग' के विषयमें अपनी रिपोर्ट पढ़कर विशेषज्ञोंको चकित कर दिया था। असाधारणरूपसे जल जानेके कारण व्यथित मनुष्यका रोगनिदान इतना अनिश्चित होता है कि उसके लिये ओषधि प्रायः हित करनेमें समर्थ नहीं होती। सोवियट डाक्टरोंकी परीक्षासे जान पड़ा कि रक्त और टिस्सूमें, ऐसी दशामें, विषाक्त स्वभाववाले विजातीय प्रोटीन निर्मित होते हैं और शरीरस्थ यन्त्र इसकी प्रतिक्रिया Antibodies के उत्पादनके द्वारा करते हैं। एक दिन मास्कोकी रक्त-संचारणशाला (Moscow Institute of Blood Transfusion) में एक युवक लाया गया, जिसका तीन-चौथाई शरीरका भाग अग्निकी दुर्घटनामें बुरी तरह जल गया था और उसके जीनेकी आशा बिल्कुल ही नहीं थी। उसके शरीरमें, साधारण रक्त-संचारण करनेके स्थानमें, एक दूसरे आगसे जले रोगीके शरीरसे, जो कुछ दिन पहले नीरोग हुआ था, रक्त लेकर संचारण किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि रोगीकी हालतमें तुरंत सुधार हुआ। बादमें सैकड़ों इस प्रकारके रोगियोंपर यह प्रयोग किया गया और वैसा ही विलक्षण प्रभाव देखनेमें आया। यहाँ प्रश्न यह होता है कि प्रथम रोगीके मन (जीनेके संकल्प) के सिवा कौन-सा दूसरा तत्त्व था, जिसके द्वारा 'जलन' की Antibody स्वयं उसकी रक्षा करनेके लिये उत्पन्न हो गयी। (यह बिल्कुल ही अलग बात है कि मनमें 'जीनेका संकल्प' पूर्णतः कार्य-कारणके नियमसे मेल खाता है। प्रत्येक वस्तु कार्य-कारणके नियमसे बँधी है।) स्वयं मुझको मनःशक्तिकी इस क्षमताकी जाँच करनेका अवसर मिला है। जब मृत्यु या किसी रोगकी आशङ्का रही और मनुष्य उसका प्रत्यक्षतः सामना करनेसे हिचकता रहा, तब मैंने उस आदमीसे इस ढंगसे उसकी भवितव्यताके बारेमें बातें कीं कि वह अपने भावोंसे विद्रोह करके कह उठा—'देखें, यह कैसे घटित होता है ?' उन्होंने दृढ़ संकल्प करके, कम-से-कम, पूर्वनिश्चित समय-तकके लिये उस भवितव्यताका सामना किया। (इस प्रकारकी परीक्षा भ्रान्त होनेका खतरा उठाकर भी की जानी चाहिये।) यह केवल मानसिक शक्तिका निर्देश करनेके लिये ही यहाँ उद्धृत किया गया है। यह प्रसिद्ध ही है कि द्वितीय महासमरमें, बमसे आहत ब्रिटिश लोगोंने अपने स्वास्थ्यके दुर्गकी रक्षा की थी, यद्यपि उनके मन (संकल्प) को छोड़कर सब कुछ विनाशके कगारेपर खड़ा था। मेरे परीक्षणके विषय और ब्रिटिश जनता, दोनोंके लिये, उपर्युक्त तर्क-वितर्कमें, पश्चाद्गामी प्रभाव तो अनिवार्य है। परंतु ये तथ्य Antibody सिद्धान्तमें पूर्णतः सामान्यरूपसे मिलते हैं तथा जैसा कि हम आगे दिखलायेंगे, प्रार्थनामें स्थायी गुण होते हैं। इस उद्धरण और तर्कको सामने रखकर, बिना किसी तर्ककी आशङ्कासे, दो परिणाम निकाले जा सकते हैं—(१) बाहरसे घुसे हुए पीड़ाके कारणोंके विरोधी Antibodies निर्मित हो सकते हैं (जिनका निश्चयपूर्वक सजीव तत्त्व होना आवश्यक नहीं है, किंतु जलनेकी व्यथा होनी चाहिये।) (२) इन Antibodies की सृजनशक्ति एक अन्तः-अमूर्त्तमानसके साथ सज्जित होती है।

यदि हानिकारक जीवाणु अथवा कोई 'अशुभ' द्रव्य शरीरके भीतर स्वयं स्वल्पकालमें प्रसरित होता है, तो कोई

कारण नहीं दीखता कि 'शुभ' स्वयं प्रसरित होनेसे अपने आपको क्यों वञ्चित रक्खें? एक प्रेममयी प्रार्थनाका एक क्षण पवित्र विचारके रूपमें, मनुष्यके सारे ढाँचेको प्रभावित करता है। एक दृढ़ संकल्पमय क्षण तदुपयुक्त कर्मोंके साथ सारे सत्यान्वेषी साधकोंके लिये महत्त्वपूर्ण होता है।

इस पृष्ठभूमिमें प्रार्थना एक उच्चकोटिकी भूमिका अदा करती है। प्रार्थनाके लिये शान्तिका होना आवश्यक है। गतिके प्रतिबन्धसे, निश्चयपूर्वक शक्ति प्राप्त होती है तथापि व्यर्थ अपव्यय रोका जाता है। प्रार्थनाका प्रारम्भिक कार्य है—दृष्टिकोणको बदलना, निरन्तर निकलते हुए प्रवाहको रोकना तथा एक कोषसे दूसरे कोषमें क्षण-क्षण मनकी परिवर्तित भावनाको प्रेरित करना। प्रायः मेरी एक मिनटके मौनकी सिफारिशको प्रारम्भिक साधक संशयकी दृष्टिसे देखता है। उसको आश्चर्य होता है कि १८६ दिनमें मामूली एक-एक मिनटके तुच्छ मौनसे क्या परिणाम निकल सकता है। परंतु यदि वह पूरे धैर्यके साथ उस एक मिनटके प्रोग्रामपर डटा रहता है तो इससे वह नयी उन्नतिके पथपर बढ़ता है, इसका उसे स्वयं अनुभव होने लगता है। इस नये सिद्धान्तके अनुसार प्रत्येक सेकंडमें ३०००००० कोष प्रभावित होते हैं और मिनटभरमें १८०००००० कोष। डा० फ्रिडलैंड (Dr. Fridland) की गणनाके अनुसार यह हिसाब ४० गुना अधिक होता है। किसी भी हालतमें ये नन्हे, प्रयोजनवश शिक्षित सैनिक गुणकी दृष्टिसे सारे अशिक्षित कोषोंके पिण्डसे बहुत श्रेष्ठ हैं। धीरे-धीरे और चुपकेसे शारीरिक साम्राज्यमें नयी शक्ति प्रदान की जाती है और वह शीघ्र प्रधान पद ग्रहण कर लेती है। यह प्रधानता किसी भी अर्थमें वैसी निरङ्कुश वंशावलीका रूप नहीं धारण करती। यह तो एक नये ढंगसे मनोबलको प्रवर्तित करनेकी शक्ति है, जो अपने निजी दोषोंके निवारणके लिये कृतसंकल्प होती है। मन पवित्रताकी शक्ति प्राप्त करता है, परंतु यह डींग नहीं मारता। इसका मौन ही सब कुछ बतला देता है। मौन प्रार्थनाकी शक्ति देखकर ही कबीरने कहा था—'क्यों शोर मचाते हो? क्या खुदा बहरा हो गया है?'

प्रार्थनासे दिव्य और शाश्वत कामनाओंकी पूर्ति होती है। अन्तिम विश्लेषणमें, प्रार्थनाकी सर्वश्रेष्ठ अवस्था वह होती है, जिसमें साधक भूल जाता है कि वह प्रार्थना कर रहा है। यह व्याख्या करनेकी अपेक्षा कहीं अधिक अनुभवका विषय है। नम्रतापूर्वक एक मिनटकी प्रार्थनासे प्रारम्भ करो और इसको स्वभावतः अपने-आप बढ़ने दो।

श्रीप्रेमलता-वचनामृतधारा—नाम-माहात्म्य

[२६वें वर्षके कल्याण 'भक्त-चरिताङ्क' पृष्ठ-संख्या ७२३ में जगद्गुरु परमहंस स्वा० श्रीसियालालशरणजी महाराज श्रीप्रेमलताजीका संक्षिप्त चरित्र प्रकाशित हो चुका है एवं यह भी ज्ञात कराया गया है कि इनका बृहद् जीवनचरित्र स्वा० श्रीसियारघुनाथशरणजी 'संकटमोचन काशी' निवासीके द्वारा प्रकाशित हुआ है; किंतु तबसे आजतक 'कल्याण'में उनके अमृतमय सदुपदेशोंका प्रकाशन नहीं हो सका, एतदर्थ युगल-नाम-भजन-सम्बन्धी सुललित पद्योंका संकलन यहाँपर किया जा रहा है—संकलनकर्ता प्रेषक]

नाम रटत कछु कौन प्रयासा, केवल जीभ हिलाना है।
लाभ अमित अति, अकथ, अनूपम, गावत वेद-पुराना है॥
नहिं कोउ धर्म-कर्म, साधन-सिधि, तेहि सम ज्ञान न ध्याना है।
'प्रेमलता' ते धन्य, नाम जिन सब विधि सर्वस माना है॥ १॥

कुटिल कर्मकी रेख कठिन जो, नाम रटे मिट जाती है।
अनहोनी ह्वै जात, भलाई दसहु दिसि दरसाती है॥
मृत्यु मातु सम होइ नाम बल, जो सब जगको खाती है।
'प्रेमलता' सो धन्य संत, जेहि नाम-सुरटना भाती है॥ २॥

कोटिन विघ्न विलाय नाम-धुनि सुनि कर दे जाते टाला।
पावक शीतल होइ, हलाहल करै नाम बल प्रतिपाला॥
अरिहु मित्रता करै, डरै तेहि बाघ-भालु, विच्छू-व्याला।
'प्रेमलता' जो सदा नामकी फेरा करता है माला॥ ३॥

रामरूप धनु-बाण धारि कर, रक्षामें नित रहते हैं।
शिव त्रिशूल धरि, ब्रह्म दण्डकर, विष्णु चक्र नित लहते हैं॥
नारायण धरि गदा कौमुदी, जापकके रिपु दहते हैं।
'प्रेमलता' हनुमान मनोरथ पुरवहिं, जो कुछ चहते हैं॥ ४॥

सियजू भोजन देहिं, शक्ति सब करैं आय सिरपर छाया।
दानव-देव, भूत-किंनर, पशु-पक्षी, जो जगमें जाया॥
नाम-प्रताप विषमता परिहरि, करत सकल निसिदिन दाया।
'प्रेमलता' तेहि भजहिं न जड़मति पाइ अनूपम नर-काया॥ ५॥

त्रिगुणमयी माया जो प्रभुकी, जग कहँ नाच नचावति है।
सृजि पालति, संहरति लोक पुनि, रुख लखि बहुरि नसावति है॥
ज्ञानी, सूर, मुनीसन्हके मन छन महँ पकरि डुलावति है।
'प्रेमलता' सोइ नाम-जापकनि शिशु सम लाड़ लड़ावति है॥ ६॥

नाम-प्रभाव अपार बखानत, रामहुँ हिये लजाते हैं।
पतितहुँ पावन होत रटत जेहि, बिनु श्रम पर-पद पाते हैं॥
यवन गयो प्रभु-धाम नाम जपि, व्याधउ ब्रह्म कहाते हैं।
'प्रेमलता' ते धन्य लोकमें, जे सिय-राम सुगाते हैं॥ ७॥

जितना रटिहौ नाम, अन्तमें उतना ही सुख पाओगे।
जो न मानिहौ सीख मोह बस, तो पीछे पछताओगे॥
रटे बिना सिय-राम नामको दर-दर धक्का खाओगे।
'प्रेमलता' सिय-राम भजन बिनु, यमपुर बाँधे जाओगे॥ ८॥

रटो-रटो सियराम नाम अब, नाहक देर लगाओ जी।
लोक-लाज कुलकी मर्यादा, नाता-नेह बहाओ जी॥
कादरपन तजि कपट-चातुरी, नित नव प्रेम बढ़ाओ जी।
'प्रेमलता' धरि मनुज-देहको, ताहि न व्यर्थ नसाओ जी॥ ९॥

श्रीसिय-राम-नामकी महिमा बहु बिधि पढ़ते-सुनते हौ।
रटते काहे न खूब निरन्तर, बातें क्योंकर गढ़ते हौ॥
हटते हौ क्यों, भजन पन्थमें आगे क्यों नहिं बढ़ते हौ।
'प्रेमलता' सिय-राम-भजन-पथ धाय न काहे चढ़ते हौ॥१०॥

(हितोपदेशशतक ६८—७७)

सर्वसाधनोपरि नाम-भजन-सिद्धान्त—

जप, तप, संयम, नेम अपारन किये कठिन व्रत-तीरथ-धाम।
नृत्य, गान, विज्ञान, ध्यान बहु करि देखे अभ्यास तमाम॥
दान, धर्म, शुभ कर्म कमाई करि-करि बितयो जन्म ललाम।
'प्रेमलता' पै सब बिधि पाये सब ते अच्छे 'जय सिय-राम'॥

(सियारामनामाष्टक, पद्य सं० १)

भगवन्नाम-स्मरण तथा प्रार्थनापर देशरत्नके विचार

(बापूका शक्ति-स्रोत—जन-जनका आदर्श)

(लेखक—स्व० डा० राजेन्द्रप्रसादजी)

[गांधीजीके साथी एवं अग्रगण्य अनुयायी स्व० राजेन्द्रप्रसादजीने इन पंक्तियोंमें उनकी शक्तिका रहस्य प्रकट किया है । वह रहस्य सामान्य जनताका मानस-मन्त्र बन सकता है, वह कम्पित अव्यवस्थित राष्ट्र-पोतको उचित दिशामें ले जा सकता है । केवल हमें इस रहस्यको समझनेकी देर है ।—सम्पादक]

गांधीजीने राष्ट्रको अनेक शिक्षाएँ दीं और उसे सशक्त बनाया । किंतु उन्होंने यह शक्ति प्राप्त कहाँसे की ? इस अप्रतिहत शक्तिका उत्स क्या था, जिसने भारत ही नहीं, विश्वको भी अनुप्राणित किया ?

बापूका विश्वास था कि उनकी समस्त शक्ति प्रभुकी देन है । उन्होंने बार-बार इस आस्थाको भाषणों और लेखोंद्वारा प्रकट किया ।

उन्हें यह दैवी शक्ति पवित्र राम-नामसे मिली थी । उनकी समस्त उपलब्धियाँ इसी शक्तिसे अनुप्रेरित थीं । बलिदानके अन्तिम क्षणोंमें भी उनकी जिह्वापर 'हे राम' का मन्त्र था ।

क्या तुलसीदासने नहीं कहा—

जनम जनम मुनि जतन कराहीं । अंत राम कहि आवत नाहीं ॥

कई जन्मोंतक वर्षोंकी एकनिष्ठ तपस्या करनेके बाद भी मुनिजन अन्तिम क्षणोंमें प्रभुको भूल जाते हैं ।

किंतु यदि विश्व-प्रयाणकी वेलामें भी प्रभु-नाम-स्मरण रहे तो, निश्चय ही, यह उस तपस्वीके सत्कर्मोंका सुफल है ।

गांधीजीका समस्त जीवन प्रभुको अर्पित था । उन्होंने अपनी समस्त शक्ति मानवताके अभ्युत्थानमें लगा दी । जब अन्तिम वेला आयी, तब ओठोंपर प्रभुकी टेर लिये ही वे उसमें समाहित होने चल दिये ।

आज हमारा झुकाव अनास्थाकी ओर है; हम भगवान्‌का नाम लेनेसे डरते हैं ।

डरें नहीं भी तो कम-से-कम शरमाते अवश्य हैं ।

यदि भगवान्‌का नाम लिया भी तो हम उसे पूर्ण औपचारिकरूपसे लेते हैं ।

हमारे अंदर हृदयकी उस निष्ठाका अभाव होता जा रहा है, जिससे गांधीजी भगवन्नामका उच्चारण चाहते थे ।

इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि हम शुद्ध परिनिष्ठित हृदयसे भगवन्नामोच्चारण करें तो प्रभुको बिसार नहीं सकते ।

तनिक उन भयंकर विपत्ति-घटाओंको देखिये, जो हमपर मँडरा रही हैं, और जो केवल इसी देशपर नहीं, समस्त विश्वके आकाशपर छायी जा रही हैं ।

इन समस्त आपदाओंका कारण यह है कि हम स्वयंसे अनभिज्ञ हैं और दूसरोंको भी नहीं जानते ।

हमें प्रतीति नहीं है कि प्रभु एक है और वह सभी प्राणियोंमें है ।

यदि हमें इस महान् सत्यका साक्षात्कार होता तो विश्वमें अनबन न होती, राष्ट्रोंके मध्य विनाशकारी संग्राम न होते ।

इसी सत्यको बिसारनेपर हम परस्पर कलह और युद्ध रचाते हैं ।

बाह्य नेत्रोंसे देखनेपर तो लगता है कि एक व्यक्ति दूसरेको शरीर-क्षति पहुँचा रहा है; किंतु वस्तुतः क्षत व्यक्तिके नाशमें उसके संस्कार ही कारणीभूत हैं । अथवा यों कहिये कि क्षत व्यक्ति अपने पूर्वजन्मोंके दुष्प्रभाव और अपने कर्म या अतीत कृत्योंका फल भोगता है ।

गांधीजीकी आकाङ्क्षा थी कि प्रत्येक व्यक्ति प्रभुको जाने और उसका स्मरण करे । वह जन-जनके जीवनका उन्नयन करेगा और उन्हें पूत बनायेगा । इस स्थितिमें व्यक्तिको किसी वस्तुकी चिन्ता नहीं रहेगी ।

जब हम गांधीजीके विषयमें चिन्तन या वार्ता करते हैं, तब स्वभावतः हमें स्मरण हो आता है कि उन्होंने किस प्रकार हमें जगाया, हमारा उत्थान किया ।

उन्होंने जो कुछ किया, केवल हमारे योगक्षेम हेतु नहीं किया; उनकी दृष्टिमें समस्त मानवताका कल्याण था।

किंतु जब हम सोचते हैं कि वे हमारी पवित्र भूमिके प्रसाद थे तो हमें लगता है कि उनके पदचिह्नोंपर चलने और उनकी शिक्षाओंसे अपने तथा दूसरोंके शुद्धीकरणका दायित्व हमपर अधिक है।

महात्माजीने प्रभु-प्रार्थनाकी, प्रभुस्मरणकी सनातन पद्धतिका पुनः प्रचार किया। यह हमारी प्राचीन सांस्कृतिक निधि थी, किंतु हम इसे भूलते जा रहे थे।

बृहत् प्रार्थनाएँ आयोजितकर हम परस्पर शक्ति और उत्साह तथा ऊर्जा प्राप्त कर सकते हैं।

यदि हम किसी रूपमें प्रभु-प्रार्थनाकी यह प्रणाली चलाते रहे, तो मुझे विश्वास है कि यह शक्ति हमारे और देशके कल्याण-पथको आलोकित करेगी।

[रूपान्तरकार—श्रीनरेश मिश्र]
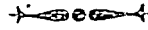
उपासना-प्रार्थना

(लेखक—श्रीमो० क० गांधी)

[प्रेषक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट]

उपासनाका अर्थ है—परमेश्वरके पास बैठना। बड़ोंके पास बैठनेका अर्थ है—तद्रूप बनना। परमेश्वर अर्थात् सत्य। अतएव सत्यरूप बनना 'उपासना' है। सत्यरूप बननेकी तीव्र इच्छा करना, उसके लिये भगवान्से विनती करना 'प्रार्थना' है।

सत्यरूप बननेका अर्थ है—निर्विकार बनना। निर्विकारी बननेके लिये विकारी विचार भी न उठने देना। मन कभी खाली नहीं रहता। वह या तो विकारी विचारोंमें रमेगा अथवा सत्यके प्रति बढ़ेगा। राम और कृष्ण आदि सत्यके मूर्त्तरूप हैं। इसलिये उनका ही स्मरण नाम-स्मरण है। यदि यह स्मरण हृदयसे हो तो स्मरण करनेवाला तद्रूप बनकर ही रहे।

उपासना बुद्धिका नहीं, श्रद्धाका विषय है। उपासना करते-करते शुद्धता आती ही है—ऐसी श्रद्धा रखकर नित्य उपासना करनी ही चाहिये। जिस प्रकार अन्न आदिसे शरीरका पोषण होता है, उसी प्रकार उपासनासे आत्मा पुष्ट होती है।

सत्यरूप ईश्वर सबमें बसा हुआ है। इसलिये जीवमात्रके प्रति एकता सिद्ध करना जरूरी है। इस कारण उपासना व्यक्तिगत और सामुदायिक भी हो सकती है।

जीवमात्रके साथ ऐक्य सिद्ध करनेका अर्थ है—उसकी सेवा करना। अतएव निष्काम सेवा भी उपासना ही मानी जायगी। ('गाँधी-विचार-दोहन'से)

प्रार्थना—जीवनका सम्बल

प्रार्थनाने मेरे जीवनकी रक्षा की है। उसके बिना मैं कभीका पागल हो जाता। मेरी आत्मकथा बतायेगी कि मुझे भी कटु-से-कटु सार्वजनिक और व्यक्तिगत अनुभवोंका काफी हिस्सा मिला है। उनसे मैं थोड़ी देरके लिये निराशामें डूब गया, परंतु मुझे छुटकारा मिला तो प्रार्थनाके कारण ही मिला।

मैं आपको यह बता दूँ कि जिस अर्थमें सत्य मेरे जीवनका अङ्ग रहा है, उस अर्थमें प्रार्थना मेरे जीवनका अङ्ग नहीं रही है। वह तो केवल आवश्यकतावश आयी; क्योंकि मैं ऐसी स्थितिमें पड़ गया, जब प्रार्थनाके बिना सुखी नहीं हो सकता था। ईश्वरमें मेरी श्रद्धा जितनी बढ़ती गयी, उतनी ही प्रार्थनाकी लगन अदम्य होती गयी। उसके बिना जीवन मुझे निस्तेज और सूना प्रतीत होता था।

मैंने दक्षिण अफ्रीकामें ईसाई-प्रार्थनामें भाग लिया था; लेकिन वह मेरे दिलको पकड़ नहीं सकी। मैं प्रार्थनामें उनके साथ शरीक नहीं हो सका। वे ईश्वरसे भिक्षा माँगते थे; परंतु मैं नहीं माँग सका। मैं बुरी तरह असफल हुआ।

शुरूमें मेरा ईश्वर और प्रार्थनामें विश्वास नहीं था और जीवनमें बहुत कालतक मुझे ऐसा महसूस नहीं हुआ कि किसी चीजकी कमी है। लेकिन एक समय ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे शरीरके लिये अन्न अनिवार्य है, वैसे ही आत्माके लिये प्रार्थना अनिवार्य है। असलमें शरीरके लिये

अन्न इतना जरूरी नहीं है, जितनी आत्माके लिये प्रार्थना है; क्योंकि शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये निराहार रहना अकसर जरूरी होता है; परंतु प्रार्थनाका उपवास तो हो ही नहीं सकता। प्रार्थनामें सम्भवतः कभी अति हो ही नहीं सकती।

करोड़ों हिंदू, मुसलमान और ईसाई एकमात्र प्रार्थनाके द्वारा ही जीवनमें आश्वासन प्राप्त करते हैं। या तो आप उन्हें झूठा कहिये या आत्म-प्रवञ्चनामें फँसे हुए लोग कहिये। अगर इस झूठने ही मुझे जीवनका मुख्य आधार दिया हो, जिसके बिना मैं एक क्षण भी नहीं जी सकता, तो सत्य-शोधकके नाते मैं कहूँगा कि यह 'झूठ' मेरे लिये आकर्षण-की एक वस्तु है।

राजनीतिक क्षितिजपर मेरे सामने निराशा छायी रहनेपर भी मैंने कभी अपनी शान्ति नहीं खोयी। सच तो यह है कि मेरी शान्तिसे ईर्ष्या करनेवाले लोग मैंने देखे हैं। मैं कहता हूँ कि वह शान्ति प्रार्थनासे आती है। मैं विद्वान् आदमी नहीं हूँ, परंतु मैं प्रार्थनापरायण मनुष्य होनेका नम्रतापूर्वक दावा करता हूँ।

मुझे इसकी परवा नहीं कि प्रार्थनाका स्वरूप क्या हो! इस बारेमें हर एकको अपना नियम खुद ही बनाना चाहिये। परंतु कुछ सुनिश्चित मार्ग हैं और प्राचीन गुरुओंके चलाये हुए इन मार्गोंपर चलना सुरक्षित है।

प्रार्थनाके पक्षमें मैंने अपनी निजी गवाही दे दी। अब हर एक आदमी कोशिश करके देख ले कि रोज प्रार्थना करके वह अपने जीवनमें कोई नयी चीज जोड़ता है या नहीं।*

'हम सब एक पिताके बालक' से

प्रार्थना

...प्रार्थना करना याचना करना नहीं, वह तो आत्माकी पुकार है। हम जब अपनी असमर्थता खूब समझ लेते हैं और सब कुछ छोड़कर ईश्वरपर भरोसा करते हैं, तो उसी भावनाका फल 'प्रार्थना' है।

प्रार्थना—हृदयकी वस्तु

...स्तुति, उपासना, प्रार्थना अन्धविश्वास नहीं, बल्कि उतनी अथवा उससे भी अधिक सच बातें हैं, जितना कि हम खाते हैं, पीते हैं, चलते हैं, बैठते हैं—ये सच हैं। बल्कि यों भी कहनेमें अत्युक्ति नहीं कि यही एकमात्र सच है; दूसरी सब बातें झूठ हैं—मिथ्या हैं।

ऐसी उपासना, ऐसी प्रार्थना वाणीका वैभव नहीं है। उसका मूल कण्ठ नहीं, हृदय है। अतएव यदि हम हृदयको निर्मल बना लें, उसके तारोंका सुर मिला लें तो उसमेंसे जो सुर निकलता है, वह गगनगामी हो जाता है। उसके लिये जीभकी आवश्यकता नहीं। यह तो स्वभावतः ही अद्भुत वस्तु है। विकाररूपी मलकी शुद्धिके लिये हार्दिक उपासना एक जीवन-जड़ी है।

प्रार्थना तभी प्रार्थना है, जब वह अपने-आप हृदयसे निकलती है।

('गाँधी-वाणी' से)

अविचल भक्ति कब मिलेगी ?

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपातें संत-सुभाव गहौंगो॥
जथालाभ संतोष सदा, काहूसों कछु न चहौंगो।
पर-हित-निरत निरंतर, मन-क्रम-वचन नेम निबहौंगो॥
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो॥
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि-भगति लहौंगो॥

* यंग इंडिया, २४। ९। ३१, २७४।

प्रार्थना और गांधीजी

(लेखक—श्रीश्रीरामनाथजी 'सुमन')

गांधीजी यद्यपि राजनीतिके माध्यमसे भारतीय जीवनमें आये; तथापि उनकी राजनीति भी भारतीय अध्यात्मवादकी मूल भित्ति—त्याग, तप एवं भगवान्‌के प्रति निष्ठापर खड़ी हुई थी। इसीलिये उसने जन-जीवनको इस प्रकार ऊर्जस्वित किया और उसे सच्ची सेवा एवं निष्ठाका स्वर प्रदान किया।

वे शास्त्रके पण्डित न थे; किंतु शास्त्रके मूलमें जीवनकी जो व्याख्या थी, उसे अपने संस्कार एवं बादमें अनुभवसे उन्होंने प्राप्त एवं पुष्ट किया था। उनके आध्यात्मिक अनुभवके दो स्रोत थे—भगवन्नामजप तथा आर्तहृदयसे प्रार्थना।

आधुनिक भारतमें हमें कोई ऐसा दूसरा नेता नहीं दिखायी पड़ता, जिसने एक दिनके लिये भी भगवत्प्रार्थना-हीन जीवन न व्यतीत किया हो। निष्ठा रखते हुए भी अपने व्यस्त जीवनके कारण अनेक आस्तिकों एवं भगवद्भक्तोंको भी अनाहारकी भाँति ही कभी-कभी प्रार्थनाके बिना ही रह जाना पड़ता है; किंतु गांधीजीके जीवनमें कभी ऐसा नहीं हुआ। अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रमके बीच, बीमारीमें, ट्रेन या मोटरमें यात्रा करते हुए भी वे कभी प्रार्थना किये बिना रहते न थे। यात्रामें रातको बारह-बारह बज गये हैं, तब भी ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर भगवत्स्मरण किये बिना वे कोई कार्य आरम्भ नहीं करते थे। भगवान्‌के साथ ही उनके कर्मण्य एवं अत्यन्त व्यस्त जीवनका 'अथ' होता था और उन्हींके साथ 'इति' भी होती थी। यही प्रतिदिनका नियम था।

उनके आश्रमोंमें प्रातः-सायं-प्रार्थना अनिवार्य थी। सबसे अपेक्षा की जाती थी कि वे इसमें सम्मिलित हों। उनकी प्रातःकालीन प्रार्थना हिंदूधर्मकी विविधतामें एकत्व, अनेकविध ईश्वरकी साधनाकी ओर इङ्गित करती है। उसमें ज्ञान, भक्ति एवं कर्म तीनों—की प्रतिष्ठा है। इसमें प्रायः सभी देव-देवियोंका, उनकी शक्तियोंका स्मरण है। यह प्रार्थना अन्तःस्थ ब्रह्मतत्त्व, आत्मतत्त्वके स्मरणसे आरम्भ होती है। इसमें सद्रूप, ज्ञानरूप, आनन्दरूप परमहंसोंकी गति जिसमें है, उस तत्त्वके प्रति निष्ठा है और उपासक भी उसीका अंश है, पञ्चभूतनिर्मित देहमात्र नहीं है—इसकी स्मृति है। जो मन-वाणीसे अगोचर है, वेद भी जिसका वर्णन नेति-नेति कहकर करते हैं, उसे ही प्रातःकाल उठकर मैं भज रहा हूँ, उसे ही, जिसका ऋषियोंने देवोंके देव, अजन्मा, पतनरहित एवं सबके आदिकारणरूपमें वर्णन किया है—

> प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
> सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्।
> यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिमवैति नित्यं
> तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः॥
> प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यं
> वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण।
> यन्नेति नेति वचनैर्निगमा अवोचं-
> स्तं देवदेवमयमच्युतमाहुरग्र्यम्॥

प्रातःकालका समय है। प्रकाश अन्धकारकी छाती चीरकर फैलता जा रहा है। स्वभावतः सूर्य-ब्रह्मके प्रति नमस्कार है—

> प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
> पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम्।
> यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ
> रज्ज्वां भुजंगम इव प्रतिभासितं वै॥

फिर विराट् प्रकृति-स्वरूपा विष्णुपत्नी, लक्ष्मीका स्मरण है—'समुद्र जिसके वस्त्र हैं और पर्वत जिसके स्तन हैं—महाप्रकृतिका विराट्, पर पोत्रकरूप। इसके बाद सरस्वतीकी प्रसिद्ध वन्दना है। फिर गणेशका स्मरण है। फिर ब्रह्मा, विष्णु, महेश अपितु साक्षात् परब्रह्मस्वरूप गुरुके प्रति नमस्कार है। फिर विष्णुकी वन्दना है। तदनन्तर महादेवसे—

> करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
> श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम्।
> विहितमविहितं—

—के लिये क्षमा-प्रार्थना है। भगवान्‌के प्रति शरणागति-भावनासे सारी प्रार्थना ओतप्रोत है। जाति-पाँतिके बन्धनोंको तोड़नेवाले गांधीजीकी वर्णाश्रममें गहरी आस्था थी। आज राजनीतिक क्षेत्रमें क्या कोई कल्पना कर सकता है कि एक परम्परावादी हिंदूकी भाँति गांधीजी 'गो-ब्राह्मण' को वरीयता देते हुए प्रतिदिन दोहराते थे—

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥

पहले वह 'गो-ब्राह्मण'की, फिर समस्त मानवोंके कल्याणकी बात सोचते हैं । यह दूसरी बात है कि ब्राह्मणकी उनकी परिभाषा कर्मकाण्डीय न होकर औपनिषदिक रही हो ।

संध्याकी प्रार्थना भी उस देवके स्मरणसे आरम्भ होती है, जो ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र, पवनद्वारा स्तुत्य है, जिसकी स्तुति सामवेदका गान करनेवाले मुनिजन तथा वेदोपनिषद् करते हैं; मतलब अनेक रूपों, क्षेत्रोंमें जो स्तुत्य है, उस परमात्माको नमस्कार करते हैं । उनकी सायं-प्रार्थनाकी विशेषता यह है कि इसमें गीताके द्वितीय अध्यायके ५४ वें से ७२वें श्लोकतक जिस स्थितप्रज्ञके लक्षणोंकी अत्यन्त मनोवैज्ञानिक विवेचना, अर्जुनके पूछनेपर, स्वयं भगवान्‌द्वारा प्रस्तुत की गयी है, उसका नित्य स्मरण किया जाता है । यही स्थितप्रज्ञ गांधीजीका आदर्श है । वे गीताके अनन्य भक्त थे । वे उसे जीवनकी पथदर्शिका मानते थे और सम्पूर्ण समस्याओंका हल उन्हें उससे प्राप्त होता था । वे स्वयं कहते हैं—'गीता मेरे लिये शाश्वत मार्गदर्शिका है । अपने प्रत्येक कार्यके लिये मैं गीतामेंसे आधार खोजता हूँ और नहीं मिलता है तो उसे करते हुए रुक जाता हूँ ।' (हिं० न० जी० ३० । ७ । २५) । 'गीता रत्नोंकी खान है ।' (हिं० न० जी० २ । २ । २८) इसमें भी वे द्वितीय अध्यायके इन श्लोकोंको मानवकी धर्म-साधनामें सर्वाधिक महत्त्व देते थे और अपना जीवन इन्हींके आधारपर गढ़नेका प्रयत्न करते थे । इसीलिये संध्या-समय प्रतिदिन इनका पाठ होता था कि सुख-दुःखके बीच किस प्रकार समत्व-साधनाकी सिद्धि सम्भव है ।

आत्माकी पुकार

उनका कहना है—'······प्रार्थना करना याचना करना नहीं है; वह तो आत्माकी पुकार है । जब हम सब कुछ छोड़ ईश्वरपर भरोसा करते हैं तो उसी भावनाका फल 'प्रार्थना' है ।' (हिं० न० जी० २५ । ११ । २६) । फिर कहते हैं—'एक मनुष्यको हम पत्र लिखते हैं । उसका भला-बुरा उत्तर मिलता है और नहीं भी मिलता । वह पत्र आखिर कागजका टुकड़ा ही है । ईश्वरको पत्र लिखनेमें न कागज चाहिये, न कलम-दावात और न शब्द । ईश्वरको जो पत्र लिखा जाता है उसका उत्तर न मिले, यह सम्भव ही नहीं । उस पत्रका नाम पत्र नहीं, प्रार्थना है, पूजा है । मन्दिरमें जाकर ऐसे पत्र कोटि-कोटि जन नित्य लिखते हैं और उन्हें श्रद्धा है कि उनके पत्रका उत्तर भगवान्‌ने दे ही दिया है । यह निरपवाद सिद्धान्त है—भक्त भले ही उसका कोई बाह्य प्रमाण न दे सके । उसकी श्रद्धा ही उसका प्रमाण है । उत्तर प्रार्थनामें ही सदासे रहा है । भगवान्‌की ऐसी प्रतिज्ञा है ।' (ह० से० ३१ । ३ । ३३) उनकी प्रार्थना सिरजनहारके प्रति उनकी व्याकुलताकी द्योतक है । वे कहते हैं—'प्रार्थनाका आमन्त्रण निश्चय ही आत्माकी व्याकुलताका द्योतक है । प्रार्थना पश्चात्तापका एक चिह्न है । प्रार्थना हमारे अधिक अच्छे, अधिक शुद्ध होनेकी आतुरताको सूचित करती है ।' (ह० से० २१ । ६ । ३५)

प्रार्थनाका स्रोत हृदय है

श्रीगांधीजी कहते हैं—'प्रार्थना या भजन जीभसे नहीं, हृदयसे होता है । इसीसे गूँगे, तुतले, मूढ़ भी प्रार्थना कर सकते हैं । जीभपर अमृत हो और हृदयमें हलाहल हो तो जीभका अमृत किस कामका ? कागजके गुलाबसे सुगन्ध कैसे निकल सकती है ? ।' (हिं० न० जी० २४ । ९ । २५)

आजकी दुनियामें बुद्धि बहुत बढ़ गयी है । यह हमारी आस्थाके आगे एक प्रश्न-चिह्न बनकर खड़ी हो गयी है । वह हमारी श्रद्धापर व्यंग-स्वरूप है । गांधीजीने ऐसे बुद्धिवादके सम्बन्धमें लिखा है—'बुद्धिवादको तब भयंकर राक्षसका नाम देना चाहिये, जब वह सर्वज्ञताका दावा करने लगे ।' ऐसी बुद्धिसे प्रवञ्चना एवं विभेदका जन्म होता है ।—निरी व्यावहारिक बुद्धि तो सत्यका आवरण है । वह तो हिरण्मय पात्र है, जो सत्यके रूपको ढक देता है । ऐसी बुद्धिसे तो हजारों चीजें पैदा हो जायँगी । उनसे एक ही चीज बचायेगी—'श्रद्धा' । (गांधी-सेवा-संघ-सम्मेलन, [illegible] २८ । ३ । ३८) । श्रद्धाके विषयमें गांधीजीने बार-बार कहा है—'जहाँ श्रद्धा है, वहाँ पराजय नहीं । श्रद्धालुका अकर्म भी कर्म हो जाता है ।' (ह० से० २१ । ४ । ३३) 'प्रलोभनोंके आगे बेचारी बुद्धिकी कुछ नहीं चलती । वहाँ तो श्रद्धा ही हमारी ढाल बन सकती है । बुद्धि तो उन्हीं लोगोंका साथ देती दीखती है, जो [illegible] और व्यभिचार करते हैं ।······जो श्रद्धा बुद्धिसे [illegible] नहीं

अनन्तकालसे हमारा एकमात्र आधार रही है।' (ह० से० ३०।१२।३९)।

यही कारण है कि गांधीजी भक्तिको बुद्धिग्राह्य मानते हैं। वे कहते हैं—'वह बुद्धिका विषय नहीं है। उसकी धारा तो हृदयकी गुफासे ही निकल सकती है और जब वहाँसे फूट निकलेगी तो उसके प्रवाहको कोई भी शक्ति रोक नहीं सकेगी। गङ्गाके प्रवाहको कौन रोक सकता है?' पर यह सब श्रद्धाका, हृदयका विषय है। प्रार्थनाका स्रोत कण्ठ नहीं, हृदय है।

प्रार्थना आत्माका भोजन है

सितम्बर १९२७ में जब वह तमिलनाडका दौरा कर रहे थे, तब उन्होंने पत्रमें लिखा—'जैसे शरीरके लिये भोजन आवश्यक है, वैसे ही वह आत्माके लिये भी आवश्यक है। बिना खाये तो आदमी बहुत दिनोंतक रह सकता है;...... किंतु परमात्मामें विश्वास रखते हुए आदमी एक क्षण भी बिना सच्ची प्रार्थनाके नहीं जी सकता, नहीं जीना चाहिये। तुम कहोगे बहुत-से आदमी कभी प्रार्थना नहीं करते और जीवित हैं। मैं मानता हूँ, वे जीते हैं; किंतु वह जीवन पशुका जीवन है, जो मृत्युसे भी अधम है। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि आज हमारा वातावरण जिस वैर, फूट और द्वेषकी आगसे भरा हुआ है, उसका कारण प्रार्थनाके सच्चे भावका न होना ही है। तुम इससे इनकार करोगे और कहोगे कि करोड़ों मुसलमान, ईसाई और हिंदू प्रार्थना करते हैं। मैं जानता था कि तुम यह उज्र पेश करोगे; इसीलिये मैंने कहा—'सच्ची प्रार्थना'। बात यह है कि हम मुँहसे तो प्रार्थना करते आये हैं, किंतु हृदयसे शायद ही कभी करते हों।' यही बात २० वर्ष बाद १८।९।४७को नयी दिल्लीकी प्रार्थना-सभामें और स्पष्ट एवं घनीरूपमें उन्होंने कही—'रोटी जैसे शरीरका भोजन है, उसी प्रकार प्रार्थना आत्माका भोजन है।' और अपनी मृत्युके ठीक २९ दिनों-पूर्व उसी नयी दिल्लीमें फिर दोहराया—'प्रार्थना आत्माकी खुराक है।'

प्रार्थना वियोगीका विलाप है

३।१२।३५ को वर्धासे एक बहिनकी शङ्काका समाधान करते हुए उन्होंने लिखा था—'ईश्वरसे माँगना अर्थात् अपनी इच्छा तीव्र करना। ईश्वर आत्मासे भिन्नाभिन्न है। भिन्न है, क्योंकि वह सम्पूर्ण है; अभिन्न है, क्योंकि हम उसके अंश हैं। समुद्रसे अलग पड़ा हुआ बिन्दु समुद्रकी प्रार्थना न करेगा तो किसकी करेगा? किंतु समुद्रको कोई कर्तव्या-कर्तव्य होता है? प्रार्थना तो वियोगीका विलाप है। इसके बिना देहधारी जीवित ही नहीं रह सकते।'

अपनी अधिकांश सभाओंको वे प्रार्थना एवं भजनसे आरम्भ करते थे। ईश्वरकी प्रेरणा ही उनके लिये प्रमुख थी। देहाभिमान उनका मिट गया था। अपने राममें हर समय निमग्न रहते थे। उनका जीवन-व्यापार, उनकी जन-सेवा भी उनकी भक्तिका उद्गारमात्र थी—'जहँ-जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कछु करौं सो पूजा'—कुछ ऐसी ही स्थिति उनकी थी। मैं सामूहिक प्रार्थनाओंके प्रति उतना उत्साही न था; परंतु कभी ऐकान्तिक निजी प्रभु-प्रार्थनाके बिना नहीं रहता था और वैयक्तिक प्रार्थनापर ही जोर देता था। तब यरवदा जेलसे उन्होंने मुझे लिखा कि 'तुम्हारा कहना ठीक है; सामूहिक प्रार्थनाके बिना तो रहा भी जा सकता है, किंतु वैयक्तिक प्रार्थनाके बिना रह ही नहीं सकते।'

जब-जब भीर पड़ती थी, ग्राह-ग्रसित गजेन्द्रकी भाँति वे प्रभुको पुकारते थे; उनका हृदय रोता था। बच्चा जैसे माँको पुकारता है, वैसे ही वे प्रभुको पुकारते थे। जीवन-सागरमें वही उनकी नौकाका लंगर था। प्राय: 'रघुबर, तुमको मेरी लाज। हौं तौ पतित पुरातन कहिये, पार उतारो जहाज।' कहते-कहते वह भाव-विभोर हो जाते थे। 'मो सम कौन कुटिल खल कामी' उनके प्रिय भजनोंमेंसे एक है।

वही प्रभुका बल हमसे दूर पड़ता जा रहा है—हम उसे भूल रहे हैं, तेजीसे भूल रहे हैं। यह गांधीका उपहास है—भक्तका उपहास। भगवद्वाणी तो युगों-युगोंसे कहती आ रही है—**'मामेकं शरणं व्रज।'**—'सब कुछ छोड़कर मेरी शरणमें आओ।' (प्रभुका) द्वार खटखटाओ, वह अवश्य खुलेगा। (Knock and it shall be opened unto you) गांधीजीका समस्त जीवन पुकार-पुकारकर कहता है—'आओ, प्रभुकी शरणमें आओ। सब कुछ भूलकर उसे पुकारो; रोओ और पुकारो, पुकारो और रोओ; हृदयकी शिरा-शिरासे पुकारो—वह सुनेगा और तुम्हारी सब समस्याएँ, सब दुःख, सब परिताप दूर हो जायँगे।'

गांधीजीकी व्यक्तिगत और सामूहिक प्रार्थना

(लेखक—श्रीगौरीशंकरजी गुप्त)

ईश्वरप्रार्थना मानवजीवनका अनिवार्य अङ्ग है; अतः वह मनुष्यका अनिवार्य कर्तव्य है। मनुष्य खाये विना सप्ताह-ाह रह सकता है, पर प्रार्थनाके विना एक दिन, एक ी कैसे रह सकता है—यह देख बापूको काफी आश्चर्य । वे व्यथित और विकल भी हो उठते। मानव र इतने निम्न स्तरपर कैसे उतर आया? क्या इससे कल्याण सम्भव है या वह अकल्याणकी ओर बढ़ है? उन्होंने संसारको मार्ग दिखाते हुए कहा कि ो! शारीरिक खुराकसे भी अधिक अनिवार्य है आत्मिक ाध्यात्मिक खुराक। अन्न शारीरिक खुराक है और आध्यात्मिक या आत्मिक खुराक।'

ुद्धने एशिया खण्डमें बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखायकी ोति जलायी, ईसाने अपने निर्भीक सत्याचरणद्वारा ार तमसावृत जनसमूहपर जो प्रकाश फैलाया, बापूने उद्धरणी युगकी नाड़ी पहचानकर की। प्राचीन रम्पराका पालन करते हुए हीन आयु, क्षीण बल लघु शरीरका ध्यान रखते हुए उन्होंने मानवमात्रके उपासनाका लाघव-मार्ग पकड़ा और इस बढ़ते हुए क संसारके सम्मुख सुगम आस्तिक-पथ प्रशस्त किया। उपासनाका वह सुगम पथ है—प्रार्थना।

ापूने प्रार्थनाके दो भेद किये—१. व्यक्तिगत वा निजी २. सामूहिक; पर इन दोनोंमें अन्योन्याश्रय सम्बन्ध क्ति निजी प्रार्थना किये विना अपना हित-साधन नहीं कता और चूँकि वह समाजमें रहता है, इसलिये क प्रार्थना किये विना भी नहीं रह सकता। इस तरह, और समूहका हित और उसकी हित-साधना आपसमें त हो जाती हैं, कहीं भी टकराती नहीं। बल्कि बापूने कि निजी और सामूहिक दोनों प्रार्थनाएँ हर व्यक्तिके नेवार्य हैं—उसके लिये, उसके जीवनके लिये और के लिये भी। उन्होंने इसीलिये निजी प्रार्थनाके साथ मूहिक प्रार्थनाका काफी प्रसार किया, जो उनकी की अद्वितीय देन है।

जी प्रार्थनाकी व्याख्या करते हुए बापूने कहा था ब्दोंमें वह वर्णित नहीं हो सकती; पर इतना स्पष्ट है कि वह सतत और सहजरूपसे मानव-जीवनमें जारी रहनी चाहिये। कोई क्षण ऐसा नहीं जाना चाहिये, जब मनुष्य यह अनुभव न करे कि एक ऐसे परम साक्षीकी शक्ति उसके सिरपर निरन्तर विराजमान है, जो सिर्फ साक्षी ही नहीं, उसका मित्र और वैसा ही कठोर निरीक्षक भी है। वह सब कुछ देखता और सबका संचालन भी करता है। मनुष्य और उसका जीवन उसीकी सहज कृपासे संचालित है। मनुष्य जो कुछ देखता, करता—सब उसीके कारण तो सम्भव है।

बापूने अपने आश्रममें निजी और सामूहिक प्रार्थनाका क्रम चलाया। वे कहते थे कि 'जो निजी प्रार्थना नहीं करता, वह भले ही सामूहिक प्रार्थनामें भाग ले, पर उससे कुछ विशेष लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।' सामूहिक प्रार्थनाकी बुनियाद निजी प्रार्थना ही हो सकती है। यद्यपि सामूहिक प्रार्थनापर उन्होंने अधिक जोर दिया, तथापि उसका यह मतलब कदापि नहीं कि निजी प्रार्थना उससे कुछ न्यून महत्त्वकी है। मनुष्यको जो अनुभव एकान्तमें बैठकर होता है, वह समूहमें होना असम्भव भले न हो, कठिन अवश्य है। उनका यह भी अनुभव था कि कुछ लोग समूहमें ही प्रार्थना कर सकते हैं, एकान्तमें नहीं। ऐसे व्यक्तियोंके लिये उन्होंने निजी प्रार्थना अनिवार्य बतायी। उनका यह भी अनुभव था कि सामूहिक प्रार्थना हर मनुष्यके लिये अनिवार्य है; क्योंकि वह समूहमें रहता है और सामूहिक जीवनकी शुद्धताका सूत्रपात वहींसे होता है।

बापूका ईश्वरपर अटल विश्वास था; इसीलिये वे नित्य और सतत जागरूक रहते, ताकि उनके द्वारा किसीके प्रति अन्याय न हो—व्यक्ति या धर्म दोनोंके प्रति। इसी कारण उनका हृदय महान् होता गया। उनकी प्रार्थना इसीलिये अत्यन्त हार्दिक और कारुणिक होती, जिससे उन्हें कार्य शक्ति प्राप्त होती। यह शक्ति वे सबको बाँटना चाहते थे। इसीलिये अपने दैनिक जीवनमें सबसे पहले सबको साथ लेकर वे ईश्वर-प्रार्थना करते। वे कहते कि सुबह निद्रा-त्याग करते ही रामका नाम लो और कहो—'हे प्रभो! हमें विकार-मुक्त करो।' सच्चे हृदयसे की गयी प्रार्थनाका परिणाम

अवश्य महान् होता है और उससे मनुष्य निश्चित ही निर्विकार हो जाता है।'

बापूका जीवन सभी प्राणियोंके रूपमें प्रकटित परमात्माकी सेवामें एक महान् आत्मसमर्पण ही था। अपने तन, मन और प्राणको वे इसी सेवाका माध्यम मानते, अत्यन्त सजगतासे इसे बिल्कुल ठीक रखते। उनका सारा जीवन प्रार्थनामय था; या यों कहें कि प्रार्थना उनके जीवनका संगीत थी।

प्रार्थना सस्वर हो या मौन, उससे अन्तरात्माकी पुकार ईश्वरतक पहुँच जाती है और परमात्माके साथ हमारा पवित्र सम्बन्ध जुड़ता है। अतः प्रार्थना अनिवार्य है। किंतु हो वह अन्तरात्माकी पुकार, अन्यथा उससे बहुत लाभ नहीं होता। ऐसी प्रार्थना मनुष्यके जीवनमें जडता भी ला सकती है। इस तरह बापूने प्रार्थनाकी विधिका भी संकेत किया, जिससे मनुष्यका जीवन कभी भी जड न बन सके।

बापूकी प्रातःकालीन प्रार्थनाका समय आरम्भमें अनिश्चित था, किंतु होती बेनागा। वे एक सत्यार्थी थे, इसलिये उनके सत्यके प्रयोग चलते ही रहते। उन्हीं प्रयोगोंसे उन्हें प्रार्थनाके समयका भी क्रमनिर्देश मिला और तदनुसार ही वे उसमें क्रमशः परिवर्तन करते गये। उन्होंने एक बार कहा था कि 'अगर आश्रमकी नींव सत्यपर आधारित है तो प्रार्थना उस नींवका मूलाधार है।'

सन् १९३२ में बापू जब यरवदा-मन्दिरमें थे, सुबहकी प्रार्थना सात बजे होती। फिनिक्स आश्रम (द० अफ्रीका) में तो सुबहकी प्रार्थनाका कोई नियम ही नहीं था—वहाँ वह सिर्फ शामको होती और उसका समय था सातसे साढ़े सातका। वहाँ प्रार्थनाके बाद 'रामचरितमानस'का पारायण और 'गीता' का पाठ होता; क्योंकि उन्होंने 'मानस' को भक्तिमार्गका सर्वोत्तम ग्रन्थ माना और 'गीता'को तत्त्वज्ञानका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ। प्रार्थनाके बाद वे आश्रमवासियोंके सामने दिनभरकी महत्त्वपूर्ण घटनाओंपर प्रवचनरूपमें प्रकाश डालते।

सप्ताहमें एक बार सम्पूर्ण 'गीता'का पारायण होता, जो पहले दो सप्ताहमें पूर्ण होता। 'बा'के जानेके बाद, आगाखाँ महलमें, हर महीनेकी बाईस तारीखको उनके निधनदिवसकी स्मृतिमें सम्पूर्ण 'गीता'का पारायण विशेषरूपसे होता। आगाखाँ महलसे छूटनेके बाद, मराठीभाषी क्षेत्र होनेके कारण, सेवाग्राममें उनकी सुबहकी प्रार्थनामें 'गीता'की संस्कृत आवृत्तिके बजाय विनोबाजीकृत उसके मराठी-अनुवाद 'गीताई'का और शामकी प्रार्थनामें 'गीता' के स्थितप्रज्ञके लक्षणोंके मराठी अनुवादका पाठ होता।

प्रातःकालकी प्रार्थनामें गाये जानेवाले श्लोकोंको चुननेका श्रेय श्रीकाकासाहेब कालेलकरको है और 'एकादशव्रत' वाले श्लोकके रचयिता विनोबाजी हैं। बापूकी प्रार्थना 'आश्रम-भजनावलि'में संगृहीत है, जिसके चयन—संग्रहमें उनकी जिज्ञासुवृत्ति हमेशा उत्सुक और संलग्न रहा करती। वे सर्वधर्मसमभावी महापुरुष थे और सामूहिक प्रार्थनाके आग्रही थे; इसीलिये उनका ध्यान बराबर इस ओर लगा रहा कि उनकी प्रार्थनामें भी अधिक-से-अधिक सामूहिकता आये। इसके लिये वे बराबर उत्सुक और प्रयत्नशील रहे। धीरे-धीरे उन्होंने सभी धर्मोंकी प्रार्थनाओंको अपनी प्रार्थनामें सम्मिलित कर लिया।

बापूको प्रार्थनाके कुछ भजन बहुत ही प्रिय थे, जिनमें नरसीमेहताका 'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराई जाणे रे!' मुख्य है। सूरदासजीका 'वृक्षन से मत ले, मन तू वृक्षन से मत ले' वाला भजन भी उनको बहुत प्रिय था। इसी प्रकार खिस्ती भजनोंमें 'Lead, Kindly light' वाला भजन और तुलसीदासजीका 'रघुवर! तुमको मेरी लाज!' भजन भी, जिसे सन् १९२४ के अपने इक्कीस दिवसीय उपवासकी अवधिमें वे अक्सर गाते रहते।

उनकी प्रार्थनामें हर भाषाके भजनोंको स्थान प्राप्त था और वे उन्हें मधुर स्वरमें गाना ही पसंद करते थे। वे संगीतप्रिय थे और संगीत-तत्त्वके मर्मज्ञ भी। अतः अपनी प्रार्थनामें वे बेसुर संगीत कभी नहीं चलने देते थे। स्वरकी मधुरताके लिये ही नहीं, उसकी शुद्धताके लिये भी उनका आग्रह रहता था। अन्तरकी भावनापर भी उनका पूरा ध्यान रहता; क्योंकि वह उनके लिये खास चीज थी। यही कारण है कि हर व्यक्ति उनकी प्रार्थनामें भजन गानेमें समर्थ नहीं हो पाता था।

साबरमती-आश्रममें स्व० विष्णु दिगम्बर पलुस्करजीके शिष्य स्व० नारायण मोरेश्वर खरेजीके सहयोगसे प्रार्थना सुललित स्वरमें होती। तम्बूरेपर प्रार्थना और भजन गाये जाते, जिनके विषयमें बापूने स्वयं कहा था कि उन्होंने प्रार्थनामें रस उँड़ेला। असंख्य जनोंद्वारा आत्मविभोर हो पढ़ी जानेवाली 'आश्रम भजनावलि'की रचनाका —

श्रेय उन्हींको है। खरेजीने भजनके साथ-साथ रामधुनका भी आरम्भ किया और प्रार्थनाको और भी सरस एवं प्राणवान् बनाया, जिसमें सम्मिलित हो, तथा जिसका पारायण तथा श्रवण करके असंख्यजन मुग्ध एवं ईश्वर-ध्यानमें लीन होने लगे।

सामूहिक प्रार्थनामें रामधुनका गाया जाना बापू प्रार्थनाका सबसे महत्त्वपूर्ण अङ्ग मानते। उस समय वे स्वयं हाथोंसे ताल देते। उनका कहना था कि 'जब स्वर-ताल-सहित रामधुनका गान होता है, उस समय स्वर, ताल एवं भाव—तीनोंका संयोग माधुर्य तथा ओजकी वर्णनातीत अपूर्व स्थिति उत्पन्न कर देता है। हजारों-लाखों मनुष्य जब सत्य हृदय और एक ताल-लयसे रामधुन गाते हैं, उस समय उसकी [श]क्ति सैनिक शक्तिसे भिन्न होती है और उससे कहीं अधिक [श]क्तिशाली होती है। शुद्ध और दृढ़ चित्तसे किया गया [भ]गवत्स्मरण एक अपूर्व शान्ति तथा आनन्दका वातावरण [पै]दा करता है, जिससे व्यक्ति और समूह दोनोंके चित्तको [प]रम शान्ति मिलती है।'

बापूका जीवन आध्यात्मिक और भौतिक तत्त्वोंके उच्च [स]म्मिश्रणका एक अद्भुत रूप था। वे जहाँ भोजन आदिमें [बि]ल्कुल संसारके नियमोंका पालन करते, वहाँ उनमें उनकी [आ]ध्यात्मिक भावना भी निहित रहती। किंतु, उनकी [अ]ध्यात्म-साधनाका धरातल यद्यपि असामान्य था, तथापि [वे] सामान्य मनुष्योंको भी अपने आध्यात्मिक धरातलसे [बाँ]धकर ले चलना चाहते। इसीलिये उन्होंने आध्यात्मिक [सा]धनाको एक सामान्य नियम बनाया, जो सर्वसाधारणके [जी]वनको ईश्वरकी ओर प्रेरित करनेवाला—अध्यात्मकी ओर [मो]ड़नेवाला है; क्योंकि उन्होंने अन्य महापुरुषोंकी तरह यह [मा]ना था कि अध्यात्म ही मनुष्य-जीवनका मुख्य आधार [है]। उन्होंने संसारमें पाया कि मनुष्य ज्यों-ज्यों अध्यात्मकी [ओ]रसे मुख मोड़ता जाता है त्यों-त्यों आध्यात्मिक आधारसे [उस]का सम्बन्ध टूटता जाता है। इसीलिये, जैसे उन्होंने [प्रात]जी प्रार्थना और सामान्यजनोंके साथ सामूहिक प्रार्थनाका [सु]दृढ़ नियम रक्खा, वैसे ही सायं-प्रार्थनाको और भी अधिक [सार्व]जनिक रूप तथा महत्त्व दिया।

बापूका सार्वजनिक जीवन द० अफ्रीकासे शुरू हुआ। वहाँ [शा]मके भोजनके बाद सात-साढ़े सात बजे प्रार्थना करते, [कि]न्तु भारत लौटनेपर सायंकालीन आहार तथा वायुसेवनके [बाद]। उनके हर नियमकी तरह प्रार्थनाके समय-नियममें भी कुछ परिवर्तनक्रम तो सदा चलता ही रहा। सन् १९२७में साबरमती-आश्रममें उनकी सायंकालीन प्रार्थना लगभग छः साढ़े छः बजे होती, सेवाग्राममें सामान्यतः साढ़े सात बजे और नोआखाली-यात्राके दिनोंमें पाँच बजे। वहाँ वे प्रार्थनाके पश्चात् सायंकालीन वायुसेवन करते। गोलमेज-सम्मेलनके समय वे शामको सात बजे प्रार्थना करते। दिल्लीमें अन्तिम दिनोंमें वे शामकी प्रार्थनामें ठीक पाँच बजे पहुँच जाते।

मानवमात्रको पूर्ण संयत तथा विकाररहित करने और ऊपर उठानेवाले गीताके कृष्णार्जुनके कथोपकथनके रूपमें बताये गये दार्शनिक तत्त्वका पारायण विशेषरूपसे बापूकी सायं-प्रार्थनामें होता। गीताके द्वितीय अध्यायके अन्तिम उन्नीस श्लोक बड़े श्रद्धाभावसे स्मरण किये जाते, जिनमें स्थितप्रज्ञके लक्षण वर्णित हैं। वे कहते थे कि 'ये ही लक्षण सत्याग्रहीके भी हों, यह आवश्यक है। स्थितप्रज्ञ जिस वस्तुकी साधना करता है, उसीकी साधना सत्याग्रहीको करनी चाहिये। यह बात हमेशा याद रहनी चाहिये और स्थितप्रज्ञके श्लोकोंका पारायण करनेवालेको शान्तिसे कार्य करनेका अभ्यास करना चाहिये।' वे यह भी कहते थे कि 'प्रार्थनाका मूल अर्थ तो माँगना होता है—ईश्वरसे या बड़ोंसे। नम्रताके साथ की गयी माँग ही 'प्रार्थना' है और हमें उसे दिलसे पहचानना चाहिये, उसका साक्षात्कार करना चाहिये, उसके स्वरूपमें मिल जाना चाहिये, जो हम सबको पूर्ण करनेवाला है।' गीताके उक्त श्लोकोंके अतिरिक्त सायंकालीन प्रार्थनामें भजन और रामधुन आदिका कार्यक्रम भी सम्मिलित था।

प्रार्थनाके आरम्भमें दोनों समय दो-दो मिनटका मौनावलम्बन होता। बापूकी निश्चल मुद्रा समाधिस्थ हो जाती। उस समयके वातावरणमें उच्चारित सामूहिक प्रार्थना-परक वाक्य पूर्ण बोधगम्य होकर अन्तःकरणको छूने लगते। उस पवित्र वातावरणमें कोई भी अधम मानव अपनेको पवित्र बनाये बिना नहीं रह पाता। उसके मनकी मलिनता उस पवित्र वातावरणमें अपनी मलिनता धोने लगती। एक विद्वान्ने बापू और उनकी सायंकालीन प्रार्थना-सभाका बड़ा ही सुन्दर-सजीव चित्रण किया है। उनके ये शब्द हैं—प्रार्थनाके समय विशाल क्षेत्रके प्राङ्गणमें, वर्तुलाकार रेतीपर, जनसाधारण और आश्रमवासियोंके बीच, एक छोटे-से लकड़ीके पटरेके सहारे बैठे बापू ऐसे मालूम होते, मानो ग्रन्थोंमें वर्णित वैदिक युगका कोई ऋषि अपनी शिष्य-

मण्डलीके साथ आसीन हो। प्रार्थनाकी घंटी बजते ही जब अपने-अपने कार्योंमें दक्ष, भिन्न-भिन्न प्रदेश, जाति और देशके लोग प्रार्थनास्थलकी ओर दौड़ते, तब ऐसा प्रतीत होता, मानो कोई महामानव सबको अपनेमें मिला लेनेका आह्वान कर रहा हो। मानो श्रीरवीन्द्रनाथके शब्दोंमें वह कह रहा हो—'ऐ हिंदू, मुस्लिम, बौद्ध, पारसी, ईसाई और अंग्रेज ! तुम सब आओ। मनुष्योंका महासागर भारत तुम सबका स्वागत करता है।' और, फिर रात्रिकी निस्तब्धतामें साथ लायी लालटेनोंका प्रकाश भी जब मद्धिम कर दिया जाता, तब सचमुच ही रूप और रंगसे परे उस मनुष्योंके समुदायमें अपने अधखुले बदनपर, श्वेत खादी वस्त्रोंके बीच, सत्य एवं शान्तिके आशीर्वाददाताकी तरह, पलथी मारे, शान्त, अडिग, ध्यानस्थ और स्थितप्रज्ञ बापू ऐसे लगते मानो साक्षात् बुद्ध हों।

एक बार प्रवासमें बापू शामकी प्रार्थना करना भूल गये। उन दिनों उनकी सायंकालीन प्रार्थना प्रार्थनासभाके रूपमें नहीं होती थी, उसमें सामूहिकता भी नहीं आयी थी; किंतु शामके बाद जब भी समय निकालकर वे नित्य प्रार्थना अवश्य कर लिया करते। उन दिनों यही होती उनकी सायंकालीन प्रार्थना। उस दिन वे इस प्रार्थनासे चूक गये और फिर पश्चात्तापकी प्रज्वलित अग्निमें जल उठे। जब उनके हृदयने जलते-जलते सारे दुःखको जला डाला और वे पूर्ण आश्वस्त तथा शान्त हुए तब बोले—'जिसकी दयाके बलपर जीवित हूँ, जीवन-साधना कर रहा हूँ, उसी प्रभुको भूल जाऊँ तो कैसे जीऊँ?' यह कोई साधारण अपराध नहीं है मनुष्यका ! इस अपराधको क्षमा तो वही प्रभु कर सकते हैं; लेकिन ऐसा तभी सम्भव होता है, जब मनुष्य पश्चात्तापकी अग्निमें अपनेको जलाकर शुद्ध कर डालता है।' इसके बाद उनको नींद आयी ही नहीं। वे बैठे रहे। सुबहकी प्रार्थनाका समय आ गया और उन्होंने कहा—'प्रवासमें भी हमलोगोंको सायं-प्रार्थना निश्चित समय-पर ही करनी चाहिये। हम दिनभरका कार्यक्रम पूर्ण करके शयनके पूर्व समय मिलनेपर प्रार्थना करते हैं, यह बड़ी भूल है। आजसे शाम सात बजे प्रार्थना हुआ करेगी—चाहे हम जहाँ कहीं भी हों। और इसके बाद वे कितने भी कार्यव्यस्त होते, प्रार्थनाके समयपर ही प्रार्थना करते।

गोलमेज-सम्मेलनके समय लन्दनमें एक दिन दीनबन्धु एण्ड्रयूज बापूके पास आये और बोले—'आज शामको कुछ अंग्रेज पादरी आपका स्वागत करेंगे, यह भूलियेगा नहीं। और, सात बजे लन्दनके लाट पादरी एक जरूरी काममे आपसे मिलने आनेवाले हैं, यह भी न भूलियेगा।' बापूने तीव्र दृष्टिसे दीनबन्धुको देखा और कहा—'और, सात बजेकी प्रार्थना? उसका क्या होगा?' एण्ड्रयूज बोले—'आगे-पीछे कर लेंगे।' बापूको यह जँचा नहीं और उन्होंने कहा—'ठीक, हम अपना सलट लेंगे। और, उन्होंने उस दिन ठीक सात बजे मोटरमें अपनी उस दिनकी सायंकालीन प्रार्थना की। इस तरह, उनकी सायंकालीन प्रार्थना, जो आरम्भमें अनियमित होती, क्रमशः विकसित होती गयी और उसने प्रार्थना-सभाका रूप ले लिया।

बापूकी प्रार्थना उनके जीवनमें इस तरह अभिन्न थी। उनकी बड़ी इच्छा थी कि ईश्वर जिस दिन, जिस क्षण इस दुनियासे मुझे ले जाय, उस क्षण मैं हरिस्मरण करता हुआ जाऊँ। उनके मनमें यदि कोई अभिलाषा थी तो यही एकमात्र अभिलाषा थी। यह एक अलभ्य अभिलाषा है, जिसके लिये संत तुलसीदासजीने कहा है—

जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥

तात्पर्य यह कि मनुष्य चाहे जितनी साधना करे, यह बड़ी दुर्लभ वस्तु है। ऋषि-मुनि जन्मभर ईश्वराराधना करते रहते हैं, लेकिन उनके लिये भी यह दुर्लभ है। ईश्वरने बापूकी आराधना-सिद्धिको संसारके सामने सिद्ध कर दिखाया। वे सायंकालीन प्रार्थनाके लिये पहुँचे ही थे कि एक व्यक्ति दोनों हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा हो गया और फिर उसने धायँ-धायँ तीन गोलियाँ चलायीं। बापू 'हे राम!' कहते हुए वहीं लुढ़क गये। उनकी साधना सिद्ध हुई, ईश्वराराधना पूर्ण हुई। उनकी सायंकालीन प्रार्थना इस तरह जग-जीवनमें महत्त्वपूर्ण बन गयी! ···

[लेखककी अप्रकाशित 'बापू और उनकी दिनचर्या' नामक पुस्तकका एक अंश]
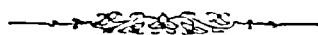
झगड़ा मिटानेका अचूक उपाय—प्रार्थना

(लेखक—श्रीविनोबाजी)

अपने धर्ममें क्या और दूसरे धर्ममें क्या, ईश्वर-प्रार्थनाको एक विशेष स्थान प्राप्त है। सभी लोग—हिंदू, मुसलमान और ईसाई—अपने-अपने ढंगसे प्रार्थना किया करते हैं। बौद्ध लोग ध्यान करते हैं। उसे वे 'प्रार्थना' नहीं कहते। लेकिन उसका भावार्थ एक ही है। यह पद्धति सभी धर्मोंमें चलती है।

प्रार्थना या ध्यानके तीन अंश

प्रश्न होगा—'ध्यानमें मानव क्या करता है? ध्यानका अर्थ क्या है?' पहली बात यह है कि ध्यानमें अपने आचरणमें होनेवाले दोषोंका निरीक्षण किया जाता है। फिर उनपर ध्यान देकर भविष्यमें वैसे दोष न होनेका संकल्प किया जाता है। हमारे इस संकल्पकी पूर्तिके लिये दूसरोंकी मदद अपेक्षित होती है। अकेले हम दुर्बल हैं, इसलिये दूसरेकी सहानुभूति, मदद हमें दोष-निवारणके काममें मिले, यह अपेक्षा रहती है। ध्यानका यह दूसरा अंश हुआ। प्रश्न होगा कि 'दूसरा कौन है? इतर कौन है?' ये जो सब इतर हैं, उन सबको एककर उन सबके लिये 'परमेश्वर'—यह एक शब्द है, एक भाषा है। 'पर' का एक अर्थ—दूसरा (अन्य) और दूसरा अर्थ है—'ईश्वर'। इसलिये अपनेसे भिन्न जो सब हैं, उन्हें एक शब्दमें 'परमेश्वर' समझना चाहिये। उसकी मदद हमें अपने संकल्पकी सिद्धिके लिये अपेक्षित है। ध्यानका यह तीसरा अंश हुआ। सारांश, ध्यानका पहला अंश है—दोष-निरीक्षण; दूसरा है—दोष-निरसनका संकल्प और तीसरा है उसके लिये परमेश्वरकी मददकी अपेक्षा। ये तीनों बातें ध्यानमें रहनी चाहिये।

प्रार्थनामें परस्पर अपेक्षा-पूर्ति पूर्वगृहीत

अब जरा और गहराईमें उतरें तो स्पष्ट होगा कि हम दूसरोंसे जो अपेक्षा करते हैं, लोग भी हमसे वही अपेक्षा करते हैं। आपके पास बैठकर वे प्रार्थना करते हैं। आप प्रार्थना करते हुए भगवान्से यह कहें कि 'भगवन्! मेरा अपराध क्षमा करो, फिर ऐसा अपराध नहीं करूँगा', तो दूसरा भी भगवान्से वही कहेगा। मैं उससे क्षमाकी अपेक्षा करता हूँ, तो मुझसे भी वही अपेक्षा की जायगी। इसका अर्थ यह हुआ कि हम समाजसे जो अपेक्षा करते हैं, समाज भी हमसे वही अपेक्षा करता है। वह अपेक्षा पूरी करनेकी तैयारी प्रार्थनामें गृहीत मान ली गयी है।

सामूहिक प्रार्थनामें यह पहलेसे ही मान लिया जाता है कि हम क्षमाकी अपेक्षा रखते हैं तो स्वयं हृदयमें क्षमा करते हैं और क्षमा करनेकी हमारी तैयारी रहती है। हम ज्ञानकी अपेक्षा करते हैं तो अपने पासका ज्ञान दूसरोंको देनेकी तैयारी रखते हैं। जब हम सत्यकी अपेक्षा करते हैं तो स्वयं हमारे आचरणमें न्याय रहता है, बुद्धिमें सत्य-निष्ठा रहती है। जब हम करुणाकी अपेक्षा करते हैं तो हमारे हृदयमें करुणा रहती है। इस तरह प्रार्थना या ध्यानमें अन्योन्य, परस्पर प्रतिज्ञा हुआ करती है। जब सभी मिलकर ध्यान या प्रार्थना करते हैं, तब यह बात गृहीत मानी हुई ही होती है।

मनका उत्तमोत्तम स्नान—प्रार्थना

यही कारण है कि प्रार्थना बड़ी ही सुन्दर क्रिया मानी गयी है। इस क्रियासे चित्तका क्षालन होता है, वह धुल जाता है। शरीर प्रतिदिन मैला होता है, इसलिये उसे रोज स्नान कराना पड़ता है। हम लगातार वर्षों स्नान करें, पर बादमें दो-तीन दिन स्नान न करें तो क्या चल सकता है? नहीं; स्नान न करेंगे तो शरीर मैला, गंदा हो जायगा। रोज ही नहाना पड़ता है। इसी तरह मनके विषयमें भी करना चाहिये। उसके लिये उत्तम-से-उत्तम स्नान प्रार्थना है। उसमें प्रार्थनाका आडम्बर नहीं चाहिये। सामूहिक रीतिसे सभी पाँच मिनट शान्त बैठें और परमेश्वरका स्मरण करें। परमेश्वरके सामने हृदय खोलकर रख दें। उसमें परमेश्वरके प्रवाहमें हृदय धो लेनेकी तैयारी चाहिये। इतनी तैयारीके साथ प्रार्थनामें बैठा जाय तो उसकी इतनी शक्ति बनती है; इतनी सामर्थ्य बनती है कि कभी हार खानेका अनुभव ही नहीं आता।

प्रार्थनाकी आदत डालिये

हमलोग वर्षोंसे प्रार्थना करते हैं। गांधीजीके आश्र-

में पहुँचनेके पहले भी हम भक्तिसे भजन आदि गाते, प्रभुकी विनती करते। फिर भी प्रार्थनाका निश्चित समय तय न था। जब सहज प्रेरणा होती, उसे करने लगते। इसीलिये कि भक्तिकी ओर झुकाव था। लेकिन गांधीजीके पास पहुँचनेपर प्रार्थनाकी नियमित आदत पड़ गयी।

आदतके लाभ

आदतका परिणाम कैसे होता है, यह देखिये! नियमित भोजनकी आदत पड़ जाय तो उस समय भूख लग ही जाती है। इधर घड़ीकी ओर देखिये और उधर खाना खाइये। जिस समय खानेकी आदत होती है, ठीक उसी समय नियमित भूख लग जाती है।

चरखेको ही ले लीजिये। आज उसमें चमेलीका तेल डाला जाय और कल गायका शुद्ध घी—ऐसा नहीं होता। जो तेल तै रहता है, वही डाला जाता है। इसी तरह पेटको भी आदत पड़ जाती है। कितना चाहिये, उसे अंदाज रहता है; कम-बेशी नहीं होता। फिर तो खानेका स्वाद ही नहीं रह जाता। दही खाया तो आरम्भमें वह मीठा या खट्टा है, उसका पता चल जाता है। खट्टा हो तो गला खरखराने लगता है, कष्ट होता है; इसलिये उतना समझमें आ जाता है। फिर तो जैसे कटोरीमें आमरस भरनेपर कटोरीको उसकी मिठास या खट्टेपनका कोई अनुभव नहीं होता, वैसे ही वह अपने मुँहमें उसे डालता है। यह सब करते हुए आप खुशीसे ईश्वरका स्मरण करें और दुनियाकी ओर ध्यान न दें।

जैसे पेटकी बात है, वैसे ही भक्तिकी भी आदत लग जाती है। प्रार्थनाका समय होते ही चित्त एकदम ईश्वरकी ओर चला जाता है। सायंकाल होते ही चित्तमें शान्ति हो जाती है। परमेश्वरकी ओर लय लगती है और सहज ही जगत् व्यक्तसे अव्यक्तमें चला जाता है। अंधेरा पड़ने लगता है। यह आँखोंसे ओझल हो गया, यह हो गया—ऐसी स्थिति होती है; फिर मनकी 'यह कल्पना, यह कल्पना' एक-एक करके चली जाती है और चित्त अपने-आप तटस्थ हो जाता है।

झगड़े सुलझानेका नया प्रयोग

आज इस गाँवके लोगोंने प्रश्न किया, तब पता चला कि यहाँ झगड़ा चल रहा है। मैंने उन्हें बताया कि आपलोग भले ही ग्रामदान न करें, पर यह सोचें कि झगड़ा कैसे मिटाया जाय। उसके बगैर कुछ भी नहीं होगा। फिर प्रश्न उठा कि झगड़ा मिटानेका उपाय क्या है? मैंने बताया कि जिनमें झगड़ा है, वे एक साथ बैठकर ईश्वरकी प्रार्थना करें। एक साथ बैठकर चित्त खुला करें और मनमें कहें कि 'भगवन्! मेरे दोष दूर कर।' फिर पाँच मिनट ध्यान करें और उठकर चले जायँ; किसीसे कुछ बोलने-कहनेकी जरूरत नहीं। ऐसा करें तो तीन-चार दिनोंमें अनुभव आयेगा कि मनमें जो तरह-तरहकी कल्पनाएँ थीं, वे मिट गयीं और अपने-आप प्रेम बढ़ने लगा—'हम सभी एक ही परमात्माकी संतान हैं'—यह विश्वास हो जायगा तो कोई किसीकी ओर टेढ़ी निगाहसे न देखेगा। आपलोग यह प्रयोग कर देखिये।

गाँव-गाँव प्रार्थना-भवन बनें

प्रार्थनाके लिये एक जगह तै कीजिये। उसे खूब लीप-पोतकर साफ कीजिये। वहाँ और कुछ भी न किया जाय, केवल प्रार्थना ही की जाय। तब वहाँ मनमें दूसरे किसी भी प्रकारके विचार नहीं उठेंगे। आसाममें पद्धति है कि वहाँ छोटे-से-छोटे हर गाँवमें एक 'नाम-घर' होता है। नाम-घरका अर्थ है—परमेश्वरका नामस्मरण करनेका घर। एकदम मामूली-सा रहता है। उसपर कोई अधिक खर्च नहीं पड़ता। मुझे यह पद्धति बहुत ही भायी। ऐसा नाम-घर हर गाँवमें होना चाहिये। हर एकको प्रार्थनाकी आदत पड़नी चाहिये।

फिर वे जरा सोचें कि यह देह टिकनेवाली नहीं, जानेवाली है। यह शाश्वत वस्तु नहीं, अशाश्वत है। इस तरह प्रार्थना और देहके क्षणिकत्वका थोड़ा चिन्तन किया जाय तो काफी मदद मिल सकती है, झगड़े-टंटे समाप्त हो सकते हैं। मानवका मन ऊँचा उठता है।

यह लाभका सौदा!

ये किसान झगड़ते हैं कि हमारी हाथभर हद इधर, इसके पास आ गयी, उधर चली गयी। आश्चर्य है कि मैं भूदान माँगता हूँ तो मुझे ४० लाख एकड़ जमीन दान दे दी जाती है और उधर एक हाथ भर जमीनके लिये दुःख माना जाता है। अरे भाई, अगर कोई तुम्हारी हाथ भर जमीन ले लेता है तो उसे प्रेमसे समझाकर बताओ। और नहीं मानता तो उतनी जमीन उसे दे डालो तो काम

खतम। फिर उसे कुछ करनेकी दुबारा हिम्मत न होगी। यह प्रयोग कर देखने-जैसा है। ऐसा हुआ तो वह आपका मित्र बनेगा। आप हाथभर जमीन खोयेंगे, पर एक मित्र कमायेंगे। यानी यह लाभका सौदा हुआ।

प्रार्थना

प्रार्थना अनुभवका विषय है, बहसका नहीं। भगवान्‌के नाम-स्मरणसे बढ़कर किसी भी दूसरी चीजमें मैंने ताकत महसूस नहीं की।

आज काल-प्रवाह ईश्वरके अनुकूल है। कभी-कभी वह ईश्वरके खिलाफ जाता है, तब कालका खण्डन होता है; क्योंकि ईश्वरका खण्डन कभी नहीं हो सकता। फिर प्रलय हो जाता है। विष्णुसहस्रनाममें एक शब्द आया है—'कालनेमिनिहा'। जहाँ काल ईश्वरकी इच्छाके विरुद्ध जाता है, वहाँ काल खण्डित होता है और ईश्वर टिकता है। जहाँ समाज-प्रवाह काल-प्रवाहके खिलाफ जाता है, वहाँ समाज खण्डित होता है, काल टिकता है। जहाँ व्यक्ति समाज-प्रवाहके खिलाफ जाता है, वहाँ व्यक्ति खण्डित होता है, समाज टिकता है। इस वक्त काल और ईश्वर दोनों एक हो गये हैं और समत्वकी माँग कर रहे हैं। इससे बढ़कर कोई माँग नहीं हो सकती।

ईश्वर मुझे प्रेरणा दे रहा है विषमताका विरोध करनेकी, समताको लानेकी, तो मुझे लगता है कि ईश्वर प्रलय नहीं चाहता। अगर वह प्रलय नहीं चाहता तो समाजको कालप्रवाहके और ईश्वरके अनुकूल होना ही है।

हिंदुस्तानके लोग तो भावुक हैं ही, लेकिन दुनिया भरमें किस किताबकी सबसे ज्यादा प्रतियाँ खपी हैं? टॉल्स्टॉय, लेनिन आदिका साहित्य खपता है, लेकिन बाइबिलके सामने उसका कोई हिसाब नहीं है। यानी यूरोप और अमेरिकामें भी अन्तर-प्रवाह आध्यात्मिक विचारका ही है। वह न होता तो आज दुनियामें जो भूख पैदा हुई है कि सारी दुनिया एक हो, वह पैदा न होती। इसलिये आज दुनिया उसी हालतमें है, जिसमें हम हैं। ऐसी हालतमें हमारा यह तर्क करना कि 'प्रार्थनामें बैठनेपर जब मन इधर-उधर जाता है तो प्रार्थनामें बैठे ही क्यों' बिलकुल वाहियात है। हमें श्रद्धा रखनी चाहिये और ईश्वरसे सीधा सम्पर्क स्थापित करना ही चाहिये।

प्रार्थनाके आकार-प्रकार आदिके बारेमें मुझे कुछ नहीं सुझाना है। जिस मुँहको जो शब्द खींचते हैं, वह उन्हीं शब्दोंद्वारा प्रार्थना करे।

हमारी प्रार्थना

हमने यहाँपर जो प्रार्थना चलायी है, उसमें 'ईशावास्य-उपनिषद्' 'स्थितप्रज्ञ'के लक्षण और 'नाममाला' हैं। नाममालामें भगवान्‌के कुल नाम आ जाते हैं, जो सारी दुनियामें मानव-समूहमें चलते हैं। सिर्फ भारतके ही नहीं, सारी दुनियाके नामोंका उनमें समावेश है। फिर व्रत बोले जाते हैं। यह प्रार्थनाका अंश नहीं है। उसमें सिर्फ याद है। नाममालाके लिये भी मेरा आग्रह नहीं है। दुनियामें अनेक नाम चलते हैं। लोग विष्णुसहस्रनाम ले सकते हैं, और भी भगवन्नाम ले सकते हैं।

इस प्रार्थनामें ईशावास्य और स्थितप्रज्ञके लक्षण बोलते हैं। इन दोनोंको आज भारतकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु मान सकते हैं। मैंने समूचे भारतका जो साहित्य देखा और सब भाषाओंका जो श्रेष्ठ साहित्य देखा। संस्कृतका भी देखा तो उस सबमें इन दोसे बढ़कर कोई चीज नहीं मिली। इसका मतलब यह नहीं कि सबको इन्हींका उच्चारण करना चाहिये। संतोंकी वाणी बोलें, तो भी पूर्ण समाधान मिल सकता है। लेकिन सबके मूलमें ये दो मूलभूत चीजें हैं।

प्रार्थनामें रोज वही-वही चीज बोलते हैं, उससे एक प्रकारकी यान्त्रिकता आती है, इसलिये उस वक्त अगर दूसरा कुछ काम करें तो क्या हर्ज है? आजकल ऐसे अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं।

कुछ जमातें प्रार्थनामें नहीं आतीं। उन्हें प्रार्थनामें आकर्षण नहीं है। लेकिन हम जब मेवोंमें काम करते थे, तो उनके साथ नमाजमें भी भाग लेते थे, कुरान भी पढ़ते थे और हमें उससे प्रेरणा मिलती थी। उनकी प्रार्थना गाते हुए हमारी आँखें गीली हो जाती थीं।

प्रार्थनाको किसी सम्प्रदायकी चीज मान लेनेका कोई भाव हमारे मनमें नहीं है। मैं मौन-प्रार्थनाको बेहतर मानता हूँ। पर मैं यह नहीं मानता कि कुछ जमातें आयें और आकृष्ट हों, इसलिये स्थितप्रज्ञके श्लोक छोड़ दिये जायें। प्रार्थनामें लोग क्यों नहीं आते, इसका कारण ढूँढ़ना चाहिये।

हम मूलतः हिंदू हैं, ऐसा कुछ लोग मानते हैं; लेकिन हम तो कहते हैं कि हम भारतीय हैं। यह हमारा दावा है। भारतीयके नाते ही हम 'जय जगत्' की पुकार कर रहे हैं।

हिंदू होनेमें दोष क्या है? हमने तो हिंदू-धर्म ही ऐसा देखा, जो किन्हीं ग्रन्थोंका, महापुरुषका आधार नहीं मानता। किसी पुरुष-विशेषको नहीं मानता। यह मैंने विभिन्न धर्म-सम्प्रदायके लोगोंके सामने भी कहा है। जो क्राइस्टको माध्यम नहीं मानेगा, वह क्रिश्चियन नहीं होगा—यह निश्चित है। जो **'बुद्धं शरणं गच्छामि'** नहीं कहेगा, वह बौद्ध नहीं होगा—यह पक्की बात है। भगवान्‌को तो छोड़ ही दिया, लेकिन बुद्धकी शरणकी बात कही गयी है। हिंदू-धर्ममें यह नहीं है। उसमें आप कृष्णका नाम लें, न लें—परवा नहीं। रामायण पढ़ें, न पढ़ें—हर्ज नहीं। बीसों ग्रन्थ हैं; उन्हें मानें, न मानें—कोई बात नहीं। आखिर तो संन्यास ही है। हिंदू-धर्म कहता है—**'वेदानपि संन्यस्यति'**—वेदोंका भी संन्यास करना होगा। वेदकी पोथी भी गङ्गाजलको अर्पित करनी होगी या किसी योग्य मनुष्यको देनी होगी। अपने पास रखनेकी, बोझ ढोनेकी जरूरत नहीं। हिंदू-धर्ममें जो तान्त्रिकता हो, उसे हम छोड़ें। उससे तो हमें मुक्त ही होना है।

सब धर्मोंमें एक आध्यात्मिक अंश है। उसमें भी हिंदू-धर्म काफी मजबूत है। उसे छोड़नेकी जरूरत नहीं है। स्थितप्रज्ञके श्लोकमें तो आदर्श उपस्थित है। ईशावास्यमें परमात्माकी उपासनाका विचार रक्खा गया है। उसमें किसी प्रकारकी संकुचितता नहीं है।

आज हिंदुस्तानमें यह प्रार्थना चलती है, तो केवल इसी कारण कि किसी पंथको अनाकृष्ट नहीं होना चाहिये। इसमें दोष क्या है—सिवा इसके कि यह संस्कृतमें है? संस्कृत अनुभवी लोगोंकी भाषा है। भावात्मक एकता स्थापित करनेकी संस्कृतमें बड़ी भारी शक्ति है। इसका अर्थ यह नहीं कि यही प्रार्थना चले और संस्कृतमें ही चले। मौन-प्रार्थना हो या प्रार्थना ही न हो, इससे ज्यादा अनाग्रह और क्या हो सकता है? मैं ये तीनों चीजें कहता हूँ।

प्रार्थनामें कौन आते हैं, कौन नहीं—यह हम देखते ही नहीं। मेरे सामने कौन बैठा है, यह मैं नहीं देखता। लेकिन सिफारिश जरूर करूँगा कि प्रार्थनाके लिये मैं बैठूँगा, आपलोग आयेंगे तो अच्छा है। किंतु यह प्रार्थना रखनी चाहिये और फलानी प्रार्थना चलनी चाहिये या नहीं चलनी चाहिये, ऐसा आग्रह नहीं रखूँगा। उसके बदलेमें क्या चलता है, यह जरूर पूछूँगा। सामूहिक प्रार्थना और व्यक्तिगत प्रार्थना—दोनों होनी चाहिये।

प्रार्थना भक्तिका विषय

भक्तिके बिना प्रार्थनाका कोई स्थान ही नहीं है। इसलिये प्रार्थना भक्तिका विषय है। भारतकी जो चौदह-पंद्रह भाषाएँ हैं, जिनमें कुछ साहित्य है, उनका सर्वोत्तम साहित्य आध्यात्मिक है। भारतमें ऐसा कोई प्रान्त नहीं है, जहाँ संस्कृतिका आधार भक्ति न हो।

मैं देखता हूँ कि हिंदुस्तानका आधार ही टूट जायगा, अगर यहाँ आध्यात्मिक साहित्य न रहे। एक बार मैंने कहा था कि हिंदुस्तानसे रामायणको हटा दो, वह टिक नहीं सकेगा। तुलसीदासने उत्तर भारतमें कितना बड़ा काम किया! नास्तिकताका एक प्रवाह आ रहा था। उससे यहाँ-की सम्पूर्ण संस्कृतिपर हमला हो रहा था। उसे कोई राजा-महाराजा या लश्कर नहीं रोक सका; लेकिन तुलसी-रामायणने उस हमलेको रोक दिया। उसमें जो आधार है, जो हमारी पृष्ठभूमि है, उसे नहीं छोड़ना चाहिये। उन ग्रन्थोंमें भक्तिभावका जो आधार है, वह टूटेगा तो मैं नहीं समझता कि भारत टिक सकेगा। वही भारतको जोड़नेवाली एक कड़ी है और भारतको विश्वके साथ जोड़नेवाली कड़ी भी।

मूल आधार श्रद्धा

जिन श्रद्धाओंको लेकर हम प्रार्थना करते हैं, वे जीवनको व्यापक बनाती हैं। एक डूबता प्राणी जो भी चीज हाथ लगे, उसे पकड़ लेता है। वह सोचता ही नहीं कि यह चीज कितनी मजबूत है।

मैं जब साबरमतीमें डूब रहा था, तब किनारेपर जो लड़का खड़ा था, उससे मैंने कहा कि 'बापूको संदेश दे दो—विनोबा मर रहा है और आत्मा अमर है।' फिर बहते-बहते मैं दूसरे किनारेपर चला गया, जहाँपर घास थी। मैंने हाथसे घासको पकड़ा और सहज भावसे पाँव रुक गया। सार यह कि डूबता हुआ व्यक्ति सोचता नहीं है कि उसे जो आधार मिल रहा है, वह कितना मजबूत है। वह बिल्कुल श्रद्धासे उसे पकड़ लेता है। अगर वह श्रद्धा

गलत साबित हुई तो वह डूबता है। सही साबित हुई तो बच जाता है। इस तरह डूबते हुए प्राणीका तैरनेका जो प्रयत्न है, उसमें प्रार्थना आती है। किसीको इस आधारकी जरूरत मालूम नहीं होती। लेकिन गांधीजीने प्रार्थनाको अपना मुख्य आधार माना।

बापूका 'राम'

गांधीजीने मरते समय 'राम' नाम लिया, जो करोड़ोंके कण्ठसे निकलता है। भारतमें एक सामान्य जड-बुद्धि, अपढ़, पतित जीव जिस नामका आश्रय लेता है, उसी नामपर उन्होंने श्रद्धा रक्खी। यह नाम हल्का पड़ता है, यह कहकर निर्गुण-निराकारका नाम या और कोई आदर्श नाम नहीं पकड़ा। जब उनसे कोई पूछता था कि 'राम कौन है?' तो वे कह देते थे—'अन्तर्यामी'।

अपनी प्रार्थनामें हम पहले 'रघुपति राघव राजा राम' बोला करते थे, तो मुझसे भी लोग पूछते थे कि 'राम कौन है?' मैं जवाब देता कि दशरथ नामक पिताने अपने पुत्रको जिसका नाम दिया, वह 'राम' है। मतलब यह कि दशरथके पुत्रके पहले भी वह था और उसका नाम दशरथने अपने बेटेको दिया। इस तरह मैं 'राम' नामका मण्डन करता था।

जिसका मण्डन और समर्थन करना पड़ता है, उसके बजाय दूसरा कोई ऊँचा नाम लिया जा सकता था; लेकिन गांधीजीने सोचा कि जो नाम करोड़ों लोग लेते हैं, उसीको हम लेंगे। उस नाममें उन्नत अर्थ भरें तो वह शब्द इन्कार नहीं करेगा। गांधीजीने बिलकुल नम्र होकर अन्तमें 'राम' नाम लिया। उन्होंने एक प्रार्थना लिखी है, जिसका आरम्भ है, 'हे नम्रताके सम्राट्!' वे परम नम्र थे।

भगवत्-प्रार्थनाके सम्बन्धमें अनेक सत्पुरुषोंके जो अनुभव हैं, उनकी उपेक्षा करके या उनपर अविश्वास रखकर हम चलें—यह मेरे लिये उद्धत विचार होगा।

अनुभवकी बात

अनुभवकी बात कहूँ। मैंने अपनी माँको देखा है कि वह दिनभर काम करती थी और दिनमें १२ बजे सबको खिलाकर खाती थी। खानेके पहले एक छोटे-से स्थानपर, जिसे देवघर कहते हैं, बैठती थी और मराठीमें एक छोटी-सी प्रार्थना बोलती थी। नामदेवने कहा है—'गाऊ नेणे कलाकुसरी'—'मैं कुछ कलाकुसरी नहीं गाता हूँ।' कान पकड़कर कहता हूँ। उसी तरह मेरी माँ कहती 'अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक! अपराध क्षमा कर।' बोलते हुए मैंने कई दफा देखा कि उसकी आँखोंमें आ जाते थे। मुझे बहुत ग्रन्थ पढ़नेको मिले हैं, जो अनु[illegible] भरे हैं और सत्संगति भी मिली है। उन सबको [illegible] ओर रखकर, जिनसे मुझे यह साक्षात् भक्तिका शिक्षण [illegible] उनके दर्शनको दूसरी ओर रखकर तौलता हूँ तो दर्शनका वजन बाकी सबसे ज्यादा होता है।

इस (भूदान) आन्दोलनमें जिस दृढ़ताके सा[illegible] लगा हूँ, उसमें कोई शक्ति नहीं होती, अगर वह [illegible] मुझमें न होती।

भक्तिसे मुक्ति

हमें समझना चाहिये कि शक्तिका स्रोत कहाँ है। [illegible] शक्ति चाहते हैं, भक्ति नहीं। पुण्यफल चाहते हैं, पु[illegible] नहीं। मुक्ति चाहते हैं, शुद्धि नहीं। ये सब मान[illegible] आलस्यके लक्षण हैं। इसलिये हमें तो उल्टा ही सोच[illegible] चाहिये। हमें शक्तिकी जरूरत नहीं है। शक्ति तो भगवान[illegible] भरी हुई है। हमें अपनी शक्तिसे काम करते रहना [illegible] सिर्फ भक्ति करनी है। शक्तिकी आकाङ्क्षा रक्खे बिना भ[illegible] करनी चाहिये। मुक्तिकी आकाङ्क्षा रक्खे बिना शुद्धि कर[illegible] चाहिये।

'नामघोषा'के आरम्भमें भगवान्‌का नाम स्मरण करने[illegible] पहले भक्तोंका स्मरण किया है और कहा है कि हम उन्ह[illegible] भक्तोंको नमस्कार करते हैं, जो मुक्तिसे निःस्पृह हैं और रसमयी भक्तिकी याचना करते हैं—

'मुक्तित निस्पृह जिटो सेहि भकतक नमो। रसमय मागोहो भकति॥'

जहाँ मुक्तिकी निःस्पृहता है, वहाँ और किसी प्रकारकी स्पृहा नहीं हो सकती। यह वैराग्यकी पराकाष्ठा है। देहसे वैराग्य, विषयोंसे वैराग्य, सामाजिक प्रसिद्धि, सम्पत्तिकी वासना, लोकसंग्रहकी वासना आदि सबसे वैराग्य हो ही जाता है और सब वासनाएँ टूट ही जाती हैं। भक्तिका रास्ता सीधा है। उसपर चलनेसे मुक्ति आ जाती है।

मौन प्रार्थना

हमने कश्मीरमें देखा कि सेनामें खाना-पीना सब साथ

वलता है, लेकिन ईश्वरका नाम लेनेका मौका आया तो सब अलग हो जाते हैं, अपनी-अपनी अलग प्रार्थना करते हैं। यानी ईश्वर एक अलग करनेवाला—डिवाइडिंग—तत्त्व हो गया। इसमें ईश्वरकी बड़ी निन्दा है। हम यह समझ सकते हैं कि और कामोंमें हम अलग हों, लेकिन ईश्वर-स्मरणके समय अलग होना बड़ा विचित्र है।

सभी धर्मवालोंको इकट्ठा करनेकी दृष्टिसे हमने मौन प्रार्थना चलायी। मौनसे पहले हम कहते हैं कि 'हम परमात्मासे सत्य, प्रेम, करुणाकी माँग करें।' यह प्रार्थनाका भाव है। बादमें हम कहते हैं कि अगर नाम लेना है तो जिस नामकी जिसे आदत है, वह उस नामका चिन्तन करे। मौन प्रार्थनामें नाम लेना प्रधान अंश नहीं है। सत्य, प्रेम, करुणा समान अंश हैं। कोई 'ईश्वर' कहे, 'अल्लाह' कहे, 'गॉड' कहे; लेकिन उसका अर्थ एक ही है कि सत्य, प्रेम, करुणा देनेवालेसे हम वर माँग रहे हैं, एक ही चीज माँग रहे हैं।

जिसे सहज भावसे जो सूझता है, उसके अनुसार वह प्रार्थना करे। वास्तवमें प्रार्थना अपने हृदयकी ही होती है। लेकिन हमें संतोंकी वाणी सूझती है; क्योंकि वे आध्यात्मिक भाषा ज्यादा जानते हैं। इसलिये हम उनका आधार लेते हैं। वास्तवमें तो हमें निजकी प्रार्थना करनी चाहिये, मातृभाषाकी नहीं। यह सारा एक प्रयत्नमात्र है। प्रार्थना यानी जीवका ईश्वरको कृतज्ञतापूर्वक याद करनेका एक प्रयत्न है। प्रार्थना हृदयसे सहज भावसे निकलती है। ('आश्रम-दिग्दर्शन')

प्रार्थनाका प्रभाव

(लेखक—पण्डित श्रीगङ्गाशंकरजी मिश्र, एम्० ए०)

प्रह्लादकी प्रार्थनापर ही भगवान्ने 'नरसिंह'रूप धारण किया और द्रौपदीके करुण क्रन्दनपर ही 'बसनरूप भए स्याम।' किंतु आजकलकी बुद्धि यह सब माननेको तैयार नहीं। उसके ऊपर विकासवादका भूत सवार है। उसके अनुसार प्रार्थनाका आरम्भ आदिम मनुष्योंमें भूत-प्रेतके भय और टोना-टामरसे हुआ। पर वास्तवमें यह मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है, जो 'विश्वसे भी विशाल और इतिहाससे भी प्राचीन है।' अनेक प्रकारकी विपत्तियोंसे घिरे रहनेके कारण मनुष्य किसी अलौकिक शक्तिका सहारा लेना चाहता है, जिसमें सभी प्रकारके कार्योंके सुसम्पन्न करनेकी क्षमता है। इसे ही लोगोंने भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारा है। जो लोग ऐसी शक्तिमें विश्वास नहीं करते, उनके लिये प्रार्थनाका कोई प्रश्न ही नहीं। जो लोग विश्वास करते हैं, उनके मनमें भी प्रार्थनाके सम्बन्धमें कई शङ्काएँ उठती हैं। यहाँ मुख्यतः उन्हींपर कुछ विचार करना है।

पहले तो कर्मविपाकका प्रश्न आता है। कहा जाता है कि 'लोग जो कुछ करते हैं, उसका फल उन्हें अवश्य भोगना पड़ता है। क्या उसमें प्रार्थना हस्तक्षेप कर सकती है?' कर्म-सिद्धान्तानुसार यह नहीं कहा जा सकता कि मनुष्यको नये कर्म करनेकी स्वतन्त्रता ही नहीं, वस्तुतः वह पिछले कर्मोंका फल भोगते हुए नये कर्म भी करता रहता है, जिनका फल उसे आगे भोगना पड़ता है। किसी व्यक्तिको चोरीके अपराधमें कैदका दण्ड मिलता है, परंतु जेलमें वह नियमोंका ठीक-ठीक पालन करता है और अपना आचरण तथा व्यवहार भी सुधारता है; फलतः उसे अनेक सुविधाएँ दी जाती हैं और कभी-कभी कैदकी अवधि भी कम कर दी जाती है। फिर यदि कोई प्रार्थना करता है तो यह समझना चाहिये कि यह उसके पिछले सत्कर्मोंका ही फल है। बिना सत्कर्मोंके सद्बुद्धि नहीं होती और बिना सद्बुद्धिके भगवत्-प्रार्थनाकी प्रेरणा नहीं मिलती।

कहा जाता है कि ब्रह्माण्डका संचालन, नियन्त्रण एवं नियमन प्रकृतिके नियमानुसार होता है। उसके विरुद्ध प्रार्थना कैसे सफल हो सकती है? परंतु यहाँ यह भुला दिया जाता है कि सद्बुद्धिद्वारा प्रेरित प्रार्थना ऐसे नियमोंके विरुद्ध नहीं होती। फिर आजकलके वैज्ञानिक भी यह मानने लगे हैं कि मनका प्रभाव प्रकृतिपर भी पड़ता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैकडुगलने इसे स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार किया है (Body and mind)। फ्रांसीसी दार्शनिक वर्गसोंने दिमागकी तुलना 'टेलीफोन एक्सचेंज'से की है। वह लिखता है कि 'दिमाग ऐसा ...

द्वारा बाह्य सम्पर्ककी प्रतिक्रिया नियन्त्रित होती है—(Matter and Memory).

जब कोई बालक अपने पितासे कुछ माँगता है, तब वह नहीं सोचता कि पिताके पास वह वस्तु है या नहीं। वह तो केवल अपनी आवश्यकता दिखलाता है; पर साथ ही उसे यह ज्ञान अवश्य रहता है कि पिता उसकी पूर्ति कर सकता है। इससे बालकके हृदयकी सरलता प्रकट होती है। यही उत्तर इस शङ्काका भी हो सकता है कि 'जब भगवान् अन्तर्यामी हैं, तब प्रार्थनाकी आवश्यकता ही क्या?'

प्रायः कहा जाता है कि जब किसी प्राकृतिक नियममें परिवर्तनकी प्रार्थना की जाती है, तब उसका अर्थ है कि जो नियम बनाये गये, उन्हें ही भङ्ग करनेका आग्रह। परंतु एक ओर तो, 'प्रकृतिपर विजय'का दावा किया जाता है और दूसरी ओर मनुष्य जो कर सकता है, उसे भी करनेकी शक्ति ईश्वरमें नहीं मानी जाती, इससे बढ़कर बेसमझी क्या हो सकती है? सर आलिवर लॉज, जार्ज स्टोक एवं डाक्टर जीन्स-जैसे प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकोंने इस विषयपर अपने ग्रन्थोंमें बहुत कुछ प्रकाश डाला है।

एक आपत्ति और उठायी जाती है कि 'भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न प्रकारकी प्रार्थनाएँ करते हैं, जो कभी-कभी एक-दूसरेके विरुद्ध भी होती हैं। ऐसी स्थितिमें किसकी प्रार्थना स्वीकार की जाय?' इसका उत्तर सरल है। जो उचित है, जिसमें अधिकांश लोगोंका हित है, वही स्वीकार की जाती है। युद्धमें दोनों पक्ष विजयकी प्रार्थना करते हैं और दोनोंकी विजय सम्भव नहीं; इसलिये सीधा सिद्धान्त है 'यतो धर्मस्ततो जयः।' भले ही आरम्भमें यह दिखायी न दे, किंतु अन्ततः होता है वस्तुतः ऐसा ही।

एक यह आपत्ति भी उठायी जाती है कि 'प्रार्थनासे कर्ताकी निर्बलता और पराधीनता व्यक्त होती है, उसमें आत्मविश्वास नहीं आता।' परंतु इसके प्रतिकूल प्रार्थनासे आत्मामें बल आता है, यह बहुतोंका अनुभव है।

प्रायः लोग समझते हैं कि प्रार्थनामें सदा किसी प्रकारकी याचनाका भाव रहता है; परंतु सभी प्रार्थनाओंके लिये ऐसा नहीं कहा जा सकता। कितनी ही निष्काम प्रार्थनाएँ हैं। प्रार्थनासे प्रायः मनको शान्ति मिलती है।

प्रार्थना हृदयसे हो तो फिर कहना ही क्या; किंतु ऐसा न भी हो तो प्रार्थना व्यर्थ नहीं जाती—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।

शब्दमें बड़ी प्रबल शक्ति होती है। स्तुतिसे लोग फूल जाते हैं और निन्दासे बिगड़ पड़ते हैं; किंतु स्तुति और निन्दा है तो केवल शब्द ही।

जो मत या सम्प्रदाय अनीश्वरवादी हैं, उनके यहाँ भी प्रार्थनाका महत्त्व स्वीकार किया गया है। बौद्धोंमें प्रार्थनाको 'प्रणिधान'की संज्ञा दी जाती है। बौद्धमतके महायान सम्प्रदायमें तो बुद्ध-मूर्तियोंकी प्रार्थनाका क्रम है। आदि शंकराचार्य अद्वैतवादी वेदान्तमतके समर्थक थे, परंतु उनके द्वारा रचित बहुतसे स्तोत्र बड़े ही मर्मस्पर्शी तथा हृदयग्राही हैं।

प्रार्थना केवल शब्दोंसे ही व्यक्त नहीं होती, उसका स्रोत हृदय है। तथाकथित वैज्ञानिक भले ही शब्दोंमें प्रार्थना न करें, पर उन्हें भी प्रकृति-संचालिका शक्तिके प्रति नतमस्तक होना पड़ता है। विकास-सिद्धान्तके प्रवर्तक डार्विनको प्रकृति-वैचित्र्य देखकर चकित होना पड़ा था। यह चकित होना ही एक प्रकारकी प्रार्थना है, भले ही वह शब्दोंमें प्रस्फुटित न हुई हो।

प्रार्थना व्यक्तिगत तथा सामूहिक—दोनों प्रकारकी होती है। आधुनिक विद्वानोंका मत है कि व्यक्तिगत प्रार्थनाके पहले सामूहिक प्रार्थना चली। पर प्रार्थनाका भाव प्रथम व्यक्तिमें ही प्रकट हो सकता है, समूहकी बात तो बादमें आती है। भेद दोनोंमें अवश्य है—व्यक्तिगत आभ्यन्तरिक है और सामूहिक बाह्य।

कुछ लोगोंका विचार हुआ कि वैज्ञानिक प्रयोगोंद्वारा प्रार्थनाका प्रभाव देखा जाय। सन् १८७२ में टिंडलने लिखा कि 'किसी अस्पतालमें दो वार्ड रक्खे जायँ। एकमें रोगियोंकी चिकित्सा औषधोंसे हो और दूसरेमें प्रार्थनाद्वारा।' किंतु इससे तो टिंडलकी मोटी बुद्धिका ही परिचय मिलता है। अब तो विज्ञान ही इससे आगे बढ़ गया है। इच्छाशक्ति या संकल्पका मन तथा शरीरपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। टेलिपैथीद्वारा दूसरेके मनके भाव जाने जा सकते हैं, फिर टिंडलके सुझावसे तो सच्ची प्रार्थनाका आधार ही नष्ट हो जाता है। उसमें आध्यात्मिकताका भाव ही नहीं रह जाता। प्रार्थनाके लिये श्रद्धा नितान्त आवश्यक है। किंतु इसमें श्रद्धाका स्थान शङ्का ले लेती है। अपने यहाँ तो रोगीको दवा देनेके साथ प्रार्थना भी चलती है—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

कहा जाता है कि एक बार मुगलसम्राट् अकबर जंगलमें शिकार खेलते हुए रास्ता भूल गये। उन्हें बड़ी भूख लगी। सामने एक किसानकी झोपड़ी दीख पड़ी, उन्होंने कुछ खाना माँगा। किसानकी स्त्रीने एक पनैथी और कुछ अचार दे दिया। अकबरको उसमें जो स्वाद आया, वह शाही व्यञ्जनोंमें नहीं। चलते समय उसने कहा कि 'जब तुम्हें कोई कष्ट हो तो दिल्लीमें अकबरके यहाँ चले आना।' संयोगवश कुछ दिनों बाद दुर्भिक्ष पड़ा, किसानका परिवार भूखों मरने लगा। स्त्रीने कहा कि 'कोई अकबर दिल्ली बुला गया था, उसके यहाँ जाओ।' भोला-भाला किसान दिल्ली पहुँचा और राजमार्गपर पूछने लगा कि 'अकबर कहाँ रहता है?' लोगोंने उसे पागल समझा। किसीने शाही महलकी ओर संकेत किया। जब वह वहाँ पहुँचा, तब देखा कि अकबर नमाज पढ़ रहा है। उसने पूछा कि 'वह क्या कर रहा है?' किसीने उत्तर दिया कि 'खुदासे दुआ माँग रहा है।' किसान तुरंत ही लौट पड़ा और सोचा 'जब वह स्वयं माँगता है तो मुझे क्या देगा। इसलिये मैं भी उसीसे क्यों न माँगूँ, जिससे अकबर माँग रहा है?' उसने भी प्रभुकी प्रार्थना की। रातमें उसे स्वप्न हुआ कि अमुक स्थानपर वृक्षके नीचे एक हँडिया गड़ी है, उसमें सोनेकी मुहरें हैं। उसने अपनी स्त्रीको सब हाल बताया। संयोगसे वहाँ एक चोर खड़ा था, जिसने सब बात सुन ली। उसी समय उस वृक्षके नीचे पहुँचकर उसने हँड़िया खोदी; पर देखा कि उसमें पत्थरकी गिट्टियाँ भरी हैं। वह बड़ा क्रुद्ध हुआ और उस व्यक्तिके घर जाकर छप्परमें एक छिद्रके द्वारा वह हँड़िया उसीपर उँड़ेल दी। वह जग पड़ा तो देखा कि छप्परसे सोनेकी मुहरें गिर रही हैं। कहा जाता है कि तभीसे यह कहावत चल पड़ी कि 'जब भगवान् देता है तब छप्पर फाड़कर देता है।' भले ही यह कोरी कहानी हो, पर भाव कितना सुन्दर है।

'बृहद्देवता'के अनुसार प्रार्थनामें प्रायः इष्टदेवका नाम उसके वंश एवं गुणोंका वर्णन रहता है—'स्तुतिस्तु नामरूपेण कर्मणा बान्धवेन च।' बिना इसका ज्ञान हुए उसका ध्यान ही कैसे हो सकता है।

प्रार्थनाके फलका अनुभव प्रायः होता है। स्वयं भगवान्ने इसका आश्वासन दिया है। गीतामें उनके वचन हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
(१८।६५)

श्रीमद्भागवतमें भी उन्होंने ही अपने श्रीमुखसे कहा है—

यथाग्निना हेम मलं जहाति
ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम्।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूय
मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम्॥
यथा यथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ
मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं
चक्षुर्यथैवाञ्जनसम्प्रयुक्तम्॥
(११।१४।२५-२६)

घनश्यामसे प्रार्थना

मोरपक्षवारे! सदा मोर पक्ष धारे रहौ,
मोरपक्ष धारि कबौं मोर कक्ष आओ तौ।
घनश्याम! घन श्याम सौ सुखद श्याम रंग,
श्याम उर आय श्याम! श्यामता दुराओ तौ॥
दुरौ जनि कुंजन-कदम्बन में 'द्विजकृष्ण'
दुरि उर मोरे दुःख-द्वंद्वन दुराओ तौ।
छाय कै छबीली छटा छपा में छपाकर-सी,
निज मुख-चंद-छबि मोरे उर छाओ तौ।

—कृष्णदत्त द्विवेदी 'द्विजकृष्ण' साहित्यरत्न

प्रार्थनामें अद्भुत शक्ति भरी है

[प्रार्थनाका मनोवैज्ञानिक अध्ययन]

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभास्कर, दर्शनकेसरी)

जिस प्रकार दण्ड, मुद्गर, डम्बल इत्यादि शारीरिक क्रियाओंद्वारा मनुष्यका शरीर सबल, स्वस्थ और पुष्ट होता है, अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुदृढ़ होकर नीरोगिता, सौन्दर्य और स्वस्थ रक्त बनता है, उपार्जन और उत्पादन आदि सांसारिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार प्रार्थना एक प्रकारका आध्यात्मिक व्यायाम है ।

प्रार्थनासे हमें आध्यात्मिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, ईश्वरके प्रति विश्वास बढ़ता है; हमारी आत्मश्रद्धा, दैवी शक्तियाँ, शील, गुण और दैवी विभूतियाँ अभिवृद्धिको प्राप्त होती हैं; हमारी इच्छाशक्ति सही दिशाओंमें विकसित होने लगती है ।

जैसे स्वच्छ जल सारी गंदगीको धोकर चाँदीकी तरह निखार देता है, वैसे ही शुद्ध हृदय और सात्त्विक वातावरणमें की गयी सच्ची प्रार्थनासे कलुषित मन और पापीकी आत्मा धुलकर स्वच्छ हो जाती है । पापीका उद्धार हो जाता है । अपराधीका अपराध दूर हो जाता है । कुपथगामी तथा अविवेकीके ज्ञानके नेत्र खुल जाते हैं ।

महात्मा तुलसीदासको जब उनकी नवयौवना पत्नी रत्नावलीने तिरस्कृत किया, तब तुलसीदासजीको अपनी अनियन्त्रित वासनापर बड़ी आत्मग्लानि हुई । उन्होंने आर्त हृदयसे प्रार्थना की । अपनी आत्मग्लानि साफ-साफ प्रकट करते हुए 'विनयपत्रिका'में लिखा—

अरे मूर्ख मन ! किसलिये वासनाकी कीचड़में दौड़ा-दौड़ा फिरता है ? श्रीहरिके चरणकमलोंके अमृतरसको छोड़कर विषयरूपी मृगतृष्णाके जलमें क्यों लौ लगा रहा है ! पशु-पक्षी, देवता, मनुष्य, राक्षस और अन्यान्य सभी योनियोंमें तू भटक आया—इन सबने तुझे वही विषय-भोग सिखाया, जिसके सेवन करनेसे सदा अनेक नरकोंमें जाना पड़ता है । कामनारूपी अग्निमें भोगरूपी घी डालनेसे वह कैसे शान्त होगी ? जितनी ही भोगोंकी प्राप्ति होगी, उतनी ही कामनाकी अग्नि भड़केगी । हे ईश्वर ! मुझे अब अपने रक्षणमें ले लीजिये—सद्बुद्धि दीजिये । हे प्रभो ! आपको मैं किस तरह विनती कहकर सुनाऊँ ? मन, वचन और कर्मसे उत्पन्न अपरिमित प्रकारके किये जानेवाले पापोंसे रक्षणके लिये मैं अब आपकी शरणमें आ रहा हूँ । मेरी रक्षा कीजिये ।'

इस प्रकार आर्त हृदयसे की हुई प्रार्थनाएँ मनको हलका करती हैं । मनमें जमे हुए पाप परमात्माके सामने प्रकट होकर हृदयके भारको हलका कर देते हैं । चित्तके विकार धुल जाते हैं । प्रार्थना हमारे विवेकको जाग्रत् करती है; क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध ईश्वरसे है ।

प्रार्थना दैवीशक्तिसे सम्बन्ध जोड़ती है

हमारी समस्त गुप्त शक्तिका केन्द्र हमारा गुप्त मन है; यह सदा जाग्रत् रहता है । इसमें एक बार बैठी हुई बात सदाके लिये हमारे जीवनका अङ्ग बन जाती है । वह छिपे-छिपे हमें सदा प्रभावित करती रहती है । मनुष्य जन्मतः बुरा नहीं है; उसमें गुप्त ईश्वरीय शक्ति, जिसे हम 'अन्तरात्मा' कहते हैं, इसी गुप्त मनमें निवास करती है ।

हमारी अन्तरात्मा अंदरसे बैठी-बैठी हमें सन्मार्गकी ओर बढ़ाती रहती है । जब हमारा विवेक जोर मारता है और हम अंदरसे एक गुप्त दैवी शक्तिका अनुभव करते हैं, तब वास्तवमें वह हमारे गुप्त मनमेंसे ही निकलती है । प्रार्थना हमारे इसी गुप्त दैवीशक्ति केन्द्रको जगाती है । हम ऐसा अनुभव करते हैं कि हम अपने परम पिता ईश्वरसे प्रत्यक्ष बातें कर रहे हैं—वहींसे आशा, साहस, उत्साह और सफलता पा रहे हैं । अंदरसे निकला हुआ विवेक हर प्रकारकी सफलताके लिये उर्वर क्षेत्र है ।

प्रार्थना हमारे अन्तर्यामी भगवान्को जगाती है । बाहर ईश्वरके किसी रूपका चित्र हो, चारों ओर प्रशान्त स्वच्छ वातावरण हो, भजनकी मधुर ध्वनि कर्ण-कुहरोंमें पड़ रही हो और हम ईश्वरकी प्रार्थनामें तन्मय हों तो भला हमारे मनके भगवान क्यों न जगेंगे ? वे अवश्य अपनी समस्त शक्ति हमें प्रदान करेंगे । प्रार्थनासे हमारी समस्त विरक्तियाँ दूर होती हैं । कारण यह है कि हमारी सोयी हुई आध्यात्मिक शक्तियोंका कवच हमारे साथ रहता है । प्रार्थनासे हमारे

अंदरसे एक गुप्त आध्यात्मिक प्रवाह (Spiritual current) निकलता है। उस दैवी शक्तिके प्रवाहके कारण हमारी चिन्ताएँ, व्याकुलताएँ, रोग, शोक, व्याधि और दुर्बलताएँ नष्ट हो जाती हैं। प्रार्थनासे अनेक रोग दूर होते हैं। जीर्ण रोग कम हो जाते हैं।

एक बार मुझे अपने पुत्रकी लंबी बीमारीके सिलसिलेमें दो सप्ताहके लिये दिन-रात शफाखाना (कोटा) में रहना पड़ा। मैं देखता—प्रातः सभी कर्मचारी, डाक्टर, कम्पाउन्डर, नर्स, नौकर और कुछ रोगी नियमित प्रार्थनामें सम्मिलित होते थे। एक, दो दिन तो मैंने सोचा कि शायद वैसे ही कोई गा रहा होगा। पर प्रतिदिन यही होता रहा, तब मालूम हुआ कि रोगियोंको दवाई देने और हर प्रकारकी वैज्ञानिक चिकित्सा करनेपर भी स्वास्थ्य और जीवन परमेश्वरके हाथ रहता है। उनके जीवन और स्वास्थ्य-लाभके लिये प्रतिदिन प्रार्थना की जाती है और यह फलदायक सिद्ध हो रही है।

डाक्टरने बताया, 'हम तो केवल वही दवाइयाँ देते हैं, जहाँतक हमारी पहुँच है। जो कुछ हम कर सकते हैं, वह सब चिकित्सा कर देनेके बाद ईश्वरीय शक्तिसे रक्षा और स्वास्थ्यकी माँग करते हैं। हर प्रकारका स्वास्थ्य और शक्तिका केन्द्र ईश्वर ही है। वही जन्म देता है, वही स्वास्थ्य-लाभ भी करा सकता है। और तो और, प्रत्येक नुस्खेमें प्रारम्भमें ही यह लिख दिया जाता है कि 'ईश्वर करे यह रोगी इस नुस्खेसे दुरुस्त हो जाय।'

पाश्चात्त्य मनोवैज्ञानिकोंमें बहुत-से आध्यात्मिक प्रवाहमें पूर्ण विश्वास रखते हैं। उनका विचार है कि सब प्रकारकी शक्ति हमें ईश्वरसे ही मिलती है। वही हमारे आत्मविश्वास-की जड़ है। यदि परमात्मासे सम्बन्ध स्थापित करनेकी कोई विधि मनुष्यके हाथमें है तो वह प्रार्थना ही है। प्रार्थना हमारी कमजोरियोंको दूर करती है। हमारे अव्यक्त प्रदेश—गुप्त मनका नवनिर्माण करती है। हम गुप्त मनमें ईश्वरीय प्रेरणाएँ रक्खें तथा सबके हित और सुखकी कामना करें तो हमारे गुप्त मनका सही दिशाओंमें निर्माण हो सकता है। प्रार्थना और पूजाका मनोवैज्ञानिक आधार स्वयं अपनी शुभ भावनाओं-को—देवत्वको ही विकसित करना है। प्रार्थनाकालमें किया गया अभ्यास, शुभ शब्द और कर्म जल्दी ही हमारे स्वभाव-का अङ्ग बन जाता है। प्रार्थना हमारे विवेकको बल देकर हमें ईश्वरत्वके पास लाती है और हमारी समस्त दुष्प्रवृत्तियोंको दबा देती है। प्रार्थना हमारे कुविचारों और कुसंस्कारोंका आवरण हटाकर, मल पदार्थोंको दूरकर महानताकी स्थितिमें ले जाती है। विधिपूर्वक प्रार्थना करते रहनेपर मनुष्यकी पवित्रता, महानता और उत्कृष्टता निरन्तर बढ़ती रहती है। यह आध्यात्मिक उन्नति धीरे-धीरे हमें स्वास्थ्य, सुख, शान्ति और संतुलनकी ओर ले जाती है।

गीता भी एक प्रकारकी प्रार्थना ही है

भक्तोंकी महिमा निराली है। हमारा समस्त भक्ति-साहित्य, कवियोंके भजन, भक्ति-कविताएँ एक प्रकारकी प्रार्थनाएँ ही हैं। इसीलिये उनका सीधा प्रभाव होता है। सुनकर या पढ़कर मनमें बड़ी शान्ति और धैर्य उत्पन्न होता है।

गीताजीका महागीत—वह सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ एक प्रकार भक्ति और प्रार्थनाका संगीत ही है। भक्त परमानन्दस्वरूप परमात्मासे प्रार्थनाके सुकोमल तारोंसे ही अपना सम्बन्ध जोड़ता है। भक्तोंकी वाणियोंमें प्रार्थनाएँ ही गूँज रही हैं। तनिक महाप्रभु श्रीचैतन्यके हृदयको टटोलो, भक्त मीराँबाईकी प्रार्थनाओंको नापो ! तुलसी, सूर इत्यादि भक्त कवियोंकी पीयूषवर्षिणी वाणी भगवान्की ओर—प्रकाशकी ओर जानेका ही प्रयत्न तो है। अनेक भक्तों, तपस्वियों, साधकोंने प्रार्थनाएँ की हैं और ईश्वरकी समीपताका अपने हृदयमें ही अनुभव किया है।

यदि हम मनकी शान्ति और संतुष्टि चाहते हैं तो हमें प्रतिदिन प्रार्थनासे ही प्रारम्भ करना चाहिये।

यदि हम पूर्ण स्वास्थ्य और दीर्घजीवनके इच्छुक हैं, तो ब्राह्ममुहूर्तमें प्रार्थना करना आवश्यक है। भय, विपत्ति, रोग, शोक, चिन्ता, व्याधिसे मुक्ति पानेका तथा पूर्ण स्वस्थता एवं आत्यन्तिक सुख प्राप्त करनेका अमोघ साधन प्रार्थना है।

मनोविज्ञानकी दृष्टिसे प्रार्थना एक प्रकारका आत्मसंकेत या आटोसजेशन है। हमारे जीवनमें संकेत या सूचनाएँ (Suggestions) ही हमें आगे बढ़ाते हैं। हम चुपचाप अपनेको जैसा कहते या मानते जाते हैं, वैसे ही निरन्तर बनते जाते हैं। हमारी प्रार्थनाएँ भी एक प्रकारकी सूचनाएँ या संकेत ही हैं। हमारी अपनी ही भावनाएँ हमारे मुखसे निकलकर हमारे गुप्त मनका नव-निर्माण करती हैं।

पुरुषार्थपूर्ण प्रार्थनाएँ ही किया करें

हममेंसे अधिकांश व्यक्ति भिखारियोंकी तरह प्रार्थनाएँ किया करते हैं। बिना कुछ किये, बिना श्रमके ही ईश्वरसे

बहुत-सा माँगना चाहते हैं। बिना श्रम या कार्य किये माँगनेकी प्रवृत्ति छोड़ देनी चाहिये। दाता-याचकवाली प्रार्थनाएँ विशेष लाभदायक नहीं होतीं।

हिंदू आध्यात्मिक क्षेत्रोंमें भौतिक सुखकी याचनावाली प्रार्थना लाभदायक नहीं मानी जाती। हिंदू-प्रार्थनाका तात्पर्य है—एक उच्च कल्याणकारी आदर्श अर्थात् यथार्थ लोकसेवाके लिये उत्कृष्ट पथगामी बनना। हमारा जीवन 'बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय' हो। हिंदू-प्रार्थना पुरुषार्थपूर्ण प्रार्थना है। काम करते जाओ और 'राम' भजते जाओ। काम और 'राम' साथ-साथ चलाओ। 'राम'के प्रतापसे काम (लक्ष्यप्राप्ति) शीघ्र फलवान् होगा, इच्छा-शक्तिमें दृढ़ता रहेगी, अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें उत्साह और शक्ति रहेगी। यही दृष्टिकोण अपनाने योग्य है। हम प्रार्थनाएँ हमारे गुप्त पुरुषार्थको बढ़ानेवाली होनी चाहिये। प्रार्थना एक प्रकारसे हमारा आध्यात्मिक पुरुषार्थ ही है। वह हमारी योग्यता, कर्मण्यता और जागरूकताको बढ़ानेवाली है। अतः हम ईश्वरसे यही प्रार्थना करें—

'हे प्रभु! हमारे शरीरमें और भी शक्ति दीजिये। हमारे मनमें सात्त्विकता, साहस और पौरुष भरिये। जिन ऊँचे लोकोपयोगी आदर्शोंकी सिद्धिके लिये चल रहे हैं, उनमें सफलताके लिये अधिकाधिक मनोबल दीजिये। हमें सफल बनाइये। मजबूतीसे लक्ष्यसिद्धिके लिये संघर्ष कर दीजिये। उन्नतिशील बनाइये।'

श्रीरामचरितमानसका प्रार्थना-रहस्य

(लेखक—डा० श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम्० ए०, डी० लिट०)

प्रार्थनाका अर्थ है—याचना करना, माँगना। जब हम करुणामय प्रभुसे कुछ माँगते हैं, तब हमारी उनसे प्रार्थना होती है। प्रार्थना और पूजामें अन्तर है। यदि प्रभुके प्रति हमारी अभेद भक्ति है तो पूजामें हम तादात्म्य-अनुभवका प्रयास करेंगे। यदि प्रभुको पति या स्वामी, सखा या सेव्य भावसे हम स्मरण करते हैं, यदि प्रभुके प्रति राजा दशरथके समान हमारी 'भेद-भगति' है तो पूजामें हम इस अनुभवको सफल बनानेका प्रयत्न करेंगे कि प्रभु तुम 'वह' हो और हम 'यह' हैं। पूजाके दो अङ्ग हैं—एक भक्ति और दूसरा भजन। **'तस्मिन् प्रीतिः'**—प्रभुके प्रति प्रेम या अनुराग भक्ति है; **'तस्य प्रियकार्यसाधनम्'**—प्रभुका जो प्रिय कार्य हो, उसके साधनमें पूर्ण योग देना, अपनेको समर्पण कर देना—यह भजन है।

परंतु प्रार्थना एकाङ्गी है। प्रार्थनामें हम माँगते हैं। प्रभुको दयासिन्धु मानकर, उन्हें सर्वशक्तिमान् मानकर, उनको अनन्त हाथवाला मानकर उनसे स्वमति-अनुसार हम कुछ माँगते हैं। श्रीदुर्गासप्तशतीका अङ्गसहित पाठ करते समय एक मन्त्रमें माँ भगवतीसे भक्त **'परमं सुखम्'** की याचना करता है। मुझे सुन्दर स्त्री मिले, अथवा मुझे धनवान् वर मिले, मेरे पुत्रको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हो, मेरी पुत्रीका वैवाहिक जीवन सुख-सम्पन्न हो, मुझे अकस्मात् धनराशि प्राप्त हो, मेरा एक सुन्दर मकान बन जाय, मेरा व्यवसाय चमक उठे, मैं नीरोग हो जाऊँ, मेरे पास मोटर हो, मुझे विदेशयात्राका सौभाग्य मिले, मेरे ऊपर अमुक वैभवसम्पन्न व्यक्तिका वरद हस्त हो—इनमेंसे किसी भी इच्छाकी पूर्ति या अपनी-अपनी भावनाके अनुसार ऐसी ही अन्य किसी इच्छाकी पूर्ति **'परमं सुखम्'** हो सकती है। और यह भी **'परमं सुखम्'** हो सकता है कि प्रभुकी याद मुझे हर समय बनी रहे, नील गगन देखूँ तो नीलमणि मुरलीमनोहर याद आ जायँ; वक्र चन्द्रमा देखूँ तो शशिभूषण कैलासपतिकी स्मृति हो जाय; भूखमें, प्यासमें, तुष्टिमें, सुरूपमें, कुरूपमें, धूपमें और छायामें मैं भगवती माँ दुर्गाके साक्षात्कारकी अनुभूति करूँ। **'परमं सुखम्'** क्या है,—इसका निश्चय करना व्यक्तिकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्थितिपर निर्भर करता है।

प्रभुका ध्यान बड़े भाग्यसे आता है। शास्त्रकारोंका मत है कि ऐसा एक क्षण, जिसमें प्रभुकी सच्ची याद हो, लाखों मुद्राओंसे भी अधिक मूल्यवान् है। इसलिये प्रभुके साक्षात्कार—अनुभवके अमूल्य क्षणमें यदि हम उनसे अयोग्य प्रार्थना करें तो हम बुद्धिमान् नहीं कहलायेंगे। यदि किसीके पास एक सौ रुपयेका नोट है और वह दौड़कर चाटवालेके पास जाकर आतुरभावसे कहता है,—'यह लो नोट, मुझे जल्दीसे एक पत्ता चाट बना दो,' तो उसे देखनेवाले यही कहेंगे कि यह महामूर्ख है। इसने सौ रुपयेके नोटका मूल्य नहीं जाना, इसी प्रकार हम भी जिन्होंने—

बड़े भाग मानुष तन पावा।

—वे स्वस्थ अवस्थामें, 'गृह कारज नाना जंजाला' से मुक्त होकर, प्रभु-कृपासे सुमति पाकर, अवसर निकालकर, सौभाग्यवश प्रभुको एक क्षणके लिये स्मरण कर सकें; परंतु उस अमूल्य क्षणको तुच्छ अथवा अयोग्य प्रार्थनामें नष्ट कर दें तो बड़े दुःखकी बात होगी और बुद्धिमान् पुरुषोंकी दृष्टिमें हम दयाके पात्र होंगे। इसलिये सुअवसर पाकर हमें प्रभुसे क्या प्रार्थना करनी चाहिये, प्रभुको 'महादानि अनुमानि' उनसे हमें क्या माँगना चाहिये—इसका ठीक उत्तर जानना हमारे कल्याणके लिये आवश्यक है।

करुणानिधान प्रभु श्रीरघुनाथजीके दर्शन कठिन हैं; परंतु उनके ग्रन्थावतार श्रीरामचरितमानसका दर्शन सुलभ है; इसलिये उपयुक्त यही है कि श्रीरामचरितमानससे हम इस प्रश्नका उत्तर सादर पूछें।

उत्तरकाण्डमें श्रीरघुनाथजीका वचन है—

सब के प्रिय सेवक यह नीती। मोरें अधिक दास पर प्रीती॥

प्रभुको अपने दास प्यारे हैं; और प्रेमकी यह पहचान है—जिसका जो प्यारा हो, उसे वह अपने पास रक्खे। रावण-वधके उपरान्त जब प्रभु अयोध्या लौटने लगे, तब—

कपिपति नील रीछपति अंगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान॥
कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि।
सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि॥

अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई॥

उनको प्रभु विमानपर बिठाकर अयोध्या ले आये और वे प्रभुके राज्याभिषेकके बाद भी छः महीनेतक अयोध्यामें ही रहे। 'प्रभु-पद-प्रीति'के कारण उनको यह पता न रहा कि कब सुबह हुई और कब शाम—

जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति।

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह संत मन माहीं॥
तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु नाए॥
परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे॥

और अन्तमें कहा—

अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति

इसके बाद उन्होंने एक-एकको विदा किया। पहले सुग्रीवको, विभीषणको। फिर अंगदकी बारी थी। लेकिन—

अंगद बैठ रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला॥

फिर—

जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ।
हियँ धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ॥

जब वे लोग चले गये, तब अंगदने हाथ जोड़कर, अति विनीतभावसे सजल नयनसे 'प्रेम-रस बोरि' वचन कहे—

अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुना सींव।
प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव॥
निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ॥

श्रीरघुनाथजीने—करुनासींवने—अंगदकी 'प्रेम-रस-बोरि विनीत प्रार्थना' न मानी और उसे विदा कर दिया। बाली अङ्गदको प्रभुके हाथोंमें सौंपकर मरा था।

यह तनय मम सम बिनय बल कल्यान प्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए॥

इसी अङ्गदको परम चतुर समझकर प्रभुने आज्ञा दी थी—

बालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा॥

और उसने लङ्का जाकर बड़ा भारी काम किया। उसने राक्षसोंकी हिम्मत तोड़ दी। इससे पहले मारुतसुतका पराक्रम देखकर राक्षस कुछ सहम गये थे।

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका॥

परंतु अङ्गदके रावण-मद-मर्दनके पश्चात् राक्षसोंकी दशा शोचनीय हो गयी। सगर्व यह कहकर हँसनेवाले राक्षस कि—

'कहहु कवन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा॥

—भयसे व्याकुल ही नहीं हुए, बल्कि वे विशे[ष] प्रकारसे भय-व्याकुल हो गये। और दो-चार राक्षस [ही] नहीं, बल्कि सब-के-सब—

जातुधान अंगद पन देखी। भय ब्याकुल सब भए बिसेखी
बालि तनय बुधि बल गुन धामा॥

इसके अतिरिक्त अङ्गदने युद्धमें बड़ी सेवा की थी। रावणके यह पूछनेपर कि—

पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥

राक्षस-दूतने उत्तर दिया था—

पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी॥
जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला॥

और फिर कहा—

अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुमहि जीतै रन माहीं॥

गिनती अगर लिखी जाय तो अठारह पद्म इस प्रकार लिखे जायँगे १८,००,००,००,००,००,००,००० । इतने बंदर नहीं थे, बल्कि यूथप थे । जिस सेनाके बंदर ऐसे थे कि एक-एक विश्वविजयी रावणको जीत सकते थे—

नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं॥

—उस सेनाके सेनापति कैसे अतुल बलशाली, अनन्त पराक्रमी रहे होंगे; परंतु श्रीरामचरितमानसके लङ्काकाण्डमें युद्ध-वर्णन करते समय इन अठारह पद्म सेनापतियों और उनके 'बल बिपुल बिसाला' वाले अनुयायियोंकी कथा विस्तार-भयसे नहीं कही गयी । उसमें तो विशेषतः दो वानर वीरोंके पराक्रमकी थोड़ी बहुत कथा है—अंगद और हनुमान्की—और वह भी उनके दाँत, लात और घूँसोंकी । जिस अंगदको रामदूत होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उसको गोस्वामीजीने सुबेल पर्वतवाली सुन्दर झाँकीमें 'बड़भागी' कहा है—

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥

ऐसे सेवकको, जिसे प्रभुकी ऐसी विलक्षण सेवा और ऐसे दिव्य सम्पर्कका—प्रभुकी चरणसेवाका सौभाग्य प्राप्त हो चुका था और जिसने प्रेम-विह्वल होकर कहा—

'.................. मोहि जनि तजहु भगत हितकारी॥
मेरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता॥'

और जिसके आँसुओंने प्रभुपर ऐसा असर किया कि 'रघुपति करुनासींव' स्वयं सजलनयन हो गये; उसको करुणानिधानने विदा कर दिया । अङ्गदकी प्रभु-पद-प्रीति याद करके काकभुशुण्डिजीका भी दिल पिघल गया और उनको भी ऐसा लगा कि कम-से-कम इस अवसरपर तो करुणानिधान कुलिशसे भी कठोर हो गये ।

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि॥

एक ओर यह सेवक, यह भक्त अङ्गद, जो दिलमें यह अरमान लेकर चला गया कि प्रभुने मुझे इतनी प्रार्थना करनेपर भी रुकनेको नहीं कहा और दूसरी ओर भक्तवर भरत, जो प्रभुके वनवासका कारण बने !

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि राम सीय बनवासू॥

जो प्रभुकी वनयात्रामें काम न आये, जो सीताकी खोजमें काम न आये, जो रावण-युद्धमें प्रभुके काम न आये और जिन्होंने बिलखकर मारुतसुतसे कहा—

अहह दैव मैं कत जग जायउँ। प्रभु के एकहु काज न आयउँ॥

परंतु जिनकी याद करके करुणानिधान प्रेमसे विह्वल हो गये और विनीत प्रार्थना करते हुए विभीषणके प्रति आँखोंमें आसू भरकर बोले—

.... सजल भए द्वौ नयन बिसाला॥
तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात॥
तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि।
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि॥
बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर॥

भक्त अङ्गद और भक्तवर भरत—एकके प्रति 'समदरसी करुणामय' प्रभुका हृदय कुलिससे भी कठोर हो गया और दूसरेके प्रति कुसुमसे भी कोमल !

बात छोटी थी, और बस इतनी कि अङ्गदने प्रभुसे प्रार्थनामें कहा—

.... पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ॥

अङ्गदकी इच्छा थी कि मैं इस संसार-समुद्रसे तर जाऊँ। इसी आशासे उसे प्रभुके पदपङ्कज प्रिय थे । वह भवसागर पार होना चाहता था । लेकिन भक्तवर भरतकी प्रार्थना थी—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

राम-पद-रतिके सामने भक्तवर भरतने मोक्षको भी तुच्छ समझा और उसे ठुकरा दिया। भरतकी निष्काम प्रेम-भक्ति थी। अङ्गदके अनुरागरूपी चन्द्रमामें स्वार्थका कलङ्क था।

इस प्रकार करुणानिधान प्रभु श्रीरघुनाथजीने स्वयं सच्ची और शुद्ध प्रार्थनाका रहस्य श्रीरामचरितमानसमें निर्णय करके हमारे भक्तिपथपर प्रकाश डाला है। सिवा करुणानिधानके यह और कौन कर सकता था?

यही प्रार्थना-रहस्य है। अब हम अपनी प्रार्थनाको इस कसौटीपर रखकर देख लें कि कैसी प्रार्थना प्रभुकी दृष्टिमें हमें कौन-सा स्थान देगी।

आदर्श प्रार्थना और प्रार्थनाके आदर्श

(लेखक—श्रीश्रीराम माधव चिंगले, एम्० ए०)

प्रार्थनाका अर्थ है—जीवात्माका परमात्माके साथ सक्रिय, अनन्य भक्ति-प्रेममय सम्बन्ध। आदर्श प्रार्थना साधककी ईश्वर-प्राप्तिके लिये परम आकुलता या आर्त्तताकी भावनाकी अभिव्यक्ति है। सच्ची हृदयसे निकली हुई प्रार्थना तुरंत फलदायिनी होती है।

प्रार्थना मनुष्यकी जन्मजात सहज प्रवृत्ति है। इसका इतिहास मनुष्यके समान ही प्राचीन है। प्रार्थनाकी वृत्ति देश-कालसे सीमित नहीं, वह विश्वव्यापक है।

आदिमकालसे ही अनेक संकटोंसे ग्रस्त और विशाल नैसर्गिक शक्तियोंसे आक्रान्त मानव अपनेसे श्रेष्ठ शक्तियोंके प्रति नतमस्तक होकर उनकी प्रसन्नताके लिये प्रार्थी रहा है।

धर्म-भावनाओंके विकासके साथ ही मनुष्यकी प्रार्थना-वृत्ति भी परिमार्जित होती गयी—यहाँतक कि वह मनुष्य-जीवनका स्थायीभाव बन गया, संकटतक ही सीमित न रहा।

आज तो युग-युगान्तरोंकी तपस्याके फलस्वरूप प्रार्थनाका निकृष्ट, निखरा हुआ स्वरूप एक उज्ज्वल आदर्शके रूपमें हमारे सामने है; इसके कारण हम जानते हैं कि प्रार्थना कैसी होनी चाहिये और कैसी नहीं होनी चाहिये।

आदर्श प्रार्थना यन्त्रवत् की हुई या तोतारटंत स्वरूपकी नहीं होती, अधिकतर हम प्रार्थनाके स्तोत्र या मन्त्र यन्त्रवत् बिना उनका अर्थ ध्यानमें लिये पढ़ जाते हैं। क्या पढ़ा, इसका भी हमें ध्यान नहीं रहता। इसमें मनोयोग नहीं होता। मुँहसे प्रार्थना, मनका विषयोंमें भ्रमण—यह है यन्त्रवत् प्रार्थनाका स्वरूप। इससे भी किंचित् लाभ होता है, पर आदर्श प्रार्थना इससे ठीक विपरीत होती है। इसमें शरीर, मन, वाणी—तीनोंका सहयोग होता है। तीनों अपने आराध्यदेवकी सेवामें एकरूप होते हैं। ऐसे महाभागके शरीरसे होनेवाली प्रत्येक कृति अपने आराध्यदेवके आज्ञापालनार्थ और उनकी प्रसन्नताके लिये होती है। प्रार्थनाकालमें शरीरका रोम-रोम प्रेमसे पुलकित होता है, मनमें उठनेवाली प्रत्येक वृत्ति भगवत्प्रेमसे सराबोर होती है; मुँहसे निकलनेवाला प्रत्येक शब्द भगवत्प्रेमसे परिप्लुत होता है।

आदर्श प्रार्थना सकाम नहीं होती। वह पूर्णतया निष्काम होती है। सच्ची प्रार्थना स्वार्थका सौदा नहीं। वह अपने आराध्यदेवके प्रति हृदयमें उफनते हुए प्रेमका आविष्करण है। यत्किंचित् भी सकामभाव या स्वार्थभाव प्रार्थनाको उसके सच्चे और विशुद्ध स्वरूपसे भ्रष्ट कर देता है।

आदर्श प्रार्थनामें अपने आराध्यदेवके स्वरूपका अज्ञान न होकर पूर्ण ज्ञान होता है। अतएव उनके माहात्म्यसे, उनकी अगाध महिमासे साधक पूर्णतया परिचित होता है। इसके फलस्वरूप वह जानता है कि उसके आराध्य विश्वम्भर-देव स्वयं ही उसके योगक्षेमका भार वहन करते हैं, बिना उसके कहे ही वे उसके हिताहितका पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। इसलिये इस विषयमें साधक स्वयं निश्चिन्त होता है—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि एक अबोध बालक अपने-आपको अपने माता-पिताकी स्नेहमयी गोदमें सुरक्षित पाता है। भगवान् तो भक्तके लिये अभिन्न मातृ-पितृ-हृदय होते हैं। अथवा वे उसके सर्वस्व होते हैं—**'त्वमेव सर्वं मम देवदेव।'**

सच्ची प्रार्थनामें किसी प्रकारका दम्भ, दिखावा या मिथ्याचार नहीं होता। वह इन बातोंसे कोसों दूर होती है। वह अपने आराध्यदेवके सम्पर्कमें ही कृतकृत्यता मानती है।

सच्ची प्रार्थना सप्ताहमें एकाध बार या दिनमें एक-दो बार की जानेवाली बाहरी या दिखाऊ धार्मिकताकी खानापूरी नहीं होती। वह तो हृदयकी वस्तु है। इसलिये वह अहर्निश

चलनेवाली है। बिना प्रार्थनाका एक क्षण भी साधकको सबसे बड़ी हानिके रूपमें प्रतीत होता है। पानीसे बाहर मछलीकी जो स्थिति होती है, वही उपासककी अपने आराध्य प्रभुकी विस्मृतिमें होती है—'तद्विस्मरणे परमव्याकुलता।'

आदर्श प्रार्थनामें साधक अपने इष्टदेवको कहीं दूर आकाशमें बैठा हुआ नहीं समझता। वह तो उनकी संनिधिका निरन्तर अनुभव करता रहता है। इस अनुभवके कारण उसका जीवन आमूल बदल जाता है। हजार नेत्रोंसे सर्व-साक्षी परमात्माको देखनेवाला वह किस प्रकार कोई अधर्मा-चरण या पापकर्म कर सकता है। अज्ञानी मनुष्य समझता है कि उसके एकान्तमें किये हुए पापोंको कोई नहीं देखता। कितनी भ्रान्त धारणा है यह!—'**तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषम्।**'

सच्ची प्रार्थनामें रत साधक अपने स्वार्थकी ओर ताकता तक नहीं। वह परहितमें ही अपना स्वार्थ समझता है। सच तो यह है कि उसमें स्व-परभाव रहता ही नहीं। सर्वत्र वह प्रेममय परमात्माके ही दर्शन करता है, चराचरको वह उन्हींसे व्याप्त पाता है। '**हरिरेव जगज्जगदेव हरिः**'—इस भागवत अद्वैत-भूमिकासे उसके सब व्यवहार होते हैं।

सच्ची प्रार्थनाके प्रभावसे साधकके सभी आचार, विचार और उच्चार दिव्यत्वसे ओतप्रोत रहते हैं। उसकी छोटी-मोटी क्रियाओंमें भी सहज ही विश्वकल्याणका स्रोत उमड़ता रहता है। वह आदर्श मानव हो जाता है, वह अज्ञानी जगत्के तापत्रयसे पीड़ित मानवों और नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त सच्चिदानन्द प्रभु—इन दोनोंके बीच सेतु बन जाता है। ऐसे ही परम-भागवतोंद्वारा समय-समयपर विश्वोद्धार होता रहता है।

प्रार्थनाकी महिमाका जितना वर्णन किया जाय, उतना ही थोड़ा है। हृदयसे निकली हुई सच्ची प्रार्थनामें अगाध शक्ति होती है; क्योंकि हृदयकी प्रबल भावशक्तिमें पत्थरको भी पिघलानेकी ताकत होती है। फिर यहाँ तो जिनके प्रति यह प्रार्थना की जाती है, वे जीवके जन्म-जन्मान्तरके परम हितैषी, अनन्त करुणा, दया, क्षमा और कृपासे सम्पन्न, परम कारुणिक, भक्तवत्सल, दयानिधान और करुणानिधान साक्षात् परमपिता परमात्मा ही होते हैं। तब भला, उनपर इसका प्रभाव क्यों न पड़ेगा। वे तो ऐसी सच्ची प्रार्थनाकी राह ही देखते रहते हैं। सच्ची प्रार्थनाकी कमी हममें है, उसकी पूर्ति करनेवाले परमात्मामें नहीं। यही कारण है कि सच्चे प्रार्थना-भावके उदित होते ही पूर्ण भगवत्कृपासे सिक्त होकर मूक वाचाल हो जाता है और पङ्गु भी गिरिवर लाँघ जाता है। साधारणतया असम्भव दिखायी देनेवाले कार्य भी वह ली[ला]... कर दिखाता है।

अब हम मानवसमाजके सम्मुख प्रार्थनाके चिर आ[दर्श] उपस्थित करनेवाले अगणित परम भागवतोंका पा[वन] स्मरण भी कर लें।

सच्ची प्रार्थना की स्वनामधन्य बालक ध्रुवने, जि[सने] अपनी प्रार्थनाके बलपर ध्रुवपद प्राप्त करके अपना न[ाम] सार्थक कर दिखाया।

सच्ची प्रार्थना की बालक प्रह्लादने, जिसने अप[नी] प्रार्थनाके बलपर अपने विरुद्ध प्रयुक्त हुई अपने पिताक[ी] सारी आसुरी शक्तिको विफल कर दिया और जिसके भक्ति-प्रेमके वशवर्ती होकर भगवान्ने सहर्ष नृसिंहावतार धारण किया।

सच्ची प्रार्थना की गजेन्द्रने, जिसके आर्त्तपुकार सुनकर भगवान् स्वयं बैकुण्ठ छोड़कर दौड़ पड़े और उन्होंने प्राणघातक संकटसे अपने भक्तकी रक्षा की।

सच्ची प्रार्थना की द्रौपदीने, जिसके लज्जारक्षणार्थ स्वयं भगवान्ने अम्बरावतार धारण किया।

सच्ची प्रार्थना की व्रजगोपाङ्गनाओंने, जिन्होंने अपनी सगुण-साकार आराध्य मञ्जुल मूर्तिके प्रेमके सामने ज्ञान और मुक्तिको भी ठुकरा दिया और जो आजतक परम प्रेमरूपा भक्तिका नित्य आदर्श बनी हुई हैं।

सच्ची प्रार्थना की कुन्तीने, जिन्होंने निरन्तर विपत्तिकी ही माँग की, ताकि सम्पत्तिके मदमें कहीं अपने आराध्यदेवकी विस्मृति न हो जाय।

सच्ची प्रार्थना की राजा रन्तिदेवने, जिन्होंने परदुःखक[ातर] होकर दुखियोंका दुःख दूर करनेमें ही अपना जीवन बित[ाया] और भगवान्से दुखियोंका दुःख अपने सिरपर ले[नेका] ही वरदान माँगा।

सच्ची प्रार्थना की प्राचीन यूनानके तत्त्वदर्शी महा[त्मा] सुकरातने! आप भगवान्से यह प्रार्थना किया करते थे— 'हे प्रभो! मेरा हित किसमें है, इसका मुझे पता नहीं। [मेरा] अहित किसमें है, इसका भी मुझे पता नहीं। मैं स्वयं अ[पना]

हिताहितके विषयमें अबोध हूँ । जिसमें मेरा हित हो, वही आप कृपया मेरे बिना कहे ही मेरे लिये करें । जिसमें मेरा अहित हो, वह मेरे कहनेपर भी आप मेरे लिये न करें ।' प्रार्थनाका कितना यथार्थ और महान् आदर्श है यह !

सच्ची प्रार्थना की ईसामसीहने, जिन्होंने कहा कि 'हे प्रभो ! मेरी इच्छा और मेरा संकल्प नगण्य हैं । मेरे जीवनमें आपकी ही इच्छा, आपके ही संकल्पकी पूर्ति कीजिये ।' यों इन्होंने हमें मानवके अहंभावकी क्षुद्रताका पाठ सिखाया है ।

सच्चे प्रार्थनाप्रेमी थे महात्मा गांधी, जो कहा करते थे कि 'मैं भोजनके बिना रह सकता हूँ, किंतु प्रार्थनाके बिना नहीं । प्रार्थना मन और आत्माका भोजन है ।'

प्रार्थनाके आदर्शका यह अल्प दिग्दर्शन पर्याप्त है । दुनियाके असंख्य प्रार्थनाप्रेमी महापुरुषोंने हमारे सामने सच्ची प्रार्थनाके आदर्श उपस्थित किये हैं । उन्हींके पदचिह्नोंका अनुसरण करके हम भी प्रार्थनाके बलपर अपने क्षुद्र जीवनको उदात्त तथा महान् बना सकते हैं ।

प्रार्थना कैसे—क्या ?

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

आप चाहें तो इसमें 'कब ? और कहाँ ?'—ये दो प्रश्न और सम्मिलित कर ले सकते हैं । प्रार्थना कब की जाय—सबेरे-शाम, दिनमें-रातमें या केवल रविवार अथवा शुक्रवारको ? प्रार्थना कहाँ की जाय—घरमें, मन्दिरमें, वृक्षके नीचे या खुले आकाशके नीचे ? आसनपर—वेदीपर या भूमिपर ही खड़े होकर ? प्रार्थना कैसे की जाय—खड़े होकर या बैठकर ? घुटनेके बल बैठकर या आधा झुककर ? हाथ बाँधकर (दोनों बगलमें दबाकर) या हाथ जोड़कर ? नेत्र बंद करके या नेत्र खुले रखकर ? इन सबके बाद यह प्रश्न कि प्रार्थना क्या की जाय ? कौन-सा पद्य, श्लोक या गद्य बोला जाय ?

ये प्रश्न आपको व्यर्थ लग सकते हैं; किंतु इनका अपना महत्त्व है । मेरे एक परिचित हैं । एक संस्थाका वे संचालन करते हैं । मुझसे उन्होंने कई बार आग्रह किया कि मैं उनकी संस्थाके सदस्योंके लिये प्रार्थना निश्चित कर दूँ या लिख दूँ । प्रार्थनाका स्वरूप निश्चित कर देनेके साथ यदि मैं उसका समय, स्थान तथा प्रार्थना करनेकी पद्धति भी निश्चित कर देता तो उन्हें बहुत प्रसन्नता होती; किंतु मैं उन्हें प्रसन्न नहीं कर सका । वे मुझसे कुछ असंतुष्ट हैं; क्योंकि मैं उनकी माँग पूरी नहीं कर सका ।

हिंदूधर्ममें त्रिकाल संध्या करनेका विधान है । प्रातः, सायं तथा मध्याह्नमें संध्या की जाय । कहाँ और कैसे बैठ अथवा खड़े होकर संध्या की जाय, संध्यामें किन मन्त्रोंसे सूर्यका स्तवन हो—यह भी निश्चित है । मुसलमान-धर्ममें नमाज कब पढ़ी जाय, कहाँ किस ओर मुख करके पढ़ी जाय, कैसे-कैसे शरीरकी मुद्रा बनाते हुए पढ़ी जाय और उसमें कौन-कौन सी आयतें पढ़ी जायँ—यह सब निश्चित है । इसी प्रकार ईसाई, यहूदी आदि दूसरे धर्मोंमें तथा विभिन्न संस्थाओंमें भी प्रार्थनाका समय, स्थान, ढंग तथा स्वरूप बहुत कुछ निश्चित हैं । अतएव इन बातोंको सर्वथा उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता ।

प्रार्थना सामूहिक होती है तथा व्यक्तिगत होती है । जब प्रार्थनाका रूप सामूहिक हो, उसके सम्बन्धमें समय, स्थान, प्रार्थना करनेकी पद्धति एवं प्रार्थनाके शब्द निश्चित करने ही पड़ेंगे । एक धर्म या समाज-संस्था अपने सदस्योंके लिये भी यह सब निश्चित कर देती है । सदस्य सामूहिकरूपमें तो उन नियमोंका पालन करते ही हैं, व्यक्तिगतरूपसे भी उन्हीं नियमोंका अनुवर्तन करते हैं ।

यहींपर हमें वन्दना, स्तुति तथा प्रार्थनाका जो अन्तर है, उसे समझ लेना चाहिये । ये बहुत थोड़ा अन्तर रखते हैं; किंतु वह अन्तर उपेक्षणीय नहीं है । वन्दनाका अर्थ है—प्रणमन । हम जिसकी वन्दना करते हैं, उसके जो आभार-उपकार हमारे ऊपर हैं, उनको व्यक्त करते हुए, कृतज्ञता प्रकट करके हम उसे नमस्कार करते हैं । नमस्कारका अर्थ है—अपने अहंकारको प्रणम्यके सम्मुख झुका देना । कृतज्ञता नमस्कारका पूरक भाव है । स्तुतिका अर्थ है—प्रशंसा । इसमें हम जिसकी स्तुति कर रहे हैं, उसके गुणोंका, उसकी महिमाका वर्णन प्रधान रहता है । प्रार्थनाका अर्थ है—याचना करना । हम अपने लिये कोई दया, कृपा आदि चाहते हैं और उसे माँगते हैं ।

हिंदू-धर्मकी दूसरे समस्त धर्मोंसे यह विशेषता है कि इसमें रुचिभेद तथा अधिकार-भेदको सम्मान दिया गया है। जो पुनर्जन्म न माने तथा अधिकार-भेद स्वीकार न करे, वह हिंदू हो; तो भी उसमें हिंदुत्व नहीं है कठिनाई-से ही दो मनुष्योंकी रुचि सर्वथा समान होती है; क्योंकि प्रार्थनामें हमें अपने लिये कुछ माँगना है, हम अपनी रुचि-की वस्तु माँगेंगे, तभी हमारी माँग सच्ची होगी और उस माँगमें बल होगा। इसलिये प्रार्थना व्यक्तिगत क्रिया है। एक समूह एक ही माँग करे, यह आप नियम बना दे सकते हैं; लोग आपके द्वारा निश्चित शब्दोंको दुहरा दे सकते हैं; किंतु वह शाब्दिक व्यायाम होगा, प्रार्थना नहीं होगी। यही कठिनाई थी, जिसके कारण मैं अपने उन संस्था-संचालक परिचितकी बात मानकर उन्हें संतुष्ट नहीं कर सका।

सामूहिकरूपसे वन्दना की जा सकती है। सामूहिक-रूपसे किसीकी स्तुति भी की जा सकती है; किंतु सामूहिकरूप-से जब प्रार्थना की जाती है, उसमें प्रार्थनापन अर्थात् हृदयसे निकली माँग बहुत कम रह जाती है।

प्रार्थना कब की जाय? इसका ठीक-ठीक उत्तर यह है कि जब आपका हृदय व्याकुल हो, जब आप जगन्नियन्तासे कुछ पानेको सचमुच समुत्सुक हों, वही प्रार्थनाका सबसे उत्तम समय है। वह दिन हो या रात्रि, इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। वैसे जीवनको ही प्रार्थनामय होना चाहिये। हमारी प्रत्येक क्रिया प्रभुको समर्पित होनी चाहिये। 'तुझे जो कराना हो, इस यन्त्रसे करा!'—हमारा प्रत्येक क्षण इस प्रार्थनासे परिपूत होना चाहिये। जबतक ऐसा नहीं हो जाता, रात्रिमें निद्रासे पूर्व तथा प्रातः निद्रात्यागके तुरंत पश्चात्‌के क्षण प्रार्थनाके सर्वोत्तम क्षण हैं। प्रार्थनासे शयन तथा प्रार्थनासे जागरण, जीवनको प्रार्थनामय बनानेका यह प्रथम सोपान है।

प्रार्थना कहाँ की जाय? जहाँ आपका चित्त प्रभुके सम्मुख उपस्थित होनेको आतुर हो उठे, वहीं प्रार्थना कीजिये। ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ वह दीनदयाल उपस्थित नहीं है। यह दूसरी बात है कि आप कोलाहलमें, अशान्त वातावरणमें चित्तको एकाग्र करके प्रार्थना नहीं कर पाते। अतएव जहाँ आप चित्तको एकाग्र करके प्रार्थना कर सकें, उस समीपतम स्थानपर प्रार्थना करें। यदि आपने रात्रिमें सोते समय तथा प्रातः उठते समय प्रार्थनाका नियम किया है तो अपने शयन-कक्षमें प्रार्थना कीजिये। अपनी शय्यापर ही बैठकर भी आप प्रार्थना कर सकते हैं, यदि ऐसा करनेमें आपका चित्त एकाग्र होता हो।

प्रार्थना कैसे की जाय? जैसे भी आप संसार तथा शरीर-को भूलकर केवल परमात्माके सम्मुख रह सकें। यह बात आपपर ही निर्भर है कि आपको कैसे प्रार्थना करना अनुकूल पड़ता है। कुछ लोगोंको खड़े-खड़े प्रार्थना करना प्रिय लगता है तो कुछको स्थिर बैठकर। कुछ लोग नेत्र खुले रखना पसंद करते हैं, कुछ बंद रखना। कुछ हाथ जोड़े रखना चाहते हैं और कुछ हाथोंको ढीला छोड़ देना चाहते हैं। बीमार व्यक्ति लेटे-लेटे भी प्रार्थना कर सकते हैं। आप कहाँ, कैसे, किस ओर मुख करके, कैसे हाथ रखकर, किस वस्तुके ऊपर स्थित होकर प्रार्थना करते हैं—इसका कोई महत्त्व नहीं है। महत्त्व इसका है कि आप प्रार्थनामें कितने तल्लीन हो सकते हैं। यह तल्लीनता जैसे भी बढ़ती हो, वैसा करना चाहिये। उदाहरणके लिये निद्रात्यागके पश्चात् प्रार्थना करनी है। मल-मूत्रका वेग प्रबल हो तो पहले उसे दूर कर लीजिये। मुखका स्वाद बुरा हो तो पहले कुल्ला कर लीजिये; तब प्रार्थनामें ये शारीरिक आवश्यकताएँ आपका ध्यान नहीं खींचेंगी। यदि यह सब न हो तो आप निद्रा-त्यागके तत्काल बाद भी प्रार्थना कर सकते हैं।

प्रार्थना क्या की जाय? प्रायः लोग कुछ पद्य या श्लोक रट लेते हैं, कोई शब्दावली कण्ठ कर लेते हैं। प्रारम्भमें ऐसी प्रार्थना बहुत रोचक लगती है; किंतु थोड़े समयमें प्रार्थनाके शब्दमात्र बोले जाते हैं। मनको उन शब्दोंका अर्थ स्पर्श ही नहीं करता। इस प्रकार प्रार्थना केवल एक शाब्दिक व्यायाम बनकर रह जाती है।

मैं यहाँ स्तोत्रों एवं मन्त्रोंकी शक्ति अस्वीकार नहीं करता हूँ। शब्दमें असीम शक्ति है। भगवन्नाममें, मन्त्रोंमें तथा शास्त्रीय स्तोत्रोंमें भी अचिन्त्य शक्ति है। इनके उच्चारणमात्र-से लाभ होता है। किंतु इनका उच्चारणमात्र प्रार्थना नहीं है। यह जप या पाठ है। जप और पाठ आप करना चाहते हैं तो बड़ी अच्छी बात है। जप तथा पाठमें भी महती शक्ति है; किंतु यदि आप प्रार्थना करना चाहते हैं तो जप-पाठ तथा प्रार्थनाका अन्तर आपको समझ लेना ही चाहिये।

जप मन्त्र तथा भगवन्नामका होता है। मन्त्र एकाक्षरसे लेकर मालामन्त्रतक होते हैं। मालामन्त्रोंमें कई-कई सौ श्लोक-तक हो सकते हैं। जैसे दुर्गासप्तशतीका पूरा ग्रन्थ एक

मालामन्त्र है। सभी सहस्रनाम मालामन्त्र माने जाते हैं। इन सबका जप किया जाता है। ग्रन्थोंका तथा स्तोत्रोंका पाठ होता है। दुर्गासप्तशती तथा सहस्रनाम मालामन्त्र होनेके साथ ग्रन्थ भी हैं; अतः इनका जप तो होता ही है, पाठ भी किया जाता है। पाठ स्पष्ट उच्चारणपूर्वक ही होता है। उपांशु तथा मानसिक पाठ नहीं होता। उपांशु एवं मानसिक केवल जप होता है। वाचिक जप तथा पाठ लगभग समान हैं।

प्रार्थना जप या पाठ नहीं है। यह आपके हृदयकी माँग प्रभुके सम्मुख उपस्थित करनेकी परिपाटी है। आप अपनी प्रार्थनामें श्लोक, पद्य, स्तोत्र रख सकते हैं; किंतु उन्हें प्रतिदिनकी प्रार्थनामें रखते-रखते पाठ मत बनने दीजिये। जब भी आपके हृदयके भाव उनसे जाग्रत् न हों, उन्हें बदल देनेमें संकोच मत कीजिये। उत्तम प्रार्थना वह है, जिसके शब्द पहलेसे निश्चित नहीं हैं। प्रार्थना करनेके समय जो भाव आपके चित्तमें उठते हैं, उन्हें शब्दोंमें व्यक्त होने दीजिये।

एक संत कहा करते थे—'तुम भगवान्‌से ऐसी भाषामें बात मत करो, जिस भाषाको वे समझते ही नहीं। तुम्हारी भाषा वे नहीं समझते तो तुम्हारी प्रार्थना ध्यान कैसे देंगे।'

बात समझमें आनी चाहिये। भगवान् शब्दाडम्बर भाषा एकदम नहीं समझते। आप संस्कृतके शब्द- बोलते हैं या हिंदीके पद्य, इससे भगवान्‌पर कोई प्रभाव पड़ता। भगवान् केवल एक भाषा समझते हैं और हृदयकी भाषा। अतएव प्रार्थना आपके हृदयकी भाषा होनी चाहिये। आपके हृदयके उद्गार हों और वे आपके शब्दोंमें, आपकी अपनी भाषामें अथवा उन शब्दोंमें आपके भावोंको पूर्णताके साथ प्रकट करते हों, व्यक्त। बस, ऐसी प्रार्थना कीजिये। ऐसी प्रार्थना ही सच्ची प्रभावकारी प्रार्थना होती है।

प्रार्थना

(रचयिता—डा० स्वर्णकिरण एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

आस्थाकी ढीली चूलें फिर ठीक करो।
करवट बदलनेवाली जिजीविषाओंको
दिशा-संकेतका अभाव
खल रहा है,
हृदयकी धड़कनें बढ़ रही हैं,
दर्दका हिमालय हिल रहा है,
पलकोंसे घबराहटकी यमुना निकलना चाहती है,
आँखें दिखाता हुआ मौसम
साधनाके अजरगन्धी स्तबकको
हटाना चाहता है,
मुमूर्षु इच्छाएँ
कच्चे पंख फड़फड़ा रही हैं,
चेतनाशून्य अस्थियोंमें
फिरसे गति-चेतना जाग्रत् करो।

रेलगाड़ीका धुँधुआता हुआ इंजन
ऊष्माकी कमीको महसूस करता
कागजी तितलियोंसे मन नहीं बहलता,
पुरानी चाभीसे संस्कृतिका
जंग लगा ताला नहीं खुल
कुण्ठित मनःप्रदेशको झकझोरकर
वैकुण्ठ-सुषमाकी गङ्गा बह
सामुद्रिक गर्जनके बीच
जगे हुए दरियाई घोड़े
संस्कृत पाथेय को
छीनना चाहते
अटल व्रतको टाल रहे हैं,
दुर्धर्ष संकल्पको झुकाते औ हिलाते
अपराजेय शक्ति-सूर्यको
चान्द्र मनसे, फिरसे निस्सृत
प्रसृत सम्भावनाएँ तो झंकृत होंगी

प्रार्थना—व्यापार नहीं, आज्ञा भी नहीं

'प्रभु ! मुझे सद्बुद्धि दो ।'

'परमेश्वर ! अपने पावन पदोंमें मुझे प्रेम दो !'

'भगवन् ! भवभयसे भीत इस जनका उद्धार करो !'

'रघुनन्दन ! अपने चरणोंमें आये इस दीनकी रक्षा करो !'

'कृष्ण ! कलिके दोषोंसे दलित इस पामरके चित्तमें विषयोंके प्रति वैराग्य दो !'

ये प्रार्थनाएँ हैं—उत्तम प्रार्थनाएँ। और सर्वोत्तम प्रार्थना है—

'अखिलेश्वर ! मुझे अपना यन्त्र बना लो—जो चाहे, कराओ; जो बनाना चाहो, बनाओ । केवल मेरे क्षुद्र अहंको अपने औदार्यमें लीन होने दो ।'

× × ×

'करुणासागर ! कष्ट तुम्हारे मङ्गल विधान हैं—जानता हूँ; किंतु मेरे प्राण कायर हैं। मुझमें सहनेकी शक्ति अल्प है। कृपा करके इस दुःखको, इस क्लेशको, इस रोगको तो अब मिटा ही दो !'

'दयासिन्धु ! अभाव तुम्हारे आशीर्वाद हैं, किंतु अब सहा नहीं जाता । निखिल ऐश्वर्यधाम श्रीपति ! इतना अभाव दूर कर दो न ! यह अभिलषित इस अकिंचनका पूरा कर दो !'

'दीनबन्धु ! आपत्ति तुम्हारा वरदान है, पर प्राणोंमें उसे झेल लेनेकी क्षमता नहीं है । वह शक्ति नहीं देते हो तो अब यह विपत्ति विनिवारण करो ! यह अयश, यह स्वजन-वियोग सहा नहीं जायगा इस जनसे ! इस आँधीको अपने समर्थ करोंसे एक ओर हटा दो, स्वामी !'

ये भी प्रार्थनाएँ हैं—मध्यम कोटिकी प्रार्थनाएँ सही; किंतु आर्त तथा अर्थार्थीकी प्रार्थनाएँ वह गीता-गायक सुनता है और ऐसे प्रार्थियोंको भी वह 'उदार' ही मानता है। ऐसी प्रार्थनाएँ पूर्ण करनेमें भी उसे परिश्रम नहीं, प्रसन्नता ही होती है ।

× × ×

'देवी मैया ! मुकदमा जीत जाऊँगा तो तुम्हारे मन्दिरपर घण्टा चढ़ाऊँगा ।'

'हनुमान् बाबा ! मेरा लड़का अच्छा हो जाय इस बीमारीसे तो आपको नारियल अर्पण करूँगा ।'

'औढरदानी सदाशिव ! मेरा काम बन जाय ! मैं दस हजार बिल्वपत्र आपको चढ़ाऊँगा ।'

यह अथवा ऐसी प्रार्थनाएँ—इतना जप करूँगा, इतना पाठ करूँगा, इतनी पूजा करूँगा, ऐसा यज्ञ करूँगा, यह उपहार अर्पित करूँगा—ये मनौतियाँ क्या हैं ? यह व्यापार नहीं है क्या ? इस सौदेबाजीको आप प्रार्थना कहते हैं ?

आप आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी—कुछ भी हों, केवल प्रार्थना क्यों नहीं करते ? देवतासे, भगवान्से सौदा क्यों करना चाहते हैं ? देवता लोभी है ? घूसखोर है ? कृपण है ? अथवा कुछ पाये बिना कुछ न करनेका अभ्यासी है ? देवतामें दयाकी, उदारताकी कमी है ? आप उस अकारण कृपालुकी असीम करुणापर आस्था करें तो आपकी प्रार्थना अवश्य सुनी जायगी ।

कुछ जप, दान, अनुष्ठान करना है—अवश्य करना चाहिये। कार्य सम्पन्न होनेपर कृतज्ञता-ज्ञापन स्वरूप कुछ करना चाहते हैं, करना ही चाहिये; किंतु देवतासे, जगत्पतिसे मनौती करके अपनेको हीनवृत्ति क्यों बनाते हैं ? प्रार्थना व्यापार नहीं है, उसे प्रार्थना रहने दीजिये ।

× × ×

'हे भगवन् ! यह दवा लाभ करे और मेरा रोग मिट जाय। इस वैद्यके हाथमें मेरे लिये यश दीजिये ।'

'लक्ष्मीजी ! इस वस्तुके व्यापारमें बाजारका यह भाव होना चाहिये । आप इतनी कृपा अवश्य करें !'

'माता सरस्वती ! शासकोंकी बुद्धि ऐसी कर दो कि वे यह प्रस्तावित उद्योग अमुक स्थानमें ही स्थापित करें । माँ ! इतनी सहायता मेरी आप करो ।'

'दुर्गा मैया ! इस मुकदमेमें मेरा यह गवाह गड़बड़ न हो ! आप ही मेरी लज्जा रख सकती हैं ।'

ये प्रार्थनाएँ हैं या आदेश ? देवताको, भगवान्को आपका अमुक कार्य अमुक ढंगसे ही करना चाहिये । आप काम करनेका ढंग भी सुझाते हैं । देवताकी सामर्थ्यपर भी

आपको भरोसा नहीं है। देवता दूसरे ढंगसे, दूसरी दवासे रोग दूर करें—बिना दवाके कर दें, आपको किसी अन्य रूपमें आर्थिक लाभ हो, आपकी समस्या हल करनेका आपके सोचे हुए मार्गसे भिन्न मार्ग बने—इतनी भी स्वतन्त्रता देवताको देना नहीं चाहते हैं—यह तो आज्ञा है, प्रार्थना नहीं है।

प्रार्थना कीजिये बिना कोई प्रतिबन्ध लगाये और उसकी उस कृपामयकी कृपापर विश्वास कीजिये। (डा० सि०)

प्रार्थनाका चमत्कारी प्रभाव

(लेखक—श्रीमुन्नालालजी मालवीय, एम्० काम०)

भारतीय धर्मशास्त्रोंमें ईश्वर-प्रार्थनाको विशेष महत्त्व दिया गया है। संकट-निवारण एवं सौख्य-प्राप्तिके लिये इससे बढ़कर दूसरा सरल और सुगम साधन कोई नहीं है। स्तोत्रोंके पाठके सम्बन्धमें कहा गया है—

······यः शम्भुपूजनमिदं पठति प्रदोषे।
तस्य स्थिरां रथगजेन्द्रतुरङ्गयुक्तां
लक्ष्मीं सदैव सुमुखीं प्रददाति शम्भुः॥
(शिवताण्डवस्तोत्र)

श्रीवेदव्यासजीका भी कथन है—

विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिं
सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम्।

साथ-साथ—

सर्वपापविनिर्मुक्तो जायते नात्र संशयः।

—का भी वचन प्राप्त होता है। व्रत-कथाकी महत्ताके सम्बन्धमें भविष्योत्तरपुराणमें कहा गया है—

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
कथाश्रवणमात्रेण तत्फलं प्राप्यते नरैः॥

अर्थात् सहस्र अश्वमेध तथा सौ वाजपेय यज्ञ करनेका जो फल है, वह कथा-श्रवणमात्रसे तुरंत प्राप्त हो जाता है और पाठ-मात्र करनेसे मनुष्य धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादि, यश, कीर्ति आदिको प्राप्त कर अन्तमें मोक्षको प्राप्त करता है। शास्त्रकी इन बातोंपर पाश्चात्त्य शिक्षामें पले, भौतिक विज्ञानसे चकाचौंध, अनीश्वरवादी युवकोंको विश्वास ही नहीं होता। वे इसे ब्राह्मणोंकी ठगविद्या एवं खाने-कमानेका साधन बतलाते हैं। उनकी दृष्टिमें ये सभी चीजें ढोंग एवं पाखण्डमात्र हैं। वे भौतिक विज्ञानको ही सारा श्रेय देते हैं और हर एक बातकी सत्यताकी परख इसी कसौटीपर करना चाहते हैं। भौतिक विज्ञानपर दृढ़ आस्था रखनेवालोंके समक्ष उसकी असफलता एवं प्रार्थनाओंकी सफलता शास्त्रके वचनोंकी सत्यता प्रमाणित करनेके लिये यथेष्ट हैं। यहाँ ऐसी ही कुछ घटनाएँ दी जा रही हैं—

माताकी आयु पुत्रको

इतिहास पढ़नेवालोंको यह स्मरण होगा कि हुमायूँके बीमार पड़नेपर बाबरने उसकी दीर्घायुके लिये ईश्वरसे प्रार्थना की थी। ज्यों-ज्यों हुमायूँ अच्छा होता गया, त्यों-त्यों बाबर बीमार पड़कर मृत्युको प्राप्त हुआ। अभी हालमें ही ठीक ऐसी एक घटना प्रकाशमें आयी है। पहाड़ी क्षेत्रोंमें उपद्रवी नागाओंके सीमान्त-रेलवेको दुर्घटनाग्रस्त करनेपर एक उच्च पुलिस अधिकारी बुरी तरह घायल हो गया। उक्त अधिकारीकी माताने उस दिनसे ही भगवान्से यह प्रार्थना की कि उसकी आयु उसके पुत्रको मिल जाय। भगवान्ने प्रार्थना स्वीकार कर ली; पुत्र बच गया, परंतु माँ परलोक सिधार गयी।

सौभाग्य-प्राप्ति

भू० पू० राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजीके अस्वस्थ होनेपर वर्तमान राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्ने सभी धर्मावलम्बियोंद्वारा उनके स्वास्थ्य-लाभके लिये प्रार्थना करवायी थी। डा० राजेन्द्रप्रसादजी जब नर्सिंग होममें अपनी चिकित्सा करा रहे थे, उस समय राष्ट्रपतिभवनमें उनकी धर्मपत्नी श्रीमती राजवंशीदेवी दुर्गापाठ एवं अन्य प्रार्थनामें लीन थीं। ईश्वरने प्रार्थना स्वीकार कर ली। डा० राजेन्द्र-प्रसादजी स्वस्थ हुए और कुछ दिनोंके बाद राजवंशीदेवी सुहागिन अवस्थामें स्वर्ग सिधार गयीं।

प्रार्थनासे वर्षा

फ्लोरिडाके ओर्लाण्डो इलाकेमें जब एक बूँद पानी नहीं बरसा और लोग पानीको तरसने लगे, तब हवाईद्वीपके

एक समुदायको वर्षा-नृत्यके लिये बुलाया गया। नाच समाप्त होते ही मूसलधार वृष्टि हुई। इससे पहले फ्लोरिडाके ऋतु-विज्ञान कार्यालयने यह घोषणा की थी कि अभी काफी दिनोंतक वर्षाकी सम्भावना नहीं है।

थाईलैंडकी नाटक-मण्डलीने सिंगापुरके नैशनल थियेटरमें वर्षा-नृत्य प्रस्तुत किया। नृत्यके तीन घंटे बाद सिंगापुरमें मूसलधार वृष्टि हुई। कार्यक्रमका परिचय देते समय एक प्रवक्ताने मजाकमें कहा था कि कुछ अचरज नहीं यदि इस कार्यक्रममें दिखाये जानेवाले वर्षा-नृत्यसे इन्द्रभगवान् प्रसन्न होकर छः मासके अवर्षणसे प्यासे सिंगापुरवासियोंकी प्यास बुझा सकें।

दीर्घायुका रहस्य

अमेरिकाके १२२ वर्षीय श्रीचार्ली स्मिथने यह मत व्यक्त किया कि मेरी दीर्घायुका कारण ईश्वरमें विश्वास तथा ईश्वरीय १० आज्ञाओंका पालन करना है।

सिंगापुरकी १३३ वर्षीया श्रीमती नोरिया बिमते बुढ़ापेनने इसी तरहका विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि वह दिनमें ५ बार नमाज पढ़ती है।

प्रार्थना सफल कब होती है?

नित्य बेमनसे प्रार्थना करनेकी अपेक्षा शुद्ध मनसे एक बार की गयी प्रार्थना अपना असर दिखलाती है। स्वामी रामकृष्ण परमहंसके अनुसार—'जब मन और वाणी एक होकर कोई चीज माँगते हैं तो उस प्रार्थनाका जवाब मिलता है।' प्रार्थनाकी सफलतापर संदेह प्रकट करनेवालोंको संत चार्ल्स फ़िल्मोरके निम्न कथनपर ध्यान देना चाहिये—

'यदि हमें प्रार्थनाका उत्तर न मिले तो समझ लो कि प्रार्थना उचित मनोयोगसे नहीं की गयी। विफलता भगवान्की उपेक्षाके कारण नहीं, शिथिलताके कारण है।'

प्रार्थनाका फल और प्रभाव

(लेखक—प्राचार्य श्रीजयनारायणजी मल्लिक, एम्० ए० [द्वय] स्वर्णपदक-प्राप्त, डिप्० एड्०, साहित्याचार्य, साहित्यालंकार)

भगवत्प्राप्तिमें प्रार्थनाका बहुत बड़ा महत्त्व है। अध्यात्म-पथपर भगवन्नाम ही आधार है। मानवताके पथ-प्रदर्शनके लिये संसारमें बहुत-से दीपक जले हैं, पर इनमें भगवन्नाम और प्रार्थनाका दीपक अद्भुत एवं दिव्य है। इसकी मधुमय स्वर्ण-रश्मियाँ सम्पूर्ण भारतवर्षको उद्भासितकर पाश्चात्त्य देशोंमें भी अपनी किरणें विकीर्ण कर रही हैं। आजका संसार भौतिक विज्ञानकी ओर दौड़ा जा रहा है। प्रकृतिके अन्तरालमें जो शक्तियाँ अन्तर्निहित और सुषुप्त हैं, आजका मानव उन्हें जगाकर अपने अधिकारमें करना चाहता है; किंतु उसके अन्तस्तलमें विराट् पिपासा और विकराल ज्वाला वर्तमान है।

है बहुत बरसी धरित्रीपर अमृतकी धार,
पर नहीं अबतक सुशीतल हो सका संसार।
भोग-लिप्सा आज भी लहरा रही उद्दाम,
बह रही असहाय नरकी भावना निष्काम।
दग्ध कर परको, स्वयं भी भोगता दुख-दाह,
जा रहा मानव चला अब भी पुरानी राह।

इसी विकराल ज्वालाकी शान्तिके लिये भगवन्नाम तथा प्रार्थनाकी अतीव आवश्यकता है। आजके युगमें लोगोंका ध्यान राजनीति, अर्थशास्त्र तथा विज्ञानके अध्ययनकी ओर लगा हुआ है। लोग धर्म और नीतिसे उदासीन हो चले हैं। नवीन आविष्कारोंकी चकाचौंधमें हमारी आँखें झुक जाती हैं।

चीरता तमको, सँभाले बुद्धिकी पतवार,
आ गया है ज्योतिकी नवभूमिमें संसार।
नर मनाता नित्य नूतन बुद्धिका त्योहार,
प्राणमें करते दुखी हो देवता चीत्कार।

और यह चीत्कार तबतक शान्त नहीं हो सकता, जबतक मानवता भगवन्नाम और प्रार्थनाके मार्गपर चलना नहीं सीख लेती।

वासनाकी यामिनी, जिसके तिमिरसे हार,
हो रहा नर भ्रान्त अपना आप ही आहार।

तिमिरमयी रजनीमें मानवता पिच्छल पथपर जा रही है। दोनों ओर खाइयाँ हैं।

पथ पिच्छल है, अन्धकारमें खाईमें गिरनेका भय है,
अन्तस्तलमें छिपी वासनाका अभिनव मादक मधुमय है।

दूर अन्तरिक्षमें भगवन्नामका मार्ग-प्रदर्शक तारा चमक रहा है। हमारे प्राचीन ऋषि और आचार्य हाथ उठाकर

इस मधुमय ज्योतिकी ओर संकेत करते हुए कह रहे हैं—'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।' वस्तुतः भगवन्नामको छोड़कर उस ज्योतितक पहुँचनेका दूसरा मार्ग नहीं है । विज्ञान तो केवल हमारे हाथमें एक शक्ति देता है, पर उस शक्तिके अभिमानमें हमें भगवान्‌को नहीं भूल जाना चाहिये ।

सावधान, मनुष्य ! यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक, तजकर मोह, स्मृतिके पार ।
खेल सकता तू नहीं ले हाथमें तलवार,
काट लेगा अङ्ग, तीखी है बड़ी यह धार ॥

आजका मानव बाह्य प्रकृतिपर विजय प्राप्तकर गर्वसे इठलाता हुआ प्रकृतिके अन्तरालमें छिपी अनन्त शक्तियोंको गुलाम बनाना चाहता है; पर वही मानव अपनी अन्तः-प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेकी चेष्टा नहीं कर रहा है, वह अपनी इन्द्रियों और वासनाका गुलाम बन गया है । अपनी अन्तःप्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेका एकमात्र साधन भगवन्नाम-जप तथा प्रार्थना है ।

मानव-जीवनका लक्ष्य क्या है ? दुःखकी निवृत्ति और सुखकी प्राप्ति । पर यह होगी कैसे ? अन्धकारमें मानवता भटक रही है । उसे प्रकाश और बलकी आवश्यकता है । असंख्य दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, कवि तथा कलाकार आये और मानवताके पथपर दीपक जलाकर चले गये । असंख्य दीपोंकी चकाचौंधमें दुर्बल-त्रस्त मानवता किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी । वह क्या करे, किधर जाय ? भिन्न-भिन्न दीपक भिन्न-भिन्न मार्गोंकी ओर संकेत कर रहे हैं । स्मृतियोंमें, दर्शनोंमें, पुराणोंमें भिन्न-भिन्न उपायोंकी झलक है । मानवता किस निश्चित पथका अवलम्बन करे ? इसी भयभीत, बद्ध, व्याकुल मानवताके पथ-प्रदर्शनके लिये भगवन्नाम एक प्रकाश-स्तम्भ है और जीवनके कण्टकाकीर्ण पथपर वही उसका सम्बल है ।

मानव-जीवनमें दुःखकी समस्याका समाधान करनेके लिये असंख्य महामानव इस भूतलपर अवतीर्ण हुए और उन्होंने जीवनको सुखी, समुन्नत और परिष्कृत बनानेकी भरपूर चेष्टा की । सृष्टिके प्रारम्भमें ही लोगोंने देखा कि जीवनकी सबसे बड़ी यातना मृत्यु है, अतः जीवनको सुखी बनानेके लिये मृत्युपर विजय प्राप्त करना आवश्यक है । विद्वान्‌लोग अमरत्वके अन्वेषणमें लग गये । त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका मन्थन हुआ । इस विराट् विश्वमें विषके रूपमें तम, मदिराके रूपमें रज और अमृतके रूपमें सत्त्व दृष्टिगोचर हुआ । भव-सागरके मन्थनसे असंख्य रत्न निकले । अमृत-का घड़ा भी निकला । भौतिकवादी एवं अध्यात्मवादी दोनोंके सहयोगसे अमृतका पता लगा था । दोनोंके दो दृष्टिकोण थे । एक अपने इसी भौतिक शरीरको अमर करना चाहते थे । दूसरेने देखा कि मानव जड और चेतन दोनोंका समन्वय है । जड तो विकारी और परिणामी है । प्रत्येक क्षण वह बदलता रहता है । उसके रूपमें आमूल परिवर्तनका ही नाम तो मृत्यु है । चेतनको जडके सम्पर्कसे सर्वथा अलग कर देना ही अमरत्वकी प्राप्ति है । प्रथम दलने स्थूलशरीर और अन्नमय कोशको अमर रखनेकी भरपूर चेष्टा की । इन्होंने सोचा, मनुष्य मरता ही क्यों है ? इन्होंने देखा, मानव-शरीरके भिन्न-भिन्न अवयवोंके जीर्ण होनेसे—मस्तिष्क, हृदय, फेंफड़े, पक्वाशय इत्यादिके घिसे जानेसे, समुचित भोजन और व्यायाम नहीं मिलनेसे, असंख्य जीवाणुओं (cells) के टूटनेसे, रोग-कीटाणुओंके आक्रमणसे तथा शरीरमें जो कई ग्रन्थियाँ हैं, उनसे समुचित स्राव नहीं होनेसे शरीर-यन्त्र बिगड़ जाता है और मनुष्य मर जाता है । इन्होंने शरीरको नीरोग और दीर्घायु करनेके बहुत-से उपाय सोचे । रसायन-शास्त्रने कई प्रकारके रसोंका, आयुर्वेदने कई ओषधियोंका और हठयोगने कई व्यायामोंका आविष्कार किया, जिनसे मनुष्य दीर्घजीवी बनकर अपने सौन्दर्य और यौवनको अक्षुण्ण रख सके । पर अध्यात्मवादियोंने देखा कि नीरोग शरीर ही सब कुछ नहीं है, जीवनकी सफलताके लिये मस्तिष्क और चरित्रका विकास भी आवश्यक है । ये असत्‌से सत्‌की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युसे अमरत्वकी ओर जाना चाहते थे । इन्होंने देखा कि जीवनकी पूर्ण सफलता भगवत्कृपापर निर्भर है और भगवत्कृपा प्राप्त करनेके लिये भगवन्नाम-जप और प्रार्थना आवश्यक हैं ।

पूर्वाचार्योंने वेद-शास्त्ररूपी क्षीरसागरका मन्थन करके भगवन्नाम तथा प्रार्थनाका अमृत निकाला है । समुद्रके गर्भमें तो विष भी था, मदिरा भी थी, अमृत भी था । भवसागरके अन्तस्तलमें तम भी है, रज भी है और सत्त्व भी है । चाहे कोई देश वा धर्म रज और तमका भले ही अन्वेषण कर रहा हो, पर हमने तो केवल सत्त्वको अपनाया है । हम जानते हैं—'यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ।' (महाभारत, भीष्म० ४३ । ६०) हमारा हिंदू-धर्म सत्यके आधार-

पर खड़ा है, भगवान् हमारे साथ हैं; अतः हमारी विजय निश्चित है, हमारा कभी नाश नहीं हो सकता—'**कौन्तेय प्रति जानीहि, न मे भक्तः प्रणश्यति ।**' दुनिया भोग-लालसाके शिखरपर चढ़नेके लिये तेजीसे दौड़ रही है। विज्ञान नये-नये चमत्कार दिखा रहा है। राजनीति और अर्थशास्त्र भौतिक तथा सामाजिक जीवनका विश्लेषण कर रहे हैं; किंतु उस दीपककी ओर किसका ध्यान है, जो मानव-शरीरके भीतर जल रहा है? भोग-लालसाके शिखर-पर जब वासना जोरोंसे चीत्कार करेगी—'**मुझे नवीन भोजन** दो, संसारके सारे भौतिक पदार्थोंका रस मैं चख चुकी, वे अब फीके पड़ गये', उस समय मानवता सोचेगी—'ततः किम्?' वह सम्हलेगी और महसूस करेगी कि वह गलत रास्तेपर थी। जीवनमें त्याग और तपस्या, स्नेह और बलिदानकी जितनी आवश्यकता है, उतनी भोग-वासनाकी नहीं। उस समय पद-दलित मानवताके पथ-प्रदर्शनके लिये भगवत्प्रार्थना प्रकाश और शक्तिका प्रदान करेगी। सावन-भादोंकी अँधेरी रातोंमें काले-काले बादल उमड़-घुमड़कर कुछ कालके लिये भले ही आकाशको आच्छन्न कर लें, पर इससे सूर्यका नाश नहीं हो सकता। शीघ्र ही प्राचीके प्राङ्गणमें उषादेवी अरुण-राग-रञ्जित नवीन परिधान धारणकर हेम-कुम्भसे इस शिथिल भूतलपर अमृतधारा उड़ेल देती है।

भगवान्‌का नाम तथा भगवत्प्रार्थना वे सुधाकी धाराएँ हैं, जो मृतकोंमें भी जीवनका संचार करती हैं।

कर्म-संस्कार अविद्याको जन्म देते हैं। अनादिकालसे कर्म करता हुआ, अविद्यासे ढँका हुआ जीवात्मा प्रकृतिसे चिपटा रहता है। पुरुषके सांनिध्यसे प्रकृतिके सत्त्व, रज, तम—तीनों गुणोंकी साम्यावस्था टूट जाती है और तब प्राकृतिक तत्त्वोंमें विकार उत्पन्न होता है। परिणामवादके अनुसार प्रकृति सदैव बदलती रहती है। पुरुषके जीवनका प्रधान लक्ष्य है—प्रकृतिके विकारोंसे अपने-आपको मुक्त करना। जबतक वह प्राकृतिक विकारोंसे मुक्त नहीं होता, तबतक जन्म-मरणके चंगुलसे छूट नहीं सकता। जबतक आत्मामें कर्म-संस्कार चिपका रहेगा, तबतक वह अविद्यासे तथा प्रकृतिसे छुटकारा नहीं पा सकता। भगवन्नामके स्मरणसे कर्म-संस्कार छूट जाता है तथा प्रार्थनासे अविद्याकी निवृत्ति हो जाती है।

हमारा सूक्ष्मशरीर प्रधानतया मन, बुद्धि तथा अहंकारसे बना है। अहंकारमें तमकी प्रधानता है, मनमें रजकी तथा बुद्धिमें सत्त्वकी। अहंकारका परिणाम शिथिलता और जडता है, मनका प्रवृत्ति और बुद्धिका विवेक। वृक्ष-योनिमें अहंकार-की झलक है, पशु-योनिमें प्रवृत्तिकी और मनुष्य-योनिमें विवेककी। यदि हमारे कर्म प्रवृत्ति तथा वासनाकी प्रेरणासे किये जाते हैं तो हम पशुताकी ओर झुक जाते हैं; यदि हमारे कर्म कर्तव्य और विवेककी प्रेरणासे किये जाते हैं, तो हममें मानवताकी प्रधानता रहती है। मानवताकी सबसे बड़ी देन है—प्रवृत्तिके ऊपर विवेककी विजय। मानवता जब अपना कर्तव्य-ज्ञान भूलकर भोगवासनाकी ओर झुक जाती है, तब उसका नाम हो जाता है—'पशुता'। पर मानवता जब उलट जाती है, तब उसका नाम हो जाता है 'दानवता'। पशुता मानवताको भोग-वासनामें घसीटकर उसे कलङ्कित कर डालती है; पर दानवता तो मानवताका संहार ही कर देती है। पशुता मानवताकी कमजोरी है और दानवता मानवताकी मौत। दानवता और पशुताके प्रभावसे मुक्त होनेका प्रधान साधन भगवान्‌का नाम और प्रार्थना हैं।

कलियुग केवल हरि गुनगन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥

इच्छा तो स्थूलशरीर और अन्नमय कोषकी माँग है। उसका सर्वथा दमन सहज सम्भव नहीं। प्रवृत्ति तो प्रकृतिका सूक्ष्म रूप है। उसको कुचलनेकी चेष्टा प्रकृतिके साथ एक भीषण संग्राम है। मोक्ष-पथपर प्रकृतिके साथ एक भीषण संग्राम सहायक नहीं, बाधक है; क्योंकि प्रकृतिके साथ एक भीषण संग्राम करनेमें हमारी जो शक्ति क्षीण हो जाती है, उसके सदुपयोगसे हम बहुत आगे बढ़ सकते हैं। तब फिर वासनाके ऊपर हम विजय कैसे प्राप्त करें? यह केवल ब्रह्म-साक्षात्कारसे और भगवत्कृपासे सम्भव है, अन्यथा नहीं; और भगवत्कृपाका मूल आधार प्रार्थना और उनका नाम-जप है।

तुलसी 'रा' के कहत ही, निकसत पाप-पहार।
फिर आवन पावत नहीं देत 'म' कार केवार॥

कर्मयोगसे केवल क्रियमाण कर्म क्षीण हो सकता है। प्रारब्ध और संचित कर्मोंके ऊपर कर्मयोगका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। फिर भी कर्मयोगके लिये अनासक्त और निर्लिप्त होना आवश्यक है, जो एक कठिन समस्या है। स्थूलशरीरसे कर्म करनेपर अन्तःकरणमें एक तरङ्ग उठती है, मनमें एक विकार उत्पन्न होता है। यही तरङ्ग—यही विकार सूक्ष्मशरीरका पोषक और वासनाका

विकास करनेवाला है। वासना संचित कर्मोंकी पुत्री और क्रियमाण कर्मोंकी जननी है। हमारे व्यतीत जीवनके कर्मोंके अनुसार वासना तथा प्रवृत्तिकी रूप-रेखा निर्मित होती है। यही वासना—यही प्रवृत्ति हमारे भविष्यजीवनका पथ-प्रदर्शन करती है। कामिनी और काञ्चनके सांनिध्यसे हमारे हृदयमें एक हलचल होने लगती है। वासना अँगड़ाई लेती है और अन्तरात्मामें एक कम्पन—मधुर सिहरनका अनुभव होने लगता है। वासनाके हननमें ज्ञानयोग भी बहुत अधिक सहायता नहीं करता। ज्ञानयोगकी सफलताके लिये स्थितप्रज्ञ होना आवश्यक है और जबतक अन्तःकरणमें वासना जीवित है, तबतक बुद्धि सर्वथा स्थिर नहीं हो सकती। संसार-चक्रकी परिधिमें कर्मोंके पीछे वासना और वासनाके पीछे कर्म चलते रहते हैं। जिस प्रकार फलसे ही पेड़ और पेड़से ही फल होता है, उसी प्रकार वासना कर्म-संस्कारकी जननी है और पुत्री भी। बाह्य इन्द्रियोंके दमन-मात्रसे वासना नहीं मरती। जब वासना इतनी प्रबल है तब उसको मारकर कैवल्य प्राप्त करनेकी चेष्टा अति दुष्कर है। कर्मयोग या ज्ञानयोग बिना प्रार्थनाकी सहायताके—बिना परमात्माकी दयाके वासनाके दमनमें सहज ही सफल नहीं हो सकता।

> विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
> रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥
>
> (गीता २। ५९)

सचमुच परब्रह्मकी झलक मिलते ही वासना अपने-आप मिट जाती है। यदि आसक्ति नहीं मिटी तो बरजोरी बाह्य इन्द्रियोंके दमनसे अधिक लाभ नहीं। पर यह आसक्ति विना परमात्माकी दयासे मिटेगी कैसे और जबतक हम प्रार्थनाके रूपमें परमात्माको पुकारेंगे नहीं, तबतक परमात्माकी दया मिलेगी कैसे? हम उपदेशक बनकर लंबी-लंबी वक्तृता देते हैं, शास्त्रार्थ करते हैं, ब्रह्मज्ञानकी मीमांसा करते हैं; पर अन्तःकरणकी मलिनता तो नष्ट नहीं होती। अन्तःकरणकी मलिनता तब मिटती है, जब भगवन्नाम-जपसे हृदय पवित्र हो उठता है और प्रार्थना करते-करते ब्रह्म-साक्षात्कार होने लगता है।

मानव सृष्टिका शृङ्गार है। उसके अंदर परमात्माकी एक दिव्य ज्योति जल रही है, जो उसे निम्न स्तरसे ऊपर उठाकर सत्कर्मोंकी ओर प्रेरित करती है और जीवन-यात्रामें उसका पथ-प्रदर्शन करती है। जब जीवनकी आँधी उठती है और तूफानी हवामें उत्ताल-तरङ्ग-माला-संकुल विषयोर्मि लहराने लगता है, तब भवसागरके ज्वारों एवं धूलि-कणोंके वातावरणमें यह प्रकाश क्षीण और मटमैला हो जाता है। मानव-जीवनमें यह प्रकाश जितना ही जाज्वल्यमान रहेगा, मानवता उतनी ही प्रचुर मात्रामें उसके अन्तर्गत वर्तमान रहेगी। जब पशुता झाँकने लगती है, तब मनुष्य कर्तव्यनिष्ठा और ज्ञानको भूलकर इन्द्रियोंका दास बन जाता है और भोग-वासनाकी ओर पागलकी तरह दौड़ने लगता है। हमारे अन्तर्गत सदैव देवासुर-संग्राम हो रहा है। हमारे अंदर जो देवता है, वह हमें ऊपर उठानेकी चेष्टा करता है और एक अलौकिक दिव्य रश्मिसे हमें ओतप्रोत करना चाहता है। पर हमारे जीवनमें जो दानव घुस गया है, वह देवताके साथ संघर्ष करके हमें नीचेकी ओर घसीट रहा है। ऐसे समयमें हमें भगवान्‌की उस मोहिनी मूर्तिकी आवश्यकता है, जो दानवोंको मदिरा पिलाकर सुला दे और देवताओंको अमृत पिलाकर अमर कर दे। भगवत्प्रार्थनासे देवताको बल मिलता है और दानवता मूर्च्छित हो जाती है।

कामना ही माया है; यही जीवके सामने दो खिलौने—कामिनी और काञ्चन फेंक देती है, जिनसे जीव खेलता रहता है। जबतक कामना नष्ट नहीं होती, तबतक अन्तरात्मामें ज्ञान-रश्मि नहीं छिटक सकती। कामनाको नष्ट करनेके लिये भगवत्प्रार्थना ही एकमात्र साधन है। प्रार्थनासे मानव-मस्तिष्कमें सोयी हुई अनन्त शक्तियाँ जग जाती हैं—अविद्याकी राखमें ढकी हुई प्रकाशकी चिनगारी प्रकाशके समूहसे साक्षात्कार करने लगती है। अन्यथा हमारे मनोमय-कोशमें छिपा हुआ कामना-कीट लाखों प्रयत्न करनेपर भी नहीं मरता।

> इंद्रिय द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
> आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥

शरीरको निरर्थक कष्ट देनेसे आत्म-तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती—

> नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
> न मेधया न बहुना श्रुतेन।

अनासक्त और निर्लिप्त कर्म करनेका ही नाम कर्म-योग है; पर अनासक्त और निर्लिप्त हम होंगे कैसे! हमारे अन्तःकरणमें जो वासना-सर्पिणी छिपी हुई है, वह कर्मोंका रस पीती रहती है। उपदेश देनेके लिये तो हम

यह देते हैं कि वासनाका हनन करो, प्रवृत्तिको कुचलो, अनासक्त और निर्लिप्त होकर कर्म करो; पर इन उपदेशोंसे कर्मयोगकी समस्या हल नहीं होती। वासना असंख्य जन्मोंके प्रारब्ध कर्मोंका परिणाम है। उसको हम केवल वाक्य-ज्ञानसे नष्ट नहीं कर सकते। यह सत्य है कि अनासक्त होकर कर्म करनेसे कर्म आत्माका स्पर्श नहीं कर सकता, पर अनासक्त होना ही तो जीवनकी सबसे बड़ी समस्या है। यदि बिल्लीके गलेमें घंटी बाँध दी जाय तो चूहे सुरक्षित हो जायँ; पर बिल्लीके गलेमें घंटी बँधेगी कैसे? यहींपर प्रार्थना आकर कर्मयोगकी सहायता करती है। अकेले कर्मयोग जिस समस्याका समाधान नहीं कर सका था, प्रार्थना उसे सहल कर देती है। भगवन्नाम-जपसे तथा प्रार्थनासे भक्तिका उदय होता है और भक्ति कहती है कि 'जीवनके सारे कर्मोंको करो; पर उन्हें भगवन्निमित्त करो, भगवत्कैंकर्य समझकर करो।'

हमें भोग-वासनासे प्रेरित होकर कर्म नहीं करना [illegible]; पर कर्तव्यकी प्रेरणासे भगवत्कैंकर्य समझकर करना चाहिये। सारे कर्मोंको यदि हम भगवान्को [illegible]र्पित कर दें तो फिर आत्माको बाँधनेके लिये हमारे कर्म बच ही कहाँ जाता है। अनवरत प्रार्थना[illegible] जब-हमारे अन्तःकरणमें भगवान्का साक्षा[illegible]र नहीं होता, तक हमारे मन-मन्दिरमें प्रेम-सिंहास[illegible]नपर श्रीमन्नारायण-[illegible]वान् विराजमान नहीं होते [illegible] तबतक लाख चेष्टाएँ [illegible]नेपर भी मोह-पाश [illegible] नहीं टूटता।

साधक, मोह [illegible]

[illegible]-पास क्यों टूटै।

[illegible] उपाय करिय अभ्यंतर ग्रन्थि न छूटै॥

[illegible] पूरन कराह अंतरगत ससि प्रतिबिंब लखावै॥

इंधन अनल लगाय कल्प सत औंटत नास न पावै॥

भगवान्की प्रार्थनासे, ध्यानसे, चिन्तनसे, स्मरणसे हृदयके सारे विकार आप-से-आप नष्ट हो जाते हैं।

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि माथा॥

भगवान्के चिन्मय, ज्ञानमय, आनन्दमय रूपका प्रकाश हृदयमें आते ही अन्तःकरणका अन्धकार आप-से-आप मिट जाता है।

ममता तमी तरुन अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसत जीव उर माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥

ज्ञानयोगकी सफलता भी प्रार्थनापर ही निर्भर करती है वाक्य-ज्ञान तो केवल शास्त्रार्थका विषय होता है—

वाक्य ग्यान अत्यंत चतुर भव पार न पावै कोई।
जिमि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई॥

ज्ञानयोगकी सफलताके लिये वासनाका शमन आवश्यक है, पर असंख्य जन्मोंका जीवन-रस पीकर वासना-सर्पिणी मानव-अन्तःकरणमें फुफकार करती रहती है। ज्ञानयोगके लिये स्थितप्रज्ञ होना आवश्यक है—

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥
(गीता २। ५५)

हृदयका निष्काम होना एक जटिल समस्या है, किंतु प्रार्थनाका आश्रय पाकर हृदय आप-से-आप शान्त हो जाता है। अनवरत प्रार्थनासे परमात्माका साक्षात्कार होता है और परमात्माके साक्षात्कारसे मायाका बन्धन टूट जाता है, हृदयकी गाँठ खुल जाती है और कर्म-संस्कार नष्ट हो जाते हैं—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥
(मुण्डक० २। २। ८)

भक्तिसे पृथक् ज्ञानका मार्ग दुर्गम और कठिन है, पर प्रार्थनापर अवलम्बित भक्ति-पथ अत्यन्त सुलभ है।

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥

ज्ञान भक्तिका पूरक और प्रकाशक है। यह सच है कि ज्ञानके बिना मोक्ष नहीं मिलता; पर यहाँ ज्ञानसे तात्पर्य उपासनात्मक ज्ञानसे है, जिसमें प्रार्थनाका प्रमुख स्थान है।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥
(ईशा० ११)

भगवन्नामका स्मरण, प्रार्थना, सदैव भगवान्का चिन्तन और ध्यान, भगवान्में अखण्ड विश्वास, अनवरत उनकी यादगारीका नाम ही 'उपासना' है। जिस प्रकार तेलकी धारा कभी टूटने नहीं पाती, उसी प्रकार जब परमात्माके अनवरत ध्यानसे परमात्मा प्रत्यक्षके समान हो जायँ, परमात्माके साथ मानव-हृदय एकाकार हो जाय, तब उसका नाम उपासना है।

तन से कर्म करहु बिधि नाना। मन राखहु जहँ कृपानिधाना॥
मन से सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी॥

उपासनाकी सफलताके लिये भगवान्की अनवरत प्रार्थना और भगवान्के ऊपर अत्यधिक प्रेम होना आवश्यक है—

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग जप नेम बिरागा॥

भगवान्के चरणोंमें अन्तःकरणको जोड़ देना ही योग है।

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धन भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसत धन जैसें॥

उपासनामें सबसे अधिक आवश्यकता है—प्रार्थना और भगवत्प्रेमकी; क्योंकि हम जिसको सबसे अधिक प्यार करते हैं, दिन-रात उसीको सोचते रहते हैं; उसके स्मरण और चिन्तनमें एक आनन्दकी अनुभूति होती है। भगवान्को यदि हम हृदयसे प्यार करेंगे तो उनका ध्यान सदैव हमें लगा रहेगा। उनके स्मरण और चिन्तनमें आनन्दकी अनुभूति होगी, उनके प्रेममें हम मस्त और मतवाले बने रहेंगे। एक क्षण भी उनको बिना देखे हृदय बेचैन हो उठेगा। अन्तःकरणका सबसे बड़ा आकर्षण 'प्रेम' है।

बिना प्रेमके यदि बरजोरी मनको भगवान्में लगाया भी जाय तो वहाँ वह अधिक देरतक नहीं टिक सकता; क्योंकि मन चञ्चल है और हठात् विषयोंकी ओर चला जाता है—

कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभु के एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और मागिहौं, दीजै परम उदार॥
बिषय बारि मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
ताते सहौं बिपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक॥
कृपा डोरि बनसी पद अंकुस परम प्रेम मृदु चारो।
यहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो॥

भोग-रस-पान करनेवाले चञ्चल मनको प्रथम-प्रथम भगवान्में लगानेके लिये दो साधनोंकी आवश्यकता है, भगवन्नामजप और अनवरत प्रार्थना। इससे मनको भगवान्में टिकनेकी तथा भगवान्से प्रेम करनेकी आदत लग जाती है।

प्रार्थना भगवान्से मिलनेका सर्वोत्तम साधन है। भगवान्के प्रति अनन्य और अकिंचन भावसे शरणागत होकर तथा भगवान्के चरणोंमें अपने आपको समर्पितकर प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान्से कहना चाहिये—

पिता त्वं माता त्वं दयिततनयस्त्वं प्रियसुहृत्
त्वमेव त्वं मित्रं गुरुरपि गतिश्चासि जगताम्।

(आलवन्दारस्तोत्र ६३

प्रपन्नका आधार, अवलम्ब और उपाय एकमा[त्र] भगवान् हैं और उसके साधन भगवन्नाम और प्रार्थना हैं[।] भगवान् उसे जिस अवस्थामें रखलें, वह उसीमें संतुष्ट रह[ता] है। चाहे सुखमें हो या दुःखमें, वह भगवान्को न[हीं] भूलता। विपत्ति पड़नेपर भी वह भगवान्को न[हीं] कोसता। प्रपन्नके लिये नीचानुसंधान आवश्यक है[।] भगवान्के सम्मुख वह सदैव अपनेको अपराधी समझता [है] और भगवान्के पद-रजकी कामना करते हुए कह उठता है[—]

अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात् कुरु॥

(आलवन्दारस्तोत्र ५१

जबतक हम अपनेको अनन्त अपराधी, निराधार [और] आर्त्त नहीं समझेंगे, तबतक प्रार्थनाकी भावना हमारे अ[न्तः]करणमें नहीं आ सकती। प्रपन्न प्रार्थनाके द्वारा अ[पनी] रक्षाका भार भगवान्को देकर स्वयं निश्चिन्त हो जाता है[।] 'रक्षिष्यतीति विश्वासः'। पत्नीको विश्वास है कि स्वामी [बिना] कहे भी रक्षा करेंगे ही; उसी प्रकार प्रपन्न भी समझता है[कि] भगवान् बिना कहे भी बन्धनसे मुक्त करेंगे ही। पत्नी अ[पनी] रक्षाके निमित्त पतिको छोड़कर अन्य किसी उपा[य] अवलम्बन नहीं करती, उसी प्रकार प्रपन्न भी अपने मो[क्षके] लिये भगवान्को छोड़कर अन्य किसी उपायका ग्रहण [नहीं] करता। भगवान्की प्राप्तिमें भगवान् ही उपाय हैं। [अपने] बलपर भगवान्की प्राप्ति नहीं हो सकती। मनुष्य सदैव [पाप] करता रहता है, वह तो कमजोरीका पुतला है। [उसके] अन्तःकरणमें तृष्णाका हाहाकार है—भोग-वास[नाका] विषभरा मधुर नर्त्तन है। वह क्या करे? वह भी सो[चता] है कि इन्द्रियोंको जीतना चाहिये, पापसे मनको ह[टाना] चाहिये, पर उसका संकल्प बहुत क्षीण और दुर्बल रहता [है।] उसकी प्रवृत्ति व्यतीत कर्मोंका रस पीकर बलवती हो [जाती] है। वह बरजोरी इन्द्रियोंको विषयोंकी ओर ले जाती [है।] दुर्बल मानव क्या करे? भोग-वासना अपने संकेतपर म[नुष्य]को नचाती रहती है। शक्तिहीन मानव पाप करता है, भोगता है, पछताता है और फिर पाप नहीं करनेकी [प्रतिज्ञा] भी करता है। पर प्रलोभन-भँवरमें पड़कर वह अपनी [प्रतिज्ञा]

भूल जाता है और फिर उसी पाप-गर्त्तमें डूब जाता है। वह जीवनकी झोलीमें फूल चुनने आया है, पर केवल कंकड़-कण्टक चुनकर लेता है। वह सोचता है—

ऐसा निन्दित कर्म नहीं है, जिसे न शतशः कर पाया हूँ;
जीवनकी झोलीमें, प्रभुवर! कंकड़-कण्टक भर लाया हूँ।
लिये धूलिकण काम-क्रोधके, यौवनकी आँधी चलती है,
जीवन-रस, मादक मधु पीकर जहरीली नागिन पलती है॥
कंचन और कामिनीकी क्रीड़ासे थका व्यथित जीवन है;
दुर्बल, शक्तिहीन हूँ, फिर भी प्रबल कामनाका नर्त्तन है।
सदा वासना मेरे अन्तस्तलमें प्रभु क्रीडा करती है,
माया शुभ्र वसन धारणकर मेरा मन मन्थन करती है॥

यदि हम इस भरोसे बैठे रहें कि जिस दिन हमारे सारे कर्म पवित्र हो जायँगे, जिस दिन हमारा जीवन अनासक्त और निर्लिप्त हो जायगा, उस दिन अपने-आप मोक्ष मिल जायगा तो यह हमारी भूल होगी। अपने-आप न तो कभी वासनाका हनन होगा और न कभी मोक्ष मिलेगा। अनवरत प्रार्थनासे भगवत्कृपाकी उपलब्धि होती है और मोक्ष-मार्गमें भगवान् स्वयं सहायक हो जाते हैं। वासना तो प्रारब्ध और क्रियमाण—दोनों कर्मोंको बाँधनेवाली कड़ी है। न्यायके बलपर मोक्षकी आशा करना दुर्लभ है। वासनाके विराट् अन्धकारमें विवेकका टिमटिमाता हुआ प्रकाश क्षणिक और चञ्चल है। प्रलोभनोंके निकट भोग-सामग्रियोंके बीचमें हमारा संकल्प स्थिर नहीं रह पाता। विषयोंके प्रबल झंझावातमें ज्ञानकी कमजोर दीप-शिखा काँपने लगती है और कभी-कभी बुझ भी जाती है। हमारा बाह्य रूप तो सुन्दर, पवित्र और आकर्षक रहता है; पर हमारे अन्तर्जगत्‌में तृष्णा, स्वार्थ और भोग-लिप्साका ताण्डव-नृत्य जारी रहता है। संसार हमें महात्मा तथा साधु समझ ले; पर भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, वे हमारे छिपे अपराधोंको देख लेते हैं। श्रीयामुनाचार्यने कहा है—

न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे॥
(आलवन्दारस्तोत्र २६)

भगवत्कृपाका आधार प्रार्थना है। न्यायके अधिकारसे नहीं, भगवत्कृपाके बलपर हम मोक्षके अधिकारी हो सकते हैं। अपने बलपर निष्काम कर्मके द्वारा हमारा मोक्ष करना अत्यन्त ही कठिन है; क्योंकि हमारे कर्मोंका स[illegible] निष्काम होना आसान नहीं। इसलिये जबतक हम अ[illegible] अकिंचन होकर दीन अपराधीकी तरह काँपते हुए भगवा[illegible] चरणोंमें आत्मसमर्पण नहीं कर देंगे और प्रार्थनाके [illegible] भगवान्‌की प्राप्तिमें भगवान्‌को ही उपाय नहीं समझ लें तबतक उद्धार होना असम्भव-सा है। हमें भगवा[illegible] कहना है—

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिंचनोऽनन्यगतिः शरण्यं
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥
(आलवन्दारस्तोत्र २५

जिस प्रकार पत्नी पतिकी सेवा प्रेमसे करती है, भा[illegible] समझकर नहीं, उसी प्रकार प्रपन्न भी भगवत्कैंकर्य बड़े प्रेमसे और प्रसन्नतासे करता है, भार समझकर नहीं। प्रार्थनासे प्रपत्तिकी भावना परिपक्व होती है और आत्म-समर्पणका भाव आता है। जब हमने अपने आपको भगवान्‌के चरणोंपर सौंप दिया, तब फिर अपने लिये—भोग-वासनाकी तृप्तिके लिये कोई कर्म ही नहीं करना है। सब कुछ भगवन्निमित्त, भगवान्‌की प्रीति और प्रसन्नताके लिये, उन्हींके आज्ञानुसार करना है; इस प्रकार वासना अपने-आप मर जाती है। प्रपन्नका सारा जीवन ही भगवत्कैंकर्य हो जाता है। उसका व्रत है—

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।

प्रपन्न अपने समय, शक्ति और धनका कभी दुरुपयोग नहीं करता। वह समझता है कि जीवात्मा परमात्माका अंश है, अतः प्रत्येक नर-नारीका शरीर परमात्माका मन्दिर है, सुतरां संसारमें किसीसे द्वेष रखना, किसीकी बुराई सोचना अन्तर्यामी भगवान्‌की अवहेलना है। ऋग्वेदके दशम-मण्डलके अन्तर्गत पुरुषसूक्तमें ऋषियोंने परमात्माकी झलक देखी—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।

और उनके मुखसे गायत्रीके रूपमें प्रथम प्रार्थना निकल पड़ी—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

उपनिषद्-ग्रन्थोंमें हम प्रार्थनाका कितना सुन्दर रूप देखते हैं—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥
(श्वेताश्वतर० ६ । १८)

अन्तर्यामी भगवान् प्रत्येक नर-नारीके शरीरमें वर्तमान है । अतः मानवताकी सेवा परमात्माकी ही सेवा है । केवल उस सेवाके अन्तस्तलमें स्वार्थ और वासना छिपी न हो ।

भगवन्नामकी महिमा अकथनीय है । यह भवसागरका पोत है और मोक्ष-पथका प्रधान सम्बल ।

नाम कामतरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जगजाला ॥
नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं । करहु बिचारु सुजन मन माहीं ॥

भगवन्नामकी महिमा भगवान्से भी श्रेष्ठ है—

राम एक तापस तिय तारी । नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥

प्रार्थनाका प्रभाव अद्भुत है और प्रार्थनाका फल अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष है ।

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता
घोरेषु व्याघ्रादिषु वर्तमानाः ।
संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रं
विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति ॥
(पाण्डव-गीता १०)

भयके स्थानपर भगवान्

[सच्ची कहानी]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

(१)

आसपासके वातावरणको अपनी भीनी-भीनी सुगन्धसे सुरभित करते हुए हरे-हरे बड़े दलोंके गहिर-गम्भीर तुलसी-वृक्षके पादपद्मोंमें पूर्वाभिमुख बैठकर, सामने काशीके निर्मित सुन्दर सिंहासनपर श्रीराधाकृष्णका दिव्य चित्र पधराकर उनकी विधि-विधानसे पूजा-अर्चना करते हुए वे नित्य आँगनमें भगवत्-स्तोत्रोंका पाठ किया करते थे तन्मयताके साथ । ग्रीष्म ऋतुमें इसी पावन पेड़की आड़में प्रखर प्रतापवान् भगवान् भास्करकी तप्तकिरणोंके आतपसे त्राण पा लिया करते थे । भवनका मुख्य द्वार बंद करवाकर बड़ी शान्ति, श्रद्धा तथा अटल विश्वासके साथ नित्यनियम चलता था सदा उनका । नित्यप्रति उनके पाठोच्चारणको सुन-सुनकर घरके बालक भी कई श्लोक सीख गये थे, जिन्हें वे बाहर बच्चोंमें खेलते समय बड़े प्रेमके साथ मीठे और उच्च स्वरसे गाया करते थे ।

श्रीजगन्नाथजी संस्कृत नहीं जानते थे; किंतु भगवद्-गुणानुवाद, भजन-स्मरण एवं स्तोत्रोंके पाठ करनेका चाव उनके हृदयमें बहुत अधिक समाया हुआ था । अतः उन्होंने वहीं कस्बा सुकेत (पंजाब) के एक वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध 'व्यासजी' नामके विप्र महाराजसे श्रीविष्णुसहस्रनाम, श्रीगोपालसहस्रनाम और पाण्डवगीताका विधिसहित पाठ करना सीख लिया था ।

इस नित्यनियमके करनेमें उन्हें कचहरी जानेमें कभी-कभी कुछ विलम्ब हो जाया करता था । किंतु एक निपुण व्यक्तिको वेतन देकर वे अपना काम समयपर तैयार रखवाते थे । फिर भी छिद्रान्वेषी तो कोई-न-कोई अवसर खोजते ही रहते हैं ।

(२)

अपने द्वारा ही निर्माण कराये गये श्रीगोवर्द्धननाथजीके मन्दिरमें श्रीमद्भागवतका पारायण हो रहा था । प्राचीन पुस्तकसे कई विद्वान् टीकाकारोंके मधुर-मधुर रहस्योंको समझाते हुए कथावाचकजी श्रोताओंको ऐसा तन्मय किये हुए थे कि मानो सुई गिरनेकी आवाज भी सुनायी न दे । शान्तिका साम्राज्य छाया हुआ था । सभी कथामृतका पान करके आनन्द-विभोर हो रहे थे । ऐसे समय थोड़ा-सा अवसर पाकर तहसीलके पोद्दारजीने कानमें कहा—'कारकून साहब, मैं घरू तौरपर आपको एक खबर सुनाने आया हूँ । आपके तनिक

भूल जाता है और फिर उसी पाप-गर्त्तमें डूब जाता है। वह जीवनकी झोलीमें फूल चुनने आया है, पर केवल कंकड़-कण्टक चुनकर लेता है। वह सोचता है—

ऐसा निन्दित कर्म नहीं है, जिसे न शतशः कर पाया हूँ;
जीवनकी झोलीमें, प्रभुवर! कंकड़-कण्टक भर लाया हूँ।
किये धूलिकण काम-क्रोधके, यौवनकी आँधी चलती है,
जीवन-रस, मादक मधु पीकर जहरीली नागिन पलती है॥
कञ्चन और कामिनीकी क्रीड़ासे थका व्यथित जीवन है;
दुर्बल, शक्तिहीन हूँ, फिर भी प्रबल कामनाका नर्त्तन है।
सदा वासना मेरे अन्तस्तलमें प्रभु क्रीडा करती है,
माया शुभ्र वसन धारणकर मेरा मन मन्थन करती है॥

यदि हम इस भरोसे बैठे रहें कि जिस दिन हमारे सारे कर्म पवित्र हो जायँगे, जिस दिन हमारा जीवन अनासक्त और निर्लिप्त हो जायगा, उस दिन अपने-आप मोक्ष मिल जायगा तो यह हमारी भूल होगी। अपने-आप न तो कभी वासनाका हनन होगा और न कभी मोक्ष मिलेगा। अनवरत प्रार्थनासे भगवत्कृपाकी उपलब्धि होती है और मोक्ष-मार्गमें भगवान् स्वयं सहायक हो जाते हैं। वासना [illegible] प्रारब्ध और क्रियमाण—दोनों कर्मोंको बाँधनेवाली कड़ी [illegible]। न्यायके बलपर मोक्षकी आशा करना दुर्लभ है। [illegible]सनाके विराट् अन्धकारमें विवेकका टिमटिमाता हुआ [illegible]काश क्षणिक और चञ्चल है। प्रलोभनोंके निकट भोग-[illegible]मग्रियोंके बीचमें हमारा संकल्प स्थिर नहीं रह पाता। [illegible]षयोंके प्रबल झंझावातमें ज्ञानकी कमजोर दीप-शिखा [illegible]ाँपने लगती है और कभी-कभी बुझ भी जाती है। हमारा [illegible]ह्य रूप तो सुन्दर, पवित्र और आकर्षक रहता है; पर [illegible]मारे अन्तर्जगत्‌में तृष्णा, स्वार्थ और भोग-लिप्साका ताण्डव-[illegible]त्य जारी रहता है। संसार हमें महात्मा तथा साधु समझ ले; पर भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, वे हमारे छिपे अपराधोंको देख लेते हैं। श्रीयामुनाचार्यने कहा है—

न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे॥
(आलवन्दारस्तोत्र २६)

भगवत्कृपाका आधार प्रार्थना है। न्यायके अधिकारसे नहीं, भगवत्कृपाके बलपर हम मोक्षके अधिकारी हो सकते हैं। अपने बलपर निष्काम कर्मके द्वारा हमारा मोक्ष प्रा[illegible] करना अत्यन्त ही कठिन है; क्योंकि हमारे कर्मोंका सर्वथ[illegible] निष्काम होना आसान नहीं। इसलिये जबतक हम अनन्[illegible] अकिंचन होकर दीन अपराधीकी तरह काँपते हुए भगवान्के चरणोंमें आत्मसमर्पण नहीं कर देंगे और प्रार्थनाके द्वारा भगवान्‌की प्राप्तिमें भगवान्‌को ही उपाय नहीं समझ लेंगे, तबतक उद्धार होना असम्भव-सा है। हमें भगवान्से कहना है—

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिंचनोऽनन्यगतिः शरण्यं
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥
(आलवन्दारस्तोत्र २५)

जिस प्रकार पत्नी पतिकी सेवा प्रेमसे करती है, भा[illegible] समझकर नहीं, उसी प्रकार प्रपन्न भी भगवत्कैंकर्य [illegible] प्रेमसे और प्रसन्नतासे करता है, भार समझकर नह[illegible] प्रार्थनासे प्रपत्तिकी भावना परिपक्व होती है और आ[illegible] समर्पणका भाव आता है। जब हमने अपने आ[illegible] भगवान्‌के चरणोंपर सौंप दिया, तब फिर अपने लि[illegible] भोग-वासनाकी तृप्तिके लिये कोई कर्म ही नहीं करना सब कुछ भगवन्निमित्त, भगवान्‌की प्रीति और प्रस[illegible] लिये, उन्हींके आज्ञानुसार करना है; इस प्रकार [illegible] अपने-आप मर जाती है। प्रपन्नका सारा जी[illegible] भगवत्कैंकर्य हो जाता है। उसका व्रत है—

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।

प्रपन्न अपने समय, शक्ति और धनका कभी [illegible] नहीं करता। वह समझता है कि जीवात्मा प[illegible] अंश है, अतः प्रत्येक नर-नारीका शरीर परमात्मा[illegible] है, फलतः संसारमें किसीसे द्वेष रखना, कि[illegible] सोचना अन्तर्यामी भगवान्‌की अवहेलना है। ऋ[illegible] मण्डलके अन्तर्गत पुरुषसूक्तमें ऋषियोंने परम[illegible] देखी—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः

और उनके मुखसे गायत्रीके रूपमें निकल पड़ी—

(३)

'लो, हुक्म आ भी गया। आपकी बुलाहट है। अभी-तक तो सबको आश्चर्य हो रहा था कि आपकी शिकायतको कैसे नजर-अंदाज किया जा रहा है—क्यों न अबतक तलबी हुई ? पर अब उन्हीं लोगोंको खुशी हो रही है और आपके सच्चे हितैषियोंको उदासी।'

आज्ञापत्रमें था—'कारकून जगन्नाथको अमुक दिन, अमुक समय महक्मे हाजामें हाजिर होनेको भेज दिया जाय।'

हुक्मकी चर्चा चारों ओर बिजलीकी तरह फैल गयी। बाकायदा कारकूनसे इत्तिलायाबी करायी गयी।

'तो मैं भी चलती हूँ आपके साथ। यदि अधिकारीजीने कुछ भी ज्यादती आपके साथ की तो मैं महिषासुरमर्दिनीका रूप धारण करके उनके छक्के छुड़ा दूँगी।'

'प्रिये! शान्त होओ। तुम तो जानती ही हो कि भगवान् अशरणशरण सबके रक्षक हैं। अपनेको इस संसारमें एक उसीका पूरा-पूरा टेका है। हमारा इतना दृढ़ विश्वास है कि सन्मार्गपर चलते हुए हमारा कोई भी शक्ति बाल बाँका नहीं कर सकती। तुम देख लोगी कि उसी भक्तवत्सल भगवान्‌की दयासे मेरे साथ कितना अच्छा बर्ताव होनेवाला है। तुम उसी दीनानाथ, सर्वरक्षक, रसिकविहारी, आनन्द-कंद, व्रजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रका स्मरण तथा गुरुमन्त्र **'श्रीकृष्णः शरणं मम'** का जप अटल श्रद्धा एवं अनन्य प्रेमके साथ निरन्तर करती रहो। मनमें ऐसी भावना बनी रहे कि आठों याम—साठों घड़ी हरिगुण गाती रहूँ। मेरी यह सीख गाँठ बाँध लो।'

× × ×

इजलास भरा था। 'जगन्नाथ कारकून हाजिर है।' आदाब अर्ज करते हुए अर्दलीके जमादारने खबर गुजारी। अधिकारी इस खबरको सुनकर चुप रहे। पेशीका काम चलता रहा। जब सब काम निपट चुका, तब पेशकारको बाहर भेज दिया गया। दफ्तरमें सन्नाटा छा गया। जमादार द्वारपर ड्यूटीपर खड़ा था। इजलासका समय समाप्त हो चुका था—कुछ अधिक भी हो गया था। अधिकारी अंदर अकेले चुपचाप कुर्सीपर बैठे गहरे विचारोंमें निमग्न थे, मानो किसी योजनाकी उधेड़-बुनमें लगे हों। कारकून दफ्तरके बाहर चुप खड़े हैं। प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब बुलाहट आये। ध्यान अपने इष्टदेव श्रीकृष्णभगवान्‌के श्रीचरणोंमें लगा हुआ था। गुरुमन्त्र 'श्रीकृष्णः शरण[illegible] का जप मन-ही-मन हो रहा था। एक शान्तिका वा[illegible] बना हुआ था—बाहर और भीतर।

एकाएक घंटीकी आवाज आयी। जमादार दौड़ता[illegible] दफ्तरके अंदर गया। हाथ जोड़कर बोला—'खादिम [illegible] है, क्या हुक्म होता है?'

'देखो, बाहर कारकून जगन्नाथजी खड़े होंगे, [illegible] अंदर भेज दो।'

आज्ञा पाकर श्रीजगन्नाथ दफ्तरके अंदर गये। [illegible] प्रणाम किया। अधिकारी प्रणाम स्वीकार करते हुए [illegible] शब्दोंमें बोले—'आइये जगन्नाथजी! बैठिये। मैंने [illegible] इसलिये तकलीफ दी है कि मुझे श्रीराधारमणजीका [illegible] मन्दिर बनवाना है। यह लो मंजूरशुदा नक्शा। [illegible] मुताबिक मन्दिरका निर्माण होगा। यह काम मैं [illegible] सिपुर्द करना चाहता हूँ। इतने हजार रुपयेका इसका त[illegible] है। अभी इतने हजार रुपये—घर चलो—दे रहा[illegible] आपको आवश्यक कार्यकर्ता दिये जायँगे। अपनी देख[illegible] मन्दिरका निर्माण सुन्दर ढंगसे कराओ। मुझे आपपर [illegible] पूरा भरोसा है। मैंने राज्यके अच्छे-से-अच्छे कार्यकर्ता[illegible] नजर डाली; परंतु आपके सिवा ईमानदार, भगव[illegible] और सच्ची लगनसे इस कार्यको सम्पूर्ण करा देनेवाला [illegible] कोई भी नहीं जँचा।'

मन्दिर और प्यारे नामीका नाम सुनकर भगवन्नाम[illegible] जगन्नाथ आनन्दसागरमें निमग्न हो वहीं ध्यानस्थ हो ग[illegible] मनमें श्रीराधारमणजीकी युगलजोड़ीकी अथसे इ[illegible] मानसिक पूजा चलने लगी। इधर अफसर उनके मु[illegible] ओर ताकते हुए प्रतीक्षा करने लगे कि कब यह अ[illegible] की स्वीकृति दे। थोड़ा विलम्ब हो गया। उधर जग[illegible] जी मानसिक पूजा सम्पन्न करके युगल सरकारके श्रीच[illegible] कमलोंमें सभक्ति साष्टाङ्ग प्रणाम कर ही रहे थे कि इ[illegible] मौन-भङ्ग करते हुए अफसर बोल उठे—'क्यों, चुप कैसे [illegible] गये? चेहरा कैसा बना लिया, क्या यह कार्य करना स्वी[illegible] नहीं है?'

जगन्नाथजीको एकदम चेत हुआ, बोले—'जी [illegible] आज्ञा सहर्ष शिरोधार्य है। आपकी इच्छाके अनुकूल मन्दि[illegible] निर्माण जल्द ही हो जायगा।'

काम मिला और वह भी भगवान्‌का। भक्तको [illegible]

नया चाहिये ? शीघ्र ही मन्दिरके निर्माणका कार्य प्रारम्भ करा दिया गया और थोड़े ही दिनोंमें श्रीराधारमणजीका सुरम्य मन्दिर बनकर तैयार हो गया, जो आज झालावाड़ नगरके बाहर अवस्थित है।

प्रार्थनाका महत्त्व और उसका सर्वश्रेष्ठ स्वरूप

(लेखक—श्रीगयाप्रसादजी द्विवेदी)

प्रार्थनासे बढ़कर श्रेयःसिद्धिका कोई अन्य सुलभ साधन नहीं है, यह सर्वथा सर्वानुमोदित सत्य सिद्धान्त है। इसीसे सम्पूर्ण वेदों, शास्त्रों और पुराणोंमें प्रार्थनाके भावोंसे ओतप्रोत अनेक मन्त्र तथा स्तोत्र मिलते हैं।

भक्तिका विशिष्ट अङ्ग होनेसे प्रार्थनाके द्वारा आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—चारों प्रकारके भक्तगण अपने-अपने संस्कार एवं अधिकारोंके अनुसार भक्तिके नवधा* रूपोंमेंसे किसी एक या अधिकका आश्रय लेकर लौकिक तथा पारलौकिक सिद्धियोंको सनातन कालसे सिद्ध करते आये हैं।

सद्ज्ञानकी पराकाष्ठापर ही भक्तिभावका उदय होता है; क्योंकि जीवात्मा अहंकारवश जबतक परमात्मसत्ताका तत्त्व भलीभाँति निश्चित नहीं समझ लेता, तबतक प्रतीति नहीं होती। प्रतीतिके बिना भक्ति और भक्तिके बिना प्रार्थना असम्भव है। अतः यह निश्चित निष्कर्ष निकला कि प्रतीति ही प्रार्थनाकी जननी है।

यहाँ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि जीवात्मा इच्छा या परमात्माकी प्रेरणासे शरीर तथा इन्द्रियोंसे सम्बन्ध होनेके कारण सहज सकाम गतिका आश्रयी होता है; निष्कामता तो उसे अभ्यास और वैराग्यके द्वारा मनके विशुद्ध बुद्धि योगाश्रित होनेपर प्राप्त होती है। इसी कारणसे प्रार्थना भी प्रायः आर्तभावकी सकाम विधिसे अङ्कुरित होकर उत्तरोत्तर वन्दनाभाव, निष्कामभाव और आत्मभावमें परिणत होती है। आत्मभाव ही परमपद है। इस पदका अधिकार प्रार्थनाके द्वारा जितना सुलभ है, उतना किसी अन्य साधनसे नहीं।

अध्यात्मशास्त्रमें जीवात्माको सहज कर्मावलम्बी कहकर उसका अधिकार केवल कर्म करनेतक ही सीमित माना गया है; क्योंकि कर्मफलाकाङ्क्षाकी तो स्मृतिमात्रसे वह जन्म-जन्मान्तरमें न छूटनेवाले महाबन्धनमें पड़ सकता है, इसलिये कर्ममात्र निष्काम ही श्रेयस्कर है। परंतु निष्कामता धीरे-धीरे अभ्यास और वैराग्यसे प्राप्त होती है, यह बात पहिले ही कह दी गयी है; अतः उपर्युक्त सकामभावात्मक, वन्दनाभावात्मक, निष्कामभावात्मक और आत्मभावात्मक प्रार्थनाके वैदिक मन्त्र और पौराणिक स्तोत्र विविध छन्दोंमें नवधा भक्तिके नवरसोंसे सुसंसिक्त विद्यमान हैं, जो जीवात्मारूप प्रार्थीको कैवल्यपदतक पहुँचानेमें सोपानका काम देते हैं। अतएव चाहे जिस भावसे प्रार्थनामें संलग्न होना चाहिये। वह तो स्वयं ही अपनी सहज गतिसे किसी-न-किसी समय आत्मभावात्मक अर्थात् संस्मरणके रूपमें परिणत होकर परम कल्याणमयी बन ही जायगी।

यदि कोई कहे कि विनयात्मक प्रार्थनासे संस्मरणात्मक प्रार्थना पृथक् है तो यह उचित नहीं; क्योंकि भिन्नता केवल बहिरङ्ग और अन्तरङ्गकी ही प्रतीत होती है। उद्देश्य तो दोनोंका एक है।

विनयात्मक बहिरङ्ग प्रार्थना शब्द और स्वरमयी हो अव्यक्तमें व्यक्तभाव स्थापित करती है और संस्मरणात्म

* श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
(भागवत ७। ५। २३)

१. नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। (गीता ३। ५)

२. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (गीता २। ४७

३. लोकोऽयं कर्मबन्धनः। तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर (गीता ३। ९

४. 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम।' 'त्रायस्व केशव हरे शरणा मम्' । आदि

५. ॐ नमः शिवाय च शिवतराय च, नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्राह्मणहिताय च।··· आदि

६. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः···कृष्णात्परं किमपि तत्त्व न जाने।—आदि

७. ॐ, राम, कृष्ण··· आदि नामोंका स्मरण।

ायी प्रार्थना व्यक्तमें अव्यक्तभाव स्थिर करके तन्मयता-न्तत्व प्रदान करती है। इसलिये उसकी श्रेष्ठता है।

संस्मरणमें भी अनेक-नाम-चिन्तनकी अपेक्षा एक ही नामका पुनरावृत्तिपूर्वक चिन्तन आत्मचिन्तनशील महात्माओंने सर्वश्रेष्ठ माना है।

सुख-शान्ति और भगवत्प्राप्तिका आधार—प्रार्थना

(लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी, एम्० ए०, बी० टी०, साहित्यरत्न)

दुका सिन्धुकी ओर गतिशील होना स्वाभाविक ही ाका अंशीकी ओर खिंचाव होता ही है। यही कारण त्येक मानव सुख-शान्तिके साथ-साथ भगवत्प्राप्तिका भी हता है। जीवनमें सुख-शान्ति एवं भगवत्प्राप्ति कैसे हो, न्धमें भिन्न-भिन्न ग्रन्थों और पंथोंकी अपनी-अपनी एँ हैं, अपनी-अपनी विधियाँ हैं। विधियाँ अनेक हैं। विधि अपनायी जाय ?—यह प्रश्न प्रायः सबके सामने है। विधि वही अच्छी होती है, जिसकी सफलताके प्रमाण उपस्थित हों; पथ वही अच्छा होता है, जिसपर पथिकोंद्वारा लगाये हुए पथ-चिह्न मार्ग-दर्शनमें सहायक र्थना-पथ ऐसा ही है। विभिन्न पंथोंका उपसंहार इसी होता है। सभी पथ इसी प्रार्थना-पथके प्रवेशद्वारसे के दरबारमें प्रवेश पाते हैं। यहाँ विधियोंमें भी है। वैदिक विधिसे लेकर तन्त्र-शास्त्र-विधितक समवेत प्रार्थना विधिकी सफलतापर एकमत हैं।

र्थना क्यों की जाय ? इसलिये कि आप कुछ चाहते र्थनाद्वारा ही प्रार्थीकी माँगपर विचार होता है। ही पूर्तिका माध्यम है। तब क्या निष्काम भक्तोंको नहीं करनी चाहिये ? उन्हें तो अवश्य ही करनी और वह इसलिये कि उन्हें इतना अधिक मिल चुका है । उन्हें किसी वस्तुकी चाह ही नहीं रही। उनकी प्रार्थना दाताके प्रति कृतज्ञता-प्रकाशन है।

ार्थना कैसे की जाय, यह प्रार्थीकी परिस्थिति बताती है। आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और मुमुक्षु—सभी भक्त प्रार्थना करते हैं। प्रार्थनाकी सुनवाईमें कभी-कभी देर हो जाती है। भक्त अधीर हो उठते हैं। किंतु ध्यान रहे—देर भले हो, अंधेर नहीं है। देरका कारण भी हमी हैं। हमारी प्रार्थनामें शीघ्र सुनवाई की जानेकी माँग ही नहीं होगी। क्या आर्त प्रार्थीकी प्रार्थनाकी सुनवाईमें भी विलम्ब किया जा सकता है ? नहीं, कदापि नहीं; द्रौपदीकी आर्त पुकारपर भगवान्‌को आनेमें एक क्षणका विलम्ब हो गया था, इसके लिये अनेक बार द्रौपदीसे क्षमा माँगनेपर भी भगवान्‌को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने शपथ ले ली कि भक्तोंकी रक्षाके लिये अब सदैव सावधान रहूँगा। शयन करनेकी कौन कहे, बैठेंगे भी नहीं। मन्दिरोंमें भगवान् सीताराम, राधाकृष्ण और लक्ष्मीनारायणकी मूर्तियोंके खड़े रहनेका यही रहस्य है, यही अन्तरङ्ग प्रतिज्ञा है।

सात्त्विक, राजसिक और तामसिक प्रकृतिके अनुसार प्रार्थनाके स्वरूपमें भी भिन्नता होती है। उत्तम पुरुष सात्त्विक प्रार्थना करते हैं; मध्यम पुरुष राजसिक प्रार्थना करते हैं; नीच पुरुष तामसिक प्रार्थना करते हैं और अधम पुरुष प्रार्थना करते ही नहीं। उत्तम पुरुषोंकी प्रार्थना सार्वजनिक कल्याणके लिये, मध्यम पुरुषोंकी प्रार्थना निजके उत्थानके लिये और नीच पुरुषोंकी प्रार्थना दूसरोंके अकल्याणके लिये होती है।

नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये प्रार्थनाके तीन प्रकार हैं। नित्यप्रार्थना तो नियमित रूपसे होनी ही चाहिये। अवसर और प्रसङ्गानुसार नैमित्तिक प्रार्थनाका भी अपना विशेष महत्त्व है। काम्य प्रार्थना कामनापूर्तिका अमोघ मन्त्र है। प्रार्थना दीन-दुखियोंका कल्पवृक्ष, रोगियोंकी संजीवनी, भूखे-प्यासोंकी कामधेनु और पापी-पतितोंको पवित्र करनेके लिये गङ्गाजीके समान है। आर्त, असहाय, दीन-दुखियोंकी प्रार्थना ही तो भगवान्‌के अवतारका प्रमुख कारण है। प्रार्थनाके बलसे ही अनाचार, अत्याचारका समूलोच्छेदन होकर सदाचार, सद्विचार, समता और मानवताका विस्तार होता है।

प्रार्थनाका महत्त्व कोरे तर्कसे ही नहीं जाना जा सकता। श्रद्धा ही सफलताकी कुंजी है। सब प्रकारसे अजेय भी प्रार्थनाके बलसे जीता जा सकता है। वाली भगवान् रामसे प्रथम पराजित होकर भी अन्तमें प्रार्थना-बलसे उनपर विजयी हुआ और उन्हें कहना ही पड़ा—'अचल करौं तनु राखहु प्राना।' प्रार्थना-बलसे ही प्रभावित होकर सर्वथा अजेय

"In my Father's house are many mansions,
I go to prepare a place for you,
That where I am, there ye may be also."

'बहुत-से कमरे हैं, बहुत-से मकान हैं मेरे पिताके; तुम्हारे लिये मैं एक मकान ठीक करने जा रहा हूँ, ताकि मैं जहाँ रहूँ, तुम भी वहीं रह सको।'

× × ×

माँ प्रायः गाती—

"Peace, Peace, wonderful peace,
Flowing down from the Father above,
Sweep over my spirit for ever, I pray,
In fathomless billows of love."

'शान्ति, शान्ति, आश्चर्यजनक शान्ति उस स्वर्गस्थित परमपिताकी ओरसे नीचे हमारी ओर सतत प्रवाहित होती है। वह मुझे अपनेमें ऊपरसे नीचेतक डुबा ले, सराबोर कर दे! प्रेमके अनन्त सागरकी लहरोंमें मैं सतत डुबकियाँ लगाऊँ!········'

× × ×

अमेरिकामें पैसेकी कमी नहीं। सुखके, विलासके आधुनिकतम साधन लोगोंको सहज उपलब्ध हैं। फिर भी, विपुलताके बीच भी अभावोंकी कमी नहीं है। पैसेकी दौड़ मनुष्यको रात-दिन अस्त-व्यस्त रखती है। पलभरको भी उसे शान्ति नहीं मिलती। रात-दिन परीशानी, चिन्ता, निराशा, असंतोष। सब कुछ रहते हुए भी अभाव-ही-अभाव। सबसे बड़ा अभाव है—प्रेमका, स्नेहका, सद्भावका, उदारताका; और नतीजा?

हर पैंतीस मिनटपर कोई आदमी आत्महत्या कर लेता है! हर दो मिनटपर कोई आदमी पागल हो जाता है! भौतिक सुखोंकी दौड़-धूपका, मनुष्यके स्नायविक तनावका यह दुष्परिणाम हमारी आँखोंके सामने है!

× × ×

डेल कार्नेगीका कहना है कि 'जो लोग आत्महत्या कर बैठते हैं या पागल हो जाते हैं, उनमेंसे अधिकांश ब[illegible] जा सकते हैं—बशर्ते कि इन लोगोंको प्रार्थनासे प्राप्त हो वाली शान्ति और संतोषका पता चल पाता!'

एक उदाहरण देता है वह।

एक महिला है। उसके बच्चों और नाती-पोतें किसी संकोचका अनुभव न हो, इसलिये उसे वह कुशमैनके कल्पित नामसे पुकारता है।

मेरी कुशमैन आप-बीती सुनाती है—

मंदीका जमाना था। मेरे पतिकी औसत आम[illegible] थी १८ डालर प्रति सप्ताह। [एक डालर लगभग ४॥ होता है।] कभी-कभी उतनी भी आमदनी न होत[illegible] कारण, वह अक्सर बीमार पड़ जाता। इन कारणोंसे अपना वह मकान खो देना पड़ा, जो हमने अपने हा[illegible] खड़ा किया था। परचूनीवाले साहुको हमसे ५० ड[illegible] पावना था। हमारे ५ बच्चे थे। खानेकी तंगी, पहनने[illegible] तंगी। मैं चिन्तासे त्रस्त रहने लगी। एक दिन परचू[illegible] वाले साहुने मेरे ११ सालके बच्चेपर यह झूठा आ[illegible] लगाया कि उसने उसके यहाँसे दो पेंसिलें चुरायी हैं। [illegible] बच्चा मुझे यह घटना सुनाते-सुनाते रो पड़ा। मैं जान[illegible] थी कि वह ईमानदार है और जरा-सी बात भी उसे ब[illegible] लग जाती है। मैंने जान लिया कि उसका अपमान हु[illegible] है, दूसरोंके सामने वह जलील किया गया है। [illegible] अन्तिम घाव था जिसने मेरी कमर तोड़ दी।

मैंने सोचा कि हमलोग कितनी मुसीबतें झेलते आ[illegible] हैं। भविष्यमें हालत सुधरेगी, इसकी कोई आशा नहीं।

चिन्तासे मैं पागल-जैसी हो गयी।

मैं अपने शयनागारमें गयी। पाँच सालकी अपन[illegible] मुन्नीको मैंने अपने साथ ले लिया। कमरेकी सभी खिड़किय[illegible] और छेद कागज और चिथड़ोंसे बंद कर दिये।

मुन्नीने पूछा—मम्मी, क्या कर रही हो यह?

मैंने कहा—कुछ नहीं, बेटी। ऐसा ही कुछ है।

उसके बाद मैंने कमरेमें [illegible] गैसका हीटर [illegible] दिया—पर उसे जलाया नहीं[illegible]

जैसे ही मैं मुन्नीके सा[illegible]स्तरपर लेटी, वह [illegible]

'मम्मी, [illegible] है। [illegible] देरमें हमलोग उठ [illegible]

[illegible] बेटी! हमलोग

मैंने [illegible]

[illegible] लें[illegible]

फिर [illegible]

गैस[illegible]

होते हुए भी भीष्म और द्रोणने अपनी विजयकी कुंजी पाण्डवोंके हाथोंमें समर्पित कर दी।

प्रार्थना सबको करनी चाहिये। प्रार्थना ही मानवताकी मूल भित्ति है। प्रार्थनासे दाम, काम, आरामके साथ ही दुर्लभ रामकी भी प्राप्ति सुलभतासे हो जाती है। प्रार्थना कृपणको उदार, संकीर्णको विशाल, नास्तिकको आस्तिक, दानवको मानव और नरको नारायण बनाती है। जिस प्रकार दुःखसे मुक्त होनेके लिये प्रार्थना की जाती है, उसी प्रकार सुखको स्थायी बनानेके लिये भी प्रार्थनाकी आवश्यकता होती है। प्रार्थनाके महत्त्वको सभी धर्मावलम्बी स्वीकार करते हैं। ईसाइयोंके गिरजाघर, मुसल्मानोंकी मस्जिदें और हिंदुओंके मन्दिर—ये सब प्रार्थनाके ही तो केन्द्र हैं। प्रार्थनाकी संकीर्णता और महानता ही किसी धर्म, सम्प्रदाय, सभ्यता और संस्कृतिकी कसौटी है। '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' की सभ्यता और संस्कृतिमें पले-पोसे लोग—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

—की प्रार्थना करते हैं, जब कि गुटबंदी और फिरकेबंदीवाली संकीर्ण सभ्यता और संस्कृतिमें पले-पोसे लोग—हमको दे तू पेटभर, औरोंको दे कम। हम खायें हलुवा-पूड़ी तो वे खायें गम॥' की निम्न प्रार्थना करते हैं। सच्ची प्रार्थना मानवमें मानवताकी जाग्रति करके उसे महा-मानव बननेकी शिक्षा देती है। ऐसी ही प्रार्थनासे व्यक्ति और समष्टि—सबका कल्याण सम्भव है। यही सुख-शान्ति एवं भगवत्प्राप्तिका भी मूलमन्त्र है। आज ऐसी ही प्रार्थना-की सर्वत्र आवश्यकता है।

जब सारे सहारे जवाब दे देते हैं....

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

बात है सन् १८९९ की। अमेरिकाकी। ४७ सालका एक प्रौढ़ खड़ा था एक नदीके किनारे। मेरी विलेसे वह लौट रहा था मिसूरी स्थित अपने फार्मपर। १०२ रिवरका पुल आया कि उसने अपनी टमटमके घोड़े रोक दिये। उतरा और नदीतटपर खड़े होकर सोचने लगा—क्या करूँ!

दस सालसे मैं सतत संघर्ष कर रहा हूँ। जी-तोड़ मेहनत कर रहा हूँ। खेती करता हूँ। पशु पालता हूँ। पर नतीजा? घाटा-ही-घाटा। नुकसान-ही-नुकसान। पासमें दमड़ी नहीं। जमीन बंधक रख चुका हूँ। उसका ब्याज-तक चुकानेका प्रबन्ध नहीं। अभी-अभी तो मेरी विलेमें बैंकर कह रहा था बंधकको खतम करनेके लिये। इतनी गरीबी झेल रहा है हमारा पूरा परिवार, फिर भी दाने-दानेकी तबाही! सारा पुरुषार्थ समाप्त हो चुका है। सारे सहारे जवाब दे चुके हैं। ऐसी हालतमें मैं अब क्या करूँ?

घंटों खड़ा वह सोचता रहा—पानीमें कूदकर सारी झंझट समाप्त कर देनेके प्रश्नपर! परंतु अन्तमें वह लौटकर टमटमपर आ बैठा और घर लौट आया।

कई साल बाद उसने अपने बेटेसे कहा—'डेल! तू जानता है कि मैं उस दिन नदीमें क्यों नहीं कूद गया? मुझे बचा लिया तेरी माँकी अडिग आस्थाने। वह रोज कहती थी कि 'भले ही सारे सहारे जवाब दे दें, बेसहारोंके सहारे, अनाथोंके नाथ परम प्रभु तो हमें भूले नहीं हैं। हम उन्हें प्रेम करते हैं, उनके आदेशोंका पालन करते हैं तो देर-सबेर सब कुछ ठीक होकर ही रहेगा!' और सचमुच वही हुआ!' उसके बाद उसने बड़े आनन्दसे जीवनके ४२ वर्ष काटे। १९४१ में मरा वह ८९ वर्षका होकर।

डेल कार्नेगी, प्रसिद्ध लेखक और विचारक डेल कार्नेगीने "*How to stop worrying and start living?*" (चिन्तामुक्त कैसे हों और जीना कैसे प्रारम्भ करें?)—पुस्तकमें विस्तारसे बताया है कि उनके माता-पिताने चिन्ताओंपर कैसे विजय प्राप्त की।

× × ×

डेल कहता है, 'गरीबी हमारे पीछे पड़ी थी, मुसीबतें और परेशानियाँ हमें पग-पगपर त्रस्त करती थीं; परंतु मेरी माँ कभी भी चिन्तित न होती थी। वह अपनी सारी चिन्ताएँ प्रभुके चरणोंमें निवेदित कर देती थी। सोनेके पहले माँ बाइबिलके एक अध्यायका पाठ करती। प्रायः माँ या पिताजी प्रभु ईसाके इन सान्त्वनादायी शब्दोंको दुहराते—

"In my Father's house are many mansions,
I go to prepare a place for you,
That where I am, there ye may be also."

'बहुत-से कमरे हैं, बहुत-से मकान हैं मेरे पिताके; तुम्हारे लिये मैं एक मकान ठीक करने जा रहा हूँ, ताकि मैं जहाँ रहूँ, तुम भी वहीं रह सको।'

× × ×

माँ प्रायः गाती—

"Peace, Peace, wonderful peace,
Flowing down from the Father above,
Sweep over my spirit for ever, I pray,
In fathomless billows of love."

'शान्ति, शान्ति, आश्चर्यजनक शान्ति उस स्वर्गस्थित परमपिताकी ओरसे नीचे हमारी ओर सतत प्रवाहित होती है। वह मुझे अपनेमें ऊपरसे नीचेतक डुबा ले, सराबोर कर दे! प्रेमके अनन्त सागरकी लहरोंमें मैं सतत डुबकियाँ लगाऊँ!········'

× × ×

अमेरिकामें पैसेकी कमी नहीं। सुखके, विलासके आधुनिकतम साधन लोगोंको सहज उपलब्ध हैं। फिर भी, विपुलताके बीच भी अभावोंकी कमी नहीं है। पैसेकी दौड़ मनुष्यको रात-दिन अस्त-व्यस्त रखती है। पलभरको भी उसे शान्ति नहीं मिलती। रात-दिन परीशानी, चिन्ता, निराशा, असंतोष। सब कुछ रहते हुए भी अभाव-ही-अभाव। सबसे बड़ा अभाव है—प्रेमका, स्नेहका, सद्भावका, उदारताका; और नतीजा ?

हर पैंतीस मिनटपर कोई आदमी आत्महत्या कर लेता है! हर दो मिनटपर कोई आदमी पागल हो जाता है! भौतिक सुखोंकी दौड़-धूपका, मनुष्यके स्नायविक तनावका यह दुष्परिणाम हमारी आँखोंके सामने है!

× × ×

डेल कार्नेगीका कहना है कि 'जो लोग आत्महत्या कर बैठते हैं या पागल हो जाते हैं, उनमेंसे अधिकांश बचाये जा सकते हैं—बशर्ते कि इन लोगोंको प्रार्थनासे प्राप्त होनेवाली शान्ति और संतोषका पता चल पाता!'

एक उदाहरण देता है वह।

एक महिला है। उसके बच्चों और नाती-पोतोंको किसी संकोचका अनुभव न हो, इसलिये उसे वह मेरी कुशमैनके कल्पित नामसे पुकारता है।

मेरी कुशमैन आप-बीती सुनाती है—

मंदीका जमाना था। मेरे पतिकी औसत आमदनी थी १८ डालर प्रति सप्ताह। [एक डालर लगभग ४॥) के होता है।] कभी-कभी उतनी भी आमदनी न होती। कारण, वह अक्सर बीमार पड़ जाता। इन कारणोंसे हमें अपना वह मकान खो देना पड़ा, जो हमने अपने हाथोंसे खड़ा किया था। परचूनीवाले साहुको हमसे ५० डालर पावना था। हमारे ५ बच्चे थे। खानेकी तंगी, पहननेकी तंगी। मैं चिन्तासे त्रस्त रहने लगी। एक दिन परचूनीवाले साहुने मेरे ११ सालके बच्चेपर यह झूठा आरोप लगाया कि उसने उसके यहाँसे दो पेंसिलें चुरायी हैं। मेरा बच्चा मुझे यह घटना सुनाते-सुनाते रो पड़ा। मैं जानती थी कि वह ईमानदार है और जरा-सी बात भी उसे बहुत लग जाती है। मैंने जान लिया कि उसका अपमान हुआ है, दूसरोंके सामने वह जलील किया गया है। यह अन्तिम घाव था जिसने मेरी कमर तोड़ दी।

मैंने सोचा कि हमलोग कितनी मुसीबतें झेलते आये हैं। भविष्यमें हालत सुधरेगी, इसकी कोई आशा नहीं।

चिन्तासे मैं पागल-जैसी हो गयी।

मैं अपने शयनागारमें गयी। पाँच सालकी अपनी मुन्नीको मैंने अपने साथ ले लिया। कमरेकी सभी खिड़कियाँ और छेद कागज और चिथड़ोंसे बंद कर दिये।

मुन्नीने पूछा—मम्मी, क्या कर रही हो यह ?

मैंने कहा—कुछ नहीं, बेटी। ऐसा ही कुछ है।

उसके बाद मैंने कमरेमें लगा गैसका हीटर खोल दिया—पर उसे जलाया नहीं।

जैसे ही मैं मुन्नीके साथ बिस्तरपर लेटी, वह बोली—'मम्मी, कैसा मजा है। थोड़ी देरमें हमलोग उठ जायँगे!'

मैंने कहा—चिन्ता न कर बेटी! हमलोग थोड़ी-सी झपकी लेंगे।

फिर मैंने अपनी आँखें बंद कर लीं। हीटरसे निकलनेवाली गैसकी आवाज मेरे कानोंमें पड़ने लगी। मैं कभी न भूल सकूँगी गैसकी उस महकको···!

अचानक मुझे लगा कि कहींसे संगीतकी ध्वनि आ

रही है। मैं सुनने लगी। रसोईघरमें मेरा रेडियो खुला ही छूट गया था। उसीपरसे वह संगीत सुनायी पड़ रहा था। एक पुराना भजन उसपर गाया जा रहा था—

What a friend we have in Jesus,
All our sins and griefs to bear!
What a privilege to carry
Everything to God in prayer.
Oh, what peace we often forfeit,
Oh, what needless pain we bear,
All because we do not carry
Everything to God in prayer!

"प्रभु कैसे अच्छे मित्र हैं हमारे!
हमारे सारे पापों और दुःखोंको वे स्वयं झेलते हैं!
कैसी सुविधा हमें मिली हुई है
कि हम अपनी सारी बातें प्रभुके चरणोंमें निवेदित कर दें!
अहा, कैसी शान्ति हम प्रायः खो बैठते हैं,
अहा, कैसे व्यर्थके कष्ट हम झेला करते हैं,
केवल इसलिये—
कि हम अपनी सारी बातें प्रभुके चरणोंमें निवेदित करते!
हम उनसे प्रार्थना नहीं करते।"

जैसे-जैसे मैं इस भजनको सुनती गयी, वैसे-वैसे मुझे कि मैंने भयंकर भूल कर डाली है। अभीतक जितने कष्ट झेले थे, वे सब मैंने अकेले-ही-अकेले झेले थे। अपनी सारी चिन्ताएँ उन परम प्रभुके चरणोंमें निवेदित नहीं की थीं...!

मैं बिस्तरसे कूद पड़ी। गैसका स्विच बंद कर दिया। ...ा खोल दिया, खिड़कियोंके पर्दे उठा दिये।

सारे दिन मैं रो-रोकर प्रभुसे प्रार्थना करती रही। उससे सहायताकी भीख नहीं माँगती रही—उल्टे सच्चे ...े उसे धन्यवाद देती रही कि उसने कितनी नियामतें बख्श रक्खी हैं। उसने मुझे ५ बच्चे दिये हैं— ... सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट—तनसे भी, मनसे भी। प्रभुसे कहा कि अब आगे मैं कभी ऐसी कृतघ्नता ... करूँगी। भविष्यमें मैंने वैसा किया भी।

अपना मकान छोड़कर जब हम एक स्कूलके मकानमें ...र मासिकके किरायेपर रहने गये, तब मैंने प्रभुको धन्यवाद दिया कि हमारे ऊपर छत तो है! मैंने उसे इसके लिये भी धन्यवाद दिया कि *परिस्थितियाँ बहुत बुरी नहीं हैं।*

धीरे-धीरे स्थिति सुधरने लगी। मंदी घटने लगी। मुझे अच्छा काम मिल गया। मेरा कालेजमें पढ़नेवाला बेटा एक फार्ममें गायें दुहनेका काम पा गया।

आज मेरे सभी बच्चे बड़े हो गये हैं। सब विवाहित हैं। तीन सुन्दर नाती-पोते हैं। आज मैं उस भयंकर दिनकी याद करती हूँ तो प्रभुको धन्यवाद देती हूँ कि मैं ठीक समयपर 'जाग' गयी, वरना जीवनके ये सुन्दर वर्ष मैं कहाँ पाती! आज जब मैं सुनती हूँ कि कोई आदमी अपने जीवनका अन्त करना चाहता है तो मेरे भीतरसे लगता है कि मैं चिल्लाकर उससे कहूँ—'भैया, ऐसा मत करो, मत करो!' जीवनके काले-से-काले क्षण थोड़ी ही देरके लिये आते हैं—उसके बाद ही आता है सुनहला प्रभात!

× × ×

डेल कार्नेगी मानता है और सही मानता है कि चिन्ताओंको दूर करनेका सबसे अच्छा, अत्यन्त पूर्ण उपाय है—'प्रार्थना'।

विश्वके महान्-से-महान् व्यक्ति भी जब देखते हैं कि सारे सहारे जवाब दे चुके हैं, तब वे प्रार्थनाका सहारा लेते हैं।

महात्मा गांधी तो कहा ही करते थे कि 'प्रार्थनाका सहारा न होता तो मैं कबका पागल हो गया होता!'

जनरल मांटगुमरी, जनरल वाशिंगटन, राबर्ट ली-जैसे सेनापति, डाक्टर अलेक्सिस कैरल-जैसे विश्वविश्रुत वैज्ञानिक, इमैनुएल कैण्ट-जैसे तत्त्ववेत्ता, डाक्टर कार्ल युंग-जैसे मनोवैज्ञानिक—सभी इस बातपर एकमत हैं कि प्रार्थना कभी फेल नहीं होती। प्रभुपर सब कुछ छोड़ देनेसे मनुष्य निश्चिन्त हो जाता है और उसके सारे कष्टोंका अन्त हो जाता है।

केवल विश्वास करने भरकी देर है।

अनाथ कौन है यहाँ, त्रिलोकनाथ साथ हैं।
दयालु दीनबंधुके बड़े विशाल हाथ हैं॥

× × ×

मानवके उत्थानका, मानवके विकासका भी यही मार्ग है। उस परम प्रभुपर हम अपनेको छोड़ दें, बस—मार्ग

झंझटें खतम! विनोबाने 'गीताप्रवचन'के तेरहवें अध्यायमें इस बातको बड़े अच्छे ढंगसे समझाया है। कहा है—

जबतक देहस्थित आत्माका विचार मनमें नहीं आता, तबतक मनुष्य साधारण क्रियाओंमें ही तल्लीन रहता है। विकासका आरम्भ तो इसके बाद होता है।

इस समयतक आत्मा सिर्फ देखता रहता है। माँ जिस तरह कुएँकी ओर रेंगते जानेवाले बच्चेके पीछे सतत सतर्क खड़ी रहती है, उसी प्रकार आत्मा हमपर निगाह किये खड़ा रहता है। शान्तिके साथ वह सब क्रियाओंको देखता है। इस स्थितिको 'उपद्रष्टा' साक्षीरूपसे सब देखनेवाला कहा है।

इस अवस्थामें आत्मा देखता है। अभी वह सम्मति, स्वीकृति नहीं देता। परंतु यह जीव जो अबतक अपनेको देहरूप समझकर सब क्रिया, सब व्यवहार करता है, वह आगे चलकर जागता है। उसे भान होता है कि अरे, मैं पशुकी तरह जीवन बिता रहा हूँ।

जीव जब इस तरह विचार करने लगता है, तब उसकी नैतिक भूमिका शुरू होती है। तब कदम-कदमपर वह उचित-अनुचितका विचार करता है, विवेकसे काम लेने लगता है। स्वैर क्रियाएँ रुकती हैं। तब आत्मा स्वस्थ रहकर देखता ही नहीं, भीतरसे अनुमोदन देता है—'शाबाश' 'खूब'! अब वह केवल उपद्रष्टा नहीं रहा, 'अनुमन्ता' हो गया।

कोई भूखा अतिथि दरवाजेपर आ जाय और आप अपनी परोसी थाली उसे दे दें। रातको इस सत्कृतिका स्मरण हो तो देखिये, मनको कितना आनन्द होता है। भीतरसे आत्माकी हल्की गुंजार कानोंमें होती है—'अच्छा काम किया!' माँ जब बच्चेकी पीठ ठोककर कहती है—'अच्छा किया, बेटा!' तब उसे लगता है मानो सारी दुनियाकी बख्शिश उसे मिल गयी। इसी तरह हमारे हृदयस्थ परमात्माके 'शाबाश बेटा', ये शब्द हमें प्रोत्साहन देते हैं। ऐसे समय जीव भोगमय जीवनको छोड़कर नैतिक जीवनकी भूमिकामें स्थित होता है।

इसके बादकी भूमिका नैतिक जीवनमें मनुष्य कर्तव्य-कर्मके द्वारा अपने मनके तमाम मलोंको धोनेका यत्न करता है। पर एक समय ऐसा आता है, जब मनुष्य ऐसा काम करते-करते थकने लगता है। तब जीव ऐसी प्रार्थना करने लगता है—

'हे भगवन्! मेरे उद्योगोंकी, मेरी शक्तिकी अब हद आ गयी। मुझे अधिक बल दे।'

जबतक मनुष्यको यह अनुभव नहीं होता कि उसके तमाम प्रयत्नोंके बावजूद वह अकेला कामयाब नहीं हो सकता, तबतक प्रार्थनाका रहस्य उसकी समझमें नहीं आ सकता।

अपनी सारी शक्ति लगानेपर भी जब वह काफी नहीं मालूम होती, तब आर्तभावसे द्रौपदीकी तरह परमात्माको पुकारना चाहिये। परमेश्वरकी कृपा और सहायताका स्रोत तो बहता ही रहता है। जिसे कमी पड़ती हो, वह सतत माँग ले।

सत्कर्म होते-होते जब चित्तके स्थूल मल धुल जाते हैं और सूक्ष्म मल धुलनेका समय आता है और उसके सारे प्रयत्न थकने लगते हैं, तब वह परमात्माको पुकारता है और वह 'आया' कहकर दौड़ आता है। जरा दरवाजा खोलिये कि सूर्यनारायण सारा-का-सारा प्रकाश लेकर अंदर घुस आते हैं और अँधेरा दूर कर देते हैं। परमात्माकी स्थिति भी ऐसी ही समझो। उससे माँगिये तो वह बाँह फैलाकर आया ही समझो। भीमाके किनारे (पण्ढरपुरमें) कमरपर हाथ रखकर वह तैयार ही खड़ा है—

'उठाके लो भुजा कहे, प्रभु आ जा!' ऐसा वर्णन तुकाराम आदिने किया है।

वह उपद्रष्टा, अनुमन्ता न रहते हुए 'भर्ता'—सब तरह सहायक होता है। मनकी मलिनता मिटानेके लिये आतुर होकर जब हम पुकारते हैं—

मारी नाव तमारे हाथे! प्रभु, संभाळ जो—रे!

'तू ही एक मेरा मददगार है। तेरा आसरा मुझे दरकार है।'—ऐसी प्रार्थना हम करते हैं तब वह दयाघन दूर कैसे रहेगा? भक्तकी सहायता करनेवाला वह भगवान्, अधूरेको पूरा करनेवाला वह प्रभु दौड़ पड़ता है। वह रैदासके चमड़े धोता है, सदन कसाईका मांस बेचता है, कबीरकी चादर बुनता है और जनाबाईके साथ चक्की पीसता है।

इसके बादकी सीढ़ी है—परमेश्वरके कृपा-प्रसादसे कर्मका जो फल मिला, उसे भी खुद न लेकर उसीके अर्पण कर देना। इस भूमिकामें जीव परमेश्वरसे कहता है—'अपना

फल आप ही भोगो।' नामदेव धरना देकर बैठ गया कि 'प्रभु, दूध पीना ही पड़ेगा।' कितना मधुर प्रसङ्ग है वह। सारा कर्मफल-रूपी दूध नामदेव भगवान्‌के अर्पण कर रहा है। इस तरह जीवनकी सारी पूँजी, सारी कमाई, जिस परमात्माकी कृपासे प्राप्त हुई, उसीको वह अर्पण कर देता है। उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता—इन स्वरूपोंमें प्रतीत होनेवाला परमात्मा अब 'भोक्ता' हो जाता है।

इसके बाद अब संकल्प ही करना छोड़ देता है। ज्ञानदेवने कहा है—

माली जिधर ले गया, उधर चुपचाप गया,
यों पानी-जैसे, मैया, होओ सदा।

माली जिन फूलों और पौधोंको चाहता है, उन्हें पानी देकर पोसता है। इसी तरह मेरे हाथों जो कुछ होना है, उसे उसीको तय करने दो। अपने सिरपर बोझ रखकर भी यदि मैं घोड़ेपर बैठूँगा तो भी बोझ घोड़ेपर ही पड़ेगा, फिर सारा ही बोझा उसकी पीठपर क्यों न लादूँ? इस तरह जीवनकी तमाम हलचल, उठा-धरी, फलना-फलाना—सब अन्तमें वह परमात्मा ही हो जाता है। मेरे जीवनका वह 'महेश्वर' ही हो जाता है।

इस तरह विकास होते-होते सारा जीवन ही परमेश्वरमय हो जाता है। सिर्फ देहका पर्दा बाकी रह जाता है। वह जब हट जाता है, तब जीव और शिव, आत्मा और परमात्मा एक ही हो जाता है।

इस प्रकार—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।

—इस स्वरूपमें हमें परमात्माका उत्तरोत्तर अधिक अनुभव करना है।

प्रभु पहले तटस्थ रहकर देखता है। फिर नैतिक जीवनका आरम्भ होनेपर हमसे सत्कर्म होने लगते हैं, तब हमें शाबाशी देता है। फिर चित्तके सूक्ष्म मल धो डालनेके लिये अपने प्रयत्नोंको अपर्याप्त देखकर भक्त जब पुकारता है, तब वह अनाथ-नाथ सहायताके लिये दौड़ पड़ता है। उसके बाद फलको भी भगवान्‌के अर्पण करके उसे भोक्ता बना देना और अन्तमें तमाम संकल्प उसीके अर्पण करके सारा जीवन हरिमय कर देना है। यही मानवका अन्तिम साध्य है। कर्मयोग और भक्तियोगरूपी दोनों पंखोंसे उड़ते हुए साधकको इस अन्तिम मंजिलतक जा पहुँचना है।

× × ×

धन्य हो उठेगा हमारा जीवन, जिस क्षण हम और सारे सहारे छोड़कर उस एकमात्र सहारेका सहारा लेकर पुकारने लगेंगे—

मालिक तेरी रजा रहे औ तू-ही-तू रहे।
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरजू रहे॥
जबतक कि तनमें जान, रगोंमें लहू रहे।
तेरा ही जिक्र हो और तेरी जुस्तजू रहे।

राम ही तेरा अपना है

दुरलभ नरदेह पाइ भूल्यौ क्यों बावरे?
राम-सुधा छाँड़ि करत विषय-विष चाव रे॥
एक एक साँस जात वृथा, अनमोल रे।
संतत मन राम सुमिर, जीभ राम बोल रे॥
मिथ्या सब भोग-सुख, दुःखकी खान रे।
त्याग राग-ममता सब, सुमिर भगवान् रे॥
है न कछु तेरो ह्याँ, तन-धन-धाम रे।
मिथ्या अभिमान-मोह त्याग भजु राम रे॥
राम पितु, मातु राम, राम सर्वस्व रे।
राम सब भाँति एक तेरो निजस्व रे॥

आप ही भोगो।' नामदेव धरना देकर बैठ गया कि , दूध पीना ही पड़ेगा!' कितना मधुर प्रसङ्ग है वह। कर्मफल-रूपी दूध नामदेव भगवान्‌के अर्पण कर रहा इस तरह जीवनकी सारी पूँजी, सारी कमाई, जिस त्माकी कृपासे प्राप्त हुई, उसीको वह अर्पण कर देता उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता—इन स्वरूपोंमें प्रतीत होने- परमात्मा अब 'भोक्ता' हो जाता है।

इसके बाद अब संकल्प ही करना छोड़ देता है।

ज्ञानदेवने कहा है—

माली जिधर ले गया, उधर चुपचाप गया,
यों पानी-जैसे, मैया, होओ सदा।

माली जिन फूलों और पौधोंको चाहता है, उन्हें पानी देकर ा है। इसी तरह मेरे हाथों जो कुछ होना है, उसे उसीको करने दो। अपने सिरपर बोझ रखकर भी यदि मैं र बैठूँगा तो भी बोझ घोड़ेपर ही पड़ेगा, फिर सारा ोझा उसकी पीठपर क्यों न लाद ूँ? इस तरह जीवन- ामाम हलचल, उठा-धरी, फलना-फलाना—सब अन्तमें रमात्मा ही हो जाता है। मेरे जीवनका वह 'महेश्वर' । जाता है।

इस तरह विकास होते-होते सारा जीवन ही परमेश्वरमय ाता है। सिर्फ देहका पर्दा बाकी रह जाता है। वह जब ाता है, तब जीव और शिव, आत्मा और परमात्मा एक । जाता है।

इस प्रकार—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।

—इस स्वरूपमें हमें परमात्माका उत्तरोत्तर अधिव अनुभव करना है।

प्रभु पहले तटस्थ रहकर देखता है। फिर नैतिक जीवनक आरम्भ होनेपर हमसे सत्कर्म होने लगते हैं, तब हमें शाबाशी देता है। फिर चित्तके सूक्ष्म मल धो डालनेके लिये अपने प्रयत्नोंको अपर्याप्त देखकर भक्त जब पुकारता है तब वह अनाथ-नाथ सहायताके लिये दौड़ पड़ता है। उसके बाद फलको भी भगवान्‌के अर्पण करके उसे भोक्ता बन देना और अन्तमें तमाम संकल्प उसीके अर्पण करके सार जीवन हरिमय कर देना है। यही मानवका अन्तिम साध्य है। कर्मयोग और भक्तियोगरूपी दोनों पंखोंसे उड़ते हुए साधकको इस अन्तिम मंजिलतक जा पहुँचना है।

× × ×

धन्य हो उठेगा हमारा जीवन, जिस क्षण हम और सारे सहारे छोड़कर उस एकमात्र सहारेका सहारा लेकर पुकार- ने लगेंगे—

मालिक तेरी रजा रहे औ तू-ही-तू रहे।
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरजू रहे॥
जबतक कि तनमें जान, रगोंमें लहू रहे।
तेरा ही जिक्र हो और तेरी जुस्तजू रहे।

राम ही तेरा अपना है

दुरलभ नरदेह पाइ भूल्यौ क्यों बावरे?
राम-सुधा छाँड़ि करत विषय-विष चाव रे॥
एक एक साँस जात वृथा, अनमोल रे।
संतत मन राम सुमिर, जीभ राम बोल रे॥
मिथ्या सब भोग-सुख, दुःखकी खान रे।
त्याग राग-ममता सब, सुमिर भगवान् रे॥
है न कछु तेरो ह्याँ, तन-धन-धाम रे।
मिथ्या अभिमान-मोह त्याग भजु राम रे॥
राम पितु, मातु राम, राम सर्वस्व रे।

उषाकी मधुमय वेला हो, भगवान् भास्करकी अस्ताचल-गामिनी सुषमा हो; उस समय प्रभु-पदारविन्दोंमें अपना हृदय उँडेलनेकी साधना जिसने कर ली, उसके आनन्दको कौन पा सकता है ? धन्य हो उठता है उसका जीवन । भला, प्रार्थनाके इन मधुर क्षणोंसे बढ़कर भी जीवनके कोई अन्य क्षण हो सकते हैं ?

रोम-रोम मस्त है, आनन्दमें डूबा है । याद है तो केवल उस परम प्रियतमकी । ध्यान है तो केवल उसीका । संसारका कोई चिन्तन कहीं पास नहीं फटकता ।

Blest is that tranquil hour of morn,
And blest that solemn hour of eve,
When on the wings of prayer unborne
The world I leave.

× × ×

उस समय होता क्या है ?
साधकके सारे पाप-ताप दूर हो जाते हैं ।
उसकी सारी चिन्ताएँ, वेदनाएँ समाप्त हो जाती हैं ।
उसका सारा भय जाता रहता है ।
उसकी सारी शङ्काओंका निरसन हो जाता है ।

अनाथोंके नाथ, दुखियोंके दुःखनाशक, असहायोंके सहायक परम प्रभु जब सामने हों, तब और होगा ही क्या ?

Then is my strength by Thee renewed,
Then are my sins by Thou forgiven,
Then dost Thou cheer my solitude,
With hopes of heaven.

उस समय साधककी शक्ति दुगुनी हो उठती है । परम प्रभु उसके सारे अपराध क्षमा कर देते हैं । उसका प्रार्थनाका एकान्त कोना स्वर्गीय आनन्दसे जगमगा उठता है । चारों ओर शान्ति, सुख और आनन्दकी त्रिवेणी लहराने लगती है ।

कौन वर्णन कर सकता है इस आनन्दका ?

उसमें सारी चिन्ताओंका शमन हो जाता है, सारे अभावोंका अभाव ।

No words can tell what sweet relief
Here for every want I find,
What strength for warfare, balm for grief
What peace of mind.
Hushed is each doubt, gone every fear,
My spirit seems in heaven to stay,
And even the penitential tear
Is wiped away.

प्रार्थनाके ये मधुर क्षण जीवनको ऊपर उठाते हैं । सारे पाप-ताप, सारे दुःख-संताप, सारे भय-संदेह दूर हो जाते हैं । सारे प्रलोभन शान्त हो जाते हैं ।

क्यों न हम ऐसे मधुर क्षणोंकी प्राप्तिके लिये उत्सुक रहें ?

Sweet hour of prayer, sweet hour of prayer,
That calls me from a world of care,
And bids me, at my Father's throne,
Make all my wants and wishes known.

In seasons of distress and grief,
My soul has often found relief,
And oft escaped the tempter's snare,
By Thy return, sweet hour of prayer.

× × ×

और प्रार्थनाकी मुद्रा ?

उसे देखना है तो भरतकी ओर देखिये—

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू ।
जीहँ नाम जप लोचन नीरू ॥

शरीरका रोम-रोम पुलकित है । हृदयमें सीतारामका ध्यान लगा है । जीभसे भी 'सियाराम, सियाराम'की रट लगी है । आँखोंसे आँसुओंकी रेलपेल मची है ।

काश, हम कर पाते ऐसी प्रार्थना !

धन्य हो उठते हमारे जीवनके वे मधुर क्षण !

मनको प्रभु-चरणारविन्दोंमें बाँध दो—सबका निष्कर्ष यही है। सारे शास्त्रोंका निचोड़ यही है। सारे धर्मग्रन्थोंका लक्ष्य यही है। सारी साधनाका तात्पर्य यही है।

× × ×

और मन जब उस प्रियतमके स्मरणमें डूब गया, उसकी यादमें लग गया, उसके नाममें, उसके गुणमें, उसके कीर्तनमें रम गया, फिर तो कहना ही क्या!

शब वही शब है, औ दिन वही दिन,
जो याद तेरीमें गुजर जाये।

धन्य हो उठता है वह दिन, धन्य हो उठती है वह रात, जो उस परमप्रियतमके स्मरणमें बीतती है।

मन जहाँ मालिककी यादमें मशगूल हुआ, प्यारेकी मुहब्बतमें मस्त हुआ, प्रियतमके ध्यानमें लवलीन हुआ—बस, सब सफल।

यही तो प्रार्थना है।
यही तो पूजा है।
यही तो उपासना है।
यही तो इबादत है।
यही तो बंदगी है।
यही तो 'प्रेयर' (Prayer) है।

× × ×

और कहाँ हम कर पाते हैं ऐसी प्रार्थना!

इसीलिये एक साधक कहता है—

Lord, teach us how to pray!

'हे प्रभु, मुझे सिखा दो प्रार्थना करना!'

कैसी सुन्दर व्याख्या की गयी है प्रार्थनाकी!—

Prayer is the soul's sincere desire,
Uttered or unexpressed,
The motion of a hidden fire,
That trembles in the breast,

आत्माकी हार्दिक भावनाका नाम है प्रार्थना।
दिलके भीतर भरी आगका नाम है प्रार्थना।
उसके लिये न मन्त्रकी जरूरत है, न तन्त्रकी।

हृदयकी सच्ची भावना प्रभुके चरणोंमें निवेदन कर देना ही तो प्रार्थना है।

यह जरूरी नहीं कि उसके लिये वेदकी ऋचाएँ कुरानशरीफकी आयतें।

कोई भी टूटी-फूटी भाषा उसमें चलती है। फिर प्रकट की जाय, चाहे न प्रकट की जाय।

जरूरत केवल एक चीजकी है, और वह है हृद शुद्ध भावना।

× × ×

काँकर-पाथर जोरि कै मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥

वे परम प्रभु तो हृदयका भाव देखते हैं, हृद पुकार सुनते हैं। शब्दसे, भाषासे, आडम्बरसे उन्हें लेना-देना?

× × ×

Prayer is the simplest form of spee
That infant lips can cry.
Prayer the sublimest strains that reac
The Majesty on high.

प्रार्थनामें यह नहीं देखा जाता कि वह किस भाषामें गयी, किन शब्दोंमें की गयी—उसमें केवल यह देखा जा है कि उसमें भगवद्भक्तिकी तरी है या नहीं—हृदयकी निर्म भावना है या नहीं। और जब ऐसी तरी होती है, तब कुछ किया जाता है, वह प्रार्थना ही होती है।

जेता चलूँ, तेती परदखिना,
जो कछु करूँ सो पूजा।

× × ×

ऐसी ही प्रार्थनामें जीवनकी सार्थकता है, जन्मकी सार्थकता है। जब कोई साधक ऐसी प्रार्थना करने लगता है, तब उसके सारे शोक-संताप सदाके लिये दूर हो जाते हैं।

तब वह सब कुछ छोड़ देता है। रात-दिन सुबह-शाम वह प्रार्थनाके ही मधुर क्षणोंकी प्रतीक्षा करता रहता है। वह कहता है—

My God, is any hour so sweet,
From blush of morn to evening star,
As that which calls me to Thy feet,
The hour of prayer?

उषाकी मधुमय वेला हो, भगवान् भास्करकी अस्ताचल-गामिनी सुषमा हो; उस समय प्रभु-पदारविन्दोंमें अपना हृदय उँडेलनेकी साधना जिसने कर ली, उसके आनन्दको कौन पा सकता है ? धन्य हो उठता है उसका जीवन । भला, प्रार्थनाके इन मधुर क्षणोंसे बढ़कर भी जीवनके कोई अन्य क्षण हो सकते हैं ?

रोम-रोम मस्त है, आनन्दमें डूबा है । याद है तो केवल उस परम प्रियतमकी । ध्यान है तो केवल उसीका । संसारका कोई चिन्तन कहीं पास नहीं फटकता ।

Blest is that tranquil hour of morn,
And blest that solemn hour of eve,
When on the wings of prayer unborne
The world I leave.

× × ×

उस समय होता क्या है ?
साधकके सारे पाप-ताप दूर हो जाते हैं ।
उसकी सारी चिन्ताएँ, वेदनाएँ समाप्त हो जाती हैं ।
उसका सारा भय जाता रहता है ।
उसकी सारी शङ्काओंका निरसन हो जाता है ।

अनाथोंके नाथ, दुखियोंके दुःखनाशक, असहायोंके सहायक परम प्रभु जब सामने हों, तब और होगा ही क्या ?

Then is my strength by Thee renewed,
Then are my sins by Thou forgiven,
Then dost Thou cheer my solitude,
With hopes of heaven.

उस समय साधककी शक्ति दुगुनी हो उठती है । परम प्रभु उसके सारे अपराध क्षमा कर देते हैं । उसका प्रार्थनाका एकान्त कोना स्वर्गीय आनन्दसे जगमगा उठता है । चारों ओर शान्ति, सुख और आनन्दकी त्रिवेणी लहराने लगती है ।

कौन वर्णन कर सकता है इस आनन्दका ?

उसमें सारी चिन्ताओंका शमन हो जाता है, सारे अभावोंका अभाव ।

No words can tell what sweet relief
Here for every want I find,
What strength for warfare, balm for grief
What peace of mind,
Hushed is each doubt, gone every fear,
My spirit seems in heaven to stay,
And even the penitential tear
Is wiped away.

प्रार्थनाके ये मधुर क्षण जीवनको ऊपर उठाते हैं । सारे पाप-ताप, सारे दुःख-संताप, सारे भय-संदेह दूर हो जाते हैं । सारे प्रलोभन शान्त हो जाते हैं ।

क्यों न हम ऐसे मधुर क्षणोंकी प्राप्तिके लिये उत्सुक रहें ?

Sweet hour of prayer, sweet hour of prayer,
That calls me from a world of care,
And bids me, at my Father's throne,
Make all my wants and wishes known.
In seasons of distress and grief,
My soul has often found relief,
And oft escaped the tempter's snare,
By Thy return, sweet hour of prayer.

× × ×

और प्रार्थनाकी मुद्रा ?

उसे देखना है तो भरतकी ओर देखिये—

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू ।
जीहँ नाम जप लोचन नीरू ॥

शरीरका रोम-रोम पुलकित है । हृदयमें सीतारामका ध्यान लगा है । जीभसे भी 'सियाराम, सियाराम'की रट लगी है । आँखोंसे आँसुओंकी रेलपेल मची है ।

काश, हम कर पाते ऐसी प्रार्थना !

धन्य हो उठते हमारे जीवनके वे मधुर क्षण !

प्रार्थनामय जीवन

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

बलखके बादशाह थे इब्राहीम बिन अदहम।

कहते हैं कि एक रातको सोते समय उन्हें छतपर किसीकी आहट लगी।

उन्होंने आवाज दी—'कौन है ऊपर?'

जवाब मिला—'तेरा कोई वाकिफ है।'

पूछा—'तो छतपर क्या कर रहा है?'

'मेरा ऊँट खो गया है, उसीको ढूँढ़ रहा हूँ!'

इब्राहीमने ताना कसा—'खोया हुआ ऊँट वहाँ छतपर तुझे मिलेगा?'

आवाज आयी—'बात तो तेरी ठीक है। पर क्या शाही तख्तपर बैठे रहकर खुदा तुझे मिल जायगा?'

बात पैनी थी। कलेजेके पार हो गयी। इब्राहीमने राजपाटपर लात मारकर जंगलका रास्ता लिया। सारा जीवन उन्होंने प्रार्थनामें ही बिता दिया।

बहुत ऊँचे दर्जेके सूफी फकीर हुए वे।

× × × ×

एक बार किसीने उनसे पूछा—'हजरत, जरा यह तो बताइये कि हम इतने दिनसे इबादत करते हैं, हमारी इबादत, हमारी दुआ कबूल क्यों नहीं होती?'

बोले—'भैया, तुम यह तो जानते हो कि खुदा है; मगर तुम उसकी बंदगी नहीं करते! उसकी नेमत खाते हो, मगर शुक्र नहीं करते। बहिश्त और दोज़खको मानते तो हो, मगर एकसे मिलनेका और दूसरेसे बचनेका सामान नहीं करते! शैतानको दुश्मन तो समझते हो, मगर उससे दूर नहीं रहते। मौत आयेगी—यह तो जानते हो, मगर उसकी तैयारी नहीं करते। मुझमें ऐब है, बुराई है—यह तो जानते हो, फिर भी दूसरोंके ऐब निकाला करते हो। भला, ऐसे आदमीकी इबादत कैसे कबूल हो? बेहतर है कि जाहिर और बातिन—बाहर और भीतर—मन और कर्म एक हो।'

× × ×

हम बरसों प्रार्थना करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, मन्त्र जपते हैं, तसबीह फेरते हैं,—फिर भी हमें शान्ति नहीं मिलती, हमारे चित्तमें प्रसन्नता नहीं आती, हमारा जीवन आनन्दसे ओत-प्रोत नहीं होता; इसका कारण क्या है?

कारण यही है कि प्रार्थनाको हमने अपने जीवनका अङ्ग नहीं बनाया। हमने अपना जीवन प्रार्थनामय नहीं बनाया। हम ऊपरसे कुछ हैं, भीतरसे कुछ। फिर हमारी इबादत कबूल भी हो तो कैसे?

× × ×

विनोबासे पूछा—भगवान् हमसे कैसे प्रसन्न हों?

बोले—भगवान् तब प्रसन्न होगा, जब हमारा हर काम धर्मका काम होगा।

किसान खेतमें काम करता है; लेकिन खेत जोतते-जोतते पड़ोसीकी जमीनमें भी कुछ हाथ बढ़ा देता है। कहता है—'घास ही तो है वहाँ।' तो यह अधर्म हो गया। अब भगवान् कैसे प्रसन्न होगा?

मालिक दिनभर मजदूरसे काम लेता है, परंतु पूरी मजदूरी नहीं देता। मजदूर कहता है—'मुझे एक रुपया चाहिये।' मालिक बारह आने देता है। तो, यह अधर्म हो गया। अब भगवान् कैसे प्रसन्न होगा?

मजदूर मालिकके खेतमें काम करता है। कामका नाम तो लेता है, लेकिन बीच-बीचमें आलस करता है। बैलकी तरह देख-रेख रही तो काम करता है, नहीं तो बैठ जाता है। ८ घंटेमें मुश्किलसे ४ घंटे काम करता है। कहता है,—'यह तो मालिकका काम है, अपना क्या बिगड़ता है।' तो, यह अधर्म हो गया। अब भगवान् कैसे प्रसन्न होगा?

हम जमीनके मालिक बनकर बैठते हैं। कहते हैं हम २५ एकड़ जमीनके मालिक हैं। पड़ोसमें दूसरेके पास जमीन नहीं है। उसके बाल-बच्चोंको खानेको भरपेट नहीं मिलता। जमीनका यह मालिक देखता रहता है। तो, यह अधर्म है। अब भगवान् कैसे प्रसन्न होगा?

हम दिनभर मेहनत करें, भगवान्का काम करें, खेती करें। पड़ोसीके पास जमीन नहीं है, पैसा नहीं है तो अपनेमेंसे उसे दें। पड़ोसीकी सेवा करें। सब मिल-बाँटकर

खायें। यह धर्मका काम है, भक्तिका काम है। ऐसा करेंगे तब भगवान् प्रसन्न होगा।

× × ×

साफ है कि भगवान्‌को प्रसन्न करना है तो घड़ी-दो-घड़ी उसका नाम ले लेनेसे काम न चलेगा। उसके लिये अपना सारा जीवन प्रार्थनामय बनाना होगा। सुबहसे शाम-तक, शामसे सुबहतक जो हम कुछ करें, वह उसकी प्रार्थना ही हो, प्रभुकी पूजा ही हो। 'जो कुछ करूँ सो पूजा।'

ऐसा व्यक्ति प्राणिमात्रसे प्रेम करेगा, सबपर करुणा करेगा। उसका जीवन सत्यमय होगा, प्रेममय होगा, करुणा-मय होगा। ईमानदारी उसके प्रत्येक व्यवहारमें ओत-प्रोत रहेगी। वह न किसीसे द्वेष रक्खेगा, न किसीको सतायेगा। न वह किसीका शोषण करेगा, न किसीको धोखा देगा। न वह किसीके साथ छल-कपट करेगा, न किसीके साथ विश्वासघात करेगा। सबमें, घट-घटमें वह उस परम प्रभुकी झाँकी करेगा। प्राणिमात्रको वह अपना ही अङ्ग मानकर सबसे प्रेम करनेको आतुर रहेगा।

× × ×

कॉलॅरिजने ठीक कहा है—

He prayeth well who loveth well
Both man and bird and beast.
He prayeth best who loveth best
All things both great and small;
For the dear God, who loveth us,
He made and loveth all.

'अच्छी है उसीकी प्रार्थना, जो प्राणिमात्रको, मनुष्य-मात्रको, पशु पक्षीमात्रको अच्छी तरह प्रेम करता है।'

सर्वोत्तम है उसीकी प्रार्थना, जो छोटे-से-छोटे प्राणीसे लेकर बड़े से बड़े प्राणीको अपना सर्वोत्तम प्रेम देता है। वे परम प्रभु हम सबपर अपना प्रेम बिखेरते हैं। उन्होंने हम सबकी रचना की है। हम सबको वे प्यार करते हैं।

× × ×

कुरानशरीफमें कहा है—

व अल्लफ बैन कुलूबिहिम्—

लौ अन्फक्त मा फिऽऽल् अर्दि जमीअम्ऽमा अल्लफ्त बैन कुलूबिहिम् व लाकिऽनऽल्लाह अल्लफ बैनहुम्; इन्हू अज़ीज़ुन् हकीमुन्० ८। ६३

'अल्लाहने सबके दिल एक कर दिये हैं। उसने सबके दिलोंके भीतर मुहब्बत भर दी है। तुम सारी दुनियाकी दौलत खर्च कर देते, फिर भी सबके दिलोंको एक न कर पाते; लेकिन अल्लाहने सबमें मुहब्बत भर दी है। बेशक, अल्लाह सर्वसमर्थ है, सर्वज्ञ है।'

× × ×

ईश्वरसे प्रेम करना है, अल्लाहसे मुहब्बत करनी है तो उसका रास्ता यही है कि अल्लाहके बंदोंसे, प्रभुकी सारी सृष्टिसे प्रेम करो। हम ऐसा करेंगे तभी हमारी प्रार्थना सफल होगी, अन्यथा उसका कोई मतलब नहीं।

× × ×

अब्दुल्ला बिन मुबारिक एक अच्छे सूफी संत थे।

एक बार हजसे फारिग होकर काबामें ही सो गये।

रातमें सपना देखा कि एक फरिश्ता दूसरेसे पूछ रहा है—

'इस साल हजको कितने लोग आये और कितने लोगोंका हज कबूल हुआ ?'

दूसरा बोला—हजको तो ४० लाख आदमी आये, मगर एक भी आदमीका हज कबूल नहीं हुआ !

'किसीका भी नहीं ?'

'सिर्फ एकका हज कबूल हुआ; मगर तमाशा यह रहा कि वह खुद हज करनेके लिये यहाँ आ ही नहीं सका और उसीके तुफैलमें अल्लाहने तमाम हाजियोंको बख्श दिया।'

'कौन है वह पाक हस्ती ?'

'वह है दमिश्कका एक मोची। उसका नाम है अली बिन मूफिक।'

अब्दुल्लाकी आँख खुली तो सोचा कि चलूँ, उस मोची-के दर्शन तो करूँ।

दमिश्क पहुँचकर अब्दुल्ला उससे मिले। पूछा तो उसने कहा कि बहुत दिनोंसे हज करनेकी मेरी तमन्ना थी। बड़ी मेहनतसे मैं ७०० दिरम जमा कर पाया था। एक दिन मेरी बीबीको पड़ोसके घरसे कुछ महक लगी। उसने कहा कि 'जरा माँग तो लाओ, क्या पक रहा है। मैं खाऊँगी।'

पड़ोसीसे जाकर माँगा तो बोला—'भाई, माफ करना। यह साग किसीके खाने लायक नहीं है। मेरे बच्चे सात

दिनसे भूखे हैं। बड़ी मजबूरीमें आज यह साग मैं ऐसी जगहसे उठाकर लाया हूँ, जिसे कोई छूना भी नहीं चाहता।'

पड़ोसीकी गरीबी और मजबूरी देखकर मेरा दिल काँप उठा। हजके लिये बड़ी मुश्किलसे जमा किये ७०० दिरम मैंने उठाकर उसे दे दिये। मुझे लगा कि किसी गरीबकी मुसीबत दूर करना हजसे कहीं बेहतर है।

× × ×

हमें यदि अपनी प्रार्थना स्वीकार करानी है, अपना जप-तप सार्थक कराना है; अपनी इबादत, अपनी नमाज, अपना रोजा, अपनी जकात, अपना हज कबूल कराना तो उसका उपाय यही है कि हम अपना सारा जीवन धर्ममय सत्यमय, प्रेममय, करुणामय बना लें। फिर तो हम जि और दृष्टि डालेंगे, उस परम प्रभुकी ही झाँकी दीख पड़ेगी-

If we live a life of prayer,
God is present everywhere.

हृदयको निर्मल बनाते ही कण-कणमें कृष्णकी झाँ मिलने लगेगी—

कृष्णेर मूर्ति करे सर्वत्र झलमल।
सेइ देखे जाँर आँखि हय निरमल॥

प्रार्थना—एक अपरिमित शक्ति

(लेखक—श्रीप्रतापराय भट्ट बी० एस्-सी०, राष्ट्रभाषारत्न)

ईश्वरकी प्रार्थना प्रत्येक देशमें और प्रत्येक धर्ममें किसी-न-किसी रूपमें की जाती है। व्यक्तिगत रूपमें अथवा सामूहिक रूपमें, घरमें, मन्दिरमें, संस्थाओंमें अथवा आश्रमोंमें प्रार्थना होती है—यह हम देखते हैं। इन प्रार्थनाओंको देखकर हमारे मनमें स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि सच्ची प्रार्थना क्या है, उसका उद्देश्य क्या है, उसका महत्त्व क्या है तथा प्रार्थना करनेसे हमको क्या लाभ होता है?

प्रार्थना संतोंके, भक्तोंके और महात्माओंके जीवनकी समृद्धि है, शान्ति है, बल है। वे अपने जीवनकी प्रत्येक घड़ी और प्रत्येक पलमें प्रार्थनाके अगम्य प्रभाव और अपरिमित शक्तिका अनुभव करते हैं। प्रार्थनाके निर्मल और शान्त जलमें निमज्जन करनेवालोंको जो परमानन्द प्राप्त होता है, उसके सामने संसारका कोई सुख अथवा स्वर्गके विलास-वैभवका कोई आनन्द कोई बिसात ही नहीं रखता।

सच्ची प्रार्थना केवल ईश्वरकी पूजा या बाह्य उपासना-मात्र नहीं है, बल्कि प्रार्थनामें लीन हुए मनुष्यके भीतरसे सहज ही निस्सृत होनेवाला तथा परमेश्वरके अगाध शक्ति-सागरमें विलीन होनेवाला एक अदृश्य आत्मशक्तिका स्रोत है। अखिल ब्रह्माण्डके स्रष्टा, सर्वशक्तिमान्, सर्वोद्धारक परम पिता, 'सत्यं शिवं सुन्दरम्'-स्वरूप, सर्वव्यापी होकर भी अदृश्य रहनेवाले परमात्माके साथ एकतान होनेका मानवीय प्रयास ही 'प्रार्थना' है। प्रार्थनाका अन्तिम ध्येय और फल परमात्माके साथ आत्माका ऐक्य-सम्पादन है। वाणी और विचारसे अतीत महान् प्रभुके साथ आत्माका यह तादा भी वर्णनातीत है, निगूढ़ है।

हृदयकी गहराईसे अनन्य प्रेम और श्रद्धापूर्वक की ग प्रार्थना मनुष्यके तन और मनपर अद्भुत प्रभाव डालती है प्रार्थनाके द्वारा मनुष्यमें जो बुद्धिकी निर्मलता और सूक्ष्म जो नैतिक बल, जो आत्मश्रद्धा, जो आध्यात्मिक शक्ति अ आत्मविकास तथा जीवनको उद्विग्न और संतप्त करनेव जटिल सांसारिक प्रश्नोंको सुलझानेकी पारदर्शी समझ अ ज्ञानकी प्राप्ति होती है, उसकी तुलनामें इस जगत्में दूस कोई ऐसी शक्ति या रसायन नहीं है, जो मनुष्यके जीवन इतना चामत्कारिक प्रभाव डाल सके।

यदि हम सच्चे दिलसे, एकचित्तसे, विनम्रभाव प्रार्थना करनेकी आदत डाल लें तो थोड़े ही समयमें हम अपने जीवनमें चामत्कारिक परिवर्तन दिखायी देने लगेंगे अपने प्रत्येक कार्यमें तथा व्यवहारमें इसके प्रभावकी गह छाप पड़ी हुई जान पड़ेगी। जिस मनुष्यका आन्तरिक जीव इस प्रकारकी विशुद्ध हृदयसे की गयी प्रार्थनाके फलस्वर उन्नत हो गया है, उसकी मुख-मुद्रा देखने ही योग्य हो है। वह कितना शान्त, समदर्शी और कितने अनोखे सात्त्वि ओजसे देदीप्यमान दिखलायी देता है। उसके स्वभाव अ व्यवहारमें कितना सौजन्य और कितना सौम्यभाव निख उठता है। उसका हृदय कितना निर्दोष और बालकके समा सरल है। सच पूछिये तो उसके अन्तःकरणकी गहराई

राम

ईश्वरके प्रति ऐसा अटल विश्वास तथा प्रेमकी एक ऐसी ज्योति चमकती रहती है कि उसके पवित्र प्रकाशमें अपनेको वह भलीभाँति देख सकता है। अपने दोष, अपने अंदरकी स्वार्थवृत्ति, तुच्छ अभिमान या क्षुद्र वासनाओंको वह निहारता है। उसको अपनी अल्पताका, नैतिक उत्तरदायित्वका, बौद्धिक लघुताका और सांसारिक लोभ और आसक्तियोंकी असारताका ठीक-ठीक भान होता जाता है। इस प्रकार वह अधिकाधिक सत्त्वशील होकर प्रभुके समीप पहुँचता जाता है।

प्रार्थना सचमुच ही एक महान् अमोघ बल है। अंग्रेज महाकवि टेनीसन कहता है—

"More things are wrought by prayer than this world dreams of."

'जगत् जिसकी कल्पना कर सकता है, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक महान् कार्य प्रार्थनाके द्वारा सिद्ध हो सकते हैं।'

एक नहीं, अनेक बार मैंने देखा और अनुभव किया है कि अच्छे-अच्छे वैद्यों और डाक्टरोंकी सारी चिकित्सा व्यर्थ हो जानेके बाद, बिना किसी खास उपचारके केवल ईश्वरमें परम निष्ठा और अचल श्रद्धायुक्त प्रार्थनाद्वारा बड़े विषम और असाध्य रोगके रोगी आश्चर्यजनक रीतिसे रोगमुक्त हो जाते हैं। महान् भक्तों और संतोंके जीवनमें हम ऐसी अनेक घटनाओं और प्रसङ्गोंके विषयमें सुनते और पढ़ते हैं कि जिनका सामान्य रीतिसे होना सम्भव नहीं है तथा जिनको हम प्रकृति-विरुद्ध कह सकते हैं। इस प्रकारकी घटनाओंको हम अपनी भाषामें भक्तोंका, संतोंका या भगवान्‌का 'चमत्कार' कहते हैं। परंतु यह वस्तुतः एक महापुरुषके अन्तःकरणकी सच्ची प्रार्थनाद्वारा प्राप्त हुई अपरिमित शक्तिका ही परिणाम है; क्योंकि प्रकृतिके कथित अटल नियमोंका उल्लङ्घन करनेकी सामर्थ्य इस संसारमें यदि किसीमें है तो वह ईश्वरकी प्रार्थनामें ही है। मनुष्य प्रार्थनाके द्वारा अपने जीवनमें भी जो एक अमोघ ईश्वरीय शक्तिके सतत और स्थिर संचारका अनुभव करता है, यह भी क्या एक चमत्कार नहीं है?

अपने राष्ट्रपिता पूज्य महात्माजीके जीवनको देखिये। उनके मनमें प्रार्थनाका महत्त्व सबसे अधिक था। सच्चे अन्तःकरणकी ईश्वर-प्रार्थना उनके जीवनमें ओतप्रोत हो गयी थी। वे निस्संकोच कहते थे कि 'मेरे सामने आनेवाले राष्ट्रिय, सामाजिक अथवा राजनीतिक विकट प्रश्नोंकी गुत्थीका सुलझाव मुझे अपनी बुद्धिकी अपेक्षा अधिक स्पष्टता और शीघ्रतासे प्रार्थनाके द्वारा विशुद्ध अन्तःकरणसे मिल जाता है।' वे प्रार्थनाको एक अक्षय और असीम शक्ति समझते थे। सत्य और अहिंसाके तत्त्वका सच्चा दर्शन उनको प्रार्थनामें ही मिलता था।

कुछ लोग समझते हैं कि अमुक शब्द, अमुक भजन अथवा अमुक पदको किसी विशेष रीतिसे बोलने या गानेपर ही 'प्रार्थना' कहेंगे। दूसरे लोग कहते हैं कि प्रार्थना तो निर्बल और दुखी मनुष्यको आश्वासन देनेका साधनमात्र है। बहुतोंका मत है कि लक्ष्मी, अधिकार, यश, संतान-प्राप्ति या ऐसी ही किसी सांसारिक एषणाकी सिद्धिके लिये ईश्वरसे नम्रतापूर्वक याचना करना ही प्रार्थना है। यदि इनमेंसे किसी भी अर्थमें हम प्रार्थनाको लेते हैं तो हमारी प्रार्थनाका मूल्याङ्कन बहुत ही अपूर्ण और निम्न कोटिका है। हम प्रार्थनाका माप अपने स्वार्थके छोटे गजसे करते हैं। यह बात तो वैसी ही है, जैसे कोई अपने घरकी टंकीके बराबर विश्वका कल्याण करनेवाली मेघवृष्टिका मूल्याङ्कन करे। ठीकतौरपर विचार करें तो मनुष्यकी सर्वोच्च शक्तियोंका श्रीपरमात्मशक्तिके साथ तादात्म्य ही मानव-जीवनके उत्कर्षकी चरम सीमा है। इस अन्तिम ध्येयपर पहुँचनेके लिये जो क्रियाशील प्रवृत्ति है, वही हमारी प्रार्थना है। देह, चित्त और आत्माके पूर्ण समन्वयात्मक ऐक्यसे उत्पन्न अपूर्व आनन्द, शान्ति और अपार बलका अनुभव हमको प्रार्थनामें ही मिलता है।

प्रार्थनासे भले ही हम अपनी शारीरिक व्याधिकी पीड़ाको दूर न कर सकें, अपने मृत स्वजनको जीवित न कर सकें और कोई ऐसे चमत्कार न दिखा सकें, जैसे कि महान् संतोंके जीवनमें सुननेमें आते हैं—तथापि प्रार्थना एक ऐसी शक्तिका तेजपूर्ण केन्द्र है, जिससे सतत निकलनेवाला आत्मशक्तिका सौम्य प्रकाश रोगग्रस्त तनमें और शोकसंतप्त मनमें चन्द्रके प्रकाशके समान एक प्रकारकी अपूर्व शान्ति और शीतलताका संचार करता है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि प्रार्थनामें इतना अधिक बल कहाँसे आता है। विज्ञान इस विषयमें मौन है; क्योंकि सूक्ष्मतम वैज्ञानिक अनुसंधान और आविष्कार भी आजतक ईश्वरके गहन स्वरूपतक नहीं पहुँच सके हैं। प्रार्थनामें एक साधारण बात तो यह है कि अल्पशक्ति मानव इसके द्वारा अपने मन और आत्माको अनन्तशक्ति, सत्य-ज्ञानस्वरूप

समुद्रपर रामनाम-अङ्कित शिलाओंका पुल

ईश्वरके प्रति ऐसा अटल विश्वास तथा प्रेमकी एक ऐसी ज्योति चमकती रहती है कि उसके पवित्र प्रकाशमें अपनेको वह भलीभाँति देख सकता है। अपने दोष, अपने अंदरकी स्वार्थवृत्ति, तुच्छ अभिमान या क्षुद्र वासनाओंको वह निहारता है। उसको अपनी अल्पताका, नैतिक उत्तरदायित्वका, बौद्धिक लघुताका और सांसारिक लोभ और आसक्तियोंकी असारताका ठीक-ठीक भान होता जाता है। इस प्रकार वह अधिकाधिक सत्त्वशील होकर प्रभुके समीप पहुँचता जाता है।

प्रार्थना सचमुच ही एक महान् अमोघ बल है। अंग्रेज महाकवि टेनीसन कहता है—

"More things are wrought by prayer than this world dreams of."

'जगत् जिसकी कल्पना कर सकता है, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक महान् कार्य प्रार्थनाके द्वारा सिद्ध हो सकते हैं।'

एक नहीं, अनेक बार मैंने देखा और अनुभव किया है कि अच्छे-अच्छे वैद्यों और डाक्टरोंकी सारी चिकित्सा व्यर्थ हो जानेके बाद, बिना किसी खास उपचारके केवल ईश्वरमें परम निष्ठा और अचल श्रद्धायुक्त प्रार्थनाद्वारा बड़े विषम और असाध्य रोगके रोगी आश्चर्यजनक रीतिसे रोगमुक्त हो जाते हैं। महान् भक्तों और संतोंके जीवनमें हम ऐसी अनेक घटनाओं और प्रसङ्गोंके विषयमें सुनते और पढ़ते हैं कि जिनका सामान्य रीतिसे होना सम्भव नहीं है तथा जिनको हम प्रकृति-विरुद्ध कह सकते हैं। इस प्रकारकी घटनाओंको हम अपनी भाषामें भक्तोंका, संतोंका या भगवान्‌का 'चमत्कार' कहते हैं। परंतु यह वस्तुतः एक महापुरुषके अन्तःकरणकी सच्ची प्रार्थनाद्वारा प्राप्त हुई अपरिमित शक्तिका ही परिणाम है; क्योंकि प्रकृतिके कथित अटल नियमोंका उल्लङ्घन करनेकी सामर्थ्य इस संसारमें यदि किसीमें है तो वह ईश्वरकी प्रार्थनामें ही है। मनुष्य प्रार्थनाके द्वारा अपने जीवनमें भी जो एक अमोघ ईश्वरीय शक्तिके सतत और स्थिर संचारका अनुभव करता है, यह भी क्या एक चमत्कार नहीं है?

अपने राष्ट्रपिता पूज्य महात्माजीके जीवनको देखिये। उनके मनमें प्रार्थनाका महत्त्व सबसे अधिक था। सच्चे अन्तःकरणकी ईश्वर-प्रार्थना उनके जीवनमें ओतप्रोत हो गयी थी। वे निस्संकोच कहते थे कि 'मेरे सामने आनेवाले राष्ट्रिय, सामाजिक अथवा राजनीतिक विकट प्रश्नोंकी गुत्थीका सुलझाव मुझे अपनी बुद्धिकी अपेक्षा अधिक स्पष्टता और शीघ्रतासे प्रार्थनाके द्वारा विशुद्ध अन्तःकरणसे मिल जाता है।' वे प्रार्थनाको एक अक्षय और असीम शक्ति समझते थे। सत्य और अहिंसाके तत्त्वका सच्चा दर्शन उनको प्रार्थनामें ही मिलता था।

कुछ लोग समझते हैं कि अमुक शब्द, अमुक भजन अथवा अमुक पदको किसी विशेष रीतिसे बोलने या गानेपर ही 'प्रार्थना' कहेंगे। दूसरे लोग कहते हैं कि प्रार्थना तो निर्बल और दुखी मनुष्यको आश्वासन देनेका साधनमात्र है। बहुतोंका मत है कि लक्ष्मी, अधिकार, यश, संतान-प्राप्ति या ऐसी ही किसी सांसारिक एषणाकी सिद्धिके लिये ईश्वरसे नम्रतापूर्वक याचना करना ही प्रार्थना है। यदि इनमेंसे किसी भी अर्थमें हम प्रार्थनाको लेते हैं तो हमारी प्रार्थनाका मूल्याङ्कन बहुत ही अपूर्ण और निम्न कोटिका है। हम प्रार्थनाका माप अपने स्वार्थके छोटे गजसे करते हैं। यह बात तो वैसी ही है, जैसे कोई अपने घरकी टंकीके बराबर विश्वका कल्याण करनेवाली मेघवृष्टिका मूल्याङ्कन करे। ठीकतौरपर विचार करें तो मनुष्यकी सर्वोच्च शक्तियोंका श्रीपरमात्मशक्तिके साथ तादात्म्य ही मानव-जीवनके उत्कर्षकी चरम सीमा है। इस अन्तिम ध्येयपर पहुँचनेके लिये जो क्रियाशील प्रवृत्ति है, वही हमारी प्रार्थना है। देह, चित्त और आत्माके पूर्ण समन्वयात्मक ऐक्यसे उत्पन्न अपूर्व आनन्द, शान्ति और अपार बलका अनुभव हमको प्रार्थनामें ही मिलता है।

प्रार्थनासे भले ही हम अपनी शारीरिक व्याधिकी पीड़ाको दूर न कर सकें, अपने मृत स्वजनको जीवित न कर सकें और कोई ऐसे चमत्कार न दिखा सकें, जैसे कि महान् संतोंके जीवनमें सुननेमें आते हैं—तथापि प्रार्थना एक ऐसी शक्तिका तेजपूर्ण केन्द्र है, जिससे सतत निकलनेवाला आत्मशक्तिका सौम्य प्रकाश रोगग्रस्त तनमें और शोकसंतप्त मनमें चन्द्रके प्रकाशके समान एक प्रकारकी अपूर्व शान्ति और शीतलताका संचार करता है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि प्रार्थनामें इतना अधिक बल कहाँसे आता है। विज्ञान इस विषयमें मौन है; क्योंकि सूक्ष्मतम वैज्ञानिक अनुसंधान और आविष्कार भी आजतक ईश्वरके गहन स्वरूपतक नहीं पहुँच सके हैं। प्रार्थनामें एक साधारण बात तो यह है कि अल्पशक्ति मानव इसके द्वारा अपने मन और आत्माको अनन्तशक्ति, सत्य-ज्ञानस्वरूप

परमात्माके साथ जोड़ता है, जोड़नेका प्रयास करता है। इससे 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' की विराट् शक्तिका छोटा-सा अंश तो उसमें उतरता ही है। इस दिव्य चैतन्य अंशसे युक्त मनुष्य इस प्रकार प्रार्थनाके द्वारा बहुत बलवान्, उन्नत और चैतन्यवान् बन जाता है।

अस्तु, इतना तो स्पष्ट है कि सांसारिक वासनाओं और आसक्तियोंकी चरितार्थताके लिये की गयी प्रार्थना हमको कभी सच्चा बल नहीं प्रदान कर सकती। सच्ची प्रार्थनामें परमात्मासे कुछ माँगा नहीं जाता, बल्कि सच्ची प्रार्थना उसके-जैसा बनने और अन्तमें उसके साथ एकरूप होनेके लिये ही होती है। प्रार्थनाके द्वारा हमको ईश्वरके सांनिध्यका तथा अपने ईश्वरमय होनेका अनुभव करना है। गद्गद कण्ठसे तथा स्नेहार्द्र हृदयसे क्षणभरके लिये भी की गयी प्रार्थना भक्तका कल्याण करनेमें पर्याप्त है। सचमुच, किसी स्त्री या पुरुषकी सच्चे अन्तःकरणसे की गयी प्रार्थना कभी निष्फल नहीं जाती।

'अकालो नास्ति धर्मस्य' के अनुसार धर्मकार्य किसी भी समय हो सकते हैं। इसी प्रकार प्रार्थना भी किसी स्थानमें और किसी समय हो सकती है। इसके लिये किसी निश्चित स्थान या किसी निश्चित समयका बन्धन नहीं है। मन्दिरमें, घरके एकान्त कोनेमें, दूकानमें, आफिसमें, स्कूलमें—जहाँ चाहें, जिस समय चाहें, प्रार्थना कर सकते हैं।

मनुष्यत्वके निर्माण तथा योग्य विकासके लिये प्रार्थना मनुष्यके दैनिक व्यवसायमें ओतप्रोत हो जानी चाहिये। प्रातःकाल थोड़ा-सा समय प्रार्थनामें लगाना और शेष समयमें अधर्म और असत्यका आचरण करते रहना—इसका कोई अर्थ नहीं है। यदि सच्ची प्रार्थना जीवनका मार्ग है तो सच्चा धर्ममय जीवन भी एक प्रकारसे प्रार्थनाका ही मार्ग है।

सुन्दर लालित्यमय आलंकारिक भाषामें ही प्रा[illegible] सकती है—यह भी एक भ्रम है, असत् सिद्धान्त है। तो एक बाह्य आडम्बर है। प्रभुके प्रति प्रेमसे अन्तःकरणमेंसे प्रभुसे मिलनके लिये जो तरङ्गें, जो भाव आप उमड़कर बाहर आते हैं, वे ही सच्ची प्रार्थना हैं प्रार्थना चाहे जिस भाषामें हो, चाहे जिन शब्दोंमें हो भगवान्को सदा स्वीकार होती है। तुलसी, सूर, मी[illegible] नरसीके सर्वोत्कृष्ट पद या भजन प्रभु-प्रार्थनाके लिये खास भाषामें नहीं बनाये गये हैं। परंतु भक्तहृ[illegible] गहराईमेंसे नैसर्गिक रीतिसे निकले प्रेम-स्रोत ही इन भा[illegible] पदों या उद्गारोंके द्वारा बाहर व्यक्त हुए हैं।

धर्म, प्रार्थना और ईश्वरीय तत्त्वकी ओरसे आज म[illegible] उदासीन है। इस उदासीनताके कारण ही जगत् [illegible] विनाशके द्वारपर खड़ा है। मनुष्यके आत्मविकासके [illegible] जिस अध्यात्मशक्ति, जिस ईश्वरीय अंश, जिस दिव्य ब[illegible] आवश्यकता है, उसकी हमलोग—मानव-जाति, उपेक्षा कर[illegible] हैं। फलस्वरूप जगत् घोर निराशा, अन्धकार, अशान्ति, विद्वेष और हिंसाके जालमें जा फँसा है। यदि जगत्को दावानलमेंसे बाहर निकलना है, त्राण पाना है तो जग[illegible] प्रत्येक मनुष्यको अपने व्यक्तिगत जीवनमें आत्माकी स[illegible] उन्नतिके लिये एकनिष्ठासे प्रभु-प्रार्थना करनेकी आ[illegible] डालनी पड़ेगी, जिससे उपेक्षित एवं अवनत मानव-आ[illegible] प्रार्थनाके अमोघ बलके प्रभावसे पुनः विशेष उन्नत हो ज[illegible] और मानव-जगत् फिर अत्यन्त सुखी हो जाय और स[illegible] शान्ति प्राप्त करे। इस दृष्टिसे मनुष्यों और राष्ट्रोंके जीवनमें- पहलेकी अपेक्षा आज प्रार्थना बहुत ही महत्त्वकी वस्तु त[illegible] अनिवार्य बन गयी है।

विवशताके नामोच्चारणसे भी परमपदकी प्राप्ति

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये॥

(श्रीमद्भागवत ३। ९। १५)

ब्रह्माजी कहते हैं—'जो लोग प्राण जाते समय आपके अवतार, गुण और कर्मोंको सूचित करनेवाले देव[illegible] नन्दन, भक्तवत्सल, गोवर्धनधारी आदि नामोंका विवश होकर भी उच्चारण करते हैं, वे अनेक जन्मार्जित [illegible] तत्काल छूटकर मायादिके आवरणसे रहित अमृत ब्रह्मपदको प्राप्त करते हैं। मैं आप अजन्माकी शरण लेता हूँ।'

प्रार्थनाका महत्त्व और चमत्कार

(लेखक—आचार्य श्रीगदाधर रामानुजम्‌जी 'फलाहारी')

'भक्ताभीष्टफलप्रदः' यह भगवान्‌का एक प्रसिद्ध नाम है। इसके अनुसार यदि शुद्ध हृदयसे भक्त भगवान्‌की प्रार्थना करता है, तो भगवान् उसके अभीष्टकी पूर्ति अवश्य करते हैं; क्योंकि भगवान् भक्तवत्सल एवं भक्तके अधीन हैं। भक्तोंका कल्याण करना भगवान्‌का स्वभाव है। जैसे अग्नि दाहकता, जल शीतलता एवं वायु चञ्चलताका परित्याग नहीं कर सकते, वैसे ही भगवान् अपने वात्सल्य-भावका कभी भी परित्याग नहीं करते। जब-जब भक्तोंपर विपदाएँ आती हैं और भक्त आर्त हृदयसे भगवान्‌को पुकारते हैं, तब भक्तकी प्रार्थनापर भगवान्‌का सिंहासन हिल उठता है और भगवान् श्रीवैकुण्ठनाथ तत्काल भक्तके सहायतार्थ दौड़ पड़ते हैं।

भक्त निष्काम या सकाम—जिस भावसे भी भगवान्‌का स्मरण करता है, जिस वाणीके द्वारा अपने भावोंका निवेदन करता है—आर्त होकर विपदाके समयमें भगवान्‌को पुकारता है, उसको 'प्रार्थना' (निवेदन) कहते हैं। प्रार्थनाका प्रभाव अमोघ है और इससे ऐहिक एवं पारलौकिक दोनों सुखोंकी प्राप्ति होती है और मानव-मनको सच्ची शान्ति मिलती है। इसलिये प्राचीन ऋषि-महर्षियों, आचार्यों एवं वर्तमान युगके महापुरुषोंने भी प्रार्थनाका महत्त्व सर्वोपरि माना है।

प्रार्थनामें अमोघ अलौकिक शक्ति विद्यमान है, जिसको साधनाके द्वारा प्रकट करके उससे असम्भव कार्योंको भी सम्भव बनाया जा सकता है—यह पाश्चात्त्य साधकोंका अभिमत है। प्रार्थनाके प्रभावसे अनेकों अलौकिक एवं असम्भव कार्य सम्पन्न हो सकते हैं और अनेकों साधकों और भक्तोंके कार्य सफल भी हुए हैं—जैसे रोगमुक्ति, संतानप्राप्ति, शत्रु-पराजय, परीक्षामें सफलता, दुष्ट आत्माओंसे छुटकारा, मानसिक आत्मशान्ति, यश-सम्मानकी प्राप्ति एवं व्यवसायमें सफलता।

यदि भक्त सच्चे और शुद्ध हृदयसे भगवान्‌की प्रार्थना करता है तो उसको अवश्य सफलता मिलती है। इसके अनेकों उदाहरण हमारे सामने हैं, जिनमेंसे कुछ पाठकोंकी जानकारीके लिये दिये जा रहे हैं—

लक्ष्मणगढ़ रामानुजकोटके संस्थापक स्वामी पुरुषोत्तमाचार्यजी महाराज एक सिद्ध पुरुष एवं विद्वान् महात्मा हो गये हैं। एक बार आपके एक श्रीमन्त शिष्यने कलकत्तामें एक मकान खरीदा, जिसके विषयमें ऐसा प्रसिद्ध था कि उस मकानमें दुष्टात्माओंका निवास है और जो इसे लेता है, उसका अमङ्गल होता है और तीन वर्षसे अधिक यह मकान किसीके पास नहीं रहता। स्वामीजीके उस शिष्यके साथ भी ऐसा ही हुआ। मकान खरीदनेके कुछ ही दिनों बाद जब कि वह इसकी आवश्यक मरम्मत करा रहा था, अकस्मात् एक दिन सीढ़ियोंसे पाँव फिसलकर वह गिर गया, जिसके कारण उसे करीब दो मासतक अस्पतालमें रहना पड़ा। स्वामीजीसे इस विषयकी चर्चा करके उसने मकानको बेच देनेकी इच्छा प्रकट की। तब स्वामीजीने कहा कि 'सीढ़ियोंसे फिसलकर गिरना तो एक दुर्घटना भी हो सकती है। ऐसे मौकेकी जगहपर मिला हुआ मकान इस प्रकार बेचना बुद्धिमानी नहीं है। तुम प्रतिदिन गीतामें अर्जुनके द्वारा की गयी निम्नलिखित प्रार्थना किया करो—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः॥
(११।३६)

साथ ही गीता अ० ११ श्लोक ३६ से ४६ तकका पाठ प्रतिदिन प्रातः-सायं स्वयं, परिवारके जनों एवं ब्राह्मणोंद्वारा करवाओ। तुम्हारे सभी अमङ्गल दूर हो जायँगे।' इस प्रार्थनाके प्रभावसे मकानका तो सब अमङ्गल मिट ही गया, साथ ही व्यवसायमें सफलता और परिवारको अभिवृद्धि भी प्राप्त हुई।

(२)......निवासी एक स्वामीजीका भक्त था, जिसके एकमात्र पुत्रका विवाह हुए १६ वर्ष हो गये थे, किंतु उसे कोई संतान नहीं हुई थी। इसकी चर्चा जब स्वामीजीके सामने की गयी तो उन्होंने एक विद्वान् ब्राह्मणद्वारा प्रतिदिन वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्डके ७ सर्गोंका पठन और उनके पुत्र एवं पुत्रवधूद्वारा प्रतिदिन भगवान् बालमुकुन्दकी

आराधना, प्रार्थना एवं प्रातः-सायं प्रार्थनाके बाद मक्खन-मिश्रीका प्रसाद दस वर्षसे कम आयुके बालकोंको वितरण करनेका उपदेश दिया और दोनों पति-पत्नीको यथासाध्य अहर्निश प्रार्थना करते रहनेके लिये कहा, जिसके प्रभावसे डेढ़ वर्षमें दम्पतिको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई और बादमें एकके-बाद-एक क्रमशः चार पुत्र और हुए।

(३)........का पुत्र बी० ए० की परीक्षामें तीन बार असफल हो गया, जिससे निराश होकर उसने आगे परीक्षा देना ही स्थगित कर दिया। उसके पिताको किसी महात्माने बताया कि "किसी भी कार्यमें सफलताकी प्राप्तिके लिये आत्मबल सर्वोपरि है और आत्मबल आध्यात्मिक साधनासे प्राप्त होता है। साधनाका प्रथम सोपान 'प्रार्थना' है, इसलिये तुम अपने पुत्रको नियमित प्रातः-सायं प्रार्थनाके लिये कहो, प्रार्थनासे उसका चित्त एकाग्र होगा और अध्ययनमें विशेष रुचि होगी।" महात्माजीने विद्या-प्राप्तिके लिये भगवान् हयग्रीवजीकी उपासना एवं निम्नलिखित मन्त्र-द्वारा प्रार्थना करनेका उपदेश दिया—

ज्ञानानन्दमयं देवं निर्मलस्फटिकाकृतिम्।
आधारं सर्वविद्यानां हयग्रीवमुपास्महे॥

इस मन्त्रके जप एवं प्रार्थना-प्रभावसे वह परीक्षामें विशेष योग्यताके साथ उत्तीर्ण हुआ और उसमें अध्ययनके प्रति विशेष अभिरुचि उत्पन्न हुई।

(४) एक व्यक्तिको आवासका बड़ा कष्ट था। परिवारके सदस्योंकी संख्या अधिक थी और मकान छोटा था। आर्थिक स्थिति इस योग्य नहीं थी कि दूसरा मकान बनवा सके। उसने अपना दुःख स्वामी श्रीनिवासाचार्यजीके सम्मुख प्रकट किया। स्वामीजीने वराहपुराणान्तर्गत श्री-वेङ्कटाचल-माहात्म्यमें वर्णित वराह-मन्त्र एवं प्रार्थना विधि-सहित उसको बतायी, जिसके प्रभावसे दो वर्षमें उसको अनायास ही एक निकट सम्बन्धीका मकान निःशुल्क निवासके लिये प्राप्त हो गया।

(५) मैं (इन पंक्तियोंका लेखक) आठ वर्षकी अवस्थामें भयंकर संनिपात ज्वरसे ग्रस्त हो गया था। घर-वालोंको बचनेकी आशा बिल्कुल नहीं थी। वैद्य एवं डाक्टरोंने भी रोगको असाध्य घोषित कर दिया था। ऐसे विकट समयमें मेरे पितामह (स्वामी श्रीनिवासाचार्यजी) ने भगवान् श्रीमन्नारायणको उपाय मानकर सब औषधि देना बंद कर दिया और मेरे आराध्य श्रीवेङ्कटेश भगवान्‌की मनौती (स्वस्थ होनेपर तिरुपति-यात्रा एवं भेंट) मानकर **'औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः'** के अनुसार मेरे समीप बैठकर—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

—इस मन्त्रका जप किया, जिसके प्रभावसे मैं साक्षात् संनिपातके मुखसे निकलकर पूर्ण स्वस्थ हो गया।

(६) स्वामीजी कहा करते थे कि आजसे करीब १५० वर्ष पूर्व जयपुरमें स्वामी रङ्गरामानुजाचार्यजी महाराज नामक एक सिद्ध महात्मा हो गये हैं। उनकी तपस्या और साधनाके प्रभावसे प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायणने उनको स्वप्नमें दर्शन देकर आदेश दिया था कि 'मैं यहाँ भूमिमें दबा हुआ हूँ। मुझे बाहर निकालकर मन्दिरकी स्थापना करो।' भगवान्‌के आदेशसे स्वामीजीने गलता तीर्थके नीचे विशाल श्रीलक्ष्मीनारायण-मन्दिरकी स्थापना की और तत्कालीन समयमें समस्त धार्मिक जगत्‌में श्रेष्ठ यश प्राप्त किया।

स्वामी रङ्गरामानुजाचार्यजी महाराजको उपर्युक्त वैभव मिलनेका मुख्य कारण भगवत्-आराधना एवं प्रार्थना ही थी। बाल्यावस्थासे ही आप घरबारका त्याग करके जयपुर आ गये और केवल मूलरामायणका, जो आपको कण्ठस्थ थी, अहर्निश पठन करने लगे। आपकी इस अहर्निश प्रार्थनाके प्रभावसे एक दिन रात्रिमें श्रीहनुमान्‌जी वृद्ध ब्राह्मणके वेशमें उनके पास आकर बोले कि 'अरे भाई! तुम कौन हो जो दिन-रात बड़-बड़ किया करते हो, इससे हमारे आराममें बाधा पहुँचती है।' तब स्वामीजीने कहा कि 'भाई! तुम अपने रास्ते जाओ; मैं तो दुःखी मनुष्य हूँ, इसलिये अपना दुःख रोता रहता हूँ। तुम्हें इसमें क्या तकलीफ है?' यों कहकर अपनी प्रार्थनामें लग गये। वृद्ध ब्राह्मण-वेषधारी श्रीहनुमान्‌जीने पुनः उनसे पूछा कि 'तुम्हें क्या दुःख है?' तब स्वामीजीने कहा कि—'मेरे दुःखको तो जब मिटानेवाला ही नहीं मिटाता, तब तुम क्या मिटाओगे! जाओ, अपना रास्ता नापो।' अन्तमें हनुमान्‌जीने प्रकट होकर उनको दर्शन दिया और श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके विविध कामनाओंपर विविध प्रयोग बताये, जिनके प्रभावसे स्वामीजी महाराजकी विद्वत्ता और सिद्धिकी प्रसिद्धि सर्वत्र

व्याप्त हो गयी। यहाँतक कि सुप्रसिद्ध श्रीरङ्गमन्दिर वृन्दावन-के निर्माता सेठ राधाकृष्णजी भी वृन्दावनसे जयपुर आपके दर्शनोंके लिये आये और आपके विशाल मन्दिरके बाहरी परकोटेका निर्माण कराया।

स्वामी रङ्गरामानुजाचार्यजी महाराजका यही उपदेश है कि 'अहर्निश भगवत्-स्मरण करो। भगवान्से कुछ माँगो मत; भगवान् स्वयं ही आपकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करेंगे। आप तो बस, प्रार्थना करते जाओ, प्रार्थनाके प्रभावसे जैसे मेरे सभी कार्य भगवान्ने पूर्ण किये हैं, वैसे ही आपके भी हो जायँगे।'

इस प्रकार भगवत्-आराधना-प्रार्थनाके प्रभावसे सकल कामनाओंकी सिद्धि होती है और अन्तमें दिव्य वैकुण्ठ-लोककी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं। किंतु प्रार्थना शुद्ध अन्तःकरणसे होनी चाहिये।

प्रार्थनाका आधार विश्वास है

(लेखक---श्रीराधेश्यामजी)

विश्वास जीवन है, संदेह मृत्यु है। विश्वासके बिना जीवन चल ही नहीं सकता। विश्वासपर जीवन टिका है। चिकित्सक-के समीप रोगी किसी विश्वाससे प्रेरित होकर ही जाता है। यदि रोगीको चिकित्सककी योग्यतापर अथवा उसकी नीयतपर संदेह हो जाय तो वह भूलकर भी चिकित्सकके पास नहीं जायगा। माँने अपने हाथसे भोजनकी थाली परोसी और पुत्रने बिना कुछ सोचे बेखटके भोजन प्रारम्भ कर दिया। शत्रुके पाससे या हाथसे मिली किसी भी वस्तुको खानेके लिये मन तैयार नहीं। मित्रसे अपने मनकी उलझन, अपने जीवनकी समस्या कह देते हैं और इसी विश्वासपर कि वह उसे गुप्त रक्खेगा, उचित परामर्श देगा, नाजायज लाभ नहीं उठायेगा और परीशानीमें सहायक होगा। किंतु इसके विपरीत क्या हम अपनी उलझन, अपनी समस्या अपने किसी विपक्षीको या चुगलखोरको या अवसरवादीको कह सकेंगे? विपक्षी या चुगलखोर या अवसरवादीपर मनका विश्वास नहीं। हम उसीसे सम्पर्क रखते हैं, जिसपर हमारा विश्वास है, जो हमारे जीवनके निर्माणमें सहयोग देता है। हम उसी क्रियामें प्रवृत्त होते हैं, जिससे यह विश्वास हो जाय कि जीवनमें सुख-सुविधा-की प्राप्ति होगी। जीवनका निर्माण, जीवनकी सुख-सुविधा सभी चाहते हैं और उसी उद्देश्यसे प्रेरित होकर हम कोई कार्य करते हैं। हमारी प्रत्येक चेष्टाके मूलमें जीवनके निर्माणकी भावना है।

पर ऐसा सदा कहाँ होता है कि जीवनका निर्माण बाधा-रहित होता रहे? जीवनकी सुख-सुविधामें बाधाका काँटा न उगे? यह सब चाहते हैं; पर ऐसा कब हुआ है! संसार बाधाओंका आगार है। पद-पदपर कठिनाइयाँ आती हैं। कार्य करते-करते कुछ ऐसी झंझट सामने आकर खड़ी हो जाती है कि आगे बढ़ना रुक-सा जाता है। आगे बढ़ना तो अलग रहा, आगेका रास्ता ही नहीं सूझता। सुख-सुविधाओंसे भरपूर जीवनमें कभी-कभी ऐसा संकट टूटता है कि सारे सुखपर पानी फिर जाता है। पाण्डव-पत्नी द्रौपदी अपने रनिवासमें सुखसे बैठी थी, उसे क्या कल्पना थी कि कुछ ही क्षणोंमें वह राजसभामें सबके सामने विवस्त्रा की जायगी! गजेन्द्र अपनी मस्तीमें जल-विहार कर रहा था, वह क्या सपना देख सकता था कि वह ग्राहसे ग्रस्त हो जायगा? ये तो पौराणिक गाथाएँ हैं। हम अपने जीवनके ही प्रसङ्ग देखें। नया बनता हुआ मकान घोर वर्षाका शिकार बन जाता है। निर्धन विद्यार्थीके एकमात्र संरक्षककी अचानक मृत्यु हो जाती है। इकलौता और लाड़ला बेटा न जाने कैसे मोटरके नीचे दब गया। माँको, जिसके लिये प्राण हाजिर हैं, एक कोनेसे आकर साँप काट जाता है। प्राणोंसे प्यारी पत्नीको विषम ज्वर आक्रान्त कर लेता है। नदीको पार करती नाव अचानक भँवरमें फँस जाती है।

ऐसे अनचाहे प्रसङ्ग हमारे-आपके जीवनमें आते रहते हैं। कौन चाहता है कि जीवनमें ऐसे अवसर आयें, पर आते ही हैं। आनेपर उनके निवारणका प्रयत्न भी करते हैं, भरपूर प्रयत्न करते हैं। अथक और अकथ प्रयत्न करते हैं। अपनेमें जितनी शक्ति है, सभी लगा देते हैं। अपना सारा धन समाप्त होनेपर कुछ और ऋण कर लेते हैं। यदि अकेलेसे काम न बना तो दो-चार और साथियोंसे सहयोगके लिये अनुरोध करते हैं। किंतु जब स्वजनोंसे सहयोग नहीं मिलता, माँगनेपर धन नहीं मिलता, स्वयं अपना शरीर भी साथ नहीं

ा, उस स्थितिमें एक विचित्र प्रकारकी मनःस्थिति हो
ती है। अपनी असमर्थताका पूरा आभास हो जाता है;
भास ही नहीं, विश्वास हो जाता है। निश्चय हो जाता है
कार्यकी सम्पन्नता मेरी शक्तिसे परे है। अपनी विपदासे,
ाने संकटसे छुटकारा पा सकना मेरी शक्तिके बाहर है।
ानी असमर्थता पूर्णतः दीखने लगती है।

असमर्थताका यह विश्वास किसी समर्थका आश्रय ढूँढ़ता
संसारमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जो मेरी विपदा मिटा
। संसारकी ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो मेरे अभावको
सके। क्या व्यक्ति, क्या वस्तु—सभी मेरी ही तरह असमर्थ
अशक्त हैं। फिर कौन मेरे अभावका, मेरे अमङ्गलका
हरण करेगा? किंतु 'एक' है, जो असम्भवको भी सम्भव
सकता है। उस 'एक' के अनन्त सामर्थ्यकी स्पष्ट घोषणा
ाक घटनाएँ करती हैं। क्या पौराणिक युग, क्या आधुनिक
—दोनों युगोंमें ऐसी घटनाएँ घटी हैं, जिन्हें सुनकर आहत
को राहत मिलती है। निराश मनको आशा बँधती है।
दीको भरी सभाके अंदर नग्न होनेसे किसने बचाया?
से ग्रस्त गजेन्द्रके प्राणोंकी रक्षा किसने की? व्यङ्ग्य वचनोंसे
हुए ध्रुवको अमर-पद किसने दिया? अगणित प्राण-
क कष्टोंसे प्रह्लादको बचानेवाला कौन है? मीराँका
हरण तो आधुनिक युगका है, जिसके लिये विषका प्याला
तमें परिणत हो गया।

'विषका प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीरा हाँसी रे।'

सचमुच 'एक' ऐसा है, जो सर्वसमर्थ है। उसका
र्थ्य अक्षुण्ण है। वह प्रतिपल साथ है और पद-पदपर
यक है। वह हमारे संकटोंको दूर करनेके लिये सर्वदा
त है। अनेकों चरित्र इस सत्यको पुष्ट करते हैं।

एक ओर अपनी असमर्थताका पूर्ण विश्वास और दूसरी
उस सर्वसमर्थपर पूर्ण विश्वास—इन्हीं दो विश्वासोंसे ही
नाका जन्म होता है। निर्बलके बल, भगवान्‌को निर्बल
पुकार उठता है। अपावन पावनके चरणोंका आश्रय
है। अशक्त शक्तिशालीसे सहारेकी याचना करता है।
ानी ज्ञानवान्‌से प्रश्न करता है। अंधा नेत्रवान्‌से मार्ग
पूछता है। भिखारी दानीके समक्ष हाथ जोड़ता है। दीन-दयालुके सामने दीन नत-मस्तक है। तभी तो तुलसीदासजी कहते हैं—

'तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।'

और यह प्रार्थना ही मङ्गलका मूल है। सच्ची प्रार्थना होते ही सारे संकट टल जाते हैं। द्रौपदीने प्रार्थना की, उसकी लाज बच गयी। गजेन्द्रने प्रार्थना की, उसके प्राण बच गये। ध्रुवने प्रार्थना की, उसे अनन्त ज्ञान और अमर पद मिला। तुलसी-सूरने प्रार्थना की, अविचल भक्ति मिली। मीराँने प्रार्थना की, गिरधर गोपाल मिले। जिस-जिसने सच्चे मनसे प्रार्थना की, उसे-उसे अपनी-अपनी मनचाही वस्तु मिली। लोककी, परलोककी, स्वार्थकी, परमार्थकी, जो भी कामना हो, उसे पूर्ण करनेका सुगम और श्रेष्ठ साधन प्रार्थना है और यह प्रार्थना हो तो केवल भगवान्‌के प्रति ही हो। संसारके व्यक्ति और वस्तुके सामर्थ्यका ज्ञान तो हो चुका। उनसे न हमारे अभाव हट सके और न हट सकेंगे। एकमात्र भगवान्‌से ही प्रार्थना करे, जिससे जीवनकी सम्पूर्ण असमर्थता सदाके लिये समाप्त हो जाय, अन्यथा अभावका ताँता लगा ही रहेगा।

जग जाँचिय कोउ न, जाँचिय जो,
जिय जाँचिय जानकिजानहिं रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाय,
जो जारत जोर जहानहि रे॥

भगवान्‌से जिसने भी प्रार्थना की, उसका अभाव सदाके लिये मिट गया। द्रौपदी, गज, ध्रुव, प्रह्लाद, तुलसी, सूर, मीराँ—सभीके उदाहरण सामने हैं। अपनी असमर्थतापर विश्वास होते ही सर्वसमर्थ भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं और प्रार्थना होते ही एक अचिन्त्य रीतिसे सारे कष्ट, सारे संकट दूर हो जाते हैं। जिस दिन, जिस क्षण हमारे जीवनमें ये तीन विश्वास प्रतिष्ठित होंगे—उसी दिन, उसी क्षणसे हमारे लिये सर्व-मङ्गलका विधान स्वतः हो जायगा और ये तीन विश्वास हैं—(१) अपनी असमर्थताका विश्वास, (२) भगवान्‌की सर्वसमर्थतापर विश्वास और (३) भगवान्‌के प्रति की गयी प्रार्थनाके प्रभावपर विश्वास।

प्रार्थनाका चमत्कार

(लेखक—श्रीनिरञ्जनदासजी 'धीर')

भगवान् एक हैं। किंतु भिन्न-भिन्न धर्मानुयायी उनको अपने-अपने भावोंके अनुसार अपनी-अपनी विशेष प्रणालीसे भजते तथा पूजते हैं। परमपूज्य श्रीस्वामी रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि विभिन्न पंथ वास्तवमें एक ही परमात्मातक पहुँचनेके मार्ग हैं। उनका यह वक्तव्य केवल युक्ति तथा तर्कपर निर्भर नहीं था, किंतु प्रत्यक्ष आत्म-अनुभवपर स्थित था।

प्रार्थना सभी मुख्य धर्मोंकी साधनाका एक परमावश्यक अङ्ग है। यह जीवात्माकी पुकार परमात्माके दरबारमें है। चाहे जिस भाषामें की जाय अथवा मूक ही की जाय, परमात्मातक अवश्य पहुँचती है; किंतु होनी चाहिये सच्चे हृदयसे। इसमें बनावट-छलको स्थान नहीं है। प्रार्थना करनेवाला कौन—पापी या पुण्यात्मा है, इसका कुछ विचार नहीं। सच्चे हृदयकी पुकार सुनी जाती है।

जार्ज फ्रेडरिक मैंडल एक गीतकार था। उसका काम कविताको गाने लायक बनानेके लिये सुरतालसे लिपिबद्ध करना था। यूरोपका संगीत लिखा जाता है, जिसको देखकर कोई भी गवैया उसको ठीक गा सकता है। मैंडल यूरोप तथा इंगलैंडके राजदरबारोंसे सम्बन्धित गण्यमान्य धनाढ्य लोगोंके लिये गीत बनाया करता था, जो उसको भरपूर पारितोषिक देते थे और उससे उसका जीवन-निर्वाह आनन्दसे चल रहा था। इस कामको यह चालीस वर्षोंतक करता रहा।

सन् १७३७में इसको पक्षाघातका दौरा हो गया और यह किसी भी कामके करने लायक नहीं रहा। पक्षाघातकी कोई सफल चिकित्सा न तब थी, न अब है। जब डाक्टरोंके उपचारसे कोई लाभ नहीं हुआ तब उसने राकस ला शिपैलेके फ्रांसके प्रसिद्ध चश्मेमें जल-चिकित्साका प्रयोग करनेकी ठानी। वहाँ भी जब इसको कोई लाभ होता न दीखा तो उसने एक दिन भगवान्के नामके साथ अपनी दुःखद स्थितिका अन्त उस गरम पानीके चश्मेमें कुछ मिनटोंके स्थानपर घण्टों पड़े रहकर, करनेका प्रयत्न किया।

श्रीभगवान् तो करुणा-वरुणालय हैं। उनकी कृपासे असम्भव सम्भव हो गया और वह चमत्कारिक रूपसे स्वस्थ हो गया तथा फिरसे अपना धंधा करने लगा। किंतु थोड़े ही समय बाद महारानी कैरोलाईनकी मृत्यु हो गयी और उसकी आयका द्वार सदाके लिये बंद हो गया। उसके संगीतगृह (Opera) में भी लोगोंने कड़ाकेके जाड़ेके कारण जाना बंद कर दिया और उसकी गीत बनानेकी शक्तिका भी लोप हो गया। फल यह हुआ कि वह कंगाल हो गया और दर-दर भटकने लगा।

सन् १७४१ की एक रातमें वह लंदन नगरके बाजारमें भटक रहा था कि उसको एक गिरजाघर दिखायी पड़ा। वह उसके अंदर चला गया और उसके हृदयमें यह विचार उठा—

'मैं तो मर ही रहा था, श्रीभगवान्ने मुझे क्यों जीवन-दान दिया—क्या इसीलिये कि लोग मुझे कब्रमें गाड़ दें? जब मैं कोई धंधा ही नहीं कर सकता, तब मुझे जिलाया ही क्यों? फिर उसके अन्तरतम हृदयसे यह चीत्कार निकली—'मेरे स्वामी! मुझे क्यों भूल बैठे हो?'

मैंडल जब घर आया तब देखता है कि एक बड़ा पोथा बँधा पड़ा है, जिसको जैनन नामक एक कविने भेजा था। खोलकर देखा तो पवित्र वचनोंका एक संग्रह (Oratoria) था। जैननने लिखा था कि 'अविलम्ब कार्य आरम्भ कर दो, यह भगवान्का आदेश है।'

उसमें लिखे इन शब्दोंपर मैंडलकी दृष्टि पड़ी—'मनुष्य उससे घृणा करते थे, उन्होंने उसका त्याग दिया था'' 'वह किसी ऐसे व्यक्तिको ढूँढ़ रहा था, जो उसपर दया करे; किंतु ऐसा कोई पुरुष उसको नहीं मिला। किसीने उसका शब्दोंसे भी उत्साह नहीं बढ़ाया'''मैंडलको अनुभव होने लगा कि यही हाल उसका है। उसने आगे पढ़ा—'उसको भगवान्में विश्वास था ××× भगवान्ने उसकी आत्माको नरकमें नहीं सड़ने दिया××× वह तुम्हें आराम देगा×××वही विचित्र अधिनायक है×××मैं जानता हूँ मेरा पतितपावन भगवान कहीं गया नहीं ××× जय हो, जय हो!'

मैंडल अब निराश, तिरस्कृत मैंडल नहीं रहा। उसके

स्पष्ट अनुभव होने लगा कि काम करनेकी पुरानी शक्ति उसमें पुनः जाग्रत् हो गयी है। वह चौबीस दिनोंतक नाममात्र खाया और नाममात्र ही सोया होगा। लगातार उस ग्रन्थको गीतबद्ध करता गया जो 'मसीहा' के नामसे प्रसिद्ध है। इससे वह अमर हो गया और उसके सभी कष्टोंका अन्त प्रभुकृपासे हो गया। बोलो कृपालु भगवान्‌की जय!

प्रार्थनाका अमोघ प्रभाव

(लेखक—श्रीयुगलसिंहजी खीची, एम्० ए०, बार-एट-लॉ, विद्यावारिधि)

'प्रार्थनाकी शक्ति संसारमें सबसे बड़ी शक्ति है'—यह दिव्य वाणी डा० कैरलके मुखसे निकलकर कक्षाके कमरेकी दीवारोंको पार करती हुई लियों (Lyons) नगरके विश्वविद्यालयके प्राङ्गणमें प्रसृत होकर समस्त फ्रांस देशमें व्याप्त हो गयी। भौतिकवादियोंकी विचार-भूमिमें भूकम्प-सा प्रादुर्भूत हो गया। वैज्ञानिकोंने इस विश्वासको विभ्रम घोषित किया और डाक्टरोंको कैरलका मजाक उड़ानेका मौका मिला। पर वह सत्यका पुजारी अपने निश्चयपर अचल, अटल रहा और अन्ततोगत्वा उसीकी विजय हुई। विज्ञानके विशाल क्षेत्रमें प्रार्थनाको जो स्थायी स्थान प्राप्त हो गया है, उसकी पृष्ठभूमिमें जो कठिन खोज और अनुभूतिका इतिहास है, वह हमारे विचारशील पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जाता है।

डा० ऐलेक्सिस कैरल (Dr. Alexis Carrel) का जन्म सन् १८७३में लियों नगरके निकट एक ग्राममें हुआ। 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' के अनुसार वे छात्रावस्थामें ही प्रतिभावान् और चरित्रवान् होनेके कारण अपने अध्यापकों और सहपाठियोंके स्नेहभाजन बन गये। लियों-विश्वविद्यालयसे डाक्टरकी डिगरी और डिजों (Dijon) विश्वविद्यालयसे विज्ञानमें डिगरी प्राप्त करनेके पश्चात् वे लियोंमें प्राध्यापक नियुक्त हो गये। उन्होंने विद्यार्थियोंको पढ़ानेमें और कठिन रोगोंका अचूक निदान करनेमें व्यापक प्रसिद्धि प्राप्त की।

राजयक्ष्मा (Tuberculosis) का एक रोगी, जिसका इलाज कैरल बहुत दिनोंसे कर रहे थे, बहुत निर्बल हो गया और 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।' जब वह मरणासन्न अवस्थाको पहुँच चुका, तब उसने कैरलसे निवेदन किया कि वे उसके संग लूर्द (Lourdeo) नामक तीर्थकी यात्रामें चलनेका परम अनुग्रह करें। उसकी हालतपर तरस खाकर उन्होंने यह आग्रह स्वीकार कर लिया।

लूर्द फ्रांसके दक्षिणमें पिरेनीज पहाड़की तलहटीमें दस हजारके लगभग जन-संख्यावाला कस्बा है। वह तीर्थस्थान है और इस कारण विश्वविख्यात है कि वहाँ केवल प्रार्थनाकी शक्तिसे अनेक असाध्य रोगग्रस्त पुरुष नीरोग होकर लौटते हैं। वहाँ प्रतिवर्ष लगभग पचास लाख यात्री जाते हैं और इनमें रोगनिवारणके लिये आनेवालोंकी संख्या भी पचास हजारसे कम नहीं होती। प्रबन्ध करनेके लिये स्वयंसेवकोंकी सूचीमें दो हजारसे अधिक पुरुष दर्ज हैं और उनमें जज, जनरल, बैंकर, व्यवसायी इत्यादि उल्लेखनीय हैं और वे हर साल समय निकालकर रोगियोंकी सेवा करनेके निमित्त आते रहते हैं। उतनी ही संख्या स्वयंसेविकाओंकी है और वे रोगियोंके मल-मूत्रतक उठानेका काम करती रहती हैं। प्रत्येकके लिये यह मुख्य नियम है कि 'प्रभु-प्रार्थना निरन्तर करते रहो।' इस प्रकार गीताका यह वरद वचन—**'तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च'** (८।७) चरितार्थ होता है। उनके 'मनमें राम, मुखमें नाम और हाथमें काम' सफल होनेका मुख्य कारण है। अनेक स्वयंसेवकोंका कथन है कि भगवान्‌के निमित्त इस प्रकार रोगियोंकी सेवा करनेमें उन्हें अत्यन्त आनन्दकी अनुभूति होती है। अनोखी बात तो यह है कि प्रत्येक रोगी अपनी बीमारीको भुलाकर यह प्रार्थना करता है—'सर्वे सन्तु निरामयाः—भगवन्! सभी नीरोग हो जायँ।'

ऐसे सात्त्विक वातावरणके तीर्थस्थलमें जब डा० कैरलका रोगी पहुँचा तो उसे पालकीमें सुलाकर अस्पतालमें स्वयंसेवक ले गये। वहाँ अन्ताराष्ट्रीय मेडिकल मण्डल (International Medical Bureau) के कुशल और अनुभवी डाक्टरोंद्वारा उसकी पूरी परीक्षा की जाकर सारा वृत्तान्त रजिस्टरमें लिखा गया। यह नोट किया गया कि रोगीके दोनों फेफड़ोंमें घाव हो जानेके कारण असाध्य अवस्था हो गयी है और वह इतना जीर्ण-शीर्ण है कि चंद घंटोंका मेहमान मालूम होता है।'

दूसरे दिन रोगी उस झरनेके स्नानागारमें ले जाया गया, जिसके जलकी यह विशेषता है कि उसमें विविध संक्रामक रोगोंवाले बीमारोंके नहानेके कारण अनेक कीटाणु पाये गये, पर न तो रोगसंचार (infection) होना देखा गया और न उसे पीनेसे किसी स्वयंसेविका या सेवकको, जो बहुधा प्रतिदिन शामको एक ग्लासभर पीते हैं, कोई व्याधि हुई। कतिपय डाक्टरोंकी यह धारणा थी कि रोगनिवारणका प्रधान कारण प्रार्थना नहीं, किंतु विची (Vichyc) के धातुसंस्पृष्ट (mineral) सलिलके समान उस झरनेका पानी है; परंतु विश्लेषणसे विदित हुआ कि उसमें कोई रोग हरनेवाला गुण नहीं है।

उसी दिन संध्याको प्रार्थना-स्थानसे लौटता हुआ वह रोगी पालकीमें अपने-आप उठ बैठा और विश्रामस्थलको लौटनेपर उसे भूखका भान हुआ। उसे प्रतीत हुआ कि वह स्वस्थ है। तीसरे दिन जब मेडिकल मण्डलमें उसकी परीक्षा की गयी तो उसके फेंफड़े राजयक्ष्मासे मुक्त पाये गये। डा० कैरलने इस दैवी चमत्कारको नमस्कार किया और वे घोर नास्तिकसे परम आस्तिक हो गये।

यह घटना सन् १९०३में हुई। लूर्दसे लियों लौटनेपर डा० कैरलने इस आध्यात्मिक चमत्कारकी चर्चा विश्वविद्यालयमें की तो उनके विरुद्ध डाक्टरों और वैज्ञानिकोंने प्रबल आन्दोलन उठाया। फ्रांसके समाचारपत्रोंमें उनकी मान्यताओंकी कटु आलोचना की गयी। उनके विभागके अधिकारीने उनसे कहा—'आप-सरीखे विचारोंवाले प्राध्यापकका निभाव हमारे यहाँ कैसे हो सकता है। प्रार्थनाके चमत्कारोंकी चर्चा करना आपके लिये मना है।' उन्होंने जवाब दिया—''महोदय! वैज्ञानिकका धर्म सत्यकी खोज करना और उसका प्रचार करना है, सत्यके पुजारीको किसी बातका भय नहीं होता; न्यूटनके इस कथनकी ओर आपका ध्यान दिलाता हूँ कि 'हमलोग समुद्रके किनारेपर क्रीड़ा करनेवाले और जहाँ-तहाँसे पत्थर-खण्ड उठानेवाले बच्चोंके समान हैं जब कि सत्यके विशाल वारिधिका अन्वेषण करना अवशेष है; उसके रत्न तो गहरी डुबकी लगानेपर ही मिलते हैं।' इस बातचीतके बाद उन्होंने अपने पदसे त्यागपत्र दे दिया। जब भगवान्‌की कृपा होती है तब विपद्‌में-से होकर सम्पद्‌का मार्ग अपने-आप निकल आता है और लोकसंग्रहमें लगे हुए पुरुषके लिये गीतामें यह आश्वासन है—

न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।
(६। ४०)

—'हे प्यारे! शुभ कर्म करनेवाला कोई भी दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता।' सौभाग्यसे उन्हें सन् १९०५ में न्यूयार्क (अमेरिका) की चिकित्सा-खोजकी 'रॉकफेलर संस्था' (Rockfeller Institute) में उच्च पद प्राप्त हुआ। घावोंके इलाजके लिये उन्होंने जो नवीन खोज की, उसके लिये मेडिकल मण्डलोंमें उनका यशोगान होने लगा और इस आविष्कारके उपलक्षमें सन् १९१२ में उन्हें नोबल पुरस्कार (Nobel prize) प्रदान करके सम्मानित किया गया। वहाँ वे तीस वर्षतक कार्य करते रहे। सन् १९३९ में नौकरीसे अवसर ग्रहणकर वे स्वदेश लौट आये। जब द्वितीय महासमर आरम्भ हुआ, तब वे फ्रांसकी सेनाओंकी सेवा करनेके लिये सर्जनका काम लगनसे करते रहे। उन्होंने अपने प्राणोंकी परवा न करते हुए इतने अच्छे कार्य किये कि फ्रांस, अंग्रेज और अमेरिकन सरकारोंने उन्हें अनेक सम्मान प्रदान किये। नवम्बर सन् १९४४ में वे परमधाम पधार गये।

अपनी खोजों, विचारों और अनुभवोंसे संसारको लाभ पहुँचानेके लिये सन् १९३५ में उन्होंने अपना ग्रन्थ ('Man the Unknown') प्रकाशित किया। प्रार्थनाके प्रभावके बारेमें वे लिखते हैं कि 'कोढ़, कैन्सर, टी० बी० इत्यादि रोगोंके लाइलाज बीमार कुछ मिनटोंमें ही पूर्ण स्वस्थ होते हुए देखे गये हैं। रोगीके अच्छे हो जानेकी प्रक्रिया इस प्रकार होती है कि पहले तो विषम वेदना होती है; फिर स्वस्थ हो जानेकी सहसा अनुभूति होती है। पुनः कुछ सेकंडोंमें, कुछ मिनटोंमें या अधिक-से-अधिक कुछ घंटोंमें घाव भरकर मिट जाते हैं। रोगके लक्षण गायब हो जाते हैं, भूख लग जाती है। यह आवश्यक नहीं है कि रोगी स्वयं प्रार्थना करे। पर किसी-न-किसीको उसके लिये सच्चे दिलसे विश्वासके साथ भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये। प्रार्थनाका प्रताप प्रबल है और वह आत्मोन्नतिका सरल सोपान है।'

(२) अस्पतालोंमें प्रार्थना

'प्रार्थनाकी शक्ति' शीर्षकसे अमेरिकाकी पत्रिका (Journal of the American Medical Association) के जनवरी १९५८ के अङ्कमें एक महत्त्वपूर्ण लेख

प्रकाशित हुआ था। लंदनमें 'जॉन जेहू' नामक डाकिया सड़कपर बससे कुचला गया। अस्पतालमें परीक्षण होनेपर विदित हुआ कि उसके कपालमें कई घाव आये हैं और दिमागका दाहिना भाग बुरी तरहसे क्षत हुआ है। डाक्टरी राय यह थी कि वह कभी चल नहीं सकेगा और उसके शरीरका एक अङ्ग लकवेका सदा शिकार रहेगा। ऑपरेशन करनेवाला सर्जन प्रार्थनाशील था। उसने अपने अधीनस्थ सभी पुरुषों और अस्पतालके बीमारोंसे निवेदन किया कि 'आओ, हम सब जेहूके कल्याणके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करें और उसको आराम होनेतक सदा करते रहें।' सामूहिक प्रार्थनाका प्रभाव देखकर सभी विस्मय-विमुग्ध हो गये। रोगी पैरों चलने लगा और उसमें बोलनेकी शक्ति आ गयी। सर्जनने सबसे कहा—'मैं और मेरा स्टाफ प्रार्थनाके बलमें दृढ़ विश्वास रखते हैं और जेहूके विकट कष्टसे त्राण पानेका कारण ईश्वरीय सहायताके लिये हमारी हार्दिक प्रार्थना ही है। इंगलैंडमें 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य-सेवा-समिति' द्वारा जो ३००० अस्पताल चलाये जाते हैं, उन सबमें बीमारोंके इलाजके साथ-साथ उनकी आध्यात्मिक आवश्यकताओंकी भी पूर्ति की जाती है। स्वास्थ्य-मन्त्रालय ७५० या अधिक बीमारोंवाले दवाखानोंमें रात-दिन रहनेवाले धर्मोपदेशक नियुक्त करता है और वे सुबह-शाम रोग-निवारणके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं। इससे कम संख्यावाले चिकित्सालयोंमें स्थानीय गिरजोंके पादरी यह कार्य करते हैं।

ब्रिटिश मेडिकल ऐसोसियेशनने धर्म और चिकित्सामें सतत सहयोगकी महिमाको जान लिया है। अतएव डाक्टरोंकी परिषद्‌में पादरी और पादरियोंकी सभामें डाक्टर बीमारोंके रोगनिवारणके विषयमें मिलकर विचार करते हैं। एसोसियेशनके उपसचिव डा० क्लैक्सटन (Dr. Claxton) का कथन है कि 'हमें अपना कार्य सम्यक्तया करना है तो आध्यात्मिक शक्तिकी सहायता अधिकाधिक लेनी आवश्यक है।' हमारी धर्म-भूमि भारतमें कतिपय सरकारी अस्पतालोंमें भी कहीं-कहीं सामूहिक प्रार्थनाका प्रयोग किया जाने लगा है।

(३) प्रार्थनामें अटल विश्वास

'हिन्दुस्तान टाइम्स' दिल्लीके २।१।६१ के अङ्कमें श्रीमती फ्लॉरेंस हूलिन (Mrs. Florence Huline) ८३ वरसकी बुढ़ियाका अंधापन दूर होनेका समाचार प्रकाशित हुआ था। वह १२ वर्ष पहले सर्वथा अंधी हो गयी थी और तभीसे वह निरन्तर भगवान्‌से प्रार्थना बड़े धैर्यके साथ लगातार करती रही कि उसे फिर दृष्टि प्राप्त हो जाय। जब वह पहली दिसम्बर १९६०में सोकर उठी तो उसका अंधापना अचानक दूर हो गया। उसका कथन था कि 'मैं सदा यही खयाल किया करती थी कि भगवान् मेरी प्रार्थना कभी-न-कभी पूरी करेंगे ही।'

गोलमेज कान्फरेन्स (Round Table Conference) में योग देनेको जब महात्मा गांधी सन् १९३१ में लंदन पधारे हुए थे तब मैं लंदन विश्वविद्यालयमें मनोविज्ञान तथा शिक्षा-शास्त्र और लिन्कन्स इन (Lincoln's Inn) में बैरिस्टरीकी पढ़ाई कर रहा था। एक दिन मैं उनके प्रवचनसे लाभ उठाने पहुँचा तो वे प्रार्थनाकी महिमाका वर्णन करते हुए कहने लगे—"प्रार्थना मेरी जीवन-जड़ी है। जब-जब कोई कठिनाई आती है, मैं उसीका आसरा लेता हूँ।" वे बचपनकी अनुभूति सुनाने लगे—"जब मैं बहुत छोटा था, मेरी माता और मैं अँधेरे कमरेमें सोया करते थे। घरके काम-काजके लिये माता भोर होनेसे पहले ही मुझे अकेला छोड़कर जब चली जाती, तब मैं कभी-कभी भयभीत होकर रोने लगता था। एक दिन मुझे भयसे काँपते देखकर हमारे घरकी सेविकाने कहा कि 'तुम राम-नाम लिया करो और प्रार्थना किया करो।' तभीसे मैं राम-नाम लेने और प्रार्थना करने लगा। प्रार्थना करते हुए मैं भगवान्‌में इतना लीन हो जाता हूँ कि अपने-आपको भूल जाता हूँ। रेलगाड़ी, मोटरकार, घरमें या बाहर, जहाँ कहीं भी मैं कुछ समय प्रार्थनामें दे देता हूँ। यही मेरी शक्ति है और इसीके बल-बूतेपर मैं काम कर रहा हूँ।"

हम छात्रोंपर महात्माजीके इस प्रवचनका प्रगाढ़ प्रभाव हुआ। सन् १९३२ के जनवरी मासके अन्तमें जब मैंने बार कौन्सिल (Bar Council) के सचिवको अपना आवेदन-पत्र दिया कि मुझे नियत अवधिसे पहले भारत लौटनेकी और मेरी अनुपस्थितिमें बैरिस्टरीकी डिगरी प्रदान करनेकी स्वीकृति प्रदान की जाय, तब मैं श्रीकृष्ण भगवान्‌से प्रार्थना करता-करता निद्रादेवीकी गोदमें सो जाता। प्रातःकाल मुझे सचिवका पत्र मिला कि तुम्हारा पत्र मंजूर हो गया है। उसी दिनसे सुबह उठनेके बाद और रातको सोनेसे पहले मैं नित्यमेव प्रार्थना किया करता हूँ।

इस शक्तिसे ही मेरे जीवनके अनेक संकट कटे और विश्वास है कि आइन्दा भी कटते जायँगे ।

मेरे पड़ोसमें रेलवेके वर्कशॉपमें काम करनेवाले चंदगी-राम नामक पुरुषको टी० बी० होनेपर सरकारी अस्पतालमें भर्ती होना पड़ा । जब उसे आराम नहीं हुआ, तब तो वह निराश होकर घर चला आया । वह मेरे कहनेके अनुरूप प्रातः और सायंकाल प्रार्थनाका एक मन्त्र जपने लगा । सवा लाख मन्त्र जपनेपर यह चमत्कार हुआ कि वह अच्छा हो गया । स्वस्थ होनेका प्रमाण-पत्र देते हुए डाक्टरको बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिसे वह असाध्य रोगी लिख चुका था, वह थोड़े ही समयमें भला-चंगा कैसे हो गया । वह पुरुष अब भी स्वस्थ रहकर जीवन बिता रहा है और नित्य ईश्वरकी प्रार्थना करता है ।

(४) प्रार्थना-शक्तिका रहस्य

प्रार्थनाके तात्त्विक विवेचनसे यह लेख समाप्त किया जाता है । प्रार्थनाशीलताके तीन अङ्ग हैं—'प्रार्थी', 'प्रार्थना' और 'प्रार्थनीय' । पुरुषके सम्बन्धमें दो शास्त्रोक्त बातें हैं—**'संकल्पमयोऽयं पुरुषः'** और **'श्रद्धामयोऽयं पुरुषः ।'** पुरुष किसी-न-किसी वस्तुके बारेमें विचार करता रहता है और किसी-न-किसीके प्रति श्रद्धाकी भावना रखता है । जिसके प्रति श्रद्धा होती है, वह उसका 'प्रार्थनीय' है और उससे क्या प्रार्थना की जाय, यह संकल्प या विचारसे सम्बन्ध रखता है ।

'प्रार्थना'की व्युत्पत्ति 'प्रार्थ' धातुसे है, जिसका अर्थ चाहना या याचना करना है । प्रार्थीका हृदय पवित्र होना चाहिये; क्योंकि प्रार्थनाका मूल कण्ठ नहीं, किंतु हृदय है । प्रार्थीका हृदय निर्मल हो और उसकी प्रार्थना उच्च विचारों या महान् आदर्शोंका फल हो तो वह अवश्य सफल होती है ।

प्रार्थीके विचारोंके अनुसार प्रार्थनाके त्रिविध प्रयोजन होते हैं—

(क) सबके कल्याणके लिये यथा—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

यह प्रार्थना सम्पूर्ण विश्वके कल्याणके लिये है । इसी प्रकारकी प्रार्थना राजा शिवि करते हैं—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥

'न तो मैं राज्य, न स्वर्ग और न मोक्षकी चाहना करता हूँ । मैं तो यह चाहता हूँ कि दुखी प्राणियोंका कष्ट दूर हो जाय ।'

(ख) प्राणियोंमेंसे किसी वर्गके कल्याणके लिये ।

(ग) प्रार्थीके अपने ही कल्याणके लिये ।

प्रथम प्रकारकी प्रार्थना जगदीश्वर जगन्नियन्ता परमात्मा-को बहुत प्रिय होती है और उसमें प्रार्थीका स्वकल्याण भी निहित होता है ।

प्रार्थनीय प्रार्थीकी श्रद्धाका स्वरूप होता है । जिस प्रार्थीका जो इष्ट होता है, उसीसे प्रार्थना की जाती है । प्रार्थी जो परमात्माका अंश है, वह प्रार्थनाके द्वारा उसीकी ओर अग्रसर होता है और इसी कारण प्रार्थनासे अनेक चमत्कार देखनेपर परमेश्वरको ही बार-बार नमस्कार करना चाहिये ।

गिरधारी ! लाज बचाइये

अबकी टेक हमारी । लाज राखो गिरिधारी ॥
जैसी लाज रखी अरजुनकी भारत जुद्ध मँझारी ।
सारथि होकर रथ कौं हाँक्यौ चक्र सुदरसनधारी ॥
भगतकी टेक न टारी ॥ १ ॥
जैसी लाज रखी द्रौपदिकी होन न दीन्हि उघारी ।
खींचत खींचत दोउ भुज थाके दुःसासन पचि हारी ॥
चीर बढ़ायो मुरारी ॥ २ ॥
सूरदासकी लज्जा राखौ अब को है रखवारी ? ।
राधे राधे श्रीवर प्यारी श्रीवृषभानुदुलारी ॥
सरन तकि आयो तिहारी ॥ ३ ॥

—श्रीसूरदासजी

प्रार्थना

जिस समय हमारे चारों ओर विपत्तिके बादल मँडराने लगते हैं, अन्धकार छा जाता है, कोई साथी नहीं रहता, पथ दिखानेवाला भी कोई नहीं होता, उस समय यदि हमारे अंदर थोड़ी भी आस्तिकता रहती है तो हम बरबस भगवान्‌की ओर मुड़कर पुकार उठते हैं—'नाथ ! रक्षा करो, पथ दिखाओ ।' तथा हममेंसे बहुतोंका यह अनुभव है कि पुकार लगाते ही ऐसे विचित्र ढंगसे हमारी रक्षा हो जाती है कि जिसकी कल्पनातक नहीं हो सकती । ऐसा क्यों होता है ? इसीलिये कि भगवान् अपने सम्पूर्ण ज्ञान, अनन्त सामर्थ्य, अनन्त सौहार्दको लिये नित्य हमारे साथ हैं, उनसे हृदयका संयोग होते ही उनकी सम्पूर्ण शक्ति हमारी आवश्यकता पूर्ण करनेके लिये प्रकट हो जाती है । जहाँ उनकी अप्रमेय शक्ति, अपरिसीम सौहार्दको व्यक्त होनेका अवसर मिला कि काले बादल बिखर गये, निर्मल प्रकाश छा गया, भार हर लेनेवाले साथी आ पहुँचे, सुविस्तीर्ण निष्कण्टक पथ दीख गया तथा कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे प्रभुके चरणोंमें सिर नवाकर हम गन्तव्यकी ओर चल पड़े ।

किंतु प्रभुसे हमारे हृदयका यह संयोग स्थायी नहीं हो पाता, इस क्षणके बाद हमारा जीवन भगवत्-प्रार्थनामय नहीं बन जाता । अनुकूल परिस्थिति आते ही हम प्रभुको भूलने लगते हैं; 'प्रभुकी प्रार्थना ऐसी अद्भुत चमत्कारकी वस्तु है'—यह स्मृति भी हम धीरे-धीरे खो बैठते हैं ।

इनसे भिन्न कुछ ऐसे प्राणी भी हैं, जो स्वाभाविक प्रायः भगवान्‌की प्रार्थना करते हैं । उनमें सब तो नहीं, पर अधिकांश कैसी प्रार्थना करते हैं, यह विचारणीय है । संक्षेपमें कहनेपर उनकी प्रार्थनाका रूप यह है—'नाथ ! मुझे अमुक वस्तु दो, अमुक प्रकारसे दो और अमुक समयमें दो । अर्थात् कौन-सी वस्तु मिले, इसका निर्णय तो हम कर ही देते हैं । उस वस्तुकी प्राप्ति किस उपायसे हो तथा किस समय हो, यह भी हम ही पहलेसे उन्हें सूचित कर देते हैं—मानो भगवान्‌में यह ज्ञान नहीं कि वे हमारी यथार्थ आवश्यक वस्तुका निर्णय कर सकें, उसकी प्राप्तिका उपाय स्थिर कर सकें तथा ठीक समयपर हमें लाकर दे सकें । होना तो यह चाहिये कि हम प्रार्थना करें कि 'नाथ ! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह मुझे दो; जिस प्रकारसे देना चाहो, उस प्रकारसे ही दो तथा ज[ब] चाहो, तभी दो ।' क्योंकि उनके समान या उनसे [बढ़कर] सर्वज्ञ तथा सर्वथा निर्भूल शुभचिन्तक हमारे लिये औ[र कौन] होगा; किंतु यह न करके हम प्रभुके सामने अप[नी] भावनाओंको ही रखते हैं । फिर भी यह प्रार्थनाकी [ही] अवश्य है; क्योंकि उस समय हमारे हृदयका प्रभुसे [संयोग] तो होता ही है । भगवान् ऐसी प्रार्थनासे नाराज [हों ऐसी बात] नहीं होते, वे तो कभी भी किसीपर भी किसी कारण[से] नाराज होते ही नहीं; किंतु ऐसी प्रार्थनाओंका य[था]... परिणाम हमें तुरंत मिल ही जाय, यह निश्चित न[हीं] ... सफल भी हो सकती हैं, नहीं भी; क्योंकि प्रभुके [मङ्गल]... मङ्गलमय विधानसे अविरोधी प्रार्थनाएँ ही तत्क्षण [सफल] होती हैं । जो प्रार्थीके लिये परिणाममें अहितकर प्रा[र्थनाएँ] हैं, वे सफल नहीं होतीं—परम मङ्गलमयसे अमङ्गलका [दान] किसीको मिल जो नहीं सकता ।

उपर्युक्त दोनोंसे अतिरिक्त कुछ ऐसे मनुष्य भी हैं, जो भगवान्‌से केवल भगवान्‌के लिये—भगवत्प्रेमके ही प्रार्थना करते हैं । जगत्‌की किसी वस्तुकी चाह उ[नके] मनमें नहीं होती । विषयोंका प्रलोभन उन्हें जरा भी [नहीं] सताता । उनका हृदय सहज और सतत भगवान्‌से [जुड़ा] हुआ होता है ।

इस तीसरी श्रेणीकी प्रार्थनामें तो प्रार्थीको कुछ सीख[नेकी] आवश्यकता नहीं होती, प्रार्थनाकी सारी विधियाँ उ[स] प्रार्थनामें सहज ही वर्तमान रहती हैं । वास्तवमें सच्ची [और] कल्याणमयी भगवत्प्रार्थना है भी यही, मानव-जीवन[की] सफलता भी इसी प्रार्थनामें है । क्षुद्र भोगोंके लिये भगवान[की] प्रार्थना करना तो भगवान्‌की कृपामयतापर, उनके पर[म] मङ्गलमय विधानपर अविश्वासका ही द्योतक है—मा[नो] भगवान्‌को हमारी चिन्ता नहीं, हमारी आवश्यक वस्तु हमें नहीं दे रहे हैं, ऐसी भावना हमारी अन्तश्चेतनामें छि[पी] होती है । फिर भी हमें तो वहाँसे आगे बढ़ना है, जहाँ ह[म] खड़े हैं । यदि हम प्रभुपर सर्वथा निर्भर नहीं हो सकते त[ो] पूर्ण निर्भरताका स्वाँग भरनेसे काम नहीं चलता । हमें त[ो] अपने मानसिक धरातलके अनुरूप ही मार्ग अपनाना पड़ेगा। हममेंसे अधिकांश पूर्ण निर्भरताका मार्ग नहीं ग्रहण कर

सकते, अतः पहलेकी दो प्रार्थनाओंको ही हमलोग अपनाते हैं; किंतु इन दोनों प्रार्थनाओंमें भी कुछ जाननेयोग्य बातें हैं, उन्हें जानकर, समझकर फिर की हुई प्रार्थना बड़ी मूल्यवान् होती है। वह प्रार्थना जीवनको नीचे स्तरसे उठाकर भगवान्के दिव्य आलोकमें पहुँचा देती है।

१–भगवान्से हम जिस वस्तुके लिये प्रार्थना करते हैं, उस वस्तुकी तीव्र चाह हमारे मनमें हो; यदि उस वस्तुके विना भी हमारा काम किसी और चीजसे चल जाता हुआ दीखता हो तो समझना चाहिये कि उस वस्तुकी तीव्र चाह हमारे मनमें नहीं है।

२–उस वस्तुको पाना ही है, यह दृढ़ निश्चय हो। यदि वस्तुकी प्राप्तिमें रह-रहकर उत्साह शिथिल पड़ जाता हो तो मानना चाहिये कि निश्चय दृढ़ नहीं है।

३–पूर्ण धैर्य हो। प्रार्थना आरम्भ करनेके बाद फल प्रकट होनेतक अधीरताकी छाया भी मनको न छू पाये, साथ ही फल प्रकट हुआ कि नहीं, यह देखनेकी ओर वृत्ति ही न जाय। बीज बोकर जलसे सींचकर फिर तुरंत ही उसे उखाड़कर देखा नहीं जाता कि बीजमें अङ्कुर लगा या नहीं।

४–प्रार्थनाका तार न टूटे। फल प्रकट होनेतक यथासाध्य अनवरत अविराम पूर्ण तत्परताके साथ प्रार्थना चलती रहे।

५–यह अखण्ड अविचल विश्वास मनमें निरन्तर जागरूक रहे कि 'प्रभु यहाँपर अवश्य हैं, यह वस्तु वे हमें दे सकते हैं, अवश्य देंगे। जो कोई भी उनके सामने जिस वस्तुके लिये उपस्थित होता है, उसे वे वह वस्तु अवश्य देते हैं। हमें भी वे अवश्य देंगे। हमें यह वस्तु निश्चय ही मिलेगी। इसमें तनिक भी संदेह नहीं।'

६–किंतु प्रार्थनाके समय प्रभुके समक्ष उस वस्तुके लिये रोना रोनेकी आवश्यकता नहीं है। प्रार्थनाका रूप तो होना चाहिये—प्रभुसे हृदयका मिलन, हृदयका एकीकरण, प्रभुके रूपमें तन्मयता, अंशका अंशीमें मिल जाना; प्रभुके समग्र ऐश्वर्य, समग्र वीर्य, समग्र यश, समग्र श्री, समग्र ज्ञान और समग्र वैराग्यमें अपनी सत्ता खो देना। इस मिलनका आनुषङ्गिक परिणाम होगा इच्छाकी पूर्ति—इष्ट वस्तुकी प्राप्ति। कल्पना करें, गलित कुष्ठसे शरीर पीड़ित है, अथवा भयानक फोड़ा होकर उसमें मवाद भर आया है, वेदनासे प्राण व्याकुल हैं। इनसे त्राण पानेके लिये हम प्रभुसे प्रार्थना करने चले। अब यह नहीं कि हम अपने मानसिक नेत्रोंके सामने गलित कुष्ठका चित्र रखकर उसका चिन्तन आरम्भ करें, फोड़ेका विकराल रूप प्रभुके सामने रक्खें। ऐसा करना तो प्रार्थनाकी पद्धतिसे दूर चले जाना है। हमें तो चाहिये कि हम प्रभुके उस निरामय स्वरूपका चिन्तन करें, जिसमें विकृति नहीं, अभाव नहीं, दुर्गन्ध नहीं, मलिनता नहीं। जो अनिन्द्य-सुन्दर है, सर्वथा सब ओरसे सदा पूर्ण है, अनन्त सौरभका निवास है और जो परम दिव्य है। उनकी वह निरामय, मञ्जु, समग्र सुरभित, ज्योतिर्मय सत्ता हमारे शरीरके अणु-अणुमें व्याप्त है—ऐसी दृढ़ भावना हम बार-बार करें। प्रभुसे अनुप्राणित हमारे इस शरीरका अणु-अणु रोगसे शून्य, मनोहर, सुन्दर, नित्य पूर्ण सुषमामय, एक चिन्मय ज्योतिसे उद्भासित हो रहा है—ऐसा अनुभव करनेका बारंबार हम प्रयास करें। कुष्ठकी, फोड़ेकी हमें सर्वथा विस्मृति हो जाय; उसके स्थानपर अविकारी, सम्पूर्ण नित्य रुचिर, सुरभिमय, परमोज्ज्वल प्रभुकी सत्ता व्यक्त दीखने लगे—ऐसी चेष्टा हमारी हो। विश्वास एवं लगनके साथ ऐसी धारणा करनेपर ऐसी भावना हो जाना कठिन नहीं है। तथा भावना दृढ़ हुई कि प्रभुका दिव्य चमत्कार हमारे अनजानमें ही उस गले शरीरपर—फोड़ेसे व्याकुल त्वचापर प्रकट हो जायगा। यह कल्पना नहीं, ध्रुव सत्य है। भारतीय शास्त्र तो ऐसे अगणित प्रमाणोंसे भरे हैं ही, आज भी ऐसी घटनाएँ प्रत्यक्ष होती हैं, इस विज्ञानयुगके प्रतिभाशाली विज्ञानवेत्ताओंकी दृष्टिके सामने भी होती हैं, हुई हैं। नोबल पुरस्कार-विजेता, संसारप्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं सर्जन डाक्टर अलेक्सिस कैरेल (Dr. Alexis Carrell) का कहना है कि उन्होंने स्वयं आँखोंसे देखा है—एकमात्र केवल प्रार्थनासे कुछ ही क्षणोंमें मुँहके घाव शरीरके अन्य घाव, कैंसर, मूत्राशयके रोग और यक्ष्मा (Tuberculosis) आदि रोगोंसे पीड़ित रोगियोंके रोग मिट गये हैं।

अच्छा, रोगसे मुक्त होनेकी बात तो ठीक। हमें तो ध चाहिये। घरमें युवती कन्या है, उसका विवाह करना पर भरपेट भोजनके लिये अन्न नहीं है, शरीर ढकने लिये पर्याप्त वस्त्र नहीं है। क्या भगवत्-प्रार्थनामात्रसे धन मिल जायगा? अवश्य मिल जायगा; किंतु प्रार्थ ठीक-ठीक होनी चाहिये। अन्य आवश्यक बातोंके स साथ हमें प्रार्थनाके समय अपनी दरिद्रताकी भावना, अ

गिरी हुई स्थितिकी स्मृति मिटा देनी होगी। उसके स्थानपर हम प्रभुके सर्वसम्पन्मय रूप, अनन्त श्रीसम्पन्न सत्ताका स्मरण करें, उसमें अपना मन डुबा दें। यह अनन्त आकाश, अपरिसीम सागर, विस्तीर्ण भूभाग, ऊँची पर्वत-मालाएँ, नदी-निर्झर, सरोवर, वन-उपवन, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, भृङ्ग, सोना-रूपा, हीरा-मोती नीलम-पन्ना, पुखराज—इन अगणित वैभवोंके निर्माण करनेवाले जो प्रभु हमारे अंदर नित्य वर्तमान हैं, उनमें अपने मनको लीन करें। हम ऐसी भावना करें कि प्रभुका अनन्त वैभव हमारे चारों ओर फैला हुआ है, उसपर हमारा अधिकार है; क्योंकि हम तो उनके हैं। भावनाके नेत्रोंसे यह स्पष्ट अनुभव करें कि प्रभुकी अनन्त विभूति हमें तो प्राप्त ही है। हमारे लिये तो किसी अभावकी कल्पना ही नहीं है। विश्वासपूर्वक यदि वास्तवमें हम ऐसी भावना दृढ़ कर सकें तो निश्चित है हमारे लिये आवश्यक इच्छित धनकी व्यवस्था प्रभुके विधानसे होकर ही रहेगी।

सारांश यह कि हम जो वस्तु चाहते हैं, उसके अभाव-की ओरसे वृत्तियोंको हटाकर, वह वस्तु जिन प्रभुमें पूर्ण-रूपसे नित्य वर्तमान हैं, उनमें केन्द्रित करें। हम 'अमुक वस्तु नहीं है, अमुक नहीं है' इस प्रकारके चिन्तनसे विरत होकर जहाँ हमारी चाहकी वस्तु पूर्णरूपमें सदा अवस्थित है, उसका चिन्तन करें।

७—यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि विश्वस्रष्टा प्रभुके ही हम एक अंश हैं, अतः प्रभुके गुण हममें भी अंशरूपसे अवश्य वर्तमान हैं। प्रभुने सृष्टिसे पूर्व यह संकल्प किया—'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय—मैं एक ही बहुत हो जाऊँ।' इस चिन्तन—संकल्पका परिणाम यह हुआ कि यह विशाल विश्व सृष्ट हुआ, मूर्त हो गया। तो चिन्तनके द्वारा वस्तुको निर्माण करनेकी शक्ति हमारे अंदर भी अवश्य है; क्योंकि हम विश्वस्रष्टाके अंश जो ठहरे। इसीलिये हम भी चिन्तनके द्वारा अपने लिये वस्तुका निर्माण कर सकते हैं, करते हैं। यह नियम है, हमारे प्रत्येक विचार मनमें सृष्ट होनेपर बाहर भी उसके अनुरूप ही आकार धारण करते हैं। यदि प्रार्थनाके समय हम अभावका, मलिनताका ही चिन्तन करें—'नाथ! देखो, इस वस्तुके अभावमें मुझे कितना कष्ट हो रहा है, हाय! मेरी कैसी गिरी दशा है!' इन भावोंकी ही आवृत्ति करते रहें, तो अभावजन्य व्यथाकी, पतनकी मूर्तियाँ ही निर्मित होंगी। तथा प्रभुकी पूर्ण, परम सौन्दर्यमयी सत्तासे हमारे हृदयका क्षणिक संयोग होकर भी ये विचारकी अशुभ बीचमें व्यवधान बनती जायँगी। पर ठीक इससे [illegible] यदि हम प्रार्थनाके समय ऐसा चिन्तन आरम्भ करें—तो सब कुछ प्राप्त है, हमारा सब कुछ सुन्दर है; [illegible] तुम्हारी कृपासे मैं कितने आनन्दमें हूँ, किस प्र[illegible] प्रतिक्षण ऊपर उठ रहा हूँ।' ऐसे विचारके [illegible] महामहिम प्रभुसे हमारा संयोग तो हो ही रहा है, सा[illegible] इष्टप्राप्तिजन्य सुखकी, उत्थानकी शुभ मूर्तियाँ भी [illegible] हो रही हैं। विचारोंसे निर्मित ये शुभ मूर्तियाँ हमारे सहायक बनती जा रही हैं। करुणासागर भगवान्‌की [illegible] जो कृपाकी लहरें हमारी ओर आती रहती हैं, उ[illegible] मूर्तियाँ बड़े वेगसे आकर्षित करने लगती हैं। देख[ते] देखते हमारे शुभ विचार भगवान्‌के मङ्गलमय वि[धान] जुड़ जाते हैं तथा फिर हमारे लिये बाहर एक शुभसे [illegible] संसार मूर्त हो जाता है। तुरंत ही वे प्रतिकूल परिस्थि[तियाँ] मिट जाती हैं तथा उनके स्थानपर हमारी मनोवा[ञ्छित] परिस्थिति प्रकट हो जाती है। कहनेका तात्पर्य यह [illegible] किसी वस्तुके लिये प्रार्थना करनेपर हमारे अंदर जो विच[ारके] द्वारा वस्तुनिर्माण करनेकी शक्ति है, इसको भी सहा[यक] बना लेना चाहिये। यह बाधक न बन जाय, इस बा[तसे] सावधान रहना चाहिये। हर्ष, उत्थान, पूर्णता आदि[की] भावना करना अपनी उस शक्तिको सहायक बना लेना और विषाद, निराशा, शोक तथा दुःखकी भावना क[रना] उन्हें बाधक बना लेना है।

८—प्रार्थनासे पूर्व धीरतापूर्वक हमें विचार कर ले[ना] चाहिये कि हमारी इच्छित वस्तु, जिसके लिये हम प्रार्थ[ना] करने जा रहे हैं, कहीं दूसरेके हितकी विरोधी वस्तु तो न[हीं] है? मान लें यह इच्छा उत्पन्न हुई कि 'हमारे अमुक शत्रु[का] विनाश हो जाय' तथा इस इच्छाकी पूर्तिके लिये ह[म] प्रार्थना करने चले—तो इसकी पूर्तिके लिये प्रार्थना[का] आधार हमें भगवान्‌में कदापि नहीं मिलेगा। हम अप[ने] भ्रान्त मलिन मनसे प्रभुमें ऐसे आधारका आरोप कर लें—यह बात दूसरी है; पर वास्तवमें ऐसी प्रार्थनाके लिये आश्र[य] भगवान्‌में है ही नहीं। प्रभुमें किसीके भी प्रति शत्रु[ता] अथवा द्वेषकी कल्पना ही जो नहीं है। उनकी दृष्टिमें उन[के] अपने सिवा और है ही क्या, जिसके प्रति वे द्वेष करें! अपने-आपके ही प्रति किसीका द्वेष होता है क्या! अतः ऐसी प्रार्थना करनेवालेको तो निराश ही होना पड़ेगा।

काकतालीय-न्यायसे कोई घटना घट जाय और हम उसे अपनी प्रार्थनासे हुई मान लें तो यह तो हमारी बुद्धिका भ्रम है। वास्तवमें भगवान्‌में ऐसी प्रार्थनाका बीजतक टिकनेका स्थान नहीं है। हमें चाहिये कि यदि ऐसी इच्छा हमारे मनमें कभी जाग्रत् हो तो उस इच्छामें हम पहलेसे ही सुधार कर लें। हम यह इच्छा करें कि हमारा वह विरोधी, जिसे हम शत्रु मानते हैं, उसका हृदय विशुद्ध हो जाय और वह हमसे प्रेम करने लगे। तथा इस इच्छाकी पूर्तिके लिये हम प्रार्थना करने चलें। प्रार्थनाकी यही कुंजी अपना लें। अनन्त प्रेमार्णव प्रभुमें मनको तन्मय कर दें और यह भावना करें, 'विश्वके अणु-अणुमें प्रभुका प्रेम भरा है, अणु-अणुसे दिव्य प्रेम झर रहा है, मेरे हृदयमें प्रेमकी सरिता प्रवाहित हो रही है, मेरे चारों ओर प्रेमका सागर हिलोरें ले रहा है।' कोई शब्द सुन पड़े तो भावना करें कि 'ओह! प्रभुके प्रेमसे सना यह शब्द कितना मधुर है!' कैसा भी स्पर्श प्राप्त हो, सोचें, 'ओह! कितना प्रेमिल स्पर्श है!' कैसा भी रूप क्यों न दीखे, अनुभव करें कि 'ओह! प्रभुका प्रेम तो इस रूपके अणु-अणुमें व्याप्त है।' रसनेन्द्रियको जिस रसकी अनुभूति हो, नासिकाका जिस गन्धसे संयोग हो, सोचें—'इस रसमें, इस गन्धमें प्रभुका दिव्य प्रेम ही तो ओतप्रोत है।' फिर हम देखेंगे हमारे उस विरोधीमें, जिसका हम विनाश चाहते थे, प्रेममय प्रभुका चमत्कार प्रकट हो गया है। हमारी प्रार्थना सफल हो गयी है।

इसका निष्कर्ष यह है—पर-हित-विरोधी अपवित्र इच्छामें सुधार करके उसे प्रभुसे जुड़ने लायक पवित्र बनाकर फिर हम प्रार्थना करें।

९—मनसे यह धारणा निकाल दें कि प्रभु हमारी प्रार्थनासे दबकर हमारी इच्छाकी पूर्तिके लिये (जैसे खुशामदसे राजी होकर यहाँका अफसर कर देता है वैसे) अपने परम मङ्गलमय विधानमें हेर-फेर कर देंगे। प्रभुका मङ्गलमय विधान तो निश्चित है, अनादि कालसे निश्चित क्रमसे क्रियाशील है, अनन्त कालतक निश्चित क्रमसे क्रियाशील रहेगा। इसमें हेर-फेर वे प्रायः नहीं करते। हेर-फेर तो हमारी इच्छामें होकर हमारी इच्छाका उनके मङ्गलमय विधानके अनुकूल हो जाना आवश्यक है, तभी उस इच्छाकी पूर्ति सम्भव है।

१०—प्रार्थनासे पूर्व हम अपनी इच्छित वस्तुको कुछ देरके लिये प्रसन्नचित्तसे पूर्ण एकाग्रतासे स्मरण करते रहें, फिर अपनी भाषामें भगवान्‌के तत्सम्बन्धी रूपका निरूपण एवं मनन तथा भावना आरम्भ करें। किसीसे सीखी हुई भाषामें प्रार्थना करनेपर उसमें प्रायः कुछ-न-कुछ कृत्रिमता आ ही जाती है, जो प्रभुसे हृदयका शीघ्र संयोग होनेमें आवरणका-सा काम करने लगती है। इसीलिये अपनी स्वाभाविक भाषाका प्रयोग ही वाञ्छनीय है।

११—हम इच्छापूर्तिकी अवधि, पूर्तिके प्रकार प्रभुके लिये निर्धारित न कर दें। हमारी वह इच्छित वस्तु कब मिलेगी, किस प्रकार मिलेगी—ये दोनों बातें हम सर्वथा प्रभुकी मङ्गलमयी इच्छापर ही छोड़ दें।

१२—जहाँतक अधिक-से-अधिक सम्भव हो, हम प्रार्थना करते रहें; पर यह बात प्रभुके अतिरिक्त किसी भी दूसरेपर प्रकट न होने पाये।

उपर्युक्त बारह बातोंपर ध्यान रखकर इच्छितकी प्राप्तिके लिये हम यदि प्रार्थना करते हैं तो तत्काल लाभ हमें मिलता ही है। केवल मनचाही वस्तु हमें मिल जाय, इतना ही नहीं; क्रमशः हमारे हृदय-मन-प्राणमें प्रभुकी दिव्य ज्योति भरने लगती है। ये आलोकित हो उठते हैं। यह आलोक एक दिन हमें अपने अंदर नित्य अवस्थित प्रभुके मन्दिरका दर्शन करा देता है। बस, यहींसे हमारी सच्ची प्रार्थना—भगवान्‌से भगवान्‌के लिये—भगवत्प्रेमके लिये प्रार्थना आरम्भ होती है। फिर तो हमारे मनकी समस्त वृत्तियाँ सब ओरसे सिमटकर प्रभुके दिव्य मन्दिरकी ओर ही केन्द्रित हो जाती हैं। कदाचित् कोई वृत्ति किसीकी करुण पुकार सुनकर पीछेकी ओर मुड़ती है तो उस समय हम यही पुकार उठते हैं—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

'हे नाथ! सभी सुखी हों, सभी रोगरहित हों, सभी कल्याणके दर्शन करें, दुःखका भागी कोई भी न बने।'

—एक साधु

श्रीमद्भागवतमें नाममहिमा और प्रार्थना

(लेखक—श्रीरामनिवासजी शर्मा विद्यावारिधि)

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥
(श्रीमद्भागवत—मङ्गलाचरण, श्लोक ३)

रसमर्मज्ञ भावुकजन ! यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पतरुका सुपक्क फल है । श्रीशुक (रूपी तोते) के मुखका सम्बन्ध हो जानेसे यह परमानन्द-अमृतरसमय हो गया है । इसमें रस-ही-रस भरा है । जबतक 'शरीरमें' चेतना रहे, तबतक पृथ्वीपर इस दिव्य भगवद्रसका निरन्तर पान करते रहो ।

श्रीव्यासभगवान्के द्वारा श्रीमद्भागवतका निर्माण ही हुआ है देवर्षि नारदजीकी सम्मतिसे भगवान्के रसमय लीला-गुण-नामका गान करनेके लिये ही । इस भागवतमें भगवान्के पवित्र चरित्रोंका बड़ा ही रसमय वर्णन है । अखिलरसामृत-मूर्ति स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-रस-सुधा-धारा इसमें भलीभाँति प्रवाहित है । इसी लीलारस-प्रवाहमें 'प्रार्थना' तथा 'नाममहिमा'का जो मधुर विशद रस इसमें है, वह अन्यत्र किसी भी ग्रन्थमें दुर्लभ है । प्रारम्भसे अन्ततक भगवन्नामकी अपार महिमा इसमें गायी गयी है । एक अजामिलका इतिहास ही ऐसा है, जो नाममहिमाका परम आदर्श है । स्तवन-प्रार्थनाका विस्तार भी बहुत है । यहाँ हम स्तवन-प्रार्थनाकी एक सूची दे रहे हैं । इससे पता लगेगा कि भागवतमें प्रार्थना-स्तवनका कितना महत्त्वपूर्ण वर्णन है । इनमें गजेन्द्र-स्तवन, नारायण-कवच कई प्रार्थनाएँ तो ऐसी सिद्ध हैं, जिनसे असंख्य लोगोंने लौकिक-पारमार्थिक लाभ उठाये हैं और उठा रहे हैं । आशा है, इस सूचीसे भागवतमें आयी स्तुतियों-की ओर पाठकोंका ध्यान जायगा और वे यथायोग्य लाभ उठायेंगे ।

स्कन्ध १

	अध्याय—श्लोक
१—उत्तराकृत श्रीकृष्णस्तुति	८ । ९-१०
२—कुन्तीकृत श्रीकृष्णस्तुति	८ । १८—४३
३—भीष्मकृत श्रीकृष्णस्तुति	९ । ३२—४२

स्कन्ध २

४—श्रीशुकदेवजीकृत श्रीकृष्णस्तुति	४ । १२—२४

स्कन्ध ३

	अध्याय-श्लोक
५—तत्त्वाभिमानी देवगणकृत भगवत्स्तुति	५ । ३८—५०
६—श्रीब्रह्माकृत भगवत्स्तुति	९ । १—२५
७—ऋषिगणकृत यज्ञवाराह-स्तुति	१३ । ३४—४५
८—कर्दम प्रजापतिकृत श्रीहरिस्तुति	२१ । १३—२१
९—कर्दमकृत श्रीकपिलस्तुति	२४ । २६—३४
१०—गर्भस्थ जीवकृत कर्मफलदाता भगवान्की स्तुति ...	३१ । १२—२१
११—देवहूतिकृत श्रीकपिलस्तुति	३३ । २—८

स्कन्ध ४

१२—देवगणकृत नर-नारायणस्तुति	१ । ५६-५७
१३—ब्रह्माकृत रुद्रस्तुति	६ । ४२—५०
१४—दक्षादिकृत श्रीनारायणस्तुति	७ । २६—४७
१५—ध्रुवकृत श्रीविष्णुस्तुति	९ । ६—१७
१६—धरादेवीकृत पृथुस्तुति	१७ । २९—३६
१७—पृथुकृत भगवत्स्तुति	२० । २३—३१
१८—प्रचेतस्कृत भगवत्स्तुति	३० । २२—४२

स्कन्ध ५

१९—इलावृतमें शंकरकृत संकर्षणस्तुति	१७ । १७—२४
२०—भद्राश्वमें भद्रश्रवस्कृत श्रीहयशीर्षस्तुति	१८ । २—६
२१—हरिवर्षमें प्रह्लादकृत श्रीनृसिंहस्तुति	१८ । ८—१४
२२—केतुमालमें रमाकृत कामदेवस्तुति	१८ । १८—२३
२३—रम्यकमें मनुकृत श्रीमत्स्यस्तुति	१८ । २५—२८
२४—हिरण्मयमें अर्यमाकृत श्रीकूर्मस्तुति	१८ । ३०—३३
२५—उत्तरकुरुमें भूदेवीकृत श्रीवराहस्तुति	१८ । ३५—३९
२६—किम्पुरुषमें हनूमत्कृत श्रीसीताराम-स्तुति	१९ । ३—८
२७—भारतवर्षमें नारदकृत नर-नारायणस्तुति	१९ । ११—१५
२८—ब्रह्मसभामें नारदकृत संकर्षणस्तुति	२५ । ९—१३

स्कन्ध ६

२९—दक्षप्रजापतिकृत हंसगुह्यस्तुति	४ । २३—३४
३०—विश्वरूपकृत श्रीनारायणकवच	८ । १—४२
३१—देवगणकृत आदिपुरुष नारायणकी स्तुति	९ । २१—४५
३२—चित्रकेतुके प्रति नारदोपदिष्ट विद्यातरङ्ग-स्तुति	१६ । १८—२५
३३—चित्रकेतुकृत श्रीसंकर्षणस्तुति	१६ । २९—४८
३४—दितिके प्रति कश्यपोदिष्ट श्रीलक्ष्मीनारायण-स्तुति	१९ । ११—१७

	अध्याय-श्लोक
स्कन्ध ७	
३५–हिरण्यकशिपुकृत ब्रह्मा-स्तुति	३ । २६—३८
३६–देवगणकृत भगवत्स्तुति	४ । २२—२८
३७–ब्रह्मादिकृत:श्रीनृसिंहस्तुति	८ । ४०—५६
३८–प्रह्लादकृत श्रीनृसिंहस्तुति	९ । ८—५०
स्कन्ध ८	
३९–स्वायम्भुवमनुकृत भगवत्स्तुति	१ । ९—१६
४०–गजेन्द्रकृत श्रीहरिस्तुति	३ । १—३३
४१–देवगणकृत ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति	५ । २०—५०
४२–गीर्वाणगणकृत परमपुरुष भगवान्‌की स्तुति ...	६ । ८—१५
४३–प्रजापतिकृत श्रीशिवस्तुति	७ । २१—३५
४४–महादेवकृत श्रीहरिस्तुति	१२ । ४—१३
४५–अदितिके प्रति कश्यपोद्दिष्ट पयोव्रताङ्ग-स्तुति ...	१६ । २९—३८
४६–अदितिकृत भगवत्स्तुति	१७ । ८—१०
४७–ब्रह्माकृत गर्भगत-वामनस्तुति	१७ । २५—२८
४८–बलिबन्धनके समय प्रह्लादकृत उपेन्द्रस्तुति ...	२२ । १६—१७
४९–बलिबन्धनमुक्तिके अनन्तर प्रह्लादकृत उपेन्द्रस्तुति ...	२३ । ६—८
५०–सत्यव्रतकृत श्रीमत्स्यावतारस्तुति	२४ । ४६—५३
स्कन्ध ९	
५१–अम्बरीषकृत श्रीसुदर्शनस्तुति	५ । ३—१२
स्कन्ध १०	
५२–ब्रह्मादिकृत देवकीगर्भस्थ-भगवत्स्तुति	२ । २६—४१
५३–वसुदेवकृत भगवत्स्तुति	३ । १३—२२
५४–देवकीकृत भगवत्स्तुति	३ । २४—३१
५५–नलकूबर-मणिग्रीवकृत श्रीकृष्णस्तुति	१० । २९—३८
५६–ब्रह्माकृत श्रीकृष्णस्तुति	१४ । १—४०
५७–नागपत्नीकृत श्रीकृष्णस्तुति	१६ । ३३—५३
५८–इन्द्रकृत श्रीकृष्णस्तुति	२७ । ४—१३
५९–अक्रूरकृत श्रीकृष्णस्तुति	४० । १—३०
६०–मुचुकुन्दकृत श्रीकृष्णस्तुति	५१ । ४६—५८
६१–भूमिदेवीकृत श्रीकृष्णस्तुति	५९ । २५—३१
६२–माहेश्वर ज्वरकृत श्रीकृष्णस्तुति	६३ । २५—२८
६३–मुनिगणकृत श्रीकृष्णस्तुति	८४ । १६—२६
६४–वसुदेवकृत श्रीराम-कृष्णस्तुति	८५ । १—२०
६५–श्रुतिकृत श्रीकृष्णस्तुति	८७ । १४—४१
स्कन्ध ११	
६६–ब्रह्मादिदेवगणकृत श्रीकृष्णस्तुति	६ । ७—१९
६७–मार्कण्डेयकृत श्रीनारायणस्तुति	८ । ४०—४९

इस प्रकार सम्पूर्ण भागवत एक प्रकारसे प्रार्थना-स्तुतिमय ही है। यही बात भागवतमें नाममाहात्म्यके सम्बन्धमें है। आजके इस भयंकर दुर्दैवग्रस्त समयमें भगवन्नाम-स्मरण और भगवत्प्रार्थना ही कलिग्रस्त जीवोंकी सुखप्राप्तिके प्रधान आश्रयरूप हैं।

हरि-सुमिरन अरु प्रार्थना मुक्ति-भक्ति हित हेतु।
सब साधन के सार ये जग-तारन हित सेतु॥
हरि-सुमिरन अरु प्रार्थना जन-खग के दो पक्ष।
भक्तिरूप नौका परम सुखमय तारन-दक्ष॥

जन्म-जन्ममें प्रगाढ़ प्रीति बनी रहे

नाथ ! योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्। तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि॥
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी। त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु॥

(प्रह्लाद

हे नाथ ! सहस्रों योनियोंमें मैं जहाँ-जहाँ जन्म लूँ, वहाँ-वहाँ हे अच्युत ! तुमसे मेरी भक्ति सदा अचल बनी रहे। अविवेकी मनुष्योंकी जैसी प्रगाढ़ प्रीति विषयोंमें होती है, वैसी ही कल्याणकारिणी प्रीति तुम्हारे स्मरणमें लगे हुए मेरे हृदयसे कभी भी दूर न हो।

फिल्मोरकी प्रार्थना-सम्बन्धी मान्यताएँ

(लेखक—श्रीराधेश्यामजी बंका)

चार्ल्स फिल्मोर शारीरिक दृष्टिसे अशक्त थे। बचपनमें स्केटिंग खेलते समय उनके कूल्हेकी हड्डी अपने स्थानसे हट गयी। दो सालतक लगातार चिकित्सा, वह भी अनेक प्रकारकी करानेके बाद भी हड्डी ठीक नहीं हुई। एक पैरकी हड्डीकी समुचित अभिवृद्धि बंद हो गयी और वे एक पैरसे लँगड़े हो गये। इस प्रकारकी और भी शारीरिक अशक्तताएँ थीं। ये कुछ इस प्रकारकी कमियाँ हैं, जो जीवनके सुखको, जीवनके सौन्दर्यको प्रभावित करती हैं और जिनसे जीवन अधूरा लगता है। आदमी सुन्दर, स्वस्थ और सुडौल, तन-मनसे अपने जीवनमें जितना कर पायेगा, उनके अभावमें आधा ही कर पाता है। पर उन्होंने अपने जीवनकी इन कमियोंके साथ समझौता नहीं किया। वे हाथ-पर-हाथ रखकर, निराश होकर नहीं बैठ गये। उनमें कुछ दैवी प्रेरणा होती रहती कि मानव-जीवन किसी महान् उद्देश्यके लिये है। मानव-जीवनका रूप अवश्य भव्य होना चाहिये। उन्होंने अनुभव किया कि मानव-जीवन मूलतः असुन्दर नहीं, सुन्दर है और सदा आनन्दसे परिपूर्ण रहना चाहिये। यदि मनुष्यके जीवनमें कोई दोष या कोई कमी है, वह सत्यको सही रूपमें नहीं समझने और सत्यका व्यावहारिक जीवनमें प्रयोग नहीं करनेके कारण है। मनुष्यके अंदर अनेक श्रेष्ठ शक्तियाँ हैं, योग्यताएँ हैं और श्रीचार्ल्स फिल्मोरने अपने जीवनका अधिकांश समय मननमें, चिन्तनमें और प्रार्थनामें लगाया, जिससे वे जीवनकी इन श्रेष्ठ क्षमताओंसे परिचित हो सकें और उनको विकसित कर सकें।

उनके जीवनमें कष्ट था। कष्टको केवल कर्म-भोग मानकर वे चुप बैठनेवाले व्यक्ति नहीं थे। ऐसे धर्मका, जो यह कहता है—'कष्टको सहन करो, कष्ट कर्मका फल है', कोई महत्त्व नहीं। धर्म वह जो हमारी आवश्यकताओंमें काम आये, हमारे कष्टको दूर करे, हमारे जीवनको सौन्दर्य प्रदान करे और जीवनको लोकोपयोगी बनाये। उनको एक ऐसे धर्मकी खोज थी, जो जीवनकी चोटोंपर मरहम लगाये, जीवनके घावोंको भर दे। उन्होंने अनुभव किया कि मनुष्य होनेके नाते मनुष्यको जितना अधिकार आध्यात्मिक दृष्टिसे विकसित होनेका है, उतना ही अधिकार इसका भी है कि उसका मस्तिष्क सुलझा हो, विवेक जाग्रत् हो, शरीर स्वस्थ हो और घर सम्पन्न हो—मनुष्यके जीवनमें श्रेय और प्रेय दोनों हों। लौकिक सुखके मूल्यपर आध्यात्मिक विकासको महत्त्व देनेवाले धर्मके प्रति उनके मनमें आदर नहीं था।

जिन स्त्री-पुरुषोंको यही शिक्षा मिली थी कि ईश्वर तुमसे बहुत दूर है, ईश्वरकी प्राप्ति बड़ी कठिन है, ईश्वरीय न्याय बड़ा कठोर है, मनुष्यका जीवन आँसुओंका सागर है और मानव-जीवन कष्ट सहनेके लिये ही है,—उन स्त्री पुरुषोंको अपनी जीवन-शैलीसे, अपने विश्वाससे, अपनी प्रार्थनासे और अपने विचारोंसे श्रीचार्ल्स फिल्मोरने यह सिद्ध करके दिखा दिया कि ये सारे कथन निराधार हैं।

श्रीचार्ल्स फिल्मोर यही कहते कि—मैं परम पिता परमेश्वरकी संतान हूँ, वे मेरे प्यारे पिता हैं। जब भी जरूरत होती है, मैं अपने पितासे बात करता हूँ। अपनी आवश्यकता—चाहे वह किसी प्रकारकी हो, इस जगत्की हो अथवा आध्यात्मिक हो—अपनी सारी आवश्यकता अपनी प्रार्थनाके समय उनके सामने रखता हूँ और मेरे प्यारे पिता परमेश्वर मेरी जरूरतको पूरा करते हैं। क्या कभी यह सम्भव है कि पिता अपनी संतानको परेशान, पीड़ित और पतित-दशामें देखे।

आप अपने किसी व्यापारमें बढ़ोतरी चाहते हों, अपने किसी भी रोगसे मुक्ति चाहते हों, अपने किसी प्रयासमें सफलता चाहते हों, अपने जीवनमें आध्यात्मिक उन्नति चाहते हों—कहनेका तात्पर्य, अपने जीवनके किसी भी क्षेत्रमें कार्यकी सम्पन्नता चाहते हों, ईश्वरपर पूर्ण विश्वासके साथ उनसे प्रार्थना करें तथा अपनेमें पोषक विचार-धारा (Positive Thinking) को विकसित करें, आपको अभीष्टकी सिद्धि अवश्य होगी। बस, तीन शर्तें हैं—(१) ईश्वरपर विश्वास, (२) सरल प्रार्थना और (३) पोषक विचारधारा।

ईश्वरपर विश्वास

चार्ल्स फिल्मोर अपनी आध्यात्मिक उन्नतिके लिये अपनी पत्नी मर्टिल फिल्मोरके प्रति कृतज्ञ हैं। चार्ल्स फिल्मोरका

अध्यात्मके प्रति झुकाव था, वे आध्यात्मिक विषयोंमें रुचि रखते थे; परंतु उनके जीवनमें ईश्वर-विश्वासकी जो अखण्ड धारा बही, उस धाराको प्रवाहित करनेका श्रेय उनकी पत्नीको है। उन्होंने अपनी रुग्णा पत्नीके रोगनाशमें ईश्वरपर विश्वास-का चमत्कार देखा। उनके भी जीवनका मूलमन्त्र बन गया यह पद—

God is my help in every need;
God does my every hunger feed;
God walks beside me, guides my way
Through every moment of the day.

I now am wise, I now am true,
Patient, kind, and loving too.
All things I am, can do, and be,
Through Christ, the Truth that is in me.

God is my health, I can't be sick;
God is my strength, unfailing, quick;
God is my all; I know no fear,
Since God and love and Truth are here.

इस पदका साधारण-सा अर्थ है—'मेरी प्रत्येक आवश्यकता-में ईश्वर मेरे सहायक हैं। मेरी प्रत्येक भूखको ईश्वर ही मिटाते हैं। ईश्वर पद-पदपर मेरे साथ हैं और प्रत्येक दिन प्रत्येक पल मेरे पथ-प्रदर्शक हैं। अब मैं प्रबुद्ध हूँ। अब मैं सत्यनिष्ठ हूँ, मुझमें धैर्य, दयालुता और स्नेह भरपूर हैं। मैं सभी कुछ कर सकता हूँ और ईश्वरके माध्यमसे सभी कुछ हो सकता हूँ। मुझमें सत्यका वास है। ईश्वर ही मेरे स्वास्थ्य हैं। मैं बीमार नहीं पड़ सकता। ईश्वर मेरी शक्ति हैं, जो कभी असफल नहीं होती और जिससे सफलताकी प्राप्ति होती है। ईश्वर मेरे सर्वस्व हैं। मेरे साथ ईश्वर हैं, स्नेह है और सत्य है; अतः मैं निर्भय हूँ।'

यह विश्वास फिल्मोर-दम्पतिके जीवनमें बद्धमूल हो गया। ईश्वरसे प्रार्थनाद्वारा जन-जनकी रोग-विमुक्ति, अभाव-पूर्ति, जागतिक उन्नतिका कार्य फिल्मोर-दम्पतिने आरम्भ कर दिया; फिर भी वे कार्यके बदलेमें शुल्क-स्वरूप एक पैसा भी नहीं लेते थे। जो भी पत्रिकाएँ विचारके प्रचारके लिये प्रकाशित की जाती थीं, उनके लिये नाममात्रका शुल्क था। एक बार ऐसा हुआ—ढेर-के-ढेर बिल इकट्ठे हो गये। कर्मचारियोंका वेतन देना शेष था। फिल्मोरने सहयोगियोंसे कहा कि 'ईश्वरसे इसके लिये प्रार्थना करें।' एक सहयोगीने कहा 'हम यह प्रार्थना करें कि वे हमें पर्याप्त धन दें।' तुरंत मर्टिल फिल्मोरने कहा—'अरे नहीं, हम यह प्रार्थना करें कि हमें पर्याप्त विश्वास दें।' प्रार्थनाका फल यह हुआ कि उनका आर्थिक संकट दूर हो गया।

विश्वास पहली चीज है। विश्वास आधार है। विश्वासके आधारपर खड़े होकर किसी भी समस्याको हल किया जा सकता है। वास्तविक निधि विश्वास है। यह विश्वास तुरंत नहीं जगता और जगनेके बाद तुरंत नहीं जमता। निरन्तर प्रयास और यथार्थ सफलता मनमें ईश्वरके प्रति विश्वासको सुदृढ़ कर देती है।

सरल प्रार्थना

प्रार्थनाका साधारण शब्दोंमें यही अर्थ है—ईश्वर और मानवकी पारस्परिक विश्वासभरी बातचीत। यह पारस्परिक बातचीत आन्तरिक एकताकी ओर संकेत करती है। प्रार्थनामें हम ईश्वरसे एकता स्थापित करते हैं। प्रार्थनामें हम अपनी सारी बात ईश्वरके समक्ष रख देते हैं। ईश्वर ही जगत्के रूपमें अभिव्यक्त है। जगत्का सारा सौन्दर्य, सारा वैभव, सारा गौरव, सारी बुद्धिमानी, सारा स्वास्थ्य ईश्वरसे ही प्रस्फुटित हुआ है। हमें अधिक सौन्दर्यकी आवश्यकता है, हम अधिक नीरोग होना चाहते हैं, हमें व्यापारमें अधिक सफलता चाहिये, हमारे मनमें अधिक आध्यात्मिक उन्नतिकी कामना है,—इन सारे 'अधिकों'की प्राप्ति ईश्वरसे होगी। प्रार्थनाद्वारा हम ईश्वरसे सम्पर्क स्थापित करें।

प्रार्थना एक रचनात्मक और सक्रिय वस्तु है। ज्यों ही हम अपने मङ्गलके लिये अथवा अपने मित्रके मङ्गलके लिये प्रार्थना करते हैं, एक नये प्रकारकी चेष्टाका प्रारम्भ हो जाता है। सही विचार-धारा और सही प्रार्थना एक नये जगत्का निर्माण प्रारम्भ कर देती है। मङ्गलके निधान ईश्वरके प्रति की गयी प्रार्थना हमारे लिये मङ्गलके द्वार खोल देती है। हमारे अन्तर्मनमें मङ्गल विचारोंका प्रवाह चल पड़ता है। यही मङ्गलमयता हमारे जीवनमें ''पहले भीतर, फिर बाहर'' बिखर जाती है। जीवनमें जो अशुभ है, शरीरमें जो अस्वास्थ्य है, चित्तमें जो अशान्ति है, व्यापारमें जो असफलता है, व्यवहारमें जो अभद्रता है, वह सब केवल इसीलिये है कि न हमारे विचारोंमें मङ्गलमयता है और न मङ्गलमय भगवान्से हमारा सम्पर्क है।

प्रार्थना करना ईश्वरकी सर्वव्यापकताको स्वीकार

करना है। सर्वव्यापी ईश्वर मेरे पास हैं, मैं उनके पास हूँ। सर्वसमर्थ ईश्वरके सामीप्यकी यह अनुभूति, यह विश्वास जीवनको दुःखोंसे राहत देती है। ईश्वरसे एकात्मताका अर्थ है—सम्पूर्ण सद्गुणोंसे एकात्मता। प्रार्थनाके क्षणोंमें हम अपनी समस्या लेकर ईश्वरके समीप जाते हैं और प्रार्थनामें मिलता है—सजीव 'आशीर्वाद', जो जीवनका जीवन है। 'तुम मेरे जीवन हो, जीवनका आनन्द हो, तुम मेरे साथ हो; अतः मेरे जीवनमें आध्यात्मिक आनन्दका अखण्ड स्रोत प्रवाहित है। ईश्वरका आशीर्वाद ही जीवनका प्रकाशक है।'

भगवान्‌से प्रार्थना करनेमें विधि-विधानकी जरूरत नहीं। तुम्हारे विधि-विधानपर ईश्वर ध्यान नहीं देते। विधि-विधान तो बनावटीपनका दूसरा रूप है। जब प्रार्थना सच्ची होती है, तब प्रभुसे वार्तालाप स्वाभाविक रीतिसे होता है; जब प्रभुके समक्ष अपनी उलझी समस्याका निवेदन स्वाभाविक रूपमें होता है, सारा विधि-विधान छूट जाता है, तब तो केवल हम होते हैं और हमारे सामने होते हैं हमारे प्रभु, जिनसे हम उसी प्रकार प्रार्थना करते हैं, उसी प्रकार बातचीत करते हैं, जैसे अपने एक मित्रके साथ या माँके साथ या पिताके साथ।

एक बार एक सैलून-कीपर (हजामत बनानेवाला) चार्ल्स फिल्मोरके पास आया और बोला, 'मेरे शरीरमें कष्ट है। मेरी कष्ट-मुक्तिके लिये आप प्रार्थना कर दीजिये। मैं तो यह भी चाहता था कि आप मेरी समृद्धिके लिये भी प्रार्थना कर दें; पर आप करेंगे नहीं।' उन्होंने सैलून-कीपरसे कहा—'हम किसी भी आवश्यकताको प्रभुके समक्ष कह सकते हैं और प्रभु उसको पूरा करते हैं।' उन्होंने सैलून-कीपरके लिये प्रार्थना की। शारीरिक कष्ट कुछ ही दिनोंमें दूर हो गया। थोड़े दिनों बाद यह भी पता चला कि उसने सैलून-कीपरीका काम छोड़ दिया है और किसी अन्य व्यवसायके द्वारा वह काफी समृद्धिशाली हो गया है।

कई बार हम प्रार्थना करते हैं, पर उसका मनचाहा फल नहीं मिलता। उसका कारण है—ईश्वरकी दयालुतापर हमारा विश्वास नहीं। इसके साथ हमारे विरोधी विचार शुभके मार्गको अवरुद्ध कर देते हैं। स्वयं चार्ल्स फिल्मोरको पहले विश्वास नहीं था। पर वे निरन्तर अपने प्रयासमें लगे रहे, प्रार्थना करते गये। फिर तो उनका जीवन ही बदल गया।

प्रार्थना सफल हो, इसके लिये कुछ बातें आवश्यक हैं। अपेक्षित फलकी प्राप्तिके लिये 'आशीर्वाद' (Blessing) को एकान्त स्थानमें बोलना चाहिये। 'आशीर्वाद'का कथनमात्र पर्याप्त नहीं है। यदि शरीरको स्वस्थ बन तो यह 'आशीर्वाद' शरीरके अङ्ग-अङ्गको देना चा 'आशीर्वाद'को भीतरी मनसे बोलना चाहिये। शरीरके अङ्गको इस 'आशीर्वाद'से भावित करना चाहिये। स्वा कामनावालेको एकान्तमें प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिये प्रत्येक अङ्गसे कहना चाहिये—'तुम सुन्दर हो, तुम स्व तुम सुचारुरूपसे कार्य कर सकते हो।' हम यह अनुभव कि भगवान् हमें स्वास्थ्यका वरदान दे रहे हैं। चार्ल्स फिल कहा है—'अपनी प्रार्थनाके लिये एक समय निश्चित लेना चाहिये। प्रतिदिन निश्चित समयपर प्रार्थना करें। वि हो चाहे न हो, हम प्रार्थना करें। एक सत्य वाक्य (अ र्वाद) को चुन लें। उसकी बार-बार आवृत्ति करें। बातका कोई खास महत्त्व नहीं कि आप उस सत्य वाक सत्यतामें विश्वास करते हैं अथवा नहीं। भले विश्वास हो—यदि उस वाक्यकी नित्य और नियमित आवृत्ति व हैं, मनसे उसका पोषण करते हैं—आपकी प्रार्थनामें शक्ति विकास होगा। विश्वास सरसोंके बीजके समान है, जो ब और एकसे अनेक होगा। प्रार्थना करो, निरन्तर करो, निर प्रार्थना करते चले जाओ। तुम्हारी सतत प्रार्थना अव सफल होगी।' यही चार्ल्स फिल्मोरने अपने जीवनमें किया उनकी प्रार्थनामें शक्तिका विकास हुआ। प्रार्थनासे उ जीवनमें अनेक चमत्कार हुए और वे अनेकोंके जीव चमत्कारी सफलताओंके साक्षी बने। चार्ल्स फिल्मोर लिखा है—

"The purpose of prayer is to change you thinking. God does not change; His will always, only good. All that keeps you fro your good is your failure to unify yoursel in thought with the source of all good, God.

'प्रार्थनाका उद्देश्य है—तुम्हारे चिन्तनकी पद्धतिमें परिवर्त ला देना। ईश्वरमें परिवर्तन नहीं होगा। ईश्वर तो सर्वदा और सम्पूर्णतः मङ्गलमय हैं। फिर तुम मङ्गलसे क्यों दूर हो? इसीलिये कि तुम अपने विचार-जगत्‌में शुभके स्रोत और मङ्गलके निधान ईश्वरसे एकात्मता स्थापित नहीं कर पाते।'

पोषक विचार

सही प्रार्थनाके साथ सही विचारोंका होना नितान्त

आवश्यक है। विचार दो प्रकारके होते हैं—(१) पोषक (Positive) और (२) विरोधी (Negative)। 'मैं नीरोग हूँ, मैं रोगी नहीं रह सकता। मेरे शरीरके सभी अङ्ग स्वस्थ हैं। वे ठीक प्रकारसे कार्य करते हैं। मुझमें कार्य करनेकी क्षमता है। कार्यको सम्पन्न करनेके लिये ईश्वर मेरी सहायता करते हैं। कार्यमें सफलता जरूर होगी।' ऐसे विचार पोषक (Positive) विचार हैं। 'पोषक विचार' वे हैं, जो सत्यका पोषण करें, हमारी कार्य-शक्तिका पोषण करें, निजके और लोकके हितका पोषण करें। हमारी और हमारे साथ परिचितोंकी, पड़ोसियोंकी सब प्रकारकी उन्नतिमें जो विचार पोषण करते हैं, वे विचार पोषक विचार हैं। जो विचार इस प्रकारके पोषणके विघातक हैं—विरोधी हैं, उनको 'विरोधी विचार' कहते हैं। 'मैं कितना रोगी हूँ। यह रोग मेरे लिये घातक सिद्ध होगा। मेरे शरीरमें असह्य पीड़ा है। यह कार्य कैसे पूरा होगा? सामने बाधा-ही-बाधा खड़ी है। मैं ही ऐसा अभागा हूँ, जिसे भगवान् सहायता नहीं करते।' ऐसे विचार विरोधी विचार हैं। पोषक विचार 'जीवन' हैं तो विरोधी विचार 'मृत्यु'। हम यह न सोचें कि शब्द निर्जीव हैं। ऐसी समझके कारण हमारे जीवनमें आह और आँसू हैं। शब्द हमारे विचारोंके वाहक हैं। वे हमारे विचारोंको व्यक्त करते हैं।

हम जैसा विचार करते हैं, जैसे बोलते हैं, तदनुसार बाह्य जगत्में परिवर्तन होने लगता है—वैसे ही संसारका निर्माण आरम्भ हो जाता है। यह सृष्टि भी ईश्वरके विचारका परिणाम है। ईश्वरने संकल्प किया और संसारका आविर्भाव हो गया। हमारे विचारोंके अनुसार संसार बनता और बिगड़ता है।

पोषक विचार और पोषक शब्द हमारे शुभकी भूमिका हैं। वे आनेवाले प्रभातकी सुनहली रश्मियाँ हैं। पोषक शब्दोंके उच्चारण करते ही जगत्में हमारे लिये शुभके आविर्भावकी भूमिका बन जाती है। इन पोषक शब्दोंकी आवृत्ति करनेसे शुभका अवतरण निश्चित हो जाता है। पोषक शब्दोंसे और विचारोंसे एकात्मता होते ही हमारे चारों ओर शुभका राज्य हो जाता है। फिर न शोक है न कष्ट है।

इससे विपरीत, विरोधी (Negative) विचार शुभकी भूमिकाको नष्ट करते हैं। विरोधी विचारोंका प्रवाह हमें अन्धकारकी ओर ले जाता है। विरोधी विचारोंका जमवट हमारे जीवनमें—क्या भीतर, क्या बाहर—दर्द और दुःखका जमघट लगा देता है।

विरोधी विचार 'विनाश' हैं तो पोषक विचार 'निर्माण' हैं। ईश्वर हमारा मङ्गल चाहते हैं, हमारे लिये मङ्गलका विधान करते हैं; हमारे पोषक विचार, पोषक प्रार्थनाएँ, पोषक शब्द (आशीर्वाद) ईश्वरीय मङ्गलविधानके पथको प्रशस्त कर देते हैं। पोषक विचार पथपर फूल बिखेर देते हैं; पर ज्यों-ही विरोधी विचार आते हैं, हम विरोधी शब्द बोलते हैं, ऐसी चेष्टा ईश्वरके मङ्गलमय विधानके अभिव्यक्त होनेमें बाधा उपस्थित करती है। वह राहमें काँटे बिखेर देती है। और फिर विरोधी विचारोंकी निरन्तरता तो शुभको अभिव्यक्त होने ही नहीं देती।

अपनी इस दिव्य अनुभूतिको प्रकट करनेके लिये और लोकहितार्थ इसका प्रचार करनेके लिये फिल्मोर दम्पतिके सामने क्या बाधा नहीं आयी? स्वयंका शरीर अस्वस्थ था। संस्थाकी स्थापना की, उसमें न जाने कितनी बार आर्थिक संकट आये। पर इन्होंने एक बार भी न बाधाका, न निराशाका, न रुग्णताका और न संकटका अस्तित्व स्वीकार किया। मनमें एक दृढ़ विश्वास था कि 'मेरे प्रभु मेरे साथ हैं, मेरे संकल्प सुन्दर हैं। अतः सफलता निश्चित है।' और चार्ल्स फिल्मोरको सफलता भी मिली। मर्टिल फिल्मोर कितनी बीमार थी; पर उसके एक पोषक विचारसे, 'मैं ईश्वरकी संतान हूँ, अतः मुझमें कोई रोग नहीं है—' और ऐसे आशीर्वादद्वारा अङ्ग-अङ्गको भावित करनेसे उसको चिर स्वास्थ्य मिला। चार्ल्स फिल्मोर बार-बार कहा करते थे—"The Spirit of the Lord goes before me and my health, happiness, prosperity and success are assured."

'ईश्वरकी आत्मा मेरे आगे-आगे चलती है; अतः मेरे लिये स्वास्थ्य, सुख, समृद्धि और सफलता निश्चित हैं।'

ईश्वरमें विश्वास, पूर्ण विश्वासके साथ प्रार्थना और पोषक विचारोंके द्वारा हम अपने जीवनका निर्माण, मङ्गलका विस्तार और जन-जनका कल्याण कर सकते हैं। इन तीन बातोंपर फिल्मोरकी अटूट और अडिग श्रद्धा थी और इसके फलस्वरूप उन्होंने स्वयंको और समाजको 'सुन्दर' का दान दिया।

विश्वास और प्रार्थनाके प्रतीक—फिल्मोर-दम्पति

(लेखक—श्रीराधेश्यामजी बंका)

चार्ल्स फिल्मोर और उनकी पत्नी मर्टिल फिल्मोर—इस फिल्मोर दम्पतिके जीवनमें मोड़ क्या आया, वह मोड़ न जाने कितने व्यक्तियोंके जीवनमें मोड़ आनेका प्रेरणा-स्रोत बन गया। उनके जीवनसे, जो निराश थे उनको आशा मिली, जो बीमार थे उनको स्वास्थ्य मिला, जो बेकार थे उनको कार्य मिला, जो विमूढ़ थे उनको सूझ मिली, जो अभाव-ग्रस्त थे उनको वैभव मिला और मिला एकको नहीं, हजारों-हजारों व्यक्तियोंको। इन सभी उपलब्धियोंका साधन भी एक ही था—

ईश्वरमें विश्वास और ईश्वरसे प्रार्थना

फिल्मोर दम्पति और 'विश्वास' एवं 'प्रार्थना' मानो पर्यायवाची शब्द हैं। विश्वास और प्रार्थना ही उनके जीवनका सारांश है। उन्होंने जो कुछ भी किया, विश्वास और प्रार्थनाके द्वारा ही किया। यदि कुछ शिक्षा दी तो विश्वास और प्रार्थनाकी ही दी। विश्वास और प्रार्थनाके द्वारा ही रोगीको रोग-मुक्त किया, दुखीको आराम दिया, कठिनाईपर विजय पायी और संसारमें उन्नति की। उन्होंने जो कुछ भी सोचा, किया, बनाया, बताया, बढ़ाया, सभी कुछ विश्वास और प्रार्थनाके द्वारा ही।

चार्ल्स फिल्मोर ९४ वर्षतक जीवित रहे और इस अवधिमें उनके अन्तिम ६० वर्ष प्रार्थनामें व्यतीत हुए। उनके जीवनका एक ही उद्देश्य था—प्रार्थनाके द्वारा अन्तरकी आध्यात्मिक शक्तिको विकसित करना, जिससे वे उनके सहायक बन सकें, जो अपनी आध्यात्मिक शक्तिको विकसित करना चाहते हैं। चार्ल्स फिल्मोरके लिये ईश्वर उनके मित्र थे। वे दिनमें कई घंटे प्रभुके साथ सहज वार्तालापमें व्यतीत करते थे। वे ईश्वरको प्यार करते थे और ईश्वर उनको प्यार करते थे और प्रार्थनाके बीचमें अनेक विषयोंपर बातचीत होती थी। अपनी जो भी समस्या होती, कठिनाई होती, आवश्यकता होती, उसे वे ईश्वरके समक्ष निवेदन करते और ईश्वर उसे पूर्ण भी करते। उन्होंने कहा है—

'ईश्वरसे मिलनेमें विधि-विधानकी जरूरत नहीं है। निस्संकोच और सहज रीतिसे ईश्वरके पास पहुँचना चाहिये। ईश्वर चाहते हैं कि जीवनमें मेरा प्रयोग किया जाय जितना ही अधिक तुम उनका प्रयोग करोगे, उतन[illegible] अधिक उनका प्रयोग सहज हो जायगा और उनका प्र[illegible] सुखकर होगा। यदि तुमको वस्त्रकी, कारकी, मकान[illegible] विद्याकी आवश्यकता है, अथवा अपने पड़ोसीके [illegible] कोई सौदा करना चाहते हो, तुम कोई यात्रा करना च[illegible] हो, तुम कोई उपहार अपने मित्रको देना चाहते [illegible] एक आफिसको सुव्यवस्थित रीतिसे चलाना चाहते [illegible] अथवा एक राष्ट्रका नव-निर्माण करना चाहते हो, ई[illegible] सहायताके लिये, पथ-प्रदर्शनके लिये प्रार्थना करो [illegible] करो एकान्त, शान्त और सच्चे भावसे।'

उनकी मान्यता थी कि ईश्वर सम्पूर्ण सद्गुणोंके आ[illegible] हैं, ईश्वर अनन्त साहस, शक्ति, सौन्दर्य, स्वास्थ्य, सम्प[illegible] आदिके निधान हैं। हम ईश्वरकी संतान हैं, अतः ईश्वर[illegible] सम्पूर्ण वस्तुपर हमारा अधिकार है। हमारे जीवनमें [illegible] साहस, वही शक्ति, वही सौन्दर्य, वही स्वास्थ्य, वही सम्प[illegible] होनी चाहिये, जो ईश्वरके पास है। यदि ये वस्तुएँ हम[illegible] पास नहीं हैं, तो इसका अर्थ ही है कि हम ईश्वरसे अप[illegible] सम्बन्धको भुला बैठे हैं, सम्पर्कको खो बैठे हैं। हम [illegible] अभाव-ग्रस्त हैं ? रोग हमारे पास आये ही क्यों ? रूक्षत[illegible] निराशा, नीरसता आदि हमारे जीवनमें भूले-भटके भी [illegible] आयें ? हम ईश्वरके हैं; बस, इसी नाते सम्पूर्ण ईश्वरी[illegible] सौन्दर्य हमारे जीवनमें अवश्य हो। यदि हममें यह ईश्वरी[illegible] सौन्दर्य नहीं है तो हम ईश्वरपर और उसके सौन्दर्यप[illegible] विश्वास करें और उस सौन्दर्यकी प्राप्तिके लिये ईश्वरसे सम्पर्क स्थापित करें। सम्पर्क स्थापित अर्थात् प्रार्थना करते ही सारा ईश्वरीय सौन्दर्य हमारे जीवनमें फूट पड़ेगा।

चार्ल्स फिल्मोरके जीवनमें जो आध्यात्मिक उन्नति हुई, उसका श्रेय उनकी पत्नीको है। उनकी पत्नी श्रीमती मर्टिल फिल्मोर प्रायः बीमार रहा करती थीं। श्रीमती मर्टिलका दवाओंपर बड़ा विश्वास था। उनकी दवाओंकी पेटी अनेक ओषधियोंसे भरी रहती थी। दवा उनकी जीवनी-शक्ति थी। अपने ४१ वर्षकी उम्रमें वे एक बार बहुत बीमार पड़ीं। जीवन भार हो गया। डाक्टर और

दवा राहत देनेमें असमर्थ थे। कुछ समझमें नहीं आ रहा था कि क्या किया जाय। मित्र हवा-पानी बदलने, स्थान-परिवर्तनकी राय देने लगे। बीमारीसे फिल्मोर दम्पति इतने थक चुके थे कि वे कुछ भी करनेको तैयार थे। तभी उनके एक मित्रने सुझाव दिया कि एक स्थानपर एक भाषण होनेवाला है, जो जीवनके बारेमें एक नवीन विचार देता है; हो सकता है उससे विचारमें परिवर्तन आये, जीवनको प्रेरणा मिले और तन तथा मन दोनोंके स्वास्थ्य-सुधारकी एक दिशा मिल सके। दोनों भाषण सुनने गये। चार्ल्स फिल्मोर तो जैसे गये थे, वैसे ही लौट आये। भाषणकी उनपर कोई सुन्दर प्रतिक्रिया नहीं हुई। पर श्रीमती मर्टिलके जीवनमें तो एक विचित्र मोड़ आ गया। उनको एक प्रकाश मिला, एक विचार मिला, एक विश्वास मिला, अपितु भावी विकासके लिये एक आधार मिला। भाषण-भवनसे लौटते समय राहमें भाषणपर मनन कर रही थीं कि एक वाक्य उनके मनमें कौंध गया और उनके जीवनने उसी वाक्यको पकड़ लिया—'मैं ईश्वरकी संतान हूँ, अतः मेरेमें कोई रोग नहीं है।' 'I am Child of God, and therefore I do not inherit sickness.' मन निरन्तर इस वाक्यकी आवृत्ति करने लगा। यह शब्दावली क्या थी, चेतनाकी एक चिनगारी थी, नव-जागरणकी पहली घंटी थी, नये प्रभातकी सुनहली आभा थी। श्रीमती मर्टिलका पुराना विश्वास······'मैं अस्वस्थ हूँ, मेरा मन उदास है, अब स्वास्थ्यके दर्शन नहीं होंगे, जीवन खिन्नतामें कटेगा, क्या रात, क्या दिन—सभी भार-स्वरूप हैं'······ये सारे पुराने विश्वास हट गये, मिट गये और एक नया विश्वास जम गया, एक नया प्रकाश छिटक गया······'मैं ईश्वरकी प्रिय संतान हूँ, अपनी प्रिय संतानको ईश्वर तन और मनका पूर्ण स्वास्थ्य अवश्य प्रदान करेंगे। मैं न तो अशक्त हूँ और न असहाय हूँ। मेरे पिता परमेश्वरका वरद हस्त मेरे सिरपर है। मेरा शरीर और मेरा मन निश्चित स्वस्थ होंगे।'

इस विश्वाससे श्रीमती मर्टिलका जीवन बदल गया। यह विश्वास उनके शरीरके एक-एक अणुमें, हृदयके एक-एक भावमें, मनके एक-एक संकल्पमें प्रवेश करने लगा। साथ ही पूर्ण विश्वासके साथ स्वास्थ्यके लिये परमपिता परमेश्वरसे प्रार्थना होने लगी। इस विश्वासका और इस प्रार्थनाका यह चमत्कारी प्रत्यक्ष फल हुआ कि दो वर्षमें उनके शरीरके अंदर रोग नामकी कोई वस्तु रही ही नहीं। दो वर्ष पहले तक जिसके दवाकी पेटी भरी रहती थी, अब दवा छूट गयी और दवाकी पेटी हट गयी। रोग गया, रोगका भय गया। शरीरमें नया जीवन निखर आया। उसमें छा गयी स्वास्थ्यकी, सुखकी, शान्तिकी, सम्पन्नताकी निर्मल निधि। मर्टिलका न केवल अपना रोग दूर हुआ, वह अपने पड़ोसियों-परिचितोंका रोग-दुःख निवारण करनेमें समर्थ हो गयी। उसके नवजीवनसे सभी लाभ उठाने लगे।

श्रीफिल्मोरका एक पड़ोसी था—श्रीकैस्के वह पंगु था। चलना असम्भव था। उसने एक गाड़ी बनवा रखी थी, उसीपर बैठकर वह यहाँ-वह आया-जाया करता था। श्रीकैस्केसे श्रीमती मर्टिलने क कि तुम चल सकते हो। पर श्रीकैस्केको विश्वास न होता। वह स्वप्नमें भी विश्वास नहीं कर सकता था। श्रीम मर्टिलने उसे वही विचार, वही विश्वास देना आरम्भ कि जिससे उसे जीवन मिला था। वे यही कहतीं कि ईश्वरकी संतान हैं, अतः शरीर सुन्दर और स्वस्थ होना चाहिये। उनका सम्पूर्ण सौन्दर्य हममें अवश्य हे चाहिये। धीरे-धीरे यह बात श्रीकैस्केकी समझमें आने ल और विश्वास भी होने लगा। श्रीमती मर्टिल और श्रीकैस्के दोनों मिलकर श्रीकैस्केके स्वास्थ्यके लिये ईश्व प्रार्थना करने लगे। और कुछ समय बाद सचमुच उ गाड़ी छूट गयी और वह एक साधारण व्यक्तिकी चलने लगा। यह एक अनहोनी वस्तु थी। विश्वास प्रार्थनाका प्रत्यक्ष चमत्कार था। इसी प्रकार श्रीमती म फिल्मोरने अपने अडिग विश्वास और अविरल प्रार्थ एक चित्र-विक्रेताके पुत्रको नेत्रकी ज्योति प्रदान क्रमशः श्रीमती मर्टिल फिल्मोरकी ख्याति फैलने लगी प्रार्थनाद्वारा लोगोंको स्वस्थ करना उनके जीवनका कार्य हो गया।

श्रीचार्ल्स फिल्मोर यह सारा देख रहे थे। पर वे व्यवसायी थे और व्यवसायी व्यक्तिकी तरह सोचते-वि थे। उनपर एक परिवारके भरण-पोषणका भार था। इस प्रकारकी धार्मिक-आध्यात्मिक बातोंके फेरमें नहीं पड़ना चाहते थे। पर जो सामने हो रहा था, उपेक्षा कैसे कर सकते थे। वे स्वयं लँगड़े और रुग्ण

उन्होंने अपने ऊपर भी प्रयोग करके देखा और प्रयोगका फल भी अपेक्षित हुआ। वे प्रतिदिन चारसे छः घंटेतक प्रार्थनामें बैठते और शरीरके विभिन्न अङ्गोंको आशीर्वाद देते, ईश्वरीय भावोंसे परिपूर्ण करते। आरम्भमें तो बड़ी कठिनाई हुई, पर धीरे-धीरे शरीरके विभिन्न केन्द्रोंपर उनका अधिकाधिक नियन्त्रण होने लगा। बढ़ते हुए विश्वास और सतत होनेवाली प्रार्थनासे उनका पुराना दर्द समाप्त हो गया, उनका कूल्हा रोग-मुक्त हो गया, लँगड़ापना भी दूर हो गया और पैरमें लोहेके जिस नकली पैरको बचपनसे लगा रखा गया था, वह भी कुछ सालमें हट गया।'

जैसे श्रीमती मर्टिल फिल्मोरको नया जीवन मिला, उसी प्रकार श्रीचार्ल्स फिल्मोरको नया जीवन मिला। नवीन अनुभवने श्रीचार्ल्स फिल्मोरको अभिभूत कर लिया। आध्यात्मिकता उनके जीवनपर अधिकाधिक अधिकार करने लगी। लौकिक व्यापार क्रमशः समाप्त होकर केवल एक ही व्यापार उनके जीवनमें रह गया—ईश्वरानुभूतिको करना-कराना, लोगोंको ईश्वरीय विश्वास देना, प्रार्थनाद्वारा स्वास्थ्य-सुख-सुविधाकी प्राप्ति कराना। फिल्मोर कभी संकीर्ण विचारोंके नहीं थे। यद्यपि वे ईसाई थे और बाइबल उनका धर्म-ग्रन्थ था, इसपर भी वे यही कहा करते थे''हम प्रत्येक धर्ममें अच्छाई देखते हैं और हम यही चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे जहाँ मिले, अपने लिये सत्यकी खोज करे और इस सत्यकी खोजके लिये अपनेको सही मनसे स्वतन्त्र अनुभव करे। इस दम्पतिने धन-संग्रहपर या जीवन-बीमापर कभी विश्वास नहीं किया। उनमें यह विश्वास सदा जागरूक रहा कि मेरे ईश्वर सदा मेरी जरूरतको पूरा करते हैं। जबसे नया प्रकाश मिला, फिल्मोर दम्पतिने मांसाहार छोड़ दिया। उनका विश्वास था कि क्या मानव, क्या मानवेतर जीव—सभी उस परम पिता परमेश्वरकी संतान हैं। इतना ही नहीं, शाकाहारी भोजन विश्वास और प्रार्थनाको बल देता है। उनकी संस्थाके भोजनालयमें मांस नहीं पकाया जाता। वे प्रत्येकको उत्साहित करते कि तुम उसी सत्यको, उसी जीवनको, उसी ईश्वरानुभूतिको प्राप्त कर सकते हो, जो हमें प्राप्त है। तुम अपनी प्रत्येक समस्या हमारी तरह ही हल कर सकते हो—बस, उस परमेश्वरसे प्रार्थना करो, उसकी असीम शक्तिपर विश्वास करो।

अमेरिकाके इन फिल्मोरको जो नया प्रकाश, जो नया जीवन, नया विश्वास, नया मार्ग मिला, उससे ये अपने प्रियजनों, पड़ोसियों, परिचितों और अपरिचितों''जो रोगसे, दुःखसे, अविश्वाससे, अभावसे ग्रस्त थे'''''के हित-सम्पादन करने लगे। ईश्वरकी संतानके नाते सभी मानवोंसे उनको प्यार था। अनन्त सुखागार परमेश्वरकी संतान होकर हम दुखी क्यों रहें? ईश्वरीय सम्बन्धकी विस्मृति सम्पूर्ण दुःखोंका कारण है और ईश्वरपर विश्वास और प्रार्थनासे सम्पूर्ण सुखकी प्राप्ति होती है—इस संदेशको देना ही फिल्मोर दम्पतिका एकमात्र कार्य हो गया। संदेश देना केवल कहकर नहीं, बल्कि अपने व्यावहारिक जीवनद्वारा—पहले करके, फिर कहके।

श्रीमती मर्टिल फिल्मोरने लोगोंके कल्याणके लिये 'शान्त प्रार्थना' आरम्भ की। प्रार्थी चाहे जिस देशका हो, धर्मका माननेवाला हो, जिस जाति या रंगका हो, 'शान्त प्रार्थना' में उनके स्वास्थ्यके लिये सामूहिक प्रार्थना की जाने लगी। 'युनिटी स्कूल आफ क्रिश्चिएनिटी' नामक संस्थाकी स्थापना हुई, जो उनके संदेशका प्रसार करती है। 'युनिटी', 'वी विजिडम', 'प्रोग्रेस', 'गुड बिजिनेस' आदि सात पत्रिकाओंका प्रकाशन होने लगा, जिसे संसारके कोने-कोनेमें हर जाति, हर धर्म, हर व्यवसाय, हर विचारके लोग पढ़ते हैं। समय-समयपर 'साधना-कक्षाएँ' होती हैं, जिनमें दूर-दूरसे लोग आकर सम्मिलित होते हैं और नवीन प्रकाश ग्रहण करते हैं। फिल्मोर दम्पतिका शरीर अब नहीं है, पर उनके जीवनकी आध्यात्मिक ज्योति आज भी अनेक व्यक्तियोंके जीवनमें प्रकाश फैला रही है।

फिल्मोर-दम्पतिका घर दुखियोंको आश्रय देता था। उनके मधुर शब्द निराशको आश्वासन देते थे, उनकी मुसकान खिन्नको सहलाती थी, उनका ईश्वरीय विश्वास लोगोंको बल देता था, उनका जीवन लोगोंको ईश्वरीय विश्वास देता था। उनकी प्रार्थना लोगोंको सहारा देती थी, उनकी सफलता लोगोंको प्रार्थना सिखाती थी। उनका एक विश्वास था, उसी विश्वासका वे वितरण करते और उनके द्वारा संस्थापित संस्थाएँ और प्रकाशित पत्रिकाएँ आज भी उसी विश्वासको विश्वके कोने-कोने तक फैलाती हैं। और उनका यही विश्वास था—

'ईश्वर सर्वसद्‌गुणमय हैं और सर्वत्र व्याप्त हैं। वे परम वत्सल पिता हैं। मैं उनकी संतान हूँ और मेरे अंदर उनके सभी गुण—जीवन, प्यार, सत्य, प्रतिभा—भ

वास है। वे सम्पूर्ण स्वास्थ्य, शक्ति, बुद्धिमत्ता और समन्वयके निधान हैं। अतः उनकी संतान होनेके नाते तथा इस सत्यको स्वीकार करते ही कि सभी कुछ ईश्वर है, वे सारे गुण मेरे बन जाते हैं।'

प्रार्थनासे आरोग्य-लाभका मनोवैज्ञानिक अध्ययन

ईश्वरकी अमोघ कर्तृत्व-शक्तिमें पूर्ण श्रद्धा और अखण्ड विश्वासका उदय उनसे की गयी प्रार्थनाकी सफलताका विशिष्ट सोपान है। बड़ी-से-बड़ी बीमारी प्रार्थनाके द्वारा नष्ट हो जाती है। बड़े-बड़े चिकित्सक असफल हो जाते हैं, उनके प्रयत्न बेकार हो जाते हैं; पर प्रार्थनाका अस्त्र अपना काम करता ही है। प्रसिद्ध अंग्रेज कवि टेनीसनका एक स्थलपर कथन है कि—'प्रार्थनासे ऐसी-ऐसी बातें सम्भव हो जाती हैं, जिनको मनुष्य सोचतक नहीं सकता।' प्रसिद्ध पुस्तक 'थियोलॉजिया जर्मनिका' में उल्लेख है कि मनुष्य ज्यों ही आत्मस्थ होकर कालातीत ईश्वरके सांनिध्यमें समुपस्थित हो जाता है, त्यों ही उसे अपनी खोयी तथा क्षीण शक्ति वापस मिल जाती है, उसे शाश्वत जीवन और भागवत राज्यकी उपलब्धि हो जाती है। यह बात निर्विवाद है कि विश्वासपूर्वक ईश्वरसे प्रार्थना करनेपर बड़ी-से-बड़ी तथा भयंकर बीमारीसे मनुष्य छूट जाता है।

प्रार्थनासे आरोग्य-लाभ चमत्कारका विषय नहीं है। न इसे चमत्कार मानना चाहिये। इसे भगवान्‌की कृपा समझनी चाहिये, जिनके राज्यमें दुःख, बीमारी, क्लेश, संकट आदिका प्रवेश नहीं है, जो आनन्दमय और पूर्ण प्रेमस्वरूप हैं। प्रार्थनाके माध्यमसे चिकित्सा करनेवाले कैनेडानिवासी अलबर्ट ई० विलफका अनुभव है कि—'अपने चिकित्सा-कार्यमें मैंने कभी किसी चमत्कारका दर्शन नहीं किया। यह सच है कि आरोग्य-लाभ करनेवालोंके लिये इस तरहका कार्य चमत्कार ही कहा जा सकता है; किंतु मेरे लिये तो वास्तविक और यथार्थ चमत्कार यह है कि मनुष्यके हृदय, कान, आँख पूरी तरह खुल जायँ कि उनके लिये जो कुछ भी पहलेसे सुरक्षित है, उसे वे पानेके योग्य हैं; क्योंकि प्रत्येक स्त्री और पुरुषके भीतर भागवत राज्य (Kingdom of Heaven) विद्यमान है। एक बार इसी तरहके प्रसिद्ध पाश्चात्त्य चिकित्सक सुश्री रथ राबिन्सनसे प्रश्न किया गया था कि—'आप किस तरह जानती हैं कि बीमार आदमीके लिये प्रार्थना करना उचित अथवा ठीक है? क्या आप जानती हैं कि उसे कबतक जीवित रहना है? आप किस तरह जान लेती हैं कि उसके मरनेका समय अभी नहीं आया।' रथ राबिन्सनका बड़ा सुन्दर और सटीक उत्तर था कि—'मैं इस तरहका अनुमान पहलेसे नहीं कर लेती कि आपको या किसीको कब मरना है; पर इतना मैं जानती हूँ कि आपको बुरी तरह बीमार होकर नहीं मरना चाहिये, स्वस्थ और अच्छा होकर मरना अधिक उचित है।'

आरोग्य-लाभके लिये प्रार्थना किस तरह की जाय, इस सम्बन्धमें अमेरिकाके चार्ल्स फिलमोर और कोराने अपनी पुस्तक 'टीच अस टु प्रे' ('Teach us to pray') में मत व्यक्त किया है कि 'मनुष्यको स्वस्थ, सम्पन्न और बुद्धिमान् होनेके लिये स्वाभाविक भागवत विधानमें विश्वास करना चाहिये। चिकित्सक और बीमार—दोनोंकी इस बातमें सुदृढ़ मान्यता होनी चाहिये कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वव्यापक हैं और समान रूपसे छोटी-बड़ी सभी बीमारियोंको ठीक करनेमें पूर्ण समर्थ हैं। आरोग्य-लाभके लिये सीधे उन्हींसे प्रार्थना करनी चाहिये।'

आरोग्य-लाभके लिये प्रार्थना करते समय किस तरहकी भावना रहनी चाहिये, यह भी एक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक प्रश्न है। इस सम्बन्धमें आवश्यक यह है कि हमें बीमारीमें स्वास्थ्यका दर्शन करना चाहिये। इस बातका चिन्तन ही नहीं करना चाहिये कि बीमारी ऐसी या वैसी है, बीमार दुर्बल या रुग्ण है। भावना यह करनी चाहिये कि बीमारीके स्थानपर स्वास्थ्य लौट आया है। बीमार भला-चंगा और बलवान् हो गया है। इस तरहकी शुभ भावना रोगनाशकी प्रार्थनाके लिये बड़े ही लाभ और कामकी बात है। अलबर्ट विलफने अपनी पुस्तक 'लेसन्स इन लिविंग'में अपना अनुभव व्यक्त किया है कि ईश्वरसे कभी यह याचना नहीं करनी चाहिये कि वे मुझे कल स्वस्थ रक्खें। प्रार्थना यह करनी चाहिये कि कलके लिये वे मुझे आज स्वास्थ्य प्रदान कर रहे हैं। जब किसी बीमार प्रिय-पात्रके लिये प्रार्थना की जाय, तब केवल आरोग्य-लाभकी ही कामना नहीं करनी चाहिये। अपितु बीमारको परमात्माकी कृपा-आकृतिमें स्थित समझना चाहिये। ईश्वर लेनेवालेको अपनी कृपा देनेके लिये सदा प्रस्तुत रहते हैं। अशुभमें शुभदर्शनकी भावनापर

जोर देते हुए रिबेका बीयर्डने 'Every man's Search' पुस्तकमें कहा है कि—'आरोग्य-लाभके लिये प्रार्थना करते समय हमें शुभ परिवर्तनका दर्शन करना चाहिये, जिसके लिये हम ईश्वरको धन्यवाद दे सकते हैं। जिस बातके लिये हम चिन्ता प्रकट करते हैं, उसके विपरीत भावका हमें विचार करना चाहिये। अशुभकी चिन्ता करके उसे हम शुभमें नहीं बदल सकते; हमें उस परिस्थितिका स्वयं निर्माण करना चाहिये, जिसमें हम अपनी भावनाकी बातें सुस्थिर, संतुलित और सुचारुरूपमें देखना चाहते हैं। इस तरह हम शक्तिकी धाराको विपरीत शुभ दिशामें प्रवाहित कर सकते हैं। यद्यपि यह नितान्त सत्य है कि ईश्वरकी प्रार्थनासे आरोग्य-लाभ होता है तथापि इस वर्गके अनेक चिकित्सकोंका यह अनुभव है कि प्रार्थना करनेवाले तथा रोगीके मनकी भावना भी इस कार्यमें पर्याप्त सहायता करती है।'

मनकी भावनाने प्रसिद्ध चिकित्सक हीलर अलबर्ट क्लिफकी पेट-पीड़ा शान्त कर दी। वे पचीस सालतक लोगोंको घूम-घूमकर भोजन और उसकी उपयोगिताके सम्बन्धमें बातें बताते रहे। अचानक एक दिन उनके विचारमें आया कि जो कुछ हम भोजनके रूपमें ग्रहण करते हैं, उसकी अपेक्षा हमारे हृदयकी दूषित भावनाएँ हमारे मन और शरीरपर कहीं अधिक प्रभाव डालती हैं। उन्होंने तत्काल सोचा कि आजतक मैं क्या कर रहा था। उनके भीतर आध्यात्मिक ज्योति उतर आयी और उनका जीवन बदल गया। पेटकी पीड़ाका सदाके लिये अन्त हो गया। प्रार्थनाके माध्यमसे उन्होंने लोगोंकी भावना बदलकर आरोग्यदान किया। पेट-पीड़ा अथवा उदरशूलकी शान्तिके लिये चार्ल्स फिलमोर और कोराने अपनी पुस्तक 'Teach us to pray' में प्रार्थनाका निम्नलिखित तरीका बताया है। यही सोचना चाहिये—

'मैं आत्मा हूँ। मैं मन और शरीरका पारस्परिक सम्बन्ध जानता हूँ। तत्त्व और तत्सम्बन्धी विचारका मुझे ज्ञान है। मैं जो कुछ खाता हूँ, उसमें मेरी सहमति है और जो कुछ खाता, उसकी मुझसे सहमति है। मैं सारे प्राणी और पदार्थोंके प्रति समभाव रखता हूँ। मैं किसीका भी विरोध नहीं करता। मेरी पाचनशक्ति अच्छी है। अधिक भोजनके द्वारा मैं इसे विकृत नहीं होने देता। मैं परमेश्वरके विधानके अनुसार भोजन करता हूँ। मैं इस बातकी चिन्ता नहीं करता कि मैं क्या खाऊँगा। भोजन करनेके बाद ही मैं निश्चिन्त होकर आराम करता हूँ और अपनी पाचन-शक्तिको अपना उचित काम करने अवसर देता हूँ।'

मनकी भावना बदल जानेपर ईश्वरकी प्रार्थनाके प स्वरूप शरीरके किसी विशेष भागका विकार दूर हो सव है। इस कथनपर चिकित्सक अलबर्ट क्लिफद्वारा निर्ण एक घटनासे विशेष प्रकाश पड़ता है। एक मनुष्य लँगड़ा हुआ बैसाखीके सहारे उनके कार्यालयमें आया। क्लिफ उसने कहा कि 'कई सालोंसे मेरी यह हालत है। डाक्टरों जवाब दे दिया है। जबसे मैं अपने भाईसे अलग रहने ल हूँ, तभीसे शरीरमें मचककर चलनेकी बीमारी पैदा गयी है। बात यह है कि मैं अपने भाईके साथ व्याप करता था। उसने धोखा देकर मेरे तीन हजार डालर हड़ लिये, मैं उसे उसी समयसे घृणा करने लगा और उसके प्रति मेरे मनमें कटु विरोधका भाव जाग उठा।' क्लिफने तत्का समाधान किया कि 'आप अपने भाईको पत्र लिख दीजि कि आपने क्षमा कर दी और उससे क्षमा माँग लीजिये आप परमात्मासे भी क्षमा माँग लीजिये।' क्लिफ और लँगड़े व्यक्तिने क्षमा-दानके लिये परमात्मासे प्रार्थना की। कार्यालयसे तत्काल ही दूसरे भाईके पास पत्र भेजा गया। इधर लँगड़ेकी परिवर्तित शुभ भावनाने उसका शारीरिक दोष नष्ट कर दिया। उसने क्लिफसे कहा कि 'मेरे पैरमें दर्द नहीं है' और विना बैसाखीका सहारा लिये ही वह आरामसे चलने लगा।

गठिया एक भयंकर रोग है। चिकित्सकोंका अनुभव है कि मनकी अशान्ति और चिन्तासे यह रोग उग्र रूप धारण कर लेता है। चिकित्सक रिबेका बीयर्डने अपनी 'Every man's Search' पुस्तकमें बताया है कि एक स्त्री इस रोगसे बुरी तरह परीशान थी। कारण यह था कि उसे चिढ़ था कि अंग्रेज होकर भी उसका पति अंग्रेजीके शब्दोंका ठीक तरह उच्चारण नहीं कर पाता था। वह दस सालतक इसके लिये चिन्तित रही। परिणाम यह हुआ कि उसके शरीरकी संधियोंमें पीड़ा होने लगी, जिसने गठियाका रूप धारण कर लिया। इस बीमारीके लिये प्रसन्नताके तेलकी जरूरत है। स्त्रीने चिन्ता करना छोड़ दिया। उसका रोग अच्छा हो गया। इस तरहके रोगमें ईश्वरसे प्रार्थना करके रिबेकाके ही शब्दोंमें यही विचार करना चाहिये—'हे परमेश्वर! मैं अपने प्रिय लोगोंसे यह नहीं कहूँगा कि वे ऐसा या वैसा करें। न मैं उनसे आशा करूँगा कि वे मेरी बातोंको मानकर चलें। मुझे शक्ति दीजिये कि मैं अपने प्रिय लोगोंसे केवल

प्रेम करूँ। उनको अपनी बातोंके अनुसार चलनेके लिये परीशान न करूँ।'

हृदय-रोग (Heart Disease) की दवा निष्काम भगवत्प्रेम है। यह रोग क्रोध, चिड़चिड़ापन, आवेश और असंतुलित भावनाका परिणाम है। इन विकारोंसे हृदय धड़कने लगता है और बादमें धड़कनका रूपान्तर भयानक रोग बन जाता है। हृदय-रोगके रोगीको यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि रोगके कारण उसीके भीतर विद्यमान हैं। वह प्रेम और वास्तविक सुचारु व्यवस्थित जीवनसे दूर चला गया है। यह रोग अधिकतर व्यापारियोंको होता है, जो रात-दिन अपना व्यापार चलानेकी अनेक तरकीबें सोचा करते हैं। प्रसिद्ध न्यायाधीश ऑलिवर वेन्डल होम्सका कहना है कि मनुष्य अपने आपको जीवित रखनेके लिये व्यापार-धंधेमें लगता है और अन्तमें उसे अपने जीवनतकसे हाथ धोना पड़ता है। दवा यही है कि हम एक दूसरेसे प्रेम करें, उनकी बातोंको ध्यानपूर्वक बड़ी शान्तिसे सुनें। मनमें उद्वेग न आने दें। चिकित्सिका रिबेकाका अनुभव है कि दूसरोंसे प्रेम करनेसे हृदय संतुलन प्राप्त करता है, उसमें समभाव पैदा होता है। प्रेमको निरपेक्ष और राग-द्वेषकी सीमासे बाहर रखना चाहिये। ऐसा करनेपर वह दिव्य, निष्काम और ईश्वरीय बन जाता है। ऐसा प्रेम ईश्वरकी प्रार्थनासे मिलता है, जो हृदय-रोगकी अमोघ ओषधि है। इस तरहके प्रेमसे कठोर-से-कठोर हृदय भी कोमल बन जाता है—रोगमुक्त हो जाता है।

'मधुमेह' (डाइबेटीज) रोगका प्रधान कारण मानसिक थकावट और चिन्ता है। चिन्ताकी आगमें जलते रहनेसे मनुष्य इसका शिकार हो जाता है। मानसिक रोग-चिकित्सकोंने पता लगाया है कि अन्य भावनाकी अपेक्षा चिन्तासे शारीरिक शक्ति अधिक क्षीण होती है, कमजोरी बढ़ती जाती है। अधिक दुःख और चिन्तामें शक्तिकी क्षीणताकी पूर्तिके लिये शरीर खूनमें अधिकाधिक शक्कर रक्तवाही नाड़ियोंमें प्रवाहित करता रहता है। दुःख और चिन्ताका वेग ज्यों-ज्यों बढ़ता रहता है त्यों-त्यों खूनमें शक्कर अधिकाधिक प्रवाहित होता रहता है और लंबे समयतक ऐसा होते रहनेके बाद पाचन-रसकी थैली कमजोर हो जाती है, खाली होकर वह अपना काम बंद कर देती है। इसका परिणाम यह होता है कि शक्करका परिमाण रक्तवाही नाड़ियोंमें बढ़ जाता है और मधुमेह—डाइबेटीज रोग भयंकर रूप धारण कर लेता है। प्रसिद्ध चिकित्सक रिबेकाके शब्दोंमें 'इस रोगको निर्मूल करनेकी एकमात्र दवा है—प्रेम और मनका सदा निश्चिन्त और प्रसन्न रहना। ईश्वरसे सदा यही प्रार्थना करनी चाहिये कि वे निष्काम प्रेम और आनन्दके आस्वादनको शरीर और मनको शक्ति प्रदान करें। मधुमेहके रोगीको चार्ल्स फिल्मोरके शब्दोंमें सदा यही विचार रखना चाहिये कि 'परमात्मा ही मेरी जीवन-शक्ति हैं। मेरी शक्ति कभी क्षीण ही नहीं हो सकती। मेरा जीवन ईश्वरीय विधानके अधीन है। मैं कमजोरी, बुढ़ापे और मृत्युसे नहीं डरता। परमात्मा मेरी संजीवनी शक्ति है। मेरा जीवन अपवित्र वासनासे दूर है। वह नित्य पवित्र और भगवन्मय है।'

'रक्तचापका बढ़ना' (High Blood-Pressure) बड़ा अनिष्टकर रोग समझा जाता है। मानसिक संताप, हार्दिक वेदना और चिन्ता आदिके कारण यह रोग भयंकर बन जाता है। वेदनाएँ तथा चिन्ताएँ शरीरके पुरजोंको कमजोर बना देती हैं और मनुष्यका स्वास्थ्य गिर जाता है। भय और क्षतिकी भावनासे शरीरके कार्यपर बुरा प्रभाव पड़ता है। पाचन-शक्तितक अपना काम बंद कर देती है। कमजोरी बढ़ जाती है। रक्तवाहिनी नाड़ियोंमें रक्त-शर्करा बड़े वेगसे बहना आरम्भ हो जाती है, जिससे खतरे या भयसे मुक्ति पानेके लिये शरीरकी शक्ति दूनी हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि रक्तचाप बढ़ जाता है। मनुष्य जब मृत्युके भय, बुढ़ापेके प्रभाव और दुःखके वेगसे आशङ्कित होने लगता है, तभी रक्तचाप बढ़ता है। पाश्चात्त्य चिकित्सक रिबेकाका कहना है कि इस बीमारीसे पीछा छुड़ाया जा सकता है। इसकी दवा है—ईश्वरसे शान्त चित्तसे स्वास्थ्य और निष्काम प्रेमदानके लिये प्रार्थना करना। रोगीको चाहिये कि वह अपनी छोटी-बड़ी सभी चिन्ताएँ परमात्माको सौंप दे।' बात-बातमें न क्रोध करे न चिढ़नेका स्वभाव बनाये। रिबेकाके शब्दोंमें यही कहना चाहिये कि—'ईश्वरने मेरे क्रोध, दुर्भावना और चिन्ताका नाश कर दिया।' यह स्वीकृतिमूलक भावना है, यह नकारात्मक भावनासे कि—'मैं कभी क्रोध नहीं करूँगा, मैं कभी नहीं चिढ़ूँगा, मैं कभी नहीं डरूँगा'—अधिक लाभदायक है। इस तरहके विचारसे चित्त प्रसन्न रहता है, शरीर स्वस्थ हो जाता है, रक्तचाप यथाक्रम स्वाभाविक हो जाता है।

इस वैज्ञानिक युगमें 'कैन्सर' रोग भयानकतम समझा जाता है और इसके उचित उपचारमें विज्ञान भी हार मान गया है। रिवेकाने इस बीमारीसे आरोग्य-लाभ होनेके सम्बन्धमें विचार प्रकट किया है कि पूर्ण भगवद्विश्वास, श्रद्धा और सच्ची प्रार्थनासे मनुष्य इसका शिकार होनेसे बच जाता है। अन्यथा यह मारक रोग है। उसका कहना है कि मेरे कार्यालयमें एलिस न्यूटन नामकी एक स्त्री आयी। उसका उदर बुरी तरह फूला हुआ था। वह अत्यन्त कमजोर हो गयी थी, हाँफ रही थी, कैंसर रोगसे आक्रान्त थी। डाक्टरोंकी चिकित्सासे कोई लाभ नहीं हो सका। मैंने उसे ईश्वरसे प्रार्थना करनेकी राय दी। उसने उसी दिनसे प्रार्थना आरम्भ कर दी और अपने स्वास्थ्य-लाभके समयकी प्रतीक्षा करने लगी। एक रातको उसने सपनेमें एक प्रकाश देखा। वह जाग पड़ी। उसका पेट समतल था। वह पचक गया था। डाक्टरने एलिससे आते ही पूछा कि क्या खून निकला था? पानी बहा था? क्या आपके शरीरसे पसीना बह रहा था? 'कुछ नहीं'—एलिसका जवाब सुनकर डाक्टर आश्चर्यमें पड़ गया। उसने कहा कि 'कैंसरकी बीमारीका अच्छा हो जाना ईश्वरकी प्रार्थना और कृपासे ही सम्भव है।' एक सप्ताहके बाद एलिसका वजन लिया गया, जो बीमारीके समयके वजनसे अड़तीस पौंड कम था। पेट फूलनेसे ही इतना वजन अधिक था। यह कहाँ चला गया?—इसका उत्तर भगवान्‌की कृपा ही दे सकती है।

यह निर्विवाद और निश्चित है कि परमात्मासे प्रार्थना करनेसे भयंकर-से-भयंकर रोगसे छुटकारा मिल जाता है।

—रा० श्री०

प्रार्थना-मानव जार्ज मूलर

कुछ दिनों पहलेकी बात है। जर्मनीके ब्रिस्टल नगरमें महान् भगवद्विश्वासी जार्ज मूलरने अपने प्रार्थनामय जीवनसे लोगोंको आश्चर्य-चकित कर दिया। छोटी-बड़ी, सभी बातोंके लिये वे परमात्माकी कृपापर ही निर्भर रहते थे। अपनी तिरानबे सालकी अवस्थामें एक दिनके लिये भी वे अपने भगवद्विश्वासके मार्गसे विचलित नहीं हुए। सारे यूरोप और अमेरिकामें उनका नाम प्रसिद्ध हो गया। समय-समय-पर इन दोनों महाद्वीपोंके प्रसिद्ध नगरोंमें जाकर उन्होंने लोगोंको भागवत जीवन अपनानेकी सीख दी तथा प्रार्थनाके वास्तविक रूप और महिमापर प्रकाश डाला।

जार्ज मूलरके जीवनकी सफलताका रहस्य उन्हींके शब्दोंमें यह था कि—'एक दिन मैं—जार्ज मूलरके रूपवाला मैं—मर गया। जार्ज मूलरके रूपवाले मेरे सारे विचार, इच्छाएँ, स्वीकृति, सम्बन्ध आदि प्राणहीन हो गये और तभीसे मैं—'मेरा असली मैं ईश्वरकी इच्छाके अनुरूप जीवनका सदुपयोग करनेवाला बन गया।' जार्ज मूलरने पवित्र संदेश दिया कि 'परमात्मासे ही प्रेम करो, उन्हींका पूरा-पूरा भरोसा रक्खो, मुक्तिका यही रास्ता है।' इसी कथनके साँचेमें ढलकर उनका सारा जीवन भागवत और दिव्य हो उठा। वे पूर्ण-रूपसे भगवान्‌पर निर्भर थे।

जार्ज मूलर ब्रिस्टलमें एक अनाथालय चलाते थे। उसमें अनाथ लड़कोंके पालन-पोषण, खान-पान और शिक्षा-दीक्षाका उचित प्रबन्ध था। ईश्वरकी प्रार्थना और कृपासे अनाथालयकी प्रबन्ध-सम्बन्धी आवश्यकताओंकी पूर्ति अपने-आप अनायास ही हो जाया करती थी। अनाथालयका कार्य आरम्भ करनेके पहले न तो उनके पास कोई जगह थी, न रहनेके लिये मकान था, न पासमें रुपया था। उन्होंने ईश्वरसे प्रार्थना की, प्रार्थनाके परिणामस्वरूप उन्हें कहींसे एक हजार पौंड मिल गये और वे प्रबन्धमें लग गये।

जार्ज मूलरके जीवनकी बातें हमें ईश्वरसे प्रार्थना करनेकी प्रेरणा देती हैं, ईश्वरकी कृपाके भरोसे निर्भर रहनेकी सीख देती हैं, उन्होंने कभी स्वार्थ-पूर्तिके लिये प्रार्थना नहीं की। उनके सारे कर्म परमेश्वरकी पूजाके उपकरण थे।

जार्ज मूलर प्रत्येक परिस्थितिमें ईश्वरकी कृपाका अनुभव करते थे। एक समयकी बात है—उन्होंने ब्रिस्टलसे अनाथालय हटाकर थोड़ी ही दूरपर 'ऐश्ले डाउन' नामक स्थानमें ले जाना चाहा। वहाँ प्रति एकड़ जमीनकी कीमत दो सौ पौंड थी। भूमिपतिके निवास-स्थानपर मूलर उससे मिलने एक ही दिन दो बार गये। भेंट न हो सकी। उन्होंने विचार किया कि परमात्माकी इच्छा है कि मैं मालिकसे आज न मिलूँ। इसीलिये दो बार जानेपर भी भेंट न हो

सकी। यदि मूलर रातमें आकर मिलते तो बात हो जाती; पर उन्होंने दूसरे दिन सबेरेतकके लिये प्रतीक्षा करना ही ठीक समझा। उनकी दृष्टि जमीन या उसके मालिकपर नहीं, ईश्वरके प्रति पूर्ण निर्भरतापर थी। दूसरे दिन जमीनके मालिकने उनसे मिलते ही कहा कि "आइये ! आपका स्वागत है; मैं जानता हूँ आप क्यों आये हैं। आप 'ऐश्ले डाउन'में मेरी जमीन खरीदना चाहते हैं। उसकी कीमत प्रति एकड़ दो सौ पौंड है, कल रात स्वप्नमें ईश्वरने मुझे आदेश दिया है कि मैं आपसे एक एकड़का दाम एक सौ बीस पौंड लूँ।" सौदा पट गया, क्षणमात्रमें कागजपत्रपर हस्ताक्षर हो गये। ईश्वरकी इच्छाके अनुरूप कार्य होते रहनेके विश्वासके कारण उन्हें प्रति एकड़ अस्सी पौंड कम देना पड़ा। यह घटना उनके हृदयके सूक्ष्म प्रार्थना-भावका प्रकाशन करती है, जिसका वे मन-ही-मन अनुभव कर रहे थे कि ईश्वरकी कृपासे जमीनकी खरीदमें सुविधा मिलेगी।

इसी तरहकी एक दूसरी घटनासे उनके भगवद्-विश्वास और प्रार्थनामय भागवत जीवनका पता चलता है। एक दिनकी बात है, अनाथालयमें कुछ भी खानेके लिये नहीं था। जार्ज मूलरने भोजनके कार्य-क्रममें किसी भी तरहका व्यवधान नहीं आने दिया। ऐसा आचरण किया कि मानो भंडारमें पहलेसे ही आवश्यक खानेका सामान भरा पड़ा हो। नित्यकी तरह समयपर खानेकी घंटी बजा दी गयी। बच्चे भोजन करनेके लिये यथास्थान बैठ गये। खाना आरम्भ करनेके पहले भगवान्की स्तुति और प्रार्थना करनेका नियम था। मूलरके आदेशसे बच्चोंने भागवत संगीत गाना आरम्भ कर दिया। इसके बाद ही भोजन करनेकी बात थी। मूलरका विश्वास अपना काम कर रहा था कि ईश्वर कृपा करेंगे ही। मूलरका ध्यान खानेके सामानपर नहीं था, उनकी दृष्टि ईश्वरके कृपामय स्वभावपर लगी थी। उनका हृदय मूक-प्रार्थनामें तल्लीन था कि ईश्वर बच्चोंको भोजन देंगे ही। बच्चोंने प्रार्थना समाप्त की ही थी कि तत्क्षण रोटियोंसे भरी दो गाड़ियाँ आ पहुँचीं। किसने उनको भेजा था, इसका पता तो नहीं चला; पर बच्चोंने नित्यकी तरह यथासमय भोजन कर लिया। ईश्वरपर पूर्ण निर्भर रहकर प्रार्थना करनेसे सफलता मिलती ही है।

जार्ज मूलरने अपने भगवद्विश्वासी आस्तिक जीवनसे सिद्ध कर दिया कि प्रार्थनासे सब कुछ सम्भव है। एक समय मूलरको विशेष कार्यक्रममें उपस्थित होनेके लिये कैनेडाके क्वेबेक स्थानपर पहुँचना था। समुद्रका मार्ग चारों ओर अत्यन्त घने और अभेद्य कोहरेसे आच्छन्न था। जहाजका कप्तान चौबीस घंटेतक कोहरेके साफ हो जानेकी प्रतीक्षा करता रहा। जहाज किसी भी हालतमें खोलना ठीक नहीं समझा गया। मूलरको निश्चित समयपर कार्यक्रममें सम्मिलित होना था।

उन्होंने कप्तानसे कहा कि 'चलिये, जहाजके भीतरी कक्षमें हम दोनों ईश्वरसे प्रार्थना करें कि कोहरा साफ हो जाय।' कप्तानने सोचा कि किस पागलखानेके आदमीसे पाला पड़ा है। उसने प्रार्थना करना अस्वीकार कर दिया।

'कप्तान ! मुझे ठीक समयपर क्वेबेक पहुँचना है। मेरी दृष्टि कोहरेपर नहीं है, मैं ईश्वरकी कृपाकी ओर देख रहा हूँ। मेरे जीवनमें पहले कभी ऐसा अवसर ही नहीं आया कि मैं किसी निश्चित कार्यक्रममें यथासमय उपस्थित न हुआ हूँ। मेरा विश्वास है कि प्रार्थना करनेसे भगवान्की कृपासे कोहरा समाप्त हो जायगा।' जार्ज मूलरने बड़ी दृढ़तासे कहा।

वे भीतरी कक्षमें तत्काल प्रार्थना करने चले गये। पाँच मिनटके बाद ही भीतरसे ही उन्होंने कप्तानसे कहा कि आपका प्रार्थनामें विश्वास नहीं है, इसलिये आपको अब प्रार्थना करनेकी आवश्यकता नहीं है। बाहर जाकर देखिये, मेरी प्रार्थनाके परिणामस्वरूप कोहरा साफ हो गया होगा।

कप्तानने जहाजके बाहरी मञ्चपर आकर देखा कि कोहरा साफ हो गया है। वह आश्चर्यमें पड़ गया। जहाज निश्चित स्थानके लिये चल पड़ा। मूलर नियत समयपर कार्यक्रममें सम्मिलित हो सके।

इस प्रसङ्गमें ध्यान देनेकी बात यह है कि मूलरने उस ईश्वरकी सर्वसमर्थतामें विश्वास किया, जो उनकी प्रत्येक परिस्थितिके संचालक तथा नियन्त्रकके रूपमें मूलरके ही शब्दोंमें अभिव्यक्त है। ईश्वरमें पूर्ण विश्वास हो जाना ही प्रार्थनाका पुण्यफल है।

(रा० श्री०)

पाश्चात्त्य संत-मनीषियोंके प्रार्थनासम्बन्धी दृष्टिकोण

(लेखक—श्रीरामलालजी बी० ए०)

पूर्ण भगवन्मय जीवनका आशय है—प्रार्थनामय जीवन। प्रार्थनासे मानव आत्मसंस्कार करके ईश्वर-राज्यमें प्रवेश करता है। उसके हृदयमें भागवत राज्य उतर आता है। ईसाने कहा था कि 'भागवत राज्य (Kingdom of Heaven) अपने भीतर है।' पाश्चात्त्य जगत्के बड़े-बड़े संत, मनीषी, दार्शनिक तथा विचारकोंने ईसाके इसी पवित्र कथनकी प्रेरणाके अनुरूप अधिकांशरूपमें अपने प्रार्थना-सम्बन्धी दृष्टिकोण निश्चित किये हैं। भागवत जीवनके प्रकाशमें महान् संत अगस्तीनकी विज्ञप्ति है कि 'जो मनुष्य भला है, वही सांसारिक विघ्न-बाधा, सुख-दुःखके चक्रसे मुक्त है, स्वतन्त्र है और जो बुरा है, वह बन्धनमें है, परतन्त्र है—चाहे वह सम्राट् ही हो। यही सत्य है, तत्त्वज्ञान है।' पाश्चात्त्य विचार-जगत्में ईश्वरके साक्षात्कारका यही स्वरूप है। असीसी अथवा असईके संत फ्रान्सिसके परमात्माके स्तवनमें शब्द हैं कि—'हे परमोच्च सर्वशक्तिमान्! समस्त स्तुति, विभूति, मङ्गल, कल्याण आदिके मूल स्रोत आप ही हैं; आपका नाम सर्वोत्तम है, अनुपम है। कोई भी वस्तु उसकी उपमामें नहीं आ सकती।'

सर्वशक्तिमान् परमात्मासे प्रार्थना करनेका अधिकारी कौन है—यह विचारणीय प्रश्न है। जो प्राणी पूर्ण रूपसे भागवती शक्तिपर निर्भर होता है, जिसका जीवन ईश्वरके प्रति पूर्ण समर्पित रहता है, जिसे एकमात्र भगवान्का ही भरोसा रहता है, जो जगत्के प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियोंसे तनिक भी आशा न रखकर अपने-आपको सर्वशक्तिमान् प्रभुमें स्वस्थ कर लेता है—वही प्रार्थना करनेका वास्तविक अधिकारी है। मध्यकालीन जर्मन संत जेकब बोहमका कहना है कि पहले यह समझ लेना चाहिये कि सारे रहस्योंकी पुस्तक स्वयं मनुष्य ही है, सारे प्राणी उसीसे प्राणमय हैं। वह आत्मा है—ईश्वरका सजातीय है; अपना कर्ता-धर्ता तथा प्रेरक वह स्वयं है। जबतक उसे ऐसा बोध नहीं होता, तबतक उसमें ईश्वरकी पूर्ण कर्तृत्व-स्फूर्तिका अवतरण नहीं हो सकता। ईश्वरके प्रति इस तरहकी सजातीयताका ज्ञान होनेपर ही उसे प्रार्थना करनेका अधिकार मिलता है।

प्रार्थनाके एकमात्र विषय ईश्वर हैं। प्रार्थनाका शुद्ध रूप तब चरितार्थ होता है, जब प्राणी किसी अभावकी पूर्तिके लिये चारों ओरसे निराश्रित होकर उन्हींकी ओर देखता है। शाश्वत जीवनकी अपने भीतर अनुभूति ही भगवान्का हो जाना है। यह जीवन सर्वमय है। भगवान् सबके हैं, सर्वव्यापक प्रभुसे ही प्रार्थना की जाती है। वे ही अन्तरात्मा हैं। प्रसिद्ध जर्मन संत तथा विचारक मास्टर इकार्टकीका अन्तरात्माके सम्बन्धमें विचार है कि 'मैं जिस आँखसे ईश्वरको देखता हूँ, वह वही आँख है जिससे वे मुझे देखते हैं। मैं उनसे अभिन्न हूँ। इस तरह उनसे मिलकर एक हो गया हूँ कि मुझे लगता है कि मैं उनसे अलग हूँ ही नहीं। इस कल्याणमय एकात्मबोधकी प्रातिका शुभ परिणाम यह है कि जिस तरह सारी वस्तुएँ ईश्वरमें भरी पड़ी हैं, उसी तरह वे मेरे भीतर भी विद्यमान हैं। जहाँ मैं हूँ, वहीं ईश्वर हैं। मैं ईश्वरसे यह प्रार्थना नहीं करता कि वे मुझे मिल जायँ। मैं तो यह याचना करता हूँ कि वे मुझे पवित्र, पवित्रतर बनायें। यदि मैं निरन्तर पवित्र—निर्मल होता रहूँगा तो यह उनका स्वभाव ही है कि वे मुझे प्राप्त हो जायँगे, मुझमें निवास करेंगे।'

ईश्वर—अन्तरात्मामें ही पूर्ण विश्वास और श्रद्धाके अन्तरालमें स्थिर रहते हैं। मध्यकालीन जर्मन संत मार्टिन लूथरकी घोषणा है कि 'ईश्वर ही हमारे सुदृढ़ दुर्ग हैं—आश्रय हैं। सांसारिक माया-मोहके बन्धनसे उन्मुक्त—रिक्त हृदयमें ही ईश्वरकी व्यापकताकी अनुभूति होती है। इस तरह हृदय खाली हो जानेपर ही प्राणी ईश्वरके सांनिध्य-सुखका रसास्वादन करता है और निश्चिन्त तथा शान्त मनसे उनसे प्रार्थना कर पाता है। प्रसिद्ध पाश्चात्त्य दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सरका कथन है कि 'रहस्योंको जितना ही सुलझानेका यत्न किया जाता है, वे उतने ही रहस्यमय अथवा समझनेकी शक्तिसे दूर होते जाते हैं। इन्हीं रहस्योंमेंसे यह रहस्य नितान्त शाश्वत सत्यसे युक्त है कि मनुष्य एक ऐसी असीम और सनातन शक्तिके सांनिध्यमें है, जो समस्त जड-चेतनका मूल स्रोत है।' आशय यह है कि घट-घटमें व्यापक ईश्वरका समस्त प्राणिमात्रमें एक-समान प्रेम है। वे सबकी बात सुनते हैं। चींटी और हाथी—सबकी आवाज उनके कानमें पहुँचती है। आत्मा और ईश्वरके सम्मिलनके बखानमें संत टेरेसाके वचन हैं—

यह इतना ईश्वरकृपामय है, आनन्ददायक है कि मैं नहीं समझ पाती कि इसकी किससे उपमा दी जाय—तुलना की जाय। यह केवल ईश्वरकी कृपामात्र है कि स्वर्गीय दिव्य आनन्दके रूपमें वे हृदयमें अभिव्यक्त हो उठते हैं। यह आनन्द प्रार्थनाकी पूर्णतम सिद्धि है।'

ईश्वरसे सीधा सम्पर्क स्थापित हो जाना ही यथार्थ प्रार्थना है। अमेरिकाके प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् एमरसनका कथन है कि 'वह प्रार्थना दोषमय है, जिसमें किसी वस्तुके अभावकी पूर्तिकी याचना की जाती है। जीवनसम्बन्धी सर्वोच्च चिन्तनका नाम प्रार्थना है। ईश्वरके मङ्गलमय कार्यके ज्ञापन और विवेचनका माध्यम प्रार्थना है।' ईश्वरमें तन्मय अथवा एक हो जानेपर याचनाकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। प्रार्थनाके द्वारा स्वार्थ-सिद्धिकी माँग करना ओछापन है। प्रार्थना मनुष्यको ईश्वरके पूर्ण सांनिध्यमें पहुँचा देती है। मनुष्य देश और कालसे ऊपर उठ जाता है। छोटी-बड़ी सभी बातोंकी चिन्ता अपने-आप मिट जाती है।' संत इगनैशियस लायलाके शब्दोंमें—'केवल यही माँग रह जाती है कि हे ईश्वर! मैं आपके द्वारा कृपापूर्वक दी गयी सारी वस्तुएँ पवित्र हृदयसे आपको समर्पित करता हूँ। मुझे अपने प्रेम और कृपाका पात्र बना लीजिये। आपसे मिलकर मैं परम सम्पन्न—समृद्ध हो गया हूँ। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। प्रार्थनासे हृदयमें ईश्वरके प्रति पूर्ण निर्भरताका भावोदय होता है।

प्रार्थना करनेके पहले इस बातको समझ लेना बड़ा आवश्यक है कि ईश्वरको हमारी छोटी-बड़ी सभी आवश्यकताओंका और उनकी पूर्तिका ज्ञान रहता है। संतोंका अनुभव है कि प्रार्थनाके समय कृपालु तथा उदार परमेश्वरका स्तवन करना चाहिये। असईके संत फ्रान्सिसका कथन है कि ईश्वरमें पूरा-पूरा भरोसा रखना चाहिये। यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि हम क्या खायें-पीयेंगे। ईश्वरका गुण-गान करना चाहिये। ऐसा होनेपर हमारे श्रम और समस्त कर्म प्रार्थनाका रूप ग्रहण कर लेते हैं।

प्रार्थनाकी सफलताका रहस्य है—अपने-आपमें पूर्ण दैन्यका अनुभव करना। अपने आपको निर्बलतम समझनेवाला ही ईश्वरके राज्यमें महान् सशक्त है। जर्मन संत जेकब बहोमके शब्दोंमें ईश्वरकी ओर मुख करके चलना ही जीवात्माका फिरसे नया जीवन पाना है। इसीका नाम है—ईश्वरके राज्यमें प्रवेश करना। प्रार्थनामय जीवनका रहस्य यह है कि ईश्वरकी इच्छाके अनुरूप ही प्रार्थी अपने प्रत्येक कर्ममें उनकी कृपा, उदारता और प्रसन्नताका अनुभव करे। प्रार्थनाका यही फल है कि मनुष्यका मन ईश्वरके गुण-चिन्तन, स्तवन-ध्यानमें लग जाय।

नित्य तुम्हारा संस्पर्श प्राप्त हो

शान्ति, दया, स्वाभाविक करुणा, क्षमा, सुहृदता, निर्मल प्रीति।
नित्य अनन्त रूपमें रहतीं अविचल सर्वभूतहित-नीति॥
तुम इनके अनन्त आकर तुम सदा सहज सत्-चित्-आनन्द।
नित्यामित ऐश्वर्यपूर्ण तुम स्वस्थ नित्य प्रेमिक स्वच्छन्द॥
ऐसे तुममें रहता मैं नित, मुझमें भरे नित्य तुम पूर्ण।
समझ रहा मैं देह मानकर नश्वर निजको नित्य अपूर्ण॥
हर लो प्रभु! अज्ञान, बताते रहो सदा अपना संधान।
नित्य तुम्हें पा, देखूँ निजको सुखी शान्त नीरोग महान॥
छू पाये न कभी कोई भी कैसा भी सुख-दुःखामर्ष।
हर हालतमें प्राप्त करूँ मैं नित्य तुम्हारा ही संस्पर्श॥

रामनामका मूल्य

एक नगरके बाहर एक महात्मा रहा करते थे । एक श्रद्धालु भक्त प्रतिदिन उनके पास जाता, दर्शन करता और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी खूब सेवा करता । उसकी सेवासे महात्माजी प्रसन्न हो गये और बोले—'तू ईश्वर-भक्त है, तू साधु-संत-सेवी है, शास्त्रके वचनोंपर विश्वास करता है, साधननिष्ठ है, तेरी सरलता और सेवा सराहनीय हैं । तू व्यर्थके कुतर्कमें नहीं फँसता, किसीका तू अहित नहीं करता। ये ही सब ऐसे आदर्श गुण हैं, जो भक्तमें सहज ही होने चाहिये । तुझको इन सद्गुणोंसे सम्पन्न और हर प्रकारसे योग्य समझकर एक परम गोपनीय मन्त्र दे रहा हूँ । इस मन्त्रके वास्तविक महत्त्वको कोई नहीं जानता । इसे किसीको बतलाना—देना मत ।' यह कहकर महात्माजीने 'राम' उस भक्तके कानमें कह दिया । वह भक्त 'राम'-नामके जपमें प्रवृत्त हो गया ।

अब तो 'राम'का जप उस श्रद्धालु भक्तका स्वभाव बन गया । न किसीकी ओर देखना, न ध्यान देना, न कुछ कहना—बस, निरन्तर 'राम'का जप करते रहना । भक्त रोज गङ्गा-स्नान करने जाता-आता, पर 'राम'के जपके अतिरिक्त दूसरेसे उसका कोई प्रयोजन न था । एक दिन वह गङ्गा नहाकर लौट रहा था कि उसका ध्यान उन कुछ लोगोंकी ओर गया, जो गङ्गा-स्नान करके लौटते समय जोर-जोरसे 'राम' 'राम' बोल रहे थे । उनके द्वारा 'राम' शब्द सुनते ही भक्तको बड़ा आश्चर्य हुआ । वह सोचने लगा कि 'महात्माजी तो यह कहते थे कि यह परम गुप्त मन्त्र है; पर इसे तो जन-जन बोल रहा है । फिर इसमें गोपनीयता कहाँ रही ? मुझसे तो कहा कि किसीसे बतलाना नहीं और यहाँ तो हरएकके मुखपर 'राम' है ।' अब वह भक्त घर न जाकर सीधा महात्माजीकी कुटियापर पहुँचा और अपने मनका सारा संदेह महात्माजीके सामने निवेदन करके बैठ गया । महात्माजी उसकी मनोदशासे अवगत हो गये । उन्होंने कहा—'अच्छी बात है, मैं तुम्हारे संदेहको मिटा दूँगा, तुम चिन्ता मत करो । पहले मेरा एक बहुत जरूरी काम कर दो ।'

यह कहकर महात्माजीने अपनी झोलीसे एक चमकता काँच-सा निकालकर उस भक्तको दिया और कहा—'वत्स ! इसको लेकर तुम बाजारमें जाओ और इसका मूल्य आँकवा लाओ । देखो, इसको किसी भी मूल्यपर बेचना नहीं है। केवल यही पता लगाना है कि इसका मूल्य क्या है ।'

सरल-चित्त और श्रद्धालु भक्तने महात्माजीकी बात मान ली । अपने संदेहको एक बार वहीं छोड़ दिया और महात्माजीके आज्ञानुसार उस काँचका मूल्य आँकवानेके लिये वह बाजारमें गया । बाजारमें प्रवेश करते ही उसे एक साग बेचनेवाली मिली । भक्तने उस सागवालीको दिखाकर उसका मूल्य पूछा । सागवालीने विचार किया कि 'यह काँच बड़ा ही चमक रहा है, बच्चोंके खेलनेके लिये बढ़िया चीज है ।' यों सोचकर उसने भक्तसे कहा—'यह मुझे दे दो और बदलेमें दो सेर आलू ले जाओ ।' भक्तने वह काँच वापस ले लिया और आगे बढ़ा । सामने सुनारकी दूकान आयी। सुनारको दिखाकर भक्तने काँचका मूल्य पूछा । सुनारने देखकर सोचा कि 'यह देखनेमें नकली हीरा-सा लगता है, अतः इसका मूल्य सौ रुपया देकर भी ले लेनेमें कोई हानि नहीं होगी ।' सुनारने उस काँचका दाम सौ रुपये बता दिया । सुनारसे काँच लेकर भक्त आगे बढ़ा । एक महाजनकी दूकानपर गया और उसे काँचको दिखाया। महाजनने देखा और सोचा—'है तो यह नकली हीरा; पर इतना बढ़िया है कि इसे कौन नकली कहेगा । फिर हमारे घरकी बहू-बेटियोंको पहने देखकर तो सभी इसको असली कहेंगे ।' यों विचारकर महाजनने एक हजार रुपये मूल्यरूप देनेको कहा । भक्त और आगे बढ़ा । अब भक्तके मनमें उत्साह आ गया । दामकी जाँच ज्यों-ज्यों कराता जा रहा था, त्यों-ही-त्यों काँचकी श्रेष्ठता और उच्चता प्रकट और सिद्ध होती जा रही थी ।

फिर भक्त एक जौहरीकी दूकानपर गया । जौहरीने देखा और मन-ही-मन कहा—'यह लगता तो हीरा है, पर इतना बड़ा और बढ़िया हीरा तो कभी देखा नहीं । शायद हीरा न हो; पर यदि कहीं हीरा हुआ तो इसका मूल्य अत्यधिक होगा । अतएव एक लाख रुपयेतकमें इसे खरीद लेना बुरा न होगा । यह सोचकर पूरे एक लाख रुपयेमें हीरा लेना चाहा । भक्तने हीरा वापस ले लिया । भक्तका विश्वास बढ़ गया । तदनन्तर वह नगरके सबसे बड़े जौहरीके यहाँ गया और उसे हीरा दिखाया । जौहरीने देखा, बारीकीसे परखा और कहा—'भाई ! इतना बढ़िया हीरा तुम्हें कहाँसे मिल गया ? यह तो अमूल्य है । इतना भव्य और बड़ा हीरा

मैंने आजतक कहीं देखा ही नहीं। यह इतना मूल्यवान् है कि जौहरियोंके तथा बड़े-बड़े नरेशोंतकके सारे हीरोंका जितना दाम हो सकता है, वह सब मिलाकर भी इसके मूल्यके बराबर नहीं हो सकता। वास्तवमें इसका मोल आँकना किसीकी भी बुद्धिसे बाहरकी बात है।' यह उस काँच (और अब हीरे)के मूल्याङ्कनकी पराकाष्ठा थी।

भक्त लौटकर महात्माजीके पास आ गया। महात्माजीने भक्तसे काँचका मूल्य पूछा। भक्तने कहा—'महाराज! यह तो अमूल्य हीरा है। सागवालीने दो सेर आलू बताया। सुनारने बदलेमें सौ रुपये देने चाहे। महाजनने एक हजार आँके। जौहरीने एक लाख कहा और नगरके सबसे बड़े जौहरीने यही कहा कि यह अमूल्य है। देशके सारे हीरे मिलकर भी मूल्यमें इसकी बराबरी नहीं कर सकते।' महात्माजीने वह हीरा वापस लेकर झोलीमें रख लिया।

भक्तने कहा—'महाराज! मैं तो आपके आज्ञानुसार आपका काम कर आया; अब आप मेरे संदेहको दूर कीजिये।' महात्माजीने हँसते हुए कहा—'कर तो चुका भैया!' बात भक्तकी समझमें आयी नहीं। उसने विनम्रतासहित पूछा—'कैसे गुरुदेव?' महात्माजी बड़े प्यारसे बोले—'अभी तुमको प्रत्यक्ष उदाहरण दिया न? तुम हीरा लेकर बाजारमें गये। किसीने दो सेर आलू, किसीने सौ रुपये, किसीने एक हजार अथवा एक लाख रुपये मूल्याङ्कन किया। पर सच्चे जौहरीने इसे अमूल्य बताया। चीज एक ही थी, पर सबका मूल्याङ्कन अलग-अलग था। इसी तरह 'राम' नाम भी अमूल्य वस्तु है। इसका सच्चा मूल्य आँका नहीं जा सकता—और तो क्या, स्वयं राम भी इसका मूल्य नहीं बता सकते—'राम न सकहिं नाम गुन गाई।' इस रहस्यको वही जानता है, जिसपर भगवान्‌की कृपा होती है। राम-नाम लेनेवाले बहुत लोग हैं, पर कीमत जाननेवाले विरले ही होते हैं।' भक्तका सारा संदेह दूर हो गया। अत्यधिक श्रद्धाभावसे उसने महात्माजीके चरणोंमें प्रणाम किया और वह अधिक नाम-निष्ठाके साथ घरको लौट गया।

रामनामका फल

दो भाई थे, पर दोनोंके स्वभावमें अन्तर था। बड़ा भाई साधु-सेवी और भगवान्‌के भजनमें रुचि रखनेवाला था। दान-पुण्य भी करता था। सरलहृदय था। इसलिये कभी-कभी नकली साधुओंसे ठगा भी जाता था। छोटा भाई अच्छे स्वभावका था, परंतु व्यापारी मस्तिष्कका था। उसे साधु-सेवा, भजन और दानके नामपर ठगाया जाना अच्छा नहीं लगता था और वह यही समझता था कि ये सब ठगोंके सिवा और कुछ नहीं है। अतः वह बड़े भाईके कार्योंसे सहमत नहीं था। उग्र विरोध तो नहीं करता था, पर समय-समयपर अपनी असम्मति प्रकट करता और असहयोग तो करता ही था।

बड़े भाईको इस बातका बड़ा दुःख था कि उसका छोटा भाई मानव-जीवनके वास्तविक लक्ष्य भगवान्‌की प्राप्तिके साधनमें रुचि न रखकर दुनियादारीमें ही पूरा लगा हुआ है। बड़े भाईकी अच्छी नीयत थी और वह अपने छोटे भाईको भगवान्‌की ओर लगा देखना चाहता था। वह समय-समयपर नम्रता और युक्तियोंसे समझाता भी। दूसरे अच्छे लोगोंसे भी कहलवाता, उपदेश दिलवाता था; पर छोटे भाईपर कोई प्रभाव नहीं था।

एक बार अपनी शिष्यमण्डलीसहित एक विरक्त महात्मा उनके शहरमें आये। बड़ा भाई साधुसेवी था ही। वह महात्माकी सेवामें उन्हें एक दिन भिक्षा करानेकी इच्छासे निमन्त्रण देने पहुँचा। वहाँ बात-ही-बातमें उसने अपने छोटे भाईकी स्थिति बतलायी। महात्माने, पता नहीं क्या विचारकर, उससे कहा कि 'तुम एक काम करना—जिस दिन तुम्हारा छोटा भाई घरमें रहे, उस दिन हमें भोजनके लिये बुलाना और हमलोगोंको ले जाने और लौटानेके समय एक बाजा साथ रखना। तुम्हारा छोटा भाई जो करे, उसे करने देना। शेष सारी व्यवस्था हम कर लेंगे।'

महात्माके आज्ञानुसार व्यवस्था हो गयी। बजते हुए बाजेके साथ महात्मा मण्डलीसहित आ रहे थे। घरमें उस दिन ज्यादा रसोई बनते देखकर और घरके समीप ही बाजेकी आवाज सुनकर छोटे भाईको कुछ संदेह हुआ और उसने बड़े भाईसे पूछा कि 'रसोई किस लिये बन रही है और अपने घरकी ओर बाजेके साथ कौन आ रहा है?' बड़े भाईने कहा—'एक पहुँचे हुए महात्मा अपनी शिष्यमण्डलीसहित यहाँ पधारे हैं और उन्हें अपने यहाँ भोजनके लिये बाजे-गाजेके साथ लाया जा रहा है। महात्मा भी पहुँचनेवाले ही हैं।' छोटे भाईको ये सब बात

बहुत बुरी लगीं। उसने कहा—'आप ये सब चीजें करते हैं, मुझे तो अच्छी नहीं लगतीं। आप बड़े हैं; आप जो चाहें सो करें। किंतु मैं यह सब देख नहीं सकता। इसलिये मैं कमरेके अंदर किवाड़ ढककर बैठ जाता हूँ। आपके महात्मा खा-पीकर जब चले जायँगे, तब मैं बाहर निकलूँगा। इससे किसी प्रकारका कलह होनेसे घर बच जायगा।' यह कहकर उसने कमरेमें जाकर अंदरसे किवाड़ बंद कर लिये। महात्माजी आये और सारी बातोंको जानकर उन्होंने उस कमरेके बाहरकी साँकल लगा दी। भोजन सम्पन्न हुआ। तदनन्तर महात्माजीने अपनी सारी मण्डलीको बाजेके साथ लौटा दिया और स्वयं उस कमरेमें दरवाजेके पास खड़े हो गये।

जब लौटते हुए बाजेकी अंदरसे आवाज सुनी, तब छोटे भाईने समझा कि 'अब सब लोग चले गये हैं।' उसने अंदरकी साँकल हटाकर किवाड़ खोलने चाहे, पर वे बाहरसे बंद थे। उसने जोर लगाया। फिर बार-बार पुकारकर कहा—'बाहर किसने बंद कर दिया है, जल्दी खोलो।' महात्माने किवाड़ खोले और उसके बाहर निकलते ही बड़े जोरसे उसके हाथकी कलाईको पकड़ लिया। महात्मामें ब्रह्मचर्यका बल था। वह चेष्टा करके भी हाथ छुड़ा न सका। महात्माने हँसते हुए कहा—"भैया, हाथ छुड़वाना है तो मुँहसे 'राम' कहो।" उसने आवेशमें कहा—'मैं यह नाम नहीं लूँगा।' महात्मा बोले, 'तो फिर हाथ नहीं छूटेगा।' क्रोध और बलका पूरा प्रयोग करनेपर भी जब वह हाथ नहीं छुड़ा सका, तब उसने कहा—"अच्छा, 'राम'। छोड़ो हाथ जल्दी और भागो यहाँसे।" महात्मा मुसकराते हुए यह कहकर बाहर निकल गये कि—"तुमने 'राम' कहा सो तो बड़ा अच्छा किया; पर मेरी बात याद रखना। इस 'राम'-नामको किसी भी कीमतपर कभी बेचना नहीं।"

यह घटना तो हो गयी, पर कोई विशेष अन्तर नहीं आया। समयपर बड़े भाईकी मृत्यु हो गयी और उसके कुछ दिन बाद छोटे भाईकी भी मृत्यु हो गयी। विषय-वासना और विषय-कामनावाले लोग विवेकभ्रष्ट हो जाते हैं और जाने-अनजाने छोटे-बड़े पाप करते रहते हैं। पापका फल तो भोगना ही पड़ता है। मरनेके अनन्तर छोटे भाईकी आत्माको यमलोकमें ले जाया गया और वहाँ कर्मका हिसाब-किताब देखकर बताया गया कि "विषय-वासना-वश इस जीवने मनुष्य-योनिमें केवल साधु-अवज्ञा और भजनका विरोध ही नहीं किया, और भी बड़े-बड़े किये हैं। पर इसके द्वारा एक बड़ा-भारी महान् कार्य हुआ इसके जीभसे एक महात्माके सम्मुख एक बार जबरद 'रामनाम'का उच्चारण हुआ है।"

यमराजने यह सुनकर मन-ही-मन उस एक बार रामनाम उच्चारण करनेवालेके प्रति श्रद्धा प्रकट की और कहा—' राम-नामके बदलेमें जो कुछ चाहो सो ले लो। उसके बाद तु पापोंका फल भोगना पड़ेगा।' उसको महात्माकी बात याद अ गयी। उसने यमराजसे कहा—'मैं राम-नामको बेच नहीं चाहता; पर इसका जो कुछ भी मूल्य होता हो, व आप मुझको दे दें।' रामनामका मूल्य आँकनेमें यमरा असमर्थ थे। अतएव उन्होंने कहा—'देवराज इन्द्रके पा चलकर उनसे पूछना है कि रामनामका मूल्य क्या होता है' उस जीवने कहा—'मैं यों नहीं जाता। मेरे लिये एक पालकी मँगायी जाय और उसमें कहारोंके साथ आप भी लगें।' उसने यह सोचा कि 'रामनामका मूल्य जब ये नहीं बता सकते, तब अवश्य ही वह बहुत बड़ी चीज है और इसकी परीक्षा इसीसे हो जायगी कि ये पालकी ढोनेवाले कहार बनते हैं या नहीं।' उसकी बात सुनकर यमराज सकुचाये तो सही, पर सारे पापोंका तुरंत नाश कर देनेवाले और मन-बुद्धिसे अतीत फलदाता भगवन्नामके लेनेवालेकी पालकी उठाना अपने लिये सौभाग्य समझकर वे पालकीमें लग गये।

पालकी स्वर्ग पहुँची। देवराज इन्द्रने स्वागत किया और यमराजसे सारी बात जानकर कहा—'मैं भी रामनामका मूल्य नहीं जानता। ब्रह्माजीके पास चलना चाहिये।' उस जीवने निवेदन किया—'यमराजके साथ आप भी पालकीमें लगें तो मैं चलूँ।' इन्द्रने उसकी बात मान ली और यमराजके साथ पालकीमें वे भी जुत गये। ब्रह्मलोक पहुँचे और ब्रह्माने भी राम-नामका मूल्य आँकनेमें अपनेको असमर्थ पाया और उसी जीवके कहनेसे वे भी पालकीमें जुत गये। उनकी राय भगवान शंकरके पास जानेकी रही। इसलिये वे पालकी लेकर कैलास पहुँचे। भगवान शंकरने ब्रह्मा, इन्द्र और यमराजको पालकी उठाये आते देखकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया। पूछनेपर सारी बातें उन्हें बतायी गयीं। शंकरजी बोले—'भाई! मैं तो रात-दिन रामनाम जपता हूँ, उसका मूल्य आँकनेकी मेरे मनमें कभी कल्पना ही नहीं आती।

वैकुण्ठ, ऐसे महाभाग्यवान् जीवकी पालकीमें मैं भी लगता हूँ। वैकुण्ठमें भगवान् नारायण ही कुछ बता सकेंगे।' अब पालकीमें एक ओर यमराज और देवराज लगे हैं और दूसरी ओर ब्रह्मा और शंकर कहार बने लगे हैं। पालकी वैकुण्ठ पहुँची। चारों महान् देवताओंको पालकी उठाये आते देखकर भगवान् विष्णु हँस पड़े और पालकी वहाँ दिव्य भूमिपर रख दी गयी। भगवान्ने आदरपूर्वक सबको बैठाया। भगवान् विष्णुने कहा—'आपलोग पालकीमें बैठे हुए इस महाभाग जीवात्माको उठाकर मेरी गोदमें बैठा दीजिये।' देवताओंने वैसा ही किया। तदनन्तर भगवान् विष्णुके पूछनेपर भगवान् शंकरने कहा—"इसने एक बार परिस्थितिसे बाध्य होकर 'राम'-नाम लिया था। राम-नामका मूल्य इसने जानना चाहा, पर हमलोगोंमेंसे कोई भी राम-नामका मूल्य बतानेमें अपनेको समर्थ नहीं पाता। इसलिये हमलोग इस जीवके इच्छानुसार पालकीमें लगकर आपकी सेवामें उपस्थित हुए हैं। अब आप ही बताइये कि राम-नामका मूल्य क्या होना चाहिये।" भगवान् विष्णुने मुस्कराते हुए कहा—"आप-सरीखे महान् देव इसकी पालकी ढोकर यहाँतक लाये और आपलोगोंने इसे मेरी गोदमें बैठाया। अब यह मेरी गोदका नित्य अधिकारी हो गया। राम-नामका पूरा मूल्य तो नहीं बताया जा सकता, पर आप इसीसे मूल्यका कुछ अनुमान लगा सकते हैं। आपलोग अब लौट जाइये।" भगवान् विष्णुके द्वारा लिये हुए एक बार 'राम' नामका इस प्रकार महान् मूल्याभास पाकर शंकरादि देवता लौट गये।

[एक विरक्त संतने यह कथा लगभग ४५वर्ष पूर्व कलकत्तेमें मुझको सुनायी थी। घटनाका उल्लेख किस ग्रन्थमें है, मुझको पता नहीं है। पर भगवन्नामकी महिमाका इसमें जो वर्णन आया है, वह वास्तवमें यथार्थ लगता है। घटना चाहे कल्पित हो, पर महिमा तो सत्य है ही।—

'राम न सकहिं नाम गुन गाईं।'

—हनुमानप्रसाद पोद्दार]

भगवान् शंकरकी नामोपासना

भगवान् शंकरके मुँहपर सदा राम-नाम विराजित रहता है। स्वयं पार्वतीजी ही कहती हैं—

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥

'अध्यात्मरामायण' आदिमें वे स्वयं भी कहते हैं—

अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो
वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं
दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥*

(अध्यात्मरामा० ६।१५।६२)

'तव नाम जपामि नमामि हरी।' इत्यादि

काशीमुक्तिका कारण भगवन्नाम

श्रीरामोत्तरतापिनीय उपनिषद् तथा श्रीनारदीय महापुराण आदिमें भी भगवान् राम-शंकरके संवादसे इसका पोषण होता है—

क्षेत्रेऽस्मिन् तव देवेश ! यत्र कुत्रापि वा मृताः।
कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव॥

अर्थात् देवेश ! आपके इस काशीक्षेत्रमें कहीं भी प्राणत्याग करनेवाले कृमि-कीट आदि भी तत्काल मुक्त हो जायँगे, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। आप यहाँके मरनेवाले जिस किसी भी प्राणीके कानमें मेरे मन्त्रका उपदेश कर देंगे, शिवजी ! वह अवश्य ही मुक्त हो जायगा।

बेद बिदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं।

—इस विनयपत्रिकाके वचनसे गोस्वामीजीने इस श्रुतिमन्त्रका निर्देश किया है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने अपने मानसमें तथा अन्यत्र भी यही लिखा है—

कासीं मरत जीव अवलोकी। जासु नाम बल करौं बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥

× × × ×

महिमा राम नाम कै जान महेस। देत परम पद कासीं करि उपदेस॥
(बरवै रामायण, उत्तरकाण्ड)

× × × ×

* प्रभो ! मैं आपका नामोच्चारण करते रहनेसे अपनेको परम कृतार्थ मानता हूँ। काशीमें मेरे साथ रहती हुई पार्वती भी सदा आपका नाम-जप करती हैं और यहाँ (काशीमें) मैं मरणासन्न पुरुषोंको उनकी परामुक्तिके लिये आपके तारक महामन्त्रस्वरूप श्रीराम-नामका ही उपदेश किया करता हूँ।

आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं॥
सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाया॥

× × × ×

'जाहि जपत त्रिपुरारि।' 'संतत जपत संभु अबिनासी।
सिव भगवान ग्यान गुन रासी। नाम प्रसाद संभु अबिनासी।
... ... साज अमंगल मंगल रासी॥

श्रीवामदेवजीके उपदेशके अनुसार पराम्बा भगवती श्रीपार्वती प्रतिदिन श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करके ही भोजन करती थीं। एक दिन भगवान् शंकरने परम मनोहर कैलासशिखरपर भगवान् विष्णुकी आराधना करनेके बाद पार्वतीजीको भोजनके लिये बुलाया। देवीने कहा कि 'मैं तो विष्णुसहस्रनामका पाठ कर रही हूँ। आप अभी मुझे क्षमा करें और स्वयं भोजन करें। पाठ समाप्त होनेपर मैं आकर भोजन कर लूँगी।'

इसपर भगवान् सदाशिवने कहा—'देवि! तुम्हारी वैष्णवी भक्ति बहुत श्रेष्ठ है। भगवान् विष्णुके सभी नाम वेदोंके पाठ-श्रवण-फलसे अधिक फलप्रद कहे गये हैं; किंतु श्रीराम-नामकी महिमा विष्णुसहस्रनामके तुल्य ही कही गयी है। अतः देवि! मैं तो सहस्रनामके सदृश 'राम, राम, राम'—इस प्रकार जप करता हुआ परम मनोहर श्रीराम-नाममें ही निरन्तर रमण किया करता हूँ। पार्वति! जिन-जिन दूसरे नामोंके आदिमें भी 'र'कार आता है, उन्हें सुनकर रामनामकी आशङ्कासे मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है; अतः महादेवि! तुम इस श्रीराम-नामका ही उच्चारण करके इस समय मेरे साथ भोजन कर लो—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥
रकारादीनि नामानि शृण्वतो मम पार्वति।
मनः प्रसन्नतां याति रामनामाभिशङ्कया॥
रामेत्युक्त्वा महादेवि!' भुङ्क्ष्व सार्धं मयाधुना॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, मोरसंस्करण, २५४। २२-२३)
(आनन्दाश्रम संस्करण २८१। २१-२२)

ऐसा कहनेपर देवी पार्वतीने श्रीरामनामका जप करके शंकरजीके साथ भोजन किया। इसपर प्रसन्न होकर भगवान् सदाशिवने उन्हें आधे शरीरमें स्थान दिया और अर्धनारीश्वर-विग्रह धारण कर लिया—

सहसनाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेइ पियसंग भवानी॥
हरखे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥

एक बार अमृतके लिये देवता तथा असुर समुद्रमंथनमें प्रवृत्त हुए। उसमें वासुकि सर्पके तीक्ष्ण विष आदिके प्रभावसे समुद्रसे हलाहल विष निकला और उससे सारा संसार ही दग्ध होने लगा।

उत्पपाताग्निसंकाशं हालाहलमहाविषम्।
तेन दग्धं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥

(वाल्मीकि० बालकाण्ड ५४। २९)

हालाहलसे विकल होकर देवतालोग भगवान् सदाशिवकी शरण गये। भगवान् विष्णुने भी वहाँ प्रकट होकर प्रभु शिवसे अग्रभाग ग्रहण करनेका विनोद किया और प्रभुने भी उनका 'रामनाम' लेकर उसे तत्काल ग्रहण कर लिया—

अथ देवा महादेवं शंकरं शरणार्थिनः।
जग्मुः पशुपतिं रुद्रं त्राहि त्राहीति तुष्टुवुः॥

(वाल्मीकि० ४५। ३०)

नाम प्रभाव जान सिव नीकें। कालकूट फलु दीन्ह अमी कें॥

यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम्।

(श्रीमद्भागवत ८। ८)

प्रगटी उदधि मथन में ज्वाला। जरे सुरासुर भए बिहाला॥
कीन्हि दया तहँ करी सहाई। नीलकंठ तब नाम कहाई॥

एक बार कैलासपर्वतपर भगवान् शिवके यहाँ रामकथाका आयोजन हुआ। श्रीवाल्मीकिजी महाराजने सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तृत कथा सुनायी। सभी देवता, गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, सिद्ध, असुर, किंनर आदि बड़े उत्साहसे भाग ले रहे थे। कथाके अन्तमें वे उसे अपने लोकोंमें ले जानेके लिये माँगने लगे और लड़ पड़े। ऊर्ध्व-लोकवासी देवताओंका कथन था कि 'हम भोगी—राजस स्वभावके प्राणियोंके लिये इसकी परम आवश्यकता है।' पाताल-वासी असुर-दानवोंका आग्रह था कि 'वे तमःप्रधान माया-मोहित जीव हैं, बिना श्रेष्ठ उपदेशके उनके आचरणमें सुधार होनेकी आशा नहीं की जा सकती।' भूलोकवासियोंका आग्रह था कि 'देवता-असुरादि योनियाँ स्वयं सबल तथा कृतार्थ हैं। दीन-हीन-दुर्बल प्राणियोंके लिये भगवत्-कथाकी तो उन्हें ही परम अपेक्षा है।'

भगवान् भोलेनाथने कहा कि 'लड़नेकी कोई बात नहीं, हम इसे बिल्कुल तीन भागोंमें ठीक-ठीक बाँट ही देते हैं। १०० करोड़के तीन भाग करनेपर ३३-३३ करोड़ हुए, किंतु

प्रह्लादके लिये अग्नि शीतल हो गयी

सब तापोंका नाश करनेवाली एक दवा—रामनाम

बाकी रह गया और उसके भी पूरे भाग करते-करते अन्तमें एक श्लोक पड़ा रह गया। अनुष्टुप् छन्दके ३२ अक्षर होनेसे वान्ने उसके भी तीन भाग कर दिये—दस-दस अक्षर नोंको मिले; किंतु पुनः दो अक्षर बच निकले। भगवान्ने वा ये 'रा' और 'म' थे। उन्होंने सबसे प्रार्थना की कि नके तीन भाग नहीं हो सकते और दो अक्षरोंके लिये झगड़ा र्थ है, वे उन्हें मेरे लिये छोड़ देनेका अनुग्रह करें।'

(आनन्दरामायण, यात्राकाण्ड, सर्ग २)

द्वेऽक्षरे याचमानाय मह्यं शेषे ददौ हरिः।
उपदिश्याम्यहं काश्यामन्तकाले नृणां श्रुतौ।

रामेति तारकं मन्त्रं तमेव विद्धि पार्वति॥

(आनन्दरामायण २। १५-१३)

महा राम ते नाम बड़ बर दायक बर दानि।
राम चरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड, २५)

सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि
लियो काढ़ि बामदेव नाम घृत है।

(विनयपत्रिका, २५४ वाँ पद)

वास्तवमें भगवान् शंकरके नामप्रेमका वर्णन नहीं हो सकता। बस—

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥

भक्त-शिरोमणि प्रह्लाद और भगवन्नाम

'नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥'*
'सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि प्रगट किए प्रहलादा॥'

(रामचरितमानस)

'सेवक एक ते एक अनेक भए तुलसी तिहुँ ताप न डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहलादहि को, जिन्ह पाहन तें परमेसुर काढ़े॥'
'भूरि दई बिष मूरि भई प्रहलाद सुधाइ सुधा की मलाई॥
राम कृपा तुलसी जन की जग होइ भले को भलोइ भलाई॥'

(कवितावली)

भक्तशिरोमणि श्रीप्रह्लादजीकी कथा संसार जानता है। पद्मपुराण-भूमिखण्डके अनुसार ये पूर्वजन्मके सोमशर्मा नामक ब्राह्मण थे। हरिहरक्षेत्रमें तप करते समय राक्षसोंकी टोलीके विघ्नद्वारा इनका भयसे प्राणान्त हुआ; फलतः अन्तकालमें राक्षसका दर्शन-ध्यान होनेसे इनका राक्षसकुलमें जन्म हुआ। गर्भावस्थामें ही इन्होंने श्रीनारदजीद्वारा भगवत्कथामृतका पान करनेका सौभाग्य पाया। अतः ये भागवतोंमें श्रेष्ठ हुए—

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक-
व्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुनवशिष्ठविभीषणादीन्
पुण्यानिमान् परमभागवतान्नमामि॥

इस श्लोकमें सर्वप्रथम प्रह्लादको ही नमस्कार किया गया है; क्योंकि सर्वथा विपरीत परिस्थितियों तथा भयानक उत्पीडनोंके बावजूद भी इन्होंने भगवद्भक्ति नहीं छोड़ी। जब भगवान्ने इन्हें वर माँगनेको कहा, तब इन्होंने स्पष्ट कह दिया—

कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥

(श्रीमद्भागवत ७। १०। ७)

'हे प्रभो! मेरे हृदयमें यदि कोई वर माँगनेकी कामना हो तो वह जलकर भस्म हो जाय और आगे कभी भी कोई वर माँगनेका अङ्कुर हृदयमें न उपजे।' जब पिताने पूछा कि 'किस जादूके प्रभावसे तुम अग्नि-विष आदिके प्रभावसे मुक्त हो जाते हो' तो उन्होंने भगवन्नामका ही बल बतलाया—

न केवलं मे भवतश्च राजन्
स वै बलं बलिनां चापरेषाम्।

(श्रीमद्भा० ७। ८। ८)

रामनाम जपतां कुतो भयं
सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसंनिधौ
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

अर्थात् सर्वतापशामक श्रीरामनामका ही यह अद्भुत प्रभाव है कि पावक भी मेरे लिये जलका काम कर

* भागवत ७। १०। २१ का भी यही कथन है—
भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः।
भवान् मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक्॥
'मेरे आगेके सभी भक्त तुम्हें ही आदर्श मानकर तुम्हारा अनुसरण करेंगे।'

रहा है। वज्राधिक कठोर हाथियोंके दाँत भी मुझसे टकराकर चूर्ण हो जाते हैं—

दन्ता गजानां कुलिशाग्रनिष्ठुराः
शीर्णा यदेते न बलं ममैतत्।
महाविपत्तापविनाशनोऽयं
जनार्दनानुस्मरणानुभावः ॥
(विष्णुपुराण १ । १७ । ४४)

श्रीप्रह्लादजीने भगवन्नामरूपी अद्भुत जादूके सहारे वज्राधिक कठोर हाथियोंके भयंकर दाँत, सर्पोंके तथा अन्यान्य एक-से-एक भयंकर विषोंके प्रभावको एकदम बेकार कर दिया। राक्षसोंके एक-से-एक भीषण शस्त्रास्त्र उनके सामने व्यर्थ सिद्ध हुए। उन्होंने इतिहासमें एक नयी कड़ी जोड़ी, एक नयी दिशा दिखलायी। उनके सामने अग्नि शीतल, विष अमृत, समुद्र छिछला तथा शत्रु भी मित्र एवं व्याघ्र, सर्प, हाथी आदि हिंस्र जन्तु भी परम शान्त हो जाते थे। इस तरह आप भक्तिके प्रवर्तकाचार्य हुए और भक्त-शिरोमणि कहलाये। किमधिकम्, इनकी स्मृतिसे भी परम शान्ति, उत्साह एवं ढाढ़स मिलता है—

होइ न बाँको बार भगत को, जो कोउ कोटि उपाय मरै।
जगत (वेद) विदित प्रहलाद कथा सुनि,
को न भगति पथ पाँव धरै। (विनयपत्रिका १३७)
राखन हारा साइयाँ, मार सकै ना कोय।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय॥

प्रह्लादजीको सर्वाधिक भगवत्प्रिय ज्ञानी भक्त* माना गया है—

सुमिरन साँचो कियो, लियो देखि सबहीमें,
एक भगवान कैसे काटै तरवार है॥
(भक्तमाल, प्रियादास० भक्तिरसबो० ९९)

पर 'चहू चतुर कहुँ नाम अधारा' के अनुसार वे अत्यन्त पवित्र विशुद्धतम स्थितिमें राग-रोष-लोभ क्षोभ-मोहादिसे सर्वथा शून्य रहकर भी निरन्तर नामस्मरण करते थे। इसी कारण इन्हें लाभ भी सर्वाधिक हुआ।† यही उनके जादूका रहस्य हो सकता है। अन्यथा प्रभु तो सबके लिये समान ही हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥
(गीता ९ । २९)

—इत्यादिके अनुसार वे सभीपर प्रह्लादके समान ही कृपा करनेको प्रस्तुत हैं।‡

सुतरां प्रह्लादजीके नाम-माहात्म्यसम्बन्धी कुछ वचन यहाँ दिये जा रहे हैं।

वे कहते हैं कि "पिशाचग्रस्त पागल प्राणीके समान जब भक्तिमें विभोर होकर मनुष्य 'हे हरे! हे जगत्पते! नारायण' आदि कहता हुआ लज्जा छोड़ पुकारने लगता है, तब वह समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है"—

यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद् हस-
त्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम्।
मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते!
नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ॥
तदा पुमान् मुक्तसमस्तबन्धन-
स्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः।
निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा
भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम्॥
(श्रीमद्भागवत ७ । ७ । ३५-३६)

---

* 'ज्ञानी प्रभुहि बिसेष पिआरा॥'
चतुर्विधा भजन्ते···। ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।

भागवतमें स्वयं प्रह्लादजी भी कहते हैं—'प्रभो! कहाँ तो तमोबहुल दैत्यवंशमें उत्पन्न हुआ मैं और कहाँ आपकी यह शिव, ब्रह्मा, तथा लक्ष्मीजीको भी न प्राप्त होनेवाली अनुपम अनुकम्पा? आपने तो अपने शीतल सुखद छाँहवाले, पाप-ताप-माया-नाशक करकमलको ही मेरे मस्तकपर रख दिया—

न ब्रह्मणो न च भवस्य न वै रमाया
यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः॥
(श्रीमद्भा० ७ । ९ । २६)

† वास्तवमें ज्ञानी ही दस नामापराधोंसे निरन्तर बच सकता है। 'ईशावास्यमिदं', 'वासुदेवः सर्वमिति' आदिके अनुसार वह सर्वत्र प्रभुका ही दर्शन करता है, फिर क्रोधादि कहाँ करे?

‡ श्रीलघुभागवतामृत ग्रन्थमें तो श्रीरूपगोस्वामीने युधिष्ठिर, उद्धव आदिपर भी प्रह्लादके ही समान भगवत्कृपा मानी है।
(द्रष्टव्य पृ० २ से ३०)

भगवान्‌के स्मरणमें कोई प्रयास न होकर आनन्द ही ता है। फलमें तो वह सर्वविध कल्याण प्रदान करता है।

प्रयासः स्मरणे कोऽस्य स्मृतो यच्छति शोभनम्।
(विष्णुपुराण १।१७।७८)

कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरे-
रुपासने स्वे हृदि छिद्रवत् सतः।
(श्रीमद्भागवत ७।७।३८)

इससे रात-दिन सभी पापोंका नाश भी होता रहता है—

पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम्।
(विष्णुपुराण १।१७।७८)

प्रह्लादका कथन था कि 'वास्तविक विद्या भी भगवन्नामकी गासे ही प्राप्त होती है; राज्यादिके संचालन, शरीरारोग्य— भीमें भगवत्स्मरण ही मुख्य है। अन्यथा असुरबालको! म्हारी तरह विश्वविद्यालय (University) की पढ़ाइयाँ तो ल्पज्ञानकर तथा हानिकर ही हैं, अतः सत्सङ्ग-भजन था प्रभुकी भक्ति ही करो।'

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः॥
(श्रीमद्भागवत ५।१८।१२)

प्रह्लादके सहपाठी यह सब सुनकर प्रेममें निमग्न हो गये। सभीने गुरुकुलकी पढ़ाई छोड़ दी। वाल्मीकिजी, तुलसीदासजी, व्यासजी, कालिदास आदि सभीने इसी मार्गसे पूर्ण सिद्धि पायी। पृथु-ध्रुवादिकी अद्भुत राज्यसिद्धियोंमें भी यही पद्धति हेतु थी।

वास्तवमें प्रह्लादजीका जीवनचरित्र भजन-मार्गके साधकोंके लिये सर्वथा आनन्दकारी है। गोस्वामीजी सभी श्रेष्ठ जापकोंकी प्रह्लादसे तुलना करते हैं—

राम नाम नरकेसरी कनक कसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल॥*

—आ० उ०

राम-नाम नहीं छोड़ूँगा

नहिं छोड़ूँ रे बाबा राम-नाम, मेरो और पढ़न सों नहीं काम॥
प्रहलाद पठाये पढ़न साल, संग सखा बहु लिये बाल।
मोकौं कहा पढ़ावत आलजाल, मेरी पटिया पै लिख देउ गोपाल॥
यह षंडामरके कह्यौ जाय, प्रहलाद बुलाये बेग धाय।
तू राम कहनकी छोड़ बान, तोहे तुरत छुड़ाऊँ कह्यौ मान॥
मोकौं कहा सतावौ बारबार, प्रभु जलथल नभ छाये पहार।
एक राम न छोड़ूँ गुरुहि गार, मोकौं घाल जार चाहे मार डार॥
काढ़ि खड्ग कोप्यौ रिसाय, कहँ राखनहारो मोहि बताय।
प्रभु खंभसे निकसे कर हुंकार, हरिनाकुस छेद्यौ नख विदार॥
श्रीपरम पुरुष देवाधिदेव, भक्त हेतु नरसिंह भेव।
कह कबीर कोउ लख न पार, प्रहलाद उबारे बार-बार॥
(कबीर साहेब)

* पू० गोस्वामीजी—'जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा', 'प्रभु सत्य कही प्रहलाद गिरा', 'नाम हरे प्रहलाद बिषाद' इत्यादि शब्दोंद्वारा मानस, कवितावली, दोहावली—आदिमें बार-बार निरन्तर उन्हें स्मरण करते नहीं अघाते। उन्होंने उन्हें कितनी बार स्मरण किया है, यह कहना कठिन है।

श्रीनारदजीको आपत्ति कहाँ ? वे तो रत्नाकरके परम कल्याणके लिये चिन्तित थे। उन्होंने सहर्ष रज्जुका दृढ़ बन्धन स्वीकार कर लिया।

दस्यु घर गया और भागा हुआ देवर्षिके पास आया तो अधीर और भयग्रस्त था। क्षोभ और विरक्तिसे उसका मन भर गया था। बन्धन-मुक्त करनेके पूर्व वह देवर्षिके चरणोंपर गिर पड़ा। 'आपका कथन सर्वांशतः सत्य निकला!' साश्रु-नयन बोला वह। 'मुझे दयापूर्वक क्षमा-प्रदान करें। कृपापूर्वक कल्याणका मार्ग बतायें। मैं आपका अनृणी नहीं हो सकूँगा। पर अब इस अधम कृत्यकी पुनरावृत्ति स्वप्नमें भी सम्भव नहीं।'

'राम-नामका जप करो।' नारदजीने सोचकर कहा—'भगवन्नाम भगवान्‌का साक्षात् स्वरूप है। परम भाग्यवान् पुरुषके मुखपर ही वह आता है।'

'चेष्टा करनेपर भी मैं यह नहीं कह पा रहा हूँ।' बड़ी दीनतासे अपनी असमर्थता निवेदित की रत्नाकरने महर्षिके सम्मुख।

'तो तुम मरा-मरा कहो!' आदेश देकर श्रीनारदजी चले गये।

'मरा-मरा-मरा-मरा........' रत्नाकर वहीं बैठकर जपने लगा। दिन-पर-दिन, मास-पर-मास और वर्ष-पर-वर्ष निकलते गये; पर वह ब्राह्मण मरा-मरा-मरा जपता रहा—जपता ही रहा। नेत्र बंद थे। जीभ हिल रही थी अनवरत। उसके शरीरपर दीमकोंने घर बना लिया। वह उनकी बाँबी—वल्मीकसे आच्छादित हो गया।

'वाल्मीकि!' विधाताने वल्मीकसे ढँके रहनेके कारण उसे सम्बोधित किया। अपने कमण्डलुके अमृत-जलसे दीमकोंके खाये हुए उनके अङ्गोंको उन्होंने सुन्दर और पुष्ट कर दिया था।

'राम-नामका अद्भुत प्रभाव! दिव्य चमत्कार!! परम क्रूर, कुटिलकर्मा दस्यु प्राणियोंका वध करनेवाला पापात्मा परम कारुणिक ऋषि हो गया। किसी व्याधको क्रौञ्च पक्षीके जोड़ेमेंसे एकका वध करते देखकर दयाविगलित हृदयसे उसके मुँहसे अनुष्टुप् छंद निकल पड़ा। उसीसे महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हुए।

अरण्यवासके समय भगवान् श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण और जानकीसहित उनके आश्रमपर पधारे। लोकापवादके भयसे श्रीसीताका मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने परित्याग कर दिया। उस समय वे इन्हीं महर्षिके आश्रममें पुत्री-तुल्य रहीं। वहीं लव-कुशका जन्म एवं उनकी शिक्षा सम्पन्न हुई। महर्षि वाल्मीकिविरचित रामायण आदिकाव्य एवं पञ्चम वेदके तुल्य पवित्र, आदरणीय एवं संसार-सागरसे त्राण करनेवाला है।

अध्यात्मरामायणके अयोध्याकाण्डमें राम-नामकी अमित महिमाका गान करते हुए श्रीवाल्मीकिजीने कहा है—

निरन्तराभ्यासदृढीकृतात्मनां त्वत्पादसेवापरिनिष्ठितानाम्।
त्वन्नामसंकीर्त्या हृतकल्मषाणां सीतासमेतस्य गृहं हृदब्जे॥

राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम्।
यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान्॥
(अध्यात्म० अयोध्या० ६। ६३। ४)

'निरन्तर अभ्यास करनेसे जिनका चित्त स्थिर हो गया है, जो सर्वदा आपकी चरणसेवामें लगे रहते हैं तथा आपके नाम-संकीर्तनसे जिनके पाप नष्ट हो गये हैं, उनके हृदय-कमलमें सीताके सहित आपका निवास-गृह है।'

'हे राम! जिसके प्रभावसे मैंने ब्रह्मर्षि-पद प्राप्त किया है, आपके उस नामकी महिमा कोई किस प्रकार वर्णन कर सकता है।'

मारुतिनन्दन श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा कहा हुआ महर्षि वाल्मीकिका यह सिद्ध मन्त्र है—

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमान् शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
(शि० पु०)

अर्जुनके रोम-रोमसे कृष्ण-नाम-ध्वनि

अर्जुनके रोम-रोमसे श्रीकृष्ण-नामकी ध्वनि

'भक्त धन्य हैं ! जो लौकिक-पारलौकिक समस्त मनाओंका त्याग करके श्रीहरिमें ही अपना चित्त लगा देते उनके चरणस्पर्शसे धरित्री धन्य होती है । उनकी स्थितिसे जगत् पवित्र होता है। उनके दर्शन-स्पर्श, संलाप-णका सौभाग्य सुरोंके लिये भी दुर्लभ है।' भगवान् शशाङ्क-खर कैलास पर्वतपर अपने वामभागमें विराजित श्रीपर्वत-ज-नन्दिनीसे आज भगवद्भक्तोंकी महिमाका वर्णन करनेमें ल्लीन थे।

'जिनका गुणगान करनेमें आपका शरीर पुलकपूरित हो रहा है, जिनका स्मरण करके आपके लोचन प्रेमाश्रुपूर्ण हुए हैं, उनका दर्शन करनेकी लालसा आपकी इस सेविकाके चित्तको चञ्चल करे, यह स्वाभाविक है।' भगवती पार्वतीने प्रार्थना की—'देव ! आज किसी भक्तश्रेष्ठका दर्शन करानेका अनुग्रह करें।'

'चलो, देवि !' भगवान् शिव तत्काल उठ खड़े हुए। 'साक्षात् श्रीहरिके दर्शनकी अपेक्षा भी उनके भक्तका दर्शन परम पावन है। जीवनके वे ही क्षण तो सार्थक हैं, जो भगवान्‌के स्मरण अथवा उनके भक्तोंके सांनिध्यमें व्यतीत हों।'

वृषभपर उमाको आगे बैठाकर त्रिपुरारि प्रभु बैठे। चलते-चलते देवी पार्वतीने पूछा—'हम कहाँ चल रहे हैं ? किन महाभागके दर्शन करके आज नेत्र सफल होंगे ?'

'हस्तिनापुर चलेंगे !' शंकरजीने बताया। 'जिनके रथका सारथि बनना श्यामसुन्दर स्वीकार करते हैं, उन महाभाग धनंजयके अतिरिक्त श्रेष्ठ भक्त भला धरापर कहाँ मिलता है।'

किंतु हस्तिनापुरमें अर्जुनके भवनके द्वारपर पहुँचनेपर पता लगा कि इस समय पार्थ शयन कर रहे हैं। देवी पार्वतीको भक्तका दर्शन करनेकी त्वरा थी; किंतु शंकरजीको उचित नहीं लगा कि वे स्वयं अर्जुनकी निद्रामें बाधा उत्पन्न करें। उन्होंने श्रीकृष्णका स्मरण किया। मयूरमुकुटी तत्काल उद्धवजी तथा महादेवी रुक्मिणी एवं सत्यभामाके साथ पधारे। उन्होंने भगवान् वृषभध्वजको प्रणाम किया और द्वारपर रुकनेका कारण पूछा।

'आप भीतर जाकर अपने सखाको जगा दें तो हम भी वहाँ आयें।' शंकरजीने सब बात बताकर कहा—'आज देवी पार्वती पृथानन्दनके दर्शनको उत्सुक हैं।'

'जैसी आज्ञा !' मस्तक झुकाकर श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवादिके साथ भीतर चले गये। उन्हें भीतर गये जब बहुत देर हो गयी और कोई संदेश नहीं आया, तब शंकरजीने ब्रह्माका स्मरण किया। हंसवाहन चतुर्मुख सृष्टिकर्ताके आनेपर उन्हें अर्जुनके कक्षमें शिवने भेजा। ब्रह्माजीके जानेपर भी देरतक संदेश नहीं आया तो देवर्षि नारदजीका स्मरण किया। आज्ञा पाकर देवर्षि भी श्रीकक्षमें गये; किंतु संदेश आना तो दूर, कक्षसे देवर्षिकी वीणाकी झंकृतिका स्वर सुनायी पड़ने लगा। अब पार्वतीने कहा—'यहाँ तो जो जाता है, वहींका हो जाता है। पता नहीं वहाँ क्या हो रहा है ?'

'आइये, अब हम स्वयं चलते हैं।' भगवान्‌ने देवी उमाको वृषभसे उतारा और उनके साथ वे अर्जुनके अन्तःपुरमें पधारे।

× × ×

उधर अर्जुनके कक्षकी अवस्था भिन्न थी। जब श्रीकृष्णचन्द्र कक्षमें पहुँचे, तब अर्जुन शयन कर रहे थे और उनके सिरहाने बैठी सुभद्राजी उन्हें पंखा झल रही थीं। अपने भाईको आया देखकर वे सहसा उठ खड़ी हुईं। सत्यभामाने सुभद्राका स्थान ले लिया और वे अर्जुनपर व्यजन करने लगीं। एक पंखा उद्धवने भी उठा लिया। रुक्मिणीजी पार्थके पैर दबाने बैठ गयीं, किंतु तत्काल चकित भावसे उद्धव तथा सत्यभामाने एक दूसरेकी ओर देखा। इसे लक्षित करके श्रीकृष्णने पूछा—'बात क्या है ?'

'धन्य हैं ये कुन्तीनन्दन !' उद्धवने गद्गद स्वरमें कहा। 'निद्रामें भी इनके रोम-रोमसे 'श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण' की ध्वनि निकल रही है।'

'यह तो इनके चरणोंसे भी निकल रही है !' रुक्मिणीजीने बताया।

'अरे !' श्रीकृष्ण अधिक समीप आ गये और अर्जुनके शरीरसे निकलती अपने नामकी ध्वनि कानमें पड़ी तो वे भक्तवत्सल प्रेमविह्वल होकर स्वयं अर्जुनके चरण दबाने बैठ गये। उन भुवनसुन्दरके नवनीत-सुकुमार करोंके स्पर्शसे

अर्जुनकी निद्रा और प्रगाढ़ हो गयी। अब किसे स्मरण रहता कि वे पार्थको जगाने भीतर आये हैं।

इसी वातावरणमें कक्षमें ब्रह्माजीने प्रवेश किया। भक्त शयन कर रहा है। उसके रोम-रोमसे 'श्रीकृष्ण' नामकी मधुर ध्वनि निकल रही है और स्वयं त्रिलोकीनाथ अपनी प्रियाके साथ उसके चरण दबा रहे हैं, यह दृश्य देखते ही ब्रह्माजी भावविह्वल होकर अपने चारों मुखोंसे वेद-स्तुति करनेमें लग गये।

देवर्षि नारद आये इसके अनन्तर। जहाँ परम गम्भीर सृष्टिकर्ता ही अपना भान भूले स्तवन करनेमें निमग्न थे, वहाँ उनके परम भावुक भक्तशिरोमणि देवर्षि कैसे सावधान रह पाते। नारदजीने वीणाकी झंकारके साथ संकीर्तन ही प्रारम्भ कर दिया।

देवर्षिकी वीणा-ध्वनि सुनकर उमा-महेश्वर कक्षमें पधारे; किंतु अर्जुनका अतर्क्य अलौकिक दिव्य प्रेम देखते ही वे भी भावसमुद्रमें निमग्न हो गये। वहाँ तो प्रेमका अपार पारावार उच्छलित हो रहा था। शंकरजीका डमरू डिमडिम नाद करने लगा और वे त्रिलोकीके आदिगुरु नृत्य करने लगे। पार्वतीजीने स्वरके साथ हरिगुणगान प्रारम्भ कर दिया। अर्जुनके प्रेमाम्बुपूरने पूरे समाजको आत्मविस्मृत करके प्रेम-मत्त बना दिया!
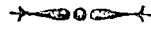
महाराज पृथु

महाराज पृथु आदिराज कहे गये हैं। उनका आदर्श शासन पीछेके सभी राजाओंके लिये कानून-सा बन गया था। 'पृथ्वी' शब्द उनके बादसे चला; क्योंकि भूमिदेवीने अपनेको उनकी पुत्री मान लिया था। वेनके राज्यमें भारी अकाल पड़ गया और भूमिपर बीज भी नहीं बच गये थे। किंतु पृथुने अपने पराक्रमसे भूमिको कामधेनु बना दिया। फिर उनका दोहन करके सभी देव-गन्धर्व, यक्ष, किंनर, मुनि, मानव आदिने अभीष्ट श्रेष्ठ पदार्थ पाये। गन्धर्व तथा चारणोंने जब उनकी स्तुति आरम्भ की, तब उन्होंने उन्हें मना कर दिया और कहा कि 'आपलोग मुझे लज्जित न करें। भगवान् उत्तमश्लोक विष्णुके स्तुति-यशके होते हुए असभ्यलोग ही उसका तिरस्कार करके अपना यश गवाते-सुनते हैं—

सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे
जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः॥
(श्रीमद्भागवत ४। १५। २३)

महान् गुणोंके न होनेपर भी केवल सम्भावनामात्रसे मूर्ख प्राणी ही अपनी स्तुति कराता है। इस प्रकारकी स्तुतियोंसे दूसरे लोग उसका उपहास कर रहे हैं, इसे प्रायः वह सहजमें समझ नहीं पाता—'जनावहासं कुमतिर्न वेद।'

उनके यज्ञमें जब भगवान् विष्णु प्रकट हुए और उन्हें वर माँगनेको कहा, तब उन्होंने यही माँगा कि—'प्रभो! विश्वमें जहाँ कहीं भी आपका सुयश होता हो, वह सब मैं अलग-अलग कानोंसे सुनकर अपने हृदयमें धारण कर लूँ। इसलिये कृपाकर अपना यश सुननेके लिये आप मुझे दस हजार कान प्रदान करें—

महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो
विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः॥
(श्रीमद्भागवत ४। २०। २४)

इस प्रकार महापुरुषोंके अन्तर्हृदयसे उद्गीर्ण प्रभुके नाम-यश-प्रार्थनाको ही वे निरन्तर सुनते रहते थे। उनका भगवन्नाममें अद्भुत प्रेम था। भजनकी महिमा बतलाते हुए उन्होंने कहा था—

भजन्त्यथ त्वामत एव साधवो
व्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम्।
भवत्पदानुस्मरणादृते सतां
निमित्तमन्यद् भगवन्न विद्महे॥
(श्रीमद्भागवत ४। २०। २९)

'प्रभो! आपमें माया, गुण आदिका संसर्ग नहीं है। आपके स्मरणसे भी अज्ञान, माया आदि भ्रान्तियाँ भाग जाती हैं। इसलिये जिनकी बुद्धि निरन्तर शुद्ध है, वे साधुजन अकारण ही निरन्तर आपका भजन करते रहते हैं—'तेषां स्वभावो भजनं हरेः।' वास्तवमें निरन्तर अकारण

भगवद्भजनका स्वभाव होना ही 'श्रेष्ठ साधुता' है। इसलिये उन्होंने भजन-कीर्तन तथा यशः-श्रवणके अतिरिक्त अन्य वर नहीं माँगा—

स उत्तमश्लोकमहन्मुखच्युतो
भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः ।
स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां
कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥
(श्रीमद्भागवत ४ । २० । २५)

खेद है, आजके पृथ्वीके शासकोंको पृथुके आदर्शका कोई ध्यान नहीं रहा !

श्रीहनुमान्‌जीका रामनाम-प्रेम

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपनें बस करि राखे रामू॥

वाल्मीकि-रामायणके अन्तमें आता है कि भगवान् श्रीरामके स्वधाम पधारनेके समय श्रीहनुमान्‌जीने पृथ्वीपर तबतक रहना स्वीकार कर लिया था,* जबतक कि रामकथाका अस्तित्व रहेगा। और रामनाम तथा रामगुणगानके वे इतने प्रेमी हैं कि सहजमें ही असंख्य रूप धारण करनेकी सिद्धि प्राप्त होनेसे सर्वत्र पहुँचकर बड़ी नम्रतासे प्रभुके नाम-यश-चरित्रका श्रवण करते हैं—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

इसीलिये काशीके प्रेतने पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजको जब हनुमान्‌जीका पता बतलाया, तब किसी मन्दिर या हनुमद्‌विग्रहका पता नहीं बतलाया, किंतु एक विशिष्ट स्थानके कथास्थलका ही नाम लिया।

बहुत लोगोंको अनेक विग्रहोंकी रचनापर शङ्का हो सकती है; किंतु वेदान्तदर्शन तथा पूर्वमीमांसादर्शनोंके देवताधिकरणोंमें, विविध विश्वव्यापी यज्ञोंमें इन्द्रादि देवताओंके अनेक विग्रह धारणकर एक ही साथ पहुँचकर भाग ग्रहण करनेकी क्षमताका निदर्शन किया गया है।† मानसादिमें भगवान्‌के तथा सीताजीके अनेक विग्रह धारण करनेकी बात कई बार आयी है—

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥
सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सकल सेवकाई॥

भगवान् श्रीकृष्णके भी १६१०८ महिषियोंके घरोंमें अलग-अलग रूप धारणकर निरन्तर रहनेकी बात श्रीमद्भागवतमें कही गयी है। इसी प्रकार विष्णुपुराण आदि पुराणोंमें सौभरि-कर्दम आदि योगी मुनियोंकी भी कथाएँ हैं। महाभारतमें भी स्पष्टरूपसे कहा गया है—

आत्मनो वै शरीराणि बहूनि भरतर्षभ।
योगी कुर्याद्बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत्॥
प्राप्नुयाद्विषयं कैश्चित् कैश्चिदुग्रं तपश्चरेत्।
संक्षिपेच्च पुनस्तानि सूर्यो रश्मिगणानिव॥
(महा० शान्ति० ३०० । २६-२७)

अर्थात् योगी योगबलसे अपने शरीरको अनेक रूपोंमें परिवर्तित कर सकता है। उनमेंसे कुछसे वह कठोर तप कर सकता है, कुछसे विषय-भोग और विभिन्न स्थानोंमें भ्रमण भी कर सकता है। योगवासिष्ठ (६ । ६४ । २९-३६) में भी इसके अनेक उदाहरण दिये गये हैं—यथा—

कार्तवीर्यो गृहे तिष्ठन् सर्वेषां भयदोऽभवत्।
विष्णुः क्षीरोदधौ तिष्ठन् जायते पुरुषो भुवि॥
पञ्चत्वं यान्ति योगिन्यो तिष्ठन्त्यो योगिनीगणे।
शक्रः स्वर्गासने तिष्ठन् याति यज्ञार्थमुर्विकाम्॥
सहस्रनेकं भवति तथा चास्मिञ्जनार्दनः।

—इत्यादि

कार्तवीर्य-अर्जुनने दत्तात्रेयसे योगकी शिक्षा पायी थी। (इसकी विस्तृत कथा मार्कण्डेयपुराणमें द्रष्टव्य है।) इसके राज्यमें यदि कोई कहीं भी चोरी आदि अपराध करनेको हाथ बढ़ाता तो कार्तवीर्य वहीं हजार धनुष-बाण धारण किये भयानक क्रुद्ध मुद्रामें प्रकट हो जाता था। भगवान् विष्णु सदा निजलोकमें रहते हुए ही अनेक अवतार भी धारण कर लेते हैं। इसी प्रकार इन्द्र—योगिनी आदि देव-देवियोंके उदाहरण हैं।

---

* यावत्तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी।
तावत्स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्॥
(वाल्मीकि० उ० १०८ । ३६)

† विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात्।
(वेदान्तदर्शन १ । ३ । ९ । २७)

हनुमान्‌जीके नाम-प्रेमकी कथाएँ बहुत-सी हैं। आनन्द-रामायण, मनोहरकाण्डके ७वें अध्यायमें हनुमान्‌जीकी सभी शक्तियोंका मूल 'रामनाम' दिखलाया गया है। तदनुसार राम-मन्त्रकी एक लाख आवृत्तियोंके पुरश्चरणके बाद आपने सीतान्वेषणके लिये लङ्कापुरीकी यात्रा की और अद्भुत सफलता पायी थी—

मारुतेर्दक्षिणे कर्णे श्रीरामेत्युपदेशितः।
तस्य मन्त्रस्य सकलं पुरश्चरणमुत्तमम्॥
लक्षसंख्यं विधायाशु प्रतस्थे दक्षिणां दिशम्।
तन्मन्त्रस्य प्रभावेण नानाजलचराकुलम्॥
दुर्गमं सागरं तीर्त्वा लङ्कामध्ये समाययौ।
युद्धं च तुमुलं जातं पश्चान्मन्त्रप्रभावतः।
दलितं राक्षसबलं दग्धा लङ्का हनूमता॥
रामनामप्रभावोऽयं महाराज युधिष्ठिर।
(आनन्दरामायण, मनोहरकाण्ड ७। २४। ४०-सार०)

आनन्दरामायण* तथा भागवतमें किम्पुरुषवर्षमें रहकर गन्धर्वोंद्वारा आपके सदा राम-गुणगानादि श्रवण करनेका उल्लेख है। रामरहस्योपनिषद्‌में भी आपके नामप्रेम तथा भक्तोंकी रक्षाकी विस्तृत चर्चा है।

रोम-रोममें राम

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरघुनाथजीका राज्याभिषेक सम्पन्न हो चुका था। अयोध्याके राजाधिराजको सब माण्डलिक नरेश अपनी भेंटें समर्पित कर चुके थे। प्रभुने बंदी-मागधादिको उपहार दिये। सबके अन्तमें सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान्, अङ्गदादिको वस्त्राभूषण स्वयं श्रीरघुनाथजीने अपने हाथोंसे अर्पित किये। सबके अन्तमें श्रीहनुमान्‌जीने उठकर श्रीसीता-रामके पादारविन्दोंमें मस्तक रखा। बड़े उल्लाससे जगन्माता साम्राज्ञी जानकीजीने अपने कण्ठसे मणिमाला निकाली और प्रभुकी ओर देखा। माला हनुमान्‌जीके गलेमें प्रभुने अपने हाथों डाल दी श्रीजानकीके करोंसे लेकर।

अयोध्याके रत्नागारके श्रेष्ठतम मणियोंकी वह माला। राज्याभिषेकके अवसरपर अवधकी साम्राज्ञीके कण्ठको भूषित करनेवाली वे मणियाँ—कुबेरके कोषागारमें भी उनकी समता कर सकें, ऐसे रत्न नहीं हो सकते। देवाधीश इन्द्र भी उन्हें पाकर अपना सौभाग्य मानते। किंतु कण्ठमें वह मणिमाला पड़नेपर श्रीहनुमान्‌जी तनिक चौंके। उनके मुखका भाव कहता था—'प्रभुने यह क्या अद्भुत वस्तु दे दी? मैं इसका भला, क्या करूँगा।'

एक कोनेमें जाकर पवनपुत्र बैठ गये। उन्होंने गलेसे वह मणिमाला उतारकर हाथमें ली और घुमा-फिराकर एक-एक मणिको देखने लगे। समस्त राजसभामें उपस्थित लोगोंकी दृष्टि हनुमान्‌जीपर लगी थी। वे जिस कुतूहल तथा अन्वेषणकी दृष्टिसे मणियोंको देख रहे थे, उससे स्पष्ट था कि उन मणियोंकी महत्ताका उन्हें बोध नहीं था। अनेक लोगोंके मुखोंपर हास्यकी रेखाएँ थीं। इतनेमें एक मणि तोड़कर श्रीअञ्जनीकुमारने मुखमें डाल ली और अपने वज्रके समान दाँतोंसे उसे फोड़ दिया। मणिके खण्डोंको हाथपर उगलकर वे उसे फिर देखने लगे। निराशासे उसे उन्होंने फेंक दिया भूमिपर और दूसरी मणि तोड़कर मुखमें डाल ली।

'आप इन सुरदुर्लभ अतिशय अलभ्य परम मूल्यवान् मणियोंको क्यों नष्ट किये दे रहे हैं?' यह प्रश्न विभीषणजीने ही किया। मणियोंका इस प्रकार तोड़ा जाना उनसे सहन नहीं हुआ था।

'इनमें न श्रीसीता-रामका साकार विग्रह है और न उनका नाम।' बड़ी सरलतासे हनुमान्‌जीने कहा। 'जहाँ यह न हो, उस पत्थरका क्या मूल्य। इनकी वह महामूल्यता ही मैं ढूँढ़ रहा हूँ।'

'तब आपके शरीरमें राम-नाम लिखा है?' झुँझलाहटमें किसीके मुखसे निकल गया।

'लिखा होना चाहिये।' हनुमान्‌जी गम्भीर तथा विश्वासपूर्ण स्वरमें बोले। 'किंतु देखा तो मैंने भी नहीं है। आप ठीक कहते हैं, यह मुझे देख लेना चाहिये। जिस वस्तुमें राम-नाम न है, वह देखने, छूने, रखने योग्य वस्तु हो ही नहीं सकती।'

पवनपुत्रने यह भी नहीं देखा कि किसने उनपर व्यंग्य किया था। मणिमाला उन्होंने भूमिपर डाल दी और अपने नखोंसे वक्षःस्थलका चर्म फाड़ दिया। उनके हृदयमें वे ही सिंहासनासीन श्रीसीताराम विराजमान थे और

---

* आनन्दरामायणमें अन्यत्र भी ऐसा कहा गया है। यथा—
श्रीरामेति परं मन्त्रशस्त्रं मे हृदयान्तरे।
तेन सर्वाणि रक्षांसि तृणरूपाणि साम्प्रतम्॥
(सारकाण्ड ९। ३०)

'यस्य ह वाव क्षुतपतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन् पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति।' यही बात ५। २५। ११ में भी दुहरायी है—

यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मा-
दार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा।
हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं
कं शेषाद् भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः॥*

अर्थात् भगवान्‌के सभी नाम परम मङ्गलमय हैं। विवश हुआ, छींकते, गिरते-पड़ते, छलपूर्वक भी मनुष्य उनके उच्चारण अथवा श्रवण करनेसे अशेष कर्मबन्धनको अनायास काट डालता है।

श्रीमद्भागवत ६। २। ४५—४९ में अजामिलोपाख्यानका उपसंहार करते हुए वे कहते हैं कि अजामिलके कर्म बहुत ही गर्हित थे। उसने समस्त धर्म-कर्म तथा सदाचारको डुबा दिया था और नीच दासीको अपनी स्त्री बना लिया था। फलतः वह नरकमें गिराया जानेवाला ही था; किंतु भगवन्नामकी दिव्य महिमा तो देखो कि वह उसे उच्चारण करते हुए भीषण नरकभयसे मुक्त हो गया। भला, जब अपने पुत्रके नामोच्चारणसे भगवन्नामोच्चारणके बहाने अजामिल-जैसा प्राणी भी भगवद्धामको प्राप्त हो गया, तब उनकी महिमा कौन कह सकता है, जो निरन्तर श्रीभगवन्नामको श्रद्धासे उच्चारण करते रहते हैं—

एवं स विप्लावितसर्वधर्मा
दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा।
निपात्यमानो निरये हतव्रतः
सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन्॥
नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं
मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात्।
न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो
रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा॥
म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥
(श्रीमद्भागवत ६। २। ४५-४६, ४९)

श्रीमद्भागवत १०। ६। २७—२९ में वे भगवन्नामके प्रभावसे डाकिनी-शाकिनी, राक्षसी, कूष्माण्ड, बालग्रह, भूत-प्रेत-पिशाच, यक्ष-राक्षस-विनायक, कोटरा, रेवती-पूतना, ज्येष्ठा, मातृका, उन्माद, अपस्मार, देह-प्राण-इन्द्रियद्रोही दोष, स्वप्नके उत्पात, वृद्ध ग्रह, शिशुग्रहोंके भयभीत होकर भागने तथा नष्ट हो जानेकी बात कहते हैं—

सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः।

श्रीमद्भागवतके १२वें स्कन्धमें श्रीशुकदेवजी महाराज कलियुगमें भगवन्नामकी विशेष महिमा बतलाते हुए कहते हैं—'राजन्! यद्यपि यह कलियुग प्रायः दोषोंका ही निधान है, तथापि इसमें एक महान् गुण भी है। वह यह कि श्रीकृष्णके कीर्तनमात्रसे ही वह समस्त दोषोंसे मुक्त होकर परम पदको प्राप्त कर लेता है।'

'सत्ययुगमें जो भगवान्‌के विशुद्ध ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञसे तथा द्वापरमें जो पूजासे फल प्राप्त होता है, वह सब कलियुगमें श्रीकृष्णनाम-कीर्तनमात्रसे ही प्राप्त हो जाता है।' (१२। ३। ५१-५२)

इनके भागवत-कथनसे अबतक कितने लोगोंका भाग्य बदला, श्रेय हुआ और कितनोंको मुक्ति मिली—यह कौन बतला सकता है। किमधिकम्—रामचरितमानस भी, जो आज विश्वमें कल्याणकी अद्‌भुत सुधाधारा प्रवाहित कर रहा है, शुकदेवजी तथा उनके भागवतसे कितना प्रभावित है—यह उन दोनों महान् ग्रन्थोंका कोई सौभाग्यशाली मननकर्त्ता ही जानता है। तभी तो गोस्वामीजी महाराज उन्हें हृदयसे स्मरण करते हुए बार-बार कहते हैं—

'कहौ जो भुज उठाइ मुनिबर कीर।'
'सुक सनकादि मुकुत बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ।'
'सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी।
नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥'

---

* श्रीमद्भागवत १२। ३। ४४ में भी इन्होंने इस बातको पुनः दुहराया है—

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान्।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः॥
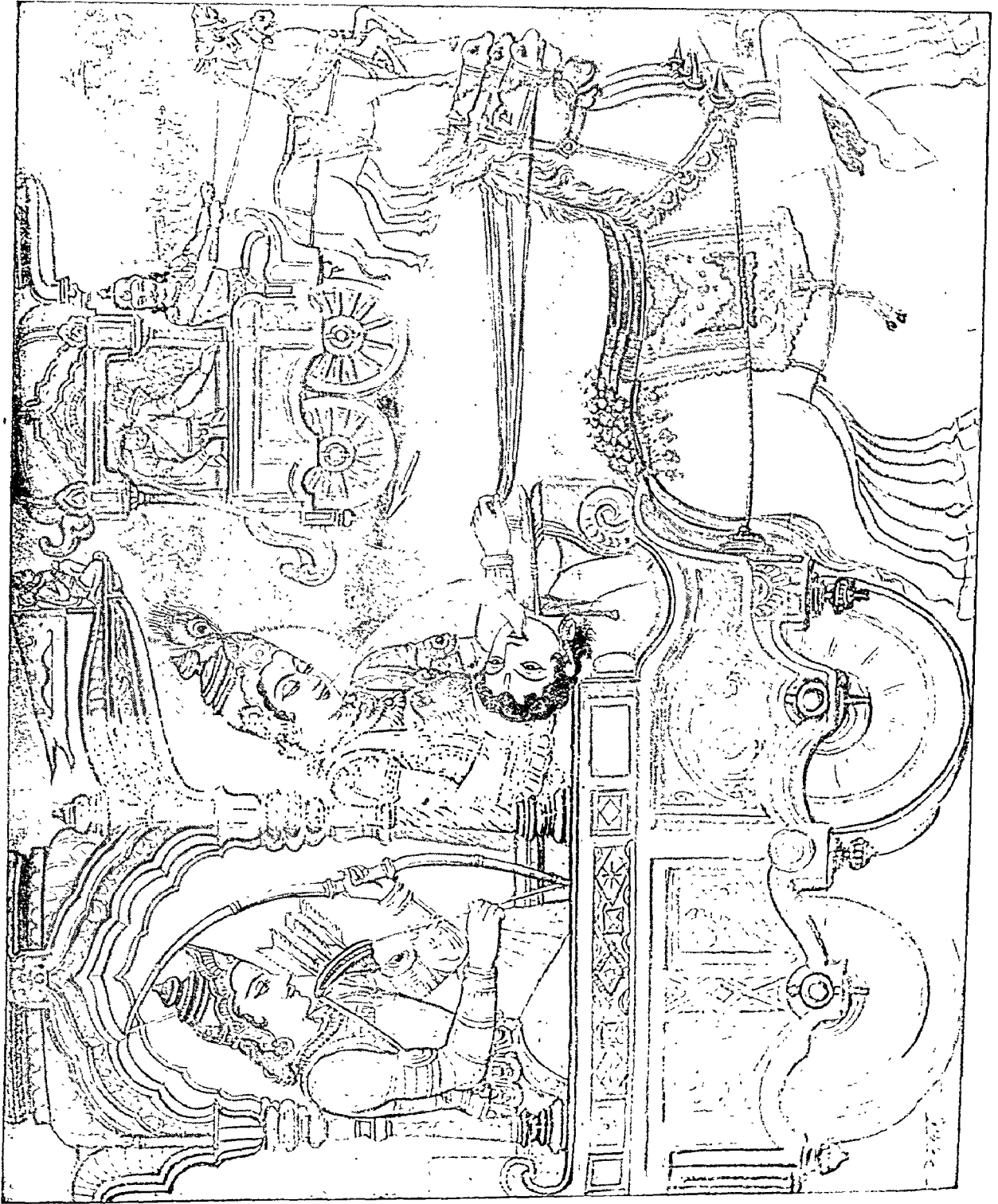
भगवन्नाम-ध्वनि करते हुए खौलते तेलमें भक्तश्रेष्ठ सुधन्वा

नगवान्के भक्त भगवान्से भी अद्भुत होते हैं। उनकी ारा कब कैसा रूप लेगी, कोई कल्पना भी नहीं कर । भीष्मपितामह-जैसे भक्तने अर्जुनके रथपर बैठे णका पूजन अपने तीक्ष्ण बाणोंसे किया था। ऐसा ही उस दिन आया, जब समाचार मिला कि धर्मराज ष्ठिरके अश्वमेध यज्ञका अश्व चम्पकपुरी राज्यकी सीमामें हुँचा है। पूरे भारतवर्षमें उस समय, जब कि धर्मराज ष्ठिर सम्राट् थे, चम्पकपुरी-जैसा धर्मनिष्ठ राज्य दूसरा था। जो भगवद्भक्त न हो और जो एकपत्नीव्रतका न न करे, वह चाहे कितना भी बड़ा विद्वान्, कलाविज्ञ शूर हो, उसे इस राज्यमें आश्रय नहीं मिलता था। जिस यका प्रत्येक जन एकपत्नीव्रती, धर्मपरायण तथा भगवद्-क्त था, उसीके अधिपति राजा हंसध्वजने आज्ञा दे दी—स अश्वमेधीय अश्वको पकड़कर बाँध लो।'

धर्मराज युधिष्ठिरके यज्ञका अश्व और उसकी रक्षा करते ल रहे थे श्रीकृष्णके बहिःप्राण धनंजय। श्रीकृष्णके बसे बड़े पुत्र प्रद्युम्न अर्जुनके साथ थे। बड़ी विशाल पाण्डव-ना एवं यादवसेना थी साथमें। नन्हा-सा राज्य चम्पकपुरी—गवद्भक्तोंका यह राज्य, अतः भय तो वहाँ किसीके चित्तको पर्श कर नहीं सकता था; किंतु अर्जुन तथा प्रद्युम्नका वागत होनेकी ही आशा सामान्यतः ऐसे स्थानपर की जा सकती थी। इधर महाराज हंसध्वजका कहना था—'मैं वृद्ध हो गया और अबतक भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे मेरे नेत्र सफल नहीं हुए। अब उन पुरुषोत्तमके दर्शन करने ही हैं मुझे। यह अश्व रोका जायगा और जबतक श्रीकृष्ण न पधारें, पाण्डव-यादव-वाहिनीको प्राण-संकटमें डाल देना है। अपने जनोंपर विपत्ति पड़नेपर वे करुणामय आये बिना रह नहीं सकते।'

राजाके गुरु थे—शङ्ख और लिखित। राजासे मन्त्रणा करके उन्होंने घोषणा कर दी—'कल प्रातःकाल अमुक समय-तक जो रणभूमिमें पहुँच नहीं जायगा, उसे खौलते तेलके कड़ाहेमें डाल दिया जायगा।'

महाराज हंसध्वज युद्धभूमिमें पहुँच गये। उनके प्रजाजन—युवकोंकी बात करना व्यर्थ है, वृद्धोंतकने कवच पहिने और शरासन सम्हाले। श्रीकृष्णचन्द्रको सम्मुख करके उनके श्रीचरणोंमें प्राणार्पणका यह पुनीत पर्व क्या जीवनमें बार-बार मिलना था। राजाके चारों पुत्र—[illegible] तथा सुदर्शन शस्त्रसज्ज रथोंपर बैठे युद्धारम्भकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहे थे; किंतु महाराजके नेत्र यह देखकर आतुर बन गये कि उनके सबसे छोटे कुमार सुधन्वाका कहीं पता नहीं है। सुधन्वाको पकड़ लानेके लिये उन्होंने सैनिक भेज दिये।

राजकुमार सुधन्वाका कोई दोष नहीं था। युद्धकी घोषणा होनेपर वे माताके समीप आज्ञा लेने गये। माताने सोल्लास आज्ञा दे दी। वहाँसे गये वे नव-विवाहिता पत्नीके समीप। उनकी बहिन कुवलाने ही उन्हें प्रेरित किया था कि वे पत्नीसे मिलकर जायँ। पत्नीने आग्रह किया—'आपके चले जानेपर एक अञ्जलि देनेवाला पुत्र रहना चाहिये।' उस साध्वीका हृदय कह रहा था कि उसे पतिका दर्शन पुनः नहीं होनेवाला है। पत्नीका आग्रह धर्मसंगत था। सुधन्वाको उसे स्वीकार करना पड़ा। वहाँसे पुनः स्नान करके, कवच धारणकर जब वे चले, उन्हें कुछ देर हो गयी थी। मार्गमें ही उन्हें अपने पिताके भेजे सैनिक मिले।

'तू मूर्ख है! पुत्र होनेसे ही सद्गति हो तो सब कूकर-शूकर उत्तम गति पा जायँ।' सुधन्वाके सामने आकर प्रणाम करनेपर उसकी बात सुनकर राजा हंसध्वज और क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने पुत्रको लताड़ते हुए कहा—'श्रीकृष्णका पावन नाम सुनकर भी तू कामके वश हो गया! ऐसे कामुक कुपुत्रका उबलते तेलमें जल मरना ही उचित है।'

राजाने पुरोहितोंके पास व्यवस्थाके लिये दूत भेजा तो वहाँसे संदेश आया—'जो मन्दबुद्धि लोभ, मोह या भयसे अपने वचनका पालन नहीं करता, नरकके दारुण दुःख उसे अवश्य मिलते हैं। जब सबके लिये एक ही आदेश था, तब राजा व्यवस्था क्यों पूछता है? अपने पुत्रका मोह उसे हो गया लगता है। ऐसे अधर्मीके राज्यमें हमें नहीं रहना है।'

यह समाचार पाकर राजा अपने पुरोहितोंको मनाने चल पड़े। उन्होंने मन्त्रीको आदेश दे दिया था—'सुधन्वाको तेलके खौलते कड़ाहेमें डाल दिया जाय!'

तेलका कड़ाहा अग्निपर चढ़ गया। तेल खौलने लगा। मन्त्रीको बहुत दुःख था; किंतु सुधन्वाको पकड़कर कड़ाहेमें

किसीको डालना नहीं पड़ा। सत्पुत्र स्वयं पिताकी आज्ञाका पालन करना अपना कर्तव्य मानता है। सुधन्वाने गलेमें तुलसीकी माला पहिनी और हाथ जोड़कर वह भगवान्‌की प्रार्थना करने लगा—'गोविन्द ! दयाधाम ! मुझे देहका मोह नहीं है। मृत्युका वरण करनेका निश्चय करके तो मैं यहाँ आया ही था। मुझे एक ही दुःख है कि आपके श्रीचरणोंका प्रत्यक्ष दर्शन मुझे नहीं हुआ। मैं आपका ध्यान करते हुए शरीर छोड़ रहा हूँ; अतः आपकी प्राप्ति तो मुझे होगी ही; किंतु लोग कहेंगे कि सुधन्वा तेलमें उबलकर मरा। मैं आपके भक्त अर्जुनके बाणोंको यह शरीर अर्पित करना चाहता हूँ। और चाहता हूँ मेरा यह शरीर आपके श्रीचरणोंमें पड़कर धन्य हो। आपने भक्तोंकी टेक रक्खी है, अपने जनोंकी आपने बार-बार रक्षा की है; मैं भी आपका ही चरणाश्रित हूँ, मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये। इस अग्निदाहसे बचाइये और इस देहको अपने श्रीचरणोंमें गिरने दीजिये !'

प्रार्थना पूर्ण करके 'श्रीकृष्ण ! गोविन्द !' पुकारते सुधन्वा कड़ाहेमें कूद पड़े। कोई आर्तहृदय पुकारे और वह मयूरमुकुटी न सुने, ऐसा तो कभी हुआ नहीं है। प्रह्लादके लिये उसने अग्निको शीतल कर दिया था, यह बात सत्ययुगकी होगी; किंतु इस द्वापरमें भी तो व्रजमें दो-दो बार उसने दावाग्निका पान किया था। क्या आश्चर्य था कि सुधन्वाके लिये आज खौलता तेल शीतल हो गया। किंतु सुधन्वाको शरीरका पता हो तो पता लगे कि तेल शीतल है या उष्ण। वह तो 'श्रीकृष्ण ! गोविन्द !' पुकारनेमें अपने शरीरका भान भूल चुका था। वह तल्लीन था नाम-स्मरणमें।

'सुधन्वा खौलते तेलमें तैर रहे हैं। उनका एक रोम भी झुलसा नहीं है।' आश्चर्यचकित मन्त्रीने राजाके पास यह संदेश भेजा। राजाके साथ उनके दोनों पुरोहित भी उत्सुकतावश आये।

'इसने शरीरमें कुछ लगाया होगा कड़ाहेमें कूदनेसे पूर्व। कोई मन्त्रादि जानता है यह !' पुरोहितोंकी यह पूछ-ताछ व्यर्थ हुई। जब ऐसा कुछ भी तथ्य नहीं मिला, तब उन्हें संदेह हुआ कि तेल गरम भी है या नहीं। एक नारियल उस कड़ाहेके तेलमें उन्होंने डलवाया। नारियल तेलमें पड़ते ही तड़ाकसे फूटा और उसके दो टुकड़े हो गये। दोनों टुकड़े उछले। एक टुकड़ा शङ्खके और दूसरा लिखितके सिरमें पूरे वेगसे लगा।

'मुझे धिक्कार है !' मस्तकमें नारियलके टुकड़ेका आघात लगा, तब शङ्खको बुद्धि आयी। वे बोले—'मैंने एक सच्चे भगवद्भक्तपर संदेहका पाप किया।' वे स्वयं कूद पड़े उस कड़ाहेमें, किंतु सुधन्वाके प्रभावसे उनके लिये भी तेल शीतल हो गया।'

सुधन्वाको आग्रहपूर्वक उन्होंने तेलसे निकाला। गद्गदकण्ठ वे कह रहे थे—'राजकुमार ! तुम्हारे स्पर्शसे आज मेरा यह अधम देह पवित्र हुआ। शास्त्रका ज्ञान और आचारपालन उसीका सफल है, जिसका प्रेम श्रीकृष्णमें है। त्रिभुवननाथ श्रीकृष्ण जिनका सारथ्य करते हैं, उन गाण्डीव-धन्वाको युद्धमें तुम्हीं संतुष्ट कर सकते हो। इस सेनाका सेनापतित्व आज तुम्हीं करो !'

सुधन्वा कड़ाहेसे निकले। पिताकी आज्ञासे उन्होंने कवच धारण किया और सेनानायक बने। अर्जुनकी सेनासे उस दिनका युद्ध अद्वितीय था। महाभारतके पूरे युद्धमें व्याकुल न होनेवाले सात्यकि-जैसे महारथी सुधन्वाके सम्मुख टिक नहीं सके। पाण्डव-सेनामें हाहाकार मच गया। अन्तमें अर्जुनको सम्मुख आना पड़ा।

'पार्थ ! आपके रथपर श्रीकृष्ण सारथि होकर सदा बैठे रहते हैं, इसलिये आप विजयी हैं। अपने उन समर्थ सारथिको आपने आज कहाँ छोड़ दिया ? कहीं मेरे साथ युद्ध करनेमें उन्होंने ही तो आपका साथ नहीं छोड़ दिया है ? मुकुन्दसे रहित आप मुझसे युद्ध कर सकेंगे ?' सुधन्वाने अर्जुनको देखते ही उत्तेजित किया।

अर्जुन क्रोधमें आये इन बातोंसे, किंतु उनका आवेश व्यर्थ था। उनके बाणोंको सुधन्वा हँसते हुए टुकड़े-टुकड़े कर देते थे। गाण्डीवधारीके दिव्यास्त्र इस राजकुमारने व्यर्थ कर दिये। स्वयं धनंजय घायल हो गये और उनका सारथि मारा गया।

'मैंने आपसे पहले कहा था कि यह सारथि आपका साथ नहीं दे सकता।' सुधन्वाने अर्जुनको ललकारा। 'युद्धमें मेरे सामनेसे भागना नहीं है तो अपने उस नित्य सारथिका स्मरण कीजिये !'

अर्जुनने एक हाथसे रथके घोड़ोंकी डोरी सम्हाली। एक

थसे युद्ध करते हुए मन-ही-मन वे श्रीकृष्णका स्मरण करने गे। श्रीकृष्णको कहींसे आना तो था नहीं। वे सर्वगत त्काल प्रकट हो गये। अर्जुनके रथकी रश्मि उन्होंने सम्हाल ी। सुधन्वा तथा अर्जुनने एक ही साथ उन्हें प्रणाम किया। धन्वाका उद्देश्य पूरा हो गया। अर्जुनको युद्धमें जिस लिये सने संत्रस्त किया था, वह काम बन गया। मयूरमुकुटी नश्याम सम्मुख आ गये। जीवन धन्य हो गया। कृत-त्य सुधन्वाने पार्थको ललकारा—'आप धन्य हैं, जिनके ारथि ये त्रिभुवननाथ बनते हैं; किंतु इनके आ जानेपर तो ाप अब दुर्बल रहे नहीं। अब तो मुझपर विजय पानेके लेये कोई प्रतिज्ञा कीजिये!'

'मेरे पूर्वज पुण्यहीन हो जायँ, यदि इन तीन बाणोंसे मैं सुधन्वाका सुन्दर मस्तक न काट दूँ!' आवेशमें क्रोधसे काँपते अर्जुनने त्रोणसे एक साथ तीन बाण निकाले और सुधन्वाको उन्हें दिखाते हुए प्रतिज्ञा कर ली।

सुधन्वाने हँसते हुए कहा—'विजय! जिसके रथपर ये बनमाली हैं, विजय तो उसकी निश्चित है; किंतु ये श्रीकृष्ण साक्षी हैं, मैं भी इन्हींके श्रीचरणोंके सम्मुख प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि आपके इन तीनों बाणोंको काट न दूँ तो मुझे घोर गति प्राप्त हो!'

प्रतिज्ञा करके सुधन्वाने बाणोंकी झड़ी लगा दी। अर्जुन तथा श्रीकृष्ण दोनों घायल हो गये। अर्जुनके दिव्य नन्दिघोष रथका एक अंश टूट गया और वह रथ सुधन्वाके शरोंकी चोटसे कुम्हारके चाककी भाँति घूमने लगा। श्रीकृष्ण बोले—'अर्जुन! मुझसे पूछे बिना प्रतिज्ञा करके तुमने अच्छा नहीं किया। तुम भूल गये कि तुम्हारी प्रतिज्ञाने जयद्रथ-वधके समय कितना संकट उपस्थित किया था। इस राज्यमें सब एकपत्नीव्रती हैं। इस व्रतके प्रभावसे सुधन्वा महान् है और इस विषयमें हम दोनों ही दुर्बल हैं।'

'श्यामसुन्दर! आपकी उपस्थितिमें मुझपर कोई संकट आ कैसे सकता है। आप आ गये हैं, अतः मेरी प्रतिज्ञा तो पूरी होगी ही।' यह कहकर अर्जुनने उन तीनों बाणोंमेंसे एकको धनुषपर चढ़ाया।

'मेरे गोवर्धन-धारणका पुण्य इस बाणके साथ!' श्रीकृष्णने अर्जुनके बाणको शक्ति प्रदान की। कालाग्निके समान वह बाण छूटा; किंतु सुधन्वाने—'गिरिधारी प्रभुकी जय!' कहकर बाण चला दिया। अर्जुनका बाण दो टुकड़े होकर गिर पड़ा। पृथ्वी काँप गयी। देवता आश्चर्यमें पड़ गये।

'अच्छा, दूसरा बाण संधान करो!' श्रीकृष्णने आज्ञा दी और बोले—'मेरे अनेकानेक पुण्य इस बाणको मैंने अर्पित किये।'

'श्रीकृष्णचन्द्रकी जय!' अर्जुनके धनुषसे बाण छूटते ही सुधन्वाने उच्चस्वरसे कहा और उनके धनुषसे भी बाण छूट गया। इस बार भी सुधन्वाने अर्जुनका बाण काट दिया। देवता सुधन्वाकी प्रशंसा करने लगे। युद्धभूमिमें हाहाकार मच गया। अर्जुन उदास हो गये।

अर्जुनके तीसरे बाणको श्रीकृष्णने अपने रामावतारका समस्त पुण्य दे दिया। बाणके पुच्छभागमें ब्रह्माजीको तथा मध्यमें कालको स्थापित करके बाणाग्रपर एक रूपसे स्वयं विराजे। सुधन्वाने तत्काल कहा—'मेरे स्वामी! मैं जान गया कि आप स्वयं मेरा वध करने—कण्ठका स्पर्श करके मुझे धन्य करने बाणपर बैठकर आ रहे हैं! आओ, नाथ! मुझे कृतार्थ करो। धन्य पार्थ! ये निखिल लोकके नाथ तुम्हारे बाणको अपना पुण्य ही नहीं देते, स्वयं उसपर आरूढ़ होते हैं; अतः विजय तो तुम्हारी निश्चित है। किंतु धनंजय! स्मरण रक्खो इन श्रीकृष्णकी ही कृपासे मैं तुम्हारे इस बाणको भी अवश्य काट दूँगा।'

बाण छूटा तो 'भक्तवत्सल गोविन्दकी जय!' कहकर सुधन्वाने भी बाण छोड़ दिया। कालदेवताकी शक्ति नहीं थी कि वे भक्तके प्रभावको रोक लेते। अर्जुनका बाण ठीक बीचमेंसे कटकर दो टुकड़े हो गया।

सुधन्वाकी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी। अब अर्जुनका प्रण पूरा होना था। कटे बाणका अग्रभाग गिरा नहीं। उसने सुधन्वाका मस्तक काट दिया। सुधन्वाका कटा मस्तक 'गोविन्द! मुकुन्द! हरि!' पुकारता श्रीकृष्णके चरणोंपर जा गिरा। श्रीकृष्णने रथ-रश्मि छोड़ दी और झटसे उस सिरको दोनों हाथोंमें उठा लिया। इसी समय उस मुखसे एक ज्योति निकली और सबके देखते-देखते श्रीकृष्णचन्द्रके श्रीमुखमें लीन हो गयी।

भक्तप्रवर श्रीसूरदासजी

भारतीय वाङ्मय अमर ग्रन्थ 'सूरसागर'के रचयिता भक्तप्रवर श्रीसूरदासजी दिल्लीसे थोड़ी ही दूरपर सीही गाँवमें सं० १५३५ वि०में एक निर्धन ब्राह्मणके घर वैशाख शुक्ला पञ्चमीको उत्पन्न हुए थे। इस नेत्रहीन बालककी प्रतिभा अत्यन्त प्रखर थी। ये बाल्यकालसे ही काव्य एवं संगीतका अभ्यास करते एवं श्रीकृष्णका ध्यान-भजन बड़े प्रेम एवं सावधानीसे करते। जहाँ-कहीं इन्हें एकान्त नहीं मिलता, वे सरक जाते। साधन और अभ्यासमें बाधा इन्हें सह्य नहीं थी।

पुष्टि-सम्प्रदायाचार्य महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी महाराजने संवत् १५६० वि०में व्रज-यात्राके समय मथुराके गऊघाटपर अस्थायी निवास किया। वहाँ श्रीसूरदासजीने महाप्रभुका दर्शन करके उनकी कृपा प्राप्त की। आचार्यने उन्हें दीक्षा दी। आचार्यके इष्टदेव श्रीनाथजीके प्रति श्रीसूरदासजीकी अपूर्व श्रद्धा-भक्ति थी। आचार्यकी कृपासे वे श्रीनाथजीके प्रधान कीर्तनकार नियुक्त हुए थे। प्रतिदिन श्रीनाथजीका दर्शन करके नये-नये पद श्रीनाथजीको सुनानेमें उन्हें बड़ा सुख मिलता।

श्रीराधाकृष्णके अनन्य अनुरागी श्रीसूरदासजी बड़े त्यागी एवं प्रेमी भक्त थे। मानस-पूजा इनकी सिद्ध थी। श्रीकृष्णकी लीलाओंका सुन्दर और सरस वर्णन करनेमें ये अद्वितीय थे। इनके वात्सल्य-वर्णनकी समता करनेवाला तो विश्वमें कोई साहित्य नहीं। साधन, भजन एवं भगवत्प्रेमकी तीव्र अनुभूतिका इनका मर्मस्पर्शी वर्णन बेजोड़ है।

इन महाभागवत श्रीसूरदासकी नाम-निष्ठा भी अद्वितीय थी। ये 'राम' नामको अत्यन्त अद्भुत, इहलोक और परलोकके लिये सुखद, दुःख हरण करनेवाला तथा भक्ति और ज्ञानका पंथ बताते हैं।

अद्भुत राम नाम के अंक।
धर्म-अँकुर के पावन द्वै दल, मुक्ति-बधू-ताटंक॥

× × ×

दुहूँ लोक सुख करन, हरन दुख, बेद-पुराननि साखि।
भक्ति-ग्यान के पंथ सूर ये प्रेम निरंतर भाखि॥

इतना ही नहीं, 'राम-नामकी ओट बहुत बड़ी है,' दयामय प्रभु अपनी शरण जानेपर किसीको निकालते नहीं, सबपर कृपा करते हैं। उनके समीप जानेपर छोटे-बड़ेका भेद नहीं रहता और जैसे पारसके स्पर्शसे लोहा भी सोना [हो] जाता है, उसी प्रकार प्रभुके संस्पर्शसे जीवका सारा पाप-त[ाप] मिट जाता है। वह शाश्वत सुख-शान्ति प्राप्त कर लेता है। श्रीसूरदासजीके शब्दोंमें—

बड़ी है राम-नाम की ओट।
सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा कें कोट॥
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ो को छोट।
'सूरदास' पारस के परसैं, मिटति लोह की खोट॥

मनुष्य जीवनके वास्तविक लक्ष्यकी सिद्धिके प्रति प्राय[ः] सावधानी नहीं रखता और देखते-देखते जीवन समाप्त हो जाता है। इस दशाको देखकर श्रीसूरदासजीने कहा है—

कहत है, आगे जपिहैं राम।
बीचहिं भई और की औरै, परयौ काल सौं काम॥

किंतु यदि भगवान्‌के नामका आश्रय लिया जाय तो सर्वत्र सुख-ही-सुख, सुविधा-ही-सुविधा, कल्याण-ही-कल्याण रहे। श्रीसूरदासजी कहते हैं—

जौ तू राम-नाम धन धरतौ।
अब कौ जन्म, आगिलौ तेरौ, दोऊ जन्म सुधरतौ॥
जम कौ त्रास सबै मिट जातौ, भक्त नाम तेरौ परतौ।
तंदुल-घिरत समर्पि स्याम कौं, संत-परोसौ करतौ॥
होतौ नफा साधु की संगति, मूल गाँठि नहिं टरतौ।
सूरदास बैकुंठ-पैठ मैं, कोउ न फैंट पकरतौ॥

इसीलिये वे बार-बार कहते हैं—

अब तुम नाम गहौ मन! नागर।
जातैं काल-अगिनि तैं बाँचौ, सदा रहौ सुख-सागर॥

× × ×

सूरदास प्रभु इहिं औसर भजि उतरि चलौ भवसागर॥

श्रीसूरदासजीकी नाम-महिमाके अनेक पद हैं। सभी एक-से-एक सरस, सुमधुर एवं हृदयतलको प्रभावित करनेवाले हैं।

'भरोसौ राम नाम कौ भारी'—

—से उनकी भगवन्नामकी निष्ठा प्रकट है।

श्रीसूरदासजीने प्रभुके नामका स्मरण करनेके लिये अपने अनेक सुमधुर पदोंमें आदेश दिया है। भगवन्नाम

कार लेना चाहिये और जीवन सफल करनेके लिये
वश्यक है, यह उनके निम्न पदमें प्रकट है—

मन कृष्ण नाम कहि लीजै ।
ऽ के वचन अटल करि मानहि, साधु-समागम कीजै ॥
ढ़िये, गुनिये भगति-भागवत, और कहा कथि कीजै ।
णनाम बिनु जनमु बादिही, बिरथा काहें जीजै ॥
णनाम-रस बह्यौ जात है, तृषावंत है पीजै ।
रदास हरि-सरन ताकिये, जनम सफल करि लीजै ॥

उके साथ ही आपने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि श्रीभगवन्नामका पान करनेवाला ही तत्त्वज्ञ है । श्रीभगवान्के पदकी सेवा करनेवाला श्वपच भी श्रेष्ठ हो जाता है और इसके बिना पवित्र ब्राह्मण-वंशमें उत्पन्न होनेपर भी जीवन व्यर्थ ही चला जाता है ।

सोइ भक्तौ जो रामहि गावै ।
स्वपचहु श्रेष्ठ होत पद सेवत,
बिनु गुपाल द्विज-जनम न भावै ॥

× × ×

—शि० दु०

श्रीनन्ददासजी

हारसिक प्रेमी भक्त श्रीनन्ददासजी श्रीश्यामा-श्यामके उपासक थे । आप शुक्ल ब्राह्मण श्रीजीवारामजीके पुत्र गोसाईं श्रीविट्ठलनाथजीके शिष्य थे । परम संत ासजी तथा महाभागवत श्रीतुलसीदासजीके प्रति अमित श्रद्धा थी । इन महात्माओंके सङ्गलाभसे भी उपकृत हुए थे ।

भक्तिरसके पूर्ण मर्मज्ञ एवं ज्ञानी थे । इनकी सरस ँ हृदयहारिणी हैं । अष्टछापके संत कवियोंमें महात्मा के बाद इन्हींका नाम लिया जाता है । कहावत है— सब गढ़िया, नंददास जड़िया' ।

ीकृष्णमें इनकी अनुपम आसक्ति थी । इन्होंने सम्पूर्ण ागवतको भाषाका रूप दिया ।

हमलोगोंकी जीविकाका कोई साधन नहीं रहेगा' दासजीके इस सरस अनुवादसे सशङ्क होकर कथा- और ब्राह्मणोंने श्रीविट्ठलनाथजीसे निवेदन किया ।

ुरुकी आज्ञासे श्रीनन्ददासजीने केवल व्रजलीला- पदोंके और मुख्यतया रास-रसके वर्णनको सुरक्षित लिया और शेष श्रीभागवतको कालिन्दीकी धारामें प्रवाहित कर दिया । उनकी गुरुके प्रति निष्ठाका यह उदाहरण है ।

श्रीनन्ददासजीकी नाममें अमित प्रीति थी । श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों ही एक ही तत्त्वके पृथक्-पृथक् रूप हैं । आप चाहे जिसकी उपासना करें, जिसके नामका स्मरण करें, जीवन सफल हो जायगा, आप धन्य हो जायँगे । अतएव प्रतिदिन प्रत्यूष-वेलामें शय्या त्यागते ही राम-कृष्ण-का परम कल्याणमय नाम लिया करें । जिस प्रकार चकोर चन्द्रको निहारता है, उसी प्रकार आप सब कुछ त्यागकर प्रभुका भजन करें । श्रीनन्ददासजीके ये पवित्र प्राणवान् विचार उन्हींके शब्दोंमें—

राम कृष्ण उठि कहिए भोर ।
अवध-ईस वे धनुष धरे हैं, यह ब्रज माखन-चोर ॥
उन के छत्र चँवर सिंहासन, भरत सत्रुहन लछमन जोर ।
इन के लकुट मुकुट पीतांबर, नित गायन सँग नंद-किसोर ॥
उन सागर में सिला तिराई, इन राख्यो गिरि नख की कोर ।
नंददास प्रभु सब तजि भजिए, जैसे निरखत चंद चकोर ॥

—शि० दु०

रामनाम-जापककी महिमा

तुलसी जाके बदन ते, धोखेहुँ निकसत राम ।
ताके पगकी पगतरी, मेरे तन को चाम ॥
तुलसी भगत सुपच भलौ, भजै रैन दिन राम ।
ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरिको नाम ॥
(गो० तुलसीदासजी)

श्रीगदाधर भट्ट

श्रीमहाप्रभु चैतन्यदेवके सम-सामयिक श्रीभट्टजी दक्षिण देशके किसी ग्रामके निवासी थे। आप श्रीराधा-कृष्णके बाल्य-कालसे ही अनन्य भक्त थे। इनका 'सखी, हौं स्याम-रँग रँगी'—पदको श्रीजीवगोस्वामीने सुना तो चकित हो गये। दो संतोंको एक पत्रके साथ इनके पास भेजा। भाव-विह्वल श्रीभट्टजी वृन्दावन आये और जीवनपर्यन्त उसी पावन भूमिमें रहे। सत्सङ्ग, अध्ययन और मननसे आपकी श्रद्धा और भक्ति अत्यधिक दृढ़ हो गयी। श्रीवृन्दावनमें आप श्रीमद्भागवतकी बड़ी ही विद्वत्तापूर्ण सरस कथा कहते, जिसे अच्छे-अच्छे संत बड़ी श्रद्धापूर्वक नियमित रूपसे सुनते। आप दैवी सम्पदाओंके भंडार, अद्वितीय उपासक एवं अनन्य नाम-प्रेमी थे। आपके सम्बन्धमें श्रीनाभादासजीने लिखा है—

सज्जन सुहृद सुसील, बचन आरज प्रतिपालै।
निरमत्सर निष्काम, कृपा-करुना कौ आलै॥
अनन भजन दृढ़ करन धर्यौ बपु भक्तन काजै।
परम धरम कौ सेतु, बिदित बृंदावन गाजै॥
भागवत-सुधा बरषै बदन, काहू कौं नाहिंन दुखद।
गुन-निकर गदाधर भट्ट अति, सबहिन कौं लागै सुखद॥

श्रीराधा-कृष्ण-प्रेम-पूरित आपकी रचनाएँ अत्यन्त सरस, अनुप्रासयुक्त एवं भक्ति-भावसे पूर्ण हैं। वे अत्यन्त उत्कृष्ट एवं भक्तोंको प्राणप्रिय हैं। आपके पदोंमें अनुराग और भक्तिकी स्वाभाविक प्रखर धारा प्रवाहित दीखती है। आप कहते हैं—'हे मेरी रसना! तू हरि-हरि रट। इसमें कोई श्रम नहीं और इस नाम-रटनसे बड़े-से-बड़े पातक कट जाते हैं और महामोह-तम नष्ट हो जाता है।' पूरा पद इस प्रकार है—

हरि! हरि! हरि! हरि! रट रसना मम।
पीवति-खाति रहति निधरक भइ, होत कहा तोकौं स्रम॥
तैं तौ सुनी कथा नहिं, मो-से उधरे अमित महातम।
ग्यान-ध्यान, जप-तप, तीरथ-ब्रत, जोग-जाग बिनु संजम॥
हेम-हरन, द्विज-द्रोह, मान-मद, अरु पर-गुरु-दारागम।
नाम-प्रताप प्रबल पावक में होत भसम अघ अमित सलभ सम॥
इहिं कलिकाल कराल ब्याल-बिष-ज्वाल बिषम भोये[1] हम।
बिनु इहि मंत्र 'गदाधर' कौ क्यों, मिटिहै मोह-महातम॥

परम करुणाकर श्रीभगवान्का सर्वविधमङ्गलाकर नाम न लेनेवालेके लिये आप कहते हैं कि 'श्रीहरिसे उनका नाम बड़ा है! अरे मूढ़! उसे ग्रहण करनेमें देर क्यों करता है? परापवादमें रचा-पचा तू व्यर्थकी बकवाद करता है, श्रीभगवान्-का नाम लेनेमें तेरा क्या जाता है? नामाश्रय नहीं लेनेपर तुम्हारी क्या दशा होगी?'

है हरि तें हरिनाम बड़ेरौ, ताकों मूढ़ करत कत झेरौ[2]।
प्रगट दरस मुचकुंदहि दीन्हो, ताहू आयसु यौ तप केरौ॥
सुत हित नाम अजामिल लीनौ, या भव में न कियौ फिरि फेरौ।
पर-अपवाद-स्वाद जिय राच्यौ, बृथा करत बकबाद घनेरो॥
कौन दसा ह्वैहै, जु 'गदाधर', हरि-हरि कहत जात कह तेरौ।

श्रीभट्टजीने जीवनभर श्रीमद्भागवत-प्रवचन, भगवत्सेवा, लीला और नाम-गुणानुवादगायन, संतोंका सेवन और नाम-जप करते हुए श्रीवृन्दावनधाममें निवास किया और अन्ततः उसी परम पवित्र लीला-भूमिमें अपना नश्वर शरीर त्याग कर श्रीकृष्णके सुखद चरणोंमें विलीन हो गये। —शि० दु०

श्रीगुणमञ्जरीदास

अत्यन्त निष्कपट एवं मधुर स्वभाववाले भक्त श्रीगुण-मञ्जरीदासजीका जन्म १८८४ विक्रमाब्दमें वृन्दावनमें हुआ था। संवत् १९४७ तक आपका शरीर भगवत्सेवामें लगा रहा। श्रीमद्भागवतमें आपकी बड़ी भक्ति थी। जीवनमें जो कुछ आय हुई, उसे आपने संतोंकी सेवामें व्यय कर दिया। व्रजभूमि, श्रीराधाकृष्ण एवं उनके नाममें आपकी बड़ी आस्था थी। पदोंमें आप अपना नाम 'गुनमंजरी' प्रयोग करते थे। आपके पद बड़े ही मधुर एवं सुन्दर होते थे। श्रीराधा-नाम आपको बड़ा प्यारा था। उसका वे बड़े प्रेमसे जप करते थे। इसे वे स्वयं अपने ही मुखारविन्दसे कहते हैं—

हमारैं धन स्यामा जू कौ नाम।
जाकौं रटत निरंतर मोहन, नंदनँदन घनस्याम॥
प्रतिदिन नव-नव महामाधुरी, बरसति आठौं जाम।
'गुनमंजरि' नवकुंज मिलावै श्रीबृंदाबन धाम॥

—शि० दु०

१. ग्रस्त, २. झेल, देर।

श्रीहठीजी

ये विक्रमकी उन्नीसवीं शतीमें हुए हैं। विस्तृत चरित उपलब्ध नहीं है। श्रीहितहरिवंशजीके अनुयायी रहे हैं। श्रीराधानाममें इनकी निष्ठा अद्भुत है। ये अपने सम्बन्धमें कुँवर कान्हसे माँग करते हैं 'हम नहीं चाहते देवतादि होना। मनुष्य बनाओ या पशु-पक्षी अथवा जड, किंतु बनाओ व्रजमें।

गिरि कीजै गोधन, मयूर नव कुंजन कौ,
पसु कीजै महाराज नंद के बगर कौ।
नर कौन ? तौन, जौन राधे-राधे नाम रटै,
तट कीजै बर कूल कालिंदी कगर कौ॥
इतने पै जोई कछु कीजिये कुँवर कान्ह,
राखिये न आन फेर 'हठी' के झगर कौ।
गोपी-पद-पंकज-पराग कीजै महाराज,
तृन कीजै रावरेई गोकुल नगर कौ॥

भवसिंधु पार करनेका एक ही निश्चित मार्ग ये बतलाते हैं—

राधा-राधा कहत हैं, जे नर आठो जाम।
ते भव सिंधु उलंघि कैं, बसत सदा व्रजधाम॥
राधा-राधा जे कहैं, ते न परैं भवफंद।
जासु कंधपर कर कमल धरे रहत व्रजचंद॥
अज-सिव-सिद्ध-सुरेस मुख जपत रहत बसु जाम।
बाधा जन की हरत है राधा-राधा नाम॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभुका नाम-चमत्कार

(श्रीचैतन्यचरितामृत, मध्यलीलासे)*

श्रीमहाप्रभुजीने संध्याके समय श्रीजगन्नाथजीके दर्शन किये एवं उनसे श्रीवृन्दावन जानेकी आज्ञा माँग ली। रातके पिछले पहरमें प्रभु उठकर चुपके-चुपके वहाँसे चल दिये। प्रातःकाल भक्तगण प्रभुको न देखकर बहुत व्याकुल हुए और इधर-उधर उनकी खोज करने लगे। श्रीस्वरूपगोस्वामीने सबको निवारण किया और कहा कि प्रभुकी इच्छा ऐसी ही जानकर आप स्थिर हो जाइये। श्रीमहाप्रभु प्रसिद्ध पथ—सड़कादिको छोड़कर अप्रसिद्ध मार्गसे चले और उन्होंने कटककी दाहिनी ओर बनमें प्रवेश किया। वह निर्जन वन था। प्रभु उसमें श्रीकृष्णका उच्चारण करते हुए जा रहे थे। हाथी, सिंहादि हिंसक पशु श्रीमहाप्रभुको देखकर रास्ता छोड़ देते। झुंडोंके झुंड व्याघ्र, हाथी, गैंड़ादि उस जंगलमें विचर रहे थे, किंतु श्रीमहाप्रभु प्रेमावेशमें उनके बीचोबीच चल रहे थे। उन सबको देखकर श्रीभट्टाचार्यका मन अत्यन्त भयभीत हुआ, किंतु वे हिंसक पशु श्रीमहाप्रभुके प्रतापसे एक तरफ हो जाते और प्रभु उनके बीच चले जाते।

एक दिन जब श्रीमहाप्रभु प्रेमावेशमें जा रहे थे, उनके रास्तेमें एक व्याघ्र सो रहा था। प्रभुका चरण उस व्याघ्रको लग गया। प्रभुने 'कृष्ण-कृष्ण' नामका उच्चारण किया। व्याघ्र उठकर 'श्रीकृष्ण-कृष्ण' कहकर नाचने लगा। और एक दिन प्रभु एक नदीमें स्नान कर रहे थे कि मतवाले हाथियोंका एक झुंड जल पीनेके लिये वहाँ आ पहुँचा। श्रीमहाप्रभु जल-कृत्य कर रहे थे, एक हाथी उनके सामने ही चला आया। प्रभुने 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर उसी हाथीपर जलका छींटा दे मारा। उस जलकी बूँदें जिस हाथीपर पड़ीं, वही कृष्ण-कृष्ण कहकर प्रेममें नाचने-गाने लगा। कोई तो पृथ्वीपर लोटने लगा और कोई चीत्कार करने लगा। श्रीभट्टाचार्य श्रीमहाप्रभुकी ये अलौकिक लीलाएँ देखकर चमत्कृत हो उठे।

* 'श्रीचैतन्यचरितामृत' बँगलाका बहुत ही प्रसिद्ध तथा बड़ा उपयोगी ग्रन्थरत्न है। इसके तीन खण्ड हैं। वृन्दावनके हकीम श्रीश्यामलालजीने उसका बड़ा सुन्दर हिंदी-अनुवाद किया है। उसके 'आदिलीला' तथा 'मध्यलीलाके' दो खण्ड प्रकाशित हो चुके है। 'अन्त्यलीला'का अनुवाद छप रहा है। बँगला न जाननेवाले इस सुन्दर ग्रन्थसे अवश्य लाभ उठावें। मिलनेका पता है—श्रीश्यामलालजी हकीम, लोई बाजार, वृन्दावन। उपर्युक्त प्रकरण उक्त 'मध्यलीला' ग्रन्थसे ही लिया गया है।

[पृष्ठ ४७

श्रीचैतन्यमहाप्रभुका नाम-चमत्कार

श्रीहठीजी

ये विक्रमकी उन्नीसवीं शतीमें हुए हैं। विस्तृत चरित उपलब्ध नहीं है। श्रीहितहरिवंशजीके अनुयायी रहे हैं। श्रीराधानाममें इनकी निष्ठा अद्भुत है। ये अपने सम्बन्धमें कुँवर कान्हसे माँग करते हैं 'हम नहीं चाहते देवतादि होना। मनुष्य बनाओ या पशु-पक्षी अथवा जड, किंतु बनाओ व्रजमें।

गिरि कीजै गोधन, मयूर नव कुंजन कौ,
पसु कीजै महाराज नंद के बगर कौ।
नर कौन ? तौन, जौन राधे-राधे नाम रटै,
तट कीजै बर कूल कालिंदी कगर कौ॥
इतने पै जोई कछु कीजियै कुँवर कान्ह,
राखिये न आन फेर 'हठी' के झगर कौ।
गोपी-पद-पंकज-पराग कीजै महाराज,
तृन कीजै रावरेई गोकुल नगर कौ॥

भवसिंधु पार करनेका एक ही निश्चित मार्ग ये बतलाते हैं—

राधा-राधा कहत हैं, जे नर आठो जाम।
ते भव सिंधु उलंघि कैं, बसत सदा व्रजधाम॥
राधा-राधा जे कहैं, ते न परैं भवफंद।
जासु कंधपर कर कमल धरे रहत व्रजचंद॥
अज-सिव-सिद्ध-सुरेस मुख जपत रहत बसु जाम।
बाधा जन की हरत है राधा-राधा नाम॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभुका नाम-चमत्कार

(श्रीचैतन्यचरितामृत, मध्यलीलासे*)

श्रीमहाप्रभुजीने संध्याके समय श्रीजगन्नाथजीके दर्शन किये एवं उनसे श्रीवृन्दावन जानेकी आज्ञा माँग ली। रातके पिछले पहरमें प्रभु उठकर चुपके-चुपके वहाँसे चल दिये। प्रातःकाल भक्तगण प्रभुको न देखकर बहुत व्याकुल हुए और इधर-उधर उनकी खोज करने लगे। श्रीस्वरूपगोस्वामीने सबको निवारण किया और कहा कि प्रभुकी इच्छा ऐसी ही जानकर आप स्थिर हो जाइये। श्रीमहाप्रभु प्रसिद्ध पथ—सड़कादिको छोड़कर अप्रसिद्ध मार्गसे चले और उन्होंने कटककी दाहिनी ओर वनमें प्रवेश किया। वह निर्जन वन था। प्रभु उसमें श्रीकृष्णका उच्चारण करते हुए जा रहे थे। हाथी, सिंहादि हिंसक पशु श्रीमहाप्रभुको देखकर रास्ता छोड़ देते। झुंडोंके झुंड व्याघ्र, हाथी, गैंड़ादि उस जंगलमें विचर रहे थे, किंतु श्रीमहाप्रभु प्रेमावेशमें उनके बीचोबीच चल रहे थे। उन सबको देखकर श्रीभट्टाचार्यका मन अत्यन्त भयभीत हुआ, किंतु वे हिंसक पशु श्रीमहाप्रभुके प्रतापसे एक तरफ हो जाते और प्रभु उनके बीच चले जाते।

एक दिन जब श्रीमहाप्रभु प्रेमावेशमें जा रहे थे, उनके रास्तेमें एक व्याघ्र सो रहा था। प्रभुका चरण उस व्याघ्रको लग गया। प्रभुने 'कृष्ण-कृष्ण' नामका उच्चारण किया। व्याघ्र उठकर 'श्रीकृष्ण-कृष्ण' कहकर नाचने लगा। और एक दिन प्रभु एक नदीमें स्नान कर रहे थे कि मतवाले हाथियोंका एक झुंड जल पीनेके लिये वहाँ आ पहुँचा। श्रीमहाप्रभु जल-कृत्य कर रहे थे, एक हाथी उनके सामने ही चला आया। प्रभुने 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर उसी हाथीपर जलका छींटा दे मारा। उस जलकी बूँदें जिस हाथीपर पड़ीं, वही कृष्ण-कृष्ण कहकर प्रेममें नाचने-गाने लगा। कोई तो पृथ्वीपर लोटने लगा और कोई चीत्कार करने लगा। श्रीभट्टाचार्य श्रीमहाप्रभुकी ये अलौकिक लीलाएँ देखकर चमत्कृत हो उठे।

* 'श्रीचैतन्यचरितामृत' बँगलाका बहुत ही प्रसिद्ध तथा बड़ा उपयोगी ग्रन्थरत्न है। इसके तीन खण्ड हैं। वृन्दावनके हकीम श्रीश्यामलालजीने उसका बड़ा सुन्दर हिंदी-अनुवाद किया है। उसके 'आदिलीला' तथा 'मध्यलीलाके' दो खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। 'अन्त्यलीला'का अनुवाद छप रहा है। बँगला न जाननेवाले इस सुन्दर ग्रन्थसे अवश्य लाभ उठावें। मिलनेका पता है—श्रीश्यामलालजी हकीम, लोई बाजार, वृन्दावन। उपर्युक्त प्रकरण उक्त 'मध्यलीला' ग्रन्थसे ही लिया गया है।

चै० च० सु० टीका—श्रीमहाप्रभुके चरण-स्पर्श करनेसे उनके मुखारविन्दसे 'कृष्ण-कृष्ण' नाम सुनकर व्याघ्र [-कृष्ण' कहकर नाचने लगा—ऐसा ऊपरके पैरामें गया है। यहाँ एक प्रश्न उठता है—व्याघ्र मनुष्यकी तो बोल सकता नहीं, फिर वह 'कृष्ण-कृष्ण' कैसे उठा होगा ? उत्तर—श्रीकृष्णनाम, रूप, गुण दि (श्रीकृष्णसे अभिन्न होनेके कारण ये सब भी) काश एवं अप्राकृत हैं। ये सब प्राकृत इन्द्रियोंसे नहीं हैं। वाक्शक्ति-सम्पन्न मनुष्य भी अपनी प्राकृत से श्रीकृष्णनामका उच्चारण नहीं कर सकता। हाँ, मनुष्य श्रीभगवान्‌के नाम लेनेकी इच्छा करता है, स्वयं कृपा करके उसकी जिह्वापर उदित होता है; कि कृष्णनाम श्रीकृष्णकी भाँति स्वप्रकाश-वस्तु है।

'भगवन्नाम ग्रहण करनेकी इच्छा होनेसे स्वप्रकाश वन्नाम मनुष्यकी जिह्वापर स्फुरित होता है। मनुष्य वन्नाम ग्रहण करनेकी इच्छा कर सकता है; क्योंकि में विचार-शक्ति है। किंतु विचार-शक्ति-हीन जंगली कैसे नाम ग्रहण करनेका इच्छुक हो सकता है ? और भगवन्नाम उसकी जिह्वापर स्फुरित हो सकता है ?' का उत्तर यह है कि यदि विचारशक्तिके ही होनेसे य नाम-ग्रहण करनेका इच्छुक होता या नाम ग्रहण ता तो सभी मनुष्य भगवन्नाम ग्रहण करते, किंतु ा दीखता नहीं। अनेकों यत्न करनेपर भी, अनेकों देश एवं प्रेरणाओंके करनेपर भी मनुष्य भगवन्नामकी र उन्मुख नहीं होता। इससे ज्ञात होता है कि भगवन्नाम ण करनेकी इच्छाका कारण मनुष्यकी विचारशक्ति नहीं है लेक महत्-कृपा या भगवत्-कृपा ही इसका एकमात्र कारण । यहाँ स्वयं भगवान् श्रीमन्महाप्रभु कृपा करके व्याघ्रादि गली पशुओंको 'कृष्ण' नाम बोलनेका आदेश कर रहे । अतः उनकी कृपा-शक्ति तथा इच्छा-शक्तिके प्रभावसे नमें भगवन्नाम-ग्रहण करनेकी इच्छा निश्चय ही जाग्रत् सकती है। वह जाग्रत् हो उठी और स्वप्रकाश श्रीकृष्णनाम उनकी जिह्वापर स्फुरित होने लगा।

और फिर आध्यात्मिक-शक्ति-शून्य एक साधारण मनुष्य जब व्याघ्र-हाथी आदि जंगली पशुओंको सिखा-बुझाकर अपने इच्छानुरूप उनसे काम ले सकता है, जैसा कि सरकस आदि खेल-तमाशोंमें हम नित्य देखते हैं और यहाँतक कि तोता, मैना आदिको 'राम'-'कृष्ण'-'हरि' बोलना सिखा सकता है तो फिर स्वयं भगवान्‌की अलौकिक असीम कृपा-शक्तिके आगे यह कौन-सी बड़ी बात है कि व्याघ्र-हाथी आदि 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर नाचने लगें। अनन्त अचिन्त्यशक्ति-सम्पन्न स्वयं भगवान् श्रीमहाप्रभुजीने जब उस व्याघ्रको चरण-स्पर्श किया एवं कृपापूर्वक जब उसे कृष्ण-नाम उच्चारण करनेका आदेश दिया तो उस व्याघ्रका प्रारब्ध-कर्मफल—जिसके कारण उसकी पशु-जन्मोचित जिह्वामें मनुष्यकी भाँति न बोल सकनेकी प्रकृति थी, वह तत्काल नाश हो गयी और उसकी जिह्वामें भगवन्नाम—श्रीकृष्णके उच्चारण करनेकी शक्ति आ गयी। उसका जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूपमें पशु-पक्षी, मनुष्य-देहाभिमानसे रहित चैतन्य-स्वरूपमें जाग उठा। स्वरूप-अवस्थित जीवात्मा पशुदेहमें रहते हुए भी श्रीकृष्णनामादिका उच्चारण कर सकता है। इसके अनेक प्रमाण हैं। श्रीमद्भागवतमें मृगदेहधारी श्रीभरतमहाराजने मृगदेहको त्याग करते समय **'नारायणाय हरये नमः'** (भा० ५। १४। ४५) का उच्चारण किया और गजराजने **'ॐ नमो भगवते तस्मै'** इत्यादि (भा० ८। २। ३) भगवन्नामोंका उच्चारण किया। अतः व्याघ्रादि हिंसक जीवोंद्वारा 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर नाचना कोई असंगत बात नहीं है, संगत एवं सम्भव ही है।

मार्गमें चलते हुए श्रीमहाप्रभु उच्चस्वरसे संकीर्तन करते थे। उनके कण्ठकी मधुरध्वनिको सुनकर मृगीगण एकत्रित हो जातीं और प्रभुके साथ उनके दायें-बायें मधुर ध्वनिको सुनते हुए चलने लगतीं। श्रीमहाप्रभु उनके अङ्गोंपर हाथ फेरते हुए श्लोक पढ़ने लगते।

जो नाम है, वही श्रीकृष्ण हैं

येइ 'नाम' सेइ 'कृष्ण' भजे निष्ठा करि। नामेर सहित आछेन आपनि श्रीहरि॥
सुन सुन ओरे भाई नाम-संकीर्तन। ये नाम श्रवणे हय पापविमोचन॥
'कृष्ण' नाम 'हरि' नाम बड़इ मधुर। येइ जन कृष्ण भजे-से बड़ चतुर॥

(श्रीचैतन्य-चरितामृत)

चै० च० चु० टीका—श्रीमहाप्रभुके चरण-स्पर्श करनेसे एवं उनके मुखारविन्दसे 'कृष्ण-कृष्ण' नाम सुनकर व्याघ्र 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर नाचने लगा—ऐसा ऊपरके पैरामें कहा गया है। यहाँ एक प्रश्न उठता है—व्याघ्र मनुष्यकी भाँति तो बोल सकता नहीं, फिर वह 'कृष्ण-कृष्ण' कैसे कह उठा होगा? उत्तर—श्रीकृष्णनाम, रूप, गुण लीलादि (श्रीकृष्णसे अभिन्न होनेके कारण ये सब भी) स्वप्रकाश एवं अप्राकृत हैं। ये सब प्राकृत इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं हैं। वाक्शक्ति-सम्पन्न मनुष्य भी अपनी प्राकृत जिह्वासे श्रीकृष्णनामका उच्चारण नहीं कर सकता। हाँ, जो मनुष्य श्रीभगवान्‌के नाम लेनेकी इच्छा करता है, नाम स्वयं कृपा करके उसकी जिह्वापर उदित होता है; क्योंकि कृष्णनाम श्रीकृष्णकी भाँति स्वप्रकाश-वस्तु है।

'भगवन्नाम ग्रहण करनेकी इच्छा होनेसे स्वप्रकाश भगवन्नाम मनुष्यकी जिह्वापर स्फुरित होता है। मनुष्य भगवन्नाम ग्रहण करनेकी इच्छा कर सकता है; क्योंकि उसमें विचार-शक्ति है। किंतु विचार-शक्ति-हीन जंगली पशु कैसे नाम ग्रहण करनेका इच्छुक हो सकता है? और कैसे भगवन्नाम उसकी जिह्वापर स्फुरित हो सकता है?' इसका उत्तर यह है कि यदि विचारशक्तिके ही होनेसे जीव नाम-ग्रहण करनेका इच्छुक होता या नाम ग्रहण करता तो सभी मनुष्य भगवन्नाम ग्रहण करते, किंतु ऐसा दीखता नहीं। अनेकों यत्न करनेपर भी, अनेकों उपदेश एवं प्रेरणाओंके करनेपर भी मनुष्य भगवन्नामकी ओर उन्मुख नहीं होता। इससे ज्ञात होता है कि भगवन्नाम ग्रहण करनेकी इच्छाका कारण मनुष्यकी विचारशक्ति नहीं है बल्कि महत्-कृपा या भगवत्-कृपा ही इसका एकमात्र कारण है। यहाँ स्वयं भगवान् श्रीमन्महाप्रभु कृपा करके व्याघ्रादि जंगली पशुओंको 'कृष्ण' नाम बोलनेका आदेश कर रहे हैं। अतः उनकी कृपा-शक्ति तथा इच्छा-शक्तिके प्रभावसे उनमें भगवन्नाम-ग्रहण करनेकी इच्छा निश्चय ही जाग्रत् हो सकती है। वह जाग्रत् हो उठी और स्वप्रकाश श्रीकृष्णनाम उनकी जिह्वापर स्फुरित होने लगा।

और फिर आध्यात्मिक-शक्ति-शून्य एक साधारण मनुष्य जब व्याघ्र-हाथी आदि जंगली पशुओंको सिखा-बुझाकर अपने इच्छानुरूप उनसे काम ले सकता है, जैसा कि सरकस आदि खेल-तमाशोंमें हम नित्य देखते हैं और यहाँतक कि तोता, मैना आदिको 'राम'-'कृष्ण'-'हरि' बोलना सिखा सकता है तो फिर स्वयं भगवान्‌की अलौकिक असीम कृपा-शक्तिके आगे यह कौन-सी बड़ी बात है कि व्याघ्र-हाथी आदि 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर नाचने लगें। अनन्त अचिन्त्यशक्ति-सम्पन्न स्वयं भगवान् श्रीमहाप्रभुजीने जब उस व्याघ्रको चरण-स्पर्श किया एवं कृपापूर्वक जब उसे कृष्ण-नाम उच्चारण करनेका आदेश दिया तो उस व्याघ्रका प्रारब्ध-कर्मफल—जिसके कारण उसकी पशु-जन्मोचित जिह्वामें मनुष्यकी भाँति न बोल सकनेकी प्रकृति थी, वह तत्काल नाश हो गयी और उसकी जिह्वामें भगवन्नाम—श्रीकृष्णके उच्चारण करनेकी शक्ति आ गयी। उसका जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूपमें पशु-पक्षी, मनुष्य-देहाभिमानसे रहित चैतन्य-स्वरूपमें जाग उठा। स्वरूप-अवस्थित जीवात्मा पशुदेहमें रहते हुए भी श्रीकृष्णनामादिका उच्चारण कर सकता है। इसके अनेक प्रमाण हैं। श्रीमद्भागवतमें मृगदेहधारी श्रीभरतमहाराजने मृगदेहको त्याग करते समय **'नारायणाय हरये नमः'** (भा० ५।१४।४५) का उच्चारण किया और गजराजने **'ॐ नमो भगवते तस्मै'** इत्यादि (भा० ८।२।३) भगवन्नामोंका उच्चारण किया। अतः व्याघ्रादि हिंसक जीवोंद्वारा 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर नाचना कोई असंगत बात नहीं है, संगत एवं सम्भव ही है।

मार्गमें चलते हुए श्रीमहाप्रभु उच्चस्वरसे संकीर्तन करते थे। उनके कण्ठकी मधुरध्वनिको सुनकर मृगगण एकत्रित हो जातीं और प्रभुके साथ उनके दायें-बायें मधुर ध्वनिको सुनते हुए चलने लगतीं। श्रीमहाप्रभु [illegible] अङ्गोंपर हाथ फेरते हुए श्लोक पढ़ने लगते।

जो नाम है, वही श्रीकृष्ण हैं

येइ 'नाम' सेइ 'कृष्ण' भजे निष्ठा करि। नामेर सहित आछेन आपनि
सुन सुन ओरे भाई नाम-संकीर्तन। ये नाम श्रवणे हय पाप[illegible]
'कृष्ण' नाम 'हरि' नाम बड़इ मधुर। येइ जन कृष्ण भजे-से [illegible]

(श्रीचैतन्य[illegible]

असमके प्रसिद्ध श्रीश्रीमहापुरुषिया सम्प्रदायके प्रवर्तक महात्मा श्रीशंकरदेव और महात्मा माधवदेव

श्रीशंकरदेव

शक १३७१ की कार्तिक अमावस्याकी मध्यरात्रिको असमके बटद्रवा (वर्तमान नाम बरदोआ, जि० नौगाँव) में श्रीशंकरदेवजीका जन्म हुआ। पिता श्रीकुसुमबर भूमाँ तथा माता सत्यसंधादेवी धन्य हुईं ऐसे भगवद्भक्त और प्रकाण्ड विद्वान् पुत्रको प्राप्त करके। देवताओंके समान सुन्दर एवं कान्तिमान् देह थी श्रीशंकरदेवकी। जातिके कायस्थ होनेपर भी बचपनसे ही संस्कृत पढ़नेकी इनकी रुचि थी और गीता तथा भागवत ही इनके प्रिय ग्रन्थ थे।

बचपनसे इनमें अनेकों योगसिद्धियाँ आ गयीं; किंतु इनको न सिद्धि प्रिय थी और न पाण्डित्य। ये भगवत्प्राप्तिके बाधक ही हैं—यह इनका मत था। असममें भगवन्नाम तथा भक्तिका इन्होंने व्यापक प्रचार किया। ११९ वर्षकी अवस्थामें हरीतकी वृक्षके नीचे समाधि लगाकर स्वेच्छासे इन्होंने देह-त्याग किया। इन महात्माके द्वारा रचित 'ईश-प्रार्थना' और 'नाममहिमा' नीचे दी जाती हैं—*

मधु-दानव-दारण-देववरं
वर-वारिज-लोचन-चक्र-धरम्।
धरणी-धर-धारण-ध्येयपदं
परमार्थधियाशुभनाशकरम्॥
कर-चूर्णित-चेदिप-भूरिभगं
भग-भूषणकार्च्चित-पादयुगम्।
युग-नायक-नागर-वेश-रुचिं
रुचिरांशुपिधान-शरीर-शुचिम्॥
शुचिचामर-वायु-निषेव्य-तनुं
तनुमध्यग-देह-सुवेशहनुम्।
हनुसन्त-हरीश-सहाय-रतं
रतराग-परायण-शत्रु-नतम्॥
नत-वर्तुल-पीन-सुदीर्घ-भुजं
भुजगाधिप-तल्प-शयानमजम्।
अजरामर-विग्रह-विश्वगुरुं
गुरु-गोधन-कामद-कल्पतरुम्॥
तरुणीमनमोहन-सर्व्वगुरुं
शुभमङ्गलदायक-नीलनिभम्।
इभ-कुम्भज-मौक्तिक-माल्यवहं
बहुलोरसमिष्टदसर्वसहम्॥
सदयायतपद्मदलाक्षचिदं
चित्सौख्यविनोदगवेदविदम्।
विदुषां मनमण्डनकम्बुगलं
गलशोभित-कौस्तुभ-भीमबलम्॥
बलभद्रसहोदर-सभ्य-वपुं
वपुनिर्जितविश्वसुरादिरिपुम्।
रिपु-यूथप-यूथप-दर्पहरं
हरमौलि-निघृष्ट-पदाम्बुरुहम्॥
परलोक-सहाय-सहस्रमुखं
मुखरालिकुलाकुलमाल्यसुखम्।
सुख-मोक्षद-दक्ष-रमारमणं
मनसापरिमेय-सहस्रफणम्॥
प्रणतोऽस्मि नतोऽस्मि नतोऽस्मि हरिं
हरिवैरि-कृतासन-भोज्य-हरिम्।
हरि-किंकर शंकर ईशपदे
पदमिच्छन् गायति चामृतदे॥

नाम-महिमा

यतो नामैव परमं तीर्थक्षेत्रं च पुण्यदम्।
नामैव परमो देवो नामैव परमं तपः॥
नामैव परमं दानं नामैव परमा क्रिया।
नामैव परमो धर्मो नामैवार्थः प्रकीर्तितः॥
नामैव कामो भक्तानां नाम मोक्षश्च केवलम्।
एतेषां साधनं नाम कामिनां कामसाधनम्॥
नामैव परमा भक्तिर्नामैव परमा गतिः।
नामैव परमं आर्ग्यं नामैव आप्यगुनागम्॥

---

* इनकी और श्रीमाधवदेवजीकी 'ईश-प्रार्थना'के प्रेषक हैं, श्रीअतुलकृष्ण गोस्वामी बी० ए० महोदय और दोनोंकी ही 'नाम-महिमा'के प्रेषक हैं—श्रीभवेंधर नामलगवा महोदय। हम दोनों ही महानुभावोंकी इस कृपाके लिये उनके कृतज्ञ हैं। —सम्पादक

निष्कामानां धनं नाम मुक्तिभुक्तिसुखार्थकम्।
नाम स्यात् परमं सौख्यं नाम वैराग्यकारणम् ॥
सत्त्वशुद्धिकरं नाम नाम ज्ञानप्रदायकम्।
मुमुक्षूणां मुक्तिप्रदं कामिनां कामदं स्मृतम् ॥
वैष्णवानां धनं नाम तस्मान्नाम सदा स्मर।
न देशकालकर्तॄणां नियमो नामकीर्तने ॥
न पात्रनियमश्चात्र वर्तते द्विजसत्तम।
ज्ञानाज्ञानाद्धरेर्नामकीर्त्तनात् पुरुषस्य शम् ॥

श्रीमाधवदेव

संत श्रीमाधवदेवजी महापुरुष श्रीशंकरदेवजीके शिष्य थे। उनके द्वारा भी रचित 'ईश-प्रार्थना' और 'नाममहिमा' निम्नलिखित हैं—

ईश-प्रार्थना

ए राम राम जय परमानन्द।
पियो तयु चरण-कमल-मकरन्द ॥
ए राम रामकृष्ण राम नारायण।
तयु पद-कमले मजोक मेरि मन ॥
ए राम रामकृष्ण राम निरञ्जन।
तुमि से ईश्वर देव भकत-रञ्जन ॥
ए राम रामकृष्ण रामकृष्ण राम।
तुमि गुण-नियन्ता, निर्गुण, गुण-धाम ॥
रामकृष्ण रामहरि रामचन्द्र राम राम।
श्रीराम देव रघुपति ॥
हे प्रभु रघुनाथ प्रणामो दमाया माथ।
तुमि मोर हैबा निजगति हरि राम ॥
रघु-कुल-नन्दन मुरारि।
गोपाल गोविन्द राम गोपाल गोविन्दराम ॥
गोपाल गोविन्द जय राम।
तोमार चरणे हरि केवल भकति बिने ॥
मोर आर नाहि, आन काम हरि राम।
गोपीनाथ गोपीनाथ गोपीनाथ गोपीनाथ ॥
गोपीनाथ गोपीनाथ हरि।
तोमार अभय दुइ चरणे शरण थैलो ॥
हैयो मोक निज दास करि हरि राम ॥

× × ×

तुमि चित्तवृत्ति मोर प्रवर्तक नारायण।
तुमि नाथ मइ नाथवन्त ॥
चरण-छत्रर छाया दिया, दूर करा माया।
करा दया मोक भगवंत ॥
तुमि मोर अंतर्यामी, तयु भृत्य मैलो आमि।
जानि कृपा करा हृषीकेश ॥
दान्ते तृण तुधि लओं पिमते सेवात रओं।
दिया मोक सेहि उपदेश ॥
न जानोहो आवाहन न जानोहो विसर्जन।
पुजामंत्र ना जानो किंचित ॥
एतेके परमेश्वर आस मैलो चरणर।
मार गति सधिबे उचित ॥

नाममहिमा

राम जय हरि जय रामकृष्ण रामहरि जय।
रामकृष्ण जितो सतते सुमरे तार आर काक भण ॥
सकले धर्मर ओपरे बशिया रामनाम प्रकाशय।
रामकृष्ण नाम-कीर्तन बिनाय कृत्य शेष नथा कय ॥
रामकृष्ण नाम-कीर्तने कृष्णर कृपार मन्दिर हय।
रामकृष्ण नाम-कीर्तन-प्रभावे संसार सुखे तरय ॥
रामकृष्ण नाम रसक लभिया मुकुतिको न गणय।
रामकृष्ण नाम परम आनन्द-समुद्रे मजि थाकय ॥

राम कृष्ण राम कृष्ण राम हरि हरि।
राम ते रमो हो अबिराम राम राम ॥
रामनाम धर्म अनुपाम हरि हरि।
पुरे भकतर मन-काम राम राम ॥
कलियुगे रामनामे सार हरि हरि।
रामनाम बिने नहि आर राम राम ॥
राम बुलि पावे भवपार हरि हरि।
रामनामे जगत-उद्धार राम राम ॥
रामनाम अमुल्य रतन हरि हरि।
रामनाम बिने नाहि धन राम राम ॥
रामनाम मुक्ति-विडम्बन हरि हरि।
जप रामनाम अनुक्षण राम राम ॥
राम राम भकति सुगम हरि हरि।
राम नाम पातकर जम राम राम ॥
रामनाम धर्मते उत्तम हरि हरि।
नाहि भक्ति रामनाम सम राम राम ॥

नाम-प्रेमिका मीराँबाई

नातो नाँव को जी म्हांसूँ तनक न तोड़यो जाय।
पाना ज्यूँ पीली पड़ी रे, लोग कहै पिंड रोग॥
छाने लाँघण म्हे किया रे, राम मिलण के जोग॥
बावल बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हारी बाहँ।
मूरख बैद मरम नहिं जाणै कसक कळेजे माहँ॥

निरन्तर भजन-कीर्तनमें कालयापन करनेवाली प्रेममयी मीराँबाई प्रेम-समाधिमें कई दिनतक अन्न-ग्रहण नहीं करती। प्रेम-समाधिमें पड़ी रहती। समझानेपर श्रीकृष्ण-प्रेमकी ही बातें करती। दुर्बल शरीर देखकर घरवालोंने वैद्य बुलाया। मारवाड़से पिता भी वैद्य लेकर आये। श्रीकृष्ण-प्रेममें व्याकुल मीराँने उस समय उपर्युक्त पद गाया।

इस महिमामयी देवीने मारवाड़के कुड़की नामक ग्राममें संवत् १५५८-५९ के लगभग जन्म लिया था और संवत् १५७३ में चित्तौड़के सीसोदिया वंशमें महाराणा सांगाके ज्येष्ठ पुत्र भोजराजके साथ इनका मङ्गलपरिणय हुआ। इन्होंने विवाहके समय अपने बाल्यकालके प्राणधन श्रीगिरधरलालजी-के श्रीविग्रहके साथ फेरा लिया था। नारी-जातिको पुनीत करनेवाली यह गौरवमयी देवी श्रीगिरधरलालको ही अपना पति मानती थी।

उन्हींके प्रेममें दिन-रात छकी रहती और अत्यन्त सरस पदोंमें उन्हें अपने हृदयकी व्यथा सुनाया करती। मीराँकी उत्कण्ठा, मीराँका उन्माद और मीराँकी लालसा परम दिव्य एवं अनुपम थीं और इसी कारण उसने श्रीकृष्णको अपना बना लिया था।

मीराँका प्रेम, मीराँका विश्वास अद्वितीय था। वह अपना अधिक-से-अधिक समय अपने जीवन-धन, परम प्रियतमके ध्यान, प्रार्थना एवं उनके नाम-कीर्तनमें व्यतीत करती।

विधिके विधानसे संवत् १५८० के आस-पास कुमार भोजराज परलोक सिधारे। राजगद्दीपर मीराँके देवर विक्रमाजीत आसीन हुए। साधु-महात्माओंका सङ्ग एवं उनकी संनिधिमें भजन-कीर्तन—मीराँका यह ढंग उन्हें बहुत अखरा। मीराँको समझाया गया तो उन्होंने अपना दृढ़ संकल्प प्रकट कर दिया।

बरजी मैं काहू की न रहूँ।
सुणौ री सखी! तुम चेतन होके, मन की बात कहूँ।
× × ×
मन मेरो लाग्यो सुमरण सेती, सबकी मैं बोल सहूँ।

उन्होंने और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा—

राम-नाम की झथाझ चलास्याँ,
भवसागर तिर जास्याँ हो माय।

श्रीमीराँके दृढ़ निश्चय, अटल विश्वास, पूर्ण निर्भयता एवं अनुपम त्यागको विक्रमाजीत नहीं समझ सके। उन्होंने चरणामृतके बहाने मीराँको विष भेज दिया। 'राणाजी जहर दियो मैं जाणी'—विष जानकर भी प्रभुपर दृढ़ आस्था रखनेवाली मीराँ प्रभुके चरणामृतके नामपर उसे हँसते-हँसते पी गयी। विष अपना प्रभाव खो चुका था।

ज्यों-ज्यों मीराँकी सत्संगति एवं कीर्तन-रतिमें वृद्धि होती गयी, त्यों-त्यों राणा विक्रमाजीतका रोष बढ़ता गया। मीराँकी जीवन-लीला समाप्त करनेके लिये उन्होंने शालग्राम-के नामपर भयानक नागिन पिटारीमें भेज दी। कालिय-मर्दन श्रीकृष्णके प्रेममें उन्मत्त मीराँके लिये नागिन सचमुच शालग्रामकी मनोहर मूर्ति बन गयी। प्रभुके दर्शन करके मीराँने नाचते हुए गाया—

मीराँ मगन भइ हरि गुण गाय।
साँप पिटारा राणा भेज्या, मीराँ हाथ दिया जाय।
न्हाय-धोय जब देखण लागी, सालगराम गई पाय॥
मीराँ के प्रभु सदा सहाई, राखे बिघ्न हटाय।
भजन भावमें मस्त डोलती, गिरिधर पै बलि जाय॥

अन्ततः तंग आकर प्रेममयी मीराँ वृन्दावन चली आयी। वहाँ श्रीकृष्ण-दर्शनके लिये विरह-गीत गाती कुञ्ज-कुञ्जमें भटकती फिरतीं। मीराँके प्रेमसे प्रभावित होकर भगवान्‌को आना पड़ा। मीराँने कृतार्थ होकर कहा है—

आज मैं देख्यो गिरधारी।
सुंदर बदन मदन की सोभा चितवन अनियारी॥

वृन्दावनमें कुछ काल निवास करनेके बाद मीराँ संवत् १६०० के आस-पास द्वारका जाकर श्रीरणछोड़ भगवान्‌के दर्शन और भजनमें अपना समय बिताने लगी। कहते हैं

राणा उन्हें ले जानेके लिये एक बार आये और क्षमा-याचना भी की, पर भजन-कीर्तनकी उन्मादिनी मीराँने लौटना स्वीकार नहीं किया।

उन्होंने द्वारकामें रहकर गुजरातीमें भी बहुत-से पदोंकी रचना की है। उनके वे पद गुजरातमें बड़े चावसे गाये जाते हैं। उनमें एक पद यह है—

बोलु मा, बोलु मा, बोलु मा रे
राधाकृष्ण बिना बीजुं बोल मा रे॥
साकर शेलडीनो स्वाद तजीने
कड़वो लीमड़ो घोळ मा रे।
चांदा सूरजनुं तेज तजीने
आगिया संगाथे प्रीत जोड़ मा रे॥
हीरा माणेक झवेर तजीने
कथीर संगाथे मणि तोलु मा रे।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर
शरीर आप्युं समतोल मा रे॥

श्रीभगवन्नामके प्रति मीराँबाईकी निष्ठा अनुपम थी। अपने पदोंके माध्यमसे उन्होंने बार-बार जन-मानसको नाम-जपके लिये साग्रह प्रोत्साहित किया है। वे कहती हैं—

राम-नाम-रस पीजै मनुआँ, राम-नाम-रस पीजै।
तज कुसंग, सतसंग बैठ नित, हरि-चरचा सुण लीजै॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ, बहा चित्तसे दीजै।
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, ताहिके रँगमें भीजै॥

राम-नामके बिना जीवकी मुक्ति सम्भव नहीं, फिर अनेक योनियोंमें जन्म-जरा-व्याधि-मरणका कष्ट सहना पड़ता है। सुख-शान्तिका केन्द्र तो जगदाधार प्रभुका परम मधुर और परम मङ्गलमय नाम ही है।

रमइया बिन यो जिवड़ो दुख पावै।
कहो कुण धीर बँधावै॥
यो संसार कुबुधि को भाँडो, साध-सँगति नहिं भावै।
राम-नाम की निंद्या ठाणै, करमहि करम कुमावै॥
राम-नाम बिन मुकुति न पावै, फिर चौरासी जावै।
साध-सँगत में कबहुँ न जावै, मूरख। जनम गमावै॥

× × ×

राम-नाम का बाँध बेड़ा, उतर परले पार॥

राम-नामकी शक्ति एवं उसकी महिमा श्रीमीराँ ही जानती थीं। इस अनमोल धनको प्राप्तकर वे कृतार्थ हो गयी थीं। वे स्वयं कहती हैं—

पायो जी मैं तो राम रतन धन पायो।
बस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरु किरपाकर अपनायो॥
जनम जनमकी पूँजी पाई, जगमें सभी खोवायो।
खरचै नहिं कोइ चोर न लेवै, दिन दिन बढ़त सवायो॥
सतकी नाव खेवटिया सतगुरु भवसागर तर आयो।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, हरख हरख जस गायो॥

इसी कारण नाम-संकीर्तनमें वे तन्मय रहा करती थीं—

'रामनाम मेरे मन बसियो,
रसियो राम रिझाऊँ ए माय।

× × ×

डंको नाम सुरतकी डोरी, कड़ियाँ प्रेम चढ़ाऊँ ए माय।
प्रेमको ढोल बण्यो अति भारी,
मगन होय गुण गाऊँ ए माय॥

भक्तिमती मीराँकी भगवत्प्रीतिकी तीव्र अनुभूतियाँ उनके सरस पदोंमें जैसे साकार हो उठी हैं। मीराँ श्रीकृष्ण-प्रेमकी सजीव पुतली थीं, दिव्य नामकी अनन्य उपासिका थीं। उनका मन प्रभुके नामकी अहर्निश रटन करता रहता और वे उनके ध्यानमें मग्न रहतीं। उन्होंने स्वयं बता दिया है—

मेरो मन रामहि राम रटै रे॥
राम-नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटै रे।
जनम-जनम के खत जु पुराने, नामहि लेत फटै रे॥
कनक-कटोरे इम्रत भरियो, पीवत कौन नटै रे।
मीराँ कहै प्रभु हरि अविनासी, तन-मन ताहि पटै रे॥

—शि० दु०

भक्त नामदेवका नामप्रेम

'मेरे भाग्यमें ज्ञान-वैराग्य कहाँ !' संत श्रीज्ञानेश्वरजीसे तीर्थयात्राके बीच उनके सत्सङ्गके अनन्तर श्रीनामदेवजीने कहा। 'मुझे तो विटोबाकी कृपाका ही आश्रय है। मुझे तो नाम-संकीर्तन ही प्रिय लगता है।'

हैदराबाद (दक्षिण) के नरसी ब्राह्मणी नामक ग्राममें भगवद्भक्त छीपी (दर्जी) दामा सेठकी धर्मपत्नी गोणाईके गर्भसे कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा रविवार, संवत् १३२७ वि० को प्रत्यूष-वेलामें श्रीनामदेवजीने जन्म लिया था। ये शैशवसे ही श्रीविट्ठलके श्रीविग्रहकी पूजा, उनके गुणगान तथा उनके नामका जप करते रहे। श्रीविट्ठलके चरणोंमें इनकी अमित भक्ति थी, उनका नाम इन्हें प्राणोंसे अधिक प्रिय था।

सृष्टिके प्रत्येक पदार्थमें केवल विठोबाके ही दर्शन उन्हें होते थे। घरके एक कोनेमें आग लगी तो आप दूसरी ओरका सामान अग्निमें फेंकते हुए बोले, 'प्रभो! इधर कृपा क्यों नहीं करते?' अन्ततः उन्हीं भक्तप्राणधनको उनकी कुटिया छानी पड़ी।

कुत्ता रोटी लेकर भागा तो आप घीकी कटोरी लिये उसके पीछे चिल्लाते हुए दौड़े, 'प्रभो! रोटी रूखी है। उसमें घृत लगा लेने दीजिये।'

अपने आराध्यको इस रीतिसे सर्वत्र देखना, उसके नाम-कीर्तनके विना क्षणभर भी चैनसे न रह पाना विश्वास, निष्ठा और प्रेमकी पराकाष्ठा है और इसके सजीव प्रमाण श्रीनामदेवजी हैं।

श्रीनामदेवजी यहाँतक कहते हैं कि 'जो नारायणका भजन नहीं करते, मैं उनको देखना भी नहीं चाहता।'

जे न भजति नारायणा। तिनका मैं न करौं दरसणा॥

आप संसारकी कठिनाइयाँ, जीवनकी निस्सारतापर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि 'भगवान्‌की लीला अगाध समुद्र है, उसकी गति कोई नहीं देख सकता। ग्रहणके योग्य तो प्रभुका नाम है, उसे ही भजिये।'

तत्त गहन कौं नाम है, भजि लीजै सोई।
लीला सिंध अगाध है, गति लखै न कोई॥

'सोनेके पर्वत, हाथी और घोड़ेका दान तथा करोड़ों गायोंका दान नामके समान नहीं। ऐसा नाम अपनी जीभपर रखो, जिससे जरा और मृत्यु पुनः न हो।'

कंचन मेरु सुमेरु, हय-गज दीजै दाना।
कोटि गऊ जो दान दे, नहिं नाम समाना॥
अस मन लाव नाम रसना। तेरो बहुरि न होइ जरा-मरना॥
एकै मन एकै दसा एकै व्रत धरिये।
नामदेव नाम जहाज है, भवसागर तरिये॥

आप जोर देकर कहते हैं कि 'मेरी बात सच्ची मान लो और निर्भय होकर भगवान्‌का भजन करो।'

कहत नामदेव साँची मान। निरभै होइ भजि लै भगवान॥

श्रीभगवान्‌के नामके ये अनन्य प्रेमी महात्मा नाम-जप करनेवाले पुरुषोंके दर्शनसे अपनेको कृतार्थ अनुभव करते थे, उनके लिये अपना प्राण उनके सम्मुख रख देनेमें भी इन्हें हिचक नहीं थी। ये स्वयं कह भी देते हैं—

कहत नामदेव बलि-बलि जैहौं। हरि भजि और न लेखो॥

संवत् १४०७ वि० में ८० वर्षकी आयुमें आपने परम-धामकी यात्रा की। महाराष्ट्रमें वारकरी पंथके संस्थापक एक प्रकारसे आप ही हैं।

—शि० दु०

भक्त नरसी मेहता

काठियावाड़के जूनागढ़ शहरमें वड़नगरा जातिके नागर-ब्राह्मण-कुलोत्पन्न परम श्रीकृष्णभक्त श्रीनरसी मेहताके पद गुजरात प्रान्तमें ही नहीं, सम्पूर्ण भारत-वासियोंमें बड़े प्रेमसे गाये जाते हैं। इनकी भक्तिसे संतुष्ट होकर आशुतोष श्रीशंकरजीने इन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये थे और इन्हें श्रीकृष्णके दिव्य गोलोकमें ले जाकर गोपियोंकी परम सुखमयी रास-लीलाका परम मधुर विलक्षण दृश्य दिखाया था।

महाभाग नरसी मेहताका श्रीकृष्णमें प्रेम और विश्वास अद्भुत थे। श्रीकृष्णके नाम-कीर्तनमें ये अपना सब कुछ भूल जाते थे। इनकी श्रद्धा, इनके अटूट विश्वाससे पूर्ण प्रार्थना और नामके प्रति अगाध निष्ठासे स्वयं श्रीकृष्णने इनके कितने ही कार्य किये। इनके पुत्र और पुत्रीका विवाह-कार्य स्वयं उपस्थित होकर भगवान्‌ने सम्पन्न किया।

श्रीनरसी अत्यन्त विरक्त संत थे। भगवन्नाम-कीर्तन एवं भजनानन्दी महात्मा इन्हें प्राणोंसे प्रिय थे। वे अपनेको भगवन्नामका व्यापारी कहते थे।

संतो अमे रे वेवारिया श्रीराम-नामना।
वेपारी आवे छे बधा गाम-गामना॥

श्रीभगवान्‌का नाम यदि प्रत्येक श्वासमें आता रहे तो मनमें काम उत्पन्न न हो।

श्वासोश्वासे समरे श्रीहरि,
मन न व्यापे काम रे।

श्रीनरसीके सारे कार्य स्वयं श्रीहरि धरतीपर उतरकर सम्पन्न करते थे, फिर उनका विश्वास दृढ़ क्यों नहीं होता। इसीलिये आपने अपने पदोंमें अनेक बार कहा है कि 'इस कठिन कलियुगमें श्रीहरिके नामका स्मरण करो। इसमें पैसा लगता नहीं और सारा कार्य पूर्ण हो जाता है। श्यामसुन्दर तो सदा अपने भक्तके अधीन हैं। वे तुम्हारे सारे कार्य सिद्ध कर देंगे।'

हरि-हरि रटण कर, कठण कलिकाळ मां,
दाम बेसे नहीं, काम सरसे।
भक्त आधीन छे श्यामसुन्दर सदा,
ते तारां कारज सिद्ध करशे॥

नरसीजी भी श्रीतुलसीदासजीके—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥

—की भाँति कहते हैं—

नारायणनुं नाम न लेतां वारे तेने तजिये रे।
मनसा वाचा कर्मणा करीने लक्ष्मीवरने भजिये रे॥
कुळने तजिये, कुटुम्बने तजिये, तजिये माने बाप रे।
भगिनी सुत दाराने तजिये, जेम तजे कंचुकी साप रे॥
प्रथम पिता प्रह्लादे तजियो, नव तजियो हरि नुं नाम रे।
भरत-शत्रुघ्ने तजी जनेता, नव तजिया श्रीराम रे॥
ऋषिपत्नीए श्रीहरि काजे तजिया निज भरथार रे।
तेमा तेनुं कंइये न गयुं, पामी पदारथ च्यार रे॥
व्रज वनिता विट्ठलने काजे, सर्व तजी ने चाली रे।
भणै नरसैयो वृन्दावनमां मोहन साथे महाली रे॥

भगवद्विश्वासी प्रेमी भक्तों एवं नामकी निष्ठावा[न्] संत पुरुषोंके लिये श्रीनरसी अत्यन्त आदरणीय गृहस्थ सं[त] हैं। वे भगवान्‌के हैं और करुणामय भगवान् सब प्रकार उनके हैं। श्रीनरसीकी विश्वासमयी प्रार्थना एवं निष्ठा[के] भगवन्नाम-प्रार्थनाके अनेक प्रत्यक्ष चमत्कार प्रख्यात [हैं।] श्रीनरसी अपने उपदेशोंमें प्रायः नाम-जपके लिये आ[ग्रह] और अनुरोध करते हैं। वे बलपूर्वक कहते हैं— [']अवसर फिर नहीं आनेवाला है। और कृष्ण कहो, कृष्[ण] नाम लेते रहो। कृष्ण कहनेका यही सुअवसर है।'

'कृष्ण कहो, कृष्ण कहो, आ अवसर छे केवानुं।'

—शि॰

संत भाण साहेब

श्रीभाण साहेब गुजरातके प्रसिद्ध संत हो गये हैं। सौराष्ट्रके कनखीलोड नामक ग्राममें संवत् १७५४ वि० की माघी पूर्णिमाको श्रीकल्याण भगतकी धर्मपत्नी अम्बाबाईके गर्भसे आपने जन्म लिया था। श्रीगुरु-चरणोंमें आपकी अमित श्रद्धा थी। श्रीभगवान्‌के चरणोंकी भक्ति एवं उनके मङ्गलमय नाममें प्रेम आपकी बहुमूल्य सम्पत्ति थी और इस सम्पत्तिके लिये आप पद-पदपर अपने श्रीगुरुदेवका आभार स्वीकार करते हैं—कृतज्ञता स्वीकार करते हैं। वे स्वयं कहते हैं—

एक निरंजन नामज साथे मन लाग्यो छे मारो।
गुरु प्रताप साधुनी संगत, आव्यो भवनो आरो॥

कूड़े कपटे कोइ न राचो, सतमारग ने चाहो।
गुरुने वचने ग्यान ग्रहीने, नित्य गंगा मा नाहो॥

× × ×

जळ झाँझवे कोई ना राचो, जुठो जग संसारो।
भाणदास भगवंत ने भजिये, जेहि सब भुवन पसारो॥

आप नाम-जप तो स्वयं रात-दिन करते ही थे, अपने समीप आनेवाले सभी लोगोंको नामकी महिमा सुनाकर नाम-जप करनेकी प्रेरणा देते रहते। गुजरातके संत श्रीरवि साहेब आपके शिष्य थे। आपने कहा है—

साचुं नाम साहेबनुं, जुठुं नहीं जराय।
भाण कहे प्रेमे भजे, तो मारे कामज थाय॥

—शि० दुबे

संत रवि साहेब

आप भाण साहबके शिष्य थे। गुजरात अमादे ताल्लुके-के नणछा नामक ग्राममें संवत् १७९३ वि० में आपका जन्म हुआ। आप राम-नामके महान् उपासक थे। नाम-महिमाके सम्बन्धमें आपके बहुत-से पद मिलते हैं। आप कहते हैं—

राम भजन बिना नहिं निस्तारा रे,
जाग-जाग मन ! क्यूँ सोता।
जागत नगरी में चोर न लूटे, झख मारे जमदूता॥

× × ×

ऊँध्या नर सो गया चौरासी, जाग्या सो नर जग जीता।
कह रबिदास भाँण-परतापे अनुभविया अनुभव पोता॥

आप कहते हैं, 'रामका भेद आशुतोष शंकर जानते हैं, जो रात-दिन लव लगाकर इन दो अक्षरोंका जप करते रहते हैं। एक राम ही आनन्दस्वरूप हैं और एक श्रीनामके विना यह सम्पूर्ण जगत् बन्धन है।'

राम निरंजन देव, भेद जाणें शिव-शंकर।
रात-दिवस लव लाय रटत रामहिं निज अक्षर॥

उनहिं दिया उपदेश, रह्या कबहूँ नहिं शूला।
राम-नाम इक सार-तत्त्व, सब ही का मूला॥
राम रघूबंसी सकल अखिल रूप आनंद है।
रबिदास एक श्रीनाम बिन सकल जगत यह फंद है॥

× × ×

जै श्रीराम मुख उच्चरै, हिय माहीं हेत करी।
रबिदास नाम कहि चीन्हताँ योनि जन्म न आवै फरी॥

लोक-परलोक—सर्वत्र सुखका मूल एकमेव श्रीराम-नाम है। अतएव संत रवि साहेब संसारके मनुष्योंको कृपापूर्वक बताते हैं—

रग रग राम रमी रह्यो, निर्गुन अगुन के रूप।
राम-श्याम रवि एक ही, सुंदर सगुन सरूप॥
रसना राम सँभारिये, श्रवनहिं सुनिये राम।
नयने निरखहु रामकूँ, रवीदास यहि काम॥

× × ×

संत अनेकन जे भये, कीन्हां राम पुकार।
रवीदास सब छोड़िके, रामहिं राम उच्चार॥

—शि० दुबे

श्रीहरिदासजीके द्वारा वेश्या-उद्धार

संत दीनदरवेश

ये गुजराती संत थे। संवत् १८६३ वि० में डभोड़ा नामक ग्राममें आपने जन्म लिया था। आपका सारा जीवन भगवद्भजन और नाम-प्रचारमें व्यतीत हुआ। संसारकी असारता और भगवन्नाम-ग्रहणकी सार्थकतापर आपके कितने ही पद प्राप्त हैं। आप कहते हैं—

जितना दीसै थिर नहीं, थिर है निरंजन राम।

निश्चय ही संसारका प्रत्येक प्राणि-पदार्थ कालके गालमें चला गया, चला जा रहा है और चला ही जायगा। इस अवसरका नामकी उपासनामें जिसने उपयोग नहीं किया, वह बड़ा अभागा है, मूर्ख है। श्रीदीनदरवेशजी कहते हैं—

मर जावेगा मूरखा, क्यूँ न भजे भगवान॥
झूठी माया जगतकी, मत करना अभिमान।
मत करना अभिमान, बेद शास्तर यूँ कहवे।
तज ममता, भज राम, नाम तो अम्मर रहवे॥
कहत दीनदरवेश, फेर अवसर कब आवे।
भज्या नहीं भगवान, अरे मूरख मर जावे॥

श्रीभगवान्‌के भजनके बिना जीवका कोई साथी नहीं। अरे पगले मन! तू क्यों भटक रहा है, नामसे प्रेम कर ले। नामरूपी धनका संग्रह कर ले। ऐसा करनेसे कालका फंदा कट जायगा और जन्म-मृत्युकी परिसमाप्ति हो जायगी।

बंदा हरिके भजन बिन, तेरा कोइ न मीत।
तूँ क्यूँ भटके बावरे, कर ले नामसे प्रीत॥
× × ×
कहत दीनदरवेश, कटे फिर कालका फंदा।
जनम-मरण मिट जाय, हरीको भज ले बंदा॥

पर जिसने हरिका स्मरण नहीं किया, वह धिक्कारके योग्य है। श्रीदीनदरवेशकी वाणीमें—

ताकूँ मनवा! धिक्क है, साहेब समर्‌या नाहिं।
अलख पुरुष नहिं ओलख्यो, पड्यो मोहके माहिं॥
पड्या मोहके माँहि, समझ ले, मनवा मेरा।
पड्या पूतला जान, होयगा सूना डेरा॥
कहत दीनदरवेश ज्ञानकी लगी न धाकूँ।
साहेब समर्‌या नाहिं, धिक्क है मनवा! ताकूँ॥

—शि० दु०

भक्त रहीम

मुगल बादशाहोंमें जैसे अकबर प्रसिद्ध हैं, वैसे ही प्रसिद्ध हैं अकबरके सेनापति सरदार बैरमखाँ खानखाना। रहीम उनके पुत्र थे। इनका जन्म सं० कुछ लोग १६१० वि० और कुछ लोग १६१३ वि० मानते हैं। लाहौरमें इनका जन्म हुआ था। सं० १६८३ वि० (दूसरे मतसे सं० १६८६ वि०) में ७२ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने शरीर छोड़ा। रहीम इनका कविताका नाम है। पूरा नाम है अब्दुर्रहीम खानखाना।

रहीम अत्यन्त उदार दानी थे और बचपनसे भगवद्भक्त थे। गोस्वामी तुलसीदासजीसे इनकी मैत्री थी। एक बार बादशाहने किसी कारण अप्रसन्न होकर इन्हें निकाल दिया तो चित्रकूट आकर रहने लगे। उस समय इन्होंने जो पत्र गोस्वामीजीको लिखा, उसमें यह दोहा था—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जा पै बिपदा परति है, सो आवत यहि देस॥

रहीमके नीतिके दोहे तो बहुत प्रसिद्ध हैं। ये संस्कृतके भी उत्तम विद्वान् थे तथा अत्यन्त भावुक भगवद्भक्त थे। बड़े भावपूर्ण श्लोक तथा पद इनके मिलते हैं। भगवन्नाममें इनकी सहज प्रीति थी। ये कहते हैं कि जिसने राम-नाम नहीं अपनाया, उसका जन्म व्यर्थ गया। उसे यमराजके सेवक अवश्य नरक ले जायँगे।

रामनाम जान्यौ नहीं, जान्यौ सदा उपाधि।
कह रहीम तिहि आपुनो जनम गँवायो बादि॥
राम नाम जान्यो नहीं, भइ पूजामें हानि।
कह रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि॥

श्रीहरिदासजीके द्वारा वेश्या-उद्धार

श्रीहरिदासजीकी नाम-निष्ठा

संत दीनदरवेश

ये गुजराती संत थे। संवत् १८६३ वि० में डभोड़ा नामक ग्राममें आपने जन्म लिया था। आपका सारा जीवन भगवद्भजन और नाम-प्रचारमें व्यतीत हुआ। संसारकी असारता और भगवन्नाम-ग्रहणकी सार्थकतापर आपके कितने ही पद प्राप्त हैं। आप कहते हैं—

जितना दीसै थिर नहीं, थिर है निरंजन राम।

निश्चय ही संसारका प्रत्येक प्राणि-पदार्थ कालके गालमें चला गया, चला जा रहा है और चला ही जायगा। इस अवसरका नामकी उपासनामें जिसने उपयोग नहीं किया, वह बड़ा अभागा है, मूर्ख है। श्रीदीनदरवेशजी कहते हैं—

मर जावेगा मूरखा, क्यूँ न भजे भगवान॥
झूठी माया जगतकी, मत करना अभिमान।
मत करना अभिमान, बेद शास्तर यूँ कहवे।
तज ममता, भज राम, नाम तो अम्मर रहवे॥
कहत दीनदरवेश, फेर अवसर कब आवे।
भज्या नहीं भगवान, अरे मूरख मर जावे॥

श्रीभगवान्‌के भजनके बिना जीवका कोई साथी नहीं। अरे पगले मन! तू क्यों भटक रहा है, नामसे प्रेम कर ले। नामरूपी धनका संग्रह कर ले। ऐसा करनेसे कालका फंदा कट जायगा और जन्म-मृत्युकी परिसमाप्ति हो जायगी।

बंदा हरिके भजन बिन, तेरा कोइ न मीत।
तूँ क्यूँ भटके बावरे, कर ले नामसे प्रीत॥
× × ×
कहत दीनदरवेश, कटे फिर कालका फंदा।
जनम-मरण मिट जाय, हरीको भज ले बंदा॥

पर जिसने हरिका स्मरण नहीं किया, वह धिक्कारके योग्य है। श्रीदीनदरवेशकी वाणीमें—

ताकूँ मनवा! धिक्क है, साहेब समर्‌या नाहिं।
अलख पुरुष नहिं ओलख्यो, पड्यो मोहके माहिं॥
पड्या मोहके माँहि, समझ ले, मनवा मेरा।
पड्या पूतला जान, होयगा सूना डेरा॥
कहत दीनदरवेश ज्ञानकी लगी न धाकूँ।
साहेब समर्‌या नाहिं, धिक्क है मनवा! ताकूँ॥

—शि० दु

भक्त रहीम

मुगल बादशाहोंमें जैसे अकबर प्रसिद्ध हैं, वैसे ही प्रसिद्ध हैं अकबरके सेनापति सरदार बैरमखाँ खानखाना। रहीम उनके पुत्र थे। इनका जन्म सं० कुछ लोग १६१० वि० और कुछ लोग १६१३ वि० मानते हैं। लाहौरमें इनका जन्म हुआ था। सं० १६८३ वि० (दूसरे मतसे सं० १६८६ वि०) में ७२ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने शरीर छोड़ा। रहीम इनका कविताका नाम है। पूरा नाम है अब्दुर्रहीम खानखाना।

रहीम अत्यन्त उदार दानी थे और बचपनसे भगवद्भक्त थे। गोस्वामी तुलसीदासजीसे इनकी मैत्री थी। एक बार बादशाहने किसी कारण अप्रसन्न होकर इन्हें निकाल दिया तो चित्रकूट जाकर रहने लगे। उस समय इन्होंने जो पत्र गोस्वामीजीको लिखा, उसमें यह दोहा था—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जा पै बिपदा परति है, सो आवत यहि देस॥

रहीमके नीतिके दोहे तो बहुत प्रसिद्ध हैं। ये संस्कृतके भी उत्तम विद्वान् थे तथा अत्यन्त भावुक भगवद्भक्त थे। बड़े भावपूर्ण श्लोक तथा पद इनके मिलते हैं। भगवन्नाममें इनकी सहज प्रीति थी। ये कहते हैं कि जिसने राम-नाम नहीं अपनाया, उसका जन्म व्यर्थ गया। उसे यमराजके सेवक अवश्य नरक ले जायँगे।

रामनाम जान्यौ नहीं, जान्यौ सदा उपाधि।
कह रहीम तिहि आपुनो जनम गँवायो बादि॥
राम नाम जान्यो नहीं, भइ पूजामें हानि।
कह रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि॥

नाम-प्रेमी भक्त (यवन) हरिदास

भक्ति किसीकी बपौती नहीं है। जन्म-जन्मके पुण्योंका उदय होता है, तब कहीं भगवान् तथा उनके नाममें प्राणीका अनुराग होता है। यशोहर जिलेके बूढ़न ग्रामका वह मुसलमान कुल गरीब होनेपर भी परम धन्य था, जिसमें हरिदासजी-जैसे अनन्य नामानुरागी प्रकट हुए। पूर्वजन्मके संस्कारके कारण बचपनसे हरिदासकी भगवन्नाममें प्रीति थी। उन्होंने युवावस्था प्रारम्भ होते ही घर छोड़ दिया और बनग्रामके पास बेनापोलके निर्जन वनमें कुटी बनाकर रहने लगे। गाँवसे भिक्षा माँगकर ले आते थे और उससे शरीर-निर्वाह होता था।

अत्यन्त शान्त-स्वभाव, क्षमाशील तथा दृढ़ नामानुरागी हरिदासजी प्रतिदिन उच्चस्वरसे बोल-बोलकर तीन लाख नामका जप किया करते थे। दूसरोंको भी वे भगवन्नामका जप करनेका उपदेश करते थे। शीघ्र ही इनके दर्शनोंको भावुक जन आने लगे। ऐसे अपरिग्रही तथा नामनिष्ठ संतका दर्शन जीवोंको सदा ही पवित्र करता आया है।

जहाँ संसारमें श्रद्धालु, परोपकारी, उदारहृदय भक्त महापुरुष होते हैं, वहीं अकारण ही डाह, ईर्ष्या और द्वेषसे जलनेवाले लोग ईर्ष्यालु भी होते ही हैं। बनग्रामके रामचन्द्र खाँ नामक एक जमींदारके मनमें हरिदासजीकी लोकप्रियता देखकर ईर्ष्या जागी। उसने इनकी साधना नष्ट करनेकी बात सोच ली। धनका लालच देकर एक वेश्याको उसने इनके पास भेजा। किंतु—

हो सकती है। वह दूसरी रात्रिको आयी; किंतु हरिदा[illegible] नाम-जपकी संख्या छोटी हो, तब तो पूरी हो। रा[illegible] न संख्या पूरी हुई न बात करनेका अवसर अ[illegible] प्रातःकाल जप पूरा होनेपर फिर वही बात उन्होंने [illegible] दी—'देवि! नाम-जप पूरा नहीं होनेसे मैं आज भी [illegible] कुछ भी बोलनेमें असमर्थ रहा। क्षमा करें!'

वेश्या तीसरी रात्रिको भी आयी और पूरी रात्रि [illegible] रही। निरन्तर तीन रात्रियोंतक वह हरिदास-जैसे नामानुरा[illegible] मुखसे निकलते भगवन्नामका सतत श्रवण करती रही [illegible] उसके पास अपने रूप तथा विकारोत्तेजक चेष्टाओंके बल [illegible] ही दर्प था और वह दर्प चूर-चूर हो चुका था। बड़े-से-बड़े [illegible] एक कटाक्षसे विनम्र कर लेनेकी उसमें शक्ति है, यह अहंकार इस अकिंचन साधुके सम्मुख तुच्छ बन गया था। दर्प गल [illegible] सतत नाम-श्रवण हुआ, वेश्याका चित्त शुद्ध हुआ। उ[illegible] अपने कर्मपर, अपनी चेष्टापर, अपने-आपपर बड़ी ग्ला[illegible] हुई। 'एक महापुरुष ये हैं कि रात्रिमें अपने-आप आ[illegible] उस-जैसी रूपसीकी ओर नेत्र उठाकर नहीं देखते; अपन[illegible] साधनाको नष्ट करने आनेवालीपर तनिक-सा रोष भी नह[illegible] करते और एक वह है—पतिता, पापजीवा, धनके लिये देह विक्रय करनेवाली और अब तो हद ही कर दी है उसने कि एक भगवद्भक्त संतको भ्रष्ट करनेके लिये तीन रात्रिसे वनमें आकर टिकी रहती है!' ग्लानि—पश्चात्तापसे उसका हृदय दग्ध होने लगा। उसके नेत्रोंसे आँसुकी

हरिदासजी वहाँसे चलकर शान्तिपुर आये थे। पुरमें परम वैष्णव श्रीअद्वैताचार्यने उनका स्वागत । ग्रामके निकट ही उन्होंने हरिदासजीके लिये एक बनवा दी। हरिदासजी उस गुफामें रहकर भजन ये। केवल दोपहरमें भोजन करने अद्वैताचार्यके आते थे।

उस समय देशमें मुसलमानोंका शासन था और शासनमें अत्यन्त संकीर्ण मनोवृत्तिके मौलवी-मुल्ला ा काजियोंका बोलबाला था। हिंदुओंको अनेक प्रकारसे पीड़ित करना, उनके धर्माचरणमें बाधा देना उन जियोंके लिये साधारण बात थी। ऐसे समयमें हरिदास- सा एक मुसलमान-कुलमें उत्पन्न व्यक्ति हिंदुओं-जैसा ाचरण करे, प्रतिदिन गङ्गा-स्नान करे और नमाज-रोजाके दले हिंदुओंके भगवन्नामका जप-कीर्तन करे—यह बात मुसलमान काजियोंके लिये असह्य थी। गोराई काजीने मुलुकपतिके न्यायालयमें अर्जी दी कि हरिदासको सजा मिलनी चाहिये।

मुलुकपतिके हुक्मसे सिपाही हरिदासजीको पकड़ ले गये और जेलखानेमें बंद कर दिया। जेलमें दूसरे कैदियोंको भी हरिदासजीने भगवन्नाम लेनेका उपदेश किया। जब मुलुकपतिके सामने हरिदासजी लाये गये, तब न्यायालयमें बहुत भीड़ थी। हरिदासका मुलुकपतिने सम्मान किया और मधुर स्वरमें कहा—'अल्लाहतालाकी मेहरबानीसे आप मुसलमान घरमें पैदा हुए, फिर काफिरोंके देवताका नाम क्यों लेते हैं? क्यों काफिरोंकी तरह रहते हैं? इस तरह रहनेसे तो कयामतमें गुनाह माफ नहीं होते। अब आप कलमा पढ़ लें तो आपको छोड़ दिया जायगा।'

हरिदासजीने शान्ति तथा विनयपूर्वक उत्तर दिया—'आप न्यायाधीश हैं। आप भी जानते हैं कि इस सारे संसारका स्वामी एक ही है। हिंदू और मुसलमान उसे अलग-अलग नामोंसे पुकारते हैं। वह परमात्मा दो नहीं है। अन्तर केवल नामका है। मुझे जैसे रुचता है, वैसे मैं भी उसीका नाम लेता हूँ। कोई हिंदू यदि मुसलमान हो जाता है तो हिंदू तो उसे तंग नहीं करते।'

हरिदासजीकी बातोंसे मुलुकपति प्रसन्न हुए। बातें न्यायपूर्ण थीं तथा नम्रतापूर्वक कही गयी थीं; किंतु गोराई काजी निष्ठुर तथा संकीर्ण मनोवृत्तिका मनुष्य था। वह किसी प्रकार माननेवाला नहीं था। उसने कहा—'इस्लामके कानूनके मुताबिक हरिदासको सख्त सजा दी जानी चाहिये। ऐसा नहीं किया गया तो इसकी देखा-देखी दूसरे मुसलमान भी काफ़िर बनने लगेंगे।'

मुलुकपति भी काजियोंके दबावमें थे। उन्होंने हरिदास-जीसे कहा—'आप हरिनाम छोड़कर कलमा-नमाज पढ़ें। ऐसा नहीं करनेपर सख्त सजा मिलेगी।' हरिदासजीने उत्तर दिया—

'खंड खंड करे देह यदि जाय प्रान।
तबू आमि बदने ना छाड़िब हरिनाम॥'

अर्थात्—'चाहे मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर दो और मेरे प्राण चले जायँ, तब भी मैं मुखसे हरिनाम लेना नहीं बंद करूँगा।'

अब न्यायाधीशने काजीकी सलाहसे हुक्म सुनाया—'हरिदासको बेंत मारते हुए बाईस बाजारोंमें घुमाया जाय। इतने बेंत मारे जायँ कि इनके प्राण चले जायँ।'

हरिदासजी कौपीनधारी, नंगे शरीर और पाषाण-हृदय सिपाही सटासट बेंतोंकी उनपर वर्षा करते उन्हें एकसे दूसरे बाजारमें घुमाने लगे। हरिदासके मुखपर वेदनाका चिह्न नहीं था। वे भगवन्नामका कीर्तन करते जाते थे। सिपाहियोंसे बार-बार कहते—'एक बार हरिका नाम मुखसे लो और फिर मुझे मारो!'

जब पीड़ासे मूर्छित होने लगे, तब अपनेको मारनेवाले सिपाहियोंपर कृपा करके भगवान्‌से प्रार्थना करते बोले—'दयामय! ये अज्ञानी प्राणी हैं। ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। इन्हें क्षमा करो! इनको अपराधमुक्त करके इनपर कृपा करो!'

हरिदासजी मूर्छित हो गये थे। सिपाहियोंने उन्हें मृत समझ लिया। काफिरको कब्र देना तो उन्हें मुनासिब नहीं लगा, गङ्गामें हरिदासका शरीर बहा दिया गया। थोड़ी देरमें चेतना लौटी और हरिदास जलसे निकल आये। इस घटनाके प्रभावसे काजी और मुलुकपति दोनोंने ही उनसे क्षमा माँगी तथा उनके अनुगामी बन गये।

नवद्वीपमें श्रीचैतन्य महाप्रभुने जब कीर्तन प्रारम्भ

किया, तब हरिदासको उन्होंने नवद्वीप बुला लिया। महाप्रभु संन्यास लेकर पुरी रहने लगे, तब हरिदास भी पुरी आ गये। नीलाचल-धाममें ही उन्होंने शरीर छोड़ा। उनके शरीरको स्वयं महाप्रभुने समाधि दी और उनके भंड लिये महाप्रभु भिक्षा माँगते दूकान-दूकान गये थे। हरि चैतन्य महाप्रभुके प्राणप्रिय जन थे। --सु०

संत कबीर

इनके जन्मके सम्बन्धमें अनेक मत हैं। एक मत है कि स्वामी रामानन्दजीके आशीर्वादसे एक विधवा ब्राह्मणीको पुत्र-प्राप्ति हुई। लज्जावश उसने बच्चेको लहरतारा तालाब (काशी) के पास छोड़ दिया। कबीरपंथी भक्त मानते हैं कि लहरतारा तालाबमें कमलके पुष्पमें कबीरजी प्रकट हुए। प्रतीची नामक देवाङ्गनाके गर्भमें किसी योगीके वीर्यसे इनका जन्म हुआ, ऐसा भी वर्णन मिलता है। प्रतीचीने कमलपत्रपर शिशुको रखकर सरोवरमें तैरा दिया था। कुछ लोग जन्मसे ही कबीरको मुसल्मान मानते हैं। चाहे जो भी हो, नीरू जुलाहे और उसकी पत्नी नीमाने कबीरको अपना पुत्र मानकर पाला-पोसा, यह निर्विवाद है।

कबीरदासजीके गुरुके सम्बन्धमें भी विवाद है। कोई उन्हें सूफी फकीर शेख तकीका शिष्य कहते हैं, कोई पीर पीताम्बरका; और यह घटना तो प्रसिद्ध ही है कि एक दिन कबीरदासजी पञ्च-गङ्गाघाटकी सीढ़ियोंपर लेट गये। ब्राह्ममुहूर्तमें गङ्गास्नान करने जब स्वामी रामानन्दजी आये, तब उनका पैर कबीरके ऊपर पड़ा। स्वभावतः उनके मुखसे 'राम-राम' निकला। कबीरने इसीको गुरुमन्त्र मान लिया।

जनश्रुतिके अनुसार कबीरदासजीकी पत्नीका नाम लोई था और उनके एक पुत्र कमाल तथा एक पुत्री कमाली थी। करघेपर वस्त्र बुनकर ही ये परिवारका पोषण तथा साधुसेवा करते थे। इनके यहाँ साधुओंका समुदाय प्रायः टिका रहता था। साधुसेवामें सर्वस्व लगाकर ये अनेक बार सपरिवार भूखे रह जाते थे।

ये पढ़े-लिखे नहीं थे। इनके मुखसे निकले शब्दोंको इनके अनुयायी रट लेते थे। इनकी वाणीका संग्रह 'बीजक' नामसे प्रसिद्ध है। हिंदू-मुसल्मान दोनोंके प्रति इनका समभाव था। दोनोंके अनुयायियोंके दोषपर कड़ी टिप्पणी करते थे। दोनोंके गुणोंका गान करते थे। दोनों धर्मोंके अनुयायी इनके शिष्य हुए।

वृद्धावस्थामें इनका इतना सुयश फैला कि उससे आकर कबीरदासजीने काशी ही छोड़ दी और म चले गये। वहीं ११९ वर्षकी अवस्थामें इनका शरीर बताया जाता है।

संतश्रेष्ठ कबीरदासजीको सुखकी अपेक्षा दुःख अ अभीष्ट लगता है; क्योंकि दुःखमें भगवन्नामका स होता है—

सुखके माथे सिल परो, जो नाम हृदयसे जाय।
बलिहारी वा दुःखकी (जो) पल पल नाम रटाय॥

सब छूटे, पर नाम न छूटे—

कबीर राम न छाँड़िये तन-धन जाउ त जाउ।
चरन कमल चित बेधिया, रामहि नाम समाउ॥

इसमें कुछ सोचने-समझनेकी बात ही नहीं—

कबीर डगमग का करहि कहा डुलावहि जीउ।
सर्व सुखन की नाइको राम नाम रस पीउ॥

रामनामका आश्रय छोड़कर कहीं मत भटको—

अब गहि राम नाम अविनासी। हरि तजि जिनि कतहूँ कै जासी
जहाँ-जहँ जाइ तहाँ पतंगा। अब जिनि जरसि समझि विष संगा
चोखा राम नाम मनि लीन्हा। भृंगी कीट भ्यंग नहिं कीन्हा
भौसागर अति वार न पारा। ता तरिवे कौ करहु विचारा
मति भावै अति लहर विकारा। नहिं गति सूझै वार न पारा
भौसागर अथाह जल, तामैं बोहिथ राम अधार।
कहै कबीर हम हरि सरन तब गोपद खुर विस्तार॥

राम-नाम लेनेकी विधि बतलाते हैं—

ऐसैं मन लाइ लै राम रसना।
कपट भगति कीजै कौन गुना॥
ज्यूँ मृग नादै बेध्यो जाइ, प्यंड परै वाको ध्यान न जाइ।
ज्यूँ जल मीन हेत करि जान, प्रान तजै बिसरै नहिं बानि॥
भृंगी कीट रहै ल्यौ लाइ, ह्वै लै लीन भृंग ह्वै जाइ।
राम नाम निज अमृत सार, सुमिर-सुमिर जन उतरै पार॥

कहै कबीर दासनि कौ दास ।
अब नहिं छाड़ौ हरिके चरन निवास ॥

अपने मनसे कहते हैं—

मन रे ! राम सुमिरि, राम सुमिरि, राम सुमिरि, भाई ।
राम नाम सुमिरन बिन बूड़त अधिकाई ॥
दारा-सुत-गेह-नेह, संपति अधिकाई ।
यामैं कछु नहीं तेरौ, काल अवधि आई ॥
अजामेल, गज, गनिका पतित करम कीन्हा ।
तेउ उतरि पार गये राम नाम लीन्हा ॥
स्वान सुकर काग कीन्हौ, तौं न लाज आई ।
राम-नाम अमृत छाँड़ि काहे विष खाई ॥
तजि भरम करम बिधि-नखेद राम लेही ।
जन कबीर गुरु-प्रसाद राम करि सनेही ॥

श्रेष्ठ जन वह है—

हरि-नामै दिन जाइ रे जाको । सोई दिन लेखै लाइ राम ताको ॥
हरि नाम में जन जागै । ताकै गोव्यंद साथी आगै ॥
दीपक एक अभंगा । तामै सुर-नर पड़ैं पतंगा ॥
ऊँच नीच सम सरिया । तार्थै जन कबीर निस्तरिया ॥

—सु० सिं०

संत कमाल

ये महात्मा कबीरदासजीके पुत्र थे। कबीरने ही इन्हें जीवोंको चेतानेके लिये अहमदाबादकी ओर भेजा था। ये पूरे जीवन अविवाहित रहे। इन्होंने न अपने पिताकी गद्दी ली और न कोई पंथ चलाना ही स्वीकार किया। इनका शरीर मगहरमें छूटा। इनकी समाधि संत कबीरकी समाधिके निकट ही है। ये परम विरक्त, आडम्बरहीन, विनम्र तथा साधुसेवी थे। अपनी रचनाओंमें इन्होंने महाराष्ट्रके संतोंके प्रति श्रद्धा प्रकट की है। आप कहते हैं—

राम सुमिरो, राम सुमिरो, राम सुमिरो भाई ।
कनक-कान्ता तजकर बाबा, अपनी बादशाही ॥
देस-बिदेस तीरथ-बरतमें, कछू नहीं काम ।
बैठे जगा सुखसे ध्याओ, अखिल राजा राम ॥
कहे कमाल इतना बचन, पुरानोंका सार ।
झुठ-सच्च आपने दिलमो, आप-हि-आप पछाननहार ॥

—सु० सिं०

भक्त रैदासजी

रैदासजीकी जन्म-तिथि ज्ञात नहीं है; किंतु ये संत कबीरके सम-सामयिक थे और उनके सत्सङ्गमें भी कभी-कभी सम्मिलित होते थे। इनका जन्म काशीमें ही हुआ था और वहीं इन्होंने जीवन व्यतीत किया। कथा ऐसी है कि ये पहिले जन्ममें ब्राह्मण थे; किंतु स्वामी रामानन्दजीके शापसे इन्होंने चमारके घर जन्म लिया।

रैदासजी बचपनसे साधुसेवी तथा निःस्पृह थे। जातीय प्रथाके अनुसार बाल्यकालमें ही विवाह हो गया था। पिताका नाम था रघु। पिता-पुत्रमें बनती नहीं थी। पिता इसलिये अप्रसन्न रहते थे कि रैदास साधुसेवामें लगे रहते थे और धनोपार्जनकी ओर ध्यान नहीं देते थे। अन्तमें पिताने इन्हें घरसे निकाल दिया। परम संतोषी रैदासजीने एक झोपड़ी बनायी, पत्नीके साथ उसमें रहने लगे। जूते बनाकर जीवन-निर्वाह करना, साधुसेवा तथा नाम-रटन—यह उनका जीवन-क्रम था। जूते टाँकते जाते और भजन गाते जाते।

कहा जाता है कि इनकी गरीबी दूर करनेके लिये स्वयं भगवान् साधुरूपमें आये और हठपूर्वक इन्हें पारस पत्थर देने लगे। एक लोहेके औजारको सोना बनाकर दिखाया भी। साधुका हठ देखकर रैदासजीने पारसको छप्परमें रख देनेको कह दिया। तेरह महीने बाद साधु लौटे तो उन्हें पारस वहीं छप्परमें मिला, जहाँ उसे वे रख गये थे। रैदासने पारसको स्पर्शतक नहीं किया था।

भक्तमालमें रैदासजीके अनेक चमत्कारोंका वर्णन है। उनकी प्रसिद्धिसे प्रभावित होकर चित्तौड़की एक रानीने उन्हें अपना गुरु बनाया था।

रैदासजीने १२० वर्षकी अवस्थामें परधाम गमन किया। उनकी वाणीमें भगवान्के नामकी महिमा तथा अपना दैन्य प्रमुख रूपसे आया है। भक्तिकी रैदासजीकी परिभाषा देखें—

ऐसी भगति न होइ रे भाई ।
राम नाम बिन जो कछु करिये, सो सब भरम कहाई ॥

भगति न रस दान, भगति न कथै ग्यान।
भगति न बन में गुफा खुदाई।
भगति न ऐसी हाँसी, भगति न आसापासी
भगति न यह सब कुलकान गँवाई।
भगति न इंद्री बाधा, भगति न योग-साधा
भगति न आहार घटाई, ये सब करम कहाई॥
भगति न इंद्री साधे, भगति न बैराग बाँधे
भगति न ये सब वेद पढ़ाई।
भगति न मूड़ मुड़ाये, भगति न माला दिखाये
भगति न चरन धुवाये, ये सब गुनीजन कहाई॥
भगति न तौलौं जाना, आपको आप बखाना;
जोइ-जोइ करै सो-सो करम बड़ाई।
आपा गया तब भगति पाई, ऐसी भगति भाई।
राम मिल्यौ, आपो गुन खोयो, रिधि-सिधि सबै गँवाई।
कहै रैदास छूटी आस सब, तब हरि ताहीके पास;
आतमा थिर भई, तब सबही निधि पाई॥

नामके विश्वास बिना सब साधन सारहीन हैं—

थोथो जनि पछोरै रे कोई। सोई रे पछोरो, जामें जिन कन होई॥
थोथी काया, थोथी माया, थोथा हरि बिन जनम गँवाया।
थोथा पंडित, थोथी बानी; थोथी हरि बिन सबै कहानी॥
थोथा मंदिर, भोग-बिलासा। थोथी आन देवकी आसा।
साँचा सुमिरन नाम-बिसासा, मन-बच-कर्म कहै रैदासा॥

इसलिये—

कह मन! राम-नाम सँभारि।
मायाके भ्रम कहाँ भूल्यो, जाहुगे कर झारि॥
देखि धौं इहाँ कौन तेरो, सगा सुत नहिं नारि।
तोरि उमँग सब दूर करिहैं, देहिंगे तन जारि॥
प्रान गये कह कौन तेरो, देखि सोच-बिचारि।
बहुरि यहि कलिकाल नाहीं, जीति भावै हारि॥
यहु माया सब थोथरी रे, भगति-बिस प्रतिहारि।
कह रैदास सत बचन गुरूके, सो जिव ते न बिसारि॥

रैदासजी नामको ही सम्पूर्ण पूजन तथा पूजोपकरण मानते हैं—

नाम तुम्हारो आरत-भंजन मुरारे।
हरि के नाम बिन झूठे सकल पसारे॥
नाम तेरो आसन, नाम तेरो उरसा,
नाम तेरो केसरि लै छिड़का रे।
नाम तेरो अमिला, नाम तेरो चन्दन,
घसि जपै नाम लै तब कूचा रे॥
नाम तेरो दीया, नाम तेरो बाती,
नाम तेरो तेल लै माहिं पसारे।
नाम तेरे की जोति जगाई,
भयो उजियार भवन सगरा रे॥
नाम तेरो धागा, नाम फूलमाला,
भाव अठारह सहस जुहारे।
तेरो कियो तुझको अरपूँ,
नाम तेरो चँवर ढुलारे॥
अष्टादस अड़सठ च्यारि खानिहू,
बरतन है सकल संसारे।
कह रैदास नाम तेरो आरति,
अंतरगति हरि भोग लगा रे॥

—सु० सिं०

करुणामयसे प्रार्थना

नरहरि! चंचल है मति मेरी, कैसे भगति करूँ मैं तेरी॥
तू मोहि देखै, मैं तोहि देखूँ, प्रीति परस्पर होई।
तू मोहि देखै, तोहि न देखूँ, यह मति सब बुधि खोई॥
सब घट अंतर, रमै निरंतर, मैं देखन नहिं जाना।
गुन सब तोर, मोर सब औगुन, कृत उपकार न माना॥
मैं तैं तोरि मोरि असमझि सौं कैसे करि निस्तारा।
कह रैदास कृष्ण करुनामय जै जै जग-आधारा॥

—रैदासजी

संत मलूकदास

ग्राम कड़ा (इलाहाबाद) में सुन्दरदास कक्कड़के पुत्र-रूपमें वैशाख शुक्ला १५, सं० १६३१ वि० को इनका जन्म हुआ। बचपनमें अकेले ये गलीमें खेल रहे थे, तब किसी महात्माने इस बालकको आजानुबाहु देखकर भविष्यवाणी की थी कि—'यह चक्रवर्ती नरेश अथवा उच्च स्थितिका साधु होगा।'

मलूकदासजी बचपनसे ही साधुसेवी थे। दस-ग्यारह वर्षकी अवस्थामें पिताने इन्हें कम्बल बेचनेमें लगा दिया। देहातमें आठवें दिन पैंठ लगती थी। उसमें ये कम्बल बेचने जाते थे। बेचते तो थे ही, कोई साधु या गरीब आ जाता तो उसे बाँट भी देते थे। एक बार न कम्बल बिका और न कोई ऐसा मिला, जिसे बाँट सकते। वह पूरा भार ढोकर ले आते थक गये। कहते हैं कि उस समय स्वयं भगवान् मजदूर बनकर आये और उन्होंने कम्बलका गट्ठर घर पहुँचा दिया। उसी दिन इनको भगवद्दर्शन हुआ।

बाबा मलूकदासके बहुत-से चमत्कार प्रसिद्ध हैं। १०८ वर्षकी अवस्थामें सं० १७३९ वि० में उन्होंने शरीर छोड़ा। देहत्यागसे छः महीने पूर्व ही इन्होंने अपने भतीजे रामस्नेहीको अपनी गद्दीपर बैठा दिया।

मलूकदासजी परम भगवद्विश्वासी संत थे। भगवन्नामके विषयमें वे कहते हैं—

नाम तुम्हारा निरमला, निरमोलक हीरा।
तू साहब समरत्थ, हम मल-मूत्र के कीरा॥
पाप न राखै देह में, जब सुमिरन करिये।
एक अच्छर के कहत ही भवसागर तरिये॥
अधम उधारन सब कहैं प्रभु! बिरद तुम्हारा।
सुनि सरनागत आइया, तब पार उतारा॥
तुझसा गरुआ औ धनी जामें बड़इ समाई।
जरत उबारे पांडवा, ताती बाव न लाई॥
कोटिक औगुन जन करै, प्रभु मनहिं न आनै।
कहत मलूकादासको, अपना करि जानै॥

× × ×

राम कहो, राम कहो, राम कहो, बावरे।
अवसर न चूक, भोंदू! पायो भलो दाव रे॥
जिन तोको तन दीन्हो, ताको न भजन कीन्हो,
जनम सिरानो जात, लोहे-कैसो ताव रे॥
रामजी को गाय-गाय, रामको रिझाव रे।
रामजी को चरन-कमल चित्तमें तू लाव रे॥
कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस।
आनँद-मगन होके हरिगुन गाव रे॥

× × ×

जीवहु ते प्यारे अधिक मोकौं लागैं राम।
बिन हरिनाम नहीं मुझे और किसीसे काम॥
कह मलूक हम जबहि ते लीन्ही हरिकी ओट।
सोवत हैं सुख नींद भरि, डारि भरमकी पोट॥
उहाँ न कबहूँ जाइये, जहाँ न हरिका नाम।
दीगम्बरके गाँवमें धोबीका क्या काम॥
राम-रामके नामको जहाँ नहीं लवलेस।
पानी तहाँ न पीजिये, परिहरिये सो देस॥
गाँठी सत्त कुपीनमें, फिरै सदा निस्संक।
नाम-अमल माता रहै, गिनै इंद्रको रंक॥
राम-नाम जिन जानिया, तेई बड़े सपूत।
एक रामके भजन बिन, कागा फिरै कपूत॥
राम-नाम एकै रती, पापक कोटि पहाड़।
ऐसी महिमा नामकी, जारि करै सब छार॥
राम-नाम औषध करौ, हिरदय राखौ याद।
संकटमें लौ लाइये, दूर करै सब ब्याध॥
धर्महिका सौदा भला, दाया जग-ब्यौहार।
राम-नामकी हाट लै, बैठा खोल किंवार॥

—सु० सिं०

संत यारी साहब

ये मुसलमान संत थे और अपने गुरु बीरू साहबकी सेवामें दिल्लीमें रहते थे। गुरुदेवके चोला छोड़नेपर उनके सत्सङ्गकी परम्परा इन्होंने बनायी रक्खी। दिल्लीमें इनकी समाधि है। इनके मुख्य शिष्योंमें बुल्ला साहब और केशवदासजी 'अमीघूँट' का नाम आता है।

यारी साहबके बहुत थोड़े पद प्राप्त होते हैं। इनके दो अलिफ़नामे हैं। उनमेंसे एक वैराग्य एवं योगपरक है तथा दूसरा नाम-प्रेम तथा भक्तिपरक। दूसरा अलिफ़नामा यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

अलिफ़—एक हरि-नाम बिचार।
बे—भजु बिस्तारन संसार॥
ते—त्रिभुवन सब घटमें राजा।
से—सावित जे चितमें साजा॥
जीम—जगतपति हिरदे राखहु।
हे—हलीम* है गुरु-हरि भाखहु॥
खे—खयाल छोड़हु सब झूठ।
दाल—दयालहिं सुमिर अनूठ॥
जाल—आतमें राखहु प्रीती।
रे—राम सुमिरु मन तजि जग चीती॥
जे—जुहदसे[1] भजु हरिनाम।
सीन—सचेत जो आवै काम॥
शीन—शुकर कर दीनानाथ।
स्वाद—सबूरी राखहु साथ॥
जाद—जरूर पाँच पर घान।
तोय—तमा[2] झूठ करि जान॥
ज़ो—ज़ालिम क्रोधहिं समुझाव।
अैन—आमलमें[3] रहु सतभाव॥
ग़ैन—ग़रूर बुरा जो काम
फ़े—फ़ाज़िल जो सुमिरै नाम॥
काफ़—कनाअत[4] हिरदे मानहु।
क़ाफ़—काम झूठ करि जानहु॥
गाफ़—गुरूका सिरपर हाथ।
लाम—लाज तुम छोड़हु साथ॥
मीम—मुरशिद जगको तारै।
नून—नाम सब दुक्ख निवारै॥
वाव—वाहि भज, स्वासा जाई।
हे—हरि मनहिं राखु लव लाई॥
लाम अलीफ—लाज मन धरहू।
हमजा—हरि नित सुमिरन करहू॥
ये—'यारी' हरि हिय मैं राखहु।
बड़ी ये—यारसे सत्तै भाखहु॥

—सु० सिं०

संत पलटूदास

इनके सगे भाई पलटूप्रसादजीने अपनी पुस्तक भजनावलीमें इस प्रकार अपना परिचय दिया है—

नगला जलालपुर जनम भयो है, बसे अवध के खोर।
कहै पलटू परसाद हो, भयो जगत में सोर॥
सहर जलालपुर मूँड़ मुड़ाया, अवध तुड़ाकर धनियाँ।
सहज करै ब्योपार घट में, पलटू निर्गुन बनियाँ॥

इसके अनुसार नगला जलालपुर (फैजाबाद) में काँदू वैश्यके घर इनका जन्म हुआ। इनके पुरोहित गोविन्दजी भी परमार्थके जिज्ञासु थे। गोविन्दजीने जगन्नाथपुरीकी यात्राके समय भीखा साहबसे दीक्षा ली। लौटनेपर उन्होंने पलटूदासको दीक्षित किया। उसके बाद पलटूदासजी अयोध्या आकर रहने लगे। यहीं उन्होंने देह-त्याग किया। अयोध्यामें उनकी समाधि अब भी है।

कहते हैं कि पलटूदासजीकी कीर्तिसे कुछ बुरे लोगोंको ईर्ष्या हो गयी। अन्तमें द्वेषवश उन्होंने जब पलटूदासजी कुटियामें थे, उसमें आग लगा दी। लेकिन संत पलटूदास उसी समय जगन्नाथपुरीमें प्रकट हुए और फिर अदृश्य हो गये। एक पद उनकी बानीमें मिलता है—

अवधपुरी में जरि मुए, दुष्टन दिया जराइ।
जगन्नाथ की गोद में, पलटू सूते जाइ॥

ये बहुत ही फक्कड़ स्वभावके संत थे। भगवन्नाममें इनकी निष्ठा उच्च कोटिकी थी। ये नामका ही उपदेश करते थे। अपने सम्बन्धमें कहते हैं—

ऐसी भक्ति चलावै, मची नामकी कीच।
मची नामकी कीच, बूढ़ा औ बाला गावै।
परदेमें जो रहै, सब्द सुनि रोवत आवै॥

* धीरज। १. संयम। २. लोभ। ३. अभ्यास। ४. संतोष।

भक्ति करै निर्धार, रहै तिरगुन से न्यारा ।
आवै देय लुटाय, आपु ना करै अहारा ॥
मन सब को हरि लेय, सबन को राखै राजी ।
तीन देखि ना सकैं, बैरागी पंडित काजी ॥
पलटूदास इक बानिया, रहै अवध के बीच ।
ऐसी भक्ति चलावै, मची नामकी कीच ॥

× × ×

दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार ॥
महल भया उजियार, नामका तेज विराजा ।
सब्द किया परकास, मानसर ऊपर छाजा ॥
दसों दिसा भइ सुद्ध, बुद्धि भइ निर्मल साची ।
छुटी कुमति की गाँठ, सुमति परगट होइ नाची ॥
होत छतीसो राग, दाग तिरगुन का छूटा ।
पूरन प्रगटे भाग, करम का कलसा फूटा ॥
पलटू अँधियारी मिटी, बाती दीन्ही टार ।
दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार ॥

—सु० सिं०

संत बुल्ला साहब

इनका विशेष जीवनवृत्त प्राप्त नहीं है। केवल इतना पता लगता है कि इनका पूरा नाम बुलाकीराम था और ये पहिले गुलाल साहबके हरवाहे थे। गुलाल साहबके वर्णनमें भी इनकी चर्चा है। जातिके ये कुनबी थे। यारी साहबसे इन्होंने दीक्षा ली थी। इनके मुख्य शिष्य जगजीवन साहब और गुलाल साहब हुए हैं। भुरकुड़ा (गाजीपुर) में सत्सङ्गकी स्थापना इन्होंने ही की।

इस परम्पराके संतोंमें प्रायः सब साधुसेवी, नामनिष्ठ, सुरत-शब्द-योगी तथा बहुत विरक्त होनेपर भी सफेद वस्त्रोंमें रहनेवाले हुए हैं।

बुल्ला साहब नामके सम्बन्धमें कहते हैं—

साईंके नामकी बलि जावँ ।
सुमिरत नाम बहुत सुख पायो, अंत कतहुँ नहिं ठावँ ॥
नाम बिना नर स्वान-मँजारी, घर-घर चित लै जावँ ।
बिन दरसन-परसन मन कैसो, ज्यों कूले को गावँ ॥
पवन-मथानी हिरदै ढूँढ़ो, तब पावै मन ठावँ ।
जन बुल्ला बोलइ कर जोरे, सतगुरु चरन समावँ ॥

अनेक प्रयत्न करनेपर भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता। बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं। यदि इसी जीवनमें जन्म-मरणसे मुक्त न हुए तो पीछे पश्चात्ताप ही हाथ रहेगा। अतएव—

कोटि झुलै ध्रुव ज्ञान हिये नहिं आइया ।
राम-नाम को ध्यान धरो मन लाइया ॥
बिना ध्यान नहिं मुक्ति पिछे पछिताइया ।
बुल्ला हृदय विचारि राम गुन गाइया ॥

अच्छे संत-साधकका चिह्न क्या? भगवन्नाम। संत-साधक वही है, जिसके मनमें नाम-प्रेम और मुखमें नाम-रटन है।

हरि नाम निसानी हो जानी ॥
जदि जानी तदि भई दिवानी ।
लोक कहै यह भरम भुलानी ॥
जन बुल्ला की यही निसानी ।
सुरत-निरति लै जोति समानी ॥ —सु० सिं०

संत भीखा साहब

इनका पूरा चरित प्राप्त नहीं है। इतना ही ज्ञात है कि बचपनसे ही इन्हें परमार्थकी प्यास जग गयी थी। उचित पथदर्शककी खोजमें ये घर-द्वार छोड़कर निकल पड़े। काशी आकर भी कहीं मन टिके, ऐसा स्थान नहीं मिला। वहीं भुरकुड़ा ग्राम (गाजीपुर) के संत गुलाल साहबकी ख्याति सुननेको मिली, अतः भुरकुड़ा आ गये और एक बार आये तो फिर भुरकुड़ामें ही जीवनभर रहे। संत सद्गुरु गुलाल साहबके परमधाम पधारनेपर उनकी गद्दीके ये ही अधिकारी हुए। कहते हैं कि बारह वर्षकी अवस्थामें ये भुरकुड़ा आये थे और पचास वर्षकी वयमें इन्होंने देह-त्याग किया।

भीखा साहबकी अनेक सिद्धियाँ प्रसिद्ध हैं, किंतु प्रधान बात तो है उनका नाम-प्रेम। वे अपने मनसे कहते हैं—

मन! तुम राम-नाम चित धारो ।
जो निज कर अपनो भल चाहो, ममता-मोह बिसारो ।
अंदर में परपंच बसायो, बाहर भेख सँवारो ॥
बहु विपरीत कपट-चतुराई, बिनु हरि-भजन बिकारो ।
जप-तप-मख करि विधि विधान, उत-तत उदवेग निवारो ।
बिनु गुरु लच्छ सुदृष्टि न आवै, जनन-मरन दुख-भारो ॥
ग्यान-ध्यान उर करहु-धरहु दृढ़ सब्द-सरूप बिचारो ।
कह भीखा लौलीन रहो उत इत मत भुगनि उतारो ॥

भीखा साहबकी दृष्टिमें नाम ही सर्वरूप, सर्वव्यापक ब्रह्म है—

नामै चाँद-सूर, दिन-राती। नामै किरतिम की उतपाती॥
नाम सरस्सुति, जमुना-गंगा। नामै सात समुद्र तरंगा॥
नामै गहिर अगूढ़ अथाह। असरन-सरन को चरन निबाह॥
मूल गायत्री ओ ओंकार। तत तुरियापद सूच्छम सार॥
पलक दरियाव पूरो हरिनाम। नामै ठाकुर सालिगराम॥
सिव-ब्रह्मा-मुनि, सबको नायक। बीठलनाथ साहिब सुखदायक॥
नामै पानी, नामै परना। ररंकार मंगल सुख रचना॥
नामै धरती, नाम अकास। नामै पावक तेज प्रकास॥
नामै महादेव को देवा। नामै पूजा करता सेवा॥
नाम जगत-गुरु, नामै दाता। नामै अज बिग्यान बिधाता॥
नाम सुमेर महा गंभीर। नामै पारस मलयागीर॥
नाम असोक, सोक सों रहिता। कल्पद्रुम नामै को कहिता॥
नामै रिद्धि-सिद्धि को करता। नामै कामधेनु होइ भरता॥
नामै अर्ध-उर्ध ह्वै आये। चारि खानि में नाम समाये॥
धनराज, धनंजय, धर्महु ओई। नामै अगन, गनै का कोई॥
नामै प्रानायाम कहाये। सोऽहं सोऽहं नामै गाये॥
नामै सुंदर नूर जहूर। नामै लाये निकट हजूर॥
नाम अनादि एकको एक। 'भीखा' सबद सरूप अनेक॥

—सु० सिं०

संत धरनीदास

माझीग्राम (छपरा) में संवत् १७१३ वि०में श्रीवास्तव कायस्थ-कुलमें इनका जन्म हुआ। पिताका नाम परशुरामदास था। घरमें खेतीका काम होता था। बड़े होनेपर धरनीदासजी माझीग्रामके जमींदारके दीवान नियुक्त हुए। इनका बहुत सम्मान था वहाँ। लेकिन बचपनसे ही भजन-साधन-सत्सङ्गमें रुचि थी और दीवानका काम करते हुए परमार्थ-साधनमें उच्च स्थिति इन्होंने प्राप्त कर ली थी। कहते हैं कि ये काम करते-करते अचानक कलम रख देते थे और बोल उठते थे—

'लिखनी नाहिं करौं रे भाई। मोहि राम-नाम सुधि आई॥'

थोड़े दिनोंमें ही इन्होंने दीवानका काम त्याग दिया और वहीं झोपड़ी लगाकर भजन करने लगे। इनके सम्बन्धमें अनेक चमत्कार-कथाएँ कही जाती हैं। माझीग्राम सरयूके तटपर है। जब देह-त्यागका समय आया, तब धरनीदासजीने अपने शिष्योंसे कहा—'अब हम विदा होते हैं।' यह कहकर वे गङ्गा-सरयू-संगम-स्थानपर आये। वहाँ उन्होंने जलके ऊपर एक चद्दर बिछाकर उसपर आसन लगाया। चद्दर न भीगी, न डूबी। वह लकड़ीके समान धरनीदासजीको लेकर धाराके साथ बहने लगी। थोड़ी देरमें किनारेपर खड़े शिष्योंने देखा कि जलके मध्य जहाँ चद्दर थी, अग्नि लग गयी। लपटें बहुत ऊँची उठने लगीं। लपटें शान्त हुईं, तबतक चद्दर तथा धरनीदासजीका शरीर अदृश्य हो चुका था।

'सत्यप्रकाश' और 'प्रेमप्रकाश' नामक दो ग्रन्थ संत धरनीदासजीके लिखे कहे जाते हैं, किंतु वे उपलब्ध नहीं हैं। थोड़े-से फुटकर पद ही इनके प्राप्त होते हैं। भगवन्नामके सम्बन्धमें धरनीदासजीका यह पद प्रचलित है—

हित करि हरि-नामहिं लाग रे।
घरी-घरी घरियाल पुकारै, का सोवै, उठ-जाग रे॥
चोवा-चंदन चुपड़ तेल ना, और अलबेली पाग रे।
सो तन जरै, खड़ो जग देखै, गूद निकारत काग रे॥
मात-पिता, परिवार, सुता-सुत, बंधु-त्रिया रस त्याग रे।
साधुके संगति सुमिर सुचित होइ, जो सिर मेटै भाग रे॥
संबत जरै, बरै नहि जब लगि, तब लगि खेलहु फाग रे।
धरनीदास तासु बलिहारी, जहँ उपजै अनुराग रे॥

—सु० सिं०

संत जगजीवन साहब

सं० १७२७ वि०में सरदहा ग्राम (बाराबंकी) में इनका एक कृषक क्षत्रिय-कुलमें जन्म हुआ। बचपनमें घरके पशु चराया करते थे, किंतु संसारके काममें मन लगता नहीं था। चित्तका झुकाव बचपनसे सत्सङ्गकी ओर था। एक दिन पशु चरा रहे थे। दो संत उधरसे निकले—बुल्ला साहब और गोविन्द साहब। बुल्ला साहबने बालक जगजीवनसे अपने हुक्केके लिये अग्नि माँगी। दौड़कर घर गये तो अग्निके साथ दूध भी ले आये। संत आगे चले गये तो डरते-डरते घर लौटे; क्योंकि पितासे पूछे विना दूध ले गये थे। घर आकर देखते हैं तो दूधका बर्तन भरा हुआ है। फिर दौड़े और संतोंके पास पहुँचे। इनका हठ देखकर तथा अधिकारी पहिचानकर बुल्ला साहबने इनके मस्तकपर हाथ रख दिया। जाते समय

बुल्ला साहबने अपने हुक्केसे तोड़कर काला धागा तथा गोविन्द साहबने सफेद धागा दिया। अब भी सतनामी लोग कलाईमें काला-सफेद धागा बाँधते हैं। इस धागेको वे 'आँदू' कहते हैं।

जगजीवन साहब गृहस्थाश्रममें ही रहकर उपदेश करते रहे। पीछे सरदहा ग्राम छोड़कर कोटवा ग्राममें रहने लगे। यहीं संवत् १८१८ वि० में इन्होंने चोला त्यागा। इनके अनुयायी सत्तनामी कहे जाते हैं। ये कहते हैं—

नाम सुमिर, मन बावरे ! काहे फिरत भुलाना हो॥
मिट्टीका बना पूतला, पानी सँग साना हो।
इक दिन हंसा चलि बसै, घर-बार बिराना हो॥
निसि अँधियारी कोठरी, दूजे दिया न बाती हो।
बाँह पकरि जम लै चलै, कोउ संग न साथी हो॥
गज-रथ, घोड़ा-पालकी, अरु सकल समाजा हो।
इक दिन तजि चलि जायँगे, रानी अरु राजा हो॥
सेमर पर बैठ सुवना, लाल फर देख भुलाना हो।
मारत टोंट भुआ उधिराना, फिरि पाछे पछिताना हो॥
गूलर कै तू भुनगा, तू का आव समाना हो।
जगजीवनदास विचारि कहत, सबको वहाँ जाना हो॥

नामके रसमें छके इनकी मस्ती देखिये—

अरी म तो नामके रंग छकी॥
जबतें चाख्यो बिमल प्रेमरस, तबतें कछु न सुहाई।
रैन-दिना धुन लागि रही, कोउ केतौ कहै समुझाई॥
नाम पियाला घोंटि कै, कछु और न मोहिं चही।
जब डोरी लागी नाम की, तब केहि कै कानि रही॥
जो यहि रँग में मस्त रहत है, तेहि कै सुधि हरना।
गगन-मँजिल दृढ़ डोरि लगावहु, जाहि रहौ सरना॥
निर्भय ह्वै कै बैठि रहौं अब, मागौं यह बर सोई।
जगजीवन बिनती यह मोरी, फिरि आवन नहिं होई॥
—सु० सिं०

संत गुलाल साहब

इन महापुरुषके जीवनवृत्तके सम्बन्धमें बहुत थोड़ी जानकारी मिलती है। अनुमानतः सं० १७५० वि० के आसपास इनका जन्म गाजीपुर जिलेके भुरकुड़ा ग्राममें क्षत्रिय जातिमें हुआ बताते हैं। पूरे जीवन गृहस्थवेशमें ही रहे और संवत् १८५० वि० के लगभग इन्होंने चोला त्यागा।

गुलाल साहब जमींदार थे और बुल्ला साहब (वास्तविक नाम बुलाकीराम) इनके हरवाहे थे। बुल्ला साहबका स्वभाव था कि किसी काममें लगाये जानेपर काम भूल जाते और भजन-ध्यानमें लग जाते। इस बातकी बार-बार शिकायत लोग गुलाल साहबसे करते। एक दिन गुलाल साहब स्वयं जाँच करने खेतपर पहुँचे तो देखते हैं कि बैल हलमें जुते खड़े हैं और बुल्ला साहब खेतकी मेड़पर ध्यानस्थ बैठे हैं। गुलाल साहबने समझा कि यह ऊँघ रहा है। क्रोधमें आकर एक लात मार दी, पर साथ ही चौंक पड़े; क्योंकि बुल्ला साहबके हाथोंसे अचानक दही छलक पड़ा था।

गुलाल साहबने बुल्लाके हाथ खाली देखे थे पहले।

बुल्ला साहबने नम्रतापूर्वक कहा—'मालिक ! मेरा अपराध क्षमा करो। मैं मन-ही-मन साधुओंकी सेवामें लगा था। संत भोजन करने बैठे थे। उन्हें भोजन परस करके दही परस ही रहा था कि आपने मुझे हिला दिया। इसीसे दही छलक गया।'

गुलाल साहब उसी क्षण बुल्ला साहबके चरणोंपर गिर पड़े। उन्होंने बुल्ला साहबसे ही दीक्षा ग्रहण की और साधनामें लग गये। भगवन्नामको ही वे अपना सर्वस्व मानते थे—

राम मोर पुँजिया, राम मोर धना, निसि-बासर लागल रहु तना।

राम-नामसे ही साधककी साधना गतिमान्, सुपुष्ट होती है तथा वह अपने लक्ष्यको प्राप्त करता है, इस बातको अपने ढंगसे वे कहते हैं—

राम-राम, राम-राम जेकर जिय आवै।
प्रेम-पूर्न दृढ़ बिराग सोई यह पावै॥
सतगुरु जब दियो प्रसाद प्रीत हूँ लगावै।
तन-मन न्योछावर वारि चरनमें समावै॥
लोक-लाज चारि गारि मनुवा नहिं गावै।
काम-क्रोध जारि-मारि तब लौं लगावै॥
उनमुनि-धुनि धरै ध्यान, गगना गरजावै।
चमक चमक जोति-जोति नूर झरि लावै॥
अगम ध्यान ब्रह्मज्ञान सोई यह पावै।
तिनकी बलिहारि जाउँ जन गुलाल गावै॥

भगवन्नाम-विमुख व्यक्ति ही मूर्ख है, यह गुलाल साहब बड़े स्पष्ट शब्दोंमें घोषित करते हैं—

निर्मल हरिको नाम ताहि नहिं मानहीं।
भरमत फिरैं सब ठावँ, कपट मन ठानहीं॥
सूझत नाहीं अंध, ढूँढ़त जग छानहीं।
कह गुलाल नर मूढ़ साँच नहिं जानहीं॥
—सु० सिं०

विहंगम ! कौन दिसा उड़ि जैहौ ।
नाम बिहूना सो परहीना, भरमि-भरमि भौ रहिहौ ॥
गुरुनिंदक वद संतके द्रोही, निंदै जनम गँवैहौ ।
परदारा परसंग परस्पर, कहहु कौन गुन लहिहौ ॥
मद पी माति मदन तन व्यापेउ अमृत तजि विष खैहौ ।
समुझहु नहिं वा दिन की बातें, पल-पल घात लगैहौ ॥
चरन कमल बिनु सो नर बूड़ेउ, उभि-चुभि थाह न पैहौ ।
कहै दरिया, सतनाम-भजन बिनु रोइ-रोइ जनम गँवैहौ ॥

× × ×

अपनी निष्ठाका परिचय देते हुए कहते हैं—

भजन-भरोसा एक बल, एक आस-बिस्वास ।
प्रीति-प्रतीति इक नाम पर, सोइ संत विवेकी दास ॥

—सु० सिं

संत दूलनदास

अनेक संत-महात्माओंकी भाँति दूलनदासजीका जीवन-वृत्त भी ज्ञात नहीं है। केवल इतना पता है कि ये अठारहवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें वर्तमान थे और जगजीवन साहबके शिष्य थे। उमेसी ग्राम (लखनऊ) में सोमवंशी क्षत्रिय-कुलमें इनका जन्म हुआ था। जगजीवन साहबसे ग्राम सरदहामें इन्होंने दीक्षा ली और गुरुदेवके साथ बहुत समयतक कोटवाँ (रायबरेली) में रहे। पीछे इन्होंने स्वयं धर्मे नामक ग्राम बसाया और वहीं जीवनपर्यन्त रहे।

दूलनदासजी गृहस्थाश्रममें ही रहे। जमींदारीका काम करते रहे और जगजीवन साहबकी गद्दीका संचालन भी करते रहे। नामकी महिमा इनकी 'बानी' में प्रचुर है।

नाम सुमिरु, मन मुरुख अनारी !
छिन-छिन आयु घटत जातु है, समुझि गहहु सत डोरि सँभारी ॥
यह जीवन सपनेको लेखा, का भूलसि झूठी संसारी ।
अंतकाल कोइ काम न अइहैं, मातु-पिता सुत बंधू नारी ॥
दिवस चारि की जगत सगाई, आखिर नाम-सनेह करारी ।
रसना सत्तनाम रटि लावहु, उघरि जाइ तोरि कपट-किवारी ॥
नामकी डोरि पोढ़ि धरती धरु, उलटि पवन चढु गगन-अटारी ।
तहँ सत साहिब अलख रूप वै, जन दूलह करु दरस-दिदारी ॥

विशेषतः इस कलियुगमें तो दूसरा कोई उपाय नामके अतिरिक्त है ही नहीं। अतः सावधान होकर नामका आश्रय लो—

रहु मन ! नामकी डोरि सँभारे ।
धृग जीवन नर ! नाम-भजन बिनु, सब गुन बृथा तुम्हारे ॥
पाँच-पचीसों के मदमाते, निसदिन साँझ-सकारे ।
बंदीछोर नाम-सुमिरन बिनु, जनम-पदारथ हारे ॥
अजहुँ चेत कर हेत नाम तें, गज-गनिका जिन्ह तारे ।
चाखि नाम-रस, मस्त-मगन ह्वै, बैठहु गगन-दुआरे ॥
यहि कलिकाल उपाइ और नहिं, बनिहै नाम पुकारे ।
जगजीवन साईं के चरनन लागे दास दुलारे ॥

किसी भी प्रकार—जैसे बने, वैसे नामकी रट लगाओ शेष सब साधन-बखेड़े भूलो और नाम-रटमें लौ लगाओ।

रहु तोइँ राम राम रट लाई ।
जाइ रटहु तुम नाम-अछर दुइ, जौनी बिधि रटि जाई ॥
राम-राम तुम रटहु निरंतर, खोजु न जतन उपाई ।
जानि परत मोहि भजन-पंथ की, येही अरुझनि भाई ॥
बालमीकि उलटा जप कीन्हेउ, भयौ सिद्ध सिधि पाई ।
सुआ पढ़ावत गनिका तारी, देखु नाम-प्रभुताई ॥
दूलनदास तू रामनाम रटु, सकल सबै बिसराई ।
सतगुरु साईं जगजीवनके, रहु चरनन लपटाई ॥

—सु० सिं०

संत श्रीसेवगराम

संत श्रीसेवगरामजी स्वामी श्रीपरसरामजीके शिष्य थे। आप अत्यन्त गुरुभक्त एवं नैष्ठिक भगवन्नाम-जापक थे। भगवान्पर आपका अद्भुत विश्वास था। आपने स्मरण, प्रेम, राम-प्रताप-विश्वास, नाम-महिमा और उपदेशके बहुतसे पदोंकी रचना की है। आप सारे मन्त्रोंका मूल राम-नाम रटनेके लिये आदेश देते हैं—

कहै सेवग रामहि राम रटो, निज जानिये मंत्रका मूल रे ।

आप और कहते हैं—रामको शरण कीजिये, देर मत

थौंसा (जयपुर) में साह परमानन्दके साथ हो गया, तब जग्गाजीने ही देहत्याग करके सतीके गर्भसे चैत्र शु० ९ सं० १६५३ वि०को जन्म लिया। यह बालक जब छः वर्षका हुआ, तब दादूजी थौंसा पधारे। उस समय पिताने इन्हें महात्मा दादूजीके चरणोंमें डालकर दीक्षा देनेकी प्रार्थना की। दीक्षा देकर गुरुने ही इनका नाम 'सुन्दर' रक्खा।

बचपनसे ही सुन्दर अत्यन्त प्रतिभाशाली थे। अतः इन्हें सुशिक्षित करनेका निश्चय दादूजीके शिष्योंने किया। महात्मा दादूजीके शिष्य रज्जबजी इन्हें इनकी ग्यारह वर्षकी अवस्थामें ही काशी ले आये। यहाँ संवत् १६८२ वि० तक ये अध्ययन करते रहे। कुछ दिन गोस्वामी तुलसीदासजीके संसर्गमें अस्सीघाटपर भी रहे।

काशीसे लौटकर फतहपुरमें इन्होंने एक गुफामें अपने छः साथियोंके साथ योगाभ्यास प्रारम्भ किया और बारह वर्ष वहीं साधनामें लगे रहे। साधनाकी समाप्तिके अनन्तर देशाटनको निकले। तीर्थाटन बहुत किया इन्होंने।

संत सुन्दरदासजीने लगभग ४२ ग्रन्थ बनाये हैं। इनकी रचनाएँ आध्यात्मिक दृष्टिसे तो उच्चकोटिकी हैं ही, काव्य-छन्द-अलंकारादिकी दृष्टिसे भी परिशुद्ध हैं।

इन्होंने कार्तिक शुक्ला अष्टमी, संवत् १७४६को सांगानेरमें देह-त्याग किया।

जीवरूपी शुक (तोते) को सम्बोधित करके सुन्दरदासजी कहते हैं—

तो सही चतुर सुजान परवीण अति, पर जनि पिंजरे मोह कूवा।
पाय उत्तम जनम, लाभ ले, चपल मन, गाय गोविन्द-गुण जीत जुवा॥
आप-ही-आप अग्यान-नलिनी बँध्यो, बिना प्रभु बिमुख कै बार मूवा।
दास सुंदर कहै, परमपद तौ लहै, 'राम हरि' 'राम हरि' बोल सूवा॥

जीवको किसीने बाँधा नहीं है। उसने तो भगवन्नामको भूलकर स्वयं अपने लिये बन्धनकी सृष्टि कर ली है।

पेट ते बाहर होत ही बालक, आइ के मात-पयोधर पीनो।
मोह भयो दिन-ही-दिन और, तरुण भयो तिय के रस भीनो॥
पुत्र-प्रपुत्र बँध्यो परिवार सौं, ऐसेहिं भाँति गयो पन तीनो।
सुंदर राम को नाम बिसारिकै, आपहि आपकूँ बन्धन कीनो॥

अतएव कर्तव्यका निर्देश करते हुए सुन्दरदासजी कहते हैं—

जगमग पग तजि सजि भजि राम-नाम,
काम-क्रोध तन-मन घेरि घेरि मारिये।
झूठ-मूठ हठ त्याग, जाग भाग सुनि पुनि,
गुण ग्यान आनि आन वारि-वारि डारिये॥
गहि ताहि, जाहि सेस ईस ससि सुर नर,
और बात हेतु तात फेरि-फेरि जाइये।
सुंदर दरद खोइ, धोइ-धोइ बार-बार,
सार संग रंग अंग हेरि हेरि धारिये॥

संत सदा उपदेस बतावत, केस सबै सिर स्वेत भये हैं।
तू ममता अजहूँ नहिं छाड़त, मौतहु आय सँदेस दये हैं॥
आज कि काल्ह चलै उठि मूरख, तेरे तौ देखत केते गये हैं।
सुंदर क्या नहिं राम सम्हारत, या जग में कहो कौन रहे हैं॥
—सु० सिं०

संत वाजिद

महात्मा दादूदयालके १५२ शिष्योंमें वाजिद भी हैं। ये पठान थे। शिकार करने निकले थे। एक हिरनीपर तीर चढ़ाया तो उसने कुछ इस प्रकार इनकी ओर देखा कि इन्होंने धनुष फेंक दिया। सद्गुरुकी खोजमें निकल पड़े। इस प्रकार दादूजीका चरणाश्रय प्राप्त किया। इनकी भाषा ओज तथा प्रवाहसे पूर्ण है। ये कहते हैं—

अरध नाम पाषाण तिरे नर लोइ रे।
तेरा नाम कह्यो कलि माहिं न बूड़े कोइ रे॥
कर्म सुकृति इकबार तिरे हो जाहिंगे।
हरि हाँ, वाजिद हस्ती के असवार न कूकर खाहिंगे॥
राम-नाम की लूट फबी है जीव कूँ।
निस बासर वाजिद सुमरता पीव कूँ॥
यही बात परसिद्ध, कहत सब गाँव रे।
हरि हाँ, अधम अजामिल तिर्‌यो नारायण-नाँव रे॥
—सु० सिं०

संत बषना

इनके सम्बन्धमें इतना ही पता लगता है कि ये विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीमें साँभर (राजस्थान) से १० मीलपर नराणा ग्राममें हुए थे। ये महात्मा दादूदयालके शिष्य थे। कहते हैं कि बड़ा सुरीला कण्ठ था और उत्तम गायक थे। होलीके अवसरपर श्रृङ्गारिक पद गा रहे थे। दादूजीने इनपर कृपा की और इनकी रुचि परमार्थकी ओर मोड़ दी। इनकी बानी राजस्थानीमें है। इनका कहना है कि गुरुने ही मुझे राम-नामौषधि दी।

रामनाम जिन ओषदी, सतगुर दई बताइ।
ओषदि खाइ र पछि रहै, बषना बेदन जाइ॥

प्रत्येक समय प्रत्येक दशामें रामनाम कहना ही श्रेष्ठ है—

जे बोल्या तौ राम कहि, जे चुपका तौ राम।
मन मनसा हिरदा महीं, बषना महु बिश्राम॥

—सु० सिं०

संत रज्जब

साँगानेर (राजस्थान) में सं० १६२४ वि० में इनकी विद्यमानताके अतिरिक्त इनके सम्बन्धमें केवल इतना ज्ञात है कि ये जातिके पठान थे। विवाहके लिये सेहरा बाँधकर घोड़ेपर बैठ चुके थे कि किसीने कहींसे—

फूल्यो फूल्यो फिरत है आज हमारो व्याव।
दादू गाय बजायकै दियो काठमें पाँव॥

—महात्मा दादूजीका किसीने यह पद गाया। ध्वनि कानमें गयी और जाग गये। सेहरा नोच फेंका, घोड़ेसे उतरे और सीधे वाँकानेर जाकर दादूजीके चरणोंपर सिर धर दिया। जबतक दादूजी रहे, उनकी सेवामें लगे रहे। दादूजीके निर्वाणके पश्चात् नेत्र बंद किये और फिर खोले ही नहीं। संसारमें गुरुमूर्तिके अतिरिक्त इनके लिये कुछ दर्शनीय नहीं था। इनकी वाणी है—

रामरस पीजिये रे, पीयें सब सुख होय।
पीवत ही पातक कटैं सब संतनि दिसि जोय॥
निसि दिन सुमिरण कीजिये तन-मन-प्राण समोय।
जनम सुफल, साईं मिलै, सोइ जपि साधहु दोय॥
सकल पतित पावन कियें, जे लागे लै लाय।
अति उज्वल, अघ ऊतरैं, किलबिष राखै धोय॥
यहि रसिया रस सब सुखी, दुखी न सुनिए कोय।
जन रज्जब रस पीजिये, संतनि पीया सोय॥

× × ×

सबही वेद बिलोय करि, अंत दिढ़ावैं नाम।
तौ रज्जब तू राम भजि, तजि दे थोथा काम॥
रज्जब अजब यह मता, निसिदिन नाम न भूल।
मनसा-वाचा-करमणा, सुमिरन सब सुख मूल॥

—सु० सिं०

दरिया साहब (मारवाड़के)

इस नामके दो संत हुए हैं—एक मारवाड़में और दूसरे विहारमें। दोनों समसामयिक थे। दोनों शब्द-मार्गी थे। दोनों ही संयोगवश मुसल्मान मातासे उत्पन्न हुए थे। यहाँ हम मारवाड़वाले दरिया साहबकी चर्चा कर रहे हैं। मारवाड़के जैतारन ग्राममें सं० १७३३ वि० भाद्रकृष्ण अष्टमी (श्रीकृष्णजन्माष्टमी)के दिन एक मुसल्मान धुनियाँके यहाँ इनका जन्म हुआ। इन्होंने स्वयं कहा है—

जो धुनियाँ तौ मैं भी राम तुम्हारा।
अधम कमीन जाति मतिहीना, तुम तो हो सिरताज हमारा॥

८२ वर्षकी अवस्थामें मार्गशीर्ष पूर्णिमा सं० १८१५ वि० को इन्होंने देह त्यागा था। जब ये सात वर्षके ही थे, पिताका शरीरान्त हो गया था। अतः नानाके पास रैन (मेड़ता) नामक गाँवमें जाकर रहने लगे थे।

दरिया साहबने ग्राम खियानसर (बीकानेर) के प्रेमजीसे दीक्षा ली थी। कहा जाता है कि उस समयके मारवाड़-नरेश महाराजा बखतसिंह असाध्य रोगसे पीड़ित होकर जब चिकित्सा करके हार गये, तब दरिया साहबके स्थानपर जाकर उन्होंने प्रार्थना की। दरिया साहबने अपने शिष्य सुखराम-

दासको आदेश दिया कि वे महाराजको उपदेश करें। उनके उपदेशसे महाराज स्वस्थ हो गये।

महात्मा दादूदयालने शरीर-त्याग करते समय भविष्य-वाणी की थी—

देह पड़ताँ दादू कहै, सौ बरसाँ इक संत।
रैन नगरमें परगटै, तारै जीव अनंत॥

महात्मा दादूदयालकी भविष्यवाणी सच्ची उतरी। दरिया साहब उनके देहत्यागके सौ वर्ष पीछे हुए। मारवाड़में उनकी शिष्य-परम्परा बहुत बड़ी है। उनका मुख्य उपदेश राम-नाम-जप ही है।

राम बिना फीका लगै, (सब) किरिया सास्तर ग्यान।
दरिया दीपक कह करै, उदय भया निज भान॥
दरिया सूरज ऊगिया, चहुँ दिसि भया प्रकास।
नाम प्रकासै देहमें (तौ) सकल भरमका नास॥

अतएव—

दरिया नरतन पाय कर, कीया चाहै काज।
राव रंक दोनों तरैं, बैठे नाम-जहाज॥

लेकिन इस जहाजपर यदि न बैठे—

नाम-झाज बैठे नहीं, आन करै सिर भार।
दरिया निहचय बहैंगे, चौरासी की धार॥
जनम अकारथ नाम बिन, भावै जान-अजान।
जनम-मरण, जम-कालकी, मिटै न खैंचातान॥
मुसलमान हिंदू कहा, षट्‌दर्शन रँक राव।
जन दरिया निज नाम बिन, सब पर जमका दाव॥
सर्ग मर्त पाताल कह, कह तीन लोक विस्तार।
जन दरिया निज नाम बिन, सभी कालको चार॥

दुःखकी बात है—

दरिया नर तन पाय कर किया न राम-उचार,
बोझ उतारन आइया, लिये चले सिर भार॥

और यदि न नाम-स्मरण बना—

दरिया सुमिरै राम को, कोटि कर्म की हान।
जम औ कालका भय मिटै, ना काहू की कान॥
दरिया सुमिरै राम कौ, आतम कौ आधार।
काया काँची काँच-सी, कंचन होत न बार॥
दरिया राम सभालते, काया कंचन सार।
आन धर्म औ भर्म सब, डाला सिर से भार॥
दरिया सुमिरै राम को, सहज तिमिर का नास।
घट भीतर हो चाँदना, परम जोति परकास॥

जो नाम-स्मरण नहीं करते, वे तो मनुष्य नहीं हैं। वे भूत हैं।

सतगुर संग न संचरा, राम-नाम उर नाहिं।
ते घट मरघट सारिखा, भूत बसै ता माहिं॥
राम-नाम ध्याया नहीं, हूआ बहुत अकाज।
दरिया काया-नगरमें, पञ्च भूतका राज॥

निष्कर्ष यह है—

सकल ग्रंथ का अर्थ है, सकल बात की बात।
दरिया सुमिरन राम का, कर लीजै दिन-रात॥
दरिया दूजे धर्म से, संसय मिटै न मूल।
राम-नाम रटता रहै, सर्व धर्मका मूल॥

—सु० सिं०

स्वामी श्रीरामचरणजी महाराज

ये रामस्नेही-सम्प्रदायके महात्मा थे। संवत् १७७६ वि० में ढूँढाढ़ प्रान्तके सोड़ा नामक ग्राममें श्रीबकतरामजीकी धर्मपत्नीके गर्भसे आपका जन्म हुआ था। बाल्यकालमें आपका नाम श्रीरामकृष्ण था। संवत् १८५५ तक आपका शरीर रहा।

आप अत्यन्त विरक्त एवं नामानुरागी महात्मा थे। नाम-जपमें ही आपका अधिक समय व्यतीत होता था। कुंडलिया, साखी, सवैया तथा अन्य अनेक छन्दोंमें आपने राम-नामकी महिमाका गान किया है। रामके प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति व्यक्त की है।

आप कहते हैं—'जो श्रीरामनामका भजन करते हैं, वे ही समर्थ और वे ही बड़े दाता हैं। दुःख-शोकको हरण करने-वाला एवं विपत्तियोंका नाश करनेवाला राम-नाम है। यह नाम अनादि, अलिप्त एवं अगम्य है। वेद-शास्त्र उसका

नहीं पाते। करुणानिधान प्रभुका नाम मुश्किलको आसान बना देता है।'

सोक-निवारण दुखहरण, विपति बिडारन हार।
अनादि अकल अलिपत अगम-निगम न पावै पार॥
निगम न पावै पार, पूर सर्वज्ञ घणनामी।
मुश्किलमें आसान करै करुणानिधि स्वामी॥
रामचरण भज राम कूँ, सो समरथ, बड दातार।
सोक-निवारण दुख-हरण, विपति बिडारन हार॥

वे कहते हैं कि 'राम सर्वसमर्थ हैं, वे एक ही क्षणमें सारा सुख-विलास दे देते हैं।'

राम सकल छिन एकमें देवै सुख-विलास।

आपकी साखियाँ बड़ी ही सारगर्भित एवं जीवनमें उतारने योग्य हैं। जीवनको सफल बनाने एवं परम मङ्गल-प्राप्तिका साधन वे बताते हैं—

राम-राम रसना रटो, परहो शोक-संताप।
दया-भाव क्षमा गहो, रहो सकल निर्दोष॥
—शि० पु०

संत श्रीरामदासजी महाराज

स्वनामधन्य श्रीरामदासजी महाराजने संवत् १७८३ वि० में बीकानेर (राजस्थान) में जन्म लिया था। सिंहथल-के श्रीहरिरामजीके आप शिष्य थे। खेड़ापा पीठके प्रधान आचार्यके रूपमें राजस्थानके अधिक लोग आपके नामसे परिचित हैं।

त्याग-वैराग्य एवं भगवद्भक्ति—सभी परम दुर्लभ दैवी सम्पत्तियोंसे पूरित जीवन था आपका। नाम-जपमें आपकी निष्ठा थी। आपने कितने ही पदोंकी रचना की है, जिनमें भगवन्नामकी महिमा एवं मनुष्यके लिये उसकी नितान्त आवश्यकता बतायी गयी है।

ऊँच-नीच बिच राम, राम सब के मन भावै।
झूठ-साच सब ठौड़, राम की आण कढ़ावै॥
आदि-अंतमें राम, राम सब ही कह नीका।
सकल देव सिर राम, राम सबकूं सिर टीका॥
चारु चक्र चवदै भवन राम-नाम सारौं सिरै।
रामदास या राम को साधुजन सिंवरण करै॥

आपने कहा है—'राम-सरीखा इतर कोई नहीं; जिसने उनका स्मरण किया, वही सुख पाया। राम-नामसे अनेक जीवोंका उद्धार हो गया। अनन्त कोटिके कार्य सध गये। जो प्रभुसे प्रीति करते हैं, राम-नामकी उसीसे मैत्री होती है।'

राम सरीसा और न कोई। जिन सुमर्‌याँ सुख पावै सोई॥
राम नाम सूँ अनेक उधरिया। अँनत कोटि का कारज सरिया॥
जो हरि सेती लावै प्रीता। राम-नाम ताही का मीता॥
—शि० पु०

संत श्रीदयालजी महाराज (खेड़ापा)

संत श्रीदयालजी महाराजका जीवन-काल संवत् १८१६ से संवत् १८८५ तक रहा है। आप परम विरक्त महात्मा थे। नाममें आपकी बड़ी निष्ठा थी। नाम-जपमें अपना अत्यधिक समय व्यतीत करते हुए आप सुन्दर पदोंकी रचना करते थे। इनके पदोंमें संसारकी असारता, जीवकी क्षण-भङ्गुरता एवं भगवान् तथा उनके नामका माहात्म्य है।

आप कहते हैं—'जीव राममन्त्रसे ब्रह्म हो जाता है। काल-सर्पका विष नष्ट हो जाता है और जन्म-मृत्युमें भ्रम

नहीं होता। अत्यन्त पापी और अधम भी नाम लेनेसे तर जाते हैं। स्वयं श्रीराम साक्षी हैं कि 'र' के लिखते ही पाषाण तैरनेमें समर्थ हो गये। शुभैषी संतोंने बारंबार कहा है कि केवल नाम-जप करो। इस मार्गसे जीवको परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है और वह निर्भय हो जाता है।'

राम-मंत्रसे रामदास, जीव होत है ब्रह्म।
काल उरग को गरल मिट, जनम-मरण नहीं श्रम॥
महापतित पापी अधम, नाम लेत तिर जाय।
उपल तिरे लिखताँ ररो, रघुपति साख सहाय॥
रामा केवल नाम जप, कह हितकारी संत।
इन मग परमानँद मिलै, निरमै जीव सिधंत॥

नाम-जपके लिये वे लोगोंसे बार-बार आग्रह और अनुरोध भी करते हैं। समस्त जीवोंका भगवद्रूपमें दर्शन करनेवाले महात्मा उनके परम हितके अवसरसे कैसे चूक सकते हैं। उनके वचन हैं—

मौसर मिनखा देह मिल्यो है, मत कोइ गाफिल रहज्यो रे।
खूटा स्वास बहुरि नहिं आवै, राम राम भजि लीज्यो रे॥

× × ×

भजो-भजो रे राम, तजो जग की चतुराई।
सजो-सजो रे साज, काच-तन जात बिलाई॥

× × ×

गाय-गाय इक राम, बहुरि मौसर नहिं पावै।

श्रीदयालजी महाराज सावधान करते हैं, 'श्वासको व्यर्थ मत जाने दो। राम-नामके जपमें उसका सदुपयोग कर लो। आयु बीतनेपर यह सदन (शरीर) छूट जायगा, फिर सुख कहाँ?'

खाली स्वास गमाय मत, रामा सिंवरो राम।
बय खूटै, छूटै सदन, जीव कहाँ आराम॥

—शि० दु०

स्वामी श्रीसंतदासजी

श्रीस्वामी संतदासजी भगवान् रामके अनन्य भक्त थे। सवत् १६९९ वि० फाल्गुनसे संवत् १८०६ फाल्गुनतक इनका शरीर रहा। आप अत्यन्त भजनानन्दी महात्मा थे। सरल और सीधे शब्दोंमें राम-नामका उपदेश करते। इनके जीवनका लोगोंपर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

श्रीसंतदासजी कहते हैं—'यदि श्वास प्राप्त हो जाय तो रामनामका ध्यान कर। ऐसा करनेसे फिर चौरासी लाख योनियोंमें आना नहीं पड़ेगा।'

राम-नाम में ध्यान धर, जो साँसा मिल जाय।
(तो) चौरासी बिच संतदास, देह न धारै काय॥
राम सब्द बिच परम सुख, जो मनवा मिलि जाय।
चौरासी आवै नहीं, दुख का धका न खाय॥
जिन्हाँ पाया संतदास, राम-भजनका सुक्ख।
तिन्हाँ सबै ही मिट गया, चौरासीका दुक्ख॥

'यह सारा संसार दोषमय है, मलपूर्ण है, पर मनुष्यको नहीं दीखता। पर नाम-ग्रहण करनेसे पापसे, मलसे, दोषसे पूर्ण मनुष्य भी भक्त हो जाता है। राम-नामकी ओषधि जो आठों पहर सेवन करते हैं, उसीमें रच-पच जाते हैं, उन्हें चौरासीका चक्कर स्पर्श भी नहीं कर पाता। राम-नाम रत्न-धन है, इसे बड़ी सावधानीसे रखना चाहिये। सभी संतोंने इसकी महिमाका गान किया है।' संत-जन इसके साक्षी हैं।

बंदा को दीसै नहीं, गंदा सब संसार।
गंदा से बंदा होत है, कोइ गहै नाँव ततसार॥
राम-भजन की ओषधी, जो अठपहरी खाय।
संतदास रच-पच रहै, तो चौरासी मिट जाय॥
राम रतन धन संतदास, ध्यान-जतन कर राख।
इस धन की महिमा करत, सब संतन की साख॥

श्रीसंतदासजीने कहा है कि 'तीनों लोकोंको पीठ देनेवाला ही राम-नाम ले सकेगा। वही स्थायी सुख-शान्तिपूर्ण परम धाम प्राप्त कर सकेगा। राम-नामका जप बड़ा सरल, पर बड़ी ही शूरताका कार्य है।'

तीन लोककूँ पूँठ दै, सोइ कहैगा राम।
वही लहैगा संतदास, परम धाम बिसराम॥

—शि० दु०

संत श्रीपरसरामजी महाराज

श्रीपरसरामजी महाराज बड़े अच्छे संत थे। बीकानेरके बीठणोकर कोलायत नामक स्थानमें संवत् १८२४ वि० में आपने जन्म लिया था और संवत् १८९६ वि० में आपने परम धाम-गमन किया। आप भजनानन्दी महात्मा थे। आपके उपदेश अमृत-तुल्य कल्याणकर थे। नामके सम्बन्धमें आपके बड़े सुन्दर और उपयोगी वचन हैं। आप कहते हैं कि 'अन्य इष्टको छोड़कर केवल राम-नामको इष्टके रूपमें अपने हृदयमें धारण करो। मुँहसे राम-नामका जप और हाथसे कुछ धर्म-कर्म करो। उत्तम कर्तव्य आदृत होता है; अतएव नीचा कर्म छोड़ दो।'

× × × ×

राम-नाम उर इष्ट धर, आन इष्ट छिटकाय॥
राम-राम मुख जाप जप, कर सूँ कर कछु धर्म।
उत्तम करतब आदरो, छोड़ो नीचा कर्म॥

अनन्त ब्रह्माण्डके निर्माताका निरन्तर भजन करनेके लिये आप उपदेश देते हैं—

सिमरो सिरजनहार कूँ, जाके माँही मंड।

आप कर्म-विकार नष्ट करनेके लिये ओषधि बताते हुए कहते हैं—

नाम-जड़ी पच सहद में, देऊँ जुक्ति बताय।
परसराम सच पच रहै, कर्म-रोग मिट जाय॥

'मुखरूपी हमाममें रसनारूपी दस्तेसे 'र'कार और 'म'कारकी बूटीका रस घिसना है। इस बूटीको घिस-घिसकर आकण्ठ पान कीजिये। इस प्रकार आठों प्रहर साधन कीजिये। ··· राम-नामकी ओषधि-पान करते-करते विकार मिट जाता है।'

मुख हमाम, दस्तो कर रसना।
ररो ममो बूँटी रस घसना॥
घस घस कँठ तासक भर पीजे।
यूँ अठ पहरी साधन कीजे॥

× × ×

राम-नाम ओषध तत सारा।
पीवत-पीवत मिटे विकारा॥

भगवद्-भजनके लिये प्रेरणा देते हुए आपने बहुत-से दोहोंकी रचना की है। कुछ दोहे नीचे लिखे जाते हैं—

प्रतिपालन पोषण भरन, सब में करै प्रकास।
निस-दिन ताकूँ ध्यायिये, ज्यूँ छूटे जम-पास॥
राम-नाम नौका करो, सतगुरु खेवणहार।
बृद्ध मानकर भाव को, यूँ भव-जल हुए पार॥
राम-नाम अम्मर जड़ी, सतगुरु वैद्य सुजान।
जनम-मरण-बेदन कटे, पावै पद निरवाण॥
मनछा बाचा कर्मणा, रटो रैन-दिन राम।
नरक कुंडमें ना पड़ो, पावो मुक्ति मुकाम॥

—शि० दु०

संत श्रीदेवादासजी

संत श्रीदेवादासजी रामस्नेही-सम्प्रदायके स्वामी श्रीरामचरणजी महाराजके शिष्य थे। संवत् १८११ वि०के लगभग जयपुर राज्यमें आपका जन्म हुआ था। ज्ञान-वैराग्य और भक्तिसे पूर्ण आपका जीवन था। वे राम-नामके अनन्य प्रेमी थे। मनुष्यको राम-भजन छोड़कर मायामें उलझते देखकर उनका मन खिन्न हो जाता था।

मनखा-देही पाय कियो नहिं चेत रे।
राम-भजन कूँ भूल माया कूँ लेत रे॥

राम-नामकी महिमा तथा राम-नाम-जपकी प्रेरणा देनेवाले कितने ही पदोंकी रचना आपने की है। दोहे बड़े उपयोगी हैं—

रसना सुमिरै राम कूँ (तो) कर्म होइ सब नास।
देवादास ऐसी करै, (तो) पावै सुक्ख-विलास॥
ररा-ममा को ध्यान धरि, यही उचारै ग्यान।
दुविध्या तिमिर सहजैं मिटै, उदय भक्तिको भान॥
जल तिरबे को तूँ बड़ा, भौ तिरबे कूँ राम।
देवादास सब संत कह सुमरो आठूँ जाम॥
तिरे, तिरावै, फिर तिरे, तिरताँ लगै न बार।
देवादास रटि राम कूँ, बहुत उतरया पार॥

—शि० दु०

नामप्रेमी श्रीहरिदासजी (हरिपुरुषजी)

कहते हैं श्रीहरिदासजी पहले दस्यु थे। एक संतके उपदेशसे वे भजनानन्दी हो गये। नाम-जपसे इनकी सारी निष्ठुर वृत्तियाँ समाप्त हो गयीं। सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति इनके मनमें सद्भाव और स्नेहकी धारा प्रवाहित होने लगी। एक दस्यु भगवन्नाम एवं निरन्तर ईश्वर-चिन्तनके प्रभावसे परम पुण्यात्मा श्रीस्वामी हरिदासजीके नामसे प्रख्यात हुआ।

ये क्षत्रिय-वंशमें डीडवाणा परगनेके कापड़ोद ग्राममें उत्पन्न हुए थे। इनका घरका नाम हरिसिंहजी था। वयस्क होनेपर विवाहके अनन्तर कुटुम्बी जनोंके भरण-पोषणके लिये इन्होंने दस्यु-वृत्तिका आश्रय ले लिया था। मारवाड़की निर्जन भूमिमें ये आते-जाते यात्रियोंको मारकर उनको लूट लिया करते थे।

भगवद्विश्वास एवं भगवन्नामकी अद्भुत महिमा है। भगवन्नाम-जपके प्रभावसे श्रीहरिदासजीका हृदय इतना निर्मल एवं दयालु हो गया कि फिर तो हिंसाकी कल्पनासे ही वे सिहर जाते। डीडवाणा नगरके संतसेवी गाढ़ा महाजनने श्रीहरिदासजीकी भक्तिसे प्रभावित होकर उनके अन्न-जलकी सेवा अपने ऊपर ले ली।

डीडवाणाके समीप सरके निकट देवीके मन्दिरमें पशु-बलि होती थी। श्रीहरिदासजीको मूक प्राणियोंका वध सह लेना सम्भव नहीं था। पशु-वध बंद कराकर ही आपने संतोषकी साँस ली।

इनकी जन्म-तिथिका ठीक पता नहीं, पर ये सोलहवीं शताब्दीके अन्त और सत्रहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें थे। इनके शिष्योंकी परम्परा ही आगे चलकर 'निरंजनी-सम्प्रदाय' कहलाने लगी। इस सम्प्रदायके मूल प्रवर्तक श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज ही थे। सतत भगवच्चिन्तन एवं अखण्ड नाम-जपकी अपनी अनुभूतियाँ आपने अत्यन्त सरल और सरस वाणीमें जन-साधारणको बतायी हैं। साखी, शब्द, लघुग्रन्थ, अरिल आदिमें आपकी अनुभूतियाँ श्रोताके मर्मपर गाढ़ प्रभाव डालती हैं। आप कहते हैं—

मन रे गोबिंदके गुण गाय।
अब कि जब-तब उठि चलेगा, कहत हूँ समझाय॥
अटक अरि हरि-ध्यान धर, मन! सुरति हरि सों लाय।
भज तू भगवत भरम-भंजन, संत करन सहाय॥
अब मैं हरि बिन और न जाचूँ।
भजि भगवंत मगन ह्वै नाचूँ॥
हरि मेरा करता, हरि कीया।
मैं मेरा मन हरि कूँ दीया॥
ग्यान-ध्यान-प्रेम हम पाया।
जब पाया, तब आप गमाया॥
राम-नाम-व्रत हिरदै धारूँ।
परम उदार निमिख न बिसारूँ॥

इन पंक्तियोंसे श्रीहरिदासजी महाराजकी नाम-निष्ठाका पता चल जाता है। अपनी वाणियोंसे आप श्रोताओंको बार-बार भगवन्नामाराधनाके लिये प्रेरणा और प्रोत्साहन देते हैं। उनके पदोंको पढ़नेसे अध्यात्म-पथके पथिकको सहारा प्राप्त होता है। श्रीस्वामीजीने कहा है—

जन हरिदास भज राम सकल जन घेरिया।
हरि हौ मुनि जाय बसै दरबार तहाँ तै फेरिया॥

—शि० दु०

नाम-धनी श्रीअजबदासजी

महात्मा श्रीअजबदासजीकी राम-नाममें दृढ़ प्रीति थी। वे निरन्तर राम-नामका जप करते तथा दूसरोंको नाम-जपके लिये प्रेरित करते रहते। वे कहते हैं—'अरे मित्र! मेरी बात तू सच मान ले, राम-नामके भजनके विना अपनी मूल सम्पत्ति खोकर जायगा। मेरा-ही-मेरा और तेरा-ही-तेरा करते भ्रमके फंदेमें नाचता हुआ तू मर रहा है। तू निखिल सृष्टिको कालके गालमें समझ। अरे मूर्ख! इस संसारमें जन्म लेनेपर कौन बचा है? श्रीजानकीनाथके स्नेहके विना ज्ञान और बुद्धि—सबको कच्चा समझो।'

मूरि को गँवाइ कै जायगा यार! तू,
राम के भजन बिनु, मानु साँची।
मोर-ही-मोर अरु तोर-ही-तोर कर,
भरम के फंद में मरत नाची॥
काल के गाल बिचु जानु संसार को,
मूढ़! जग जनम के कौन बाँची।
अजबदास, जानकीनाथ के नेह बिनु,
ग्यान अरु बुद्धि सब जानु काँची॥

नामप्रेमी श्रीहरिदासजी (हरिपुरुषजी)

कहते हैं श्रीहरिदासजी पहले दस्यु थे । एक संतके उपदेशसे वे भजनानन्दी हो गये । नाम-जपसे इनकी सारी निष्ठुर वृत्तियाँ समाप्त हो गयीं । सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति इनके मनमें सद्भाव और स्नेहकी धारा प्रवाहित होने लगी । एक दस्यु भगवन्नाम एवं निरन्तर ईश्वर-चिन्तनके प्रभावसे परम पुण्यात्मा श्रीस्वामी हरिदासजीके नामसे प्रख्यात हुआ ।

ये क्षत्रिय-वंशमें डीडवाणा परगनेके कापड़ोद ग्राममें उत्पन्न हुए थे । इनका घरका नाम हरिसिंहजी था । वयस्क होनेपर विवाहके अनन्तर कुटुम्बी जनोंके भरण-पोषणके लिये इन्होंने दस्यु-वृत्तिका आश्रय ले लिया था । मारवाड़की निर्जन भूमिमें ये आते-जाते यात्रियोंको मारकर उनको लूट लिया करते थे ।

भगवद्विश्वास एवं भगवन्नामकी अद्भुत महिमा है । भगवन्नाम-जपके प्रभावसे श्रीहरिदासजीका हृदय इतना निर्मल एवं दयालु हो गया कि फिर तो हिंसाकी कल्पनासे ही वे सिहर जाते । डीडवाणा नगरके संतसेवी गाढ़ा महाजनने श्रीहरिदासजीकी भक्तिसे प्रभावित होकर उनके अन्न-जलकी सेवा अपने ऊपर ले ली ।

डीडवाणाके समीप सरके निकट देवीके मन्दिरमें पशु-बलि होती थी । श्रीहरिदासजीको मूक प्राणियोंका वध सह लेना सम्भव नहीं था । पशु-वध बंद कराकर ही आपने संतोषकी साँस ली ।

इनकी जन्म-तिथिका ठीक पता नहीं, पर ये सोलहवीं शताब्दीके अन्त और सत्रहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें थे । इनके शिष्योंकी परम्परा ही आगे चलकर 'निरंजनी-सम्प्रदाय' कहलाने लगी । इस सम्प्रदायके मूल प्रवर्तक श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज ही थे । सतत भगवच्चिन्तन एवं अखण्ड नाम-जपकी अपनी अनुभूतियाँ आपने अत्यन्त सरल और सरस वाणीमें जन-साधारणको बतायी हैं । साखी, शब्द, लघुग्रन्थ, अरिल आदिमें आपकी अनुभूतियाँ श्रोताके मर्मपर गाढ़ प्रभाव डालती हैं । आप कहते हैं—

मन रे गोबिंदके गुण गाय ।
अब कि जब-तब उठि चलेगा, कहत हूँ समझाय ॥
अटक अरि हरि-ध्यान धर, मन ! सुरति हरि सों लाय ।
भज तू भगवत भरम-भंजन, संत करन सहाय ॥

अब मैं हरि बिन और न जाचूँ ।
भजि भगवंत मगन ह्वै नाचूँ ॥
हरि मेरा करता, हरि कीया ।
मैं मेरा मन हरि कूँ दीया ॥
ग्यान-ध्यान-प्रेम हम पाया ।
जब पाया, तब आप गमाया ॥
राम-नाम-व्रत हिरदै धारूँ ।
परम उदार निमिख न बिसारूँ ॥

इन पंक्तियोंसे श्रीहरिदासजी महाराजकी नाम-निष्ठाका पता चल जाता है । अपनी वाणियोंसे आप श्रोताओंको बार-बार भगवन्नामाराधनाके लिये प्रेरणा और प्रोत्साहन देते हैं । उनके पदोंको पढ़नेसे अध्यात्म-पथके पथिकको सहारा प्राप्त होता है । श्रीस्वामीजीने कहा है—

जन हरिदास भज राम सकल जन घेरिया ।
हरि हो मुनि जाय बसै दरबार तहाँ तै फेरिया ॥

—शि० दु०

नाम-धनी श्रीअजवदासजी

महात्मा श्रीअजवदासजीकी राम-नाममें दृढ़ प्रीति थी । वे निरन्तर राम-नामका जप करते तथा दूसरोंको नाम-जपके लिये प्रेरित करते रहते । वे कहते हैं—'अरे मित्र ! मेरी बात तू सच मान ले, राम-नामके भजनके बिना अपनी मूल सम्पत्ति खोकर जायगा । मेरा-ही-मेरा और तेरा-ही-तेरा करते भ्रमके फंदेमें नाचता हुआ तू मर रहा है । तू निखिल सृष्टिको कालके गालमें समझ । अरे मूर्ख ! इस संसारमें जन्म लेनेपर कौन बचा है ? श्रीजानकीनाथके स्नेहके बिना ज्ञान और बुद्धि—सबको कच्चा समझो ।'

मूरि को गँवाइ कै जायगा यार ! तू,
राम के भजन बिनु, मानु साँची ।
मोर-ही-मोर अरु तोर-ही-तोर कर,
भरम के फंद में मरत नाची ॥
काल के गाल बिचु जानु संसार को,
मूढ़ ! जग जनम के कौन बाँची ।
अजवदास, जानकीनाथ के नेह बिनु,
ग्यान अरु बुद्धि सब जानु काँची ॥

भक्तिके प्रदर्शनके विरुद्ध थे । आपके मतसे
न् अपनी सम्पत्ति छिपाकर रखता है, प्रकट
, उसी प्रकार साधक एवं प्रेमी भक्तको अपना
र जप आदि भरसक प्रकट नहीं करना चाहिये।
रन्तर संचय ही करते रहना चाहिये । वे सुस्पष्ट
हैं—'तू दूसरोंकी बात क्या कहता है, अपनी
तो स्वीकार नहीं करता । राम-नाममें मन तो
हीं, माला फेरता हुआ जगत्को दिखाता है
जनका दम्भ करता है । तू अज्ञानके कारण
में क्यों भूला हुआ है ? मैं कहता हूँ कि
बजाना छोड़ दे; दीन बनकर रह । अन्तमें
काल आकर कठोर और तीक्ष्ण भालेका प्रहार
करेगा, तब नाम ही ढालका काम करेगा, अर्थात् वही
रक्षक सिद्ध होगा ।'

हारि तू आपनी मानता है नहीं,
और के बात की काह चाला ।
नाम सौं चित्त तो लागता है नहीं,
लोग देखावता फेरि माला ॥
मान-गुमान अग्यान भूलान का,
जगत में दीन रहु छोड़ि गाला ।
'अजबदास' अंत में नाम ही ढाल है,
काल जो मारिया आनि भाला ॥

श्रीअजबदासजीके ये उपदेश साधकोंके लिये ही नहीं,
हम समस्त मनुष्योंके लिये अर्द्धरात्रिके गहन तिमिरके
दीप-स्तम्भ-तुल्य हैं । —शि० दु०

संत श्रीसगरामदासजी

नामके धनी संत श्रीसगरामदासजीके पदोंने बड़े ही
शब्दोंमें लोगोंको नाम-जपकी ओर प्रेरित करनेकी
है । अपने लिये आप कहते हैं कि 'रामके भजन
दिन बीत गये, वे हृदयमें अब भी पीड़ा देते हैं ।'

भजन बिन दिन गया, वो सालत है बीर ।

एक पंक्तिसे ही आपकी राम-नाममें श्रद्धा, भक्ति और
अनुमान लग जाता है । धनियोंके लिये वे कहते हैं—

दास सगराम, सुणौ धन की धणियाणी ।
सुकित, भज राम, जाण धन ओस को पाणी ॥

चार दिनोंके जीवनमें संत श्रीसगरामदासजी मनुष्यको
राम-रसका गटका (राम-नामका स्वाद) लेनेके लिये कहते हैं—

कहै दास सगराम, राम रस का ले गटका ।
मत चूकै अब दाव, चार दिनका है चटका ॥
ये चटका चूक्याँ पछै मिले न दूजी बार ।
लख चौरासी जूणमें दुखको आर न पार ॥
दुखको आर न पार, घणा मारेगा भटका ।
कहै दास सगराम, राम रसका ले गटका ॥

—शि० दु०

नाम-प्रेमी संत नारायणदासजी महाराज

नारायणदासजी राजस्थानके एक भजनानन्दी
थे । आप भजनमें तन्मय रहते और नाम-जपके
पने समीप आनेवाले लोगोंको प्रेरणा और प्रोत्साहन
। नाम-सम्बन्धी कुछ दोहे भी आपके मिलते हैं ।
न करनेवालेको धिक्कारते हुए आप कहते हैं—
राम-नाम नहीं समझा और अनेक कर्म कर डाले,
मी और कुत्ता है । उसके मुँहमें शर्म नहीं । वह निर्लज्ज
न्हींके शब्दोंमें—

म नाम जाण्यो नहीं, कीया बहुत करम्म ।
नर कामी कूकरा, मुहडे नहीं सरम्म ॥

राम-नामका माहात्म्य-गान करते हुए आप कहते हैं,
'आप नाम-स्मरण करें; यह यमराजके घातसे रक्षा कर लेता
है, उसे टाल देता है । आलस्य न करें । निद्रा न लें ।
समय बीता जा रहा है ।'

नरिया राम सुमिरिये, टलै जमकी घात ।
आलस ऊँघ न कीजिये, अवसर बीत्यो जात ॥

× × × ×

राम नाम सतगुरु दिया, नरिया प्रीति लगाय ।
चौरासी जूणी टलै, पहै पार लँघाय ॥

—शि० दु०

स्वामी श्रीचरणदासजी

'ज्ञानस्वरोदय' नामक ग्रन्थमें आत्मपरिचय देते हुए स्वयं स्वामी चरणदासजीने अपने पिताका नाम मुरलीधर, अपना बचपनका नाम रणजीत, गुरुका नाम शुकदेव, जन्मस्थान डेहरा और जाति दूसर बतलायी है। अपने दूसरे ग्रन्थ 'भक्तिसागर' में उन्होंने अपनी ग्रन्थरचनाका प्रारम्भ चैत्र पूर्णिमा सं० १७८१ बतलाया है। इनकी शिष्या सहजोबाईने इनका जन्म सं० १७६० चैत्र शुक्ल तृतीया मंगलवारको बतलाया है। इनकी माताका नाम कुंजोदेवी लिखा है। इनके पिता परम भगवद्भक्त थे। जब चरणदासजी बालक ही थे, उनके पिता वनमें गये और फिर घर नहीं लौटे। ढूँढ़नेपर वनमें उनके वस्त्र मिले। भक्तोंका विश्वास है कि वे सशरीर वैकुण्ठ पधारे।

पाँच वर्षकी अवस्थामें ही चरणदासजीको डेहरा (अलवर-मेवात प्रान्त) में नदीतटपर श्रीशुकदेवजीके दर्शन हुए। उन्नीस वर्षकी अवस्थामें इन्हें दुबारा मुजफ्फरनगरके पास शुकताल नामक स्थानपर गङ्गातटपर फिर शुकदेवजीने दर्शन दिये तथा विधिवत् दीक्षा दी। शुकदेवजीने ही इनका नाम चरणदास रक्खा।

प्रारम्भमें चरणदासजी योगकी साधना करते थे। बचपनसे ही वे यौगिक क्रियाओंमें लग गये थे, किंतु स्वभावसे विरक्त होनेके कारण इन्हें सिद्धियोंका आकर्षण कभी हुआ नहीं। शुकदेवजीकी कृपा प्राप्तकर इनमें भगवद्भक्तिका तीव्र प्रवाह प्रकट हुआ। वृन्दावनमें सेवाकुञ्जमें श्रीराधाकृष्णकी युगल छविका प्रत्यक्ष साक्षात्कार इन्हें प्राप्त हुआ। प्रभुने इनके मस्तकपर वरद हस्त रक्खा। भगवदादेशसे वृन्दावनसे दिल्ली आये और वहाँ भक्तिका प्रचार करने लगे।

कहा जाता है कि दिल्लीके तत्कालीन बादशाह मुहम्मद शाहको इन्होंने छः महीने पहले नादिरशाहके आक्रमणकी सूचना दे दी थी। नादिरशाहको यह बात मुहम्मदशाहने बतलायी। इससे नादिरशाह बहुत प्रभावित हुआ और इनके आदेशसे ही दिल्लीसे ईरान लौट गया। मुहम्मद-शाहने इन्हें अपना गुरु मान लिया था। मुहम्मदशाहके अत्यन्त आग्रहपर भी जब इन्होंने जागीर स्वीकार नहीं की, तब बादशाहने वे ग्राम इनके शिष्योंको दे दिये। उनमेंसे अनेक ग्राम उन शिष्योंकी गद्दियोंके नाम अबतक थे।

भगवद्भक्तिका इन्होंने खूब प्रचार किया। ४० वर्षकी अवस्थामें सं० १८३९ वि० में स्वेच्छासे योगद्वारा इन्होंने देह-त्याग किया। इनकी दो परमभक्ता शिष्याएँ सहजोबाई तथा दयाबाई बहुत प्रसिद्ध हुई हैं। इनके शिष्योंमेंसे ५२ मुख्य थे, जिनकी ५२ शाखाएँ इनके सम्प्रदायमें प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा रचित ग्रन्थोंकी संख्या बहुत बड़ी है। भगवन्नामकी महिमाका वर्णन करते हुए आप कहते हैं—

साँचा हरि का नाम है, झूठा यह संसार।
चरणदास सों सुक कही, सुमिरन करो विचार॥
स्वासा लेवै नाम बिनु, सो जीवन धिक्कार।
स्वास-स्वास में नाम जप, यही धारणा सार॥
उलट-पुलट जप नाम ही, टेढ़ा-सीधा होय।
याको फल नहिं जायगो, कैसा ही लो कोय॥

कोई श्वास नामके बिना खाली न जाय—बस, बात इतनी ध्यान रखनेकी है। नाम सीधा, उलटा-टेढ़ा-बाँका—कैसे भी लो, वह कभी निष्फल नहीं जायगा।

कहाँ नाम-जप करें, कब नाम-जप करें—यह सब विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। नाम सदा ही पवित्र है—

खाते-पीते नाम ले, चलते-बैठे-सोय।
सदा पवित्र यह नाम है, सदा उजैला तोय॥

भगवन्नामके बिना दूसरे सब साधन निष्फल हैं—

कई बार जो जग करै, जोग करै चित लाय।
चरनदास कहै नाम बिनु, सभी अफल हो जाय॥
आठ धात में गुन नहीं, जो पारस के माहिं।
तप-तीरथ-ब्रत-साधना, राम-नाम सम नाहिं॥
ज्यों सेमर को सेवना, ज्यों लोभी का धर्म।
अन्न बिना भुस कूटना, नाम बिना यों कर्म॥

सम्पूर्ण वेद-शास्त्रोंका परम तात्पर्य राम-नाम ही है। नाम ही सारतत्त्व है।

चार बेद किये ब्यास ने, अर्थ विचार-बिचार।
तामें निकसी भक्ति ही, राम-नाम तत सार॥

अतएव सदा-सर्वदा नामका जप करना चाहिये—

नामहिं ले जल पीजिये, नामहिं लेकर खाह।
नामहिं लेकर बैठिये, नामहि ले चल राह॥
जब लग जागै, राम कह, तन-मन सूँ यह चीत।
चरनदास यों कहत हैं, हरि बिनु और न मीत॥

—सु० सिं०

बाबा किनाराम

रामगढ़ ग्राम (वाराणसी) निवासी अकबरसिंह क्षत्रियके घर इनका जन्म हुआ। बारह वर्षकी अवस्थामें विवाह हुआ, किंतु पत्नीको घर लाने (गौना कराने) ये नहीं गये। वैराग्य तथा ज्ञानकी प्यास इतनी तीव्र हुई कि घरसे भाग गये। बलिया जिलेके कारों गाँवमें बाबा शिवारामसे दीक्षा ली, किंतु वहाँ अधिक दिन रुके नहीं। वहाँसे घर लौटे और फिर देशाटन करने निकले। घूमते-फिरते जूनागढ़में अपने अलमस्त स्वभावके कारण बंदी भी बनाये गये। कारागारसे छूटनेपर गिरनार पर्वतपर भगवान् दत्तात्रेयके इन्हें दर्शन हुए। उन्होंने कृपा की और किनाराम कृतार्थ हो गये। उधरसे लौटकर काशी आये और वहाँ केदारघाटपर कालूराम अघोरीसे दीक्षा ले ली।

इन्होंने चार मठ बाबा शिवारामकी स्मृतिमें सात्त्विक आचारवाले स्थापित किये और चार मठ बाबा कालूरामकी स्मृतिमें अघोरपंथके बनवाये। प्रधान मठ काशीमें कृमिकुण्ड-पर है। सं० १८२६ में इन्होंने चोला छोड़ा। ये कहते हैं—

प्रेमदा पैंड़ो सबदा न्यारो ॥
मगन, मस्त, खुश होले प्यारे, नाम घनीदा प्यारो।
जीवन-मरन, कोह-कामादिक मन तें सबै बिसारो ॥
बेद-कितेब करनि लज्जा को चिंता चपल नेवारो।
नेम-अचार येकई राखै, संगत रखै सचारो ॥
अमै असोच, सोच ना आनै, कोउ जन जानि निहारो।
रहत अजान, जानि के बुझत, सूझत नहिं उजियारो ॥
उतरत-चढ़त रहत निसि-बासर, अनुभव याहि विचारो।
रामकिना यह गैल अटपटी, गुरु-गम को पतियारो ॥

—सु० सिं०

गोस्वामी श्रीहितहरिवंशचन्द्रजी

'हरिवंस गुसाँई भजन की रीति सकृत कोउ जानिहै।'—
—श्रीनाभादासजी

आश्चर्यचकित थे श्रीस्वामी नृसिंहाश्रमजी महाराज। केवल छः मासका सुकोमल शिशु पलनेमें लेटा हुआ श्रीराधा-सुधानिधिके सरस स्तवका गान कर रहा था। श्रीस्वामी नृसिंहाश्रमजी महाराज उन श्रीराधा-प्रेमामृतपूर्ण पदोंको लिपिबद्ध करने लगे। उन्हें क्या पता था कि हम नौ भाइयोंका एकमात्र कुलदीपक यह शिशु भक्त-प्राण-धन श्रीकृष्णकी वंशीका अवतार है और श्रीराधाकृष्णके प्रेमियोंको अत्यन्त मधुर रसका दान करने भारत-धरापर (मथुराके निकट बादग्राममें श्रीव्यास मिश्रकी पत्नी सौभाग्यवती श्रीतारादेवीके उदरसे) प्रकट हुआ है।

श्रीहरिवंशजीकी बाल-लीलाएँ बड़ी ही अद्भुत थीं। ये 'राधा' नाम सुनते ही पलनेमें पौढ़े हुए किलकारियाँ लेने लगते थे। चार-पाँच वर्षकी आयुमें ये बालकोंके साथ श्रीराधा-कृष्णकी ऐसी मधुर-मनोहर लीलाओंकी क्रीड़ा करते, जिन्हें देखकर इनके पिता चकित एवं गद्गद हो जाते थे। बाल्यकालमें ही ये समीपके बगीचेके सूखे कूएँमें कूद गये थे। माता-पिता व्याकुल थे; किंतु कुछ ही देर बाद उन्होंने देखा, उनका प्राणप्रिय नन्हा बच्चा श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका अत्यन्त सुन्दर श्रीविग्रह लिये आ रहा है। बालकके बाहर आते ही कूएँमें मधुर जल भर गया। श्रीहरिवंशजीने श्रीविग्रहका नामकरण किया—श्रीनवरङ्गीलालजी। और अपने प्रिय ठाकुर श्रीनवरङ्गीलालजीकी सेवा-पूजामें वे अपना अधिक समय व्यतीत करने लगे।

कुछ ही दिनों बाद श्रीवृन्दावनेश्वरी श्रीराधाने इन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर मन्त्र-दान दिया और इन्हें शिष्यरूपमें स्वीकार किया। श्रीगो० जतनलालजीने इस सम्बन्धमें लिखा है—

करत भजन इक दिवस लाड़िली-छबि मन अटक्यौ।
रूपसिंधु के माँझ पर्यौ कहुँ जात न भटक्यौ ॥
बिवस होइ तब गए, भए तनु प्यारी हरि के।
झुके अवनि पर सिथिल होइ अति सुख में भरि कें ॥

कृपा करी श्रीराधिका, प्रगट होइ दरसन दियौ।
अपने हित कौं जानि कैं हित सौं मंत्र सु कहि दियौ ॥

ठाकुरजी श्रीराधावल्लभजीको चिड़ियावलके ब्राह्मण श्रीआत्मदेवजीके यहाँसे श्रीहरिवंशजी ही वृन्दावन ले आये थे। श्रीवृन्दावनके दर्शन एवं भ्रमणके समय आपने प्राचीन एवं गुप्त सेवाकुञ्ज, रासमण्डल, वंशीवट एवं मानसरोवर नामक चार पुण्यमय स्थलोंको प्रकट किया।

श्रीवृन्दावनवासकालमें ये श्रीराधाकृष्णके प्रेममें छके रहते। श्रीभगवान्‌की सेवा कितनी तन्मयता, कितनी निष्ठा, कितनी भक्ति एवं कितनी प्रीतिसे करनी चाहिये—इसका सजीव प्रमाण श्रीहितहरिवंशजीका पवित्र एवं आदर्श जीवन है। उस समयके प्रसिद्ध विरक्त महात्मा इन्हें बड़ी ही श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे और कितने ही विद्वान् एवं त्यागी पुरुषों तथा भक्तोंने इनसे दीक्षा ग्रहण की थी।

श्रीराधा-कृष्णकी प्रेममयी उपासना एवं भावनाके इनके ब्रजभाषाके पद बड़े ही सरस, अनूठे एवं मर्मस्पर्शी हैं। वे भक्तोंको प्राणप्रिय एवं हिंदी-साहित्यकी निधि हैं। श्रीहितहरिवंशजी श्रीकृष्णकी लीला एवं गुणोंके चिन्तनके लिये लोगोंसे अनुरोध ही नहीं करते, ऐसा करनेके लिये अपनी शपथ भी दिलाते हैं—

तातें भैया मेरी सौं, कृष्णगुन संचु ॥
कुत्सित बाद-बिकारहिं, परधनु, सुनु सिख परतिय बंचु।
मनि-गुन-पुंज जु ब्रजपति छाँड़त हित हरिबंस सुकर गहि कंचु ॥
पायो जानि जगत में सब जन कपटी कुटिल कलिजुगी टंचु।*
इहिं परलोक सकल सुख पावत, मेरी सौंह कृष्ण गुन संचु ॥

कारण भी सुस्पष्ट है। इस जगत्‌में प्रायः सभी कुटिल, कपटी एवं कलियुगी—कलिमलग्रस्त दुष्ट लोग हैं। इनसे दुःख ही मिलनेवाला है। अतएव लोक-परलोकको सुखी एवं सार्थक करनेके लिये श्रीकृष्ण-गुण-संचयके लिये उनकी शपथ अवश्य ही कल्याणकारिणी है।

श्रीहितहरिवंशजीकी प्रेममयी निष्ठा एवं नामकी म[illegible] श्रद्धाके लिये उन्हींके शब्दोंमें—

× × ×

राधावल्लभ लाल कौ हृदय ध्यान, मुख नाम ॥
रसना कटौ जु अनरटौ, निरखि अनफुटौ नैन।
स्रवन फुटौ जो अनसुनौं, बिनु राधा जसु बैन ॥

× × ×

वे अपनी निष्ठाको अत्यधिक स्पष्ट कर देते हैं—

रहौ कोउ काहू मनहि दियें।
मेरे प्राननाथ श्रीस्यामा, सपथ करौं तिन छियें ॥

× × ×

श्रीराधा-कृष्णको अपना इष्ट माननेवाले, उन्हें प्राणों[illegible] अधिक प्यार करनेवाले श्रीहितहरिवंशजी निरन्तर श्रीराध[illegible] कृष्ण-चिन्तन एवं उनके भजनमें तल्लीन रहते थे। अन[illegible] लोगोंके लिये भी उन्होंने श्रीकृष्ण-भजनका ही उपदेश दि[illegible] है। वे कहते हैं—

मानुष कौ तन पाइ भजौ ब्रजनाथ कौं।
†दर्बी लैकैं मूढ़ जरावत हाथ कौं ॥

× × ×

श्रीराधा-कृष्णके नाम-रूप-लीलाके रसिक ये संत इ[illegible] धराको लगभग ४८ वर्षतक पावन करनेके अनन्त[illegible] श्रीनिकुञ्ज-लीलामें प्रविष्ट हो गये।

—शि० दु[illegible]

रसिक संत सरसमाधुरी

संत श्रीसरसमाधुरीजी पवित्र ब्राह्मणवंशमें उत्पन्न हुए थे। मंदसौर आपकी जन्मभूमि थी। आपके पिताका नाम श्रीघासीरामजी और माताका नाम श्रीपार्वतीदेवी था। आप बाल्यकालसे ही श्रीराधाकिशोरी एवं श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी ओर आकृष्ट हो गये थे। यह आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता गया और कुछ ही दिनोंमें आप उनके अनन्य प्रेमी हो गये। श्रीश्यामा-श्यामका दर्शन, उनका ध्यान एवं उनका गुणगान—यही उनके जीवनका मुख्य ध्येय हो गया था। इसे आपने स्वयं कहा है—

गावैं स्यामा-स्याम को, ध्यावैं स्यामा-स्याम।
निरखैं स्यामा-स्याम को, यही हमारो काम ॥

श्रीसरसमाधुरीजी कहते हैं—'भजनके बिना मनुष्[illegible] पशुके तुल्य है। जो खाने-पीनेमें ही अपना अनमोल सम[illegible] नष्ट कर देता है, उसे और किसी बातका पता नहीं।'

भजन बिन नर सब पसू समान।
खान-पान में उमर बितावत और नहीं कुछ ग्यान ॥

× × ×

फेर कछू नाहीं बनि आवै, निकस जाय जब प्रान।
सरसमाधुरी सब तज हरि भज, कही हमारी मान ॥

इतना ही नहीं, आप भजनके बिना जीवित रहनेवाले मनुष्यको श्मशानका प्रेत बताते हैं और जो रात-दिन श्रीराधा-

* दुष्ट, नीच। † कलछी, इस शब्दका केवल साधुवर्ग ही प्रयोग करता है।

कृष्णका स्मरण करते हैं, उन्हें सपूत कहते हैं। हरिभजन-रहित व्यक्ति आठो गाँठ (पूर्णतया) कुपूत हैं। एक अनन्य भक्तिके विना सारी करनीको आप धिक्कारते हुए कहते हैं कि रात-दिन छल-कपट करनेवाला मनुष्य समझ नहीं पा रहा है। अन्ततः वह यमदूतोंके द्वारा मारा जायगा।

भजन बिन नर मरघट को भूत।
स्यामा-स्याम रटैं रसना से, तिनको जान सपूत॥
बिन हरि भजन करम सब अकरम, आठों गाँठ कपूत।
एक अनन्य भक्ति बिन कीये धृग करनी-करतूत॥
निस दिन करत कपट छल-बाजी, समझे नहीं अऊत।
सरसमाधुरी अंतकालमें मारेंगे यमदूत॥

आप रात-दिन श्रीराधा-श्यामके भजनके लिये उपदेश रते हुए कहते हैं—

करै भजन निष्काम स्याम को, फिर नहिं होत बियोग।
सरसमाधुरी सत्य कहत हैं, करैं अमरपुर भोग॥

× × ×

जुगल लगन में मन मगन, राखहु आठौं जाम।
'सरसमाधुरी' सुरति सौं, सुमिरहि स्यामा-स्याम॥

आप कहते हैं,—'हे मित्र! यदि श्रीयुगलसरकारकी शरीरसे सेवा न बन पड़े तो मनसे ही नित्य समय-समयकी सेवाकी भावना कर लिया करो।'

जो सेवा श्रीजुगलकी, तन सौं बने न मित्त।
तो मन सौं कर भावना, समय-समय की नित्त॥

आपके पद आपके पवित्र जीवनकी ही भाँति बड़े सरस हैं और सबमें आप श्रीराधा-कृष्णका ध्यान एवं उनके नाम-जपका निर्देश करते हैं।

भज मन श्रीराधे-गोपाल।
करुना-निधि कोमल चित तिन कौ, दीनन कौ प्रतिपाल॥

× × × ×

भजो श्रीराधे गोविंद हरी।
जुगल नाम जीवन-धन जानो, या सम और धर्म नहिं मानो।
बेद-पुरानन प्रगट बखानो, जपै जोइ है धन्य घरी॥

—शि० दु०

श्रीहरिराम व्यासजी

श्रीहरिरामजी व्यास ओरछाके रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण । आप व्रजमण्डलमें 'व्यासजी'के नामसे ही प्रसिद्ध हैं। ाप संस्कृतके उद्भट विद्वान् थे और सदा शास्त्रार्थमें त्पर रहते। श्रीहितहरिवंशजीके दर्शन हुए और उनके भावसे इनका विद्याभिमान दूर हो गया। शास्त्रार्थका सन छूट गया और प्रेमका नशा छा गया। आप श्रीहित-रिवंशजीके शिष्य हो गये। आपकी गुरुनिष्ठा प्रगाढ़ थी। ीहितहरिवंशजीके गोलोकवास होनेपर अत्यन्त व्यथित कर आपने कहा था—

हुतो रस-रसिकन कौ आधार।
बिन हरिबंसहिं सरस रीति कौ कापै चलिहै भार?

× × ×

वृन्दावनकी लता-वल्लरियाँ छोड़कर आप पुनः ओरछा हीं लौटे। श्रीराधाकृष्णके चरणोंमें आपका दृढ़ प्रेम था। ाप भक्तको ही सर्वश्रेष्ठ समझते थे। व्रज-महिमा तथा या-प्रियतमाकी लीलाके पद गा-गाकर तृप्तिका अनुभव रते थे। आप नामके बड़े प्रेमी थे। सच्चे पिताके रूपमें ागसुन्दरको भजनेका उपदेश करते हुए आप कहते हैं—

भजौ सुत, साँचे स्याम पिताहि।
जाके सरन जात ही मिटिहैं, दारुन दुख की दाहि॥
कृपावंत भगवंत सुने मैं, छिन छाँड़ौ जिनि ताहि।
तेरे सकल मनोरथ पूजैं, जो मथुरा लौं जाहि॥
वे गोपाल दयालु, दीन तू, करिहैं कृपा निवाहि।
और न ठौर अनाथ दुखिन कौं, मैं देख्यौं जग माहिं॥
करुनावरुनालय की महिमा मो पै कही न जाहि।
'व्यासदास'के प्रभु को सेवत, हारि भई कहु काहि॥

इसी प्रकार आप राधा-नामको अत्यन्त उदार परमधन बताते हुए गाते हैं—

परम धन राधे नाम अधार।
जाहि स्याम मुरली में टेरत, सुमिरत बारंबार॥
जंत्र मंत्र और बेद-तंत्र में, सबै तार कौ तार[1]।
श्रीसुक प्रगट कियौ नहिं यातें, जानि सार कौ सार॥
कोटिन रूप धरे नँद-नंदन, तऊ न पायौ पार।
'व्यासदास' अब प्रगट बखानत, डारि भार में भार॥

—शि० दु०

१. रहस्यका रहस्य।

श्रीहठीजी

सरस रसके उपासक, श्रीराधा-चरणानुरागी, अत्यन्त विरक्त भावुक भक्त श्रीहठीजीके जन्म आदिके सम्बन्धमें कुछ पता नहीं चलता। आप हित-कुलके शिष्य थे, पर इनके गुरुका नाम भी विदित नहीं। केवल 'राधा-सुधा-शतक' पुस्तक आपकी प्राप्त है। उसमें दोहे, सवैये तथा १०३ कवित्त हैं। उनमें श्रीराधाजीकी प्रधानता है। उनकी लीला तथा नाम-महिमा बड़ी ही सरस भाषामें कही गयी है। आप स्पष्ट कहते हैं—

'नर कौन ? तौन, जौन राधे-राधे नाम रटै।'

आप श्रीराधा-नामकी महिमा बतलाते हैं। विधाता, शिव, सिद्ध और इन्द्रादि रात-दिन राधा नामका जप करते रहते हैं। यह राधा-नाम भक्तोंकी बाधाएँ हरण करता है। जो श्रीराधाका नाम जपते हैं, जिनके स्कन्धपर व्रजचन्द्र श्रीकृष्ण अपना कमल-हस्त धरे रहते हैं, वे भव-फंदमें नहीं पड़ते। जो मनुष्य आठों पहर राधा-राधा जपते हैं, वे भवसागर पारकर सदा परम दिव्य व्रजधाममें निवास करते हैं।

अज सिव सिद्ध सुरेस मुख जपत रहत निसि-जाम।
बाधा जन की हरत है, राधा-राधा नाम॥
राधा-राधा जे कहैं, ते न परैं भव-फंद।
जासु कंध पर कमल-कर धरे रहत व्रजचंद॥
राधा-राधा कहत हैं, जे नर आठौं जाम।
ते भवसिंधु उलंघि कैं, बसत सदा व्रजधाम॥

—शि० दु०

नाम-प्रेमी श्रीस्वामी हरिदासजी

श्रीस्वामी हरिदासजी श्रीराधा-कृष्ण-नामके अनन्य उपासक थे। वे नित्य इस पवित्र नामका जप किया करते थे। भक्तवर श्रीनाभादासजीने आपके सम्बन्धमें लिखा है—

जुगल-नाम सों नेम, जपत नित कुंजबिहारी।

श्रीस्वामीजी कहाँ किस कुलमें उत्पन्न हुए थे, बड़ा विवादास्पद है। वे तो वास्तवमें 'भागवत-वंश'के थे। संगीतके आप महाचार्य माने जाते हैं। गायनाचार्य तानसेनके आप संगीत-विद्याके गुरु थे। बड़े ही विरक्त महात्मा थे आप। कहते हैं तानसेनके साथ तत्कालीन सम्राट् बहुमूल्य उपहारके साथ श्रीस्वामीजीका संगीत सुनने आया था; पर आपने सारा उपहार लौटा दिया था। आपके सरस पद बड़े अनूठे हैं, उनमें नाम-महिमा भरी पड़ी है। आप कहते हैं—

हरि के नाम कौ आलस क्यों करत है रे, काल फिरत सर साँधैं॥

× × ×

जौलौं जीवै तौलौं हरि भजु रे मन, और बात सब बादि।
द्यौस चारि के हला भला में तूँ कहा लेइगो लादि॥

आपने केवल पदोंमें भगवद्गुणानुवाद किया है, अन्य छन्दोंमें नहीं। उनमें कविताके चमत्कार भले न हों, पर गानेमें वे बड़े सुन्दर हैं। श्रीस्वामीजी रस-सार-सर्वस्व हरि-नाम ग्रहण करनेके लिये कहते हैं—

गहौ मन ! सब रस कौ सार।
लोक-बेद कुल-करमै तजिये, भजिये नित्य बिहार॥
गृह-कामिनि, कंचन-धन त्यागौ, सुमिरौ स्याम उदार।
कहि हरिदास रीति संतन की, गादी कौ अधिकार॥

सत्य ही है, कंचन-कामिनीका आकर्षण मनुष्यको बरबस संसारमें बाँध लेता है और इसके त्यागके बिना भक्तिमें गाढ़ प्रीति नहीं होती। पर नाम-जपसे, निरन्तर भगवन्नाम लेते रहनेसे नामकी कृपासे ये बाधाएँ धीरे-धीरे दूर हो जाती हैं। नामाश्रय लेनेसे निश्चितरूपसे जैसे मृत्यु आती है वैसे ही बिना माँगे सभी सम्पत्तियाँ स्वतः चली आती हैं। अतएव हरि-भजन ही सर्वप्रधान धर्म है, मनुष्यको नाम-जपमें अवश्य प्रेमपूर्वक लगना चाहिये, निरन्तर, अहर्निश। श्रीस्वामीजी महाराज कहते हैं—

हरि भजि, हरि भजि, छाँड़ि मान नर तन कौ।
मति बंछै मति बंछै रे तिल-तिल धन कौं॥
अनमाँग्यौ आगैं आवैगो, ज्यौं पल लागै पलकौं।
कह (श्री)हरिदास, मीच ज्यौं आवै, त्यौं धन है आपुन कौं॥

—शि० दु०

नाम-प्रेमी राधावल्लभीय संत श्रीचतुर्भुजदासजी महाराज

संत श्रीचतुर्भुजदासजी महाराज श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदायके अनुयायी थे। (अष्टछापके चतुर्भुजदास ये नहीं हैं।) ये श्रीराधाकृष्णके अन्यतम भक्त एवं उनके मङ्गलमय नामके बड़े ही अनुरागी थे। ये बार-बार कहा करते—'जो भगवान्‌के श्रीचरणोंके अतिरिक्त अन्य किसीका ध्यान नहीं करते, उनके यशका गुणानुवाद स्वयं विश्वाधार प्रभु करते हैं।'

हरि-चरननि भजि और न ध्यावै।
ताकौ जस हरि आपुन गावै॥

अत्यन्त सरल एवं सीधी भाषामें वे अपनी अनुभूति भक्तों-[पर] प्रकट करनेमें निपुण थे। वे कहते थे—'जो श्रीभगवान्‌का भजन करता है, वह सब प्रकार सुखी होता है; अन्यथा यमराजके [ह]ाथों उसे दुस्सह यातना सहनी पड़ती है।'

जो हरि भजहि तो होइ महासुख।
नातरु जम-बस होइ सत-गुन दुख॥

भगवान्‌के प्रेमी, भगवत्प्राप्तिके साधक और भगवन्नाम-[के] उपासकके लिये अनेक सांसारिक बाधाएँ उपस्थित होती [है]ं, उनसे सतत सावधान रहनेका, वे मार्ग-निर्देश करते हैं। [वे] कहते हैं—

कर्कस बचन हृदौ छ्वै न कहिजै।
बध समान सो पातक लहिजै॥
त्रिनु ते तन नीचौ अति कीजै।
होइ अमान, मान तिहि दीजै॥
सहन-सुभाव वृच्छ कौ-सौ करि।
रसना सदाँ कहत रहियै हरि॥
परत्रिय तौ माता करि जानै।
लोह समान कनक उनमानै॥
तृनहि आदि चोरी नहिं करियै।
आपु समान जीव सब धरियै॥

उपर्युक्त छोटे-से सरल पदमें श्रीचतुर्भुजदासजी महाराजने मानव-जीवनको सतोमुखी करने, उसे भगवान्‌के पथका पथिक बनाने तथा अपकर्मोंसे बचनेके लिये सभी कुछ कह दिया है। यदि इनका अपने जीवनमें पालन कर लिया जाय तो निश्चय ही मनुष्य-जीवन धन्य बन जाय, सार्थक हो जाय।

वे मनुष्योंको जीभसे नाम रटनेके लिये आदेश देते हैं। कहते हैं—

प्रगट बदन, रसना जु प्रगट, अरु प्रगट नाम रढ़ि।
जीभ-निसेनि मुक्ति तिहि बल आरोहि मूढ़ चढ़ि॥

भगवत्कृपासे प्राप्त मुखमें जीभका सदुपयोग भगवन्नाम-जपमें अवश्य कर लेना चाहिये। जीवके तरनेके लिये इससे सरल और सुगम अन्य कोई साधन नहीं। 'विद्या एवं कर्मके बलसे तरना बड़ा कठिन है। भला, श्वान-पुच्छ पकड़कर अपार भवसागर पार हुआ जा सकता है?'

विद्याबल, कर्म-बल ना तरै भव-सिंधु स्वान की पूँछ धरि।

वे बताते हैं कि 'सारी ऋद्धियाँ, सारी सिद्धियाँ भक्तिके ही फल हैं। अन्य धर्म तथा अन्य कर्मोंके करनेसे संसारमें भटकना नहीं बंद हो सकेगा। हरि-भजनके बिना ये कठिन बेड़ियाँ नहीं टूट सकेंगी। इस दुस्तर संसार-सागरसे तो भगवान्‌के भजनके आश्रयसे ही पार जाया जा सकता है। छीपा(नामदेव), रैदास (चमार), ताँती (जुलाहा कबीर) और तुर्क (रसखान)' आदि अनेक भक्त इसके प्रमाण हैं।

सकल सिद्धि अरु रिद्धि जानि जीवन जु भक्ति-फल॥
और धर्म अरु कर्म करत भव-भटक न मिटिहै।
जुगम-महाशृंखला बिना हरि-भजन न कटिहै॥
'चत्रभुज' गुरुईश्वर-कृपा परै पार हरि-भजन-बल।
छीपा, चमार, ताँती, तुरक, जगमगात जानै सकल॥

भक्तवर प्रह्लाद, भक्त विभीषण, गज, सुदामा और द्रौपदी—अनेक भक्त इसके साक्षी हैं कि भगवान्‌के स्मरण-चिन्तन, उनसे कातर प्रार्थना और उनके चरणोंमें दृढ़ रति ही जीवके परम कल्याणका पथ है। इस कारण भक्त श्रीचतुर्भुजदासजी महाराज संसारके द्वन्द्वोंसे त्राण पानेके लिये एक ही मार्गका संकेत करते हैं और इसी मार्गका अनुसरण करनेके लिये मनुष्योंको प्रेरित करते हैं।

सकल तू सत-कृत छाँड़ि मुख्य सेवै गुरुईश्वर।
मिटहि सकल भव-द्वंद, फंद कटि, भेटि भगवान॥

—हि० चौ०

गुरु नानकदेव

पंजाब (पश्चिमी पाकिस्तान) में लाहौर जिलेके जिस स्थानपर आपका जन्म हुआ, उसे अब ननकाना साहब कहते हैं। उसका पुराना नाम तलवंडी ग्राम है। माता तृता और पिता कालूचंदा वैशाख शु० ३, संवत् १५२६ वि० को प्रकट हुए। इन्होंने करतारपुरमें आश्विन शु० १० सं० १५९५ वि० को निर्वाण प्राप्त किया।

ये बचपनसे शान्तस्वभाव, प्रतिभासम्पन्न, विरक्त तथा भगवद्भक्त थे। पिताने पंजाबी, संस्कृत, फारसीकी शिक्षा दिलायी; किंतु इनका चित्त ईश्वर-चिन्तनको छोड़कर अन्यत्र लगता ही नहीं था। पिताने विवाह कर दिया। पत्नीका नाम सुलक्खनी देवी था। दो पुत्र हुए—श्रीचंद और लक्ष्मीचंद। इनमेंसे श्रीचंदजीने संन्यास लेकर प्रसिद्ध 'उदासीन' सम्प्रदाय चलाया।

उदासीन सम्प्रदायमें बड़े-बड़े विरक्त महात्मा हो चुके हैं। अब भी उदासीन सम्प्रदायके विद्वान् महात्मा वर्तमान हैं।

पिताने नानकको एक मोदीकी दूकानपर नौकर रखवा दिया; किंतु ये व्यापार करने तो धरतीपर आये नहीं थे। आटा तौलते समय एक-दो करते जब तेरहका नंबर आया, तब आगे 'तेरा' 'तेरा' ही कहते चले गये। वहाँसे हटाकर पिताने कृषिमें लगाया; किंतु वहाँ भी मन नहीं लगा। अन्तमें घरसे देशाटनको निकल पड़े। इनके साथ इनके प्रिय सेवक रबाबपर भजन गानेवाले मर्दाना भी थे। इस यात्रामें गुरु नानकदेवने बहुत भ्रमण किया। वे दक्षिणमें श्रीलङ्कातक गये और उत्तरमें मक्का-मदीनातक। इस यात्राकालमें ही सूफी संत फरीदसे इनका परिचय हुआ और फिर तो दोनों महापुरुषोंमें प्रगाढ़ मैत्री हो गयी।

गुरु नानकदेव हिंदू-मुसलमान दोनोंको समान मानकर उपदेश करते थे। उनकी वेश-भूषा भी दोनोंके वेशका मिला-जुला रूप था। परमात्मा एक है और उसे सब प्राप्त कर सकते हैं—यही उनका मुख्य प्रचार था। राग-द्वेष, पाखण्ड उन्हें अप्रिय था।

अन्तमें अपने शिष्य लाहिणाको गुरुने अपना उत्तराधिकारी बनाया। इन्हींका नाम गुरु अंगद हुआ। शिष्योंसे गुरुने 'सोहिला' गानेको कहा और फिर 'जपुजी' का पाठ चलने लगा। 'जपुजी' की अन्तिम पंक्तिके साथ आपने चादर ओढ़ ली। 'वाह गुरु' की ध्वनिके साथ ज्योति ज्योतिमें लीन हो गयी।

भगवन्नामकी निष्ठा और नामका अवलम्बन गुरु नानक अनिवार्य मानते थे। आप कहते हैं—

हिरदै नामु सरब धनु धारणु, गुर परसादी पाइऐ।
अमर पदारथ ते किरतारथ सहज धिआनि लिव लाइऐ॥

× × ×

मन रे राम भगति चितु लाइऐ।
गुरमुखि राम नाम जपु हिरदै सहज सेती घरि जाइऐ॥
भरम भेदु भउ कबहु न छूटसि, आवत जात न जानी।
बिनु हरिनाम कोउ मुकुति न पावसि, डूबि मुए बिनु पानी॥
धंधा करत सगलि पति खोवसि, भरमु न मिटसि गवारा।
बिनु गुरु सबद मुकुति नहिं कबहीं अँधुले धंधु पसारा॥
अकल निरंजन सिउ मनु मानिआ, मनही ते मनु मूआ।
अंतरि-बाहरि एको जानिआ, नानक अवरु न दूआ॥

× × ×

जगत होम पुन तप पूजा, देह दुखी नित दुख सहै।
राम नाम बिनु मुकुति न पावसि, मुकुति नामि गुरमुखि लहै॥

× × ×

राम नाम बिनु बिरथे जगि जनमा।
बिखु खावै, बिखु बोलै, बिनु नावै निहफलु मरि भ्रमना॥
पुहतक पास बिआकरण बखाणै संधिआ करम तिरकाल करै।
बिनु गुरु सबद मुकति कहाँ प्राणी, राम नाम बिनु उरझि मरै॥
डंड कमंडल सिखा सूत धोती, तीरथि गवनु अति भ्रमण करै।
राम नाम बिनु सांति न आवै, जपि हरि नामु सुपारि परै॥
जटा मुकुटु तनि भसम लगाई, बसतर छोड़ि तन नगन भइया।
जेते जीअ-जंत जल, थल महि अलि-जत्र-तत्र तू सरब जीआ॥
गुरपसादि राखिले जन कउ हरिरस नानक घोलि पीया॥

—सु० सिं०

गुरु अंगद

फीरोजपुर जिलेमें मुक्तसरसे ६ मीलपर मत्तेदी सराय-नामक गाँव है। वहाँ फेरू नामक व्यापारी रहता था। पीछे वह हरिके नामक गाँवमें बस गया। यहींपर उसकी दूसरी पत्नी दयाकौरसे एक पुत्रका जन्म हुआ वैशाख वदी ११ सं० १५६१ वि०को। इस पुत्रका नाम पिताने लहिणा रखा। यही आगे गुरु नानकदेवकी गद्दीपर बैठकर गुरु अंगद कहलाये।

लहिणाका विवाह मत्तेदी-सरायकी ही लड़की खीवीके साथ हुआ। इससे एक पुत्री अमरो तथा दो पुत्र दासू और दातू हुए। ये लोग हरिके ग्राम छोड़कर फिर मत्तेदी-सरायमें ही आ बसे। लेकिन बलूचियोंके आक्रमणके समय वहाँसे अमृतसर जिलेके खडूर गाँवमें आ गये।

लहिणा पहले दुर्गाके उपासक थे। किंतु गुरु नानकदेव-के एक शिष्यके मुखसे 'जपुजी'का पाठ सुनकर इनका चित्त गुरुदेवके दर्शनको व्याकुल हो गया। ज्वालामुखीकी यात्रा-को निकले तो करतारपुरमें गुरु नानकदेवका साक्षात्कार हुआ—बस, चित्त-परिवर्तन हो गया। आगे गये ही नहीं। गुरुने आग्रह करके एक बार घर लौटा दिया; किंतु फिर करतारपुर लौट आये।

गुरु-सेवाके ये दृढ़व्रती थे। छोटी-मोटी सब सेवा बड़े उत्साहसे करते थे। पहले ही दिन बरसते पानीमें घासके तीन गट्ठर खेतसे गुरुके घर ले आये। एक बार गुरुकी आज्ञासे एक कच्ची दीवार तीन बार गिराकर बनायी। गुरुने इनकी कठिन-से-कठिन परीक्षा ली; किंतु बिना आगा-पीछा सोचे गुरुकी आज्ञा स्वीकार करनेका इनका व्रत कभी शिथिल नहीं पड़ा। आज्ञापालनमें ये सब शिष्यों तथा गुरुके पुत्रोंसे भी श्रेष्ठ निकले। इससे प्रसन्न होकर गुरुने इन्हें अपने स्थानपर बैठाकर भाई बुड्ढाके हाथसे तिलक करा दिया। फिर गुरुकी आज्ञासे ये खडूरमें जाकर रहने लगे।

गुरु नानकदेवके निर्वाणका इन्हें इतना दुःख हुआ कि एक एकान्त कोठरीमें जाकर बंद हो गये। बड़ी कठिनाईसे भाई बुड्ढाने इन्हें ढूँढ़ा।

शेरशाहसे पराजित हुमायूँ जब भाग रहा था, तब वह गुरु अंगदकी शरण आया था। गुरुने उसे विजयी होनेका आशीर्वाद दिया। कुछ दिन पीछे ही हुमायूँ विजयी हुआ। गुरु अंगद ही 'गुरमुखी' लिपिके आविष्कारक हैं और इस लिपिमें उन्होंने ही पहले-पहले गुरु नानकदेवके पदों, पौड़ियों तथा सलोकोंको लिपिबद्ध कराया।

गुरु अंगदने अपने परमभक्त शिष्य अमरूको गुरुगद्दी-पर बैठाया और स्वयं उसके आगे एक नारियल तथा पाँच पैसेकी भेंट धरी। उस दिनसे अमरूका नाम गुरु अमरदास हो गया। अमरदासको आपने गोइंदवालमें जाकर रहनेका आदेश दिया।

चैत्र शु० ३ सं० १६०९को गुरु अंगदने एक बड़ा भंडारा दिया। दूसरे दिन प्रातःस्नान करके 'जपुजी'का पाठ करने लगे और अन्तमें 'वाह गुरु' कहते हुए चोला छोड़ दिया।

परम विरक्त गुरु अंगदका कहना है—

नानक* दुनिआ कीआं वडि आईआं अगी सेती जालि।
एन्ही जलीईं नामु विसारिआ इक न चलिया नालि॥

'नानक, संसारकी बड़ाईमें आग लगा दो। इन्हीं मुख-जली बड़ाइयोंने तो उस (प्रभु)का नाम भुलवा दिया है। इनमेंसे कोई भी तो तेरे साथ जानेवाली नहीं है।'

—शु० मि०

* सभी सिख गुरु अपनी 'बानी'में 'नानक' नामका ही प्रयोग करते हैं, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये। 'गुरुग्रन्थ साहब'में कौन-सी 'बानी' किस महलेकी है, इसीसे निश्चय होता है कि वह किसकी 'बानी' है।

गुरु अमरदास

ये वैशाख शु० १४, सं० १५३६ वि० को अमृतसरके पास बसरका गाँवमें माता बखत कौरकी गोदमें आये। पिताका नाम था तेजभान। खत्री—भल्लाकुल। आपके पीछे तीन और छोटे भाई हुए। चौबीस वर्षकी अवस्थामें आपका मनसादेवीके साथ विवाह हुआ। दो पुत्र मोहरी तथा मोहन और दो पुत्रियाँ दानी और भानी हुईं।

आप पहले पक्के वैष्णव थे। नियमपूर्वक शालग्रामपूजन करते तथा एकादशीव्रत रखते थे। शुद्धचित्तमें गुरु-प्राप्तिकी लालसा जगना स्वाभाविक था। इस उत्कण्ठाके जगनेपर एक दिन छोटे भाईके घरसे उठती गुरु नानकदेवके एक पदकी गायन-ध्वनि कानमें पड़ गयी। बात यह थी कि गुरु अंगदकी पुत्री अमरोका विवाह इनके भतीजेसे हुआ था। वे ही यह पद गा रही थीं। उस पदको सुनकर लगा कि मार्ग मिल गया। ये गुरु अंगदके समीप पहुँचे और उनकी सेवामें रहने लगे।

गुरु अंगदके आज्ञानुसार अमरदासजीने अपना केन्द्र गोइंदवाल नगर बनाया। रात्रिमें ये वहाँ रहते और दिनमें खडूर आ जाते थे। पीछे बसरका ग्राम छोड़कर स्थायी रूपसे गोइंदवालमें ही आ बसे।

पर्याप्त वृद्ध हो जानेपर भी इनका यह नियम चलता रहा कि प्रातःस्नान करके ब्यास नदीका जल गुरुदेवके स्नानके लिये लेकर खडूर जाते थे। मार्गमें 'जपुजी' का पाठ चलता था। खडूर जाकर गुरुकी रसोईके बर्तन मलते, पानी भरते, जंगलसे लकड़ी लाते, सायंकाल 'सोदरु' सुनते और गुरुके शयन करनेपर उनके चरण दबाकर तब गोइंदवाल जाते थे। इनकी गुरुसेवासे संतुष्ट होकर गुरु अंगदने इन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाया।

गुरु अंगदके निर्वाणके पश्चात् उनके पुत्र दातूने बल-पूर्वक खडूरके स्थानपर अधिकार कर लिया। गुरु अमरदासके लिये बोला—'वह बुड्ढा तो हमारे घरका नौकर था। गुरुगद्दीका वह अधिकारी कैसे हो सकता है।' गोइंदवाल जाकर उसने अमरदासको गालियाँ दीं तथा ठोकर मारकर नीचे गिरा दिया; किंतु अमरदासजीने नम्रतापूर्वक कहा—'महाराज! आपके चरणोंमें चोट तो नहीं लगी? कृपा करके मुझे क्षमा करें।'

गुरु अमरदासने अपने दामाद जेठाको, जो इनका शिष्य तथा सेवक था, गुरुगद्दी दी। भाद्रपूर्णिमा सं० १६३१ वि० को सतनामका उच्चारण करते हुए इन्होंने देह छोड़ा।

भगवन्नामको ये अपना प्राण ही मानते थे। अतः कहते हैं—

सो किउ विसरै, जिसके जिआ-पराना।
सो किउ विसरै, सभ माहि समाना।
जितु सेविऐ दरगह पति परवाना॥
हरिके नाम विटहु बलि जाउँ।
तू विसरहि तदि ही मरि जाउँ॥
तिन तूँ विसरहि तुधु आपु भुलाए।
तिन तूँ विसरहि जि दूजै भाए॥
मनमुख अगिआनी जोनी पाए।
जिन इक मनि तुट्ठा से सतिगुर सेवा लाए॥
जिन इक मनि तुट्ठा तिन हरि मनि बसाए।
गुरमत्ती हरिनाम समाए॥
जिना पोतै पुन्न से गिआन बिचारी।
जिना पोतै पुन्नु तिन हउमै मारी॥
नानक जो नामरते तिनकउ बलिहारी॥

—सु० सिं०

गुरु रामदास

लाहौरमें कार्तिक कृ० २, सं० १५९१ वि० को इनका जन्म हुआ। इनकी माता अनूपदेवी तथा पिता हरिदासजी थे। सोढी खत्रीकुल था इनका। बचपनका नाम जेठा था। गुरु अमरदासकी पुत्री भानीके साथ इनका विवाह हुआ। तीन पुत्र हुए—पृथीचंद, महादेव और अर्जुन। इनमेंसे पृथीचंद उद्धत स्वभावके निकल गये। महादेव भी आज्ञाकारी नहीं थे। अर्जुन नम्र, पितृसेवक तथा सद्गुणी थे। अतः आगे वे ही गुरुगद्दीके अधिकारी हुए।

ये गुरु अमरदासके अनन्य सेवक थे। एक दिन शिष्योंने गुरु अमरदाससे कहा—'आपका बड़ा दामाद राम भी आपका सेवक है। आप उसको छोटे दामाद जेठा-जितना प्यार क्यों नहीं करते?'

गुरुने कहा—'परीक्षा कर ली जायगी।'

अब गुरु अमरदासने बड़े दामाद रामाको बावलीके पास एक चबूतरा बनानेकी आज्ञा दी। चबूतरा बनकर तैयार हुआ तो बोले—'यह ठीक नहीं है। गिराकर फिर बनाओ।' रामाने फिर बनाया और फिर गिराकर बनानेकी आज्ञा हुई। उसने आज्ञापालन किया; किंतु जब तीसरी बार वही आज्ञा हुई तब बोला—'गुरु बुड्ढे हो गये हैं। अब इनकी बुद्धि ठीक काम नहीं देती।'

अब जेठाको चबूतरा बनानेकी आज्ञा हुई। उसने बनाया और उसे भी गिराकर फिर बनानेको कहा गया। यह क्रम चलता रहा। गुरुकी आज्ञासे जेठाने सात बार चबूतरा गिराकर बनाया। अन्तमें गुरुके चरण पकड़कर बोला—'मैं मूर्ख हूँ। मुझसे सेवा बन नहीं पाती। इस अपराधी जीवसे तो भूलें होंगी ही। आप अपनी कृपासे क्षमा करें।'

गुरु अमरदास प्रसन्न होकर बोले—'तूने मेरी आज्ञासे सात बार चबूतरा बनाया है; अतः तेरी सात पीढ़ी गुरु-गद्दीपर बैठेगी।' यह कहकर जेठाको ही गुरुगद्दीपर उन्होंने बैठाया। गद्दीपर बैठनेपर जेठाका नाम गुरु रामदास हो गया।

गुरु रामदासकी आकृति गुरु नानकसे सर्वथा मिलती थी। गुरु नानकके ज्येष्ठ पुत्र श्रीचंदजी जटा बढ़ाये नग्न घूमते थे। वे एक बार गुरु रामदाससे मिलने आये। रामदासजीने आगे जाकर स्वागत किया, उनके आगे : रक्खी। गुरु रामदासकी लम्बी दाढ़ी देखकर जब श्रीचंदजी पूछा कि 'आपने दाढ़ी क्यों बढ़ायी ?' तो आप बोले-'यह तो आपके चरण पखारनेके लिये बढ़ी है।' सचमु दाढ़ीसे चरण पोंछने चले; किंतु श्रीचंदजीने रोक दिया।

सिक्खोंके महान् तीर्थस्थल अमृतसरका निर्माण इन्हों ही कराया। यह तालाब भाई बुड्ढाकी देख-रेखमें बना धर्म-प्रचारके लिये इन्होंने कुछ योग्य व्यक्ति नियुक्त किं जिन्हें 'मसंद' कहा जाता था।

संवत् १६३८ वि० भाद्र शु० ३ को गोइंदवाल जाक 'वाह गुरु' की ध्वनि करते इन्होंने शरीर छोड़ा।

भगवन्नामके सम्बन्धमें आप कहते हैं—

बोलि हरिनाम, सफल सो घरी॥
गुर उपदेसि सभि दुःख परहरी।
मेरे मन! हरि भजु नामु नरहरी॥
करि किरपा मेलहु गुरु पूरा।
सत संगति संगि सिंधु भव तरी॥
जग जीवनु धिआइ मनि हरि सिमरी।
कोट कुटंतर तेरे पाप परहरी॥
सत संगति साध धूरि मुख परी।
इसनान कियो अठसठ सुरसरी॥
हम मूरख कउ हरि किरपा करी।
जनु नानकु तारिओ तारण हरी॥

—छु० सिं०

गुरु अर्जुनदेव

गुरु रामदासकी पत्नी बीबी भानीकी गोदमें गोइंदवाल स्थानमें वैशाख कृ० ७, सं० १६२० वि० को आप प्रकट हुए। मउ ग्रामके कृष्णचन्द्रकी पुत्री गङ्गादेवीसे आपका विवाह हुआ। इन्हीं गङ्गादेवीसे महाप्रतापी छठे गुरु हरगोविन्दका जन्म हुआ था।

गुरु अर्जुनदेवने संतोखसर तथा अमृतसरके घाट बनवाये तथा रामदासपुरको भी विस्तृत किया। अमृतसरमें मन्दिर बनवाकर उसमें ग्रन्थसाहबकी प्रतिष्ठा भी इन्होंने की। यही मन्दिर अब 'दरबार साहब' कहा जाता है। तरन-तारनका निर्माण भी इन्होंने ही किया।

इनका पूरा जीवन संघर्षमें बीता। पर संघर्ष-विरोधके होते हुए भी गुरु अर्जुनदेवने सदा शान्ति, तितिक्षा, क्षमाका ही परिचय दिया।

अपनेसे पूर्वके चारों गुरुओंकी वाणीका इन्होंने संकलन किया तथा उन्हें रागबद्ध किया। इस प्रकार गुरुग्रन्थ-साहबका सम्पादन इन्होंने ही किया।

गुरु अर्जुनदेवकी अवस्था ४३ वर्षकी थी जब कि इन्हें धर्मकी वेदीपर आत्माहुति देनी पड़ी। बादशाहने इन्हें इस्लामविरोधी घोषित करके गिरफ्तार कराया। बड़े छल-बलसे इनको पकड़कर दिल्ली लाया गया और शाही

हुक्म हुआ—'दो लाख रुपये जुर्माना दो और ग्रन्थसाहबमेंसे आपत्तिजनक अंश निकाल दो।'

गुरु अर्जुनदेवने दोनों बातें अस्वीकार कर दीं। वे बोले—'गुरु-ग्रन्थसाहबमें एक भी पंक्ति किसी धर्म या अवतार-की निन्दाके लिये नहीं है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। मैं सत्यका प्रचार तथा असत्यके निवारणमें लगा हूँ। इसमें देह चला भी जाय तो अहो भाग्य।'

बादशाह बहुत अप्रसन्न हुआ। गुरु अर्जुनदेवको कारागार-में डाल दिया गया और वहाँ भयानक यन्त्रणाएँ दी जाने लगीं। जलती रेत उनपर डाली जाती थी। चंदूशाह उन्हें नाना प्रकारसे कष्ट देता था। किंतु गुरुने दृढ़ स्वरमें उससे कहा—

फूटा अंडा भरमका मनहिं भया परगासु।
काटी बेड़ी पगहते, गुरि कीता बंदि खलासु॥

गुरु अर्जुनदेव पाँच दिन कारागारमें रहे। छठे दिन उन्होंने रावीमें स्नानकी आज्ञा माँगी। आज्ञा मिल गयी। पाँच प्यारे सिक्खोंको साथ लिया। पैरोंमें घाव, पूरे देहमें फफोले पड़े हैं, सशस्त्र सिपाहियोंसे घिरे हैं; किंतु मुखपर मस्ती, प्रसन्नता और 'वाह गुरु' का नाम। रावीमें स्नान किया। धारामें खड़े-खड़े जपुजीका पाठ किया और चोला छोड़ दिया। ज्येष्ठ शु० ४, सं० १६६३ को धर्मकी वेदीपर यह आहुति दी गयी।

ये धर्मप्राण गुरुदेव कहते हैं कि माया जो जगत्‌को ठगती है—नाम-प्रेमीके द्वारा ठगी जाती है—

जाकी राम नाम लव लागी।
सज्जन सुहृद सुहेला सहजे, सो कहिये बड़ भागी॥
रहित बिकार अलिप माइआ ते, अहंबुधि-बिखु त्यागी।
दरस पिआस आस एकहि की, टेक हिये प्रिय पागी॥
अचिंत सोइ जागनु उठि बैसनु अचिंत हसत बैरागी।
कहु नानक जिन जगत ठगाना, सु माइआ हरिजन ठागी॥

इसलिये—

राम राम राम राम जाप।
कलि कलेस लोभ मोह बिनसि जाइ अहं-ताप॥
आपु तिआगि संत चरन लागि मनु पवित्र जाहि पाप।
नानकु बारिकु कछू न जानै राखन का प्रभु माई-बाप॥

× × × ×

गावहु रामके गुण गीत।
नाम जपत परम सुख पइऐ, आवागवनु मिटै मेरे मीत॥
गुण गावत होवत परगासु। चरन कमल महि होइ निवासु॥
सत संगति महि होइ उधारु। नानक भउजलु उतरसि पारु॥

संसारमें वही सौभाग्यशाली, धनवान्, गुणी, सुखी है, जो भगवन्नाममें लगा हुआ है—

वड़भागी ते जन जग माहिं। सदा-सदा हरिके गुन गाहिं॥
रामनाम जो करहिं विचार। से धनवंत गनी संसार॥
मनि तनि मुख बोलहिं हरि मुखी। सदा-सदा जानहु ते सुखी॥
एको एकु एकु पछानं। इत उतकी ओहु सोझी जानं॥
नाम संगि जिसका मनु मानिअ। नानक तिनहि निरंजनु जानिअ॥

इसलिये यह निश्चय समझ लेना चाहिये कि—

हरि हरि नामु जो जनु जपै, सो आइआ परवाणु।
जिस जनकै बलि हारणै जिन भजिआ प्रभु निरवाणु॥
सतगुरु पूरे सेविए, दूखाका होइ नास।
नानक नाम अराधिए, कारजु आवै रास॥
सोरठि सो रसु पीजिए, कबहूँ न फीका होइ।
नानक राम नाम गुन गाइए, दरगह निरमल सोइ॥

—शु० सिं०

गुरु तेगबहादुर

आप छठे गुरु हरगोविन्दके पुत्र थे। माता थीं नानकीदेवी। वैशाख कृ० ५, सं० १६७९ वि० को अमृतसरमें प्रकट हुए। छठे गुरुके पाँच पुत्र थे—गुरुदित्ता, सूरजभान, अनीराम, बाबा अटल और तेगबहादुर। इनमेंसे गुरुदित्ताके छोटे पुत्र हरराय सातवें गुरु हुए। आठवें गुरु हुए हररायके छोटे पुत्र हरकृष्ण राय। इनका देहावसान [illegible] अवस्थामें हो गया।

गुरु हरगोविन्दके निर्वाणके पश्चात् तेगबहादुर अपनी पत्नी गूजरी तथा माताके साथ बाकला ग्राममें रहने लगे थे। गुरु हरकृष्ण रायने लगभग मूर्छित दशामें उत्तराधिकारीका नाम 'बाबा बाकले' बतलाया था। उनका तात्पर्य तो बाकलामें रहनेवाले उनके बाबा तेगबहादुरसे था; किंतु बाकलाके सोढ़ी [illegible]

गुरु तेगबहादुर पाँच वर्षकी आयुसे ही एकान्तप्रिय थे। बहुत कम बोलते थे। इनकी साधुता देखकर इनके पिताने भविष्यवाणी की थी कि ये गुरु बनेंगे। इनके बड़े भाई गुरुदित्ताका पुत्र धीरमल इनसे द्वेष रखता था। इन्हें मार डालनेको उसने षड्यन्त्र भी किया, जो विफल रहा। उसके उपद्रवोंसे तंग आकर गुरु तेगबहादुरने कीरतपुर छोड़ दिया और वहाँसे ६ मील दूर आनन्दपुर नामका एक नगर बसाया। लेकिन धीरमल तथा रामरायके उपद्रवोंके कारण वे वहाँ भी नहीं रह सके। उन्होंने लंबी-लंबी यात्राएँ प्रारम्भ कर दीं। इन यात्राओंमें वे कड़ा मानिकपुर, प्रयाग, काशी तथा गया गये।

जयपुरनरेश महाराज जयसिंहके पुत्र रामसिंहने कामरूप-नरेशके विरुद्ध चढ़ाईमें गुरु तेगबहादुरसे सहायता माँगी। गुरुने इसे स्वीकार कर लिया और औरंगजेबकी बादशाही फौजके साथ कामरूप गये। लेकिन वहाँ युद्ध नहीं हुआ। गुरुके तेज एवं आत्मबलके सम्मुख कामरूप-नरेश स्वयं झुक गये। भयंकर रक्तपात बच गया। गुरुने कामरूप-राज्यको दो भागोंमें विभाजित करके कहा—'बादशाह तथा नरेश इन अपने-अपने भागोंमें शासन करें तथा पुराना वैर भूल जायँ।'

गुरु पटनामें अपनी पत्नी तथा माताको छोड़ गये थे। आसाममें ही समाचार मिला कि इनकी पत्नीको पुत्र-प्राप्ति हुई। राजा रामसिंहने इस समाचारके उपलक्षमें वहाँ बड़ा भारी उत्सव मनाया। गुरु तेगबहादुर पटना लौट आये और कुछ काल वहीं रहे। पीछे वे अकेले पंजाब आये। कुछ दिनों बाद माता तथा पत्नीको भी बुला लिया।

बादशाह औरंगजेब बलपूर्वक धर्मपरिवर्तन करानेपर तुला था। उसने कश्मीरके ब्राह्मणोंको अपने सूबेदार शेर अफगानके द्वारा कहलवाया कि वे सब या तो मुसल्मान हो जायँ अथवा मरनेको तैयार रहें। व्याकुल होकर उन ब्राह्मणोंने अपने प्रतिनिधि गुरु तेगबहादुरके पास भेजा; क्योंकि एकमात्र वे ही इस विपत्तिमें रक्षा करने योग्य उन्हें जान पड़े। ब्राह्मणोंकी विपत्तिकथा सुनकर गुरु तेगबहादुरने धर्मरक्षाके लिये आत्माहुति देनेका निश्चय कर लिया। उनकी सलाहके अनुसार ब्राह्मणोंने बादशाहके पास संदेश दिया—'गुरु नानकके तख्तपर आसीन गुरु तेगबहादुरको पहिले आप मुसल्मान बना लें तो खुशीसे वे इस्लाम कबूल कर लेंगे।'

बादशाहने तुरंत कुछ अधिकारी गुरु तेगबहादुरको दिल्ली लानेके लिये भेजे। गुरुने उन लोगोंसे कह दिया—'वर्षाके बाद मैं स्वयं दिल्ली आऊँगा।' इस प्रकार अधिकारियोंको उन्होंने लौटा दिया, किंतु स्वयं दिल्लीकी ओर चल पड़े। मार्गमें अपने मित्र सैफुद्दीनसे मिले। सैफुद्दीनने सिक्खधर्म स्वीकार कर लिया। गुरु वहाँ तीन महीने रुके रहे। इसी प्रकार मार्गमें कई स्थानोंपर ठहरते, धर्मप्रचार करते दिल्ली पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही बादशाहने उन्हें गिरफ्तार करवा दिया।

गुरु तेगबहादुरके सामने जब बादशाह औरंगजेबने इस्लाम कबूल करनेका प्रस्ताव रक्खा, तब आप बोले—'अगर दुनियामें एक ही मजहब चलाना खुदाको मंजूर होता तो कई मजहब एक साथ चल कैसे सकते थे। उस मालिककी मर्जीके खिलाफ न मैं कुछ कर सकता हूँ, न तुम। मैं अपना धर्म कभी नहीं छोड़ूँगा। परमात्मासे डरो और जुल्म करना बंद करो।'

बादशाह गुस्सेसे लाल हो गया। गुरुको बहुत-से प्रलोभन दिये गये। तरह-तरहसे डराया और सताया गया। किंतु वे पर्वतके समान अटल रहे। अन्तमें उन्हें लोहेके पिंजड़ेमें बंद कर दिया गया।

मार्गशीर्ष शु० ५, सं० १७३२ वि०का दिन था। गुरुको पिंजड़ेसे निकाला गया। उन्होंने स्नान करके एक वटवृक्षके नीचे 'जपुजी' का पाठ किया और ध्यानस्थ हो गये। उसी अवस्थामें सैयद आदमशाहने उनका सिर धड़से पृथक् कर दिया। धर्मरक्षाके लिये एक महत्तम बलिदान हो गया।

गुरु तेगबहादुरका कहना था कि जीवका दुःख हरिनामके बिना नहीं मिटता। वह दूसरा कोई भी उपाय कर ले, कोई लाभ नहीं होता।

हरिके नाम बिना दुखु पावै।
भगति बिना सहसा नहि चूकै गुर इह भेद बतावै॥
कहा भइओ तीरथ ब्रत कीए, राम सरन नहिं आवै।
जोग-जग्य निहफल तिह मानौ, जो प्रभु जसु बिसरावै॥
मान-मोह दोनों को परिहरि गोबिंद के गुन गावै।
कहु नानक इस बिधिको प्रानी जीवन मुकुत कहावै॥

× × ×

तिह नर जनम अकारथ खोइऔ, इह राखहु मन माहीं॥
तीरथ करइ, ब्रिरत पुनि राखै, नहि मनुआ बस जा को।
निहफल धरम ताहि तुम मानो, सांचु कहत मैं या को॥

गुरु गोविन्दसिंह

इनका जन्म माता गूजरी तथा पिता नवम गुरु तेग-बहादुरजीके घर शनिवार, पौष शु० सप्तमी, सं० १७२३ वि० को पटनामें हुआ। पूर्वजन्ममें आपने कठोर तप किया था; किंतु उस समय आदेश मिल गया—'भारतमें जाकर धर्मका प्रचार करो।' इसलिये आपको यह जन्म धारण करना पड़ा। अभी आप नौ वर्षके भी नहीं हुए थे कि इनके पिता दिल्लीमें शहीद हो गये। फलतः आपको आनन्दपुरमें गुरु-गादीका काम सम्हालना पड़ा।

सं० १७३४ वि० में आपका विवाह श्रीमती जीतोदेवीके साथ हुआ। उनसे गुरुदेवके चार पुत्र हुए। चारों ही धर्मके लिये बलिदान होकर प्रसिद्ध हुए। गुरु गोविन्दसिंह शास्त्र तथा शस्त्र—दोनोंमें निपुण थे। बहुत व्यय करके आपने संस्कृत ग्रन्थोंका अनुवाद कराया। साथ ही सिक्ख सेनाका भी निर्माण किया और दुर्ग बनवाये।

१ वैशाख १७५६ सं० को गुरुने 'खालसा' सम्प्रदाय स्थापित किया। यह सिक्खोंकी दृढ़ जाति बना देनेका प्रयोग था। एक बार औरंगजेबकी भारी मुगल सेना आनन्दपुरपर चढ़ाई करने आयी और घोर युद्ध करके भी जब सफल नहीं हुई, तब एक वर्ष घेरा डालनेके पश्चात् धोखा देकर, कुरानकी कसम खाकर गुरुसे आनन्दपुर खाली कराया। गुरु सेनासहित बाहर आये तो कसम तोड़कर आक्रमण कर दिया। इससे बहुत हानि हुई। बहुत ग्रन्थ नष्ट हो गये। गुरुमाता तथा दो छोटे पुत्र बिछुड़ गये और सरहिंद जा पहुँचे, जहाँ सरहिंदके नवाबने दोनों सुकुमार बालकोंको जीवित दीवारमें चुनवा दिया। गुरुदेव स्वयं घेरेमें पड़ गये और उसमें उनके दोनों बड़े पुत्र युद्धमें मारे गये।

बड़ी वीरतासे शत्रुसेनाका सामना करते हुए घेरा तोड़कर गुरु गोविन्दसिंह निकल गये। आप मरुदेश तथा जंगलोंमें होते घूमते रहे। आपके प्रभावसे भूतदेश, देवदेश तथा जंगल मालवा बना। यहींसे आपने औरंगजेबको एक पत्र भेजा, जो जफरनामा कहा जाता है। इस पत्रको पाकर बादशाह बहुत लज्जित हुआ।

औरंगजेबकी मृत्यु होनेपर गुरुकी सहायतासे बहादुरशाह बादशाह हुआ। गुरु गोविन्दसिंहजीने फिर दक्षिणकी यात्रा की। वहाँ सं० १७६४ में गोदावरी-किनारे अविचल नगर आपने बसाया।

सरहिंदके नवाबने दो पठान गुरुका वध करनेके लिये भेजे। दोनों जाकर गुरुके भक्त बनकर रहने लगे। अवसर पाकर इनमेंसे एकने भाद्र कृ० ४ सं० १७६५ वि० को संध्या-समय [illegible]

गोविन्दसिंहने उसे तुरंत मार दिया। घावपर टाँके लगे और वह ठीक होने लगा; किंतु दैवको यह स्वीकार नहीं था। बादशाहने भेंटमें एक नया धनुष भेजा था, उसे खींचनेके प्रयत्नमें इनके टाँके टूट गये। कार्तिक शु० ५ बृहस्पतिवारको गुरुने अपना सैनिक वेश तथा शस्त्र धारण किया। सिक्खोंको अन्तिम उपदेश किया। आदेश दिया—'अबसे ग्रन्थसाहब ही गुरु रहेंगे।' इसके बाद वे अपने घोड़ेपर बैठे और ४२ वर्षकी अवस्थामें अन्तर्धान हो गये।

नामकीर्तनके अपने पदमें गुरु गोविन्दसिंह कहते हैं—

प्रभु तो कहँ लाज हमारी।
नीलकंठ नरहरि नारायण नील बसन धारी॥
परम पुरुष परमेस्वर स्वामी पावन पउन-अहारी।
माधव महाजोति मधु मरदन मान मुकुंद मुरारी॥
निर्बिकार निर्जर निद्रा बिनु निर्बिख नरक-निवारी।
कृपासिंधु काल त्रै दरसी कुकृत-प्रनासनकारी॥
धनुरबान धृत मान धराधर अनबिकार असिधारी।
हौं मतिमंद चरन सरनागत कर गहि लेहु उबारी॥

—शब्दहजारे

नामके बिना सब श्रम-साधन व्यर्थ है—

देस-बिदेस नरेसन जीत, अनेक बड़े अवनेस सँहारे।
आठोइ सिद्धि सबै नव निद्धि, समृद्धिन सर्व भरे गृहसारे॥
चंद्रमुखी बनिता बहुतै धरि, मालभरे नहिं जात सम्हारे।
नामबिहीन अधीन भये जम, अंत को नागे हि पाइँ सिधारे॥

—विचित्र नाटक

—शु० सिं०

भारतेन्दु श्रीहरिश्चन्द्र

९ सितम्बर सन् १८५० ई० को श्रीगिरिधरदासजीको एक पुत्र हुआ। काशीका यह परिवार समृद्ध था, विद्वान् था और भगवद्भक्त था। गिरिधरदासजी स्वयं अच्छे कवि थे; किंतु उनका यह पुत्र हरिश्चन्द्र तो उनके यशको अमर करनेवाला हो गया। बाल्यकालसे इनमें अद्भुत काव्य-प्रतिभा तथा भक्ति थी।

दस वर्षके थे, तब पिता परलोक सिधारे। तेरह वर्षकी अवस्थामें विवाह हो गया। बड़ा सुन्दर शरीर और बड़ा उदार चित्त। दानी ऐसे कि अबतक लोग कहते हैं कि भारतेन्दु सत्ययुगके हरिश्चन्द्र-जैसे दानी थे। हिंदी-साहित्यको विविध धाराएँ दीं हरिश्चन्द्रने। खड़ी बोलीको परिष्कृत किया। राष्ट्रीयताका नाद गुंजित किया। हिंदी-जगत्ने इनको 'भारतेन्दु'की उपाधिसे भूषित किया।

भारतेन्दु श्रीवल्लभ-सम्प्रदायके वैष्णव थे और परम-भक्त थे। श्रीकृष्ण ही उनके सर्वस्व थे। वे अपने सम्बन्धमें कहते थे—'सखा प्यारे श्यामके, गुलाम राधारानीके।' मृत्यु-शय्यापर थे भारतेन्दु, तब बोले—'प्यास लगी है।' राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद शय्याके पास थे। उन्होंने चाँदीके कटोरेमें जल देना चाहा तो बोले—'पानी नहीं, घनानन्दका सवैया। प्यास प्राणोंको लगी है।' राजा साहबने सवैया पढ़ा—

तुम कौन-सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटाक नहीं।

इस प्रकार मृत्युशय्यापर भी हरिश्चन्द्रकी रसिकता और भक्ति दृढ़ रही। ६ जनवरी सन् १८८५ को लीलाधामकी यात्रा की। ये परम भागवत उपदेश तो क्या करते, अपने आपसे कहते हैं—

रसने! रटु सुंदर हरिनाम।
मंगल करन, हरन सब असगुन, करन कल्पतरु काम॥
तू तौ मधुर सलोनो चाहत, प्राकृत स्वाद मुदाम।
'हरीचंद' नहिं पान करत क्यों, कृष्ण-अमृत अभिराम॥

—शु० सिं०

नामप्रेमी भक्त श्रीरसिकमोहन विद्याभूषण

'नामई आमार सर्वस्व' कहते-कहते जिनके नेत्रोंसे अश्रुधारा चल पड़ती थी, वे श्रीविद्याभूषणजी एक बार विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरसे मिलने श्रीक्षितिमोहन सेनके साथ शान्तिनिकेतन गये। विश्वकविसे आपकी घनिष्ठ मित्रता थी। बातोंमें बहुत समय बीत गया। विदा होते समय बोले—"इतना समय बीत गया, यह तो पता ही नहीं लगा। सच्ची बात यह है कि हम न तो 'काल'को जानते हैं और न 'काली' को ही। हम तो वैष्णव हैं। कहीं कोई जान या अनजानमें भाव (प्रेम) के घरमें अपराध करेंगे तो प्रेमके ठाकुर हमें कभी क्षमा नहीं करेंगे। बस, यह अपराध हमसे कभी न हो।"

तत्काल विश्वकवि बोले—'विद्याभूषणजी! त्यागी

मनुष्योंके समान केवल अपने लिये ही यह प्रार्थना न करें। हमारे लिये और सारे जगत्के लिये भी यही प्रार्थना करें कि भावके घरमें कोई अपराध न करे। जगत्के सारे अपराध क्षन्तव्य हैं; किंतु इस अपराधसे छुटकारा नहीं।'

बंगालका यह सर्वमान्य विद्वान्, परम भावुक भक्त किसी पाठशालामें पढ़ा हुआ नहीं था। बंगालके एकचक्रा ग्राम (वीरभूमि) में जन्म हुआ। घरपर ही एक महाराष्ट्र विद्वान्से संस्कृत तथा एक अंग्रेज सज्जनसे अंग्रेजीका अभ्यास किया। लेकिन थे विद्याव्यसनी। घरपर संस्कृत तथा अंग्रेजी-के चुने हुए ग्रन्थोंका एक पुस्तकालय बना लिया था, जो आगे जाकर विद्यालय बन गया।

सत्रह वर्षकी अवस्थामें पितृवियोगने उत्कट वैराग्य प्रदान किया। घर छोड़कर ढाका चले गये और वहाँ दीन-दुखियोंकी सेवामें लग गये। इस सेवाकार्यमें अनुभव हुआ कि निर्धन लोगोंकी सेवाके लिये कुछ चिकित्साशास्त्रका ज्ञान होना चाहिये; क्योंकि धनहीन रोगीको वैद्य-डाक्टर दवा देनेका कोई उत्साह नहीं दिखलाते। धुनके पक्के थे; अतः कलकत्ता लौटे और मेडिकल कालेजमें चिकित्साशास्त्रका अध्ययन करने लगे। साथ-ही-साथ संस्कृत कालेजके पुस्तकालयकी पुस्तकोंसे संस्कृतका अध्ययन भी करते जाते थे।

महात्मा शिशिरकुमार घोषका संसर्ग इसी समय हुआ और उन्होंने श्रीगौराङ्गकी भक्तिमें इनके मानसको रँग दिया। फिर तो इन्होंने दर्जनों वैष्णवग्रन्थोंकी रचना तथा अनुवादके द्वारा बंगला साहित्यमें भक्तिकी भागीरथी ही प्रवाहित कर दी। अनेक पत्र-पत्रिकाओंका आपने सम्पादन किया।

थे गृहस्थ; किंतु जीवन संन्यासी-जैसा त्यागपूर्ण था। पत्नी तथा पुत्रका देहावसान छोटी अवस्थामें हो गया था। स्वयं इन्होंने सौ वर्षसे भी अधिककी (१०९ वर्ष) आयु प्राप्त की। भक्ति, भगवन्नाम-प्रेम एवं श्रद्धाके साथ लोकोत्तर प्रतिभा-की साक्षात् मूर्ति थे विद्याभूषणजी और इस प्रतिभाका उपयोग लोकमें भगवत्प्रेमके प्रसारमें इन्होंने पूरा-पूरा किया। भगवन्नाम-महिमापर इनकी बंगला पुस्तक 'नाममाधुरी' प्रसिद्ध है।

—सु० सिं०

नामप्रेमी संत श्रीरामकृष्णदास

भाद्रपद सं० १९१४ वि० को जयपुरके एक गौड़ ब्राह्मण-परिवारमें श्रीरामकृष्णदासजीका जन्म हुआ था। इनके पिता श्रीरामप्रतापजी मिश्र वंशपरम्परासे महाराज जयपुरके शिक्षक थे। राज्यकी ओरसे इन्हें जागीर प्राप्त थी।

श्रीरामकृष्णदासजी बचपनसे भगवच्चरणानुरागी थे और श्रीगोविन्दजीके मन्दिरमें ही दर्शन तथा खेलनेका समय बिताते थे। यज्ञोपवीतके अनन्तर इन्होंने गायत्रीका अनुष्ठान किया। गायत्रीदेवीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर इन्हें वृन्दावन जानेका आदेश दिया। तेरह वर्षकी अवस्थामें ही ये वृन्दावन आ गये और वहाँ गोविन्ददेवजीके मन्दिरमें रहकर विद्याध्ययन करने लगे। विद्याध्ययनके पश्चात् श्रीनित्यानन्ददासजीसे वैष्णवी दीक्षा ले ली।

मन्त्र-दीक्षा प्राप्त होनेपर आप बरसाना चले गये। उस प्रेमभूमिमें एक वृद्ध महात्मासे संगीतकी शिक्षा लेने लगे; किंतु चित्तको तो भजनका रस मिल चुका था; अतः संगीत-शिक्षा भजनमें विक्षेप जान पड़ने लगी। इसलिये गुरुदेवकी आज्ञा लेकर उद्धव-क्यारीमें गोपालमन्त्रका अनुष्ठान किया। यहाँ श्रीराधाकृष्णका साक्षात्कार करके जीवन धन्य हो गया।

तदनन्तर श्रीनिकुञ्जेश्वरीके आदेशसे ही गोवर्धनके पूँछरी स्थानमें श्रीराघवपण्डितकी गुफामें आकर भजन करने लगे और तीस वर्ष इसी स्थानपर रहे। तीन-चार दिनपर भिक्षा करने निकलते थे। केवल व्रजवासियोंके घरोंसे मधुकरी लेकर शरीर-निर्वाह करते थे। इस कालमें इनकी माताजी भी आ गयीं। सात-आठ वर्ष व्रजवास करते हुए भजन करती रहीं। व्रजभूमिमें ही उन्होंने शरीर छोड़ा।

तत्कालीन ग्वालियर-नरेशके बड़े भाई बलवन्तरावजी कभी-कभी इनके दर्शन करने आया करते थे। उन्होंने बहुत आग्रह किया एक बड़ी रकम स्वीकार करनेका; किंतु श्रीरामकृष्णदासजीने उसे अस्वीकार कर दिया। पूँछरीसे आप श्यामकुटी आये और वहाँसे वृन्दावन आकर दाऊजीके उद्यानमें रहने लगे। आश्विन कृ० ४, संवत् १९९७ वि० को आपने परमधामकी यात्रा की। आप आदेश दे गये थे कि अन्त्येष्टि-क्रियामें भी केवल व्रजवासियोंके घरोंकी वस्तुका उपयोग हो।

नि

देनेसे प्रायः बचते थे। बहुत आग्रह करनेपर 'हरिनाम-जप'का उपदेश करते थे। अत्यन्त अपरिग्रही तथा विरक्त थे। विना साम्प्रदायिक भेदभावके वृन्दावनके सभी संत-महात्मा आपका अत्यन्त आदर करते थे। व्रजवासियोंके घरसे ही भिक्षा लेना तथा उनके ही फटे वस्त्रोंकी गुदड़ी बनाकर शीत-निवारण करना आपका व्रत था। व्रजरजसे बना मिट्टीका करवा आपका पात्र था।

व्रजवास, व्रजकी वस्तुका उपयोग, व्रजवासियोंकी ही भिक्षा, व्रजरजमें लोटना और श्रीव्रजराज एवं निकुञ्जेश्वरीका ही चिन्तन, इन युगलके नामोंकी ही नित्य रटन—यह जीवनका जो सर्वोत्कृष्ट आदर्श है, उसे श्रीरामकृष्णदासजीने पूर्णरूपसे प्रत्यक्ष कर दिखाया था।

—सु० सिं०

श्रीरामनामके आढ़तियाजी

व्यापार बहुत लोग करते हैं। व्यापार उन्होंने भी किया। उनके भी बड़े-बड़े बहीखाते हैं; किंतु धन्य थे वे और धन्य था उनका व्यापार। सांसारिक नश्वर वस्तुओंके बदले उन्होंने राम-नामका व्यापार अपनाया था। यह व्यापार साधारण नहीं था। अकेले व्यक्ति होकर भी उन्होंने वह काम कर दिखाया, जो एक संस्थाके लिये भी कठिन था। वे अपने-आपमें एक महान् संस्था थे।

नाम था पं० बालूरामजी। बहुत साधारण पढ़े-लिखे थे। शेखावटी सीकर राज्यमें लक्ष्मणगढ़ स्थान है। वहाँ फाल्गुन शु० ८, सं० १९२३ वि० को इनका जन्म हुआ। इनके पिता पं० रतीरामजी पुत्रको पढ़नेके लिये पण्डितके यहाँ भेजते थे; किंतु वह चला जाता था किसी मन्दिरमें। इसी क्रममें कहीं मन्दिरमें भक्त प्रह्लादकी कथा सुननेको मिल गयी और जन्म-जन्मका संस्कार जाग गया। रामनामका प्रेम उमड़ पड़ा। फिर भला, पढ़नेमें मन कहाँ लगनेवाला था। पिताका प्रयत्न व्यर्थ गया। पिताकी आज्ञासे कुछ समय दूकानदारी भी की; किंतु वहाँ भी मन नहीं लगा।

राजस्थानसे एक फर्ममें तीस रुपये मासिकपर नियुक्त होकर उस फर्मकी तेतलिया (आसाम) की दूकानपर मुनीम होकर गये। दूकानके लिये कपड़ा खरीदने कलकत्ते जाना पड़ा। कपड़ा खरीदा, वहाँके दूकानदारने दूसरे दिन कपड़ेकी गाँठ बँधवानेको कहा; किंतु तबतक तो इनका चित्त ही बदल गया था। मनने निश्चय कर लिया था कि अब नौकरी ही करनी है तो भगवान्‌की करूँगा। भगवान्‌का सेवक होकर दूसरेकी नौकरी क्यों की जाय। अतः दूकानदारको कह दिया—'कपड़ेकी गाँठें आप बँधवाओ और आप ही भेजो। मैं तो अब राम-नाम जपूँगा, घूमूँगा और मौज करूँगा।'

दूकानदारने कपड़ेकी गाँठें भिजवायीं। तेतलिया इन्हें आग्रहपूर्वक बुला लिया गया। वहाँ रहे भी चौदह महीने; किंतु कपड़ा लेने-देनेका काम फिर नहीं किया। वहींसे लोगोंको पत्र लिख-लिखकर अपने राम-नामकी आढ़तका व्यापार चलाना प्रारम्भ किया। फिर तो सम्पूर्ण भारत ही उनका कार्यक्षेत्र बन गया। राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, आसाम, युक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, दक्षिण भारत आदि सब कहीं उन्होंने राम-नामका प्रचार किया।

बड़ी सरल किंतु प्रभावकारी थी उनकी उपदेश-प्रणाली। साधारण लोगोंसे लेकर बड़े-बड़े राजा-महाराजा, विद्वान्-पण्डित, वकील-बैरिस्टर, न्यायाधीश आदिने उनके उपदेशोंसे प्रभावित होकर राम-नामकी माला जपनेका नियम लिया था। आढ़तियाजी अपने बहीखातोंमें ऐसी प्रतिज्ञा करनेवालोंके हस्ताक्षर करा लेते थे। उनके बहीखातोंमें ऐसे लाखों लोगोंके हस्ताक्षर हैं। महामना मालवीयजी-सरीखे पुरुषोंके हस्ताक्षर भी उनके बहीखातोंमें हैं।

एक अद्भुत मस्ती आढ़तियाजीके मुखपर सदा रहती थी। कुछ लोग इस मस्तीको कृत्रिम समझकर उनकी खिल्ली उड़ाते थे; किंतु ऐसे लोग भी दंग रह गये जब सं० १९८१ वि० में अपने नवयुवक पुत्रकी मृत्युपर, इस वज्रपातके समान दारुण दुःखके अवसरपर भी आढ़तियाजीको उन्होंने उसी मस्तीसे रामनाम लेकर नृत्य करते देखा। वे प्रायः कहा करते—

> उसी गलीमें पूत है, उसी गलीमें मूत।
> राम भजे सो पूत है, नहीं मूतका मूत॥

—सु० सिं०

नामानुरागी संत श्रीउड़ियाबाबाजी (स्वामी श्रीपूर्णानन्दतीर्थजी)

श्रीचैतन्यमहाप्रभुके समसामयिक उत्कल-नरेश महाराज प्रतापरुद्रके राजपुरोहित श्रीकाशी मिश्रके वंशमें ही उत्पन्न हुए थे श्रीवैद्यनाथ मिश्र । कालक्रमसे यह वैष्णवकुल शक्तिका उपासक हो गया था । भाद्र कृष्णा अष्टमीके दोपहरको श्रीवैद्यनाथ मिश्रकी पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवीके प्रथम पुत्र हुआ । बालकके जन्मके तीसरे ही दिन माता परलोक-गामिनी हो गयीं । इस बालकका नाम पिताने आर्तत्राण मिश्र रक्खा । यह बालक अत्यन्त कृश, रोगी तथा अद्भुत शान्त प्रकृतिका था । जहाँ बैठा दिया, बैठा रहा । किसीने पीट दिया तो चुपचाप पिट लिया । नेत्र प्रायः अधमुँदे बने रहते ।

चार वर्षके होनेपर यज्ञोपवीत हुआ और बारह वर्षकी अवस्थातक घरपर ही शिक्षा चलती रही । इसके बाद एक लड़केके साथ चुपचाप ये घरसे निकले और मयूरभंज पहुँच गये । वहाँकी पाठशालाके शिक्षक इस बालकके पिताके परिचित थे; अतः वहाँ अधिक दिन न टिककर बालक बाल्याबेड़ा आ गया । पाँच वर्षोंतक यहाँ राजाकी पाठशाला-में अध्ययन करके काव्यतीर्थ परीक्षामें उत्तीर्ण हो गया । इस बीचमें घरके लोगोंसे एक बार मिल भी आया ।

महापुरुषोंका जन्म ही अनेक जन्मोंकी साधना-परम्पराको लेकर होता है । उन्हें तो केवल कोई सामान्य निमित्त चाहिये अपने जन्म-जन्मके साधन-पथपर लग जानेके लिये । आर्तत्राण मिश्र जब काव्यतीर्थके अन्तिम खण्डकी तैयारीमें लगे हुए थे, तब स्थानीय मन्दिरके उत्सवमें एक नाटक-मण्डलीने श्रीकृष्णचन्द्रके गोचारण तथा गोपकुमारोंके साथ वनभोजन-लीलाका अभिनय किया । इस लीलाभिनयका इतना प्रभाव पड़ा इन युवक छात्रपर कि अपनी कोठरीमें आकर उसी श्रीकृष्ण-लीलाका चिन्तन करते हुए ये शरीरका भान ही भूल गये । तीन दिन-रात यह भाव-समाधि अखण्ड रही । सहपाठियोंने इस प्रकार बिना खाये-पीये मूर्छितप्राय बैठे रहनेको रोग ही समझा तो क्या आश्चर्य ।

इसी कालमें पाठशालाके एक अत्यन्त प्रिय सहाध्यायीकी हैजेसे मृत्यु हो गयी । इस अवसरपर आर्तत्राण मिश्रको पूरा संसार ही नाशवान् दीखने लगा । उनके चित्तमें यहींसे वैराग्यका अङ्कुर उठा । शिक्षा समाप्त करके ये घर लौटे तथा कुछ दिन पैतृक वृत्ति करते भी रहे; किंतु अचानक उड़ीसामें भयंकर अकाल पड़ा । लोग भूखसे इधर-उधर भटकते घूमने लगे । दाने-दानेको तरसकर लोग मरने लगे । इस दृश्यसे आर्तत्राणजीका कोमल चित्त काँप गया । इन्होंने 'द्रौपदीकी बटलोई'की भाँति कोई अन्न देनेवाला अक्षय पात्र पानेके लिये अनुष्ठान करनेका निश्चय किया और घरसे निकल पड़े ।

कुछ दिनोंमें कलकत्ता होते हुए गौहाटी पहुँचे । वहाँ एक तान्त्रिक सज्जन मिल गये । उनकी सम्मतिसे वनदुर्गाका अनुष्ठान प्रारम्भ किया । अनुष्ठान ठीक चल रहा था । स्वप्नमें देवीने दर्शन भी दिया, किंतु तभी एक महात्मासे विवेकचूड़ामणि सुननेको मिला । मनमें विचार उठा—'देवीने एक पात्र दे भी दिया तो क्या होगा ? मेरे पास अन्न लेने संसारके सब लोग तो आ नहीं सकते । मैं ही कहाँ सबको अन्न देनेके लिये अमर रहनेवाला हूँ । फिर अन्न पाकर ही तो प्राणी दुःखहीन नहीं हो जायँगे ।'—इन विकल्पोंके कारण आपने अनुष्ठान छोड़ दिया और काशी आ गये । काशीमें थोड़े ही दिन रुके । वहाँसे वैद्यनाथधाम होते हुए घर लौट गये ।

इस समयतक आयु बीस वर्षसे कुछ अधिक हो चुकी थी । एक प्रसिद्ध ज्योतिषीने इनकी आयु बत्तीस वर्ष बतायी थी, अतः घरवालोंने इनका विवाह नहीं किया । घरसे आप श्रीजगन्नाथपुरी आये और वहाँ गोवर्धनपीठके जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीमधुसूदनतीर्थसे आपने नैष्ठिक ब्रह्मचर्यकी दीक्षा ली । उस समय आपका नाम ब्रह्मचारी चेतनानन्द हो गया ।

अब इन ब्रह्मचारीजीको सिद्ध गुरु ढूँढ़नेकी धुन चढ़ी । मठ छोड़कर अनेक स्थानोंमें घूमते-घामते बड़पेटा पहुँचे । यहाँ एक शिवमन्दिरके वृद्ध महन्तने मरते-मरते इनको अपना उत्तराधिकारी बना दिया । किंतु महन्त होकर मायामें लिप्त होनेके बदले ये अनुष्ठानमें लग गये । शतचण्डीका अनुष्ठान करनेसे वाक्-सिद्धि प्राप्त हुई और साथ ही 'परचित्त-ज्ञान'की शक्ति जागी । किंतु इस सिद्धिने बड़ा विक्षेप दिया मनको । अठारह दिनमें ही घबरा गये—जो आये, उसीके चित्तके दोष दीखें । प्रभुसे प्रार्थना की और तब यह सिद्धि निवृत्त हुई ।

जहाँके महन्त थे, वहाँका एक अन्य उत्तराधिकारी तीर्थयात्रासे लौटा। उसे महन्ती चाहिये थी और जनता इन्हें छोड़ती नहीं थी। अतः वहाँसे ये चुपचाप चल पड़े। इसके बाद तीर्थाटन करते रहे और फिर सं० १९६४ वि०में कार्तिकी पूर्णिमाको जगन्नाथपुरीमें अपने ब्रह्मचर्याश्रमके गुरुसे ही आपने संन्यासकी दीक्षा ली। अब आपका नाम स्वामी पूर्णानन्दतीर्थ हो गया। किंतु विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त होनेपर लोग आपको श्रीउड़ियाबाबाजी ही कहने लगे। संन्यासके कुछ दिन पश्चात् ही आपने दण्डको समुद्रमें विसर्जित कर दिया।

पुरीसे काशी आते समय भूलसे गाड़ी नहीं बदल सके और छपरा पहुँच गये। वहाँ टिकट-चेकरने आपको अपमानित किया। तभीसे किसी भी सवारीमें न बैठनेका आपने नियम बना लिया। यह नियम आपका जीवनके अन्तिम वर्षमें टूटा और वह भी प्रेम-परवशताके कारण।

आपने बहुत दिनोंतक अत्यन्त विरक्त तथा कठोर साधनामय जीवन व्यतीत किया। पैदल चलते, वृक्षके नीचे पड़े रहते। तीव्र जिज्ञासा चित्तमें थी। कई-कई दिन निराहार रह जाते। चित्तमें उपरति थी। तीर्थाटन, सत्सङ्ग तथा चिन्तन—वर्षोंतक यह चलता रहा। इसी यात्राक्रममें आप रामघाट गङ्गातटपर पहुँच गये। आपका सबसे अधिक निवास उसके बाद अनूपशहरसे रामघाटतक गङ्गातटपर ही हुआ। इसमें भी रामघाट तथा कर्णवास ही निवासके मुख्य स्थान रहे। दस वर्षोंतक यहाँ आपने कठोर तप तथा एकान्त साधनमय जीवन व्यतीत किया। उसके बाद प्रेमी भक्तोंका समुदाय जंगल-झाड़ियोंमें भी आपके पास पहुँचने लगा।

सं० १९९४ वि० में श्रीउड़ियाबाबाजीके वृन्दावन आश्रमकी प्रतिष्ठाका उत्सव हुआ था। इससे पूर्व भी वे वृन्दावन आ चुके थे और यहाँके मुख्य संतोंसे उनका साक्षात्कार हुआ था; किंतु आश्रम बन जानेपर अधिक समय आप वृन्दावनमें ही रहने लगे। इससे पूर्वसे ही श्रीहरिबाबाजीसे घनिष्ठता हो गयी थी और हरिबाबाजीके बाँधपर आप प्रायः पधारते थे। श्रीहरिबाबाजीने भी श्रीवृन्दावन आश्रममें आपके सांनिध्यमें रहना प्रारम्भ कर दिया।

उस समय जितने भी प्रख्यात संत थे, वे चाहे किसी भी सम्प्रदायके रहे हों, सबसे श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजका प्रेम था। सभी आपका सम्मान करते थे और सबका उचित सत्कार आपके द्वारा होता था। वृन्दावनका आश्रम हो या कर्णवास अथवा राजघाट—श्रीउड़ियाबाबाजीके यहाँ उन्मुक्तरूपसे आनेवालोंको भोजन कराया जाता था। बाबा स्वयं लोगोंको खिलानेमें जुटे रहते थे। वे कहा करते थे—'खानेका आनन्द जीवका आनन्द है और खिलानेका आनन्द ईश्वरका आनन्द है।'

लोगोंकी विवेकरहित श्रद्धा तथा अविचारित आग्रह संतोंको बहुत तंग करता है। लोग अपने इच्छानुसार उन्हें खिलाना—रखना चाहते हैं। श्रीमहाराजजी अत्यन्त उदार थे और किसीको भी दुखी, निराश नहीं देख सकते थे। इसका फल यह हुआ कि खाने-पीने तथा विश्रामका कोई नियम ही नहीं रह गया। एक-एक दिन बहुत, सारे लोगोंके यहाँ मुख जूठा करना पड़ता। निद्राके लिये तो कोई समय ही नहीं रह गया था। प्रायः बैठे-बैठे ही झपकी ले लेते थे। शरीर रोगी हो गया। इतनेपर भी वर्षोंतक बिना रात्रि-विश्रामके, सबके श्रद्धाग्रहको संतुष्ट रखते जो जीवनचर्या चली, वह किसी भी सामान्य पुरुषके वशकी बात नहीं थी।

वह सं० २००४ वि० का सोमवार था। चैत्रकृष्णा चतुर्दशी तिथि थी। श्रीहरिबाबाजी महाराज झूसी चले गये थे। मध्याह्नोत्तर सत्सङ्ग चल रहा था। श्रीमहाराजजी प्रतिदिनकी भाँति ध्यानस्थ बैठे थे। आश्रमके ही एक अर्धविक्षिप्त व्यक्तिने पीछेसे उनके मस्तकपर तीन बार गँड़ासेके किये। लीला-संवरणका यह एक बहानामात्र था; क्योंकि संकेतसे श्रीउड़ियाबाबाजीने कई लोगोंको अपने प्रस्थानकी सूचना पहले दे दी थी।

देहसे ऊपर उठे एक आत्मनिष्ठ संतकी स्थिति उस दिन लोगोंने देखी। मस्तकपर गँड़ासेकी तीन चोटें पड़ीं। चार इंच गहरा घाव। पहली चोटके पश्चात् बायें हाथ मस्तककी ओर गया तो अंगुलियाँ कट गयीं। इतनेपर भी न चीख-पुकार, न छटपटाहट। तनिक होश आया तो पूछा—'क्या हो रहा है?' जैसे उनके अपने शरीरपर नहीं, कहीं और ही आघात लगा हो। फिर नेत्र बंद हुए और पुनः कहीं खुलने थे। शरीरको संतोंने यमुनाजीमें विसर्जित किया।

श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके समीप दो प्रकारके भक्तोंका समुदाय रहता था—एक ज्ञानपर निष्ठा रखनेवालोंका और दूसरे सगुणोपासकोंका। दोनों प्रकारके लोगोंके लिये वे पृथक्-पृथक् सत्सङ्ग कराते थे। ज्ञाननिष्ठ लोग पूछते—

'आप इन भजन करनेवालोंको तत्त्वज्ञानका उपदेश क्यों नहीं करते ?'

इसका उत्तर मिलता—'इन लोगोंमें ऐसी निर्मल बुद्धि नहीं है ।' सचमुच ज्ञानका अधिकारी तो अत्यन्त वैराग्यवान बुद्धिप्रधान साधक ही है ।

'आप इन लोगोंको भगवद्भक्तिमें क्यों नहीं लगाते ?' भक्तोंका समुदाय भी बाबासे पूछता था ।

बाबा कहते थे—'इन सबोंमें श्रद्धा तो है ही नहीं ।' सच्ची बात, श्रद्धा-विश्वासके बिना भक्तिदेवीके श्रीमन्दिरमें प्रवेशका अधिकार नहीं मिलता ।

बाबा भक्त-समुदायको प्रधानतया नाम-जप करनेका उपदेश करते थे—'भगवन्नाम जपो ! जीभसे नाम, हाथसे काम । बिना नामके जिह्वाको एक क्षण भी खाली मत रहने दो ।'

आश्रममें 'अखण्ड कीर्तन' तो प्रायः होता ही रहता था । प्रतिदिन प्रातः तथा सायंकाल संकीर्तन होता था और मध्याह्नोत्तर सत्सङ्गमें भी पहले नाम-कीर्तन ही किया जाता था । बाबाने अपनी उपस्थिति तथा प्रेरणासे व्यापक क्षेत्रमें भगवन्नामका प्रचार किया । अनेक लोगोंको आपने नाम-जपमें लगाया ।

नामप्रेमी महात्मा श्रीरामवल्लभाशरणजी

रणेह ग्राम (पन्ना म० प्र०) में आषाढ़ कृ० १३ संवत् १९१५ वि० को श्रीरामलालजीकी पत्नी श्रीमती रमादेवीने एक पुत्ररत्न प्राप्त किया । पुत्रका नाम पिताने धनुषधारी रक्खा । रामभक्त-परिवारका संस्कार बालकपर पड़ना ही था । बचपनसे ही वह श्रीहनुमान्‌जीकी आराधना करने लगा ।

कुल सोलह वर्षकी अवस्थामें धनुषधारीको संसारसे वैराग्य हो गया । चैत्र शु० ९ सं० १९३३ वि० को स्थानीय मन्दिरके अध्यक्ष श्रीरामवचनदासजीसे उन्होंने श्रीराम-मन्त्रराजकी दीक्षा ले ली और ग्रामकी सीमापर एकान्त-निवास करते हुए वे भजन करने लगे । इसके दो वर्ष बाद ही उन्होंने विरक्त-दीक्षा ले ली । अब गुरुदेवने उनका नाम श्रीरामवल्लभाशरण रख दिया ।

गुरुदेवकी आज्ञा लेकर तीर्थयात्रा करने निकले । चित्रकूट, प्रयाग होते वाराणसी पहुँचे थे कि वहाँ स्वप्नमें श्रीविश्वनाथने दर्शन देकर अयोध्या जानेका आदेश दिया । वह सं० १९३८ वि० की अक्षय नवमी थी, जिस दिन श्रीअवधके दर्शन हुए । लगा कि यह पुरी जन्म-जन्मकी परिचित है । हृदय आनन्दपुलकित हो गया और श्रीरामवल्लभाशरणजी सदाके लिये इस साकेतधामके हो गये ।

बाल्यावस्थामें एक महात्मा श्रीविद्यादासजीके दर्शन इनको हुए थे । वे संत अयोध्या आनेपर मिले और उन्होंने इनको अपना अन्तरङ्ग शिष्य स्वीकार किया । श्रीविद्यादासजी महाराजके आदेशसे आपने श्रीराम-कथामृतका प्रवाह प्रवर्तन किया । आपके भावपूर्ण, मर्मस्पर्शी प्रवचनका ही प्रभाव था कि अयोध्याके संत आपको 'पण्डितजी' कहने लगे और फिर तो सर्वसामान्यके लिये आपका यही नाम हो गया ।

आपके गुरुदेव श्रीरामवचनदासजी भी अयोध्या आ गये थे और आपके द्वारा सत्कृत होकर अवधवास कर रहे थे । उनका तथा संत विद्यादासजीका साकेतवास होनेपर आपका मन उदास हो गया । अयोध्यासे आप चित्रकूट चले आये । वहाँ श्रीपवनकुमारने दर्शन देकर भक्तिका वरदान दिया । वहाँसे वृन्दावन होते फिर श्रीअवध लौट आये और जानकीघाटपर स्थायी रूपमें रहने लगे ।

कार्तिक शु० १० संवत् १९९८ वि० को आपने दिव्य साकेत-धाममें प्रवेश किया । श्रीकनकभवनविहारीजीका चरणामृत लेकर श्रीसीताराम-नामकी ध्वनि करते हुए आपने देहत्याग किया था । यह उपयुक्त ही था; क्योंकि आपका तो पूरा जीवन श्रीरामगुणगान-रूप था । श्रीरामकथाके आप अनन्य रसिक तथा प्रख्यात मर्मज्ञ थे । 'सीताराम' नाम आपका प्राण था । आपके स्थान श्रीजानकीघाटपर 'सीताराम' नामकी ध्वनि अखण्ड चलती रहती थी और वह अखण्डसंकीर्तन अब भी चलता है ।

नामनिष्ठ महात्मा श्रीगोमतीदासजी

लगभग एक शती पूर्व पंजाबमें किसी सारस्वत ब्राह्मण-कुलमें जन्म लेनेवाले महात्मा श्रीगोमतीदासजी इतने विनम्र तथा अपनेको छिपाये रखनेवाले संत थे कि उनके सम्बन्धमें बहुत कम बातें ज्ञात हैं। वे जन्मसे वीतराग थे। होश सम्हालते ही घरसे निकल पड़े और साधु-मण्डलीका साथ पकड़ लिया। अमृतसरके दुर्ग्याना मन्दिरमें दीक्षा ले ली और वहीं भजन करने लगे। आपके गुरुदेव महात्मा सरयूदासजी थे। दुर्ग्याना मन्दिरमें जब आपको वहाँका मठाधीश बननेको कहा गया, तब वहाँसे भी चुपचाप रमते-राम हो गये।

तीर्थयात्रामें घूमते-घामते चित्रकूट पहुँचे। रामभक्तोंकी साधनभूमि है—चित्रकूटकी दिव्यस्थली। यहाँ बारह वर्षतक मौनव्रत लेकर निरन्तर भजनमें लगे रहे और तब अयोध्या आये। मौन चलता रहा, भजन अखण्ड बना रहा और अयोध्यामें मणिपर्वतपर भी पूरे बारह वर्ष यह साधना चली। तब कहीं मौन समाप्त हुआ और मणिपर्वतसे आप 'संत-निवास'में आ गये।

बहुत प्रयत्नपूर्वक आपने अपनी साधनाको छिपा रक्खा था; किंतु जब गुलाब खिलता है, उसकी सुगन्ध क्या छिपाये छिपती है? अयोध्याके संत-साधुओंमें आपका सम्मान बढ़ता ही गया। लक्ष्मणकोटके महंत श्रीरामोदारशरणजीने आग्रह करके आपको अपने यहाँ आनेपर विवश किया। उनके प्रेमाग्रहके कारण आप लक्ष्मणकोटमें आ गये और जहाँ ठहराये गये, उस स्थानका नाम आपने 'हनुमन्निवास' रख दिया।

श्रीगोमतीदासजी महाराजको श्रीहनुमान्‌जी समय-समयपर प्रत्यक्ष दर्शन तथा आदेश दिया करते थे। ऐसे नियम-निष्ठ साधकके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं थी। अपनी सौ वर्षकी आयुमें भी आपने नियममें शिथिलता नहीं आने दी थी। रात्रिके मध्यतक जागते रहते और चतुर्थ पहरके प्रारम्भमें ही उठ बैठते। प्रातः तीनसे छः तक अपनी 'श्रीसीता-रामनाम' पाठशालामें सम्मिलित रहते। सूर्योदय होनेपर तो आपका दुबारा स्नान होता सरयूजीमें। प्रथम बार स्नान तो तीन बजेसे पूर्व कर लेते थे। द्वितीय स्नानके अनन्तर चलती पूजा-अर्चा और उससे निवृत्त होते दस-ग्यारह बजे। तुरंत भजन-मण्डलीके साथ श्रीसीताराम-नामका संकीर्तन करते सरयू-स्नान करने जाते। वहाँ घंटेभर सरयूतटपर संकीर्तन चलता। लौटकर मध्याह्न-हवनके अनन्तर संतोंको भोजन कराके तब भगवत्प्रसाद ग्रहण करते थे। विश्राम कोई वस्तु नहीं थी दिनमें। भोजनके पश्चात् 'रामधुन' करानेमें लग जाते। उसके बाद अपनी कुटियाका द्वार बंद करके ध्यान करने बैठते तो चार बजे शामको द्वार खुलता। फिर सरयूस्नान और संध्या, हवन-पूजनका क्रम चलता। रात्रिमें भगवत्कथा अथवा कीर्तनमें सम्मिलित होते। रात्रिमें आठ बजे पुनः स्नान-पूजन और तब रामायणगान। यह दिनचर्या अखण्ड चलती रहती थी। इसमें भ्रान्ति, उकताहटका नाम नहीं था। शान्ति, श्रद्धा, उत्साह और विनय उनके मुखपर सदा शोभित रहते।

नामनिष्ठाके समान ही था आपका गो-सेवा-प्रेम। अपने हाथों गायोंको चारा तथा रोटियाँ देते थे। स्वयं उनकी देख-भाल करते थे। इस प्रकार दीर्घकालतक भजनका आदर्श सम्मुख उपस्थित करके आपने हनुमन्निवासमें ही परमधामकी यात्रा की।

भगवन्नाम-वन्दन

वन्दन नित्य हृदयसे 'भगवन्नाम' मोहनाशक सुखधाम।
परमहंस-ऋषि-मुनि-तापस जन सिद्ध योगियोंका विश्राम॥
भक्तोंके—प्रेमीजन-मनके जीवनका शुचि परमाधार।
पाप-ताप-नाशक जन-जनका परम पुण्यमय शान्ताकार॥
सभी साधनोंका परमाश्रय सर्व-सिद्धिदायक शुभमूल।
स्पर्शमात्रसे जल जाते सब अघ जैसे पावकसे तूल॥
पिता-पितामह-माता-धाता, भर्ता, त्राता, गुरु, आचार्य।
जो जैसे भजता, उसका बन वैसे ही करता सब कार्य॥
करता सिद्ध सहज ही सत्वर जनके धर्म, काम, शुचि अर्थ।
देता मोक्ष, सिद्ध करता फिर प्रेम दिव्य पंचम पुरुषार्थ॥

भगवन्नामप्रेमी महात्मा श्रीब्रह्मचैतन्यजी

(लेखक—श्रीभैरवशंकरजी शर्मा)

आपका माघ शुक्ला १२, संवत् १८४४ को सतारा जिलेके गोंदवले ग्राममें जन्म हुआ तथा सन् १९१३ में महाप्रयाण। आपका मुख्य साधन ही भगवन्नाम था। लाख-लाख लोगोंको आपने भगवन्नामस्मरणमें लगाया। आप स्वयं अपने सम्बन्धमें कहते हैं—

जयाचा जगीं जन्म नामार्थ झाला।
जयानें सदावास नामांत केला॥
जयाच्या मुखीं सर्वदा नामकीर्ति।

अर्थात् 'मेरा जन्म ही संसारमें भगवन्नाम-प्रचारके लिये हुआ है। मैं सदा भगवन्नाममें ही निवास करता हूँ और मेरे मुखमें सर्वदा भगवन्नामकी महिमाका वर्णन रहता है।'

आपके जीवनके अनेक चमत्कार प्रसिद्ध हैं; किंतु उनका उल्लेख न करके आपके वचनामृतसे भगवन्नाम-सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण वचन यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ।

१—श्रीभगवान्‌के मूलस्वरूपके अत्यन्त निकटका यदि कोई तत्त्व है तो वह केवल उनका नाम ही है। बहुत कहनेसे क्या? भगवान् और उनका नाम दोनों एक ही रूप हैं।

२—हम नाम-स्मरण करते हुए नामका साक्षात्कार—नामके अतिरिक्त दूसरी किसी वस्तुसे या दर्शन अथवा दृष्टान्तसे देखने लगेंगे तो नामके साक्षात्कारमें यह भी एक विघ्न हो जायगा। अर्थात् नाम-स्मरणमें पूर्ण मनोयोगसे लग जाना चाहिये—संशयरहित होकर और नामकी अन्य किसीसे तुलना करनेका प्रयत्न न करना चाहिये।

३—नाम-स्मरण करते-करते नाममें अत्यन्त प्रेम उत्पन्न होनेपर उस प्रेममें स्वयं अपनेको भी भुला दे; तब समझो कि नामका साक्षात्कार हुआ। अर्थात् नामके उत्कट प्रेममें स्वयंका विस्मरण हो जानेसे आत्म-साक्षात्कार ही नामका साक्षात्कार है।

४—भगवन्नाम ही भगवत्स्वरूप होनेसे नाम-स्मरणसे उत्पन्न प्रेममें लीन हो जाना—अपनेको भूल जाना ही भगवान्‌से अनन्यता हो जाती है और यही भगवान्‌का सच्चा एवं अखण्ड रहनेवाला दर्शन है।

५—नामस्मरण करते-करते वृत्तिका रामरूप हो जाना ही नाम-स्मरणका सच्चा अनुभव है।

६—मनुष्यको चाहिये कि भगवान्‌के अनन्य शरण होकर अत्यन्त तत्परता एवं व्याकुलतासे उनसे प्रार्थना करे—'हे भगवन्, मुझे आपके नाममें प्रेम दीजिये।' बस, इससे अपने-आप नाममें प्रेम बढ़ेगा और नामजपके प्रभावसे भगवान्‌के सच्चे दर्शन प्राप्त होंगे।

७—नाम-स्मरण करते हुए भी अपनेको कोई दृष्टान्त या दर्शन आदि न हों तो भी नाम-जपमें अपनी निष्ठाको कम न करते हुए नामसे सतत लगे रहकर प्रेमपूर्वक नाम-स्मरण करते ही रहना चाहिये। बस, इसीसे अपना कल्याण होना निश्चित है।

८—जो जीव राम-नाम-स्मरणके अतिरिक्त अन्य साधनोंपर भरोसा रखता है, उसको अज्ञानी समझो।

९—रामनामके जपसे अन्तःकरणमें सब प्रकारका समाधान प्राप्त हो जाता है और रामनामके जपसे ही आत्मज्ञान भी प्राप्त हो जाता है, अर्थात् नाम ही राम होकर आत्मदर्शन करानेमें समर्थ है।

१०—रामका नाम ही ब्रह्मपद है, निज आत्म-सुख भी रामनाम ही है एवं तत्त्व-वस्तु भी रामनाम ही है।

११—रामनामके प्रभावसे ही समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं और राम-नामके प्रभावसे ही समस्त उपाधियोंसे पृथक् होनेपर आत्म-दर्शन हो जाता है।

१२—रामनामके प्रतापसे ही जीव जीवन्मुक्ति प्राप्त कर लेता है और रामनामके प्रभावसे ही स्वात्मानन्दमें मग्न हो जाता है।

१३—रामनाम ही परमार्थ है और रामनाम ही योगसिद्धिका वैभव है। रामनामसे ही योगायोगकी प्राप्ति होती है और रामनाम ही वेदान्तका भी बीजरूप वेद है।

१४—रामनामको अन्तःकरणके भीतरी भागमें नित्य अखण्ड स्मरण करते हुए बाहर देहके प्रारब्धके अनुसार जैसा भी सुख-दुःख-भोग प्राप्त हो, उसे भोगते हुए संतुष्ट रहना चाहिये।

श्रीभगवन्नाम

भगवान्‌का नाम भगवान्‌का ही अभिन्नस्वरूप है और वह भगवान्‌की ही शक्तिसे भगवान्‌से भी अधिक शक्तिशाली और ऐश्वर्यवान है। जैसे किसी महान् वैभवशाली सम्राट्‌को अपने खजानेकी असंख्य धन-राशिकी संख्याका पता नहीं रहता, इसी प्रकार नामी भगवान् भी अपने नामकी अनन्त गुणावलियोंका पता रखना नहीं चाहते। यह भी उनका एक महान् गुण है। भगवान्‌के जिस मङ्गलमय नामसे पञ्चम पुरुषार्थरूप भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो सकती है, उसके बदलेमें मोक्षकी चाह करना भी प्रेमियोंने कामना माना है। अतएव लोक-परलोककी किसी भी क्षुद्र-महान् कामनामें नामका प्रयोग करना एक प्रकारसे अविवेक या मूर्खता ही है। लोक-परलोकके जो भोग हैं, सभी दुःख-योनि और विनाशी हैं; ऐसे मधुर विषरूप विषयोंकी चाह करना और नामके बदलेमें उन्हें चाहना महान् मूर्खता है।

तुलसिदास 'हरिनाम' सुधा तजि
सठ हठि पियत बिषय बिष मागी।

अतएव बुद्धिमान् और अपना यथार्थ कल्याण चाहनेवाले पुरुषका यही कर्तव्य है कि वह अपने जीवनको भगवन्नाममय बना दे और नामके फलस्वरूप उत्तरोत्तर बढ़ती हुई नाम-निष्ठाकी ही कामना करे। यही नामका आदर है, और इसी भावसे नामका सेवन भी करना चाहिये।

परंतु जबतक यह भाव जाग्रत् न हो, तबतक किसी भी भावसे, किसी भी सत्कामनाको लेकर नामका आश्रय लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है। ऐसा करना मूर्खता होनेपर भी पाप नहीं है, वरं कर्तव्य है। अवश्य ही जिसमें किसी दूसरेका जरा भी अहित होता हो और परिणाममें अपना भी अहित होता हो, ऐसे किसी कार्यकी सिद्धिके लिये भगवान्‌के नामका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये।

जबतक भगवान्‌के नाममें 'रति' न पैदा हो जाय, तबतक 'रुचि'के साथ भगवान्‌का नाम लेना चाहिये; जबतक रुचि न पैदा हो तबतक भगवान्‌के नामका 'अभ्यास' करना चाहिये और अभ्यासकी दृढ़ता न होनेतक 'अमोघ औषधके रूप'में भगवान्‌का नाम लेना चाहिये। भगवान्‌का नाम नित्य मधुर और दिव्य अमृतरूप है। उदाहरणके लिये मिश्री मीठी होनेपर भी पित्तके रोगीकी जीभ कड़वी होनेके कारण उसे मिश्री कड़वी लगती है; परंतु मिश्री पित्त-नाशकी दवा है। मि[illegible] सेवनसे पित्तका शमन होनेपर जब जीभका कड़वापन [illegible] जाता है, तब मिश्री मीठी लगने लगती है; क्योंकि वह मीठ[illegible] है। इसी प्रकार पूर्वसंचित कर्म-मलके कारण हमारी द[illegible] वृत्ति जबतक भगवान्‌के नामके माधुर्यका अनुभव नहीं क[illegible] बल्कि उसे कड़ुवा समझती है, तबतक दवाके रूपमें जबर[illegible] उसे लेते रहना चाहिये। लेते-लेते कर्म-मलका शमन हो[illegible] भगवान्‌की सहज नाम-माधुरीका स्वाद आने लगेगा।

परंतु यह स्मरण रखना चाहिये कि नामका आ[illegible] कलियुगमें सबसे बड़ा आश्रय है। इस एक ही आश्र[illegible] सर्वाङ्गीण पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है। अतएव नि[illegible] निरन्तर नामका सेवन करना चाहिये और जहाँतक [illegible] नामका सेवन 'नाम-प्रेमकी वृद्धि'के लिये ही करना चाहि[illegible] किसी भी लौकिक-पारलौकिक इच्छाकी पूर्तिके लिये नहीं[illegible] नामका फल अचिन्त्य और अमूल्य है। इन विषयोंपर इ[illegible] अङ्कमें 'नामका फल' और 'रामनामका मूल्य'—दो कहानि[illegible] छप रही हैं। उनकी वास्तविकतापर ध्यान न देकर उन[illegible] भरे वास्तविक सत्यका ग्रहण करना चाहिये।

नामका जप मानसिक, उपांशु और वाचिक—ती[illegible] तरहसे हो सकता है। नाम-जपमें जितनी सूक्ष्मता हो, उत[illegible] ही वह श्रेष्ठ है। पर नाम-कीर्तनमें जितना ही वाणीका स्प[illegible] उच्चारण और उद्घोष हो, उतना ही श्रेष्ठ है। अपनी-अप[illegible] स्थिति और रुचिके अनुसार जप-कीर्तन करना चाहिये।

भगवान्‌के सभी नाम समान महत्त्व रखते हैं, कि[illegible] भी नाममें उच्च-नीचका भाव न रखकर अपने लिये जो भ[illegible] नाम विशेष प्रीतिकर और रुचिकर जान पड़े, उसीक[illegible] जप-कीर्तन करना चाहिये।*

सर्वेषां भगवन्नाम्नां समानो महिमापि चेत्।
तथापि स्वप्रियाणां तु स्वार्थसिद्धिः सुखं भवेत्॥
विभिन्नरुचिलोकानां क्रमात् सर्वेषु नामसु।
प्रियता सम्भवेत् तानि सर्वाणि स्युः प्रियाणि हि॥

* 'भगवन्नाम' नामक एक छोटी पुस्तिका गीताप्रेससे प्रकाशित है, उसे पढ़नेपर नामके सम्बन्धमें [illegible]
—सम्पादक

श्रीभगवन्नाम

भगवान्का नाम भगवान्का ही अभिन्नस्वरूप है और वह भगवान्की ही शक्तिसे भगवान्से भी अधिक शक्तिशाली और ऐश्वर्यवान् है। जैसे किसी महान् वैभवशाली सम्राट्को अपने खजानेकी असंख्य धन-राशिकी संख्याका पता नहीं रहता, इसी प्रकार नामी भगवान् भी अपने नामकी अनन्त गुणावलियोंका पता रखना नहीं चाहते। यह भी उनका एक महान् गुण है। भगवान्के जिस मङ्गलमय नामसे पञ्चम पुरुषार्थरूप भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो सकती है, उसके बदलेमें मोक्षकी चाह करना भी प्रेमियोंने कामना माना है। अतएव लोक-परलोककी किसी भी क्षुद्र-महान् कामनामें नामका प्रयोग करना एक प्रकारसे अविवेक या मूर्खता ही है। लोक-परलोकके जो भोग हैं, सभी दुःख-योनि और विनाशी हैं; ऐसे मधुर विषरूप विषयोंकी चाह करना और नामके बदलेमें उन्हें चाहना महान् मूर्खता है।

तुलसिदास 'हरिनाम' सुधा तजि
सठ हठि पियत बिषय बिष मागी।

अतएव बुद्धिमान् और अपना यथार्थ कल्याण चाहनेवाले पुरुषका यही कर्तव्य है कि वह अपने जीवनको भगवन्नाममय बना दे और नामके फलस्वरूप उत्तरोत्तर बढ़ती हुई नाम-निष्ठाकी ही कामना करे। यही नामका आदर है, और इसी भावसे नामका सेवन भी करना चाहिये।

परंतु जबतक यह भाव जाग्रत् न हो, तबतक किसी भी भावसे, किसी भी सत्कामनाको लेकर नामका आश्रय लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है। ऐसा करना मूर्खता होनेपर भी पाप नहीं है, वरं कर्तव्य है। अवश्य ही जिसमें किसी दूसरेका जरा भी अहित होता हो और परिणाममें अपना भी अहित होता हो, ऐसे किसी कार्यकी सिद्धिके लिये भगवान्के नामका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये।

जबतक भगवान्के नाममें 'रति' न पैदा हो जाय, तबतक 'रुचि'के साथ भगवान्का नाम लेना चाहिये; जबतक रुचि न पैदा हो तबतक भगवान्के नामका 'अभ्यास' करना चाहिये और अभ्यासकी दृढ़ता न होनेतक 'अमोघ औषधके रूप'में भगवान्का नाम लेना चाहिये। भगवान्का नाम नित्य मधुर और दिव्य अमृतरूप है। उदाहरणके लिये मिश्री मीठी होनेपर भी पित्तके रोगीकी जीभ कड़वी होनेके कारण उसे मिश्री कड़वी लगती है; परंतु मिश्री पित्त-नाशकी दवा है। मिश्रीके सेवनसे पित्तका शमन होनेपर जब जीभका कड़वापन मिट जाता है, तब मिश्री मीठी लगने लगती है; क्योंकि वह मीठी ही है। इसी प्रकार पूर्वसंचित कर्म-मलके कारण हमारी दूषित वृत्ति जबतक भगवान्के नामके माधुर्यका अनुभव नहीं करती, बल्कि उसे कड़ुवा समझती है, तबतक दवाके रूपमें जबरदस्ती उसे लेते रहना चाहिये। लेते-लेते कर्म-मलका शमन होते ही भगवान्की सहज नाम-माधुरीका स्वाद आने लगेगा।

परंतु यह स्मरण रखना चाहिये कि नामका आश्रय कलियुगमें सबसे बड़ा आश्रय है। इस एक ही आश्रयसे सर्वाङ्गीण पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है। अतएव नित्य-निरन्तर नामका सेवन करना चाहिये और जहाँतक बने नामका सेवन 'नाम-प्रेमकी वृद्धि'के लिये ही करना चाहिये, किसी भी लौकिक-पारलौकिक इच्छाकी पूर्तिके लिये नहीं। नामका फल अचिन्त्य और अमूल्य है। इन विषयोंपर इसी अङ्कमें 'नामका फल' और 'रामनामका मूल्य'—दो कहानियाँ छप रही हैं। उनकी वास्तविकतापर ध्यान न देकर उसमें भरे वास्तविक सत्यका ग्रहण करना चाहिये।

नामका जप मानसिक, उपांशु और वाचिक—तीनों तरहसे हो सकता है। नाम-जपमें जितनी सूक्ष्मता हो, उतना ही वह श्रेष्ठ है। पर नाम-कीर्तनमें जितना ही वाणीका स्पष्ट उच्चारण और उद्घोष हो, उतना ही श्रेष्ठ है। अपनी-अपनी स्थिति और रुचिके अनुसार जप-कीर्तन करना चाहिये।

भगवान्के सभी नाम समान महत्त्व रखते हैं, किसी भी नाममें उच्च-नीचका भाव न रखकर अपने लिये जो भी नाम विशेष प्रीतिकर और रुचिकर जान पड़े, उसीका जप-कीर्तन करना चाहिये।*

सर्वेषां भगवन्नाम्नां समानो महिमापि चेत्।
तथापि स्वप्रियाणां तु स्वार्थसिद्धिः सुखं भवेत्॥
विभिन्नरुचिलोकानां क्रमात् सर्वेषु नामसु।
प्रियता सम्भवेत् तानि सर्वाणि स्युः प्रियाणि हि॥

---

* 'भगवन्नाम' नामक एक छोटी पुस्तिका गीताप्रेससे प्रकाशित है, उसे पढ़नेपर नामके सम्बन्धमें [illegible]।

—सम्पादक

शिवका तारक मन्त्र-दान

नामका फल

[पृष्ठ ४४९

'यद्यपि समस्त भगवन्नामोंकी महिमा समान ही है, तथापि जो नाम अपनेको प्रिय हैं, उनके कीर्तनसे अनायास ही अपने अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि हो जाती है। विभिन्न रुचिवाले लोगोंका क्रमशः सभी नामोंमें प्रेम सम्भव हो जाता है। फिर वे सभी नाम उन्हें प्रिय हो जाते हैं।'

अतएव भगवान्‌के जिस नाम या जिन नामोंमें अपन मन लगता हो, उसीका जप करे; परंतु नाम-जप करनेवालों के लिये यह परमावश्यक है कि वे प्रतिदिन नियमपूर्व अधिक-से-अधिक संख्यामें नाम-जप अवश्य करें। इस नियमि जपके अतिरिक्त दिन-रात बिना संख्याके नाम-जप होता रहे इसके लिये सावधानीके साथ प्रयत्नशील रहें। नियमि संख्याके नाम-जपका दृढ नियम होनेसे उतना जप तो प्रतिदि पूरा हो ही जायगा। नहीं तो, नियम न रहनेपर किसी भ आवश्यक-अनावश्यक कार्यमें समय लग जायगा और उ सबसे पहले करनेयोग्य तथा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव एवं जीवनमें अत्यावश्यक कार्य है, वह 'नाम-जप' छूट जायगा मन धोखा देकर समझा देगा कि 'नियम थोड़े ही है, य बहुत जरूरी काम है, इसे कर लेना चाहिये।' फिर व्यर्थ बातचीत भी जरूरी काम हो जायगी। परंतु कड़ा नियम होनेपर उतना समय नाम-जपमें अवश्य लगेगा और नाम-जप होनेसे भगवान्‌के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध—कम-से-कम एक अङ्ग जीभका तो बना ही रहेगा। उतने समयतक वाणी-का केवल संयम ही नहीं होगा, वाणीका यथार्थ सदुपयोग होगा; क्योंकि वाणीका सदुपयोग भगवान्‌के नाम-गुण-गानमें ही है। उतने समयतक प्रमादवश होनेवाले मिथ्या भाषण, पर-निन्दासे रक्षा होगी—कम-से-कम व्यर्थ भाषणसे जीभकी रक्षा होगी। प्रमादयुक्त वाणीके कारण होनेवाले दुष्परिणामोंसे बचाव होगा और नाम-जप-रूप सबसे महान् लाभ प्राप्त होगा। लगातार नियमित जप होनेसे वाणीका वैसा अभ्यास हो जायगा, जिससे वाणी सहज ही अपने-आप नाम-जप करती रहेगी और इससे फिर मन भी लग जायगा। तुलसीदासजी कहते हैं—

सकल अंग पद बिमुख नाथ! मुख नामकी ओट लई है।

'मेरे सारे अङ्ग आपके चरणोंसे विमुख हैं, केवल मुखने (जीभने) नामकी ओट ले रक्खी है।' स्वामी श्रीहरिदास-जी नियमित तीन लाख नाम-जप प्रतिदिन करते थे, इससे उनको डिगानेके लिये आयी हुई वेश्या उनका तो कुछ

बिगाड़ कर ही नहीं सकी, स्वयं उसीका उद्धार हो गया। स्वर्गीय पं० श्रीमोतीलालजी नेहरूके द्वारा पूर्वाभ्यासवश मृत्यु-के कुछ पहलेसे ही गायत्री-जप होने लगा था। इसी प्रकार पूर्वाभ्यासवश विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरके पिता श्रीदेवेन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा चेतनाशून्य अवस्थामें आसन

ा थे। नामका
। आ जाता है
ही भगवत्प्राप्ति
ख्यामें नाम-जप
ीसे एक लाख
देनभर बोलता
रहती है। वह
ीसे दिनभरमें
ता है। नहीं
ये। दिनभरमें
जप होनेपर

जा रहे हैं—

कलियुगमें नामकी विशेषता

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत्॥

(श्रीमद्भागवत)

राजन्! दोषोंके भंडार कलियुगमें यही एक महान् गुण है कि इस समय श्रीकृष्णका कीर्तनमात्र करनेसे मनुष्य बन्धनमुक्त हो परमपदको प्राप्त हो जाता है।

यदभ्यर्च्य हरिं भक्त्या कृते क्रतुशतैरपि।
फलं प्राप्नोत्यविकलं कलौ गोविन्दकीर्तनात्॥

(श्रीविष्णुरहस्य)

सत्ययुगमें भक्ति-भावसे सैकड़ों यज्ञोंद्वारा भी श्रीहरिकी आराधना करके मनुष्य जिस फलको पाता है, वह सारा-का-सारा कलियुगमें भगवान् गोविन्दका कीर्तनमात्र करके प्राप्त कर लेता है।

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥

(विष्णुपुराण)

सत्ययुगमें भगवान्‌का ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन

और द्वापरमें उनका पूजन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसे वह कलियुगमें केशवका कीर्तनमात्र करके प्राप्त कर लेता है।

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥
(श्रीमद्भागवत)

सत्ययुगमें भगवान् विष्णुका ध्यान करनेवालेको, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन करनेवालेको तथा द्वापरमें श्रीहरिकी परिचर्यामें तत्पर रहनेवालेको जो फल मिलता है, वही कलियुगमें श्रीहरिका कीर्तनमात्र करनेसे प्राप्त हो जाता है।

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

श्रीहरिका नाम ही, नाम ही, नाम ही मेरा जीवन है। कलियुगमें इसके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है।

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

नरेश्वर! मनुष्योंमें वे ही सौभाग्यशाली तथा निश्चय ही कृतार्थ हैं, जो कलियुगमें हरिनामका स्वयं स्मरण करते हैं और दूसरोंको भी स्मरण कराते हैं।

कलिकालकुसर्पस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य मा भयम्।
गोविन्दनामदावेन दग्धो यास्यति भस्मताम्॥
(स्कन्दपुराण)

तीखी दाढ़वाले कलिकालरूपी दुष्ट सर्पका भय अब दूर हो जाना चाहिये; क्योंकि गोविन्द-नामके दावानलसे दग्ध होकर वह शीघ्र ही राखका ढेर बन जायगा।

हरिनामपरा ये च घोरे कलियुगे नराः।
त एव कृतकृत्याश्च न कलिर्बाधते हि तान्॥

घोर कलियुगमें जो मनुष्य हरिनामकी शरण ले चुके हैं, वे ही कृतकृत्य हैं। कलि उन्हें बाधा नहीं देता।

हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय।
इतीरयन्ति ये नित्यं नहि तान् बाधते कलिः॥
(बृहन्नारदीय०)

हरे! केशव! गोविन्द! वासुदेव! जगन्मय!—इस प्रकार जो नित्य उच्चारण करते हैं, उन्हें कलियुग कष्ट नहीं देता।

येऽहर्निशं जगद्धातुर्वासुदेवस्य कीर्तनम्
कुर्वन्ति तान् नरव्याघ्र न कलिर्बाधते नरान्॥
(विष्णुधर्मोत्तर)

नरश्रेष्ठ! जो लोग दिन-रात जगदाधार वासुदेवका कीर्तन करते हैं, उन्हें कलियुग नहीं सताता।

ते धन्यास्ते कृतार्थाश्च तैरेव सुकृतं कृतम्।
तैराप्तं जन्मनः प्राप्यं ये कलौ कीर्तयन्ति माम्॥

(भगवान् कहते हैं—) जो कलियुगमें मेरा कीर्तन करते हैं, वे धन्य हैं, वे कृतार्थ हैं, उन्होंने ही पुण्य-कर्म किया है तथा उन्होंने ही जन्म और जीवनका पाने योग्य फल पाया है।

सकृदुच्चारयन्त्येतद् दुर्लभं चाकृतात्मनाम्।
कलौ युगे हरेर्नाम ते कृतार्था न संशयः॥

जो कलियुगमें अपुण्यात्माओंके लिये दुर्लभ इस हरि-नामका एक बार भी उच्चारण कर लेते हैं, वे कृतार्थ हैं—इसमें संशय नहीं है।

नामसे सर्वपाप-नाश

पापानलस्य दीप्तस्य मा कुर्वन्तु भयं नराः।
गोविन्दनाममेघौघैर्नश्यते नीरबिन्दुभिः॥
(गारुडे)

लोग प्रज्वलित पापाग्निसे भय न करें; क्योंकि वह गोविन्द-नामरूपी मेघसमूहोंके जल-बिन्दुओंसे नष्ट हो जाती है।

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव॥

विवश होकर भी भगवान्‌के नामका कीर्तन करनेपर मनुष्य समस्त पातकोंसे उसी प्रकार मुक्त हो जाता है, जैसे सिंहसे डरे हुए भेड़िये अपने शिकारको छोड़कर भाग जाते हैं।

यन्नामकीर्तनं भक्त्या विलापनमनुत्तमम्।
मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः॥

हे मैत्रेय! भक्तिपूर्वक किया गया भगवन्नाम-कीर्तन उसी प्रकार समस्त पापोंको विलीन कर देनेवाला सर्वोत्तम साधन है, जैसे धातुओंकी सारे मैलको जला डालनेके लिये आग।

सायं प्रातस्तथा कृत्वा देवदेवस्य कीर्तनम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते॥

मनुष्य सायं और प्रातःकाल देवाधिदेव श्रीहरिका कीर्तन करके सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है।

नारायणो नाम नरो नराणां
प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेकजन्मार्जितपापसंचयं
हरत्यशेषं श्रुतमात्र एव॥

(वामनपुराण)

इस पृथ्वीपर नारायण नामक एक नर (व्यक्ति) प्रसिद्ध चोर बताया गया है, जिसका नाम एवं यश कर्ण-कुहरोंमें प्रवेश करते ही मनुष्योंकी अनेक जन्मोंकी कमायी हुई समस्त पापराशिको हर लेता है।

गोविन्देति तथा प्रोक्तं भक्त्या वा भक्तिवर्जितैः।
दहते सर्वपापानि युगान्ताग्निरिवोत्थितः॥

(स्कन्दपुराण)

मनुष्य भक्तिभावसे या भक्तिरहित होकर यदि गोविन्द-नामका उच्चारण कर ले तो वह नाम सम्पूर्ण पापोंको उसी प्रकार दग्ध कर देता है, जैसे युगान्तकालमें प्रज्वलित हुई प्रलयाग्नि सारे जगत्को जला डालती है।

गोविन्दनाम्ना यः कश्चिन्नरो भवति भूतले।
कीर्तनादेव तस्यापि पापं याति सहस्रधा॥

भूतलपर जो कोई भी मनुष्य गोविन्द नामसे प्रसिद्ध होता है, उसके भी उस नामका कीर्तन करनेसे ही पापके सहस्रों टुकड़े हो जाते हैं।

प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत्।
तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम दहेदघम्॥

जैसे असावधानीसे भी छू ली गयी आगकी कणिका उस अङ्गको जला देती है, उसी प्रकार यदि हरिनामका ओष्ठ-पुटसे स्पर्श हो जाय तो वह पापको जलाकर भस्म कर देता है।

अनिच्छयापि दहति स्पृष्टो हुतवहो यथा।
तथा दहति गोविन्दनाम व्याजादपीरितम्॥

(पद्मपुराण)

जैसे अनिच्छासे भी स्पर्श कर लेनेपर आग शरीरको जला देती है उसी प्रकार किसी बहानेसे भी लिया गया गोविन्द-नाम पापको दग्ध कर देता है।

नराणां विषयान्धानां ममताकुलचेतसाम्।
एकमेव हरेर्नाम सर्वपापविनाशनम्॥

(बृहन्नारदीय)

ममतासे व्याकुल-चित्त हुए विषयान्ध मनुष्योंके समस्त पापोंका नाश करनेवाला एकमात्र हरिनाम ही है।

कीर्तनादेव कृष्णस्य विष्णोरमिततेजसः।
दुरितानि विलीयन्ते तमांसीव दिनोदये॥

(पद्मपुराण)

अमित तेजस्वी सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्णके कीर्तनमात्रसे समस्त पाप उसी तरह विलीन हो जाते हैं, जैसे दिन निकल आनेपर अन्धकार।

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥

(श्रीमद्भागवत)

संकेत, परिहास, स्तोभ* या अनादरपूर्वक भी किया हुआ भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन सम्पूर्ण पापोंका नाशक है—ऐसा महात्मा लोग जानते हैं।

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥

जैसे अग्नि लकड़ीको जला देती है, उसी प्रकार जाने-अनजाने लिया गया भगवान् पुण्यश्लोकका नाम पुरुषकी पापराशिको भस्म कर देता है।

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

(बृहद्विष्णुपुराण)

* पुत्र आदिका गोविन्द, केशव या नारायण आदि संकेत (नाम) रखकर उसका उच्चारण करना 'सांकेत्य' है। उपहास करते हुए नाम लेना 'पारिहास्य' कहलाता है—जैसे कोई कहे, 'राम-नाम' कहनेसे क्या होगा ?' इत्यादि। गीत आदिके स्वरको पूरा करनेके लिये किसी शब्दका (जिसका वहाँ कुछ अर्थ न हो) उच्चारण स्तोभ है, जैसे सामवेदमें 'इडा', 'होई' इत्यादि शब्द। ऐसे ही अवसरपर भगवान्का नाम लेना 'स्तोभ' है। अथवा शीत आदिसे पीड़ित होनेपर बैठे-बैठे मुहसे 'राम-राम' निकल गया—इस तरहका उच्चारण 'स्तोभ' है।

न यत् पुनः कर्मसु सज्जते मनो
रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥

(श्रीमद्भागवत)

जो लोग इस संसार-बन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिये तीर्थपाद भगवान्‌के नामसे बढ़कर और कोई साधन ऐसा नहीं है, जो कर्मबन्धनकी जड़ काट सके; क्योंकि नामका आश्रय लेनेसे मनुष्यका मन फिर सकाम कर्मोंमें आसक्त नहीं होता । भगवन्नामके अतिरिक्त दूसरे किसी प्रायश्चित्तका आश्रय लेनेपर मन रजोगुण और तमोगुणसे ग्रस्त ही रहता है तथा उसके पापोंका भी पूर्णतः नाश नहीं हो पाता ।

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः
पतन् स्मरन् वा विवशो गृणन् पुमान् ।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं
प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥

(श्रीमद्भागवत)

मरणोन्मुख रोगी तथा गिरता या किसीका स्मरण करता हुआ मनुष्य विवश होकर भी जिन भगवान्‌के नामका उच्चारण करके कर्मोंकी साँकलसे छुटकारा पा उत्तम गतिको प्राप्त कर लेता है, उन्हीं भगवान्‌का कलियुगके मनुष्य पूजन नहीं करेंगे (यह कितने कष्टकी बात है !) ।

नामसे मुक्ति और परमधामकी प्राप्ति

इष्टापूर्तानि कर्माणि सुबहूनि कृतान्यपि ।
भवे हेतूनि तान्येव हरेर्नाम तु मुक्तिदम् ॥

(बोधायनसंहिता)

इष्ट (यज्ञ-यागादि) और आपूर्त (कूप-वाटिका-निर्माण आदि) कर्म कितनी ही अधिक संख्यामें क्यों न किये जायँ, वे ही भव-बन्धनके कारण बनते हैं । परंतु श्रीहरिका नाम लिया जाय तो वह भव-बन्धनसे छुटकारा दिलानेवाला होता है ।

किं करिष्यसि सांख्येन किं योगैर्नरनायक ।
मुक्तिमिच्छसि राजेन्द्र कुरु गोविन्दकीर्तनम् ॥

(गरुडपुराण)

नरेन्द्र ! सांख्य और योगका अनुष्ठान करके क्या करोगे ? राजेन्द्र ! यदि मुक्ति चाहते हो तो गोविन्दका कीर्तन करो ।

सकृदुच्चारितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥

(स्कन्दपुराण)

जिसने एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षतक पहुँचनेके लिये कमर कस ली ।

अप्यन्यचित्तोऽशुद्धो वा यः सदा कीर्तयेद्धरिम् ।
सोऽपि दोषक्षयान्मुक्तिं लभेच्चेदिपतिर्यथा ॥

(ब्रह्मपुराण)

जो अन्यमनस्क तथा अशुद्ध रहकर भी सदा हरि-नामका कीर्तन करता है, वह भी अपने दोषोंका नाश हो जानेके कारण उसी तरह मोक्ष प्राप्त कर लेता है, जैसे चेदिराज शिशुपालने प्राप्त किया था ।

सकृदुच्चारयेद् यस्तु नारायणमतन्द्रितः ।
शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥

(पद्मपुराण)

जो आलस्य छोड़ एक बार नारायण नामका उच्चारण कर लेता है, उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और वह निर्वाण पदको प्राप्त होता है ।

यथा कथंचिद् यन्नाम्नि कीर्तिते वा श्रुतेऽपि वा ।
पापिनोऽपि विशुद्धाः स्युः शुद्धा मोक्षमवाप्नुयुः ॥

(बृहन्नारदीय)

भगवान्‌के नामका जिस किसी तरह भी उच्चारण या श्रवण कर लेनेपर पापी भी विशुद्ध हो जाते हैं और शुद्ध पुरुष मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं ।

नव्यं नव्यं नामधेयं पुरारे-
र्यद् यच्चैतद्गेयपीयूषपुष्टम् ।
ये गायन्ति त्यक्तलज्जाः सहर्षं
जीवन्मुक्ताः संशयो नास्ति तत्र ॥

(नारदपुराण)

पुरारि (या मुरारि) का जो नया-नया नाम है और जो इनके गुणगानरूपी अमृतसे पुष्ट हुआ है, उसका जो लोग लज्जा छोड़कर हर्षोल्लासके साथ गान करते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं—इसमें संशय नहीं है ।

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ॥

(श्रीमद्भागवत)

घोर संसार-बन्धनमें पड़ा हुआ मनुष्य विवश होकर भी

यदि भगवन्नामका उच्चारण करता है तो वह तत्काल उस बन्धनसे मुक्त हो जाता है और उस पदको प्राप्त होता है, जिससे भय स्वयं भय मानता है।

एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां
संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्।
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि
नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम्॥

(श्रीमद्भागवत)

मनुष्योंके पापका नाश करनेके लिये इतने बड़े साधनकी आवश्यकता नहीं कि भगवान्‌के गुण, कर्म और नामोंका कीर्तन किया जाय; क्योंकि आज अजामिल-जैसा पापी भी मरते समय 'नारायण' शब्दसे अपने पुत्रको पुकारकर मुक्ति पा गया।

यन्नामस्मरणादेव पापिनामपि सत्वरम्।
मुक्तिर्भवति जन्तूनां ब्रह्मादीनां सुदुर्लभा॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड)

उन भगवान्‌के नामका स्मरण करते ही पापी जीवोंको भी तत्काल ऐसी मुक्ति सुलभ हो जाती है, जो ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ है।

जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्।
विष्णुलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥

(बृहन्नारदीय)

जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि' ये दो अक्षर विद्यमान हैं, वह पुनरावृत्तिरहित विष्णुलोकको प्राप्त कर लेता है।

तदेव पुण्यं परमं पवित्रं गोविन्दगेहे गमनाय पत्रम्।
तदेव लोके सुकृतैकसत्रं यदुच्यते केशवनाममात्रम्॥

(पद्मपुराण)

भगवान् केशवके नाममात्रका जो उच्चारण किया जाता है, वही परम पवित्र पुण्यकर्म है। वही गोविन्दगेह (गोलोकधाम) में जानेके लिये वाहन है और वही इस लोकमें सुकृतका एकमात्र सत्र है।

एवं संग्रहणीपुत्राभिधमव्याजतो हरिम्।
समुच्चार्यान्तकालेऽगाद्धाम तत्परमं हरेः॥

(ब्रह्मवैवर्त०)

इस प्रकार अन्तकालमें अपने अधर्मज पुत्रके नामके बहाने हरिका उच्चारण करके वह श्रीहरिके परमधाममें जा पहुँचा।

नारायणमिति व्याजादुच्चार्य कलुषाश्रयः।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन्॥

(ब्रह्मवैवर्त०)

पुत्रके बहाने नारायण—इस नामका उच्चारण करके पापका भंडार अजामिल भी भगवद्धाममें चला गया। फिर जो श्रद्धापूर्वक भगवान्‌के नाम लेता है, उसकी मुक्तिके लिये तो कहना ही क्या है।

ये कीर्तयन्ति वरदं वरपद्मनाभं
शङ्खाब्जचक्रशरचापगदासिहस्तम्।
पद्मालयावदनपङ्कजषट्पदाक्षं
नूनं प्रयान्ति सदनं मधुघातिनस्ते॥

(वामनपुराण)

जो लोग शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, बाण-धनुष और खड्ग धारण करनेवाले, लक्ष्मीके मुखारविन्दका मकरन्द पीनेके लिये भ्रमररूप नेत्रवाले वरदायक एवं श्रेष्ठ भगवान् पद्मनाभका कीर्तन करते हैं, वे अवश्य उन मधुसूदनके धाममें जाते हैं।

वासुदेवेति मनुज उच्चार्य भवभीतितः।
तन्मुक्तः पदमाप्नोति विष्णोरेव न संशयः॥

(अङ्गिरसपुराण)

जो मनुष्य संसारभयसे भीत हो 'वासुदेव' इस नामका उच्चारण करता है, वह उस भयसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके ही पदको प्राप्त होता है—इसमें संशय नहीं है।

नामसे सब त्रुटियोंकी पूर्णता

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव॥

(श्रीमद्भागवत)

मन्त्र, तन्त्र (विधि), देश, काल, पात्र और द्रव्य आदिकी दृष्टिसे भी छिद्र (न्यूनता) को प्राप्त हुए कर्मोंको आप (भगवान्)का कीर्तन त्रुटिरहित (परिपूर्ण) कर देता है।

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतामेति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥

(स्कन्दपुराण)

जिनके स्मरण तथा नामोच्चारणसे तप तथा यज्ञादि कर्मोंमें तत्काल न्यूनताकी पूर्ति हो जाती है, उन भगवान् अच्युतको मैं नमस्कार करता हूँ।

नामसे भगवान्‌का वशमें होना

ऋणमेतत्प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति ।
यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम् ॥

(महाभारत)

द्रुपदकुमारी कृष्णाने कौरवसभामें वस्त्र खींचे जाते समय जो मुझ दूरवासी (द्वारकानिवासी) श्रीकृष्णको 'गोविन्द' कहकर पुकारा था, उसका यह ऋण मुझपर बहुत बढ़ गया है । यह हृदयसे कभी दूर नहीं होता ।

गीत्वा च मम नामानि नर्तयेन्मम संनिधौ ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन ॥

अर्जुन ! जो मेरे नामोंका गान करके मेरे निकट नाचने लगता है, उसने मुझे खरीद लिया है—यह मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ ।

गीत्वा च मम नामानि रुदन्ति मम संनिधौ ।
तेषामहं परिक्रीतो नान्यक्रीतो जनार्दनः ॥

(आदिपुराण)

जो मेरे नामोंका गान करके मेरे समीप प्रेमसे रो उठते हैं, उनका मैं खरीदा हुआ गुलाम हूँ; यह जनार्दन दूसरे किसीके हाथ नहीं बिका है ।

जितं तेन जितं तेन जितं तेनेति निश्चितम् ।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥

जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि'—ये दो अक्षर विद्यमान हैं, उसकी जीत हो गयी, उसने विजय पा ली, निश्चय ही उसकी विजय हो गयी ।

भगवन्नाममें देश-काल-अवस्थाकी कोई बाधा नहीं

न देशनियमस्तस्मिन् न कालनियमस्तथा ।
नोच्छिष्टेऽपि निषेधोऽस्ति श्रीहरेर्नाम्नि लुब्धक ॥

व्याध ! श्रीहरिके नाम-कीर्तनमें न तो किसी देश-विशेषका नियम है और न कालविशेषका ही । जूठे अथवा अपवित्र होनेपर भी नामोच्चारणके लिये कोई निषेध नहीं है ।

चक्रायुधस्य नामानि सदा सर्वत्र कीर्तयेत् ।
नाशौचं कीर्तने तस्य स पवित्रकरो यतः ॥

चक्रपाणि श्रीहरिके नामोंका सदा और सर्वत्र कीर्तन करे । उनके कीर्तनमें अशौच बाधक नहीं है; क्योंकि वे भगवान् स्वयं ही सबको पवित्र करनेवाले हैं ।

न देशकालावस्थासु शुद्ध्यादिकमपेक्षते ।
किंतु स्वतन्त्रमेवैतन्नाम कामितकामदम् ॥

यह भगवन्नाम किसी भी देश, काल और अवस्थामें शुद्धि आदिकी अपेक्षा नहीं रखता; यह तो स्वतन्त्र ही रहकर अभीष्ट कामनाओंको देनेवाला है ।

न देशकालनियमो न शौचाशौचनिर्णयः ।
परं संकीर्तनादेव राम रामेति मुच्यते ॥

कीर्तनमें देश-कालका नियम नहीं है, शौचाशौचका निर्णय भी आवश्यक नहीं है । केवल 'राम-राम' ऐसा कीर्तन करनेसे ही परम मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है ।

न देशनियमो राजन् न कालनियमस्तथा ।
विद्यते नात्र संदेहो विष्णोर्नामानुकीर्तने ॥

राजन् ! भगवान् विष्णुके इस नाम-कीर्तनमें देश और कालका नियम नहीं है—इस विषयमें तुम्हें संदेह नहीं करना चाहिये ।

कालोऽस्ति दाने यज्ञे च स्नाने कालोऽस्ति सज्जने ।
विष्णुसंकीर्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीतले ॥

दान और यज्ञके लिये कालका नियम है, स्नान और मज्जन (नदी, सरोवर आदिमें गोता लगाने) के लिये भी समयका नियम है; परंतु इस भूतलपर भगवान् विष्णुका कीर्तन करनेके लिये कोई काल निश्चित नहीं है । उसे हर समय किया जा सकता है ।

श्रीरामनामकी महिमा

रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापापनोदकः ।
गच्छन् तिष्ठञ् शयानो वा मनुजो रामकीर्तनात् ॥
इह निर्वर्तितो याति चान्ते हरिगणो भवेत् ।
रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः ॥
न रामादधिकं किंचित् पठनं जगतीतले ।
रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना ॥
रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ।
अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥
रामेति मन्त्रराजोऽयं भयव्याधिनिषूदकः ।
रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः ॥
द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भुवि ।
देवा अपि प्रगायन्ति रामनाम गुणाकरम् ॥

तस्मात्त्वमपि देवेशि रामनाम सदा वद ।
रामनाम जपेद् यो वै मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥
(स्कन्दपुराण, नागरखण्ड)

भगवान् श्रीशंकरजी देवी पार्वतीसे कहते हैं—

'राम' यह दो अक्षरोंका मन्त्र जपनेपर समस्त पापोंका नाश करता है । चलते, खड़े हुए, अथवा सोते (जिस किसी भी समय) जो मनुष्य रामनामका कीर्तन करता है, वह यहाँ कृतकार्य होकर जाता है और अन्तमें भगवान् हरिका पार्षद बनता है । राम—यह दो अक्षरोंका मन्त्र शतकोटि मन्त्रोंसे भी अधिक महत्त्व रखता है । रामनामसे बढ़कर जगत्‌में जप करने योग्य कुछ भी नहीं है । जिन्होंने रामनामका आश्रय लिया है, उनको यमयातना नहीं भोगनी पड़ती । जो मनुष्य अन्तरात्म-स्वरूपसे रामनामका उच्चारण करता है, वह स्थावर-जङ्गम सभी भूतप्राणियोंमें रमण करता है । 'राम' यह मन्त्रराज है, यह भय तथा व्याधिका विनाश करनेवाला है । 'रामचन्द्र', 'राम', 'राम'—इस प्रकार उच्चारण करनेपर यह दो अक्षरोंका मन्त्रराज पृथ्वीमें समस्त कार्योंको सफल करता है । गुणोंकी खान इस रामनामका देवतालोग भी भलीभाँति गान करते हैं । अतएव हे देवेश्वरि ! तुम भी सदा रामनामका उच्चारण किया करो । जो रामनामका जप करता है, वह सारे पापोंसे (पूर्वकृत एवं वर्तमानकृत सूक्ष्म और स्थूल पापोंसे और समस्त पाप-वासनाओंसे सदाके लिये) छूट जाता है ।

विष्णोरेकैकनामापि सर्ववेदाधिकं मतम् ।
तादृङ्नामसहस्रेण रामनाम समं स्मृतम् ॥
(पद्मपुराण)

भगवान् विष्णुका एक-एक नाम भी सम्पूर्ण वेदोंसे अधिक माहात्म्यशाली माना गया है । ऐसे एक सहस्र नामोंके तुल्य रामनाम कहा गया है ।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥
(पद्मपुराण)

भगवान् शंकर कहते हैं—मेरे मनमें रमनेवाली सुमुखि शिवे ! मैं 'राम, राम, राम' इस प्रकार कीर्तन करता हुआ राममें ही रमता हूँ । दूसरे सहस्र-नामोंके समान एक रामनामकी महिमा है ।

श्रीकृष्णनामकी महिमा

अलमलमियमेव प्राणिनां पातकानां
निरसनविषये या कृष्णकृष्णेति वाणी ।
यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा
विलुठति चरणाब्जे मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः ॥
(सर्वज्ञमुनि)

'कृष्ण, कृष्ण' इस प्रकार उच्चारण करनेवाली जो वाणी है, यही प्राणियोंके पातकोंको दूर करनेमें पूर्णतः समर्थ है । यदि मुकुन्दमें आनन्दघनस्वरूपा भक्ति हो जाती है, तो मोक्ष-साम्राज्यकी लक्ष्मी उस भक्तके चरणकमलमें स्वयं आकर लोटने लगती है ।

कः परेतनगरीपुरंदरः को भवेदथ तदीयकिंकरः ।
कृष्णनाम जगदेकमङ्गलं कण्ठपीठमुररीकरोति चेत् ॥

यदि जगत्‌का एकमात्र मङ्गल करनेवाला श्रीकृष्ण-नाम कण्ठके सिंहासनको स्वीकार कर लेता है तो यमपुरीका स्वामी उस कृष्णभक्तके सामने क्या है ? अथवा यमराजके दूतोंकी क्या हस्ती है ?

ब्रह्माण्डानां कोटिसंख्याधिकाना-
मैश्वर्यं यच्चेतना वा यदंशः ।
आविर्भूतं तन्महः कृष्णनाम
तन्मे साध्यं साधनं जीवनं च ॥

करोड़ोंकी संख्यासे भी अधिक ब्रह्माण्डोंका जो ऐश्वर्य अथवा जो चेतना है, वह जिसका अंशमात्र है, वही तेजःपुञ्ज 'कृष्ण' नामके रूपमें प्रकट हुआ है । वह 'कृष्ण' नाम ही मेरा साध्य, साधन और जीवन है ।

स्वर्गार्थीया व्यवसितिरसौ दीनयत्येव लोकान्
मोक्षापेक्षा जनयति जनं केवलं क्लेशभाजम् ।
योगाभ्यासः परमविरसस्तादृशैः किं प्रयासैः
सर्वं त्यक्त्वा मम तु रसना कृष्ण कृष्णेति रौतु ॥

स्वर्गकी प्राप्तिके लिये जो व्यवसाय (निश्चय अथवा उद्योग) है, वह लोगोंको दीन ही बनाता है । मोक्षकी जो अभिलाषा है, वह मनुष्यको केवल क्लेशका भागी बनाती है; और योगाभ्यास तो अत्यन्त नीरस वस्तु है । अतः वैसे प्रयासोंसे मेरा क्या प्रयोजन है । मेरी जिह्वा तो सब कुछ छोड़कर केवल कृष्ण, कृष्णकी रट लगाती रहे ।

आकृष्टिः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसा-
माचाण्डालममूकलोकसुलभो वश्यश्च मोक्षश्रियः।
नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते
मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः॥

यह कृष्णनामरूपी मन्त्र शुद्धचेता महात्माओंके चित्तको (हठात्) अपनी ओर आकृष्ट करनेवाला तथा बड़े-से-बड़े पापोंका मूलोच्छेद करनेवाला है। मोक्षरूपिणी लक्ष्मीके लिये तो यह वशीकरण ही है। इतना ही नहीं, यह केवल गूँगोंको छोड़कर चाण्डालसे लेकर उत्तम जातितकके सभी मनुष्योंके लिये सुलभ है। दीक्षा, दक्षिणा और पुरश्चरणका यह तनिक भी विचार नहीं करता। यह मन्त्र जिह्वाका स्पर्श करते ही सभीके लिये पूर्ण फलद होता है।

कृष्णस्य नानाविधकीर्तनेषु
तन्नामसंकीर्तनमेव मुख्यम्।
तत्प्रेमसम्पज्जनने स्वयं द्राक्
शक्तं ततः श्रेष्ठतमं मतं तत्॥

श्रीकृष्णके नाना प्रकारके कीर्तनोंमें उनका नामकीर्तन ही मुख्य है। वह श्रीकृष्ण-प्रेमरूपा सम्पत्तिको शीघ्र उत्पन्न करनेमें स्वयं समर्थ है। इसलिये वह सब साधनोंसे श्रेष्ठतम माना गया है।

नामसंकीर्तनं प्रोक्तं कृष्णस्य प्रेमसम्पदि।
बलिष्ठं साधनं श्रेष्ठं परमाकर्षमन्त्रवत्॥

श्रीकृष्णका नामकीर्तन प्रेमसम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये प्रबल एवं श्रेष्ठ साधन कहा गया है। वह श्रेष्ठ आकर्षण-मन्त्रकी भाँति चित्तको अत्यन्त आकृष्ट करनेवाला है।

तदेव मन्यते भक्तेः फलं तद्रसिकैर्जनैः।
भगवत्प्रेमसम्पत्तौ सदैवाव्यभिचारतः॥

अतः नामरसिक भक्तजन उस कृष्णनामको ही भक्तिका फल मानते हैं; क्योंकि भगवत्-प्रेमकी प्राप्तिमें वह कभी व्यभिचरित (असफल) नहीं हुआ।

सल्लक्षणं प्रेमभरस्य कृष्णे
कैश्चिद् रसज्ञैरुत कथ्यते तत्।
प्रेम्णो भरेणैव निजेष्टनाम-
संकीर्तनं हि स्फुरति स्फुटं तत्॥

कितने ही रसज्ञजन उस कृष्णनामको ही कृष्ण-विषयक अत्यन्त प्रेमका उत्तम लक्षण बताते हैं; क्योंकि अधिक प्रेमसे ही अपने इष्टदेवके नामका संकीर्तन स्पष्टरूपसे स्फुरित होता है।

कृष्णः शरच्चन्द्रमसं कौमुदीं कुमुदाकरम्।
जगौ गोपीजनस्त्वेकं कृष्णनाम पुनः पुनः॥
(विष्णुपुराण ५। १३। ५२)

रासके समय श्रीकृष्णचन्द्र शरत्कालीन चन्द्रमा, उसकी चाँदनी और कुमुद-समूहका गुणगान करने लगे। परंतु गोपियोंने तो बारंबार केवल एक श्रीकृष्ण-नामका ही गान किया।

रासगेयं जगौ कृष्णो यावत्तारतरध्वनिः।
साधु कृष्णेति कृष्णेति तावत्ता द्विगुणं जगुः॥
(विष्णुपुराण ५। १३। ५६)

श्रीकृष्णचन्द्र जितने उच्चस्वरसे रासोचित गान गाते थे, उससे दूने स्वरमें गोपियाँ केवल 'साधु कृष्ण ! धन्य कृष्ण !' के गीत गाती थीं।

सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम।

श्रद्धासे, अवहेलनासे—कैसे भी एक बार भी किया हुआ कृष्णनामका कीर्तन मनुष्यमात्रको तार देता है।

श्रीकृष्णनामामृतमात्महृद्यं
प्रेम्णा समास्वादनभङ्गिपूर्वम्।
यत्सेव्यते जिह्विकयाविरामं
तस्यातुलं जल्पतु को महत्त्वम्॥

(फिर) अपने मनको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले श्रीकृष्ण-नामामृतका प्रेमसे रसास्वादनकी चेष्टाके साथ जो जिह्वाद्वारा अविराम सेवन किया जाता है, उसकी अनुपम महत्ताका कौन वर्णन कर सकता है।

नाम-महिमा

सर्वमङ्गलमङ्गल्यमायुष्यं व्याधिनाशनम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं वासुदेवस्य कीर्तनम्॥

'वासुदेव'नामका दिव्य कीर्तन सम्पूर्ण मङ्गलोंमें भी परम मङ्गलकारी, आयुकी वृद्धि करनेवाला, रोगनाशक तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

परिहासोपहास्याद्यैर्विष्णोर्गृह्णन्ति नाम ये।
कृतार्थास्तेऽपि मनुजास्तेभ्योऽपीह नमो नमः॥

जो परिहास और उपहास आदिके द्वारा भगवान् विष्णुके

नाम लेते हैं, वे मनुष्य भी कृतार्थ हैं। उनके प्रति भी यहाँ मेरी ओरसे वारंवार नमस्कार है।

सर्वत्र सर्वकालेषु येऽपि कुर्वन्ति पातकम्।
नामसंकीर्तनं कृत्वा यान्ति विष्णोः परं पदम्॥

जो सर्वत्र और सर्वदा पापाचरण करते हैं, वे भी हरि-नाम-संकीर्तन करके विष्णुके परमधाममें चले जाते हैं।

नारायणाच्युतानन्त वासुदेवेति यो नरः।
सततं कीर्तयेद् भूमिं यान्ति मल्लयतां स हि॥

जो मनुष्य नारायण, अच्युत, अनन्त और वासुदेव आदि नामोंका सदा कीर्तन करता है, वह मुझमें लीन होनेके भक्तोंकी भूमिको प्राप्त होता है।

प्राणप्रयाणपाथेयं संसारव्याधिभेषजम्।
दुःखशोकपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

'हरि' यह दो अक्षरोंका नाम प्राण-प्रयाणके पथका पाथेय है, संसाररूपी रोगकी ओषधि है तथा दुःख और शोकसे सबकी सदा रक्षा करनेवाला है।

विधेयानि विचार्याणि विचिन्त्यानि पुनः पुनः।
कृपणस्य धनानीव त्वन्नामानि भवन्तु नः॥

हे भगवन्! जैसे कृपण मनुष्य बारंबार धनका संचय, विचार एवं चिन्तन करता है, उसी तरह हमारे लिये आपके नाम ही पुनः-पुनः संग्रहणीय, विचारणीय एवं चिन्तनीय हों।

सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम्।
एकावृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति॥

पवित्र सहस्रनामोंकी तीन आवृत्तियाँ करनेसे जो फल मिलता है, उसे कृष्ण-नाम एक ही बारके उच्चारणसे सुलभ कर देता है।

हम भगवान्‌से कैसी प्रार्थना करें?

(लेखक—श्रीरामचन्द्रजी उपाध्याय शास्त्री)

प्रश्न होता है कि प्रार्थना और उसका फल क्या हैं। एक महात्माने उसके निम्न स्वरूप निर्धारित किये हैं। अपने पुरुषार्थके उपरान्त उत्तम कर्मोंकी सिद्धिके लिये परमेश्वर अथवा किसी सामर्थ्यवाले मनुष्यसे सहायता लेनेको 'प्रार्थना' कहते हैं।

प्रार्थनाका फल क्या है? अभिमानका नाश, आत्मामें आर्द्रता, गुणग्रहणमें पुरुषार्थ और अत्यन्त प्रीतिका होना—प्रार्थनाका फल है।

जिस प्रभुके भक्तमें उक्त गुणोंका दर्शन न हो, वह न सच्चा भक्त कहायेगा और न उसकी प्रार्थना वास्तविक प्रार्थना ही कहलायेगी। ऐसा व्यक्ति क्या होगा, पाठक स्वयं निश्चय करें। अब प्रश्न यह है कि प्रत्येक व्यक्ति भगवान्‌से कैसी प्रार्थना करे और कैसी न करे। इसके विचारमें हम शास्त्रीय एवं पूर्वाचार्योंके विधिवादका आश्रय ग्रहण करके आगे चलते हैं। निषेधात्मकका स्वयं पाठक निर्णय करें। अस्तु!

सर्वप्रथम प्रत्येक व्यक्तिको जो प्रार्थना करनी चाहिये, वह है—

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव।

(ऋग्वेद ५। ८२। ५)

'हे सवितः—सम्पूर्ण जगत्‌के उत्पन्न करनेवाले (देव) ईश्वर! (विश्वानि) सब (दुरितानि) पाप हम सबसे (परासुव) दूर कीजिये और यत्—जो (भद्रं) कल्याणमय है, (तत्) वह (नः) हमें (आसुव) प्राप्त कराइये।'

अर्थात् परमेश्वर सर्वव्यापक है, सर्वान्तर्यामी है। अतः उसकी जीवरूप प्रजाके लिये क्या भद्र है और क्या अभद्र है, यह उसीपर छोड़कर पूर्ण श्रद्धासे उक्त प्रार्थना करें।

२—असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय।

शतपथब्राह्मण उक्त तीन वाक्योंमें कहते हैं—'हे प्रभो! आप मुझे असत्य-मार्गसे हटाकर सत्य-मार्गकी ओर ले चलें, अन्धकारसे हटाकर प्रकाशकी ओर ले चलें तथा मृत्युसे बचाकर मुझे मोक्ष-मार्गपर पहुँचा दें।'

सभी धर्माचार्य मनुष्यका अन्तिम लक्ष्य स्वर्ग, मोक्ष, जन्नत, बहिश्त आदि बताते हैं, जिसको शतपथ-ब्राह्मणकारने

कैसे सुन्दर और थोड़े शब्दोंमें प्रकट किया है ! पाठकगण ऋषिशैलीका गूढ़ रहस्य अनुभव करें।

जबतक कोई प्राणवान् मनुष्य असत्य और अन्धकार-का त्याग नहीं करेगा, वह परमधाम-पदका अधिकारी न हो सकेगा—यह निश्चय है।

मनुष्य बुद्धिजीवी प्राणी है। अतः उसके समस्त कार्यकलाप उसकी बुद्धिके अनुसार ही होते हैं। आवश्यकता है कि उसके पास उत्तम बुद्धि हो। वह बुद्धि कौन-सी है, जिसके लिये प्रार्थना उस प्रभुसे करनी चाहिये ? वेद-भगवान् जो प्रभुका अक्षय ज्ञान-भंडार है, उसमें उस बुद्धिका वर्णन निम्न मन्त्रमें किया गया है। अतः प्रत्येक व्यक्तिको इसी बुद्धिके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये।

ॐ यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥

(यजु० ३२। १४)

शब्दार्थ—(देवगणाः) विद्वानोंके समूह और (पितरः-) रक्षकोंके समूह (याम् मेधां) जिस निश्चयात्मक उत्तम बुद्धिका (उपासते) सेवन करते हैं, (हे अग्ने) हे तेजस्वी परमात्मन्! (तया मेधया) उस बुद्धिसे (अद्य माम्) आज मुझे (मेधाविनं) बुद्धिमान् (कुरु) करो। (स्वाहा) मैं स्वार्थ-त्याग करता हूँ।

आज संसारमें जो कुछ ज्ञानका प्रकाश दीख रहा है, वह सब बुद्धिका ही चमत्कार है। अतः पाठक विचार करें—उत्तम बुद्धि ज्ञानकी प्रकाशक है और दुष्ट बुद्धि समस्त संसारमें दुःखोत्पादक है। भगवान्‌की आज्ञा है कि उसका पुत्र उत्तम बुद्धिका ही ग्राहक हो, जिससे संसार स्वर्गधाम बने और वह स्वार्थवृत्तिसे रहित हो। उपर्युक्त प्रार्थनाके पश्चात् प्रत्येक मेधावी पुरुषको अपने निजी सम्बन्धियोंसे लेकर विश्वमात्रके कल्याणकी भावनावाली प्रार्थना करनी चाहिये, जिसका वर्णन निम्न मन्त्रमें प्रभु परमेश्वरने किया है—

ॐ—स्वस्ति मात्रे उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः। विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम्। (अथर्व० १। ३१। ४)

शब्दार्थ—हे प्रभो! (नः मात्रे) हमारी माताके लिये और (पित्रे) पिताके लिये (स्वस्ति अस्तु) कल्याण सुख हो। (गोभ्यः) गौओंके लिये, (पुरुषेभ्यः) मनुष्यमात्रके लिये, (जगते) गतिशील प्राणिमात्रके लिये (स्वस्ति) आनन्द प्राप्त हो। (नः) हमारे पास (विश्वं सुभूतं) सब प्रकारका उत्तम ऐश्वर्य तथा (सुविदत्रं) उत्तम ज्ञान (अस्तु) हो। (सूर्यम ज्योक् एव) सूर्यको बहुत कालतक (दृशेम) हम देखते रहें।

उपर्युक्त मन्त्रमें भगवान्‌का सच्चा भक्त अपने पारिवारिक जनोंके कल्याणकी प्रार्थनाके साथ-साथ पशुजगत्‌के लिये और समस्त संसारके जीवोंके कल्याणार्थ प्रार्थना करता हुआ उत्तम ज्ञानी बनकर प्रभुसे दीर्घजीवनकी याचना भी करता है। पाठक विचार करें, कितनी उत्तम भावप्रद प्रार्थना है!

मनुष्यको कुमार्गमें ले जानेवाली उसकी इन्द्रियाँ और मन हैं। इतिहास बताता है कि जिन व्यक्तियोंने इन दोनों-पर काबू नहीं किया, उनका पतन कहाँतक हुआ है। इन्द्रियोंको और मनको न जीतनेवाले पुरुषोंने न केवल अपना ही विनाश किया है, अपितु अपने परिवार, समाज और राज्यका भी सर्वनाश कर दिया है। इसके विरुद्ध जिन व्यक्तियोंने अपनी इन्द्रियोंपर अधिकार प्राप्त किया है, वे न केवल स्वयं सफल हुए हैं अपितु जिस ओर भी उन्होंने दृष्टि की है, सफलता उनके सम्मुख हाथ बाँधे खड़ी रही है। भगवान् राम और रावण इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। इस प्रसङ्गमें आर्य-संस्कृतिका भारतीय इतिहास सहस्रों उदाहरणोंसे भरा पड़ा है। अतएव इन्द्रियोंमें चञ्चलता न हो, ऐसी प्रार्थना भी हमें भगवान्‌से करनी चाहिये—जो निम्न प्रकार है।

ॐ—वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीऽइदं ज्योतिः हृदय आहितं यत्। वि मे मनश्चरति दूर आधीः किं स्विद् वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये। (ऋग्वेद ६। ९। ६)

शब्दार्थ—हे परमात्मदेव! (मे कर्णा विपतयतः) मेरे दोनों कान इधर-उधर दूर-दूर गिर रहे हैं, (चक्षुः वि) मेरे नेत्र भी इधर-उधर दौड़ रहे हैं, (हृदये यद् इदम् ज्योतिः) हृदयमें स्थापित जो यह ज्ञानरूप ज्योति है, वह भी (विपतयति) दूर भाग रही है। (दूरे आधीः मे मनः विचरति) अति दूरस्थ विषयका ध्यान लगाकर मेरा मन भी दूर-दूर भ्रमण कर रहा है। ऐसी दशामें हे प्रभो! आपसे (किम् स्वित् वक्ष्यामि) मैं क्या कहूँ और मैं (किम्+उ+नु मनिष्ये) क्या मनन करूँ ?

अर्थात् भक्त अपनेको असमर्थ पाकर शक्तिके भंडार

प्रभुसे प्रार्थना करता है कि आप ही ऐसी कृपा कीजिये कि मेरी सब चञ्चल इन्द्रियाँ समाहित हों।

मनुष्यके हृदयमें उसे शुभ कर्मोंसे गिरानेवाले और अशुभ कर्मोंमें प्रेरित करनेवाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—ये छः मनोविकार हैं। वेदमें इन्हें गरुड़, गीध, चिड़िया, कुत्ते, उल्लू और भेड़ियोंकी उपमा दी गयी है। ये छः बड़े प्रबल राक्षस हैं। इनका साम्राज्य होनेपर व्यष्टि-जगत् और समष्टिजगत्का नाश हो जाता है। इन छः शत्रु-राक्षसोंपर जो प्रभुभक्त काबू पा जाते हैं, वे स्वयं जगत्पूज्य होकर संसारको स्वर्ग बना जाते हैं। अथर्ववेदमें भगवान्से इन छः प्रबल राक्षसोंके नाशकी प्रार्थना निम्न मन्त्रमें की गयी है। पाठकोंसे आशा है कि वे मन्त्रकी गहराईपर विचार करके लाभ उठायेंगे।

६—उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥
(अथर्व० ८। ४। २२)

शब्दार्थ—(सुपर्ण-यातुं) गरुड़के समान चाल-चलन अर्थात् घमंड, गर्व, अहङ्कारसे युक्त व्यक्ति (गृध्र-यातुं) गीधके समान बर्ताव अर्थात् अनुचित लोभ, दूसरेके मांस धन) पर स्वयं पुष्ट होनेकी इच्छा। (कोक-यातुं) चिड़िया-चिड़ौटेके समान व्यवहार अर्थात् अत्यन्त कामातुर होना। (श्व-यातुं) कुत्तेके समान आदत अर्थात् आपसमें लड़ना और दूसरोंके सामने दुम हिलाना। (उलूक-यातुं—) उल्लूके समान आचार अर्थात् मूर्खताका व्यवहार करना—जिस प्रकार उल्लू प्रकाशसे भागता है, उसी प्रकार ज्ञानकी रोशनीसे व्यक्तिका भागना और अन्धकार—अज्ञानतासे प्रेम करना। (शुशुलूक-यातुं) भेड़ियोंके समान क्रूरता—ये छः राक्षस हैं। जिनको (दृषदा इव) जैसे पत्थरसे पक्षियोंको मारते हैं, उसी प्रकार पत्थरके समान हृदय दृढ़ करके (हे इन्द्र—) पुरुषार्थिन् प्रभो! (रक्षः प्रमृण) इन राक्षसोंको दूर करो और सबको बचाओ।

विस्तारभयसे हम ये थोड़ी ही प्रार्थनाएँ 'कल्याण' के प्रभुभक्त पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है, हमारे पाठक प्रार्थना और उसके फलकी उपयोगिताको लक्ष्यमें रखकर न केवल अपना और अपने सगे-सम्बन्धियों-का ही उद्धार करेंगे किंतु मनुष्यमात्रके उद्धारमें तत्पर हो भारत-भूको पुण्यभूमि, ऋषिभूमि और देवभूमिके पदपर आसीनकर जगद्गुरुके पदसे अलंकृत यशके भागी होंगे। ओ३म् शम्।

प्रार्थना

भगवान्के सर्वलोकमहेश्वर, सर्वशक्तिमान, सर्वसमर्थ, [illegible]ज्ञ, सर्वभवनसमर्थ, भक्त-भक्तिमान्, स्वभाव-सुहृद्, [illegible]तुक कृपालु, करुणावरुणालय, सहज दयामय, कल्याण-[illegible], मङ्गलमय, स्नेह-सुधा-समुद्र, दीनवत्सल, पतितपावन, [illegible]मूर्त्ति और उदारचूडामणि स्वरूपपर दृढ़ विश्वास करके [illegible]ना करनी चाहिये। 'भगवान् मेरी प्रत्येक प्रार्थनाको [illegible] ही नहीं रहे हैं, जितना मैं नहीं समझता, उतना उसके [illegible]को समझ भी रहे हैं। मेरी वास्तविक आवश्यकता और [illegible]वको वे भलीभाँति समझते-जानते हैं और अपनी सहज [illegible]ता एवं सुहृदताके द्वारा, जिसमें मेरा परिणाममें परमहित [illegible] है, वही करते हैं'—इस प्रकारका दृढ़ विश्वास रखकर [illegible]नी सहज भाषामें—या मन-ही-मन भगवान्को अपने [illegible]न्त समीप समझकर मूकभाषामें प्रार्थना करनी चाहिये। [illegible]वान् सब भाषाएँ समझते हैं, सहज प्रार्थनाके लिये किसी [illegible]क प्रकारके शब्दोंकी आवश्यकता नहीं है। और यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि भगवान् मेरी निर्दोष प्रार्थनाको अवश्य पूर्ण करेंगे।

सांसारिक अभावकी पूर्ति, निर्दोष धन-मान आदिकी प्राप्ति, रोग-नाश, स्वास्थ्यलाभ, विपत्तिनिवारण आदिके लिये भी विश्वासपूर्वक प्रार्थना करनेपर निस्संदेह आश्चर्य-जनक फल प्राप्त होता है। पर ये सब प्रार्थनाएँ ऐसी ही हैं, जैसे प्रकाशपुञ्ज सूर्यसे जुगनूका प्रकाश चाहना, अनन्त वैभवशाली उदार सम्राट्से कौड़ी माँगना। अनित्य और अपूर्ण वस्तु या स्थितिविशेषकी प्राप्तिके लिये भगवान्से प्रार्थना करना कदापि बुद्धिमानी नहीं है। यह एक प्रकारका लड़कपन है, अतः इससे भगवान् अप्रसन्न नहीं होते। और यों सकाम भावनासे—आर्तिनाश, अर्थप्राप्ति आदिके लिये भी अनन्यभावसे केवल भगवान्से ही प्रार्थना करते रहनेपर भगवान् अपने सहज दयालु शील-स्वभाववश उसकी सकामता-का हरण करके अन्तमें उसे अपनी निष्काम भक्ति देकर अपना

प्राप्ति करा देते हैं—कैसे भी भजे, भगवान्‌को भजनेवाला अन्तमें भगवान्‌को पा जाता है—'मद्भक्ता यान्ति मामपि ।'

ऐसी कोई प्रार्थना कभी नहीं करनी चाहिये, जिससे किसी भी दूसरे प्राणीका किसी प्रकारका भी तनिक भी अहित होता हो। हमारी दृष्टिमें अविद्याजनित अहंता-ममता-वश अपना-पराया है; भगवान्‌की दृष्टिमें सभी उनके स्वरूप हैं या उन्हींके अङ्ग हैं। हम किसीके स्वरूप या अङ्गका अहित उसीसे चाहेंगे तो वह कैसे प्रसन्न होगा। भगवान्‌के शरीरका एक अङ्ग हम यदि कहें—'हे भगवन्! तुम्हारा अमुक अङ्ग मुझे नहीं सुहाता, उसे दण्ड दीजिये, काट डालिये, तो क्या वे इसपर प्रसन्न होंगे? किसी स्नेहमयी माँसे उसका एक कोई पुत्र कहे कि 'माँ, मेरे अमुक भाई या बहिन अच्छे नहीं हैं, तुम उन्हें मारो'—तो क्या माँ प्रसन्न होंगी? अपने ही अङ्ग या अपनी संतानको कौन दण्ड देना चाहेगा? हाँ, माँसे यह प्रार्थना करना अवश्य ही श्रेष्ठ है कि 'माँ! मेरे अमुक भाई-बहिन ठीक बर्ताव नहीं करते, अतएव तुम उनकी बुद्धि शुद्ध कर दो, उनमें सुधार कर दो, जिससे उनके द्वारा बुरा बर्ताव न हो, वे सबके साथ प्रेमका बर्ताव करें। अथवा, यदि उनका बर्ताव ठीक ही हो और मुझे ही अपनी दूषित वृत्ति या दृष्टिसे उनमें दोष दीखता हो, तो स्नेहमयी माँ! तुम मेरी दूषित वृत्ति या दृष्टिका नाश कर दो, जिससे मैं उनके दोष देखना छोड़ दूँ।'

प्रार्थनाके कुछ अच्छे रूप या भाव ये हैं—

१. भगवन्! आपका मङ्गलमय संकल्प पूर्ण हो।

२. भगवन्! आपकी मङ्गलमयी चाह पूर्ण हो। मेरे मनमें कोई चाह उत्पन्न ही न हो। हो तो आपकी चाहके अनुकूल हो। आपकी चाहके अतिरिक्त और कोई चाह कभी उत्पन्न ही न हो। कदाचित् आपकी चाहके प्रतिकूल कोई चाह उत्पन्न हो तो उसे कभी पूरा न करना।

३. भगवन्! समस्त चर-अचर प्राणियोंमें मैं सदा-सर्वदा आपके दर्शन कर सकूँ और आपकी दी हुई प्रत्येक सामग्रीसे और शक्तिसे यथासाध्य सबकी सेवा कर सकूँ।

४. भगवन्! अखिल विश्व-ब्रह्माण्डके मङ्गलमें ही मुझे अपना मङ्गल दिखायी दे। मेरे मनमें कोई भी ऐसी अपनी मङ्गल-कामना न हो, जो किसी भी प्राणीके मङ्गलसे विरुद्ध हो। मेरे प्रत्येक मङ्गलमें सबका मङ्गल समाया हो अथवा सबके मङ्गलमें मेरा मङ्गल भरा हो।

५. भगवन्! मेरा 'स्व' असीम रूपसे अखिल विश्वमें विस्तृत हो जाय। अखिल विश्वका 'स्वार्थ' ही मेरा 'स्वार्थ' हो। मेरा कोई भी स्वार्थ ऐसा न हो, जो अखिल विश्वके किसी भी प्राणीके स्वार्थका बाधक हो और साधक न हो।

६. भगवन्! मेरे जीवनका प्रत्येक श्वास तुम्हारी मङ्गलमयी स्मृतिमें सना रहे और मेरी प्रत्येक चेष्टा केवल तुम्हारी सेवाके लिये हो।

७. भगवन्! मेरे संकट-दुःखसे किसी भी दुखी संकट-ग्रस्त प्राणीका दुःख-संकट दूर होता हो तो मुझे बार-बार दुःख-संकट दिये जायँ और उन्हें प्रसन्नतापूर्वक वरण करनेकी शक्ति दी जाय। किसी भी प्राणीकी किसी प्रकारकी भी सेवा करनेका मुझे सौभाग्य और सुअवसर मिल जाय तो मैं अपनेको धन्य समझूँ और तुम्हारे दिये हुए प्रत्येक साधनसे तुम्हारी ही सेवाकी भावनासे उसकी सेवा करूँ; पर मनमें तनिक भी अभिमान न उत्पन्न हो, वरं यह अनुभूति हो कि तुमने अपनी ही वस्तु स्वीकार करके मुझपर बड़ा अनुग्रह किया।

८. भगवन्! तुम्हारे विशुद्ध प्रेमके अतिरिक्त मेरे मनमें अन्य किसी वस्तु अथवा स्थितिको प्राप्त करनेकी कभी कामना ही न उत्पन्न हो और मैं तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु अथवा प्राणीमें कभी आसक्त न होऊँ।

९. भगवन्! मेरे जीवनमें केवल तुमको प्रसन्न करनेवाले भाव, विचार और कार्योंका ही समावेश हो। क्षणभरके लिये भी बुद्धि, चित्त, मन और इन्द्रियोंके द्वारा अन्य किसी भाव, विचार और क्रियाकी सम्भावना ही न रहे।

१०. भगवन्! मेरा मन नित्य-निरन्तर तुम्हारे मधुर मनोहर स्वरूप, लीला, गुण और नामके ध्यान-चिन्तनमें ही लगा रहे। वाणी निरन्तर तुम्हारे नाम-गुणोंका गान करती रहे और शरीरसे होनेवाली प्रत्येक क्रियाके द्वारा केवल तुम्हारी ही सेवा हो।

११. भगवन्! मैं केवल यन्त्रकी भाँति काम करता रहूँ। कहीं भी, किसी भी अवस्थामें, किसी प्रकार भी अहंता, ममता और आसक्ति न उत्पन्न हो जाय।

१२. भगवन्! मेरे जीवनमें सारी आभ्यन्तरिक और

बाह्य चेष्टाएँ केवल तुम्हारी संतुष्टिके लिये ही तथा तुम्हारी इच्छाके अनुकूल ही हों ।

१३. भगवन्! स्वास्थ्य, धन-सम्पत्ति, पद-अधिकार, यश, कीर्ति, परिवार, संतान, लोक, परलोक आदि किसी भी वस्तु या स्थितिमें मेरा ममत्व कभी न जागे । कोई भी वस्तु मिली हुई हो तो उसे तुम्हारी समझकर उसकी एक ईमानदार और विश्वासी सेवक या स्वामीके द्वारा नियुक्त व्यवस्थापककी भाँति देख-रेख करूँ और तुम्हारे इच्छानुसार तुम्हारी सेवामें ही उसका उपयोग करूँ, अपनी समझकर दान नहीं । और इन सबके संचय-संग्रहमें मोहवश कभी भी तुम्हारी और तुम्हारे तत्त्वज्ञ ऋषि-मुनियोंकी शास्त्र-वाणीसे विरुद्ध कोई विचार या क्रिया कभी न हो ।

१४. भगवन्! किसी भी वस्तुका उपार्जन और संरक्षण केवल तुम्हारी सेवाके लिये ही हो, भोगके लिये कदापि नहीं । तुम्हारे प्रसादरूपमें मैं अपने लिये उतनी ही वस्तुका उपयोग करूँ, जो जीवन-निर्वाहके लिये न्यून-से-न्यून रूपमें आवश्यक हो ।

१५. भगवन्! किसी भी वस्तुपर मैं कभी अपना अधिकार न मानूँ । तुम्हारी दी हुई वस्तुको तुम्हारे आज्ञानुसार तुम्हारी सेवामें लगानेके लिये ही उसकी देख-भाल करता रहूँ और निरभिमान रहकर उसे तुम्हारी सेवामें यथायोग्य लगाता रहूँ ।

१६. भगवन्! तुम्हारे प्रेमी भक्तोंमें, तुम्हारे तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानियोंमें, तुम्हारी प्राप्तिके लिये निष्काम-भावसे कर्म करनेवालोंमें, तुम्हारी प्रसन्नताके लिये योग-साधना करनेवालोंमें और प्रेमपूर्वक तुम्हारा नाम-गुण-गान करनेवाले भावुकोंमें मेरी श्रद्धा-भक्ति बनी रहे और यथासाध्य उनकी विनम्र सेवा करनेका अवसर मिले तो मैं अपनेको धन्य समझूँ । उनके चरणोंमें सदा मेरा विनीत भाव और पूज्यभाव बना रहे ।

१७. भगवन्! जगत्के सभी स्वरूपोंमें और सभी परिवर्तनोंमें निरन्तर तुम्हारी लीलाके दर्शन हों । अनुकूलता और प्रतिकूलताजनित सुख-दुःखकी कल्पना ही न उठे और लीला-दर्शन-जनित आनन्दमें नित्य मुग्ध बना रहूँ, सारे द्वन्द्वोंको तुम्हारी लीला आत्मसात् कर ले । प्रसूति-गृहकी मङ्गलमयी दीप-शिखामें और चिताकी अग्नि-ज्वालामें समान भावसे तुम्हारी लीलाके मङ्गलमय दर्शन हों ।

१८. भगवन्! कामना, वासना, लालसा, इच्छा, स्पृहा, अपेक्षा, अभिलाषा आदि सब केवल तुम्हारे मधुर मञ्जुल चरणयुगलोंकी अनन्य प्रीतिमें ही नियुक्त रहें, किसी भी अन्य विषयकी ओर कभी जायँ ही नहीं, या इनके लिये तुम्हारे मङ्गलमय चरण-युगलोंको छोड़कर अन्य किसी व[स्तु] या स्थितिका अस्तित्व न रह जाय ।

१९. भगवन्! मुझे निरन्तर तुम्हारी संनिधिका अनु[भव] होता रहे, तुम्हारी संरक्षकताकी अनुभूति होती रहे, तुम्हारे दिव्य प्रेम, समता, अभय, तेज, बल, शक्ति, सा[हस] और धैर्य आदि दिव्य गुणोंका प्रकाश आपकी कृपा[से] निरन्तर बना रहे ।

२०. भगवन्! मनमें किसीके लिये भी न क[भी] अमङ्गलकामना जगे, न मेरे द्वारा किसीका अमङ्गल ह[ो,] न किसीके अमङ्गलसे मेरे मनमें कभी प्रसन्नता हो । दूसरों[के] दुःखोंको कभी मैं अपने लिये सुख न मान सकूँ और मे[रे] सुख दूसरोंके दुःखोंका स्थान लेते रहें ।

२१. भगवन्! जीवनमें मुझे अपने पूर्व-कर्मवश ज[ो] कुछ भी दुःख-संकट-विपत्ति प्राप्त हों, उनमें सदा-सर्वदा [मैं] तुम्हारा मङ्गलमय स्पर्श प्राप्त करके सुखी रहूँ औ[र] प्रत्येक परिस्थितिमें मन तुम्हारा कृतज्ञ बना रहे ।

२२. भगवन्! मैं जगत्को सदा सर्वथा तुम्हारे सौन्दर्य माधुर्यसे भरा देखूँ; सूर्यकी प्रखर किरणोंमें तुम्हारा प्रकाश चन्द्रमाकी शीतल ज्योत्स्नामें तुम्हारी सुधामयी आभा, प्रस्फुटि[त] पुष्पोंकी मधुर सुगन्धमें तुम्हारा अङ्ग-सौरभ, और शिशुक[ी] मृदु मधुर हँसीमें तुम्हारी मुस्कराहट देखकर प्रसन्न-प्रमुदि[त] होता रहूँ ।

२३. भगवन्! इसी प्रकार रोगकी दारुण पीड़ामें, वियोगकी विषम वेदनामें, विपत्तिकी काली घटामें, संहारक[ी] विषम भयंकर आँधीमें और कालके कराल मुखमें तुम्हारी ह[ी] लीलामाधुरीके दर्शनकर नित्य निर्भय और प्रसन्न रहूँ । एवं तुम्हारी लीलाचातुरी देख-देखकर मुग्ध होता रहूँ ।

२४. भगवन्! किसी दूसरे व्यक्तिके द्वारा मुझपर दुःख-संकट या विपत्ति आती दिखायी दे तो मैं उसे निश्चितरूपसे यही समझूँ और यही अनुभव करूँ कि निश्चय ही यह मेरे अपने ही किये हुए पूर्वकृत कर्मोंका फल है, जिसका तुम्हारी मङ्गलमयी कृपा-शक्तिके द्वारा मुझे शुद्ध बना देनेके लिये निर्माण हुआ है । वह दूसरा भाई तो निमित्तमात्र है । भगवन्! तुम उसे क्षमा करो और वह इस 'निमित्त' बननेके कारण परिणाममें दुःखको न प्राप्त हो ।

प्रार्थना-षोडशी

[सोलह प्रार्थना]

(१)

मेरी निपट नीचता और तुम्हारी अपार दया

तुमने दिया सदा ही मुझको, अपना प्यार-दुलार महान।
मैंने सिर न चढ़ाया उसको, किया निरन्तर ही अपमान॥
मैं कृतघ्न अति, नीच नराधम, सभी भाँति अति हीन मलीन।
दीनबन्धुने दोष न देखे, अपना किया जान जन दीन॥
जैसे स्नेहमयी मा शिशुका मल धोती नहलाती आप।
स्नेहसिन्धु तुमने वैसे ही किया विशुद्ध, मिटा मल-ताप॥
मेरी निपट नीचता अतिशय, दया तुम्हारी अमित अपार।
सहज दयावश भस्म कर दिया तुमने मेरा अघ-सम्भार॥
चरण-शरण मिल गयी सदाको, छाया सुधानन्द सब ओर।
उदय हो गया प्रेम-सूर्य अब मिटा मोह-माया-तम घोर॥

(२)

मेरी दुर्मति और तुम्हारी दया

आते हो तुम बार-बार प्रभु! मेरे मन मन्दिरके द्वार।
कहते—'खोलो द्वार मुझे तुम, ले लो अंदर करके प्यार'॥
मैं चुप रह जाता, न बोलता, नहीं खोलता हृदय-द्वार।
पुनः खटखटाकर दरवाजा करते बाहर मधुर पुकार॥
'खोल जरा-सा' कहकर यों—'मैं अभी काममें हूँ, सरकार!
फिर आना'—झटपट मैं घरके कर लेता हूँ बंद किंवार॥
फिर आते, फिर मैं लौटाता, चलता यही सदा व्यवहार।
पर करुणामय! तुम न ऊबते, तिरस्कार सहते हर बार॥
दयासिन्धु! मेरी यह दुर्मति हर लो, करो बड़ा उपकार।
नीच-अधम मैं अमृत छोड़, पीता हालाहल बारंबार॥
अपने सहज दयालु विरदवश, करो नाथ! मेरा उद्धार।
प्रबल मोहधारामें बहते नरपशुको लो तुरत उबार॥

(३)

परम उदार प्रभुसे विश्वास-दानके लिये प्रार्थना

बिना याचनाके ही देते रहते नित्य शक्ति तुम नाथ!
करते सदा सँभाल, छिपे तुम अविरत रहते मेरे साथ॥
देते तुम निर्भयता, नित्य निरामयता, निज आश्रय दान।
देते शुभ विचार, शुभ चिन्तन, शुभ जीवन, शुभ कर्म महान॥
देते प्रेम प्रेमसागर! तुम, देते स्वार्थ हीन अनुराग।
देते सुख शाश्वत आत्यन्तिक, मिटा सभी दुःखोंके दाग॥
एक चाहते, इन सबके बदलेमें तुम—'अविचल विश्वास।'
पर मैं हीन उसीसे, तब भी होता नहीं कदापि निराश॥
तुम्हीं मुझे विश्वास-दान दो, तुम्हीं करो मेरा उद्धार।
ख्यात पतित-पावन, पामर-प्रेमी तुम हे प्रभु! परम उदार॥

(४)

मेरे सब कुछ तुम्हीं बन जाओ

बन जाओ तुम मेरे सब कुछ जप-तप, ध्यान, ज्ञान-विज्ञान।
बन जाओ तुम मेरे साधन-साध्य, यज्ञ-व्रत, संयम-दान॥
बन जाओ तुम मेरे शम, दम, श्रद्धा, समाधान, शुचि योग।
बन जाओ तुम मेरे मन-मति, अहंकार, इन्द्रिय, सब भोग॥
बन जाओ तुम मेरे प्राणोंके रहस्य, जीवनके मर्म।
बन जाओ तुम मेरे वस्त्राभूषण, खान-पान, गृह-धर्म॥
स्पर्श तुम्हारा मिले सर्वदा सबमें सभी ठौर अविराम।
मेरे तुम हो, मेरे तुम हो, सभी भाँति हे प्राणाराम!॥

(५)

परहित ही मेरा हित हो

प्रभो! मिटा दो मेरा सारा सभी तरहका मद-अभिमान।
झुक जाये सिर प्राणिमात्रके चरणोंमें, तुमको पहिचान॥
आचण्डाल, शृगाल, स्वान भी हों मेरे आदरके पात्र।
सबमें सदा देख पाऊँ मैं मृदु मुसकाते तुमको मात्र॥
सबका सुख-सम्मान परम हित ही हो, मेरी केवल चाह।
भूलूँ अपनेको सब विधि मैं, रहे न तनकी सुधि, परवाह॥
पूजूँ सदा सभीमें तुमको यथायोग्य कर सेवा-मान।
बढ़ती रहे वृत्ति सेवाकी, बढ़ती रहे शक्ति निर्मान॥
परका दुःख बने मेरा दुख, सुखपर हो परका अधिकार।
बन जाये निज हित पर-हित ही, सुखकी हो अनुभूति अपार॥
आर्त प्राणियोंको दे पाऊँ सदा सान्त्वना सुखका दान।
उनके दुःखनाशमें कर पाऊँ मैं समुद आत्मबलिदान॥

(६)

सब छीनकर तुमने बहुत भला किया

भला किया प्रभु! तुमने मुझको देकर कटु औषधका दान।
भला किया तन चीर निकाला अंदरका मवाद भगवान॥
भला किया जो छीना तुमने मीठा जहर भोगका घोर।
भला किया जो दिया अभावोंका पूरा समूह सब ओर॥

भला किया जो छीन मान-विष, दिया सुधासुंदर अपमान ।
भला किया जो छुड़ा दिया दुस्संग भोगियोंका अवखान ॥
मिटा मोह, मद हटा, घटा अब विषयोंका दुःखद व्यामोह ।
बड़ी कृपा की कृपासिंधु ! तुमने हरि ! चिदानंद-संदोह ॥
करुणा कर निकाल नरकोंसे दिया पदाश्रय शुचि सुखमूल ।
सहज अहैतुक सुहृद ! मिटा दी मेरी मोहजनित सब भूल ॥
भोगवासना कभी न उपजे, कभी न जागे ममता-राग ।
छूटे नहीं चरण-आश्रय अब, बढ़ता रहे शुद्ध अनुराग ॥

(७)

सब कुछ तुम्हीं हो

बाहर-भीतर तुम ही मेरे, ऊपर-नीचे तुम सब ओर ।
कण-कणमें तुम भरे हुए हो नित्य-निरंतर सब ही ठौर ॥
श्वासोंके तुम श्वास, हृदय हृदयोंके, चित्तोंके तुम चित्त ।
बुद्धि बुद्धियोंके, प्राणोंके प्राण, सर्व वित्तोंके वित्त ॥
जीवनके जीवन हो तुम ही, सत्ताओंकी सत्ता एक ।
सर्वरूप तुम छाये सबमें, एक बने तुम नित्य अनेक ॥
सभी दिशाओंके, देशोंके, सभी काल-गुणके आधार ।
प्राणिमात्र जड-चेतन, अग-जग, सभी तुम्हारे ही आकार ॥
जबतक तुम्हें देखना इच्छित, इस निजांशका पृथक् विकास ।
तबतक दीखो देखो अपनेमें ही अपना विमल विलास ॥

(८)

सभी इन्द्रियोंसे तुम्हारा स्पर्श प्राप्त हो

करुणामय ! उदार-चूड़ामणि ! प्रभु ! मुझको यह दो वरदान ।
देखूँ तुम्हें समीमें, सभी अवस्थाओंमें हे भगवान ॥
शब्द मात्रमें सुन पाऊँ मैं नित्य तुम्हारा ही गुणगान ।
वाणीसे गाऊँ मैं गुणगण, नाम तुम्हारे ही रसखान ॥
इन्द्रिय सभी सदा पुलकित हों पाकर मधुर तुम्हारा स्पर्श ।
कर्म नित्य सब करें तुम्हारी ही सेवा, पावें उत्कर्ष ॥
बुद्धि, चित्त, मन रहें सदा ही एक तुम्हारी स्मृतिमें लीन ।
कभी न हो पाये विचार, संकल्प, मनन प्रभु ! तुमसे हीन ॥
सदा तुम्हारी ही सेवामें सब कुछ रहें सदा संलग्न ।
यही प्रार्थना, रहूँ तुम्हारे पद-रति-रसमें नित्य निमग्न ॥

(९)

सभी परम सुख-शान्ति प्राप्त करें

सबमें सब देखें निज आत्मा, सबमें सब देखें भगवान ।
सब ही सबका सुख-हित देखें, सबका सब चाहें कल्याण ॥
एक दूसरेके हितमें सब करें परस्पर निज-हित त्याग ।
रक्षा करें पराधिकारकी, छोड़ें स्वाधिकारकी माँग ॥
निकल संकुचित सीमासे 'स्व', करे विश्वमें निज विस्तार ।
अखिल विश्वके हितमें ही हो 'स्वार्थ' शब्दका शुभ संचार ॥
द्वेष-वैर-हिंसा विनष्ट हों, मिटें सभी मिथ्या अभिमान ।
त्यागभूमिपर शुद्ध प्रेमका करें सभी आदान-प्रदान ॥
आधि-व्याधिसे सभी मुक्त हों, पायें सभी परम सुख-शान्ति ।
भगवद्भाव उदय हो सबमें, मिटे भोग-सुखकी विभ्रान्ति ॥
परम दयामय ! परम प्रेममय ! यही प्रार्थना बारंबार ।
पायें सभी तुम्हारा दुर्लभ चरणाश्रय, हे परम उदार ! ॥

(१०)

तुम मेरे हृदयको छेककर उसमें बसे रहो

केवल तुम्हें पुकारूँ प्रियतम देखूँ एक तुम्हारी ओर ।
अर्पण कर निजको चरणोंमें, बैठूँ हो निश्चिन्त, विभोर ॥
प्रभो ! एक बस, तुम ही मेरे हो सर्वस्व सर्वसुखसार ।
प्राणोंके तुम प्राण, आत्माके आत्मा आधेयाऽऽधार ॥
भला-बुरा, सुख-दुःख, शुभाशुभ मैं न जानता कुछ भी नाथ !
जानो तुम्हीं, करो तुम सब ही, रहो निरन्तर मेरे साथ ॥
भूलूँ नहीं कभी तुमको मैं, स्मृति ही हो बस, जीवनसार ।
आयें नहीं चित्त-मन-मतिमें कभी दूसरे भाव-विचार ॥
एकमात्र तुम बसे रहो नित सारे हृदय-देशको छेक ।
एक प्रार्थना इह-परमें तुम बने रहो नित सङ्गी एक ॥

(११)

परदुःख हरण करके, उसे मैं वरण करूँ

अणु-महान तुम ! अणु-महानमें भरे पूर्ण महत भगवान ।
अमित विभिन्न नाम-रूपोंमें व्यक्त तुम्हीं अव्यक्त समान ॥
देखूँ सदा तुम्हींको सबमें, करूँ सभीका मैं सम्मान ।
विनय-विनम्र हृदयसे सबको करूँ प्रणाम बिना अभिमान ॥
स्वसुख-दुःखमें सम देखूँ मैं तुम्हें, तुम्हारा या वरदान ।
सुखमय, नित निर्द्वन्द्व बनूँ मैं, रहे न मन कुछ भी अरमान ॥
पर पर-दुःख दुखी हो, पर-सुख-हेतु करूँ निज सुखका दान ।
हरण करूँ पर-दुःख, वरण मैं करूँ उसे मन मोद महान ॥
सबके हित-सुखमें ही समझूँ अपना हित-सुख परम अमान ।
समझूँ अति सौभाग्य, करूँ मैं नहीं कभी भी कुछ अहसान ॥

(१२)

स्वसुख-वासना कभी न जाग पाये

स्व-सुख-वासना-गन्ध-लेशकी भी न कल्पना पाये जाग ।
सर्वत्यागमय कृष्णसुखेच्छापूर्ण उदय हो शुचि अनुराग ॥
भुक्ति-मुक्तिमें रहे न अणु भर राग-कामना-ममता-लेश ।
पावन प्रेम-अनलमें सब कुछ जलकर हो जायें निःशेष ॥
सर्वसमर्पण रहे, रहे पर नहीं समर्पणकी कुछ याद ।
प्रियतम-सुख जीवन हो, जाग्रत् रहे नित्य नवरस-उन्माद ॥
बने लोक-परलोक सभी कुछ प्रिय-सुख-लीला-रङ्गस्थान ।
'बन्धन-मोक्ष' मुक्त हों, लीला-साधन बन पायें सम्मान ॥
विरह-मिलन दोनोंमें रति-रस-सागर प्रतिपल बढ़े अपार ।
थाह न पायें परमहंस योगी, ऋषि-मुनि मन मानें हार ॥

(१३)

प्रेमरस-सागर—प्रेमभिखारी

कहाँ तुच्छ सब, कहाँ महत् तुम, पर यह कैसा अनुपम भाव !
बने प्रेमके भूखे, सबसे प्रेम चाहते करते चाव ॥
धन देते, यश देते, देते ज्ञान-शक्ति-बल, देते मान ।
'किसी तरह सब तुम्हें प्रेम दें', इसीलिये सब करते दान ॥
लेते छीन सभी कुछ, देते घृणा-विपत्ति, अयश-अपमान ।
करते निष्ठुर चोट, 'चाहते तुम्हें प्रेम सब दें' भगवान ! ॥
सभी ईश्वरोंके ईश्वर तुम बने विलक्षण भिक्षु महान ।
उच्च-नीच सबसे ही तुम नित प्रेम चाहते प्रेमनिधान ॥
अनुपम, अतुल, अनोखी कैसी अजब तुम्हारी है यह चाह !
रस-समुद्र रसके प्यासे बन, रस लेते मन भर उत्साह ॥
रस उँड़ेल, रस भर, तुम करते स्वयं उसी रसका मधु पान ।
धन्य तुम्हारी रसलिप्सा यह, धन्य तुम्हारा रस-विज्ञान ॥
यही प्रार्थना, प्रेम-भिखारी ! प्रेम-रसार्णव ! तुमसे आज ।
दान-पानकी मधुमय लीला करते रहो, रसिक रसराज ! ॥

(१४)

शक्ति देकर यन्त्ररूपमें अङ्गीकार कीजिये

मेरी शक्ति थक गयी सारी, उद्यम-बलने मानी हार ।
हुआ चूर पुरुषार्थ-गर्व सब, निकली बरबस करुण पुकार ॥
शक्तिमान हे ! शक्ति-स्रोत हे ! करुणानय ! हे परम उदार !
शक्तिदान दे कर लो मुझको यन्त्ररूपमें अङ्गीकार ।
हरो सभी, तम तुरत सूर्य-सम करो दिव्य आभा विस्तार ।
जो चाहो, करो, नित्य निरशङ्क निजेच्छाके अनुसार ॥
कहीं डुबा रक्खो कैसे ही, अथवा ले जाओ उस पार ।
अथवा मध्य-हिंडोलेपर ही, रक्खो झुलाते बारंबार ॥
भोग्य बना भोक्ता बन जाओ, भर्ता बनो भले रखवार ।
बचे न 'ननु-नच' कहनेवाला मिटे अहंके क्षुद्र विकार ॥
कौन प्रार्थना करे किस तरह किसको फिर, हे सर्वाधार !
सर्व बने तुम अपनेमें ही करो सदा स्वच्छन्द विहार ॥

(१५)

लीलामय ! तुम्हारी लीलाका नित्य उपकरण बनूँ

बनूँ तुम्हारे शयन-कक्षका पलँग, बिछौना मैं कोमल ।
बनूँ तुम्हारे सुख-स्पर्शका मन्द-सुगन्ध पवन शीतल ॥
बनूँ तुम्हारे स्नान-जलाशयका मैं शीतल जल निर्मल ।
बनूँ तुम्हारे धारण करनेका मैं पीत-वस्त्र उज्ज्वल ॥
बनूँ तुम्हारी मालाका मैं सुन्दर सुरभित सुमन परम ।
बनूँ तुम्हारा कण्ठहार मैं, रहूँ झूलता सुन्दरतम ॥
बनूँ तुम्हारे भोजनका मैं रुचिकर मधुर स्वाद रसमय ।
बनूँ तुम्हारी लीलाका मैं नित्य उपकरण लीलामय ॥

(१६)

कोई भी चाह मेरे मनमें न उठे

जो चाहो तुम, जैसे चाहो, करो वही तुम, उसी प्रकार ।
बरतो नित निर्बाध सदा तुम मुझको अपने मन-अनुसार ॥
मुझे नहीं हो कभी, किसी भी, तनिक दुःख-सुखका कुछ भान ।
सदा परम सुख मिले, तुम्हारे मनकी सारी होती जान ॥
भला-बुरा सब भला सदा ही; जो तुम सोचो, करो विधान ।
वही उच्चतम, मधुर-मनोहर, हितकर परम तुम्हारा दान ॥
कभी न मनमें उठे, किसी भी भाँति, कहीं कैसी भी चाह ।
उठे कदाचित् तो प्रभु उसे न करना पूरी, कर परवाह ॥
प्यारे ! यही प्रार्थना मेरी, यही नित्य चरणोंमें माँग—
मिटे सभी 'मैं-मेरा', बढ़ता रहे सतत अनन्य अनुराग ॥

स्तुति-प्रार्थना

(रचयिता—पं० श्रीउमापतिजी शर्मा द्विवेदी 'कविपति')

१—(भगवान् श्रीकृष्णकी)

पित्रापि मेऽगम्यतमप्रभावे
भवत्यसावप्यसती मदुक्तिः।
किं जातपक्षाऽपि हरे कदाचित्
पिपीलिका चुम्बति चन्द्रबिम्बम्॥

(नारदजी भगवान् श्रीकृष्णसे कहते हैं—) हरे! आपका प्रभाव मेरे पिता—ब्रह्माजीके लिये भी अगम्य है—उसे जान पाना उनके लिये भी कठिन ही नहीं, असम्भव है। ऐसे अगम्य प्रभावशाली आप परमेश्वरके विषयमें मैंने जो कुछ कहा है, जो भी स्तुति करनेकी धृष्टता की है, वह मेरी उक्ति क्या कभी सती—श्रेष्ठ या समुचित हो सकती है? नहीं-नहीं, उसमें आपके गुण-वर्णनकी क्षमता कहाँ है? वह तो सर्वथा असमर्थ होनेके कारण असती है—असाधु या अनुचित है। क्या चींटीके पाँख निकल आनेपर भी वह कभी चन्द्रमण्डलका चुम्बन कर सकती है? कदापि नहीं। इसी तरह यह मेरी उक्ति आपके गुण-प्रभावका निरूपण कदापि नहीं कर सकती।

—स्वरचित 'पारिजात-हरण' नामक अभिनव महाकाव्यसे

२—(जगदम्बा शिवाकी)

अहो पारे वाचां त्वमसि यदतो मे स्तुतिमिमां
जगन्मय्या मातुः स्मरणमिति चाज्ञानसरणिम्।
दधत्या मामङ्के प्रणमनमथो मर्षय शिवे
गुणो वा दोषो वा तव कृतकशक्तेर्विलसितम्॥

'मा शिवे! तुम जगन्मयी हो—सम्पूर्ण जगत् तुम्हारा ही स्वरूप है। तुम्हीं सबकी जननी हो—माता हो। तुम वाणीसे परे हो—तुमतक वाणीकी पहुँच ही नहीं है; तो भी कितने आश्चर्यकी बात है कि मैं तुम्हारी स्तुति करने चला हूँ, तुम्हारी यह स्तुति मैंने रच भी डाली है। इसीको मैं तुम्हारा स्मरण मानता हूँ। मेरी यह अज्ञान-सरणि तो देखो, तुम मुझे गोदमें लिये बैठी हो और मैं तुम्हें अपनेसे अलग मानकर प्रणाम करता हूँ। यह सब अपराध नहीं तो क्या है? मा! मेरे इस अपराधको क्षमा कर दो। मेरा यह प्रयास, यह बालचापल्य गुण हो या दोष, तुम्हारी रची हुई शक्तिका ही विलास है।

—स्वरचित 'शिवास्तुति'से

'श्रीकृष्णः शरणं मम'

(संकलयिता और प्रेषक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश' साहित्यरत्न)

सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वतः।
पापपीनस्य दीनस्य श्रीकृष्णः शरणं मम॥

मैं समस्त साधनोंसे हीन, सब ओरसे पराधीन तथा पापोंसे पीन (पुष्ट) हूँ। मुझ दीनके लिये श्रीकृष्ण ही शरण (आश्रयदाता) हैं।

संसारसुखसम्प्राप्तिसम्मुखस्य विशेषतः।
बहिर्मुखस्य सततं श्रीकृष्णः शरणं मम॥

मैं सांसारिक सुखकी प्राप्तिके सम्मुख रहता हूँ—उधर ही मेरा झुकाव है और उसीके लिये मैं सदा यत्नशील रहता हूँ। अतएव अन्तर्मुख न होकर विशेषतः बहिर्मुख हो गया हूँ। ऐसी दुरवस्थामें पड़े हुए मुझ दीनके लिये सदा श्रीकृष्ण ही शरण हैं।

सदा विषयकामस्य देहारामस्य सर्वथा।
दुष्टस्वभाववामस्य श्रीकृष्णः शरणं मम॥

जिसके मनमें सदा विषयोंकी ही कामना बनी रहती है, जो सर्वथा शरीरको ही आराम देने या सुख पहुँचानेमें लगा हुआ है तथा जो अपने दुष्ट स्वभावके कारण सबसे टेढ़ा ही रहता है—ऐसे मुझ दीनके लिये श्रीकृष्ण ही शरण हैं।

संसारसर्पदष्टस्य धर्मभ्रष्टस्य दुर्मतेः।
लौकिकप्राप्तिकष्टस्य श्रीकृष्णः शरणं मम॥

जिसे संसाररूपी सर्पने डस लिया है, जो अपने धर्मसे भ्रष्ट हो चुका है, जिसकी बुद्धि खोटी है तथा जो लौकिक सुखकी प्राप्तिके लिये ही क्लेश उठाता रहता है, उस मुझ दीनके लिये श्रीकृष्ण ही शरण हैं।

विस्मृतस्वीयधर्मस्य कर्ममोहितचेतसः ।
स्वरूपज्ञानशून्यस्य श्रीकृष्णः शरणं मम ॥

जिसने अपने धर्मको भुला दिया है, जिसका चित्त कर्म-विषयक आसक्तिसे मोहित हो रहा है तथा जो स्वरूप-ज्ञानसे सर्वथा शून्य है, ऐसे मुझ दीनके लिये श्रीकृष्ण ही शरण हैं ।

संसारसिन्धुमग्नस्य भग्नभावस्य दुर्मतेः ।
दुर्भावलग्नमनसः श्रीकृष्णः शरणं मम ॥

जो संसाररूपी समुद्रमें डूबा हुआ है, जिसके सद्भाव नष्ट हो चुके हैं, जिसकी बुद्धि दूषित है और मन दुर्भावमें लगा हुआ है, ऐसे मुझ दीनके लिये श्रीकृष्ण ही शरण हैं ।

विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य निरन्तरम् ।
विरुद्धकरणासक्तेः श्रीकृष्णः शरणं मम ॥

मुझमें विवेक, धैर्य और भक्ति आदिका निरन्तर अभाव है । शास्त्रविरुद्ध कर्म करनेमें मेरी आसक्ति बनी हुई है । अब तो मुझ दीनके लिये श्रीकृष्ण ही शरण हैं ।

विषयाक्रान्तदेहस्य वैमुख्यहृतसन्मतेः ।
इन्द्रियाश्वगृहीतस्य श्रीकृष्णः शरणं मम ॥

जिसका शरीर विषय-भोगोंसे आक्रान्त है, भगवद्-विमुखताने जिसकी सद्बुद्धिको हर लिया है तथा जो इन्द्रियरूपी घोड़ोंसे अभिभूत हो गया है, ऐसे मुझ दीनके लिये श्रीकृष्ण ही शरण हैं ।

एतदष्टकपाठेन ह्येतदुक्तार्थभावनात् ।
निजाचार्यपदाम्भोजसेवको दैन्यमाप्नुयात् ॥

अपने आचार्यके चरण-कमलोंकी सेवामें लगा हुआ पुरुष इन आठ श्लोकोंके पाठ और इनमें कहे गये अर्थकी भावना करनेसे दैन्यको (जो भगवान्को रिझानेवाला सद्गुण है) प्राप्त होता है ।

इति श्रीहरिदासविरचितं श्रीकृष्णशरणाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

इस प्रकार श्रीहरिदासद्वारा रचित श्रीकृष्णशरणाष्टक पूरा हुआ ।

प्रार्थना

(रचयिता—प्राचार्य श्रीजयनारायण मल्लिक, एम्० ए० (द्वय), स्वर्णपदक-प्राप्त, डिप्० एड्०, साहित्याचार्य, साहित्यालंकार)

(१)

चलते-चलते कर्ममार्गमें
नाथ ! शिथिल मैं हो जाऊँ ।
भव-सागरकी तरल वीचिमें
पड़कर जब घबरा जाऊँ ॥

(२)

कृपाशील होकर तुम मुझको
गीता-ज्ञान बता देना ।
अपने चरण-कमलमें, स्वामी !
मेरा चित्त लगा देना ॥

(३)

ईर्ष्या-द्वेष नष्ट हो जाये,
हृदय प्रेमसे भर जाये ।
मन-मोहनकी सुन्दरतामें,
मेरा मानस मिल जाये ॥

(४)

जभी कामना मेरे अन्त-
स्तलमें शोर मचायेगी ।
उथल-पुथल जब हो जायेगी,
हृत्तन्त्री बज जायेगी ॥

(५)

प्रियतम ! मुझको तब तुम कृपया
वंशी-तान सुना देना ।
पाप-पङ्कसे मुझे बचाना,
अपनी झलक दिखा देना ॥

(६)

भगवत्सेवासे प्रक्षालित
हो जाये निर्मल संसार ।
पशुताके भग्नावशेषपर
मानवताकी जय-जयकार !!

प्रार्थना

मेरे नाथ ! यदि आप मुझे गिरी अवस्थामें देखना पसंद करते हों, इस प्रकारसे निरन्तर मेरे मनमें अशान्ति बनी रहने देनेमें ही आपका चित्त प्रसन्न होता हो, बार-बार मेरे सामने आप आते हैं और आपका मैं तिरस्कार कर देता हूँ—यदि इसी घृणित अवस्थामें मुझे रखकर आप प्रसन्नताका अनुभव करते हों तो फिर आपकी इच्छा पूर्ण हो, नाथ ! क्योंकि आप ऐसा चाहते हैं तो इसीमें मेरा मङ्गल है। पर यदि ये सब दोष मेरी कमीके कारण होते हैं; मेरी तत्परताकी कमीके कारण, मेरे अविश्वासके कारण होते हैं तो हे प्रभो ! अब बहुत हो चुका। नाथ ! अब कृपा करके अभी—इसी क्षण इन्हें मिटा दो। मैं अबोध हूँ, अज्ञानी हूँ, पतित हूँ; मुझे पता नहीं कि मेरे मनमें ये दोष किस कारणसे होते हैं। इनके मिटनेका जो उपाय सुनता हूँ—उसका आचरण भी मुझसे नहीं होता। क्यों नहीं होता, इसका कारण भी मैं नहीं जानता। अतएव हे दयाके सागर ! अब मेरी ओर निहारो और फिर जो उचित हो, करो। शान्ति यदि मेरी कमीके कारण मुझे नहीं मिल रही है तो फिर मेरी उस कमीको मिटा दो, इसी क्षण मिटा दो। और यदि आपकी इच्छासे शान्ति नहीं मिल रही है, तब तो मुझे कुछ कहना है ही नहीं। यह अशान्ति ही मेरा परम प्रिय धन है—मैं ऐसा अनुभव करने लगूँ; क्योंकि आप मेरे स्वामी हैं, आपका मुझपर पूर्ण अधिकार है। मैं आपकी वस्तु हूँ—आप जैसे रखना चाहो, वैसे ही रक्खो।

………शान्ति पानेके लिये यही सर्वोत्तम उपाय मैं जानता हूँ, करता हूँ। वही मैंने आपको भी बतला दिया।

—एक साधु

'मानव-सेवा-संघ'की नित्य प्रार्थना

(१)

मेरे नाथ ! आप अपनी सुधामयी, सर्वसमर्थ, पतितपावनी, अहैतुकी कृपासे दुखी प्राणियोंके हृदयमें त्यागका बल एवं सुखी प्राणियोंके हृदयमें सेवाका बल प्रदान करें, जिससे वे सुख-दुःखके बन्धनसे मुक्त हो, आपके पवित्र प्रेमका आस्वादन करके कृतकृत्य हो जायँ।

(२)

मेरे नाथ ! आप अपनी सुधामयी, सर्वसमर्थ, पतितपावनी, अहैतुकी कृपासे मानवमात्रको विवेकका आदर तथा बलका सदुपयोग करनेकी सामर्थ्य प्रदान करें एवं हे करुणासागर ! अपनी अपार करुणासे शीघ्र ही राग-द्वेषका नाश करें; सभीका जीवन सेवा, त्याग, प्रेमसे परिपूर्ण हो जाय।

प्रार्थना

[रूपान्तरकार—श्रीराजेन्द्रनाथजी मिश्र]

परमात्माकी प्रार्थनाके तीन रूप होते हैं।

फल-प्राप्तिकी आशासे की गयी आराधना व्यापारिक मनोवृत्तिकी सूचक होती है।

भयाक्रान्त प्रार्थना मानसिक दासताकी द्योतक है।

परंतु भगवान्‌के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करनेकी भावनासे की गयी प्रार्थना स्वतन्त्र मनोवृत्तिकी परिचायिका है।

यही प्रार्थनाका सुन्दरतम और सच्चा स्वरूप है। —हजरत इमाम अली

सच्ची बंदगी

इबादत करते हैं जो लोग जन्नतकी तमन्नामें, इबादत तो नहीं इक तरहकी वह तिजारत है।
मगर जब शुक्र नेमतमें जबाँ झुकती है बंदेकी, वह सच्ची बंदगी है इक शरीफाना इनायत है॥
—जोश मलीहाबादी

'प्राणी जब स्वर्गकी प्राप्तिकी आशासे प्रार्थना करता है तब वह प्रार्थना नहीं व्यापार करता है। परंतु प्रभुसे प्राप्त अनमोल पदार्थोंके प्रति धन्यवाद व्यक्त करनेके लिये जब वह नतमस्तक होता है तब वह सच्ची प्रार्थना और उस स्वामीके प्रति शिष्टजनोचित स्वामिभक्ति बन जाती है।'

रबियाका विश्वास और प्रार्थना

तुर्किस्थानके बसरा नगरमें रबियाका जन्म एक गरीब घरमें हुआ था। इनके बाल्यकालमें ही माता-पिताका देहान्त हो गया था। देशमें अकाल पड़ा। गुलामीकी प्रथा थी। एक व्यक्तिने बालिका रबियाको एक धनी व्यक्तिके हाथ बेच दिया। वहाँ रबियाको बहुत परिश्रम करना पड़ता था और ऊपरसे मार भी पड़ती थी। अपमान, दुःखसे पीड़ित रबिया एक दिन वहाँसे भाग निकली। मार्गमें गिरनेसे एक हाथ टूट गया। विपत्तिमें उसने ईश्वरको पुकारा। उस समय आकाशवाणीने उसे सान्त्वना दी। इससे वह फिर उसी मालिकके घर लौट आयी और सेवा-कार्य करने लगी।

एक दिन रात्रिमें रबिया सबके सो जानेपर एकान्तमें प्रार्थना कर रही थी—'प्रभु! मैं एकमात्र तेरी सेवामें ही जीवन लगाना चाहती हूँ; किंतु तूने तो मुझे पराधीन दासी बनाया है। इसलिये तेरी उपासनामें जो मुझसे कमी होती है, उसके लिये मुझे क्षमा कर।'

घरका मालिक जागता था। उसने रबियाकी प्रार्थना सुनी और उसके मुखपर अपूर्व तेज देखा। इसका उसके मनपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने दूसरे ही दिन रबियाको गुलामीसे छुटकारा दे दिया। रबिया वहाँसे चली गयी और उसने कठोर तपमें अपना जीवन लगाया। रबिया आजसे लगभग बारह सौ वर्ष पूर्व जीवित थी। उसके तप तथा भक्तिकी प्रसिद्धि बहुत हो गयी थी। दूर-दूरसे बड़े-बड़े फकीर उसका उपदेश सुनने आते थे।

रबियाकी प्रार्थना बड़ी महत्त्वपूर्ण है। वह प्रभुसे प्रार्थना करती है—'हे मालिक! इस लोकमें तूने मेरे लिये जो कुछ पुरस्कार निश्चित किया हो, वह तू अपने विरोधियोंको दे दे। इसी प्रकार परलोकमें मेरे लिये जो इनाम तूने तै किये हैं, वे अपने प्रेमियोंको दे दे। मेरे अपने लिये तो केवल एक तू ही पर्याप्त है। तेरे अतिरिक्त मैं और कुछ भी नहीं चाहती। यदि मैं दोज़ख (नरक) के डरसे तेरी आराधना करती होऊँ तो मुझे उसी दोज़खकी आगमें फेंक दे और यदि मैं बिहिश्त (स्वर्ग) के लोभसे तेरी सेवा करती होऊँ तो मेरे लिये बिहिश्तका दरवाजा सदाको बंद कर दे; किंतु यदि मैं तेरी प्राप्तिके लिये ही तेरी पूजा करती होऊँ तो अपने परम प्रकाशमय, पूर्ण पवित्र, निर्मल, निर्दोष, अपार सुन्दर स्वरूपके दर्शनसे मुझे वञ्चित मत करना।'

विश्वकविकी प्रार्थना

(श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कविता 'माई प्रेयर'का अनुवाद)

[प्रेषक—श्रीरामनाथजी 'सुमन']

मेरे स्वामी ! मेरी विनय है, मेरे हृदयकी निर्बलताओंको
ल करो ।
अपनी प्रसन्नताओं एवं दुःखोंको समभावसे
नेकी शक्ति दो ।
ने स्नेहको सेवामें परिवर्तित करनेकी शक्ति दो ।
असहायोंको न त्यागने और आसुरी शक्तियोंके
स न झुकनेकी शक्ति दो ।
क विषमताओंसे उठनेकी शक्ति दो ।
अपनी इच्छाओंके प्रति सप्रेम आत्मसमर्पणकी
क दो ।

× × × ×

मेरा हृदय शुष्क एवं उदासीन हो,
की वर्षासहित आओ ।

जब जीवनका सौन्दर्य समाप्त हो,
गीत बनकर आओ ।
जब सांसारिकताकी बाढ़ मुझे बंदी बना ले,
ओ मेरे मौनके स्वामी ! अपनी शान्ति और सुखके स
मुझे अभिभूत करो ।
जब मेरा दुर्बल हृदय कोलाहलसे
अस्तव्यस्त, अकर्मण्य हो जाय, मेरे कपाट खोल दो
मेरे सम्राट् ! आओ एक सम्राटकी भाँति ।
जब आशा मस्तिष्कको माया और भ्रमसे अंधा कर
ओ पावन ! जाग्रत् ! अपने प्रकाश एवं
मेघध्वनिके साथ आओ ।

(श्रीनरेश मिश्रजीद्वारा अंग्रेजीसे अनूदित)

प्रभुके द्वारपर

(मध्य एशियाके संत कवि जलालुद्दीन रूमीकी एक भावपूर्ण कविताका श्रीनरेश मिश्रजीद्वारा पद्यरूपान्तर)

मेरे दरपर कौन खड़ा है ? तेरा सेवक, तेरा दास ।

तीन प्रार्थनाएँ

(महान् ईसाई-संत फ्रांसिसद्वारा रचित)

[अनुवादक—श्रीरामनाथजी 'सुमन']

(१)

हे मेरे प्रभु ! मेरे लिये तू सम्पूर्ण उत्तमताकी खान है और तेरे साथ बोलनेका साहस करनेवाला मैं ! तेरा सबसे क्षुद्र और अकिंचन दास हूँ । मेरी क्षुद्रताका क्या ठिकाना !

मैं कुछ नहीं हूँ, मेरा अपना कुछ नहीं है और कुछ करनेकी भी मुझमें शक्ति नहीं है; किंतु हे प्रभु ! तुझे मेरी याद नहीं भूलती ।

इन सब असार वस्तुओंके बीच केवल तू ही उत्तम और पवित्र है, तू सभी कुछ करनेमें समर्थ है, तू सभी कुछ देता है, तू सभीमें परिपूर्ण हो रहा है; किंतु जो पापी है वह तेरे अमृतसे अपनेको वञ्चित कर लेता है ।

हे स्वामी ! मुझपर कृपा कर और अपनी विभूतियोंसे मेरा अन्तःकरण भर दे । यदि तू अपनी कृपा और प्रसादसे मुझे सबल नहीं बनायेगा तो यह दुःखार्त जीवन मैं किस प्रकार बिताऊँगा ?

हे स्वामी ! तू अपना मुँह मुझसे मत छिपा । दर्शनके बिना आँखें व्याकुल हैं, अब दर्शन देनेमें विलम्ब मत कर । अपनी सान्त्वनासे वञ्चित मत कर, अन्यथा मेरी आत्मा जल-शून्य प्यासी मरुभूमिकी तरह तड़पती रहेगी ।

हे प्रभु ! मैं तेरी इच्छाका अनुसरण कर सकूँ, ऐसी शक्ति मुझे दे । तेरी दृष्टिमें जो उपयुक्त और नम्र जीवन है, मैं अपना वैसा जीवन बना सकूँ—ऐसी बुद्धि दे । तू ही मेरा ज्ञान है, तू ही मुझको सबसे अधिक जानता है, जगत्में मेरा जन्म होनेके पहले एवं जगत्‌की सृष्टि होनेके पूर्व भी तू मुझे जानता रहा है ।

हे जीवन-स्वामी ! तेरे चरणोंमें मैं आत्म-समर्पण करता हूँ ।

(२)

हे मेरे ईश्वर ! मेरे सर्वस्व ! मैं तेरे सिवा और किसकी इच्छा करूँ ? और किस अधिक सुखकी आकाङ्क्षा करूँ ? हे नाथ ! तेरे साथ रहनेसे सब कुछ आनन्दमय हो जाता है और तेरे विरहमें सभी वस्तुएँ दुःखकर हो जाती हैं । तू ही मेरे अन्तःकरणकी स्थिरता है, तू ही मेरी महती शान्ति है । तेरे सिवा और किसी वस्तुसे अधिक समयतक संतोष नहीं मिल सकता और तेरी कृपाके बिना कोई वस्तु आनन्ददायक एवं सुस्वादु नहीं हो सकती ।

जिसने तेरी मधुरताका वास्तविक स्वाद पा लिया है, उसके लिये सब कुछ मधुमय है । जिसे तेरी मधुरताका स्वाद नहीं मिला उसे किसी वस्तुसे संतोष नहीं होता ।

जो सांसारिक विषयोंकी उपेक्षा एवं इन्द्रिय-दमनद्वारा तेरा अनुगमन करते हैं, वे ही सद्ज्ञान-लाभ करते हैं; क्योंकि वे असारतासे सत्य और शारीरिकतासे आत्मिकताकी ओर उठते हैं।

स्रष्टा और सृष्टिके माधुर्य-भोगमें, अनन्त और सान्तमें तथा ईश्वरप्रदत्त एवं कृत्रिम आलोकमें बड़ा अन्तर है ।

हे सम्पूर्ण सृष्टि-ज्योतियोंसे अतीत नित्य आलोक ! तू ऊपरसे अपनी प्रकाश-किरणोंकी वर्षा कर, जिससे मेरे हृदयके भीतरका समस्त प्रदेश आलोकित हो जाय । हे नाथ ! मेरी आत्मा और उसकी सम्पूर्ण क्षमताको पवित्र, उल्लसित, दीप्तिमय और जीवंत कर, जिससे मैं विशुद्ध आनन्दमें तुझमें ही आसक्त और निमग्न हो जाऊँ ।

अहा ! जिस समय तू मेरे पास रहकर मुझे तृप्त करते हुए मेरा सर्वस्व और सर्वेसर्वा हो जायगा, वह चिरवाञ्छित समय कब आयेगा ?

जबतक मुझपर यह अनुग्रह नहीं होता, तबतक पूर्ण आनन्द प्राप्त करना मेरे लिये असम्भव है ।

हाय ! अबतक पुरानी कुवासनाएँ मेरे अंदर जीवित हैं, पूर्णरूपसे उनका नाश नहीं हुआ । अब भी वे बलवती होकर आत्माके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया करती हैं और आन्तरिक शान्तिको क्षुब्ध कर देती हैं ।

हे प्रभु ! तू मुझे आश्रय दे । तू अपनी आश्चर्य-क्षमता प्रकाशित कर और अपने वरदहस्तको गौरवान्वित होने दे; क्योंकि हे नाथ ! हे मेरे ईश्वर ! तेरे सिवा मेरी और कोई आशा या आश्रय नहीं है ।

(३)

ऐ प्रभु ! इस जीवनमें मेरे आश्रयका दूसरा कौन स्थान है ! मङ्गलमय ! क्या तू ही मेरे संतोषका स्रोत नहीं है ? तेरे सिवा और कहाँ मेरा मङ्गल होगा ? जबतक तू उपस्थित है मेरा अकल्याण क्यों होगा ?

तुझे छोड़कर धनवान् होनेकी अपेक्षा तेरे साथ दरिद्र होना ही मेरे लिये सुखदायक है। तुझे छोड़ स्वर्गमें रहनेकी अपेक्षा तेरे साथ पृथिवीका यात्री बने रहना मेरे लिये अधिक सुखद है। जहाँ तू है, वहीं स्वर्ग है; जहाँ तू है नहीं, वहाँ मृत्यु और नरक है।

तू ही मेरी आकाङ्क्षा है, इसलिये प्राणके समस्त उच्छ्वास और व्याकुलताके साथ तेरे लिये रोना, तड़पना और प्रार्थना करना आवश्यक है।

हे स्वामी ! तेरे सिवा और किसीमें मेरा पूर्ण विश्वास नहीं है। तू ही मेरी आशा है, तू ही मेरा साहस है, तू ही मेरी सान्त्वना है और हर अवस्थामें तू ही मेरा परमबन्धु है।

संसारमें और सब तो स्वार्थोंमें लिप्त हैं, केवल तू ही मेरा त्राता है; केवल तू ही मेरी उन्नतिकी कामना करत और विभिन्न अनुकूल-प्रतिकूल घटनाओंद्वारा मेरा मङ्गल साधन करता है। मेरे जीवनमें नाना प्रकारके दुःख एव प्रलोभन आते हैं, पर वे सब मेरे कल्याणके लिये हैं।

हे प्रभु ! तुझमें ही मैंने अपनी सारी आशा स्थापित की है। जो कुछ मेरा कहा जा सकता है, वह सब मैं तुझे अर्पण करता हूँ। तेरे सिवा जो कुछ है, वह सब चञ्चल और शक्तिहीन है।

हे नाथ ! तेरी कृपा, अनुकूलता, सहायता, शक्ति और सान्त्वनाके बिना संसारमें सब कुछ दुर्लभ है। तू ही जीवनकी उच्चता है, तू ही प्रज्ञाकी गम्भीरता है; इसलिये तुझमें ही अपनी आशा स्थापित करता हूँ।

हे पिता ! मेरे अन्तश्चक्षुओंको खोल दे, अपने आशीर्वादके अमृतसे मेरे अन्तःकरणको तृप्त एवं पावन कर दे, जिससे वह तेरी स्थायी महिमाका मन्दिर बन जाय।

वर्तमान विश्व-संकटके निवारणके लिये प्रार्थना और भगवन्नामका आश्रय आवश्यक

सारा जगत् आज अपने ही निर्माण किये साधनोंसे ंत्रस्त और भयग्रस्त है तथा यह भय तबतक बढ़ता ही रहेगा एवं जगत्की क्रमशः अधःपातकी ओर अबाध गति बनी ही ्हेगी, जबतक मानव अपने जीवनके परम लक्ष्य परमात्माको ूलकर भोगोंसे सुखकी आशा करता रहेगा। 'भगवान्'की ोर जीवनकी गति होनेपर जीवनमें परम साधन होता है—्याग', जो सर्वत्र 'प्रेम' तथा परिणामतः 'आनन्द' का ास्तार करता है। 'भोग'की ओर गति होनेपर उसका परम ाधन होता है—'भोग-अर्जन और संग्रह', जो सर्वत्र द्वेष था परिणामतः दुःखका विस्तार करता है। लक्ष्यके अनुसार साधनका प्रयोग होता है। बिजलीके द्वारा हम चाहे सर्वत्र काश और सुखके साधनोंका विस्तार कर दें, अथवा आग ाकर या झटके देकर सबके विनाशका विस्तार कर दें। ोंसे या किसी भी वाहनसे चलकर हम देवमन्दिरमें पहुँच यँ या पाप-कुण्डमें ! आज संसारमें बाह्य प्रकृतिके नये-नये ाविष्कारोंका प्रकाश और विज्ञानका विकास हो रहा है और ापर लोगोंको बड़ा गर्व है। प्रकृतिगत पदार्थोंका आविष्कार र विज्ञान बुरी चीज नहीं है। जीवनका लक्ष्य 'भगवान्' होनेपर ये सभी साधन भगवान्के मङ्गलमय पथके सहायक बन सकते हैं; परंतु 'भोग' लक्ष्य हो जानेपर यही सब विनाशके साधन बन जाते हैं। इसीसे बाह्य प्रकृतिपर अपनेको विजयी माननेवाला मानव आज अन्तःप्रकृतिकी सहायतासे वञ्चित हो वासनाका दास बन गया है और तिलोत्तमाके मोहमें ग्रस्त सुरापान-प्रमत्त सहोदर भाई सुन्द-उपसुन्दके परस्पर विनाश करनेकी भाँति एक दूसरेका विनाश करनेमें प्रवृत्त है ! आजके विश्वव्यापी अन्तर्द्वेष और सर्व-विनाशकारी युद्धोंकी तैयारीका यही हेतु है। भोगकी वासनाने 'सर्वभूतात्म-भावना'को और 'सबमें भगवान् हैं'—इस सत्यको भुलाकर मनुष्यके स्वार्थको इतनी संकुचित सीमामें लाकर खड़ा कर दिया है कि जिससे एक ही सिद्धान्तके माननेवाले और अपनेको विश्वका परम हितकारी समझनेवाले लोग भी व्यक्तिगत स्वार्थवश एक-दूसरेके पतनमें सचेष्ट हैं और इसीमें अपनेको सफलजीवन मान रहे हैं ! साम्यवादी रूस और चीनका विवाद, एक ही रूसमें कुश्चेवके द्वारा मरे हुए स्टैलिनका तिरस्कार, और सम्प्रति उसी मतके एक दलके द्वारा कुश्चेवकी पदच्युति; तथा एक ही भा

और मतके अनुयायी लोगोंमें एक ही देशके विभिन्न राजनीतिक दलोंद्वारा एक-दूसरेके अधिकारोंकी छीना-झपटी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। भोगवासनाने मनुष्यको इतना असहिष्णु और असंतोषपूर्ण बना दिया है कि वह रात-दिन अशान्तिकी आगमें जलता रहता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है—उन्नतिके शिखरपर समारूढ़ माना जानेवाला अमेरिका देश, जहाँ दिनभरके २४ घण्टोंमें लगभग ४१ आत्महत्याएँ और लगभग ७०० से अधिक मनुष्योंपर पागलपनका आक्रमण होता है!

भारतवर्षकी संस्कृतिमें 'आत्म-साक्षात्कार' या 'भगवान्की प्राप्ति' जीवनका परम लक्ष्य माना गया है और 'गर्भाधान' से लेकर 'अन्त्येष्टि'तकके सारे संस्कार और गुरुकुल-प्रवेशसे लेकर मृत्युतकके जीवनकी सारी चेष्टाएँ इसी लक्ष्यकी पूर्तिके लिये की जाती रही हैं। पर आज भारतवर्ष भी अपने इस महान् लक्ष्यसे च्युत होता जा रहा है और इसीका परिणाम है—अशान्ति, दुःख और भाँति-भाँतिकी असंख्य नयी-नयी विपत्तियाँ, जो मिटानेकी चेष्टामें उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही हैं। एवं सबसे अधिक परितापका विषय तो यह है कि इस 'अधःपात'को ही 'उत्थान', 'अवनति'को 'उन्नति', 'विपरीत गति' को ही 'प्रगति' और 'विनाश'को ही 'विकास' माना जा रहा है; और यह स्वाभाविक है कि जब भोगवासनाओंसे अभिभूत होकर मनुष्य तमोगुणसे आक्रान्त हो जाता है, तब उसकी बुद्धिके सारे निर्णय विपरीत ही हुआ करते हैं। तमोऽभिभूत बुद्धिका लक्षण बताते हुए भगवान् कहते हैं—

> अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता।
> सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥
> (श्रीमद्भगवद्गीता १८। ३२)

बुद्धि जब तमोगुणसे आवृत हो जाती है, तब वह धर्मको अधर्म, पुण्यको पाप, कल्याणको अकल्याण मान लेती है और सभी वस्तुओंमें विपरीत निर्णय करती है। और यह निश्चित है कि तमोगुणी वृत्तिमें स्थित मनुष्योंका पतन होता है—

> जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।
> (श्रीमद्भगवद्गीता १४। १८)

इसीसे आज जो अन्तःप्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेका, लौकिक परम अभ्युदय और मानव-जीवनके परम लक्ष्य निःश्रेयसकी प्राप्तिका, विश्व-कल्याण और विश्व-शान्तिका एकमात्र साधन भगवदाश्रय है, उस परम साधनसे मुँह मोड़कर विकासके नामपर केवल भौतिक साधनोंकी सेवामें देश संलग्न हो रहा है। परिणाम तो प्रत्यक्ष ही है। अतः यदि भारतवर्षमें और अखिल विश्वमें यथार्थ सुख-शान्ति-वैभव-कल्याण आदिकी प्रतिष्ठा देखनी है, तो इस निरे भौतिक लक्ष्यका परित्याग करके समस्त भौतिक साधनोंको भगवान्की सेवामें लगा देना होगा और भगवान्का आश्रय करके भगवन्नाम और प्रार्थनाका सहारा लेना पड़ेगा।

आज देशमें अशान्ति है, दुर्भिक्ष है, पड़ोसी मित्र शत्रु बन रहे हैं, सर्वत्र आतङ्क छाया है, एक-दूसरेपर संदेहकी वृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, विपत्तिके बादल मँडरा रहे हैं और कहीं-कहीं बरसने भी लगे हैं—इन सब आगत-अनागत उत्पात-उपद्रवोंसे बचना है तो उसका परम साधन है—'भगवान्का आश्रय करके भगवन्नाम और प्रार्थनाका अवलम्बन करना।' साथ ही, भगवान्के ही विभिन्न स्वरूप देवताओंका, जो विभिन्न कार्योंकी सिद्धिके लिये प्रकट हैं, श्रद्धा-विधिपूर्वक आराधन करना। विगत अष्टग्रहीके समय भगवदाराधन और देवाराधनकी ओर बड़ी प्रवृत्ति हुई और उसके फलस्वरूप अष्टग्रहीकी उस समयकी विनाश-लीला रुक गयी। अविश्वासियोंने अवश्य यह माना कि 'ये सब साधन व्यर्थ ही किये गये। अष्टग्रहीसे कोई कुपरिणाम होनेवाला ही नहीं था। सब व्यर्थकी बातें थीं।' पर ऐसा समझना उन लोगोंकी यथार्थतः बेसमझी ही है। किसी अमोघ साधनसे संकटका टल जाना दूसरी बात है और संकटका न आना दूसरी बात है। चीनके आक्रमणके समय भी प्रार्थना तथा भगवदाराधन-देवाराधनकी ओर कुछ रुचि आरम्भ हुई थी; पर इस समय तो इस ओर प्रायः उदासीनता-सी देखी जाती है, जो बेसमझी तो है ही, महान् विपत्तिकी भूमिका भी है। अतएव विश्वके समस्त कल्याण-कामियोंसे, खास करके पवित्र भूमि भारतके निवासियोंसे, उनमें भी कल्याणके पाठक-पाठिकाओंसे विशेष निवेदन है कि वे निम्नलिखित साधनोंका—अनुष्ठानोंका यथासाध्य, यथारुचि, यथाधिकार आयोजन करें-करायें।

(१) हिंदू (वैदिक धर्मावलम्बी सनातनी, आर्यसमाजी तथा जैन, बौद्ध, सिक्ख एवं अन्यान्य समस्त हिंदू-धर्म-सम्प्रदायी), मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि सभी अपने-अपने धर्मानुसार [illegible]

(२) वेदाध्ययन, वेद-पारायण, धर्मग्रन्थ-पाठ, विष्णु-रुद्रयाग, गायत्रीपुरश्चरण, रुद्राभिषेक, रुद्रीपाठ, महामृत्युंजय-जाप, पुराण-पाठ आदिके अधिक-से-अधिक आयोजन हों।

(३) माता भगवतीकी प्रसन्नताके लिये नवचण्डी, शतचण्डी, सहस्रचण्डी, लक्षचण्डी आदि अनुष्ठान हों। व्यक्तिगतरूपसे लोग अपने-अपने सुविधानुसार पाठ करें। नवार्णमन्त्रका जप करें, दुर्गानाम-जप करें-करायें। सम्पुटके मन्त्र निम्नलिखित हैं।

(१) देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्॥

(२) शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(३) करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः।

(४) विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः॥

(५) सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(४) श्रीमद्भागवतके सप्ताह-पारायण अधिक-से-अधिक किये-कराये जायँ। वाल्मीकि रामायणके नवाह्न-पारायण या सुन्दरकाण्डके पाठ किये-कराये जायँ। निम्नलिखित सम्पुट दिये जायँ तो अच्छा है।

श्रीमद्भागवतमें सम्पुट—

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद् वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥

वाल्मीकीय रामायणमें सम्पुट

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥

(५) श्रीरामचरितमानसके मासिक, नवाह, अखण्ड या यथारुचि यथासाध्य जिनसे जितना हो सके, पाठ करें-करायें। सम्पुटकी चौपाइयाँ निम्नलिखित हैं—

१ राजिव नयन धरें धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक॥
२ जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
३ दीन दयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥
४ दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा॥
५ गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥

(६) अपनी रुचि तथा श्रद्धाके अनुसार श्रीशंकरजीके 'नमः शिवाय', भगवान् विष्णुके 'हरिःशरणम्' और श्रीगणेशजीके 'गं गणपतये नमः' मन्त्रका जप करें-करायें। भगवन्नाम-कीर्तन अधिक-से-अधिक किया-कराया जाय।

(७) गौओंको चारा, घास, भूसा, दाना खिलाया जाय। गोवध कानूनन सर्वथा बंद हो। गोचरभूमि सुरक्षित तो रहे ही, और भी अधिक छोड़ी जाय। गोरक्षाकी ओर विशेष ध्यान दिया जाय।

(८) गरीब, रोगी, दीन, बाढ़पीड़ित, विधवा स्त्री, अनाथ बालक, विद्यार्थी आदिकी सेवा-सहायता की जाय।

(९) जनतामें बढ़ती हुई मांसाहारकी प्रवृत्तिको छुड़ाया जाय। पशु-पक्षी-हिंसा-उद्योगों और नये-नये कसाईखानोंकी योजनाका तुरंत त्याग कर दिया जाय।

(१०) ३५ वें वर्षके १२ वें अङ्कमें पृष्ठ १३९४ पर प्रकाशित 'नारायण-कवच', का और शिवपुराणाङ्कमें छपे—'अमोघ शिवकवच', 'श्रीदारभेश्वरका शिव-कवच' और 'श्रीमहामृत्युंजय-कवच', 'संकटनाशन विष्णुस्तोत्र' अथवा 'उपमन्युकृत शिवस्तोत्र' का पाठ यथारुचि संस्कृत जानने-वाले लोग स्वयं करें तथा करायें। ये सर्वोपद्रवनाशक एवं बहुत लाभप्रद हैं।

भगवान् शिव तथा भगवान् विष्णुकी एकता एवं परस्पर उपासना

(लेखक—श्रीशिवकुमारजी शास्त्री,व्याकरणाचार्य, दर्शनालंकार)

ऋग्वेदके 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'के अनुसार ब्राह्मण एक ही सत् तत्त्वको बहुत प्रकारोंसे कहते हैं। निरुक्तकारने भी—

महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।

(दैवतकाण्ड ८)

'महान् ऐश्वर्ययोगसे एक देवताका आत्मा बहुधा स्तुत होता है।'—यही भाव सूचित किया है। वेदके इस सर्वमान्य सिद्धान्तके अनुसार भगवान् शिव एवं भगवान् विष्णुमें अल्प भी भेद नहीं किया जा सकता। '**इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते**'—परमात्मा मायाके द्वारा अनेक रूपवाला ज्ञात होता है। श्रुति कहती है—

तस्य प्रोक्ता अन्यास्तन्वो ब्रह्मा विष्णू रुद्रः। स ब्रह्मा स शिवः।

नित्य-शुद्ध-बुद्ध-निरञ्जन उस परमात्माके 'ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र' ये लीला-भेदसे शरीर हैं। वह ब्रह्मा तथा शिव है। शिवपुराणके 'शिवसहस्रनाम' एवं महाभारतके 'विष्णुसहस्रनाम'का पारायण करनेवाले शिवके 'चतुर्बाहु, हरि, विष्णु' तथा विष्णुके 'शर्व, शिव एवं स्थाणु'—इन नामोंके द्वारा श्रीविष्णु एवं श्रीशिव दोनोंमें अभेद-दर्शन स्वतः कर सकते हैं। अभेद-दर्शन न होनेपर 'चतुर्बाहु', 'हरि', 'विष्णु' शिवके नाम तथा 'शिव', 'शर्व', 'स्थाणु' विष्णुके नाम कैसे सम्भव हैं? स्वयं भगवान् शिव एवं विष्णु अपने सम्बन्धमें कहते हैं—

आवयोर्नास्ति भेदो वै भेदी नरकमाप्नुयात्।

(अग्निपुराण)

'हम दोनोंमें निश्चय ही भेद नहीं है, भेददर्शी नरकगामी होता है।'

स्कन्दपुराणमें बताया गया है कि वह परमात्मा शिव ही सृष्टि-स्थिति-प्रलयके लिये 'ब्रह्मा, विष्णु, शिव'—इन रूपोंसे प्रकाशित होता है—

एक एव शिवः साक्षात् सृष्टिस्थित्यन्तसिद्धये।
ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिः कालनाभिर्विजृम्भते॥

दक्ष-यज्ञ-विध्वंस होनेपर श्रीविष्णु, ब्रह्मा आदि देवोंके द्वारा भगवान् शंकरकी प्रार्थनामें कहा गया है—''देवदेव! महादेव! [illegible] तुम्हारी कृपासे तुम्हें ब्रह्म, ईश्वर तथा शम्भु—कल्याणकी भावना करनेवाला जानते हैं। जगत्की योनि एवं बीजभूत प्रकृति-पुरुषसे भी पर तुम परब्रह्मरूप होकर वाणीके अगोचर हो। ऊर्णनाभि (मकड़ी) की भाँति क्रीडा करते हुए तुम ही ब्रह्माण्डकी सृष्टि-स्थिति-प्रलय करते हो। तुम प्रजापतियोंके स्रष्टा, पालक, पितामहके भी पिता, त्रिगुणात्मा एवं निर्गुण हो। कल्याणमय शंकर भीमके लिये हमारा नमन है। सबके नियामक, सबके कर्मफलोंके दाता तुम्हीं हो। महेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु, चन्द्र आदि देवता तुमसे ही उत्पन्न हैं! पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, यजमान—इन मूर्तियोंसे करुणामय तुम अष्टमूर्ति हो। आपके भयसे वायु, अग्नि, सूर्य तथा मृत्यु अपने-अपने कार्यमें सावधान होकर प्रवृत्त हैं।'' इस प्रकार कहकर ब्रह्माके साथ श्रीविष्णुने हाथ जोड़े हुए भूमिमें दण्डवत् गिरकर शंकरसे क्षमा-प्रार्थना की।

शिवपुराणकी यह स्तुति श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धके षष्ठ अध्यायमें ब्रह्मादि देवोंके द्वारा भगवान् शंकरकी दिव्य भावोंसे पूर्ण स्तुतिसे मिलती-जुलती है। ये दोनों स्तुतियाँ उपासकोंद्वारा मननीय हैं। भगवान् शंकर श्रीविष्णुसे कहते हैं—'विष्णो! मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव नामसे भिन्न हूँ। विष्णो! तुम रुद्रके पूज्य हो और रुद्र तुम्हारे द्वारा उपास्य हैं। तुम दोनोंमें कोई भेद नहीं है। तुम दोनोंमें वस्तुतः एकता है। रुद्रभक्त होकर जो तुम्हारी निन्दा करेगा, उसका पुण्य भस्म हो जायगा। पुरुषोत्तम! निश्चय ही उसका नरकमें पतन होगा।'

विस्तार-भयसे हमने यहाँ अति संक्षिप्त वर्णन किया है। शिवपुराणके निदर्शनके पश्चात्, जिसमें शिवको ही 'परतत्त्व' माना गया है, अब हम श्रीविष्णु तथा श्रीशिवकी एकताको लेकर परम प्राचीन एवं परम प्रामाणिक श्रीविष्णुपुराण तथा परमसम्मान्य पारमहंसी संहिता श्रीमद्भागवतके समासतः उद्धरण देंगे। वे एक ही परमात्मा सृष्टि-स्थिति-प्रलयरूप लीलाभेदसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव संज्ञावाले होते हैं।

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥

जिस अभूतपूर्व देवकी 'ब्रह्मा, विष्णु, शिव'रूप शक्तियाँ हैं, वह भगवान् विष्णुका परम पद है—

शक्तयो यस्य देवस्य ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाः।
भवन्त्यभूतपूर्वस्य तद् विष्णोः परमं पदम्॥
(विष्णुपुराण १।९।५६)

उस सर्वनियन्ता 'ब्रह्मा'के रूपमें सृष्टि, 'विष्णु'के रूपमें विश्वका पालन तथा अन्तमें 'रुद्र' रूपसे संहार करनेवाले त्रिमूर्तिधारीको नमन है—

ब्रह्मत्वे सृजते विश्वं स्थितौ पालयते पुनः।
रुद्ररूपाय कल्पान्ते नमस्तुभ्यं त्रिमूर्तये॥
(विष्णुपुराण १।१९।६६)

बाणासुरकी रक्षाके लिये श्रीशंकरकी प्रार्थनापर श्रीभगवान् कहते हैं—'शंकर! आप मुझसे अपनेको सर्वथा अभिन्न देखिये। आप यह निश्चय जान लें कि जो मैं हूँ, वही आप हैं। अविद्यासे मोहित चित्तवाले भेददर्शी पुरुष ही हम दोनोंमें भेद दिखाते तथा बतलाते हैं।'

मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शंकर।
योऽहं स त्वं······
अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः।
वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर॥
(विष्णुपुराण ५।३३।४७–४९)

श्रीमद्भागवतमें शिवस्वरूप श्रीरुद्रद्वारा श्रीभगवान्‌की दिव्य स्तुतिके अनन्तर स्वभक्त बाणासुरकी रक्षाकी प्रार्थनापर श्रीभगवान्‌ने कहा है—'भगवन्! जो आप हमसे कहते हैं, हम आपका प्रिय करेंगे। आपकी इच्छाका हम अनुमोदन करते हैं।'

यदात्थ भगवंस्त्वन्नः करवाम प्रियं तव।
भवतो यद् व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम्॥
(श्रीमद्भागवत १०।६३।४६)

शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः।

शिवके हृदय विष्णु तथा विष्णुके हृदय शिवके अभिन्न तत्त्वका साक्षात् परिचय भगवान् श्रीविष्णुके शब्दोंमें प्राप्त कीजिये। दक्ष-यज्ञ-विध्वंसके अनन्तर देव-स्तुतिसे श्रीशिवके प्रसन्न होनेपर पुनः यज्ञ प्रारम्भ होनेपर भगवान् विष्णुने प्रकट होकर जो कहा है, वह कथन प्रत्येक आस्तिक हिंदूके लिये मननीय है।

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्॥
तस्मिन्ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि।
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति॥
यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित्।
पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः॥
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥
(श्रीमद्भागवत ४।७।५०—५४)

'मैं, ब्रह्मा, शंकर—तीनों ही संसारके कारण हैं, सबके आत्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाश एवं उपाधिरहित हैं। ब्रह्मन्! अपनी गुणमयी मायाका आश्रय लेकर मैं सृष्टि-स्थिति-संहार करते हुए उन चेष्टाओंके योग्य नाम ग्रहण करता हूँ। उस अद्वितीय, सजातीय-विजातीय-भेदरहित परतत्त्व परमात्मामें अज्ञानी जीव ही ब्रह्मा-रुद्रको भेदसे देखता है। जिस प्रकार पुरुष अपने सिर-हाथ आदि अङ्गोंमें परायी बुद्धि कभी नहीं करता, उसी प्रकार मेरा भक्त पुरुष 'भेद-दृष्टि' नहीं करता। सबके आत्मा इन ब्रह्मा, विष्णु, शिवमें जो भेददृष्टि नहीं करता, ब्रह्मन्! वह पुरुष शाश्वत शान्ति पा लेता है।'

ब्राह्मणाः साधवः शान्ता निःसङ्गा भूतवत्सलाः।
एकान्तभक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः—
न ते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते।
(श्रीमद्भागवत १२।१०।२०–२२)

भगवान् श्रीशंकर महर्षि मार्कण्डेयसे कहते हैं कि 'ब्राह्मण, साधु, शान्त, आसक्तिरहित सब जीवोंमें दयालु, हममें एकान्त भक्तिवाले, वैरभावनासे रहित, समदर्शी होते हैं। लोकपालोंके साथ सारे लोक उनका वन्दन, पूजन तथा उपासना करते हैं। मैं, भगवान् ब्रह्मा तथा स्वयं विष्णु भी। उन ब्राह्मणोंके पूजन होनेका एक विशिष्ट कारण यह है कि वे ब्राह्मण मुझ शंकरमें, विष्णुमें तथा ब्रह्मामें अणुमात्र भी भेद नहीं देखते।'

भगवान् श्रीरामने लङ्कासे लौटते हुए वाल्मीकीय रामायणमें श्रीरामेश्वरका दर्शन कराते हुए सीतासे कहा है—'यहाँ प्रभु महादेव प्रसन्न हुए थे।' 'अत्र पूर्वं महादेवः प्रसाद-मकरोद् विभुः।'

'रामस्य ईश्वरः अथवा राम ईश्वरो यस्य सः'—'श्रीरामके ईश्वर अथवा राम जिनके ईश्वर हैं'—ऐसे पर्य

तत्पुरुष वा अन्यपदार्थ बहुव्रीहिकी अपेक्षा 'रामश्चासौ ईश्वरः इति रामेश्वरः'—राम-स्वरूप ईश्वर (शंकर) यह कर्मधारय समास हमारी मतिसे सुन्दर है । कोशकारोंने 'हरविष्णू वृषाकपी' कहकर 'शिव-विष्णु' का 'वृषाकपी' संयुक्त नाम रखकर शिव-विष्णुको अभिन्न तत्त्वके रूपमें प्रदर्शित किया है । महिम्नःस्तोत्रकार आचार्य श्रीपुष्पदन्तने एक पौराणिक कथाको इस प्रकार बताया है—भगवान् विष्णु प्रतिदिन 'शिवसहस्रनामस्तोत्र' पाठ करते हुए सहस्र कमलपुष्पोंसे भगवान् शंकरकी पूजा करते थे। एक दिन श्रीशंकरके द्वारा परीक्षणार्थ एक कमलपुष्प कम कर दिये जानेपर श्रीविष्णुने अपने नेत्रकमलको ही श्रीशंकरके अर्पित कर दिया । फिर क्या था, भक्तिका यह उत्कट स्वरूप चक्रके रूपमें परिणत हो गया, जो सबकी रक्षामें सतत सावधान है ।

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥
(महिम्नःस्तोत्र १९)

यह तो हुई श्रीविष्णुके द्वारा श्रीशंकरकी उपासना। इधर श्रीशंकरद्वारा श्रीविष्णुकी उपासना देखिये । अध्यात्म-रामायणमें भगवान् शंकर श्रीरामस्वरूप विष्णुकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि—

त्वं विरिञ्चिशिवविष्णुविभेदात्
कालकर्मशशिसूर्यविभागात् ।
वादिनां पृथगिवेश विभासि
ब्रह्म निश्चितमनन्यदिहैकम् ॥

अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो
वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं
दिशामि मन्त्रं तव राम नाम ॥
(अध्यात्मरामा० यु० कां० १५ स० ५७, ६२)

"भिन्न-भिन्न ईश्वरवादी जनोंको आप एक होकर 'ब्रह्मा', 'विष्णु', 'शिव' भेदसे काल, कर्म, चन्द्र, सूर्यके भेदसे पृथक् प्रतीत होते हैं । वस्तुतः आप एक अद्वितीय तत्त्व ब्रह्म ही हैं ।'''भगवन् ! मैं आपके नामोच्चारणसे कृतार्थ होकर सदा काशीमें निवास करता हूँ । वहाँ मरणासन्न पुरुषको मोक्षके लिये आपके तारक-मन्त्र 'श्रीराम नाम'का उपदेश देता हूँ ।"

श्रीरामचरितमानसमें श्रीभगवान्ने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहौं कर जोरि ।
संकर भजन बिना नर भगति न पावै मोरि ॥
सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ।''''''
सिव द्रोही मम दास कहावा । सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥
संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास ॥
(रामचरित० लं० कां०)

मेरे-सदृश जन तो इस गूढ़ अभिन्न-तत्त्वका प्राचीन आचार्योंके इन शब्दोंसे स्मरण करके 'सब सिद्धियोंके देनेवाले' परस्पर आत्मरूप और परस्पर नमनमें प्रीति रखनेवाले, सर्व-समर्थ माधव (श्रीविष्णु), उमाधव (श्रीशिव) का साष्टाङ्ग नमन ही करते हैं ।

माधवोमाधवावीशौ सर्वसिद्धिविधायिनौ ।
वन्दे परस्परात्मानौ परस्परनुतिप्रियौ ॥

दुर्दशामें नामका भरोसा

दिन-दिन दूनो देखि दारिदु, दुकालु दुखु, दुरितु, दुराजु सुख-सुकृत सकोच है ।
मागें पैंत पावत पचारि पातकी प्रचंड, कालकी करालता, भलेको होत पोच है ॥
आपने तौ एकु अवलंबु अंब डिंभ ज्यों, समर्थ सीतानाथ सब संकट बिमोच है ।
तुलसीकी साहसी सराहिए कृपाल राम ! नामकें भरोसें परिनामको निसोच है ॥
(तुलसीदासजी

दिनोंदिन दरिद्रता, दुष्काल (दुर्भिक्ष), दुःख, पाप और कुराज्यको दूना होता देखकर सुख और सुकृत संकुचित हो रहे हैं । समय ऐसा भयंकर आ गया है कि बड़े-बड़े पापी तो डाँट-डपटकर माँगनेसे अपना दाँव पा लेते हैं और भले आदमीका बुरा हो जाता है । जैसे बालकको एकमात्र माँका ही सहारा होता है, वैसे ही अपने तो एकमात्र सहारा सब संकटोंमे छुड़ानेवाले और समर्थ श्रीसीतानाथका ही है । हे कृपालु रामजी ! तुलसीके साहसकी सराहना कीजिये कि वह (आपके) नामके भरोसे परिणामकी ओरसे निश्चिन्त हो गया है ।

आत्मज्ञानका साधन—भगवन्नाम

(लेखक—श्रीज्ञानेश्वरशरणजी शास्त्री काव्यतीर्थ)

संसारमें कोई भी ऐसा कार्य नहीं है, जो भगवन्नामके प्रभावसे सिद्ध न हो सके । पुरुषार्थ-चतुष्टयमें 'मोक्ष'को प्रधान पुरुषार्थ माना गया है । उसकी प्राप्तिका सरलतम एवं अमोघ उपाय भगवन्नाम ही है, इसमें कोई संदेह नहीं ।

आत्मवासनाके प्राचुर्यसे संसारवासना पराभूत हो जाती है । आत्मातिरिक्त सत्ताके बाध किये बिना आत्मवासना जाग्रत् नहीं होती । अनादिकालकी संचित असद् वासनाएँ हमें मिथ्या वस्तुकी ओर प्रवृत्त कर रही हैं । जबतक ये पूर्णतया विदग्ध नहीं हो जातीं, हम संसारकूपमें गिरते ही रहेंगे । बहिरङ्ग साधनोंसे हम कुछ आगे अवश्य बढ़ेंगे, पर वासनाएँ निर्मूल न होंगी । इनका परिहार तो समाधिके अभ्याससे ही सम्भव है । चित्तकी निश्चलता ही समाधिका प्रारूप है । जब विषय-चिन्तनका सर्वथा परित्याग होगा, तभी चित्त निश्चल होगा एवं तभी समाधिकी प्राप्ति होगी और इसीके तीव्र अभ्याससे वासनाओंका समूल नाश होकर अन्तिम पुरुषार्थ मोक्षकी प्राप्ति होगी ।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचनसे अभिप्राय यही निकला कि आत्मवासनाकी उत्तरोत्तर अभिवृद्धिका प्रयत्न साधकके लिये अपेक्षित है । अन्तःकरणकी विशुद्धि ही आत्मवासनाकी प्राप्तिमें हेतु है । वर्णाश्रमविहित निष्काम कर्मसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है । पर श्रुति-स्मृतियोंका यही कहना है—'उपासनाके बिना किया हुआ कर्म चित्तशुद्धिका कारण नहीं बन सकेगा । वह तो संसारको ही देनेवाला होगा ।' यदि वर्णाश्रमके अनुसार अनुष्ठीयमान प्रत्येक कर्म भगवन्नामके साथ ईश्वरार्पण-बुद्धिसे कर्तृत्वाभिमानसे रहित होकर किया जाय तो वह शीघ्र ही पापराशिको भस्म कर देगा । हमारी वृत्ति स्वतः अन्तर्मुख बनेगी । फलतः प्रेमरूपा भक्ति अथवा ज्ञानके अधिकारी बननेमें हमें अधिक समय न लगेगा ।

ज्ञानमार्गमें संलग्न साधक अपनी प्रत्येक भूमिकामें भगवन्नाम-जपको अपना सकता है । मनके समस्त विक्षेप नाम-जपके प्रभावसे दूर हो सकते हैं । चित्तशुद्धिके बाद भी मानसिक जप महान् उपयोगी होगा । विषयाभिमुखी मन तुरंत आत्माभिमुखी बनेगा और विचारमें स्थिरता सम्पादित होगी । असत्त्वापादक-आवरण भगवन्नाम-महिमाके श्रवणसे भङ्ग होगा और भगवन्नाम-जपकी निरन्तरता अभानापादक आवरणको भी समाप्त कर देगी । तत्त्वज्ञानके प्रत्येक उपायमें भगवन्नामके सम्मिलित करनेपर हम सहज ही जगत्को भूल सकेंगे । मनकी सूक्ष्मताका सम्पादन योगारूढ साधकका प्रधान कार्य है । इसके लिये सारी इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिपर रोक लगानेके साथ ही परमात्माके साथ तादात्म्य-सम्बन्धकी भावना बढ़ानी होगी । यदि कभी साधकको उक्त कार्यमें जन्मान्तरीय मिथ्यावासनाके संस्कारवश सफलता मिलनेमें देर होने लगे, तो उसे अन्य उपायोंसे विरत होकर विशेषरूपसे भगवान्के पावन नामका अवलम्बन करना चाहिये । इससे बहुत ही शीघ्र मन अपने लक्ष्यपर समारूढ होगा ।

जिस समय हम एकान्तमें बैठकर भगवान्की निर्मल लीलाओंका सश्रद्ध अनुसंधान करते हुए प्रेमपूर्वक पवित्र नामस्मरण करने लगते हैं, उस समय समस्त सांसारिक वासनाएँ विस्मृत हो जाती हैं । आनन्दरूप परमात्मा विशुद्ध अन्तःकरणमें प्रतिबिम्बित होने लगते हैं । हम अलौकिक आनन्दसागरमें निमग्न हो जाते हैं तथा धीरे-धीरे द्वैतभाव समाप्त प्रतीत होता है । सर्वत्र भगवान्-ही-भगवान् किंवा स्वप्रकाश आत्मसत्ता ही प्रतिभात होने लगती है । साधक कृतकृत्य बन जाता है । यह भगवन्नामकी अद्भुत महिमा है ।

एक क्षण भी भगवन्नाम-जपसे विरत न होइये । आपकी सारी कामनाएँ समाप्त हो जायँगी । आपको अलौकिक आनन्दका आभास मिलेगा । इसीके लगातार अभ्याससे आप प्रेमाभक्ति अथवा अद्वैतज्ञानके अन्तिम पदपर समासीन हो सकेंगे । यह बात नाम-साधनका अनन्य अवलम्बन करनेसे स्वयं अनुभूत होगी ।

नाम-जपके अविरल अभ्याससे विजातीय प्रत्यय स्वयं तिरस्कृत हो जायगा और अवशिष्ट सजातीय तत्त्वका अवभास स्थायी बना रहेगा । फिर कार्यसहित अविद्याके उन्मूलनमें विलम्ब नहीं होगा । आप ईश्वरानुग्रहके चरम फलके उपभोक्ता बने रहेंगे । कर्तव्यकी परिसमाप्ति होगी । पुरुषतन्त्र-प्रयत्न हमें स्वतः छोड़ देगा और वस्तुतन्त्रताका अलौकिक भान स्वभावतः परिशिष्ट रह जायगा ।

ज्ञानका साधक अपनी साधनाओंको फलाधायक बनाते हुए अपने श्रवणादि साधनोंमें भगवन्नाम-जपको सम्मिलित कर ले तो फिर अनायास ही ज्ञानकी भूमिकाओंको पार किया जा सकता है। यह कार्य तृतीय भूमिकातक साधनके रूपमें अपनाया जा सकता है। उससे आगे यद्यपि कोई भी साधन अपेक्षित नहीं रहता, तथापि भगवन्नाम ज्ञानियोंका भूषण ही है। वह स्वभावतः बना ही रहेगा !

नाममें वह अलौकिक शक्ति है, जिसके सहारे साधक अध्यात्मक्षेत्रमें पूरा अधिकार जमा सकता है। उसे आशङ्का नहीं रहती कि मैं आत्मसाक्षात्कारकी यात्रा पूरी कर सकूँगा या नहीं। आरम्भमें नामपर विश्वास करना होगा। बादमें वही नाम संसारकी सत्यताके मिथ्या विश्वासको निर्मूल कर देगा। सारी पापराशियाँ जल जायँगी। हम उत्तरोत्तर साधनके ऊँचे-से-ऊँचे स्तरोंको पार करते चले जायँगे। अत्यधिक सरलतासे लक्ष्यकी प्राप्ति होगी।

अतद्वस्तुको व्यावृत्त करके अपने स्वरूपमें निमग्न रहना ज्ञानी पुरुषका काम है। समस्त प्रपञ्चको भगवन्मय देखनेकी प्रक्रिया भक्तमें रहती है। ज्ञानीका मन नहीं रहता। भक्त अपने मनको परमात्मामें जोड़ देता है। अर्थात् ज्ञानी पुरुष सर्वत्र आत्मसत्ताको प्रतिभासित देखता है। उसे प्रपञ्चकी सत्यता किसी हालतमें भी दीखती नहीं। भक्त प्रपञ्चको प्रभुकी अभिव्यक्ति, किंवा विभूतिके रूपमें देखता है। सामान्य दृष्ट्या कुछ अन्तर दिखायी देनेपर भी वस्तुतः अन्तिम स्थितिको पहुँचा हुआ ज्ञानी एवं भक्त एक-दूसरेके सिद्धान्तोंमें कोई भिन्नता स्वीकार नहीं करते। निष्कर्षमें ज्ञानी समझता है—'मैं सच्चिदानन्दघन अद्वितीय ब्रह्म हूँ। मुझमें अविद्यासे यह प्रपञ्च कल्पित है। वस्तुतः वह मुझसे अभिन्न मद्रूप ही है।' और भक्त कहता है कि 'मैं अल्पज्ञ चिदंश जीव हूँ। यह विश्व प्रभुका ही लीला-ऐश्वर्य है। मैं वस्तुतः उन्हींके अधीन होनेसे उनसे अभिन्न ही हूँ। साध्य दोनोंका एक ही सिद्ध होता है, साधनकी प्रक्रिया अवश्य विभिन्न होगी। किंतु आजके इस भौतिक युगमें हम ज्ञानी तभी बन सकेंगे, जब कि भक्तोंकी साधन-प्रक्रियाको ज्ञानसिद्धिके साधनोंमें जोड़ देंगे। अन्यथा, हम केवल ज्ञानके सिद्धान्तोंमें ही रमे रहेंगे, असली तत्त्वज्ञान प्राप्त न होगा। शास्त्रोंके बलसे भले ही प्रमाणगत संशय दूर हों, किंतु प्रमेयकी सत्यता अनुभूत न होगी। आज कलियुग है। यह युग अपनी अलग विशेषता रखता है। इसीसे शास्त्रोंमें अन्य युगोंकी अपेक्षा कलियुगको समीचीन कहा गया है। इस युगमें चाहे सब दोष-ही-दोष भरे हों, पर इस युगमें ईश्वर-साक्षात्कारके लिये जो सुविधा प्राप्त है, वह अन्य युगोंमें कहाँ ? हम उपर्युक्त दोनों मार्गोंमेंसे किसी भी मार्गसे आगे बढ़नेकी इच्छा रक्खें, इस युगमें सरलतम साधन 'भगवन्नाम'को अपनानेसे ही सफलता प्राप्त हो जाती है। इसीलिये तो त्रिकालदर्शी ऋषियोंने प्रायः सभी पुराण, स्मृति आदिमें भगवन्नामकी गुणगाथा गायी है।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

भगवान्‌की सहज कृपा

अन्यकामी यदि करे कृष्णेर भजन। ना मागिले कृष्ण तारे देन स्व-चरण॥
कृष्ण कहे आमा भजे, मागे विषय सुख। अमृत छाड़ि विष मागे एइ बड़ मूर्ख॥
आमि विज्ञ, एइ मूर्खे 'विषय' केने दिब। स्वचरणामृत दिया विषय भुलाइब॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत)

'किसी दूसरी कामनासे भी यदि कोई कृष्णका भजन करता है, उसको श्रीकृष्ण न माँगनेपर भी अपने चरण प्रदान करते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं, जो भजता है मुझको और माँगता है विषय-सुख, वह अमृत छोड़कर विष माँगता है; अतः वह बड़ा मूर्ख है। पर मैं तो विज्ञ हूँ, मैं उस मूर्खको विषय (विष) क्यों दूँगा। मैं तो उसे स्व-चरणामृत देकर विषयोंकी विस्मृति करा दूँगा।'

मानसमें नाम-रूपी प्रसादका वितरण

(लेखक—श्रीघासीरामजी भावसार)

महावीर-प्रसाद

राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्तने अपनी प्रसिद्ध कृति 'साकेत'की भूमिकामें लिखा है—

करते तुलसीदास भी कैसे मानस नाद ।
महावीरका यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद ॥

यह सत्य है कि ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणोंके निधान, श्रीरघुनाथजीके प्रिय भक्त, पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जी-से महात्मा तुलसीदासजीका साक्षात्कार हुआ था; परंतु 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' रूपमें श्रीराम—रघुवीर समर्थ—के चरित्रोंका वर्णन करनेकी सामर्थ्य प्रदान करानेवाले प्रसादकी प्राप्ति उन्हें भगवान् शंकरसे हुई थी ।

शंभु-प्रसाद

तुलसीदासजीकी, 'कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ ।', लिखनेवाली विनम्र लेखनीसे प्रसूत निम्नलिखित चौपाइयोंसे उपर्युक्त कथनकी पुष्टि हो सकती है—

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी ।
रामचरित मानस कबि तुलसी ॥
करइ मनोहर मति अनुहारी ।

× × ×

तुलसीदासजीको ही नहीं, लोमश मुनिको भी यह महा-प्रसाद भगवान् शंकरसे ही प्राप्त हुआ था । काकभुशुण्डिजीने गरुड़जीको बतलाया है—

पुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा ।
रामचरित मानस तब भाषा ॥
सादर मोहि यह कथा सुनाई ।
पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई ॥
रामचरित सर गुप्त सुहावा ।
संभु-प्रसाद तात मैं पावा ॥

—उत्तरकाण्ड

× × ×

महादेवजीने सर्वप्रथम जिन महादेवीजीको इस प्रसादका वितरण किया, वे कोई अन्य नहीं, स्वयं उनकी अर्द्धाङ्गिनी पार्वतीजी हैं । इस प्रसादको प्राप्तकर—

गिरिजा बोलीं गिरा सुहाई—
मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस ।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस ॥

नाम-प्रसाद

समस्त क्लेशोंको मिटाने और भक्तिमें दृढ़ता लानेवाला अन्ततः यह प्रसाद है क्या ? निश्चय ही यह है—नामरूपी प्रसाद ! यथा—

नाम प्रसाद संभु अबिनासी ।
साजु अमंगल मंगल रासी ॥

× × ×

सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी ।
नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी ॥

× × ×

फिरत सनेह मगन सुख अपने ।
नाम प्रसाद सोच नहिं सपने ॥

—बालकाण्ड

आत्मसुखमें निमग्न कराकर घुमाने-फिराने एवं स्वप्नमें भी सोच-फिकरसे बचानेवाले 'नामरूपी प्रसाद'का थोड़ा-सा अंश हमें भी दे दो न भोले भंडारी ! प्रार्थना तो यही है आपसे ।

रामायणी लोग बतलाते हैं कि दो-चार चौपाइयोंको छोड़कर शेष सभी दोहों, सोरठों, छन्दों तथा चौपाइयोंमें 'र' अथवा 'म' अक्षरका प्रयोग हुआ है । निश्चय ही 'र' और 'म' से बननेवाला 'राम' रूपी नाम भगवान् शंकरको अत्यन्त प्रिय है और वे इसीका जप करते हैं तथा इसीको प्रसादरूपमें वितरण भी करते हैं । तुलसीदासजीके तो—

'गुरु पितु मातु महेस भवानी ।'

—हैं । गुरुकी प्रसादी शिष्यको न मिले, ऐसा होना असम्भव है । माता-पिता भी स्वयं प्रसाद न खाकर पहले पुत्रको खिलाते हैं । कहते हैं कि 'जैसा अन्न वैसा मन, जैसा प्रसाद वैसा नाद ।' तभी तो तुलसीदासजीने राम-नामरूपी प्रसादको पाया और गाया ।

अब रघुपति पद पंकरुह हियँ धरि पाइ प्रसाद ।
कहउँ जुगल मुनिबर्ज कर मिलन सुभग संबाद ॥
—बालकाण्ड

× × ×

राम प्रसाद दास तुलसी उर
राम भगति जोग जागि है ।

× × ×

मोको भलो राम नाम सुरतरु सो
राम प्रसाद कृपालु कृपा के ॥
— विनयपत्रिका

× × ×

भगवान् रामके परम भक्त संत-शिरोमणि महाकवि तुलसीदासजीने मानसमें इस प्रसादको बँटवाया है काकभुशुण्डिजीद्वारा खग-मण्डलीके बीच, जिसे पाकर गरुड़जी कहते हैं—

तव प्रसाद मम मोह नसाना ।
राम रहस्य अनूपम जाना ॥

× × ×

तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं ।
संसय सोक मोह भ्रम नाहीं ॥

× × ×

जीवन जन्म सुफल मम भयऊ ।
तव प्रसाद सब संसय गयऊ ॥
—उत्तरकाण्ड

और अन्तमें लोमश मुनिद्वारा काकभुशुण्डिजीको दिये गये इस महाप्रसादकी इस रूपमें कामना करते हैं—

राम भगति अबिरल उर तोरें ।
बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें ॥

सियावर रामचन्द्रकी जय !

भगवन्नाम-महिमा

(लेखक—कविभूषण श्रीजगदीशजी साहित्यरत्न)

इस असार संसारसे पार होनेके लिये भगवन्नाम-स्मरणके समान कोई अन्य सरल साधन नहीं है । एकमात्र यही ऐसा साधन है, जो जीवको प्रारम्भिकसे परावस्थातक ले जाता है । यह एक सीधी गाड़ी (Through train) है, जिसमें सवार होनेपर बीचमें कहीं उतरना नहीं पड़ता और जो सीधे गन्तव्य स्थानपर पहुँचा देती है। आजकल पाश्चात्त्य शिक्षाके प्रभावसे प्रेरित होकर कोई-कोई कहा करते हैं कि 'बार-बार नाम लेनेसे क्या होता है ? क्या शक्कर-शक्कर पुकारनेसे मुँह मीठा हो सकता है ? अनेक बार आवाज देनेपर तो साधारण मनुष्य भी चिढ़ जाता है; फिर जिसका नाम लेकर तुम पुकारते हो, वह क्यों न चिढ़ेगा ?'

ऐसी निस्सार कल्पना वे ही लोग कर सकते हैं जो उपासनाके तत्त्वसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं । उनका सङ्ग कभी भूलकर भी नहीं करना चाहिये । वस्तुतः नाम और नामीका तो अभिन्न सम्बन्ध है । नामका उच्चारण करते ही हमारे सामने नामीकी मूर्ति अङ्कित हो जाती है । जब हम अपने किसी अभिन्न-हृदय सुहृद्का नाम लेते हैं तो हमारे हृदयमें उसकी मधुर स्मृति ज[illegible] किसी अंशमें मिलन-सुखका-सा अनुभव होने लगता है । इसी प्रकार रामनाम लेनेसे भी हमारी वृत्तियाँ रामाकार हो जाती हैं और श्रीरामकी पुनः-पुनः स्मृति होनेसे हमारे हृदयमें उत्तरोत्तर राम-प्रेमकी वृद्धि होने लगती है । स्थूल दृष्टिसे विचार करें तो भी नामका कुछ कम प्रभाव नहीं है । एक स्थानपर कई व्यक्ति गहरी निद्रामें सो रहे हों तो हम उनमेंसे जिसका नाम लेकर पुकारेंगे, वही उठकर खड़ा होगा । जब अचेतन अवस्थामें भी इसका इतना प्रभाव पड़ता है, तो इससे नित्य-जाग्रत् करुणावरुणालय श्रीहरि अपने अनुरक्त भक्तके प्रति क्यों आकर्षित न होंगे ? जब साधारण पुरुष भी किसी शरणापन्न दीन-हीन प्राणीके आर्त्तनादको सुनकर उसकी सहायताके लिये दौड़ पड़ता है, तब सर्वशक्तिसम्पन्न करुणामय हरि अपने अनुगत भक्तकी विपन्न वाणीकी किस प्रकार उपेक्षा कर सकते हैं ? उस समय तो उन्हें एक क्षणका विलम्ब भी असह्य हो जाता है । गजेन्द्रका उद्धार करते समय उन्हें पक्षिराज गरुड़की अव्याहत गति भी कुण्ठित-सी जान पड़ी और वे उन्हें छोड़कर पयादे ही दौड़े । इसीलिये कहा गया है कि—

रमत रमा के संग आनँद उमंग भरे,

'कहै रतनाकर' बदन दुति औरै भई,
बूँदें छई छलकि दृगनि नेह-नाधे पै।
धाए उठि बार न उबारन मैं लाई रंच,
चंचला हू चकित रही है बेग साधे पै।
आवत बितुंड की पुकार मग आधे मिली,
लौटत मिल्यौ तौ पच्छिराज मग आधे पै॥

इसी प्रकार प्रह्लाद और द्रौपदीकी रक्षाके लिये भी वे स्तम्भ और वस्त्रमें ही प्रकट हो गये। इसीका कविवर बोधाने अपनी विमल वाणीमें कैसा वर्णन किया है!

वह प्रीति की रीति कौं जानत थी,
तबही तौ बच्यौ गिरि ढाहन तें।
गजराज पुकारि कै प्रान तज्यौ,
न जर्‌यौ वह होरिका दाहन तें।
कबि 'बोधा' कछू न अनोखि यहै,
नहिं का बनै प्रीति निबाहन तें।
प्रहलाद के ऐसी प्रतीति करौ,
तब क्यौं न कढ़ें प्रभु पाहन तें॥

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। देखिये, जब माता गृहकार्योंमें लगी होती है और अपने पुत्रको गोदसे उतारकर इधर-उधर खेलमें लगा देती है, उस समय यदि थोड़ी ही देर बाद वह 'माँ-माँ' कहकर पुकारने लगता है तो क्या वह चिढ़ जाती है? नहीं, वह तो तुरंत ही उसे गोदमें लेकर प्यार करने लगती है। इसी तरह प्रभु, जो सारे जगत्‌के माता-पिता हैं, अपने अनन्य-शरण भक्तोंके मुखसे अपने सुमधुर नामोंका घोष सुनकर हठात् उनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं और उन्हें अपने निर्भय अङ्कमें उठाकर उनके सम्पूर्ण पाप-तापोंको शान्त कर देते हैं।

यों तो भगवान्‌के सभी नाम मन्त्रमय हैं, तथापि उनके 'राम'नामकी तो शास्त्रोंमें बड़ी ही महिमा गायी गयी है। वह छिपी हुई अग्निके समान है। यदि अज्ञानावस्थामें भी इसका उच्चारण किया जाय तो भी यह जीवके सारे प्रत्यवायोंको समूल भस्म कर देता है। इसकी महिमाको समझ-बूझकर जप करनेपर तो यह प्रज्वलित अग्निके समान तत्काल फल प्रदान करता है। किंतु एक बात अवश्य याद रखनी चाहिये—जिस मनुष्यने सब प्रकारकी आशा-तृष्णा और संकल्प-विकल्पोंको त्याग दिया है, वही इसका ठीक-ठीक रसास्वादन कर सकता है। जिस प्रकार मुखमें नमक लेकर चीनीकी ढेरीके ऊपर च[illegible] चींटीको उसकी माधुरीका आस्वादन नहीं हो सक[illegible] प्रकार वासनायुक्त पुरुषोंको नाम-जप करनेपर भी यथार्थ सुख नहीं मिल सकता। इसके लिये [illegible] वासनाओंको सदाके लिये जलाञ्जलि देनी होगी, त[illegible] यथार्थ 'रामरस'का अनुभव होगा। वास्तवमें रसना है, जो रामरसका आस्वादन करती है—विषय-वि[illegible] कूकर-शूकर भी चखते ही हैं, फिर उनमें और मनुष्यमें भेद ही क्या रहा? श्रीगोसाईंजी महाराज कहते हैं—

राम रटे रसना वही, सही सजीवन मूरि।
नहिं तो जिह्वा स्वान की, तुलसी डारहु धूरि॥

ऊपर कहा जा चुका है कि नाम और नामीका अभेद है। अतः जिस प्रकार भगवान् राम सम्पूर्ण विश्व-वृक्षके बीज हैं, उसी प्रकार राम-नाम भी सम्पूर्ण वाङ्मयका बीज है। जिस प्रकार बीजसे वृक्षका आविर्भाव होता है और फिर वही उसके फलमें भी स्थित रहता है, उसी प्रकार सारा प्रपञ्च श्रीरामसे ही प्रकट हुआ है और वे ही इसमें ओत-प्रोत हैं। इसी तरह राम-नाम भी सम्पूर्ण वाङ्मयमें व्याप्त है। जिसने इस अमृतमय नामका जप नहीं किया, उसका मनुष्यजन्म लेना व्यर्थ ही है। इसका आश्रय लेनेसे ही मानव-देहकी सार्थकता होती है। जिस प्रकार पारसके स्पर्शसे लोहा स्वर्ण हो जाता है, उसी प्रकार राम-नामके प्रभावसे जीव शिव हो जाता है। किसी कविने कहा है—

राम जपत कुष्टी भला, चुइ-चुइ परै जु चाम।
कंचन-देह केहि काम की, जा मुख नाहीं राम॥
पारस रूपी राम है, लोहा रूपी जीव।
जब जा पारस भेटि है, तब जिव होसी सीव॥

अतः मनुष्यको बाल्यावस्थासे ही रामनामका आश्रय लेना चाहिये। कुछ लोग पूछते हैं कि 'फिर वृद्धावस्था किस लिये है?' वे बड़ी भूल करते हैं; क्योंकि वृद्धावस्थामें—

आँखों पै तनेगा जाला, नाक से बहेगा नाला,
लाठी से पड़ेगा पाला, जरा जिंदगानी में।
खड़े-खड़े वस्त्र में करोगे मल-मूत्र त्याग,
पड़े-पड़े थूकते रहोगे पीकदानी में।
भक्ति क्या करोगे तब, शक्ति न रहेगी जब,
राम-नाम बोलने तुम्हारी बंद वानी में।
अतः योग योगसे औ भोगमें वियोग कर,
भजन करिये भगवानका जवानी में॥

जिसने रात-दिन नाम-जप करके अपनी जीभ और हृदयको पवित्र कर लिया है तथा जो जीवनभर इसी व्रतमें लगा रहता है, उसीको अन्त समयमें प्रभुका स्मरण होता है और वही प्रभुके परमधाममें प्रवेश कर सकता है। ऐसा नामनिष्ठ पुरुष यदि किसी बीमारीके कारण अन्तकालमें बेहोश हो जाय और भगवन्नाम-स्मरण न कर सके तो प्रभु स्वयं स्मरण करके उसका उद्धार कर देते हैं। वे स्वयं कहते हैं—

कफवातादिदोषेण मद्भक्तो न च मां स्मरेत्।
तस्य स्माराम्यहं नो चेत् कृतघ्नो नास्ति मत्परः॥

'यदि मेरा भक्त कफ-वातादि दोषोंके कारण (अन्तमें) मेरा स्मरण नहीं कर पाता तो मैं स्वयं उसे स्मरण करता हूँ। नहीं—(जीवनभर मेरा स्मरण करनेवाले भक्तको यदि उसके अन्तकालमें मैं बिसार दूँ) तो मुझसे बढ़कर कोई कृतघ्न नहीं हो सकता।' इस प्रकार जिस नामनिष्ठ भक्तके स्वयं प्रभु ऋणी हो जाते हैं और उसे भूलनेमें अपनी कृतघ्नता समझते हैं, उसके उद्धारके विषयमें क्या शङ्का हो सकती है! उसके-जैसा बड़भागी तो वही है। ठाकुर रामसिंहजी केलवा कहते हैं—

जातु बैर भाय भजि पाप हैं असोक पद,
स्वामी भाव ही तें जग-जाल में परैगो का?
बालमीक राम नाम जपि कैं कुकर्म जारे,
अनुक्रम जपैं वपु नाहिं उधरैगो का?
निंदक सिया कौ अघ टारि नीज लोक दीन्हौ,
बंदन किये तें चिता-अनल जरैगो का?
रामांकित उपल तरे हैं तोय-सिंधु तन,
'राम' उर धारैं भवसिंधु ना तरैगो का?

योगिराज गुमानसिंहजी कहते हैं कि 'यदि रामनाम-रूप दो तूँबोंको घट (हृदय) से बाँध ले तो संसार-सागरको गोपदके समान अनायास ही पार कर सकता है—

राम नाम द्वै तुंब कौं घट बिच बाँध गुमान।
भवसिंधू गोपद कलुक, तरनौ सहज प्रमान॥

अतः सब प्रकारकी वासना-कामनाओंको छोड़कर केवल भगवन्नामका ही आश्रय लेना चाहिये। नामकी डोरीमें प्रभु स्वयं बँध जाते हैं और जिनके बंदी स्वयं भगवान् हों, उन्हें फिर दुर्लभ ही क्या रह सकता है!

नाम-जपसे कुअङ्क मिट सकता है

(लेखक—श्रीस्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी)

श्रीभगवन्नामकी अपार महिमा है। यह निर्गुण निराकार ब्रह्म और सगुण साकार श्रीरामसे भी बढ़कर है—'ब्रह्म नाम ते नाम बड़'। भारी-से-भारी संकटोंका नाश और बड़ी-से-बड़ी कामनाओंकी पूर्ति भी नाम-जपसे सम्भव है—

जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥

श्रीभगवन्नाम-जपसे कालपर भी विजय हो जाती है। तभी तो कहा है—

कबहुँ काल नहिं ब्यापिहि तोही। सुमिरहु भजहु निरंतर मोही॥
नाम प्रसाद संभु अबिनासी।......
नाम पाहरू दिवस निसि......

अखिल-ब्रह्माण्डनायक परब्रह्म परमात्मा राम भी नाम-जापकके वशमें हो जाते हैं—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपनें बस करि राखे रामू॥

कहाँतक कहा जाय, नाम-जपसे तो असम्भव भी सम्भव और सम्भव भी असम्भव हो जाता है।

प्रारब्धकर्मकी प्रबलता सभी स्वीकार करते हैं। इसके सामने संसारकी सारी शक्ति हार मानती है। हम करना चाहते हैं कुछ और, हो जाता है कुछ और ही। संत सुन्दरदास भी कहते हैं—

तू कछु और विचारत है, नर! तेरौ विचार धर्यौ ही रहैगौ।

पञ्चदशीकारने भी प्रारब्धको प्रबल माना है—

अवश्यम्भाविभावानां प्रतीकारो भवेद् यदि।
तदा दुःखैर्न लिप्येरन्नलरामयुधिष्ठिराः॥

होनहार प्रबल होता है। तभी तो नल और युधिष्ठिर उसका कोई प्रतीकार न कर सके। पञ्चदशीकार पुनः लिखते हैं—

यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा।

अर्थात् होनहार तो होकर ही रहेगा और जो नहीं होनेका है, वह कभी नहीं होगा।

वेदान्तका भी डिण्डिम-घोष है—

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि—अर्थात् कल्पान्तरमें भी कर्मफल भोगना ही पड़ेगा।

इतना ही नहीं, प्रारब्धके सामने विद्या और पौरुषका भी कोई वश नहीं चलता—

भाग्यं फलति सर्वदा न विद्या न च पौरुषम्।

कविकुल कुमुद-सुधाकर कविवर कालिदास भी कहने लगे—
भवितव्यता बलवती।

प्रारब्धकी प्रबलताके सामने सूरदास भी झुक गये। कहने लगे—

करम गति टारी नाहिं टरै।
सीता हरन मरन दसरथ कौ, बन महँ बिपति परै॥

संत कबीर भी भाग्यकी प्रबलतापर चुप नहीं हैं। उनकी भी सुन लीजिये—

जीव। तू मत करना फिकरी।
भाग्य लिखी सो होइ रहेगी, भली बुरी सगरी॥

श्रीरामचरितमानसमें भी भाग्यकी प्रबलता स्थल-स्थल संकेत है—

(१) पार्वतीजी—
जातु जनि केहु कलंका। तुम सन मिटिहिं कि बिधि के अंका॥

(२) नारदजी—
कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार॥

(३) याज्ञवल्क्यजी—
भरद्वाज सादर सुनहु हरि इच्छा बलवान।

(४) वसिष्ठजी—
सुनहु भरत भावी प्रबल······।

(५) श्रीशंकरजी—
हरि इच्छा भावी बलवाना॥

इस प्रकार स्थल-स्थलपर पौराणिक ग्रन्थोंमें भाग्यकी प्रबलता बतायी गयी है। इसको पढ़-पढ़कर बहुत-से लोग तो हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाते हैं। जो होना है, वही होगा; फिर हम प्रयत्न क्यों करें। फलतः वे निराशाकी नदीमें डूबकर अपना जीवन खो देते हैं। पर बात और ही है। हम चाहें तो कठिन पुरुषार्थ—त्याग, वैराग्य, जप-तप और अनुष्ठानादिके द्वारा प्रारब्धपर अवश्य ही विजय पा सकते हैं। भगवान् सर्वसमर्थ हैं। वे असम्भवको सम्भव और सम्भवको असम्भव कर सकते हैं। उनकी कृपासे हम कालपर भी विजय पा सकते हैं। तभी तो कहा है—

तुलसी रेखा कर्मकी मेट सकत नहिं राम।
मेटै तो अचरज नहीं, समझ कियो है काम॥

याद रखना चाहिये कि भगवान् और भक्त प्रारब्धकर्मके अधीन नहीं हैं। प्रारब्ध तो उनका दास हो जाता है। तभी लिखा है—

कृष्णायत्तं च तद्दैवं स दैवात् परतस्ततः।
भजन्ति सततं सन्तः परमात्मानमीश्वरम्॥
दैवं वर्धयितुं शक्तः क्षयं कर्तुं स्वलीलया।
न दैवबद्धस्तद्भक्तश्चाविनाशी च निर्गुणः॥
(ब्र० वै० ग० खं०)

और भी देखिये—

लिखिता चित्रगुप्तेन ललाटाक्षरमालिका।
तस्य चालयितुं शक्त्या असुरैस्त्रिदशैरपि॥
यद्वाग्रा लिखितं भाले तन्मृषा नैव जायते।
ऋते श्रीरामदासानां प्रेमनिर्भरचेतसाम्॥

भगवान्के शरणागत भक्त, श्रीभगवन्नाम-जापक एवं भगवत्कथारसिक जन प्रारब्धके वश नहीं रहते। कोई भी दीन, दुखी, कोढ़ी, अपाहिज, दरिद्र और मूर्ख पुरुष भगवच्छरणागत होकर उनका नाम-जप करके अथवा उनकी भक्तिका अनुष्ठान करके इसी जन्ममें कृतकृत्य या पूर्णकाम हो सकता है। भगवच्छरणागतिकी सिद्धिके लिये श्रीभगवन्नामका जप अनिवार्य है। 'नमयति इति नाम'—अर्थात् जो भगवान्के सामने झुका दे, वही नाम है। नाम-जपसे शरणागति सिद्ध होकर मनुष्यका एक तरहसे पुनर्जन्म हो जाता है, जिससे उसका नया प्रारब्ध प्रारम्भ होने लगता है—जो 'हरि-इच्छा' ही है। तभी श्रीमद्गोस्वामीजी लिखते हैं—

मन्त्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥

यहाँ भगवन्नाम और भगवत्कथा ही मन्त्र है—

मन्त्रजाप मम दृढ़ बिस्वासा।
महामन्त्र जोइ जपत महेसू।
मन्त्र महामनि बिषय ब्याल के।
एक एव परो मन्त्रो राम इत्यक्षरद्वयम्।

भगवन्नाम और भगवत्कथामें बीज और वृक्षका सम्बन्ध है। अतः दोनोंका फल एक ही है। अन्तमें मैं यही कह सकता हूँ—

रटते जो हरिनाम हैं, नहिं पड़ते भवधार।
जो भूले हरिनाम को, डूबत हैं मझधार॥
डूबत हैं मझधार जगत्‌में आते-जाते।
कबहुँ न पाते चैन, दुःख भी नाना पाते॥
गावत कृष्णानन्द, संत-श्रुति संतत कहते।
रे मन! तजि अभिमान हरी-हरि क्यों नहीं रटते॥

सियावर रामचन्द्रकी जय!

भगवान्का नाम-स्मरण

(लेखक—आचार्य श्रीमाधवजी गोस्वामी)

पूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा प्राप्त करनेके लिये यदि अधुना कोई बलवत्तर उपाय है तो वह केवल भगवान्का कीर्तन एवं स्मरण ही है। इसीलिये तो भगवान् अपने ही श्रीमुखसे देवर्षि नारदके प्रति आज्ञा करते हैं—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

भगवान् तो केवल जहाँ उनके भक्त दृढ़तापूर्वक भगवद्गुणगान करते हों, वहीं प्रसन्नतापूर्वक स्थिररूपेण विराजते हैं। इस भगवद्वाक्यसे जीवोंके लिये कलिकालमें आत्म-श्रेय सम्पादन करनेका एवं प्रभुकी तुष्टि प्राप्त करनेका उपाय केवल भगवत्स्मरण और कीर्तन ही है—इसका स्पष्ट निर्देश किया गया है। 'कलौ केशवकीर्तनात्'—यह वाक्य कलियुगमें केवल भगवान् केशवके कीर्तनको ही भवसागरसे पार होनेका एकमात्र साधन बतलाता है।

प्राचीन मन्त्रद्रष्टा ऋषि-मुनियोंने वेद-शास्त्र-पुराणादिके सतत परिशीलन एवं स्वाध्यायद्वारा मानव-कल्याणके अनेक उपाय बतलाये हैं—जिनमें कर्म, ज्ञान, भक्ति, उपासना, ध्यान आदि अनेक उपायोंका समावेश हो जाता है। जिस-जिस युगमें जो जीव हुए, वे अपने अधिकारानुसार इन वेदोक्त साधनोंके द्वारा आत्मकल्याण सिद्ध कर सके।

कलियुगमें मानवकी अध्यात्मशक्ति क्षीण हो जानेसे एवं ईश्वर-प्राप्तिके मार्ग लुप्त हो जानेसे उद्धारके लिये केवल एकमात्र हो उपाय अवशिष्ट रहा और वह केवल 'भक्ति'। इस भक्तिके माध्यमसे सतत भगवन्नाम-स्मरणसे ही जीवकी एकाग्रता एवं इन्द्रियोंका सदुपयोग भगवान्में होगा। इसी दृष्टिबिन्दुसे हमारे आचार्योंने अन्य साधनोंकी अपेक्षा भगवद्भक्ति तथा नाम-स्मरणपर ही अधिक दिया है। विशुद्ध स्नेहमयी भक्ति और नाम-स्मरणमें ही एकाग्र रहनेवाला और उसीके द्वारा भगवा साक्षात्कार करके अलौकिक आनन्द प्राप्त करनेवाला कभी मोक्षको नहीं चाहता। वह तो यही चाहता है भगवान् कैसे प्रसन्न हों। वह न तो धन चाहता है न पुत्र, वैभव तथा राज्य ही। किसी भी सांसारिक नाश पदार्थकी उसे आवश्यकता ही नहीं रहती, उसे तो के सतत भगवान्के स्मरणमें ही दृढ़ता एवं आस्था रहती हाँ, भगवान्की कृपासे जो कुछ भी उसे मिल जाता उसीमें वह संतोष मानकर अन्य पदार्थोंकी ओर न देखता हु केवल स्मरण एवं चिन्तनमें ही निमग्न रहता है। लोकोत्तर भक्तोंके दर्शनमात्रसे तथा इनकी चरणधूलिसे पवित्र नहीं होगा?

भगवान्के स्मरणसे अनेक जीवोंका उद्धार हुआ एवं अनेक प्राणी दुःखसे विमुक्त होकर परम, चरम शाश्वत सुखको उपलब्ध कर सके हैं। महाभारतमें भी दृष्टान्त उपलब्ध है कि जब महामुनि दुर्वासा वनवा रहते हुए पाण्डवोंके अतिथि बनकर आये, तब पाण्डवे अक्षयपात्रमें उनका सत्कार करनेके लिये कुछ भी न क्योंकि सती द्रौपदीके भोजन कर लेनेके बाद उसमें कु न बचता था। इस संकटमें कृष्णा द्रौपदीने श्यामसुन्दर ही स्मरण किया था और भगवान्ने पधारकर पाण्डवों संकटसे छुड़ाया था। भगवान् सदा भक्तोंके पराधीन हैं। सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, सर्वेश्वर, जगत्‌के चालक और वि व्यापक होते हुए भी भक्तके वशमें हैं; किंतु वह भक्त स होना चाहिये।

कौरवोंकी सभामें जब दुष्ट दुःशासनके द्वारा रजस्वला द्रौपदीके वस्त्र खींचे जा रहे थे, तब द्रौपदीने आर्तस्वरसे भगवान्‌का स्मरण किया और भगवान् पधारे । उसको दुःखसे विमुक्त किया । भक्तराज प्रह्लादजी जब हिरण्यकशिपुसे संत्रस्त हो उठे, तब मन-ही-मन उन्होंने भगवान्‌को याद किया। प्रभुने नृसिंहरूपमें प्रकट होकर और असुरको मारकर भक्तकी रक्षा की । गजेन्द्रकी पुकार सुनकर ग्राहके चंगुलमेंसे उसे छुड़ाया । भक्त अम्बरीषको दुर्वासा मुनिके शापके भयसे बचा लिया । भगवान् कोमलहृदय और परम कृपालु हैं। वे कभी अपने भक्तका दुःख नहीं सह सकते । अतः निर्मल, विशुद्ध, निःस्वार्थ स्नेहसे ही भगवान्‌का स्मरण और चिन्तन करना चाहिये । किसी भी देशमें, किसी भी अवस्थामें और किसी भी कालमें भगवान्‌के स्मरणको कदापि नहीं छोड़ना चाहिये ।

सोलहवीं शताब्दी भारतवर्षका भक्तिकाल कहा गया है । इस शतीमें व्रजमण्डलमें महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी, श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु आदि महानुभावोंने भक्ति-भागीरथीका पुनीत प्रवाह बहाते हुए संसारदावानलसे त्रस्त अनेकों जीवोंको भगवान्‌के नामस्मरणकी गरिमा एवं महिमा बतलाकर उनका उद्धार किया था । उस समय देश विधर्मी शासकोंके पाँवतले दबा था । हिंदू धर्म और भारतीय संस्कृतिके ऊपर भयानक और अमानुषी अत्याचार उन यवन शासकोंके द्वारा किये जाते थे । धर्मकी डाँवाडोल नैयाको पार लगानेका सारा श्रेय उपर्युक्त आचार्यचरणोंको ही समर्पित किया जा सकता है ।

उस युगमें व्रज-जनपदमें श्रीसूरदासजी, कुंभनदासजी, परमानन्ददासजी, कृष्णदासजी, गोविन्दस्वामीजी, छीत-स्वामी, नन्ददासजी और चतुर्भुजदासजी—इन अष्टछाप महाकवियोंकी स्थापना गोस्वामीजी श्रीविठ्ठलनाथजीने करके नाम-महिमाका अद्वितीय दर्शन कराया था । ये सब महानुभाव केवल वाणीमात्रसे ही नहीं, किंतु सतत स्मरण एवं चिन्तनके द्वारा राग और संगीतके माध्यमसे भगवान्‌की कल्याणकारिणी विविध व्रजलीलाओंका स्वानुभवद्वारा साक्षात्कार कर सके थे । जो भी लीलाकी अनुभूति कर उसे रागोंमें ओतप्रोत कर लेते थे । फलतः इनके भगवान् एक होकर स्वानुभव कराते थे और वात स्पर्शादि अलौकिक दिव्य सुख देते थे । ऐसा है स्मरणका प्रभाव । यदि हम सच्चे दिलसे निष्कपट फलाशारहित होकर इस प्रकार चिन्तन-स्मरणमें नि लगायें तो अवश्य चिर-सुख प्राप्त कर सकें । आ भौतिक जगत्‌में यही एकमात्र दिव्य संजीवनी महौषधि है ।

एक बार मेरे पूज्य पितृचरण (नित्यलीलास्थ श्रीद्वारकेशलालजी महाराज) को, किसीने पूछा—'महार हम बरसोंसे भगवत्कथा सुनते आये हैं, अनेकों बार अ महानुभावों, विद्वानों, शास्त्रियोंद्वारा धार्मिक प्रवच सुन चुके; किंतु उसका असर क्यों नहीं होता ? उस उपदेशको सुननेमें आनन्द क्यों नहीं आता ? यह बताइये कि हमारे जीवनमें उसका लाभ होगा ?'

तब पूज्य पितृचरणने बताया कि—'मिश्री अमृ होती है । सभी लोग खाना चाहते हैं, किंतु वह स्वस्थ नीरोग लोगोंके लिये ही अमृतरूप है । यदि ज्वरग्रस्त मिश्री खायगा, तो वह उसे कड़वी ही लगेगी । उसी प्रकार जबतक हमलोग सांसारिक बुखारमें जकड़े तबतक यह भगवत्कथारूपी अमृत अच्छा नहीं लग जैसे बुखारवालेका मुँह कटु हो जाता है और वह मीठा खा सकता, वैसे ही आज हम कथामृतरूपी मधुर पदा ग्रहण करनेकी सामर्थ्य खो बैठे हैं । जब भगवत्कृपा हो तभी यह रोग दूर होकर कथा-श्रवणमें रुचि आने लगे श्रीगोपीजनोंने श्रीभागवत रासपञ्चाध्यायीमें गोपीगीत-प्र कहा है—'तव कथामृतं तप्तजीवनम्' संसारमें तपे जीवोंको केवल भगवान्‌की कथारूप अमृत ही संजी प्रदान कर सकता है ।'

भगवान् सबको सद्‌बुद्धि प्रदान करें और सभ चित्तवृत्ति स्मरण-चिन्तन-कथाकी ओर केन्द्रित हो, यह प्रा करते हुए मैं अपनी लेखनीको विराम देता हूँ ।

'श्रीकृष्णः शरणं मम'

[अखण्डभूमण्डलाचार्यवर्य श्रीवल्लभाचार्यद्वारा प्रकटित शुद्धाद्वैत-सम्प्रदायका भगवन्नाम-महामन्त्र]

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश' साहित्यरत्न)

सनातनधर्मके वेद-पुराणादि सभी शास्त्रोंमें भगवत्-शरणागतिकी महिमा देख हमारे आचार्यश्रीने भक्तजनोंको भक्तिमार्गीय शरणमन्त्रके जप-कीर्तनादिका उपदेश दिया है, जैसा कि निम्न श्लोकमें स्पष्ट है। यों तो श्रीभगवान्के जितने नाम हैं, सभी मन्त्रवत् ही हैं और सभीका महत्त्व समान है; किंतु शास्त्रीय मर्यादानुसार अपने गुरुदेवके मुखारविन्दसे प्राप्त नाममन्त्र ही जप तथा कीर्तनके लिये श्रेयस्कर तथा शीघ्र एवं पूर्ण फलप्रद माना गया है ।

आचार्यश्रीका आदेश—

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम ।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः ॥

इस श्लोकमें 'अष्टाक्षर' महामन्त्रका स्पष्ट उच्चारण करके उद्घोषपूर्वक प्रतिक्षण रटनेका उल्लेख किया गया है। यहाँ 'वदद्भिः' शब्द है और नवरत्नमें इसीसे आचार्यचरणने अष्टाक्षर मन्त्रका स्पष्ट उच्चारण करना कहा है । वहाँ जपका आदेश नहीं है; पर सदैव, अहर्निश, सतत, प्रतिक्षण स्पष्ट उच्चारण करनेके लिये आदेश है। इससे स्पष्ट है कि केवल मानसिक जपमें ही अष्टाक्षरके विनियोग करनेका अभिप्राय नहीं है। इसीसे सम्प्रदायमें अष्टाक्षर मन्त्रका सर्वदा, अहर्निश सर्वावस्थामें उच्चारण करना, रट लगाना, उद्घोष करना, नामध्वनि (नामधुन) करना आदि प्रचलित है, जो सर्वथा भक्तिमार्गके सिद्धान्तानुकूल एवं वैध है। अतः अष्टाक्षर मन्त्रका केवल जपात्मक ही उपयोग हो, अन्यत्र नहीं (यानी जोरसे उच्चारण, रटन, नामध्वनिमें उपयोग न हो)—यह कहना शास्त्रसम्मत नहीं है। 'उपदेश-शङ्कानिरासवाद' ग्रन्थमें 'वस्तुतस्तु नायं जपः' इत्यादि लेखके द्वारा यह स्पष्ट प्रतिपादित किया गया है कि अष्टाक्षर मन्त्र केवल जपार्थ ही नहीं है अपितु इसका उपयोग कीर्तन (अर्थात् नामध्वनि) के लिये एवं स्पष्ट उच्चारण, रटनेके लिये भी होना चाहिये। अष्टाक्षर महामन्त्र 'पुष्टि सम्प्रदायमें' नाम-मन्त्र संज्ञासे सुप्रसिद्ध है। इस नाममन्त्रके संकीर्तनसे भगवद्भक्तोंको परम आनन्द एवं शान्तिका अनुभव होता है ।

अर्धशताब्दीसे प्रायः सभी वैष्णव-सम्प्रदायोंमें भगवन्नाम-कीर्तनका पुनः प्रचुर प्रचार हो रहा है और इसका परिणाम सभी सम्प्रदायोंके तथा विश्वके कल्याणके लिये बहुत ही हितकारी हुआ है। जिस प्रकार 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' नाम महामन्त्रके कीर्तनका प्रचार श्रीचैतन्य महाप्रभुके आदेशके अनुसार बंगदेशमें शुरू हुआ और आज वह सारे भारतको पवित्र कर रहा है, उसी प्रकार अष्टाक्षर महामन्त्रके जप एवं कीर्तनका सामूहिक प्रचार अब कुछ कालसे होने लगा है, जिससे जनता-जनार्दनको बहुत कुछ पारमार्थिक लाभ मिल रहा है। वह बहुत ही शुभ लक्षण है।

यह निर्विवाद सिद्ध है कि एकान्तमें एक व्यक्तिसे की गयी प्रार्थनाकी अपेक्षा सामुदायिक प्रार्थना जनताके लिये अधिक प्रभावोत्पादक होती है। उसी प्रकार एकाकी जप-कीर्तनकी अपेक्षा समुदायमें जप-कीर्तन अधिक लाभप्रद होगा, यह सदाचार-सिद्ध है; क्योंकि इस घोर कलियुगमें जब जीवोंके कल्याणके अन्यान्य साधन तिरोहित हो रहे हैं, भगवद्भक्तिके अथवा धर्मके नामपर सर्वत्र अहंकार, पाखण्ड, स्वार्थयुक्त व्यक्तिपूजनका ताण्डव चल रहा है, सभी विलासितापरायण हो रहे हैं, सत्त्व, सदाचार, विवेक, वैराग्य, ज्ञान प्रभृतिसे लोग बहिर्मुख होकर भगवद्भक्तिसे दूर हो रहे हैं तथा अपने इष्टदेवकी सेवा और मन्त्रजापसे विरत हो रहे हैं, ऐसे समयमें 'सामूहिक नामकीर्तन'के प्रचारसे ही लोगोंकी कुछ भलाई सम्भव है। अतः सम्प्रदायके परमादर्श महानुभावगण श्रीहरिरायजीके इस सिद्धान्तको स्मरण करते हुए—

अस्माकं साधनं साध्यं श्रीकृष्णः शरणं मम ।

—ध्यानमें रखकर एकमात्र श्रीकृष्ण-नामका जप-कीर्तन ही करते रहे हैं।

भक्तश्रेष्ठ प्रह्लादजीने गर्भावस्थामें ही नारदजीके समान आदर्श भक्त-कीर्तनकारके द्वारा नाम-संकीर्तन सुना और जन्मके बाद वाक्शक्ति प्राप्त होते ही न केवल उन्होंने स्वयं

नाम-कीर्तन प्रारम्भ किया, परंतु गुरुगृहमें विद्याभ्यासके अवसरपर अपने सहपाठी असुरबालकोंसे भी नामसंकीर्तन कराया। उस संकीर्तनके अवसरपर प्रह्लादजीने जो प्रवचन किया है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं सिद्धान्त-प्रतिपादक है, जिसके मननसे हमें निर्गुण भक्तिमार्ग (पुष्टिमार्ग)का एक यथार्थ दिग्दर्शन मिलता है।

'अष्टाक्षरार्थ-निरूपण' नामक ग्रन्थमें इस अष्टाक्षर महामन्त्रकी कैसी दिव्य महिमा कही गयी है—

यः स्मरेत्तु सदा मन्त्रं 'श्रीकृष्णः शरणं मम।'
अष्टाक्षरं जपेन्नित्यं यमो दृष्ट्वा हि शङ्कते॥

"जो प्राणी सदैव 'श्रीकृष्णः शरणं मम' इस प्रकार स्मरण करता है, जो इस अष्टाक्षर मन्त्रका नित्यप्रति जप-कीर्तन करता है, उसको देखकर यम निश्चय शङ्कित होते हैं।" इस महामन्त्रके आठों अक्षर स्वरूपात्मक हैं। जिस प्रकार भगवान्‌का प्रत्येक अङ्ग रसरूप और दिव्यातिदिव्य है और उनके दर्शनेच्छुकोंके अपनी भावनाके अनुसार समस्त मनोरथ पूर्ण करनेमें समर्थ है, उसी प्रकार इस अष्टाक्षर महामन्त्ररूप अक्षरात्मक भगवद्विग्रहका प्रत्येक अक्षर समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेमें समर्थ है।

श्रीवल्लभहार्दविद् महानुभाव श्रीहरिरायजीके विविध ग्रन्थोंमें 'शिक्षापत्र'का बहुत ही विशिष्ट स्थान है। इससे प्रत्येक वैष्णव इसे अपने पास रखना परम सौभाग्य समझता है। इस ग्रन्थकी सम्प्रदायमें बड़ी ही मान्यता है। इसका अध्ययन, पठन-पाठन-भजनादि प्रत्येक वैष्णव भाई बड़ी ही श्रद्धा-भक्तिसे करता है। इस ग्रन्थमें अष्टाक्षर महामन्त्रके जप-कीर्तनका अधिक स्पष्टीकरण कर दिया गया है। उसके कुछ वचनोंको यहाँ उद्धृत करते हैं। पञ्चम शिक्षापत्रका सातवाँ श्लोक है—

अष्टाक्षरमहामन्त्रो वक्तव्य इति निश्चयः।
सर्वदा सर्वभावेन तेन सर्वं भविष्यति॥

श्रीगोपेश्वरजी इस श्लोककी टीकामें यही कहते हैं कि जीव तो स्वभावसे ही दुष्ट है। कुछ भी न बन पड़े तो अष्टाक्षरको महामन्त्र जानकर उस अष्टाक्षर ('श्रीकृष्णः शरणं मम') को ही कहता रहे। इससे अष्टाक्षर उच्चारण करना आवश्यक एवं उपकारक सिद्ध होता है। आगे चलकर २३वें शिक्षापत्रमें पुष्टिमार्गीय जीवोंकी बहिर्मुखताकी निवृत्तिके लिये सत्सङ्ग, श्रीमद्भागवतका पठन-पाठन तथा भावार्थ समझना इत्यादिके लिये आज्ञा करके सत्पुरुषोंके साथ निवेदन-मन्त्रका स्मरण करनेके लिये और भावनापूर्वक नामोच्चारण करनेके लिये शिक्षा तथा आज्ञा देते हैं।

श्रीमद्भागवत, द्वादशस्कन्धमें श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥

'यद्यपि कलियुग दोषोंका खजाना है, फिर भी इसमें एक बड़ा गुण है, जो श्रीकृष्ण-नामका कीर्तन करते हैं, वे बन्धनसे छूटकर परमात्माको प्राप्त करते हैं।' उपर्युक्त श्लोकके अनुसार भी अष्टाक्षर नाम-महामन्त्रका उच्चस्वरसे कीर्तन करना परम कर्तव्य है। शिक्षापत्रके पढ़नेवाले तो अष्टाक्षरका कीर्तन आवश्यक मानते हैं।

महानुभाव श्रीहरिरायजी अपने 'स्वमार्गीयशरण-समर्पण-सेवादिनिरूपण' नामक ग्रन्थके ८३वें श्लोकमें आज्ञा करते हैं—'निर्लज्जो नाम कीर्तयेत्।' अर्थात् लोकलज्जाका परित्याग करके नाम-संकीर्तन करो। और पुष्टिमार्गमें जहाँ-जहाँ 'नाम' शब्द आया है, वहाँ यह अष्टाक्षर महामन्त्र ही समझा जाता है। अतः शरणागतिकी भावनाके साथ इस महामन्त्रका जप तथा कीर्तन दोनों ही कर्तव्य हैं। इसी ग्रन्थके ७६वें श्लोकमें भी आपश्री आज्ञा करते हैं—

गुणान् गायेदथो नाम कीर्तयेत्सदसि स्थितः।

इसका भावार्थ स्पष्ट है कि प्रथम भगवान्‌का गुण-गान करे, तदनन्तर सभामें स्थित होकर भगवन्नामका कीर्तन करे। श्रीमद्वल्लभमतानुयायी नाममन्त्र अथवा नामदीक्षाके रूपमें 'श्रीकृष्णः शरणं मम'—इसीको जानते हैं। नाम-संकीर्तनका लक्ष्य सम्पूर्ण दोषनिवृत्ति और भगवत्प्राप्ति ही है। आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक द्विविध दोषोंके निवारणार्थ श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण आवश्यक हैं। श्रवण और स्मरणके बीचमें सर्वत्र कीर्तनकी आवश्यकता है। श्रवण और स्मरण—ये दोनों कीर्तनके 'साधन' और 'फल' हैं। स्मरणकी दृढ़ता श्रवण किये हुए मन्त्रका बारंबार कीर्तन करनेसे ही होती है। अतएव शुद्धाद्वैतमतानुयायी वैष्णवोंको इस अलौकिक नाममन्त्रकी महिमा समझकर जिह्वासे इस नाममन्त्रका सदा उच्चारण करना चाहिये। और साथ ही मन्त्रार्थकी भावना करनी चाहिये, जिसका

आदेश श्रीहरिरायचरण 'श्रीकृष्णशब्दार्थनिरूपण'नामक ग्रन्थमें करते हैं।

श्रीभगवन्नामका जप करना आवश्यक है। इसकी महिमा, आवश्यकता और महत्ताका सभी शास्त्रोंमें विशेषरूपसे प्रतिपादन किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीताके विभूतियोगमें भगवान् श्रीकृष्ण आज्ञा करते हैं कि—'समस्त यज्ञोंमें जपयज्ञ मैं हूँ—'**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि**' सर्वशास्त्रोंमें जपसे इष्टसिद्धिकी प्राप्ति होती है। '**जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः।**' जपसे अवश्य-अवश्य सिद्धिकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें किसी प्रकारका संदेह नहीं। महर्षि पतञ्जलिने योगदर्शनमें जपकी अपूर्व महिमा बतलायी है। जपसे सब प्रकारके क्लेशोंकी निवृत्ति होती और समाधि सिद्ध होती है।

अतएव हमें अपने इष्ट इस अष्टाक्षर महामन्त्रका यथाशक्ति अहर्निश नियमपूर्वक अवश्य जप करना चाहिये।

महामन्त्रकी महिमा तथा अक्षरार्थ

श्रीगुसाईंजी श्रीमत्प्रभुचरण 'अष्टाक्षररहस्यनिरूपणम्' नामके ग्रन्थमें आदेश करते हैं कि श्रीकृष्ण-नाम सदैव जपना कर्तव्य है। जो अष्टाक्षर महामन्त्रका जप करते हैं, उनके समस्त पाप भस्म हो जाते हैं और उन्हें परमानन्दकी प्राप्ति होती है।

(१) **श्री**—सौभाग्य देता है, धनवान् और राजवल्लभ बनाता है।

(२) **कृ**—यह पापका शोषण करता है।

(३) **ष्णः**—आधिभौतिक,आध्यात्मिक और आधिदैविक —इन तीन प्रकारके दुःखोंका हरण करता है।

(४) **श**—जन्म-मरणका दुःख दूर करता है।

(५) **र**—प्रभुसम्बन्धी ज्ञान देता है।

(६) **णं**—प्रभुमें दृढ़भक्ति कराता है।

(७) **म**—भगवत्-सेवाके उपदेशक गुरुदेवमें प्रीति कराता है।

(८) **म**—प्रभुमें सायुज्य कराता है, जिससे पुनः जन्म न लेना पड़े।

भक्तिमार्गका सायुज्य ज्ञानमार्गीय सायुज्यसे कहीं विलक्षण है।

इस प्रकार इन आठ अक्षरोंके उच्चारणमात्रसे ही सब कुछ सिद्ध होता है। सिद्धि सदैव घरमें रहती है, समस्त प्रकारके आनन्दोंकी उपलब्धि होती है; सारी विघ्न-बाधाएँ, बीमारियाँ तथा ग्रहजनित दोष दूर होते हैं। भोग-वैराग्य और भक्तिके साथ ही दुर्लभ भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होती है।

आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक—इन त्रिविध तापोंकी निवृत्तिके लिये '**श्रीकृष्णः शरणं मम**'—मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। सबके आक्रमण एवं अपमान-सहन तथा निवारणके लिये भी '**श्रीकृष्णः शरणं मम**' उत्तम साधन है।

अष्टाक्षर कलियुगका महामन्त्र है। इससे सहजमें ही जीवोंका उद्धार हो जाता है। समस्त शास्त्रोंका सार यही है कि जीव भगवान्‌की शरण ग्रहण करे और सदैव शरण-भावनायुक्त ही रहे। भगवान् शरणागतके समुद्धारक हैं। अर्जुनको भी गीतामें यही उपदेश दिया है। वेदादि सभी शास्त्रोंमें शरणागतिका बहुत महत्त्व दिखलाया गया है। इसी तत्त्वको कार्यान्वित करनेके लिये पुष्टि-सम्प्रदायकी नामदीक्षामें अष्टाक्षर मन्त्रका विधान किया गया है।

जपमाला करनेके समय शारीरिक शुद्धि तथा मानसिक एकाग्रता आवश्यक है। इसमें अपरसका और समय दोनोंका कोई आग्रह नहीं है। जिनको जब समय मिले, जप कर सकते हैं। हाँ, यह ध्यान रखनेकी बात अवश्य है कि जबतक माला पूरी न हो, तबतक अन्य कार्य अथवा अन्य किसी प्रकारका वार्तालाप नहीं करना चाहिये। अशौचके दिनोंमें इस अनुष्ठानकी संख्यागणना नहीं करनी चाहिये। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी प्रसवावस्था और रजस्वलावस्थामें इस अनुष्ठानकी मालाकी गणना सर्वथा न करें।

इस लेखमें निवेदन किये हुए शब्दोंपर ध्यान देकर पाठक भगवन्नाम '**श्रीकृष्णः शरणं मम**' का सेवन करें। यही मनोरथ है।

भगवन्नाम-महिमा

(लेखक—श्रीसच्चिदानन्द सम्प्रदायाचार्य श्री १०८ महाराज श्रीधर्मदासजी व्याख्यानवाचस्पति, धर्मभूषण)

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां
सकलनिगमवल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम् ।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम ॥
(स्कन्दपु० प्रभासखं०)

'भृगुवर शौनक ! श्रीकृष्ण परमात्माका नाम सकलनिगम-ओंका सत्फल, चैतन्यरूप मङ्गलोंका मङ्गल और मधुरसे मधुर है । इस नामका जो श्रद्धासे गान करता है, उसे तो संसार-सागरसे पार करता ही है, किंतु अवहेलना (अनादरसे नेन्दा) से भी एक बार भी उच्चारण करनेवालोंको यह र-बन्धनसे मुक्त करके शाश्वत सुखमें पहुँचा देता है ।'

परमात्माका अंशरूप यह जीव ब्रह्मसे पृथक् हो गया है; एव जबतक वह अपने स्वरूप ब्रह्ममें न पहुँच जायगा, शान्ति नहीं मिलेगी । शान्तस्वरूप परमात्मासे पृथक् र, यह इस नश्वर विश्वमें आया है और सदा शान्तिकी ़में व्यस्त है; परंतु इसको शान्ति कहीं मिलती ही नहीं । को प्राप्त करनेपर ही शान्ति मिल सकती है और ब्रह्मको करनेका मुख्य साधन उसका नाम-गान ही है ।

भगवन्नाम-महिमाके सम्बन्धमें उन महापुरुषोंकी अनुभव-वाणीसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाण क्या हो सकता है, ़्होंने नाम-महिमाकी खोजमें सम्पूर्ण जीवन खपा दिया । प्रभु श्रीप्राणनाथ कृष्णनाम-महिमाका उल्लेख करते कहते हैं—

न आवे तोले एक ने, मुख श्रीकृष्ण कहत ।
सेद्ध प्रगट पाधरी, कविता कवि करंत ॥पर न आवे०
ट करो नर-मेध, अश्व-मेध अनन्त ।
नेक धर्म धरा विखे, तीर्थ वास वसंत ॥पर न आवे०
ध करो साधन, विप्र मुख वेद वदंत ।
कल क्रिया सुधर्म पालो, दया करो जीव-जन्त ॥पर न आवे०
त करो विध विधना, सति थाओ शीलवन्त ।
व धरो साध संतना, ज्ञानी ज्ञान कथंत ॥पर न आवे०
परी बहु विध देह दमो, सर्व अंग दुख सहंत ।
तोले न आवे एक ने, मुख श्रीकृष्ण कहंत ॥पर न आवे०
महेराज कहे मुख ये धन, जो बली रुदे रमन्त ।
चौदह भवन ते जित्यौ, धन धन ये कुलवन्त ॥

स्वामी प्राणनाथजी कहते हैं कि 'कविगण भले ही हजारों कविताएँ रच डालें, यज्ञ करनेवाले भले ही करोड़ों यज्ञ करें, युग-युगतक तीर्थवास करें और साधना करते हुए सिद्ध बन जायँ, विप्रगण चारों वेदोंका निरन्तर अध्ययन और मनन करें तथा स्वधर्म-पालनमें तत्पर रहें, दया-भाव रक्खें, विविध प्रकारके व्रत-नियमोंका पालन करें, सत्यवादी तथा शीलवान् बनें, पृथ्वीपर साधु बनकर भ्रमण करें, ज्ञानवान् होकर ज्ञानका प्रवचन करें, तपस्वी बनकर पञ्चाग्नि तपें—इस प्रकारके परमात्म-मिलनके उत्तम साधनोंको साधते हुए वे शरीरको जर्जरित कर दें; पर ये समस्त उच्च मानी जानेवाली क्रियाएँ भी 'कृष्ण' नामके समान नहीं हैं । श्रीमेहेराज प्राणनाथजी कहते हैं—वह मुख धन्य है जिससे दिन-रात 'श्रीकृष्ण' नाम उच्चारण होता रहता है । जिसके मन और वचनमें भगवन्नाम विराजमान है, वही भक्त है; उसीने सारे संसारको जीता और वही कुलवंत है । ऐसे ही लोगोंसे—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन ।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिन्
लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ॥
(स्कन्दपु० माहे० खं० कौ० खं० ५५ । १४०)

'जिसके मानसमें भगवन्नामका सम्यक्तया संचार हो गया है, वह अपार संवित्-सुखके सागर ब्रह्ममें लीन हो जाता है । ऐसे भक्तोंके जन्ममात्रसे कुल पवित्र एवं जननी कृतार्था और पृथ्वी पुण्यवती हो जाती है ।'

परब्रह्म परमात्माके नामको जान लेना या रट लेना सुगम है, पर नामकी महिमाको समझना असाध्य नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य है । बड़े-बड़े महर्षि अवतारी पुरुष भी पार नहीं पाते, तो साधारण मनुष्य कैसे पार पा सकता है ? फिर भी आत्मतोषार्थ कुछ लिखे बिना नहीं रहा जाता । प्रेरणा भगवान्‌से ही मिलती है । उसे व्यक्त करनेके लिये हृदय आतुर होता है और टूटे-फूटे शब्दोंमें व्यक्त करनेके पश्चात् ही शान्ति मिलती है । महापुरुषोंका कथन है कि परमात्माका

नाम किसी रूप और किसी भी अवस्थामें लिया जाय, वह कल्याण ही करता है।

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥

(श्रीमद्भागवत ६। २। ४९)

'अजामिल-जैसे पापीने मृत्युके समय पुत्रके बहाने भगवन्नामका उच्चारण किया, जिसके फलस्वरूप उसे परमपद प्राप्त हुआ। फिर, जो लोग श्रद्धाके साथ नाम-स्मरण करते हैं, उनकी मुक्तिमें संदेह कैसे हो सकता है?'

पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान् नार्हति यातनाम्॥

(श्रीमद्भागवत ६। २। १५)

आदरसे लिया गया भगवन्नाम तो महान् दुर्लभ फल प्रदान करता ही है; अवहेलनासे भी और श्रीमद्भागवतके अनुसार "जो मनुष्य गिरते, पैर फिसलते, अङ्ग-भङ्ग होते, साँपके डँसते, आगमें जलते एवं चोट लगते समय भी 'हे हरे!' कहकर, द्रवित हृदयसे भगवन्नामका उच्चारण करता है, वह भी यम-यातनाको नहीं प्राप्त होता।"

इसके अतिरिक्त आप अपने अन्तःकरणसे खूब विचारकर देखेंगे, तो पायेंगे कि भगवन्नाम-स्मरणमें संसारको एक सूत्रमें पिरोकर एकात्मभाव प्रदान करनेकी अपूर्व क्षमता है। भारतीय वाङ्मय तथा इतिहासको बदल देनेवाले उच्चकोटिके संतोंकी विचारसरणीके अनुसार भगवन्नाम ही परम कल्याणका साधक और मोक्ष-सुखका पवित्रतम मार्ग है। भगवन्नाम-चिन्तनसे सांसारिक बन्धन सहज ही शिथिल होते हैं और हृदयान्धकार दूर होता है। महर्षि व्यासजी श्रीमद्भागवतमें लिखते हैं—

तदश्मसारं हृदयं बतेदं
यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो
नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः॥

(श्रीमद्भागवत २। ३। २४)

'हे सूतजी! वह हृदय मनुष्यका नहीं लोहेका है, जो मङ्गलमय भगवान्‌के नामोंका श्रवण-कीर्तन करनेपर भी, पिघलकर परमात्माकी ओर नहीं बहता। जब हृदय पिघल जाता है, तब नेत्रोंसे आँसू बहने लगते हैं एवं शरीरके रोम-रोम नाच उठते हैं।' भगवन्नाम वह शक्ति है, जो तमाम पापराशियोंको काटकर हृदयको निर्मल बना देती है। जिस मनुष्यका हृदय सर्वनियन्ता उस परमात्माके नाम-रूप-रस-सागरमें डुबकी लगाकर आत्मविभोर न बन जाय, व्यासजी उसे मनुष्य कहनेके लिये तैयार नहीं दीखते। भगवन्नाम-महिमाके सम्बन्धमें स्वामी श्रीमुकुन्ददासजीका यह पद्य मननीय है—

नाम सुमिर नर बावरे, क्यों फिरत भुलाना।
कंचन कोटिं पहार दे, गज हाथी के दाना।
कोटि गौ नित दान दे, नहीं नाम समाना॥
सुख सम्पति अरु साहेबी, पद इन्द्र समाना।
एक बार होय जायँगे, घर-बार सबै बिराना॥
बेद पढ़ि-पढ़ि वृद्ध भये, पढ़ि जन्म सिराना।
हाथ झारी खाली चले, बिन नाम खजाना॥
जस सेमरका सुआ, लाली देख लुभाना।
मारी चोंच धुँआ उड़े, पाछे सो पछिताना॥
जस गूलरको भुनगा, कौनी राह समाना।
दास 'मकुंद' गढ़ रमि रहै, उबरे ते असमाना॥

रामनामका ही एकमात्र आश्रय है

मोह-मद मात्यो, रात्यो कुमति-कुनारि सों, बिसारि बेद-लोक-लाज, आँकरो अचेतु है।
भावै सो करत, मुहँ आवै सो कहत, कछु काहूकी सहत नाहिं, सरकस हेतु है॥
तुलसी अधिक अधमाई हू अजामिल तें, ताहू में सहाय कलि कपट-निकेतु है।
जैबे को अनेक टेक, एक टेक ह्वैबे की, जो पेट-प्रिय पूतहित रामनामु लेतु है॥

'यह मोहरूपी मदसे उन्मत्त हो गया है, कुमतिरूपी कुलटा स्त्रीमें रत है, लोक और वेदकी लज्जाको त्यागकर बड़ा अचेत (बेपरवा) हो गया है। मनमानी करता है और मुँहमें जो आता है वही [विना विचारे] कह डालता है तथा उद्दण्डताके कारण किसीकी कोई बात सहता नहीं। गोसाईंजी कहते हैं कि इस प्रकार मुझमें अजामिलसे भी अधिक अधमता है, उसमें फिर, कपटनिधान कलि मेरा सहायक है। बिगड़नेके तो अनेक मार्ग हैं, परंतु बननेका केवल एक रास्ता है। वह यह है कि पेटरूपी प्रिय पुत्रके लिये रामनाम लेता है। [भाव यह है कि अधम अजामिलने पुत्रके मिससे भगवान्‌का नाम लिया था। मैंने भी पेटरूपी पुत्रके लिये उसीका आश्रय लिया है।]'

परनामी धर्ममें प्रार्थनाका स्वरूप

(लेखिका—श्रीकुमारी उर्मिला शर्मा, बी० ए०)

परनामी धर्मके संस्थापक अनन्त श्रीविभूषित सद्गुरु श्रीदेवचन्द्रजी महाराजने विश्वके समस्त जीवोंको ब्रह्मज्ञान एवं अलौकिक सुख और परम शान्ति प्रदान करनेके लिये जो विशेष साधन स्वीकृत किये थे, उनमें सामूहिक रूपसे 'सुन्दर-साथ'की प्रार्थना-सभाओंका स्वरूप परम आध्यात्मिक था और जिन आध्यात्मिक प्रार्थनाओंका लक्ष्य पूर्ण सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके नित्य नवीन किशोररूपमें शुद्धातिशुद्ध परम अप्राकृत युगलस्वरूपके मानसिक दर्शन एवं उनकी दिव्य लीलाभूमि दिव्य ब्रह्मपुर परमधामकी चिन्मय क्रीडास्थलियोंका दिव्य चिन्तन, मनन और निदिध्यासन ही पूर्णरूपसे अभीष्ट था।

परम आध्यात्मिक 'सुन्दर-साथ'की प्रार्थनाको परनामी धर्मके आचार्योंने ब्रह्मज्ञान एवं ब्रह्मस्वरूप और ब्रह्म-धामकी सहज एवं सुलभतम उपलब्धिके लिये परम साधन माना है।

सद्गुरु श्रीदेवचन्द्रजीका समय विक्रम संवत् १६३८ से वि० संवत् १७१२ तक रहा। उन्होंने अपनी बाल्यावस्थामें ब्रह्मकी अलौकिक सत्ताकी अनुभूति प्राप्त की और उन्होंने ब्रह्मके प्रत्यक्ष दर्शनकी प्राप्तिके लिये विभिन्न पंथोंकी एवं उनके शास्त्रीय दर्शनोंकी निरन्तर खूब छान-बीन की तथा विभिन्न देशोंका भ्रमण किया। अन्तमें उन्हें चौदह वर्ष नियमबद्ध श्रीमद्भागवत-श्रवणके द्वारा विक्रम संवत् १६७८ तदनुसार ई० सन् १६२१ में श्रीकृष्णरूपमें पूर्णब्रह्म परमात्माने साक्षात् दर्शन प्रदानकर 'तारतम' नामक मन्त्र प्रदान किया और सांसारिक दुःखोंसे पीडित जीवोंके कल्याणके लिये उस दिव्यतम तारतम-मन्त्रका तारतम-ज्ञानके रूपमें विस्तारकर प्रचार करनेकी आज्ञा प्रदान की। अतएव संसारके समस्त प्राणियोंको नाना दुःखद्वन्द्वोंसे पूर्ण विश्वके नाना वादोंसे रहित परम आध्यात्मिक पथपर अग्रसर करनेके हेतु श्रीसद्गुरुदेवने इस तारतम-ज्ञानके प्रचारके लिये सामूहिक प्रार्थनाको ही परमोपयोगी माना और सामूहिक-रूपसे प्रार्थनामें सम्मिलित होनेवाले प्राणीको एकरूपता प्रदान करनेके लिये 'सुन्दर-साथ'[1]की संज्ञा प्रदान की।

सद्गुरुदेव श्रीदेवचन्द्रजी महाराजने अपने [illegible] उद्देश्यकी पूर्तिके निमित्त अपने परम सत्संगी श्रीगांगजी नामक सद्गृहस्थको अपना प्रथम शिष्य बनाया और सांसारिक सिद्धिसे पूर्णकर श्रीकृष्ण-परमात्माद्वारा प्राप्त एवं आदेशके प्रचारके हेतु सामूहिकरूपसे की जाने प्रार्थनाके आध्यात्मिक दिव्य स्वरूपका प्रतिपादन कि[illegible] जिससे प्रभावित होकर श्रीगांगजी भाईने सद्गुरुदेवकी प्रा[illegible] एवं प्रवचनके हेतु अपने निवास-गृहमें ही एक विशेष [illegible] नियत कर दिया। प्रातः, मध्याह्न और सायंकालीन प्रा[illegible] सभाओंका क्रम सुचारुरूपसे चलने लगा। धीरे-धीरे प्रार्थना एवं प्रवचनोंके आध्यात्मिक बलसे अनुप्राणित होकर सद्गुरुदेवके अनुयायियोंकी संख्या बढ़ने लगी। प्रार्थनामें सम्मिलित होनेवाले धर्मानुरागी जन अपने लौकिक कार्योंकी परवा न कर आध्यात्मिक चिन्तनके अनन्य आनन्दमें विभोर रहने लगे।

एक समयका प्रसंग है कि सद्गुरुदेव श्रीदेवचन्द्रजी महाराजकी प्रार्थना-सभाके बढ़ते हुए महत्त्वको देखकर कुछ धर्मभीरु जनोंमें लोकमर्यादाका भय उत्पन्न हुआ। अतएव उन्हें सद्गुरुदेवकी प्रार्थना-सभामें समानरूपसे सम्मिलित होनेवाले 'सुन्दर-साथ'रूप नर-नारियोंके एकत्रित समूहको देख कुछ दुराव उत्पन्न हुआ। परिणामस्वरूप इसे समुचित न मान कुछ धर्मभीरु जनोंने इसके विरुद्ध नगर-कोतवाल-के समीप सामूहिक प्रार्थना-सभाके विघटनके हेतु प्रतिवेदन किया।

अतएव कोतवालने वास्तविकताकी परीक्षाके लिये अपने दो राजपुरुष प्रतिवेदन-कर्ताओंके साथ भेज दिये। जब वे लोग प्रार्थना-स्थलके कुछ निकट पहुँचे, तब प्रतिवेदन करनेवाले धर्मभीरु जन अपना रहा-सहा आत्मबल खो बैठे; फलतः उन्होंने सभा-स्थल दूरसे ही राजपुरुषोंको दिखाया और स्वयं भीरुतावश पलायन कर गये। रात्रिका समय था। दीपककी रोशनीके सहारे राजपुरुष आगे बढ़ने लगे। कुछ कदम बढ़ते ही राजपुरुषोंको जलते हुए दो दीपकोंका आभास हुआ। अतएव दोनों भिन्न-भिन्न मार्गोंपर चलने लगे। चलते-चलते एक राजपुरुष जामनगरसे १२ कोस

---

[1] परनामी धर्मके अनुयायीका एक आध्यात्मिक सम्बोधन-बोधक आदर्श वाक्य, जो अनेकमें एकताका सूचक माना जाता है।

दूरस्थ घरौल नामक गाँवमें पहुँचा और दूसरा निकटस्थ ही एक कुएँके चारों ओर रात्रिभर घूमता रह गया। प्रातः होते ही दोनोंको अपनी दुर्दशापर बहुत अनुताप हुआ।

वापस लौटनेपर दोनों राजपुरुषोंने नगर-प्रतनाध्यक्षको अपनी-अपनी बीती कह सुनायी। अतएव प्रतनाध्यक्षको मिथ्यावादी चुगलखोरोंपर बड़ा क्रोध आया और वे उनकी तलाशमें जुट गये।

यह चर्चा नगरमें आँधीकी भाँति फैलनेमें देर न लगी। क्रमशः 'नगर-जाम'के समीप भी जब यह खबर पहुँची, तब वह सद्गुरुदेवके आध्यात्मिक दिव्य प्रभावसे बड़ा भयभीत हुआ। अतएव उसने नगर-कोतवालको ऐसे विरोधियोंका शीघ्र दमन करनेके लिये आदेश दिया और अपने अज्ञानी नागरिकोंके द्वारा किये गये संतजनोंके प्रति इस अपराधको अपना ही अक्षम्य अपराध मान सद्गुरुदेवकी संनिधिमें क्षमा-याचनाकी रूप-रेखा तैयार की।

प्रसंगवश एक दिवस श्रीगांगजी भाई राज-कार्यवश जामदरबारमें पहुँचे। नगर-जाम श्रीगांगजी भाईके धर्म-प्रेम एवं उनके पुण्यमय कार्यों और जनहिताय नाना दान-पत्रोंकी चर्चाएँ पूर्व ही सुन चुका था। अतएव श्रीगांगजी भाईके सामयिक आगमनसे उसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई। उसने श्रीगांगजी भाईसे श्रीसद्गुरुदेवके क्षेम-कुशलके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त की और अन्तमें अपने चाकरों-द्वारा तथा अपने अज्ञानी प्रजाजनोंद्वारा किये गये अरुचिकर व्यवहारके हेतु सद्गुरुशरणमें क्षमाके लिये आग्रहपूर्ण याचना की।

श्रीगांगजी भाई जब राजदरबारसे वापस लौटे, तब उन्होंने सद्गुरुदेवकी संनिधिमें समस्त 'सुन्दर-साथ'के समक्ष इस अघटित घटनाके सम्बन्धमें जैसा नगर-जामसे सुना था उसी प्रकार सुना दिया। इस घटनाको सुनकर सद्गुरु-देवने 'सुन्दर-साथ'के द्वारा सामूहिक रूपसे की जानेवाली प्रार्थनाके परम आध्यात्मिक बलको प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए इसका उत्तरोत्तर विस्तार किया।

सद्गुरुदेवके अन्तर्धानके अनन्तर अनन्तश्रीमहाप्रभु श्रीप्राणनाथजीने सद्गुरुदेवसे धर्मकी विरासतमें जिस तारतम ज्ञानको प्राप्त किया था, उसका उन्होंने श्रीकुलजम स्वरूप (श्रीमत्तारतम-सागर) के रूपमें विस्तार किया, जिसके प्रचारके लिये उन्होंने भी सद्गुरुदेवके द्वारा निर्दिष्ट पथ 'सुन्दर-साथ' प्रार्थना-सभाको ही परम मङ्गलकारी माना। महाप्रभु प्राणनाथने अपने 'सुन्दर-साथ'की प्रार्थनाओंके द्वारा बड़े-बड़े ज्ञान-दम्भी विद्वानोंके हृदयसे अहंको निरस्त किया। बड़े-बड़े क्रूर अनाचारियोंके हृदय परिवर्तित किये, अनेक दम्भी लोगोंको सन्मार्गपर अग्रसर किया और इस भवाटवीके अज्ञानरूप बीहड़ अन्धकारसे पूर्ण पगडंडियोंपर नाना-वेश-वर्ण-देश और पंथोंमें भटकनेवाले जीवोंको तारतम-ज्ञानका दिव्य प्रकाश प्रदानकर उन्हें जीवन्मुक्त किया।

आजके युगमें ऐसी प्रार्थना-सभाओंका नितान्त अभाव ही आजकी विश्व-परिस्थितियोंका सर्जक रहा है। लेकिन सत्यकी ज्योतिपर समयका आवरण भले छा जाय, पर सत्य सनातन आध्यात्मिक ज्योति समयकी आँधियोंसे कभी बुती नहीं। हमने आधुनिक युगके दिव्य द्रष्टा, आजके युगके सर्वश्रेष्ठ महापुरुष राष्ट्र-पिताके जीवनमें उसी ज्योतिके दिव्य प्रकाशको फैलते हुए स्वयं देखा, जिसने अपनी प्रार्थना-सभाओंके आध्यात्मिक बलके आधार-पर असंगत भारतीय जन-जीवनमें प्रकाशकी ऐसी किरणें फैलायीं, जिनसे युगोंकी मुर्झायी संस्कृति और सभ्यता पुनः जगमगा उठी। देश और धर्मकी संस्कृति और सभ्यताकी सर्वतोमुखी प्रगतिसे लोकजीवन कृतकृत्य हो उठा। आज संत विनोबाने इसी प्रकारकी आध्यात्मिक प्रार्थनाओंके अलौकिक प्रतापसे खूँख्वार दस्युओंके हृदय परिवर्तन कर जो आदर्श स्थापित किया है, वास्तवमें यही प्रार्थनाका सच्चा स्वरूप है, जिसके द्वारा मानव-हृदय आध्यात्मिक तेजसे पावन और उज्ज्वल हो सकते हैं; जिससे मानव-जीवन समष्टिरूप सुख एवं शान्तिका जीवन बिताकर परम आध्यात्मिक आनन्दसे अपनी आत्माको विभोर कर सकता है।

परनामी धर्ममें प्रार्थनाका स्वरूप

(लेखिका—श्रीकुमारी उर्मिला शर्मा, बी० ए०)

परनामी धर्मके संस्थापक अनन्त श्रीविभूषित सद्गुरु श्रीदेवचन्द्रजी महाराजने विश्वके समस्त जीवोंको ब्रह्मज्ञान एवं अलौकिक सुख और परम शान्ति प्रदान करनेके लिये जो विशेष साधन स्वीकृत किये थे, उनमें सामूहिक रूपसे 'सुन्दर-साथ'की प्रार्थना-सभाओंका स्वरूप परम आध्यात्मिक था और जिन आध्यात्मिक प्रार्थनाओंका लक्ष्य पूर्ण सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके नित्य नवीन किशोररूपमें शुद्धातिशुद्ध परम अप्राकृत युगलस्वरूपके मानसिक दर्शन एवं उनकी दिव्य लीलाभूमि दिव्य ब्रह्मपुर परमधामकी चिन्मय क्रीडास्थलियोंका दिव्य चिन्तन, मनन और निदिध्यासन ही पूर्णरूपसे अभीष्ट था।

परम आध्यात्मिक 'सुन्दर-साथ'की प्रार्थनाको परनामी धर्मके आचार्योंने ब्रह्मज्ञान एवं ब्रह्मस्वरूप और ब्रह्म-धामकी सहज एवं सुलभतम उपलब्धिके लिये परम साधन माना है।

सद्गुरु श्रीदेवचन्द्रजीका समय विक्रम संवत् १६३८ से वि० संवत् १७१२ तक रहा। उन्होंने अपनी बाल्यावस्थामें ब्रह्मकी अलौकिक सत्ताकी अनुभूति प्राप्त की और उन्होंने ब्रह्मके प्रत्यक्ष दर्शनकी प्राप्तिके लिये विभिन्न पंथोंकी एवं उनके शास्त्रीय दर्शनोंकी निरन्तर खूब छान-बीन की तथा विभिन्न देशोंका भ्रमण किया। अन्तमें उन्हें चौदह वर्ष नियमबद्ध श्रीमद्भागवत-श्रवणके द्वारा विक्रम संवत् १६७८ तदनुसार ई० सन् १६२१ में श्रीकृष्णरूपमें पूर्णब्रह्म परमात्माने साक्षात् दर्शन प्रदानकर 'तारतम' नामक मन्त्र प्रदान किया और सांसारिक दुःखोंसे पीडित जीवोंके कल्याणके लिये उस दिव्यतम तारतम-मन्त्रका तारतम-ज्ञानके रूपमें विस्तारकर प्रचार करनेकी आज्ञा प्रदान की। अतएव संसारके समस्त प्राणियोंको नाना दुःखद्वन्द्वोंसे पूर्ण विश्वके नाना वादोंसे रहित परम आध्यात्मिक पथपर अग्रसर करनेके हेतु श्रीसद्गुरुदेवने इस तारतम-ज्ञानके प्रचारके लिये सामूहिक प्रार्थनाको ही परमोपयोगी माना और सामूहिक-रूपसे प्रार्थनामें सम्मिलित होनेवाले प्राणीको एकरूपता प्रदान करनेके लिये 'सुन्दर-साथ'[1]की संज्ञा प्रदान की।

सद्गुरुदेव श्रीदेवचन्द्रजी महाराजने अपने महान् उद्देश्यकी पूर्तिके निमित्त अपने परम सत्संगी श्रीगांगजी भाई नामक सद्गृहस्थको अपना प्रथम शिष्य बनाया और उसे सांसारिक सिद्धिसे पूर्णकर श्रीकृष्ण-परमात्माद्वारा प्राप्त ज्ञा- एवं आदेशके प्रचारके हेतु सामूहिकरूपसे की जानेवा प्रार्थनाके आध्यात्मिक दिव्य स्वरूपका प्रतिपादन कि जिससे प्रभावित होकर श्रीगांगजी भाईने सद्गुरुदेवकी प्रार्थ एवं प्रवचनके हेतु अपने निवास-गृहमें ही एक विशेष स्थ नियत कर दिया। प्रातः, मध्याह्न और सायंकालीन प्रार्थन सभाओंका क्रम सुचारुरूपसे चलने लगा। धीरे-धी प्रार्थना एवं प्रवचनोंके आध्यात्मिक बलसे अनुप्राणित हो सद्गुरुदेवके अनुयायियोंकी संख्या बढ़ने लगी। प्रार्थना सम्मिलित होनेवाले धर्मानुरागी जन अपने लौकिक कार्यों परवा न कर आध्यात्मिक चिन्तनके अनन्य आनन्द विभोर रहने लगे।

एक समयका प्रसंग है कि सद्गुरुदेव श्रीदेवचन्द्रज महाराजकी प्रार्थना-सभाके बढ़ते हुए महत्त्वको देखकर कुछ धर्मभीरु जनोंमें लोकमर्यादाका भय उत्पन्न हुआ। अतए उन्हें सद्गुरुदेवकी प्रार्थना-सभामें समानरूपसे सम्मिलि होनेवाले 'सुन्दर-साथ'रूप नर-नारियोंके एकत्रित समूहक देख कुछ दुराव उत्पन्न हुआ। परिणामस्वरूप इसे समुचित न मान कुछ धर्मभीरु जनोंने इसके विरुद्ध नगर-कोतवाल के समीप सामूहिक प्रार्थना-सभाके विघटनके हेतु प्रतिवेदन किया।

अतएव कोतवालने वास्तविकताकी परीक्षाके लिये अपने दो राजपुरुष प्रतिवेदन-कर्ताओंके साथ भेज दिये। जब वे लोग प्रार्थना-स्थलके कुछ निकट पहुँचे, तब प्रतिवेदन करनेवाले धर्मभीरु जन अपना रहा-सहा आत्मबल खो बैठे; फलतः उन्होंने सभा-स्थल दूरसे ही राजपुरुषोंको दिखाया और स्वयं भीरुतावश पलायन कर गये। रात्रिका समय था। दीपककी रोशनीके सहारे राजपुरुष आगे बढ़ने लगे। कुछ कदम बढ़ते ही राजपुरुषोंको जलते हुए दो दीपकोंका आभास हुआ। अतएव दोनों भिन्न-भिन्न मार्गोंपर चलने लगे। चलते-चलते एक राजपुरुष जामनगरसे १२ कोस

---

१. परनामी धर्मके अनुयायीका एक आध्यात्मिक सम्बोधन-बोधक आदर्श वाक्य, जो अनेकमें एकताका सूचक माना जाता है।

दूरस्थ घरौल नामक गाँवमें पहुँचा और दूसरा निकटस्थ ही एक कुएँके चारों ओर रात्रिभर घूमता रह गया। प्रातः होते ही दोनोंको अपनी दुर्दशापर बहुत अनुताप हुआ।

वापस लौटनेपर दोनों राजपुरुषोंने नगर-प्रतनाध्यक्षको अपनी-अपनी बीती कह सुनायी। अतएव प्रतनाध्यक्षको मिथ्यावादी चुगलखोरोंपर बड़ा क्रोध आया और वे उनकी तलाशमें जुट गये।

यह चर्चा नगरमें आँधीकी भाँति फैलनेमें देर न लगी। क्रमशः 'नगर-जाम'के समीप भी जब यह खबर पहुँची, तब वह सद्गुरुदेवके आध्यात्मिक दिव्य प्रभावसे बड़ा भयभीत हुआ। अतएव उसने नगर-कोतवालको ऐसे विरोधियोंका शीघ्र दमन करनेके लिये आदेश दिया और अपने अज्ञानी नागरिकोंके द्वारा किये गये संतजनोंके प्रति इस अपराधको अपना ही अक्षम्य अपराध मान सद्गुरुदेवकी संनिधिमें क्षमा-याचनाकी रूप-रेखा तैयार की।

प्रसंगवश एक दिवस श्रीगांगजी भाई राज-कार्यवश जामदरबारमें पहुँचे। नगर-जाम श्रीगांगजी भाईके धर्म-प्रेम एवं उनके पुण्यमय कार्यों और जनहिताय नाना दान-पत्रोंकी चर्चाएँ पूर्व ही सुन चुका था। अतएव श्रीगांगजी भाईके सामयिक आगमनसे उसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई। उसने श्रीगांगजी भाईसे श्रीसद्गुरुदेवके क्षेम-कुशलके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त की और अन्तमें अपने चाकरों-द्वारा तथा अपने अज्ञानी प्रजाजनोंद्वारा किये गये अरुचिकर व्यवहारके हेतु सद्गुरुशरणमें क्षमाके लिये आग्रहपूर्ण याचना की।

श्रीगांगजी भाई जब राजदरबारसे वापस लौटे, तब उन्होंने सद्गुरुदेवकी संनिधिमें समस्त 'सुन्दर-साथ'के समक्ष इस अघटित घटनाके सम्बन्धमें जैसा नगर-जामसे सुना था उसी प्रकार सुना दिया। इस घटनाको सुनकर सद्गुरु-देवने 'सुन्दर-साथ'के द्वारा सामूहिक रूपसे की जानेवाली प्रार्थनाके परम आध्यात्मिक बलको प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए इसका उत्तरोत्तर विस्तार किया।

सद्गुरुदेवके अन्तर्धानके अनन्तर अनन्तश्रीमहाप्रभु श्रीप्राणनाथजीने सद्गुरुदेवसे धर्मकी विरासतमें जिस तारतम ज्ञानको प्राप्त किया था, उसका उन्होंने श्रीकुलजम स्वरूप (श्रीमत्तारतम-सागर) के रूपमें विस्तार किया, जिसके प्रचारके लिये उन्होंने भी सद्गुरुदेवके द्वारा निर्दिष्ट पथ 'सुन्दर-साथ' प्रार्थना-सभाको ही परम मङ्गलकारी माना। महाप्रभु प्राणनाथने अपने 'सुन्दर-साथ'की प्रार्थनाओंके द्वारा बड़े-बड़े ज्ञान-दम्भी विद्वानोंके हृदयसे अहंको निरस्त किया। बड़े-बड़े क्रूर अनाचारियोंके हृदय परिवर्तित किये, अनेक दम्भी लोगोंको सन्मार्गपर अग्रसर किया और इस भवाटवीके अज्ञानरूप बीहड़ अन्धकारसे पूर्ण पगडंडियोंपर नाना-वेश-वर्ण-देश और पंथोंमें भटकनेवाले जीवोंको तारतम-ज्ञानका दिव्य प्रकाश प्रदानकर उन्हें जीवन्मुक्त किया।

आजके युगमें ऐसी प्रार्थना-सभाओंका नितान्त अभाव ही आजकी विश्व-परिस्थितियोंका सर्जक रहा है। लेकिन सत्यकी ज्योतिपर समयका आवरण भले छा जाय, पर सत्य सनातन आध्यात्मिक ज्योति समयकी आँधियोंसे कभी बुती नहीं। हमने आधुनिक युगके दिव्य द्रष्टा, आजके युगके सर्वश्रेष्ठ महापुरुष राष्ट्र-पिताके जीवनमें उसी ज्योतिके दिव्य प्रकाशको फैलते हुए स्वयं देखा, जिसने अपनी प्रार्थना-सभाओंके आध्यात्मिक बलके आधार-पर असंगत भारतीय जन-जीवनमें प्रकाशकी ऐसी किरणें फैलायीं, जिनसे युगोंकी मुर्झायी संस्कृति और सभ्यता पुनः जगमगा उठी। देश और धर्मकी संस्कृति और सभ्यताकी सर्वतोमुखी प्रगतिसे लोकजीवन कृतकृत्य हो उठा। आज संत विनोबाने इसी प्रकारकी आध्यात्मिक प्रार्थनाओंके अलौकिक प्रतापसे खूँख्वार दस्युओंके हृदय परिवर्तन कर जो आदर्श स्थापित किया है, वास्तवमें यही प्रार्थनाका सच्चा स्वरूप है, जिसके द्वारा मानव-हृदय आध्यात्मिक तेजसे पावन और उज्ज्वल हो सकते हैं; जिससे मानव-जीवन समष्टिरूप सुख एवं शान्तिका जीवन बिताकर परम आध्यात्मिक आनन्दसे अपनी आत्माको विभोर कर सकता है।

संकीर्तनमें अन्तःक्रिया

(लेखक—रायबहादुर पंड्या श्रीवैजनाथजी बी० ए०)

संकीर्तनके सम्बन्धमें मैं यह लेख वैज्ञानिक शोधकी दृष्टिसे लिख रहा हूँ और मेरी दृष्टिमें, जो उसके गुण और सम्भाव्य दोष हैं, उनको भी प्रकट कर देना चाहता हूँ ताकि पाठकगण विचारकर इस विषयको पूर्णरीतिसे समझ लें। इसे समझनेके लिये हमें यह ध्यानमें रखना चाहिये कि प्रकृतिमें सात लोक हैं—भू, भुवः, स्वः, महः, जन, तप, सत्य। अर्थात् सूर्यमण्डलमें सब ग्रहोंमें प्रकृति सात प्रकारकी है; इन सात लोकोंमें और ग्रहोंके समान अलग-अलग सृष्टियाँ भी हैं और उन लोकोंकी हमारी चेतनाएँ भी अलग-अलग हैं। हमारी भूलोककी चेतनाको हम जाग्रत्, भुवर्लोककी चेतनाको स्वप्न, स्वर्लोककी चेतनाको सुषुप्ति और महर्लोककी चेतनाको तुरीय और उससे आगेवालीको तुरीयातीत कहते हैं। उससे आगे भी चेतना है। पर सब मनुष्य वहाँ साधारणतः नहीं पहुँच सकते। इन लोकोंमें कार्य करनेके लिये मनुष्यमें उन प्रकृतियोंके बने शरीर भी हैं। भूलोकमें स्थूल शरीर या अन्नमयकोश काम करता है। भुवर्लोकमें मनके भावोंको प्रकट करनेवाला वासना-देह (Astral body) है। मनके सब भावोंसे वह कम्पित होता है। स्वप्न-अवस्थामें उसी शरीरसे निकलकर जीव भुवर्लोकमें विचरता है, प्रेतोंसे भी मिल सकता है और प्रेतलोकमें बहुत-से सहायताके कार्य कर सकता है। मनोमयकोशसे नीचे स्वर्गमें या सुषुप्तिमें पहुँचना होता है। वासनादेहको वेदान्तने मनोमय-कोशमें ही शामिल कर दिया है; क्योंकि भावना और विचार दोनों साथमें ही क्रिया करते हैं। विज्ञानमयकोश ऊँचे स्वर्गमें कार्य करता है और आनन्दमयकोश महर्लोकमें। महर्लोकमें अति आनन्द और एकताका भान होता है और वहाँ रूपका अभाव है। विचारके मनमें आनेसे मनोमयकोश कम्पित होता है। उसीके अनुकूल भाव भी उठता है और वासनादेह भी कम्पित होता है। यदि विचार शुद्ध, निःस्वार्थ, प्रेम, भक्ति, सेवा आदिका हो तो विज्ञानमयकोश भी कम्पित होगा। अति शुद्ध प्रेम और एकताके विचारोंसे आनन्दमय कोश भी कम्पित होता है। इन ऊँचे विचारोंसे और कम्पनोंसे उन कोशोंकी उन्नति होती है। इन विचारोंके कम्प हमारी इन देहोंसे निकलकर दूसरे मनुष्योंकी देहोंको भी कम्पित करते हैं और उनमें वैसे भाव प्रकट करनेका प्रयत्न करते हैं।

समूहके विचारों (Mass mentality) में बहुत बड़ी शक्ति रहती है। उसके क्षेत्रमें यदि दूसरे लोग आ जायँ तो उनपर भी वही प्रभाव पड़ता है। इसके उदाहरण हमलोग लड़ाई-दंगोंमें देखते हैं कि समूहमें जो क्रूरता होती है वह व्यक्तिकी क्रूरतासे कईगुना अधिक होती है। ऐसे ही यदि समूहकी भक्ति होगी तो वह इतनी बलवती होगी कि दूसरे लोग उसके कार्यक्षेत्रमें आनेसे उस प्रवाहमें बह जायँगे। ईसाई देशोंमें जब बड़े-बड़े जनसमूहोंमें धार्मिक उपदेश होते हैं तब कई लोग पागल-से होकर जमीनपर लोटने लगते हैं और कुछ कालके लिये उनमें बड़ा धार्मिक आवेश हो जाता है। सामूहिक कीर्तनका भी ऐसा प्रभाव पड़ता है। समूहकी भक्तिसे, क्रोधसे या द्वेषसे भुवर्लोककी प्रकृतिमें बहुत क्षोभ या हलचल होती है, जिससे उसमें अन्तरिक्षचारी यक्षगण खिंच आते हैं और वे भी उस क्षोभका आनन्द लेनेको उसे और बढ़ा देते हैं।

मि० लेडबीटर दिव्यदृष्टिवाले एक बड़े योगी और ज्ञानी थे। उनका कहना है कि लोग अक्सर भुवर्लोकके भक्तिप्रवाहको सत्य आध्यात्मिक-उद्गार समझते हैं। पश्चिमीय देशोंमें धार्मिक पुनरुद्दीपन (Religious revivalist) सभाओंमें इस बातके उदाहरण देखनेमें आते हैं, जब बिल्कुल अपढ़ और अविकसित मनुष्योंमें गाढ़ भक्तिवाले मनुष्यके उपदेश या व्याख्यानसे थोड़ी देरके लिये गाढ़ भक्तिका उन्माद (Ecstasy) उत्पन्न हो जाता है। उससे बहुत कुछ लाभ तो होता है, पर केवल भुवर्लोकका और मनुष्यके भावका। कई बार ऐसी सभाओंसे कुछ हानि भी होती है। कभी-कभी कोई-कोई लोग मनमें दुर्बल या पागल भी हो जाते हैं। जहाँ लोग महर्लोककी चेतनातक पहुँच सकते हैं, वहाँ सच्चा लाभ होता है। जिस प्रेमोन्मादमें केवल कूदना, जोरसे चिल्लाना हो, जिसमें व्यक्तिको यह भान न रहे कि मैं क्या करता हूँ, जिसमें अपना अधिकार मिट जाय—वह वाञ्छनीय नहीं है और अध्यात्मविद्याके जिज्ञासुको ऐसे उन्मादका त्याग करना

चाहिये । जो भक्तिके आवेशमें महर्लोककी चेतनाको प्राप्त होता है, उसे भी अवर्णनीय आनन्दका भान होता है और वह भी अपने शरीरसे निकल जाता है; पर उसका यह भान कभी नहीं मिटता कि मैं 'मैं' हूँ । वह ऊँचे लोकमें है और उसका अपने ऊपरका अधिकार बना रहता है ।

दिव्यदृष्टिवालेको ऐसी धार्मिक पुनरुद्दीपन- (Revivalist) सभाओंमें दीख पड़ता है कि उसमें छोटे अन्तरिक्षचारी (Non-human entities) असंयत मनके भावोंकी लहरोंका लाभ उठानेके लिये जमा हो जाते हैं । मनके भावोंमें बड़ी शक्ति रहती है । भुवर्लोकमें इन भावोंसे बड़ी-बड़ी तरंगें उठती हैं, जैसी समुद्रमें बड़े तूफानसे उठती हैं । बहुत-से भुवर्लोकके जीव इस तूफानमें लोटते हैं और उसे और बढ़ाते हैं । इनके कारणसे उस भावप्रवाहकी शक्ति और भी बढ़ जाती है । यदि गाढ़ भक्ति-प्रवाहके आनन्द और उच्च दशा-प्राप्तिके साथ-साथ अतिशय शान्तिका अनुभव हो तो समझना कि ऊँची स्थिति प्राप्त हुई है । जहाँ उत्तेजना(Excitement), क्षोभ (Disturbance) है और आत्मसंयम (Self-control) का नाश है—वहाँ वह नीची स्थितिको प्राप्त हुआ है । (देखिये Talks on the Path of Occultism pp. 800-3)

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हमलोग डरकर कीर्तनको ही त्याग दें । दूसरे मार्गोंसे भक्तिमार्ग सरल है । स्त्री, पुरुष, पढ़े और अपढ़ सभी इसका लाभ उठा सकते हैं और समूहके कीर्तनसे कीर्तनकारोंको, उस मुहल्लेके लोगोंको, और-और लोगोंको भी लाभ पहुँचता है अर्थात् आत्मकल्याणके साथ जनकल्याण और जगकल्याण भी होता है । इसलिये संकीर्तन अवश्य-अवश्य करना चाहिये । अब उसकी विधि और आवश्यकताओंको देखें ।

कीर्तनकी प्रथम आवश्यकता गहरी भक्ति है, परम प्रेम है । हमें अपने इष्टसे, रामसे, कृष्णसे, ईश्वरसे तल्लीनता प्राप्त करनेकी गहरी उत्कण्ठा, भारी प्यास, बड़ी तालावेली, अति मानसिक पीडा होनी चाहिये । कीर्तनके साथ-साथ हृदयकी गहरी पुकार होनी चाहिये, तभी हमारे प्यारे श्रीकृष्ण उस कीर्तनमें खिंच आते हैं । दादू भक्त कहते हैं—

> दादू पीर ना ऊपजी ना हम करी पुकार ।
> तातें साहिब ना मिला दादू दीती बार ॥

दूसरा भक्त कहता है—

> प्रेमभक्ति-माता रहे तालाबेली अंग ।
> सदा सपीडा मन रहे राम रमे हम संग ॥

इसी विरहमें उनका मिलन होता है । जैसे भक्तके चित्तमें विरहका घाव है, वैसा उनके हृदयमें भी बड़ा घाव है । कबीरने सत्य कहा है—

> बिरहा पीव पठाइयाँ कहि साधू परमोधि ।
> जा घट तालाबेलियाँ तिन लाओ तुम सोधि ॥
>
> (साखी ४०)

तभी तो अर्जुन श्रीकृष्णसे कहते हैं—

'प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ।' (गीता ११ । ४४)

'हे देव ! जैसे पति अपनी प्रियतमा पत्नीके अपराधको सहन करता है, वैसे ही आप भी मेरे अपराधको सहन करने योग्य हैं ।' मनुष्य अपने इष्टको अपना आशिक या माशूक जो चाहे सो मान सकता है । दोनों एक दूसरेका आकर्षण करते हैं । भक्तिका अर्थ ही है 'परम प्रेम और उनके विस्मरणमें परम व्याकुलता' । **'तद् विस्मरणे परमव्याकुलता ।'** (नारदभक्तिसूत्र) । यदि ये गुण नहीं हैं तो कीर्तनमें पूरी सफलता न होगी । यदि ये उपस्थित हैं तो अकेले बैठकर कीर्तन करनेकी ध्वनि भी उनतक पहुँच जायगी । जिनमें अभी परम प्रेम और भगवान्के विस्मरणमें परम व्याकुलता नहीं है, उन्हें उनको लानेका अभ्यास करना चाहिये । बार-बार वैसे भावोंके अनुभव करनेका प्रयत्न करनेसे वे भाव उपस्थित होने लगेंगे । प्रेमके संकीर्तनसे वे शीघ्र ही प्रकट हो जाते हैं और भक्तोंको अपना अनुभव देते हैं । गीताप्रेसका छपा 'प्रेमदर्शन' ग्रन्थ भक्तिशास्त्रका प्रधान ग्रन्थ है । उसे सब भक्तोंको अवश्य पढ़ लेना चाहिये ।

संकीर्तनमें शामिल होनेवाले सदाचारी, उत्साही, श्रद्धायुक्त, एक-दूसरेमें मित्रभाववाले हों, शान्त और पवित्र हों । यदि एक भी व्यक्ति विरोधी भाववाला या दोषदृष्टिवाला होगा तो उससे कीर्तनमें बाधा आयेगी । इस कारण कीर्तन रात्रिको सरलतासे अच्छा जमता है, दिनमें हलचल और चिन्ताओंके कारण थोड़ी अशान्ति रहती है । जहाँतक हो सके, कीर्तन करनेका कमरा या कोई भी स्थान उसी कामके लिये रक्खा जाय । उसमें दूसरा कोई काम न हो । वह साफ और पवित्र हो और उसमें फालतू दूसरा सामान भरा न हो । विषयासक्ति उपजानेवाले पदार्थ न हों । सात्त्विकता तथा

भगवान्‌की ओर प्रवृत्ति करानेयोग्य चित्र तथा अन्य वस्तुएँ हों। तब उसका वातावरण भी भक्तिकारक और पवित्र बना रहेगा। यदि दूसरा सामान या विरोधी पदार्थ होंगे तो वे भी अपना प्रभाव डालते रहेंगे और उनसे थोड़ी बाधा भी आती रहेगी।

सामूहिक नामसंकीर्तनमें कीर्तन करनेवालोंके भाव पवित्र अवश्य होने चाहिये। कीर्तन केवल भगवान्‌को रिझानेके लिये हो, लोगोंमें वाहवाही लूटनेके लिये नहीं। दिखावटी आवेश तो दम्भ होता है, उससे सदा बचना चाहिये। कीर्तन करते समय मनमें इष्टदेवका ही चिन्तन होना चाहिये। कामिनी-काञ्चनकी स्मृति बिल्कुल न रहे; न मान पानेकी इच्छा हो। तभी संकीर्तन सफल होता है।

नामसंकीर्तन करनेमें संगीतकी सहायता लेना अच्छी बात है, पर संगीत मधुर और भक्तिसे भरा हो। ऐसा भी न हो कि संगीतमें वृत्ति लगनेसे हम भक्ति और प्रेमको भूल जायँ। भक्ति और प्रेममय संकीर्तन बिना संगीतके भी सिद्ध होता है। संकीर्तनमें उन्माद न होकर पूर्ण शान्ति, अत्यानन्द, पूर्ण प्रेम, भक्ति और परम आत्मसंयम बने रहने चाहिये।

कभी यह भी पूछा जाता है कि कीर्तन कितनी देरतक करना चाहिये? मेरे विचारसे कम-से-कम आधा घंटातक अवश्य करना चाहिये। अधिक हो तो और भी अच्छी बात है। पर आरम्भमें आध घंटा काफी है। अभ्यास होनेपर समय बढ़ा सकते हैं। कीर्तन समाप्त होनेपर पाँच मिनटतक शान्त भक्ति-भावयुक्त बैठे रहना आवश्यक है; क्योंकि जो आशीर्वाद बरसनेकी क्रिया होती है वह तुरंत बंद नहीं हो जाती और उस आशीर्वादके हममें मिल जानेके लिये भी कुछ समय चाहिये। हमारी सच्ची भक्ति देवताओंके द्वारा ईश्वरतक पहुँच जाती है और उससे आशीर्वादका बड़ा प्रवाह उतरता है।

संकीर्तनके स्थानमें श्रीकृष्ण, श्रीराम अथवा भगवान्‌का और कोई सुन्दर तथा आकर्षक चित्र शुद्ध पीढ़ेपर रक्खा हो। भक्तिसे उसे फूल-माला या फूल चढ़ाये गये हों। उसके पास पूजाके लिये घृतका दीपक भी जलाया गया हो और धूप भी जलायी हुई हो। पूजार्थ दीपक जलानेसे कीर्तनमें बहुत अन्तर पड़ जाता है। कीर्तनके अन्तमें आरती गाना भी आवश्यक है। उससे देवताओंको इत्तिला मिल जाती है कि अब कार्य समाप्त होता है। धूप जलानेसे वातावरण शुद्ध होता है; इसलिये धूपबत्तीके सिवा चन[्दनके] बुरादेमें थोड़ा-सा कोड़िया-लोबान मिलाकर जलानेसे [वाता]वरणमें पवित्रता बहुत होती है।

अब कीर्तनमें क्या कहना चाहिये? आरम्भमें भग[वान्] शिवजीको प्रणाम कर लेना चाहिये; क्योंकि शिवजी [आदि-]गुरु और आदि-योगी हैं। यह परम्परा भी है। फिर इ[च्छा] हो तो एक कोई ऐसा भजन गाया जाना चाहिये, [जिससे] भक्तिका उद्गार हो; न हो सके तो कोई बात नहीं है। इ[सके] बाद नामसंकीर्तन शुरू होना चाहिये। जो नाम अप[ना] प्रिय हो, उसीका प्रेमभक्तिसे ऐसे उच्चारण करना चाहिये, [जैसे] अपने प्यारे स्वजनको आतुरतासे बुलाते हों। नामसे न[ामी] खिंच आता है। हमें उस नामीसे एकत्व प्राप्त करना [है,] वही बन जाना है। किसीने कहा है—

देवो भूत्वा यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत्।
येन केन प्रकारेण द्वैतभावं विवर्जयेत्॥

देवताकी पूजा देव बनकर ही करनी चाहिये। बिना [देव] बने देवताकी पूजा नहीं करनी चाहिये। जैसे भी बने द्वैतभाव त्याग करना चाहिये। 'कलिसंतरण-उपनिषद्' एक छो[टा] उपनिषद् है। भारतके ऊँचे जीते-जागते हिंदू-धर्मके रह[स्य] इन छोटे उपनिषदोंमें छिपे पड़े हैं। उसमें लिखा है [कि] नीचे लिखे मन्त्रके (इन १६ नामोंके) उच्चारणसे ही कलि[के] सब पाप धुल जाते हैं, जीवके सब आवरण नष्ट होते हैं अ[ौर] उसे परब्रह्मकी प्राप्ति होती है। इस कीर्तनकी कोई खास वि[धि] नहीं है। वह मन्त्र यह है—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इसीको 'महामन्त्र' समझना चाहिये। इसका बड़[ा] प्रभाव पड़ता है। दूसरे भी बहुत-से पद हैं जैसे 'गोविन्द ज[य] जय, गोपाल जय जय। राधारमण हरि गोविन्द जय जय॥' यह भी बहुत प्रभाव उत्पन्न करता है। 'राधामनमोहन कुंजविहारी। बन-बन फिरे गोपी विरह की मारी।' इससे भी अति भक्ति उत्पन्न होती है। कीर्तन प्रायः श्रीराम या श्रीकृष्णका होना चाहिये। सब देवोंके गीत गानेमें भक्तिका उद्गार कम हो जाता है। हाँ, यदि कई लोग एक ही इष्टकी साधनावाले इकट्ठे हुए हों तो वे उस अपने इष्टका कीर्तन कर सकते हैं। पर इष्ट ईश्वररूप ही हो। भगवद्गीताका यह श्लोक सदैव याद रहे—

देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥
(७। २३)
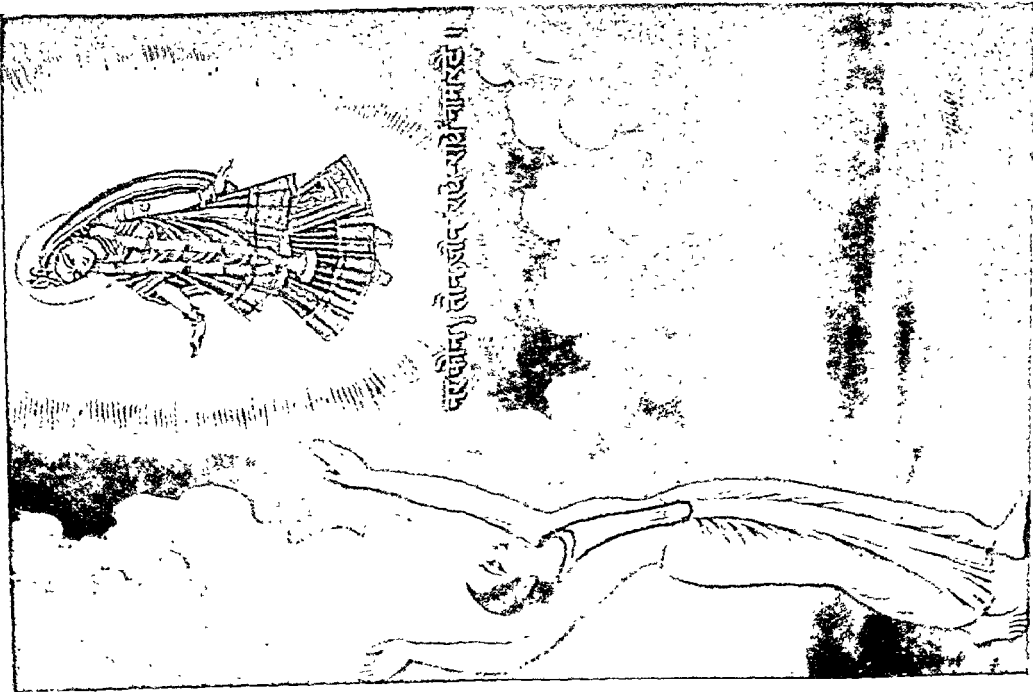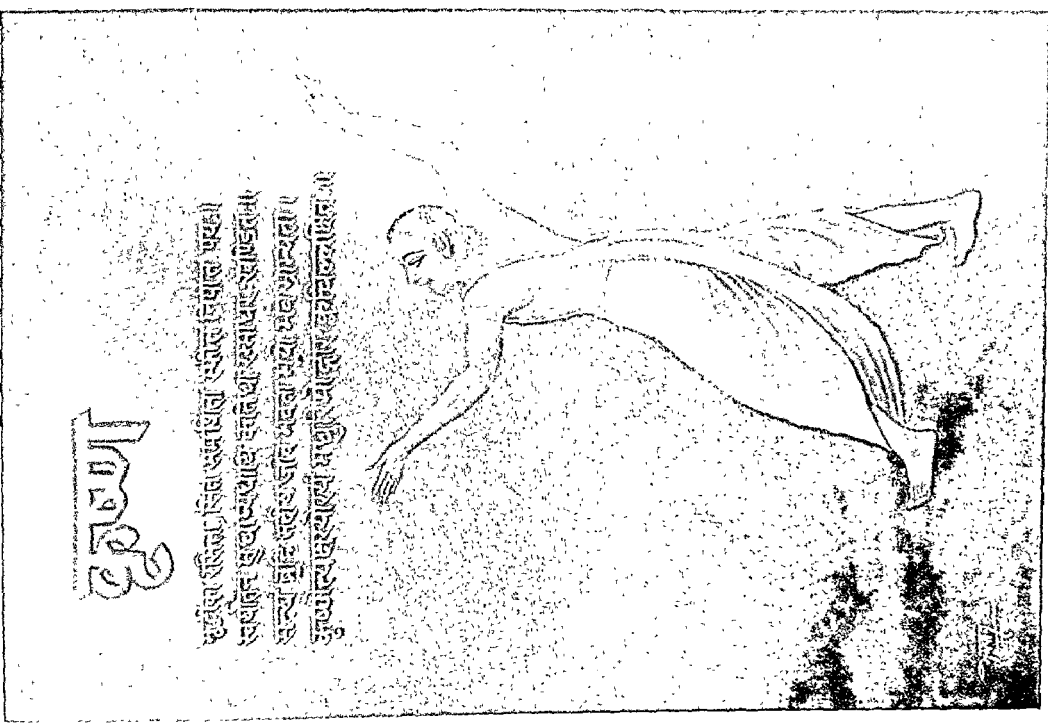
दर्जीजीकी 'राधा' नाम-निष्ठा

कृष्ण-नाम-माधुरी

बहुत-से लोग कीर्तन करते-करते रुक जाते हैं। बीचमें बोल उठते हैं,—'बोलो कृष्ण भगवान्‌की जय'। इसमें भक्तिका प्रवाह टूट जाता है। इसलिये जितने काल कीर्तन करना हो, बराबर कीर्तन जारी रखना चाहिये। कीर्तन समाप्त होनेतक किसीको बीचमेंसे उठकर चले न जाना चाहिये। संकीर्तनके बीचसे उठकर चले जानेसे आशीर्वादकी क्रियामें बाधा पड़ती है और 'उस पार'वाले व्यक्ति उसे पसंद नहीं करते।

ऐसे कीर्तन करनेमें कभी-कभी कोई-कोई लोग शरीरसे निकल जाते हैं। छोटे बालकोंपर कीर्तनका बड़ा असर होता है। वे 'उस पार' जाकर श्रीकृष्ण भगवान्‌के साथ खेलते हैं। जो बातचीत होती है, उनका शरीर बोलता जाता है। बड़े प्रेमसे खेलते हैं। श्रीकृष्णके चले जानेको रोकते हैं और चले जानेपर खिन्न हो जाते हैं और अपने शरीरमें लौट आते हैं। कोई-कोई बड़े भी बहुत शान्तिसे उनका दर्शन करते हैं और ऊँचे आनन्दका अनुभव करते हैं। एक व्यक्तिके मुखसे भक्तिके उद्गारमें ये वाक्य निकले थे—

हम कृष्ण कन्हैयाकी सेवामें, तन-मन-धनको लगा देंगे।
हम कैसे भक्त हैं प्रभुवरके, दुनियाको खूब दिखा देंगे॥
जब दुनियामें कुछ गम होंगे, गमखार दिलोंमें हम होंगे।
उस दर्दके साथी हम होंगे, गम सारे जहाँका मिटा देंगे॥
जब किश्ती भँवरमें पायेंगे, तूफानका जोश मिटा देंगे।
हम डूबेंगे मर जायेंगे, पर बेड़ा पार लगा देंगे॥

ये भाव ऊँचे हैं। जब कोई व्यक्ति मूर्छित हो जाय तो उसे दूसरे कोई छुएँ नहीं। वह थोड़ी देरमें स्वयं जाग उठेगा। यदि सहायता करनी है, तो उसके सिरसे पाँवतक बिना छुए हाथसे आशीर्वाद देते हुए दो-तीन बार पास (Pass) कर देना चाहिये अर्थात् हाथ बिना छुए सिरसे पाँवतक आशीर्वाद देनेकी भावनासे ले जाना चाहिये। पर अच्छी बात यही है कि कोई मूर्छित न हो, न मूर्छित होनेकी इच्छा ही करे।

सम्भव है कि कीर्तनकारोंके विचारोंके अनुसार ही रूप बनता है, जैसा गीता अध्याय ४। ११ और ७। २१में लिखा है। पर उसमें शक्ति सच्चे इष्टदेवकी ही या ईश्वरकी ही समाती है और कार्य करती है। वह बहुत ही थोड़ी क्यों न हो, पर अनन्तका थोड़ा अंश भी तो अनन्त ही है।

श्रीआइसनहोवरका प्रार्थनामें विश्वास

(लेखक—श्रीरामगोपालजी अग्रवाल, बी० ए०)

उस सर्वशक्तिमान् सच्चिदानन्दघन परमात्माकी अन्तर्हृदयसे श्रद्धापूर्वक प्रार्थना करनेसे मनुष्यमें अनन्त शक्तिका प्रादुर्भाव होता है। परम प्रभु शीघ्रातिशीघ्र प्रार्थीकी इच्छाको अपनी इच्छा तथा विपत्तिको अपनी विपत्ति मानकर उसकी माँगको पूरी करते हैं। यह भगवान्‌का 'विरद' है, उनकी सनातन रीति है। जैसे ध्रुव, प्रह्लाद, द्रौपदी, गजराजकी प्रार्थना और आर्त पुकार सुनकर प्रभुने उनके मनोरथ पूर्ण किये, उन्हें महान् भयसे बचाया,—'दुःशासनकी भुजा थकित भइ बसनरूप भये स्याम।' और 'तजि आये निज धाम।' वैसे ही भगवान् आज भी सब कुछ कर सकते हैं।

सब प्रकारका दूसरा भरोसा छोड़कर यदि मनुष्य सच्चे हृदयसे प्रार्थना करे तो ऐसी कौन-सी बात है जो भगवत्कृपासे सहज ही नहीं हो सकती।

इधर कुछ समयसे भौतिक सभ्यताके विकासके साथ-साथ आधुनिक स्त्री-पुरुषोंका भगवत्-विश्वास शिथिल हो गया और वे प्रार्थनाका निरादर-सा करने लगे हैं। जो बातें उनकी भौतिक स्थूल बुद्धिमें नहीं समातीं, वे उनका तिरस्कार करते हैं। अपने नित्यके जीवनमें तथा अन्यान्य स्थलोंपर भौतिक विज्ञान और आधुनिक साधनोंका ही आश्रय लेते हैं। यहाँतक हो गया कि हमारी संसदमें भगवान्‌का नाम लेना भी व्यर्थ माना जाने लगा!

परंतु सच तो यह है कि इस भौतिक विकासकी चमक-दमकमें लुब्ध-सा यह मनुष्य अपनी बहुत बड़ी 'निधि' खोता चला जा रहा है। वह है—'मानवता', जिसको 'रत्न अमोल' कहा गया है। इस भौतिक विकासकी चकाचौंधमें मनुष्य अपने-आपको धोखा देता हुआ अपने नैसर्गिक रूप और स्वभाव (Character) का स्वयं ही विनाश—विलय कर रहा है। वह मनुष्य होकर मनुष्यसे घृणा करता है, दूर होता जा रहा है और जहाँ पहले मनुष्य दैवी-कोप, महामारी, भूकम्प, बाढ़ तथा अन्यान्य उपद्रवोंको 'काल' समझता था, वहाँ आज वह सबसे बड़ा काल 'मनुष्य'को समझने लगा है। बाघ, हाथी, साँपसे न डरकर मनुष्य

आज मनुष्यसे ज्यादा डरता है। इसका कारण यही है कि मनुष्य आज 'असुर' बनता जा रहा है। गुरु-शिष्य, स्वामी-सेवक, पिता-पुत्र, राजा-प्रजा, भाई-भाईका वह स्नेह-सूत्र अब अति क्षीण हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति अपनेको विपत्तिमें, संकटमें ही देखता है। कहीं भी शान्तिमय जीवन देखनेमें नहीं आता। हिंसा, भय तथा असामञ्जस्य जीवनका स्वरूप बन गया है। सभी व्यवहारोंमें राग-द्वेषका आश्रय है। ऐसे समयमें मनुष्य यदि ध्यानपूर्वक गम्भीरतासे कृत्रिमता और आत्मप्रवञ्चनाको त्यागकर विचारे तो उसको आश्रय मिलेगा केवल एक ही जगह। वह है—'भगवान्‌की प्रार्थना तथा उनकी अनुकम्पा।' यह नयी बात नहीं है। विश्वमें जब-जब ऐसी परिस्थिति हुई है तथा जब मनुष्य दानवी भावनाओंसे अभिभूत होकर दानव बनने लगा है, तब-तब संतप्त हृदयोंने विश्वासपूर्वक प्रार्थना की है और भगवान्‌ने उनकी विपत्तिका नाश किया है। रावण, हिरण्यकशिपु, वेन, कंस आदिके काल इसके साक्षी हैं।

विश्वमें आज भी एक ऐसा ही युग बीत रहा है। दो बड़ी शक्तियों तथा अन्यान्य छोटी-छोटी शक्तियोंने अपने-अपने भौतिक विकासको इतनी चरम सीमातक पहुँचाया है कि वे स्वयं ही अपने उन विज्ञानके चमत्कारों एवं ध्वंसात्मक साधनोंसे भयभीत हैं और कब, किसका विनाश हो जायगा, यह सोच रहे हैं!

इस भयानक काल-विभीषिकासे डरकर विश्वके सभी बुद्धिमान् और शान्तिप्रिय पुरुष अपनी-अपनी विचारधाराके अनुसार इस चेष्टामें लगे हैं कि किस प्रकार इस बढ़ते हुए वैषम्य-जन्य राग-द्वेषका निर्मूलन हो; पर सभी चेष्टाएँ असफल-सी हो रही हैं और तृतीय विनाशकारी महायुद्धका भीषण उद्योगपर्व चल रहा है। गत ता० १९-८-५४ को एवास्टन (Evaston) शहरमें ४२ देशोंके (धर्मयाजक) अधिष्ठाता तथा प्रतिनिधियोंके प्रति अमेरिकाके तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीआइसनहोवरने एक अपील की थी—भाषण दिया था। वह भाषण हर एक व्यक्तिके पढ़नेकी चीज है। उसका संक्षिप्त सार यहाँ दिया जाता है—

विश्वकी शान्ति खतरेमें है

(१) आज विश्वमें स्थायी सुखदायिनी शान्ति स्थापन करनेके लिये हमें ऐसी सामूहिक शक्तिकी आवश्यकता है, जो जनताके अन्तस्तलको ऊँचा उठावे तथा उसमें परिवर्तन कर दे। परंतु ऐसी शक्ति मनुष्यकी अन्तरात्मासे ही प्राप्त होगी और वह भी कब, जब कि मनुष्यमात्र सर्वमङ्गलमय विचार-धारानुयायी होकर ईश्वर या अन्तरात्माकी आज्ञाओंका सत्कार करेगा।

(२) आप सभी राष्ट्रोंके धर्म-संघोंके प्रतिनिधि ही नहीं, आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक हैं; मुझे विश्वास है कि आप तथा आप-जैसे अन्यान्य धर्मावलम्बी नेता भी ऐसे अभियानका नेतृत्व कर सकते हैं। इसका प्रथम कार्य होगा कि हरेक राष्ट्रके प्रत्येक व्यक्तिको, जो उस परम शक्तिमान् ईश्वरकी प्रार्थनामें विश्वास रखता है, आह्वान किया जाय, ताकि सभी व्यक्ति एक साथ इस बृहत् धर्मानुष्ठानमें—प्रार्थनामें सम्मिलित हों।

(३) इसके बाद श्रद्धापूर्वक विश्वके अरबों नर-नारी उस जगन्नियन्ताकी व्यक्तिगत प्रार्थना करें कि 'वह ईश्वर उन्हें शान्ति-स्थापन-कार्यके लिये अनवरत परिश्रम करनेकी श्रद्धा, लगन, सुबुद्धि तथा शौर्य प्रदान करे।

(४) इस प्रकार यदि प्रत्येक मनुष्य इस प्रयासको सफल करनेके लिये निरन्तर सच्चे हृदयसे प्रयत्न करे तथा साथ-ही-साथ प्रार्थनाका अमोघ संबल रक्खे, तो उसका ऐसा आशातीत फल होगा कि जिससे सारी वस्तु-स्थिति ही बदल जायगी; क्योंकि इससे मनुष्य ही बदल जायगा।

(५) प्रारम्भमें थोड़ा-सा भी यदि हम मनन करें तो हरेक व्यक्तिको यह स्मरण रखना होगा कि विश्वमें शान्ति या संघर्षकी जिम्मेवारी हममेंसे हरेककी कुछ-न-कुछ है। लक्ष्य और धर्मकी एकता, एकाग्रता तथा तज्जनित पारस्परिक सहयोग, बन्धुत्वकी भावना और मनोबल प्राप्त होनेसे सबको उत्साह और शान्ति मिलेगी। इस प्रकारके आचरणसे स्वयं ही एक बड़ी विशाल शक्तिका क्रमशः उत्थान होगा, जो मनुष्यमात्रको एक सूत्रमें आबद्ध करेगी, जैसे युद्धके समय एक सर्वव्यापी खतरा सबको एकताबद्ध कर देता है।

उन्होंने फिर कहा—'इस अभियानमें उन-उन विषयों-का अध्ययन करना चाहिये, जो कि विश्वकी शान्तिके बाधक रहे हैं। संसारके सच्चे, कर्मठ, त्यागी नेताओंकी सहायता एवं भरण-पोषणके लिये भी प्रबन्ध किया जाय जिससे वे इस विषयमें गहरे डूबकर अन्तर्ज्ञान और जानकारी प्राप्त करें तथा पारस्परिक सामञ्जस्य तथा समझौतेके नवीन पथ खोज निकालें।

'इसी प्रकार नवीन-नवीन विधान और योजनाएँ खड़ी की जायँ, जिससे करोड़ों मनुष्योंके जीवनसे दुःख, क्लेश तथा निराशाका नाम उठ जाय।

'हमारा ही यह एक ऐसा समय है कि धर्म एवं श्रद्धाके नामपर बहुत बड़ी हिम्मत की जा सकती है।'

उन्होंने फिर कहा—'संसारके सभी नर-नारी ऐसे भविष्यकी खोजमें हैं, जिसमें न्याय और चिर-शान्तिका सुप्रभात हो, परंतु ऐसे भविष्यका प्रादुर्भाव कूट राजनीतिज्ञ या योद्धाके द्वारा नहीं होगा। इतिहास ऐसे महापुरुषोंकी असफलताओंकी गाथाओंसे भरा पड़ा है, चाहे वे कितने ही बुद्धिमान् और अध्यवसायी क्यों न हुए हों!

'किंतु उनकी वे असफलताएँ अभी आशावृक्षको समूल नष्ट नहीं कर पायी हैं। इस विश्वमें मनुष्यमात्रमें इससे सर्वसम्मत अदम्य तथा उत्कट इच्छा दूसरी नहीं है कि विश्वमें चिर-शान्तिकी स्थापना हो। यदि यह लक्ष्य हमें पूर्ण सफल होता न दीखे तो भी हम, आप सब मिलकर (प्रार्थना-द्वारा) बहुत कुछ कर सकते हैं।'

युद्धकलाके बहुत बड़े ज्ञाता तथा युद्धनीतिमें बहुत बड़ा विश्वास रखनेवाले श्रीआइसनहोवर निरुपाय होकर अमेरिका-के राष्ट्रपतिके आसनपर स्थित होते हुए भी प्रार्थनामें ही सर्वसुन्दर आश्रय खोजते हैं तथा विश्राम करते हैं। हमारे देशके नर-नारियोंको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और सर्वत्र फैलते हुए अनीश्वरवादसे सभी भाई-बहिनोंको बचना चाहिये तथा अपने जीवनमें विश्वासपूर्वक ईश्वर-प्रार्थनाको सर्वोच्च स्थान देना चाहिये। इसीसे व्यक्तिगत और राष्ट्रगत परम शान्तिकी प्राप्ति होगी।

प्रसिद्ध प्रार्थना-स्तोत्रोंमें सप्तशतीका स्थान

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

दुर्गासप्तशती अथवा देवीमाहात्म्यका भारतमें कटकसे अटक तथा कश्मीरसे कन्याकुमारीतक ग्राम-ग्राममें सर्वत्र प्रचार है। यह स्तोत्र सभी मनःकामनाओंको पूर्ण करनेवाला तथा तत्काल सिद्धिप्रद माना गया है। जैसे देवताओंमें विष्णु, नदियोंमें गङ्गा, पशुओंमें गौ, वर्णोंमें ब्राह्मण, यज्ञोंमें अश्वमेध तथा तीर्थोंमें काशी है, उसी प्रकार सभी स्तोत्रोंमें इसकी मान्यता है—

'स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशतीस्तवः।'

इसी प्रकार गीता तथा विष्णुसहस्रनाम भी प्रसिद्ध स्तोत्र माने गये हैं। वाराहीतन्त्रमें कहा गया है—

भीष्मपर्वणि या गीता सा प्रशस्ता कलौ युगे।
विष्णोर्नामसहस्रं च महाभारतमध्यगम्॥
चण्ड्याः सप्तशतीस्तोत्रं······ ।

शेष अन्य फलदायक स्तोत्र परशुरामद्वारा कलियुगमें कीलित कर दिये गये माने गये हैं—

'भार्गवाख्येन मुनिना कीलिताः स्युः कलौ युगे।'

'सप्तशतीके पंद्रह पाठसे अत्यन्त सुख तथा लक्ष्मी मिलती है। इसके १०८ पाठसे तो सारे मनोरथ ही सिद्ध हो जाते हैं और सौ अश्वमेध-यज्ञोंका फल मिलता है।' इसलिये शतचण्डीकी बड़ी ही महिमा है—

सौख्यं पञ्चदशावृत्त्या श्रियमाप्नोति मानवः।
मनसा चिन्तितं देवि सिध्येदष्टोत्तराच्छतात्॥
शताश्वमेधयज्ञानां फलमाप्नोति सुव्रते॥

(वाराहीतन्त्र)

रघुनन्दन भट्टद्वारा रचित 'तिथ्यादितत्त्व'में भी वाराही-तन्त्रके वचनसे इसकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। वहाँ भी कहा गया है—

यथाश्वमेधः क्रतुराड् देवानां च यथा हरिः।
स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशतीस्तवः॥

इसके सम्पुटकी महिमा एवं विधि गुप्तवती व्याख्या, सप्तशतीसर्वस्व, मुण्डमालातन्त्र, मत्स्यसूक्त, तिथ्यादितत्त्व, निर्णयसिन्धुके द्वितीय परिच्छेदादिमें विस्तारसे निरूपित है। सकाम अनुष्ठानोंमें इस विधिकी विशेष आवश्यकता होती है। यथा—

'सकामैः सम्पुटो जाप्यो निष्कामैः सम्पुटं विना।'

(मत्स्यसूक्त)

कुछ लोग नवार्णमन्त्रके पाठादि और पाठान्तमें १०८ जपको ही सम्पुट मानते हैं—

'शतमादौ शतं चान्ते सम्पुटोऽयमुदाहृतः।'

दूसरे लोग विभिन्न मन्त्रोंद्वारा सम्पुटक्रम मानते हैं।

देवीका स्वरूप

चण्डिकादेवीको विभिन्न वैदिक सूक्तोंमें 'ब्रह्म' ही माना गया है—

'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी।'　　　　(देव्यथर्वशीर्ष ३-४)
अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ।'
(देवीसूक्त० ऋ०)

'भीषास्माद् वातः पवते भीषोदेति सूर्यः' 'महद् भयं व्रमुद्यतम्'— (त्रिपुरातापनी० ५-१)

इत्यादि श्रुतियों तथा मीमांसाके कम्पनाधिकरण ादिमें ब्रह्मके मन्युमय रूपका भी वर्णन हुआ है। कहीं हें 'परब्रह्ममहिषी' भी कहा है—

तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिस्सीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी॥
(सौन्दर्यलहरी)

सतां भक्तेर्बीजं त्वमसि परमब्रह्ममहिषी।
(आनन्दलहरी ८)

अन्यत्र तथा विशेषकर मार्कण्डेयपुराणकी देवीको तेपरूपसे ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुकी महामाया, योगमाया ़लाया गया है। यहाँ इसपर कुछ विशेषरूपसे समीक्षा जा रही है।

मार्कण्डेयपुराणकी वैष्णवता

वेदे रामायणे पुण्ये पुराणे भारते तथा।
आदौ मध्ये तथा चान्ते हरिः सर्वत्र गीयते॥*

इस प्रसिद्ध श्लोकके अनुसार वास्तवमें सभी पुराणों, ्हासों तथा शास्त्रोंके गेयतत्त्व भगवान् श्रीहरि ही हैं। मत्स्य, कूर्म, वामन, वाराह, विष्णु आदि पुराणोंके तो नाम ही साक्षात् विष्णुके अवतारोंपर हैं; ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, नारद, पद्म, भविष्य, गरुड, श्रीमद्भागवत, स्कन्द और अग्नि आदि पुराणोंके प्रतिपाद्य तत्त्व भी वे ही हैं और उनमें उनकी बड़ी भारी महिमा है। इसी प्रकार मार्कण्डेय-पुराण भी विष्णुपरक ही है। इसके प्रारम्भके दो श्लोकोंमें बड़े ही रम्य ढंगसे प्रभु नारायणका स्मरण किया गया है। यथा—

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्य-
मासाद्य वन्दितमतीव विविक्तचित्तैः।
तद्वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्म-
माविर्भवत्क्रमविलङ्घितभूर्भुवःस्वः॥
पायात् स वः सकलकल्मषभेददक्षः
क्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्तिः।
श्वासावधूतसलिलोत्कणिकाकरालः
सिन्धुः प्रनृत्यमिव यस्य करोति सङ्गात्॥*

४। ३६ में द्रोणपुत्र पक्षीगण भी जैमिनि मुनिसे कथा आरम्भ करते हुए भगवान् विष्णुको ही प्रणाम-स्तवन करते हैं—

नमस्कृत्य सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
पुरुषायाप्रमेयाय शाश्वतायाव्ययाय च॥

—इत्यादि ४१ श्लोकोंसे भगवान् विष्णुको प्रणाम कर पुनः एक-एक श्लोकसे ब्रह्मा तथा शिवकी स्तुति कर कथा आरम्भ करते हैं।

मीमांसकोंकी ग्रन्थतात्पर्यनिर्णायक पद्धतिमें ३ मुख्य हैं—ग्रन्थारम्भ, ग्रन्थोपसंहार तथा अपूर्वता। तदनुसार अपूर्वताका वर्णन भी हरिश्चन्द्र-कथामें विष्णुस्मरणमें ही है। विश्वामित्रद्वारा हरिश्चन्द्रके क्लेशोंका जितना भयानक तथा करुण चित्रण इस पुराणमें हुआ है, उतना शायद ही कहीं अन्यत्र हुआ हो। पर ज्यों ही वे चितामें मरनेको तैयार होकर भगवान्

---

* 'नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।' आदि; प्रत्येक णके मङ्गलाचरणका प्रथम श्लोक भी सभी पुराणोंको वैष्णव सिद्ध ता है; वस्तुतः सभीका लक्ष्य समन्वयमें है। वे शिव, विष्णु, ।, गणेश, सूर्य, देवी—सबकी स्तुति एक ही परतत्त्वके रूपमें ो हैं। ज्ञान, भक्ति आदि सबका समन्वय करते हैं।

* क्रोध-मोहादिशून्य शुद्धतम हृदयसे योगीजन जिन संसृति-क्लेश-भयसंहार-सक्षम भगवत्पदद्वन्द्वोंकी वन्दना करते हैं तथा वामना-वतारमें जो भूः, भुवः और स्वर्गलोकको लाँघ गये थे; वे चरण आपको शुद्ध करें। क्षीरसमुद्रमें शेषशायी सर्वपापनाशक विष्णु आपकी रक्षा करें, जिनके सङ्गसे समुद्रका जल निरन्तर नृत्य-सा करता रहता है।

नारायणका स्मरण प्रारम्भ करते हैं, सभी देवता प्रकट हो जाते हैं और उनका क्लेश समाप्त हो जाता है—

ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयं स्वकम्।
भार्यया सहितश्चासौ बद्धाञ्जलिपुटस्तदा॥
चिन्तयन् परमात्मानमीशं नारायणं हरिम्।
हृत्कोटरगुहासीनं वासुदेवं सुरेश्वरम्॥
अनादिनिधनं ब्रह्म कृष्णं पीताम्बरं शुभम्।
तस्य चिन्तयमानस्य सर्वे देवाः सवासवाः।
धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः॥
(८।२३६–३८)

इसी प्रकार पुराणके अन्तमें भी भगवान् विष्णुके ही लोकको श्रेष्ठ माना है और पुराणश्रोताके पवित्र होकर विष्णुलोक जानेकी ही बात लिखी है*—

सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनात्येव निजं कुलम्।
पूतो याति न संदेहो विष्णुलोकं सनातनम्॥
(मार्कण्डेयपुराण १३७।२५-२६)

साथ ही विष्णुलोकको मोक्षके ही समान अपुनरावर्त्य माना है—

'च्युतस्ततः पुनर्नैव स भविष्यति मानवः।'
(मार्कण्डेय० १३७।२६)

इस तरह इसमें भगवान् विष्णुको ही परम दैवत माना है। इसलिये देवी-माहात्म्यमें भी सर्वत्र भगवान् विष्णुकी महिमा अक्षुण्ण है। मूल सप्तशतीके प्रत्येक पदमें देवीको वैष्णवी बतलानेका संकेत किया गया है। आइये, यहाँ इसपर भी यत्किंचित् समीक्षा की जाय; क्योंकि करुणामयी पराम्बाके चरणोंका जितना अधिक मनोयोगसे दर्शन किया जायगा, उतना ही अधिक मङ्गल तथा श्रेय होगा।

देवी वैष्णवी

देवी-माहात्म्यके प्रथम वक्ता सुमेधा मुनि, द्वितीय वक्ता मार्कण्डेयजी हैं। ये दोनों ही मायामुक्त हैं। इसके श्रोता राजा सुरथ तथा समाधि वैश्य हैं। तपके बाद भगवतीकी इनपर कृपा अवतरित होती है। मूलतः कथा ७ मन्वन्तरोंके बाद ८वें मन्वन्तरकी है। ८वें मन्वन्तरके अधिपति-पद-

* फलश्रुतिमें किसी अन्य लोकका उल्लेख नहीं है।

प्राप्तिका कारण सुरथ राजापर महामायाकी अनुकम्पा है—

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः॥
(८१।२)

ये महामाया कौन हैं? यह शङ्का होनेपर उत्तर-रूपमें यहाँ बार-बार इन्हें भगवान् विष्णुकी ही योगमाया बतलाया गया है। यथा—

तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः।
महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत्॥
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥
(८१।४१-४२)

अर्थात् 'यह महामाया जगत्पति भगवान् विष्णु श्रीहरिकी योगनिद्रा* ही है। इसीके द्वारा यह सारा जगत् मोहित हो रहा है। यह भगवती देवी ज्ञानियोंके चित्तको बलात् अपहरण कर मोहमें डाल देती है।' पूज्य गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने ठीक इन्हीं श्लोकोंका भाव निम्न चौपाइयोंमें व्यक्त किया है—

सुनु खग प्रबल राम कै माया।
'जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई बिमोह मन करई॥'

इसके आगे सुमेधाजी कहते हैं—

तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये॥
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥
(मार्कण्डेय० ८१।४३-४४)

यही देवी जगत्की रचना करती है—

'लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया॥'

यही मुक्तिका हेतु सनातनी अध्यात्ममयी 'परा विद्या' है तथा संसार-बन्धका कारण 'अविद्या' भी यही सर्वेश्वरी है।

* योगनिद्राका तात्पर्य यहाँ ध्यानलक्षण यौगिक चित्तवृत्ति-निरोधसे है, न कि साक्षात् निद्रासे; क्योंकि देवताओंका सोना ही नहीं होता—'अस्वप्नत्वाद्देवानाम्।' (शान्तनवी)

'एक दुष्ट अतिशय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥'

आगे ब्रह्माजी इन्हीं योगमायाकी स्तुति करते हैं—

'तुष्टाव योगनिद्रां ताम्' (८१। ५२)

'निद्रां भगवतीं विष्णोः' (८१। ५३)

इन्हींको वे महाविद्या, महामाया, मेधा, स्मृति, श्री, ह्री, ईश्वरी, पुष्टि, तुष्टि आदि कहते हैं—

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च॥
(८१। ५८, ६०)

इनको ही वे सभी प्राणी-पदार्थोंकी शक्ति-महाशक्ति-प्रेरिका बतलाते हैं—

यच्च किंचित् क्वचिद् वस्तु सदसद् वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥
(८१। ६३)

यही महामाया मधुकैटभको मोहित करती हैं—

पुनः ८५। ५—६ में देवता शुम्भ-निशुम्भसे त्रस्त होकर भी इन्हें ही पुकारते हैं—

'विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः।' (८५। ६)

'या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।'
(८५। १२)

स्तुतिमें भी बार-बार देवता 'नारायणि नमोऽस्तु ते'से नारायणिको ही प्रणाम करते हैं। अन्तमें उपसंहारमें भी ऋषि पुनः 'सा नित्या' आदिसे ८१। ४५-४६ का स्मरण दिलाते हैं और ९३। २ में पुनः सुस्पष्टरूपसे उन्हें विष्णुमाया कहते हैं—

'विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया।'
(९३। २)

और इन्हींकी शरण लेनेको कहते हैं—

'तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम्।'
(९३। ३)

इन्हींकी कृपासे मोह-निराकृति, विषय-जुगुप्सा तथा विज्ञान एवं अन्य सिद्धियाँ मिलती हैं—

'सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति।'
(९२। ३४)

मार्कण्डेयपुराणके अतिरिक्त अन्य महापुराणोंमें भी देवीकी वैष्णवता निर्दिष्ट है। उदाहरणार्थ—ब्रह्मपुराण १८१। ३७-५३, विष्णुपुराण ५। १। ७०-८६ आदिके वचन इसी प्रकार हैं—

योगनिद्रा महामाया वैष्णवी मोहितं यया।
अविद्यया जगत् सर्वं तामाह भगवान् हरिः॥

ये ही शुम्भ-निशुम्भादि सबकी निहन्त्री हैं—

ततः शुम्भनिशुम्भादीन् हत्वा दैत्यान् सहस्रशः।
पृथिवीमशेषां मण्डयिष्यसि।······

राधा, सीता, रुक्मिणी आदि भी ये ही हैं—

'योगमायापि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि।'
(अध्यात्म० १। ६। ६५)

'जगतामादिभूता या सा माया गृहिणी तव॥'
(अध्यात्म० २। १। १०)

यह माया भगवान्से भिन्न नहीं है।* वैष्णव अथवा भागवत-ग्रन्थोंमें इस मायाको भगवदधीन भी कहा है—

'त्वदधीना महामाया सर्वलोकैकमोहिनी।'

यह माया भगवद्विमुखोंको विषयमुग्ध करती है, पर भगवन्नामके प्रेमियोंसे दूर रहती है—

त्वं सर्वभूतहृदयेषु कृतालयोऽपि
त्वन्मन्त्रजाप्यविमुखेषु तनोषि मायाम्।
त्वन्मन्त्रसाधनपरेष्वपयाति माया
सेवानुरूपफलदोऽसि यथा महीपः॥
(अध्यात्म० ३। २। २९)

इस तरह यह भगवतीदेवी सर्वाधिक कृपामयी विष्णुशक्ति है; अतः वैष्णवी है। बादमें तान्त्रिक रूप देकर इसका दूसरा प्रचार भी किया गया है।

---

* नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।

मालाका प्रचार

(लेखक—पण्डित श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

भगवन्नाम-जपका सर्वश्रेष्ठ आधार 'माला' माना जाता है। सारे विश्वमें इसका व्यापक प्रचार है। इस मालाकी भारतीय (सनातनी) पद्धतिपर **'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'** शीर्षक लेखमें कुछ प्रकाश डाला गया है। पर मालाका व्यवहार प्रायः सभी धर्म, मत, मजहब, सम्प्रदाय एवं देशोंमें देखा जाता है। हिंदू, मुसल्मान, ईसाई, जैन, बौद्ध—सभी 'जपमाला'का व्यवहार करते हैं। पर सबकी पद्धतियाँ अलग-अलग हैं। यहाँ संक्षेपमें उनका दिग्दर्शन कराया जाता है। इसमें संदेह नहीं कि इन सभी मत-मजहबवाले देशोंको भारतसे ही मालाकी शिक्षा-दीक्षा मिली है। अस्तु !

मुसल्मानोंके यहाँ मालाको 'तसबीह' कहा जाता है। तसबीहमें ९९ गुरिया होती हैं। उसपर ये अल्लाहके नाम जपते हैं। जैनोंकी जपमालामें १११ दाने (मोती) होते हैं। इनमें १०८ पर तो ये **'णमो अर्हन्ताय'**का जप करते हैं, शेष तीनपर **'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः'**का जप करते हैं। सिक्खोंकी मालामें दानोंकी जगहपर मुलायम रूईकी गाँठें मात्र होती हैं। पर यह टिकाऊ नहीं होती। इसलिये वे कभी विशेष उत्सवोंपर लोहेके दानोंकी मालाका व्यवहार भी करते देखे जाते हैं। जैनियोंके यहाँ गणितियाके अतिरिक्त काँचनीया मालाका भी उपयोग होता है। हिंदुओंके यहाँ वैजयन्ती मालाकी भी प्रसिद्धि है। भगवान् विष्णु प्रायः इसे ही धारण करते हैं—**'वैजयन्तीं च मालाम्'** (श्रीमद्भागवत १०। २१। ५), '''उर बैजन्ती माल। या बानिक मो मन बसो सदा बिहारीलाल।' इसके अतिरिक्त 'वनमाला' और 'जयमाला'का भी उल्लेख मिलता है—'उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला।', 'पानि सरोज सोह जयमाला।' कुछ लोगोंके मतसे ये तीनों ही एक हैं और कुछके मतसे भिन्न। जो हो, इस वैजयन्ती मालामें प्रायः पाँच प्रकारकी मणियोंको गूँथा जाता है, जो पञ्चमहाभूतोंसे उत्पन्न तथा पाँचों तत्त्वोंके प्रतीक माने जाते हैं। यथा—भूतत्त्वसे इन्द्रनीलमणि अथवा नीलम, जलतत्त्वसे मौक्तिक या मोती, अग्नितत्त्वका लाल या पद्मराग-मणि, वायुतत्त्वका पुष्पराग और आकाशतत्त्वका वज्रमणि अथवा हीरा*। इसी प्रकारका एक पदिकहार भी होता है। (रा० मा० बाल० ४७। ७)। इसी प्रकार, 'सीपाँ सीपी सूकरी गजमुक्ता मनिमाल। इन पाँचोंको पोहिये, तब होवै जयमाल।' 'वनमाल'की भी एक विधि है। इसमें सीप, सर्पादिसे उत्पन्न मुक्ता मणियोंके पोहनेकी बात है। (रोजेरीज़ मेन्शन्ड इन इण्डियन लिटरेचर, ओरियन्टल कांग्रेस रिपोर्ट, १८८१, पृ० ३)

इसी प्रकार हिंदुओंमें एक नागदमन गारुडीमाला भी होती है। इस मालामें सर्पास्थि-(साँपकी हड्डियों)के दाने होते हैं। इस तरहकी मालाओंके बाँधनेसे रुग्ण आदमीको भी लाभ होता है। इन मालाओंद्वारा किन्हीं विशेष गारुड-मन्त्रके जपके द्वारा सर्पदंशकी भी चिकित्सा होती है। शाक्तोंमें पुत्रार्थ पुत्रजीवकी मालाका भी विशेष उपयोग होता है। 'नार्थ इण्डियन नोट्स ऐण्ड क्वेरिज', भाग ४, पृ० ३७८में रामगरीब चौबेका एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें लिखा था कि 'प्रायः अधिकांश हिंदुओंकी यह धारणा है कि कुण्डलीमें ग्रहोंकी दुर्बलताके कारण ही पुत्र-संतानकी

* भागवत १०। २१। ५की टीकामें व्याख्याताओंने 'वैजयन्ती'को 'वनमाला' ही माना है—'वैजयन्तीं वनमालाम्'। 'तुलसीकुन्दमन्दारपारिजातसरोरुहैः। पञ्चभिः कुसुमैरेतैर्वनमाला प्रकीर्तिता।' (प्रेमनञ्जरी-व्याख्या)। 'प्रथितमौलिरसौ वनमालया।' इस रघुवंश (९। ५१) पद्यकी टीकामें चरित्रवर्धनने पत्र-पुष्पोंकी मालाको 'वनमाला' कहा है—'पत्रपुष्पमयी माला वनमाला प्रकीर्तिता॥' (शिशुहितै० चरित्र० व्या०)। गीतावली ७। ३ में तुलसीदासजीने तुलसीमञ्जरीकी मालाकी वनमालाका उल्लेख किया है—'भ्राजत बनमाल उरसि तुलसिका प्रसून रचित बिबिध बिधि बनाई।' 'रामस्तवराज' १६में भी 'तुलसीकुन्दमन्दारपुष्पमाल्यैः' से पत्र-पुष्पकी वनमाला कही है। अमरकोषकी रामाश्रमी टीकामें पादलम्बिनी मालाको वनमाला कहा है—'आपादपद्मं या माला वनमालेति सा मता।' अध्यात्मरामायण १। ६। २९ में सुवर्णमय जयमालका उल्लेख है। रघुवंश ६। २५में दूब और महुआके पुष्पोंकी जयमालाका वर्णन है—'किंचिद् विलंसि दूर्वाङ्कमधूकमाला।' कवि केशवदासने 'रामचन्द्रचन्द्रिका'में कमलकी जयमाला लिखी है—'सीताजू रघुनाथको अमलकमलकी माल पहिराई।' (रामचन्द्रचन्द्रिका ५। ४६)। गीतावली १। ९३। ४में भी पुष्पकी जयमाला लिखी है।

प्राप्ति नहीं होती। इन योगोंमें पुत्रभावमें स्थित राहु, केतु, मङ्गल अथवा शनिका अवस्थान विशेष बाधक माना गया है। पुत्रप्राप्तिके अनेक उपायोंमेंसे 'संतानगोपालमन्त्र'का जप अथवा 'पुत्रजीव'माला धारण आदि विशेष प्रभावशाली माना गया है।'

ऑक्सफोर्डके 'पिट रीवर्स म्यूजियम'में एक २१३ दानोंकी प्रतापगढ़की सुन्दर भारतीय माला सुरक्षित है। बौद्धोंकी मालामें भी १०८ दाने होते हैं। कहा जाता है कि गौतम-बुद्धके जन्मसमय १०८ ज्योतिषी उनका भाग्यफल बतलानेके लिये बुलाये गये थे और मालाके १०८ दाने इसी बातके प्रतीक हैं। बर्मामें बुद्धके पदचिह्नके भी १०८ भाग हैं। तिब्बतमें बौद्धोंका धर्मलेख 'कहग्यूर' भी १०८ पंक्तियोंमें ही लिखा है। चीनका पेकिंगस्थित उज्ज्वल श्वेतमन्दिर भी १०८ स्तूपोंसे घिरा है तथा जापानमें मृतक-श्राद्धमें १०८ दीपक जलाये जाते हैं तथा १०८ रुपये ही दान दिये जाते हैं। अतः उनके यहाँ सर्वत्र १०८का महत्त्व मान्य है। गौतमबुद्धके मरनेके समय उनकी चिताकी भी १०८ प्रदक्षिणाएँ की गयी थीं। अतः मालामें भी १०८ दाने होते हैं।

बौद्धधर्म बर्मा, लंका, चीन, जापान आदि अनेक देशोंमें प्रचलित है और उनकी मालाएँ भी अवश्य ही कुछ भिन्नता लिये होती हैं। भारतीय बौद्धोंकी माला प्रायः हिंदुओंके ही समान होती है। मालापर ये सभी बुद्धका नाम जपते हैं। तिब्बतवाले मालाको 'थेंगवा' या 'थेंगनगा' कहते हैं। इसे लामाका आवश्यक पहनावा माना गया है। जापानी बौद्धोंकी मालाएँ ११२ दानोंकी होती हैं और उनमें दो सुमेरु ५६ दानोंके बाद होते हैं। (जर्नल ऑफ दि एसियाटिक सोसाइटी आफ जापान, भाग ९, पृ० १७३—१८२)। जापानमें पहले पीपल-काष्ठकी माला बनती थी; क्योंकि यही बोधिवृक्ष है और इसीके नीचे शाक्यमुनि—गौतमको दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ था। पर वहाँ पीपलकी लकड़ी कम मिलती है; अतः बेर तथा रुद्राक्षकी माला अब अधिक बनने लगी है। कनो, कीतो और गोमा महोत्सवोंपर वे मालाकी बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। जापानमें धार्मिक क्षेत्रके अतिरिक्त सामाजिक क्षेत्रोंमें भी मालाका महत्त्व है। उनके चाय पीनेके कमरों तथा दुकानोंपर भी माला लटकानेके लिये विशेष खूँटियाँ बनी होती हैं। वे युद्धमें भी माला लगाते तथा आभूषणके रूपमें भी इसका उपयोग करते हैं। (प्रोसीडिंग्स ऑफ यू० एस० नेशनल म्यूजियम, जिल्द ३६, वाशिंगटन १९०९)

अरब, ईरान, टर्की आदिमें इस्लाम-धर्मका आधिक्य है। वहाँकी तसबीहमें ९९ दाने होते हैं। मुख्य दाना 'इमाम' कहलाता है। इनकी माला तीन भागोंमें बँटी होती है। प्रायः प्रत्येक भागके दानोंका रूप-रंग दूसरा होता है। उसका आकार भी दूसरा होता है और वे विभिन्न द्रव्योंसे बने भी होते हैं। उनके यहाँ एक दूसरी मालाका भी प्रचलन देखा जाता है, जिसमें ९९के स्थानपर १०१ दाने होते हैं। इससे १०१ पैगम्बरोंका नाम जुटा माना जाता है। डा० गेश्चरने लिखा है कि कहीं-कहीं ये दाने अल्लाहसे ही सम्बद्ध माने जाते हैं। पैगम्बरोंके नामका कोई प्रबल आधार नहीं मिलता। (प्रोसीडिंग्स ऑफ यू० एस० ने० म्यू०, ३६, पृ० ३४८)।

मुसलमानोंमें मालाका प्रचार कबसे हुआ, इस सम्बन्धमें कई किंवदन्तियाँ पायी जाती हैं। उनके ९वीं शतीके एक धर्मग्रन्थमें आता है कि अब्दुल रहमान एक मसजिदमें गये। वहाँ कुछ उपासक एक पीरके निर्देशान्तर्गत १०० तकबीर, १०० तहलील और १०० तसबीह (माला) लेकर भगवन्नामका उच्चारण कर रहे थे। अब्दुल रहमानने कहा कि 'भला होता कि तुम इसे छोड़ अपने पापोंकी गणना करते; मैं पक्का आश्वासन देता हूँ कि इससे तुम्हारी कोई भी भली वस्तु नष्ट न होगी।' इससे अनुमान होता है कि इस्लाममें इसके पूर्व भी मालाका प्रचलन था। किंतु अन्य लोगोंकी यह प्रबल धारणा है कि बौद्धोंसे ही उन्हें मालाका ज्ञान मिला था। (एच० थर्स्टन, जर्नल सोसाइटी आर्ट्स, भाग १, पृ० २६५)

मुसलमानोंमें कई शाखाएँ हैं और प्रत्येक शाखा अपने दानेके विशेष पवित्र होनेका दावा करती है और अलग-अलग पदार्थोंके दाने तैयारकर माला बनाती है। वहाबी मुसल्मान जो अब्दुल वहाबके अनुयायी हैं, अंगुलियोंपर ही गणना करते हैं। लकड़ीकी मालाका प्रयोग प्रायः सभी करते हैं। मक्केकी मिट्टीके बने हुए दाने बहुत अधिक पवित्र माने जाते हैं। पत्थर, सीसा तथा गुँटलियोंके भी दाने होते हैं। मूँगे और मोतीकी मालाका भी इनके यहाँ उपयोग होता है। शिया लोग करबलाकी मिट्टीके दाने बनाते हैं, जहाँ कि हुसेन दफनाये जाते हैं। अरबका सुन्नी सम्प्रदाय भारतीय मालाओंका उपयोग करता है।

मुसल्मानोंमें ऊँटकी हड्डीके दानोंकी मालाका भी प्रचलन है। (कूक, पृ० ४१०) कभी-कभी वे इन दानोंको हुसेनकी मृत्युके उपलक्ष्यमें लाल रंगमें भी रँग लेते हैं। हसन-हुसेनको जहर देकर मारा गया था। अतः उनका रंग पीछे हरा हो गया था; इसलिये वे कभी-कभी इन दानोंको हरे रंगमें भी रँग लेते हैं। फ़कीरोंकी माला प्रायः विभिन्न रंगके सीसेकी गुटियोंकी होती है। (तहमीद पृ० ६२५)

मिस्र (इजीप्ट) में १००० दानोंकी मालाका उपयोग मरण-संस्कारके बाद किया जाता है। उस समय कुछ कुरानकी आयतें भी पढ़ी जाती हैं। (लेन्स मौडर्न ईजिप्शियनस् पृ० ५३१ एफ)

ईसाइयोंमें मालाका प्रचार मुसल्मानोंसे हुआ, यही मान्यता रही है। पर बादकी खोजोंसे इस मान्यतामें संदेह होने लगा है (एच०थर्स्टन, जर्नल सो० आर्टस् १, २६६) रोमन कैथोलिक सम्प्रदायमें १५० दानोंकी मालाका प्रचलन है। ये १५ बड़े दानोंसे १० भागोंमें विभक्त होते हैं। रोमन साधुओंकी मालामें १०० दाने होते हैं। ये तीन बड़े दानोंसे ४ भागोंमें विभक्त होते हैं। (रिलिक्वेरी ४। ३ पृ० १७३)

यहूदियोंमें मालाका कोई भी धार्मिक महत्त्व नहीं है। वे इसे केवल क्रीड़ा या विनोदके लिये पर्व तथा उत्सवोंपर धारण करते हैं। इनमें कुछ तो ३२ दानोंकी और कुछ मालाएँ ९९ दानोंकी होती हैं। इससे अनुमान होता है कि इन्होंने तुर्क तथा यूनानवासियोंसे इसे ग्रहण किया। (इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एण्ड एथिक्स, भाग १०, पृ० ८५५)

इस प्रकार संक्षेपमें मालाके प्रचार-प्रसारका दिग्दर्शन कराया गया। यदि अनुसंधान किया जाय तो और भी बहुत-सी बातें ज्ञात हो सकती हैं।

प्रार्थना और दिव्य जीवन

(लेखक—आचार्य श्रीश्रीअनन्तलालजी गोस्वामी, भागवतभूषण)

जगत्‌में मानवमात्रकी आत्माका सम्बन्ध प्राण और प्रज्ञासे है। प्रज्ञासे ज्ञानका प्रकाश, और मन-बुद्धिके सहयोगसे प्राणसे जो प्रार्थना की जाती है, उस प्रार्थनासे एक विशेष क्रियाका संचार होता रहता है। हृदयके भावसे पूर्ण प्रार्थनामें जो शब्द मुखसे बाहर निकलते हैं—आत्मा, प्राण और मनके संयोगसे जिन प्रेममय वाक्योंका उच्चारण होता है, उनकी शक्ति, उनकी क्रिया और उनके परिणाममें एक विशेष आध्यात्मिक प्रकाशका उदय होता है।

'स वा एष आत्मा वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः।'

उस बलवती क्रियासे प्रार्थनाके शब्दोंकी गति अबाध होती है। वैसे भी वायु, तेज, मन—इन तीनोंकी गतिसे शब्दकी गति अधिक मानी गयी है।

प्रार्थनाके द्वारा अविद्याके अज्ञानान्धकारमेंसे मानव अध्यात्मविद्या (दिव्य ज्ञान) के प्रकाशमें आ जाता है और उस ब्रह्म-विज्ञानकी प्राप्तिसे वह परमानन्दमय होता है।

आज संसारमें सभी लोग अशान्त हैं और राग-द्वेषके वातावरणसे भयभीत, संत्रस्त एवं व्याकुल हैं। शान्तिके लिये भी आन्दोलन, प्रचार, प्रसार चल रहे हैं। कहीं-कहीं चेष्टा भी हो रही है, परंतु अभीतक तो शुभ परिणाम अन्धकारमें ही है।

यदि आज शान्ति चाहनेवाले संसारके सब लोग व्यष्टि वा समष्टिरूपसे सच्चे मन और निष्कपट-भावसे पूर्ण पुरुषोत्तम परमात्मासे प्रार्थना करें तो शीघ्र ही शुभ परिणाम होना निश्चित है। परंतु सर्वप्रथम प्रार्थनाकी क्रियाशक्तिमें एवं अपने अन्तरके आत्मबलमें विश्वासकी आवश्यकता है।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें शान्तिके लिये सिद्धान्त और सूत्ररूपमें ऐसी बात बता दी है जो सर्वश्रेयस्कर है। वह है—'**सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।**' भगवान् सबके शुभचिन्तक सुहृद् सखा हैं, शान्तिदाता हैं।

इस भगवत्-वचनमें विश्वासकी आवश्यकता है। प्रार्थनाके समय प्रायः ऐसा हो जाता है कि मनकी गति विषयोंकी ओर लगी रहती है तथा प्राणशक्ति अपने स्वार्थ-संकल्पमें लीन रहती है। इसलिये प्रार्थनाके समय शान्त मन तथा निःस्वार्थ-भावकी आवश्यकता है। ऐसी प्रार्थनाका चमत्कार प्रार्थीके अनुभवमें शीघ्र आ जाता है। ध्येयको लक्ष्यमें रखकर जो प्रार्थना की जायगी, उसमें अमोघ शक्ति होगी।

परमात्माकी प्रार्थनामें, उनकी कृपामें विश्वास होते ही

आत्माकी अमरता, पुरुषार्थकी सफलता, मृत्युसे निर्भयता और विषयोंसे विरक्ति अपने-आप प्राप्त होती है।

एक दिन श्रीकृष्णको ध्यानमें मग्न देखकर धर्मराजने प्रश्न किया—'भाई वासुदेव! अभी आप क्या कर रहे थे?' श्रीकृष्णने उत्तर दिया—'ध्यान कर रहा था।' आश्चर्यसे युधिष्ठिरने पूछा—'किसका?' श्रीकृष्ण कहने लगे—'धर्मराज! इस समय भीष्मपितामह मेरा ध्यानकर प्रार्थना कर रहे थे; अतः मैं भीष्मजीके ध्यानमें था—उनके पास गया हुआ था।'

ध्यानपूर्वक प्रार्थनामें ध्याता ध्येयमें लीन रहता है और ध्येय ध्याताके अन्तरमें!

हम ईश्वरमें विश्वास करते हैं

(In God we trust.)

(मूल लेखक—श्रीपाल आर० हिल; रूपान्तरकार और प्रेषक श्रीडोलरराय जमनादास महेता, एल्-एल्० बी०)

"अमेरिकाकी वर्तमान समृद्धिके पीछे छिपा रहस्य क्या है, इसका जाननेलायक मार्मिक परिचय इस लेखमें दिया जा रहा है। 'ईश्वरके प्रति विश्वास' मानवजातिको उसकी उन्नति करनेमें और अवनति रोकनेमें कहाँतक उपयोगी होता है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण वर्तमान अमेरिका है, जहाँ अपार भौतिक सामग्री और उससे होनेवाले अनिष्टोंके साथ ही समस्त प्रजाकी ईश्वराभिमुखी वृत्ति बनाये रखनेके लिये ऐसी सामूहिक योजना है और उसके प्रभावसे वहाँकी प्रजाके मानसपर मानवताकी छाया भी कितने अंशोंतक टिक रही है तथा दिव्यता और मानवताका कैसा अटूट सम्बन्ध बना हुआ है, इसका पता भी इस लेखसे भलीभाँति लग जायगा।"

अमेरिकाके संयुक्त राज्यके प्रत्येक सिक्केपर और डालरके प्रत्येक नोटपर छपा रहता है—'हम ईश्वरपर विश्वास करते हैं'—'In God we trust.' राष्ट्रीय धर्मकी दृष्टिसे यह वाक्य इतना अधिक सहज स्वाभाविक हो गया है कि बहुत-से अमेरिकनोंको इसके सम्बन्धमें पूरी-पूरी जानकारी न होनेपर भी कभी यह कुतूहल नहीं होता कि यह वाक्य कैसे और क्यों लिखा जाने लगा। इसलिये जब अकस्मात् किसी विदेशीकी दृष्टि इस घोषणाकी ओर जाती है और जब वह इसका कारण पूछता है तब उसको जो उत्तर मिलता है, वह बहुत ही अस्पष्ट होता है।

कुछ समय पूर्व एक विदेशी वहाँ गया और उसे इसके सम्बन्धमें अस्पष्ट उत्तरसे संतोष नहीं हुआ; तब वह जासूसी उपन्यासके जासूसकी भाँति बड़ी लगनसे इसका पता लगानेके पीछे पड़ गया। उसने इसके सारे तथ्य प्राप्त किये। ये विदेशी थे—कलकत्ता विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध बंगवासी कॉलेजके अर्थशास्त्रके प्राध्यापक डा० डी० बर्मन महोदय। ये १९६१ में पाँच सप्ताहके लिये अमेरिकाके प्रवासमें रहे थे और वहाँसे लौटनेपर इन्होंने १९६३में 'अमेरिकन डायरी' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। उसमें इन्होंने—'हम ईश्वरपर विश्वास करते हैं' 'In God we trust'—वाक्य मुद्रालेखके रूपमें क्यों लिखा गया, इस सम्बन्धमें की हुई शोधका वर्णन दिया है।

प्राध्यापक श्रीबर्मन महोदयको शोधसे पता लगा कि सन् १८६१में, जब अमेरिकाके उत्तर और दक्षिण राज्योंमें आन्तर-विग्रह चल रहा था और उत्तरकी सरकारी सेनाएँ उत्तरोत्तर हारनेके कारण शिथिल होती जा रही थीं, उस समय पेन्सिलवेनियाके एक धर्मयाजक रेवरेण्ड एम० आर० वाटकिन्सने सरकारी कोषमन्त्रीको लिखा कि 'राष्ट्रकी वर्तमान विपत्तिको लेकर मेरे हृदयके अंदर इतनी लज्जाका बोध नहीं होता; जितनी लज्जाका अनुभव मुझे इस बातसे हो रहा है कि हम ईश्वरको भूल गये हैं।' इसके बाद उन्होंने ये शब्द और लिखे कि 'कोई भी राष्ट्र ईश्वरके बलके बिना बलवान् नहीं बन सकता और न ईश्वरकी संरक्षकताके बिना सुरक्षित ही रह सकता है। हमलोगोंकी यह श्रद्धा हमारे सिक्कोंपर भी छप जानी चाहिये।'

श्री चेइज इस सूचनासे सहमत हो गये और तदनुसार उन्होंने सिक्कोंके लिये मुद्रा-निर्माण करनेका आदेश भी दे दिया।

श्रीफ्रांसिस स्काटने जब अमेरिकाके 'राष्ट्रीय गीत' की रचना की, तब उसमें यह वाक्य था—'In God is our trust'—'ईश्वरमें हमारा विश्वास है।' सन् १८१२में जब इंगलैंडके साथ अमेरिकाका युद्ध हुआ तब इस वाक्यको

'In God we trust'—हम ईश्वरमें विश्वास करते हैं—यह लघुरूप दे दिया गया।

अमेरिकन काँग्रेसके द्वारा स्वीकार किये जानेके बाद सन् १८६४ में इस वाक्यको पहले-पहल दो सेन्टके सिक्केपर छापा गया। इसके बाद बहुत सिक्कोंपर छापा जाय, न छापा जाय—सन् १९५५ तक यह चलता रहा। परंतु उस साल काँग्रेसने यह प्रस्ताव किया कि अमेरिकामें प्रचलित तमाम पूँजीपर, फिर चाहे वह सिक्का हो या नोट, यह मुद्रा-लेख छपना ही चाहिये और इसके एक वर्षके बाद अमेरिकाकी राष्ट्रीय विधान सभाने—'In God we trust' 'हम ईश्वरमें विश्वास करते हैं'—इस वाक्यको अमेरिकाके सरकारी मुद्रालेखके रूपमें अधिकारपूर्वक घोषित कर दिया।

अमेरिकाके सिक्केपर यह मुद्रालेख किस प्रकार छपने लगा, इसका यह इतिहास है। परंतु 'यह क्यों छापा जाने लगा'—इसका उत्तर लिखना कठिन है; क्योंकि भारतकी भाँति ही अमेरिकाकी सरकार भी 'धर्म-निरपेक्ष' है, फिर उसके सिक्केपर ईश्वरमें श्रद्धा प्रदर्शन करनेवाला यह वाक्य क्यों अंकित किया जाता है? इसका कारण यह है कि वहाँकी प्रजा श्रद्धावान् है। अमेरिकाके सारे निवासियोंमें ६३ प्रतिशत लोग 'प्रार्थना-मन्दिर' (Church) के सभ्य हैं। इनमें छः करोड़ उनचास लाख मनुष्य प्रोटेस्टेन्ट हैं और चार करोड़ अड़तीस लाख कैथोलिक हैं। पचपन लाख यहूदी हैं। इसके अतिरिक्त शेष लगभग सात करोड़ नब्बे लाख मनुष्य भिन्न-भिन्न धर्मों और सम्प्रदायोंमें बँटे हुए हैं और अपने-अपने धर्मके अनुसार किसी एक 'सर्वोपरि शक्ति'को मानते हैं।

परंतु एक प्रकारसे देखें तो अमेरिकन प्रजाका 'ईश्वरके प्रति विश्वास', जो वहाँके प्रचलित सिक्कोंपर मुद्रालेखके रूपमें अङ्कित है, राष्ट्रके १०० वर्षके छोटे-से जीवन-कालसे भी बहुत पहलेका है। पिछले इतिहासका स्मरण करनेपर यह बात याद आती है कि अमेरिकाके आरम्भके निवासी इंगलैंड छोड़कर जब वर्जिनियाके लिये निकले, तब रास्तेमें भारी तूफान आ जानेके कारण उनको मेसेचुसेट्सके किनारे उतरना पड़ा। वे अपना 'Pilgrims father' 'यात्रियोंके जनक'के रूपमें परिचय देते थे। महासागरकी क्रूर विडम्बनाओंमें निवास करनेको जो तैयार थे, उनसे जैसी आशा रक्खी जा सकती थी, वैसे ही वे जब सुरक्षितरूपमें किनारेपर उतरे, तब सबसे पहले उन्होंने समुदायमें ईश्वरके प्रति अपना 'आभार' व्यक्त किया। उसी दिनसे वह दिन "Thanks giving' 'आभार-प्रदान-दिन'के रूपमें एक राष्ट्रीय पर्वका दिन बना दिया गया; क्योंकि अमेरिकन प्रजाने इसी दिन संकटोंसे मुक्तिका अनुभव किया था और इस दिनके बाद ही उन्होंने ढेर-की-ढेर ईश्वरीय कृपाके दर्शन किये।

आरम्भसे ही अमेरिकामें इंगलिश पद्धतिपर ही कानून बनाये गये थे; क्योंकि पुराने निवासी और उनके बाद आनेवाले सभी अपने साथ वही कानून और साथ ही उससे सम्बद्ध प्रथा और परम्परा लेकर आये थे। उस कानून और प्रणालीके अनुसार कोई भी पवित्र तथा बन्धनकारक करारनामा बाइबलकी शपथपर ही होता था। और कानूनमें उल्लेख न होनेपर भी अमेरिकाके सभी अध्यक्ष शपथ लेते समय दाहिना हाथ ऊँचा रखकर और बायाँ हाथ पवित्र बाइबलपर रखकर शपथ लेते हैं।

इसी प्रकार अमेरिकन न्यायालयोंके साक्षी भी शपथ लेते समय कहते हैं—'मैं सत्य बोलूँगा, सम्पूर्ण सत्य बोलूँगा और सत्यके अतिरिक्त कुछ भी नहीं बोलूँगा—यों करनेमें ईश्वर मेरी सहायता करें।'

इसके अतिरिक्त, अमेरिकन राष्ट्र और उसके अङ्गभूत राज्योंका शासनकार्य चलानेके सम्बन्धमें जब विधान-निर्माणपर विचार करनेके लिये लोग बैठे, तब उन्होंने यह स्पष्टरूपसे लिखा कि 'सर्वोपरि ईश्वरके ऊपर इस राष्ट्रका आधार है।' सन् १७७६ के जुलाई मासकी तीसरी तारीखको जब 'स्वतन्त्रताका घोषणापत्र' लिखा गया, तब उसपर हस्ताक्षर करनेवालोंने उस ऐतिहासिक दस्तावेजके अन्तिम भागमें लिखा—

'और इस घोषणापत्रके समर्थनमें हमलोग दिव्य विधाताके संरक्षणका दृढ़ आश्रय रखकर अपने प्राण, सम्पत्ति और पवित्र गौरवको परस्परके बन्धुत्वके लिये न्यौछावर करनेका संकल्प करते हैं।'

इस प्रकार अमेरिकाके ५० संयुक्त राज्योंमेंसे ४२ राज्योंने अपने विधानकी भूमिकामें ईश्वरका उल्लेख किया है। शेष केवल ८ राज्योंके विधानोंकी या तो भूमिका ही नहीं लिखी गयी, अथवा उनमें ईश्वरका उल्लेख नहीं हुआ। सन् १७८७ में जब समग्र अमेरिकाका विधान बना

तब उसके निर्माण-कर्ताओंने विधानके दस्तावेजके पहले ही सुधारमें अमेरिकन राष्ट्रके साथ धर्मके सम्बन्धके बारेमें यह लिखा कि 'धर्म-स्थापनाका विरोधी अथवा धर्मपालनकी स्वतन्त्रतामें अवरोध करे, ऐसा कोई भी कानून काँग्रेस नहीं बना सकेगी।'

यों इधर धर्मको लोगोंकी स्वतन्त्रतापर छोड़ दिया गया है, उधर अमेरिकन काँग्रेसकी दोनों शाखाओंके—'राजसभा' ('सिनेट') और 'प्रतिनिधि सभा' ('हाउस आफ रिप्रेजेन्टेटिव्स') के जब दैनिक अधिवेशन होते हैं, तब उनका आरम्भ सबसे पहले दिव्य मार्गदर्शक ईश्वरकी प्रार्थनासे होता है।

इस उपर्युक्त वर्णनसे पाठकोंको पता लगेगा कि अमेरिकन राष्ट्रमें जानेवाले बहुतसे विदेशियोंको उस देशमें धर्मविरोधी उभाड़ क्यों नहीं दिखायी देता है और यह बात भी समझमें आयेगी कि अनेक विभिन्न धर्मोंके पालन करनेवाले लोगोंके इस 'धर्मनिरपेक्ष' असाम्प्रदायिक राष्ट्रके प्रचलित सिक्कोंपर मुद्रालेखके रूपमें 'In God we trust' 'हम ईश्वरपर विश्वास करते हैं'—इस वाक्यका गम्भीर रहस्य क्या है?

हनुमान्‌जीकी आराधना तथा जपका आश्चर्यजनक फल

(लेखक—श्रीधर्मवीरजी, एम्० ए०)

प्रसिद्ध हिंदूनेता स्वर्गीय भाई परमानन्दजीको प्रखर राष्ट्रभक्ति एवं प्रभुभक्ति अपने पुरखोंसे मिली थी। गुरु गोविन्दसिंहजीके पिता गुरु तेगबहादुरजीको जब मदान्ध विदेशी मुसल्मान शासक औरंगजेबने आदेश दिया कि 'आप अपना हिंदू-धर्म त्यागकर इस्लाम स्वीकार कर लें, नहीं तो आपका वध कर दिया जायगा'—तब इनके साथी भाई मतिदासने औरंगजेबको ललकारकर कहा—'यह कार्य आप मुझसे प्रारम्भ करें।' इनको जब विदेशी मजहब पेश किया गया तब इन्होंने मुँहका थूक बाहर फेंकते हुए केवल इतना ही कहा—'आप मेरे धर्मका अपमान नहीं कर सकते, और कुछ भले ही कर लें।'

वास्तवमें यह बुद्धिहीन मुगल शासकका अपमान था। फलस्वरूप उसने यह आदेश दिया कि भाई मतिदासको चाँदनीचौक दिल्लीमें खड़ा करके चीर दिया जाय। आरा सिरपर रखकर उनकी खोपड़ीके दो भाग कर दिये गये, वैसे ही जैसे खरबूजेके दो टुकड़े बराबर-बराबर कर दिये जाते हैं। इस प्रकार यह आरा ज्यों-ज्यों देहमें बढ़ता जाता, त्यों-त्यों 'राम'की ध्वनि ऊँची होती जाती।

इन्हीं वीर-शिरोमणि भाई मतिदासजीके वंशज भाई परमानन्दजी थे, जिन्हें राष्ट्रभक्तिके कारण पहले फाँसीका आदेश मिला और बादमें उसे बदलकर कालापानी अर्थात् उम्र-कैदकी सजामें बदल दिया गया था।

भाई परमानन्दजीके सादू भाई मूलराजमें प्रभुके प्रति महान् भक्ति काम करती थी। ये प्रभु रामके भक्तप्रवर हनुमान्‌जीके उपासक थे। कदमें थे तो सात फुट चार इंच लंबे, परंतु इनका हृदय बालकका-सा सरल था।

ये भाई मूलराज मङ्गलवारको व्रत रखते। दिनभर कुछ न खाते। सायं मन्दिरमें हनुमान्‌जीके दर्शन करने जाते और वहाँ मिष्टान्न चढ़ाते। प्रसाद बँटता तो सबको प्रचुर मात्रामें मिलता। गाँवमें रहते तो हर घरमें इनका मङ्गलका प्रसाद आप-से-आप पहुँच जाता। भाई मूलराज जम्मू-काश्मीर राज्यके महकमा जंगलातमें नौकर थे।

भाई मूलराजका सुपुत्र कस्तूरीलाल तब सातवीं कक्षामें पढ़ता था (अब तो वे फौजमें एक बड़े पदपर हैं)। रावलपिण्डीकी बात है। यह बीमार पड़ गया। निमोनियाके कारण हालत खतरनाक हो गयी। सरकारी अस्पतालमें अलग कमरा लेकर रोगीको वहाँ रक्खा गया। परंतु वहाँ हालत बदसे बदतर हो गयी। निमोनिया डबल निमोनियामें परिवर्तित हो गया। डाक्टरोंने बहुत हाथ-पाँव मारे, परंतु कुछ न बना। एक दिन उन्होंने रोगीके पितासे कह दिया—'अब हमसे कुछ नहीं हो सकता। यदि आप और कुछ करना चाहें तो कर सकते हैं।'

माताने यह बात सुनी तो वे आँसू बहाने लगीं; परंतु पिताने उन्हें धैर्य दिया—'अरे! यह क्या? क्या भगवान्‌पर विश्वास नहीं है? ये डाक्टर, वैद्य या हकीम तभीतक कुछ कर सकते हैं, जब उस एक प्रभुका अनुग्रह होता है।' बस, यह कहकर भाई मूलराज पूर्ववत् हनुमान्‌जीकी आराधनामें लग गये। ये दिन रातके चौबीसों घंटे जप करते

रहते। जपमें ही झपकी आ गयी तो आ गयी, नहीं तो, चारपाईपर न लेटते।

एक रात, जब कि रोगी जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था, पिता बेटेके सिरहाने बैठे निरन्तर जप कर रहे थे। इनकी आँख लग गयी। क्या देखते हैं कि सफेद दाढ़ीवाले एक सज्जन इनके सामने आकर खड़े हो गये। इन्होंने नमस्कार किया तो वे कहने लगे—'घबरानेकी जरूरत नहीं। यहीं, इसी नगरमें, हकीम लुण्डीदाराम है। उससे दवा लाकर बच्चेको दो। यह चंगा हो जायगा। किसी भी अवस्थामें घबराओ नहीं।'

भाईजीकी आँख खुली तो सामने दीवारसे लटक रही घड़ीपर नजर पड़ी। रातके बारह बज चुके थे। कुर्सीपरसे उठकर खड़े हो गये। पास बैठी पत्नीने पूछा, 'क्यों? क्या बात है? हड़बड़ा क्यों गये?'

'मैं जा रहा हूँ।'

'कहाँ?'

'लुण्डीदाराम हकीमके पास।'

'लुण्डीदाराम हकीम?'

'हाँ, आज्ञा हुई है।'

'किसकी आज्ञा?'

'यह वहाँसे लौटकर बताऊँगा। मैं जाता हूँ।'

भाईजीको हकीमका मकान मालूम था। शहरकी विभिन्न गलियोंमेंसे घूमते हुए वे हकीम लुण्डीदारामके मकानके सामने जा पहुँचे। लगे आवाजें देने। हकीम साहबने अंदरसे ही पूछा—'कौन है?'

उन्होंने जवाब दिया—'दरवाजा तो खोलो।'

दरवाजा कौन खोले? सर्दीके दिन। पिंडीका जाड़ा। रातके बारह बजेका समय।

तो भी ज्यों-त्यों करके विनय-प्रार्थनाके द्वारा दरवाजा खुलवाया। भाई हकीम साहबने बत्ती जलायी तो देखा कि भाई मूलराज खड़े हैं। ये उनके गाँवके ही रहनेवाले थे। पुराने परिचित, बचपनमें एक साथ खेलते रहे थे। मौलवी-के हाथ एक साथ ही पिटायी हुई थी। देखते ही हकीमने अपनी बाँहोंमें भींच लिया और पूछा—'भाईजी! आप कैसे? फिर इस वक्त?'

भाईजीने अपने लड़केकी बीमारीका सारा हाल कह सुनाया। इसे सुनकर हकीम साहबने शिकायत की—'भाईजी! यह क्या? बेटा इतने दिनोंसे बीमार है और मुझे इत्तिला तक नहीं दी। अब जब वह अस्पतालमें पड़ा है और डाक्टर जवाब दे चुके हैं, तब आप मेरे पास आये हैं। कितना जुल्म है यह मुझपर! और फिर आपकी ओरसे।'

'लुण्डीदाराम! मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ'—भाईजीने उत्तर दिया। 'सच बात तो यह है कि तुम्हारा ख्याल न मालूम कैसे मनसे उतर गया। परंतु अब जब मुझे भगवान्‌ने क्षमा कर दिया है और बच्चेको स्वास्थ्यका वरदान देते हुए यश तुम्हारे हाथोंमें दिया है तब तुम्हारी ओरसे देर क्यों? मुझे झटसे दवा दो। निमोनियाकी सारी बात मैं तुमसे कह चुका हूँ। दवा लेकर मैं भाग जाऊँगा।'

हकीम साहबने तीन पुड़ियाँ दीं, आध-आध घंटेके बाद शहदके साथ एक-एक खिलानेके लिये। भाईजी सिरपर पाँव रखकर अस्पताल पहुँचे।

लड़का संज्ञाहीन बिस्तरपर पड़ा था। माता उसकी आँसू बहा रही थी। भाईजीने बच्चेको पकड़कर एक पुड़िया उसके मुँहमें डालनेकी कोशिश की। परंतु रोगीने बेहोशीमें दायाँ हाथ मारा, पुड़िया परे जा पड़ी; दवा गिर गयी। माता चिल्लायी, परंतु भाईजीने शान्तिको हाथसे न जाने दिया। दूसरी पुड़िया खोलकर रोगीका हाथ पकड़ा। अबकी उसने मुँह हिला दिया, जिससे दवा उसके कपड़ोंपर पड़ गयी। हारकर माताने किसी प्रकार रोगीके दोनों हाथ और मुँह पकड़कर रक्खे और पिताने बड़ी सावधानीसे मुँह खोलकर दवा अंदर डाल दी और तत्पश्चात् कुछ शहद टपका दिया।

एक घंटेके बाद रोगीने आँख खोली और माँसे पानी माँगा। माँकी जान-में-जान आयी। भाईजी हकीमके घरकी ओर भागे और उससे जाकर सारा हाल सुनाया। उसने तीन पुड़ियाँ और दीं। छः घंटेके बाद रोगीने खानेके लिये बिस्कुट माँगा। माताने परमात्माको धन्यवाद दिया। कुछ ही दिनोंमें कस्तूरीलाल चंगा हो गया। जब डाक्टरोंको भाईजीने उस सफेद दाढ़ीवाले वृद्धका हाल बताया, तब वे दंग रह गये। भाईजीने अपने उपास्यदेव हनुमान्‌जीको कोटि-कोटि धन्यवाद किया।

अद्भुत नामनिष्ठ छिनकू भक्त

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी महोदय)

प्राचीन समयकी बात है, जब भारतमें यवन-शासन पने पूरे प्रभुत्वमें था और प्रभुताके मदमें शासक अनेक कारके अत्याचार करते थे। उस समय बहावलपुर राज्यमें क छिनकू नामके भगवद्भक्त रहते थे। वे सत्यवादी, मानदार तथा नैष्ठिक राम-नामके जापक थे। वे आटा, ल, घी, मसाला आदि गल्ले-किरानेकी दूकान करते थे। नकी दूकान अपने पदार्थोंकी शुद्धताके लिये प्रसिद्ध थी। केवल शामको दो घंटेके लिये दूकान खोलते थे। ष समय भजनमें व्यतीत करते थे।

एक दिन सबेरे एक मुसल्मान छिनकूजीके घर पहुँचा ौर उसने उसी समय दूकान खोलकर कुछ सामान देनेकी ांग की। उस समय भक्त छिनकू भजनमें लगे थे। उन्होंने से शामको आनेके लिये कहा और तत्काल दूकान ोलनेमें असमर्थता प्रकट की। मुसल्मान चिढ़ गया। उसने छनकूजीको ही नहीं, उनके आराध्यको भी बुरा-भला कहा। छनकूजी बोले—'अगर यही शब्द मैं तुम्हारे धर्म-ग्रन्थ और गम्बरको कहूँ तो कैसा लगेगा ?'

मुसल्मान—'तुम्हारी इतनी जुर्रत है ? मैं तुम्हें देख ूँगा।'

वह मुसल्मान काजीके पास पहुँचा और उसने वहाँ अभियोग लगाया कि छिनकूने पैगम्बरको गाली दी है। उस समयके नवाब बहावलपुर भले स्वभावके थे। वे छिनकू भक्तको जानते थे और उनमें श्रद्धा रखते थे। उन्होंने छिनकूके पास संदेश भेजा—'आप साफ कह दें कि मैंने कुछ नहीं कहा।' लेकिन छिनकू भक्तने झूठ बोलना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने काजीके सामने अपने शब्द दोहरा दिये। काजीने उनके 'संगसार' कर देने (पत्थर मार-मारकर मार देने) की सजा दी।

छिनकू भक्तको पकड़कर एक मैदानमें ले जाकर एक खंभेसे बाँध दिया गया। उधरसे आने-जानेवाले मुसल्मान उन्हें पत्थर मारने लगे। छिनकू जोर-जोरसे अखण्ड 'श्रीराम श्रीराम' बोल रहे थे। पत्थरोंकी मारसे उनका पूरा शरीर घावोंसे भर गया। रक्तकी धारा शरीरसे चलने लगी। संध्याको एक मुसल्मान सैनिक उधरसे निकला। वह छिनकूसे परिचित था। उससे भक्तकी यह असहनीय दशा देखी नहीं गयी। उसने तलवारसे उनका सिर काटकर उन्हें इस अवस्थासे छुट्टी दे दी। किंतु उसे तथा दूसरोंको भी यह देखकर आश्चर्य हुआ कि छिनकूका कटा सिर तो 'श्रीराम,' बोलता ही था, उनके मस्तकहीन धड़से भी देरतक 'श्रीराम'की ध्वनि निकलती रही।

कृष्ण कहनेमें तुम्हारा क्या जाता है ?

तिहारौ कृष्न कहत कहा जात ?
बिछुरैं मिलन बहुरि कब ह्वैहै, ज्यों तरवर के पात ॥
पित्त बात कफ कंठ बिरोधै, रसना टूटै बात।
प्रान लए जम जात, मूढ़-मति ! देखत जननी-तात ॥
छन इक माहिं कोटि जुग बीतत, नर की केतिक बात ?
यह जग-प्रीति सुवा-सेमर ज्यों, चाखत ही उड़ि जात ॥
जम कैं फंद पर्‌यौ नहिं जब लगि, चरननि किन लपटात।
कहत सूर बिरथा यह देही, एतौ कत इतरात ॥

—सूरदासजी

'हरिःशरणम्' मन्त्रसे महामारी भाग गयी

कलकत्तेके स्वर्गीय श्रीरूढ़मलजी गोयनका बड़े प्रसिद्ध विद्वान् और भगवद्विश्वासी थे। भगवान्की लीलासे उनके घरमें कोई नहीं रह गया था। यों वे बड़े शौकीन थे और साथ ही बड़े विद्याव्यसनी भी थे। संस्कृतके विद्वानोंको उनके यहाँ बड़ा आश्रय मिलता था। वे अपने बड़तल्ला स्ट्रीटके मकानमें रहते थे।

उन दिनों कलकत्तेमें प्रायः प्रतिवर्ष प्लेगकी महामारी आया करती थी और बड़ा विनाश होता था। रूढ़मलजी भी प्लेगसे आक्रान्त हो गये। बहुत तेज ज्वर था और दोनों ओर गिल्टियाँ थीं। घरमें और तो कोई थे नहीं; उनके एक विश्वस्त सेवक थे। वे ही सब देख-भाल करते थे। उस समय डा० सर कैलाशचन्द्र बोसका कलकत्तेमें बड़ा नाम था। उन्हें लोग 'विधाता' कहते थे। वे बड़े सफल चिकित्सक थे। दूरसे ही देखकर रोगका निदान कर देते थे। ऐसा माना जाता था। गोयनका-परिवारमें वे घरू डॉक्टर थे। संध्याके समय वे रूढ़मलजीको देखने आये और कह गये कि 'इनको संनिपात हो गया है, रोग असाध्य है और रात्रिको किसी भी समय इनके प्राण जा सकते हैं।' रूढ़मलजी सब सुन रहे थे। सर डाक्टर कैलाशचन्द्रके लौट जानेके बाद उन्होंने अपने सेवकसे गङ्गाजल मँगवाया। उससे शरीर पोंछकर कपड़े बदले। भगवान् श्रीकृष्णका बड़ा सुन्दर एक चित्र था। उसको पलंगपर अपने सामने रखवा लिया और चारों तरफ तकिये लगवाकर वे बैठ गये। सेवकसे कहा—'तुम किंवाड़ बंद कर लो और बाहर बैठ जाओ। डाक्टर साहब रातको प्राण-त्यागकी बात कह ही गये हैं। यदि प्राण रहेंगे तो मैं जब आवाज दूँ, तब किंवाड़ खोल देना। नहीं तो सबेरे किंवाड़ खोलकर परिवारके अन्य लोगोंको सूचना दे देना। वे अन्त्येष्टिकी व्यवस्था कर देंगे।' सेवकने आज्ञानुसार बाहरसे किंवाड़ बंद कर दिये। प्रातःकाल चार बजे उन्होंने आवाज देकर किंवाड़ खुलवाये और सेवकसे कहा कि 'मेरा शरीर स्वस्थ है। ब्राह्मणभोजन करवाना है। अतएव तुम गङ्गाजीके घाटपर और अपने परिचित विद्वानोंके यहाँ जाकर सौ ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे आओ। वे दस-ग्यारह बजे भोजनके लिये आ जायँ और तुम लौटकर ब्राह्मण-भोजनके लिये रसोईकी व्यवस्था करो।' आदेशके अनुसार सारी व्यवस्था हो गयी। ब्राह्मणभोजन भलीभाँति सम्पन्न हो गया। ब्राह्मण दक्षिणा पाकर लौट गये। उधर श्रीकैलाशबाबू गोयनका-परिवारके ही एक अन्य घरमें रोगी देखने गये थे। उन्होंने पूछा—'बाबू रूढ़मलजीकी दाह-क्रिया करके आप लोग कब लौटे?' उत्तरमें बताया गया कि 'वे तो जीवित हैं और स्वस्थ हैं।' कैलाशबाबू आश्चर्यमें डूब गये और उन्हें देखनेके लिये उनके मकानपर गये। देखा, तो वे सदाकी भाँति रेशमी पीताम्बर पहने तिलक लगाये आसनपर बैठे हैं और चौकीपर रक्खे हुए चाँदीके थालमें ब्राह्मणोंका प्रसाद पा रहे हैं। सर कैलाशने यह देखकर उनसे पूछा कि 'आप यह सब किसके कहनेसे खा रहे हैं।' उन्होंने हँसकर उत्तर दिया—'जिनकी दवासे अच्छा हुआ, उन्हींके कहनेसे।' भगवान्का विधान, सर कैलाशबाबूने यही निश्चय किया कि ये संनिपातमें हैं और जाते समय वे देख-रेख करनेवालोंसे कह गये कि ध्यान रखना, किसी भी समय इनका शरीर जा सकता है।

तीन-चार दिन बीत गये। डाक्टर कैलाशबाबूको कोई समाचार नहीं मिला। तब एक दिन वे स्वयं आये। पता लगा कि रूढ़मलबाबू स्वस्थ हैं। ये उनसे मिले और पूछा—'आप सर्वथा मरणासन्न थे, पर अब आप स्वस्थ हैं। आपने क्या दवा ली, क्या किया जिससे आप आश्चर्यजनक-रूपसे स्वस्थ हो गये?' रूढ़मलजीने बताया कि "उस दिन आप कह ही गये थे कि मेरे बचनेकी कोई आशा नहीं है। मैंने भी आपके वचनोंके अनुसार यही समझा। मैंने मनमें विचार किया कि जब मरना ही है, तब भगवान्का स्मरण करते हुए क्यों न मरूँ? मैंने श्रीमद्भागवतके माहात्म्यमें पढ़ा था कि नारदजीने सनकादिसे कहा है—'आपको कालप्रेरित जरावस्था कभी बाधा नहीं पहुँचाती और आप सदा-सर्वदा पाँच वर्षकी आयुके और नित्य नीरोग इसलिये रहते हैं कि आप रात-दिन निरन्तर 'हरिःशरणम्' मन्त्रका जप करते रहते हैं।' मैंने सोचा कि मैं भी इसी मन्त्रका जप करूँ। मैंने गङ्गाजलसे शरीर पोंछकर कपड़े बदलकर भगवान् श्रीकृष्णका यह सुन्दर चित्र (चित्र दिखाकर) सामने रखवा लिया। ज्वर तो बहुत तेज था ही, गिल्टियोंमें दर्द भी बड़ा भयानक था; पर मैं तीनों ओर तकिये लगवाकर किसी तरह बैठ गया और 'हरिःशरणम्' मन्त्रका जप करने लगा। पता नहीं, कितनी देरतक होशमें रहा। जबतक होशमें रहा, जप चलता रहा। लगभग चार बजे बाह्य-चेतना लौटी। मुझे अपना शरीर

ठंडा और हलका मालूम दिया। दर्द नहीं था। मैंने हाथ लगाकर देखा कि दोनों ओरकी गाँठें बैठ चुकी हैं। मैंने सोचा—'कहीं वहम न हो।' मैं पलंगसे नीचे उतरकर कमरेमें इधर-उधर घूमा। न दर्द था, न ज्वर। मैंने समझा, यह 'हरिःशरणम्' मन्त्रका चमत्कार है। ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। अतएव मैंने ब्राह्मण-भोजनकी व्यवस्था की और ब्राह्मणोंके भोजन करके लौट जानेके बाद मैं उस दिन उनका प्रसाद पा रहा था। उसी समय आप पधारे। मेरी दवा और मेरा डाक्टर 'हरिःशरणम्' मन्त्र ही था, जिसने मुझको आश्चर्यजनक-रूपसे स्वस्थ कर दिया।" डाक्टर सर कैलाशच यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गये और उनकी आँखों आँसू छलक आये।

गायत्री-जाप तथा प्रभु-प्रार्थनाका आश्चर्यजनक फल

(लेखक—श्रीरामचन्द्रजी उपाध्याय 'आर्यमुसाफिर')

गायत्री-जापसे अद्भुत स्मृतिकी प्राप्ति

महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीके गुरु दण्डी स्वामी श्रीविरजानन्दजी नेत्रहीन थे। बाल्यकालमें शीतलासे उनकी दृष्टि-शक्ति जाती रही थी। संस्कृत-विद्याका अध्ययन उन्होंने मौखिक ही किया था।

किसी विद्वान्की प्रेरणासे यह जानकर कि भगवती भागीरथीमें खड़े हो गायत्री-जापसे बुद्धि प्रखर हो जाती है, हरिद्वारमें आकर घंटोंतक गायत्री-मन्त्रका जाप किया करते थे। इस प्रकार करते कई वर्ष हो गये। एक दिन अकस्मात्, कहते हैं कि, उन्हें कोई कह रहा है कि 'अब तुम यहाँसे जाओ, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम्हारा जप सफल हुआ।' उस दिनसे विरजानन्दजीको वह स्मृति प्राप्त हुई कि वे जो भी ग्रन्थ एक बार श्रवण कर लेते थे, कण्ठ हो जाता था। एक बार कोई विद्वान् गङ्गामें स्नान कर रहे थे और पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायीका पाठ कर रहे थे। दण्डी विरजानन्दजीने ध्यानपूर्वक उस पाठको सुना और समस्त अष्टाध्यायी उन्हें कण्ठ हो गयी एवं आश्रमपर आकर एक विद्यार्थीको लिखा भी दी। गायत्री-जापके ऐसे अनेक उदाहरण लोकमें प्रचलित हैं, जो तथ्यपूर्ण हैं।

प्रभु-प्रार्थनासे विस्मृत पाठका पुनः स्मरण

आधुनिक भारतके आदर्श महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी महाराजके जीवनकी घटना है कि जब वे श्रीभगवान् कृष्णजीकी लीलास्थली मथुरापुरीमें दण्डी संन्यासी गुरु विरजानन्दजीके पास पढ़ा करते थे, तब एक दिन जो पाठ पढ़ा था, वह उन्हें विस्मृत हो गया। दण्डीजीका यह नियम था कि वे जबतक पढ़ाया हुआ पाठ ज्यों-का-त्यों न सुन लेते थे, तबतक विद्यार्थीको आगे नहीं पढ़ाते थे। एक दिन दयानन्दको जो पाठ पढ़ाया था, वह विस्मृत हो गया। गुरुजीने सुनानेके कहा, किंतु वे नहीं सुना पाये। गुरु तो साक्षात् क्रोधमूर्ति थे गरम हो गये और कहा—'निकल जाओ हमारे यहाँसे। जबतक पाठ नहीं सुना दोगे, यहाँ अध्ययनका द्वार तुम्हारे लिये बंद है।' ऐसी कठोर दण्ड-व्यवस्थासे दयानन्दका हृदय काँप गया। बहुत अनुनय-विनय की; किंतु गुरुदेव अपने निश्चयसे टस-से-मस नहीं हुए। लाचार हो दयानन्द भगवान्की शरणमें गये और दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्य-पुत्री भगवती यमुनाके तटपर समाधिस्थ हो बैठ गये—यह प्रतिज्ञा करके कि 'यदि आज सूर्यास्तके समयतक पाठ-स्मरण न हुआ तो यमुनामें कूदकर जीवनका अन्त कर दूँगा; क्योंकि गुरुद्वार बंद हो ही गया है। आगे जीवन रखना व्यर्थ है।' फलतः सारे दिन भूख-प्याससे व्याकुल दयानन्द पाठ-स्मरणकी चिन्तामें बैठे रहे; किंतु पाठस्मरण नहीं हुआ। ज्यों-ज्यों सूर्यनारायण अस्ताचलकी ओर गमन कर रहे थे, दयानन्दका आत्मविसर्जन-निश्चय भी दृढ़ होता जा रहा था। साथ ही वे प्रभुके ध्यानमें ऐसे लीन हुए कि भूख-प्यासकी कौन कहे—शरीरकी भी सुध-बुध भूल गये। कहते हैं कि जैसे ही भुवन-भास्करने अपना अरुण-मुख अस्ताचलमें छिपाया, वैसे ही दयानन्दको विस्मृत पाठकी स्मृति हो आयी। तत्काल आनन्दविभोर हुए उन्होंने गुरुदेवके चरणोंमें मस्तक नवा प्रणाम किया और पाठ सुनाया। गुरुदेव पाठ श्रवणकर गद्गद हो गये। पूछा—'वत्स! पाठ कैसे याद किया?' दयानन्दने सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया, जिसे सुनकर अग्निशर्मा गुरु हिमशर्मा हो गये। उस दिनसे पुनः वे कभी भी महर्षि दयानन्दपर रुष्ट नहीं हुए। यह है—प्रभु-प्रार्थनामें लीन भक्तिका फल!

प्रभुकी प्रार्थनासे जब हिमालयका अन्धकार मारक न रहा

(लेखक—श्रीभद्रानन्दजी सिद्धान्तालंकार, 'आयुर्वेद-मार्तण्ड')

यह घटना सन् १९२४ की है। गुरुकुल-विश्वविद्यालय, काँगड़ीके १५-१६ ब्रह्मचारी काश्मीरकी यात्राके लिये मेरे साथ भेजे गये थे। हमलोग श्रीनगर पहुँच गये (जम्मूसे श्रीनगर सारा मार्ग पैदल ही तय किया था)। श्रीनगर पहुँचकर यह लालसा जगी कि 'अमरनाथ'की गुफा देखी जाय। अगस्त मासके मध्यसे सितम्बर मासके अन्ततक यात्रा समाप्त करके हमें वापस हरद्वार पहुँचना था।

श्रीनगर पहुँचकर आसपासके सब स्थान देख चुके थे; परंतु अमरनाथ तक जानेके लिये हमें कोई साधन प्राप्त नहीं हो रहे थे। वहाँके स्थानीय निवासी यही कहते थे कि 'अमरनाथकी यात्रा तो विना राजकीय सहायताके और विना उस निश्चित समयके कोई नहीं करता। यह अलग बात है कि कोई साधु-महात्मा अपनी जान हथेलीपर रखकर यात्रा कर ले। आपलोग वहाँ नहीं जा सकेंगे। जायँगे तो वापस न आ सकेंगे। प्रथम तो आपको दो-दो कानड़ी (एक विशेष प्रकारकी अँगीठी, जिसमें कोयला जलाया जाता है) एक छाती और दूसरी पीठपर प्रज्वलित रखनी पड़ेगी, वरना बर्फके मारे जम जायँगे।' परंतु हमारे छात्रोंकी यही तीव्र इच्छा थी कि हमें वहाँ जाना ही है। अन्तमें तीन कुली लेकर हम अमरनाथ-दर्शनको चल पड़े।

पहलगाँवसे एक मार्ग चन्दनवाडी-शेषनाग पञ्चतरणी होकर अमरनाथको जाता था। एक दूसरा मार्ग था, जो कि पहलगाँवसे आस्थानमर्ग—'हत्यारा तालाब'की चढ़ाई चढ़कर फिर पञ्चतरणी होकर अमरनाथ जाता था। हमें छोटा मार्ग ही पकड़ना था, जिससे जल्दी लौट सकें और छोटा मार्ग था आस्थानमर्गवाला। हमलोगोंके पास दो-दो कम्बल, दो गरम कपड़े, (कुर्ता, कुर्ती) और भोजनसामग्री थी। इसीसे तीन कुलियोंसे ही काम चल गया। हमलोग आस्थानमर्ग पहुँच गये।

आस्थानमर्गमें टीनकी चादरें पड़ी हुई थीं। सारा स्थान बर्फकी चट्टानोंसे भरा था। वहाँ एक समतल बर्फकी शिलापर टीनकी चादरें बिछायीं और कुछ चादरें खड़ी कर लीं। वर्षा हो रही थी, उसका बचाव इस प्रकारसे कुछ थोड़ा-बहुत हो गया। स्टोवपर परौंठे सेंक लिये गये। गुड़ अपने साथ था। भोजन करके लेट गये (बर्फकी शिलापर पड़ी हुई टीनकी चादरोंमें, उपर्युक्त कुल वस्त्रोंने कितनी गरमी दी होगी, इसकी कल्पना कीजिये)। अगले दिन अमरनाथजीके दर्शन करके इसी जगह वापस भी आना था; अतः अगले दिनके लिये भी उसी दिन ४-५ परौंठे साथमें ले चलनेको सेंककर तैयार कर लिये गये। जब हम लेटे तो हमारे कुलियोंने कहा कि—'आपलोग जरा ध्यान रखिये; यहाँ लुटेरे भी रातमें निकलते हैं और वे हत्यातक करनेमें नहीं चूकते। ये अपने-आपको 'क्षत्रिय' कहते हैं; अतः विना अङ्ग-भङ्ग किये—चाहे अँगुली ही काटें या कान या नाक, तब ये सामान लूटते हैं। अतः सावधान होकर सोवें।'

ऐसी सर्दीमें नींद किसे? और ऐसे भयमें निश्चिन्त कौन? सारी रात उठते, बैठते, करवटें बदलते, उषाकालकी प्रतीक्षा करते रहे। कुलियोंसे कह दिया कि 'जल्दी-से-जल्दी जब भी चल सकते हो, साथ चल देना। रास्तेको बतलाते जाना।'

कुलियोंने बतलाया कि "यहाँसे 'हत्यारे तालाब'की सीधी चढ़ाई ९ मीलकी है और वहाँसे पञ्चतरणी होकर अमरनाथजीतक पाँच मील चलना पड़ता है; जिसमें ढाई-तीन मील सिर्फ बर्फपर ही चलना पड़ेगा। इस प्रकार वापस लौटनेतक लगभग २८ मीलका चक्कर पड़ेगा। क्या आप इतना चल भी लेंगे? यह पहाड़का चढ़ना-उतरना है; बड़ा दम और साहस चाहिये।" हमलोग चूँकि कृतसंकल्प थे—हमने कहा कि 'जो भी कुछ हो, जाना अवश्य है। हम जरूर चलेंगे।' हमलोग चल दिये। चढ़ाई बड़ी कड़ी और सीधी थी। चढ़ते-चढ़ते 'हत्यारा तालाब' तक आ गये। यहाँका दृश्य बड़ा मनोहारी था। स्फटिकसे स्वच्छ नीलाभ जलमें तैरते हुए विशाल हिमखण्ड, जो कि प्रत्येक चार-चार पाँच-पाँच मंजिल ऊँची इमारतोंके बराबर थे, उसमें इधर-से-उधर अपनी मन्द मस्तीमें झूम रहे थे।

हमने पूछा कि "इसका नाम 'हत्यारा तालाब' कैसे पड़ा ?" तो उन्होंने बतलाया कि 'एक बार यहाँ बहुत-से वैष्णव वैरागी साधु यात्रामें आये थे। उन्होंने यहाँ अमरनाथ-दर्शनोंसे वापस आकर जोर-जोरसे शङ्खनाद किया। उन्हें ऐसा करनेसे पूर्व बहुत मना किया गया—रोका गया कि ऐसा न करें, पर वे किसकी माननेवाले थे ? शङ्खध्वनिसे प्रकम्पित वायुमण्डलमें ऐसा जोरका कम्पन हुआ कि प्रचण्ड वायु चल पड़ी। घोड़े, खच्चर, आदमी वायुके वेगसे धक्का दिये हुए इसी तालाबमें गिरते गये, मरते गये। सैकड़ों आदमी मारे गये। तबसे यह मार्ग बंद कर दिया गया है। जिस मार्गसे आप आये हैं, सरकारी रूपसे वह मार्ग छोड़ा जा चुका है।' हमने भी यह प्रत्यक्ष अनुभव किया कि यहाँपर पर्वतमालाएँ जिस रूपसे खड़ी हुई हैं, वे ऊपर और नीचेके स्तरोंको एक विशेषरूपसे संतुलित किये हुए हैं। यदि वह संतुलन प्रकम्पित हो जाय तो निश्चय ही यही घटना फिर दुहराई जा सकती है।

यहाँतक पहुँचकर एक ब्रह्मचारी बिल्कुल हिम्मत हार गया। कहने लगा कि 'मेरी टाँगें जवाब दे गयी हैं। मैं एक डग भी आगे नहीं चल सकता। क्या करूँ ?' मैंने उसे वहीं बैठाया और 'हत्यारे तालाब'के पास जाकर, जहाँसे 'पञ्चतरणी' निकलती है; आचमन किया। वहींसे मैंने अमरनाथ बाबाको प्रणाम किया और अपनी अगली यात्रा स्थगित कर दी। कारण यह था कि हम एक कुलीको नीचे अपने डेरेपर, सामानकी रखवालीके लिये छोड़ आये थे। शेष दो कुली मार्गप्रदर्शनके लिये आगे बढ़ चुके थे। मैं उनमेंसे एक कुलीको रोककर ब्रह्मचारीके पास बैठा सकता था; परंतु उसका मन इतना निर्बल हो चुका था कि उसे देखते हुए, मुझे यही कर्तव्य प्रतीत हुआ कि मैं अपने इस सुअवसरका, जिसके फिर कभी मिलनेकी आशा ही नहीं थी, परित्याग करूँ और इस ब्रह्मचारीको वापस अपने साथ नीचे ले जानेके लिये तैयार करूँ। लिहाजा मैंने उसे जहाँ उसकी शारीरिक सेवा की, वहाँ उसके मनको भी प्रेरणा दे-देकर सबल बनाया। मैं भगवान्से यही प्रार्थना कर रहा था कि यह किसी प्रकार 'आस्थानमर्ग' तक सही-सलामत पहुँच जाय।

शेष ब्रह्मचारी 'अमरनाथ' दर्शन करके वापस हत्यारा तालाब आ गये। अबतक टाँगें दबाने और मनोबल दिलानेसे वह छात्र भी साथ चलनेके लिये तैयार हो चुका था।

नीचे उतरते-उतरते लगभग आधा मार्ग तै हो चुका था कि सूर्यास्त हो गया। अभी ढाई-तीन मीलका मार्ग तै करना बाकी था। इस मार्गके चलनेमें सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि यहाँ कोई मार्ग बना हुआ नहीं था। केवल कभी कोई पहाड़ी आदमी या भेड़-बकरी इस मार्गका उपयोग करते थे। अतः इसकी पगडंडी भी पड़ी हुई कहीं दिखायी नहीं देती थी। इस स्थितिमें जहाँ-जहाँ भी कुली कहते थे, हमलोग वहाँ-वहाँ पैर बढ़ाते हुए नीचे उतर रहे थे।

इतनेमें इतना घोर और विकट अन्धकार छा गया कि हममेंसे कोई किसीको देख नहीं पाने लगा, हाथ-से-हाथ-तकको देखना अशक्य हो गया। इसलिये सब प्रभुसे प्रार्थना कर रहे थे कि किसी प्रकार हम सकुशल नीचे पहुँच जायँ। इधर वह विद्यार्थी रोने लगा कि 'क्या करूँ, मेरे पैर उठते ही नहीं, कैसे करूँ ?' अब बतलाइये कौन, किसकी, क्या सहायता करे ? जब अपना एक पैर टिक जाय और दोनों हाथोंसे यह टटोल लें कि एकदम निराधार तो नहीं, (अतः खड्ड नहीं) तो अगला पैर इसी प्रकार उठावें। हम सब अधिक-से-अधिक एक-दूसरेके समीप सटे-सटे-से हो गये। अन्धकारमें केवल शब्दका ही प्रकाश रहता है। इसी शब्दकी सहायतासे एक-एक कदम टेकते-टिकाते नीचे उतरने लगे। प्रति पग यह आशंका थी कि पैर सही टिका या नहीं कि कहीं धड़ाम-धड़ाम न हो।

सब ओरसे हताश-निराश होकर प्रभुके चरणोंका आश्रय पकड़ा। अनवच्छिन्न-धारावाहिक यह प्रार्थना चली कि—'हे प्रभो! तेरा ही अवलम्बन है। तू ही हम सबको सकुशल नीचे पहुँचा दे। यदि किसी एक छात्रका भी पतन होने लगे, तो उससे पूर्व मुझे उठा लेना। मैं किस मुँहसे कह सकूँगा कि अमुक-अमुक दुर्घटना हो गयी। नहीं, प्रभु! पहले मुझे उठा लेना। मेरे पहले उठाये बिना किसी छात्रका अपकार न होने पाये। मेरी यही हार्दिक प्रार्थना है। मेरी लाज, तेरी लाज है। मेरा जीवन तेरे चरणोंमें है। यही प्रार्थना है नाथ! कि सब सकुशल

रहें। किसीका बाल भी बाँका न हो। इनके माता-पिताको मैं सकुशल इन्हें सौंप सकूँ, इतनी कृपा करना। हे नाथ! तेरे सिवा मेरा और कोई सहारा नहीं है। पहले मैं मरूँ, तब किसी औरका…।' ऐसी धारावाहिक प्रार्थना चल रही थी और हमलोग उपर्युक्त ढंगसे पैर टेकते-टिकाते, एक-दूसरेको उत्साहित करते, साहस बढ़ाते, प्रभुके सहारे नीचे उतरते चले जा रहे थे। अभी लगभग एक-डेढ़ मीलका मार्ग तै करना और बाकी था।

नीचे, हम जिस कुलीको छोड़ आये थे, उसने यह काम किया कि वह हमारी लालटैन जलाकर उसी रास्तेसे हमारी ओरको बढ़ता चला आया और साथ-ही-साथ आवाजें भी लगाता आया। जब वह आगे पास पहुँच गया, तो मैंने उस छात्रको, उस कुलीके सुपुर्द कर दिया। उसने अपने कंधोंपर उसे बैठा लिया और वह लालटैन थामे-थामे, धीरे-धीरे उतरने लगा। लगभग दस ग्यारह बजे रातको हम अपने डेरेपर आ गये। सबसे पहला कार्य यह किया कि हम सब बैठ गये और कुछ समयतक प्रभुका गुणानुवाद करते रहे।

प्रभुकी प्रार्थनासे हिमालय-जैसा ऊपर-नीचे व्याप्त घोरसे घोरतम अन्धकार भी पसीज गया। बिना दुर्घटनाके हमलोग आस्थानमर्ग पहुँच गये। प्रतिदिन ३०–३२ मीलकी चालसे यात्रा करते हुए श्रीनगर वापस पहुँच गये।

प्रभु परमेश्वर अप्रत्यक्षरूपसे भक्तकी रक्षा अवश्य करते हैं

(लेखक—श्रीरामचन्द्रजी उपाध्याय 'आर्यमुसाफिर')

सन् १९४७ में भारत-विभाजन होनेपर लाहौरमें जो अराजकता फैली, जिसके फलस्वरूप सर्वत्र मार-काट मच रही थी, लूट-खसोट और अग्निकाण्ड खुलकर खेला जा रहा था, हत्यारे निर्दयी यवनोंने ईश्वर और मजहबके नामपर कोई अत्याचार न उठा रक्खा था, ऐसे समयमें अनेक भाई-बहन यवनोंका मुकाबला करते हुए वीरगतिको प्राप्त हो रहे थे। श्रीमहात्मा खुशहालचन्द्रजी (वर्तमान स्वामी आनन्दस्वामी महाराज) जो आर्यसामाजिक क्षेत्रमें बड़े उच्चकोटिके त्यागी एवं प्रभुभक्त संन्यासी हैं, अपने भाषणोंमें कहा करते हैं कि वे भी सपरिवार अपने घरमें बैठे जीवनकी घड़ियाँ गिन रहे थे कि कब मृत्यु आती है। यवनदल 'अल्लाहो अकबर'के नारे लगाता हुआ गली-कूँचोंमें घूस रहा था, हाथोंमें हथियार थे। जो हिंदू इधर-उधर घूमता मिल गया उसे तत्काल मौतके घाट उतार दिया। अन्तमें एक यवनदल महात्माजीके मकानपर आ धमका और लगा शोर मचाने—'अंदर कौन है? बाहर निकलो, किंवाड़ खोलो!' इस शोरसे सब परिवारके लोग काँप रहे थे; किंतु उक्त महात्माजीने सबको प्रभु-भक्तिका उपदेश दिया और धीरज बँधाकर विपत्तिको सहन करनेके लिये साहसपूर्ण शब्द कहे। उधर भगवान्‌से प्रार्थना की। यवन-दल द्वार तोड़कर अंदर घुसनेके प्रयत्नमें ही था कि यकायक मिलिटरीका एक दल आता दिखायी पड़ा। महात्माजीने शोर सुनकर छतके ऊपरसे देखा मिलिटरी सैनिक आ रहे हैं। उनको देखते ही यवनदल भाग खड़ा हुआ। द्वार टूटनेवाला ही था कि भगवान्‌ने रक्षक-दल भेजा। सैनिकोंने आवाजें दीं—'अंदर कौन है? तुरंत बाहर आओ!' महात्माजीने ऊपरसे देखा, आँखें चार हुईं। सैनिकनायकने कहा—'महात्माजी! शीघ्र निकलिये, जानका खतरा है।' महात्माजी सब जनोंके साथ मिलिटरीके संरक्षणमें जीवनपर आये संकटसे मुक्ति प्राप्त की। यह है—प्रभु-भक्तिका जीवित जाग्रत् उदाहरण!

मेरे तुम सर्वस्व

मेरे तुम प्रियतम परम, मेरे तुम सुखरूप।
मेरे तुम सुन्दर परम, मेरे मधुर अनूप॥
मेरे तुम स्वामी-सखा, मेरे सर्वाधार।
मेरे तुम सर्वस्व नित, आत्मरूप अविकार॥

दिलसे निकले तो !

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

१५ नवम्बर सन् १९६० की बात है।

पूज्य माताजी कई वर्षोंसे बीमार चल रही थीं। उन्हें मधुमेहकी बीमारी थी। हल्का-सा पक्षाघात भी था। अनेक प्रकारके बहुतेरे इलाज तथा पर्याप्त सेवा-शुश्रूषा करनेपर भी वे स्वस्थ नहीं हो पा रही थीं। बात यह थी कि ज्यों ही वे थोड़ा-बहुत ठीक हो पाती थीं, तभी वे बदपरहेजी कर बैठतीं और परिणाम यह होता कि फिर पड़ जातीं। इसके लिये उन्हें दोष भी नहीं दिया जा सकता; जब वर्षोंसे तीसों दिनकी बीमारी चल रही हो, तब पथ्यापथ्यका ध्यान भी आदमी आखिर कहाँतक रक्खे। फिर भी यह बात मुझे बहुत खलती थी। मैं उन्हें पूर्णतया रोगमुक्त देखना चाहता था; अतः बार-बार जब भी अवसर मिलता, किसी-न-किसी बहाने पथ्यसे रहनेके लिये समझाया-बुझाया करता—अनुरोध किया करता। इसपर बहुधा वे नाराज हो उठतीं। मैं भी तब झल्लाकर अप्रिय बोलनेका अनौचित्य कर बैठता। पीछे पछताता। इसी तरह दिन बीत रहे थे और उनकी हालत बिगड़ती जा रही थी; कमजोरी और निढाली बढ़ती जा रही थी। कुछ दिनोंसे उनका मस्तिष्क भी विकृत हो चला था। वे जब-तब कुछ बहकी-बहकी बातें भी करने लगी थीं।

१९ नवम्बर सन् १९६०की सुबह, ८-८॥ बजेके लगभग जब मैं उन्हें चेतन करने (वे आमतौरसे पलक मूँदे पड़ी रहा करती थीं; उन्हें हिला-डुला तथा उनसे कुछ बोल-चालकर उन्हें चेतन किया जाता था) ऊपर उनके कमरेमें गया तो मेरा कलेजा धक्-से रह गया। उनकी अवस्था अत्यधिक खराब थी। लगता था, जैसे कि वे बेहोश हो गयी हों। उनकी पुतलियाँ ठहर गयी थीं। श्वासकी गति भी अच्छी नहीं मालूम पड़ती थी। वे ठंढी हुई जा रही थीं। मैंने घबराकर अपनी सहधर्मिणीको पुकारा। अन्य परिवारवालोंको बुलाया। उनकी अवस्था देखकर अनिष्ट-आशङ्कासे सब शोकाकुल हो उठे तथा किंकर्तव्यविमूढ़तावश सबके हाथ-पैर फूल-से गये। फिर भी सहधर्मिणीने शान्तचित्तता धारणकर उनकी खाट धूपमें सरकवाकर उनके हाथ-पैर सहलाना तथा उनपर कायफल मलना शुरू किया, और लोग भी यथामति उपचार करने लगे। जिस डाक्टरका माताजीका इलाज चल रहा था, मेरा द्वितीय पुत्र उन्हें बुलाने दौड़ गया। जिस समय डाक्टर आये, वे थोड़ी चेतन हुईं और हमारे जी-में-जी आया। डाक्टर नुस्खा लिखकर तथा यह कहकर कि 'गुर्दोंमें खराबी हो गयी है, उससे यह हालत है और लक्षण अच्छे नहीं हैं'—चले गये। डाक्टरके जानेके थोड़ी देर पीछे माताजीकी हालत फिर तेजीसे बिगड़ने लगी। यहाँतक कि रामनाम लिया जाने लगा। ग्यारह बजेके लगभग उन्हें ऊपरकी मंजिलसे सबसे नीचेकी मंजिलमें ले आये। अब डाक्टरकी दवाई दे जरूर रहे थे, लेकिन आशा कुछ नहीं रह गयी थी। दवाके साथ-साथ गङ्गाजल दिया जा रहा था। अन्तको वह अवस्था आयी कि आशा झूठी भी नहीं रह गयी। उनके श्रीमुखपर नीलिमा दौड़ गयी। वे कुछ क्षणोंकी मेहमान मालूम पड़ने लगीं और उन्हें भूमिपर लिये जानेके सम्बन्धमें कानाफूसी होने लगी।

सारा परिवार माताजीकी चारपाईके चारों ओर एकत्र था—दीन, दुखी, व्याकुल, असहाय, विवश हुआ, उनके लिये कुछ न कर सकनेकी स्थितिमें! पूज्य पिताजी भी एक ओर बैठे आँसू बहा रहे थे। उन्हींके शब्दोंमें उनका पचास-पचपन वर्षका साथ छुटा जा रहा था। अपनी अवस्था मैं क्या कहूँ! मुझे चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार दीख रहा था। यह ग्लानि मुझे गलाये डाल रही थी कि माँने चलनेकी तैयारी कर ली और मैं पेट पालनेके चक्करमें बाहर पड़े रहनेसे, आर्थिक तंगी तथा अन्यान्य कारणोंसे उनकी उचित सेवा-टहल भी नहीं कर पाया। यदा-कदा उनके प्रति किया गया अपना कटु व्यवहार तो (भले ही हित-प्रेरणासे) मुझे अत्यधिक साल रहा था। इतनेमें जाने कौन विद्युत् मेरे अन्तस्में कौंधी, मैं एकदम माताजीके सिरहानेसे उठकर, ऊपर दूसरी मंजिलपर अपने कमरेमें जाकर धमसे अपने पूजाके आसनपर बैठ गया। देवाधिदेव भगवान् नीलकण्ठ महादेवका चित्र मेरे सामने रक्खा हुआ था। सहज मेरे दोनों हाथ जुड़ गये। मेरे नेत्रोंसे चौधारे आँसू बह निकले। कहना चाहिये—मैं फूट-फूटकर रो पड़ा और फिर मैं मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा—कुछ-कुछ इन शब्दोंमें—

'मोहवश नहीं चाहता परम दयामय! जानता हूँ, माँ तो एक दिन छूटना ही है। पर मैं इनकी सेवा-टहलसे [illegible]

रहा हूँ—यह ग्लानि असह्य हो रही है मुझे। इन्हें अभी कुछ दिन और जीवित रहने देकर, इस तरह इनकी समुचित सेवा-टहलका अवसर प्रदान कर मुझे उबार लो मेरे प्रभु! मेरे दोषोंकी ओर न देखकर मेरी सुन लो मेरे आशुतोष! मेरे करुणावरुणालय!'

इस तरह प्रार्थना करता—आँसू बहाता मैं नाक रगड़ने लगा। सहसा मुझे एक हल्कापन महसूस हुआ। ऐसा लगा, जैसे मेरी प्रार्थना स्वीकृत हो गयी हो।

नीचे उतरकर माताजीके पास आया। वे अभी चारपाईपर ही थीं। उन्हें भूमिपर नहीं लिया गया था। खयाल था, बारह बजेतक शरीर छोड़ देंगी; किंतु बारह बज चुके थे और एक पेशाब आकर उन्हें कुछ चेत आ चला था। कहना चाहिये—वेला टल गयी थी। सायंकालतक उनकी अवस्थामें काफी अन्तर पड़ गया। फिर वे छः महीने दो दिन और जीवित रहीं। भगवान्‌ने मुझे उनकी सेवा-टहल करके अपने मनकी निकालनेका पर्याप्त अवसर प्रदान कर दिया। यह और बात है कि उनकी उचित सेवा-शुश्रूषा सम्यक्‌रूपसे मैं फिर भी नहीं कर पाया। पर उनके प्रति कटु-व्यवहारसे बचा रहा और पहलेकी अपेक्षा उनका अधिक खयाल रख सका—बस, इतना ही संतोष है।

तो यहाँ यह सब लिखनेसे इतना ही तात्पर्य है कि प्रार्थना क्या है और क्या कर सकती है—यह स्पष्ट हो जाय। सच, प्रार्थना सदा काङ्क्षापूर्तिका अमोघ साधन है। इसकी शक्ति असीम है। यह फलीभूत होकर ही रहती है—दिलसे निकले तो।

एक बात और। किञ्चित् अप्रासङ्गिक होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है। १७ मई सन् १९६१ को उनके शरीर छोड़नेसे कुछ ही समय पूर्व उनकी अवस्था खराब देखकर जब मैं पुनः अपने कमरेमें प्रभुसे प्रार्थना करनेके लिये गया, तो मेरे मुँहसे यही निकला—'प्रभु! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। हमारा भला-बुरा ठीक-ठीक तुम्हींको पता है।' लाख चाहते हुए भी और कुछ मेरे मुँहसे न निकल सका। इससे पता चलता है कि प्रार्थना भी हम वही कर पाते हैं जो प्रभु चाहते हैं। वास्तवमें प्रभुकी इच्छा ही सर्वोपरि है। नाना रूपोंमें, नाना प्रकारोंसे सदैव सर्वत्र वही चरितार्थ हो रही है, होती रहेगी भविष्यमें भी सदा-सर्वदा।

जब भगवान्‌ने मनीआर्डर भेजा

(प्रेषक—श्रीमहानन्दजी सिद्धान्तालंकार)

इस घटनाको बीते लगभग ३५-३६ वर्ष होते हैं, जब कि भगवच्चर्चाके चलते हुए पं० रामस्वरूपजी शर्मा उपदेशकने अपना एक गुप्त रहस्य प्रकट किया। इसे मैं उन्हींके शब्दोंमें रखनेकी चेष्टा करूँगा।

मेरा पुत्र सत्येन्द्रनाथ उन दिनों गुरुकुल वृन्दावनमें पढ़ रहा था और मैं भी वहाँ अधिष्ठाताका काम किया करता था। उसकी फीस कई महीनेकी इकट्ठी हो गयी, जो मुझे दे देनी चाहिये थी। मैं इसका प्रबन्ध करनेके लिये अपने घर सीहोर चला आया। मेरा कुछ थोड़ा-थोड़ा रुपया अलीगढ़के कई दूकानदारोंके यहाँ रक्खा हुआ था। मैंने अपना रुपया माँगा। उन लोगोंने अपनी आवश्यकता बतलाते हुए कहा कि 'इस समय तो हमें ही स्वयं रुपयोंकी आवश्यकता है। अतः एक भी पैसा देनेमें असमर्थ हैं। हाँ, दो-तीन मास बाद आपको दे देंगे।'

गुरुकुलके नियमानुसार संरक्षकोंसे फीस—खाने-कपड़े-की ली जाती है। शिक्षा ब्रह्मचारियोंकी निःशुल्क ही है। तीन मासकी फीस बकाया रह जानेपर शुल्क-प्राप्तिका तकाजा तेज कर दिया जाता है। इतनेपर भी रुपया नहीं आता तो ब्रह्मचारियोंसे वह फीस उन्हें घर भेजकर मँगवायी जाती है। यहाँपर फीस सौ रुपयासे ऊपर बकाया हो गयी थी। इस अवस्थामें या तो ब्रह्मचारी घरसे लाकर दे, अन्यथा उसे पृथक् कर दिया जाय। इस प्रकार लगभग एक सौ दस रुपये-की तात्कालिक आवश्यकता मेरी आ पड़ी। मैं यह रुपया दूकानदारोंसे वसूल नहीं कर सका।

मुझे अपने मनमें बड़ी ग्लानि हो रही थी कि 'फीसका प्रबन्ध कहींसे भी नहीं होगा तो अब उसे वृन्दावनसे घर भेज दिया जायगा। अब वह आनेवाला ही होगा, मैं क्या करूँ? जब वह मुझसे फीस लेकर चलनेके लिये कहेगा तो मैं क्या उत्तर दूँगा? विवश हो उसे पृथक् कर दिया जायगा। मुझसे बच्चेका उदास मुँह नहीं देखा जायगा, इससे तो अच्छा है कि मैं आत्महत्या ही कर लूँ!'

इसी उधेड़-बुनमें डूबता-उतराता हुआ घर आ गया और सोचा कि पास ही नानऊकी नहरमें छलाँग मार लूँ और जल-समाधि ले लूँ। ऐसा सोचकर मैं नहरके किनारे पहुँचकर ऐसे एकान्त स्थानकी तलाश करने लगा, जहाँ कोई इस पापकृत्यको न देख सके। मैं पुलसे आध-पौन मील दूर, जहाँ उस समय और कोई आदमी आसपास न था, कपड़े उतारने लगा और सोचा कि मौका ठीक मिल गया है। दूर-दूरतक कोई आदमी नहीं है। उस समय दिनके बारह-एक बजेका समय था—मैं तैयार ही हो पाया था कि पीछेसे एक आदमीने मेरा नाम लेकर जोर-जोरसे पुकारा। मैंने समझा कि मेरी पापमयी इच्छा इसको विदित हो गयी है। मैंने डरते-डरते पूछा—'क्या बात है?' उसने कहा कि 'आपको तुरंत बुलाया है।' यह सुनकर मैं और भी भयभीत हो गया। उसने फिर कहा कि 'चलिये, जल्दी चलिये, साहब बुला रहे हैं।' मैं और भी काँप गया। मैंने पूछा कि 'मामला क्या है?' उसने कहा कि 'आपका एक मनीआर्डर आया है। वह सौ रुपयेसे अधिकका है; अतः मैं उसको अपने साथ नहीं ला सकता था। उसे आपको स्वयं डाकखाने जाकर स्वयं पोस्टमास्टर साहबसे लेना होगा।' यह सुनकर मैं चक्करमें पड़ गया कि मामला क्या है? यह कोई मजाक है या क्या? कुछ समझमें नहीं आया। पोस्टमैनने फिर कहा—'जल्दी कीजिये। दो बजे तक वह बँट सकेगा। नहीं तो, फिर अगले दिन आपको जाकर लेना पड़ेगा।'

मैं अचरजमें भरा डाकियेके साथ हो लिया। पोस्ट आफिस जाकर मैंने पूछा—'आपने मुझे क्यों बुलाया है?'—पोस्टमास्टरने कहा कि 'आपका एक मनीआर्डर ११०) का आया हुआ है। डाकियेने मुझे बतलाया है कि रामस्वरूप शर्मा नामका अन्य कोई व्यक्ति सीहोर या इसके आसपासके देहातमें नहीं है। सिर्फ आप ही हैं।' यह सुनकर मैंने कहा—'हाँ, इस नामका व्यक्ति मैं ही हूँ, यहाँ उपस्थित हूँ।' फिर मैंने पोस्टमास्टर साहबसे कहा कि 'आखिर यह भेजा किसने है?' इसपर पोस्टमास्टरने कहा कि 'भेजनेवालेने सिर्फ इतना पता लिखा है—'भगवान्—बनारस।' तब मैंने उनसे कहा कि 'बनारसमें तो मेरा परिचय ऐसे किसी भी नामवाले व्यक्तिसे नहीं है। तब यह देखिये, कि कूपनमें क्या लिखा है?' वे बोले—'इस मनीआर्डरमें सिर्फ यह लिखा है कि '११०) भेजे जाते हैं। भगवान्।' यह सुनकर मैं अवाक् रह गया। समझमें नहीं आया कि 'इसको लूँ या न लूँ? लेता हूँ तो फीस पूरी अदा हो जायगी। नहीं लेता हूँ तो पुत्र वृन्दावनसे पृथक् कर दिया जायगा। अच्छा यदि ले लूँ तो रुपया वापस किस तरहसे करूँगा? क्या इतने पतेसे किया हुआ मनीआर्डर पानेवाले व्यक्तिको मिल जायगा? इस विषयमें मैंने पोस्टमास्टरसे पूछा कि 'यदि मैं न लूँ तो क्या होगा?' उन्होंने कहा कि 'हम यहाँसे इसे बनारस वापिस भेज देंगे।' मैंने फिर पूछा कि 'भेजनेवालेको यह रुपया वापिस मिल जायेगा या नहीं?' उन्होंने कहा कि 'हम अपने यहाँसे दिये पतेसे वापिस कर देंगे। आगेका काम वहाँके डाकखानेका है। यदि पानेवाला नहीं मिलेगा, तो यह सरकारके यहाँ जमा हो जायगा।'

यह सब सुननेके बाद मैंने निश्चय किया कि यह रुपया तो मैं ले लूँ और आजकी ही डाकसे दिये गये पतेपर बहुत-बहुत धन्यवादका पत्र भेजकर अपनी कृतज्ञता प्रकाशित कर दूँ और उन्हें लिख दूँ कि आपने मेरे बड़े आड़े वक्तपर यह रुपया भेजा है—बिना किसी जान-पहिचान-परिचयके—मैं एक मासके भीतर आपका भेजा यह रुपया जरूर वापिस कर दूँगा।' मैंने ऐसा ही किया और फीसके १०५)का मनीआर्डर गुरुकुल वृन्दावनके मुख्याधिष्ठाताजीके नाम मैंने तुरंत उसी समय कर दिया।

इसके बाद मैंने कई पत्र भेजे, रजिस्ट्री भी भेजी और बादमें स्वयं बनारस जाकर बड़ी खोज की, पर आजतक भी यह पता न चला कि रुपये भेजनेवाला यह 'भगवान्' कौन था? किसी महानुभावने अपना नाम न देकर भगवान्के नामसे रुपये भेजे होंगे। पर उसे यह पता कैसे लगा कि इसे एक सौ दस रुपयेकी ही आज ही जरूरत है। फिर मेरे मनमें आया कि वे साक्षात् भगवान् ही थे। उनको इस बातका पता था कि मैं डूबने जाऊँगा। अतः मुझे बचानेके लिये यह मनीआर्डर भेजा होगा। मनमें ऐसा गुनगुनाते प्रेमाश्रु और कृतज्ञताके अश्रुओंसे चेहरा भीग गया। मनमें आया कि हम कितने पापी और अकृतज्ञ हैं कि अबतक भी मनकी स्थिति यह नहीं हो पायी—'भक्तिं प्रयच्छ निर्भरां मे।' अब भी हम दूसरे-दूसरे आश्रय ढूँढ़ते हैं। जिस भगवान्ने मनीआर्डर भेजा, उसपर निर्भर नहीं हो पाते।

नामके चमत्कारमय फल

(लेखक—भक्त श्रीरामशरण[illegible])

(१)

नाम-जपसे प्राण बचे

नवम्बर, सन् १९५१ ई० में एक भयंकर विमान-दुर्घटना हुई थी। विमानमें १४-१५ व्यक्ति थे। दुर्घटनामें विमान चूर-चूर हो गया था। यात्रियोंमें केवल श्री सी० एस० मेहता बचे थे। उनका बयान, जो उस समय समाचार-पत्रोंमें छपा, इस प्रकार है—

'हम सब-के-सब तेरह यात्री कम्बलोंमें लिपटे हुए सो रहे थे या ऊँघ रहे थे। इसी समय दमदम हवाई-अड्डेकी रोशनी दिखायी पड़ी। यात्रियोंको सचेत करके सीटोंसे बाँध दिया गया। विमान उतरनेका प्रयत्न करने लगा। उसने हवाई-अड्डेके चार चक्कर लगाये। इसके बाद क्या हुआ, यह स्पष्ट नहीं है; किंतु ऐसा अनुभव हुआ कि विमान किसी वृक्षकी चोटीसे छू गया और उसके कुछ सेकंड बाद ही विमान ऊपर उठा और अन्तमें गिरकर चूर-चूर हो गया। मुझे याद है कि मैं उस समय राम-राम जप रहा था। दुर्घटनाके बाद मैं एक बार जैसे उछाल दिया गया और दूर किनारे पड़ा था। इतनेमें गाँवके लोग आ गये। उन्होंने मेरी प्राथमिक सहायता की।

(२)

व्यसन छूटे

एक बड़े आदमी थे। नाम बताना उचित नहीं होगा। रायबहादुरकी उन्हें उपाधि प्राप्त थी और वे ऑनरेरी मजिस्ट्रेट थे। शराब, सिगरेट, मांसाहार आदि अनेक व्यसनोंने उन्हें जकड़ रक्खा था। यद्यपि कुसंगसे उनमें व्यसन आ गये थे; किंतु उन्हें इनसे घृणा थी और इनसे छूटनेको उत्सुक थे। उन्होंने एक विद्वान् उपदेशकके पास जाकर व्यसनोंसे छुटकारा पानेका उपाय पूछा। उपदेशकजीने बताया—'लगातार तीस दिनोंतक भगवन्नामका जप कीजिये और प्रातः-सायं प्रभुसे प्रार्थना कीजिये कि वे दयामय इन व्यसनोंसे छुड़ा दें।'

उनके जप तथा प्रार्थनाने चमत्कार दिखाया। उनका वर्षोंसे पड़ा स्वभाव छूट गया। शराब ही नहीं, सिगरेट भी छूट गयी उनसे। और भगवन्नाममें उनका प्रेम हो गया।

(३)

पतिकी नौकरी बची

एक सज्जनको शराबकी ऐसी लत पड़ गयी थी कि बोतल उनकी जेबमें तब भी रहती थी, जब वे अपनी सरकारी नौकरीपर होते थे। एक दिन उनके उच्चाधिकारी-की दृष्टि उनकी जेबपर पड़ गयी। शराबकी बोतल पकड़ी गयी। उनपर अभियोग चला। कोई आशा नहीं थी कि उनकी नौकरी रहेगी। किंतु उनकी साध्वी पत्नी भगवद्भक्ता थीं। वे श्री'कृष्णनाम'का जप करती थीं और पतिकी रक्षाके लिये प्रतिदिन प्रार्थना करती थीं। उनकी प्रार्थनाने चमत्कार दिखलाया। जब अभियोग उच्चाधिकारीके सामने पहुँचा तो उसने उन सज्जनको केवल यह चेतावनी देकर छोड़ दिया कि 'आगे ऐसा मत करना।'

उन सज्जनने उस समयसे शराब पीना तो छोड़ ही दिया, श्रीकृष्ण-नामका जप करने लगे। उनका जीवन उपासनामें लगकर पवित्र बन गया।

(४)

नाम-जप तथा सत्कर्मसे उच्च कुलमें जन्म

समीपके गाँवसे कुछ राजपूत गङ्गास्नानके लिये उझानी (बदायूँ) आये थे। वे लोग एक ऐसे चौराहेके समीप कुछ देरको रुक गये, जहाँ पास ही कंजर रहते थे। ठाकुरों-के साथ एक पाँच वर्षका बालक था। वह कंजरोंकी झोंपड़ी-के पास चला गया और एक कंजर-स्त्रीका नाम लेकर बोला—'तू मुझे पहिचानती नहीं? मैं तेरा पति मोहन-सिंह हूँ।'

उस स्त्रीके पतिका नाम सचमुच मोहनसिंह था और उसे मरे कई वर्ष बीत चुके थे। उस स्त्रीने दूसरे कंजरोंको बुला लिया। उस बच्चेसे कंजरोंने बहुत बातें पूछीं और बच्चेने उसका ठीक-ठीक उत्तर दिया। लेकिन इसका फल यह हुआ कि कंजरोंने उस बच्चेको अपने पास रखनेका निश्चय कर लिया। बच्चेके पिता तथा उनके साथियोंसे

…अंगोंका झगड़ा होने लगा। झगड़ा इतना बढ़ा कि पुलिस बुलानी पड़ी। पुलिसके सिपाही दोनों दलोंको बच्चेके साथ लेकर इलाकेके प्रतिष्ठित रईस रायबहादुर श्रीब्रजलालजी [illegible] पास ले गये।

वहाँ जाकर बच्चेने भी श्रीभदावरजीको 'राम-राम' किया और बताया कि वह पहले जन्ममें उनकी सेवा करनेवाला कंजर मोहनसिंह है। वह भदावरजीके यहाँ खसकी टट्टियाँ बनाया करता था। बात ठीक थी। लड़का ठाकुरोंको दिला दिया गया; क्योंकि पूर्वजन्ममें वह कुछ भी रहा हो, इस जन्ममें राजपूत था।

लोगोंको श्रीभदावरजीने बताया कि—'मैं मोहन कंजरको खूब जानता हूँ। वह परिश्रमी था, ईमानदार और कंजर होकर भी मांस-शराबसे दूर रहता था। किसी बाबाजीने उसे 'राम-राम' का जप बता दिया था। अतः प्रतिदिन गङ्गास्नान करता था और नाम-जप करता रहता था। इसने मुझे चार सौ रुपये देकर मेरे द्वारा एक कुआँ बनवाया था।'

'शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।'

—गीताके इस वचनको स्पष्ट करनेवाली यह पुनर्जन्म घटना है।

भगवान्‌की असीम कृपा

(लेखक—श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी)

(अपने अनुभव)

मेरी अवस्था इस समय लगभग ७० वर्षकी है। प्रभुकी दयासे जीवनका यह काल आनन्दसे ही बीता। मैं यह नहीं समझता था कि आगे कुछ विचित्र परिस्थिति आनेवाली है। पर दयामयकी दयासे लगभग तीन-चार वर्षोंसे एकाएक एकके बाद दूसरा कष्ट आने लगा। जिस दिन अष्टग्रहीके ५ ग्रह ६ दिसम्बर १९६१ को आये, उस दिन सवेरे अचानक हाई ब्लड प्रेसर (Blood Pressure) बड़े भयानक रूपमें आया। साथ ही एक पुत्रकी मानसिक दशा भी चिन्ताजनक हो गयी। रातमें नींद न आती थी। मेरे मित्रवर पं० बटुकनाथजी शर्मा, जो काशी-विश्वविद्यालयमें संस्कृत-विभागके अध्यक्ष थे, उन्होंने रामनामके विषयमें एक बड़ा ही सुन्दर लेख 'कल्याण-कल्पतरु'में लिखा था, जिस समय उनको गर्दन-तोड़ बुखार हुआ था। उसका स्मरण करके मैंने भी नींद टूटनेपर 'रामनाम' जपना आरम्भ किया। दो ही तीन दिनमें २५। ३० बार 'राम-राम' कहनेपर नींद आने लगी। संसारकी अनेकों चिन्ताएँ, रात-दिन ऐसा सताने लगीं कि मालूम पड़ा, अब कदाचित् जीवनके दो-तीन मास ही शेष हैं। श्रीमद्भागवतका पाठ प्रारम्भ किया, उससे कुछ धीरज बँधा। फिर दो मित्रोंने सुन्दरकाण्डका पाठ करनेको कहा, जिसको प्रारम्भ किया। साथ ही 'रामरक्षास्तोत्र' और पूज्य मालवीयजीद्वारा उपदिष्ट श्रीमद्भागवतान्तर्गत 'गजेन्द्र-मोक्ष'का भी पाठ प्रारम्भ किया। इन दिनों रक्तचाप तो ठीक हो गया, पर तबीयत गिरती ही गयी। सालभर बाद एक लोटा पानी भी कठिनतासे उठता था। पर इसके बाद तबीयत ठीक होने लगी और अब प्रभुकी कृपासे सब काम पूर्ववत् करने लगा हूँ।

इन अनुभवोंसे यही निष्कर्ष निकला कि संसार तो चला ही जायगा और यदि उसके कष्टोंमें उलझकर दैवी सहाय भी ढीला कर दिया तो बड़ी आपत्ति आ सकती है। कभी-कभी तो आदमी पागल हो जाता है और उसका अन्त अच्छा नहीं होता। ऐसे समयमें केवल 'हरिनाम' का स्मरण ही मुख्य ओषधि है। आर्त होकर विश्वासपूर्वक भगवान्‌का निरन्तर नाम जपना चाहिये। तब सारे कष्ट धीरे-धीरे हवा हो जाते हैं।

श्रीहनुमान्‌जीकी उपासनामें रोज प्रातःकाल एक लोटा जल पीपलके पेड़की जड़में डालना चाहिये और मङ्गलवार तथा शनिवारकी संध्याको तिल्लीके तेलका दीपक जलाकर उनको प्रणाम करना चाहिये।

एक विचित्र बात हुई। मेरे एक सम्बन्धीके पास करीब १५०००) बाकी थे। उन्होंने चिट्ठी-पत्री भी बंद कर दी और ऐसा लगने लगा कि वे सारी रकम हजम कर जायँगे। एक मित्रने परामर्श दिया कि 'श्रीहनुमान्‌जीका नाम लेकर उनके यहाँ जाओ तो देखो क्या होता है।' ऐसा किया और आश्चर्य है कि उन्होंने प्रायः रुपयेमें बारह आना देते ही

दे दिया, जब कि एक दिन पूर्व ही कोई आशा न थी। यह केवल हनुमान्‌जीकी कृपासे हुआ। फिर जानेपर उन्होंने बहुत दुर्व्यवहार किया। यह निश्चय है कि कालान्तरमें पूरी रकम श्रीहनुमान्‌जीकी कृपासे मिल जायगी।

कदाचित् भगवान्‌को इस शरीरसे और काम लेना है। इसीसे ऐसी आश्चर्यजनक घटनाएँ हो रही हैं। दो कन्याओंका विवाह करना था; सो एकका विवाह हो गया और दूसरीका भी भगवान्‌की कृपासे होता लग रहा है। पुत्रकी तबीयत भी अब बिल्कुल ठीक है।

एक पुस्तकमें मैंने पढ़ा था कि रातको तकियेके नीचे हर्रे रखकर सोनेसे दुःस्वप्न नहीं दिखायी पड़ते। मैंने वह भी किया। आश्चर्य है अब वैसे स्वप्न नहीं दिखलायी पड़ते। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि मुझे रोज कम-से-कम छः घंटा अच्छी नींद आती है। एक और आश्चर्य है कि सत्तर वर्षकी अवस्था होनेपर भी मेरा एक बाल भी सफेद नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि पचास वर्षतक केवल आँवलेसे सिर मला है। इस आँवलेके सेवनसे लोग, मेरी उम्र प्रायः २० वर्ष कही बतलाते हैं। मेरा यह लिखनेका मतलब यह है कि अपनी जड़ी-बूटीमें यह आश्चर्यजनक शक्ति है।

स्तोत्र इत्यादिका पाठ निरन्तर करना चाहिये और दीर्घकालतक करना चाहिये। पाठ करते समय विचार करना चाहिये कि वह क्या कह रहा है। केवल तोतारटंत न होना चाहिये और सबसे बड़ी बात तो यह है कि आर्त होकर विश्वासपूर्वक कष्ट-निवारणके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। तब अवश्य फल होगा। ईश्वर घट-घटमें व्याप्त हैं, और हम तभीतक जीवित हैं जबतक वह ज्योति इस शरीर-रूपी मन्दिरमें जल रही है। हमलोग अपने आपकी ही उपासना करते हैं। यदि संकल्प अच्छा हुआ तो अवश्य सिद्धि होगी। इस संसारके सब कार्य नियमानुसार ही चलते हैं। हमलोगोंको पूर्वकर्मोंका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। धीरजसे इसको सहनेसे कष्ट भी कम होता है और जल्दी कट जाता है तथा अन्तकालमें शान्तिसे सद्गति प्राप्त होती है। संसारकी उलझनोंमें अन्तकालका सुन्दर ध्यान नहीं रहता।

आजकल अन्नकष्ट भयंकर है, वैसे तो सभी चीजें असाधारण तौरपर महँगी हैं; पर आर्त होकर भगवान्‌को पुकारनेसे ही दुःख दूर या कम हो सकते हैं। चारों ओर क्रूर व्यवहार हो रहे हैं, पर भगवान्‌की दयासे सब दुःख कट सकते हैं। अपना भविष्य देखिये, यदि प्रपञ्चमें ही पड़े रहे तो न जाने किस योनिमें और कहाँ फिर जन्म हो। निरन्तर प्रभुका स्मरण करना चाहिये; क्योंकि वही सत्य है।

आये आधे नाम

(लेखक—श्रीरघुनाथप्रसादजी वर्मा)

मैं सन् १९३० के मार्चमें दाँडी नमक-सत्याग्रह-यात्राके एक सप्ताह पूर्व बापूकी आज्ञासे बिहारमें काम करने चला आया था। बिहार चर्खासंघके तत्कालीन मन्त्रीने मुझे भेजनेके लिये बापूको लिखा था। मुझे भागलपुर तथा मुंगेरमें कामपर लगाया गया और मेरी पत्नीको गया जिलेमें जाकर काम करनेका आदेश दिया गया। मैंने इस आदेशके विरोधमें बापूको पत्र लिखा। बापूने शीघ्र उत्तर दिया कि—'चि० नन्दकिशोरी अकेली भी जाकर काम करे तो हर्ज नहीं है। ईश्वर हमारी धुरी है और वही हमारी सर्वत्र रक्षा करता है। तुम दोनों द्रौपदीवाली प्रार्थना किया करो!' हम दोनोंने उसी समयसे वह प्रार्थना अपनी नित्य-प्रार्थनामें सम्मिलित कर ली।

बिहार-चर्खासंघके मन्त्रीने मेरी पत्नीको दिया हुआ आदेश वापस ले लिया था। अतः वे मेरे साथ ही थीं। उनके बच्चा होनेवाला था। उन दिनों हमलोग भागलपुर जिलेके एक गाँवमें रहकर चर्खासंघका काम करते थे। जिस रातकी यह घटना है, उस दिन शामतक मेरी पत्नीने काम किया था। उसे कोई कष्ट नहीं था।

लगभग तीन बजे रात्रिमें पत्नीको बार-बार पेशाब जानेकी आवश्यकता पड़ने लगी। मैंने एक साथीको जगाकर एक वृद्धाको बुलवाया। उस वृद्धाने बताया कि 'प्रसव-काल समीप है।' कोई प्रशिक्षित दाई तो वहाँ उपलब्ध नहीं थी; जो ग्रामीण दाई थी, उसे बुलाया गया। उसने पत्नीको एक कमरेमें लिटा दिया। थोड़ी देरमें उसने सूचना दी—'बच्चा पेटमें उलट गया है। आपलोग किसी औरको बुलावें। मैं इसको सँभाल नहीं पाऊँगी। जच्चा-बच्चा दोनोंके प्राणका भय है।'

मेरी पत्नी यह सुनकर बहुत घबरा गयीं। उन्होंने मुझे पास बुला लिया और रोकर कुछ बातें करने लगीं।

उस समयतक प्रातःके चार बजकर बीस मिनट हो गये थे। मैंने उनसे कहा—'हमलोग बहुत दिनोंसे इस समय नियमपूर्वक प्रार्थना करते आये हैं। प्रार्थनाका समय हो गया है। क्या जाने, फिर साथ प्रार्थना करनेका समय मिले या न मिले; अतः आज हम दोनों अन्तिम बार एक साथ प्रार्थना कर लें।'

पत्नीको दर्द प्रारम्भ हो गया था; अतः उन्होंने लेटे-लेटे प्रार्थना करनेकी इच्छा प्रकट की। हम दोनोंने उपनिषद्‌की प्रार्थना की और तब द्रौपदीवाली प्रार्थना—'गोविन्द द्वारकावासिन्……' आरम्भ की। अभी प्रार्थना आधी-ही हो पायी थी कि दाईने मेरा हाथ पकड़कर मुझे उस कमरेसे बाहर निकाल दिया। उसने कहा—'कन्याका जन्म हो गया है! वह सकुशल है!'

इसीको कहते हैं—'आये आधे नाम।' यह प्रार्थनाका ही प्रभाव था कि ऐसा चमत्कार हो गया। मेरी वह कन्या जो उस दिन उत्पन्न हुई थी, अब सात बच्चोंकी माता है। सच्ची बात है—

'बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर राम सरिस कोउ नाहीं।'

डूबनेसे बचा

(लेखक—श्री दा० पी० द्विवेदी बी० ए०)

उस समय मेरी आयु पंद्रह वर्ष थी। एक यात्रामें मैं डाकोर पहुँचा और प्रथम बार स्नान करने गोमतीमें उतरा। घाटपर खूब भीड़ थी। बहुत शोर हो रहा था। मुझे तैरना नहीं आता था। मैं जलमें उतरा तो अपरिचित घाट होनेसे शीघ्र गहराईमें चला गया और डूबने लगा। डुबकी खाता और ऊपर आता; तड़फड़ाते हुए पर्याप्त पानी पी गया। मैं पुकार रहा था; किंतु उस हल्ले-गुल्लेमें किसीने मेरी पुकार नहीं सुनी। मेरे सब प्रयास निष्फल हो गये।

निरुपाय होकर मैंने जीवनकी आशा छोड़ दी। मृत्युकाल आ गया है, ऐसा समझकर मैं प्रणवका जप तथा श्रीरणछोड़जीकी मूर्तिका ध्यान करने लगा। जबतक मैं लोगोंको सहायताके लिये पुकारता रहा—तबतक तो किसीका ध्यान मेरी ओर नहीं गया था; किंतु जब मैं मरनेको तैयार होकर प्रणवका जप करने लगा, तो एक बाईकी दृष्टि मुझपर चली गयी। वह चिल्ला उठी—'वह डूब रहा है!' मेरे एक साथी जलमें उतरे और उन्होंने अपना हाथ फैलाया। मैं उनके हाथका सहारा लेकर जलसे निकल आया।

मृत्यु टलती गयी

(लेखक—श्रीपुरुषोत्तमदासजी वैष्णव)

मेरी नानी बीमार थीं। लगभग बीस दिन बीमार रहनेके बाद उनकी दशा खराब हो गयी। उन्हें सन्निपात हो गया। फिर वे मूर्छित हो गयीं। उन्हें नेत्रोंसे दीखना और कानोंसे सुनायी पड़ना बंद हो गया। ऊर्ध्वश्वास चलने लगा। मेरी अवस्था उस समय बीस वर्षकी थी। नानीसे प्रेम होनेके कारण मैं उनकी चारपाईपर ही बैठा था। उस समयतक मैंने कोई मृत्यु देखी नहीं थी। लेकिन पास-पड़ोसके लोग जब घरमें एकत्र हो गये और अन्त्येष्टिके लिये सामग्री घरमें आ गयी, नानीको तुलसी, गङ्गाजल देकर नीचे भूमिपर उतारनेकी बात पिताजी करने लगे, तब मैं समझ गया कि नानी मरनेवाली हैं। मैं उन दिनों रामायणका पाठ करता था। मैंने नानीके पास मुख ले जाकर खूब जोरसे 'सीताराम' कहा। अचानक नामध्वनि कानमें पड़ते ही नानीने नेत्र खोल दिये। उनकी श्वासकी गति ठीक होने लगी। लोगोंने कहा—'मृत्युकी घड़ी टल गयी!'

अब उस दिनसे जब नानीकी अवस्था बिगड़ती, मैं उनके कानमें जोरसे 'सीताराम' बोलता और उनकी दशा सुधरने लगती। यह क्रम आठ दिन चला। लोग कहने लगे—'यह छोकरा सीताराम बोलकर यमदूतोंको भगा देता है, इसलिये बुढ़ियाकी मृत्युका क्षण टल जाता है!' यों आठ दिन मृत्यु टलती गयी। आठवें दिन नानीने शरीर छोड़ा।

अष्टोत्तरशत नाम-कीर्तन-ध्वनि

[१०८ नाम-धुन]

अच्युतं केशवं रामनारायणं
कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं
जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे ॥

× × ×

अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं
माधवं मोहनं राधिकाराधितम्।
वल्लवीवल्लभं योगिजनदुर्लभं
देवकीनन्दनं कृष्णचन्द्रं भजे ॥

× × ×

गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे
शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे।
दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव
भूतेश भक्तभयसूदन व्योमकेश ॥

× × ×

श्रीराम नारायण वासुदेव
गोविन्द वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण।
श्रीकेशवानन्त नृसिंह विष्णो
मां त्राहि संसारभुजङ्गदष्टम् ॥

× × ×

गोविन्द केशव जनार्दन वासुदेव
विश्वेश विश्व मधुसूदन विश्वनाथ।
श्रीपद्मनाभ पुरुषोत्तम पुष्कराक्ष
नारायणाच्युत नृसिंह नमो नमस्ते ॥

× × ×

अप्रमेय हरे विष्णो कृष्ण दामोदराच्युत।
गोविन्दानन्त सर्वेश वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥

× × ×

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

× × ×

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

× × ×

जय रघुनन्दन जय सियराम
जानकिवल्लभ सीताराम।
जय यदुनन्दन जय घनश्याम
रुक्मिणिवल्लभ राधेश्याम ॥

× × ×

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे
हे नाथ नारायण वासुदेव।

× × ×

नरहरि नँदलाल, भजो गोविन्द गोपाल ॥

× × ×

कमलनाभ कमलापति राम।
अच्युत कमलनयन घनश्याम ॥

× × ×

मधुर मनोहर है दो नाम, राधेकृष्ण सीताराम।

× × ×

जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

× × ×

रामचन्द्र रघुनायक जय जय।
दिव्य चाप कर सायक जय जय ॥
कृष्णचन्द्र यदुनायक जय जय।
भगवद्गीता-गायक जय जय ॥

× × ×

श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्द ॥

× × ×

जय मीराँके गिरधर नागर, जय तुलसीके सीताराम।
जय नरसीके साँवरिया, जय सूरदासके राधेश्याम ॥

× × ×

कृष्णा हो रामा रामा गोविन्द माधव,
विष्णु मुकुन्द नरहरि गोपाल लाल।
कृष्णा हो रामा रामा गोविन्द हरि हरि ॥

× × ×

सीताराम सीताराम सीताराम जय सीताराम।
राधेश्याम राधेश्याम राधेश्याम जय राधेश्याम ॥

× × ×

नारायण नारायण नारायण
जय नारायण नारायण नारायण ।

× × ×

नारायण नारायण जय गोविन्द हरे ।
नारायण नारायण जय गोपाल हरे ॥

× × ×

विष्णो नारायण भगवान् । चार-भुजाधारी भगवान् ॥
शंख-चक्रधारी भगवान् । गदा पद्मपाणे भगवान् ॥

× × ×

राम कहो घनश्याम कहो,
जय जय श्रीसीताराम (श्रीराधेश्याम) कहो ।

× × ×

राम धुन लागी, गोपाल धुन लागी ।

× × ×

गौरीशंकर सीताराम । पार्वतीशिव सीताराम ॥

× × ×

जयति शिवा-शिव जानकिराम ।
गौरीशंकर सीताराम ॥
जय व्रजनन्दन जय घनश्याम ।
व्रजगोपीप्रिय राधेश्याम ॥

× × ×

जय विट्ठल जय रखुमाई, जय विट्ठल जय रखुमाई ।

× × ×

जय रामकृष्ण हरी, मुकुन्द मुरारी ।

× × ×

जय राधामाधव गोविन्द,
जय शचिनन्दन नित्यानन्द ।

× × ×

श्याम श्याम राधे राधे, राधे राधे राधे राधे ।
राम राम सीते सीते, सीते सीते सीते सीते ॥

× × ×

केशव कलिमलहारी राधेश्याम राधेश्याम ।
दशरथ-अजिरविहारी सीताराम सीताराम ॥

× × ×

राधा-गोपी-प्राणधन वृन्दावनविहारी श्याम ।
भक्तनके जीवनधन अवधविहारी राम ॥

× × ×

जय जय विश्वरूप हरि जय ।
जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥

× × ×

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम् ।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम् ॥

× × ×

जयति शिवा-शिव शंकर हर जय ।
महादेव हे शम्भो जय जय ॥
जय गिरितनये, नीलकण्ठ जय ।
जगदम्बे जय आशुतोष जय ॥

× × ×

महादेव हर हर शंकर जय ।
मदनदर्पहर मङ्गलकर जय ॥

× × ×

अगड़बम अगड़बम बाजे डमरू ।
नाचे सदाशिव जगद्गुरू ॥

× × ×

ॐ शिव ॐ शिव जय शिव जय शिव
ॐ शिव ॐ शिव तव शरणम् ।
नमामि शंकर भवानि शंकर
उमा महेश्वर तव शरणम् ।

× × ×

साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव,
साम्ब सदाशिव साम्ब शिवा ।
हर हर हर हर साम्ब सदाशिव,
साम्ब सदाशिव साम्ब शिवा ॥

× × ×

साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव,
साम्ब सदाशिव जय शंकर ।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर,
अघ-तमहर हर हर शंकर ॥

× × ×

जय हर शिव शंकर गौरीशं, वन्दे गङ्गाधरमीशम् ।
रुद्रं पशुपतिमीशानं निष्कल हे काशिपुरीनाथम् ॥

× × ×

महादेव शिव शंकर शम्भो, उमाकान्त हर त्रिपुरारे ।
गङ्गाधर वृषभध्वज शूलिन्, चन्द्रमौलि जय अघहारे ॥

× × ×

जय जय दुर्गा जय मा तारा।
जय गणेश जय शुभ आगारा॥
× × ×
दुर्गतिनाशिनि दुर्गा जय जय।
काली कालविनाशिनि जय जय॥
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय।
राधा सीता रुक्मिणि जय जय॥
× × ×
खेलत चारों भैया हो सरजूके तीर।
दशरथ लेत बलैया हो जय रघुबीर॥
× × ×
जय सिय राम, जय जय सियाराम।
× × ×
राम लछमन जानकी। जय बोलो हनुमानकी॥
× × ×
हरे राम हरे राम हरे राम हरे।
भज मन निशिदिन प्यारे॥
× × ×
श्रीमद् दशरथनन्दन राम।
कौशल्यासुखवर्धन राम॥
रसपीयूष मधुरतम राम।
सीता-प्राण-प्रियतम राम॥
× × ×
दशरथनन्दन अवधकिशोर।
ऋषि-मुनि-तापसजन-मन-चोर॥
× × ×
रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम॥
× × ×
राघव शर-धनुधारी सीता राम राम राम।
पत्थरकी ऋषि-तिय-तारी सीता राम राम राम॥
× × ×
दशरथललाकी जय—जनकललीकी जय।
रामसखाकी जय—सीता अलीकी जय॥
× × ×
जय लोकाभिराम श्रीराम। रामभद्र रघुनायक राम॥
भज मन प्यारे सीताराम। रट मन प्यारे सीताराम॥
× × ×
राजा राम राम राम। सीता राम राम राम॥
× × ×

जय रघुनन्दन जनककिशोरी।
सीताराम मनोहर जोरी॥
× × ×
सिय-स्वामीकी जय, प्यारे राघवकी जय।
बोलो हनुमत् कृपालुकी जय जय जय॥
× × ×
जय राम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम॥
× × ×
जय राम हरे रघुनाथ हरे।
जय जय प्रभु पूरणकाम हरे॥
× × ×
राम भरत लछमन शत्रुहन।
जय मारुति हनुमान ज्ञानघन।
× × ×
श्रीराम जय राम जय जय राम।
× × ×
भज ले भज ले सीताराम। मंगलमूरति सुंदर श्याम॥
× × ×
दौरे करत हैया हैया, पाछे दौरी है मैया।
कर ले ब्यारू कन्हैया, मैया लेती बलैया॥
× × ×
गोविन्द गोपीनाथ गोपीजनवल्लभ
नीरजलोचन राधिका-नायक।
जय ब्रजराज-तनूज वेणुधर
नागरेन्द्र राधारति-दायक॥
× × ×
कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नंदलाल।
× × ×
राधिकारमण, अम्बुजनयन नन्दनदन नाथ हे।
गोपिकाप्राण, सन्मथमथन, विश्वरंजन कृष्ण हे॥
× × ×
नँदनन्दन वृषभानुकिशोरी
कृष्णचन्द्र राधिका चकोरी।
जय यदुनंदन रुक्मिणि गोरी,
रुक्मिणि-कृष्ण मनोहर जोरी॥
× × ×

जय वसुदेव देवकीनंदन
जयति यशोदानँद-नंदन।
जयति असुर-दल-कन्दन जय-जय
प्रेमी जन-मानस-चंदन॥
× × ×
कृष्ण राधा राधा राधा हो।
राधा कृष्ण कृष्ण कृष्ण हो॥
× × ×
ललित-त्रिभंग, कमल-दल-लोचन
मोचन मायारचित विधान।
परमहंस मुनिजन-मन-मोहनि
सोहनि मंद मधुर मुसकान॥
प्रेमानंद-तरंगित विग्रह
रासरसिक रसधाम सुजान।
मेरे हृदयेश्वर रस-रास-
रसिक शुचि करते रसका दान॥
× × ×
नवकिशोर नटवर मुरलीधर
मधुर मयूर-मुकुटधर लाल।
कटि पट पीत करधनी कूजित,
विकट भ्रुकुटि मधु नयन विशाल॥
× × ×
जय गोविन्द गोपिकानंदन
पूर्ण सच्चिदानन्द उदार।
जय सब गोपी-गोप-गोपबालक
गोधनके प्राणाधार॥
× × ×
हरि बोल हरि बोल बोल हरि बोल।
केशव माधव मुकुन्द बोल॥
× × ×
माधव मुरलीधारी राधेश्याम श्यामाश्याम।
मोहन मुकुंद मुरारी राधेश्याम श्यामाश्याम॥
× × ×
वंशीधारीकी जय, वनवारीकी जय।
बोलो गिरवरधारीकी जय जय जय॥
चीरहारीकी जय, रासधारीकी जय।
बोलो कुंजविहारीकी जय जय जय॥
× × ×

गिरधारी बनवारी जय जय।
राधा-रासविहारी जय जय॥
नन्द-यशोदा-छैयाकी जय।
वन वन गाय-चरैयाकी जय॥
× × ×
सुर-मुनि-तारक असुर-विदारक
सब अघहारक अवतारी।
वेणु-बजायक गीता-गायक
सबके नायक गिरधारी॥
× × ×
गोविन्द गोपीनाथ गोपीजनवल्लभ।
देहि पद-पल्लव श्रीराधावल्लभ॥
× × ×
जय गोविन्द हरि गोविन्द,
जय गुपाल राधे गोविन्द॥
× × ×
भज बालकृष्ण गोपाल गोविन्द गिरधारी।
जय हरि हरि गोविन्द गिरधारी॥
× × ×
गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे।
गोविन्द गोविन्द मुकुन्द प्यारे॥
× × ×
जय गोपीप्रिय जय गोविन्द।
जय राधामन-आनँदकन्द॥
कालिन्दीप्रिय नन्दानन्द।
सुर-मुनि-पूजित पद-अरविन्द॥
× × ×
वासुदेव, देवकिनन्दन जय।
दारुण-दैत्यनिकन्दन जय जय॥
× × ×
गोपाला जय गोपाला।
यशुमतिनन्दन नँदलाला॥
× × ×
यमुना-पुलिनविहारी जय जय।
वृन्दा-विपिन-विहारी जय जय॥
जय कंसारि मुरारी जय जय।
जय अघारि असुरारी जय जय॥
× × ×

गोपीप्रिय हे रासरसिक हे,
राधाप्रियतम प्राणाधिक हे ॥

× × ×

कारमण रसिकशेखर मदनमोहन श्याम हे।
के अधर बदन मधुर नयन-अभिराम हे ॥

× × ×

राधा-पद-पङ्कज-मधुकर हे,
राधाराधन नित तत्पर हे ॥

× × ×

जय राधिकारमण रमणीय।
कोटि काम-मद-हर कमनीय।

× × ×

राधारमण जय कुंजविहारी,
मुरलीधर गोवर्धनधारी ॥

× × ×

जय हरि गोविन्द, राधे गोविन्द ॥

× × ×

गोविन्द गोविन्द गोपाल नँदलाल हरि।

× × ×

जय मुरलीधर जय घनश्याम।
जय नँदनन्दन राधेश्याम ॥

× × ×

मोहन प्यारे आ जा, ताजा माखन खा जा।
सूरत दिखा जा, (मेरो) चित्त चुरा जा ॥

× × ×

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
यादवाय माधवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

× × ×

गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे,
राधाकृष्ण गोपीकृष्ण श्रीकृष्ण प्यारे।

× × ×

जय प्रेमीजन-मानस-चोर।
जय राधा-मुख-चन्द्र-चकोर ॥

× × ×

(गोविन्द हरे गोपाल हरे)
गोपाल हरे, नँदलाल हरे।
जय जय प्रभु दीन दयाल हरे।
श्रीकृष्ण हरे, बलराम हरे।
जय सखा सुबल श्रीदाम हरे ॥

× × ×

राधेश्याम राधेश्याम श्याम श्याम राधे-राधे।

× × ×

भज बालकृष्ण गोपाल गोविंद गिरधारी।
जय हरि हरि गोविंद गिरधारी ॥

× × ×

जय कञ्जनाभ करुणामय शान्त कृष्ण।
जय नील आभ नित रसमय कान्त कृष्ण ॥

× × ×

भानुदुलारी गोपिका-प्यारी कृष्ण-प्राणधन श्रीराधे।

× × ×

राधे बोलो राधे, गोविन्द बोलो राधे।
राधे राधे राधे राधे, गोविन्द जय बोलो राधे।
राधे बोलो राधे, गोविन्द बोलो राधे ॥

× × ×

राधा बाधाहारिणि जय जय।
मोहन-हृदय-विहारिणि जय जय।

× × ×

मोहन-मोहिनि रासेश्वरि जय।
नित्य-निकुंजेश्वरी जयति जय ॥

× × ×

जय राधा जय साँवर प्यारी
जय राधा साँवर जय प्यारी
जय श्यामा मोहन-मनहारी

× × ×

केसरिनन्दन कपि जय जय।
कपि-वपु-धारी शिव जय जय ॥
देव पवननन्दन जय जय।
जय अंजनिकुमार जय जय ॥

× × ×

राम भगत बलबुद्धि-निधान।
मारुतनन्दन जय हनुमान।
संकटमोचन श्रीहनुमान।
मारुतनन्दन जय हनुमान ॥

× × ×
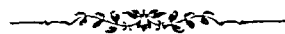
विविध कार्योंके लिये विभिन्न भगवन्नामोंका जप-स्मरण

कामना-सिद्धिके लिये—

कामः कामप्रदः कान्तः कामपालस्तथा हरिः।
आनन्दो माधवश्चैव कामसंसिद्धये जपेत्॥

अभीष्ट कामनाकी सिद्धिके लिये 'काम', 'कामप्रद', 'कान्त', 'कामपाल', 'हरि', 'आनन्द' और 'माधव'—इन नामोंका जप करे।

शत्रुविजयके लिये—

रामः परशुरामश्च नृसिंहो विष्णुरेव च।
विक्रमश्चैवमादीनि जप्यान्यरिजिगीषुभिः॥

शत्रुओंपर विजय पानेकी इच्छावाले लोगोंको 'राम', 'परशुराम', 'नृसिंह', 'विष्णु' तथा 'विक्रम' इत्यादि भगवन्नामोंका जप करना चाहिये।

विद्या-प्राप्तिके लिये—

विद्यामभ्यस्यता नित्यं जप्तव्यः पुरुषोत्तमः।

विद्याभ्यास करनेवाले छात्रको प्रतिदिन 'पुरुषोत्तम' नामका जप करना चाहिये।

बन्धन-मुक्तिके लिये—

दामोदरं बन्धगतो नित्यमेव जपेन्नरः।

बन्धनमें पड़ा हुआ मनुष्य नित्य ही 'दामोदर' नामका जप करे।

नेत्र-बाधा-नाशके लिये—

केशवं पुण्डरीकाक्षमनिशं हि तथा जपेत्।
नेत्रबाधासु सर्वासु ....।

सम्पूर्ण नेत्र-बाधाओंमें नित्य-निरन्तर 'केशव' एवं 'पुण्डरीकाक्ष' नामोंका जप करे।

भयनाशके लिये—

हृषीकेशं भयेषु च।

भयके अवसरोंपर उसके निवारणके लिये 'हृषीकेश'का स्मरण करे।

औषध-सेवनके लिये—

अच्युतं चामृतं चैव जपेदौषधकर्मणि।

औषध-सेवनके कार्यमें 'अच्युत' और 'अमृत' नामोंका जप करे।

युद्धस्थलमें जाते समय—

संग्रामाभिमुखे गच्छन् संस्मरेदपराजितम्।

युद्धकी ओर जाते समय 'अपराजित'का स्मरण करे।

पूर्वादि दिशाओंमें जाते समय—

चक्रिणं गदिनं चैव शार्ङ्गिणं खड्गिनं तथा।
क्षेमार्थी प्रवसन् नित्यं दिक्षु प्राच्यादिषु स्मरेत्॥

पूर्व आदि दिशाओंमें प्रवास करते (परदेश जाते या रहते) समय कल्याण चाहनेवाला पुरुष प्रतिदिन 'चक्री' ('चक्रपाणि'), 'गदी' ('गदाधर'), 'शार्ङ्गी' ('शार्ङ्गधर') तथा 'खड्गी' ('खड्गधर')—इन नामोंका स्मरण करे।

सारे व्यवहारोंमें—

अजितं चाधिपं चैव सर्वं सर्वेश्वरं तथा।
संस्मरेत् पुरुषो भक्त्या व्यवहारेषु सर्वदा॥

समस्त व्यवहारोंमें सदा मनुष्य भक्तिभावसे 'अजित', 'अधिप', 'सर्व' तथा 'सर्वेश्वर'—इन नामोंका स्मरण करे।

क्षुत-प्रस्खलनादि, ग्रहपीडादि और दैवी विपत्ति-निवारणके लिये—

नारायणं सर्वकालं क्षुतप्रस्खलनादिषु।
ग्रहनक्षत्रपीडासु देवबाधासु सर्वतः॥

छींक लेने, प्रस्खलन (लड़खड़ाने) आदिके समय, ग्रह-पीड़ा, नक्षत्र-पीड़ा तथा दैवी बाधाओंमें सर्वतोभावसे हर समय 'नारायण'का स्मरण करे।

डाकू तथा शत्रुओंकी पीड़ाके समय—

अन्धकारे तमस्तीव्रे नरसिंहमनुस्मरेत्॥

अत्यन्त घोर अन्धकारमें डाकू तथा शत्रुओंकी ओरसे बाधाकी सम्भावना होनेपर मनुष्य बारंबार 'नरसिंह' नामका स्मरण करे।

अग्निदाहके समय—

अग्निदाहे समुत्पन्ने संस्मरेत् जलशायिनम्।

घर या गाँवमें आग लग जानेपर 'जलशायी'का स्मरण करे।

सर्पविषसे रक्षाके लिये—

गरुडध्वजानुस्मरणाद् विषवीर्यं व्यपोहति ।

'गरुडध्वज' नामके बारंबार स्मरणसे मनुष्य सर्पविषके प्रभावको दूर कर देता है ।

स्नान, देवार्चन, हवन, प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करते समय—

कीर्तयेद् भगवन्नाम वासुदेवेति तत्परः ॥

स्नान, देवपूजा, होम, प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करते समय मनुष्य भगवत्परायण हो 'वासुदेव'—इस भगवन्नामका कीर्तन करे ।

वित्त-धान्यादि-स्थापनके समय—

कुर्वीत तन्मना भूत्वा अनन्ताच्युतकीर्तनम् ।

धन-धान्यादिकी स्थापनाके समय मनुष्य भगवान्‌में मन लगाकर 'अनन्त' और 'अच्युत'—इन नामोंका कीर्तन करे ।

दुःस्वप्न-नाशके लिये—

नारायणं शार्ङ्गधरं श्रीधरं पुरुषोत्तमम् ।
वामनं खड्गिनं चैव दुष्टस्वप्ने सदा स्मरेत् ॥

बुरे सपने आनेपर मनुष्य सदा 'नारायण', 'शार्ङ्गधर', 'श्रीधर', 'पुरुषोत्तम', 'वामन' और 'खड्गी'का स्मरण करे ।

महार्णवमें—

महार्णवादौ पर्यङ्कशायिनं च नरः स्मरेत् ॥

महासागर आदिमें गिर पड़नेपर मानव 'पर्यङ्कशायी' ('शेषशायी') का स्मरण करे ।

सर्वकर्म-समृद्धिके लिये—

बलभद्रं समृद्ध्यर्थं सर्वकर्मणि संस्मरेत् ।

समस्त कर्मोंमें उनकी सम्पन्नताके लिये मनुष्य 'बलभद्र' का स्मरण करे ।

संतानके लिये—

जगत्पतिमपत्यार्थं स्तुवन् भक्त्या न सीदति ।

संतानकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक 'जगत्पति' (जगदीश या जगन्नाथ) की स्तुति करनेवाला पुरुष कभी दुखी नहीं होता।

सर्व प्रकारके अभ्युदयके लिये—

श्रीशं सर्वाभ्युदयिके कर्मण्याशु प्रकीर्तयेत् ॥

सम्पूर्ण अभ्युदय-सम्बन्धी कर्मोंमें शीघ्रतापूर्वक 'श्रीश' ...

अरिष्ट-निवारणके लिये—

अरिष्टेषु ह्यशेषेषु विशोकं च सदा जपेत् ।

सम्पूर्ण अरिष्टोंके निवारणके लिये सदा 'विशोक' नामका जप करे ।

निर्जन स्थानमें तथा आँधी-तूफान आदि उपद्रवोंमें मृत्युके समय—

मरुत्प्रपाताग्निजलबन्धनादिषु मृत्युषु ।
स्वतन्त्रपरतन्त्रेषु वासुदेवं जपेद् बुधः ॥

स्वेच्छा या परेच्छावश अथवा स्वाधीन या पराधीन अवस्थामें किसी निर्जन स्थानमें पहुँचनेपर आँधी-तूफान (ओला-वर्षा), अग्नि (दावानल), जल (अगाध जल राशिमें निमज्जन) तथा बन्धन आदिके कारण मृत्यु या प्राण संकटकी अवस्था प्राप्त हो तो बुद्धिमान् मनुष्य 'वासुदेव' नामका जप करे। (ऐसा करनेसे बाधाएँ दूर हो जाती हैं)

कलियुगके दोष-नाशके लिये—

नान्यास्ति कर्मजं लोके वाग्जं मानसमेव वा ।
यन्न क्षपयते पापं कलौ गोविन्दकीर्तनात् ॥

कलियुगमें इस जगत्‌के भीतर ऐसा कोई कर्म (शारीरिक), वाचिक और मानसिक पाप नहीं है, जिसे मनुष्य 'गोविन्द' नामका कीर्तन करके नष्ट न कर दे ।

शमायालं जलं वह्नेस्तमसो भास्करोदयः ।
शान्त्यै कलेरघौघस्य नामसंकीर्तनं हरेः ॥

जैसे आग बुझा देनेके लिये जल और अन्धकारको नष्ट करनेके लिये सूर्योदय समर्थ है, उसी प्रकार कलियुगकी पापराशिका शमन करनेके लिये 'श्रीहरि'का नाम-कीर्तन समर्थ है।

पराकचान्द्रायणतप्तकृच्छ्रैर्न देहशुद्धिर्भवतीति तादृक् ।
कलौ सकृन्माधवकीर्तनेन गोविन्दनाम्ना भवतीह यादृक् ॥

कलियुगमें एक बार 'माधव' या 'गोविन्द' नामके कीर्तनसे यहाँ जीवकी जैसी शुद्धि होती है, वैसी इस जगत्‌में पराक, चान्द्रायण तथा तप्तकृच्छ्र आदि बहुत-से प्रायश्चित्तोंद्वारा भी नहीं होती।

सकृदुच्चारयन्त्येतद् दुर्लभं चाकृतात्मनाम् ।
कलौ युगे हरेर्नाम ते कृतार्था न संशयः ॥

जो कलियुगमें अपुण्यात्माओंके लिये दुर्लभ इस 'हरि' नामका एक बार उच्चारण कर लेते हैं, वे कृतार्थ हो गये— इसमें संशय नहीं ।

किस विपत्तिके समय कौन-सा नाम उच्चारण करें ?

विष्णुधर्मोत्तरमें मार्कण्डेय-वज्र-संवादमें कहा गया है—

जल-प्रतरणके समय—

कूर्मं वराहं मत्स्यं वा जलप्रतरणे स्मरेत्।

जलसे पार होते समय भगवान् 'कूर्म' (कच्छप), 'वराह' अथवा 'मत्स्य'का स्मरण करे।

अग्निदाहके समय—

भ्राजिष्णुमग्निजनने जपेन्नाम त्वखण्डितम्।

कहीं आग लग गयी हो तो उसकी शान्तिके लिये 'भ्राजिष्णु'—इस नामका अखण्ड जप आरम्भ कर दे।

आपत्ति-विपत्ति, ज्वर, शिरोरोग तथा विषवीर्यमें—

गरुडध्वजानुस्मरणादापदो मुच्यते नरः।
ज्वरजुष्टशिरोरोगविषवीर्यं च शाम्यति॥

'गरुडध्वज'का नाम बारंबार स्मरण करके मनुष्य आपत्तिसे छूट जाता है; साथ ही वह ज्वररोग, सिरदर्द तथा विषके प्रभावको भी शान्त कर देता है।

युद्धके समय—

बलभद्रं तु युद्धार्थी।

युद्धार्थी मनुष्य 'बलभद्र' का स्मरण करे।

कृषि, व्यापार और अभ्युदयके लिये

······कृष्यारम्भे हलायुधम्।······
उत्तारणं वणिज्यार्थी राममभ्युदये नृप।

नरेश्वर ! खेतीके आरम्भमें किसान 'हलायुध'का स्मरण करे। व्यापारकी इच्छावाला वैश्य 'उत्तारण' को याद करे और अभ्युदयके लिये 'राम' का स्मरण करे।

मङ्गले—

मङ्गल्यं मङ्गलं विष्णुं मङ्गल्येषु च कीर्तयेत्।

माङ्गलिक कर्मोंमें मङ्गलकारी एवं मङ्गलमय 'श्रीविष्णु'का कीर्तन करे।

सोकर उठते समय—

······उत्तिष्ठन् कीर्तयेद् विष्णुम्।······

सोकर उठते समय 'विष्णु'का कीर्तन करे।

निद्राकालमें—

······प्रस्वपन् माधवं नरः।······

सोते समय मानव 'माधव'का स्मरण करे।

भोजनके समय—

भोजने चैव गोविन्दं सर्वत्र मधुसूदनम्॥

भोजनकालमें 'गोविन्द' का और सर्वत्र सदा 'मधुसूदन' का चिन्तन करे।

विविध सोलह कार्योंमें विविध सोलह नाम

औषधे चिन्तयेद्विष्णुं भोजने च जनार्दनम्।
शयने पद्मनाभं च विवाहे च प्रजापतिम्॥
युद्धे चक्रधरं देवं प्रवासे च त्रिविक्रमम्।
नारायणं तनुत्यागे श्रीधरं प्रियसंगमे॥
दुःस्वप्ने स्मर गोविन्दं संकटे मधुसूदनम्।
कानने नारसिंहं च पावके जलशायिनम्॥
जलमध्ये वराहं च पर्वते रघुनन्दनम्।
गमने वामनं चैव सर्वकार्येषु माधवम्॥
षोडशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते॥

औषध-सेवनके समय 'विष्णु'का, भोजनमें 'जनार्दन'का, शयनमें 'पद्मनाभ'का, विवाहमें 'प्रजापति'का, युद्धमें 'चक्रधर'का, प्रवासमें 'त्रिविक्रम'का, शरीरत्यागके समय 'नारायण'का, प्रिय-मिलनमें 'श्रीधर'का, दुःस्वप्न-दोषनाशके लिये 'गोविन्द'का, संकटमें 'मधुसूदन'का, जंगलमें 'नृसिंह'का, अग्नि लगनेपर 'जलशायी भगवान्'का, जलमें 'वराह'का, पर्वतपर 'रघुनन्दन'का, गमनमें 'वामन'का और सभी कार्योंमें 'माधव'का स्मरण करना चाहिये। जो प्रातःकाल उठकर इन नामोंका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोक (वैकुण्ठ) में पूजित होता है।

भगवदाराधन-देवाराधन

[पारमार्थिक और लौकिक कुछ सरल अनुष्ठान]

प्राकृतिक जगत् अनित्य, अपूर्ण और विनाशी है; अतएव दुःखालय है। प्राकृतिक वस्तुओं और स्थितियोंमें सुखकी खोज करना वास्तवमें मूर्खता ही है। यहाँ जो कुछ भी मनुष्य प्राप्त करता है, वह स्थायी नहीं होता, अधूरा होता है और उसका वियोग अवश्यम्भावी है। यहाँ वास्तविक सुख उसीको मिलता है, जो सारे जगत्को भगवान्में देखता है और भगवान्को जगत्में भरा देखता है; वही नित्य और पूर्ण परमानन्दस्वरूप भगवान्को देखता हुआ नित्य आनन्दमय बना रहता है।

भगवान्ने कहा है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६।३०)

'जो सर्वत्र मुझको देखता है और सबको मुझमें देखता है, मैं उससे कभी अलग नहीं होता और वह मुझसे कभी अलग नहीं होता।'

फिर यहाँ जो कुछ भी हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि भोगरूपमें प्राप्त होते हैं, वे सब प्रारब्धके ही फल हैं। कर्म तीन प्रकारके होते हैं—क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। इस समय हम जो कुछ भी कर्म फलके हेतुसे कर रहे हैं, उन्हें 'क्रियमाण' कहते हैं। फलहैतुक कर्म सम्पन्न होते ही कर्म-संचयके भंडारमें चला जाता है। यह वर्तमानके और पूर्वके किये हुए कर्मोंका, जिनका फल अभी नहीं भोगा जा चुका है, संग्रह ही 'संचित' कहलाता है और इस संचितमेंसे एक जन्मके लिये कुछ अंश लेकर कर्म-जगत्का नियन्त्रण करनेवाली प्रभुशक्ति एक जन्मके लिये जो कुछ फलका निर्माण कर देती है, उसका नाम 'प्रारब्ध' है। इस 'प्रारब्ध'के अनुसार योनि, आयु और फल आदि पहलेसे ही निश्चित हो जाते हैं। अतएव जब, जो कुछ भी, प्रारब्धवश फलरूपमें प्राप्त होना है, वह अवश्य होगा ही। उसमें निमित्त तीन हो सकते हैं—'स्वेच्छा', 'परेच्छा' और 'अनिच्छा'। किसी फल-भोगके लिये कोई कर्म हमारी अपनी इच्छासे बन जाय, यह 'स्वेच्छाकृत' फलभोग है, जैसे आगमें हाथ डालनेकी इच्छा होनेपर हाथ डालना और उसका जल जाना। किसी प्रारब्धका फल 'परेच्छा'—दूसरेकी इच्छासे होता है। इसका रूप है—किसी दूसरेके मनमें हमारा अच्छा-बुरा करनेकी इच्छा हो जाना और तदनुसार उस कर्मके सम्पन्न होनेपर हमें फल प्राप्त होना—जैसे हमारे घरमें आग लगनेवाली हो, पर द्वेषवश दूसरा कोई इच्छा करके आग लगा दे। इसी प्रकार कुछ फल 'अनिच्छा'से उत्पन्न होते हैं—जैसे हम रास्तेमें चल रहे हैं। अकस्मात् किसी पेड़की डाल टूटकर हमपर गिर जाय और हमें चोट लग जाय। फलभोगमें प्रारब्धवश परतन्त्र होते हुए भी इन 'स्वेच्छा' और 'परेच्छा'कृत फल-भोगोंमें हम या दूसरे अपनी भली-बुरी इच्छाके अनुसार क्रियमाण कर्म करके अपने लिये अच्छे-बुरे संचितका निर्माण करते हैं, जो भविष्यमें हमारे लिये सुख-दुःखका कारण बन सकता है; क्योंकि संचित और प्रारब्धवश अच्छी-बुरी इच्छाओंके उदय होनेपर भी मनुष्यको भगवान्ने अच्छे-बुरेकी पहचानके लिये विवेक, आदर्श शुभ कर्म करनेके लिये विधिनिषेधात्मक शास्त्रवाणी और कर्म करनेका अधिकार दिया है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' गीताका प्रसिद्ध वचन है। यदि हम शास्त्रकी अवहेलना करके मनमाना अनाचार-दुराचार करते हैं, तो उसका फल दुःख, और सदाचार-सद्व्यवहार करते हैं तो उसका फल सुख भविष्यमें होगा ही। प्रारब्धका फल अवश्यमेव भोगना ही होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। पर जो मनुष्य भगवान्के शरणागत होकर अपनेको सर्वतोभावेन भगवान्को समर्पित कर चुकते हैं अथवा जिन्हें तत्त्वज्ञानस्वरूप आत्मसाक्षात्कार हो जाता है, उनके शरीरमें प्रारब्धानुसार फलका उदय होनेपर भी उन्हें दुःख-सुख नहीं होता और सकाम भाव न होनेसे नवीन कर्मफल प्रदान करनेवाले कर्म संचितमें वैसे ही नहीं जमा होते, जैसे भुने हुए बीज खेतमें डालनेपर उनसे अङ्कुर नहीं निकलते। पूर्वके सारे संचित-कर्म भगवान्की सहज 'कृपा' अथवा 'ज्ञानाग्नि'से सर्वथा भस्म हो जाते हैं। इस प्रकार वह कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है। तथापि शरीरसे प्रारब्धफलका भोग तो होता ही है। यह 'कर्म-सिद्धान्त' है।

परंतु कुछ ऐसे 'प्रबल कर्म' भी होते हैं—जैसे सकाम भगवदाराधन या देवाराधन, किसी कारणवश शाप या वरदान—जो तत्काल 'प्रारब्ध' बनकर फलदानोन्मुख [illegible]

फलको रोककर बीचमें अपना फल भुगता देते हैं। जैसे किसीके प्रारब्धमें पुत्र-प्राप्तिका संयोग नहीं है, अमुक समयपर मृत्युका योग है; पर वे विधिपूर्वक 'पुत्रेष्टियज्ञ'का अनुष्ठान करनेपर नवीन प्रारब्ध-निर्माणके द्वारा पुत्र प्राप्त कर सकते हैं, ऐसे बहुतसे उदाहरण प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलते हैं। और 'मृत्युंजय' आदि अनुष्ठान करनेपर अल्पायु मनुष्य 'दीर्घ-जीवन'का सविधि लाभ कर सकते हैं। मार्कण्डेयजीका भगवान् शंकरकी उपासनाके फलस्वरूप अमरत्व प्राप्त करना भी प्रसिद्ध है। इसीलिये हमारे शास्त्रोंमें 'सकाम उपासना'का विस्तृत उल्लेख है।

यद्यपि सकाम उपासना बुद्धिमानी नहीं है, क्योंकि उसके द्वारा प्राप्त होनेवाला फल अनित्य, अपूर्ण और दुःखप्रद ही होता है, तथापि सात्त्विक सकाम उपासनासे भी उपास्यके स्वरूपानुसार न्यूनाधिक रूपमें अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, जिसका फल अन्तमें निष्कामताकी प्राप्ति होता है और भगवान्‌की उपासना तो किसी भी भावसे की जाय, अन्तमें भगवान्‌को प्राप्त करानेवाली होती ही है। भगवान्‌ने स्वयं अपने 'अर्थार्थी' और 'आर्त' भक्तोंको भी 'उदार' बतलाते हुए अन्तमें अपनी प्राप्ति होनेकी घोषणा की है। 'उदाराः सर्व एवैते' और 'मद्भक्ता यान्ति मामपि'। अतएव सकाम देवाराधन और भगवदाराधन बुद्धिमानी न होते हुए भी लोकमें समृद्धि, सुख और अन्तमें क्रमानुसार भगवत्प्राप्तिमें हेतु होनेके कारण अकर्तव्य नहीं है। पाप तो है ही नहीं। अवश्य ही 'तामस देवताओं' और 'तामस तत्त्वों'की उपासना कभी नहीं करनी चाहिये! और न ऐसी कोई उपासना-आराधना करनी चाहिये, जिसमें दूसरेके अहितकी कामना हो। 'तामस उपासना' और 'पर-अहितकी कामना'से की गयी उपासना—दोनों ही अन्तःकरणकी अशुद्धिमें हेतु और बार-बार आसुरी योनि, दुःख और अधोगतिकी प्राप्तिमें ही कारण होती हैं।

यह भी सत्य है कि भगवान् अपनी मङ्गलमयी सर्वज्ञता और इच्छासे हमारे लिये जो कुछ भी फल-विधान करते हैं, चाहे वह हमारी सीमित और अदूरदृष्टिके कारण हमें अशुभ और दुःखप्रद ही जान पड़े, वास्तवमें वह परम शुभ और परम मङ्गलकारी ही होता है। इसलिये भगवान्‌पर और उनकी मङ्गलमयतापर विश्वास करनेवाले भक्त यही चाहते हैं कि उनकी 'मङ्गलमयी इच्छा' ही सदा सर्वत्र अपना काम करती है। हमारी कोई भी इच्छा उस मङ्गलमयी इच्छामें कभी बाधक हो ही नहीं। तथापि जो लोग भोग-कामना और भोग-वासनाको छोड़ नहीं सकते और कामना एवं आसक्तिसे अभिभूत होकर 'अन्याय और असत् मार्ग'का अवलम्बन करके भोग-सुखकी आशा रखते हैं, उनके लिये तो भगवदाराधन और देवाराधन अवश्य ही सेवन करने योग्य है। इसमें लाभ-ही-लाभ है। यदि श्रद्धा और विधि पूरी हो तो 'नवीन प्रारब्ध' का निर्माण होकर मनोरथकी पूर्ति हो जाती है। कदाचित् प्रतिबन्धकरूप प्रारब्ध अत्यन्त प्रबल होनेके कारण मनोरथ-पूर्ति न भी हो तो पुण्यकर्मका अनुष्ठान तो बनता ही है। इसके विपरीत सांसारिक साधन चाहे जितने भी किये जायँ, उनके द्वारा प्रारब्धका फल बदल नहीं सकता। अतएव वे वैध होनेपर भी व्यर्थ होते हैं। और आजकल तो विवेकभ्रष्ट होकर सारा जगत् ही भोग-सुखकी आशा-आकाङ्क्षामें उन्मत्त हो रहा है, वह किसी भी पापसे बचना नहीं चाहता। 'अर्थ' और 'अधिकार' की अदम्य लालसासे उन्मत्त होकर वह अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार, पापाचार, व्यभिचार और अत्याचार, असदाचार आदिके द्वारा सफलता प्राप्त करनेकी भ्रान्त चेष्टा कर रहा है! इसका फल तो निश्चय ही सब प्रकारसे 'अधःपात' और 'दुःख' ही होगा। आजका मनुष्य दूसरे जीवोंके दुःख-सुखको भूल गया है, वह केवल अपने ही सुखकी लालसामें उन्मत्त है। इसीलिये जगत्‌में नये-नये 'भोगवाद' उत्पन्न होकर नये-नये क्लेश-कलहकी अवाञ्छनीय सृष्टि कर रहे हैं और इसीलिये मनुष्य नये-नये पापों-का आयोजन करनेमें 'प्रगति' मान रहे हैं। भारतवर्ष भी इस 'पापकी आँधी'से फँस रहा है। इसीसे आज देशमें अनेक प्रकारके वाद, दलबन्दियाँ, परस्पर एक-दूसरेको मिटाने और दुःख पहुँचानेकी चेष्टा, जीव-हिंसाके नये-नये कारखाने और वैज्ञानिक हत्यालय आदि निर्माणके प्रयत्न बढ़ते जा रहे हैं। खाद्य-पदार्थोंके लिये भी मांसाहारी जगत्‌की देखादेखी मांस-निर्मित पदार्थोंका प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। सत्य, ईमानदारी, चारित्रिक पवित्रता आदि तो आज मानो कहनेकी वस्तु बनते जा रहे हैं। दम्भ, दर्प, अभिमान बेहद बढ़ते चले जा रहे हैं। यही स्थिति चलती रही तो पता नहीं हमारा पतन कहाँ जाकर रुकेगा। इस अवस्थामें भोग-सुखके साधनके रूपमें ही यदि हम अन्याय, असत्-मार्गका सर्वथा परित्याग करके भगवदाराधन और देवाराधनमें प्रवृत्त हों तो पतनसे बचनेकी और जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी निश्चित आशा की जा सकती है। इन भावोंका प्रचार होना चाहिये—'कल्याण'के इस भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्कके प्रकाशनका यह भी एक उद्देश्य है। यहाँ नीचे कुछ

थोड़े-से अनुष्ठानोंके प्रयोग लिखे जा रहे हैं, जिनके करनेपर 'पारमार्थिक' और 'भौतिक' लाभ हो सकते हैं। इनमें कई तो बहुत-से लोगोंके द्वारा अनुभूत हैं।-आशा है, 'कल्याण'के पाठक इनसे यथोचित लाभ उठायेंगे—।

भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये

गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्-
गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन।
मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि
पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः ॥
ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्गसङ्ग-
घृष्टस्रजः स कुचकुङ्कुमरञ्जितायाः।
गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद् वाः
श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥
सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः
प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग।
वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो
रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥
ततश्च कृष्णोपवने जलस्थल-
प्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे।
चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो
यथा मदच्युद् द्विरदः करेणुभिः ॥
(श्रीमद्भागवत १० । ३३ । २२–२५)

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥
(श्रीमद्भागवत १० । ३३ । ४०)

उपर्युक्त श्रीमद्भागवतके (१० । ३३ । २२–२५) चारों श्लोकोंको, श्रीमद्भागवतके ही उपर्युक्त (१० । ३३ । ४०) श्लोकके द्वारा सम्पुटित करके कम-से-कम २१ पाठ प्रतिदिन करे। पाठ करनेसे पूर्व भगवान् श्रीराधा-माधवका चित्रपट सामने रखकर उनका पञ्चोपचारसे पूजन करे और पाठके समय घृतका दीपक रक्खे। स्नान करनेके बाद शुद्ध आसन-पर शुद्ध कपड़े पहनकर पाठ करे। इस प्रकार ३३ दिन पाठ करनेपर मन्त्र सिद्ध हो जाता है। फिर जबतक भगवत्प्रेमका प्रादुर्भाव न हो जाय, तबतक पाठ करता ही रहे। प्रेम प्राप्त करनेकी तीव्र वेदनापूर्ण उत्कण्ठाके साथ ही— भगवान् श्रीराधा-माधव शीघ्र ही अपना प्रेम अवश्य-अवश्य प्रदान करेंगे ही, ऐसा 'दृढ़ विश्वास' करके पाठ करता रहे।

भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी प्राप्तिके लिये

(प्रेषक—श्रीवंशीधरजी शर्मा शास्त्री)

निम्नलिखित स्तोत्र माहेश्वरतन्त्रके ४७वें पटलसे दिया जा रहा है। इस स्तोत्रकी विशेषता क्या है—इस विषयमें पार्वतीजी प्रश्न करती हैं कि 'शिवजी! बिना जपके, बिना सेवाके श्रीकृष्ण प्रसन्न हों, ऐसा कोई उपाय हो तो वह मुझे बताइये।' इसके उत्तरमें श्रीशिवजी कहते हैं—'हे पार्वतीजी! बिना जप, बिना सेवा एवं बिना पूजाके भी केवल जिस स्तोत्रमात्रसे ही श्रीकृष्ण-कृपा प्राप्त हो सकती है, वह स्तोत्र मैं तुम्हारे लिये कहता हूँ। यथा—

पार्वत्युवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि यथा कृष्णः प्रसीदति।
विना जपं विना सेवां विना पूजामपि प्रभो! ॥ १ ॥
यथा कृष्णः प्रसन्नः स्यात्तमुपायं वदाधुना।
अन्यथा देवदेवेश! पुरुषार्थो न सिद्ध्यति ॥ २ ॥

शिव उवाच

साधु पार्वति ते प्रश्नः सावधानतया शृणु।
विना जपं विना सेवां विना पूजामपि प्रिये ॥ ३ ॥
यथा कृष्णः प्रसन्नः स्यात्तमुपायं वदामि ते।
जपसेवादिकं चापि विना स्तोत्रं न सिद्ध्यति ॥ ४ ॥
कीर्तिप्रियो हि भगवान् परमात्मा पुरुषोत्तमः।
जपस्तन्मयतासिद्ध्यै सेवा स्वाचाररूपिणी ॥ ५ ॥
स्तुतिः प्रसादनकरी तस्मात् स्तोत्रं वदामि ते।

अथ ध्यानम्

सुधाम्भोनिधिमध्यस्थे रत्नद्वीपे मनोहरे ॥ ६ ॥
नवखण्डात्मके तत्र नवरत्नविभूषिते।
तन्मध्ये चिन्तयेद् रम्यं मणिगेहमनुत्तमम् ॥ ७ ॥
परितो वनमालाभिर्ललिताभिर्विराजिते।
तत्र संचिन्तयेच्चारु कुट्टिमं सुमनोहरम् ॥ ८ ॥

चतुःषष्ट्या मणिस्तम्भैश्चतुर्दिक्षु विराजितम् ।
तत्र सिंहासने ध्यायेत् कृष्णं कमललोचनम् ॥ ९ ॥
अनर्घ्यरत्नजटितमुकुटोज्ज्वलकुण्डलम् ।
सुस्मितं सुमुखाम्भोजं सखीवृन्दनिषेवितम् ॥१०॥
स्वामिन्याश्लिष्टवामाङ्गं परमानन्दविग्रहम् ।
एवं ध्यात्वा ततः स्तोत्रं पठेद्भुवि जितेन्द्रियः ॥११॥

'सुधासागरके मध्यभागमें मनोहर रत्नद्वीप शोभा पाता है। उसके नौ खण्ड हैं। वह द्वीप नूतन रत्नोंसे विभूषित है। उस रत्नद्वीपके बीचमें परम उत्तम रमणीय मणिमय भवनका चिन्तन करे। वह भवन सब ओरसे ललित वनमालाओंद्वारा विभूषित एवं सुशोभित हो रहा है। उस भवनके भीतर परम मनोहर अतिरमणीय मणिजटित पक्का आँगन है—ऐसा ध्यान करे। वह आँगन चारों दिशाओंमें (सोलह-सोलहके क्रमसे) चौंसठ मणिनिर्मित खंभोंद्वारा विराजित है। उस आँगनपर एक सुन्दर सिंहासन है, जिसके ऊपर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं। उनके स्वरूपका इस प्रकार चिन्तन करे—वे मस्तकपर अमूल्य रत्नजटित मुकुट और कानोंमें उज्ज्वल कुण्डल धारण किये मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं। उनकी वह मुस्कान बड़ी मनोरम है। उसके कारण मुखारविन्दका सौन्दर्य और भी खिल उठा है। झुंड-की-झुंड सखियाँ उनकी सेवामें लगी हैं। स्वामिनी श्रीराधा उनके वामाङ्गसे सटी बैठी हैं। श्रीहरिका श्रीविग्रह परमानन्दमय है।'

इस प्रकार ध्यान करके इन्द्रियोंको पूर्णतः वशमें रखते हुए स्तोत्रका पाठ करे।

अथ स्तोत्रम्

कृष्णं कमलपत्राक्षं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
सखीयूथान्तरचरं प्रणमामि परात्परम् ॥१२॥
शृङ्गाररसरूपाय परिपूर्णसुखात्मने ।
राजीवारुणनेत्राय कोटिकंदर्परूपिणे ॥१३॥
वेदाद्यगम्यरूपाय वेदवेद्यस्वरूपिणे ।
अवाङ्मनसविषयनिजलीलाप्रवर्तिने ॥१४॥
नमः शुद्धाय पूर्णाय निरस्तगुणवृत्तये ।
अखण्डाय निरंशाय निरावरणरूपिणे ॥१५॥
संयोगविप्रलम्भाख्यभेदभावमहाब्धये ।
सदंशविश्वरूपाय चिदंशाक्षररूपिणे ॥१६॥
आनन्दांशस्वरूपाय सच्चिदानन्दरूपिणे ।
मर्यादातीतरूपाय निराधाराय साक्षिणे ॥१७॥
मायाप्रपञ्चदूराय नीलाचलविहारिणे ।
माणिक्यपुष्परागाद्रिलीलाखेलप्रवर्तिने ॥१८॥
चिदन्तर्यामिरूपाय ब्रह्मानन्दस्वरूपिणे ।
प्रमाणपथदूराय प्रमाणाग्राह्यरूपिणे ॥१९॥
मायाकालुष्यहीनाय नमः कृष्णाय शम्भवे ।
क्षराक्षरस्वरूपाय क्षराक्षरविलक्षिते ॥२०॥
तुरीयातीतरूपाय नमः पुरुषरूपिणे ।
महाकामस्वरूपाय कामतत्त्वार्थवेदिने ॥२१॥
दशलीलाविहाराय सप्ततीर्थविहारिणे ।
विहाररसपूर्णाय नमस्तुभ्यं कृपानिधे ॥२२॥
विरहानलसंतप्तभक्तचित्तोदयाय च ।
आविष्कृतनिजानन्दविफलीकृतमुक्तये ॥२३॥
द्वैताद्वैतमहामोहतमःपटलपाटिने ।
जगदुत्पत्तिविलयसाक्षिणेऽविकृताय च ॥२४॥
ईश्वराय निरीशाय निरस्ताखिलकर्मणे ।
संसारध्वान्तसूर्याय पूतनाप्राणहारिणे ॥२५॥
रासलीलाविलासोर्मिपूरिताक्षरचेतसे ।
स्वामिनीनयनाम्भोजभावभेदैकवेदिने ॥२६॥
केवलानन्दरूपाय नमः कृष्णाय वेधसे ।
स्वामिनीकृपयाऽऽनन्दकन्दलाय तदात्मने ॥२७॥
संसारारण्यवीथीषु परिभ्रान्तामनेकधा ।
पाहि मां कृपया नाथ त्वद्वियोगाधिदुःखिताम् ॥२८॥
त्वमेव मातृपित्रादिबन्धुवर्गादयश्च ये ।
विद्या वित्तं कुलं शीलं त्वत्तो मे नास्ति किंचन ॥२९॥
यथा दारुमयी योषिच्चेष्टते शिल्पिशिक्षया ।
अस्वतन्त्रा त्वया नाथ ! तथाहं विचरामि भोः ॥३०॥
सर्वसाधनहीनां मां धर्माचारपराङ्मुखाम् ।
पतितां भवपाथोधौ परित्रातुं त्वमर्हसि ॥३१॥
मायाभ्रमणयन्त्रस्थासूर्ध्वाधो भयविह्वलाम् ।
अदृष्टनिजसंकेतां पाहि नाथ दयानिधे ॥३२॥
अनर्थेऽर्थदृशं मूढां विश्वस्तां भयदस्थले ।
जागृतव्ये शयानां मामुद्धरस्व दयापर ॥३३॥
अतीतानागतभवसंतानविवशान्तराम् ।
बिभेमि विमुखीभूय त्वत्तः कमललोचन ॥३४॥
मायालवणपाथोधिपयःपानरतां हि माम् ।
त्वत्सांनिध्यसुधासिन्धुसामीप्यं नय माचिरम् ॥३५॥
त्वद्वियोगार्तिमासाद्य यज्जीवामीति लज्जया ।
दर्शयिष्ये कथं नाथ ! मुखमेतद्विडम्बनम् ॥३६॥

प्राणनाथवियोगेऽपि करोमि प्राणधारणम् ।
अनौचिती महत्येषा किं न लज्जयते हि माम् ॥३७॥
किं करोमि क्व गच्छामि कस्याग्रे प्रवदाम्यहम् ।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते वृत्तयोऽब्धौ यथोर्मयः ॥३८॥
अहं दुःखाकुला दीना दुःखहा न भवत्परः ।
विज्ञाय प्राणनाथेदं यथेच्छसि तथा कुरु ॥३९॥
ततश्च प्रणमेत् कृष्णं भूयो भूयः कृताञ्जलिः ।
इत्येतद् गुह्यमाख्यातं न वक्तव्यं गिरीन्द्रजे ॥४०॥
एवं यः स्तौति देवेशि त्रिकालं विजितेन्द्रियः ।
आविर्भवति तच्चित्ते प्रेमरूपी स्वयं प्रभुः ॥४१॥

संस्कृतसे अनभिज्ञ पाठकगण किसी संस्कृतके विद्वान्से स्तोत्रका अर्थ समझकर दिनमें तीन बार प्रातः, सायं एवं मध्याह्नमें पाठ करेंगे तो अनन्तगुना लाभ मिल सकेगा। यह पाठ प्रतिदिन बिना लाँघा चलना चाहिये। रोग आदिके समय अशक्ति होनेपर किन्हीं सदाचारी ब्राह्मणद्वारा कराया जा सकता है। तीव्र उत्कण्ठाके साथ-साथ ब्रह्मचर्यका पालन और इन्द्रिय-संयम आवश्यक हैं। इससे भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा तथा उनके दिव्य प्रेमकी प्राप्ति होती है।

भगवान् श्रीरामके दर्शनके लिये

यह अनुष्ठान मुझे नैपालके एक सज्जनने तीस वर्ष पहले लिख भेजा था। उन्हें किसी हिमालयमें रहनेवाले संतने बतलाया था। इसे बहुत लोगोंने करनेकी चेष्टा की; किंतु मेरे पास जो सूचनाएँ आयीं, उनमें कोई भी सम्पूर्ण कर सका हो, ऐसी कोई सूचना नहीं थी। सबसे कम बाधा जिन्हें निद्राने दी थी और जो केवल कुछ क्षण सो गये थे, उनकी सूचना थी कि उनको अद्भुत अनुभव अवश्य हुए।

यदि यह अनुष्ठान निर्विघ्न पूर्ण हो तो तत्काल सगुण साकार भगवान् श्रीरामका प्रत्यक्ष दर्शन होता है, ऐसा मुझे अनुष्ठान लिख भेजनेवाले सज्जनने लिखा था। अनुष्ठान बहुत कठिन नहीं है। अतः इसे जिनमें आस्था, शक्ति तथा उत्साह हो, करके देखना चाहिये। कोई अनुभव हो तो 'कल्याण'-सम्पादकको सूचित कर सकते हैं। अहर्निश राम-नामजपका महान् लाभ तो उन्हें होगा ही।

विधि इतनी ही है कि एक एकान्त कमरेको सब सामान हटाकर खाली करके धोकर स्वच्छ कर लेना चाहिये। सूर्योदयसे पूर्व ही स्नान करके उस कमरेमें किसी ब्राह्मण-द्वारा कलश-स्थापन कराके गणेशजीका पूजन कर लेना चाहिये और शुद्ध घीका अखण्ड दीपक जला लेना चाहिये।

सूर्योदयके समयसे ही 'राम'—इस नामको स्पष्टरूपसे बोलना प्रारम्भ कर देना चाहिये और दूसरे दिन सूर्योदय-तक अर्थात् पूरे चौबीस घंटे 'राम-राम' बोलते रहना है। इसके लिये केवल इतने नियम हैं—१. एक क्षणको भी राम-रामका बोलना बंद न हो। २. उस कमरेसे बाहर न जाया जाय। ३. उस कमरेमें दूसरा कोई इस बीचमें न आये। द्वार भीतरसे बंद रहे। ४. अखण्ड दीपक बुझने न पाये।

एक दिन पहले ऐसा भोजन करना चाहिये कि अनुष्ठान-के दिन शौच-लघुशङ्का अधिक तंग न करें। अनुष्ठानवाले कमरेमें जल रखना चाहिये। आवश्यक होनेपर बोलते हुए जप चलता रहे और लघुशङ्कासे निवृत्त हुआ जा सकता है कमरेमें ही नालीपर। उस कमरेमें अनुष्ठान करनेवाला बैठे, खड़ा हो, टहले, चाहे जैसे रहे; किंतु नामोच्चारण बंद न हो, इतना ध्यान रक्खे।

दूसरे दिन प्रातःकाल कलशादिका विसर्जन कर दिया जाता है।

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥
अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंद अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥
जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

उपर्युक्त चौपाइयोंका आर्तभावसे भगवान् श्रीरामके शीघ्र दर्शनकी अत्यन्त उत्कट उत्कण्ठाको लेकर जबतक कार्य सिद्ध न हो जाय, कम-से-कम इक्कीस बार जप करे और साथ ही 'ॐ रां रामाय नमः' मन्त्रकी ११ मालाका जप करे।

— सु० सिं०

भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये

(१)

कच्चित्तुलसि कल्याणि

सह त्वालिकुलैर्बिभ्रद्
दृग्रस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥

(श्रीमद्भागवत १० । ३० । ७)

—इस मन्त्रको बिल्वकाष्ठकी छोटी-सी पीठिका (चौकी) बनवाकर तुलसीकाष्ठके चन्दनसे और तुलसीकाष्ठकी ही कलमसे लिखकर रोज षोडशोपचारसे पूजन करे और कम-से-कम ३२००० जप-संख्या पूरी करे। ब्रह्मचर्यका अखण्ड पालन करे और सत्यका आचरण करे।

(२)

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते
वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम्।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां
स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥

(श्रीमद्भागवत १० । ३१ । १८)

—इस मन्त्रकी एक मालाका जप करके **'ॐ गोपीजन-वल्लभाय नमः'** मन्त्रकी ११ मालाका प्रतिदिन जाप करे। ब्रह्मचर्यका पालन आवश्यक है।

(३)

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

(श्रीमद्भागवत १० । ३२ । २)

—इस मन्त्रकी एक मालाका जप करके **'ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा'**—इस मन्त्रकी कम-से-कम ११ मालाओंका जाप प्रतिदिन शुद्ध होकर करे। ब्रह्मचर्य-का पालन आवश्यक है।

भगवान्‌के बालरूपमें दर्शनके लिये

(१)

यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो
धृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः
किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥

(श्रीमद्भागवत १० । १२ । १२)

—इस मन्त्रका १०८ जप करे और भागवतके दशम स्कन्धके पूर्वार्धका पारायण प्रतिदिन तीन अध्यायके हिसाबसे १६ दिनोंमें पूर्ण करे। सोलहवें दिन चार अध्यायका पाठ करे। पाठके पूर्व और अन्तमें उपर्युक्त मन्त्रका सम्पुट दे।

श्रीबालकृष्णके ध्यानसे सर्वविपत्तियोंका नाश तथा भगवान्‌के दर्शन

(२)

बालं नवीनशतपत्रविशालनेत्रं
बिम्बाधरं सजलमेघरुचिं मनोज्ञम्।
मन्दस्मितं मधुरसुन्दरमन्दयानं
श्रीनन्दनन्दनमहं मनसा नमामि ॥ १ ॥
मञ्जीरनूपुररणन्नवरत्नकाञ्ची-
श्रीहारकेसरिनखावलियन्त्रसंघम्।
दृष्ट्यार्तिहारिमषिबिन्दुविराजमानं
वन्दे कलिन्दतनुजातटबालकेलिम् ॥ २ ॥
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखोपरि कुञ्चिताग्राः
केशा नवीनघननीलनिभाः स्फुरन्तः।
राजन्त आनतशिरःकुमुदस्य यस्य
नन्दात्मजाय सबलाय नमो नमस्ते ॥ ३ ॥
श्रीनन्दनन्दनस्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तन्नेत्रगोचरं याति सानन्दो नन्दनन्दनः ॥

'श्रीनन्दनन्दनके नेत्र नवीन कमलके समान विशाल हैं, पके हुए बिम्बफलके समान लाल-लाल ओठ हैं, जलसे भरे हुए मेघकी-सी अङ्ग-कान्ति है। मन्द-मन्द मुसकराते हुए वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते हैं। उनकी धीमी-धीमी चाल भी अत्यन्त आकर्षक और सुन्दर है; उन बालगोपालको मैं मनसे प्रणाम करता हूँ। उनके चरणोंमें पायजेब और नूपुर सुशोभित हैं। नवीन रत्ननिर्मित करधनी खन-खन शब्द कर रही है। वक्षःस्थलपर सुनहरी रेखाके रूपमें लक्ष्मीजी, मुक्ताहार, बघनखोंकी पंक्ति तथा यन्त्रोंका समूह शोभा दे रहा है। ललाटपर दृष्टिदोषजनित पीड़ाका निवारण करनेवाला काजल-का डिठौना विशेष सुन्दर लग रहा है। कलिन्दतनया श्रीयमुना-जीके तटपर बालोचित क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ। नीचेकी ओर झुका हुआ जिनका शिरोभाग प्रफुल्ल कुमुदकी-सी शोभा धारण करता है, पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित परम सुन्दर श्रीमुखपर नवीन मेघके समान नीले रंगकी घुँघराली अलकें लहरा रही हैं। बलदाऊ भैयाके सहित उन नन्दके लाड़िले! आपको मेरा बार-बार प्रणाम।'

प्रातःकाल उठकर जो इस नन्दनन्दन-स्तोत्रका पाठ करता है, आनन्दमूर्ति श्रीनन्दनन्दन उसके नेत्रोंके आगे नाचने लगते हैं।

बालकों (और बड़ोंको भी) को प्रातःकाल शय्यासे उठते ही हाथ-मुँह धोकर श्रीश्यामसुन्दर नन्दनन्दनके उपर्युक्त बालरूपका नित्य नियमपूर्वक प्रेमसहित ध्यान करना चाहिये। इससे सारी विपत्तियोंका विनाश होकर भगवान् श्रीबालकृष्णके दर्शन प्राप्त होते हैं।

श्रीराधाजीका आश्रय पानेके लिये

कृपयति यदि राधा बाधिताशेषबाधा
किमपरमवशिष्टं पुष्टिमर्यादयोर्मे।
यदि वदति च किंचित् स्मेरहासोदितश्री-
द्विजवरमणिपङ्क्त्या मुक्तिशुक्त्या तदा किम्॥

श्यामसुन्दर शिखण्डशेखर
स्मेरहास्य मुरलीमनोहर।
राधिकारसिक मां कृपानिधे
स्वप्रियाचरणकिंकरीं कुरु॥
प्राणनाथ वृषभानुनन्दिनी-
श्रीमुखाब्जरसलोलषट्पद।
राधिकापदतले कृतस्थितिं
त्वां भजामि रसिकेन्द्रशेखर॥
संविधाय दशने तृणं विभो
प्रार्थये व्रजमहेन्द्रनन्दन।
अस्तु मोहन तवातिवल्लभा
जन्मजन्मनि मदीश्वरी प्रिया॥

राधा रासेश्वरी रम्या परमा परमात्मिका।
रासोद्भवा कृष्णकान्ता कृष्णवक्षःस्थलस्थिता॥
कृष्णप्राणाधिका देवी महाविष्णुप्रसूरपि।
सर्वदा विष्णुमाया च सत्यसत्या सनातनी॥
ब्रह्मस्वरूपा परमा निर्लिप्ता निर्गुणा परा।
वृन्दावने च विजया यमुनातटवासिनी॥
गोपाङ्गनानां प्रथमा गोपिका गोपमातृका।
सानन्दा परमानन्दा नन्दनन्दनकामिनी॥
वृषभानुसुता कान्ता शान्तिदानपरायणा।
कामा कलावती कन्या तीर्थपूता सनातनी।
शुभानि सप्तत्रिंशच्च वेदोक्तानि शतानि च॥
सारभूतानि पुण्यानि सर्वनामसु नारद॥

उपर्युक्त स्तोत्रके परम श्रद्धा तथा दृढ़ विश्वासके साथ [illegible]

प्रति

तीन

सर्वव्याधिनाशपूर्वक दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये महामृत्युंजयका विधान

(लेखक—श्रीजशवंतराय जैशंकर हाथी)

भगवान् श्रीशंकरके 'रुद्राध्याय' तथा 'मृत्युंजय' महामन्त्रसे भारतके कोने-कोनेमें अभिषेक किया जाता है। श्रावणमें तो इसकी बहार देखने ही योग्य होती है। हम आज यहाँ उसी 'मृत्युंजय' महामन्त्रकी अर्थ-गम्भीरतापर कुछ विचार करते हैं। यह विचार निश्चय ही परम पुण्यप्रद है।

ॐ हौं जूँ सः। ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। स्वः भुवः भूः ॐ। सः जूँ हौं ॐ।—

यह सम्पुटयुक्त मन्त्र है।

ॐकारका प्रतीक शिवलिङ्ग है, उसीके ऊपर अविच्छिन्न—अनवरत जलधाराके प्रवाहवत् अपनी दृष्टि स्थिर करते हुए विश्वासपूर्वक मृत्युंजय महामन्त्रका जप करता रहे तो ध्यानावस्था प्रत्यक्ष खड़ी हो जाती है और एक विलक्षण आनन्दकी अनुभूति होती है।

सृष्टिके आदि, मध्य और अन्त—तीनों 'हौं' और 'जूँ'से अपने समक्ष उपस्थित करते हुए त्रिलोकीमें जप करनेवाला व्यक्ति श्रीत्र्यम्बकेश्वरके प्रति अपने-आपका समर्पण कर रहा है। त्र्यम्बकेश्वरकी कृपारूपी सुगन्ध फैल रही है और उपासकके रोम-रोममें ऐसी स्फूर्ति होने लगती है कि उसका आध्यात्मिक प्रभाव छिप नहीं सकता। इन्द्रायण (तूँबे) की बेल सूख जानेपर फल बन्धनसे मुक्त होकर आसपासकी अनन्ततामें छिप जाता है, उसी प्रकार जप करनेवाला उपासक अपनी मोक्षकी अवस्थाको प्रत्यक्ष कर सकता है।

'एकोऽहं बहु स्याम्'—परब्रह्मकी यह इच्छा होती है और महाप्राणकी अलौकिक गति प्रस्तुत होती है। उसका सूचन महाप्राण अक्षर 'ह' से होता है। प्रकृति विकृत होने लगे पञ्चतन्मात्रा उद्भूत हों, शब्दगुण आकाश सृष्टिको झेलनेके लिये तत्पर हो जाय, उस दृश्यका आभास 'औं' की ध्वनि करा रही है। जू=जन्म, ऊ=उद्भव-विकास-विस्तार, ँ=शून्य [illegible] प्रलय। इस प्रकार 'जूँ' सृष्टिकी तीनों अवस्थाओं [illegible]

प्रलयके समय अवशिष्ट रहता है। 'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्'के साथ 'यथापूर्वमकल्पयत्' इन वाक्योंका स्मरण ऐसे समय क्यों नहीं होगा? ऐसी सृष्टि 'भूर्भुवः स्वः' की त्रिलोकी है। उस त्रिलोकीका निवासी उपासक त्र्यम्बकेश्वरके सामने जपयज्ञ कर रहा है और फलस्वरूप वह सहज ही अपुनरावृत्तिवाली मुक्ति प्राप्त करता है।

ऊपर कहा गया है कि शिवलिङ्ग ॐकारका प्रतीक है, वह कैसे है—यह जाननेके लिये उ, ॰, ँ ॐके इन तीन भागोंपर विचार करे। उपासक पूर्वाभिमुख बैठता है। जल झेलनेवाला भाग 'उ' उत्तर दिशाकी ओर जलको वहाकर ले जाता है। '॰' यह भाग आधार है, जो जलहरीको ऊँचे उठाये रहता है। 'ँ' यह भाग लिङ्गके रूपमें ऊपरको विराजमान रहता है। किसी भी शिवमन्दिरमें जाकर पूर्वाभिमुख रहकर इस दृश्यका साक्षात्कार किया जा सकता है।

(२)

महामृत्युंजय-मन्त्रकी महिमा और जपविधि

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

भगवान् मृत्युंजयके जप-ध्यानसे मार्कण्डेयजी, श्वेतराजा आदिके कालभयनिवारणकी कथा शिवपुराण, स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, पद्मपुराण-उत्तरखण्ड-माघमाहात्म्य आदिमें आती है। आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें भी मृत्युंजय-योग मिलते हैं। मृत्युको जीत लेनेके कारण ही इन मन्त्रयोगोंको 'मृत्युंजय' कहा जाता है—

मृत्युर्विनिर्जितो यस्मात् तस्मान्मृत्युंजयः स्मृतः।

(रसे० सारसंग्रह, अ० २ ज्व० वि० ९)

मन्त्रशास्त्रमें वेदोक्त 'त्र्यम्बकं यजामहे' (ऋक् ७। ५९। १२, यजुः ३। ६०, अथर्व० १४। १। १७, तैत्ति० स० १। ८। ६। २, निरुक्त १४। ३५) इत्यादिको ही मृत्युंजय नाम प्राप्त है। यों पुराणोंमें, विविध निबन्धग्रन्थोंमें तथा मृत्युंजय-तन्त्र, मृत्युंजयकल्प, मृत्युंजयपञ्चाङ्ग आदिमें इस मन्त्रका भाष्य, विधान, पटल, पद्धति, स्तोत्र आदि सब कुछ मिलते हैं। शिवपुराण, सतीखण्ड ३८। २१। ४२में इसका विस्तृत भाष्य है। वहाँ इसीको शुक्राचार्यकी 'मृतसंजीवनी-विद्या' कहा गया है* तथा स्वयं शुक्राचार्यने ही इसका दधीचिको उपदेश किया है। 'विष्णुधर्मोत्तर' आदिमें इसके हवनादिके भेदसे अनेक अर्थ-कामसाधक आदि दूसरे भी काम्य प्रयोग बतलाये गये हैं। यथा—

कन्यानाम गृहीत्वा च कन्यालाभकरः स्मृतः।
त्र्यम्बकं यजामहेति होमः सर्वार्थसाधकः॥
धत्तूरपुष्पं सघृतं तथा हुत्वा चतुष्पथे।
शून्ये शिवालये वापि शिवात्कामानवाप्नुयात्॥
हुत्वा च गुग्गुलं राम स्वयं पश्यति शंकरम्।

(विष्णुधर्म० २। १२५। २३—२५

ऋग्विधान आदिमें भी ऐसा ही बतलाया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्डके ५९ वें अध्यायमें कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्णने अङ्गिराकी पत्नीको मृत्युंजय-ज्ञान दिया था। यहाँ संक्षेपमें उसके जपकी विधि दी जा रही है। यद्यपि तन्त्रसार, शारदातिलक आदि एवं मन्त्रमहार्णव आदिमें एक साथ ही त्र्यक्षर, पञ्चाक्षर आदि कई मृत्युंजय-मन्त्र बतलाये गये हैं, तथापि यहाँ सर्वाधिक प्रचलित 'त्र्यम्बक मन्त्र'के ही विनियोग, ध्यान आदि लिखे जा रहे हैं। इससे रोग, भय-दुःख-दारिद्र्य आदिका नाश तथा सभी कामनाओंकी सिद्धि होती है।

साधकको चाहिये कि किसी पवित्र स्थानमें स्नान, आचमन, प्राणायाम, गणेशस्मरण, पूजन-वन्दनके बाद तिथि-वारादिका कीर्तन करते हुए इस प्रकार संकल्प करे—

अमुकोऽहं अमुकवासरादौ स्वस्य (यजमानस्य वा) निखिलारिष्टनिवृत्तये महामृत्युंजयमन्त्रजपमहं करिष्ये।

तत्पश्चात् हाथमें जल लेकर इस प्रकार न्यासादि करना चाहिये—

ॐ अस्य श्रीमहामृत्युंजयमन्त्रस्य वामदेवकहोलवसिष्ठा ऋषयः पंक्तिगायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि। सदाशिवमहामृत्युंजयरुद्रो देवता ह्रीं शक्तिः श्रीबीजं महामृत्युंजयप्रीतये ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

—यों कहकर हाथका जल छोड़ दे।

पुनः वामदेवकहोलवसिष्ठऋषिभ्यो नमः, मूर्ध्नि। पङ्क्तिगायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, वक्त्रे। सदाशिवमहामृत्युंजयरुद्रदेवतायै नमः, हृदि। ह्रीं शक्तये नमः, लिङ्गे। श्रींबीजाय नमः पादयोः॥

उपर्युक्त मन्त्रोंसे सिर, मुख, हृदय, लिङ्ग तथा चरणका स्पर्श करे।

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रोंसे पहले अँगूठे आदिका स्पर्श करते हुए करन्यास करके फिर उन्हीं मन्त्रोंसे हृदयादिका स्पर्श करते हुए हृदयादिन्यास करना चाहिये।

* मृतसंजीवनीमन्त्रो मम सर्वोत्तमः स्मृतः। (शिवपुराण, रुद्रसंहिता, सतीखण्ड ३८। ३० का पूर्वार्द्ध)

मन्त्र	करन्यास	हृदयादि न्यास
ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये स्वाहा ।	अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । (तर्जनीसे अँगूठोंको छूए)	हृदयाय नमः । [पाँचों अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे]
ऐं ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ नमो भगवते रुद्राय अष्टमूर्तये माम् जीवय ।	तर्जनीभ्यां नमः । [दोनों तर्जनी अँगुलियोंको अँगूठोंसे मिलाये]	शिरसि स्वाहा । (सिरका स्पर्श करे)
ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं ॐ नमो भगवते रुद्राय चन्द्रशिरसे जटिने स्वाहा ।	मध्यमाभ्यां नमः ।	शिखायै वषट् । [शिखा छूए]
ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः उर्वारुकमिव बन्धनात् ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिपुरान्तकाय ह्रां ह्रौं ।	अनामिकाभ्यां नमः ।	कवचाय हुम् । [दाहिने हाथसे बाएँ कंधे तथा बाएँ हाथसे दाहिना कंधा छूए]
ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिलोचनाय ऋग्यजुःसाममन्त्राय ।	कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।	नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मामृतात् ॐ नमो भगवते रुद्राय अग्नित्रयाय उज्ज्वलज्वाल मां रक्ष रक्ष अघोराय ।	करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।	अस्त्राय फट् ।

इस मन्त्रके जपमें ध्यान परमावश्यक है। शिवपुराणमें यह ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ।
अक्षस्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्द्धस्थचन्द्रस्रवत्-
पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युंजयम् ॥
(सतीखं० ३८ । २४)

ध्यानका स्वरूप यह है कि 'भगवान् मृत्युंजयके आठ हाथ हैं। वे अपने ऊपरके दोनों करकमलोंसे दो घड़ोंको उठाकर उसके नीचेके दो हाथोंसे जलको अपने सिरपर उँड़ेल रहे हैं। सबसे नीचेके दो हाथोंमें भी दो घड़े लेकर उन्हें अपनी गोदमें रख लिया है। शेष दो हाथोंमें वे रुद्राक्ष तथा मृग धारण किये हुए हैं। वे कमलके आसनपर बैठे हैं और उनके शिरःस्थ चन्द्रसे निरन्तर अमृतवृष्टिके कारण उनका शरीर भींगा हुआ है। उनके तीन नेत्र हैं तथा उन्होंने मृत्युको सर्वथा जीत लिया है उनके वामाङ्गभागमें गिरिराज-नन्दिनी भगवती उमा विराजमान हैं।

इस प्रकार ध्यान करके रुद्राक्षमालासे मन्त्रका जप करना चाहिये। मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—

'**ॐ ह्रौं जूं सः, ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । स्वः भुवः भूः ॐ । सः जूं ह्रौं ॐ ।** यह सम्पुट-युक्त मन्त्र है। इसका प्रायः सवा लाख जप सर्वार्थसाधक माना गया है। जपके बाद इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥
मृत्युंजय महारुद्र त्राहि मां शरणागतम्।
जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः ॥

जपके अन्तमें दशांश हवन, उसका दशांश तर्पण, उसका दशांश मार्जन तथा ब्राह्मणभोजन आदि करना-कराना चाहिये।

सर्वव्याधिनाशके लिये लघु मृत्युंजय-जप

ॐ जूं सः (नाम जिसके लिये किया जाय) **पालय पालय** सः जूं ॐ ।

इस मन्त्रका ११ लाख जप तथा एक लाख दस हजार दशांशका जप करनेसे सब प्रकारके रोगोंका नाश होता है। इतना न हो तो कम-से-कम सवा लाख जप और साढ़े बारह हजार

दशांश जप अवश्य करना चाहिये। इसके साथ ही नीचे लिखा यन्त्र भी हाथमें बाँध देना चाहिये।

श्रीमहामृत्युंजय-कवच-यन्त्रम्
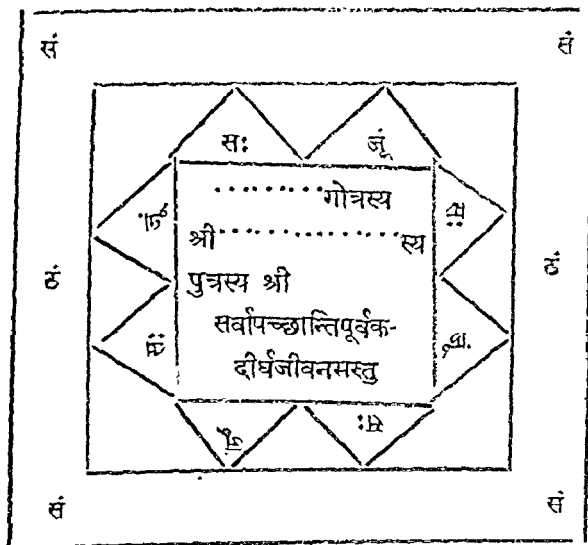
इसे भोजपत्रपर अष्टगन्धसे लिखकर गुग्गुलका धूप देकर पुरुषके दाहिने और स्त्रीके बायें हाथमें बाँध देना चाहिये। गोत्र, पिताका नाम, पुत्र या पुत्री (रोगी) का नाम यथास्थान लिख देना चाहिये।

(२)

अमोघ मृत्युंजयस्तोत्र

महामुनि मृकण्डुके कोई संतान नहीं थी। इसके लिये उन्होंने पत्नीसहित कठोर तप करके भगवान् शंकरको संतुष्ट किया। प्रसन्न होकर भगवान् शंकर प्रकट हुए और उन्होंने कहा कि 'तुमको पुत्रकी प्राप्ति तो होगी; पर यदि गुणवान्, यशस्वी, सर्वज्ञ, परम धार्मिक और ज्ञानका समुद्र पुत्र चाहते हो तो उसकी आयु केवल सोलह वर्षकी होगी और उत्तम गुणोंसे हीन पुत्र चाहते हो तो वह चिरंजीवी होगा।' इसपर धर्मात्मा मृकण्डु मुनिने कहा—'मैं गुणहीन पुत्र नहीं चाहता। आयु चाहे छोटी हो, मुझे तो गुणसम्पन्न ही पुत्र चाहिये।' भगवान् शंकर 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये।

भगवान् शंकरके वरदानके अनुसार मृकण्डु मुनिकी पत्नी मरुद्वती गर्भवती हुई। मुनिने शास्त्रानुसार सब संस्कार किये। समयपर बालकका जन्म हुआ। मुनिने नामकरण-संस्कार आदि यथाविधि किये। बालक बड़ा ही तेजस्वी और सुन्दर था। समय-समयपर मुनि मृकण्डु बालकके यथाविधि संस्कार करते रहे। उसने यज्ञोपवीत लेकर अङ्ग-उपाङ्ग, पद और क्रमसहित सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया। वह बड़ा शीलवान् तथा गुणी था और माता-पिताकी सेवामें संलग्न रहता था। इस प्रकार बुद्धिमान् मार्कण्डेयकी आयुका सोलहवाँ वर्ष जब आरम्भ हुआ, तब भगवान् शंकरकी बात याद करके मुनि मृकण्डु अत्यन्त व्याकुल हो गये। मार्कण्डेयके पूछनेपर मृकण्डुने कहा—'बेटा! भगवान् शंकरने तुमको सोलह वर्षकी ही आयु दी है। उसकी समाप्तिका काल समीप आ पहुँचा है, इसीलिये मैं शोकाकुल हूँ।' पिताके वचन सुनकर बड़े धैर्यके साथ मार्कण्डेयने कहा—'पिताजी! आप तनिक भी शोच न करें। मैं मृत्युंजय आशुतोष कल्याणस्वरूप भगवान् शंकरकी उपासना करके उनको प्रसन्न करूँगा और मैं अमर होऊँगा।' पुत्रकी बात सुनकर माता-पिताको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने उसके प्रस्तावका समर्थन करते हुए भगवान् शंकरकी महिमाका वर्णन किया और अन्तमें कहा—'भगवान् शिव ब्रह्मा आदि देवताओंके एकमात्र कर्ता, नित्य अपनी महिमामें स्थित, सम्पूर्ण विश्वके आश्रय और जगत्‌की रक्षा करनेवाले हैं। बेटा! तुम उन्हींकी शरणमें जाओ।'

माता-पिताकी आज्ञा पाकर मार्कण्डेयजी दक्षिण समुद्रके तटपर चले गये और विधिपूर्वक अपने ही नामसे (मार्कण्डेय) शिवलिङ्गकी स्थापना करके पूजा करने लगे। पूजाके अन्तमें वे भगवान् शंकरके 'मृत्युंजय' स्तवनका पाठ करके नृत्य करते थे। उस स्तोत्रसे भगवान् शंकर संतुष्ट हो गये।

सोलहवें वर्षका अन्तिम दिन आ गया। मृत्युको साथ लिये बड़े विकरालरूपमें कालदेवता प्रकट हुए और वे मार्कण्डेयके प्राण-हरण करनेको उद्यत हुए। मार्कण्डेयने कहा—'महामते काल! जबतक मैं भगवान् शंकरके 'मृत्युंजय' नामक महास्तोत्रका पाठ पूरा न कर लूँ, तबतक तुम प्रतीक्षा करो। यदि मैंने कोई असत्य बात न कही हो तो इस सत्यके प्रभावसे भगवान् महेश्वर मुझपर प्रसन्न रहें।'

कालने हँसकर मार्कण्डेयकी बातको उड़ा दिया और अन्तमें क्रोधमें भरकर कहा—'अरे दुर्बुद्धि ब्राह्मण! गङ्गाजीमें जितने रजकण हैं, उतने ब्रह्माओंका इस कालने संहार कर डाला है। मेरा बल और पराक्रम देखो। मैं तुम्हें अभी अपना ग्रास बनाता हूँ। तुम इस समय जिनके दास बने बैठे हो, देखता हूँ, वे तुम्हारी रक्षा कैसे करते हैं!'

मार्कण्डेयको अमरता-प्रदान

अमोघ मृत्युंजय स्तोत्रकी महिमा

जैसे राहु चन्द्रमाको ग्रस लेता है, वैसे ही गर्जना करते हुए कालने हठपूर्वक मार्कण्डेयको ग्रसना आरम्भ किया। इसी बीच परमेश्वर भगवान् शंकर उस लिङ्गसे सहसा प्रकट हो गये। उन्होंने हुंकार भरकर मेघके समान प्रचण्ड गर्जना करते हुए तुरंत ही कालदेवताकी छातीमें लात मारी और त्रिशूल चलानेको तैयार हो गये। उनके चरण-प्रहारसे भयभीत होकर काल दूर जा पड़े और इस प्रकार भयंकर आकारवाले कालको दूर पड़े देखकर मार्कण्डेयने पुनः उस मृत्युंजय स्तोत्रसे भगवान् शंकरका स्तवन किया।

स्तोत्र यह है—

रत्नसानुशरासनं रजताद्रिशृङ्गनिकेतनं
शिञ्जिनीकृतपन्नगेश्वरमच्युतानलसायकम्।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदशालयैरभिवन्दितं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥

पञ्चपादपपुष्पगन्धिपदाम्बुजद्वयशोभितं
भाललोचनजातपावकदग्धमन्मथविग्रहम्।
भस्मदिग्धकलेवरं भवनाशिनं भवमव्ययं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥

मत्तवारणमुख्यचर्मकृतोत्तरीयमनोहरं
पङ्कजासनपद्मलोचनपूजिताङ्घ्रिसरोरुहम्।
देवसिद्धतरङ्गिणीकरसिक्तशीतजटाधरं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥

कुण्डलीकृतकुण्डलीश्वरकुण्डलं वृषवाहनं
नारदादिमुनीश्वरस्तुतवैभवं भुवनेश्वरम्।
अन्धकान्तकमाश्रितामरपादपं शमनान्तकं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥

यक्षराजसखं भगाक्षिहरं भुजङ्गविभूषणं
शैलराजसुतापरिष्कृतचारुवामकलेवरम्।
क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥

भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणं
दक्षयज्ञविनाशिनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम्।
भुक्तिमुक्तिफलप्रदं निखिलाघसंघनिबर्हणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥

भक्तवत्सलमर्चितं निधिमक्षयं हरिदम्बरं
सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनूपमम्।
भूमिवारिनभोहुताशनसोमपालितस्वाकृतिं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥

विश्वसृष्टिविधायिनं पुनरेव पालनतत्परं
संहरन्तमथ प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम्।
क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथसमावृतं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥

रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
कालकण्ठं कलामूर्तिं कालाग्निं कालनाशनम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निरुपद्रवम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
देवदेवं जगन्नाथं देवेशं वृषभध्वजम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
अनन्तमव्ययं शान्तमक्षमालाधरं हरम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
आनन्दं परमं नित्यं कैवल्यपदकारणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥

(पद्मपुराण उत्तर० २३७। ७५—९०)

स्तोत्रके समाप्त होनेपर भगवान् महादेवजीने मार्कण्डेयको कल्पोंतककी असीम आयु प्रदान की। वे सचमुच अमरत्वको प्राप्त हो गये। तदनन्तर उन्होंने आश्रममें लौटकर अपने माता-पिताको प्रणाम किया और उन्होंने भी पुत्रका अभिनन्दन करके उसे आशीर्वाद दिया।

वशिष्ठजी कहते हैं कि मार्कण्डेयजीके द्वारा रचित इस स्तोत्रका भगवान् शंकरके समीप विश्वासपूर्वक जो पाठ करेगा, उसे मृत्युका भय नहीं होगा—यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ।*

वाल्मीकिरामायण, सुन्दरकाण्डके पाठकी विधि

(१)

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्छत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥

* यह 'मृत्युंजयस्तोत्र' बड़ा प्रभावशाली तथा अनुभूत है इसके प्रयोगसे आश्चर्यजनक सफलता मिली है।

न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥
(वाल्मीकि० ५ । ४२ । ३३–३६)

—इन चार श्लोकोंका प्रति सर्गके आदि-अन्तमें सम्पुट देकर पाठ किया जाय।

(२)

रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते॥

प्रत्येक श्लोकके आदि-अन्तमें उपर्युक्त मन्त्रका सम्पुट लगाकर प्रतिदिन ३ या ७ सर्गोंका पाठ ६८ दिनोंतक किया जाय। अधिक न किया जा सके तो एक ही सर्गका पाठ करे।

(३)

वादिनः प्रशमं यान्तु विजयो मे सदा भवेत्।
अनष्टद्रव्यता चैव नष्टस्य पुनरागमः॥
नैरुज्यं च शरीरे मे दारपुत्रेषु मे भवेत्।
सर्वाणि कुशलानीह मम सन्तु पदे पदे॥

इन श्लोकोंका उपर्युक्त प्रकारसे प्रति श्लोकके आद्यन्तमें सम्पुट लगाकर ६८ दिनोंतक ३ या ७ सर्गोंका पाठ करे। अधिक न किया जा सके तो १ ही सर्गका पाठ करे।

(४)

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥

इस श्लोकका प्रति श्लोकके आदि-अन्तमें सम्पुट लगाकर ६८ दिनोंतक प्रतिदिन ३ या ७ सर्गोंका पाठ करे। अधिक न किया जा सके तो एक सर्गका ही पाठ करे।

रामचरितमानसके सुन्दरकाण्डके पाठकी विधि

श्रीहनुमान्‌जीकी मूर्ति सामने सिंहासनपर पधराकर सिन्दूरका चोला चढ़ा दे। फिर विधिवत् पञ्चोपचारसे पूजन करके पाँच अड़हुलके फूल चढ़ाये और पाँच बेसनके लड्डुओंका भोग लगाये। इस प्रकार नियमपूर्वक ४९ दिनोंतक पूजन करे और भोग लगाये। इस बातका निश्चित नियम अवश्य रहना चाहिये कि जितने अड़हुलके फूल चढ़ाये जायँ, उतने ही लड्डुओंका भोग लगाया जाय। दस फूल हों, तो दस लड्डू भी हों। इस प्रकार ४९ दिनोंतक नित्य ठीक समयपर एकान्त स्थानमें पाठ करे। अनुष्ठानके समय ब्रह्मचर्यका पालन अनिवार्य है। सुन्दरकाण्डके आरम्भ और अन्तमें निम्नलिखित चौपाइयोंका सम्पुट दे—

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥

श्रीहनुमान्‌जीमें विश्वास रखकर इस प्रकार पाठ करनेसे वे प्रसन्न होकर सब मनोरथोंको सिद्ध करते हैं।

घोर संकट-नाशक 'गजेन्द्र-स्तोत्र'का प्रयोग

प्रातःस्मरणीय महामना पं० मदनमोहनजी मालवीय श्रीमद्भागवतोक्त गजेन्द्र-मोक्षमें बड़ा विश्वास करते थे। उन्होंने अपने विपद्ग्रस्त पुत्रको लिखा था—कि 'मैं नाकभर ऋणमें डूब गया था। इस चमत्कारी स्तोत्रके आर्तभावके पाठसे मैं ऋण-मुक्त हो गया। नीचे लिखी दो घटनाएँ उन्होंने और सुनायी थीं।

(१) एक बार दिल्लीमें कांग्रेसकी कार्यकारिणीका अधिवेशन था। किसी विषयको लेकर इतना मतभेद हो गया कि कांग्रेस टूटनेकी नौबत आ पहुँची। किसी भी प्रकार समझौता नहीं हो सका। इसी बीचमें दुपहरके भोजनका समय हो गया। सब लोग भोजनार्थ चले गये। मालवीयजी अलग कमरेमें एकान्तमें जाकर आर्त-भावसे पाठ करने लगे। भोजनके समय जितने पाठ हो सके, किये। फिर बिना ही भोजन किये, बाहर आ गये। उसी समय अकस्मात् इनके मस्तिष्कमें एक विचार आया एवं तदनुसार एक प्रस्ताव लिखकर इन्होंने सबके सामने रखा। आश्चर्यकी बात कि उसे सबने मान लिया। सर्वानुमतिसे प्रस्ताव स्वीकृत हो गया और कांग्रेस टूटनेसे बच गयी।

(२) लंदनकी गोलमेज कान्फरेंसमें श्रीगांधीजी गये थे, उसमें मालवीयजी भी गये थे। गांधीजीके सामने एक बार एक ऐसी उलझन आ गयी जो किसी तरह सुलझ नहीं पा रही थी। मालवीयजी महाराज गांधीजीसे अनुमति लेकर एकान्तमें गये और गङ्गाजलसे हाथ-पैर धोकर 'गजेन्द्रमोक्ष' का पाठ करने लगे—इस विश्वाससे कि भगवान् कोई ऐसा सुझाव देंगे, जिससे गांधीजीकी उलझन मिट जायगी। तीन

बार पाठ होते ही सुझाव मस्तिष्कमें आ गया। इन्होंने बाहर आकर गांधीजीको बताया। सुनते ही गांधीजी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। सहज ही उनकी उलझन सुलझ गयी।

इसका पाठ किसी भी विपत्तिसे बचनेके लिये किया जाता है, खास करके ऋण-मुक्तिके लिये। दुःस्वप्न-दोष-नाशके लिये भी प्रातः उषाकालमें इसका पाठ किया जाता है। प्रतिदिन श्रद्धा-विश्वासपूर्वक पाठ करना चाहिये।

श्रीशुक उवाच

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम्॥ १॥

गजेन्द्र उवाच

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम्।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि॥ २॥
यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम्॥ ३॥
यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं
क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम्।
अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते
स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः॥ ४॥
कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो
लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु।
तमस्तदाऽऽसीद् गहनं गभीरं
यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः॥ ५॥
न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु-
र्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम्।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो
दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु॥ ६॥
दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं
विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने
भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः॥ ७॥
न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा
न नामरूपे गुणदोष एव वा।
तथापि लोकाप्ययसम्भवाय यः
स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति॥ ८॥
तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे॥ ९॥
नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि॥ १०॥
सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे॥ ११॥
नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च॥ १२॥
क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः॥ १३॥
सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः॥ १४॥
नमो नमस्तेऽखिलकारणाय
निष्कारणायाद्भुतकारणाय।
सर्वागमाम्नायमहार्णवाय
नमोऽपवर्गाय परायणाय॥ १५॥
गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय
तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम-
स्वयम्प्रकाशाय नमस्करोमि॥ १६॥
मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय
मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत-
प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते॥ १७॥
आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै-
र्दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय
ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय॥ १८॥
यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा
भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं
करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम्॥ १९॥
एकान्तिनो यस्य न कंचनार्थं
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं
गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः॥ २०॥
तमक्षरं ब्रह्म परं परेश-
मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम्।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूर-

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ।
नामरूपविभेदेन फल्व्या च कलया कृताः॥ २२ ॥
यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो
निर्यान्ति संयान्त्यसकृत् स्वरोचिषः ।
तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो
बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥ २३ ॥
स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्
न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः ।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्
निषेधशेषो जयतादशेषः ॥ २४ ॥
जिजीविषे नाहमिहामुया कि-
मन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लव-
स्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥ २५ ॥
सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥ २६ ॥
योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते ।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ।२७।
नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग-
शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ।
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये
कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ २८ ॥
नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम् ।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥ २९ ॥

श्रीशुक उवाच

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं
ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः ।
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्
तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥ ३० ॥
तं तद्वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासः
स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान-
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥ ३१ ॥
सोऽन्तस्सरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-
न्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते ॥ ३२ ॥
तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं
सम्पश्यतां हरिरमूमुचदुस्त्रियाणाम् ॥ ३३ ॥

सप्तशतीके कुछ सिद्ध सम्पुट-मन्त्र

१—सामूहिक कल्याणके लिये

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥

२—विश्वके अशुभ तथा भयका विनाश करनेके लिये

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥

३—विश्वकी रक्षाके लिये

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥

४—विश्वके अभ्युदयके लिये

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥

५—विश्वव्यापी विपत्तियोंके नाशके लिये

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥

६—विश्वके पाप-ताप-निवारणके लिये

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।

सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥

विपत्ति-नाशके लिये

तदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

विपत्तिनाश और शुभकी प्राप्तिके लिये

सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ।

-भयनाशके लिये

र्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥
तत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥
वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
शूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥

१०–पापनाशके लिये

स्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥

११–रोगनाशके लिये

ानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
ामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥

१२–महामारी-नाशके लिये

यन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥

१३–आरोग्य और सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

१४–सुलक्षणा पत्नीकी प्राप्तिके लिये

पत्नीं
तारिणीं

१५–बाधा-शान्तिके लिये

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥

१६–धन-सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये मह्यं प्रसीद प्रसीद प्रसीद । ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः ।

१७–लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये

कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीं
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥

१८–सर्वविध अभ्युदयके लिये

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः ।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥

१९–दारिद्र्य-दुःखादिनाशके लिये

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥

२०–रक्षा पानेके लिये

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥

२१–समस्त विद्याओंकी और समस्त स्त्रियोंमें मातृभावकी प्राप्तिके लिये

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥

२२–सब प्रकारके कल्याणके लिये

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

२३–शक्ति-प्राप्तिके लिये

२४—प्रसन्नताकी प्राप्तिके लिये

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव॥

२५—विविध उपद्रवोंसे बचनेके लिये

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम्॥

२६—बाधामुक्त होकर धन-पुत्रादिकी प्राप्तिके लिये

सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥

२७—भुक्ति-मुक्तिकी प्राप्तिके लिये

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम्।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥

२८—पापनाश तथा भक्तिकी प्राप्तिके लिये

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥

२९—स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिके लिये

सर्वभूता यदा देवि स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः॥

३०—स्वर्ग और मुक्तिके लिये

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

३१—मोक्षकी प्राप्तिके लिये

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः॥

३२—स्वप्नमें सिद्धि-असिद्धि जाननेके लिये

दुर्गे देवि नमस्तुभ्यं सर्वकामार्थसाधिके।
मम सिद्धिमसिद्धिं वा स्वप्ने सर्वं प्रदर्शय॥

चमत्कारी फलदायक 'रामरक्षा'-स्तोत्र

डा० श्रीवेनीचरण महेन्द्र महोदय, आगरा कालेज, विज्ञान-विभागके अध्यक्ष हैं। ये 'रामरक्षा-स्तोत्र'का रोग-निवारणार्थ सफल प्रयोग करते हैं। इन्होंने बताया है—'मैंने इस अद्भुत स्तोत्रका प्रयोग अनेक संकटकालीन परिस्थितियोंमें किया है। बिच्छू काटनेसे लेकर ऋणग्रस्तता, नौकरी छूटना, बुखार, तबीयत खराब होना, गमी, मुसीबत, विपत्ति, सिर-दर्द, चिन्ता और अन्यान्य संकटकालीन परिस्थितियोंमें काममें लिया है। हर तकलीफमें इस स्तोत्रने अपना चमत्कार दिखाया है। मुझे ही नहीं, इससे सैकड़ोंको अद्भुत लाभ पहुँचा है।

फिर पूछनेपर इन्होंने बताया कि 'एक बार हम बीमार पड़े थे। बीमारीसे बड़े परेशान थे। मन बड़ा उद्विग्न था। सब प्रकारके उपाय करके हार रहे थे। हमसे मिलने एक मित्र आये तो उन्होंने उन्हीं दिनों आगरेमें आये हुए एक महात्माका नाम बताया और उनसे सलाह लेनेको कहा। महात्माजीको बड़ी कठिनाईसे लाया गया, तब उन्होंने एक स्तोत्रका पाठ किया और देखते-देखते दस मिनटमें मुझे मानसिक बल मिला। स्तोत्रका अर्थ मैंने विस्तारसे समझा और पूर्ण विश्वासके साथ उसे नवरात्रमें सिद्ध किया। अब यह मेरी 'पेटेंट दवाई' बन गया है। अनेक व्यक्ति संकटके समय मुझे बुलाकर इसका पाठ कराते हैं और सदैव लाभ उठाते हैं। इसमें अपूर्व शक्ति, साहस और गुण भरे हुए हैं। यह बड़ा गुणकारी है। इसके एक-एक शब्दमें नयी शक्ति उत्पन्न करनेका रहस्य भरा पड़ा है। यह एक चमत्कारी कवच है।'

तदनन्तर इनसे पूछा गया कि 'आप तो विज्ञानके आचार्य हैं। आपको इस स्तोत्रपर कैसे विश्वास हुआ? धर्म और विज्ञान तो बिल्कुल पृथक् दिशाओंमें चलते हैं! एक श्रद्धाप्रधान है, तो दूसरा बुद्धिप्रधान।'

ये बोले—'आप जानते हैं कि ध्वनिका प्रभाव मनुष्यके शरीर और मनपर पड़ता है। युद्धमें बंदूक, बम, बारूदके फटाके तथा भीषण ध्वनियोंसे मनुष्यके शरीर और मनमें अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। कितनोंके ही मुँह टेढ़े हो जाते हैं, लकवा मार जाता है, नाड़ी-संस्थान कमजोर पड़ जाता है और हृदयके अनेक रोग विकसित हो जाते हैं। तेज आवाजसे वायु-मण्डलमें कम्पन पैदा होते हैं, जो वायुके माध्यमसे मनुष्यके मस्तिष्कपर मजबूत प्रभाव डालते हैं।

यह प्रभाव अच्छा भी हो सकता है। इससे रोगी और चिन्तित मनमें शान्ति और बल पैदा हो सकता है। जिस स्तोत्रको मैं पढ़ता हूँ, उससे वायु-मण्डलमें आरोग्य, बल, शान्ति और रक्षाकी वृद्धि होती है। ये कम्पन बीमारके गुप्त मनमें जाकर रोग-शोक, पीड़ा और परीशानीके विचार दूरकर दिव्य मानसिक बलकी सृष्टि करते हैं। इस आत्मबलसे ही रोग दूर होते हैं। जितनी पुष्टतासे व्यक्ति स्तोत्रका पाठ करता है, उतनी ही शीघ्रतासे क्लेश और परीशानी दूर होकर आनन्द और स्वास्थ्यकी स्थिति आती है। यह मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया (दवाई) है।' इस चमत्कारी स्तोत्रका नाम है—'रामरक्षा-स्तोत्र'। पूरा स्तोत्र निम्नलिखित है—

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥ १॥
ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम्।
जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम्॥ २॥
सासितूणधनुर्बाणपाणिं नक्तंचरान्तकम्।
स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्॥ ३॥
रामरक्षां पठेत्प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम्।
शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः॥ ४॥
कौसल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती।
घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः॥ ५॥
जिह्वां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः।
स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः॥ ६॥
करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित्।
मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जाम्बवदाश्रयः॥ ७॥
सुग्रीवेशः कटी पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः।
ऊरू रघूत्तमः पातु रक्षःकुलविनाशकृत्॥ ८॥
जानुनी सेतुकृत्पातु जङ्घे दशमुखान्तकः।
पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः॥ ९॥
एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत्।
स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत्॥१०॥
पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मचारिणः।
न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः॥११॥
रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन्।
नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥१२॥
जगज्जैत्रैकमन्त्रेण रामनाम्नाभिरक्षितम्।
यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः॥१३॥
वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं स्मरेत्।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम्॥१४॥
आदिष्टवान्यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः।
तथा लिखितवान्प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः॥१५॥
आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम्।
अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान्स नः प्रभुः॥१६॥
तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ॥१७॥
फलमूलाशिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ।
पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥१८॥
शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम्।
रक्षःकुलनिहन्तारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ॥१९॥
आत्तसज्जधनुषा विषुस्पृशावक्षयाशुगनिषङ्गसङ्गिनौ
रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम्॥
संनद्धः कवची खड्गी चापबाणधरो युवा।
गच्छन्मनोरथान्नश्च रामः पातु सलक्ष्मणः॥२१॥
रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली।
काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौसल्येयो रघूत्तमः॥२२॥
वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः।
जानकीवल्लभः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः॥२३॥
इत्येतानि जपन्नित्यं मद्भक्तः श्रद्धयान्वितः।
अश्वमेधाधिकं पुण्यं सम्प्राप्नोति न संशयः॥२४॥
रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम्।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो नराः॥२५॥
रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं
काकुत्स्थं करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम्
राजेन्द्रं सत्यसंधं दशरथतनयं श्यामलं शान्तमूर्त्तिं
वन्दे लोकाभिरामं रघुकुलतिलकं राघवं रावणारिम्
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥२७॥
श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम
श्रीराम राम भरताग्रज राम राम।
श्रीराम राम रणकर्कश राम राम
श्रीराम राम शरणं भव राम राम॥२८॥
श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये॥२९॥

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः
स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः ।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालु-
र्नान्यं जाने नैव जाने न जाने ॥३०॥
दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा ।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥३१॥
लोकाभिरामं रणरङ्गधीरं
राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम् ।
कारुण्यरूपं करुणाकरं तं
श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥३२॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥३३॥
कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥
आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ।३५।
भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम् ।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम् ॥३६॥
रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः ।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर ॥
राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥३८॥

उपर्युक्त स्तोत्रके अक्षर-अक्षरमें शक्ति भरी है । पूर्ण विश्वासके साथ जपनेसे चमत्कारी फल प्राप्त होते हैं । स्तोत्रको सिद्ध कर लेना चाहिये ।

सिद्ध करनेकी विधि

आश्विन शुक्ल पक्षके या चैत्र शुक्ल पक्षके नवरात्रमें नौ दिनोंतक प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्तमें स्नानादि तथा नित्यकर्मसे निवृत्त हो, शुद्ध वस्त्र धारणकर, कुशाके आसनपर सुखासन लगाकर बैठ जाइये । भगवान् श्रीरामके कल्याणकारी स्वरूपमें ध्यान एकाग्र करके इस महान् फलदायी स्तोत्रका ग्यारह बार और यदि यह न हो सके तो कम-से-कम सात बार नियमित रूपसे प्रतिदिन पाठ कीजिये । आपकी श्रीरामकी शक्तियोंके प्रति जितनी अखण्ड श्रद्धा होगी, उतना ही फल प्राप्त होगा ।

प्रयोगमें पूरा पाठ किया जाय तो बहुत अच्छा; नहीं तो आरम्भसे 'रामाय रामभद्राय' इस २७ वें श्लोकतकका पाठ कर लेना चाहिये । किसी विपत्तिके निवारणके लिये तो रोगीके पास लगातार पाठ चलाने चाहिये । साधारणतया प्रतिदिन एक पाठ पूरा नियमितरूपसे कर लेना चाहिये ।

इन्द्राक्षीकवच एवं स्तोत्रके प्रयोगकी विधि

श्रीरामगुलामजी केसरवानी, मिरजापुरसे लिखते हैं—

"इन्द्राक्षी-कवच और उसके अद्भुत चमत्कारका विवरण सर्वप्रथम 'कल्याण'के अक्टूबर, ६३ के अङ्कमें एक बहिनने छपवाया था । उन आदरणीया बहिनकी आँखोंमें असीम पीड़ा थी । वे डाक्टरोंकी सलाहके अनुसार चिकित्सा कराकर थक गयीं, परंतु कोई लाभ नहीं हुआ । लाभ हुआ तो 'इन्द्राक्षी-कवच" से—इस कवचके पाठसे और कवचसे अभिमन्त्रित भस्मके प्रयोगसे । उन बहिनके अनुभवसहित वह इन्द्राक्षी-कवच जबसे प्रकाशित हुआ, तभीसे मैं इसका अध्ययन करता आ रहा हूँ तथा प्रतिदिन पूजामें पाठ करता हूँ । इस 'इन्द्राक्षी-कवच'का प्रयोग मैंने अपने चचेरे भाईकी पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवीके ऊपर किया और अपूर्व लाभ हुआ । रात्रिमें लक्ष्मीदेवीजीको अचानक दिलका दौरा आया । शरीर ऐंठने लगा, बोली बंद हो गयी, मुहँसे फिचकुर बहने लगा, देह काठके समान ठंडी पड़ गयी । यह देखकर मैं उन्हें मन्त्रसे फूँकने लगा कि उन्होंने आँख खोल दी । कुछ देरतक फूँकनेके बाद वे उठकर बैठ गयीं । तबतक डाक्टर आ गये । डाक्टरने सूई दी, किंतु हालत फिर बिगड़ी । और भी उपचार हुए, पर हालत बदतर होती गयी । मैंने पुनः 'इन्द्राक्षी-कवच' से फूँकना आरम्भ किया और पाँच मिनटमें ही सारा रोग जाता रहा ।'

इस अपूर्व लाभकी घटना 'कल्याण'के अगस्त, ६४के अङ्कमें छपी, तभीसे इस 'इन्द्राक्षी-कवच-स्तोत्र'की माँग आने लगी और प्रयोगकी विधिका स्पष्टीकरण पूछा जाने लगा । वह 'इन्द्राक्षी-कवच-स्तोत्र' तथा उसके प्रयोगकी विधि पुनः प्रकाशित की जा रही है ।

किसीने कवच सिद्ध नहीं किया हो और तुरंत प्रयोगमें लानेकी आवश्यकता है तो उस व्यक्तिको पहले विनायक-स्तोत्र पढ़ लेना चाहिये । विनायक-स्तोत्र इस प्रकार है —

मूषक-वाहन मोदक-हस्त
चामर-कर्ण विलम्बित-सूत्र ।
वामनरूप महेश्वरपुत्र
विघ्नविनायकपाद नमस्ते ॥

फिर विभूतिमें इन्द्राक्षी-यन्त्र लिख लेना चाहिये । लिख लेनेकी विधि इस प्रकार है । उपले (अर्थात् गायका सुखाया हुआ गोबर, जिसे कंडा या गोइठा, राजस्थान आदिमें थेपड़ी, छाणा भी कहते हैं) जलाकर उसकी पवित्र राखको कपड़छान करके किसी पवित्र स्थान या शुद्ध पात्र, जैसे थाली या परात आदिमें फैला दें। तदनन्तर समतल बराबर फैली राखपर तुलसीजीकी सूखी लकड़ीसे 'इन्द्राक्षी-यन्त्र'को अङ्कित कर लें । उस विभूतिको आँखोंमें पीड़ा हो तो पलकोंके ऊपर थोड़ी-सी डालकर हाथोंसे तीन बार उसे नीचेकी ओर झाड़ दिया जाय । ज्वर आदि अन्य व्याधियोंमें भी विभूति डालकर झाड़ देना चाहिये । इन्द्राक्षी-यन्त्र आगे दिया है । तदुपरान्त विधिवत् विनियोग, न्यास एवं ध्यानके श्लोकोंका पाठ आदि करके अभीष्टकी सिद्धिके लिये कवचका प्रयोग करें ।

जो सज्जन इस कवचको सिद्ध करना चाहते हैं, उन्हें यह यन्त्र ताम्रपत्रपर खुदवा लेना चाहिये अथवा ताम्रपत्रपर अष्टगन्धसे लिख लेना चाहिये । अष्टगन्ध बनानेकी विधि इस प्रकार है—सफेद चन्दन, लाल चन्दन, अगर, तगर, असली कस्तूरी, असली केसर, भीमसेनी कपूर, लाल ईंगुर—सबको एक साथ मिला करके गायके शुद्ध घीमें फेंटकर तैयार कर लेना चाहिये । तैयार अष्टगन्धको देवीके समक्ष निवेदन करनेके बाद ताम्रपत्रपर इन्द्राक्षी-यन्त्र लिखना चाहिये । अष्टगन्धके अभावमें केवल लाल चन्दनसे भी यन्त्र लिखा जा सकता है ।

इन्द्राक्षी-कवचको सिद्ध करनेका सर्वोत्तम समय चैत्र मासका नवरात्र या आश्विन मासका नवरात्र है । नवरात्रके समय प्रतिदिन व्रत रखकर ताम्रपत्रपर अङ्कित इन्द्राक्षी-यन्त्रका विधिवत् पूजन करके विनियोग-न्यास-ध्यानसहित इन्द्राक्षी-कवच-स्तोत्रका पाठ करना चाहिये । फिर इन्द्राक्षी देवीके मन्त्र (ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं इन्द्राक्ष्यै नमः) का १०८ रुद्राक्षके दानोंकी एक माला जप करना चाहिये । नवें दिन नवमीको १०१ इन्द्राक्षी देवीके मन्त्रसे हवन करके मन्त्र सिद्ध कर लेना चाहिये । हवनमें आहुति देते समय इन्द्राक्षी देवीके मन्त्रके अन्तमें 'स्वाहा' शब्द और जोड़ लेना चाहिये ।

प्रतिदिन पाठ करनेवाले सज्जनको ताम्रपत्रपर अङ्कित इन्द्राक्षी-यन्त्रका पूजन करके विनियोग-न्यास-ध्यानसहित इन्द्राक्षी-कवच-स्तोत्रका पाठ करना चाहिये । फिर इन्द्राक्षी-देवीके मन्त्रसे एक आहुति दे देनी चाहिये ।

विनियोग और न्यासकी विधि इस प्रकार है। विनियोगका अर्थ है—मन्त्र-जपके प्रयोजनका निर्देश। विनियोग करते समय दाहिने हाथकी हथेलीमें जल लेकर '**ॐ अस्य श्रीइन्द्राक्षीस्तोत्रमहामन्त्रस्य शचीपुरन्दर ऋषिः । अनुष्टुप्छन्दः । इन्द्राक्षीदुर्गा देवता । लक्ष्मीर्बीजम् । भुवनेश्वरी शक्तिः, भवानीति कीलकम्, मम इन्द्राक्षीप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।**' इसका पाठ करके अपनी साध्य मनोकामनाको कहते हुए जलको पृथ्वीपर छोड़ देना चाहिये ।

करन्यास—करन्यासमें हाथकी विभिन्न अँगुलियों, हथेलियों और हाथके पृष्ठभागमें मन्त्रोंका न्यास (स्थापन) किया जाता है । इसी प्रकार अङ्गन्यासमें हृदयादि अङ्गोंमें मन्त्रोंकी स्थापना होती है । मन्त्रोंको चेतन और मूर्तिमान् मानकर उन-उन अङ्गोंके नाम लेकर उनपर उन मन्त्रमय देवताओंका ही स्पर्श और वन्दन किया जाता है। ऐसा करनेसे पाठ या जप करनेवाला स्वयं मन्त्रमय होकर मन्त्र-देवताओंद्वारा सर्वथा सुरक्षित हो जाता है । उसके बाहर-भीतरकी शुद्धि होती है, उसे दिव्य बल प्राप्त होता है और साधना निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण तथा परम लाभदायक होती है ।

ॐ इन्द्राक्षीत्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
(दोनों हाथोंकी तर्जनी अँगुलियोंसे दोनों अँगूठोंका स्पर्श)
ॐ महालक्ष्मीरिति तर्जनीभ्यां नमः ।
(दोनों हाथोंके अँगूठोंसे दोनों तर्जनी अँगुलियोंका स्पर्श)
ॐ माहेश्वरीति मध्यमाभ्यां नमः ।
(अँगूठोंसे मध्यमा अँगुलियोंका स्पर्श)
ॐ अम्बुजाक्षीत्यनामिकाभ्यां नमः ।
(अनामिका अँगुलियोंका स्पर्श)
ॐ कात्यायनीति कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
(कनिष्ठिका अँगुलियोंका स्पर्श)
ॐ कौमारीति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।
(हथेलियों और उनके पृष्ठभागोंका परस्पर स्पर्श)

हृदयादिन्यासः—
इसमें दाहिने हाथकी पाँचों अँगुलियोंसे 'हृदय' आदि अङ्गोंका स्पर्श किया जाता है ।

ॐ इन्द्राक्षीति हृदयाय नमः।
(दाहिने हाथकी पाँचों अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श)
ॐमहालक्ष्मीरिति शिरसे स्वाहा।
(सिरका स्पर्श)
ॐ माहेश्वरीति शिखायै वषट्।
(शिखाका स्पर्श)
ॐ अम्बुजाक्षीति कवचाय हुम्।
(दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे बायें कंधे और बायें ी अँगुलियोंसे दाहिने कंधेका साथ ही स्पर्श)
ॐ कात्यायनीति नेत्रत्रयाय वौषट्।
(दाहिने हाथकी अँगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रों और के मध्य भागका स्पर्श)
ॐ कौमारीत्यस्त्राय फट्।
(यह वाक्य पढ़कर दाहिने हाथको सिरके ऊपर बायीं पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियोंसे बायें ी हथेलीपर ताली बजाये।)

विनियोग, करन्यास और हृदयादिन्यास करनेके बाद ी इन्द्राक्षीका ध्यान करना चाहिये।

इन्द्राक्षी-यन्त्र
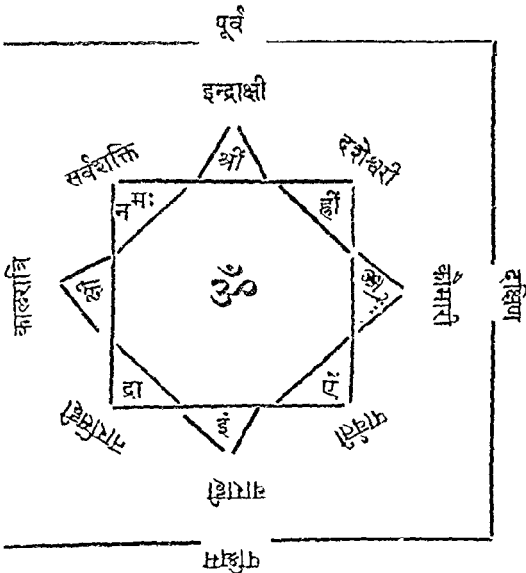
ऊपर लिखित यन्त्रको विभूतिमें लिखकर निम्नलिखित से जप करें—

ॐ अस्य श्रीइन्द्राक्षीस्तोत्रमहामन्त्रस्य शचीपुरन्दर ऋषिः। अनुष्टुप्छन्दः। इन्द्राक्षी दुर्गा देवता। लक्ष्मीर्बीजम्। भुवनेश्वरी शक्तिः, भवानीति कीलकम्, मम इन्द्राक्षीप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ॐ इन्द्राक्षीत्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ महालक्ष्मीरिति तर्जनीभ्यां नमः। ॐ माहेश्वरीति मध्यमाभ्यां नमः। ॐ अम्बुजाक्षीत्यनामिकाभ्यां नमः। ॐ कात्यायनीति कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ कौमारीति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

*ॐइन्द्राक्षीति हृदयाय नमः। ॐमहालक्ष्मीरिति शिरसे स्वाहा। ॐ माहेश्वरीति शिखायै वषट्। ॐ अम्बुजाक्षीति कवचाय हुम्। ॐ कात्यायनीति नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ कौमारीत्यस्त्राय फट्। ॐ भूर्भुवस्स्वरोमिति दिग्बन्धः।

भगवती इन्द्राक्षीका ध्यान

नेत्राणां दशभिश्शतैः परिवृतामत्युग्रचर्माम्बरां
हेमाभां महतीं विलम्बितशिखामामुक्तकेशान्विताम्।
घण्टामण्डितपादपद्मयुगलां नागेन्द्रकुम्भस्तनी-
मिन्द्राक्षीं परिचिन्तयामि मनसा कल्पोक्तसिद्धिप्रदाम्॥

इन्द्राक्षीं द्विभुजां देवीं पीतवस्त्रद्वयान्विताम्।
वामहस्ते वज्रधरां दक्षिणेन वरप्रदाम्॥
इन्द्रादिभिः सुरैर्वन्द्यां वन्दे शंकरवल्लभाम्।
एवं ध्यात्वा महादेवीं जपेत् सर्वार्थसिद्धये॥
इन्द्राक्षीं नौमि युवतीं नानालंकारभूषिताम्।
प्रसन्नवदनाम्भोजामप्सरोगणसेविताम्॥

इन्द्र उवाच—

इन्द्राक्षी पूर्वतः पातु पात्वाग्नेय्यां दशेश्वरी।
कौमारी दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां पातु पार्वती॥
वाराही पश्चिमे पातु वायव्ये नारसिंह्यपि।
उदीच्यां कालरात्री मामैशान्यां सर्वशक्तयः॥
भैरव्यूर्ध्वं सदा पातु पात्वधो वैष्णवी सदा।
एवं दश दिशो रक्षेत् सर्वाङ्गं भुवनेश्वरी॥

* 'इन्द्राक्षीति हृदयाय नमः' से 'अप्सरोगणसेविताम्'-तक दो बार जप करना चाहिये।

इन्द्राक्षीकवचम्

ॐ नमो भगवत्यै इन्द्राक्ष्यै महालक्ष्म्यै सर्वजनवशंकर्यै सर्वदुष्टग्रहस्तम्भिन्यै स्वाहा।

ॐ नमो भगवति पिङ्गलभैरवि त्रैलोक्यलक्ष्मि त्रैलोक्यमोहिनीन्द्राक्षि मां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।

ॐ नमो भगवति भद्रकालि महादेवि कृष्णवर्णे तुङ्गस्तनि शूर्पहस्ते कवाटवक्षःस्थले कपालधरे परशुधरे चापधरे विकृतरूपधरे विकृतरूपे महाकृष्णसर्पयज्ञोपवीतिनि भस्मोद्धवलितसर्वगात्रीन्द्राक्षि मां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।

ॐ नमो भगवति प्राणेश्वरि पद्मासने सिंहवाहने महिषासुरमर्दिन्युष्णज्वरपित्तज्वरवातज्वरश्लेष्मज्वरकफज्वरालापज्वरसंनिपातज्वरकृत्रिमज्वरकृत्यादिज्वरैकाहिकज्वरद्व्याहिकज्वरत्र्याहिकज्वरचतुराहिकज्वरपञ्चाहिकज्वरपक्षज्वरमासज्वरषण्मासज्वरसंवत्सरज्वरसर्वाङ्गज्वरान् नाशय नाशय हर हर जहि जहि दह दह पच पच ताडय ताडयाकर्षयाकर्षय विद्विषः स्तम्भय स्तम्भय मोहय मोहयोच्चाटयोच्चाटय हुं फट् स्वाहा।

ॐ ह्रीं ॐ नमो भगवति प्राणेश्वरि पद्मासने लम्बोष्ठि कम्बुकण्ठिके कलिकामरूपिणि परमन्त्रपरयन्त्रपरतन्त्रप्रभेदिनि प्रतिपक्षविध्वंसिनि परबलदुर्गविमर्दिनि शत्रुकरच्छेदिनि सकलदुष्टज्वरनिवारिणि भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसयक्षयमदूतशाकिनीडाकिनीकामिनीस्तम्भिनीमोहिनीवशंकरीकुक्षिरोगशिरोरोगनेत्ररोगक्षयापस्मारकुष्ठादिमहारोगनिवारिणि मम सर्वरोगान् नाशय नाशय ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः हुं फट् स्वाहा।

ॐ ऐं श्रीं हुं दुं इन्द्राक्षि मां रक्ष रक्ष, मम शत्रून् नाशय नाशय, जलरोगान् शोषय शोषय, दुःखव्याधीन् स्फोटय स्फोटय, क्रूरानरीन् भञ्जय भञ्जय, मनोग्रन्थिप्राणग्रन्थिशिरोग्रन्थीन् काटय काटय, इन्द्राक्षि मां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।

ॐ नमो भगवति माहेश्वरि महाचिन्तामणि दुर्गे सकलसिद्धेश्वरि सकलजनमनोहारिणि कालकालरात्र्यनलेऽजितेऽभये महाघोररूपे विश्वरूपिणि मधुसूदनि महाविष्णुस्वरूपिणि नेत्रशूलकर्णशूलकटिशूलपक्षशूलपाण्डुरोगकमलादीन् नाशय नाशय वैष्णवि ब्रह्मास्त्रेण विष्णुचक्रेण रुद्रशूलेन यमदण्डेन वरुणपाशेन वासववज्रेण सर्वानरीन् भञ्जय भञ्जय यक्षग्रहराक्षसग्रहस्कन्दग्रहविनायकग्रहबालग्रहचौरग्रहकूष्माण्डग्रहादीन् निगृह्ण निगृह्ण राजयक्ष्मक्षयरोगतापज्वरनिवारिणि मम सर्वज्वरान्नाशय नाशय सर्वग्रहानुच्चाटयोच्चाटय हुं फट् स्वाहा।

इन्द्राक्षी-स्तोत्रम्

इन्द्राक्षी नाम सा देवी दैवतैः समुदाहृता।
गौरी शाकम्भरी देवी दुर्गानाम्नीति विश्रुता॥
कात्यायनी महादेवी चन्द्रघण्टा महातपाः।
सावित्री सा च गायत्री ब्रह्माणी ब्रह्मवादिनी॥
नारायणी भद्रकाली रुद्राणी कृष्णपिङ्गला।
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्री तपस्विनी॥
मेघस्वना सहस्राक्षी विकटाङ्गी जलोदरी।
महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला॥
अजिता भद्रदाऽऽनन्दा रोगहर्त्री शिवप्रिया।
शिवदूती कराली च प्रत्यक्षपरमेश्वरी॥
इन्द्राणी इन्द्ररूपा च इन्द्रशक्तिः परायणा।
सदा सम्मोहिनी देवी सुन्दरी भुवनेश्वरी॥
एकाक्षरी परा ब्राह्मी स्थूलसूक्ष्मप्रवर्तिनी।
नित्यं सकलकल्याणी भोगमोक्षप्रदायिनी॥
महिषासुरसंहर्त्री चामुण्डा सप्तमातृका।
वाराही नारसिंही च भीमा भैरवनादिनी॥
श्रुतिः स्मृतिर्धृतिर्मेधा विद्या लक्ष्मीः सरस्वती।
अनन्ता विजयापर्णा मानस्तोकापराजिता॥
भवानी पार्वती दुर्गा हैमवत्यम्बिका शिवा।
शिवा भवानी रुद्राणी शंकरार्द्धशरीरिणी॥
ऐरावतगजारूढा वज्रहस्ता वरप्रदा।
भ्रामरी काञ्चिकामाक्षी क्वणन्माणिक्यनूपुरा॥
त्रिपाद्भस्मप्रहरणा त्रिशिरा रक्तलोचना।
शिवा च शिवरूपा च शिवभक्तिपरायणा॥
मृत्युंजया महामाया सर्वरोगनिवारिणी।
ऐन्द्री देवी सदा कालं शान्तिमाशु करोतु मे॥

भस्मायुधाय विद्महे रक्तनेत्राय धीमहि तन्नो ज्वरहरः प्रचोदयात्।

एतत् स्तोत्रं जपेन्नित्यं सर्वव्याधिनिवारणम्।
रणे राजभये शौर्ये सर्वत्र विजयी भवेत्॥

एतैर्नामपदैर्दिव्यैः स्तुता शक्रेण धीमता।
सा मे प्रीत्या सुखं दद्यात् सर्वापत्तिनिवारिणी॥
ज्वरं भूतज्वरं चैव शीतोष्णज्वरमेव च।
ज्वरं ज्वरातिसारं च अतिसारज्वरं हर॥
शतमावर्तयेद् यस्तु मुच्यते व्याधिबन्धनात्।
आवर्त्तयन् सहस्रं तु लभते वाञ्छितं फलम्॥
एतत्स्तोत्रमिदं पुण्यं जपेदायुष्यवर्द्धनम्।
विनाशाय च रोगाणामपमृत्युहराय च॥
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

रोगीपर कवचसे प्रभाव डालनेकी विधि इस प्रकार है। जिन सज्जनोंने इन्द्राक्षी-कवचको सिद्ध कर लिया है, उन लोगोंको चाहिये कि उपलेकी शुद्ध राख लेकर मालाको 'इन्द्राक्षीदेवी'के मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर लें। फिर मन्त्रके विनियोग और न्याससहित ध्यानके श्लोकोंका पाठ करें। फिर रोगीका नाम लेकर देवीसे प्रार्थना करें कि रोगीका अमुक रोग समूल नष्ट हो जाय। राखको चुटकीमें लेकर देवीकवच पढ़ते जाइये और जहाँ-जहाँ 'फट् स्वाहा' कवचमें आये, वहाँ-वहाँ चुटकीकी राख रोगीपर फेंकते जाइये। उसके बाद देवीका स्तोत्र पढ़िये, थोड़ी-सी राख रोगीके शरीरपर लगा दीजिये; अन्तमें नमन करके विसर्जन कर दीजिये। यन्त्रको पूरी विधिसे भोजपत्रपर या कोरे कागजपर अष्टगन्धसे या लाल चन्दनसे लिखकर रोगीके गलेमें धारण करा देना चाहिये। जबतक रोगीका रोग दूर न हो, तबतक प्रतिदिन रोगीको 'इन्द्राक्षी-कवच'से अभिमन्त्रित करना चाहिये। अर्थात् किसी पात्रमें शुद्ध जल लेकर उसपर मन्त्र बोलते हुए हाथ फिराना चाहिये। फिर उस जलसे रोगीके शरीरपर छींटे दे देने चाहिये।

रोगीके जिस रोगको दूर करना है, आरम्भमें उस रोगको दूर करनेकी प्रार्थना भगवती इन्द्राक्षीसे करके सम्पूर्ण कवचका पाठ करना चाहिये। कवचमें भिन्न-भिन्न रोगोंको दूर करनेके लिये भगवतीसे प्रार्थना की गयी है। अतः इसका अर्थ यह नहीं है कि कवचके केवल उसी अंशका पाठ किया जाय, जिस अंशमें रोगीके रोगका नाम आया है। रोगीके रोगको दूर करनेकी प्रार्थना करके सम्पूर्ण कवचका पाठ करना चाहिये। स्तोत्रमें आया है कि व्याधिसे मुक्त होनेके लिये स्तोत्रका सौ बार पाठ करना चाहिये और वाञ्छित फलकी प्राप्तिके लिये हजार बार पाठ करना चाहिये।

सर्वकार्यसिद्धिके लिये

(१)

ॐ नमो भगवते सर्वरक्षकाय ह्रीं ॐ मां रक्ष रक्ष सर्वसौभाग्यभाजनं मां कुरु कुरु स्वाहा।

इस मन्त्रका हरिद्रा अथवा तुलसीकी मालापर प्रतिदिन १०८ बार जप करना चाहिये और जपके अनन्तर रामचरितमानसके उत्तरकाण्डके निम्नलिखित ग्यारहवें दोहेके बादवाली चौपाई अर्थात् 'प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासन मागा।' से लेकर उत्तरकाण्डके चौदहवें दोहे अर्थात्—

बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास॥

तक पाठ करना चाहिये।

प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासन मागा॥
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई॥
जनकसुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई॥
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे॥
प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा॥
सुत बिलोकि हरषीं महतारीं। बार बार आरती उतारीं॥
बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥
सिंघासन पर त्रिभुअन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं॥

छं०—नभ दुंदुभीं बाजहिं बिपुल गंधर्ब किंनर गावहीं।
नाचहिं अपछरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं॥
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते॥
श्रीसहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई॥
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे।
अंभोज नयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे॥

दोहा—वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस।
बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस॥
भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम।
बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्रीराम॥
प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति आदर कृपानिधान।
लखेउ न काहूँ मरम कछु लगे करन गुन गान॥

'राम'नाम-कीर्तनमें मत्त श्रीहनूमानजी

छं०—जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने ।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने ॥
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे ।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे ॥
तव बिषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे ।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे ॥
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिधि दुख ते निर्बहे ।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे ॥
जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी ।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे ।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे ॥
जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी ।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी ॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे ।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे ॥
अब्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने ।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने ॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे ।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे ॥
जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं ।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं ॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं ।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं ॥

दोहा—सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार ।
अंतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार ॥
बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर ।
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर ॥

छंद

जय राम रमा रमनं समनं । भव ताप भयाकुल पाहि जनं ॥
अवधेस सुरेस रमेस बिभो । सरनागत मागत पाहि प्रभो ॥
दससीस बिनासन बीस भुजा । कृत दूरि महा महि भूरि रुजा ॥
रजनीचर बृंद पतंग रहे । सर पावक तेज प्रचंड दहे ॥
महि मंडल मंडन चारुतरं । धृत सायक चाप निषंग बरं ॥
मद मोह महा ममता रजनी । तम पुंज दिवाकर तेज अनी ॥
मनजात किरात निपात किए । मृग लोग कुभोग सरेन हिए ॥
हति नाथ अनाथनि पाहि हरे । बिषया बन पावँर भूलि परे ॥
बहु रोग बियोगन्हि लोग हए । भवदंघ्रि निरादर के फल ए ॥
भवसिंधु अगाध परे नर ते । पद पंकज प्रेम न जे करते ॥
अति दीन मलीन दुखी नितहीं । जिन्ह कें पद पंकज प्रीति नहीं ॥
अवलंब भवंत कथा जिन्ह कें । प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह कें ॥
नहिं राग न लोभ न मान मदा । तिन्ह कें सम बैभव वा बिपदा ॥
एहि ते तव सेवक होत मुदा । मुनि त्यागत जोग भरोस सदा ॥
करि प्रेम निरंतर नेम लिएँ । पद पंकज सेवत सुद्ध हिएँ ॥
सम मानि निरादर आदरही । सब संत सुखी बिचरंति मही ॥
मुनि मानस पंकज भृंग भजे । रघुबीर महा रनधीर अजे ॥
तव नाम जपामि नमामि हरी । भव रोग महागद मान अरी ॥
गुन सील कृपा परमायतनं । प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं ॥
रघुनंद निकंदय द्वंद्वघनं । महिपाल बिलोकय दीन जनं ॥

दोहा—बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग ।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ॥
बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास ।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास ॥

विपत्तिनाश, सम्पदा-प्राप्ति, साधन-सिद्धि आदिके लिये श्रीहनुमान्‌जीके अनुष्ठान—

'ॐ नमो भगवते पञ्चवदनाय महाभीमपराक्रमाय सकलशत्रुसंहारणाय स्वाहा । ॐ नमो भगवते पञ्चवदनाय महाबलप्रचण्डाय सकलब्रह्माण्डनायकाय सकलभूत-प्रेत-पिशाच-शाकिनी-डाकिनी-यक्षिणी-पूतना-महामारी-सकलविघ्ननिवारणाय स्वाहा।

ॐ आञ्जनेयाय विद्महे महाबलाय
धीमहि तन्नो हनुमान् प्रचोदयात् । (गायत्री)

ॐ नमो हनुमते महाबलप्रचण्डाय महाभीमपराक्रमाय सकलज्वरविध्वंसनाय स्वाहा । ॐ नमो भगवते प्रकटपराक्रमाय गजक्रान्तदिङ्मण्डलयशोवितानधवलीकृतमहाचलपराक्रमाय पञ्चवदनाय नृसिंहाय वज्रदेहाय ज्वलदग्नितनूरुहाय रुद्रावताराय महाभीमाय, मम मनोरथपरकार्यसिद्धिं देहि देहि स्वाहा । ॐ नमो भगवते पञ्चवदनाय महाभीमपराक्रमाय सकलसिद्धिदाय वाञ्छितपूरकाय सर्वविघ्ननिवारणाय मनोवाञ्छितफलप्रदाय सर्वजीववशीकराय दारिद्र्यविध्वंसनाय परममङ्गलाय सर्वदुःखनिवारणाय अञ्जनीपुत्राय सकलसम्पत्तिकराय जयप्रदाय ॐ ह्रीं श्रीं ह्रां हुं फट् स्वाहा ।

सर्वकामनासिद्धिका संकल्प करके उपर्युक्त पूरे मन्त्रका १३ दिनोंमें ब्राह्मणोंद्वारा १२००० जप पूर्ण कराये । तेरहवें दिन १२ पानके पत्तोंपर १३ सुपारी रखकर शुद्ध रोली

अथवा पीसी हुई हल्दी रखकर स्वयं १०८ बार उपर्युक्त मन्त्रका जाप करके एक पानको उठाकर अलग रख दे। तदनन्तर पञ्चोपचारसे पूजन करके गायका घृत, सफेद दूर्वा तथा सफेद कमलका भाग मिलाकर उसके साथ उस पानका अग्निमें हवन कर दे। इसी प्रकार १३ बार १३ पानोंका हवन करे।

तदनन्तर ब्राह्मणोंद्वारा उपर्युक्त मन्त्रसे ३२००० आहुतियाँ दिलाकर हवन कराये। हवन-सामग्री ऊपर लिखी है। फिर उन ब्राह्मणोंको भोजन कराये।

(२)

ॐ अस्य श्रीहनुमन्महामन्त्रस्य ईश्वरऋषि-र्गायत्रीच्छन्दः हनुमान् देवता हं बीजं नमः शक्तिः, आञ्जनेयाय इति कीलकम् मम सर्वप्रतिबन्धक-निवृत्तिपूर्वकहनुमत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

उपर्युक्त शब्दोंका उच्चारण करके जलका विनियोग छोड़ दे।

अङ्गन्यास—

ॐ ईश्वरऋषये नमः शिरसि, गायत्रीच्छन्दसे नमो मुखे, श्रीहनुमद्देवतायै नमो हृदि, हंबीजाय नमो नाभौ, नमःशक्तये नमः पादयोः, आञ्जनेयाय कीलकाय नमः सर्वाङ्गे। क्रमशः इनका उच्चारण करके सिर, मुख, हृदय, नाभि, पैर और सारे अङ्गोंका स्पर्श करे।

करन्यास—

ॐ ह्रां आञ्जनेयाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं महाबलाय तर्जनीभ्यां नमः, ॐ ह्रूं शरणागतरक्षकाय मध्यमाभ्यां नमः; ॐ ह्रैं श्रीरामदूताय अनामिकाभ्यां नमः, ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ ह्रः सीताशोक-विनाशकाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। उपर्युक्त प्रकारसे बोलकर अँगूठेसे लेकर कनिष्ठिका और करतल तकका स्पर्श करे।

दूसरा न्यास—

ॐ ह्रां आञ्जनेयाय हृदयाय नमः; ॐ ह्रीं महा-बलाय शिरसे स्वाहा; ॐ ह्रूं शरणागतरक्षकाय शिखायै वषट्; ॐ ह्रैं श्रीरामदूताय कवचाय हुम्; ॐ ह्रौं हरिमर्कटाय नेत्रत्रयाय वौषट्; ॐ ह्रः सीताशोक-विनाशकाय अस्त्राय फट्। उपर्युक्त मन्त्रोंके द्वारा हृदय, सिर, शिखा, बाहु और नेत्रोंका स्पर्श करे और अन्तिम मन्त्रसे ताली बजा दे।

ध्यान—

ॐ उद्यद्बालदिवाकरद्युतितनुं पीताम्बरालंकृतं
देवेन्द्रप्रमुखप्रशस्तयशसं श्रीरामभूपप्रियम्।
सीताशोकविनाशिनं पटुतरं भक्तेष्टसिद्धिप्रदं
ध्यायेद्वानरपुंगवं हरिवरं श्रीमारुतिं सिद्धिदम्॥

इस प्रकार ध्यान करके नीचे लिखे मन्त्रोंका ६ महीने तक प्रतिदिन तीन-तीन हजार जप करे।

(१) ॐ हं हनुमते आञ्जनेयाय महाबलाय नमः।
(२) ॐ आञ्जनेयाय महाबलाय हुं फट्।

(३)

प्रति शनिवारको श्रीहनुमान्‌जीकी मूर्तिके सामने बैठकर पञ्चोपचारसे पूजा करे। तदनन्तर 'हनुमानचालीसा'का सौ पाठ पूर्ण करे। कम-से-कम सात शनिवारतक ऐसा पाठ करना आवश्यक है। अनुष्ठानके समय ब्रह्मचर्यका पालन करना आवश्यक है।

(४)

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

श्रीहनुमान्‌जीके समस्त मन्त्रों तथा पञ्चाङ्गादिका एकत्र विधान 'आनन्दरामायण' एवं 'हनुमदुपासना'में प्राप्त हो जाता है। वहाँ उनका पूरा पञ्चाङ्ग प्राप्त होता है। उसे देखा जा सकता है। यहाँ केवल एक अत्यन्त सरल हनुमन्मन्त्रका विधान दिया जा रहा है। यह मन्त्र है—'**ॐ हं पवननन्दनाय स्वाहा**'।

इस मन्त्रका ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—

ध्यायेद्रणे हनूमन्तं कपिकोटिसमन्वितम्।
धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम्॥
लक्ष्मणं च महावीरं पतितं रणभूतले।
गुरुं च क्रोधमुत्पाद्य गृहीत्वा गुरुपर्वतम्॥
हाहाकारैः सदर्पैश्च कम्पयन्तं जगत्त्रयम्।
आब्रह्माण्डं समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम्॥

(शारदातिलक, तन्त्रसार आदि)

अर्थ सरल है। इसके अतिरिक्त 'कल्याण'के पाठकोंको नारदपुराणाङ्कमें दिये गये हनुमन्मन्त्र, ध्यान आदिका भी उपयोग करना चाहिये। वहाँ सचित्र सब कुछ दिया गया है।

बुद्धि-वृद्धि तथा विद्याप्राप्तिके योग

(१)

माघशुक्ला त्रयोदशीकी संध्याको ब्राह्मी बूटीको निमन्त्रण

दे आये और चतुर्दशीको प्रातःकाल चार बजे ब्राह्मवेलामें उठकर बिना किसीसे बोले ब्राह्मीके पौधेको जड़से उखाड़ ले। फिर उसे पीसकर उसका पान करे। निमन्त्रण देने आदि-के मन्त्र निम्नलिखित हैं।

'ॐ कुमाररञ्जन्यै नमः'—इस मन्त्रको २१ बार पढ़कर निमन्त्रण दे और चावलोंसे ब्राह्मीके पेड़को घेर दे।

'ॐ ऐं बुद्धिवर्धिन्यै नमः'—इस मन्त्रको २१ बार पढ़कर पेड़को जड़सहित उखाड़ ले।

'ॐ ऐं ह्रीं ब्राह्म्यै नमः'—२१ बार इस मन्त्रको पढ़कर पेड़को धोकर बड़ी खरलमें कुछ जल मिलाकर पीस ले।

'ॐ ऐं श्रीं वाग्वादिनि सरस्वति मम जिह्वाग्रे वद वद मां सर्वविद्यां देहि देहि स्वाहा'—

गङ्गातटपर बैठकर इस मन्त्रका १०८ बार जप करे। तदुपरान्त खरलमें पीसे हुए रसको छानकर श्रीगङ्गाजीमें नाभितक जलमें खड़ा होकर पी जाय।

(२)

गुरुचि (गिलोय), अपामार्ग, बायविडंग, शङ्खिनी, ब्राह्मी, वच, सोंठ और सतावरी—इन सबको बराबर-बराबर लेकर चूर्ण कर ले और गायके घृतमें मिलाकर एक-एक तोले अंदाजकी ४४ गोलियाँ बना ले। तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्र २१ बार पढ़कर प्रतिदिन एक गोली खा ले।

'ॐ ऐं ह्रीं ह्रौं हयग्रीवाय नमः मे विद्यां देहि देहि बुद्धिं वर्धय वर्धय हुं फट् स्वाहा।'

(३)

'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं वाग्वादिनि सरस्वति मम जिह्वाग्रे वद वद ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं नमः स्वाहा।'

आषाढ़में जब उत्तराषाढ़ा नक्षत्र हो, तब इस मन्त्रको १०८ बार दिनमें जप ले और रात्रिको ग्यारह बजेसे बारह बजेके बीचमें जब कभी भी इस मन्त्रका २१ बार जप कर लाल चन्दनसे जीभपर 'ह्रीं' मन्त्र लिख दे।

(४)

श्वेतपद्मासना देवी श्वेतपुष्पोपशोभिता।
श्वेताम्बरधरा नित्या श्वेतगन्धानुलेपना॥
श्वेताक्षसूत्रहस्ता च श्वेतचन्दनचर्चिता।
श्वेतवीणाधरा शुभ्रा श्वेतालंकारभूषिता॥

वन्दिता सिद्धगन्धर्वैरर्चिता सुरदानवैः।
पूजिता मुनिभिः सर्वैर्ऋषिभिः स्तूयते सदा॥
स्तोत्रेणानेन तां देवीं जगद्धात्रीं सरस्वतीम्।
ये स्मरन्ति त्रिसंध्यायां सर्वां विद्यां लभन्ति ते॥

श्रीसरस्वतीदेवीके चित्रपटका पञ्चोपचारसे पूजन करके इस स्तोत्रका कम-से-कम एक पाठ प्रतिदिन करना चाहिये।

(५)

बुद्धिहीन तनु जानि कै सुमिरौं पवनकुमार।
बल बुधि बिद्या देहु मोहि हरहु कलेस बिकार॥

श्रीहनुमान्‌जीकी पूजा करके उपर्युक्त दोहेका १०८ बार प्रतिदिन जप करे।

(६)

जनकसुता जगजननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मल मति पावउँ॥

श्रीजानकी अथवा श्रीसीतारामजीके चित्रपटका पूजन करके इस मन्त्रका १०८ बार प्रतिदिन जप करना चाहिये।

उत्तम विद्याकी प्राप्तिके लिये

(७)

ॐ मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

—इस मन्त्रका प्रतिदिन प्रातःकाल जगते ही बिना किसी-से बोले तीन बार जप करनेसे उत्तम विद्याकी प्राप्ति होती है।

मानस-सिद्धमन्त्र

[कुछ वर्षों पहले 'कल्याण' में 'मानस-सिद्धमन्त्र' नामक 'एक रामायणप्रेमी' सज्जनका लेख छपा था। उसमें लिखे प्रयोगोंसे बहुत लोगोंने विविध मनोरथोंमें सफलता प्राप्त की। हमारे पास इस सम्बन्धमें बहुत पत्र आये हैं और अब भी आ रहे हैं। 'कल्याण'में पुनः प्रकाशित करनेका पाठकोंका बड़ा आग्रह होनेसे उसे यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।]

—सम्पादक

मानस-चौपाई सिद्धमन्त्रका विधान यह है कि पहले रातको दस बजेके बाद अष्टाङ्ग-हवनके द्वारा मन्त्र सिद्ध करना चाहिये। फिर जिस कार्यके लिये मन्त्र-जपकी आवश्यकता हो, उसके लिये नित्य जप करना चाहिये।

वाराणसीमें भगवान् शंकरजीने मानसकी चौपाइयोंको मन्त्र-शक्ति प्रदान की है—इसलिये वाराणसीकी ओर मुख करके शंकरजीको साक्षी बनाकर श्रद्धासे जप करना चाहिये ।

रक्षा-रेखा

मन्त्र 'सिद्ध' करनेके लिये या किसी संकटपूर्ण जगहपर रात व्यतीत करनेके लिये अपने चारों ओर जल या शुद्ध कोयलेसे रक्षाकी रेखा खींच लेनी चाहिये । लक्ष्मणजीने सीताजीकी कुटीके आस-पास जो रक्षा-रेखा खींची थी, उसी लक्ष्यपर निम्नलिखित रक्षा-मन्त्र बनाया गया है । इसे एक सौ आठ आहुतियोंद्वारा सिद्ध कर लेना चाहिये । रक्षा-रेखाका मन्त्र एक बार सिद्ध कर लेनेपर वह जीवनभरके लिये हो जाता है । उसे दुबारा सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

[रक्षा-रेखा-मन्त्र]

मामभिरक्षय रघुकुलनायक ।
धृत बर चाप रुचिर कर सायक ॥

विविध-कामना-सिद्धिके मन्त्र

(१) विपत्ति-नाशके लिये

राजिव नयन धरें धनु सायक ।
भगत बिपति भंजन सुखदायक ॥

(२) संकट-नाशके लिये

जौं प्रभु दीन दयालु कहावा ।
आरति हरन बेद जसु गावा ॥
जपहिं नामु जन आरत भारी ।
मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी ।
हरहु नाथ मम संकट भारी ॥

(३) कठिन-क्लेश-नाशके लिये

हरन कठिन कलि कलुष कलेसू ।
महामोह निसि दलन दिनेसू ॥

(४) विघ्न-विनाशके लिये

सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही ।
राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही ॥

(५) खेद-नाशके लिये

जब तें रामु ब्याहि घर आए ।
नित नव मंगल मोद बधाए ॥

(६) महामारी, हैजा और मरीका प्रभाव न पड़े, इसके लिये

जय रघुबंस बनज बन भानू ।
गहन दनुज कुल दहन कृसानू ॥

(७) विविध रोगों तथा उपद्रवोंकी शान्तिके लिये

दैहिक दैविक भौतिक तापा ।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ॥

(८) मस्तिष्ककी पीड़ा दूर करनेके लिये

हनूमान अंगद रन गाजे ।
हाँक सुनत रजनीचर भाजे ॥

(९) विष-नाशके लिये

नाम प्रभाउ जान सिव नीको ।
कालकूट फलु दीन्ह अमी को ॥

(१०) अकाल मृत्यु-निवारणके लिये

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ॥

(११) भूतको भगानेके लिये

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन ।
जासु हृदयँ आगार बसहिं राम सर चाप धर ॥

(१२) नजर झाड़नेके लिये

स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी ।
निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी ॥

(१३) खोयी हुई वस्तु पुनः प्राप्त करनेके लिये

गई बहोर गरीब नेवाजू ।
सरल सबल साहिब रघुराजू ॥

(१४) जीविका-प्राप्तिके लिये

बिस्व भरन पोषन कर जोई ।
ताकर नाम भरत अस होई ॥

(१५) दरिद्रता दूर करनेके लिये

अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के ।
कामद घन दारिद दवारि के ॥

(१६) लक्ष्मी-प्राप्तिके लिये

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं ।
जद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ ।
धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ ॥

(१७) पुत्र-प्राप्तिके लिये

प्रेम मगन कौसल्या निसिदिन जात न जान ।
सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान ॥

(१८) सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं ।
सुख संपति नाना बिधि पावहिं ॥

(१९) ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त करनेके लिये

साधक नाम जपहिं लय लाएँ ।
होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥

(२०) सर्व-सुख-प्राप्तिके लिये

सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई ।
लहहिं भगति गति संपति नई ॥

(२१) मनोरथ-सिद्धिके लिये

भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि ।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि ॥

(२२) कुशल-क्षेमके लिये

भुवन चारिदस भरा उछाहू ।
जनकसुता रघुबीर बिआहू ॥

(२३) मुकदमा जीतनेके लिये

पवन तनय बल पवन समाना ।
बुधि बिबेक बिग्यान निधाना ॥

(२४) शत्रुके सामने जाना हो, उस समयके लिये

कर सारंग साजि कटि भाथा ।
अरि दल दलन चले रघुनाथा ॥

(२५) शत्रुको मित्र बनानेके लिये

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई ।
गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥

(२६) शत्रुता-नाशके लिये

बयरु न कर काहू सन कोई ।
राम प्रताप बिषमता खोई ॥

२७) शास्त्रार्थमें विजय पानेके लिये

तेहिं अवसर सुनि सिव धनु भंगा ।
आयउ भृगुकुल कमल पतंगा ॥

२८) विवाहके लिये

तब जनक पाइ बसिष्ट आयसु ब्याह साज सँवारि कै ।
मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुँअरि लईं हँकारि कै ॥

(२९) यात्राकी सफलताके लिये

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा ।
हृदयँ राखि कोसलपुर राजा ॥

(३०) परीक्षामें पास होनेके लिये

जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी ।
कबि उर अजिर नचावहिं बानी ॥
मोरि सुधारिहि सो सब भाँती ।
जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती ॥

(३१) आकर्षणके लिये

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू ।
सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू ॥

(३२) स्नानसे पुण्य-लाभके लिये

सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग ॥

(३३) निन्दाकी निवृत्तिके लिये

राम कृपाँ अवरेब सुधारी ।
बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी ॥

(३४) विद्या-प्राप्तिके लिये

गुरु गृहँ गए पढ़न रघुराई ।
अलप काल बिद्या सब आई ॥

(३५) उत्सव होनेके लिये

सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु ॥

(३६) यज्ञोपवीत धारण करके उसे सुरक्षित रखनेके लिये

जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग ।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग ॥

(३७) प्रेम बढ़ानेके लिये

सब नर करहिं परस्पर प्रीती ।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥

(३८) कातरकी रक्षाके लिये

मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ ।
एहिं अवसर सहाय सोइ होऊ ॥

(३९) भगवत्स्मरण करते हुए आरामसे मरनेके लिये

राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग ।
सुमन माल जिमि कंठ तें गिरत न जानइ नाग ॥

(४०) विचार शुद्ध करनेके लिये

ताके जुग पद कमल मनावउँ ।
जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ ॥

(४१) संशय-निवृत्तिके लिये

राम कथा सुंदर करतारी ।
संसय बिहग उड़ावनिहारी ॥

(४२) ईश्वरसे अपराध क्षमा करानेके लिये

अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता ।
छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता ॥

(४३) विरक्तिके लिये

भरत चरित करि नेमु तुलसी जे सादर सुनहिं ।
सीय राम पद प्रेमु अवसि होइ भव रस बिरति ॥

(४४) ज्ञान-प्राप्तिके लिये

छिति जल पावक गगन समीरा ।
पंच रचित अति अधम सरीरा ॥

(४५) भक्तिकी प्राप्तिके लिये

भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपासिंधु सुखधाम ।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ॥

(४६) श्रीहनुमान्‌जीको प्रसन्न करनेके लिये

सुमिरि पवनसुत पावन नामू ।
अपनें बस करि राखे रामू ॥

(४७) मोक्ष-प्राप्तिके लिये

सत्यसंध छाँड़े सर लच्छा ।
काल सर्प जनु चले सपच्छा ॥

(४८) श्रीसीतारामजीके दर्शनके लिये

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम ।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम ॥

(४९) श्रीजानकीजीके दर्शनके लिये

जनकसुता जगजननि जानकी ।
अतिसय प्रिय करुनानिधान की ॥

(५०) श्रीरामचन्द्रजीको वशमें करनेके लिये

केहरि कटि पट पीतधर सुषमा सील निधान ।
देखि भानुकुल भूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान ॥

(५१) सहज स्वरूप-दर्शनके लिये

भगत बछल प्रभु कृपा निधाना ।
बिस्वबास प्रगटे भगवाना ॥

अष्टाङ्ग हवनकी सामग्री

(१) चन्दनका बुरादा, (२) तिल, (३) शुद्ध घी, (४) शुद्ध चीनी, (५) अगर, (६) तगर, (७) कपूर, (८) शुद्ध केसर, (९) नागरमोथा, (१०) पञ्चमेवा, (११) जौ और (१२) चावल ।

जाननेकी बातें

जिस उद्देश्यके लिये जो चौपाई, दोहा या सोरठा जप करना बताया गया है, उसको सिद्ध करनेके लिये एक दिन अष्टाङ्ग हवनकी सामग्रीसे उस चौपाई, दोहे या सोरठेके द्वारा १०८ बार हवन करना चाहिये । यह हवन केवल एक ही दिन करना है । इसके लिये कोई अलग कुण्ड बनानेकी आवश्यकता नहीं है । मामूली शुद्ध मिट्टीकी बेदी बनाकर उसपर अग्नि रखकर उसमें आहुति दे देनी चाहिये। प्रत्येक आहुतिमें चौपाई आदिके अन्तमें 'स्वाहा' बोल देना चाहिये । यह हवन रातको १० बजेके बाद ही करना होगा ।

प्रत्येक आहुति लगभग पौन तोलेकी (सब चीजें मिलाकर) होनी चाहिये । इस हिसाबसे १०८ आहुतिके लिये एक सेर (८० तोले) सामग्री बारहों चीजें मिलाकर बना लेनी चाहिये । कोई चीज कम-ज्यादा हो तो कुछ आपत्ति नहीं । पञ्चमेवामें पिश्ता, बादाम, किसमिस (द्राक्षा), अखरोट और काँजू ले सकते हैं । इनमेंसे कोई चीज न मिले तो उसके बदलेमें नौजा या मिश्री मिला सकते हैं । केसर शुद्ध चार आने भर ही डालनेसे काम चल जायगा, अधिककी आवश्यकता नहीं है ।

हवन करते समय माला रखनेकी आवश्यकता एक सौ आठकी संख्या गिननेभरके लिये है । इसलिये दाहिने हाथसे आहुति देकर फिर दाहिने हाथसे ही मालाका एक मनका सरका देना चाहिये । फिर माला या तो बायें हाथमें ले लेनी चाहिये या आसनपर रख देनी चाहिये । फिर आहुति देनेके बाद उसे दाहिने हाथमें लेकर मनका सरका देना चाहिये । माला रखनेमें असुविधा हो तो गेहूँ, जौ या चावल आदिके १०८ दाने रखकर उनसे गिनती की जा सकती है । बैठनेके लिये आसन ऊनका अथवा कुशका होना चाहिये । सूती कपड़ेका हो तो वह धोया हुआ पवित्र होना चाहिये ।

मन्त्र सिद्ध करनेके लिये यदि लङ्काकाण्डकी चौपाई या

दोहा हो तो उसे शनिवारको हवन करके करना चाहिये। दूसरे काण्डोंके चौपाई-दोहे किसी भी दिन हवन करके सिद्ध किये जा सकते हैं। सिद्ध की हुई रक्षा-रेखाकी चौपाई एक बार बोलकर जहाँ बैठे हों, वहाँ अपने आसनके चारों ओर चौकोर रेखा जल या कोयलेसे खींच लेनी चाहिये। फिर उस चौपाईको भी ऊपर लिखे अनुसार एक सौ आठ आहुतियाँ देकर सिद्ध कर लेना चाहिये। पर रक्षा-रेखा न भी खींची जाय तो भी आपत्ति नहीं है। दूसरे कामके लिये दूसरा मन्त्र सिद्ध करना हो तो उसके लिये अलग हवन करके करना होगा।

एक दिन हवन करनेसे वह मन्त्र सिद्ध हो गया। इसके बाद जबतक कार्य सफल न हो, तबतक उस मन्त्र (चौपाई, दोहे) आदिका प्रतिदिन कम-से-कम एक सौ आठ बार प्रातःकाल या रात्रिको, जब सुविधा हो, जप करते रहना चाहिये; अधिक कर सके तो अधिक उत्तम। कोई चाहें तो नियमित जपके सिवा दिनभर चलते-फिरते भी उस चौपाई या दोहेका जप कर सकते हैं। जितना अधिक हो, उतना ही उत्तम है।

कोई दो-तीन कार्योंके लिये दो-तीन चौपाइयोंका अनुष्ठान एक साथ करना चाहें तो कर सकते हैं। पर उन चौपाइयोंको पहले अलग-अलग हवन करके सिद्ध कर लेना चाहिये।

स्त्रियाँ भी इस अनुष्ठानको कर सकती हैं, परंतु रजस्वला होनेकी स्थितिमें जप बंद रखना चाहिये। हवन भी रजस्वला अवस्थामें नहीं करना चाहिये।

जप करते समय मनमें यह विश्वास अवश्य रखना चाहिये कि भगवान् श्रीसीतारामजीकी अहैतुकी कृपासे मेरा कार्य अवश्य-अवश्य सफल होगा। विश्वासपूर्वक जप करनेपर सफल होनेकी पूरी आशा है।

स्त्री-सौभाग्यकी रक्षाके लिये

किसी भी श्रद्धाविश्वासयुक्त स्त्रीके द्वारा स्नानादिसे शुद्ध होकर सूर्योदयसे पहले नीचे लिखे मन्त्रकी श्रद्धा-विश्वासपूर्वक दस (१०८ दानोंकी) माला प्रतिदिन जप किये जानेसे घरमें सुख-समृद्धिकी वृद्धि होती है तथा उसका सौभाग्य बना रहता है। किसी शुभ दिन जपका आरम्भ करना चाहिये तथा प्रतिवर्ष चैत्र और आश्विनके नवरात्रोंमें विधिपूर्वक हवन करवाकर यथाशक्ति कुमारी, बटुक आदिको भोजनादिसे संतुष्ट करना चाहिये। इस मन्त्रके हवनमें समिधा केवल वट-वृक्षकी ही लेनी चाहिये। मन्त्र यह है—

ॐ ॐ ह्रीं ॐ क्रीं ह्रीं ॐ स्वाहा।

साथ ही नीचे लिखे 'सौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्र'का प्रतिदिन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक कम-से-कम एक पाठ करना चाहिये। इससे सौभाग्यकी रक्षा होती है।

अथ सौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

निशम्यैतज्जामदग्न्यो माहात्म्यं सर्वतोऽधिकम्।
स्तोत्रस्य भूयः पप्रच्छ दत्तात्रेयं गुरूत्तमम्॥ १॥
भगवंस्त्वन्मुखाम्भोजनिर्गमद्वाक्सुधारसम्।
पिबतः श्रोत्रमुखतो वर्धतेऽनुक्षणं तृषा॥ २॥
अष्टोत्तरशतं नाम्नां श्रीदेव्या यत्प्रसादतः।
कामः सम्प्राप्तवाँल्लोके सौभाग्यं सर्वमोहनम्॥ ३॥
सौभाग्यविद्यावर्णानामुद्धारो यत्र संस्थितः।
तत्समाचक्ष्व भगवन् कृपया मयि सेवके॥ ४॥
निशम्यैवं भार्गवोक्तिं दत्तात्रेयो दयानिधिः।
प्रोवाच भार्गवं रामं मधुराक्षरपूर्वकम्॥ ५॥
शृणु भार्गव यत्पृष्टं नाम्नामष्टोत्तरं शतम्।
श्रीविद्यावर्णरत्नानां निधानमिव संस्थितम्॥ ६॥
श्रीदेव्या बहुधा सन्ति नामानि शृणु भार्गव।
सहस्रशतसंख्यानि पुराणेष्वागमेषु च॥ ७॥
तेषु सारतरं ह्येतत् सौभाग्याष्टोत्तरात्मकम्।
यदुवाच शिवः पूर्वं भवान्यै बहुधार्थितः॥ ८॥
सौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रस्य भार्गव।
ऋषिरुक्तः शिवश्छन्दोऽनुष्टुप् श्रीललिताम्बिका॥९॥
देवता विन्यसेत् कूटत्रयेणावर्त्य सर्वतः।
ध्यात्वा सम्पूज्य मनसा स्तोत्रमेतदुदीरयेत्॥१०॥

अथ नाममन्त्राः

ॐ कामेश्वरी कामशक्तिः कामसौभाग्यदायिनी।
कामरूपा कामकला कामिनी कमलासना॥११॥
कमला कल्पनाहीना कमनीयकलावती।
कमलाभारतीसेव्या कल्पिताशेषसंसृतिः॥१२॥
अनुत्तरानघानन्ताद्भुतरूपानलोद्भवा।
अतिलोकचरित्रातिसुन्दर्यतिशुभप्रदा॥१३॥
अघहन्त्र्यतिविस्तारार्चनतुष्टामितप्रभा।
एकरूपैकवीरैकनाथैकान्तार्चनप्रिया॥१४॥
एकैकभावतुष्टैकरसैकान्तजनप्रिया।
एधमानप्रभावैधद्भक्तपातकनाशिनी॥१५॥

एलामोदसुखैनोऽद्रिशक्रायुधसमस्थितिः ।
ईहाशून्येप्सितेशादिसेव्येशानवराङ्गना ॥१६॥
ईश्वराज्ञापिकेकारभाव्येप्सितफलप्रदा ।
ईशानेतिहरेक्षेषदरुणाक्षीश्वरेश्वरी ॥१७॥
ललिता ललनारूपा लयहीना लसत्तनुः ।
लयसर्वा लयक्षोणिर्लयकर्त्री लयात्मिका ॥१८॥
लघिमा लघुमध्याढ्या ललमाना लघुद्रुता ।
हयारूढा हतामित्रा हरकान्ता हरिस्तुता ॥१९॥
हयग्रीवेष्टदा हालाप्रिया हर्षसमुद्धता ।
हर्षणा हल्लकाभाङ्गी हस्त्यन्तैश्वर्यदायिनी ॥२०॥
हलहस्तार्चितपदा हविर्दानप्रसादिनी ।
रामा रामार्चिता राज्ञी रम्या रवमयी रतिः ॥२१॥
रक्षिणी रमणी राका रमणीमण्डलप्रिया ।
रक्षिताखिललोकेशा रक्षोगणनिषूदिनी ॥२२॥
अम्बान्तकारिण्यम्भोजप्रियान्तकभयंकरी ।
अम्बुरूपाम्बुजकराम्बुजजातवरप्रदा ॥२३॥
अन्तःपूजाप्रियान्तःस्थरूपिण्यन्तर्वचोमयी ।
अन्तकारातिवामाङ्कस्थितान्तस्सुखरूपिणी ॥२४॥
सर्वज्ञा सर्वगा सारा समा समसुखा सती ।
संततिः संतता सोमा सर्वा सांख्या सनातनी ॐ॥२५॥
एतत् ते कथितं राम नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
अतिगोप्यमिदं नाम्नां सर्वतः सारमुद्धृतम् ॥२६॥
एतस्य सदृशं स्तोत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
अप्रकाश्यमभक्तानां पुरतो देवताद्विषाम् ॥२७॥
एतत् सदाशिवो नित्यं पठन्त्यन्ये हरादयः ।
एतत्प्रभावात् कंदर्पस्त्रैलोक्यं जयति क्षणात् ॥२८॥
सौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं मनोहरम् ।
यस्त्रिसंध्यं पठेन्नित्यं न तस्य भुवि दुर्लभम् ॥२९॥
श्रीविद्योपासनवतामेतदावश्यकं मतम् ।
सकृदेतत् प्रपठतां नान्यत् कर्म विलुप्यते ॥३०॥
अपठित्वा स्तोत्रमिदं नित्यं नैमित्तिकं कृतम् ।
व्यर्थीभवति नग्नेन कृतं कर्म यथा तथा ॥३१॥
सहस्रनामपाठादावशक्तस्त्वेतदीरयेत् ।
सहस्रनामपाठस्य फलं शतगुणं भवेत् ॥३२॥
सहस्रधा पठित्वा तु वीक्षणान्नाशयेद्रिपून् ।
करवीररक्तपुष्पैर्हुत्वा लोकान् वशं नयेत् ॥३३॥
स्तम्भयेत् पीतकुसुमैर्नीलैरुच्चाटयेद् रिपून् ।
मरिचैर्विद्वेषणाय लवङ्गैर्व्याधिनाशने ॥३४॥
सुवासिनीर्ब्राह्मणान् वा भोजयेद् यस्तु नामभिः ।
यश्च पुष्पैः फलैर्वापि पूजयेत् प्रतिनामभिः ॥३५॥
चक्रराजेऽथवान्यत्र स वसेच्छ्रीपुरे चिरम् ।
यः सदाऽऽवर्तयन्नास्ते नामाष्टशतमुत्तमम् ॥३६॥
तस्य श्रीललिता राज्ञी प्रसन्ना वाञ्छितप्रदा ।
एतत्ते कथितं राम शृणु त्वं प्रकृतं ब्रुवे ॥३७॥

इति श्रीत्रिपुरारहस्ये श्रीसौभाग्याष्टोत्तरशतनाम-
स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

महान् शोकको निवृत्त करनेवाली प्रार्थना-विधि

(लेखक——राजज्योतिषी पं० श्रीमुकुन्दवल्लभजी ज्यौतिषाचार्य)

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः'—संसारकी नश्वरताका प्रतीक यह भगवद्-वाक्य अटल है। इस भगवद्-वाक्यके मर्मज्ञ ज्ञानीजन अन्तश्चेतनाके द्वारा किसीके मरण-वियोगजन्य दुःखसे विचलित नहीं होते। इससे विपरीत, माया-मोहमें लिप्त साधारण सांसारिक जीव प्रभुके इस संसार-चक्रको न समझते हुए किसी आत्मीयस्वजनके असामयिक निधन-शोकसे अति व्याकुल होकर रोते-बिलखते देखे जाते हैं। उनके मनमें अहोरात्र अशान्तिकी आग जलती रहती है। सान्त्वना तथा ज्ञानकी तात्कालिक बातें उन्हें अत्यल्प मात्रामें ही लाभ पहुँचा सकती हैं। उन अल्पज्ञ सांसारिक मनुष्योंको मरण-वियोगजन्य घोरशोकार्णवसे बचानेके लिये करुणासागर पूज्य महर्षियोंने अनेक उपायोंमेंसे एक सहज प्रार्थना-विधान भी बतलाया है, जिसके प्रयोगसे खिन्न-हृदय सांसारिक जीव परलोकगत प्रियजनकी दुःख-रूप स्मृतिको शनैः-शनैः भूल-कर शोक-संतप्त विह्वल मनसे शान्तिके स्रोतको प्राप्त करता है।

प्रयोगके लिये किसी भी शुक्लाष्टमीको तीन पल[1] अच्छे लोहेके तीन अङ्गुल परिमित पत्रपर त्रिशूलका आकार अङ्कित करा रक्खे। आवश्यकता पड़नेपर उस त्रिशूलाङ्कित लोहपत्रको खूब (लाल) गरम करके पीतलके पात्रमें रक्खे हुए शुद्ध शीतल जलमें ठंढा करे एवं साथ ही निम्नाङ्कित मन्त्रके साथ प्रार्थना करे—

मन्त्र—

ॐ क्लीं श्रीं या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः क्लीं श्रीं ॐ ॥

१. एक पल तीन तोले चवतीस रत्तीका होता है।

'हे दयामयी जगदम्बे ! जिस प्रकार यह गरम लोहा जलमें ठंढा होता है, इसी प्रकार परलोकगत 'अमुक' के वियोगजन्य 'अमुक' के शोकार्त हृदयको ठंढा करें, शान्ति प्रदान करें।'

ऐसे ही यह प्रक्रिया (मन्त्रके साथ प्रार्थना-वाक्य पढ़ते हुए त्रिशूलाङ्कित लोहपत्रको तपाकर जलमें बुझाना) तीन बार करके फिर उस अभिमन्त्रित जलका अधिक भाग वियोग-जन्य शोक-संतप्त व्यक्तिको पिला दें और शेष जलसे उसके मुख एवं मस्तकको धुलायें तथा कुछ बूँदें हृदयपर छिड़क दें।

ऐसे ही दिनमें दो बार प्रातः-सायं करते रहनेसे तीन दिनोंमें ही महामोहजन्य दुःख धीरे-धीरे शान्त होने लगेगा।

नोट—यदि कोई शोकार्त व्यक्ति कुशाके आसनपर बैठकर उपर्युक्त बीजद्वययुक्त मन्त्रकी ही तीन मालाएँ प्रातः एवं तीन मालाएँ सायंकालको उत्तराभिमुख होकर एकाग्रचित्त-से जप करेगा, तो भी उसे निस्संदेह अभूतपूर्व शान्तिकी प्राप्ति होगी।

(१)

रोग और सब प्रकारकी व्याधिका नाश करनेके लिये

मां भयात् सर्वतो रक्ष श्रियं वर्धय सर्वदा।
शरीरारोग्यं मे देहि देवदेव नमोऽस्तु ते॥

—इस मन्त्रको हाथमें किसी बर्तनमें जल लेकर बर्तनपर हाथ रखकर सात बार उच्चारण करके उस जलको पी लिया जाय। विश्वासपूर्वक इस प्रकार करनेसे शरीर आरोग्य हो जाता है।

(२)

ॐ नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुण्ठमेधसे।
सर्वव्याधिविनाशाय प्रभो माममृतं कृधि॥

—इस मन्त्रका प्रातःकाल उठते ही प्रतिदिन बिना किसीसे बोले सर्वप्रथम तीन बार जप कर ले। इससे बड़े-बड़े अनिष्ट शान्त हो जाते हैं। अनुष्ठानके लिये इसका ५१,००० जप और दशांशके लिये ५१०० जप या आहुति आवश्यक है।

(३)

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥

'ॐ ह्लीं तेजसे रां तारकब्रह्म स्वाहा'—उपर्युक्त चौपाईसहित इस मन्त्रका प्रतिदिन १०८ बार जाप करे, जबतक रोग दूर न हो जाय। अथवा उपर्युक्त चौपाईका सम्पुट देकर रामचरितमानसका नवाह्न या मासिक पाठ सुविधानुसार करे।

(४)

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नमः सर्वाधाराय भगवते अस्य मम (............) सर्वरोगविनाशाय ज्वल ज्वल एनं दीर्घायुषं कुरु कुरु स्वाहा।

सर्वाधाराय शान्ताय नमः परमब्रह्मणे।
दीर्घायुष्यं प्रयच्छास्य सर्वान् रोगान् विनाशय॥

उपर्युक्त मन्त्रमें 'मम'के आगे जिसके लिये जप करना हो उसके सम्बन्ध, नाम, गोत्र बैठाकर जप करे या कराये। सवा लाख जप पूरा होना चाहिये। जप करनेवाला ब्रह्मचर्यका पालन करे।

(५)

ॐ क्लीं रां हुं फट्—रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम। रोगान् नाशय मे क्षिप्रं श्रियं दासस्य देहि मे ॐ क्लीं रां हुं फट्।

इस मन्त्रका प्रतिदिन ११०० जप ४१ दिनतक करे या कराये। तदनन्तर श्वेत दूर्वा, गुग्गुल और घृतसे दशांशका हवन करके कम-से-कम चार ब्राह्मणोंको भोजन करवा दे। जप करनेवाला ब्रह्मचर्यसे रहे।

(६)

ज्वरसे विमुक्तिके लिये

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसंनिभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥

भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करके उपर्युक्त मन्त्रका १०८ बार विश्वासपूर्वक जप करनेसे ज्वर उतर जाता है।

(७)

ज्वरसे विमुक्तिके लिये

ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः क्रोधेश्वराय नमो ज्योतिःपतङ्गाय नमो नमः सिद्धिरुद्र आज्ञापयति स्वाहा।

हाथमें सरसोंके दाने चुटकीभर लेकर इस मन्त्रको सात बार पढ़कर जिसको एकांतरा, तिजरा या चौथिया ज्वर आता हो, उसके शरीरपर फूंक दे, छिड़क दे। इस प्रकार सात बार करे।

(८)

ज्वर-नाशके लिये

ज्वर उवाच

नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशं
सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम्।
विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं
यत्तद् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम्॥
कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो
द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः।
तत्संघातो बीजरोहप्रवाह-
स्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये॥
नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नै-
र्देवान् साधूँल्लोकसेतून् बिभर्षि।
हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान्
जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः॥
तप्तोऽहं ते तेजसा दुस्सहेन
शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण।
तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं
नो सेवेरन् यावदाशानुबद्धाः॥

श्रीभगवानुवाच

त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद् भयम्।
यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद् भयम्॥
इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः।

(श्रीमद्भागवत १०। ६३। २५–२९½)

ज्वरने कहा—प्रभो! आपकी शक्ति अनन्त है। आप ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी परम महेश्वर हैं। आप सबके आत्मा और सर्वस्वरूप हैं। आप अद्वितीय और केवल ज्ञानस्वरूप हैं। संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण आप ही हैं। श्रुतियोंके द्वारा आपका ही वर्णन और अनुमान किया जाता है। आप समस्त विकारोंसे रहित स्वयं ब्रह्म हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। काल, दैव (अदृष्ट), कर्म, जीव, स्वभाव, सूक्ष्मभूत, शरीर, सूत्रात्मा, प्राण, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियाँ और पञ्चभूत—इन सबका संघात लिङ्ग-शरीर और बीजाङ्कुरन्यायके अनुसार उससे कर्म और कर्मसे फिर लिङ्गशरीरकी उत्पत्ति—यह सब आपकी माया है। आप मायाके निषेधकी परम अवधि हैं। मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। प्रभो! आप अपनी लीलासे ही अनेकों रूप धारण कर लेते हैं और देवता, साधु तथा लोक-मर्यादाओंका पालन-पोषण करते हैं। साथ ही उन्मार्गगामी और हिंसक असुरोंका संहार भी करते हैं। आपका यह अवतार पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही हुआ है। प्रभो! आपके शान्त, उग्र और अत्यन्त भयानक दुस्सह तेज ज्वरसे मैं अत्यन्त संतप्त हो रहा हूँ। भगवन्! देहधारी जीवोंको तभीतक ताप-संताप रहता है, जबतक वे आशाके फंदोंमें फँसे रहनेके कारण आपके चरण-कमलोंकी शरण नहीं ग्रहण करते।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—त्रिशिरा! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। अब तुम मेरे ज्वरसे निर्भय हो जाओ। संसारमें जो कोई हम दोनोंके संवादका स्मरण करेगा, उसे तुमसे कोई भय न रहेगा। भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर माहेश्वरज्वर उन्हें प्रणाम करके चला गया।

उपर्युक्त श्लोकोंका अर्थसहित पाठ करनेसे तथा उक्त प्रसङ्गका स्मरण करनेसे एवं भगवान्‌से प्रार्थना करनेसे ज्वरका नाश होता है।

(९)

सब प्रकारके रोग-नाशके लिये प्रतिदिन पाँच पाठ करने चाहिये।

श्रीसूर्यस्तवराज

वसिष्ठ उवाच

स्तुवंस्तत्र ततः साम्बः कृशो धमनिसंततः।
राजन् नामसहस्रेण सहस्रांशुं दिवाकरम्॥
खिद्यमानस्तु तं दृष्ट्वा सूर्यः कृष्णात्मजं तदा।
स्वप्ने तु दर्शनं दत्त्वा पुनर्वचनमब्रवीत्॥

सूर्य उवाच

साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु जाम्बवतीसुत॥
अलं नामसहस्रेण पठस्वेमं स्तवं शुभम्॥
यानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च।
तानि ते कीर्तयिष्यामि श्रुत्वा वत्सावधारय॥
ॐ नमः श्रीसूर्यस्तवराजस्तोत्रस्य वसिष्ठ ऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीसूर्यो देवता सर्वपापक्षयपूर्वकसर्वरोगोपशमनार्थे विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ रथस्थं चिन्तयेद्भानुं द्विभुजं रक्तवाससम्।
दाडिमीपुष्पसंकाशं पद्मादिभिरलंकृतम्॥
ॐ विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः॥
लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा।
तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः।
एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टः सदा मम॥
श्रीरारोग्यकरश्चैव धनवृद्धियशस्करः।
स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥
य एतेन महाबाहो द्वे संध्येऽस्तमनोदये।
स्तौति मां प्रणतो भूत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
कायिकं वाचिकं चैव मानसं चैव दुष्कृतम्।
एकजप्येन तत्सर्वं प्रणश्यति ममाग्रतः॥
एष जप्यश्च होमश्च संध्योपासनमेव च।
बलिमन्त्रोऽर्घ्यमन्त्रश्च धूपमन्त्रस्तथैव च॥
अन्नप्रदाने स्नाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे।
पूजितोऽयं महामन्त्रः सर्वव्याधिहरः शुभः॥
एवमुक्त्वा तु भगवान् भास्करो जगदीश्वरः।
आमन्त्र्य कृष्णतनयं तत्रैवान्तरधीयत॥
साम्बोऽपि स्तवराजेन स्तुत्वा सप्ताश्ववाहनम्।
पूतात्मा नीरुजः श्रीमान् तस्माद् रोगाद् विमुक्तवान्॥

इति श्रीसाम्बपुराणे रोगापनयने श्रीसूर्यवक्त्रविनिर्गतः श्रीसूर्यस्तवराजः समाप्तः।

बालककी रोगशान्तिके लिये

(१)

दामोदरः पातु पादौ जानुनी विष्टरश्रवाः।
ऊरू पातु हरिर्नाभिं परिपूर्णतमः स्वयम्॥
कटिं राधापतिः पातु पीतवासास्तवोदरम्।
हृदयं पद्मनाभश्च भुजौ गोवर्द्धनोद्धरः॥
मुखं च मथुरानाथो द्वारकेशः शिरोऽवतु।
पृष्ठं पात्वसुरध्वंसी सर्वतो भगवान् स्वयम्॥

गङ्गाजल या गोमूत्र हाथमें अथवा किसी शुद्ध पात्रमें लेकर उपर्युक्त श्लोकोंको पढ़ता हुआ उस जलको बालकके प्रत्येक अङ्गसे लगाकर थोड़ा-सा उसके मुखमें डाल दे और बाकी जलको उसकी शय्याके चारों ओर छिड़क दे। फिर गायकी पूँछसे बच्चेको झाड़ दे। इस प्रकार करनेसे बच्चेके सभी रोग और ग्रह-बाधा आदि शान्त हो जाते हैं।

(२)

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा जब राक्षसी पूतना मारी गयी, तब श्रीयशोदा और श्रीरोहिणीके साथ गोपियोंने गायकी पूँछ घुमाकर बालक श्रीकृष्णके अङ्गोंकी सब प्रकारसे रक्षा की। उन्होंने बालक श्रीकृष्णको गोमूत्रसे नहलाया और फिर सब अङ्गोंपर गो-रज लगाया। तदनन्तर बारहों अङ्गोंमें गोबर लगाकर भगवान् केशव आदि नामोंसे रक्षा की। इसके बाद गोपियोंने आचमन करके 'अज' आदि ग्यारह बीज-मन्त्रोंसे अपने शरीरोंमें अलग-अलग अङ्गन्यास एवं करन्यास किया और फिर बालकके अङ्गोंमें बीजन्यास किया। उन्होंने फिर निम्नलिखित स्तवसे उनकी रक्षा की—

अव्यादजोऽङ्घ्रि मणिमांस्तव जान्वथोरू
यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः।
हृत् केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं
विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम्॥
चक्र्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्
त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाजनश्च।
कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपर्युपेन्द्र-
स्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात्॥
इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान् नारायणोऽवतु।
श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु॥
पृश्निगर्भस्तु ते बुद्धिमात्मानं भगवान् परः।
क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः॥
व्रजन्तमव्याद् वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः।
भुञ्जानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रहभयंकरः॥
डाकिन्यो यातुधान्यश्च कुष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः।
भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः॥
कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः।
उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियद्रुहः॥
स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये।
सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः॥

वे कहने लगीं—अजन्मा भगवान् तेरे पैरोंकी रक्षा करें, मणिमान् घुटनोंकी, यज्ञपुरुष जाँघोंकी, अच्युत कमरकी, हयग्रीव पेटकी, केशव हृदयकी, ईश वक्षःस्थलकी, सूर्य कण्ठकी, विष्णु बाँहोंकी, उरुक्रम मुखकी और ईश्वर सिरकी

रक्षा करें। चक्रधर भगवान् रक्षाके लिये तेरे आगे रहें, गदाधारी श्रीहरि पीछे, क्रमशः धनुष और खड्ग धारण करनेवाले भगवान् मधुसूदन और अजन दोनों बगलमें, शङ्खधारी उरुगाय चारों कोनोंमें, उपेन्द्र ऊपर, हलधर पृथ्वीपर और भगवान् परमपुरुष तेरे सब ओर रक्षाके लिये रहें। हृषीकेश भगवान् इन्द्रियोंकी और नारायण प्राणोंकी रक्षा करें। श्वेतद्वीपके अधिपति चित्तकी और योगेश्वर मनकी रक्षा करें। पृश्निगर्भ तेरी बुद्धिकी और परमात्मा भगवान् तेरे अहंकारकी रक्षा करें। खेलते समय गोविन्द रक्षा करें, सोते समय माधव रक्षा करें। चलते समय भगवान् वैकुण्ठ और बैठते समय भगवान् श्रीपति तेरी रक्षा करें। भोजनके समय समस्त ग्रहोंको भयभीत करनेवाले यज्ञभोक्ता भगवान् तेरी रक्षा करें। डाकिनी, राक्षसी और कूष्माण्डा आदि बालग्रह, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस और विनायक, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृका आदि; शरीर, प्राण तथा इन्द्रियोंका नाश करनेवाले उन्माद (पागलपन) एवं अपस्मार (मृगी) आदि रोग; स्वप्नमें देखे हुए महान् उत्पात, वृद्धग्रह और बालग्रह आदि—ये सभी अनिष्ट भगवान् विष्णुका नामोच्चारण करनेसे भयभीत होकर नष्ट हो जायँ।

(श्रीमद्भागवत १० । ६ । २२-२९)

उपर्युक्त कवचके द्वारा बालककी रक्षा करनेपर उसकी आधि-व्याधि दूर होनेमें बड़ी सफलता मिलती है।

(३)

बालकके ज्वर-नाशके लिये

गूगल, बच, कूट, मैनसिल, शिलाजीत, हल्दी, आमीहल्दी, नीमके पत्ते और शहद—(सब चीजें असली होनी चाहिये) सबको बराबर मात्रामें कूटकर असली घृतमें मिलाकर धूप बना ले और ज्वर होनेपर—'दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज काहू नहिं ब्यापा॥' का १०८ बार जप करके अग्निमें डालकर रोगीके समीप धूप दे तो ज्वरका वेग, विशेषरूपसे बालकोंके ज्वरका जोर तुरंत ही नष्ट हो जाता है और बालक नीरोग होता है।

(१)

सब अनिष्टोंके नाशके लिये

ॐ नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुण्ठमेधसे।
सर्वव्याधिविनाशाय प्रभो माममृतं कृधि॥

—इस मन्त्रका प्रतिदिन प्रातःकाल जगते ही बि[illegible] किसीसे कुछ बोले तीन बार जप करनेसे सब अनिष्टका ना[illegible] होता है। इसका अनुष्ठान ५१००० मन्त्रजप तथा ५१० दशांश हवनसे सम्पन्न हो जाता है।

(२)

विपत्ति-नाशके लिये

राजिवनयन धरे धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक।

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥

ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर स्नान करके प्रतिदिन उपर्युक्त अर्धालीसहित मन्त्रकी सात माला (१०८ दानेकी प्रत्येक) जप करना चाहिये और प्रत्येक मालाकी समाप्तिपर धूप-गुग्गुलकी अग्निमें आहुति देनी चाहिये। सातों माला पूरी होनेपर उस भस्मको यत्नसे उठाकर रख लेना चाहिये और प्रतिदिन कार्यमें लगते समय उसे ललाटपर लगा लेना चाहिये। यह जप तथा भस्म-धारण प्रतिदिन करते रहनेसे विपत्तियोंका नाश और कार्यमें सफलताकी प्राप्ति होती है।

(३)

सब प्रकारकी विपत्तियोंके नाशके लिये और सुख-सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नमो भगवते हनुमते मम कार्येषु ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल असाध्यं साधय साधय मां रक्ष रक्ष सर्वदुष्टेभ्यो हुं फट् स्वाहा।

मङ्गलवारसे प्रारम्भ करके इस मन्त्रका प्रतिदिन १०८ बार जप करता रहे और कम-से-कम सात मङ्गलवारतक तो अवश्य करे। इससे इसके फलस्वरूप घरका पारस्परिक विग्रह मिटता है, दुष्टोंका निवारण होता है और बड़ा कठिन कार्य भी आसानीसे सफल हो जाता है।

(४)

पुनि मन बचन करम रघुनायक। चरन कमल बंदौं सब लायक॥
राजिवनयन धरे धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक॥

ॐ नमो भगवते सर्वेश्वराय श्रियः पतये नमः।

उपर्युक्त चौपाईसहित इस मन्त्रका प्रतिदिन १०८ बार कम-से-कम जप करे। इससे विपत्तिनाश, सुखलाभ और स्त्रियोंके द्वारा जपे जानेपर उनका सौभाग्य अचल होता है।

(५)

विपत्ति-नाशके लिये

हे कृष्ण द्वारकावासिन् क्वासि यादवनन्दन।
आपद्भिः परिभूतां मां त्रायस्वाशु जनार्दन॥

इस मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार स्वयं जप करे। कुछ दिन जपनेके बाद स्वप्नमें आदेश होना सम्भव है। अनुष्ठानके लिये ५१००० जप और दशांशके लिये ५१०० जप या आहुतियाँ आवश्यक हैं।

(६)

संकट दूर होनेके लिये

हा कृष्ण द्वारकावासिन् क्वासि यादवनन्दन।
आपद्भिः परिभूतां मां त्रायस्वाशु जनार्दन॥
हा कृष्ण द्वारकावासिन् क्वासि यादवनन्दन।
कौरवैः परिभूतां मां किं न त्रायसि केशव॥

उपर्युक्त दोनों मन्त्रोंका ३२ हजार जप करनेसे बड़े-बड़े संकट दूर हो जाते हैं।

(७)

अकस्मात् आयी विपत्तिके निवारणके लिये

हनूमन् सर्वधर्मज्ञ सर्वकार्यविधायक।
अकस्मादागतोत्पातं नाशयाशु नमोऽस्तु ते॥

अथवा

हनूमन्नञ्जनीसूनो वायुपुत्र महाबल।
अकस्मादागतोत्पातं नाशयाशु नमोऽस्तु ते॥

प्रतिदिन तीन हजारके हिसाबसे ११ दिनोंमें ३३ हजार जप हो, फिर ३३०० दशांश हवन या जप करके ३३ ब्राह्मणोंको भोजन करवाया जाय। इससे अकस्मात् आयी हुई विपत्ति सहज ही टल जाती है।

(१)

विघ्ननाशपूर्वक सर्वार्थ-सिद्धिके लिये

ॐ गं गणपतये नमः।

श्रीगणेशजीका पूजन करके या उन्हें नमस्कार करके उपर्युक्त मन्त्रका प्रतिदिन भोजनसे पूर्व शुद्ध होकर पाँच हजार जप करे। यों २५० दिनों तक करनेका विधान है। कम-से-कम २५ दिन तो करना ही चाहिये। अनुष्ठानके समय ब्रह्मचर्यका पालन आवश्यक है।

(२)

सर्वकार्यकी सिद्धिके लिये

ॐ कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

प्रतिदिन विधिवत् भगवान् श्रीकृष्णका या भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करके उपर्युक्त मन्त्रका १२ दिनोंमें २५००० जप करनेसे स्वप्नके द्वारा कार्यसिद्धिका ज्ञान होता है।

(३)

अनिष्टनाशपूर्वक सर्वार्थसिद्धिके लिये

ॐ रां श्रीं ऐं नमो भगवते वासुदेवाय ममानिष्टं नाशय नाशय मां सर्वसुखभाजनं सम्पादय सम्पादय हुं हुं श्रीं ऐं फट् स्वाहा। इस मन्त्रका प्रतिदिन १०८ बार जप करना चाहिये।

(४)

अभीष्टकी सिद्धिके लिये

नमः सर्वनिवासाय सर्वशक्तियुताय ते।
ममाभीष्टं कुरुष्वाशु शरणागतवत्सल॥

इस मन्त्रका २१००० बार जप करना या कराना चाहिये तथा दशांशके लिये २१०० जप अथवा हवन करना चाहिये।

(५)

सब प्रकारकी मनोकामनाकी पूर्तिके लिये

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नमो भगवते राधाप्रियाय राधारमणाय गोपीजनवल्लभाय ममाभीष्टं पूरय पूरय हुं फट् स्वाहा—इस मन्त्रको कदम्बकाष्ठकी छोटी पीठिका (चौकी) पर अष्टगन्ध अथवा कपूर और केशरसे अनारकी कलमसे लिखकर षोडशोपचारसे पूजन करे। परंतु प्रतिदिनका जप १८०० से कम नहीं होना चाहिये। कुल जप-संख्या सवा लाख है। फिर साढ़े बारह हजार दशांश होमके लिये जप करना चाहिये।

(६)

रामो विरामो विरजो मार्गो नेयो नयोऽनयः।
रक्षां कुरु श्रियं देहि त्राहि मां शरणागतम्॥

उपर्युक्त मन्त्रके द्वारा प्रतिश्लोकको आद्यन्तमें सम्पुटित करके 'विष्णुसहस्रनाम'के २१ पाठ प्रतिदिन किसी भी मनोऽभिलाषाकी पूर्तिके लिये किया जाय। पाठ करनेसे पूर्व भगवान् विष्णुके चित्रपटका पञ्चोपचारसे पूजन कर लिया जाय।

दरिद्रताके नाश तथा धन-सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये

(१)

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रियै नमो भगवति मम समृद्धौ ज्वल ज्वल मां सर्वसम्पदं देहि देहि ममालक्ष्मीं नाशय नाशय हुं फट् स्वाहा।

इस मन्त्रसे सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहणके समय १०८ घृतकी आहुति देकर मन्त्र सिद्ध कर लेना चाहिये। फिर प्रतिदिन १०८ मन्त्रका जाप करते रहना चाहिये।

विपत्ति-नाश, सर्वकार्य-सिद्धि और धन-प्राप्तिके लिये

(२)

ॐ ह्रीं श्रीं ठं ठं ठं नमो भगवते मम सर्वकार्याणि साधय साधय मां रक्ष रक्ष शीघ्रं मां धनिनं कुरु कुरु हुं फट् श्रियं देहि प्रज्ञां देहि ममापत्ति निवारय निवारय स्वाहा।

—उपर्युक्त मन्त्रसे सात बिल्वपत्र (त्रिदल) शिवलिङ्गपर चढ़ाने चाहिये। लिङ्ग पार्थिव हो या शिवालयमें प्रतिष्ठित हो। बिल्वपत्र चढ़ानेके बाद इसी मन्त्रका १०८ बार जप करना चाहिये। जप घरपर कर सकते हैं या मन्दिरमें जाकर। उपयुक्त स्थान हो तो मन्दिरमें ही करना चाहिये। जबतक कार्य सिद्ध न हो, प्रतिदिन जप करते रहना चाहिये।

धन-सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये

(३)

कुबेर त्वं धनाधीश गृहे ते कमला स्थिता।
तां देवीं प्रेषयाशु त्वं मद्गृहे ते नमो नमः॥

कमलका फूल, श्वेत दूर्वा, गूगल, गो-घृत—इन सब चीजोंको मिलाकर लगातार २१ दिनोंतक प्रतिदिन १०८ बार मन्त्रजप करके हवन करे।

(४)

ॐ श्रीं श्रियै नमः स्वाहा।

—इस मन्त्रसे श्रीवाल्मीकीय रामायण, सुन्दरकाण्डके प्रत्येक श्लोकके अन्तमें श्लोक पढ़कर घीकी आहुति अग्निमें देनी चाहिये। तदनन्तर सर्ग समाप्त होनेपर—

ॐ रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते॥

श्रीं श्रियै नमः, मह्यं श्रियं देहि देहि दापय दापय स्वाहा।

इस मन्त्रसे सर्गके जितने श्लोक हों, उतनी घीकी आहुति देनी चाहिये। इस अनुष्ठानका आरम्भ दीपमालिकाकी रात्रिको दीपक जला देनेके पश्चात् करना चाहिये।

आठ दिनोंतक प्रतिदिन सात सर्गोंका और नवें दिन बारह सर्गका पाठ करके नौ दिनोंमें पाठ पूरा करना चाहिये। अथवा प्रतिदिन सात, तीन या एक सर्गका (सुविधानुसार) पाठ करके अड़सठ दिनोंमें सात, तीन या एक पाठ पूरे करने चाहिये। इस प्रयोगसे लक्ष्मीकी वृद्धि होती है।

(५)

ॐ तारात्रिपुरायै नमः ऋद्धिं वृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।

*इस मन्त्रकी ११ (१०८ दानेकी) मालाका जाप प्रति-*दिन रात्रिको दस बजेके बाद करना चाहिये। जप करते समय दीपक जलते रहना चाहिये और अपने सुविधानुसार किसी भी चीजका पूरा तीन पाव (साठ तोले) भोग लगाकर जप पूरा होनेके बाद सबको बाँट देना चाहिये।

दरिद्रता-नाशक तथा धन-सम्पत्ति-दायक स्तोत्र

(६)

शाण्डिल्य मुनिने एक दरिद्र पुत्रकी मातासे कहा—'शिवजीकी प्रदोषकालके अन्तर्गत की गयी पूजाका फल श्रेष्ठ होता है। जो प्रदोषकालमें शिवकी पूजा करते हैं, वे इसी जन्ममें धन-धान्य, कुल-सम्पत्तिसे समृद्ध हो जाते हैं। ब्राह्मणी! तुम्हारा पुत्र पूर्वजन्ममें ब्राह्मण था। इसने अपना सारा जीवन दान लेनेमें बिताया। इस कारण इस जन्ममें इसे दारिद्र्य मिला। अब उस दोषका निवारण करनेके लिये इसे भगवान् शंकरकी शरणमें जाना चाहिये।'

मुनिके यों कहनेपर ब्राह्मणीने निवेदन किया—'मुनिवर! कृपया आप हमें शिव-पूजनकी विधि बताइये।'

शाण्डिल्य मुनि बोले—'दोनों पक्षोंकी त्रयोदशीको मनुष्य

निराहार रहे और सूर्योदयसे तीन घड़ी पूर्व स्नान कर ले। फिर श्वेत वस्त्र धारण करके धीर पुरुष संध्या और जप आदि नित्यकर्मकी विधि पूरी करे। तदनन्तर मौन हो शास्त्रविधिका पालन करते हुए शिवकी पूजा प्रारम्भ करे। भगवत्-विग्रहके आगेकी भूमिको खूब लीप-पोतकर शुद्ध करे। उस स्थलको धौतवस्त्र, फूल एवं पत्रोंसे खूब सजाये। इसके पश्चात् पवित्र भावसे शास्त्रोक्त मन्त्र-द्वारा देवपीठको आमन्त्रित करे। इसके पश्चात् मातृकान्यासादि विधियोंको पूर्ण करे। फिर हृदयमें अनन्त आदि न्यास करके देवपीठपर मन्त्रका न्यास करके हृदयमें एक कमलकी भावना करे। वह कमल नौ शक्तियोंसे युक्त परम सुन्दर हो। उसी कमलकी कर्णिकामें कोटि-कोटि चन्द्रमाके समान प्रकाशमान भगवान् शिवका ध्यान करे। भगवान् शिवके तीन नेत्र हैं। मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट शोभायमान है। जटाजूट कुछ-कुछ पीला हो रहा है। सर्पोंके हारसे उनकी शोभा बढ़ रही है। उनके कण्ठमें नीला चिह्न है। उनके एक हाथमें वरद तथा दूसरेमें अभय-मुद्रा है। वे व्याघ्रचर्म पहने रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। उनके वाम भागमें भगवती उमाका चिन्तन करे। इस प्रकार युगल दम्पतिका ध्यान करके उनकी मानसिक पूजा करे। इसके बाद सिंहासनपर स्थित महादेवजीका पूजन प्रारम्भ करे। पूजाके आरम्भमें एकाग्रचित्त हो संकल्प पढ़े। तदनन्तर हाथ जोड़कर मन-ही-मन उनका आह्वान करे—'हे भगवान् शंकर! आप ऋण, पातक, दुर्भाग्य, दरिद्रता आदिकी निवृत्तिके लिये मुझपर प्रसन्न हों।' इसके पश्चात् गिरिजापतिकी प्रार्थना इस प्रकार करे—

जय देव जगन्नाथ जय शंकर शाश्वत।
जय सर्वसुराध्यक्ष जय सर्वसुरार्चित॥
जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रद।
जय नित्यनिराधार जय विश्वम्भराव्यय॥
जय विश्वैकवेद्येश जय नागेन्द्रभूषण।
जय गौरीपते शम्भो जय चन्द्रार्धशेखर॥
जय कोट्यर्कसंकाश जयानन्तगुणाश्रय।
जय रुद्र विरूपाक्ष जयाचिन्त्य निरञ्जन॥
जय नाथ कृपासिन्धो जय भक्तार्तिभञ्जन।
जय दुस्तरसंसारसागरोत्तारण प्रभो॥
प्रसीद मे महादेव संसारार्तस्य खिद्यतः।
सर्वपापभयं हृत्वा रक्ष मां परमेश्वर॥
महादारिद्र्यमग्नस्य महापापहतस्य च।
महाशोकविनष्टस्य महारोगातुरस्य च॥
ऋणभारपरीतस्य दह्यमानस्य कर्मभिः।
ग्रहैः प्रपीड्यमानस्य प्रसीद मम शंकर॥
(स्क० पु० ब्रा० ब्रह्मो० ७। ५९—६६)

'देव! जगन्नाथ! आपकी जय हो। सनातन शंकर! आपकी जय हो। सम्पूर्ण देवताओंके अधीश्वर! आपकी जय हो। सर्वदेवपूजित! आपकी जय हो। सर्वगुणातीत! आपकी जय हो। सबको वर देनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। नित्य, आधाररहित, अविनाशी विश्वम्भर! आपकी जय हो, जय हो। सम्पूर्ण विश्वके लिये एकमात्र जानने योग्य महेश्वर! आपकी जय हो। नागराज वासुकिको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। गौरीपते! आपकी जय हो। चन्द्रार्द्धशेखर शम्भो! आपकी जय हो। कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी शिव! आपकी जय हो। अनन्त गुणोंके आश्रय! आपकी जय हो। भयंकर नेत्रोंवाले रुद्र! आपकी जय हो। अचिन्त्य! निरञ्जन! आपकी जय हो। नाथ! दयासिन्धो! आपकी जय हो। भक्तोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। दुस्तर संसारसागरसे पार उतारनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो। महादेव! मैं संसारके दुःखोंसे पीड़ित एवं खिन्न हूँ, मुझपर प्रसन्न होइये। परमेश्वर! समस्त पापोंके भयका अपहरण करके मेरी रक्षा कीजिये। मैं घोर दारिद्र्यके समुद्रमें डूबा हुआ हूँ। बड़े-बड़े पापोंने मुझे आक्रान्त कर लिया है। मैं महान् शोकसे नष्ट और बड़े-बड़े रोगोंसे व्याकुल हूँ। सब ओरसे ऋणके भारसे लदा हुआ हूँ। पापकर्मोंकी आगमें जल रहा हूँ और ग्रहोंसे पीड़ित हो रहा हूँ। शंकर! मुझपर प्रसन्न होइये।'

(और कोई विधि-विधान न बन सके तो श्रद्धा-विश्वासपूर्वक केवल उपर्युक्त स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ ही करे।)

(७)

श्रीमहालक्ष्मीजीका पूजन करके श्रद्धापूर्वक निम्नलिखित स्तोत्रके प्रतिदिन ११ पाठ करने चाहिये।

ईश्वर उवाच

त्रैलोक्यपूजिते देवि कमले विष्णुवल्लभे।
यथा त्वं सुस्थिरा कृष्णे तथा भव मयि स्थिरा॥
ईश्वरी कमला लक्ष्मीश्चला भूतिर्हरिप्रिया।
पद्मा पद्मालया सम्पद् रमा श्रीः पद्मधारिणी॥

द्वादशैतानि नामानि लक्ष्मीं सम्पूज्य यः पठेत्।
स्थिरा लक्ष्मीर्भवेत् तस्य पुत्रदारादिभिः सह॥

(८)

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सं सिद्धिदां साधय साधय स्वाहा।

द्धा-विश्वासपूर्वक उपर्युक्त मन्त्रकी प्रतिदिन २१ (१०८) मालाका जप करना चाहिये। ग्रहणके समय पाँच जटामांसी, दो तोले काली मिर्च, दूर्वा तथा घृत मन्त्रका उच्चारण करते हुए अग्निमें १०८ आहुतियाँ न्त्र सिद्ध हो जाता है।

(९)

वान् शंकरका पूजन करके प्रतिदिन इसका पाठ चाहिये। इससे भगवान् शिवकी कृपासे दारिद्र्यका र धन-सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है।

दारिद्र्यदहनशिवस्तोत्रम्

विश्वेश्वराय नरकार्णवतारणाय
कर्णामृताय शशिशेखरधारणाय।
कर्पूरकान्तिधवलाय जटाधराय
दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय॥१॥
गौरीप्रियाय रजनीशकलाधराय
कालान्तकाय भुजगाधिपकङ्कणाय।
गङ्गाधराय गजराजविमर्दनाय॥दारिद्र्य०॥२॥
भक्तिप्रियाय भवरोगभयापहाय
उग्राय दुर्गभवसागरतारणाय।
ज्योतिर्मयाय गुणनामसुनृत्यकाय॥दारिद्र्य०॥३॥
चर्माम्बराय शवभस्मविलेपनाय
भालेक्षणाय मणिकुण्डलमण्डिताय।
मञ्जीरपादयुगलाय जटाधराय॥दारिद्र्य०॥४॥
पञ्चाननाय फणिराजविभूषणाय
हेमांशुकाय भुवनत्रयमण्डिताय।
आनन्दभूमिवरदाय तमोमयाय॥दारिद्र्य०॥५॥
भानुप्रियाय भवसागरतारणाय
कालान्तकाय कमलासनपूजिताय।
नेत्रत्रयाय शुभलक्षणलक्षिताय॥दारिद्र्य०॥६॥
रामप्रियाय रघुनाथवरप्रदाय
नागप्रियाय नरकार्णवतारणाय।
पुण्येषु पुण्यभरिताय सुरार्चिताय॥दारिद्र्य०॥
मुक्तेश्वराय फलदाय गणेश्वराय
गीतप्रियाय वृषभेश्वरवाहनाय।
मातङ्गचर्मवसनाय महेश्वराय॥दारिद्र्य०॥८॥
वसिष्ठेन कृतं स्तोत्रं सर्वरोगनिवारणम्।
सर्वसम्पत्करं शीघ्रं पुत्रपौत्रादिवर्धनम्।
त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं स हि स्वर्गमवाप्नुयात्॥९॥

सर्पभयसे मुक्तिके लिये

नवनागस्तोत्रम्

अनन्तं वासुकिं शेषं पद्मनाभं च कम्बलम्।
शङ्खपालं धृतराष्ट्रं तक्षकं कालियं तथा॥१॥
एतानि नव नामानि नागानां च महात्मनाम्।
सायंकाले पठेन्नित्यं प्रातःकाले विशेषतः।
तस्य विषभयं नास्ति सर्वत्र विजयी भवेत्॥२॥

—इसके नित्य पाठसे सर्प काटनेका भय नहीं रहता।

ऋण-मोचनके लिये

कुशाकी जड़, बिल्वका पञ्चाङ्ग (पत्र, फल, बीज, लकड़ी और जड़) तथा सिन्दूर—इन सबका चूर्ण बनाकर चन्दनकी पीठिकापर नीचे लिखे मन्त्रको लिखे। तदनन्तर पञ्चोपचारसे पूजन करके गो-घृतके द्वारा ४४ दिनोंतक प्रतिदिन सात बार हवन करे। मन्त्रकी जप-संख्या कम-से-कम १०,००० है, जो ४४ दिनोंमें पूरी होनी चाहिये। ४३ दिनोंतक प्रतिदिन २२८ मन्त्रोंका जाप हो और ४४ वें दिन १९६ मन्त्रोंका। तदनन्तर १००० मन्त्रका जप दशांशके रूपमें करना आवश्यक है। मन्त्र यह है—

ॐ आं ह्रीं क्रौं श्रीं श्रियै नमः ममालक्ष्मीं नाशय नाशय मामृणोत्तीर्णं कुरु कुरु सम्पदं वर्धय वर्धय स्वाहा।

गृहकलह, आपसी अशान्ति, कामवासना, शत्रुभय आदिके नाशके लिये

आदित्यहृदयस्तोत्रम्

ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम्।
रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम्॥१॥
दैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम्।
उपगम्याब्रवीद्राममगस्त्यो भगवांस्तदा॥२॥
राम राम महाबाहो शृणु गुह्यं सनातनम्।
येन सर्वानरीन्वत्स समरे विजयिष्यसे॥३॥

आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम्।
जयावहं जपेन्नित्यमक्षय्यं परमं शिवम्॥ ४॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
चिन्ताशोकप्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम्॥ ५॥
रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुरनमस्कृतम्।
पूजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम्॥ ६॥
सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावनः।
एष देवासुरगणांल्लोकान्पातु गभस्तिभिः॥ ७॥
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपांपतिः॥ ८॥
पितरो वसवः साध्या अश्विनौ मरुतो मनुः।
वायुर्वह्निः प्रजाप्राण ऋतुकर्ता प्रभाकरः॥ ९॥
आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान्।
सुवर्णसदृशो भानुः स्वर्णरेता दिवाकरः॥ १०॥
हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान्।
तिमिरोन्मथनः शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्डकोऽंशुमान्॥ ११॥
हिरण्यगर्भः शिशिरस्तपनो भास्करो रविः।
अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शङ्खः शिशिरनाशनः॥ १२॥
व्योमनाथस्तमोभेदी ऋग्यजुःसामपारगः।
घनवृष्टिरपांमित्रो विन्ध्यवीथीप्लवङ्गमः॥ १३॥
आतपी मण्डली मृत्युः पिङ्गलः सर्वतापनः।
कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवोद्भवः॥ १४॥
नक्षत्रग्रहताराणामधिपो विश्वभावनः।
तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन्नमोऽस्तु ते॥ १५॥
नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमायाद्रये नमः।
ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नमः॥ १६॥
जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नमः।
नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमो नमः॥ १७॥
नम उग्राय वीराय सारङ्गाय नमो नमः।
नमः पद्मप्रबोधाय प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते॥ १८॥
ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूरायादित्यवर्चसे।
भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नमः॥ १९॥
तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायामितात्मने।
कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नमः॥ २०॥
तप्तचामीकराभाय हरये विश्वकर्मणे।
नमस्तमोऽभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे॥ २१॥
नाशयत्येष वै भूतं तदेव सृजति प्रभुः।
पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः॥ २२॥
एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठितः।
एष चैवाग्निहोत्रं च फलं चैवाग्निहोत्रिणाम्॥ २३॥
देवाश्च क्रतवश्चैव क्रतूनां फलमेव च।
यानि कृत्यानि लोकेषु सर्वेषु परमप्रभुः॥ २४॥
एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च।
कीर्तयन्पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव॥ २५॥
पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम्।
एतत्त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यसि॥ २६॥
अस्मिन् क्षणे महाबाहो रावणं त्वं जहिष्यसि।
एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्यो जगाम स यथागतम्॥ २७॥
एतच्छ्रुत्वा महातेजा नष्टशोकोऽभवत्तदा।
धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान्॥ २८॥
आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं परं हर्षमवाप्तवान्।
त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान्॥ २९॥
रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा युद्धार्थं समुपागतम्।
सर्वयत्नेन महता वधे तस्य धृतोऽभवत्॥ ३०॥
अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं
मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः।
निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा
सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति॥ ३१॥

॥ इत्यार्षे आदित्यहृदयस्तोत्रं समाप्तम्॥

सूर्यभगवान्‌की पूजा करके उन्हें अर्घ्य दे। फिर उपर्युक्त स्तोत्रका कम-से-कम एक पाठ प्रतिदिन करे।

दुःस्वप्न-दोष-निवारण-मन्त्र

(१)

ॐ अच्युतं केशवं विष्णुं हरिं सत्यं जनार्दनम्।
हंसं नारायणं चैव ह्येतन्नामाष्टकं शुभम्॥
शुचिः पूर्वमुखः प्राज्ञो दशकृत्वश्च यो जपेत्।
निष्पापोऽपि भवेत्सोऽपि दुःस्वप्नः शुभवान् भवेत्॥

अच्युत, केशव, विष्णु, हरि, सत्य, जनार्दन, हंस और नारायण—इन आठ नामोंका शुद्ध हो पूर्वमुख बैठकर दस बार जप करनेसे दुःस्वप्न शुभकारक हो जाता है।

(२)

ॐ नमः शिवं दुर्गां गणपतिं कार्तिकेयं दिनेश्वरम्।
धर्मं गङ्गां च तुलसीं राधां लक्ष्मीं सरस्वतीम्॥
नामान्येतानि भद्राणि जले स्नात्वा च यो जपेत्।
वाञ्छितं च लभेत [illegible]

शिव, दुर्गा, गणपति, कार्तिकेय, सूर्य, धर्म, गङ्गा, तुलसी, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती—जलसे स्नान करके इन मङ्गल नामोंका उच्चारण करके नमस्कार करनेसे दुस्सह स्वप्न शुभकारक होता है और वाञ्छित फल देता है।

(३)

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं दुर्गतिनाशिन्यै महामायायै स्वाहा।
कल्पवृक्षेति लोकानां मन्त्रः सप्तदशाक्षरः।
शुचिश्च दशधा जप्त्वा दुःस्वप्नः सुखवान् भवेत्॥

उपर्युक्त मन्त्रका पवित्र होकर दस बार जप करनेसे दुःस्वप्न सुख देनेवाला हो जाता है।

गजेन्द्र-स्तुति-पाठसे भी दुःस्वप्न-दोषका नाश होता है। गजेन्द्र-स्तवन इसीमें अलग छपा है।

भूत-प्रेतबाधा एवं गायकी पशुरोगसे निवृत्तिके लिये

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ११। ३६)

—इस मन्त्रको सिद्ध करनेके लिये ३००० जप करे। इसके बाद जब कभी आवश्यकता हो, किसीमें भूत-प्रेतका आवेश होनेपर मिट्टीके किसी शुद्ध पात्र या बर्तनमें गङ्गाजल या कुएँका जल लेकर सात बार मन्त्र बोलकर उसमें दाहिने हाथकी तर्जनी अँगुली फिरा दे। फिर उस जलमेंसे थोड़ा-सा रोगीको पिला दे। बाकी उसके सारे अङ्गोंपर और सारे स्थानपर छिड़क दे। जबतक रोगीकी प्रेतबाधाका नाश न हो, तबतक प्रतिदिन दो बार इस प्रयोगको करते रहें।

इसी प्रकार अभिमन्त्रित जलको सानीके साथ मिलाकर या किसी प्रकार भी गायको पिला देनेपर उसकी 'पशु-रोग'से रक्षा हो जाती है।

श्रेष्ठ वर-प्राप्तिके लिये कन्याके द्वारा

(१)

हे गौरि! शंकरार्धाङ्गि! यथा त्वं शंकरप्रिया।
तथा मां कुरु कल्याणि कान्तकान्तां सुदुर्लभाम्॥

श्रीपार्वतीदेवीका पूजन करके श्रद्धा-विश्वासपूर्वक इस मन्त्र-का प्रतिदिन पाँच माला जप करे। नहीं हो सके तो एक माला अवश्य करे।

श्रीपार्वतीजीका पूजन करके श्रीरामचरित[मानसके] बालकाण्डके २३४ दोहेके बाद 'जय जय गिरिबरराज कि[सोरी]' से 'मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे।' २३[५] तक प्रतिदिन श्रद्धा-विश्वाससे पाठ करे।

जय जय गिरिबरराज किसोरी। जय महेस मुख चंद च[कोरी]॥
जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुति [गाता]॥
नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ बेदु नहिं [जाना]॥
भव भव बिभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्वबस बिह[ारिनि]॥

पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष॥

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायनी पुरारि पि[आरी]॥
देबि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सु[खारे]॥
मोर मनोरथ जानहु नीकें। बसहु सदा उर पुर सबही [कें]॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेही। अस कहि चरन गहे बै[देही]॥
बिनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुक[ानी]॥
सादर सियँ प्रसादु सिर धरेऊ। बोली गौरि हरषु हियँ भ[रेऊ]॥
सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्ह[ारी]॥
नारद बचन सदा सुचि साचा। सो बरु मिलिहि जाहिं मनु रा[चा]॥

मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो॥
एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥
जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे॥

(श्रीरामचरितमानस—बालकाण्ड, दोहा २३५–३[६])

भगवत्कृपासे पुत्रकी प्राप्तिके लिये

(१) रविवारके दिन 'सर्पाक्षी'को जड़, डाली त[था] पत्तोंसमेत उखाड़ लाये। फिर एक वर्णवाली गौके दू[धके] साथ उसे कुमारीके द्वारा पिसवाकर एक ही वर्णवा[ली] गौके दूधके साथ मिलाकर रजोदर्शनसे शुद्ध होकर चौ[थे] दिनसे छठे दिनतक—तीन दिन पीये। दवाकी मात्रा ए[क] तोला प्रतिदिन। मिश्री मिलाकर दूध-भातका भोजन करे, अधिक परिश्रम न करे। दवा पीनेसे पूर्व नीचे लिखे दो[नों] मन्त्रोंकी एक-एक माला (१०८ दानेकी) श्रद्धा-विश्वासपूर्व[क] अवश्य जप कर ले।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।
देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गता॥

तदनन्तर प्रतिदिन दवा पीनेके पूर्व उपर्युक्त 'देवकीसुत गोविन्द ...' मन्त्रकी एक मालाका जप कर ले।

साथ ही नीचे लिखे (७२) यन्त्रका भी प्रयोग करे।

०८	०१	३४	२९
३०	३३	०४	०५
०२	०७	२८	३५
३२	३१	०६	०३

इस यन्त्रको भोजपत्रपर अष्टगन्धसे लिखकर बायीं भुजा, कमर या कण्ठमें ताँबेके ताबीजमें डालकर धूप देकर धारण कर ले।

(२) हरिवंशपुराणके श्रवणसे भी पुत्र-प्राप्ति होती है।

सुखपूर्वक प्रसव होनेके लिये

प्रसव होनेमें अधिक देर होती हो और गर्भवती स्त्री प्रसव-वेदनासे छटपटा रही हो तो वटके पत्तेपर नीचे लिखा सुखप्रसव-मन्त्र तथा बत्तीसा यन्त्र लिखकर उसके मस्तकपर रख देनेसे सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है।

अस्ति गोदावरीतीरे जम्भला नाम राक्षसी।
तस्याः स्मरणमात्रेण विशल्या गर्भिणी भवेत्॥

१	८	९	१४
११	१२	३	६
७	२	१५	८
१३	१०	५	४

मिल सके तो, जिसके फूल न आये हों, ऐसे इमलीके छोटे वृक्षकी जड़ सिरके सामने बालोंसे बाँध देनी चाहिये। इससे बिना कष्टके सहज प्रसव हो जाता है; परंतु संतान प्रसव होनेके साथ ही उसी क्षण तुरंत उन बालोंसमेत उसे कैंचीसे काट देना चाहिये।

मृतवत्सानिवारण मन्त्र

क्रूं क्रूं क्रूं दूं दूं दूं दुर्गे दुर्गे महादुर्गे दुर्गे नाशय नाशय हन हन पच पच मथ मथ बन्ध बन्ध हिंस्रान् महाषष्ठीरूपेण इमं बालकं रक्ष रक्ष चिरजीविनं कुरु कुरु ह्रां श्रीं क्रूं दूं फट् स्वाहा।

—इस मन्त्रको नीचे लिखे चौवनके यन्त्रसहित भोजपत्रपर लिखकर ताँबेके ताबीजमें रखकर गूगलका धूप देकर गर्भके पाँचवें महीनेमें गर्भिणीकी कमरमें धारण करा दे। बालकके जन्म लेनेपर कमरसे खोलकर बालकके गलेमें धारण करा दे। इससे मृतवत्सा (जिसके बच्चे मर जाते हैं) का वह बच्चा नहीं मरेगा।

१५	२०	१९
२२	१८	१४
१७	१६	२१

चेचकरोगके निवारणके लिये शीतलाकी प्रार्थनाका मन्त्र

ॐ श्रीं श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः ॐ खरस्थां दिगम्बरां विकटनयनां तोयस्थितां भजामि स्वाहा स्वाङ्गस्थां प्रचण्डरूपां नमास्यात्मविभूतये।

—इस मन्त्रको ग्यारह बार श्रद्धापूर्वक उच्चारण करते हुए जिसको शीतला निकली हो, उसको चिमटे या मोरपंखसे झाड़े और इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल उसे पिला दे तथा उसके बदनपर उसके छींटे दे दे। जबतक शीतला शान्त न हो जाय, तबतक प्रतिदिन सुबह-शाम दो बार यों करते रहें।

प्रेतबाधानाशके लिये

[६४]

२४	३१	२	७
६	३	२८	२७
३०	२५	८	१
४	५	२६	२९

मङ्गलवारके दिन यन्त्र लिखकर रोगीके बाँध दें। फिर 'भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो नः प्रचोदयात्।' इस गायत्री-मन्त्रसे जलको अभिमन्त्रित क्रे उक्त जल रोगीको पिला दे तथा उसके सारे अङ्गोंपर ;क दे। यन्त्र बँधा रहे और गायत्री-प्रयोग प्रतिदिन बार किया जाय।

शाबर-मन्त्र* और उनके चमत्कार

(लेखक—ठाकुर श्रीसुदर्शनसिंहजी)

विस्वरूप रघुबंसमनि करहु बचन बिस्वास।

यह सम्पूर्ण विश्व भगवान्का स्वरूप है—भगवान् ही उसी प्रकार शब्दमात्र भगवन्नाम है। जगत्का मूल ा शब्द है—यह बात 'स्फोटवाद' प्रतिपादित करता प्रत्येक शब्द एक कम्पन उत्पन्न करता है और प्रत्येक न एक रूप व्यक्त करता है। ग्रामोफोनके रिकार्डपर रेखाएँ मात्र होती हैं, जो आँखोंसे नहीं दीखतीं। रेखाओंपर सूई घूमती है तो शब्द उत्पन्न होता है। ग्राएँ गानेवालेके शब्दके कम्पनसे रिकार्डपर बनी हैं।

वर्षों पहले 'कल्याण'में छपा था कि फ्रान्समें किसीने एक ऐसा यन्त्र बनाया था कि उसके सम्मुख कोई गीत या स्तुति गानेपर यन्त्रमें लगे पर्देपर रक्खे रेतके कण उछलकर एक आकृति बना देते थे। एक भारतीय सज्जनने उस यन्त्रके सम्मुख कालभैरवकी स्तुति गायी तो यन्त्रके पर्देपर रेतके कणोंसे कालभैरवका रूप बन गया।

शब्दसे कम्पन होता है। सृष्टिके सब पदार्थ कम्पनसे बनते-बिगड़ते हैं, यह भी विज्ञान मानता है। इसलिये मन्त्रोंकी शक्तिको समझना कठिन नहीं होना चाहिये। किन शब्दोंमें क्या शक्ति है, यह सर्वज्ञ ऋषि जानते थे। उन्होंने ऐसे शब्दोंकी योजना की तथा उनके प्रयोगकी ऐसी विधि निश्चित की, जिससे उन मन्त्रोंको निर्दिष्ट विधिसे काममें लेकर अभीष्ट फल प्राप्त किया जा सके। इनमें वेद, पुराण तथा तन्त्रोंके बहुत-से मन्त्र ऐसे हैं, जिनके प्रयोगमें पर्याप्त सावधानी आवश्यक है। सविधि करनेपर ही वे फल देते हैं। थोड़ी-सी त्रुटि हो तो अनुष्ठान निष्फल हो जाता है अथवा देवता उग्र हों तो अनुष्ठान उलटा दुष्प्रभाव दिखलाता है। किंतु कुछ शाबर मन्त्र हैं। ये मन्त्र उच्चारणमात्रसे प्रभाव प्रकट करते हैं। इन्हें उज्जीवित करनेके लिये बहुत थोड़ी प्रक्रिया आवश्यक होती है।

अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू॥

शाबर-मन्त्रोंकी वर्णयोजना प्रायः बड़ी अटपटी होती है। उनका कोई अर्थ हो ही, यह आवश्यक नहीं है। फिर भी उनका प्रभाव तो प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। यहाँ ऐसे कुछ प्रयोग दिये जा रहे हैं, जो प्रायः मेरे अनुभूत हैं, अथवा जिनपर मैं विश्वास करता हूँ कि वे ठीक प्रभाव उत्पन्न करेंगे।

प्रवासमें सुविधा-प्राप्तिके लिये

आप किसी यात्रामें हैं और किसी अपरिचित स्थानमें आपको रुकना है। स्वाभाविक है कि आप चाहेंगे कि वहाँ ठहरनेकी तथा भोजन आदिकी सुव्यवस्था आपको सरलतासे प्राप्त हो जाय। इसके लिये निम्न मन्त्र उज्जीवित कर रक्खें।

---

* प्रत्येक शाबर मन्त्रका चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणके कम-से-कम १०८ बार जप करना चाहिये तथा प्रत्येक स्याको भी १०८ बार जप कर लेना चाहिये।

होली अथवा दीपावलीकी रात्रिमें तथा चन्द्र-सूर्य-ग्रहणके समय मन्त्रका १०८ बार जप करनेसे वह उज्जीवित हो जायगा। इन अवसरोंपर आपको प्रत्येक बार इतना जप करते रहना चाहिये, अन्यथा मन्त्र आपके लिये प्रसुप्त हो जायगा।

मन्त्र—

गच्छ गौतम शीघ्र त्वं ग्रामेषु नगरेषु च।
अशनं वसनं चैव ताम्बूलं तत्र कल्पय॥

प्रयोग—जहाँ आपको ठहरना है, उस स्थानकी सीमामें पहुँचकर इस मन्त्रको सात बार पढ़ें। मन्त्र पढ़ते समय सफेद दूर्वाके तीन छोटे टुकड़े हाथमें रक्खें। मन्त्र सात बार पढ़कर दूर्वाके टुकड़ोंको शिखा या बालोंमें उलझा दें। ठहरनेके स्थानपर सब व्यवस्था मिलनेतक इन टुकड़ोंको केशोंमें उलझा रहने दें। आपको यदि लगता है कि ठीक समयपर सफेद दूर्वा नहीं मिलेगी तो उसे साथ ले जा सकते हैं। एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदयतक (एक दिन-रात) उखाड़ी दूर्वा काम देती है।

सर्पभयसे रक्षा

सर्प घरमें या सामने है तो मन्त्रका जप करनेसे वह आपपर आक्रमण नहीं करेगा। यदि कहीं अँधेरेमें, वनमें या ऐसे स्थानमें जाना है तो पुष्य नक्षत्रमें गिलोय (गुडूची) लाकर उसके छोटे टुकड़ोंकी माला बनाकर सात बार मन्त्रका जप करके वह माला गलेमें पहिनकर जानेसे सर्पका भय नहीं रहेगा।

मन्त्र—मुनिराजं आस्तीकं नमः।

अग्निशामक प्रयोग

कहीं आग लगी हो तो मन्त्रको पढ़ते हुए सात अञ्जलि जल अग्निमें डाल देनेसे अग्निदेव शीघ्र शान्त हो जाते हैं। इस मन्त्रको होली, दीपावली तथा ग्रहणोंमें १०८ बार जप करके उज्जीवित रखना चाहिये।

मन्त्र—ॐ नमोऽग्निरूपाय ह्रीं नमः।

—इस मन्त्रको पढ़कर रविवारके दिन सफेद कनेरकी जड़ दाहिनी भुजामें बाँध लेनेसे अचानक अग्निसे जलनेका भय नहीं रहता।

किसी वस्तुपर या अङ्गपर घीकुआरका गूदा भली प्रकार लगाकर सुखा दिया जाय तो उस वस्तु या अङ्गको अग्नि जला नहीं पाता। यदि किसी वस्त्रको तीन बार इस प्रकार घीकुआरके रसमें भिगाकर सुखाया जाय तो वह वस्त्र सर्वथा अग्निरक्षित हो जाता है।

ताप, तिजारी, मथवा, आधाशीशीके नाशके लिये

मोर-पंखसे झाड़े।

ॐ कामरु देश कमक्षा देवी, तहाँ बसै इस्माइल जोगी। इस्माइल जोगीके तीन पुत्री। एक रोलै, एक पक्षौले। एक ताप तिजारी इकतरा मथवा आधाशीशी टोरै। उतरै तौ उतारौ, चढ़ै तौ मारौ। ना उतरै तो ग गुं रुड़ मोर हंकारौ। सबद साचा, पिंड काचा। फुरो मन्त्र ईश्वरोवाचा।

बिच्छूका जहर उतारनेके लिये

बन्धन देकर नीम या आमकी डाली अथवा मोरपंखसे झाड़े।

ॐ काला बिच्छू कंकड़वाला। सोनेका डंक, रूपेका प्याला। मैं क्या जानूँ, बिच्छू, तेरी जात। जन्म्या चौदस-मावसकी रात। चढ़ीको उतारो, उतरतीको मारो। सहब मंकड़ी फुकारो। फुरो मन्त्र, ईश्वरोवाचा।

किसी भी कष्टसे छूटनेके लिये

१०८ बार उच्चारण करे—

ॐ रां रां रां रां रां रां रां रां कष्टं स्वाहा।

ऐसे हजारों साबर मन्त्र हैं। इनसे काम होते भी देखे गये हैं। सम्भव है विश्वासकी प्रधानता भी इनकी सफलतामें एक प्रधान कारण हो।

कुछ उपयोगी यन्त्र

ंकी भाँति ही यन्त्र भी बड़े प्रभावशाली होते हैं। कुछ यन्त्रोंके साथ मन्त्र भी होते हैं और कुछ केवल अङ्कात्मक हैं। विभिन्न यन्त्र, विभिन्न कार्योंकी सिद्धि और रोगनिवृत्ति आदिके लिये काममें लाये जाते हैं। प्रत्येक यन्त्र या भोजपत्रपर अष्टगन्धसे लिखकर, ताँबेके ताबीजमें भरकर, गुग्गुलका धूप देकर स्त्रियोंके बायें हाथ या गलेमें के दाहिने हाथ या गलेमें बाँधा जाता है। मन्त्रात्मक यन्त्र हो तो चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय मन्त्रका १०८ बार जप करके यन्त्रका पूजन कर लेना चाहिये। केवल यन्त्र हो तो उसका पूजनमात्र कर लेना वेश्वासपूर्वक इनका सेवन करनेसे लाभ होता है। यहाँ ऐसे ही कुछ यन्त्र दिये जाते हैं।

वेष्णुकी प्रसन्नता तथा उनके दर्शनके लिये—

ीसा यन्त्रमें **'ॐ नमो नारायणाय'** मन्त्र संख्या- ा है। इसको चन्दनकी पीटिका (चौकी) पर सफेद ुलसीकी डंडीसे लिखकर या ताँबेके पत्तरपर खुदवाकर ूजा करनी चाहिये तथा भगवान् विष्णुकी पूजा मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार जप करना चाहिये। प्रत्येक श्लोकके आदि-अन्तमें इसी मन्त्रका सम्पुट ष्णुसहस्रनाम'का पाठ करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्णकी शरणागति और उनका आश्रय प्राप्त करनेके लिये

विश्वासपूर्वक नीचे लिखे बीसा यन्त्रका पञ्चोपचारसे पूजन करके प्रतिदिन **'श्रीकृष्णः शरणं मम'** इस मन्त्रकी (१०८ तुलसीके दानोंकी) ५ माला श्रद्धा-भक्तिपूर्वक जप करे।

यह बीसा यन्त्र ताँबेके पत्तरपर खुदवाकर श्रीगङ्गाजी या श्रीयमुनाजीके जलसे धोकर धूप देकर पूजामें रक्खे।

एकतरा ज्वरनाशके लिये (२००)

[illegible]	९९	२	७
[illegible]	३	९६	९५
[illegible]	९३	८	१
[illegible]	५	९४	९७
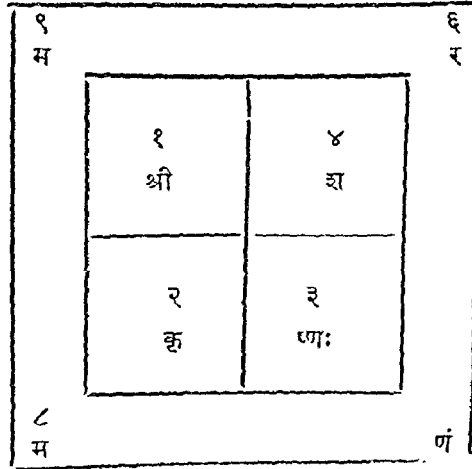
तिजारी ज्वरनाशके लिये

१४२	१४९	२	७
६	३	१४६	१४५
१४८	१४३	८	१
४	५	१४४	१४७

(१८) ज्वरनाशके लिये

१	८	२	७
६	३	५	४
७	२	८	१
४	५	३	६

सर्प, चौर, निशाचर, शत्रु, ग्रह, भूत-पिशाचके भयसे बचने तथा विषमज्वर और विपत्ति-नाशके लिये

९	१६	५	४
७	२	११	१४
१२	१३	८	१
६	३	१०	१५

—इस चौंतीसा यन्त्रको सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण या दीपावली-की रात्रिको ३४ बार लिखकर सिद्ध कर ले। सफेद कागज या भोजपत्रपर अनारकी कलमसे अष्टगन्ध-(सफेदचन्दन, लालचन्दन, केसर, कुंकुम, कपूर, कस्तूरी, अगर, तगर)-के द्वारा लिखे। इससे यन्त्र सिद्ध हो जायगा। शीघ्र सिद्ध करना हो तो शनिवारके दिन १०८ बार उपर्युक्त प्रकारसे लिखे और धोबीघाटपर बैठकर एक-एक बार लिखकर यन्त्र धोबीघाटसे भरे कुंडके जलमें डालता जाय। फिर उन १०८ यन्त्रोंको इकट्ठा करके बहते जलमें बहा दे। तदनन्तर पुनः भोजपत्रपर उपर्युक्त प्रकारसे लिखकर धूप देकर गलेमें बाँध दे।

गर्भधारणके लिये

[५०]

१७	२४	२	७
६	३	२१	२०
२३	१८	८	१
४	५	१९	२२

पुत्रप्राप्तिके लिये

[७२]

२८	३५	२	७
६	३	३२	३१
३४	२९	८	१
४	५	३०	३३

बच्चोंके डब्बारोग-निवारणके लिये

पीपलके पत्ते या भोजपत्रपर लालचन्दनसे अनारकी कलमसे चार यन्त्र लिखे। फिर धूप देकर एक यन्त्र जलसे धोकर वह जल बच्चेकी माताको पिला दे; दूसरा बच्चेको पहले दिन, तीसरा दूसरे दिन और चौथा तीसरे दिन माता-के दूधके साथ पिला दे। सवा रुपयेका चूरमा या मीठा चावल बनाकर पहले थोड़ेसे किसी साधुको देकर बँटवा दे, खुद भी खा ले।

९	१६	२	७
६	३	१३	१२
१५	१०	८	१
४	५	११	१४

राम राम राम राम
राम राम राम राम
राम राम राम राम
राम राम राम राम

इस चौंतीसा यन्त्रको भोजपत्रपर लालचन्दनसे तथा अनारकी कलमसे लिखकर धूप देकर एक छोटे कपड़ेमें बाँधकर बच्चेके गलेमें लटका दे और पक्षियोंको दाना डलवा दे।

बच्चोंके सूखारोग-निवारणके लिये

८	८	८
३३४	३३४	३३४
३३४	३३४	३३४
३३४	३३४	३३४
७	७	७

पीपलके पत्ते या भोजपत्रपर लालचन्दनसे अनारकी कलमसे चार यन्त्र लिखे। फिर धूप देकर एक यन्त्र जलसे धोकर वह जल बच्चेकी माताको पिला दे; दूसरा बच्चेको पहले दिन, तीसरा दूसरे दिन और चौथा तीसरे दिन माता-के दूधके साथ पिला दे। सवा रुपयेका चूरमा या मीठा चावल बनाकर पहले थोड़ेसे किसी साधुको देकर बँटवा दे, खुद भी खा ले।

भगवतीकी कृपा प्राप्त करनेके लिये

भगवतीकी शरणागति, भक्तिकी प्राप्ति तथा सब विपत्तियोंके नाश तथा कार्यमें सफलता एवं सुखसमृद्धिकी प्राप्तिके लिये विश्वासपूर्वक नीचे लिखे बीसा यन्त्रका प्रतिदिन पञ्चोपचार-से पूजन करके कम-से-कम नवार्णमन्त्र (**ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**) की एक माला (१०८ रुद्राक्षके दानोंकी) जप और 'सप्तशती', चतुर्थ अध्याय तथा 'सिद्धकुञ्जिका' स्तोत्रका पाठ करे। यन्त्र ताँबेके पत्तरपर खुदवाकर गङ्गाजलसे धोकर धूप देकर पूजामें रक्खे। इस मन्त्रमें संख्याक्रमसे 'नवार्णमन्त्र' लिखा है।
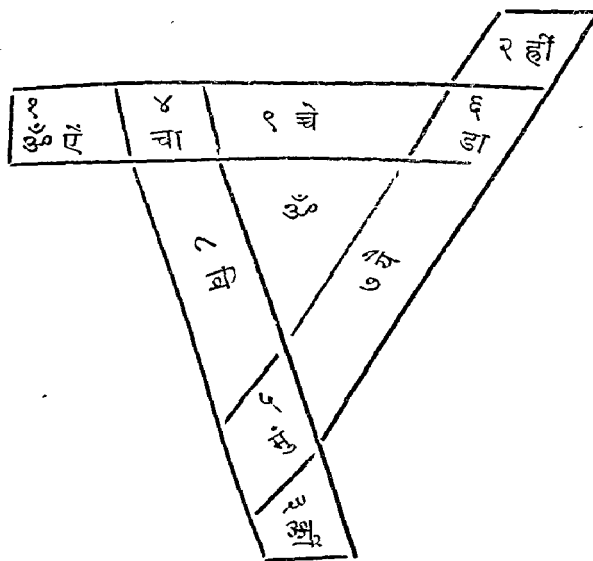
देवीकी प्रसन्नता और किसी भी रोगके नाशके लिये

इसमें ३४ और १५का यन्त्र है। १५के यन्त्र भगवतीका नवार्णमन्त्र है। ऐसा यन्त्र बनाकर उसमें इ मन्त्रको १०८ बार लिखनेसे मन्त्र सिद्ध होता है। फि लिखकर रोगीको देना चाहिये तथा ताँबेके ताबीजमें डा कर गुग्गुलका धूप देकर पुरुषके दाहिनी और स्त्रीके बा भुजामें बाँध देना चाहिये।

रक्त-पित्त रोगनाशके लिये

[११२]

४८	५५	२	७
६	३	५२	५१
५४	४९	८	१
४	५	५०	५३

मिर्गीनाशके लिये

[१००००]

४९९२	४९९९	२	७
६	३	४९९६	४९९५
४९९८	४९९३	८	१
४	५	४९९४	४९९७

वायुशूल-नाशके लिये

[८०]

३२	३९	२	७
६	३	३६	३५
३८	३३	८	१
४	५	३४	३७

अनुष्ठान-मन्त्रप्रयोगोंके विषयमें नम्र निवेदन

यहाँ जितने भी अनुष्ठान या मन्त्र-प्रयोग लिखे गये हैं, सभी सत्य हैं, फलदायक हैं, श्रेष्ठ हैं और इनमें कई तो विश्वस्त लोगोंके द्वारा बार-बार अनुभूत भी हैं। तथापि यह निश्चित-रूपसे नहीं कहा जा सकता कि ये सबको समानरूपसे फल देंगे ही, या तत्काल ही फल दे देंगे। तत्काल फल न हो तो बार-बार प्रयोग करना चाहिये। एक ही दवा एक रोगीको तत्काल लाभ पहुँचाती है, दूसरेको देरसे पहुँचाती है और किसीको उससे कुछ भी लाभ नहीं होता। इसी प्रकार देवाराधन भी प्रारब्धकी सहज, कठिन या अत्यन्त प्रबल प्रतिबन्धकताके अनुसार कोई तुरंत नवीन प्रारब्ध बनकर फल दे देता है, कोई देरसे, और कोई बहुत देरसे फल देता है एवं कोई नहीं भी देता। पूर्वनिर्मित प्रारब्धकी निर्बलता या प्रबलता ही इसमें प्रधान कारण है। परंतु दवाका अनुचित प्रयोग होनेपर उससे या आजकलकी विज्ञापनी विषाक्त दवाइयोंकी प्रतिक्रियाके रूपमें विपरीत परिणाम भी हो जाता है। रोग बढ़ जाता है और कहीं-कहीं रोगी मर भी जाता है।* पर सात्त्विक (जिसमें किसी अवैध तामसिक वस्तु या विधिका प्रयोग न हो, तथा जो किसी भी दूसरेके लिये जरा भी हानिकारक न हो ऐसे) देवाराधनमें प्रतिक्रियारूपसे कोई भी हानि नहीं होती, वरं लाभ ही होता है। एक प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं, उन्होंने अर्थकी प्राप्तिके लिये गायत्रीके पूरे चौबीस पुरश्चरण किये। बार-बार पुरश्चरण करते, पर फल कुछ भी दिखायी नहीं देता; तथापि उनकी श्रद्धा नहीं घटी, न धीरज ही छूटा और न वे उकताये ही और पुरश्चरण करते ही रहे। जब चौबीस पुरश्चरण पूरे हो गये और कोई फल प्रत्यक्ष नहीं दिखायी दिया, तब उनको गायत्रीदेवीपर तनिक भी अश्रद्धा तो नहीं हुई; क्योंकि वे परम आस्तिक और शास्त्रविश्वासी थे। परंतु उनके गायत्री-पुरश्चरणोंके द्वारा पवित्र हुए विशुद्ध हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे सर्वत्याग करके संन्यासी हो गये। संन्यास सर्वत्यागमय होता है और यह यथार्थ सर्वत्याग एक 'महान् पुण्यकार्य' होता है। अतः संन्यास-ग्रहण करनेके पश्चात् गायत्रीदेवीने प्रकट होकर उनसे वर माँगनेके लिये अनुरोध किया। संन्यासी महात्माने कहा—'माता! मैंने चौबीस पुरश्चरण श्रद्धा-विधिसहित किये, आपने दर्शन नहीं दिये। अब मेरे संन्यास-ग्रहण करनेके पश्चात् आपके प्रकट होनेका क्या कारण है?' गायत्री देवीने कहा—'वत्स! तुम्हारे पचीस ब्रह्महत्याके पाप थे, चौबीस पुरश्चरणोंसे उनमेंसे चौबीस महापापोंका प्रायश्चित्त हो गया। एक पुरश्चरण और कर लेते तो प्रतिबन्धक हट जाता और मैं प्रकट हो जाती। पर तुमने वह नहीं किया। अब तुम्हारा यह सर्वत्यागरूप संन्यास महान् पुण्य कार्य होनेके कारण इसके फलस्वरूप पचीसवीं ब्रह्महत्या-के महापातकका भी प्रायश्चित्त हो गया। अब तुम नवीन फल प्राप्त करनेके अधिकारी हो गये। इसीसे मैं अब प्रकट हो गयी।' संन्यासी महात्माने कहा—'माता! अब तो मैं सर्वत्यागी संन्यासी हूँ। न मेरे मनमें कोई कामना है, न मुझे कोई आवश्यकता ही है। आपकी कृपा बनी रहे। आप पधारें।'

इस कथासे यह सिद्ध होता है कि प्रतिबन्धककी प्रबलतासे देवाराधनका मनोवाञ्छित फल तत्काल न मिलनेपर भी लाभ तो निश्चितरूपसे होता ही है। साथ ही आजकल दवाइयोंके जान्तव पदार्थोंका तथा विषका प्रयोग होता है, उनके सेवनमें हिंसा होती है तथा जहर खाया जाता है। व्यापार-नौकरी आदिमें असत्य, बेईमानी तथा पराये अहित-साधनका पाप होता है। देवाराधक इन पापोंसे तो बच ही जाता है। यह भी कम लाभ नहीं है। उसकी बुद्धि अहिंसायुक्त तथा जाग्रत् रहती है, जिससे पराया अनिष्ट या अहित करनेवाले विचारों तथा पापोंसे छुटकारा मिलता है। यह याद रखना चाहिये कि जिस किसी विचार या कार्यसे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका अनिष्ट या अहित होता हो, वही पाप है और जिससे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका इष्ट या हित होता हो, वही पुण्य है। यही पाप तथा पुण्यकी सार्वभौम यथार्थ परिभाषा है। जिससे परिणाममें दूसरोंका अहित होगा, उससे हमारा हित होगा ही नहीं; और जिससे परिणाममें दूसरोंका हित होता होगा, उससे हमारा कभी अहित न होकर हित ही होगा। यह सुनिश्चित है।

पर कहीं-कहीं देवाराधनके सफल न होनेमें श्रद्धा और विधिकी न्यूनता या उसका अभाव भी प्रधान कारण होता है। श्रद्धाकी आवश्यकता तो प्रत्येक कार्यमें है। अश्रद्धासे किया हुआ कार्य सिद्ध नहीं होता। भगवान् गीतामें कहते हैं—

* गत वर्ष एक सिविल सर्जन महोदयने बताया था कि 'आजकल विविध भाँतिकी एंटीबायटिक तथा अन्यान्य नयी-नयी दवाइयोंकी भरमार है और उनका डाक्टर लोग (कुछ अधिक कमीशनके लालचवश भी) अनर्गल प्रयोग करते हैं। इससे उनके प्रतिक्रिया-स्वरूप नये-नये रोगोंकी वृद्धि हो रही है। हमारे यहाँ आजकल रोगके रोगी कम आते हैं और दवाइयोंके रोगी बहुत अधिक!'

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥
(१७। २८)

'अर्जुन! अश्रद्धासे किया हुआ हवन, दिया हुआ दान, तपा हुआ तप और किया हुआ जो कुछ भी कर्म होता है, वह असत् कहलाता है, न तो उससे आगे कोई फल मिलता है, न यहाँ ही।'

अतएव कोई भी देवाराधन या मन्त्रप्रयोग हो, करनेवालेमें उसके प्रति श्रद्धा-विश्वास अवश्य होना चाहिये। जिस देवता और जिस अनुष्ठान या आराधनमें श्रद्धा होगी, वही फलवान् होगा। किसी भी देवताकी आराधना कौतूहल-निवृत्ति या परीक्षाके लिये नहीं करनी चाहिये। परीक्षाके लिये की गयी आराधनासे तो देवताका अपमान होता है, जिसका फल अनिष्ट भी हो सकता है।

श्रद्धाके साथ सकाम कर्ममें विधिकी भी परमावश्यकता है। जैसे अमुक-अमुक वस्तुओंके अमुक-अमुक निश्चित परिमाणमें मिलानेपर ही किसी अभीष्ट वस्तुका निर्माण होता है, वैसे ही अमुक-अमुक विधिका भलीभाँति पालन होनेपर ही देवताके द्वारा फलका निर्माण होता है। अतएव प्रत्येक अनुष्ठान यथासाध्य विधिवत् ही होना चाहिये।

देवानुष्ठानके समय तन-मन-वचनसे सदाचारका पालन करना चाहिये। अखण्ड ब्रह्मचर्यका (संतान-प्राप्तिके अनुष्ठान वध प्रसङ्गको छोड़कर) पालन अवश्य-अवश्य होना चाहिये। जपके साथ दशांश हवन, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मणभोजन भी आवश्यक होता है। साथ ही इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी दूसरेके अनिष्ट या अहितका कोई भी कार्य मन, वाणी, शरीरसे न होने पाये।

किसी ब्राह्मण या ब्राह्मणोंसे अनुष्ठान करवाया जाय तो यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ब्राह्मण सदाचारी हों, अनुष्ठानके समय वे ब्रह्मचर्यका पालन करें और जहाँतक बने यजमानका ही अन्न भोजन करें। ब्राह्मणोंको सम्मानपूर्वक उचित दक्षिणा दी जानी चाहिये। सौदा या मोल-तौल नहीं करना चाहिये। उनका जी तो दुखाना ही नहीं चाहिये।

किसी दूसरेका अनिष्ट चाहकर कोई भी अनुष्ठान कभी नहीं करना-कराना चाहिये। इससे परिणाममें बहुत बड़ी हानि होती है। अमुक कार्य सफल हो जानेपर देवताका अमुक कार्य किया जायगा या अमुक चीज भेंट चढ़ायी जायगी अथवा देवस्थानकी यात्रा की जायगी—इस प्रकार मनौती मानना बहुत निम्न श्रेणीकी देवाराधना है। पहले सेवा करके तब फल माँगना या स्वीकार करना चाहिये। 'देवता हमारा अमुक काम कर देंगे, तब हम देवताकी सेवा-पूजा करेंगे'—यह वृत्ति बहुत नीची है। इसमें देवतापर पूरे विश्वासका अभाव है। यद्यपि इसमें भी प्रयास होता है, अतः देवता स्वभाववश प्रायः नाराज नहीं होते; तथापि है तो यह अविश्वासपूर्ण व्यापार ही। असल बात तो यह है कि आराधन निष्काम प्रेमसे होना चाहिये। सेवा करके कुछ भी बदलेमें लेना भी सेवा नहीं कहलाता, बल्कि वह एक प्रकारका व्यापार हो जाता है। प्रह्लादने भगवान् नृसिंहदेवसे कहा था कि 'जो सेवा करके बदलेमें कुछ ले लेता है, वह सेवक नहीं है, लेन-देन करनेवाला व्यापारी है—**'न स भृत्यः स वै वणिक्।'** पर जो सेवाके पहले ही फल चाहते हैं, वे तो कुशल व्यापारी भी नहीं, उन्हें तो निम्न श्रेणीके स्वार्थी ही कहना चाहिये।

काली, तारा, चामुण्डा, धूमावती, बगलामुखी, छिन्नमस्ता, उच्छिष्ट गणपति, नृसिंह आदि उग्र देवता हैं। इनकी उपासनामें तनिक-सी भी भूल होनेपर बहुत बड़ी हानि हो सकती है; अतएव उग्र देवताकी उपासना नहीं करनी चाहिये।

प्रयोगोंकी चर्चामें अष्टगन्ध, पञ्चोपचार, षोडशोपचार शब्द आये हैं, उनका स्पष्टीकरण यह है—

षोडशोपचार—पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमनीय, ताम्बूल, स्तुति, तर्पण, नमस्कार।

पञ्चोपचार—गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य।

अष्टगन्ध—सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, केसर, कस्तूरी, कपूर, अगर, तगर और कुंकुम। 'कल्याण'के पाठकोंसे नम्र निवेदन है कि मानव-जीवनका लक्ष्य 'भगवत्प्राप्ति' ही है। अन्य जितनी भी लोक-परलोककी वस्तुएँ या स्थितियाँ हैं—सभी अनित्य तथा परिणाम-दुःखद हैं। अतएव सकाम कर्मोंमें प्रवृत्त न होकर निष्काम कर्म, तत्त्वविचार, भगवत्सेवा, भगवत्प्रेम आदि पारमार्थिक साधनोंमें ही लगना चाहिये। उसीमें जीवनकी सार्थकता है। पर जो सकाम भावका त्याग नहीं कर सकते, उनकी विविध कामनाओंकी पूर्तिके लिये ऊपर कुछ अनुष्ठान लिखे गये हैं। सकाम भाववाले लोग इन दैवी साधनोंका सेवन करके लाभ उठा सकते हैं। जिनको किसी अनुष्ठानसे लाभ हो, उन्हें कैसे, कितना लाभ हुआ, इसकी सूचना वे 'कल्याण' सम्पादकको दे देंगे, तो बड़ी कृपा होगी।

नारदजीके प्रति ब्रह्माका नाम-महिमा-कथन

ऋषियोंने सूतजीसे श्रीमहादेवजी एवं देवर्षि नारदका संवाद सुन लेनेके पश्चात् उनसे ब्रह्माजी और नारदजीके उस संवादका वर्णन करनेके लिये कहा, जिसमें ब्रह्माजीने नारदजीको भगवन्नामोंकी महिमा सुनायी थी।
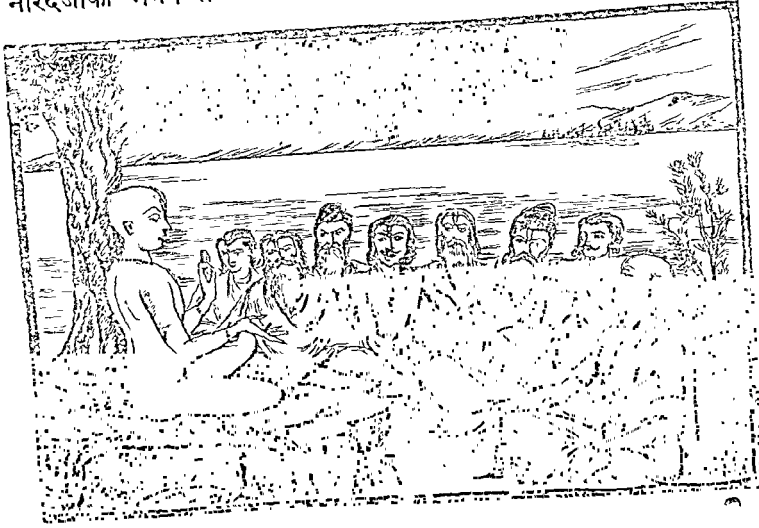
सूतजी बोले—द्विजश्रेष्ठ मुनियो! इस विषयमें मैं पुराना इतिहास सुनाता हूँ। इसे आपलोग निष्ठापूर्वक सुनें। इसे सुननेसे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति दृढ़ होती है। एक समयकी बात है, नारदजी अपने पिता ब्रह्माजीका दर्शन करनेके लिये मेरु पर्वतके शिखरपर गये। वहाँ आसनस्थ जगत्पति ब्रह्माजीको प्रणाम करके मुनिवर नारदजीने उनसे इस प्रकार कहा—'विश्वेश्वर! भगवान्‌के नामकी जितनी शक्ति है, उसे बताइये। प्रभो! ये जो सम्पूर्ण विश्वके स्वामी साक्षात् श्रीनारायण हरि हैं, इन अविनाशी परमात्माके नामकी कैसी महिमा है?'

ब्रह्माजी बोले—

अस्मिन् कलौ विशेषेण नामोच्चारणपूर्वकम्।
भक्तिः कार्या यथा वत्स तथा त्वं श्रोतुमर्हसि॥
दृष्टं परेषां पापानामनुक्तानां विशोधनम्।
विष्णोर्जिष्णोः प्रयत्नेन स्मरणं पापनाशनम्॥
मिथ्या ज्ञात्वा ततः सर्वं हरेर्नाम पठञ्जपन्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम्॥

(पद्मपु०, उत्तर० ७२। ९-११)

ब्रह्माजी बोले—बेटा! इस कलियुगमें विशेषतः नाम-कीर्तनपूर्वक भगवान्‌की भक्ति जिस प्रकार करनी चाहिये, वह सुनो। जिनके लिये शास्त्रोंमें कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है, उन सभी बड़े-से-बड़े पापोंकी शुद्धिके लिये एकमात्र विजयशील भगवान् विष्णुका प्रयत्नपूर्वक स्मरण ही सर्वोत्तम साधन देखा गया है; वह समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। अतः अन्य सब कुछ मिथ्या जानकर श्रीहरिके नामका कीर्तन और जप करना चाहिये। जो ऐसा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके परमपदको पा लेता है।

ये वदन्ति नरा नित्यं हरिरित्यक्षरद्वयम्।
तस्योच्चारणमात्रेण विमुक्तास्ते न संशयः॥
प्रायश्चित्तानि सर्वाणि तपःकर्मात्मकानि वै।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्॥
प्रातर्निशि तथा सायं मध्याह्नादिषु संस्मरन्।
नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयं नरः॥
विष्णुसंस्मरणादेव समस्तक्लेशसंक्षये।
मुक्तिं प्रयाति स्वर्गाप्तिस्तस्य विष्णोस्तु कीर्तनात्॥
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु।
तदक्षयं विजानीयाद् यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥
क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम्।
क्व जपो वासुदेवस्य मुक्तिबीजमनुत्तमम्॥

(पद्मपुराण, उत्तर० ७२। १२—१७)

जो मनुष्य 'हरि' इस दो अक्षरके नामका उच्चारण करते हैं, वे उसके उच्चारणमात्रसे मुक्त हो जाते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तपस्याके रूपमें किये जानेवाले जो सम्पूर्ण प्रायश्चित्त हैं, उन सबकी अपेक्षा श्रीकृष्णका निरन्तर स्मरण श्रेष्ठ है। जो मनुष्य प्रातः, सायं तथा मध्याह्न आदिके समय 'नारायण' नामका स्मरण करता है, उसके समस्त पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। भगवान् विष्णुके स्मरणसे ही अविद्या, अस्मिता आदि सम्पूर्ण क्लेशोंका भलीभाँति क्षय हो जानेपर मनुष्य मोक्षको प्राप्त होता है। स्वर्गकी प्राप्ति तो श्रीविष्णुका एक बार कीर्तन करनेसे ही हो जाती है। जप, होम और पूजन आदिके समय जिसका मन भगवान् वासुदेवमें लगा रहता है, उसके उन कर्मोंका फल अक्षय समझना चाहिये। जबतक चौदह इन्द्रोंकी आयु व्यतीत होती है, तबतक वह अपने शुभ कर्मोंका फल भोगता रहता है। कहाँ स्वर्गलोककी यात्रा, जहाँसे पुनः लौटना पड़ता है और कहाँ भगवान् वासुदेवके नामोंका जप, जो मुक्तिका सर्वोत्तम बीज है!

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं भाषितं मम सुव्रत।
नामोच्चारणमात्रेण महापापात्प्रमुच्यते॥
राम रामेति रामेति रामेति च पुनर्जपन्।
स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः॥
कुरुक्षेत्रं तथा काशी गया वै द्वारका तथा।
सर्वं तीर्थं कृतं तेन नामोच्चारणमात्रतः॥
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति इति वा यो जपन् पठन्।
इहलोकं परित्यज्य मोदते विष्णुसंनिधौ॥
नृसिंहेति मुदा विप्र वर्तते यो जपन् पठन्।
महापापात् प्रमुच्येत कलौ भागवतो नरः॥
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
ये तज्ज्ञात्वा निमग्नाश्च जगदात्मनि केशवे।
सर्वपापपरिक्षीणा यान्ति विष्णोः परं पदम्॥
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की ततः स्मृतः॥
एते दशावताराश्च पृथिव्यां परिकीर्तिताः।
एतेषां नाममात्रेण ब्रह्महा शुद्ध्यते सदा॥
प्रातः पठञ्जपन् ध्यायन् विष्णोर्नाम यथा तथा।
मुच्यते नात्र संदेहः स वै नारायणो भवेत्॥

(पद्मपुराण, उत्तर० ७२। २०—२५)

उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नारद! मेरा कथन सत्य है, सत्य है, सत्य है। भगवान्‌के नामोंका उच्चारण करनेमात्रसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। 'राम-राम-राम' इस प्रकार बारंबार जप करनेवाला मनुष्य यदि चाण्डाल हो तो भी वह पवित्रात्मा हो जाता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। उसने नाम-कीर्तन मात्रसे कुरुक्षेत्र, काशी, गया और द्वारका आदि सम्पूर्ण तीर्थोंका सेवन कर लिया। जो 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण!' इस प्रकार जप और कीर्तन करता है, वह इस संसारका परित्याग करनेपर भगवान् विष्णुके समीप आनन्द भोगता है। ब्रह्मन्! जो कलियुगमें प्रसन्नतापूर्वक 'नृसिंह' नामका जप और कीर्तन करता है, वह भगवद्भक्त मनुष्य महान् पापसे छुटकारा पा जाता है। सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ तथा द्वापरमें पूजन करके मनुष्य जो कुछ पाता है, वही कलियुगमें केवल भगवान् केशवका कीर्तन करनेसे पा लेता है। जो लोग इस बातको जानकर जगदात्मा केशवके भजनमें लीन होते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त कर लेते हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि—ये दस अवतार इस पृथ्वीपर बताये गये हैं। इनके नामोच्चारणमात्रसे सदा ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध होता है। जो मनुष्य प्रातःकाल जिस किसी तरह भी श्रीविष्णुनामका कीर्तन, जप तथा ध्यान करता है, वह निस्संदेह मुक्त होता है, निश्चय ही नरसे नारायण बन जाता है।

भगवान् विष्णुके द्वारा ब्रह्माजीके प्रति श्रीकृष्ण-नाम-महिमा

श्वेतद्वीपमें परमेश्वर भगवान् विष्णु सुखपूर्वक निवास करते थे। उस समय ब्रह्माजीने उन्हें नमस्कार करके पूछा—"हृषीकेश ! आप जगदाधार हैं। आपके नामोंका श्रवण-कीर्तन परम पवित्र है, सर्वपापहारी है। आपने पहले ऐसा कहा है—'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्'—महीनोंमें मैं मार्गशीर्ष हूँ। अतः उस परमश्रेष्ठ महीनेका माहात्म्य क्या है, यह मैं यथार्थरूपमें आपसे जानना चाहता हूँ।" इसपर श्रीभगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे मार्गशीर्ष-माहात्म्यका विस्तारसे वर्णन करना प्रारम्भ किया। इसी प्रसङ्गमें 'श्रीकृष्ण-नाम-कीर्तन-महिमा'का वर्णन करते हुए श्रीभगवान् बोले—

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः।
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम्॥
विनोदेनापि दम्भेन सौख्याल्लोभाच्छलादपि।
यो मां भजत्यसौ वत्स मद्भक्तो नावसीदति॥
ये वै पठन्ति कृष्णेति मरणे पर्युपस्थिते।
यदि पापयुताः पुत्र न पश्यन्ति यमं क्वचित्॥
पूर्वे वयसि पापानि कृतान्यपि च कृत्स्नशः।
अन्तकाले च कृष्णेति स्मृत्वा मामेत्यसंशयम्॥
नमः कृष्णाय महते विवशोऽपि वदेद्यदि।
ध्रुवं पदमवाप्नोति मरणे पर्युपस्थिते॥
श्रीकृष्णेति कृतोच्चारैः प्राणैर्यदि वियुज्यते।
दूरस्थः पश्यति च तं स्वर्गतं प्रेतनायकः॥
श्मशाने यदि रथ्यायां कृष्ण कृष्णेति जल्पति।
म्रियते यदि चेत्पुत्र मामेवैति न संशयः॥
दर्शनान्मम भक्तानां मृत्युमाप्नोति यः क्वचित्।
विना मत्स्मरणात् पुत्र मुक्तिमेति स मानवः॥
पापानलस्य दीप्तस्य भयं मा कुरु पुत्रक।
श्रीकृष्णनाममेघोत्थैः सिच्यते नीरबिन्दुभिः॥
कलिकालभुजङ्गस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य किं भयम्।
श्रीकृष्णनामदारूत्थवह्निदग्धः स नश्यति॥
पापपावकदग्धानां कर्मचेष्टावियोगिनाम्।
भेषजं नास्ति मर्त्यानां श्रीकृष्णस्मरणं विना॥
प्रयागे वै यथा गङ्गा शुक्लतीर्थे च नर्मदा।
सरस्वती कुरुक्षेत्रे तद्वच्छ्रीकृष्णकीर्तनम्॥
शाखाम्भोभिर्निमग्नानां महापापोर्मिपातिनाम्।
न गतिर्मोक्षवानां न श्रीकृष्णस्मरणं विना॥
मृत्युकालेऽपि मर्त्यानां पापिनां तदनिच्छताम्।
गच्छतां नास्ति पाथेयं श्रीकृष्णस्मरणं विना॥
तत्र पुत्र गया काशी पुष्करं कुरुजाङ्गलम्।
प्रत्यहं मन्दिरे यस्य कृष्ण कृष्णेति कीर्तनम्॥
जीवितं जन्मसाफल्यं मुखं तस्यैव सार्थकम्।
सततं रसना यस्य कृष्ण कृष्णेति जल्पति॥
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥
नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्दहने मम।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥
नापविद्धं भवेत्तस्य शरीरं नैव मानसम्।
न पापं न च वैकुण्ठं कृष्ण कृष्णेति कीर्तनात्॥
श्रीकृष्णेति वचः पथ्यं न त्यजेद्यः कलौ नरः।
पापामयो वै न भवेत् कलौ तस्यैव मानसे॥

श्रीकृष्णेति प्रजल्पन्तं दक्षिणाशापतिर्नरम्।
श्रुत्वा मार्जयते पापं तस्य जन्मशतार्जितम्॥

चान्द्रायणशतैः पापं पराकाणां सहस्रकैः।
यन्नाप्नयाति तद्याति कृष्णकृष्णेतिकीर्तनात्॥
नान्याभिर्मासकोटीभिस्तोषो मम भवेत् क्वचित्।
श्रीकृष्णेति कृतोच्चारे प्रीतिरेवाधिकाधिका॥
चन्द्रसूर्योपरागैस्तु कोटिभिर्यत्फलं स्मृतम्।
तत्फलं समवाप्नोति कृष्णकृष्णेतिकीर्तनात्॥
गुरुदाराभिगमनं हेमस्तेयादिपातकम्।
श्रीकृष्णकीर्तनाद्याति घर्मतप्तं हिमं यथा॥
युक्तो यदि महापापैरगम्यागमनादिभिः।
मुच्यते चान्तकालेऽपि सकृच्छ्रीकृष्णकीर्तनात्॥
अविशुद्धमना यस्तु विनाप्याचारवर्तनात्।
प्रेतत्वं सोऽपि नाप्नोति अन्ते श्रीकृष्णकीर्तनात्॥
मुखे भवतु सा जिह्वासती यातु रसातलम्।
न सा चेत् कलिकाले या श्रीकृष्णगुणवादिनी॥
स्ववक्त्रे परवक्त्रे च वन्द्या जिह्वा प्रयत्नतः।
कुरुते या कलौ पुत्र श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्॥
पापवल्ली मुखे तस्य जिह्वारूपेण कीर्त्यते।
या न वक्ति दिवारात्रौ श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्॥
पततां शतखण्डा तु सा जिह्वा रोगरूपिणी।
श्रीकृष्णकृ

श्रीकृष्णनाममाहात्म्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
तस्याहं श्रेयसां दाता भवाम्येव न संशयः ॥
श्रीकृष्णनाममाहात्म्यं त्रिसंध्यं हि पठेत्तु यः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति स मृतः परमां गतिम् ॥

(स्कन्दपुराण, वैं० खं० १५ । ३६-६८)

"जो 'हे कृष्ण ! हे कृष्ण !! हे कृष्ण !!!' यों कहकर मेरा प्रतिदिन स्मरण करता है, उसे, जिस प्रकार कमल जलको भेदकर ऊपर निकल आता है, उसी प्रकार मैं नरकसे निकाल लाता हूँ । जो विनोदसे, पाखण्डसे, मूर्खतासे, लोभसे अथवा छलसे भी मेरा भजन करता है, वह मेरा भक्त कभी कष्टमें नहीं पड़ता । मृत्युकाल उपस्थित होनेपर जो 'कृष्ण'-नामकी रट लगाते हैं, वे यदि पापी हों तो भी कभी यमराजका दर्शन नहीं करते । पूर्व अवस्थामें किसीने सम्पूर्ण पाप किये हों तथापि यदि वह अन्तकालमें श्रीकृष्णका स्मरण कर लेता है तो निश्चय ही मुझे प्राप्त होता है । मृत्युकाल उपस्थित होनेपर यदि कोई 'परमात्मा श्रीकृष्णको नमस्कार है'—यों विवश होकर भी कहे, तो वह अविनाशी पदको प्राप्त होता है । जो 'श्रीकृष्णका' उच्चारण करके प्राणत्याग करता है, उसे प्रेतराज यम दूरसे ही खड़े होकर स्वर्गमें जाते देखते हैं । यदि 'कृष्ण-कृष्ण'का उच्चारण करता हुआ कोई श्मशानमें अथवा सड़कपर भी मर जाता है तो वह मुझे ही प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है । जो मेरे भक्तोंका दर्शन करके कहीं मृत्युको प्राप्त होता है, वह मनुष्य मेरा स्मरण किये बिना भी मोक्ष प्राप्त कर लेता है । बेटा ! पापरूपी प्रज्वलित अग्निसे भय न करो, श्रीकृष्णके नामरूपी मेघोंके जलकी बूँदोंसे उसे सींचकर बुझा दिया जाता है । तीखी दाढ़ोंवाले कलिकालरूपी सर्पका क्या भय है ! श्रीकृष्णके नामरूपी इन्धनसे उत्पन्न आगके द्वारा वह जलकर नष्ट हो जाता है । पापरूपी अग्निसे दग्ध होकर जो सत्कर्मकी चेष्टासे शून्य हो गये हैं, ऐसे मनुष्योंके लिये श्रीकृष्णके नामस्मरणके सिवा दूसरी कोई ओषधि नहीं है । जैसे प्रयागमें गङ्गा, शुक्लतीर्थमें नर्मदा और कुरुक्षेत्रमें सरस्वती हैं, उसी प्रकार सर्वत्र श्रीकृष्णका कीर्तन सब पापोंका नाश करनेवाला है । संसार-समुद्रमें डूबकर जो महान् पापोंकी लहरोंमें गिर गये हैं, ऐसे मनुष्योंके लिये श्रीकृष्ण-स्मरणके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है । जो पापी हैं, जिनमें श्रीकृष्ण-स्मरणकी इच्छा नहीं है, ऐसे मनुष्योंके लिये मृत्युकालमें तथा परलोककी यात्राके समय श्रीकृष्ण-चिन्तनके सिवा दूसरा कोई पाथेय (राहखर्च) नहीं है । बेटा ! जिस मन्दिरमें प्रतिदिन 'कृष्ण-कृष्ण'का कीर्तन होता है, वहाँ गया, काशी, पुष्कर और कुरुक्षेत्र आदि सभी तीर्थ हैं । उसीका जन्म और जीवन सफल है तथा उसीका मुख सार्थक है, जिसकी जिह्वा सदा 'कृष्ण-कृष्ण'का कीर्तन करती है । जिसने एक बार भी 'हरि'—इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षकी ओर जानेको कमर कस ली है । समस्त पापोंको भस्म कर डालनेके लिये मुझ भगवान्के नाममें जितनी शक्ति है, उतना पातक कोई पातकी मनुष्य कर ही नहीं सकता । 'कृष्ण-कृष्ण'के कीर्तनसे मनुष्यका शरीर और मन कभी मलिन (अपवित्र) नहीं होता । उसे पाप नहीं लगता और विकलता भी नहीं होती । जो श्रीकृष्णनामोच्चारणरूपी हितकर शब्दोंका कलियुगमें त्याग नहीं करता, उसके चित्तमें पापरूपी रोग नहीं पैदा होते । श्रीकृष्णनामका कीर्तन करते हुए मनुष्यकी आवाज सुनकर दक्षिण दिशाके अधिपति यमराज उसके सैकड़ों जन्मोंके पापोंका परिमार्जन कर देते हैं । सैकड़ों चान्द्रायण और सहस्रों पराक व्रतसे जो पाप नष्ट नहीं होता, वह कृष्ण-कृष्णके कीर्तनसे चला जाता है । श्रीकृष्णनामका उच्चारण करनेसे मेरी अधिकाधिक प्रीति बढ़ती है, अन्य नामोंका करोड़ों बार जप करनेसे भी मुझे वैसा संतोष कभी नहीं प्राप्त होता । कोटि-कोटि चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणोंमें स्नान करनेसे जो फल बतलाया गया

है, उसे मनुष्य कृष्ण-कृष्णके कीर्तन मात्रसे पा लेता है। जैसे सूर्य-किरणोंके तापसे बर्फ गल जाती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण-कीर्तनसे बड़े-से-बड़े महापातक नष्ट हो जाते हैं। महापापोंसे युक्त मनुष्य भी अन्तकालमें एक बार श्रीकृष्ण-नामका कीर्तन कर ले तो उससे पापमुक्त हो जाता है। जिसका मन अशुद्ध है, वह सदाचारका पालन न करनेपर भी अन्तकालमें श्रीकृष्णनामका उच्चारण कर ले तो प्रेतयोनिमें नहीं जाता। जो जिह्वा कलिकालमें श्रीकृष्णके गुणोंका कीर्तन नहीं करती, वह दुष्टा मुँहमें न रहे—रसातलको चली जाय। जो कलियुगमें श्रीकृष्णके गुणोंका प्रयत्नपूर्वक कीर्तन करती है, वह जिह्वा अपने मुखमें हो या दूसरेके मुखमें, वन्दना करने योग्य है। जो दिन-रात श्रीकृष्णके गुणोंका कीर्तन नहीं करती, वह जिह्वा नहीं—मुखमें कोई पापमयी लता है, जिसे जिह्वाके नामसे पुकारा जाता है। जो 'श्रीकृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-श्रीकृष्ण' इस प्रकार श्रीकृष्णनामका कीर्तन नहीं करती, वह रोगरूपिणी जिह्वा सौ टुकड़े होकर गिर जाय।

"जो श्रीकृष्णके नामकी इस महिमाका प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, उसके लिये निश्चय ही मैं कल्याणदाता होता हूँ। जो तीनों संध्याओंके समय श्रीकृष्णनामके माहात्म्यका पाठ करता है, वह जीते-जी सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको और मरनेपर परम गतिको पाता है।"

भीष्मजीद्वारा भगवन्नाम-कीर्तनकी महिमाका प्रतिपादन

देवर्षि नारदके द्वारा उपदिष्ट अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) का जप करनेसे किस प्रकार धर्मात्मा पुण्डरीकको भगवान् विष्णुकी कृपा प्राप्त हुई और वे श्रीविष्णुके साथ सर्वदा रहने लगे, इस वृत्तान्तको सुना देनेके पश्चात् भीष्म-जीने युधिष्ठिरसे कहा—'राजन्! जिस उपायसे भी भक्त-पूजित विश्वात्मा भगवान् विष्णु प्रसन्न हों, वह सुनो! जो मनुष्य भगवान् नारायणसे विमुख होते हैं, वे सौ अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञोंका अनुष्ठान करके भी उन्हें नहीं पा सकते।' उन्होंने कहा—

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥
(पद्मपुराण, उत्तर० ८१। १६३-१६५)

'जिसने एक बार भी 'हरि'—इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षतक पहुँचनेके लिये मानो कमर कस ली। जिनके हृदयमें नीलकमलके समान श्यामसुन्दर भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, उन्हींका लाभ है, उन्हींकी विजय है, उनकी पराजय कैसे हो सकती है?'

करते हुए गृहस्थाश्रममें निवास करता है, वह पापसे तर जाता है। तात! गङ्गाके रमणीय तटपर चन्द्रग्रहणकी मङ्गलमयी वेलामें करोड़ों गोदान करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, उससे हजार गुना अधिक फल 'गोविन्द'का कीर्तन करनेसे प्राप्त होता है। गोविन्द-नामका कीर्तन करनेवाला मनुष्य मेरे वैकुण्ठ धाममें सदा निवास करता है।"

शिव-नामकी महिमा

एक बार महर्षि लोमशजी नैमिषारण्य तीर्थमें शौनकादि ऋषियोंके यहाँ पधारे। ऋषियोंने उनका समुचित सत्कार किया। आतिथ्यके पश्चात् उन्होंने विस्तारपूर्वक शिवधर्म सुनानेके लिये लोमशजीसे प्रार्थना की। लोमशजीने उन्हें शिव-चरित्र सुनाते हुए शिव-पूजन-महिमाका गान प्रारम्भ किया। इसी प्रसङ्गमें उन्होंने कहा—

हरे हरेति वै नाम्ना शम्भोश्चक्रधरस्य च।
रक्षिता बहवो मर्त्याः शिवेन परमात्मना॥

(स्कन्दपुराण, माहे० केदार० ५। ९२)

'हे हरे! और हे हर! इस प्रकार भगवान् शिव और विष्णुके नाम लेनेसे परमात्मा शिवने बहुतेरे मनुष्योंकी रक्षा की है।'

महर्षि लोमशने शौनकादि ऋषियोंसे भगवान् शिव एवं पार्वतीके विवाहका वर्णन कर लेनेके पश्चात् उनकी (शिवकी) नाम-महिमा इस प्रकार बतायी—

ते धन्यास्ते महात्मानः कृतकृत्यास्त एव हि।
द्व्यक्षरं नाम येषां वै जिह्वाग्रे संस्थितं सदा॥
शिव इत्यक्षरं नाम यैरुदीरितमद्य वै।
ते वै मनुष्यरूपेण रुद्राः स्युर्नात्र संशयः॥

(स्कन्दपुराण, माहे० केदार० २७। २२-२३)

'जिनकी जिह्वाके अग्रभागपर सदा भगवान् शंकरका दो अक्षरोंवाला नाम (शिव) विराजमान रहता है, वे धन्य हैं, वे महात्मा पुरुष हैं तथा वे ही कृतकृत्य हैं। आज भी जिन्होंने 'शिव'—इस अविनाशी नामका उच्चारण किया है, वे निश्चय ही मनुष्यरूपमें रुद्र हैं—इसमें संशय नहीं है।'

भगवन्नाम-जपका फल ध्रुवपदकी प्राप्ति

प्राचीनकालमें स्वायम्भुव मनुके पुत्र उत्तानपाद राज्य करते थे। उनकी दो रानियाँ थीं—सुरुचि और सुनीति। सुरुचिके गर्भसे उत्तम नामक एक पुत्रका जन्म हुआ और सुनीतिके गर्भसे ध्रुव नामक पुत्र हुआ था। एक दिन राजा अपने सिंहासनपर बैठे थे। रानी सुरुचिने अपने पुत्र उत्तमको नहला-धुलाकर उत्तम वस्त्राभूषणोंसे सज्जितकर राजाके पास भेजा। वहाँ उत्तम राजाकी गोदमें विराजमान था। इसी बीच अपने समवयस्क साथियोंके साथ खेलते हुए बालक ध्रुव भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने वहाँ जब उत्तमको राजाकी गोदमें बैठे हुए देखा तो उनका बाल-हृदय स्वाभाविकरूपसे पिताकी गोदमें बैठनेको मचल उठा। फलतः वे भी राजाकी गोदमें चढ़नेकी चेष्टा करने लगे। उन्हें ऐसा करते देख रानी सुरुचिने बालक ध्रुवको फटकारते हुए कहा—'ओ अभागिनके पुत्र! क्या तू महाराजकी गोदमें बैठना चाहता है? इस सिंहासनपर बैठनेके योग्य पुण्य तूने नहीं किया है। यदि तेरा कुछ पुण्य होता तो तू क्यों अभागिनके पेटसे पैदा होता? मेरे परम सुन्दर उत्तमको देख ले। वह सौभाग्यवतीकी उत्तम कोखसे पैदा हुआ है। इसलिये वह महाराजके अङ्कमें सम्मानपूर्वक बैठा हुआ है।' सुरुचिके मोह-जालमें ग्रस्त राजा उत्तानपादने भी इस घटनापर मौन ही साध लिया।

रानी सुरुचिकी कटूक्तियोंसे बालक ध्रुवका कोमल हृदय बिंध गया। उनके हृदयपर यह एक प्रकारका वज्राघात ही था। वे उसी क्षण रोते हुए वहाँसे चल पड़े और अपनी माँके पास आये तो माँने तत्काल ताड़ लिया कि अवश्य ही बालक अपमानित एवं प्रताड़ित किया गया है। माँने बच्चेको गोदमें बड़े लाड़-प्यारके साथ उठा लिया। अपने आँचलसे ध्रुवका मुख पोंछते हुए उनके रोनेका कारण पूछा। ध्रुवने सारी बात मातासे बतायी और बड़े ही सरल भावसे पूछा—'क्यों माँ! क्या मुझे महाराजकी गोदमें बैठनेका अधिकार नहीं है?'

रानी सुनीति बोली—'मेरे लाल! सुरुचिने जो कुछ कहा, वह सब सत्य है। वह राजाकी प्रियरानी है। इसलिये वह राजाको सर्वाधिक प्रिय है। वत्स! उसने पूर्वजन्ममें बहुत बड़ा पुण्य किया है। इसी कारण उसे इतना सम्मान मिल रहा है। मुझ-जैसी अभागिनके प्रति यदि राजा उदासीन रहें

तो आश्चर्य ही क्या है। उत्तमने भी पूर्वजन्ममें महान् पुण्य अर्जित किया है। इसीलिये उत्तम राजाकी गोदका अधिकारी है। बेटा! तुम्हारे पास पुण्यकी पूँजी नहीं है। तुमने भगवान्का आराधन नहीं किया है। इसी कारण तुम राजाकी गोदके अधिकारी नहीं। हमारी पूर्वजन्मकी तपस्या महान् नहीं रही। मेरे पुत्र! अतएव यदि तुम्हें राजाके लाड़-प्यारसे वञ्चित रहना पड़ रहा है तो तुम दुखी मत होओ।'

ध्रुवने कहा—'माँ! मैंने मनुके उच्च कुलमें जन्म पाया है। मैं भी तपस्या करके भगवान्को प्रसन्न करूँगा और अपने कुलके अनुरूप राज्य-गौरवको अवश्य प्राप्त करूँगा।'

उसकी बातें सुनकर माँ बोली—'बेटा! तुम्हारी आयु अति अल्प है। तुम अभी कठिन साधना करने योग्य नहीं हो, तथापि मैं तुम्हें इस कठोर व्रतको पूर्ण करनेकी आज्ञा अपने हृदयको कठोर करके दे रही हूँ। बेटा! तपस्याके हेतु तुम्हारे चले जानेपर मेरे प्राण किसी तरह कण्ठमें अटके रहेंगे।'

ध्रुव माँकी आज्ञा पाकर प्रसन्न एवं दृढ़ चित्तसे भगवान्की आराधनाके लिये चल पड़े। वनमें ध्रुवसे सप्तर्षि (या देवर्षि नारदजी) मिले। वे इन्हें इस भाँति बीहड़ और हिंसक पशुओंसे युक्त वनमें तपस्या करनेको तत्पर देख बड़े विस्मित हुए। उन्हें इनपर दया आयी। वे बोले—'वत्स! तू क्यों ऐसे स्थलमें आया है? तुझपर क्या विपत्ति, कैसा दुःख आ पड़ा है?' बालक ध्रुवने अपना सारा वृत्तान्त उन्हें सुनाया। उन्होंने कहा—'मैं किसी भी प्रकारका भजन-पूजन अथवा जप-तपकी रीति नहीं जानता। महामुनियो! आपलोग कृपा करके मुझे कोई ऐसा उपदेश दें, जिसके द्वारा मैं भगवान्को प्रसन्न कर सकूँ और इतना पुण्य अर्जित करूँ कि मुझे मेरे राजा पिताकी गोदमें बैठनेका अधिकार प्राप्त हो जाय। इसके अतिरिक्त मैं उस पदको प्राप्त करूँ, जो मेरे पिताके लिये भी दुर्लभ हो। वस्तुतः श्रेष्ठ मनुष्य वही है, जिसकी कीर्ति पितासे भी महान् हो।'

बालक ध्रुवकी नीतियुक्त वाणी सुनकर ऋषियोंने उन्हें 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—यह द्वादशाक्षर नाममन्त्र देकर कहा कि तुम अनन्य निष्ठासे भगवान् वासुदेवका नाम-भजन करो। तुम्हारी भक्तिनिष्ठा और भजनसे प्रसन्न होकर भगवान् तुम्हारी मनोकामनाको पूर्ण करेंगे। ध्रुव उनके आदेशको मानकर चल दिये। सप्तर्षि अन्तर्धान हो गये। वे वनसे निकलकर यमुनाके किनारे मनोहर मधुवनमें चले गये। वहाँ भगवान् श्रीहरिका पवित्र आदिस्थान है। वहाँ आनेपर पापी जीव भी निष्पाप हो जाता है। ध्रुव वहींपर भगवान् विष्णुके शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मधारी स्वरूपका ध्यान लगाकर 'वासुदेव' मन्त्रका जप करने लगे। ध्रुवने इतनी उग्र तपस्या की कि तीनों लोक उनकी तपस्याके वेगसे संतप्त होने लगे। इन्द्र, सोम, अग्नि आदि समस्त दिक्पाल एवं देवतागण त्रस्त होने लगे कि कहीं ध्रुव हमारा पद न ले लें। भयभीत देवतागण ब्रह्माके पास गये और उन्हें अपने त्राससे अवगत कराया। ब्रह्माजीने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा—'देवताओ! ध्रुव ध्रुवपद (अविनाशी स्थान) प्राप्त करना चाहता है। तुम सब लोग निश्चिन्त रहो। ध्रुव भगवान्का परम भक्त है, उससे तुमलोगोंको भयभीत नहीं होना चाहिये।' ब्रह्माकी वाणी सुनकर देवगण बड़े प्रसन्न हुए और अपने-अपने स्थानको चले गये। उधर भगवान् विष्णु बालक ध्रुवकी दृढ़-निष्ठायुक्त तपस्साधनासे प्रसन्न हो उनके समीप आये और कहा—'मैं तुमपर अति प्रसन्न हूँ; तुम जो वर चाहो, सो माँगो।' भगवान् विष्णुकी अमृतमयी वाणी सुनकर बालक ध्रुवने आँखें खोल दीं और देखा—इन्द्रनीलमणिके समान श्याम तेजका पुञ्ज सामने प्रकाशित हो रहा है। पीताम्बरधारी, मेघके समान श्याम गरुड़वाहन विष्णुको ध्रुवने देखा। उन्हें देखकर ध्रुव उनके चरणोंमें दण्डकी भाँति पड़ गये। जैसे दुखी बालक पिताको देखकर भावविह्वल हो रोता है, वैसे ही ये भी भगवान्के चरणोंमें पड़कर रोने लगे। भगवान् करुणासे भर गये। उन्होंने ध्रुवको अपने हाथोंसे उठाया और उनके धूलि-धूसरित अङ्गोंको प्रेमपूर्वक सहलाया। देवाधिदेव श्रीहरिके स्पर्शमात्रसे ध्रुवके मुखसे संस्कृतमयी शुभ वाणी प्रकट हुई। उन्होंने भगवान्का इस प्रकार स्तवन करते हुए कहा—

प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत्।
तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम हरेदघम्॥
(स्कन्दपुराण, का० पू० २१।५७)

'जैसे आगकी चिनगारी भूलसे भी छू जाय तो वह जला ही देती है, उसी प्रकार ओठोंसे श्रीहरिनामका स्पर्श होते ही वह समस्त पापोंको हर लेता है।'

तदनन्तर भगवान्की कृपासे वे राज्यको तथा दुर्लभ ध्रुवपदको प्राप्त हुए।

'ॐ नमः शिवाय' और शिव-नामकी महिमा

।ब सूतजी शौनकादि ऋषियोंको भगवान् शिवका सुना चुके, तब ऋषियोंने उनसे प्रार्थना की कि 'अब ।पापूर्वक हमें त्रिपुर-विनाशक भगवान् शंकरके चरित्र-।र एवं उनके नामकी महिमाके विषयमें बोध कराइये।'

तजी बोले—'मुनिवरो ! भगवान् शिव नित्य निवास हैं। उनका नाम-संकीर्तन ऐश्वर्य, दिव्य ोग एवं भक्ति-मुक्तिका प्रदायक है। मरणधर्मा यह सतत कर्त्तव्य है कि वह उनके नामोंका भजन यों कहकर सूतजीने भगवान् शिवके नाम-विषयक जपोंकी महिमाका वर्णन इस प्रकार किया—

र्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि ।
र्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः ॥

(स्कन्दपुराण, ब्रा० ब्रह्मो० १ । ७)

।मस्त पुण्यों, श्रेयके सम्पूर्ण साधनों और समस्त जपयज्ञको ही सर्वोत्तम माना गया है।'

सके पश्चात् सूतजीने भगवान् शंकरके पञ्चाक्षर-मन्त्रकी का गान इस प्रकार किया—

ृ तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तीर्थैः किं तपोऽध्वरैः ।
स्यों नमः शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचरः ॥

(स्कन्दपुराण, ब्रा० ब्रह्मो० १ । १६)

'जिसके हृदयमें 'ॐ नमः शिवाय'—यह मन्त्र निवास है, उसके लिये बहुत-से मन्त्र, तीर्थ, तप और यज्ञोंकी क्या आवश्यकता है।'

तस्मात् सर्वप्रदो मन्त्रः सोऽयं पञ्चाक्षरः स्मृतः ।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैर्धार्यते मुक्तिकाङ्क्षिभिः ॥
नास्य दीक्षा न होमश्च न संस्कारो न तर्पणम् ।
न कालो नोपदेशश्च सदा शुचिरयं मनुः ॥

(स्कन्दपुराण, ब्रा० ब्रह्मो० १ । २०-२१)

'अतः यह पञ्चाक्षर (नमः शिवाय) मन्त्र सब कुछ देनेवाला माना गया है। इसे मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले स्त्री-समुदाय, शूद्र और वर्णसंकर—सभी धारण कर सकते हैं। इस मन्त्रके लिये दीक्षा, होम, संस्कार, तर्पण, समय-शुद्धि तथा गुरुमुखसे उपदेश आदिकी आवश्यकता नहीं है। यह मन्त्र सदा पवित्र है।'

महापातकविच्छित्त्यै शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
अलं नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये परिकल्पते ॥
उपदिष्टः सद्गुरुणा जप्तः क्षेत्रे च पावने ।
सद्यो यथेप्सितां सिद्धिं ददातीति किमद्भुतम् ॥

(स्कन्दपुराण, ब्रा० ब्रह्मो० १ । २२-२३)

'शिव'—यह दो अक्षरोंका मन्त्र ही बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेमें समर्थ है और उसमें 'नमः' पद जोड़ दिया जाय, तब तो वह मोक्ष देनेवाला हो जाता है। जो गुरु निर्मल, शान्त, साधु, स्वल्पभाषी, काम-क्रोधसे रहित, सदाचारी और जितेन्द्रिय हों, उनके द्वारा दयापूर्वक दिया हुआ मन्त्र शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है।

प्रार्थना

यशोदायशोदानदक्षाम्बुजाक्ष
प्रतीप-प्रमाद-प्रहाण-प्रवीण ।
निजापाङ्गसङ्गोद्भवानङ्गगोपा-
ङ्गनापाङ्गनृत्याङ्गनीभूतदेह ॥
सदाराधिकाराधिकासाधिकाय-
प्रतापप्रसाद प्रभो कृष्णदेव ।
अनङ्गीकृतानङ्गसेव्यान्तरङ्ग-
प्रविष्टप्रतापाघहन्मे प्रसीद ॥

रमाकान्त शान्त प्रतीपान्त मेऽन्तः-
स्थिरीभूतपादाम्बुजस्त्वं भवान्‌ ।
सदा कृष्णकृष्णेति नाम त्वदीयं
विभो गृह्णतो हे यशोदाकिशोर ॥
स्फुरद्रङ्गभूयिष्ठमञ्चोपविष्टो-
च्छलच्छत्रपक्षे भयं चानीनिषो ।
अलिव्रातजुष्टोत्तमस्रग्धरश्री-
मनोमन्दिर त्वं हरे मे प्रसीद ॥

प्रह्लादजीद्वारा भगवन्नाम-महिमाका वर्णन

जब द्वापर समाप्त हो गया और भयानक कलियुग आ गया, तब सद्धर्म क्षीण होने लगा। अधर्म प्रबल हो गया। वैदिक धर्म एवं वर्णाश्रम-व्यवस्थाका लोप होने लगा। धर्मकी इस दुर्दशासे शौनकादि वनवासी ऋषि बड़े व्यथित हो गये। वे आपसमें मिलकर धर्मोद्धारके हेतु मन्त्रणा करने लगे। इस मन्त्रणामें गर्ग, च्यवन, गालव, देवल, धौम्य तथा उद्दालक आदि अनेक महर्षि भी सम्मिलित थे। उन्होंने अपनी सभामें यही निश्चय किया कि धर्मकी अधोगतिसे त्रस्त इस युगमें भगवान् विष्णु ही हमारे एकमात्र आश्रय हैं। अब हमलोग उन्हींकी खोज करें। महर्षि उद्दालकने सभी ऋषियोंके समक्ष यह प्रस्ताव रक्खा कि हमलोग शीघ्र ही ब्रह्माजीके पास चलें और उनसे पूछें कि कलियुगमें भगवान् विष्णुकी स्थिति कहाँ है। उनकी बातका अन्य ऋषियोंने सहर्ष समर्थन किया और सब ब्रह्माजीके पास पहुँचे तथा वहाँ उनका बहुविध स्तवन किया। मुनियोंके स्तवन करनेके पश्चात् ब्रह्माजीने उनकी कुशल पूछी।

ऋषियोंने कहा—'हम आपकी कृपासे सकुशल हैं। हमारे यहाँ आनेका एकमात्र कारण यह है कि हम घोर कलियुगसे त्रस्त हो रहे हैं। कृपया आप हमें यह बतलाइये कि इस समय पृथ्वीपर भगवान् विष्णु कहाँ हैं, जिनका दर्शन प्राप्तकर हम बन्धनरहित हो परम मुक्तिको प्राप्त कर सकें।'

ब्रह्माजी बोले—'तुमलोग पाताल-लोकमें जाओ और वहाँ दैत्यराज भक्त प्रह्लादजीसे पूछो। उन्हें कलियुगमें भगवान्के रहनेके स्थानका पता है।' ब्रह्माजीकी बात सुनकर तपस्वियोंने उन्हें प्रणाम किया और वे प्रह्लादजीके पास पाताल-लोकमें गये। उन्होंने ऋषियोंका भलीभाँति आगत-स्वागत किया। ऋषियोंने उनसे कलियुगमें भगवान् विष्णुकी स्थिति-के बारेमें पूछा।

श्रीप्रह्लादजीने कहा—'पूज्य महर्षियो! मैं आपलोगोंकी आज्ञा तथा भगवान् विष्णुके प्रसादसे भगवान्के स्थान-परिचय बतलाता हूँ—पश्चिम समुद्रके तटपर जो कुशस्थली-पुरी है, जिसका निर्माण पहले राजा कुशके द्वारा हुआ था, जहाँ गोमती नदी बहती है और समुद्रमें मिली है, वही द्वारावतीपुरी कहलाती है। उसीमें षोडश कलाओं तथा बारह मूर्तियोंसे युक्त भगवान् विष्णु रहते हैं।' इसके पश्चात् प्रह्लाद-जीने बड़े विस्तारसे द्वारकाके माहात्म्यका वर्णन किया। अन्तमें उन्होंने कहा—

> नास्ति नास्ति महाभाग कलिकालसमं युगम्।
> स्मरणात् कीर्तनाद् विष्णोः प्राप्यते परमं पदम्॥
> कृष्णकृष्णेति कृष्णेति कलौ वक्ष्यति प्रत्यहम्।
> नित्यं यज्ञायुतं पुण्यं तीर्थकोटिसमुद्भवम्॥
> कृष्णकृष्णेति कृष्णेति नित्यं जपति यो जनः।
> तस्य प्रीतिः कलौ नित्यं कृष्णस्योपरि वर्द्धते॥
>
> (स्कन्दपुराण, द्वा० मा० ३८। ४४–४६)

"महाभाग! कलिकालके समान दूसरा कोई युग नहीं है; इसमें भगवान्के स्मरण-कीर्तनसे मनुष्य परमपद प्राप्त कर लेता है। जो कलियुगमें नित्यप्रति 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' का उच्चारण करेगा, उसे प्रतिदिन दस हजार यज्ञों और करोड़ों तीर्थोंका पुण्य प्राप्त होगा। जो मनुष्य नित्य 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण'का जप करता है, कलियुगमें श्रीकृष्णके ऊपर उसका प्रेम निरन्तर बढ़ता है।"

प्रह्लादजीने कहा—

> कृष्णकृष्णेति कृष्णेति नित्यं जाग्रत् स्वपंश्च यः।
> कीर्तयेत्तु कलौ चैव कृष्णरूपी भवेद्धि सः॥
>
> (स्कन्दपुराण, द्वा० मा० ३९। १)

"जो कलिमें प्रतिदिन जागते और सोते समय 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' का कीर्तन करता है, वह श्रीकृष्णस्वरूप हो जाता है।"

माहात्म्यकी कथा हो रही थी। मैं भी कथा सुनने गया। मैं दम्भपूर्वक कथावाचकको बिना प्रणाम किये ही श्रोताओंकी मण्डलीमें बैठ गया और लोगोंको कथा-श्रवणमें अनेक प्रकारके विघ्न पहुँचाकर बाधा डालने लगा। कथा समाप्त हो गयी। तत्पश्चात् दूसरे दिन मैं संनिपात रोगसे ग्रस्त हो गया और मेरी मृत्यु हो गयी। मैं तपाये शीशेके जलसे भरे हुए हलाहल नरकमें डाल दिया गया और दीर्घकालतक वहाँ यातना भोगता रहा। उसके बाद चौरासी लाख योनियोंमें क्रमशः जन्म लेता और मरता हुआ मैं क्रूर तमोगुणी सर्प होकर इस वृक्षके खोखलेमें निवास कर रहा था। मुने! सौभाग्यवश आपके मुखारविन्दसे निकली अमृतमयी कथाके श्रवणसे मेरे पाप तत्काल नष्ट हो गये। महाराज! मैं आपका बड़ा ही कृतज्ञ हूँ।' वह मुनि शङ्खकी नाना प्रकारसे स्तुति करके हाथ जोड़े चुपचाप उनके आगे खड़ा हो गया।

तब शङ्खने कहा—'ब्रह्मन्! तुमने वैशाखमास और भगवान् विष्णुका माहात्म्य सुना, इससे उसी क्षण तुम्हारा सारा बन्धन नष्ट हो गया। उन्होंने आगे कहा—

हास्याद्भयात्तथा क्रोधाद् द्वेषात्कामादथापि वा।
स्नेहाद्वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामाघहारि च॥
पापिष्ठा अपि गच्छन्ति विष्णोर्धाम निरामयम्।
किमु तच्छ्रद्धया युक्ता जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
दयावन्तः कथां श्रुत्वा गच्छन्तीति द्विजोत्तम॥

(स्कन्दपुराण, वै० वै० मा० २१। ३६–३८)

'द्विजश्रेष्ठ! परिहास, भय, क्रोध, द्वेष, कामना अथवा स्नेहसे भी एक बार भगवान् विष्णुके पापहारी नामका उच्चारण करके बड़े भारी पापी भी रोग-शोकरहित वैकुण्ठधाममें चले जाते हैं। फिर जो श्रद्धासे युक्त हो क्रोध और इन्द्रियोंको जीतकर सबके प्रति दयाभाव रखते हुए भगवान्‌की कथा सुनते हैं, वे उनके लोकमें जाते हैं—इस विषयमें तो कहना ही क्या है।'

भगवान् शंकरद्वारा वर्णित राम-नाम-महिमा

जब भगवान् शंकरने पार्वतीजीसे वैष्णवधर्मका भलीभाँति वर्णन कर दिया, तब पार्वतीजीने उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहा—'नाथ! आपने उत्तम वैष्णवधर्मका सम्यक्‌रूपसे प्रतिपादन किया। वास्तवमें परमात्मा विष्णुका स्वरूप गोपनीयसे भी गोपनीय है। सर्वदेववन्दित महेश्वर! मैं आपके प्रसादसे धन्य और कृतकृत्य हो गयी। अब मैं भी सनातन देव श्रीहरिका पूजन करूँगी।' इसपर भगवान् शंकर बोले—'यह तुम्हारा निश्चय बड़ा ही शुभ है। तुम सम्पूर्ण इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् लक्ष्मीपतिका पूजन अवश्य करो।' तदनन्तर वामदेवजीके उपदेशानुसार पार्वतीजी प्रतिदिन श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करनेके पश्चात् भोजन करने लगीं। एक दिन परममनोहर कैलासशिखरपर भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना करके भगवान् शंकरने पार्वतीजीको अपने साथ भोजन करनेके लिये बुलाया। तब पार्वतीजीने कहा—'प्रभो! मैं श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ कर लेनेके पश्चात् भोजन करूँगी, तबतक आप भोजन कर लें।' यह सुनकर महादेवजीने हँसते हुए कहा—

धन्यासि कृतकृत्यासि विष्णुभक्तासि पार्वति।
दुर्लभा वैष्णवी भक्तिर्भागधेयं विनेश्वरि॥
राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥
रकारादीनि नामानि शृण्वतो मम पार्वति।
मनः प्रसन्नतां याति रामनामाभिशङ्कया॥

(पद्मपुराण, उत्तर० २८१। २०, २२-२३)

पाठशालामें निमाई पण्डितके द्वारा नाम-शिक्षा

काशीके संन्यासियोंमें श्रीचैतन्य

[पृष्ठ १५१
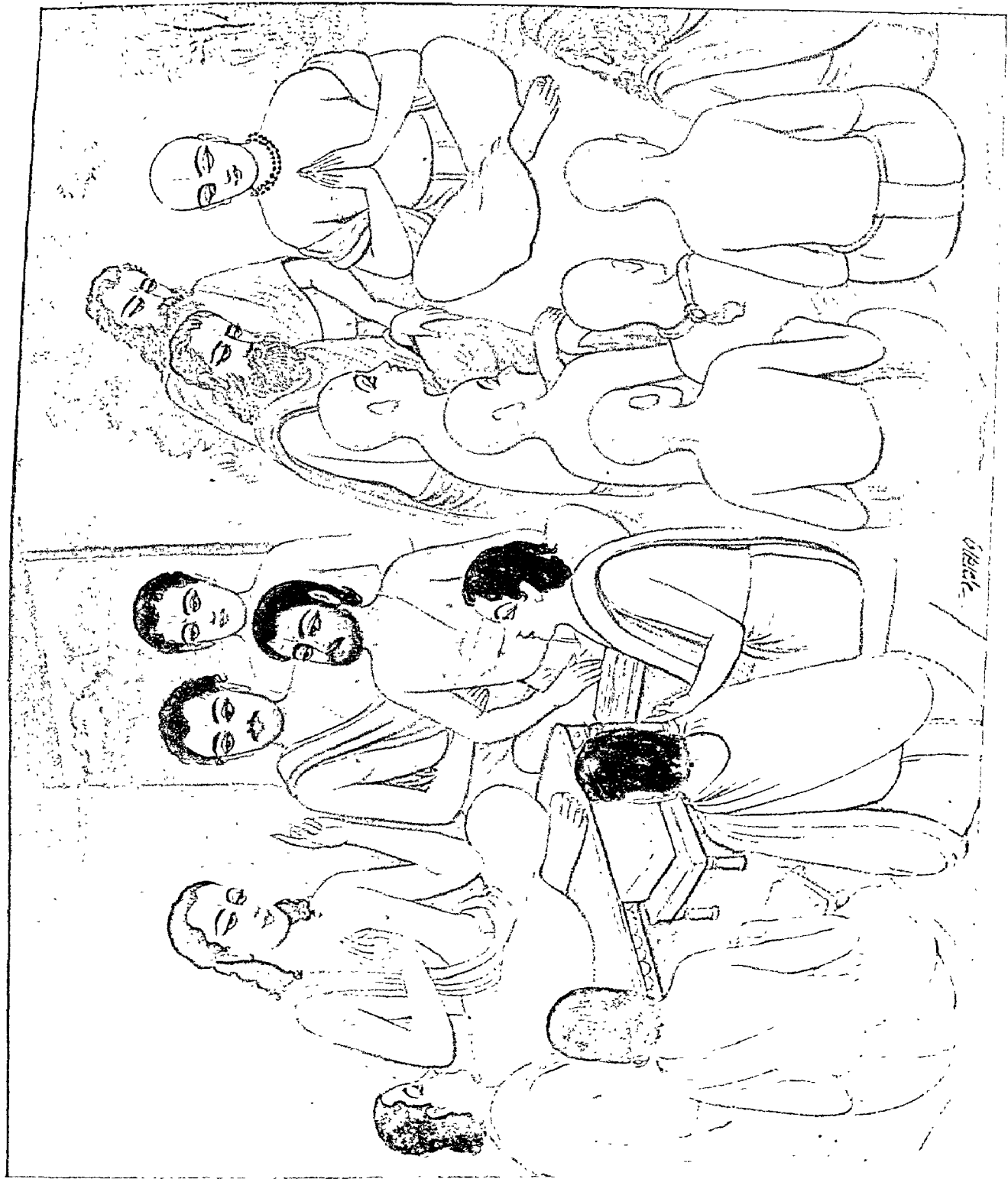
"पार्वती ! तुम धन्य हो, पुण्यात्मा हो; क्योंकि भगवान् विष्णुमें तुम्हारी भक्ति है । देवि ! भाग्यके बिना श्रीविष्णु-भक्तिका प्राप्त होना बहुत कठिन है । सुमुखि ! मैं तो 'राम ! राम ! राम !' इस प्रकार जप करते हुए परम मनोहर श्रीरामनाममें ही निरन्तर रमण किया करता हूँ । रामनाम सम्पूर्ण सहस्रनामके समान है । पार्वती ! रकारादि जितने नाम हैं, उन्हें सुनकर रामनामकी आशङ्कासे मेरा मन प्रसन्न हो जाता है ।"

पार्वतीजीने राम-नामका उच्चारण करके भगवान् शंकरके साथ बैठकर भोजन किया । इसके बाद उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर पूछा—'देवेश्वर ! आपने राम-नामको सम्पूर्ण सहस्र-नामके तुल्य बतलाया है—यह श्रवण करके मेरी रामनाममें बड़ी निष्ठा हो गयी है; अतः भगवान् श्रीरामके यदि और भी नाम हों तो बताइये ।'

महादेवजी बोले—पार्वती ! सुनो, मैं श्रीरामचन्द्रजीके नामोंका वर्णन करता हूँ । लौकिक और वैदिक जितने नाम हैं, वे सब श्रीरामचन्द्रजीके ही नाम हैं । किंतु सहस्रनाम उन सबमें अधिक है । सहस्रनामोंमें भी श्रीरामके एक सौ आठ नामोंकी महिमा अधिक है । उन्होंने आगे कहा—

विष्णोरेकैकनामैव सर्ववेदाधिकं मतम् ।
तादृङ्नामसहस्राणि रामनाम समं मतम् ॥
जपतः सर्वमन्त्रांश्च सर्ववेदांश्च पार्वति ।
तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥

(पद्मपुराण, उत्तर० २८१ । २७-२८)

'श्रीविष्णुका एक-एक नाम ही सब वेदोंसे अधिक माना गया है । वैसे ही एक हजार नामोंके समान अकेला श्रीराम-नाम माना गया है । पार्वती ! जो सम्पूर्ण मन्त्रों और समस्त वेदोंका जप करता है, उसकी अपेक्षा कोटिगुना पुण्य केवल राम-नामसे उपलब्ध होता है ।'

इसके पश्चात् महादेवजीने पार्वतीजीके सम्मुख भगवान्-के मुख्य नामोंका, जिनकी संख्या एक सौ आठ है, गान किया । उन्होंने कहा—पार्वती ! जो इन नामोंका पाठ करता है, उसके सौ कल्पोंके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं । उसे समस्त ऋद्धि-सिद्धियोंकी प्राप्ति हो जाती है । तथा—

रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम् ।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो जनाः ॥
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥

(पद्मपुराण, उत्तर० २८१ । ५४-५५)

'जो दूर्वादलके समान श्यामसुन्दर कमलनयन पीताम्बर-धारी भगवान् श्रीरामके इन दिव्य नामोंसे स्तवन करते हैं, वे मनुष्य कभी संसार-बन्धनमें नहीं पड़ते । राम, रामभद्र, रामचन्द्र, वेधा, नाथ एवं सीतापतिको नमस्कार है ।'

श्रीराम-नामकी महिमा

राजा दशरथने बड़ी प्रसन्नताके साथ पुरोहित वसिष्ठजीके द्वारा बालकका बड़ा सुन्दर नाम रखवाया । वसिष्ठ बोले—

श्रियः कमलवासिन्या रमणोऽयं महाप्रभुः ।
तस्माच्छ्रीराम इत्यस्य नामसिद्धं पुरातनम् ॥
सहस्रनाम्नां श्रीशस्य तुल्यं मुक्तिप्रदं नृणाम् ।
विष्णुमासि समुत्पन्नो विष्णुरित्यभिधीयते ॥

(पद्मपुराण, उत्तर० २६९ । ७४-७५)

"ये महाप्रभु कमलमें निवास करनेवाली श्रीदेवीके साथ रमण करनेवाले हैं, इसलिये इनका परम प्राचीन स्वतःसिद्ध नाम 'श्रीराम' होगा । यह नाम भगवान् विष्णुके सहस्रनामोंके समान है तथा मनुष्योंको मुक्ति प्रदान करनेवाला है । चैत्रमास श्रीविष्णुका मास है । इसमें प्रकट होनेके कारण ये विष्णु भी कहलायेंगे ।"

हरि-हर-नाम-कीर्तनकी महिमा

अगस्त्यजीने लोपामुद्रासे कहा—'प्राचीन कालमें मथुरामें शिवशर्मा नामके एक कुलीन धर्मात्मा ब्राह्मण रहते थे। जब उनकी युवावस्था बीत गयी और वार्धक्य आया, तब उन्हें इस तथ्यको लेकर बड़ी चिन्ता हुई कि अभीतक तो हमने देवाधिदेव भगवान् शंकरकी भलीभाँति आराधना-अर्चना नहीं की और न तो भगवान् विष्णुकी ही प्रेमपूर्वक उपासना की। जीवन ऐसे ही व्यतीत हो गया। केवल ग्रन्थाध्ययन और गृहस्थ-जीवनके सुखोपभोग साथ जायँगे नहीं। मरणोपरान्त हरि-हरकी भक्ति ही एकमात्र सहायक वस्तु होगी।' यह सोचकर वे भगवत्-प्रेमपिपासु ब्राह्मण अपने घरसे सप्तपुरियों—अयोध्या, काशी, मथुरा, काञ्ची, अवन्तिका, द्वारका एवं माया (हरिद्वार)—की यात्राको निकल पड़े। अन्य तीर्थोंका नियम-निष्ठापूर्वक दर्शन करते हुए वे अन्तमें हरिद्वार आये। यह पुरी अत्यन्त मनोरम है। वहाँ पर्वतमालाओंसे बाहर निकली हुई गङ्गा इस भूतलपर 'भागीरथी' नामसे प्रसिद्ध हैं, जिनके नामके उच्चारणमात्रसे जीवके पापोंकी राशि नष्ट हो जाती है। तत्त्वविद् महात्माओंने इस हरिद्वारपुरीको वैकुण्ठकी सीढ़ी ही बताया है। वहाँ स्नान करनेवाले मोक्षको प्राप्त होते हैं। शिवशर्माने भी हरिद्वारमें पहुँचकर व्रत रहकर गङ्गामें स्नान किया और देवताओंका तर्पण किया। ज्यों ही उन्होंने इन कर्मोंसे निवृत्त होकर पारण करनेका विचार किया कि वे सहसा ज्वराक्रान्त हो गये। उनकी रुग्णता दिनोंदिन बढ़ती गयी। परदेशमें अकेले होनेपर भी वे अपनी गम्भीर रुग्णावस्थामें तनिक भी घबराये नहीं। उन्होंने इस परम पावन पुरीमें ही अपने मर्त्यशरीरको त्यागनेका विचार किया। एक पक्ष इस प्रकार रोगग्रस्त रहनेके पश्चात् उनका शरीर छूट गया। मृत्युके उपरान्त उन्हें वैकुण्ठधाम ले जानेके लिये भगवान् विष्णुके दो पार्षदोंसहित एक परम दिव्य विमान आया और दिव्य देहधारी शिवशर्माने उसमें विराजमान हो वैकुण्ठधामके लिये प्रस्थान किया।

वैकुण्ठधामकी यात्रा करते हुए मार्गमें पड़नेवाले लोकोंके बारेमें शिवशर्मा उन दोनों विष्णुगणोंसे पूछते जाते थे। विष्णुके गणोंने उन्हें वैकुण्ठमार्गमें स्थित पिशाचलोकके, गुह्यकलोकके एवं विद्याधरोंके लोकके विषयमें परिचय दिया। शिवशर्मा और पार्षदोंके बीच जब वार्तालाप चल रहा था, इसी बीच धर्मराज वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने शिवशर्माको भूरि-भूरि धन्यवाद देते हुए कहा—'तुमने वेदोंका अध्ययन करके, भगवान्‌की पूजा-उपासना, अपने गुरुजनोंकी सेवा करके एवं पावन करनेवाली सप्तपुरियोंका दर्शन करके महान् पुण्य अर्जन किया है। तुम्हारे भाग्य धन्य हैं। भगवान् विष्णुके पार्षद तुम्हारे साथी हैं।' यों कहकर धर्मराज चले गये। उनके चले जानेपर शिवशर्माने पार्षदोंसे पूछा—'मृत्युलोकमें तो धर्मराजके स्वरूपका वर्णन लोग बड़े ही भयंकर एवं क्रूर देवताके रूपमें करते हैं, परंतु इनका स्वरूप तो बड़ा ही सौम्य है।'

दोनों पार्षद बोले—'जो लोग धर्मात्मा हैं, सत्य नीतिके सेवी हैं, भगवान्‌के सच्चे उपासक एवं उनके नामका संकीर्तन करनेवाले हैं, उनको धर्मराज अपने सौम्यरूपमें ही दर्शन देते हैं। मरणोपरान्त ऐसे व्यक्तियोंके विषयमें ही यमराज अपने दूतोंको निर्देश देते हैं—

'मेरे सेवको! जो मनुष्य गोविन्द, माधव, मुकुन्द, हरे, मुरारे, शम्भु, शिव, ईश, चन्द्रशेखर, शूलपाणि, दामोदर, अच्युत, जनार्दन और वासुदेव इत्यादि नामोंका सदा उच्चारण करते रहते हैं, उनको दूरसे ही त्याग देना। दूतो! जो लोग सदा गङ्गाधर, अन्धकरिपु, हर, नीलकण्ठ, वैकुण्ठ, कैटभरिपु, कमठ, पद्मपाणि, भूतेश, खण्डपरशु, मृड, चण्डिकेश आदि नामोंका जप करते हैं, वे तुम्हारे लिये सर्वथा त्याज्य हैं। मेरे दूतो! विष्णु, नृसिंह, मधुसूदन, चक्रपाणि, गौरीपति, गिरीश, शंकर, चन्द्रचूड, नारायण,

असुरविनाशन, शार्ङ्गपाणि इत्यादि नामोंका सदा जो लोग कीर्तन करते रहते हैं, उन्हें भी दूरसे ही त्याग देना उचित है ।'

गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे
शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे ।
दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥
गङ्गाधरान्धकरिपो हर नीलकण्ठ
वैकुण्ठ कैटभरिपो कमठाब्जपाणे ।
भूतेश खण्डपरशो मृड चण्डिकेश
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥
विष्णो नृसिंह मधुसूदन चक्रपाणे
गौरीपते गिरिश शंकर चन्द्रचूड ।
नारायणासुरनिबर्हण शार्ङ्गपाणे
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥

(स्क० पु० का० पू० ८ । ९९-१०

कुञ्जलक (तोतेके) द्वारा भगवान्के शतनाम-स्तोत्रका वर्णन

एक दिन मुनिश्रेष्ठ महर्षि च्यवनके मनमें विचार हुआ कि 'मैं इस पृथ्वीपर कब ज्ञानसम्पन्न होऊँगा ।' इस प्रकार सोचते-सोचते उनके मनमें यह बात आयी कि 'मैं तीर्थयात्राको चलूँ; क्योंकि तीर्थयात्रा अभीष्ट फलको देनेवाली है ।' वे तीर्थयात्राके हेतु चल पड़े । भ्रमण करते हुए वे ओंकारेश्वर तीर्थमें आये और एक वटवृक्षकी शीतल छायामें सुखपूर्वक विश्राम करने लगे । उसी बरगदके पेड़पर 'कुञ्जलक' नामका एक दीर्घजीवी तोता रहता था । तोता बड़ा ज्ञानी था । उसके उज्ज्वल, समुज्ज्वल, विज्वल और कपिञ्जल नामके चार पुत्र थे । चारों ही माता-पिताके बड़े भक्त थे । चारों पुत्र दिन भर चारेका संग्रह करते और संध्या-समय वे संगृहीत चारेको अपने माता-पिताके सम्मुख प्रस्तुत करते । वे माता-पिताकी सर्वविध सेवामें लीन हो जाते । कुञ्जलक पक्षी परिवारके सभी लोगोंके भोजन कर लेनेके पश्चात् उन्हें ज्ञानोपदेश किया करता था, दिव्य-पवित्र कहानियाँ सुनाता था ।

उस दिन महर्षि च्यवनने देखा कि कुञ्जलकके च पुत्र आये । उन्होंने उसकी सेवा-परिचर्या की । कुञ्ज भोजनादिके पश्चात् उन्हें कहानियाँ सुनाने और ज्ञानोप करने लगा । उसके एक पुत्र उज्ज्वलने कहा—'पिताज इस समय पहले मेरे लिये उत्तम ज्ञानका वर्णन कीजि इसके बाद ध्यान, व्रत, पुण्य तथा भगवान्के शतन स्तोत्रका भी उपदेश दीजिये ।' कुञ्जलकने पहले ज्ञान, ध्य व्रत, पुण्यका उपदेश दिया । इसके पश्चात् उसने भगवा शतनाम-स्तोत्रका महिमासहित इस प्रकार वर्णन किया—

नमाम्यहं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनम् ।
सूदनं सर्वदैत्यानां नारायणमनामयम् ॥
जयन्तं विजयं कृष्णमनन्तं वामनं यथा ।
विष्णुं विश्वेश्वरं पुण्यं विश्वात्मानं सुरार्चितम् ॥
अनघं त्वघहर्तारं नारसिंहं श्रियःप्रियम् ।
श्रीपतिं श्रीधरं श्रीदं श्रीनिवासं महोदयम् ॥
श्रीरामं माधवं मोक्षं क्षमारूपं जनार्दनम्
सर्वज्ञं सर्ववेत्तारं सर्वेशं सर्वदायकम्
हरिं मुरारिं गोविन्दं पद्मनाभं प्रजापतिम्
आनन्दं ज्ञानसम्पन्नं ज्ञानदं ज्ञानदायकम्
अच्युतं सबलं चन्द्रवक्त्रं व्याप्तपरावरम्
योगेश्वरं जगद्योनिं ब्रह्मरूपं महेश्वरम्
मुकुन्दं चापि वैकुण्ठमेकरूपं कविं ध्रुवम्
वासुदेवं महादेवं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम्
गोप्रियं गोहितं यज्ञं यज्ञाङ्गं यज्ञवर्धनम्
यज्ञस्यापि सुभोक्तारं वेदवेदाङ्गपारगम्

वेदज्ञं वेदरूपं तं विद्यावासं सुरेश्वरम्।
प्रत्यक्षं च महाहंसं शङ्खपाणिं पुरातनम्॥
पुष्करं पुष्कराक्षं च वाराहं धरणीधरम्।
प्रद्युम्नं कामपालं च व्यासध्यातं महेश्वरम्॥
सर्वसौख्यं महासौख्यं सांख्यं च पुरुषोत्तमम्।
योगरूपं महाज्ञानं योगीशमजितं प्रियम्॥
असुरारिं लोकनाथं पद्महस्तं गदाधरम्।
गुहावासं सर्ववासं पुण्यवासं महाजनम्॥
वृन्दानाथं बृहत्कायं पावनं पापनाशनम्।
गोपीनाथं गोपसखं गोपालं गोगणाश्रयम्॥
परात्मानं पराधीशं कपिलं कार्यमानुषम्।
नमामि निखिलं नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः॥
नाम्नां शतेनापि तु पुण्यकर्ता
यः स्तौति कृष्णं मनसा स्थिरेण।
स याति लोकं मधुसूदनस्य
विहाय दोषानिह पुण्यभूतः॥
नाम्नां शतं महापुण्यं सर्वपातकशोधनम्।
अनन्यमनसा ध्यायेज्जपेद्ध्यानसमन्वितः॥
नित्यमेव नरः पुण्यं गङ्गास्नानफलं लभेत्।
तस्मात्तु सुस्थिरो भूत्वा समाहितमना जपेत्॥
(पद्मपुराण, भू० खं० ८७। ९—२५)

हृषीकेश (इन्द्रियोंके स्वामी), केशव, मधुसूदन (मधुदैत्यको मारनेवाले), सर्वदैत्यसूदन (सम्पूर्ण दैत्योंके संहारक), नारायण, अनामय (रोग-शोकसे रहित), जयन्त, विजय, कृष्ण, अनन्त, वामन, विष्णु, विश्वेश्वर, पुण्य, विश्वात्मा, सुरार्चित (देवताओंद्वारा पूजित), अनघ (पापरहित), अघहर्ता, नारसिंह, श्रीप्रिय (लक्ष्मी-के प्रियतम), श्रीपति, श्रीधर, श्रीद (लक्ष्मी प्रदान करनेवाले), श्रीनिवास, महोदय (महान् अभ्युदयशाली), श्रीराम, माधव, मोक्ष, क्षमारूप, जनार्दन, सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता, सर्वेश्वर, सर्वदायक, हरि, मुरारि, गोविन्द, पद्मनाभ, प्रजापति, आनन्द, ज्ञानसम्पन्न, ज्ञानद, ज्ञानदायक अच्युत, सबल, चन्द्रवक्त्र (चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले), व्याप्तपरावर (कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त), योगेश्वर, जगद्योनि (जगत्की उत्पत्तिके स्थान), ब्रह्मरूप, महेश्वर, मुकुन्द, वैकुण्ठ, एकरूप, कवि, ध्रुव, वासुदेव, महादेव, ब्रह्मण्य, ब्राह्मण-प्रिय, गोप्रिय, गोहित, यज्ञ, यज्ञाङ्ग, यज्ञवर्धन (यज्ञोंका विस्तार करनेवाले), यज्ञभोक्ता, वेद-वेदाङ्ग-पारग, वेदज्ञ, वेदरूप, विद्यावास, सुरेश्वर, प्रत्यक्ष, महाहंस, शङ्खपाणि, पुरातन, पुष्कर, पुष्कराक्ष, वाराह, धरणीधर, प्रद्युम्न, कामपाल, व्यासध्यात (व्यासजीके द्वारा चिन्तित), महेश्वर (महान् ईश्वर), सर्वसौख्य, महासौख्य, सांख्य, पुरुषोत्तम, योगरूप, महाज्ञान, योगीश्वर, अजित, प्रिय, असुरारि, लोकनाथ, पद्महस्त, गदाधर, गुहावास, सर्ववास, पुण्यवास, महाजन, वृन्दानाथ, बृहत्काय, पावन, पापनाशन, गोपीनाथ, गोपसखा, गोपाल, गोगणाश्रय, परात्मा, पराधीश, कपिल तथा कार्यमानुष (संसारका उद्धार करनेके लिये मानव-शरीर धारण करनेवाले) आदि नामोंसे प्रसिद्ध सर्वस्वरूप परमेश्वरको मैं प्रतिदिन मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा नमस्कार करता हूँ। जो पुण्यात्मा पुरुष शतनाम-स्तोत्र पढ़कर स्थिर चित्तसे भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करता है, वह सम्पूर्ण दोषोंका त्याग करके इस लोकमें पुण्यस्वरूप हो जाता है तथा अन्तमें वह भगवान् मधुसूदनके लोकको प्राप्त होता है। यह शतनाम-स्तोत्र महान् पुण्यका जनक और समस्त पातकोंकी शुद्धि करनेवाला है। मनुष्यको ध्यानयुक्त होकर अनन्यचित्तसे इसका जप और चिन्तन करना चाहिये। प्रतिदिन इसका जप करनेवाले पुरुषको नित्यप्रति गङ्गास्नानका फल मिलता है। इसलिये सुस्थिर और एकाग्रचित्त होकर इसका जप करना उचित है।
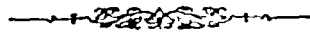
भगवन्नाम तथा प्रार्थना आदिसे होनेवाली सच्ची घटनाएँ

['कल्याण'में प्रकाशनार्थ सैकड़ों घटनाएँ आयी हैं, आ रही हैं। यहाँ बड़े ही संक्षेपमें उनमेंसे बहुत ही थोड़ी-सी घटनाओंका सारमात्र दिया जा रहा है।—सम्पादक]

रोगसे छुटकारा मिला

(१)

जुलाईका महीना था। तेज गरमी पड़ रही थी। मेरा पुत्र गरमीकी छुट्टियोंमें घर आया था। रात्रिमें आनन्दपूर्वक बातें कर रहा था; किंतु सबेरे उठकर जब मैं स्नानसे निवृत्त हुआ तो पत्नीने बताया कि बच्चेको ज्वर है। मैं पूजन करने जा रहा था; अतः पुत्रके १०५ डिग्री ज्वरकी बात सुनकर भी उस समय टाल देनी पड़ी। गाँवमें उन दिनों सड़क बनी नहीं थी। कोई डाक्टर-वैद्य पाँच-सात कोससे कम दूरी-पर था नहीं। चारों ओर रेतीले टीले। ऊँट या घोड़ेके अतिरिक्त दूसरी कोई सवारी नहीं। मैं चिकित्सकको बुलाने भी जाता तो लगभग बारह बजे पहुँचता और इस धूपमें—जलती दोपहरीकी रेतमें घोड़े या ऊँटपर कौन डाक्टर आनेको तैयार होता। ये सब बातें मेरे मनमें आ गयीं और मन व्याकुल हो गया। अभी ही इतना ज्वर है तो दोपहरमें पता नहीं क्या होगा। यह सब सोचकर मैंने प्रभुकी शरण ली। रो-रोकर मैं युगल-सरकारसे प्रार्थना करने लगा। प्रार्थना करनेसे हृदयको बड़ा बल मिला। वहाँसे उठकर पुत्रके पास गया और उसे तुलसी-चरणामृत दिया। श्रीमद्भागवत लेकर दशमस्कन्धमें अनिरुद्ध-विवाह-प्रकरणमें माहेश्वर एवं वैष्णव ज्वरके युद्धकी कथा सुनायी। यह करके बच्चेको थर्मामीटर लगाया तो ज्वर घटता जान पड़ा। घंटेभरमें ज्वर उतर गया।

—जैतसिंह

(२)

अद्भुत घटना है। मेरे एक परिचित बीमार हो गये थे। रोग बढ़ता गया। चिकित्सासे कोई लाभ नहीं हो रहा था। एक दिन ऐसा आया, जब लगा कि आजकी रात कटनी कठिन है। रोगीका आधा शरीर शीतल हो चुका था। बोली बंद थी। वैद्यजीने जवाब दे दिया था। वे कह गये थे—'गङ्गाजल पिलाइये। कलका सूर्योदय हो जाय तो दवा दूँगा।'

वैद्यजीके जाते ही रोगीकी पत्नी उठीं। अपने नवजात पुत्रको उन्होंने पृथ्वीपर ही छोड़ दिया। घरमें मुरलीमनोहरकी पूजा थी। उनके सामने जाकर रोते-रोते प्रार्थना करने लगीं। प्रार्थना करते-करते वे अचानक उत्तेजित हो गयीं। उन्होंने पूजागृहसे जल और कुशकी पैंती (पवित्रा) हाथमें उठा ली और वे बोलीं 'प्रभो! संकल्प बोलो! यह मेरा दान लो इनके बदले।'

रात ढलनेके साथ उस देवीके पतिकी दशा सुधरने लगी। सूर्योदय होते-होते उनकी अवस्था बहुत कुछ ठीक हो चुकी थी। एक महीनेमें वे पूर्ण स्वस्थ हो गये; किंतु वे देवी पतिके स्वस्थ होते ही परलोक पधार गयीं।

—रामनरेश 'पथिक'

(३)

मुझे दमेका रोग था। 'रामरक्षास्तोत्र' के नियमित पाठसे यह जिद्दी रोग बिल्कुल छूट गया है। मैं इस समय एकदम स्वस्थ हूँ। मुझे पक्का भरोसा है कि मुझे अब यह रोग नहीं होगा।

—यदुनन्दनसिंह

(४)

हमारे यहाँके एक प्रतिष्ठित परिवारका युवक बहुत दिनोंसे रोगी था। अचानक उसे 'धनुष्टंकार' हो गया। यह रोग असाध्य माना जाता है और थोड़े ही समयमें प्राण ले लेता है। उस युवकके उलटी श्वास चलने लगी। डाक्टर बुलाया गया; किंतु उसने हालतको काफी खतरनाक बताया। परिवारके लोग व्याकुल हो गये। थोड़ी देरमें रोगी अपने आप ठीक होने लगा। उसके हाथ-पैर काम करने लगे। श्वासकी गति ठीक हो गयी। उस समय उसके ओठ हिल रहे थे। ध्यानसे सुननेपर मालूम हुआ कि वह 'रामरक्षास्तोत्र'का पाठ कर रहा था।

—धनराज पालीवाल

(५)

मुझे कई दिनोंसे पीलिया (पांडु) रोग था। इसीके चलते एक जाति-भोजमें जाना पड़ा। स्वभावतः कुछ अधिक भोजन हो गया। रातमें पेटमें भयंकर दर्द प्रारम्भ हुआ। पेट फूल गया। बेचैनी बढ़ती गयी। माताजी तथा छोटे

भाई सो रहे थे। उन्हें जगाना उचित नहीं लगा। इधर दर्द इतना बढ़ा कि प्राण जाते लगते थे। दूसरा कुछ उपाय नहीं था। पेटपर हाथ फेरते हुए मैं 'श्रीकृष्णः शरणं मम' इस मन्त्रको बार-बार दुहराने लगा। मेरा दर्द इससे पाँच मिनटमें घटने लगा। दस मिनटमें सब दर्द मिट गया। अचानक चार-पाँच डकारें आयीं और पेटका फूलापन भी दूर हो गया।

—हरिवल्लभ पाण्ड्या

(६)

मैं एक विद्यार्थी हूँ। सेप्टेम्बरका महीना था। मैं परीक्षाकी तैयारीमें था। इसी समय मुझे ज्वर आ गया। तेज सिर-दर्द, खाँसी तथा खूब सर्दी भी लगती थी। मैं एक छोटे गाँवमें रहता हूँ। यहाँ तीन मीलके भीतर कोई चिकित्सक नहीं है। मैं बड़ी चिन्तामें पड़ा। तभी सुखसागरमें पढ़ा हुआ यह श्लोक स्मरण आया—

श्रीकृष्णो बलभद्रश्च प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः।
ऊषास्मरणमात्रेण ज्वरव्याधिर्विमुच्यते ॥

मैंने इस श्लोकका मन-ही-मन जप प्रारम्भ किया। जप प्रारम्भ करते ही ज्वर कम होने लगा। सवेरे मुझे निद्रा आ गयी। दूसरे दिन मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया। कोई दवा मैंने ज्वर दूर करनेके लिये नहीं ली।

—एच० के० एम० भट्ट

(७)

कहनेको तो मुझे केवल सर्दी-खाँसी थी; किंतु रोग था ऐसा जो वर्षोंतक चलता है। दो वर्षतक यह रोग चलता रहा। बहुत चिकित्सा करायी, मगर कोई फायदा नहीं हुआ। अचानक एक साधु मेरे घर पधारे। उन्होंने बताया—'प्रतिदिन पाँच हजार 'सियाराम' नामका जप करो या केवल राम-नामका, तुम्हारा रोग छूट जायगा।'

उसी दिनसे मैंने 'सियाराम' नामका जप प्रारम्भ कर दिया। १५ दिनमें रोग घटने लगा। दो महीने बीतते न बीतते पूरी तरह चला गया।

—साकेतविहारी सिंह

(८)

गीताभवन ऋषिकेशके सत्सङ्गमें गया था। अचानक घरसे एक बच्चेकी सख्त बीमारीका तार मिला। उसी दिन सायंकाल मैंने श्रीरामेश्वर-मन्दिरमें महामृत्युंजय मन्त्रका जप किया और भगवान् शंकरसे प्रार्थना की। प्रातःकाल भी स्नान-संध्याके अनन्तर मैंने जप-प्रार्थना की और तब घरको रवाना हुआ। घर पहुँचकर देखा कि वह बच्चा अत्यन्त दुर्बल है; किंतु स्वस्थ है। उसके पिताने बतलाया कि 'उसे संनिपात हो गया था। प्रलाप करता तथा उठकर भागनेकी चेष्टा करता था। फोन करके नगरके प्रसिद्ध चिकित्सकको बुलाया गया; किंतु वे भी टालटूल करके चले गये। स्थिति भयावह थी। किंतु बच्चेको अचानक ही लाभ हुआ। रात्रिमें वह सुखपूर्वक सोया।' यह सुनकर मेरे शरीरमें रोमाञ्च हो गया। भगवान् शिवने मेरी प्रार्थना सुन ली थी।

—श्रवणराम शर्मा, वैद्यराज

(९)

मेरा १५-१६ महीनेका पुत्र पेटके रोगसे पीड़ित था। मैं स्वयं चिकित्सक हूँ। अपने पुत्रकी चिकित्सामें मैं कोई कोर-कसर कैसे रख सकता था; किंतु चिकित्सासे रोग बढ़ता गया। दूसरे चिकित्सकोंसे भी मैंने राय ली। किंतु सब प्रयत्न व्यर्थ जाते देख मुझे बच्चेके जीवनसे निराशा हो गयी। अब मैंने बच्चेको गोदमें लेकर रामचरितमानसकी यह चौपाई—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि व्यापा ॥

—का जप शुरू किया। प्रतिदिन इस जपका नियम बनाया। जप प्रारम्भ करनेके दूसरे दिनसे बच्चेकी अवस्था सुधरने लगी। चार-पाँच दिनमें ही वह पूर्णतया नीरोग हो गया।

—डॉ० दिनेशप्रसाद ठाकर

(१०)

डाक्टर मेरे बच्चेको टाइफाइड बतला रहे थे। छः दिनसे उसे लगातार ज्वर था और दवासे लाभ नहीं हो रहा था। बच्चेका ज्वर जब अधिक बढ़ने लगा तो मैंने दुखी होकर रामायणकी इस चौपाईका जप करना प्रारम्भ किया—

दीन दयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी ॥

केवल एक घंटे जप करनेके बाद बच्चेको पसीना आने लगा। ज्वर हल्का हो गया। दो दिनमें बच्चा स्वस्थ हो गया।

—इन्द्रदेव शर्मा

(११)

हमारे यहाँके एक काश्तकारकी माताको एक भयानक रोग हो गया था। मुख तथा नाकसे रक्त आता था। दिन-

बहुत अधिक रक्त निकल जाता था। चिकित्सासे लाभ नहीं हुआ। रोग बढ़ता गया। उन लोगोंने घरपर चौबीस घंटे अखंड कीर्तन किया। इस एक कीर्तनसे ही उनकी माताका रोग चला गया। वे हो गयीं।

—चिन्तामणि यादव

(१२)

मेरे पुत्रको जब वह एक वर्षका था, जलोदर हो गया। वर्षतक अनेक चिकित्सकोंका इलाज कराया। कई नगरों- गया; किंतु रत्तीभर फायदा नहीं हुआ। अस्पतालमें शनद्वारा पेटसे पानी निकाला गया; किंतु कुछ दिनोंमें पानी भर गया। बच्चेका पेट इतना फूल गया, जैसे हीवाला हो। घरमें रोना-पीटना प्रारम्भ हो गया। पिताजीने अचानक 'रामरक्षास्तोत्र'का पाठ बच्चेकी थ्य-कामनासे प्रारम्भ किया। उसी दिनसे वह ठीक लगा। दिनों-दिन वह ठीक होता जा रहा है। अब एक आना रह गया है। पूरी आशा है कि रामरक्षा-की कृपासे वह भी शीघ्र चला जायगा।

—भीखाराम अग्रवाल

(१३)

अचानक मुझे समाचार मिला कि......मुख्तार साहब ासन्न हैं। वे मेरे परिचित हैं। सज्जन तथा परोपकारी सुनते ही मैं उनके घर चल पड़ा। वहाँ लोगोंकी भीड़ थी। इतनेमें मुझे सुनायी पड़ा—'नाड़ी छूट गयी।' ीघ्रतासे रोगीके समीप गया। मुझे नाड़ी बहुत मंद ती जान पड़ी। लोग रो रहे थे और अनेक प्रकारकी कर रहे थे। मैं वहीं बैठ गया और रोगीके कानके पास करके 'जय सियाराम जय जय सियाराम' कहने लगा। स्थित लोगोंमेंसे अनेकने मुझपर व्यंग किये। किंतु मैं विश्वास- नामोच्चारणमें लगा रहा। कुछ ही क्षणोंमें पाँच घंटेसे रोगीके नेत्र खुल गये। संकेतसे उसने 'सीताराम' नाम-कीर्तन करनेको कहा। फिर तो मेरे साथ सब लोग निमें तल्लीन हो गये। कुछ देरमें स्वयं रोगी भी उस निमें साथ देने लगा। इस प्रकार नामध्वनिने उन्हें मृत्यु-चा लिया।

—गौरीशंकर झा

(१४)

माताजीको रतौंधी थी। शरत्पूर्णिमाको मन्दिरमें दिन- दर्शन करने गयीं। उस दिन भगवान्‌का बड़ा सुन्दर शृङ्गार हुआ था। माताजीने प्रार्थना की—'प्रभो! जैसे आप अभी दर्शन दे रहे हैं, वैसे ही रात्रिमें भी दर्शन दें।' रात्रिमें माताजीने मन्दिर ले जानेका आग्रह किया। मैं उन्हें हाथ पकड़कर ले गया। मन्दिरमें जाकर उन्हें भगवान्‌के श्रीविग्रहका दर्शन होने लगा। जबतक दर्शन खुले रहे, वे मन्दिरमें ही रहीं। पट बंद होनेपर पिताजीके आग्रहसे चलीं भी तो द्वारपर बैठ गयीं। उन्हें भय था कि यहींसे दृष्टि मिली थी। आगे जानेपर फिर दीखना बंद न हो जाय। किसी प्रकार समझानेपर वे घर आयीं। उनका रोग मिट चुका था।

—छगनलाल शर्मा

(१५)

मेरी पत्नी गर्भवती थी। उसके पैरमें दर्द था। उसने मुझे बतलाया तो मैंने अपनी शक्ति भर दवा करायी, लेकिन दर्द घटा नहीं। दर्द इतना बढ़ गया कि वह चीख मारती थी और पास-पड़ोसके लोग इकट्ठे हो जाते थे। अन्तमें मैंने श्रीदुर्गाजीकी शरण ली। दुर्गा-स्तुतिके ग्यारह पाठ प्रथम दिन मैंने किये। इससे दर्द घटा। मैंने दूसरे दिन २१ पाठका नियम किया। मैं पाठ कर रहा था और पत्नी लेटे-लेटे चीख मार रही थी। किंतु पाठकी समाप्तिपर हवन किया तो वह उठकर बैठ गयी। प्रसाद लेकर सो गयी। उसी दिनसे उसका दर्द चला गया।

—व्रजनन्दन तिवारी

(१६)

हमारे गाँवका एक गरीब किसान अचानक टी० बी० का शिकार हो गया। उसने नगरके डाक्टरसे चिकित्सा करायी; किंतु लाभ नहीं हुआ। डाक्टरने उसे पटना टी० बी० अस्पताल जानेको कहा। वहाँ भी वह लगभग आठ महीने आता-जाता रहा। जब वहाँसे भी कोई लाभ होता नहीं दीखा तो उसने हारकर चिकित्सा बंद कर दी। केवल 'रामनाम'की रट उसने लगायी। जहाँ रहता, रामनामकी धुन लगाये रहता। चार महीनेमें ही उसकी टी० बी०, पता नहीं कहाँ गयी; वह पूर्ण स्वस्थ हो गया।

—जयमंगलप्रसाद

(१७)

जूनियर हाईस्कूलकी परीक्षामें प्रथम श्रेणी प्राप्त करनेके कारण मुझे छात्रवृत्ति मिली थी। नवीं कक्षाके परीक्षाकालमें मैं अस्वस्थ हो गयी। यदि मैं परीक्षा न दे सकी तो वर्ष तो

खराब होगा ही, छात्रवृत्ति भी जायगी। मैं व्याकुल हो गयी। सुन्दरकाण्डका मैंने पाठ किया तथा प्रार्थना की। प्रभुकी कृपासे मैं स्वस्थ हो गयी। मैंने परीक्षा दी, उत्तीर्ण हुई तथा छात्रवृत्ति भी मिली। —अनुसूया

(१८)

मेरा सात वर्षका पुत्र अचानक बीमार पड़ गया। उसका ग ऐसा था कि किसीको उसके स्वस्थ होनेकी आशा नहीं ो। मेरे मालिकने (जिनके पास मैं काम करती हूँ) लकको अस्पताल ले जानेकी आज्ञा दी। मैं अस्पताल ले यी बच्चेको और वहाँ निराशाजनक उत्तर पाकर एकके द दूसरे, इस प्रकार चार डाक्टरोंके पास गयी, किसीने झे आशा नहीं दिलायी।

अगले दिन भगवद्-विश्वासका प्रसार करनेवाली एक स्थाका पत्र मुझे मिला। उस पत्रमें उन्होंने संकटके समय भगवत्-प्रार्थना'पर आश्रित होनेकी सलाह दी थी। पत्र पढ़ र मैंने शान्तचित्तसे प्रार्थनाकी महत्तापर विचार किया। झे शान्तिका अनुभव हुआ। सहसा मेरे मुखसे निकला— हुत ठीक। भगवान्‌ने मुझे पूर्ण शक्ति दी है, अतः डाक्टर होदयको अपनी दवा लेकर मेरे घरसे विदा हो जाना ाहिये।' मैं प्रार्थनामें संलग्न हो गयी।

केवल दो दिनमें बालककी अवस्थामें बहुत सुधार हो या। अब वह हँसता-खेलता है। हमारे देशी एवं यूरोपियन : डाक्टर लगातार कई दिनोंतक परिश्रम करके बालकको जस स्वस्थ अवस्थामें न ला सके, वह अवस्था भगवान्‌की क्तिसे केवल दो ही दिनोंमें प्राप्त हो गयी। उस सर्वशक्तिमान् रमात्माके प्रति मेरा हृदय पूर्णरूपसे कृतज्ञ है। जो भी महान् क्तिके रूपमें उसे पुकारता है, उसकी सँभालको वह सदा द्यत है। सच्चे हृदयसे पूर्ण मनोयोगके साथ की गयी ार्थनाका उत्तर भगवान् अवश्य देते हैं।

—एफ० आई० ए० (पश्चिमी अफ्रिकाकी एक महिला)

(१९)

मेरे दो महीनेके पुत्रके पेटमें असह्य पीड़ा उठी। ाक्टर बुलाये गये; किंतु उनकी दवासे पेट और फूल गया। ुबारा डाक्टरको दिखाया गया तो उन्होंने निराशाजनक उत्तर दिया। अब तो केवल भगवान्‌का भरोसा था। अब ेरी जीभपर दिनभर 'हरे कृष्ण ······ हरे राम ······' ही हा। सायंकाल भगवान्‌की पूजा करके आरती की, लोगोंको तुलसी-चरणामृत दिया। इतनेमें एक सज्जनने कहा—'थोड़ चरणामृत देना। बच्चेको कष्ट है।' मैंने उन्हें चरणामृत द दिया। मैं उन्हें पहचानता नहीं था। उनके बच्चेको क होगा, यही मैंने समझा था। किंतु घर गया तो पत्नी बताया कि आपने जो चरणामृत भेजा था, उसे देनेसे बच्चे को आराम है। मुझे अब भी पता नहीं कि मन्दिरसे चरणा मृत माँगकर मेरे बच्चेको देनेवाले वे सज्जन कौन थे।

—आचार्य मदनमोहन शर्मा

(२०)

किसान-सुधार-सभाके प्रतिनिधि प्रार्थनामें लगे थे। द घंटे हरि-कीर्तनके बाद जब लोग चुप हुए तो पता लगा कि पासकी झोपड़ीके पास एक महिलाकी अवस्था चिन्ताजनक है। उस महिलाको रातमें दस्त लग रहे थे। अब दो घंटेसे नाड़ी मिल नहीं रही थी। कीर्तनमें बाधा न पड़े, इसलिये लोगोंने सूचना नहीं दी थी। जलमें तुलसी घोंटकर वह उस महिलाके मुखमें डाला गया। उपस्थित लोग—'रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम।' का कीर्तन करने लगे। कुछ देर रोगीकी हथेलियाँ और पगथलीकी मालिश हुई। धीरे-धीरे नाड़ी लौटी। चेतना आयी। तुलसीकी गरम चाय दी गयी। दूसरे दिन सबेरेतक वह महिला बोलने लगी। धीरे-धीरे वह स्वस्थ होती गयी। —लाल भारती

(२१)

एक स्त्री बीमार हो गयी। बहुत चिकित्सा करानेपर भी रोग गया नहीं, अन्तमें चिकित्सकोंने जवाब दे दिया। निराश होकर मन्दिरमें भगवान्‌की मूर्तिके सामने जाकर रोने लगी और देरतक रोती रही। वहीं एक संत आ गये संतके पूछनेपर उसने अपनी विपत्ति सुनायी। सब सुनकर वे बोले—'सबने जवाब दे दिया है; किंतु भगवान्‌ने तो जवाब नहीं दिया है। तू गङ्गाजल पी और हर समय राम-राम जपा कर।'

उसने संतकी बात मान ली। सात दिनमें ही वह गङ्गा जल पान तथा राम-नामके जपसे बिल्कुल ठीक हो गयी।

—हरिराम व्यास

(२२)

मेरे एक डाक्टर मित्रको टी० बी० (क्षयरोग) हो गया। उन्होंने कलकत्ते, भुवाली तथा अमेरिकातक जाकर चिकित्सा करायी; किंतु कुछ लाभ नहीं हुआ। स्वास्थ्य दिनों

दिन गिरता चला गया। मैं उन्हें देखने गया तो वे रोने लगे। उन्हें सान्त्वना देकर 'श्रीकृष्णः शरणं मम' इस मन्त्र-का निरन्तर जप करनेको कहा। तुलसीमिश्रित गङ्गाजल पीनेकी बात भी मैंने बतायी।

मुझे वे पाँच वर्ष बाद मिले। उस समय पूर्ण स्वस्थ तथा हृष्ट-पुष्ट थे। उन्होंने बताया कि 'अष्टाक्षर'-मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेके छः महीने बादसे ही वे स्वस्थ होने लगे थे। एक वर्ष बाद कलकत्ता जाकर उन्होंने एक्सरे कराया था। डाक्टरोंने जो रिपोर्ट दी थी, वह उन्होंने मुझे दिखायी। उसमें स्पष्ट कहा गया था कि अब उन्हें टी० बी० एकदम नहीं है। इस एक वर्षमें उन्होंने गङ्गाजल पीने तथा जप रनेके अतिरिक्त कोई ओषधि नहीं ली थी।

—आचार्य पीताम्बरराव तैलंग

(२३)

मेरे पिताजीकी आयु ज्योतिषियोंने ५१ वर्ष बतलायी थी। क्यावन वर्षके होनेपर वे बीमार पड़े। कण्ठ कफसे जकड़ ाया। वे 'हरे राम, हरे राम' करके इतने जोरसे चीखे कि त्रव लोग घबरा गये। पास-पड़ोसके लोग भी इकट्ठे हो गये। ेरी माता तथा बड़े भाई उनके पास बैठकर कीर्तन करने ल्गे। वैद्यजी बुलाये गये; किंतु नाड़ी देखकर उन्होंने कहा-'कीर्तन करो, अब भगवन्नाम ही ओषधि है।'

कीर्तन हो रहा था, इसी बीच एक सज्जन कमरेसे बाहर निकले और तुरंत लौट आये। उन्होंने कहा—'दो काले-काले राक्षस शस्त्र लिये द्वारपर खड़े हैं।' लोगोंका अनुमान था कि वे यमदूत थे। बादमें वे किसी दूसरेको नहीं दीखे। कीर्तन रातभर चला। पिताजी स्वस्थ हो गये और अब उनकी अवस्था ६१ वर्ष है। वे स्वस्थ हैं।

—रामेश्वरप्रसाद रैकवार

(२४)

मैं अपने एक मित्रको देखने गया। पहले ४ दिनसे वे दाढ़के दर्दसे बहुत व्याकुल थे। मुझे वे स्वस्थ मिले। उन्होंने बताया कि कष्ट बहुत बढ़ गया था। पूरा मुख सूज गया था। नेत्र भी सूजनमें दब गये थे। पीड़ाके कारण ज्वर हो गया था। उपचार बहुत किये गये, पर उनसे लाभ नहीं हुआ। जब कोई वश नहीं चला तो रातमें—

'दीन दयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥'

—का जप वे करने लगे। केवल चालीस-पचास आवृत्ति करते-करते नींद आ गयी। एक घंटे बाद जगे तो अनुभव हुआ कि न दर्द है, न ज्वर, न शोथ। शरीर स्वस्थ हो गया था।

—राधाकृष्ण चौतीड़ा

(२५)

मेरे एक परिचितने यह घटना सुनायी है। पंद्रह-सोलह वर्ष पहले उनके यहाँ पशुओंमें बीमारी फैली थी। उस बीमारीमें उनके दस-बारह पशु मर चुके थे। एक दिन सबेरे गोशालामें गये तो सभी पशु, जिनमें छः जोड़ी बैल भी थे, रोगग्रस्त मिले। उनकी दशा खराब थी। बचनेकी आशा नहीं थी। बड़ी व्याकुलता हुई। बैलोंके बिना किसानका काम कैसे चलेगा। छः जोड़ी बैल एक साथ खरीदना भी कैसे सम्भव होगा। इतना धन कहाँसे आयेगा। अकस्मात् स्मरण आया—'भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।'

बस्तीसे तीन मील दूर निर्जनमें एक शिवमन्दिर है। स्नान करके वे वहीं चले गये। मन्दिरमें जाकर भगवान् शंकरके सामने फूट-फूटकर रोने लगे। फिर 'मानस'का पाठ प्रारम्भ किया। अँधेरा होनेतक पाठ करते रहे। घर लौटनेतक रात हो गयी थी। मन्दिरसे लायी भस्म पशुशालाके सभी पशुओंके ऊपर डाल दी। दूसरे दिन सभी पशु स्वस्थ मिले।

—हरनारायण वर्मा

(२६)

मेरी पत्नी गर्भवती थी। उसे बहुत पीड़ा हो रही थी। स्थानीय डाक्टर तथा नर्सने ऑपरेशनके लिये नगर ले जानेकी सलाह दी। मैंने घबराकर ग्यारह सहस्र 'महामृत्युंजय' मन्त्रके जपका संकल्प किया। जप करने बैठ गया। उसी रातको बिना दवा या ऑपरेशनके पत्नीको कन्या उत्पन्न हुई। माता-पुत्री दोनों स्वस्थ हैं।

—के० बी०

(२७)

उन दिनों कड़ाकेकी ठंढक थी। मेरे घर दो बछड़े थे। उनके शरीरमें पिस्सू हो गये थे। पिताजीने आज्ञा दी—'दोनोंको 'डी० डी० टी०' पाउडर लगाकर अच्छी तरह धो डालो।' दोपहरमें उन्हें धोकर वह दवाका पाउडर लगा दिया गया। बछड़े चरते हुए दूर चले गये। शामको स्मरण आया कि बछड़े अभीतक घर नहीं आये हैं। उन्हें ढूँढ़ने छोटे भाईको मैंने भेजा। बछड़े मिल तो गये; किंतु लड़खड़ा रहे थे। उन्हें हाँककर लाना सम्भव नहीं था। आदमी भेजकर उन्हें उठाकर घर लाया गया।

पशुओंके चिकित्सकको बुलाया गया; किंतु उनके उपचारसे भी कोई लाभ नहीं हुआ। बछड़ोंकी अवस्था देखकर मुझसे कुछ खाया नहीं गया। बड़ी देरतक मैं उनके पास बैठी रही। फिर उठकर आयी और सुन्दरकाण्डका पाठ करने लगी। दो पाठ मैंने सुन्दरकाण्डके किये। इतनेमें प्रातःके चार बज गये। मैं स्नान-पूजनमें लग गयी। मैं जब निवृत्त हुई तो मेरी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा। दोनों बछड़े आँगनमें इधर-उधर घूम रहे थे। मैंने प्रभुको इस कृपाके लिये प्रणाम किया।

—कुमारी सुरसरी बाई

सफलता-प्राप्ति, दुर्घटनासे रक्षा आदि

(१)

गूँगेको वाणी मिली

मेरे बड़े लड़केका प्रथम पुत्र तीन वर्षका हो गया था; किंतु बोलता नहीं था। संकेत ही करता था। सभीको लगा कि वह गूँगा है। एक दिन मेरे मनमें यह दोहा आया—

मूक होहिं वाचाल पंगु चढ़हिं गिरिबर गहन।
जासु कृपा सो दयालु द्रवहु सकल कलिमल दहन॥

प्रतिदिन नित्य पूजनके समय मैं इसका स्मरण कर लेता था। एक महीनेमें वह बच्चा बोलने लगा। अब तो खूब बोलता है।

—मूलचन्द अग्रवाल

(२)

यमदूत भागे

मेरी माताजी बहुत बीमार थीं। रात्रिके लगभग नौ बजे उन्होंने मुझसे कहा—'सामनेके जँगलेसे यमराजके काले-काले बड़े विकराल मुखवाले दूत आ रहे हैं। वे हाथमें मुद्गर तथा रस्सी लिये हैं।'

वे यमदूत मुझे नहीं दीख रहे थे; किंतु मैंने तुरंत 'विष्णुसहस्रनाम'का पाठ करना प्रारम्भ कर दिया। इससे माताजीको शान्ति मिली। वे बोलीं—'वे यमदूत तो अब भागे जा रहे हैं।'

—सियाराम वैश्य

(३)

मुझे ज्वर आ रहा था। कुछ दिन बाद मोतीझराके दाने निकले। मुझे चिकित्सालयमें रक्खा गया। वहाँ मेरे पलंगसे चार-पाँच पद दूर एक आलमारी थी। उसमें दूध-चाय आदि सामान रहता था। अचानक उस आलमारीमें मुझे दो मनुष्य दिखायी पड़े। उनका शरीर गुलाबी रंगका था और वे नंगे थे। उनमेंसे एक दुबला-पतला था और दूसरा खूब मोटा था। वे यमदूत मेरी ही ओर देख रहे थे। मैंने 'गायत्री-मन्त्र' तथा 'श्रीराम जय राम जय जय राम' का जप चालू रखा।

मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि इतनी छोटी आलमारीमें ये दो मनुष्य कैसे बैठे हैं। मैंने घरवालोंसे कहा कि 'आलमारीमें घुसे इन दोनों मनुष्योंको बाहर निकाल दो।' घरके लोगोंने कहा—'आलमारीमें कोई नहीं है। ज्वरके कारण तुम्हें ऐसा दीखता है।' आलमारी खोल दी गयी; किंतु मुझे वे दोनों दीखते रहे। मेरा जप चलता रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि वे दोनों मेरे पासतक नहीं आये। पीछे उनका दीखना बंद हो गया। मैं स्वस्थ हो गया।

—पी० एस० दुबे

(४)

मेरे पिताजीने शरीर छोड़नेसे दो महीने पहले कह दिया था कि 'अब मैं जानेवाला हूँ।' उस समय उनकी बातपर किसीने ध्यान नहीं दिया। घरमें कुछ गेहूँ था। बीज बोनेका समय आया तो किसानोंने सवायेपर माँगा। पिताजीने उनसे भी कह दिया—'हमें सवाया नहीं चाहिये। यह गेहूँ मेरी तेरही (त्रयोदशाह) के लिये है।' लोगोंने इसे भी परिहास ही समझा; क्योंकि उस समय वे स्वस्थ थे।

इसके दस दिन बाद वे बीमार पड़े। जब बीमारी बढ़ी तब मुझे भी लगा कि अब वे जानेवाले हैं। पिताजीने अन्न तथा दूध छोड़ दिया। वे केवल मौसम्मीका रस तथा गङ्गाजल लेने लगे। मैं बराबर उनके पास बैठा रहने लगा। उन्हें पाठ सुनाता या भगवन्नाम-कीर्तन करता।

अन्तिम दिन पिताजीको यमदूत दीखे। उन्हें भय लगा। उन्होंने मुझसे कहा—'इन लोगोंके लिये पूड़ी बनवा दो।' अब मैंने उच्च स्वरसे कीर्तन प्रारम्भ किया। पिताजी-को गङ्गाजलसे स्नान कराके उनके शरीरपर 'राम-नाम' लिख

दिया और जनेऊ बदल दिया। उनके गलेमें तुलसीकी कंठी डाल दी।

यमदूत कब भाग गये, पता भी नहीं लगा। पिताजीकी अर्धमूर्छा भी दूर हो गयी। वे रामनाम स्मरण करने लगे और नाम-स्मरण करते हुए ही उन्होंने शरीर छोड़ा।

—राघव

(५)

भूतसे पिण्ड छूटा

मैं दो मित्रोंके साथ घरसे बाहर गया था। वे दोनों मित्र तो कार्यवश वहीं रुक गये और मुझे घर लौटना था। रात्रिका समय था। अमावस्या होनेसे घोर अन्धकार था। मैं अकेला था। बस्तीसे दो फर्लांग दूर आनेपर सहसा मेरे पीछे बड़े जोरका शब्द हुआ। मैंने उलटकर देखा तो एक काली भयंकर दैत्यमूर्ति अपनी ओर आती दिखायी पड़ी। उसे देखकर भयके कारण मेरे होश गुम हो गये। निर्जीवके समान मैं चल रहा था। सम्पूर्ण शरीर भयसे काँप रहा था; किंतु मुखसे मैं बराबर 'भगवन्नाम' ले रहा था। मन-ही-मन मैंने भगवान्से प्रार्थना की—'प्रभो! मुझे इस विपत्तिसे बचाओ।' प्रार्थना करते ही पता नहीं कैसे और कहाँसे मेरे पीछेसे प्रकाश आता जान पड़ा। प्रकाश होते ही वह दैत्यमूर्ति धुएँके समान धीरे-धीरे आकाशमें अदृश्य हो गयी। मैं सकुशल घर पहुँच गया।

—शम्सुद्दीन शेख

(६)

सर्पसे बचा

रात्रिके आठ बजे थे। मन्दिर जाकर दर्शन करनेकी इच्छा हुई। मन्दिर गया और दर्शन करके बाहर आया तो मैंने हाथकी छड़ी वाम भागमें रख दी और मैं मन्दिरके चबूतरेपर बैठ गया। मैं भूल ही गया कि छड़ी किधर रक्खी है। कुछ देर बाद चलनेकी इच्छा हुई तो मैंने दाहिने हाथसे छड़ी उठानेकी चेष्टा की। सहसा हाथको कोई ठंढी गिलगिली वस्तुका स्पर्श मिला। छड़ीके धोखेमें मैंने सर्प पकड़ लिया था और वह मेरे हाथमें लिपट चुका था।

मुझे भय लगा कि यदि मैं हाथ झटकता हूँ तो सर्प मुझे काट लेगा। मैंने केवल सर्पको मुट्ठीसे छोड़ दिया और हाथ स्थिर करके मन-ही-मन भगवान् शंकरसे प्रार्थना करने लगा तथा उनके नामका जप करने लगा। कुछ क्षणमें सर्पने अपनी कुंडलीकी जकड़न ढीली की। वह धीरे-धीरे हाथमें ऊपर चढ़ने लगा। मैं और व्याकुल होकर शंकर-जीकी स्तुति करने लगा। सर्प मेरे दाहिने कंधेपर होता सिरपर गया और वहाँसे बायें कंधेपर होता नीचे भूमिपर उतर गया। फिर वह नदीकी ओर चला गया। जीवन-मृत्युकी संधिका तथा भगवान् शंकरकी कृपाका उस दिन मुझे अनुभव हुआ।

—मुक्ता शुक्ल

(७)

मोटर-दुर्घटनासे रक्षा

मेरे भाई साहबने पत्रमें लिखा है कि वे रिक्शासे जा रहे थे। सामनेसे एक अस्पतालकी गाड़ी (एम्बुलेन्स) आ रही थी। पहिले उस गाड़ीसे एक पैदल चलनेवाले लड़केको धक्का लगा। उस बच्चेको बचानेके लिये ड्राइवरने गाड़ी घुमायी तो वह रिक्शेसे टकरा गयी। रिक्शा चलानेवाला गिर गया। रिक्शा टूट गया। भाई साहबको मृत्यु सामने दीखी तो वे 'राम राम राम' पुकार उठे। वे गिरे और मूर्छित हो गये। होश आनेपर वे एक ओर पड़े थे। केवल सिर, कमर तथा पैरमें हल्की चोटें आयी थीं।

—मुरलीधर कपूर

(८)

बड़ी तेज वर्षा हो रही थी। चारों ओर पानी भरा था। उस समय मेरे पुत्रने, जो डाक्टर हैं आकर कहा कि वह बाहर जा रहे हैं। मेरा मन कहता था कि आज उन्हें नहीं जाना चाहिये; किंतु उनको अपनी ड्यूटीपर पहुँचना था। वे मोटरमें बैठे और चले गये। मुझे व्याकुलता हो रही थी। अतः मैं भगवान्का भजन करने लगा। थोड़ी देरमें डाक्टर लौट आये। उन्होंने बताया कि मार्गमें अस्पतालसे एक मील दूर चढ़ाईके स्थानपर गाड़ी काबूसे बाहर हो गयी और सड़कसे फिसलकर थूहरोंमें होती खड्डके किनारे जाकर उलट गयी। डाक्टरको लगा कि प्राण गये। उन्होंने भगवान्को पुकारा। खड्डके किनारे लगा नीमका पेड़ किसीने काटा था। उसका डेढ़-दो फीट तना शेष था। उससे टकराकर मोटर खड्डमें गिरनेसे बच गयी थी और उलटनेपर भी थूहरके सहारे भूमिसे कुछ ऊपर रुक गयी थी। इसलिये डाक्टरको कहीं चोट नहीं आयी। वे फाटक खोलकर निकले और पैदल मेरे पास लौट आये थे। मैं तुरंत श्रीराधासर्वेश्वरके चरणोंमें जा गिरा।

—जैतसिंह

(९)

सायकिल नहरमें गिरनेसे बची

मेरे एक मित्र कुछ साथियोंके साथ नहरके किनारे-किनारे सायकिलसे आ रहे थे। अचानक मेरे मित्रकी सायकिलका ट्यूब फट गया। सायकिल रोकनेके लिये ब्रेक लगाते ही ब्रेक टूट गये और सायकिल नहरकी ओर घूम गयी। वहाँ नहर लगभग ३५ फीट गहरी है। अब उन मित्रने 'जय बजरंग रक्षा करो!' की पुकार की। सायकिल दस फीट ऊँची कूदी; किंतु नहरमें गिरनेसे बच गयी। भूमिपर ही रुक गयी। मेरे मित्रको कोई चोट नहीं लगी।

—रामस्वरूप कुलमित्र

(१०)

नौका-दुर्घटनामें रक्षा हुई

हम दस व्यक्ति पटना घूमने गये थे। शामको लौटने लगे तो घाटपर आनेपर पता लगा कि जहाज छूट चुका है। विवशतः छोटी नौका किरायेपर की गयी। नौका आधी गङ्गामें पहुँची तो एक जहाज इधरसे जाता तथा एक उस पारसे आता दिखायी पड़ा। आकाश मेघोंसे ढका था। वायु तेज चल रही थी। गङ्गामें लहरें खूब उठ रही थीं। अब नौका दो जहाजोंके बीचमें पड़ गयी। मल्लाहने कहा—'नाव अब डूबनेवाली ही है। आपलोग कपड़े उतारकर तैरनेको तैयार रहें।'

हमलोगोंको छोड़कर वह मल्लाह नावपरसे कूद गया और तैरता हुआ निकल गया। हममें कोई भी तैरना नहीं जानता था। मृत्यु निश्चित समझकर हम सबने उच्च स्वरसे 'नाम-संकीर्तन' प्रारम्भ किया। नाव पुरानी थी। उसमें पानी भर रहा था। कीर्तन करते हुए हमलोग अपने जूतोंमें भरकर नावका पानी बाहर फेंकनेमें लगे थे। अचानक नौका गङ्गाके मध्य दीअर (टापू) में रेतपर टिक गयी। रात हमलोग वहीं नौकापर रहे। सवेरे जब दूसरी नौका उधरसे निकली, तब किसी प्रकार पार हुए।

—मारुतिनन्दन

(११)

महानदीमें घाटसे छूटते ही एक नौका-दुर्घटना हो गयी। वहाँ नदी गहरी है और बहाव तेज है। ४० यात्रियोंको लेकर नौका छूटी तो 'नेहरू-स्मारक' पोलसे टकरा गयी। नावमें पानी भर गया और वह डूब गयी। दूसरी नावें आयीं तथा तैरनेवाले लोग कूदे। लोगोंको बचानेका पूरा प्रयत्न हुआ।

नौकामें रामदासकी कन्या तथा पत्नी थीं। रामदास किनारेसे उन्हें नौकामें बैठाकर लौट चला था। नौका डूबनेकी बात सुनकर दौड़ा आया। उसने भगवान्से कातर पुकार की। भगवन्नामकी धुन लगायी उसने। अबतक उसकी पुत्री तथा पत्नीका पता नहीं लगा था। सहसा किसी लड़कीका शरीर जलपर दीखा। नौकापर उसे उठाया गया तो वह दो वर्षकी रामदासकी कन्या निकली। थोड़ी देरमें रामदासकी पत्नी भी जलमें बहती मिल गयी। उसे भी नौकापर उठा लिया गया। थोड़े उपचारसे वह ठीक हो गयी।

—एक प्रत्यक्षदर्शी

(१२)

जलमें डूबनेसे बचे

गाँवमें एक नाटक-कम्पनी आयी थी। उसके द्वारा नाटक दिखाया जा रहा था। भीड़ बहुत थी। महिलाएँ कुएँके चबूतरेपर भी बैठी थीं। अचानक एक लड़की कुएँमें गिर गयी। शीघ्र ही नाटक-कम्पनीका एक व्यक्ति कुएँमें उतरा। शेष लोगोंने राम-धुन प्रारम्भ की। लड़की कुएँसे निकाल ली गयी। पाँच वर्षकी बच्ची गहरे कुएँमें गिरी थी; किंतु उसे कहीं कोई चोट नहीं लगी थी।

—मोहनलाल मखोते

(१३)

मेरे बचपनकी बात है। मेरे गाँवसे लगभग एक मील दूर सीताकुण्ड है। वह बहुत गहरा है और उसमें बारहों महीने पानी रहता है। गरमीके दिन थे। दूसरे लड़कोंके साथ मैं भी वहाँ स्नान करने गया। जिनको तैरना आता था, वे कुण्डमें ऊपरसे कूदते थे तथा तैरते थे। मुझे तैरना नहीं आता था, इसलिये मैं किनारे ही स्नान कर लिया करता था। मैं उस दिन किनारेकी ऊँची भूमिपर खड़ा दूसरोंके जलमें कूदने-तैरनेका दृश्य देख रहा था। अचानक किसी लड़केने पीछेसे मुझे धक्का दे दिया। मैं नीचे अथाह जलमें जा गिरा। चोट भी लगी और डूबना तो था ही। दो बार पानीमें ऊपर उठा तथा डूबा। पानी भी पी गया। लगा कि, अब मरा। उस समय माताकी शिक्षा स्मरण आयी कि संकटमें राम-राम करना चाहिये। बोल तो सकता नहीं था। मनमें ही 'राम-राम' करने लगा। मुझे लगा किसीने

मुझे जोरसे धक्का दे दिया है। इससे मैं किनारेकी ओर चला आया। वहाँ मेरे गरदन-जितना जल था। मेरे पैर भूमिसे लग गये। इतनेमें मेरे बड़े भाई मुझे डूबते देखकर दूसरे किनारेसे जलमें कूदे और तैरते हुए मेरी ओर आने लगे। मैंने देखा कि वे दूर हैं और कुण्डमें दूसरा कोई उस समय नहीं है, जिसने मुझे धक्का दिया हो। प्रभुने ही मुझे बचाया था। मेरे बड़े भाई तथा दूसरे लोग आ गये और उन्होंने फिर सहारा देकर मुझे जलसे बाहर किया। दो घंटेमें मेरी तबीयत ठीक हुई।

—रामेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव

(१४)

श्रावणका महीना था। गङ्गाजी बढ़ी हुई थीं। कुछ साथियोंके साथ मैं गङ्गा-स्नान करने गया था। हमलोग जलमें कूदे। दूसरे लोग तैरकर किनारे लग गये; किंतु मैं उत्साहमें आगे बढ़ने लगा। धारा वेगवती थी। क्षणोंमें मैं बहुत दूर चला गया। अब किनारे आनेका जितना प्रयत्न करता, उतना ही दूर धारा लिये जा रही थी। उस दिन लहरें भी खूब उठ रही थीं। मेरे मुख-नाकमें पानी जाने लगा। तटपर खड़े साथी मेरी ओरसे निराश हो गये। उतनी दूर तैरकर आना किसीके वशकी बात नहीं थी। जब मैं पूरी तरह थक गया, तब चित लेट गया और किनारे आनेका प्रयत्न मैंने छोड़ दिया। अब मरण तो निश्चित ही था, सो भगवन्नामका स्मरण करने लगा। धारामें बहते-बहते मैं प्रणवका जप कर रहा था। अचानक मुझे लगा कि मैं किसी वस्तुसे टकराया। उलटकर देखता हूँ तो मैं किनारे लग गया हूँ।

—हरिश्चन्द्र ब्रह्मचारी

(१५)

दीवालके नीचे दबे और बचे

रातका एक बजा था, जब कि बड़े वेगसे अंधड़ आया। उस तूफानमें मेरे मकानकी दीवाल गिर गयी। मैं, मेरी पत्नी तथा तीन वर्षकी मेरी पुत्री—ये तीनों छप्परके नीचे दब गये। मैंने निकलनेकी बहुत चेष्टा की; किंतु असफल रहा। हारकर मैंने अन्तर्यामी प्रभुको पुकारना प्रारम्भ किया। प्रभुकी प्रार्थना करते कठिनाईसे पंद्रह मिनट हुए होंगे कि मेरे पड़ोसी कुछ आदमियोंको लेकर आ गये। उन्होंने हम तीनोंको निकाला। हममेंसे किसीको चोट नहीं लगी थी।

—राधाकृष्णप्रसाद जायसवाल

(१६)

वृक्षसे गिरनेपर बचा

उस समय मैं ग्यारह वर्षका था। आम पके हुए थे मुझे वृक्षपर चढ़नेमें आनन्द आता था। मेरे साथ कई लड़के आम तोड़ने निकले। कई वृक्षोंसे आम तोड़े। एक बहु विशाल वृक्ष था। उसका तना सीधा और मोटा था। उस दूरतक कोई शाखा नहीं थी। चढ़ना बहुत कठिन होने उसपर खूब अधिक पके आम थे। मैं तीन दिनोंसे उस वृक्ष पर चढ़नेको आतुर था; किंतु साहस नहीं होता था। अन्त खुरपी लेकर मैंने तनेमें पैर रखने-जितना गड्ढा किया औ चढ़ गया। वृक्षपर मैं चढ़ गया और आम तोड़ने लगा भूलसे एक सूखी टहनीपर पैर रखकर जो आम तोड़ झुका तो टहनी टूट गयी। मैं तीस फीट ऊपरसे गिरने लगा मुखसे अनायास—'जय बजरंगबली। महावीरजी बचाइये इतना निकला और नेत्र बंद हो गये। मैं मूर्छित हो ग था। नीचे मेरे साथी रोते-चिल्लाते थे। कुछ क्षणमें हो आया तो मैंने अपनेको एक डालीपर पड़े पाया। जहाँ मैं गिरा था, उससे लगभग दस हाथ नीचे वह डाली थ किंतु सीधमें नहीं, एक ओर हटकर थी। मैं उसपर वै पहुँच गया, यह श्रीहनुमान्‌जी ही जानते हैं। मुझे को चोट नहीं आयी थी। वहाँसे मैं सरलतापूर्वक नी उतर गया।

—शम्भूशरणप्रसाद

(१७)

ऊँचाईसे फिसला पर बच गया

पहाड़ी क्षेत्रोंमें सड़कें बहुत घूमकर जाती हैं। मैं कु मित्रोंके साथ पहाड़से उतर रहा था। सड़कसे चलते मार्ग दो घंटेका था और पगडंडीसे उतर जायँ तो केव पौन घंटे लगें। हमलोग पगडंडीसे उतरने लगे। लगभ एक हजार फीटकी उतराई थी। मेरा बायाँ पैर पक्षाघात दुर्बल हो गया है। उतराईमें वह फिसल गया। उ सैनिक बूट जो फिसलने लगे तो गति नियन्त्रणसे बा हो गयी। साथियोंने पुकारकर कहा—'जल्दी बैठ जाने लेट जानेका प्रयत्न करो। नहीं तो पुल या सड़क गिरनेसे मृत्यु हो जायगी।' मेरी घबराहट सीमातीत थी मैंने पुकार की—

'दीन दयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥'

चौपाई पूरी होते-न-होते मेरे पैर नालेमें पहुँच ग

और मैं रेतमें खड़ा हो गया। खड़े-खड़े ठरठराते पथरीले मार्गपर मैं कई सौ फीट लुढ़कता आया था; किंतु मुझे कहीं खरोंचतक नहीं आयी थी। कँटीली झाड़ियाँ बहुत थीं मार्गके पास, लेकिन मैं उनसे बचता निकला था।

—एल्० एल्० सिंह भदौरिया

(१८)

बैलकी प्राण-रक्षा

वर्षा ऋतुमें बैल दिनमें हल खींचते हैं, अतः रातमें उन्हें तीन-चार घंटे चरने दिया जाता है, तब घर लाया जाता है। उस दिन बहुत वर्षा हुई थी। रातमें जब बैलोंको चरवाहे चराकर घर ला रहे थे, एक बूढ़ा बैल मार्गके एक गहरे गड्ढेमें गिर गया। चरवाहोंने बहुत प्रयत्न किया, किंतु वह बैल उठ नहीं सका। वे लोग दूसरे बैलोंको लेकर घर आ गये।

समाचार पाकर मैं लालटेन लेकर उस बैलको ढूँढ़ने गया; किंतु अँधेरी रात थी। वर्षा हो रही थी। चारों ओर पानी भरा था। इसलिये मैं उस बैलको पा नहीं सका। विवश लौट आया। मुझे भय था कि रातमें गीदड़ उस कीचड़में फँसे बैलको खा जायँगे। मैंने घर आकर प्रभुसे प्रार्थना की—'हे दयाधाम! अब आप ही उस मूक प्राणीकी रक्षा करो!' फिर मैं रातभर कीर्तन करता रहा। कुछ क्षणोंको ही नींद आयी। सबेरे मैं गोशालामें गया तो वह बैल मुझे वहाँ बैठा मिला। वह बूढ़ा, कमजोर बैल कैसे कीचड़-पानी भरे गड्ढेसे निकल आया, यह समझना कठिन था। वह तो जब बैठता था तो उसे उठनेके लिये भी सहारा देना पड़ता था। यह परमात्माकी प्रत्यक्ष कृपा थी।

—त्रिभुवननाथ पाण्डेय

(१९)

वज्रपातसे रक्षा

भाद्रपदकी रात्रि थी। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। बिजली बड़े जोरसे कड़की तो मैं नींदसे चौंककर जाग गया। लेकिन पिताजीने आश्वासन देकर मुझे सुला दिया। पिताजी बराबर 'राम-राम' जपते बैठे थे। अचानक हवाके झोंकेसे खिड़कीके रास्ते बूँदें आयीं। खिड़की बंद करके पिताजी दूसरी ओर जाकर बैठनेके लिये चले। इतनेमें सारा कमरा प्रकाशसे भर गया। पिताजी नेत्र बंद करके भूमिपर बैठ गये। वे 'राम राम' जपते रहे। भयंकर कड़कके साथ बिजली गिरी। अब नेत्र खोलनेपर उन्होंने देखा कि वे जहाँ पहले बैठे थे, ठीक उसके सामनेके घरमें वज्रपातसे आग लग गयी थी। यदि वे उठे न होते तो वे उस वज्रपातकी चपेटमें आ गये होते।

—मणिकान्त ठाकुर

(२०)

एक परिचित ऊँट-ताँगापर सवार राजस्थानमें जा रहे थे। आकाशमें बादल थे और बूँद पड़ रही थी। अकस्मात् ऊँट-ताँगे (गाड़ी) के पास ही वज्रपात हुआ। ऊँटवाला घबरा गया; किंतु उन सज्जनने सबको सान्त्वना दी और 'भगवन्नामका' जप करते रहे। बिजली दूसरी बार गिरी। ऊँट-ताँगेके पास ही इस बार एक वृक्षपर गिरी थी। वृक्ष खड़ा सूख गया; किंतु उन लोगोंको कोई हानि नहीं हुई।

—रामधन अग्रवाल

(२१)

मैं बिजली-विभागमें काम करता हूँ। उस दिन मेरी रातकी ड्यूटी थी। रातको मैंने पानीकी सप्लाई बंद कर दी और किंवाड़ बंद करके स्टेशनके भीतर बैठ गया। सबेरे साढ़े तीन बजे मैं बाहर निकला। आकाशपर बादल छाये थे। भगवन्नाम लेता हुआ मैं बिजलीका मोटर चलाने गया। सहसा बिजली इतने जोरसे चमकी कि मेरे नेत्र बंद हो गये। मोटर चलाकर मैं फिर कमरेमें आ गया। द्वार बंद करके पाठ करने लगा। कुछ देरमें ही किंवाड़के पास वज्रपात हुआ। पूरी इमारत काँप उठी। बिजलीका मेन स्विच अपने आप बंद हो गया। उस दिन वह वज्रपात मुझसे कुछ गज दूर ही हुआ था; किंतु 'भगवन्नाम' ने मेरी रक्षा कर ली।

—बलदेवदत्त कालिया

(२२)

लुटेरोंसे रक्षा

मेरे पिताजी माताजी तथा छोटी बहिनके साथ तीर्थयात्राको गये थे। नैमिषारण्यसे कुछ दूरके तीर्थकी यात्रा करके वे लोग बैलगाड़ीपर नैमिषारण्य लौट रहे थे। एक छोटी नदीके किनारे गाड़ीवानने गाड़ी रोक दी और माचिस लेनेके बहाने समीपवाले झोपड़ियोंके गाँवमें चला गया। संध्या हो चुकी थी। अँधेरी रातका समय था। जंगलका मार्ग था। इतनेमें गाड़ीवान चार-पाँच लाठीवाले आदमियोंके साथ आता दीख पड़ा। अब पिताजी

समझ गये कि गाड़ीवानकी नीयत ठीक नहीं है। ये लोग लूटना चाहते हैं। प्राण भी ले सकते हैं; क्योंकि ऐसे लुटेरे यात्रियोंको मारकर फेंक देते हैं, जिससे उनके विरुद्ध पुलिसको कुछ पता न लगे। भगवान्‌को छोड़कर दूसरा कोई सहायक तो वहाँ था नहीं। पिताजी 'राम नाम' का जप करने लगे और उस दयामयसे रक्षाकी प्रार्थना करने लगे। माताजी तथा बहिन भी रामनामका कीर्तन करने लगीं।

अचानक दो युवक घुड़सवार उसी समय वहाँ आ पहुँचे। उनमेंसे एकने गाड़ीवानको दो चाबुक मारकर धमकाया—'यात्रियोंको अकेला पाकर लूटना चाहता है? इन गुंडोंको क्यों साथ लाया है? चुपचाप गाड़ीपर बैठ और चल। हम साथ चल रहे हैं।'

गाड़ीवानने हाथ जोड़ा उन्हें। वह गाड़ीपर बैठा। नैमिषारण्यकी बस्तीके पास आनेतक वे दोनों घुड़सवार साथ आये; फिर पता नहीं किधर चले गये। उस दिन प्रभुने धन, प्राण तथा इज्जत भी बचायी।

—रामकृष्ण बियाणी

(२३)

मैं अपने भानजेकी बारातसे लौट रहा था। रातको ट्रेनसे स्टेशनपर उतरा। रात चाँदनी थी अतः चल पड़ा। साथमें एक सेवक था। एक बैलगाड़ी भी साथ मिल गयी। बीचमें एक निर्जन स्थानपर १२–१५ लुटेरे भाला-लाठी लिये सामने आ गये। उन्होंने टार्चकी रोशनी हमपर डाली। भय-कातर होकर अशरण-शरण गजेन्द्रोद्धारक प्रभुको मनसे पुकारता हुआ मैं कातर भावसे नाम-स्मरण करने लगा। पता नहीं क्यों लुटेरे एक स्थानपर खड़े होकर परस्पर कुछ विचार करने लगे। सेवकके साथ मैं चलता रहा। समीपके गाँवमें पहुँचनेपर मेरी जानमें जान आयी। मेरे प्राण बच गये थे।

—देवनन्दनराय बी० ए०

(२४)

मेरा कलकत्ते जानेका पहला अवसर था। व्यापारके सिलसिलेमें गया था, अतः पासमें कई हजार रुपये थे। मेरी ट्रेन हवड़ा रातके ग्यारह बजे पहुँची। स्टेशनसे मैंने टैक्सी ली। मार्गमें ड्राइवर मुझसे बातें करने लगा और उसने चतुराईसे मुझसे सब बातें पूछ लीं। अचानक टैक्सी रुक गयी। ड्राइवरने एक सीटी बजायी। उस एकान्त स्थानमें सीटी सुनकर एक आदमी और आ पहुँचा। [illegible] चाकू निकालकर कहा—'[illegible]!'

मैंने अपने सब-के-सब रुपये दे दिये। [illegible] पर ड्राइवरके साथीने ड्राइवरसे कहा—'इसे छोड़ो मत, खत्म कर दो! यह हमलोगोंको पहचानता है।'

मैं बहुत रोया-गिड़गिड़ाया; किंतु उन लोगोंको द[illegible] नहीं आयी। अब परमेश्वरके अतिरिक्त कोई सहारा न था। मैं मन-ही-मन उस दयामयको पुकारने तथा उस[illegible] नाम जपने लगा। ड्राइवर चाकू लेकर मेरी ओर बढ़[illegible] किंतु उसकी दृष्टि अपने साथीपर गयी। उसका सा[illegible] रुपयोंकी थैली उठा चुका था और भागना चाहता था[illegible] ड्राइवर मेरी ओर बढ़नेके बदले अपने साथीपर टूट पड़[illegible] दोनों आपसमें गुथ गये। ड्राइवर कुछ देरमें मरा; [illegible] उसका साथी तुरंत मर गया। मरते समय उसने चीख म[illegible] थी। वह चीख सुनकर एक पुलिसका सिपाही वहाँ [illegible] गया। उस सिपाहीने मुझे मार्ग बता दिया। भगवान्[illegible] नाम लेते मैं ठहरनेके स्थानपर पहुँच गया।

—राधाकृष्णप्र[illegible]

(२५)

एक स्त्री अपने एक दूरके रिश्तेदारके साथ पित[illegible] घरसे ससुराल जा रही थी। अल्मोड़ेका देहाती क्षेत्र सुनस[illegible] जंगलोंसे भरा है। स्त्रीके शरीरपर बहुत आभूषण थे। [illegible] सुनसान स्थानपर उस साथके मनुष्यकी नीयत खराब [illegible] गयी। उसने उस स्त्रीको धमका कर उसके सब आभू[illegible] उतरवा लिये और उसे मार डालनेके लिये वह एक बड़ा पत्[illegible] उठाने लगा। घबराकर वह स्त्री नेत्र बंद करके ह[illegible] जोड़कर भगवान्‌से रक्षाकी प्रार्थना करने लगी। अचान[illegible] चीख सुनकर उसने नेत्र खोले। उसने देखा कि पत्[illegible] उठाते समय उस मनुष्यके दोनों हाथोंको एक बड़े स[illegible] लपेटकर बाँध रक्खा है। वह मनुष्य अब जेलमें है। प्र[illegible] उस नारीकी रक्षा की।

—श्रीश्याम

(२६)

गुंडोंसे प्राण और इज्जत बची

मैं सातवीं कक्षामें पढ़ती हूँ। एक दिन कोई मुझे ले[illegible] स्कूल नहीं आया। छुट्टी होनेपर मैं अकेली घर लौट र[illegible] थी। मार्गमें एक निर्जन खुला मैदान पड़ता है। वहाँ पहुँ[illegible]

छः गुंडे मेरे पीछे पड़ गये । वे सीटी बजाते तथा गंदे मजाक करते थे । घबराकर मैं भगवान्‌को मनमें पुकारने लगी । इतनेमें एक बूढ़ा मनुष्य सायकिलपर आया और सायकिल धीरे-धीरे चलाने लगा । जबतक मैंने मैदान पार नहीं किया, वह मेरे साथ चलता रहा । —गीता मेहरोत्रा

(२७)

सन् १९४७ की बात है । पूरे देशमें साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे । हमारा मकान मुसल्मानोंके मकानोंके पास था । एक दिन मस्जिदसे उपद्रवी भीड़ निकली और उसने सबसे पहले हमारे मकानपर ही धावा किया । रातके एक बजे थे उस समय । हम सब सो रहे थे । गुंडोंने हमारा दरवाजा पीटना प्रारम्भ किया । केवल माताजी जगी थीं । उनसे बोला ही नहीं गया । मन-ही-मन वे भगवान्‌को पुकारने लगीं ।

आक्रमणसे पहले मुसल्मानोंने नक्कारा बजाया था और शोर किया था । उसे सुनकर निकटके गाँवोंसे गूजर भी हथियार लेकर आ गये । उनके आते ही मुसल्मान गुंडोंकी भीड़ मस्जिदमें लौट गयी । गूजरोंके आनेसे पहले एक मुसल्मान सज्जन उपद्रवियोंको समझाकर रोक रहे थे । उनके प्रयत्नने ही हम सबको बचाया; क्योंकि वे न रोकते तो गूजरोंके आनेसे पहले उपद्रवी हमलोगोंको समाप्त कर चुके होते । माताजीकी पुकार प्रभुने सुन ली थी ।

—राकेशकुमार प्रजापति

(२८)

तूफान शान्त हुआ

मैं बीकानेर-गंगानगर लाइनपर ट्रेन लेकर जा रहा था । स्टेशनसे ट्रेन छूटी तो आँधी प्रारम्भ हो चुकी थी । तूफान इतना बढ़ गया कि तीन-चार मीलकी गतिसे भी गाड़ी चलानेपर उसके उलट जानेका भय लगता था । मेरे चार्जमें सोने-चाँदीकी सिल्लियाँ तथा मूल्यवान् पार्सल थे । इसलिये मैं बहुत डर रहा था कि कोई दुर्घटना न हो जाय ।

मेरे पास एक टिकट-चेकर भी बैठे थे । हम दोनोंने इस विकट परिस्थितिमें 'हरि ॐ' का जप प्रारम्भ किया । जप प्रारम्भ करते समय गाड़ी जंगलमें खड़ी थी । तूफान पूरे वेगपर था; किंतु पंद्रह मिनटमें ही तूफान इस प्रकार शान्त हो गया जैसे बुलबुला उठा और मिट गया हो । वातावरण पूर्णतः शान्त हो गया । मेरी गाड़ी दूसरे स्टेशन पौने दो घंटेमें पहुँची । जब कि कुल अट्ठाईस मिनटका मार्ग था । —शिवलाल गार्ड

(२९)

प्यासों मरनेसे बचा

गर्मियोंकी छुट्टियाँ समाप्त हुई थीं । मुझे अपनी पाठशाला पहुँचना था । मोटर-मार्गके बाद दस मील पैदल चलना था । कहीं कोई पगडंडी नहीं उस रेतमें । मैं मार्ग भूल गया । जलती रेत और दोपहरका तपता सूर्य, प्यासके मारे कण्ठ सूख ही नहीं गया, गलेमें काँटे पड़ गये । अब मैंने भगवान्‌का स्मरण किया—'नाथ ! अब आप ही रक्षक हैं !' पासमें जो सामान था, उसे रास्तेमें ही पटक दिया । सिरपर कपड़ा डालकर मैं जल ढूँढ़ने चला । दो-तीन मील दूर वृक्ष मिले, बकरियाँ भी चरती मिलीं; किंतु जल वहाँ नहीं था । अब कातर भावसे मैंने प्रभुको पुकारा । सहसा एक ग्वाला मेरी ओर आया । बोलनेकी शक्ति मुझमें नहीं थी । मेरी दशा देखकर स्वयं ही दौड़ गया और कुछ क्षणोंमें पानी ले आया । उस जलने मेरे प्राण बचाये ।

—जयकिसन लाखपुरीकर

(३०)

गरमीके दिन थे । हमारे यहाँ स्टेशन लगभग छः मील है । स्टेशनपर हमारे दो बंडल आये थे । उन्हें ले जानेको सवारी नहीं थी । एक बैलगाड़ीका पता लगा । उसे पकड़ने कई मील जाना पड़ा; किंतु उसने भी स्टेशन लौटना स्वीकार नहीं किया । उसके पाससे स्टेशनको चला । उस समय दोपहरकी धूपसे पृथ्वी तप रही थी । लू चलने लगी थी । प्याससे कण्ठ सूखने लगा । आसपास पानीका कहीं अता-पता नहीं था । अवस्था ऐसी हो गयी कि एक पैंड चलना कठिन हो गया । विवश होकर एक खजूरके पेड़के नीचे बैठ गया; क्योंकि दूसरा छायादार कोई वृक्ष भी समीप नहीं था ।

प्राण निकलने लगे तो प्रभुको स्मरण करने लगा । नेत्र बंद हो गये । ऐसा लग रहा था कि कोई मुखमें बरफका टुकड़ा रख देता तो मेरे प्राण बच जाते । अचानक कुछ आहट मिलनेसे नेत्र खुले । सामने एक कुल्फी-मलाई बेचनेवाला कंधेपर अपना बक्स उठाये खड़ा था । मैं बोल नहीं सकता था । उसने मेरे मुखमें मलाईका बरफ डाल दिया । अब मैं बोलनेमें समर्थ हुआ । पूछनेपर बताया कि आज उसके मनमें अचानक देहातमें कुल्फी बेचनेका विचार आ गया था । —रघुनन्दनप्रसाद सेठ

(३१)

वर्षासे माल बचा

मैं सीमेंटका स्टाकिस्ट हूँ। मेरे यहाँसे स्टेशन ग्यारह मील दूर है, जहाँ मेरा सीमेंट आता है। एक दिन मुझे सूचना मिली कि मेरा सीमेंटका वैगन आ गया है। पानी मूसलाधार बरस रहा था और रेलका डब्बा तो आज ही खाली करना था, अन्यथा बहुत हर्जाना रेलवेको देना पड़ता। बड़ी कठिनाईसे एक ट्रक अधिक किराया देनेपर मिला भी तो उसके पास बरसाती एकदम पुरानी थी। मैं भगवान्‌से मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा और 'जयति शिवा-शिव जानकि-राम' का जप करने लगा। भगवत्कृपा देखिये कि जब मैं ट्रक लेकर स्टेशन पहुँचा तो वर्षा एकदम बंद हो गयी थी। धूप निकल आयी थी। आठ बजे राततक सीमेंट ढुलाई हुई। वर्षा तबतक बंद रही। नौ बजे रातसे फिर प्रबल वृष्टि होने लगी।

—गिरीशचन्द्र अग्रवाल

(३२)

मैंने किराना खरीदा था। माल बैलगाड़ीसे आ रहा था। छः-सात बैलगाड़ियाँ थीं। चैत्रका महीना होनेसे ताड़पत्री (तिरपाल) का प्रबन्ध नहीं था। अकस्मात् बादल उठे और वर्षा प्रारम्भ हुई। मैं घबराया कि गुड़, शकर, स्टेशनरी (माचिस आदि) सब भींगकर नष्ट हो जायँगी। मैं 'राम' नामका जप करने लगा और प्रभुसे प्रार्थना करने लगा। इतनेमें एक बाईने ताड़पत्री दी और बोली—'इससे अपना मूल्यवान् सामान ढक लो।'

मैं ताड़पत्री लेकर मोटरसे चला; क्योंकि बैलगाड़ियाँ पहिले रवाना हो चुकी थीं। बैलगाड़ियोंको भेजकर मैं मोटरसे आनेवाला था। मोटर स्टैंडपर जब अपनी ओर-से आयी बस मुझे बहुत भीगीं दीखी तो मैं घबरा गया कि मेरा माल मार्गमें भींग गया होगा।

बैलगाड़ियाँ मार्गमें मिलीं। मेरी प्रार्थनापर ड्राइवरने बस रोक दी। सब माल बसके ऊपर रखवा दिया गया और उसे साथ लाई ताड़पत्रीसे मैंने ढक दिया। अबतक मेरा एक थैला भी भींगा नहीं था। बैलगाड़ियोंसे दो फर्लांग आगे-पीछे वर्षा नहीं हुई थी। माल बसके ऊपर ठीक रखकर ढककर हम चले तो खूब वर्षा हुई; किंतु भगवान्‌की कृपासे मेरा माल सुरक्षित हो चुका था।

—भीकचंद मिभोलाल मुथा

(३३)

नदीकी बाढ़ रुकी

राजस्थानके दक्षिणी भागमें गत वर्ष बहुत वर्षा हुई थी। चित्तौड़गढ़ नगर तथा स्टेशनके बीच बहनेवाली गम्भीरीमें सेप्टेम्बरमें बाढ़ आ गयी। नदीने रुद्र-रूप धारण कर लिया। तटके समीपके लोग घर-द्वार छोड़कर दुर्गमें शरण लेने चले गये। उस समय कुछ लोगोंकी सलाहसे नदीके तटपर 'कीर्तन' किया गया। ब्राह्मणोंने वेदमन्त्रोंसे इन्द्रदेवकी स्तुति की। जैसे ही प्रार्थना पूरी हुई, नदीके जलका स्तर गिरने लगा। बाढ़ शीघ्र ही उतर गयी।

—श्याममनोहर व्यास बी० एस्-सी०

(३४)

भगवत्प्रार्थनाने सहायता की

दो मित्रोंके साथ मैं घूमने निकला था। मार्गमें एक बस खड़ी मिली। उसका कंडक्टर चार महिलाओंको बससे उतरनेके लिये कहने लगा। बात यह थी कि उस बसको एक बारात ले जानेके लिये अधिक रुपये मिल रहे थे। इसलिये महिलाओंको वह डरा-धमकाकर उतार देना चाहता था। यद्यपि उन महिलाओंके पास आगे-तकका टिकट था। हमलोगोंने कंडक्टरको समझाया कि वह महिलाओंको शहर पहुँचाकर तब बारात ले जाय; किंतु हमारी बात उसने नहीं सुनी। इसपर हम तीनों उस बसमें बैठ गये और हमने महिलाओंको आश्वासन दिया।

कंडक्टर गुस्सेमें भर गया था। बस चलने लगी। महिलाएँ मार्गमें हनुमान्‌जी तथा अन्य देवताओंकी स्तुति करने लगीं। आगे एक स्थानपर जाकर मोटरका पेट्रोल समाप्त हो गया। अब कंडक्टरने हम सबकी हँसी उड़ायी। और रातभर जंगलमें पड़े रहना पड़ेगा, यह कहकर उन स्त्रियोंको डरा दिया। वे सब डर गयीं। उन्होंने तथा उनके साथ हमलोगोंने भी 'कीर्तन' प्रारम्भ किया। फिर हम सब भगवान्‌से सहायताकी प्रार्थना करने लगे। हमारी प्रार्थना चल ही रही थी कि एक दूसरी बस वहाँ आ गयी। उससे पेट्रोल मिल गया। इस प्रकार हमारी मोटर बस रातके दस बजे ठिकाने पहुँच जायगी।

—जुगलकिशोर शाह

(३५)

मार्ग बताया गया

मेरे पिताजी चम्बल नदीके किनारे जा रहे थे। चम्बल-

के 'बेहड़' डाकुओंके आश्रय स्थान हैं। उन 'बेहड़ों' के कारण वे मार्ग भूल गये। मैं साथ ही था। अब पता नहीं था कि हम कहाँ जा रहे हैं। हमें नदी पार करनी थी। सूर्यदेव अस्त हो चुके थे। हम दोनों भयके कारण व्याकुल होकर 'हरे राम' महामन्त्रका कीर्तन कर रहे थे। नदी पार करने लगे तो गहराई बहुत जान पड़ी। अब क्या किया जाय? पिताजीके नेत्रोंमें आँसू आ गये। इसी समय किसीने नदी पारसे पुकारकर कहा—'दाहिनी ओर चले आओ!' दाहिनी ओर गहराई कम मिली। हम नदी पार हुए। एक बहुत दुबले वृद्ध पुरुषने हमें पुकारा था। वे हमें मार्ग दिखाते हुए ग्रामतक पहुँचा गये। —गिरिधारी शर्मा

(३६)

अकल्पित सहायता मिली

मेरे मित्रके यहाँ मरम्मतका काम चल रहा था। रेतकी आवश्यकता थी। ढूँढ़नेपर बैलगाड़ी तो मिली; किंतु गाड़ीवान नहीं आया। वह किसी कार्यमें लगा था। हम दोनों बैलगाड़ी लेकर चल पड़े। पहलेका अनुभव होता तो हम कगारपर गाड़ी खड़ी करके उसमें रेत लाकर भरते; किंतु हम इस काममें नये थे। गाड़ी हमने नदी-किनारे उतार दी और रेत भरकर बैल जोड़े। बैल भी बहुत दुबले थे। नदीमें खड़ी रेतसे भरी गाड़ीको वे बैल खींच ही नहीं सके। कुछ घाटसे जाते लोगोंने सहयोग भी दिया; किंतु गाड़ी निकली नहीं।

हमारे यहाँसे वह स्थान सात मील दूर था। आस पास घना जंगल था। शाम होने लगी तो हमने रेत उतार दी; किंतु पहिये रेतमें धँस चुके थे। बैल खाली गाड़ी भी खींच नहीं सके। अँधेरा प्रारम्भ होते ही जल पीनेके लिये छोटे जंगली पशु आने लगे। शेर-चीतोंके आनेका भय हमें लगने लगा।

'जय श्रीराम' की पुकार मेरे मुखसे निकली। मैं राम-नाम जपने लगा। हम बैल लेकर घर लौट जायँ तो गाड़ी चोरी जा सकती थी। वह हमारी थी नहीं। इसी समय मेरे गाँवके दो काछी वहाँ आ गये। वे जंगलसे हलके लिये लकड़ी काटने आये थे। भगवान्ने उनके रूपमें हमें अकल्पित सहायता भेजी थी। उन्होंने जोर लगाकर गाड़ी निकाल ली। नदीके ऊपर ले जाकर स्वयं उसमें रेत भरी और भरी गाड़ीको लेकर गाँवमें घरतक पहुँचा गये। —विठ्ठल

(३७)

मुकदमेमें सफलता मिली

मुझपर तथा मेरे कर्मचारियोंपर पास-पड़ोसके लोगोंने एक झूठा फौजदारी मुकदमा चला दिया। यह मुकदमा द्वेष-वश चलाया गया था। सुना यह भी गया कि विपक्षियोंने मुझे सजा करानेके लिये सरकारी कर्मचारीको तथा न्यायाधीश-को घूस भी दिया। मैं भगवान्के भरोसे था और प्रतिदिन 'हरे राम' महामन्त्रकी दस माला जप करता था।

विपक्षियोंको प्रमाण बहुत कम प्राप्त हुए। सुना यह भी गया कि न्यायाधीश महोदयने जो धन विपक्षसे लिया था, लौटा दिया; क्योंकि मुझे दंड दे सकें, ऐसी स्थिति बनी नहीं थी। निर्णयमें उन्होंने हम सबको निर्दोष घोषित किया था। —'एक'

(३८)

एक धनी सज्जनने मेरे ऊपर गत तीन वर्षोंसे मुकदमा चला रक्खा था। मेरे सम्मानका प्रश्न था। एक महात्माके आदेशानुसार मैंने—

'जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥'

इस चौपाईका जप प्रारम्भ किया। न्यायालय जाते समय मैं बराबर इसका जप करता रहता था। अब न्यायालयने निर्णय सुना दिया है। उन सज्जनको हारना पड़ा है।

—डा० शिवराजसिंह चौहान

(३९)

मेरे ऊपर गबनका अभियोग था। मैं बहुत बेचैन था। नौकरीसे मैं पृथक् कर दिया गया था। घरमें छोटे-छोटे बच्चे थे। उन्हें भरपेट भोजन नहीं दे पाता था। बहुत दुखी था मैं। मुझे अत्यन्त खिन्न देखकर एक भले चपरासीने कहा—'बेचैन होनेसे क्या होगा! अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार तुम सब कुछ तो कर चुके, अब एक ओर बैठकर चुपचाप राम-राम जपो।'

बात जँच गयी। मैं सब ओरसे निराश हो ही गया था, एक ओर बैठकर 'राम-राम' जपने लगा। कुछ लोगोंने मुझपर व्यंग भी किया—'कुछ जड़ी-जंतर भी लाये हो या केवल राम-राम ही कर रहे हो? आजकल राम-रामका फल होता नहीं है।'

चार बजे न्यायाधीशने निर्णय सुनाया। उन्होंने मुझे निर्दोष घोषित किया।

—रामस्वरूप राम

(४०)

मैं पोस्टमास्टर हूँ। सन् ५० की बात है। एक दिन दोपहरकी छुट्टीके बाद आकर जो भीतर डाकघरमें पहुँचा तो खजानेके बक्सका ताला टूटा मिला। उसमें नौ हजार रुपये थे। देखनेपर दो हजार कम मिले। अपने विभागके उच्च अधिकारियों तथा पुलिसको मैंने सूचना दी।

'चोरने दो हजार रुपये ही क्यों लिये?' यह प्रश्न मुझे व्याकुल किये था। स्वभावतः संदेह मुझपर जायगा, यह मुझे लगता था। वैसे अधिकारी मेरे अनुकूल थे। दूसरे दिन प्रातः मैंने गङ्गामैयासे प्रार्थना की—'माँ! या तो मुझे निर्दोष सिद्ध करो या अपनी गोदमें स्थान दो!' उसी दिन एक दर्जीसे सूचना मिली कि एक पोस्टमैनके पास नोटके बंडल देखे गये हैं। पुलिसको सूचना दी गयी। वह पोस्टमैन छः मील दूर पकड़ा गया। उसके पास अधिकांश रुपये मिल गये। थोड़ेसे उसने खर्च कर दिये थे।

—श्यामसुन्दर यादव

(४१)

आरोपसे बचे

मेरी हलवाईकी दूकान है। बाजार लगनेका दिन था। भीड़ बहुत थी। पैसे न देनेके कारण एक ग्राहकसे पिताजीका झगड़ा हो गया। बात बढ़ गयी और लाठियों तक पहुँच गयी। उस व्यक्तिके सिरमें चोट आयी। वह थाने चला गया। थानेदारने पिताजीको थानेमें बुलाया और धमकाने लगा। मैं दूकानपर बैठा घबरा रहा था। मन-ही-मन प्रभुसे प्रार्थना कर रहा था पिताजीके बचावके लिये। थानेमें वह व्यक्ति उत्तेजनामें आ गया और जूता उतारकर पिताजीको मारने झपटा। इस थानेदारका रुख पलट गया। उन्होंने कहा—'यह मेरे सामने ही ऐसा करता है तो पीछे क्या नहीं कर सकता?' उस व्यक्तिको उन्होंने हवालातमें बंद करा दिया। पिताजी छोड़ दिये गये।

—भीखाराम अग्रवाल

(४२)

अर्थ-संकटमें सहायता मिली

मैंने खेतीके लिये खेत खरीदे थे। आठ हजार रुपये देने थे। दो हजार नकद दे दिये। शेषके लिये एक हजार रुपया वार्षिक तथा ब्याज देनेकी बात हो गयी। कठिनाइयाँ ऐसी आयीं कि मैं दो वर्ष तक कुछ भी नहीं दे सका। उन्होंने माँग प्रारम्भ की। दूसरेको खेत गहन रखकर डेढ़ हजार दे दिये। खेत दो महीनेको गहन रक्खे थे। संयोगसे मैंने जिनके पास खेत गहन रक्खे थे, उनसे मेरा विवाद हो गया। वे अपने रुपये वापस माँगने लगे। जिनसे मैंने खेत खरीदा था, वे भी इन सज्जनसे मिल गये और कहने लगे—'ये डेढ़ हजार रुपये तुम्हारे नहीं हैं। इनको मैं तुम्हारे हिसाबमें नहीं मानूँगा।'

ऐसा संयोग बन गया कि लगा—'खेत भी जायँगे और अबतक दिये रुपये भी डूबेंगे।' इस संकटमें 'गणेशाथर्वशीर्ष' के मन्त्रोंसे मैंने श्रीगणेशजीके इक्कीस अभिषेक किये और उनसे प्रार्थना की कि वे मेरे रुपये लौटा दें। भगवान् गणेशजीने मेरी प्रार्थना सुन ली। जिनको मैंने भूमि गहन की थी, उनका मुनीम अचानक आया और बोला—'हम भूमि पूरी खरीद लेना चाहते हैं।' बारह हजार रुपयेमें उन्होंने भूमि ले ली। पहले भूस्वामीको रुपये देकर भी मेरे पास साढ़े चार हजार बच गये।

—मधुकर मोडक

(४३)

घटना एक परिचित ठेकेदारकी है। वे घाघरा नदीके एक घाटका प्रतिवर्ष ठेका लेते हैं। इस वर्ष उनकी एक प्रान्तीय मन्त्रीसे कुछ अनबन हो गयी। फल यह हुआ कि उनसे छत्तीस सौ रुपये अग्रिम माँगे गये। इसी वर्ष उन्होंने अपने पुत्रका विवाह किया था। रुपये जो घरमें थे, खर्च हो गये थे। मित्रों-परिचितोंसे प्रयत्न करनेपर भी ऋण नहीं मिला। चिन्ताकी सीमा नहीं थी। अन्ततः भगवान् शंकरकी शरण ली। उनके मन्दिरमें बैठकर वे स्तुति करने लगे।

उसी रातको नौ बजे द्वारपर टार्च चमकी। ठेकेदारने डाकुओंके भयसे द्वार बंद कर लिये; किंतु एक परिचितने उन्हें पुकारा। द्वार खोलकर उसे भीतर ले गये। वह एक अनपढ़ मजदूर था जो कभी उनके पास काम कर चुका था। वह हाथ जोड़कर उनके पैरोंपर गिर पड़ा—'मेरा उद्धार कर दीजिये!'

बात यह थी कि दस-बारह वर्ष प[illegible] ठेकेदारसे दो हजार रुपये कर्ज लिये थे। उसकी [illegible] -पढ़ी नहीं थी। नदीकी बाढ़में पीछे उसका घर [illegible] भूमि कट
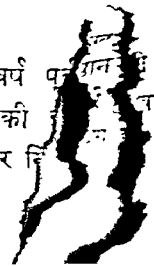
गयी और वह अन्यत्र चला गया। ठेकेदारने मान लिया था कि अब उसे दिये रुपये नहीं लौटेंगे। वे उन्हें भूल चुके थे। आज वह पूरे छत्तीस सौ रुपये देने आया था और ऋण-से छुटकारा चाहता था। यह भगवान् शंकरकी ही कृपा थी।

—हरदेवबख्श सिंह

(४४)

प्रभु छप्पर फाड़कर देते हैं

मेरे परिचित एक अध्यापककी कन्याका विवाह था। कोई व्यवस्था थी नहीं। अपना एक मकान बेचनेका निश्चय किया। गाँवके एक महाजनने मकानके लिये उन्हें एक हजार रुपया देना स्वीकार कर लिया। किंतु जब बारात आनेको तीन-चार दिन रह गये तो महाजनने रुपया देना अस्वीकार किया। अब अध्यापकजीपर तो मानो बिजली गिर गयी। रात्रिमें वे अपने इष्टदेवके सामने आसन लगाकर बैठ गये। रात्रिभर जागते रहे और रोते रहे। दूसरे दिन भी अन्न-जल ग्रहण नहीं किया; किंतु पाठशाला गये।

अचानक पोस्टमैनने आकर उन्हें पाँच सौ रुपयेका मनीआर्डर दिया। वे तो चौंक पड़े। उन्होंने एक बार मनीआर्डर लौटा दिया—'मुझे भला कौन रुपये भेजेगा? कहीं भूल हो रही है।' किंतु नाम-पता उनका ही था। भेजनेवालेका नाम-पता उन्होंने लिख लिया। दूसरोंके समझानेपर रुपये ले लिये। दूसरे दिन फिर एक मनीआर्डर पाँच सौका आ गया। लड़कीकी शादी बड़े आनन्दसे हो गयी। बेटीका ब्याह करके वे मनीआर्डरमें लिखे पतेपर गये तो वहाँ उस नामका कोई व्यक्ति ही नहीं था, जो नाम मनीआर्डर फार्ममें रुपया भेजनेवालेका लिखा था। धन्य प्रभु!

—योगेन्द्रराज भण्डारी

(४५)

ऋण अदा हुआ

एक व्यक्तिपर पाँच सौ रुपया ऋण था। ऋण-दाताने कहा—'जबतक रुपया नहीं देते हो, तबतक पिता-पुत्र मेरे यहाँ काम करो।' वे लोग लगभग दास हो गये। इन्हें केवल भोजन मिलता था। एक महात्माने उनको सुन्दरकाण्डका पाठ करनेको कहा। बड़े प्रेमसे उन्होंने पाठ किया। पाठ प्रारम्भ करनेके लगभग सप्ताह भर बाद एक सम्पन्न महिलाने उस व्यक्तिके भतीजेको दत्तक ले लिया और उनपर जो ऋण था, उसे अपने ऊपर ले लिया।

—मोहन मोदी

(४६)

अच्छी नौकरी मिली

मैं कार्यविशेषसे दिल्ली गया था। वहाँ कुछ दिन रहना था। अतः नौकरी ढूँढ़ रहा था। तीन दिनसे इस प्रयत्नमें लगा था। चौथे दिन मन्दिरमें दर्शन करने गया। भगवान् श्रीकृष्णसे मैंने प्रार्थना की। वहाँसे एक परिचितसे मिलने गया तो पता लगा कि वे नौकरी छोड़कर चले गये हैं। वे जहाँ काम करते थे, उस फर्ममें गया। उसके मालिकने मेरा सम्मान किया। उन्होंने आग्रह करके मुझे अपने यहाँ कामपर नियुक्त कर लिया।

(४७)

बारात स्वयं छोटी हुई

मेरे गाँवके एक निर्धन व्यक्तिकी कन्याका विवाह था। विवाह जहाँ निश्चित हुआ, वे लोग धनी थे। लग्न-टीका तो चढ़ गया; किंतु वरपक्षने कहला दिया कि बारातमें सौसे कम व्यक्ति नहीं आयेंगे। लड़कीका बाप संकटमें पड़ गया। इतने लोगोंको खिलानेकी व्यवस्था करना उसके लिये किसी प्रकार सम्भव नहीं था। बड़ी कठिनाईसे गाँवके लोगोंने कुछ गेहूँ और चावल उसे दिया था।

पिताकी पीड़ासे पुत्री व्याकुल हुई। वह भगवान्से प्रार्थना करने लगी—'प्रभो! मेरे पिताकी लज्जा बचाओ!'

बारात जिस दिन आनी थी, उससे एक रात पहलेसे घनघोर वृष्टि प्रारम्भ हो गयी। दूसरे दिन शामतक वर्षा रुकी ही नहीं। उस दिन तो बारात आ ही नहीं सकी। दूसरे दिन दस-बारह आदमी पैदल आये। विवाह हो गया। उस लड़कीके पिताके पास पर्याप्त अन्न बच रहा बारातका सत्कार करनेके बाद।

(४८)

मेरे श्वशुरके स्वर्गवासके पश्चात् मेरे पति तथा जेठजीमें मनमुटाव रहने लगा। एक दिन दोनों भाइयोंमें कुछ कहा-सुनी हो गयी। मेरे पतिने माताजी (मेरी सासु) से घर छोड़कर अन्यत्र चलकर रहनेका आग्रह किया। माताजी बोलीं—'तुम्हें जहाँ जाना हो जाओ! मैं घर छोड़कर कहीं नहीं जाती।'

यह बात उन्हें इतनी बुरी लगी कि वे जैसे खड़े थे, वैसे ही चल दिये। मुझसे उन्होंने एक बात भी नहीं की।

(५३)

अतिवृष्टि रुकी

यहाँ वर्षा बहुत अधिक हो चुकी थी। झड़ी लगातार लगी थी और बादल खुलनेका नाम ही नहीं ले रहे थे। एक वेदपाठी सज्जनने दस छात्र वेदपाठ करनेवाले साथ लिये और सस्वर वेदपाठ प्रारम्भ किया। उनको वेदपाठ करते कुल दस-पंद्रह मिनट हुए थे कि आकाश स्वच्छ हो गया। बादल छिन्न-भिन्न हो गये थे।

—ज्ञानप्रकाश

(५४)

स्पेशल ट्रेन मिली

पंजाबमें हिंदी-भाषाके प्रश्नको लेकर सत्याग्रह चल रहा था। सत्याग्रह-समितिने मुझे राजस्थानका चतुर्थ सर्वाधिकारी चुना था। मैंने सूचित किया—'मैं अजमेरसे स्पेशल ट्रेन लेकर आऊँगा।' समितिने मेरी बात स्वीकार कर ली। किंतु जब मैंने विचार किया तो लगा कि मैं पहाड़-जैसी भूल कर चुका हूँ। मैं सरकारके विरुद्ध ही सत्याग्रह करने जानेवाला था। यह कैसे सम्भव था कि रेलवे मुझे एक प्रान्तीय सरकारके विरुद्ध सत्याग्रही ले जानेके लिये स्पेशल ट्रेन दे देती।

अब हो क्या सकता था। घोषणा की जा चुकी थी। मैंने प्रयत्नमें कुछ उठा नहीं रक्खा; किंतु सफलता नहीं मिली। अन्तमें मैंने प्रभुसे सहायता करनेके लिये प्रार्थना की। रेलवे अधिकारियोंसे टेलीफोनपर बात हुई। वे कह रहे थे—'एक स्पेशल ट्रेन अभी एक सज्जनको दी जा चुकी है। अब आपके लिये व्यवस्था नहीं हो सकती।'

किंतु जिन सज्जनने स्पेशल ट्रेन स्वीकृत करायी थी, उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। फलतः वह ट्रेन मुझे मिल गयी!

—जियालाल

(५५)

मधुमक्खियाँ भागीं

जनगणना-कार्यसे मुझे जङ्गलमें स्थित एक गाँवमें जाना पड़ा। [illegible] समय मधुमक्खियोंने मुझपर अकारण आक्रमण कर दिया। [illegible]को बहुत चिल्लाया; किंतु आस-पास कोई था ही [illegible]रोंमें मधुमक्खियाँ भर गयीं। मैंने सब [illegible]लगभग मूर्च्छित होते समय मैंने—'राम राम, महावीर महावीर' की रट लगायी। अचानक मधुमक्खियाँ मुझे छोड़कर चली गयीं। मैंने नया जीवन पाया।

—मोहनलाल साहू

(५६)

बर्र (भिड़) भागीं

मेरे शौचालयके द्वारके पास बर्रका बहुत बड़ा छत्ता लग गया। आते-जाते वे कई बार काट लेती थीं। धीरे-धीरे मकानमें कई स्थानोंपर उन्होंने छत्ते बना लिये। मेरे मनमें उन्हें कई बार जला देनेका कुविचार आया; किंतु मैंने अपनेको रोक लिया।

एक दिन हमारा भंगी कह गया—'अब आप जबतक बर्रका छत्ता नहीं जला देंगे, मैं आपका शौचालय साफ करने नहीं आऊँगा।'

घरके लोग तो तंग थे ही, अब भंगीकी बातने मुझे अधिक चिन्तामें डाल दिया। रात्रिको मैं अपने आराध्यदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे लगभग आधे घंटे यह प्रार्थना करता रहा कि—'नाथ! आप मुझे इतने जीवोंकी हत्याके महापापसे बचाइये।'

सवेरे शौचके लिये गया तो देखता हूँ कि छत्ता सूना पड़ा है। एक भी बर्र उसपर नहीं है।

—वैद्य महेशनारायण

(५७)

राम-नामने सहायता की

मेरे पिताजीने एक प्राइवेट कारकी व्यवस्था कर ली थी और कुछ मित्रोंके साथ वे गङ्गा-स्नान करने गये थे। स्नान करके लौटते समय जंगलके बीचमें मोटरका एक अगला टायर फट गया। सूर्यास्त हो चुका था, सर्दी बहुत पड़ने लगी थी। डेढ़-दो-मील इधर-उधर भटकनेपर भी कोई बस्ती नहीं मिली, जहाँसे कुछ सहायता मिल पाती। किसी प्रकार एक रस्सीकी व्यवस्था हुई। उससे टायरको बाँधकर गाड़ी चलायी गयी; किंतु दस-पंद्रह गज चलते ही रस्सीके दो टुकड़े हो गये। रस्सी जोड़कर फिर बाँधी गयी। इस बार गाड़ी चली तो रस्सीके कई टुकड़े हो गये।

पिताजीने गाड़ी चलानेवाले सज्जनको रोक लिया। शेष लोगोंको पैदल भेजा कि आगे कोई गाड़ी-ताँगा मिले तो उससे वे घर पहुँचें। अब उन्होंने रस्सीके टुकड़े जोड़

टायरको फिर बाँधा । इसके बाद मन-ही-मन प्रार्थना की—

दीन दयाल बिरद संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥

इसके बाद गाड़ीमें बैठे । इस बार उस टूटी रस्सीने
। टायर काम दे गया । गाड़ी घर पहुँच गयी ।

—रजनी मित्तल 'प्रभाकर'

(५८)

ारेके लिये की गयी प्रार्थनाका प्रभाव

लगभग १० वर्ष पुरानी बात है। मेरा घर एक बड़े रमें है, किंतु काम करनेके लिये मैं दूसरे शहरमें रहता था। रहनेके लिये एक दुर्बल वृद्ध जमींदार दम्पतिके मकानका कमरा किरायेपर लिया। उन दिनों वृद्धावस्थाके लिये नका नियम नहीं था और वृद्ध जमींदार दम्पतिकी जीविकाका एकमात्र आधार उनके मकानके कुछ रोंसे प्राप्त किराया ही था। जमींदार दम्पति बड़े ही भद्र किंतु दुर्भाग्यवश किरायेदार एक-एक करके मकानको ली करके जाने लगे। केवल दो व्यक्ति बचे—एक मैं और दूसरे सज्जन, जो वर्षोंसे वहाँ रह रहे थे। मैं भी अपने फिसके समीप ही कोई नया कमरा लेकर रहना चाहता परंतु मुझे लगा कि जमींदार-दम्पतिकी सहायताके लिये अभी वहीं ठहरना चाहिये।

उन दिनोंमें ईश्वरीय-प्रार्थनाके विषयमें अध्ययन कर रहा और मेरा विश्वास ईश्वरीय शक्ति एवं सौहार्दपर बढ़ रहा । हठात् मेरे मनमें भावना जाग्रत् हुई कि जमींदार-ातिकी कुछ सेवा करूँ। मेरे नये अध्ययनके आधारपर निश्चय किया कि जमींदार-दम्पति मेरे आश्रित न होकर ावान्के आश्रित हैं। अतएव मुझे भगवान्से ही उनके ो प्रार्थना करनी चाहिये। मैंने अपनी प्रार्थनामें जमींदार-पतिको भी सम्मिलित किया और अपने दृढ़ विश्वासके साथ । भावना की कि उनके मकानका प्रत्येक कमरा किरायेपर ा हुआ है। दो-चार दिनोंमें ही इस प्रार्थनाका प्रभाव प्रक्ष हो गया। मकानके सब कमरे किरायेपर उठने लगे ार दस दिन पश्चात् जमींदार महोदयको अपना नोटिस—िरायेके लिये मकान खाली है'—उठाना पड़ा। जब मैं पने कमरेकी ओर आ रहा था तो मैंने जमींदार महोदयकी नीको यह कहते सुना—'प्रत्येक कमरा किरायेपर उठ या है और किरायेदार भी इतने सज्जन मिले हैं जैसे कि ाजतक नहीं ।'

इस घटनासे मुझे दो बातें सीखनेको मिलीं। पहली तो यह कि जब किसी समस्या या कार्यको हम विश्वासगर्भित प्रार्थनाके साथ भगवान्को सौंप देते हैं तो वह इतने सुन्दररूपमें सम्पन्न होता है जैसा मानवीय शक्तिसे कभी सम्भव ही नहीं। दूसरे, अन्य व्यक्तिके द्वारा—चाहे वह हमारे लिये अपरिचित ही क्यों न हो—की गयी प्रार्थना भी हमारे जीवनमें बड़ी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है।

—श्री डी० बी० (एक अमेरिकन सज्जन)

(५९)

प्रार्थना तथा गौमाताने रक्षा की

घटना लगभग पाँच वर्ष पूर्वकी है। कॉलेजमें गर्मियों-की छुट्टियाँ हुईं। मुझे पिताजीने हरद्वार जानेकी आज्ञा दे दी। हरद्वारमें मेरे मामाजी काम करते थे। वहाँ पहुँचनेपर पता लगा कि मामाजीने निवासस्थान बदल दिया है; किंतु अपने कार्यालयमें वे मिल गये। हरद्वारसे चार मील दूर उनका बँगला था। शामको चले तो किसी प्रकार रात्रिमें अँधेरा होनेपर वहाँ पहुँचे।

मामाजीका बँगला सर्वथा सुनसान स्थानमें था। उसके चारों ओर चौथाई मीलतक दूसरी कोई झोंपड़ी तक नहीं थी। इस बँगलेमें मामाजी, उनका नौकर, एक गाय तथा गायका बछड़ा—बस, इतने प्राणी थे और अब मैं पहुँच गया था।

वहाँ पहुँचनेपर नौकर बहुत उदास मिला। पूछनेपर उसने बताया कि 'पिछली रातमें इधर एक गाँवमें डकैती हुई है। डाकू जो माल ले गये, वह तो ले ही गये, उन्होंने तीन मनुष्य मार दिये।'

इस समाचारसे मेरा तो मुख सूख गया; किंतु मामाजी निश्चिन्त थे। उन्होंने कहा—'डाकू यहाँ नहीं आयेंगे। यदि आ ही गये तो उन्हें चाभियाँ दे दूँगा कि जो ले जाना चाहें, ले जायँ। भला, यहाँ उनके ले जाने योग्य धरा क्या है। फिर भगवान् कहीं चले तो नहीं गये हैं। वे सबके रक्षक हैं। उनपर विश्वास रक्खो।'

जिसका भय था, वही हुआ। रातमें मुझे पता नहीं। मुझे तो उन्होंने डाँटकर तो एक डाकू रिवाल्वर लिये मेरे सा मकानमें टार्चोंकी रोशनी थी । मैं

सामने भी एक डाकू पिस्तौल ताने खड़ा है और वे नेत्र मूँदे मन-ही-मन प्रार्थना कर रहे हैं। नौकर मुझे दिखायी नहीं पड़ा।

डाकुओंने पूरा घर छान मारा। उन्हें बहुत थोड़ा सामान मिला। इससे उनका सरदार जो अबतक बगीचेमें एक कुर्सीपर बैठा सिगरेट पी रहा था, वहींसे मामाजीकी ओर संकेत करके बोला—'इसे खत्म कर दो; नहीं तो पीछे यह पुलिसमें जायगा। इस लड़केको साथ ले लो। यह कुछ काम आयेगा।'

यह सुनकर दोनों डाकू हमलोगोंकी ओर बढ़े। इसी समय गाय अचानक उठ खड़ी हुई। वह अबतक बैठी थी। पीछे पता लगा कि वह बैठे-बैठे अपनी बाँधनेवाली रस्सी चबा रही थी। चबानेसे रस्सी कमजोर हो गयी थी। गायने उठकर झटका देकर रस्सी तोड़ डाली और वह डाकुओं-पर टूट पड़ी। गाय हुंकार करके टूटी और सिंहनी बनी थी। उसने मेरे और मामाजीके पासवाले डाकुओंको पहले गिराया। दस मिनटमें उसने अपने सींगोंसे मार-मारकर सरदारसहित कई डाकुओंको मूर्छित कर दिया। उनके शरीर क्षत-विक्षत हो गये। कुछ डाकू भाग गये।

नौकर बेहोश मिला। वह भयसे मूर्छित हो गया था। प्रातःकाल पुलिस आयी और डाकुओंको बंदी बनाकर ले गयी। भगवत्-प्रार्थनाका ही प्रभाव मैं मानता हूँ कि गौमातामें वह आवेश आया और हमारे प्राण बचे।

—कृष्णकुमार वैश्य 'स्वदेशी'

(६०)

पुत्र-प्राप्ति

... वर्ष हो गये और मुझे कोई ... लोगोंने उलाहने देने ... अब घरके लोग भी निराश हो गये। मेरी ... चुकी थी। लोगोंने मेरे आग्रह बहुत पहिले ही भी उन्हें ऐसा करनेको ... कर मेरी बात अनसुनी

अपने परिवारके लोगोंके साथ मैं गतवर्ष भगवती दुर्गाजीके दर्शन करने गयी। वहाँ मैंने जगदम्बासे प्रार्थना की और नित्य दुर्गाजीकी पूजाका व्रत लिया। मैंने निश्चय किया देवीके सम्मुख—'माँ! यदि मेरी प्रार्थना आपने नहीं सुनी तो वर्षभर बाद मैं पतिदेवसे हठ करके उनका दूसरा विवाह करा दूँगी और वे यदि मेरा आग्रह नहीं मानेंगे तो उनके वंशकी रक्षाके लिये विष खाकर शरीर छोड़ दूँगी। जिससे वे मेरे न रहनेपर दूसरा विवाह कर लें।'

घर आकर मैं दूसरे दिनसे नियमपूर्वक दुर्गाजीकी पूजा तथा 'दुर्गा-चालीसा'का पाठ करने लगी। वर्ष पूरा होनेसे पहले ही पुत्रसे मेरी गोद भर गयी। माताने मेरी प्रार्थना सुन ली।

—श्रीमती विपुला सिनहा

(६१)

अद्भुत कृपा

मेरे ग्रामसे पाँच मील दूरके ग्राममें एक ब्राह्मण-परिवार है। उसमें तीन भाई हैं। भाइयोंमें पटी नहीं। वे पृथक् हुए। बँटवारेमें दो भाइयोंको मकान मिला और एकको परती भूमि मिली। अब इस तीसरे भाईके लिये, जिसे मकान नहीं मिला था, तत्काल मकान बनाये बिना कोई उपाय ही नहीं था। उसके पास सिर छिपानेको भी स्थान नहीं था।

गरमीके दिन थे। सब ताल-तलैया सूखे पड़े थे। गाँवमें केवल एक सरकारी नल था। उसीसे पूरा गाँव पानी लेता था। पानीके बिना मकान बन नहीं सकता था और वर्षासे पहिले मकान नहीं बना तो वर्षामें बैठनेको स्थान नहीं था। वे ब्राह्मण दुखी होकर भगवान्से बराबर प्रार्थना करने लगे—'प्रभो! मेरा मकान कैसे बनेगा? आप ही कोई कृपा करो! अब मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूँ?'

भगवान्ने अद्भुत कृपा की। गाँवमें जो सरकारी नल था, उसके नीचेका मोटा पाइप फट गया। उससे इतना पानी निकला कि आसपासके सब गड्ढे, खेत, ताल-तलैया भर गये। पानी बंद करनेमें कारीगरोंको समय भी काफी लगा। इतनेमें उस ब्राह्मणका मकान बड़ी सरलतासे बन गया।

—[illegible]